Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

12-1.

द्विचत्वारिंशत्तमम् अखिलभारतीयप्राच्यविद्यासम्मेलनम्, २००४

42nd All India Oriental Conference, 2004

शोधनिबन्ध-सारांशः

SUMMARIES OF PAPERS

सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयः, वाराणसी

SAMPURNANAND SANSKRIT UNIVERSITY, VARANASI

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४२वें अखिल भारतीय प्राच्यविद्या सम्मेलन की सफलता के लिए हार्दिक मङ्गलकामना सहित सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के प्रकाशन-संस्थान द्वारा अभिनव प्रकाशित सङ्ग्रहणीय महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ

१. **माध्यन्दिन-शतपथब्राह्मणम्** [प्रथमो भागः]
इस अपूर्व वैदिक ग्रन्थ का प्रकाशन सायणाचार्य कृत *'वेदार्थप्रकाश'* संस्कृतभाष्य एवं प्रो. युगलकिशोर मिश्र कृत **हिन्दी-भाषानुवाद** के साथ किया गया है– ८००.००

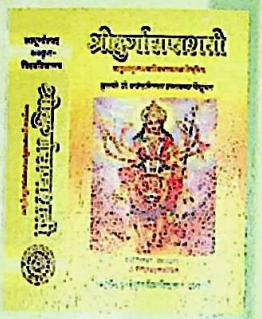

२. **दुर्गासप्तशती**
दुर्गासप्तशती के इस उत्कृष्ट संस्करण में प्राचीन एवं दुर्लभ सात संस्कृत टीकाओं का संयोजन किया गया है। विशिष्ट भूमिका एवं आवश्यक परिशिष्टादि के साथ इसका सम्पादन डॉ. गिरिजेश कुमार दीक्षित ने किया है– ८००.००

३. **बृहत्संहिता** [परिवर्द्धित संस्करण]
वराहमिहिराचार्य द्वारा प्रणीत ज्योतिषशास्त्र के इस महनीय ग्रन्थ का प्रकाशन भट्टोत्पल की *'विवृति'* एवं डॉ. [illegible] पाण्डेय की सुविस्तृत *हिन्दी-व्याख्या* के साथ किया गया है– भाग-१ : ५००.०० भाग-२ (शीघ्र प्रकाश्य) भाग-३ (यन्त्रस्थ)

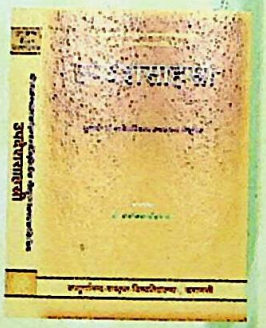

४. **उपदेशसाहस्री**
श्री शङ्करभगवत्पादाचार्य विरचित इस ग्रन्थ का प्रकाशन सरस्वतीभवन पुस्तकालय की हस्तलिखित पाण्डुलिपि के आधार पर किया गया है। इसके सम्पादक प्रो.रामकिशोर त्रिपाठी हैं। इसमें सम्पूर्ण उपनिषदों का सार सङ्ग्रहीत है– २८०.००

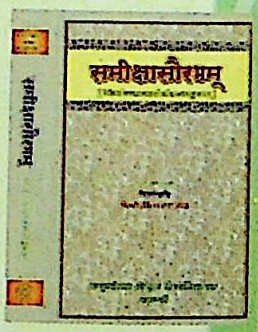

५. **समीक्षासौरभम्**
प्रो. राजेन्द्र मिश्र द्वारा प्रणीत समीक्षात्मक एवं अनुसन्धानात्मक निबन्धों को सङ्ग्रहीत कर इस महनीय ग्रन्थ को प्रकाशित किया गया है– ३००.००

६. **भट्टिमहाकाव्यम्**
महाकवि भट्टि विरचित इस महाकाव्य को श्री जयमङ्गल कृत *'जयमङ्गला'* एवं श्री मल्लिनाथ कृत *'सर्वपथीना'* संस्कृत-व्याख्या के साथ डॉ. बाँकेलाल मिश्र के सम्पादकत्व में प्रकाशित किया गया है–
भाग-१ : ५००.०० भाग-२ : ३५०.००

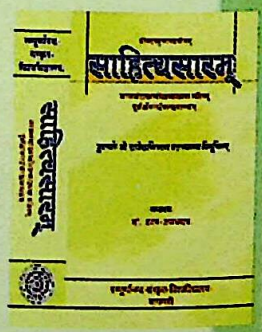

७. **साहित्यसारम्**
श्री अच्युत राय द्वारा विरचित काव्यशास्त्र के इस प्रकरण ग्रन्थ को स्वोपज्ञ सरसामोद संस्कृत-व्याख्या के साथ प्रकाशित किया गया है। इसके बारह रत्नों में साहित्यशास्त्र के समग्र विषयों का सारसङ्ग्रह प्रस्तुत किया गया है। इसके सम्पादक डॉ. ददन उपाध्याय हैं– ७५०.००

(क्रमशः कवर पृष्ठ-३ पर)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्विचत्वारिंशत्तमम् अखिलभारतीयप्राच्यविद्यासम्मेलनम्

[४-६ नवम्बर, २००४]

शोधनिबन्ध-सारांशः

प्रधानसम्पादकः

प्रो. 'अभिराज' राजेन्द्रमिश्रः

कुलपतिः

सम्पादकः

प्रो. गङ्गाधरपण्डा

सम्पादकमण्डलम्

डॉ. राजारामशुक्लः **प्रो. फूलचन्दजैनः**

डॉ. विद्याकुमारः **डॉ. विनीता सिंहः**

डॉ. मीनाक्षी सिंहः **डॉ. लतापन्ततैलङ्गः**

डॉ. कमलाकान्तत्रिपाठी

डॉ. अविमुक्तनाथपाण्डेयः

प्रकाशन-मण्डलम्

प्रो. ब्रह्मदेवनारायणशर्मा

डॉ. हरिश्चन्द्रमणित्रिपाठी, संयोजक

डॉ. राजारामशुक्लः

डॉ. ददन-उपाध्यायः

डॉ. हरिवंशकुमारपाण्डेयः

२००४

सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयः, वाराणसी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशकः

डॉ. हरिश्चन्द्रमणित्रिपाठी

निदेशकः, प्रकाशनसंस्थानस्य

सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालये

वाराणसी-२२१ ००२

❐

प्रथमं संस्करणम् : २५०० प्रतिरूपाणि

❐

मुद्रकः

श्रीजी प्रिण्टर्स

नाटी इमली, वाराणसी-२२१ ००१.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

42nd Session, All India Oriental Conference
4-6 November, 2004

SUMMARIES OF PAPERS

CHIEF EDITOR
Prof. 'Abhiraj' Rajendra Mishra
VICE-CHANCELLOR

EDITOR
Prof. Gangadhar Panda

BOARD OF EDITORS
Dr. Rajaram Shukla
Prof. Phulchand Jain
Dr. Vidya Kumar
Dr. Vinita Singh
Dr. Minakshi Singh
Dr. Latapant Tailang
Dr. Kamalakant Tripathi
Dr. Avimuktanath Pandey

BOARD OF PUBLISHERS
Prof. Brahmadeva Narayana Sharma
Dr. Harishchandra Mani Tripathi
Convener
Dr. Rajaram Shukla
Dr. Dadan Upadhyay
Dr. Harivansh Kumar Pandey

2004
Sampurnanand Sanskrit University, Varanasi

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Published by
Dr. Harishchandra Mani Tripathi
Director, Publication Institute
Sampurnanand Sanskrit University
Varanasi

❐

First Edition : 2500 Copies

❐

Printed by
SHREEJEE Printers
Nati Imali, Varanasi-221 002

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नान्दीवाक्

पाश्चात्त्य एवं पौरस्त्य संस्कृतज्ञों-विद्वज्जनों को एक मञ्च पर लाने तथा उनके बीच संवादसेतु स्थापित करने के उद्देश्य से ही **सन् १९१९ ई.** में **अखिल भारतीय प्राच्यविद्या सम्मेलन** (All India Oriental Conference) का शुभारम्भ महाराष्ट्र की विद्या-राजधानी पुण्यपत्तन (पुणे) में किया गया था। तभी से प्रवर्तित यह ज्ञान-यज्ञ अब **आनन्दकानन काशी में अपना ४२वाँ सत्र** सम्पन्न कर रहा है। **सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय** में यह अधिवेशन दूसरी बार प्रायः चालीस साल बाद हो रहा है।

परन्तु ४२वें अधिवेशन की कुछ अभूतपूर्व विशेषताएँ हैं। प्रायः बाइस सौ पंजीकृत प्रतिनिधि इस सम्मेलन में पधार रहे हैं, जो अब तक के सम्मेलनों की बृहत्तम संख्या है। यह प्रथम वैशिष्ट्य है। दूसरा वैशिष्ट्य है कुछ नये अनुभागों (Sections) का इदम्प्रथमतया सम्पन्न होना। पण्डित-परिषद् के प्रतिभागी विद्याधुरीण शास्त्रज्ञों एवं प्रकाशन-प्रदर्शनी के आयोजक प्रकाशकों की संख्या भी पूर्व अधिवेशनों की तुलना में अत्यन्त अधिक है। लोकार्पण हेतु उपलब्ध ग्रन्थों की संख्या इतनी अधिक हो गई है कि विवश होकर उस उपक्रम को समापन-समारोह में रखना पड़ा है।

वस्तुतः समारोह का यही सौन्दर्य एवं गौरव भी है। वह समारोह ही क्या, जिसमें सब कुछ अपनी **सामर्थ्य** की तुलना में **लघु** ही प्रतीत हो। समारोह होना ही ऐसा चाहिए, जो अपने कद से बड़ा लगे, अपनी शक्ति एवं सामर्थ्य की दृष्टि से दूभर प्रतीत हो और जिसकी निर्विघ्न समाप्ति में भगवदाश्रय का ही एकमात्र सम्बल हो।

प्रतिनिधियों को दी जाने वाली उपहारभूत सारस्वत-सामग्री में **स्मारिका, सारांशिका विश्वविद्यालय-वार्ता** के **दो अंक** तथा **फोल्डर** आदि सम्मिलित हैं, जिनसे इस विश्वविद्यालय के सारस्वत-अवदान का ज्ञान हो सकेगा। **विश्वविद्यालय-वार्ता का नवीनतम अंक ४२वें अखिल भारतीय प्राच्यविद्या सम्मेलन** के **विशेषाङ्क** रूप में प्रकाशित किया गया है। इन अंकों में विशेषरूप से मेरे अपने कार्यकाल की गतिविधियों को रेखांकित किया गया है।

इस अधिवेशन को सफल बनाने के लिये विश्वविद्यालय ने आर्थिक संकटों के बावजूद यावच्छक्य परिश्रम किया है, मेरे सहयोगी प्राध्यापक-बन्धुओं, कर्मचारियों एवं छात्रों ने कई महीने तक रात-दिन कठोर परिश्रम किया है। प्रति-कुलपति, कुलसचिव, वित्ताधिकारी, संकायाध्यक्षों, अधीक्षकों, विभागाध्यक्षों तथा प्राध्यापकों ने विविध आयोजन-समितियों में सम्मिलित होकर प्रशंसनीय योगदान दिया है। मैं उन सबके प्रति समवेतरूप से हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। संवाद-समितियों के सदस्यों ने सदैव हमारा उत्साह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बढ़ाया है, अपनी तथ्यपरक प्रशंसनीय टिप्पणियों से, मैं उनका भी हृदय से आभारी हूँ। समागत मेहमानों की सुख-सुविधा के लिए छात्रों ने छात्रावासों में उपवेशन-व्यवस्था सम्पन्न कराने की दिशा में जो सहयोग दिया है, तदर्थ उन्हें भी आशीः वितरित करता हूँ। विशेषतः छात्रसंघ के नये पदाधिकारी आयुष्मान् **श्री इच्छाराम पाठक** (अध्यक्ष), **श्री संगमलाल मिश्र** (उपाध्यक्ष), **श्री कमलेश कुमार मिश्र** (महामन्त्री) एवं **श्री शैलेश कुमार मिश्र** (पुस्तकालय-मन्त्री) साधुवाद के पात्र हैं, विध्यात्मक सहयोग देने के लिये।

४२वें प्राच्यविद्या-सम्मेलन में प्राप्त शोध-निबन्ध-सारांशों का यह संकलन भी संभवतः अब तक का विशालतम संकलन है। सम्पादक-मण्डल ने प्रत्येक अनुभाग के शोधपत्रों को संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी के क्रम में व्यवस्थित करके यह नूतन स्वस्थ परम्परा प्रारम्भ की है, जो अभिनन्दनीय है। मैं इस महाग्रन्थ में संकलित समस्त स्थापित, प्रतिष्ठित विद्वानों एवं उभरते शोधच्छात्रों एवं युवा विद्यानुरागियों का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ। समारोह के अत्यन्त उत्साही, कर्मठ एवं विद्वान् स्थानीय सचिव, **प्रो. गङ्गाधर पण्डा** तथा उनके अन्तरंग मित्रों की टीम ने जिस लगन एवं निष्ठा से कार्य किया है, उससे मेरा स्वाभिमान एवं आत्मविश्वास दृढ़ हुआ है।

प्राच्यविद्या सम्मेलन-सम्बन्धी इन महनीय प्रकाशन-कार्यों के लिये विश्वविद्यालयीय प्रकाशन-संस्थान के यशस्वी निदेशक, सहृदयोत्तम **डॉ. हरिश्चन्द्र मणि त्रिपाठी** एवं उनके **सहयोगियों** को पृथक् रूप से सविशेष धन्यवाद देता हूँ तथा प्रकाशन-कार्य के मुद्रक प्रिय भाई **अनूप कुमार नागर** (श्रीजी प्रिण्टर्स) को भी हार्दिक आशीः देता हूँ, अपने साथ **समरस** होने के लिये।

इन्हीं शब्दों के साथ शोधालेखों की यह संकलना प्रतिनिधियों के कर-कमलों में अर्पित करता हूँ। इसके प्रकाशन में यथाकथञ्चित् सहयुक्त समस्त मित्रों को भूरिशः धन्यवाद देता हूँ।

वाराणसी
शरत्पूर्णिमा,
वि.सं. २०६१
(२७ अक्टूबर, २००४ ई.)

अभिराज राजेन्द्र मिश्र

(प्रो. 'अभिराज' राजेन्द्र मिश्र)
कुलपति
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PREFACE

All India Oriental Conference erst-while Indian Conference started its journey in 1919 to promote researches on ancient lore. We can not imagine the quatum of labour that our ancestors had put on to continue the prolonged tradition. We are all grateful to all those Ṛṣis and Munis who have preserved the unbroken heritage for which we are proud of our country. As has been told 'भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतं संस्कृतिस्तथा' without the knowledge of Sanskrit, the civilization or Saṁskriti can not be understood. Thus, this is the prime duty of the Central and State Governments to shoulder the responsibility for promotimg this *devabhāṣā* i.e. Sanskrit language. That is why, the Sanskrit Commission constituted by Govt. of India in 1955-56 had rightly recommended that "It is true that under the constitution, education is the responsibility of the State Government. But in view of the fact that Sanskrit is of all India provenance and is the basis of most of the Modern Indian Langauges and important from the point of view of country's cultural heritage and national solidarity, it is but proper that Union Government should feel concerned about the promotion of its study at all levels".

The spirit which National Sanskrit Commission had in its mind, was felt earlier by the Indian Orientalists long back after the first World War. The idea was nurtured and matured under the active inspiration of Late R.G. Bhandarkar and it was decided that a periodical Conferences of Indian Orientalists should be organised. Accordingly, the resolution was passed in the Executive Body meeting of Oriental Institute held an 12.12.1918 to hold an Oriental Conference in 1919 at Poona. The decision was materialised and the Conference was held in 1919, in which more than 300 delegates were present and Late Ramgopal Bhandarkar was elected as General President. This tradition was continued and Conferences were organised in every alternative year. Brief sketch, selected at random, as ready reference to know the development of persistent endeavour is given as follows :

No. of the Session	*Year*	*Venue*
I	1919	Poona
II	1922	Calcutta
IV	1926	Allahabad
VI	1930	Patna
VII	1933	Baroda

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

XII	1944	Varanasi
XIII	1946	Nagpur
XIX	1957	Delhi
XX	1959	Bhubaneswar
XXI	1961	Srinagar
XXIV	1968	Varanasi
XXV	1969	Jadavpur
XXVI	1972	Ujjain
XXIX	1978	Poona
XXXI	1982	Jaipur
XXXII	1984-85	Ahmadabad
XXXIII	1986	Calcutta
XXXV	1990	Haridwar
XXXVI	1993	Poona
XXXVIII	1996	Jadavpur
XXXIX	1998	Baroda
XXXX	2000	Chennai
XXXXI	2002	Puri

Since the conference had been started at Poona, it was decided that the Headquarters be fixed there at Bhandarkar Oriental Research Institute as its office. On 25.2.44 legal shape was given to this Conference as it was registered as All India Oriental Conference (AIOC) under Societies Registration Acts XXI of 1860. Originally 15 sections were decided to be conducted i.e., 1. Vedic, 2. Iranian, 3. Clasical Sanskrit, 4. Islamic Studies, 5. Arabic and Percian, 6. Pali and Buddhism, 7. Prakrit and Jainism, 8. History, 9. Archaeology, 10. Indian Linguistics, 11. Philosophy and Religion, 12. Technical Science and Fine Arts, 13. South East Asian Studies, 14. West Asian Studies, 15. Local Language Literature and Culture/Dravidian Studies.

Gradually, the Sections are being increased and Varanasi Session shall be presenting 21 sections before galaxy of scholars. The additional subjects are : 16. Modern Sanskrit, 17. Manuscriptology, 18. Epics and Purāṇas, 19. Sanskrit and Computers, 20. Indian Aesthetics and Poetics, 21. Pandit Parishad.

Kāśī, the cultural capital of India, embodiment of all types of traditions has been attracting people of the globe for its manifold captivation : Lord *Viśvanātha*, Goddess *Annapūrṇā* and *Viśālākṣī* and alluring banks of river *Ganges*. This has been also attracting the tourists of foreign countries on account of sacred place of Buddha and

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Tīrthankars. Further, this place is again dignified by birth of the saints like *Kabir*. Famous story writer *Munsi Premchand* and National Leader and former Prime Minister of India, Shri Lal Bahadur Shastri had given credit to this soil by their benign birth.

I welcome to the scholars in Sampurnanand Sanskrit University which is the oldest one in the country and thanks them for their herculian efforts, who contributed to this Summaries of Papers and are coming to enjoy the intelectual festives.

First of all I bow down to His Holiness Jagadguru Sri Jayendra Saraswati Swamigal, the great disciple of Jagadguru Shri Chandrasekharendra Saraswati Swamigal, who had blessed this Conference by donating a token grants which enabled us to open the account. Later, we are blessed by Rashtriya Sant Vidyanand Muniji, Kundakunda Bharati, New Delhi, Swami Brahmasvarup Brahmachari, Jayram Ashram, Kurukshetra, Swami Karunananda Ji, Jaunpur, Swami Indiraraman Das, Jeerswami Math, Puri and Mahanta Raghuvir Das, Balaramkot Math, Puri and Mahanta Shri Avaidyanath Gorakhnath Temple, Gorakhpur who have encourged us by their financial supports. We are also grateful to the donors like Sri Aswini Kumar Shah, Shah Paper Mart, Varanasi and to all those who have supported us by providing advertisments to the Souvenir which is being published on the eve of this ocasion.

I also take the opportunity to give heartfelt thanks to my Vice-Chancellor Prof. **'Abhiraj' Rajendra Mishra** for his towering personality who had invited this AIOC to Sampurnanada Sanskrit University and gave opportunity to serve to the cause of Sanskrit. By his able leadership, it was possible on our part ot complete the task within stipulated time. I am also greatful to my colleagnes **Dr. Rajaram Shukla**, Director, Research Institute and **Dr. Somnath Tripathy**, Head, Dept. of Social Science as Asst. Secretaris, AIOC for their timely cooperation. Further, thanks are due to all Coordinators of different Committes of the Conference for taking their responsibilities in the respective fields.

Last but not the least, I give thanks and want to place on record the cooperation of **Dr. Harischandra Mani Tripathy,** Director, Publication and his team members **Dr. Dadan Upadhyay** and others for making this endeavour a success.

Sri Anup Kumar Nagar of **M/s Sreejee Printers, Varanasi** deserves special appreciation for working day and night to complete this mission, as a result, we are able to present this ambrosia of *'Sarasvatī Śruti'* in the hands of the scholars of this august gathering.

Vijayā-Daśamī
23.10.04

Prof. Gangadhar Panda
Local Secretary

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CONTENTS

Sl.	Sections	Abbreviations	Pages
1.	**Vedas**	V	1-119
2.	**Iranian**	IR	121-124
3.	**Classical Sanskrit**	CS	125-270
4.	**Islamic Studies**	IS	271-274
5.	**Arabic & Persian**	AP	275-277
6.	**Pali & Buddhism**	PB	279-304
7.	**Prakrit & Jainism**	PJ	305-349
8.	**History**	H	351-400
9.	**Archeology**	Arch	401-411
10.	**Indian Linguistics**	IL	413-482
11.	**Dravidic Studies**	DS	483-488
12.	**Philosophy & Religion**	PR	489-673
13.	**Technical Sciences & Fine Arts**	TS & FA	675-748
14.	**West Asian Studies**	WAS	749-751
15.	**Modern Sanskrit**	MS	753-832
16.	**South East Asian Studies**	SEAS	833-853
17.	**Manuscriptology**	MSS	855-868
18.	**Epics & Puranas**	EP	869-941
19.	**Sanskrit & Computers**	SC	943-947
20.	**Indian Aesthetics & Poetics**	IA & P	949-1006
	Supplementary List of Summaries		1007-1032

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CONTENTS

SECTION - 1

V **VEDIC STUDIES** 1-119

1.	वेदेषु राष्ट्रचिन्तनम्	डॉ॰ रवीन्द्रनाथभट्टाचार्यः, कोलकाता	3
2.	ऋग्वेदे सृष्टितत्त्वविमर्शः	डॉ॰ राममूर्तिचतुर्वेदी, वाराणसी	3
3.	श्रीअरविन्ददृष्ट्या अग्नितत्त्वविमर्शः	जगमोहन आचार्यः, भुवनेश्वरम्	4
4.	अथर्ववेदेऽभिहित-वृष्टिस्वरूपविवेचनम्	डॉ॰ भारतभूषणमिश्रः, जम्मूस्थः	5
5.	विश्वशान्त्यै वेदानामुपादेयत्वम्	डॉ॰ महेन्द्रपाण्डेयः, वाराणसी	5
6.	वेदेषु मानसिकचिकित्सा	डॉ॰ सोमदेवः शतांशः, हरिद्वार	6
7.	वैदिक-खगोलविद्यायाः वैज्ञानिकानुशीलम्	पराम्बा श्रीयोगमाया, भुवनेश्वर	7
8.	वैदिकवाङ्मये ग्रामणीविशांपति-राजन्-शब्दानां.....	श्री-अजयकुमारमिश्रः, शान्तिनिकेतन	7
9.	वैदिकदेवताविज्ञानम्	डॉ. शिवप्रसाद-अग्निहोत्री, कानपुर	8
10.	निरुक्तेऽनार्य-संस्कृतिः	डॉ. मञ्जुपाण्डेयः, पलामू	8
11.	उपनिषत्सु स्वाराज्यम्	डॉ. प्रभातरञ्जनमहापात्रः, पुरी	9
12.	स यज्ञः तस्य यज्ञः	डॉ. जयनारायणपाण्डेयः, राँची	9
13.	वैदिकवाङ्मये सूर्योपासनया व्याधिशमनम्	डॉ. वीरेन्द्रकुमारमिश्रः	10
14.	सामाजिकपर्यावरणं निरुक्तञ्च	डॉ. रामाशीषपाण्डेयः, राँची	11
15.	निरुक्तेऽभिव्यक्तो वेदाचारः	डॉ. सन्तोषकुमारपाण्डेयः, राँची	11
16.	सायणाचार्य्याणाम् ऋग्भाष्यप्रामाण्यसमीक्षा	डॉ. उदयचन्द्रबन्दोपाध्यायः, कोलकाता	12
17.	दोषा वस्तःपदस्य स्वरानुसारेण अर्थविवरणम्	डॉ. रवीन्द्र अंबादास मुके, महाराष्ट्रम्	12
18.	वैदिकच्छन्दसां छन्दस्त्वम्	डॉ. राजेश्वरमिश्रः, हरियाणा	13
19.	अथ वैमानिकं किञ्चिद्	डॉ. मिताली देवः, वाराणसी	14
20.	वेदाङ्गसमीक्षा	डॉ. के.एच. शर्मा, तिरुपतिः	14
21.	शिक्षा प्रातिशाख्यं च : एका समीक्षा	विद्वान् एस. नारायणः, कर्नाटकम्	15
22.	वेदे आङ्गिरसः	डॉ. गंगादत्तशास्त्री, जम्मूतवी	16
23.	श्रीचन्द्रदिग्विजये भगवतः श्रीचन्द्रस्य वैदिकी दृष्टिः	डॉ. एल.पी. उपाध्यायः, जालन्धरनगरम्	17
24.	वैदिकं सृष्टिविज्ञानम्	डॉ. ब्रह्मचारी व्यासनन्दनः शास्त्री, मोदफलपुरम्	18
25.	वैदिकशिक्षा : प्राचीना उत नूतना	डॉ. प्रमोदिनी पण्डा, वाराणसी	18
26.	विनियोगवादः	डॉ. रमेशचन्द्रदाशशर्मा, दिल्ली	19

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

27. वेदे वृष्टिविज्ञानम्	डॉ. नरेन्द्रदत्ततिवारी, वाराणसी	19
28. वायु-शुद्धिकरणं पर्यावरण-संरक्षणं च—एकं.....	श्रीराधारमणपाण्डेयः, इलाहाबाद	20
29. वेदतत्त्वमीमांसा	डॉ. पतञ्जलिमिश्रः, वाराणसी	20
30. वेदेषु जलविज्ञानम्	डॉ. उदयशङ्करपाण्डेयः, हुथआ (बिहार)	21
31. वेदेषु प्रकृतिचित्रणम्	डॉ. कीर्त्यानन्दप्रचेता ताँती, दरभङ्गा	22
32. वेदों में पुनरुक्ति की समस्या का समाधान	डॉ॰ सत्यदेव निगमालंकार, हरिद्वार	23
33. वेद शास्त्रों का सारगर्भित रूप : गायत्री	डॉ॰ विभा शुक्ला	23
34. वैदिक साहित्य में धर्म दर्शन	डॉ॰ बालकृष्ण शर्मा, मुजफ्फरपुर	24
35. अथर्ववेद में नीतितत्त्व	सुश्री लीला चौहान, अलीगढ़	25
36. भौतिकता के युग में अनिवार्यता ऊँकार की	डॉ॰ सुमनलता रस्तोगी, कानपुर	26
37. वैदिककालीन पर्यावरण जागरूकता.....	डॉ॰ भावना मौर्य, राँची	26
38. उपनिषदों में शान्तिपाठ	डॉ॰ इन्दुप्रकाश मिश्र 'इन्दु', इलाहाबाद	27
39. विश्व वृक्ष और वेद	श्री अरुण कुमार उपाध्याय, उड़िसा	28
40. वेदों में आचार-निरूपण : वर्तमान सन्दर्भ में	डॉ॰ इन्द्रा रानी गुप्ता, फीरोजाबाद	29
41. भारतीय कलाओं में सोलह कलाओं.....	डॉ॰ रामबहादुर शुक्ल, जम्मू कश्मीर	30
42. वैदिक प्रातिशाख्यशास्त्र एवं व्याकरणशास्त्र.....	डॉ. गोपाल प्रसाद शर्मा, नई दिल्ली	30
43. ऋग्वेद-प्रातिशाख्य में निरूपित उच्चारण दोष	डॉ. प्रज्ञा जोगेश जोषी, अहमदाबाद	31
44. वैदिक संहिताओं में विज्ञान	प्रो. वेद प्रकाश उपाध्याय, चण्डीगढ़	31
45. अथर्ववेद एवं चिकित्सा-तत्त्व	डॉ. दीनानाथ 'आचार्य', दरभंगा	32
46. वेदोक्त मधुविद्या	डॉ. कृष्णचन्द्र झा, दरभंगा	33
47. वेदों में निहित विश्वशान्ति और राष्ट्रभक्ति	डॉ. आर. सी. त्रिवेदी, राजकोट	33
48. भारतीय आचार पद्धति की वैज्ञानिकता	डॉ. रीना अस्थाना	34
49. स्त्रियों के वेदानुशीलन के अधिकार.....	डॉ. सुनीता जायसवाल, चन्दौली	35
50. पारस्करगृह्यसूत्रवृत्ति के अज्ञात रचनाकार.....	डॉ. माया मालवीय, इलाहाबाद	35
51. ईशावास्योपनिषद्-विश्वशान्ति एवं विश्वबन्धुत्व.....	डॉ. (श्रीमती) मनोरमा गुप्ता, कानपुर	36
52. वैदिक विचारों की सार्वभौमिकता	डॉ. शशि तिवारी, नई दिल्ली	37
53. शुनःशेप आख्यान की प्रासङ्गिकता	डॉ. हेरम्ब पाण्डेय, वाराणसी	37
54. वेदोक्त राष्ट्र	वन्दना, चण्डीगढ़	38
55. वैदिक वाङ्मय में ऐतिहासिक तथ्य	नीरू रानी, चण्डीगढ़	39
56. ऋग्वेदीय नासदीय सूक्त में सृष्टि-उत्पत्ति	सीमा, चण्डीगढ़	40
57. ऋग्वेद-प्रातिशाख्य में निरूपित उच्चारण-दोष	डॉ. प्रज्ञा जोगेश जोषी, अहमदाबाद	40
58. सूर्य चराचर जगत् का प्रत्यक्ष ईश्वर	श्री कृष्णमोहन पाण्डेय, वाराणसी	41
59. ऋग्वेदीय षष्ठमण्डलान्तर्गत अग्निदेव परक.....	श्री सदानन्द, हरियाणा	41

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

60.	यज्ञ और पर्यावरण	डॉ. राम जीत मिश्र, बरेली 42
61.	अथर्ववेद में मौलिक मानवाधिकार	श्री विजय शंकर द्विवेदी, इलाहाबाद 43
62.	ऋग्वेद में सादृश्याभिव्यक्ति हेतु प्रयुक्त गोधेनु.....	डॉ. योगमाया, लखनऊ 44
63.	वेद और मानवाधिकार	डॉ. प्रदीप कुमार दीक्षित, अकबरपुर 45
64.	वैदिक देवतावाद : एक गवेषणात्मक पत्र वाचन	डॉ. सहदेव शास्त्री, अजमेर 45
65.	वेदों में पर्यावरण	डॉ. प्रभाकिरण, मुजफ्फरपुर 46
66.	वैदिक साहित्य में धर्म दर्शन	डॉ. बालकृष्ण शर्मा, मुजफ्फरपुर 47
67.	पृथ्वी स्थानीय देवताओं का अनुशीलन	स्नेहलता दूबे, गोरखपुर 48
68.	ऋग्वेद में प्राप्त नैतिक मूल्य	डॉ. श्रीमती प्रमोद बाला मिश्रा, बरेली 49
69.	अथर्ववेद : चिकित्सा के परिप्रेक्ष्य में	डॉ. कमला अग्रवाल, बड़ौत 50
70.	कौशिकगृह्यसूत्रोक्त नैमित्तिककर्म : एक अध्ययन	डॉ. सुधाकर द्विवेदी, जौनपुर 51
71.	कतिपय वैदिक नारियों का आध्यात्मिक-योगदान	अशरफुन निशा, गाजियाबाद 51
72.	निघण्टु में अनुपलब्ध-निरुक्त में व्याख्यात पद	डॉ. वेदपाल, बडौत 51
73.	वेदों में मित्रावरुण का स्वरूप	कु. अनु रानी, हरियाणा 52
74.	विश्ववारा	डॉ. वन्दना मालवीय, इलाहाबाद 53
75.	वेदों में ज्ञान पक्ष	डॉ. रीता भल्ला, शिमला 53
76.	वेदों में धार्मिक तथा नैतिक आदर्श	डॉ. सुचित्रा मित्रा, इलाहाबाद 54
77.	वैदिक छन्दोविज्ञान	प्रो. लक्ष्मीश्वर झा, नई दिल्ली 55
78.	निरुक्त के ऐतिहासिक निर्वचन	डॉ. रागिणी आर. दवे, गुजरात 55
79.	प्रातिशाख्य-ग्रन्थों का उद्भव और विकास	डॉ. राधेश्याम पाण्डेय, लखनऊ 56
80.	ऋग्वेद में युगल देव : द्यावापृथिवी	कुमकुम सिंह, बरेली 57
81.	गुरुकुल में अध्ययन की व्यवस्था	श्री नारायण कुमार झा, दरभंगा 59
82.	वैदिक साहित्य में शिल्प की अवधारणा	डॉ. (श्रीमती) इला घोष, सिवनी (म.प्र.) 60
83.	वेदों में धार्मिक तथा नैतिक आदर्श	डॉ. सुचित्रा मित्रा, इलाहाबाद 61
84.	अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः	डॉ. दिनेश पाण्डेय, बलिया 62
85.	देवराज चानना कृत ऋग्भाष्य-संग्रह.....	श्री नारायण कुमार झा, दरभंगा 63
86.	ऋग्वेद में मानव पारिस्थिति की.....	डॉ. नन्दिता सिंघवी, बीकानेर 64
87.	उपनिषदों के अनुसार प्रणव का महत्त्व	कु. अञ्जलि वसंत टोपरे, रामटेक 65
88.	वेदाङ्ग साहित्य का परिचय	श्री कृष्ण कुमार झा, दरभंगा 65
89.	आपस्तम्ब-धर्मसूत्र में वर्ण-व्यवस्था	श्री विजयपाल सिंह, कुरुक्षेत्र 66
90.	वर्तमान संमय में निष्काम कर्म उपासना.....	66
91.	मानव कल्प में विवेचित अहीनयाग	डॉ. हरीराम यादव, सुलतानपुर 68
92.	प्रातिशाख्य-ग्रन्थों का उद्भव और विकास	डॉ. राधेश्याम पाण्डेय, लखनऊ 68

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

93.	यजुर्वेद में पर्यावरण चेतना	श्री उपेन्द्र कुमार त्रिपाठी, वाराणसी	69
94.	अथर्ववेद एवं चिकित्सा-तत्त्व	डॉ. दीनानाथ 'आचार्य', दरभंगा	69
95.	हिन्दुओं के विवाह में मेलापक योगविचार	डॉ. तीर्थनाथ झा, मधुवनी (बिहार)	70
96.	वायु-प्रदूषण : कारण और निवारण	डॉ. कृष्णा रंगा, कुरुक्षेत्र, हरियाणा	71
97.	वैदिक वाङ्मय का व्यावहारिक पक्ष	डॉ. हरीश्वर दीक्षित, जौनपुर	72
98.	सामवेद की कौथुम-शाखा में अलङ्कार-तत्त्व	श्रीमती डॉ. वन्दनापाण्डेय, वाराणसी	72
99.	वेदों में द्यूत-निन्दा	डॉ. आशा रानी राय, कानपुर	73
100.	जीवनव्यवहार में भगवद्गीता	डॉ. प्रा. सौ. निरुपमा कुलकर्णी, नाशिक	74
101.	वैदिक(वैखानस)श्रौतसूत्र का विवेचनात्मक.....	डॉ. मीरा वाणी, लखनऊ	75
102.	वैदिक वाङ्मय में सूर्य का चेतनत्व	डॉ. पुष्पा झा, जबलपुर	76
103.	'अग्नि' शब्द में अर्थ-परिवर्तन	सुश्री संगीता निगम	77
104.	सूत्रग्रन्थों में शिक्षा	श्री पियूष खजूरिया, जम्मू	78
105.	भारतीय संस्कृति और पर्यावरण संरक्षण	डॉ. श्रवण कुमार चौधरी, दरभंगा	78
106.	ऋग्वेद में ज्योतिष	डॉ. पुरुषोत्तम शर्मा, जम्मू	79
107.	शिक्षा-वेदाङ्ग में नैतिक शिक्षा	सुश्री सुमेधा आर्या, नई दिल्ली	79
108.	वेदों में समाजशास्त्र	श्री भारतभूषण धर द्विवेदी, इलाहाबाद	80
109.	वेदकालीन नारी-नारी प्रगति की अभीष्ट दिशायें	डॉ. नीलम त्रिवेदी, कानपुर	81
110.	सामवेदीय उपनिषदों में पुनर्जन्मवाद	डॉ. उमारानी त्रिपाठी, लखनऊ	82
111.	संस्कार का वैज्ञानिक विवेचन	डॉ. एस.वी. श्रद्धा रमणी, टाटानगर	82
112.	पौर्णमासेष्टि यागविधानों के प्रतीकार्थ	डॉ. श्रीमती चन्द्रकान्ता राय, वाराणसी	83
113.	वेदार्थनिर्धारण में विविध शैलियों का महत्त्व	डॉ. विक्रम कुमार, चण्डीगढ़	84
114.	ऋग्वेदीय ज्ञानमीमांसा का स्वरूप	डॉ. मुरलीमनोहर पाठक, उज्जैन	84
115.	ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषदों.....	डॉ. अरुण शुक्ला, होशियारपुर	85
116.	वेदों में अंक ज्योतिष	डॉ. लक्ष्मी नारायण शर्मा, जम्मू	86
117.	उपनिषद्-आख्यानों का पुराणों पर असर	प्रो. उर्वशी सी. पटेल, अहमदाबाद	87
118.	ऋग्वैदिक उषस् का अन्य देवताओं.....	डॉ. सुमन दुबे, इलाहाबाद	87
119.	अथर्ववेदीय षष्ठ काण्ड में ऋषि अथर्वोपदिष्ट.....	रजनीश गौड़, कुरुक्षेत्र	88
120.	ऋग्वैदिक सरस्वती नदी का ऐतिहासिक परिशीलन	डॉ. गणेश दत्त भारद्वाज, होशियारपुर	88
121.	प्राचीन संस्कृत साहित्य में उच्चारण विधि	श्रीमती विनीता सिंह, बरेली	89
122.	वेद में विज्ञान के क्वान्टम सिद्धान्त.....	डॉ. विष्णुकान्त वर्मा, बिलासपुर	89
123.	वेद में स्वप्न-विचार	डॉ. (श्रीमती) कृष्णा सैनी, होशियारपुर	90
124.	Scientific Vision of Vedic Seers	Arya Dev	91
125.	Concept of Kalaśa in Vedic Literature	Dr. Sukumar Chattopadhyay, Varanasi	91

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

126.	Importance of Cow in the Vedic Economy	Mrs. Leela Tripathi, Aligarh	92
127.	A Study of the Fifth Book.....	Dr. T.N. Adhikari, Kolkata	93
128.	Atharvanic Manuscripts of Orissa.....	Sri Prafulla K. Mishra, Bhubaneswar	94
129.	Agni and Rudra : A Possible Relation	Mrs. K.P. Kane, Mumbai	94
130.	Mūlyādhyāya : A Study	Nabanarayan Bandopadhyay, Kolkata	95
131.	Luṭ Lakāra and the Veda	Malhar Kulkarni, Mumbai	96
132.	The Vedas for Unity and Integrity.....	Prof. Mohd. Israil Khan, Ghaziabad	96
133.	Aims of Upanisadic Education	Dr. Uma Shankar Sharma, Patna	97
134.	Kalpasutras : Their Universal Relevence	Dr. Vanitha Ramaswamy, Karnatak	97
135.	A Study on Usas Sukta	Annapoorna Devi S.V., Kattayam	98
136.	कन्याभिमन्त्रणमन्त्रs of एकाग्निकाण्ड	Dr. Rupa, Mysure	98
137.	Flora in Vedic Literature.....	Sumitra V. Bhat, Karnataka	99
138.	Ṛgveda and National Integration	Dr. R. Laxmi, Dharwad	100
139.	A Note on Ānandarāyamakhin's.....	Dr. Sulok Sunder Mahanty, Orissa	100
140.	The 31st Chapter of the Śukla.....	Sudhendu Mohan Bhadra, Guwahati	100
141.	Is Kapota hymn (ṚV 10.165).....	Prof. D.V. Shastri, Rajkot	101
142.	Ideals of Upaniṣadic Education	Dr. K.S. Jayasree, New Delhi	102
143.	The One and the Many Manus.....	Prof. Maitreyee Bora, Gauhati	102
144.	Vedic Conceptions of the World.....	Suniti Gupta, Varanasi	103
145.	The Greateness of Prajāpati.....	Jagadish Sarma, Gauhati	103
146.	Pre-requisite Qualification.....	Dr. (Mrs) Prativa Manjari Rath, Orissa	104
147.	'Agni' in First Maṇḍala of the Ṛgveda.....	R.K. Saha, Soma Basu & Sanskriti Basu, Kolkata	104
148.	Some Special Features of Vedic.....	Miss Suchandra Das, West Bengal	105
149.	Man and the Green World.....	Dr. Nilanjana Sikdar Datta, Kolkata	105
150.	Dialogues in the Ṛgvedic Brāhmaṇas	Sanghamitra M. Majumdar, Kolkata	106
151.	Treatment of Metres in the Ṛkprātiśākhya	Dr. Didhiti Biswas, Kolkata	106
152.	Contribution of The Vedas Towards.....	Dr. Parvati Banerjee, Varanasi	107
153.	Numerals in Ṛgveda	Prof. Pradeep K. Majumdar, Kolkata	107
154.	Importance of Directions in Vedic Ritual	Mugdha Gadgil, Pune	107
155.	Rites of Women in The Atharva Veda	Prof. Nalini Devi Misra, Gauhati	108
156.	Secular Hymns of The Ṛgveda : A Note	Dr. Sabita Devee, Guwahati	108
157.	Knowledge Management in Veda	Dr. D.N. Pandey, Rajsthan	109
158.	The Relevance and the Importance.....	Dr. Vinod Kumar Dixit, Devaria	109
159.	The Characteristics of the Ṛgvedic.....	Dr. (Mrs.) Dipti Sarma, Assam	110
160.	Mensuration in the Śulbasūtras.....	Ramkrishna Bhattacharya, Kolkata	110
161.	Different Stages of the Development.....	Upendra Nath Sarma, Assam	111
162.	Humānism in the Vedas	Dr. Shiubi Ghosh	112
163.	Vedic Roots of Modern Science	Gomathi Ramanathan, Chennai	112

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

164.	Historical Background of the Concept.....	Dr. Rajeev Kumar Jha, Durgapur	113
165.	Arṇava in the Ṛgvedasaṃhita	Prof. Ranvir Singh, Kurukshetra	114
166.	Animism and Animitism as Reflected.....	Gayatri Devi Borthakur	114
167.	Paippalādavivāhādipaddhatiḥ	Ms. Shilpa Sumant, Pune	115
168.	Rigvedic Society : An Ideal.....	Sailendra K. Mahananda, Sambalpur	115
169.	The Brotherless Maidens (AV 1.17.1)	S.S. Bahulkar, Pune	116
170.	Yupa and it's Reference	Shital J. Deshpande, Pune	116
171.	Influence of Mantras	Vinayak A. Walankar, Pune	117
172.	'Brahmagavi' in Vedas.....	Radhika S. Chandrachood, Pune	117
173.	The Empowerment of Women.....	Dr. (Mrs.) Indira Saikia Bora, Assam	117
174.	Educaiton System in the Vedic Age.....	Prof. Piyushkanti Acharya, Assam	118
175.	Upaniṣadic Concept of Indra	Dr. Madhu Bale Ghoy, Hoshiarpur	118

SECTION - 2

IR IRANIAN STUDIES 121-124

1.	सभी धर्मों में वैदिक : इला	डॉ. असहाब अली, गोरखपुर	123
2.	Into-Iranian Goddesses : Sinivālī and...	Dr. Vipula Dubey, Gorakhpur	124

SECTION - 3

CS CLASSICAL SANSKRIT 125-270

1.	जयोदयमहाकाव्ये पुरुषार्थचतुष्टयम्	डॉ. वाई.पी. दूबे, कौशाम्बी	127
2.	सुलोचनामाधवचम्पूकाव्ये बच्चाझामहोदयानां...	डॉ. लक्ष्मीनाथझाः, दरभंगा	128
3.	संस्कृतसाहित्ये गङ्गा	प्रकाशचन्द्रपन्तः	128
4.	कालिदासकृतिषु वनस्पतिविषयको दृष्टिकोणः	डॉ. विश्रामतिवारी, दरभंगा	129
5.	श्रीजगन्नाथमुपजीव्योत्कलीयकवीनां संस्कृत....	डॉ. व्रजकिशोरनायकः, पुरी	129
6.	कुमारसम्भवे आतिथ्यम्	पं. सञ्जयकुमारपण्डा, बेलासोर	130
7.	रसकल्पद्रुमे विप्रलम्भः	डॉ. श्रीमती कादम्बिनी दाशः, भुवनेश्वरः	131
8.	सुस्थसमाजगठनस्य कृते कथासाहित्यम्	श्री लक्ष्मणचरनविश्वालः, बेलासोर	131
9.	कालिदाससाहित्ये 'समवेदना'	निरञ्जनदासः, बेलासोर	132
10.	ट्र्याजिक्नायकसमुद्भासितमूरुभङ्गम्	डॉ. पूरबी घोष	132
11.	'संस्कृतवाङ्मये राष्ट्रियता विश्वबन्धुत्वभावना च'	डॉ. हरिपालद्विवेदी, देवरिया	133
12.	संस्कृतस्य देववाणीत्वम्	डॉ. कौशलकिशोरश्रीवास्तवः, इलाहाबाद	134
13.	बाणभट्टस्य चित्रणचातुरी	डॉ. सि. ललिता राणी, तिरुपति	134
14.	महाकविकालिदासकृतमेघदूतम्	डॉ. चित्तरंजनदयालसिंहः, कुरुक्षेत्र	135
15.	महाभारताश्रितसंस्कृतमहाकाव्यानां नायकः	डॉ. मनोजकुमारपाण्डेयः, राँची	135
16.	अनर्घराघवस्य व्याख्या : इष्टार्थकल्पवल्ली...	डॉ. जी.एस.आर. कृष्णमूर्तिः	136

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CONTENTS

17. नाट्ये नायकः सहायकाश्च	श्री अनिलकुमारसिंहः, मुजफ्फरपुर	137
18. पञ्चतन्त्रे वानराः	श्रीसुबोधकुमारमिश्रभागवती, गुवाहाटी	137
19. वाल्मीकिरामायणे वैदिकप्रभावः	डॉ. मिथिलाप्रसादत्रिपाठी, इन्दौर	138
20. कालिदासकाव्येषु चित्रकला	श्री शिशिरकुमारपाण्डेयः, राँची	139
21. स्तोत्र-काव्येषु स्तोत्र-मन्दाकिनी	श्री मणिकान्तपाण्डेयः, लोहरदगा	139
22. वत्सराजकृतत्रिपुरदाहडिमे रसविधानम्	श्री राजेशकुमारनिषादः, टाँडा	140
23. संस्कृतवाङ्मये भारतीयसंस्कृतिः	डॉ॰ के. राजगोपालम्, तिरुपति	140
24. उत्कलेषु संस्कृतवाङ्मयस्य परम्परा	डॉ॰ मनमोहनमहापात्र, ओडिशा	141
25. स्वप्ननाटके संलापगतं वैशिष्ट्यम्	श्री मौसुमीचन्द्रः, पश्चिमवङ्गः	142
26. शिशुपालवधमहाकाव्ये अलङ्कारविवेचनम्	श्री मनोजकुमारशर्मा, कोलकाता	142
27. श्रीहर्षकाव्ये कालिदासकाव्यचिन्तायाः प्रतिबिम्बनम्	डॉ. राधानाथ आचार्यः, पश्चिमबंगः	143
28. चण्डीग्रन्थस्य श्लोकसंख्याविषये एका समीक्षा	श्रीकालीसाधनधरः, कोलकाता	143
29. भारविकालिदासयोः रचनासादृश्यम्	श्रीमती कल्पना सोपनामिका	144
30. वैयाकरणानां मीमांसकानां नैयायिकानाञ्च...	श्रीसुनीलकुमारजाना, पश्चिम-वङ्ग	145
31. काव्यरसविशेषयोजनादर्शनम्	डॉ. बटोहीझा, लखनऊ	146
32. अष्टौ वा नव नाट्ये रसाः स्मृताः	प्रो. हरेकृष्णशतपथी, पुरी	146
33. आलङ्कारिकाभिमतमात्मचैतन्यम्	डॉ. छोटेलालत्रिपाठी, वाराणसी	147
34. सुबन्धुकृतवासवदत्तायां पञ्चसन्धिविवेचनम्	श्री नबूरि हेममार, तिरुपति	147
35. कालिदाससाहित्ये प्रकृतिः	डॉ. सुदेशगौतमः, शिमला	148
36. किरातार्जुनीयस्य आद्यसर्गत्रये त्रिवर्गसङ्घर्षः	सुश्री यालि अनुपमा	148
37. सौन्दर्यलहरी	श्री के.के. नागरः, चैनई	149
38. कालिदासग्रन्थेषु मानवाधिकारस्य चर्चा	डॉ. जीवानन्दझा, बिहार	149
39. डॉ. ओमप्रकाशपाण्डेयविरचितं जीवनपर्वनाटकम्...	डॉ. रेखा शुक्ला, लखनऊ	150
40. अभिज्ञानशाकुन्तले अभिज्ञानविचारः	श्री जितेन्द्रकुमारदाशः, कटकः	150
41. आनन्दवर्धनसम्मत-अलङ्कारतत्त्वविवेचनम्	पण्डितप्रतापचन्द्रशतपथी, ब्रह्मपुरम्	151
42. मालतीमाधव-मल्लिकामारुतप्रकणयोः साम्य...	डॉ. कम्भम्पाटि साम्बशिवमूर्तिः, पुरी	152
43. संस्कृतमाध्यमेन पाठने समस्याः	कु. श्रद्धा उपेन्द्र-टोकेकर	152
44. मानवजीवने सुभाषितानां पात्रम्	श्री जि. पद्मनाभम्, तिरुपति	153
45. छन्दःशास्त्रस्य समासेन परिचयः	डॉ. विद्यानन्द-मुद्गलः, वाराणसी	154
46. प्रियदर्शिका और रत्नावली में साम्य	महेश के. मेत्रा, गुजरात	156
47. महाकवि भास की रङ्गोपादेयता के...	डॉ. सङ्गीता गुन्देचा, भोपाल	156
48. संस्कृत और छत्तीसगढ़ी लोकमानस	डॉ. महेशचन्द्र शर्मा, दुर्ग	157
49. रामायणमञ्जरी में नैतिक उपदेश	डॉ. मधुबाला सिन्हा	158

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

50.	कुमारसम्भवे हिमालयवर्णनसमीक्षा	श्रीमती सोनमन्ती देवी, राँची	159
51.	मेघदूते नारी समीक्षा	श्री उमाकान्त मिश्र, राँची	159
52.	रघुवंशे पर्यावरणम्	श्रीमती उषा देवी, राँची	160
53.	रघुवंशे राजनीतिसमीक्षा	श्री वीरेन्द्र पाठक, राँची	160
54.	कुमारसम्भवे कामदेवस्य चरित्रसमीक्षा	श्री गणेश मिश्र, राँची	160
55.	रघुवंशे करुण-रससमीक्षा	कुंज विहारी शर्मा, राँची	160
56.	शाकुन्तले गान्धर्वविवाहसमीक्षा	श्री रमावल्लभ शर्मा, राँची	161
57.	अभिज्ञानशाकुन्तले दुष्यन्तस्य समीक्षा	श्रीमती चन्द्रावती देवी, राँची	161
58.	कुमारसम्भवे राजनीतेः समीक्षा	श्री जयकुमार पाठक, राँची	161
59.	संस्कृत काव्यों में शकुन प्रसंग	सुश्री रंजना कुमारी, सिवान	161
60.	'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में पर्यावरण	श्री शंकर महतो, मुंगेर	162
61.	प्रतीक नाटकों में रति-मन्मथ	डॉ. श्री प्रकाश राय, रामगढ़	163
62.	वासवदत्ता कथा में वर्णित धार्मिक स्थिति -	सुश्री शिल्पी, अलीगढ़	164
63.	कुन्दकुन्दाचार्य कृत नाटकत्रय में दार्शनिक तत्त्व	प्रो. (श्रीमती) सलमा महफूज़, अलीगढ़	164
64.	'उल्लाघराघवम्' में राम	डॉ. श्रीनारायण सिंह देव, धनबाद	165
65.	आचार्य भवभूति और नारी	डॉ. मधु कुमारी, भागलपुर	166
66.	रघुवंश महाकाव्य में प्रयुक्त तद्धितप्रत्ययों	डॉ. श्वेता दुबे, शहडोल	166
67.	राष्ट्रतत्त्व और महाभारत	डॉ. दीपा अग्रवाल, इलाहाबाद	167
68.	कालिदास की कृतियों में नदियाँ	डॉ. प्रभात सिंह ठाकुर, होशियारपुर	168
69.	विलक्षण अनुवाद एवं आस्वाद की.....	श्री प्रताप कुमार मिश्र, लखनऊ	168
70.	काव्यों का प्रथम वर्ण	डॉ. अमरनाथ ठाकुर, सिवान	169
71.	नाटिका लक्षण की दृष्टि से रत्नावली....	डॉ. रीता तिवारी, लखनऊ	170
72.	सोमदेव भट्ट कृत 'कथासरित्सागर' में...	श्री विशाल भारद्वाज, अमृतसर	171
73.	मानवीय पृष्ठभूमि में धर्म : जानकीहरण....	श्री त्रिलोचन प्रधान, वाराणसी	171
74.	मुद्राराक्षस नाटक के प्रणेता आचार्य....	श्री सुशान्त गौरव, भागलपुर	172
75.	कालिदास के रूपकों में स्त्री-पात्रों की...	डॉ. वकील प्रसाद यादव, गोण्डा	173
76.	कालिदास के रूपकों में ग्रीवा-अभिनय	डॉ. भावना श्रीवास्तव, भोपाल	174
77.	कालिदास के नाटकों में पर्यावरण चेतना	डॉ. वीना अग्रवाल, हरिद्वार	175
78.	अभिज्ञान शाकुन्तल में पर्यावरण चेतना	सुश्री गरिमा राजपूत, बिजनौर	175
79.	भास-नाटककार का विदूषक	कु. शैलजा राजेन्द्र भामरे, नासिक	176
80.	प्रसन्नराघवे नायिका सहायिकाश्च	श्रीमती नूतनबाला, मुजफ्फरपुर	177
81.	संस्कृत लघुकथा साहित्य में मद्यपान....	डॉ. रुचि कुलश्रेष्ठ, इटावा	177
82.	श्री मूलशङ्कर माणिक लाल याज्ञिक...	श्री प्रज्ञा शङ्कर, बरेली	178

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

83.	संस्कृत साहित्य में रावण का उदात्त चरित्र	भावना शर्मा, चण्डीगढ़	179
84.	किरातार्जुनीय में चित्रालङ्कार	डॉ. (श्रीमती) सरोज भनोट, चण्डीगढ़	180
85.	शाकुन्तल नाटक में 'अतः परीक्ष्य कर्तव्यं'...	डॉ. कुसुम भूरिया (दत्ता), सागर	180
86.	दूतघटोत्कच रूपक में प्रतिनायक की भूमिका	श्री रामा शङ्कर रजक, मुजफ्फरपुर (बिहार)	181
87.	कुमारसम्भव में आदर्श भारतीय नारी का चित्रण	माधुरी यादव, इन्दौर (म.प्र.)	182
88.	महाकवि जयदेव का काव्यगत वैशिष्ट्य	श्री राजेश कुमार, मुजफ्फरपुर	183
89.	रूपकों में वीररस की स्थिति	श्री हिमचन्द्र द्विवेदी, मुजफ्फरपुर	184
90.	कालिदास के काव्यों में वर्णित राजनीति...	श्री दिलीप कुमार, मुजफ्फरपुर	184
91.	आख्यातप्रयोगजन्य शाकुन्तल-नाटक की...	श्री शिव कुमार, मुजफ्फरपुर	185
92.	कालिदास के नाटकों की कथानक : रूढ़ियों...	सुश्री रूपा झा, मुजफ्फरपुर	186
93.	संस्कृत नाटकों में करुणरस	श्री अनिल कुमार मिश्र, मुजफ्फरपुर	186
94.	भारतीय संस्कृति और पर्यावरण	डॉ. इन्दु तिवारी, उन्नाव	187
95.	भवभूति के 'उत्तररामचरितम्' में पर्यावरण चेतना	डॉ. राम कुमार शर्मा, ग्वालियर (म.प्र.)	188
96.	कालिदास एवं भवभूति साहित्य में यज्ञ सन्दर्भ	डॉ. ब्रह्मदेव, हरिद्वार	188
97.	'उत्तररामचरितम्' तथा 'मेघदूतम्' में वर्णित.....	कु. रुचि गुप्ता, बड़ौत (बागपत)	189
98.	पर्यावरण मूर्द्धन्य महाकवि कालिदास	डॉ. प्रभात रञ्जन कुमार, मुजफ्फरपुर	190
99.	आधुनिक सस्कृत एकाङ्क नाटकों की दिशा	डॉ. राजकुमार शाण्डिल्य	191
100.	कर्णाभिजात्य नाटक में सामाजिक चिन्तन	डॉ. अरुणा शर्मा, कुरुक्षेत्र	192
101.	रघुवंश में सिद्ध क्रियाओं का सौन्दर्य	डॉ. सुशील कुमार, मुजफ्फरपुर	192
102.	मुद्राराक्षस नाटक के प्रणेता विशाखदत्त	श्री सुशान्त गौरव, भागलपुर	193
103.	कालिदास कालीन शिक्षा	डॉ. मिथिलेश कुमार, पटना (बिहार)	194
104.	कालिदास के नाटकों में प्रकृतिचित्रण	प्रो. एम.आर. रानाडे, राजकोट	194
105.	नरनारायणानन्द की वर्णनशैली	प्रो. एम.आर. रानाडे, राजकोट	195
106.	सिसृक्षा की उद्भावना : संस्कृत...	श्री राघवेन्द्र पाठक, दिल्ली	196
107.	रामायण में वर्षा ऋतु का वर्णन और.....	प्रो. सौ. दाक्षायणी ध. भाटे, संगमनेर	196
108.	रस-संख्या के सम्बन्ध में प्राचीन एवं	डॉली जैन, वनस्थली विद्यापीठ	197
109.	बृहत्कथामञ्जरी, कथासरित्सागर और	श्रीमती अमिता तिवारी, इलाहाबाद	198
110.	आचार्य मम्मट और कविकर्णपूरकृत 'काव्यप्रयोजन'	अंजना शर्मा, दिल्ली	198
111.	कालिदास के काव्यों में कविसमय-मीमांसा	अलका चितकारा, चण्डीगढ़	199
112.	रघुवंश महाकाव्य में पशु-पक्षी-साम्राज्य	डॉ. कान्ता रानी भाटिया, नई दिल्ली	200
113.	प्राचीन संस्कृत-साहित्य में पर्यावरण	सुश्री वनिता सलाथिया, जम्मू	200
114.	कालिदास के काव्य का शृङ्गार-कला...	डॉ. (श्रीमती) वीना विश्नोई शर्मा, हरिद्वार	201
115.	भवभूति की नाटक-कृतियों में प्रकृति-चित्रण	श्री शिवज्योति शर्मा, जम्मू	202

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

116.	वर्तमान सन्दर्भ में नीतिशतक की उपादेयता	डॉ. तुलजा शंकर श्रीमाली, राजकोट (गुजरात)	203
117.	कालिदास एवं शेक्सपीयर के ग्रन्थों में विवाह	डॉ. वन्दना वागीश्वरी	203
118.	आनन्दवर्धनाचार्य : एक कवि	कु. रचना ल. धनोडकर, रामटेक, नागपुर	204
119.	संस्कृत वाङ्मय में व्रतोपवास	डॉ. राजकृष्ण विद्यालंकार, यमुनानगर, हरियाणा	205
120.	चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्	आचार्य सन्त, पाठक जटाशंकर, भदोही	205
121.	कालिदास के नाटकों का वैशिष्ट्य	डॉ. आलोक त्रिपाठी, भदोही	206
121.	पण्डितराज जगन्नाथविरचित 'लहरीपञ्चक'...	डॉ. अर्चना जोशी, इन्दौर	207
122.	संस्कृत साहित्य में व्यायोग	डॉ. आशिमा जोशी, अम्बाला	208
123.	शिवमहिम्नःस्तोत्र की हरसिद्धि-टीका	प्रो. अंजना मेहता, अहमदाबाद, गुजरात	208
124.	कालिदास के साहित्य में वृष्टि-विज्ञान	डॉ. मीरा शर्मा, आगरा	209
125.	अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक में नारीस्वरूप...	सुप्रिया, दरभंगा	210
126.	भासकृत 'चारुदत्तम्' नाटक की धार्मिक विशेषता	डॉ. गंगाधर झा, दरभंगा, बिहार	210
127.	संस्कृत साहित्य में शकुन-अपशकुन	डॉ. हरि सिंह शास्त्री, यमुनानगर	211
128.	भट्टनायक का भुक्तिवादः संकेतत्रय के आलोक में	पारुल मांकड, अहमदाबाद	212
129.	महाकवि भारवि के स्थितिकाल की विवेचना	डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री, अमेठी	212
130.	रसभाव का समीक्षात्मक अध्ययन	श्री बासुकीनाथ झा, मधुबनी	213
131.	रघुवंश और नैषधीयचरित के स्वयंवर.....	सुश्री अनामिका, वाराणसी	213
132.	जयोदय-महाकाव्य में रसपरिपाक	श्री पारुल त्रिपाठी, लखनऊ	214
133.	साधारणीकरण का असाधारणत्व	श्री नयना कल्पेश नायक, नवसारी, गुजरात	214
134.	भारतीय वाङ्मय के दो युगप्रवर्तक महाकवि	श्री शीतल चन्द्र शर्मा, रायपुर, छत्तीसगढ़	215
135.	राजतरंगिणी में राजधर्म	डॉ. वैभव कान्हे, रायपुर	215
136.	भास के नाटकों में संगीत	श्रीमती वसुन्धरा कान्हे, रायपुर	216
137.	चारुदत्त के नामपदों में प्रयुक्त प्राकृत-प्रत्यय	श्री अश्वनी कुमार, शिमला	216
138.	सिसृक्षा की उद्भावना : संस्कृत	श्री राघवेन्द्र पाठक, दिल्ली	217
139.	अविमारक नाटक में प्रयुक्त सूक्तिवैभव	डॉ. मनीष कुमार सिंह, पटना	217
140.	मंखक की भाषा-शैली—एक विश्लेषण	डॉ. सुलेखा देवी, भागलपुर	217
141.	रघुवंश में ध्वनिकाव्य	डॉ. गोविन्द झा, मुजफ्फरपुर	218
142.	आचार्य मम्मट कृत 'शब्दव्यापारविचार'	डॉ. निरुपमा त्रिपाठी, कानपुर	219
143.	अभिज्ञानशाकुन्तलम् में माधुर्य	डॉ. दिनेश प्रसाद तिवारी, कानपुर	220
144.	ऋग्वेद में अलङ्कार—योजना	डॉ. कपिलदेव शुक्ल, गोरखपुर	220
145.	प्रभावतीपरिणयम् का नाट्यशास्त्रीय अध्ययन	सुश्री ऋचा मिश्रा, लखीमपुर	221
146.	नाट्यशास्त्र में काव्य लक्षण और अलङ्कार	डॉ. जय प्रकाश नारायण, लखनऊ	222
147.	संस्कृत नाटक में प्रतीक नाटक के तत्त्व	सुश्री शुभ्रा मिश्रा, लखनऊ	223

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

148.	प्राचीन संस्कृत-नृत्यनाट्य एवं आधुनिक	डॉ. सुशील कुमारी वर्मा, कानपुर	224
149.	बालरामायण में रस-परिपाक	डॉ. अरुण दयाल, लखनऊ	225
150.	कालिदास के नाटकों में स्वकीया ...	डॉ. ईश्वर एल. मेहरा, अहमदाबाद	225
151.	चम्पूकाव्य परम्परा और वरदाम्बिका परिचय	सुश्री सुनीता सिंह गौतम, इलाहाबाद	226
152.	नाट्यशास्त्रोक्त छत्तीस नाट्यलक्षण : सिद्धान्त ...	डॉ. मधु अग्रवाल, विजनौर	227
153.	नाट्य एवं काव्यशास्त्र में रस एवं शान्तरस....	डॉ. (श्रीमती) जया तिवारी, नैनीताल	228
154.	मालतीमाधव में नाट्य-दोष	सुश्री ए. रानी, दिल्ली	228
155.	आचार्य दण्डी का दीपक अलंकार चिन्तन	डॉ. श्रीधर मिश्र, गोरखपुर	229
156.	रसमंजरी में प्रवत्स्यत्पतिका नायिका	डॉ. भानु प्रकाशधर द्विवेदी, गोरखपुर	230
157.	संस्कृत एकांकी रूपकों में दृश्य वैविध्य....	प्रो. उर्वी प. दवे, अहमदाबाद	231
158.	नैषधमहाकाव्य की भाषा का वैशिष्ट्य	डॉ. सविता रस्तोगी, ग्वालियर	232
159.	काव्य के परिप्रेक्ष्य में कवि प्रतिभा—एक समीक्षा	डॉ. गया प्रसाद दूबे, रायबरेली	232
160.	मृच्छकटिक में कला-परिशीलन	डॉ. (श्रीमती) सावित्री गुप्ता, दिल्ली	233
161.	महाकवि कालिदास विरचित मेघदूत में रस...	डॉ. शील निगम, कानपुर	234
162.	'मुद्राराक्षस' में अभिव्यक्त राष्ट्रहितैषिणी कूटनीति	डॉ. कन्हैया लाल झा, बलिया	235
163.	'मृच्छकटिकम्' का सामाजिक अध्ययन	श्रीमती मंजू सचान	236
164.	कालिदास के पात्रों में दिव्य एवं भारतीय गुण..	डॉ. सुशील कुमार, वख्तियारपुर	236
165.	महाकवि कालिदास का स्त्रीधर्म	प्रो. श्रीपति त्रिपाठी, दरभंगा	237
166.	भारतीय नारी	कु. मीनू पाण्डेय, वाराणसी	238
167.	'Megha Prati Sandesha'...	K.R. Ravi kumar, Bangalore	239
168.	Conribution of Orissan Authors to	Dr. Trinath Hota, Bhuvaneswar	239
169.	The Food Habits for Hindus as.....	Dr. Dinanath Sharma, Ahmedabad	240
170.	Weapons in the Nāṭyaśāstra	Bulbul Devi, Assam	240
171.	Influence of Sanskrit Poetics on.....	Padmanav Tripathy, Cuttack	241
172.	Impact of Bhāsa on Kālidāsa....	Dr. Sudarshan Kumar Sharma, Parwanoo	242
173.	Ānandavardhan's Indebtedness to.....	Prof. Bidyut Baran Ghosh, Kolkata	243
174.	Effect of Seasons on Plant and Animal....	Dr. (Mrs.) Mukta Biswas, Gauhati	243
175.	The Relevance of Nitishataka of	Urmi Gangopadhyay, Kolkata,	244
176.	Judiciary in Kālidāsa	Prof. A. Bandyopadhyaya, Santiniketan	245
177.	Kālidāsa in Kāshi	Dr. Mrs. Krishna Dass, Raipur	246
178.	Rādhā in Sanskrit Love-Lyrics of Orissa	Raghunath Panda, Bhubaneswar	246
179.	The Ancient Indian Society in	Arnav Sharma, Rangia	247
180.	Uttararāmacarita and Kundamālā :...	Dr. Rama Ray, Kolkata	247
181.	Nāndi in the dramas of Kālidāsa	Meera Mortan, Hoshiarpur	248
182.	The Parāśaragītā : An interpretative....	Dr. Mrs. Supriya Banik Pal, West Bengal	249

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

183.	Child in Sanskrit Poems	Dr. V. Shastri Joshi, Dharwad	249
184.	Deities and Celestial Carriages....	A Rani, Delhi	250
185.	The Poetic Figure Vyatireka : A Review	Dr. Haripada Chakraborty, Assam	251
186.	Influence of Mammata on Viśvanātha's...	A. K. Bhattacharya, West Bengal	251
187.	Uṣārāgodaya-nāṭikā and	Pamapa, Kolkata	252
188.	Significance of Vāmana's Treatment...	Dr. Gayatri Sarma	252
189.	Sanskrit Study in Assam in the ...	Ratul Bujar Baruah, Assam	253
190.	Nāṭakacandrikā : In the Perspective...	Dr. Mina Hati, Burdwan	254
191.	Stageworthiness of Sanskrit	Dr. K. Srinivasan, Chennai	254
192.	Echo-Aesthetic Approach to	Dr. T. Vasudevan, Kerala	255
193.	Critical Appriciation of Kādambari....	Dr. P.B. Santappanawar, Karnataka	255
194.	Literary Contributions of	Dr. Chandramouli S. Naikar, Dharwad	256
195.	Kavikarnarasāyanam : A Study	Prof. Jaya G. Dandavatimath, Karnataka	256
196.	The Importane of Plot in the	Suparna Bandyopadhyay, Bardhaman	257
197.	Critical Appriciation of	Dr. Laxmikant V. Mohrir, Karnataka	257
198.	Influence of Kālidāsa on the.....	Dr. Nava Kumar Handique, Dibrugarh	257
199.	Tirumangai Alwar's Periya.....	Dr. K.K.A. Rangarajan, Tirupati	258
200.	Bhogavali in Yasastilaka Campu.....	Dr. (Miss) Punya BaruaH	259
201.	Influence of Gitagovinda on	Prof. (Mrs.) C. Acharya, West Bengal	259
202.	Buddhism as Depicted in The	Sri Arindam Bhattacharyya, Agartala	260
203.	A Critical Approach to Some	Anindya Bandyopadhyay	260
204.	Yogic Elements in Naiṣadhiyacarita.....	Dr. K.S. Balasubramanian, Chennai	260
205.	Śāstric Elements in Nilakaṇṭhavijaya.....	T.V. Vasudeva, Chennai	261
206.	Vedic influence on the Shishupalavadha	Sipra Ray, Tripura	261
207.	Requisites of Personal Decoration.....	Ms. Kalpita Bujarbarua, Assam	262
208.	Sixty-four Lotus Blossoms in Kālidāsa	Prof. Sushma Kulshreshtha, Delhi	262
209.	Treatment of Lakṣaṇā in Mammata.....	Dr. Bhagirathi Biswas, Silchar	263
211.	Importance (role) Mūdrā	Ku. Sanika Jayant Bapat, Pune	263
212.	Influence of Sanskrit Literature	Dr. Satyanarayan Chakraborty, Kolkata	264
213.	Aspect of economy in the works of.....	Dr. Jiban Ch. Pathak, Assam	264
214.	The metres Sārdulavikriditam	Chaya Datta, Birbhum	265
215.	Triarthi-Kāvyas : A Bird's Eye view	Dr. Kshitiswar Dash, Balasore	265
216.	An Appraisal of Māgha : From the.....	Indira Chatterjee	266
217.	The Dramatic Skill of Viśvanātha.....	Smt. B.L. Acharya, Bhubaneswar	266
218.	Dhiresvarācharya as a poet in the	Dr. Willian Carey and the Sanskrit & Translation of the Holy Bible & Dr. Indira Mukhopadhyaya, Kolkata	267
219.	Letter writing and its importance.....	Dr. Anita Bandyopadhyay, Kolkata	268
220.	Appreciation of M.M. Lakshmana.....	Smt. N. Umamaheswari	268

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

221.	Mṛcchakatikam a Study	Prof. Tapas Kumar Bagchi, Hooghly	269
222.	The Keli-Gopāla of Mahāpuruṣa.....	Dr. Anupama Mahanta, Assam	269
223.	Kali Pradurbhavam	Dr. Mrs. Chandra Ramani, Tamilnadu	270

SECTION - 4

IS ISLAMIC STUDIES 271-274

1.	Islam Darshan	Sujauddin N. Shaikh, Valsad	273
2.	Changing Status of Women in.....	Dr. Ghulam Murraleem, Aligarh	273

SECTION - 5

AP ARABIC & PERSIAN 275-277

1.	Role of Arab Geographers in	Prof. Abdul Ali, Aligarh	277

SECTION - 6

PB PALI & BUDDHISM 279-304

1.	ललितविस्तरे रसपोषणम्	सुश्री अजिता मिश्रा, उड़ीसा	281
2.	सोगतधम्मे ब्रह्मविहारभावनाय महत्तं	डॉ. हरप्रसाद दीक्षित, वाराणसी	281
3.	बौद्धधम्मे तिसिक्खाय महच्चभावं	प्रो. ब्रह्मदेवनारायणशर्मा, वाराणसी	282
4.	योगाचारदर्शनतत्त्वविमर्शः	प्रो. रमेशकुमारद्विवेदी, वाराणसी	283
5.	बौद्ध कर्मवाद का व्यावहारिक पक्ष	डॉ॰ वीरेन्द्र कुमार अलंकार, चण्डीगढ़	285
6.	जातक में प्रतिबिम्बित उद्योग और व्यापार	कु॰ कंचन सिंह, लखनऊ	286
7.	बौद्ध शिक्षण पद्धति : एक आदर्श	डॉ॰ आभारानी, बोधगया	286
8.	विसुद्धिमग्ग : बौद्धधर्म का विश्वकोश	डॉ॰ निरंजना बोरा, अहमदाबाद	287
9.	बोधिसत्त्व : स्वरूप और अवधारण	डॉ॰ पी.जी. योगी	288
10.	स्थविरवाद बौद्धधर्म में अर्हत् की अवधारणा	डॉ. रमेश प्रसाद, वाराणसी	289
11.	बौद्धधर्म में शील का महत्त्व	श्री कर्मा सङ्बो शेर्पा, वाराणसी	290
12.	बौद्धधर्म में योग की अवधारणा एवं	डॉ. नरेन्द्र कुमार, नवादा	291
13.	महावंस में स्त्रीजीवन	श्री सन्तोष कुमार	291
14.	अट्ठासालिनी में बुद्धघोष का योगदान	डॉ. जनार्दन शुक्ल, वाराणसी	292
15.	प्राचीन भारतीय इतिहास के एक विश्वनीय.....	डॉ. श्रीमती नीहारिका लाभ, जम्मू	293
16.	मिलिन्दपञ्हो का दार्शनिक वैशिष्ट्य	डॉ. विजय कुमार जैन, लखनऊ	293
17.	धर्म के विकास में शाक्यों का योगदान	श्री नेत्रपाल सिंह बौह, वाराणसी	294
18.	काव्यालङ्कार में भामह द्वारा प्रस्तुत बौद्ध.....	प्रो. विजय रानी, कुरुक्षेत्र	295
19.	बौद्धानुमत बाह्यार्थभंगवाद एवं योगभाष्यकार.....	श्री सुरेश कुमार, कुरुक्षेत्र	295
20.	धर्मकीर्ति के अनुसार हेतु का स्वरूप	श्री देवी सिंह, कुरुक्षेत्र	296

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

21.	महाकवि शान्तिभिक्षुविरचित	डॉ. आर. के महाजन, फिल्लोर	297
22.	Buddhism and Behavioural Dignity	dr. Baidyanath Labh, Jammu	298
23.	Concept of Māra in Buddhist Literature	Dr. Narasingha Charan Panda, Varanasi	298
24.	Bharat Singh Upādhyāya and His	Sanghasen Singh, New Delhi	299
25.	Buddhism in Sikkim with special	Dr. Bandana mukherjee, Kolkata	300
26.	The Text of Vasundharāvratotpa.....	Prof. Dr. Ratna Basu, Kolkata	301
27.	Buddhist Concepetion of a True	Saheli Das, Kolkata	301
28.	The Concept of Brāhmaṇa	Dr. V.K. Hampiholi, Kumta	302
29.	The Position of Women in	Dr. K.K. Ambikadevi	302
30.	Sanghavedavastu Leading to	Dr. Anandamayee Ghosh, Santinikatan	303
31.	The Mahajjātakamālā (MJM)	Smt. Kakali, Ghosh, Kolkata	303
32.	The Decline of Buddhism in India	Dr. Ram Nandan Singh, Jammu	304
33.	Buddhist Tilakkhaṇa : its	Ms. Dipa das, C.U.	304

SECTION - 7

PJ PRAKRIT & JAINISM 305-349

1.	जैनदर्शने चतुर्दशगुणस्थानानि — एकं परिशीलनम्	डॉ. प्रेमलालशर्मा, होशियारपुरम्	307
2.	जैनदर्शने कालस्स द्रव्यत्वमनस्तिकायत्वञ्च	डॉ. धर्मचन्द्रजैनः, जोधपुरम्	307
3.	भगवमहावीरस्य जीवगदरिसणं	डॉ. हरिशंकरपाण्डेय	308
4.	जैन साहित्य में स्त्री-विमर्श	श्री रजनीश शुक्ल, उदयपुर	309
5.	आदिपुराण का वास्तुपरक विश्लेषण	डॉ. श्रीमती कृष्णा जैन, ग्वालियर	310
6.	गृहस्थाचार : जैन ग्रन्थों के सन्दर्भ में	डॉ. सुदर्शन मिश्र, आरा	311
7.	जैनाचार साहित्य. : एक अध्ययन	कुमार शिव शंकर, आरा	311
8.	पाँच महाव्रतों का महत्त्व	श्री नरेन्द्र कुमार पाण्डेय, आरा	312
9.	भारतीय संस्कृति पर जैन संस्कृति का प्रभाव	श्री शशिकान्त कुमार, आरा	312
10.	जैनाचार्य तुलसी का राजस्थानी साहित्य	श्री सूरजमल राव, लाडनूँ	313
11.	एक सद्गृहस्थ (श्रावक) की भूमिका	डॉ. शोभना आर. शाह, अहमदाबाद	314
12.	जैनदर्शन में पाँच कारण-समवाय का सिद्धान्त	डॉ. अनेकान्त कुमार जैन, नई दिल्ली	315
13.	जैन-ग्रन्थों में मंगल : एक संक्षिप्त विवेचन	डॉ. वीरसागर जैन, नई दिल्ली	315
14.	जैनाचार में सामायिक : एक समीक्षात्मक.....	श्री अनिल कुमार सोनकर, वाराणसी	316
15.	प्राकृत काव्यों में शृङ्गार-तत्त्व	डॉ. उमापति उपाध्याय, वाराणसी	317
16.	जैनशास्त्रों में वर्णित विज्ञान की वर्तमान	डॉ. संजीव सराफ, सागर	318
17.	जैन मुनियों के लिए प्रतिपादित आचार	डॉ. रामजी राय, आरा	318
18.	अपभ्रंश भाषा एवं व्याकरण	डॉ. रामेश्वर शर्मा, दरहेटा लारी	319
19.	जैनदर्शन में मोक्ष की अवधारणा	डॉ. कंचन गुप्ता, टिहरी गढ़वाल	320

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

20. जैनदर्शन में आत्मविचार : एक दार्शनिक.....	श्री भूपेन्द्र शुक्ल, वाराणसी	321
21. प्राकृत खण्डकाव्य कंसवहो : एक अनुशीलन	श्री सत्यनारायण भारद्वाज, नागौर	322
22. पं. तेजपाल कृत अपभ्रंश पाण्डुलिपि	श्री सुमत जैन, लाडनूं	322
23. प्राकृत जैनविद्या	डॉ. धर्मेन्द्र शास्त्री (जैन), अलीपुर	323
24. जैनधर्म में पुनर्जन्म	श्री नन्द कुमार तिवारी, बिहार	324
25. सोमेश्वरदेव रचित कीर्तिकौमुदी— एक.....	सुश्री सरिता प्रियदर्शनी, अलीगढ़	325
26. णायाधम्मकहाओं में वर्णित प्राच्य भारतीय.....	श्री गोपाल प्रसाद, आरा	326
27. प्रमुख जैन स्तोत्रों का समीक्षात्मक अध्ययन	रानी मजूमदार, अलीगढ़	327
28. भारतीय न्याय-विद्या के विकास में जैनाचार्यों.....	प्रो. फूलचन्द जैन 'प्रेमी', वाराणसी	328
29. पंचपरमेष्ठी की महत्ता	डॉ. हिफ़जुर्रहमान, अलीगढ़	329
30. जैनपरम्परा में मंत्र-तंत्र, उपासना-पद्धति	डॉ. श्रीमती राका जैन, लखनऊ	329
31. प्रश्नव्याकरण में अपरिग्रह : स्वरूप	डॉ. दिनेश मिश्र, राजस्थान	330
32. आचार्य तुलसी का संस्कृत साहित्य को योगदान	डॉ. प्रकाश सोनी, मुंबई	331
33. जैनधर्म में श्रावकाचार मीमांसा	डॉ. सनत कुमार जैन, जयपुर	331
34. कच्छ में जैनधर्म का प्रचार	डॉ. नीता ठाकर, कच्छ	332
35. जैन साहित्य में नियतिवाद की चर्चा	सुश्री श्वेता जैन, जोधपुर	333
36. श्रीपद्मावती देवी : एक सत्यशील अध्ययन	प्रो. वीणा. बी. ठक्कर, भरुच, गुजरात	334
37. जैनदर्शन में जीव का स्वरूप	डॉ. हरि प्रकाश शर्मा, हरियाणा	334
38. अपभ्रंश काव्य करकण्ड चरित के	श्री कृष्ण कुमार करण, आरा	335
39. हरिवंश पुराण में वसुदेव सम्बन्धी कथायें	सुश्री प्रीति शर्मा, अलीगढ़	336
40. जैन आगमों में नियतिवाद	सुश्री वन्दना मेहता, नागपुर	337
41. आचार्य महाप्रज्ञ जी के स्तोत्रसाहित्य में दर्शन	सोमानी संगीत प्रज्ञा, लाडनूं	337
42. जिणागम्मि पाहुडस्स महाप्पं	डॉ. ऋषभचन्द्र जैन, वैशाली, बिहार	337
43. जिनसेन-गुणभद्र के महापुराण का	श्रीमती सीता मणि त्रिपाठी, क़ैमूर	338
44. श्रावक धर्म कथा का विश्लेषण	प्रो. दुधनाथ चौधरी, आरा	339
45. प्राकृत साहित्य के यशस्वी कथा सर्जक	डॉ. आभा यज्ञसेनी, वाराणसी	340
46. गाथासप्तशती तथा बिहारी सतसई में	प्रो. कमले शास्त्रद, आगरा	341
47. जैन रामायण में हनुमत् पराक्रम	प्रो. रामाकान्त प्रसाद श्रीवास्तव, पटना	341
48. लोककथा तत्त्व के आयाम	डॉ. कामेश्वर तिवारी, भोजपुर	342
49. जैनागम साहित्य में सामाजिक संगठन	डॉ. डी.पी. श्रीवास्तव, पटना	342
50. विज्ञान के विकास में अध्यात्म का	डॉ. विजय कुमार सिन्हा, पटना	343
51. अहिंसा : सामाजिक नैतिकता का तत्त्व	डॉ. हरेन्द्र प्रसाद सिंह, आरा	343
52. जैनधर्म में अनासक्ति	प्रो. डॉ. चन्द्रदेव राय, आरा	343

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

53.	प्राकृत साहित्य में अंकित ज्योतिष	डॉ. जयकुमार उपाध्ये, नई दिल्ली	344
54.	गाहासत्तसई में वर्णित भाषा-शैली	श्री सच्चिदानन्द सिंह, आरा	345
55.	Nature of a Nāya-Type of Story	Vimal Anil Bafana, Pune	346
56.	Jainism and Spirituality	Dr. Kokila H. Shah, Mumbai	346
57.	Yakṣa Cult in Jainism	Shilpa Chheda	347
58.	Education in the Gāthāsaptaśatī	Dr. Suchitra Ray, kolkata	347
59.	Bṛhatkathākośa of Hariṣeṇa Sūri	Dr. Himanshu Shekhar Acharya, Aligarh	348
60.	Pūrta [Before Gupta Empire]	Dr. Devi Prakash Tripathi, Rajsthan	348
61.	Social Implicaitons of 5 Anuvratas	Somani Shahsi Pragya, Rajasthan	349

SECTION - 8

H HISTORY 351-400

1.	स्मृतिशास्त्रे न्यायव्यवस्था दण्डव्यवस्था च	प्रो. वेदप्रकाशशास्त्री, हरिद्वाराम्	353
2.	मण्डनमिश्रस्य प्रामाणिकः परिचयः	डॉ. वैद्यनाथझा, मुजफ्फरपुरम्	353
3.	आयुर्विज्ञानेतिहासः	डॉ. कृष्णनारायणपाण्डेयः, दिल्ली	354
4.	विश्वसभ्यतायामसमराज्यस्यावदानम्	श्रीटोपोपेश्वरवरा शास्त्री, असम	355
5.	मिथिला के शक्ति-पीठों का ऐतिहासिक परिचय	श्रीमती नीलिमा ठाकुर, बिहार	355
6.	प्राचीन भारतीय आर्थिक विचारों	डॉ. राजनाथ, वाराणसी	356
7.	विक्रमादित्य(षष्ठ)कालीन मनोरञ्जन के साधन	डॉ. ऋचा शुक्ला, लखनऊ	357
8.	भारतवर्ष का नामकरण	श्री अरुण कुमार उपाध्याय, ओडिशा	357
9.	मिथिला एवं उसकी ऐतिहासिक रूपरेखा	डॉ. जगन्नाथ झा, बेगूसराय	358
10.	शालभञ्जिका : एक अनुपम कला प्रतीक	डॉ. नीरज कुमार पाण्डेय, वाराणसी	359
11.	बिहार के राजनीतिक दल-बदल में	डॉ. अरविन्द कुमार, आरा	359
12.	काशी शास्त्रार्थ सभा एवं वैदिक	डॉ. विनोद कुमार, आरा	360
13.	प्रवासी भारतीयों का ऐतिहासिक सर्वेक्षण	डॉ. मनोज कुमार, आरा	361
14.	भारत की दिव्यतम विभूति मागध मण्डन मिश्र	श्री नागेन्द्र उपाध्याय 'नलिन', आरा	362
15.	आर्य-संस्कृति का आदिस्रोत भारत	डॉ. श्रीनिवास तिवारी 'मधुकर', पटना	363
16.	प्राचीन भारतीय इतिहास के एक	डॉ. (श्रीमती) नीहारिका लाभ, जम्मू	364
17.	भारतीय संस्कृति का मानवाधिकार में योगदान	श्री धनेश्वर पण्डित, सीतामढ़ी	365
18.	मिथिला संस्कृति की दशा एवं दिशा	प्रो. देवेन्द्र झा, मधुबनी	365
19.	प्राचीन भारत में यातायात के साधन	प्रो. दक्षा जी प्रजापति, अहमदाबाद	366
20.	संयुक्त प्रान्त में महान् आर्थिक मन्दी.....	डॉ. अमिताभ तिवारी, मीरजापुर	366
21.	इतिहास के आलोक में मन्दसौर-प्रशस्ति	डॉ. गीता श्रीवास्तव, वाराणसी	367
22.	वस्तुपाल से सम्बन्धित महाकाव्यों में	कु. रीता, अलीगढ़	368
23.	कात्यायनकालिक भारत में शिक्षा व्यवस्था	श्री सतीशचन्द्र झा, मुजफ्फरपुर	369

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

24.	इस्लाम में स्त्रियों की शिक्षा	शाइस्ता परवीन, अलीगढ़ 369
25.	उड़ीसा का चौहान राजवंश	श्री मधु रंजन सिंह, वाराणसी 370
26.	भारत छोड़ो आन्दोलन में उत्तर-प्रदेश की भूमिका	श्री कमलनयन सिंह, भभुआ 371
27.	लोककथा का विदग्ध-वाङ्मय तक.....	डॉ. सौ. साधना गोखले, नासिक 372
28.	हिन्दी साहित्य में विद्यापति का योगदान	श्रीमती सुधा झा, दरभंगा 372
29.	अग्निवर्ण और वाजिद अली शाह	डॉ. मीता बनर्जी, इलाहाबाद 373
30.	मौर्यकालीन स्त्रियों की स्थिति	डॉ. अखिलेश कुमार शुक्ल, लखनऊ 374
31.	सोमेश्वरदेवरचित कीर्तिकौमुदी : एक	सुश्री सरिता प्रियदर्शिनी, अलीगढ़ 375
32.	धर्मशास्त्रों में प्रतिपादित दण्डविधान	श्रीमती शची मालवीय, वाराणसी 376
33.	राजतरंगिणी में राजधर्म	डॉ. वैभव कान्हे, रायपुर 376
34.	भारत का अन्तिम दिग्विजयी राजा	डॉ. कृष्णनारायण पाण्डेय, नई दिल्ली 377
35.	आचार्य धरणीधर पन्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ. संकर्षण त्रिपाठी, गोरखपुर 378
36.	प्राचीन भारत में न्याय एवं दण्ड व्यवस्था	डॉ. मोनालिसा बनर्जी, मुजफ्फरपुर 379
37.	Controversy of Karnat Kingdom	Dr. S.N. Thakur, Gaya 380
38.	Stratification in India-Old & New	Sanjay Kumar Sahoo 380
39.	Mhasobā : His Origin and Growth	Dr. Madhusudan Mishra, Balasore 381
40.	Saura cult in Karnātaka	Dr. K.B. Sudarshan 381
41.	Some Problems in the Study of	Chandra Neel Sharma, Varanasi 382
42.	M.M. Pt. Krishna Mādhava Jha	Dr. Rangarajan, Pune 383
43.	Gita : A guide to Indian	Dr. Mamata Das, Cattack 383
44.	Methods of Teaching in Ancient India	Dr. Lata Pant Telang, Varanasi 384
45.	An Evaluation of Ashoka's Writing Life	Dr. P. Mukhopadhyay, Kolkata 385
46.	The Movement of 1857 and	Dr. Amal Kumar Mishra, Orissa 386
47.	Ripuñjaya Bhaṭṭācārya and His Works	Prof. Naliniranjan Sharma, gauhati 387
48.	Why should we not Change our.....	D.M. Kulkarni, Pune 387
49.	APJ Abdul Kalam's Historical	Dr. P.D. Jagtap & A.A. Yawalkar, Jalgaon 388
50.	Some Observations on Plant-.....	Dr. N. Bhattacharjee Goswami, Guwahati 389
51.	Vyāsa's Portraiture of the Indian	Dr. T.N. Indira Bhai 389
52.	Universalism and the Medieval Mind	Poonam Pant, Gorakhpur 390
53.	Proprietary Right of Wife in	Dr. Shalini, Patna 390
54.	Wage System in the Kautiliya	Dr. Anagha Vishwas Joshi 391
55.	Sanskrit Study in Āssām in the	Ratul Bujar Baruah, Gauhati 391
56.	Orient Beyond Orientalism	Anup Kumar Dhar 392
57.	The Atrocity on women and	Dr. Chandra Prakash Singh, Bihar 392
58.	Indian Globalisation Process	Prof. Raj Kumar Sen, Kolkata 393
59.	Continuity and Change in	Dr. Ved Kumari Ghai, Jammu 393

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

60.	Acrobats : The Folk Theatre Artistes	Dr. Iravati, Varanasi	394
61.	Export Business in Ancient India	Prof. Sonali Bose, Kolkata	395
62.	Epidemics in Ancient Indian	Dr. Mridula Saha, Kolkata	395
63.	Town Planning in Ancient India	Dr. Sadananda Das, Varanasi	396
64.	Kauṭalya on Sociology	Dr. Niranjan Pati, Orissa	396
65.	Chandassāra of Cintāmaṇi	Y. Wakankar, Vadodara	397
66.	Kautalya & Financial Emergency	Mrs. Katyayani Mahapatra, Orissa	397
67.	Role of Swāmi Vivekānanda in	Dr. P. Syamala Devi, Kerala	397
68.	Political History as the Study	Shankar Goyal, Rajasthan	398
69.	Kālidās and Orissa	Dr. Prahlad Charan Mahanty, Orissa	399
70.	Subsistance To Government	Prof. Ramnika Jalali	399
71.	Indian Society and Culture in	Dr. Premlata Srivastav, A.P.	400
72.	The Aryans Abode	Prof. Urmila Srivastava, Kenya	400

SECTION - 9

ARCH ARCHEOLOGY 401-411

1.	प्राकृत भाषा और शिलालेख	सौ.व्ही. बी. भगरे, मुम्बई	403
2.	आसाम के अभिलेखों में वर्णित आर्थिक स्थिति	डॉ. (कु.) रञ्जना सिनहा, उन्नाव	403
3.	वीरभूम की मृण्मय मन्दिर कला	डॉ. रागिनी राय, वीरभूम, पश्चिम बंगाल	404
4.	अतीत में वडनगर : एक विहंगावलोकन	श्री दुष्यन्त किशोर कान्त शुक्ल, भावनगर	405
5.	मिथिला के उपेक्षित पुरातात्त्विक स्थल.....	सुश्री सरस्वती कुमारी, दरभङ्गा	406
6.	हर्ष के कुरुक्षेत्र ताम्रपत्रलेख की संशोधित.....	डॉ. ओम प्रकाश लाल श्रीवास्तव, इलाहाबाद	406
7.	Rāma Janmabhūmi Issue	Prof. C.V. Mehta, Gujarat	407
8.	SAPTAMĀTRIKĀS	Neeta Malik, Mumbai	407
9.	Finding of Bhagvānlāl Indraji	Dr. Renuka Porwal	408
10.	An Archaeological and Cultural	Kālindī Pārikh, Amreli	409
11.	Vedic Sarasvatī : The Lost River.....	Nalināksh Pandya	409
12.	Weapons Mentioned in the Allahabad.....	Shomosree Roy Chowdhery, Kolkata	410
13.	Archaeological Vestiges of Śrīpura.....	Dr. D.B. Mishra, Orissa	410
14.	Rānipur-Jhariāl : An Archaelogical.....	Santosh Kumar Pradhan, Orissa	411
15.	Archaeological Study of the Sacred.....	Dr. Y. Himanshu Vyās, Gāndhinagar	411

SECTION - 10

II INDIAN LINGUISTICS 413-482

1.	शब्दशास्त्राधारेण भारतीयविदुषां प्राणिविज्ञानचेतना	डॉ॰ राधामाधवदासः, भुवनेश्वरम्	415
2.	शाब्दिकशब्दमीमांसा	डॉ. केदारनाथत्रिपाठी, वाराणसी	415
3.	महाभाष्ये पठितश्लोकवार्तिकानां वर्गीकरणम्	डॉ॰ त्रिलोकझा, दरभंगा	416

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CONTENTS

4.	शास्त्रीयाऽपपाठनिराकरणम् : जुमरव्याकरणम्	डॉ॰ देवराजपाणिग्रही	418
5.	प्रातिशाख्यस्य प्रयोजनानि	डॉ॰ कृष्णदत्तमिश्रः, वाराणसी	418
6.	पाणिनीयव्याकरणेऽनुवृत्तिनिवृत्त्योर्ज्ञानोपायाः	डॉ॰ सुरेश्वरझा, दरभंगा	419
7.	सम्बन्धस्वरूपविषये वंश्या वैशिष्ट्यम्	डॉ॰ मधुसूदनपाण्डेयः, औरंगाबाद	419
8.	समासादिवृत्त्यर्थविषये वंश्या वैशिष्ट्यम्	आचार्यबच्चनमिश्रः, गया	420
9.	पाणिनिपूर्वकारकविभक्तेः स्वरूपम्	डॉ॰ लालाशङ्करगयावालः, भरतपुर (राजस्थान)	420
10.	स्फोटवादस्य दार्शनिकसमीक्षा	प॰ रामानुग्रहशर्मा, राँची (झारखण्ड)	421
11.	प्राचीननव्यव्याकरणयोः साम्यवैषम्यमीमांसा	प्रो. श्रीकान्तपाण्डेयः, वाराणसी	422
12.	गीताद्वारा व्याकरणाध्ययनम्	डॉ. गोपबन्धुमिश्रः, वाराणसी	422
13.	पाणिनीयव्याकरणे णत्वविधानम्	डॉ॰ सत्यप्रकाशदूबे, जोधपुरम्	423
14.	प्रयोगशरणं व्याकरणम्	डॉ॰ कैलासचन्द्रदासः	423
15.	आचार्यपाणिनेः व्यक्तित्वं कृतित्वं च	श्रीसत्येन्द्रशास्त्री, ग्वालीयर	424
16.	व्याकरणशास्त्रीय-शब्दनित्यत्वप्रतिपादनम्	श्री-अनिलचन्द्रनौटियालः, वाराणसी	424
17.	सिद्धान्तकौमुद्यामधिकाराणामनवगतिः	डॉ. दीक्षितपुष्पा, बिलासपुरम्	425
18.	तद्धितेष्वधिकारव्यवस्था	सुश्री मनीषा पाठक, रायपुरम्	426
19.	भर्तृहरिमते स्फोटतत्त्वम्	डॉ. कामदेवः झाः, हरियाणा	427
20.	अष्टाध्याय्याः परिभाषासूत्राणि	डॉ. श्रीप्रकाशपाण्डेयः, बिहार	427
21.	ऋग्वेदप्रातिशाख्यगतप्रश्लिष्टसन्धेः पाणिनिप्रोक्त.....	श्री रणजितबेहेरा, नवदेहली	428
22.	अण्-प्रत्ययस्य भाषाशास्त्रीयमध्ययनम्	श्रीहेमनारायणझाः, भागलपुरम्	428
23.	अच्-प्रत्ययस्य भाषाशास्त्रीयमध्ययनम्	डॉ. लक्ष्मीश्वरझाः, भागलपुरम्	429
24.	यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यम्	डॉ. देवनारायणझाः, दरभङ्गा	429
25.	पुराणोक्तव्याकरणसमीक्षणम्	डॉ. धर्मदत्तचतुर्वेदी, वाराणसी	430
26.	मुख्यार्थं विहाय गौणार्थे व्याकरणप्रतिपाद्यं.....	सुश्री पार्वती चक्रवर्तिनी, कोलकाता	431
27.	फिट्-सूत्राणामध्ययनम्	डॉ. सीताचरणझाः, बिहार	431
28.	माहेश्वरसूत्रसमीक्षा	डॉ. अशोककुमारचौधरी, वाराणसी	432
29.	व्याकरणदृष्ट्या लिङ्गनिर्णयः	श्री सचिन म. कठाले, नागपुरम्	432
30.	महाभाष्ये धार्मिकतत्त्वानि	प्रो. किशोरचन्द्रपाढ़ी, पुरी	433
31.	व्याकरणस्य ज्ञानप्रयोगविषयकधर्मविचारः	श्री धनञ्जयकुमार आचार्यः, वाराणसी	433
32.	शब्दानुशासनविचारः	डॉ. अमरचन्द्रठाकुरः, वाराणसी	433
33.	धर्मः कुत्रः? शब्दज्ञाने अथवा प्रयोगे	श्री दिनेशः वि. खवासः, नागपुरम्	434
34.	पाणिनीयव्याकरणस्य सरलीकरणे श्रीहरिना.....	डॉ. सीनेली देव, उडीसा	434
35.	पाणिनीय-व्याकरणे काल-विचारः	डॉ. श्रीमती पूर्णिमा केलकर, रायपुरम्	435
36.	तद्धित-प्रकरणेऽधिकारव्यवस्था	डॉ. श्रीमती मनीषापाठक, रायपुरम्	435

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

37. कारकतत्त्वानुशीलनम्	श्रीविष्णुकान्तझाः, देवघरम्	436
38. जहत्स्वार्था अजहत्स्वार्था च	डॉ. रविशंकरपाण्डेयः, वाराणसी	436
39. पाणिनेः शब्दान्वाख्यानपद्धतिः	श्रीशैलेशकुमारतिवारी, वाराणसी	437
40. नादब्रह्म उपास्महे	डॉ. श्रीमती कुमुद कान्हे, रायपुरम्	438
41. विभक्त्यर्थविचारः	डॉ. दुर्गाचरणषडङ्गी, पुरी	438
42. उरण्रपरः इति सूत्रविमर्शः	डॉ. टी.एन. वैष्णवः, रायपुर	439
43. समुपेक्षिताः बिहारराज्योद्भवाः कतिपयवैयाकरणाः	डॉ. रामकृष्णपाण्डेयः परमहंसः, पं. बंगाल	440
44. अथ शब्दानुशासनमित्यस्य विमर्शः	डॉ. केशवकुमाररायः, झारखण्डम्	440
45. पाणिनीयव्याकरणे तदन्तविधिः	डॉ. रमेशचन्द्रपण्डाः, वाराणसी	440
46. अभिराम कृत काव्य मन्दाकिनी की	सुश्री ज्योत्स्ना त्रिपाठी, सुल्तानपुर	441
47. 'भविष्यत् कहा' का आलोचनात्मक परिशीलन	श्री रामानुज पाण्डेय	442
48. पाणिनीय उपपद : विभक्तियों का अध्ययन	कु॰ गुंजन गर्ग, भरतपुर	442
49. मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा का	श्रीमती डॉ॰ पुष्पकरम्, मुजफ्फरपुर (बिहार)	443
50. व्याकरण विषयक कविसमय सिद्धान्त	डॉ॰ जनार्दन प्रसाद पाण्डेय, प्रतापगढ़	444
51. कालिदास के रूपकों के नामधातु का	डॉ. भोला मिश्र, देवघर	445
52. भाष्यकार के अनुसार 'सन्निपात परिभाषा'.....	श्री भीम सिंह, कुरुक्षेत्र	445
53. सिद्धहेमशब्दानुशासनगत बहुव्रीहिसमासा.....	सुश्री ज्योति शर्मा, कुरुक्षेत्र	446
54. शान्तनवाचार्य के फिट्सूत्र का उपयोग	कु. प्रियंका राय	447
55. 'प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा'.....	डॉ. निहारिका पटेल, अहमदाबाद	448
56. सिद्धान्तकौमुदी में अनुवृत्ति की समस्या.....	श्री अभिजित दीक्षित, विलासपुर	448
57. परिभाषाओं के सन्दर्भ में वाक्यार्थ.....	डॉ. श्रीकृष्ण शर्मा, कुरुक्षेत्र	449
58. क्रिया-मीमांसा	डॉ. (श्रीमती) आभा सिंह, आरा	450
59. सप्तमीविभक्ति के अर्थों का पर्यालोचन	डॉ. तेजनी जी. मुंशी, अहमदाबाद	450
60. श्रीमद्भगवद्गीता में प्रयुक्त क्त-प्रत्यय	श्री प्रणय कुमार झा, भागलपुर	451
61. प्राकृत और आर्य-द्रविड भाषाओं का मूर्द्धन्य-पक्ष	डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह	451
62. प्रो. 'अभिराज' राजेन्द्र मिश्र की कृतियों में.....	डॉ. रमेश चन्द्र मुरारी, गुजरात	452
63. पाणिनीय व्याकरण में वचन व्यवस्था.....	विजयानन्द जी पटके, गुजरात	453
64. व्याकरणदृष्ट्या कालस्वरूपम्	कु. यामिनी धनंजय, नागपुर	453
65. व्याकरणशास्त्र की कुछ संज्ञाओं का.....	प्रो. अनिरुद्ध अशोक मंडलिक, अहमदाबाद	454
66. क्विबन्त शब्दों का भाषा-विवेचन	श्री तुलाकृष्ण झा, भागलपुर	454
67. सारस्वत व्याकरण में संज्ञा-विधान	डॉ. प्रवीण भारद्वाज	455
68. वाक्य की अव्यय संरचना	सुश्री कविता बिसारिया	456
69. व्याकरणदृष्ट्या लक्षणावृत्ति	कु. अन्तरा एलकुंचवार, नागपुर	456

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

70.	'वाक्यपदीयम्' के आधार पर भर्तृहरि.....	कुमारी आभा द्विवेदी	457
71.	पाणिनीय कारकव्यवस्था : अर्थ.....	डॉ. रमाकान्त त्रिपाठी, बलिया	458
72.	वैयाकरणों के अनुसार कर्मकारक का अनुशीलन	डॉ. राधेश्याम शर्मा, करनाल (हरियाणा)	459
73.	महाकवियों के दुर्घट प्रयोगों के.....	सुश्री कामिनी ओहरी, दिल्ली	460
74.	समास प्रकरण में ज्ञापन कार्य	डॉ. राजेश कुमार मिश्र	460
75.	ध्वनि-विज्ञान	डॉ. देवीप्रसाद द्विवेदी, वाराणसी	461
76.	अक्षरों का सार्थकत्व एवं निरर्थकत्व	श्रीमती विनीता	462
77.	रघुवंश महाकाव्य में ण्यन्त पद.....	श्री अनील कुमार, चण्डीगढ़	462
78.	प्रोक्ति की संकल्पना और संस्कृत-साहित्य	डॉ. (श्रीमती) उषा सिंहल, कुरुक्षेत्र	462
79.	भावप्रत्यय 'त्व' आदि का अर्थ-विवेचन	डॉ. अरविन्द कुमार, कुरुक्षेत्र	463
80.	महाभाष्योत्तरवर्ती वृत्तिग्रन्थों में वार्त्तिकों	डॉ. महेश दत्त शर्मा, बदायूँ	464
81.	'उपरि' उपसर्ग की ऐतिहासिक विकास-मीमांसा	डॉ. हरिश्चन्द्र मणि त्रिपाठी, वाराणसी	465
82.	Origin of Language by Random.....	Prof. Jatin Pandya, Navasri	466
83.	Indo-Iranian and Āvestān : A	Dr. Shārada Chaturvedi, Varanasi	466
84.	The Root Ṃ ke=Ö and its Treatmcnt.....	Dr. Dinānāth Sharma, Ahmedabad	467
85.	A Critical Study of the nañ-.....	Bhāgyalatā Pataskar, Pune	467
86.	Linguistic Universals	Chaitali Arun Dangarikar, Mumbai	468
87.	Interpreting Vakyapadiya	Malhar Kulkarni, Mumbai	468
88.	The Evolution of Sanskrit	Dr. Apurba Chandra Barthakuria	469
89.	An Unforgettable Sanskrit.....	Ritā Chattopadhyay, Kolkata	469
90.	Peculiarities of Puruṣottamdeva.....	Reeta Bhattacharya, Kolkata	470
91.	Siksha Sastra and Speech Therapy	Mrs. S. Annapurna, Chennai	470
92.	Etymology of Words in Bālamanoramā.....	V. Yamuna Devi, Chennai	471
93.	A Comparative study of Sanskrit.....	Dr. Prem Niwas Sinha, Varanasi	471
94.	On Reconstruction of the Dhātupāṭha.....	Narayan Prasad, Pune	471
95.	A Critical Inquiry of 'howmanieth'.....	Chinmay Dharurkar, Pune	472
96.	Vākyārtha : Holistic Approach.....	Dr. Gayatri Rath, Vani Vihar	473
97.	Solid Sanskrit Sans English Fluidity	Naveen Kumar Jha, Darbhanga	473
98.	Āyurveda in Pāninian Grammar	Dr. Anjalika Mukhopadhyay, Kolkata	474
99.	Bhartṛhari on Import of Word	Raghaubir Singh, Hoshiarpur	475
100.	Code-Mixing in Kannada	Dr. Rajeshwari Maheshwaraih, Dharwad	475
101.	Ānanda's Theory of Dhvani and.....	Santanu Banerjee, Varanasi	476
102.	Technical Terms and Definitions	Dr. Ranjan Chakravarty, Assam	476
103.	The Contribution of Melputtūr.....	Dr. Girija, Kalady	477
104.	Sanksrit in Our Times	Om Prakash Pande, Patna	477
105.	Word and its Meaning in Indian.....	Jaganadh.G, Thiruvananthapuram	478
106.	A critical Note on Vayasi.....	Girish K. Jha, Patna	478

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

107.	The Indo-Aryan Maithili	Dr. Pramod Kumar Pandey, Bhagalpur	479
108.	A Study of the Paribhāṣās	Sudeshna Bhattacharjya Mukherjee	479
109.	Bhoja's treatment of Saṁpradāna-kāraka	Achyutananda Dash, M.P.	480
110.	Quotations of Kāśikā in	Mr. Harekrushna Agasti, Kurukshetra	481
111.	Psycholinguistics & Semantics	Dr. K.C. Dueby, Varanasi	481
112.	Hapax Legomenon Andhapuṣpikā	Ranjana Date	481
113.	Sāṅkhya Philosophy as Presented.....	Dr. Niradbaran Mandal, Sāntiniketan	482
114.	Sekasubhodaya δ A Linguistic	Dr. Sujata Mitra, Varanasi	482

SECTION - 11

DS DRAVIDIC STUDIES 483-488

1.	लक्कम्मा के अनुदित वचनों का मूल्यांकन	डॉ. भारती हिरेमठ, कर्नाटक	485
2.	Lixicographical developments in	Prof. H.M. Maheshwaraiah, Dharwad	485
3.	Karnātaka Haridāsas Ethics for.....	Dr. K.B. Archok, Dharwad	486
4.	Andāl's Krishna Bhakti in	Smt. S. Kumuda Varadarajan, Tirupati	486
5.	Fasts, Feasts and Festivals of	Dr. (Smt) Shree. S. Herlekar, Dharwad	487
6.	Nature of God in Yamunācharya's.....	Dr. M. Varadarājan, Tirupati	487
7.	Rāmacaritam : The First Poetic	Vidhunarayan, Thiruvanantapuram	488
8.	Telugu Satakas of The River Basins	Dr. Namuduri (Prabhala), Janaki	488

SECTION - 12

PR PHILOSOPHY & RELIGION 489-673

1.	गीतायां मोक्षसन्देशः	डॉ. सुदीपा रायः, भुवनेश्वरम्	491
2.	अद्वैतसाम्प्रदायिको वेदापौरुषेयत्वसिद्धान्तः	श्रीसन्तोषः सी.आर., केरला	491
3.	प्राचीनभारतीयशास्त्रे चतुर्वर्गफलप्राप्तिः	डॉ. हेतरामकछवाहः, वाराणसी	492
4.	मनुस्मृतौ राजधर्मः	प. हरेकृष्णधूपालः, ओडिशा	493
5.	ब्रह्मसूत्रेऽन्तराभवः	डॉ. राजवीरः, मेरठ	493
6.	याज्ञवल्क्यदिशा वादविमर्शः	डॉ. ललितकुमारसाहुः, पुरी	494
7.	प्रणवे कलाविमर्शः	डॉ. वृजेशकुमारशुक्लः, लखनऊ	495
8.	नियोगविधौ धर्मशास्त्रीयदृष्टिः, अधुना तस्य.....	डॉ. भगवत् शरणशुक्लः, इलाहाबाद	495
9.	श्रीमद्भगवद्गीतायां मायावादः	डॉ. सर्वानन्दमिश्रः, पुरी	496
10.	मनुस्मृतेः वेदानुगामित्वम्	डॉ॰ महावीरोऽग्रवालः, हरिद्वारम्	497
11.	ज्ञानाद्भक्तिर्गरीयसी	डॉ॰ रामप्रभा ओझाः, बलिया	498
12.	वैखानसीयं जिज्ञासाधिकरणम्	डॉ॰ वेदान्तं श्रीविष्णुभट्टाचार्यः	498
13.	शङ्करमिश्रकृतस्य शब्दमणिमयूखस्य वैशिष्ट्यम्	डॉ. हरेरामत्रिपाठी, नई दिल्ली	499
14.	स्थितप्रज्ञविमर्शः	डॉ॰ मारकण्डेयनाथतिवारी, नई दिल्ली	500

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

15. आधुनिकयुगे मनुस्मृतेः प्रासङ्गिकता	डॉ॰ महेश्वरप्रसादसिंहः, मुजफ्फरपुरम्	500
16. पुरुषपरीक्षायां पुरुषार्थचर्चा	डॉ॰ जयश्री चट्टोपाध्यायः, कोलकाता	501
17. धर्मपदार्थविवेकः	डॉ॰ कालिकादत्तझा, दरभङ्गा	501
18. सुलोचनामाधवचम्पूकाव्ये बच्चाझामहोदयानां.....	डॉ॰ लक्ष्मीनाथझा, दरभङ्गा	502
19. सर्वतन्त्रस्वतन्त्रबच्चाझापरनामधेयधर्मदत्तोपा.....	डॉ॰ बौआनन्दझाः, दरभङ्गा	502
20. प्रमुखभारतीयदर्शनेषु मोक्षस्यावधारणा	प्रो॰ हृषीकेशझाः, दरभङ्गा	503
21. व्याकरणदर्शने बौद्धार्थवाच्यत्वप्रकाशनम्	श्रीभोलानारायण रेग्मी, वाराणसी	504
22. अभिलाषोपशमः	डॉ॰ महेशझाः, मुंगेर	504
23. प्रवेशदर्शनम्	श्रीरामप्रवेशभक्तः, मुजफ्फरपुर	505
24. श्रीमदाद्यशङ्कराचार्य्य-भगवत्पादानां	डॉ॰ विन्ध्येश्वरीप्रसादमिश्रो 'विनयः', उज्जयिनी	505
25. चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्	श्रीमती तारापाण्डे, राँची	506
26. श्रीमद्भगवद्गीतायां त्यागरहस्यम्	श्री सुबासचन्द्रत्रिपाठी, उड़ीसा	506
27. श्रीमद्भगवद्गीतानुमोदितयोगरहस्यम्	डा. प्रलयकुमारनन्दः, पुरी	507
28. संस्कारः पुंस एव	डा. कमलेशमिश्रः, पुरी	507
29. धर्मतत्त्वं तत्प्रभेदाश्च	श्रीशशिनाथठाकुरः	508
30. पातञ्जलयोगसांख्यदर्शने कैवल्यस्य स्वरूपनिर्धारणम्	डॉ. विमला देवी, पूना	508
31. गौतमधर्मसूत्रे प्रदर्शितानां प्रायश्चित्तानां	डा0 पुरेन्द्रवारिकः, उत्कलः	508
32. दर्शनशास्त्रं प्रति पण्डितदामोदरशास्त्रिणः योगदानम्	श्रीप्रफुल्लकुमारबेहेरा, ओडिशा	509
33. गौरक्षायै धर्मशास्त्रविधानम्	डॉ. इन्दुलता दास, नई दिल्ली	509
34. विशिष्टाद्वैतदर्शनाभिमता अपर्यवसाना वृत्तिः	प्रो. अशोककुमारकालिया, लखनऊ	510
35. वेदान्तमते प्रमाणविचारः	डॉ. गोविन्दपाण्डेयः, पुरी	510
36. उत्तमः नृपः उत्तमा तस्य नीतिः	डॉ. विजयकुमारकर्णः, लखनऊ	511
37. कादिकुले काली	सुश्रीशैलकुमारी मिश्र, इलाहाबाद	511
38. वर्तमाने अद्वैतवेदान्तदर्शनस्य प्रसक्तिः	श्रीचन्द्रमाधवसिंहः, मुजफ्फरपुरम्	512
39. भारतीयदर्शनानां पुरुषार्थप्रयोजनकत्वम्	डॉ. विजयकुमारपाण्डेयः, वाराणसी	512
40. भावातीतं योगरहस्यम्	डॉ. निलिम्पः त्रिपाठी	513
41. प्रातिपदिकार्थविचारः	डॉ. विमलेशझाः, लखनऊ	513
42. ब्रह्मजिज्ञासालोचने वाचस्पतेरभिनवत्वम्	श्री सत्यनारायणः	514
43. उपमानलक्षणप्रमाणस्वरूपविमर्शः	प्रो. रामपूजनपाण्डेयः, वाराणसी	514
44. न्यायवैशेषिकनये संशयपदार्थस्य पर्यालोचना	डॉ. कृष्णानन्दचक्रवर्ती	515
45. सौन्दर्यलहरी	श्री एस. पार्थसारथी, चेन्नई	515
46. कलौ गतिस्तु श्रीहरिनामसंकीर्तनमेव	नी. पञ्चापगेशः, चेन्नई	516
47. भारतीयदर्शनानां पर्यालोचनम्	डॉ. हरिप्रसाद अधिकारी, वाराणसी	516

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

48.	श्रीमातुरानन्दमय्याः सुरभारत्यामवदानम्	डॉ. कु. गीताबनर्जी, वाराणसी	517
49.	पाशुपतदर्शने कार्यकारणपदार्थविमर्शः	श्रीमहेशचन्द्रः वशिष्ठः, कुरुक्षेत्रम्	517
50.	अद्वैतवेदान्तदृष्ट्या अविद्यायाः स्वरूपम्	श्रीविजयपालकछवाहः, उड़ीसा	518
51.	कालं बोधयामो वयम्	डॉ. गौरीशंकरतिवारी, आरा	518
52.	अर्थशास्त्रकारषु कौटल्यः	श्रीविक्रमकुमारराउतः, पुरी	519
53.	धर्मशास्त्रे स्त्रीधर्मविमर्शः	श्रीजगमोहनमिश्रः, पुरी	519
54.	श्रीनारायणागुरुरीत्या अद्वैतदर्शनविमर्शः	श्रीलीला सुभाषः, केरला	520
55.	संस्काराणां वैज्ञानिकत्वम्	प्रो. वाचस्पतिशर्मा त्रिपाठी	521
56.	वाराणस्यां तु विश्वेशम्	डॉ. शास्त्री अनिलः, पाटण (उ. गु.)	521
57.	समीक्षाचक्रवर्तिपण्डितमधुसूदनशर्म्ममैथिलप्रति.....	डॉ. गणेशीलालसुथारः, जोधपुरम्	522
58.	मनःशरीरतापापघातकः हठयोगः	डॉ. वी. रामकृष्णभट्टः, केरलप्रदेशः	522
59.	पाणिनिव्याकरणे नारी, तत्र धर्मशास्त्रीयसन्तुलनम्	डॉ. गोविन्दचन्द्रकरः, पुरी	523
60.	प्रायश्चित्तानां साम्प्रतिकी प्रासङ्गिकता	प्रो. डॉ. किशोरचन्द्रमहापात्रः, पुरी	523
61.	आनन्दं ब्रह्म	श्रीअरुणकुमारमिश्रः, ओडिशा	524
62.	'शास्त्रयोनित्वात्' इति सूत्रस्य भाष्यान्तरविमर्शः	डॉ. हरप्रियादाशः, ओडिशा	525
63.	धर्मशास्त्रे दायभागः	डॉ. विश्वनाथः स्वाई, ओडिशा	525
64.	धर्मशास्त्रे कालसर्वस्वम्	श्रीज्ञानेन्द्रत्रिपाठी, ओडिशा	526
65.	पुरुषार्थचतुष्टयस्य धर्मशास्त्रीयसमीक्षणम्	डॉ. व्यासमिश्रः, वाराणसी	526
66.	तर्कशास्त्रे ज्ञानसिद्धान्तः	थकामुनि पी.के., केरला	527
67.	स्मृतिशास्त्रे न्यायव्यवस्था दण्डव्यवस्था च	प्रो. वेदप्रकाशः शास्त्री, हरिद्वारम्	527
68.	न्यायशास्त्रे केरलीययोगदानम्	डॉ. के.जी. कुमारी	528
69.	धर्मशास्त्रदृष्ट्या वर्णाश्रमव्यवस्था	सुश्रीमेधा कुमारी, पुरी	528
70.	आश्रमग्रहणकालविचारः	डॉ. जयकृष्णमिश्रः. पुरी	529
71.	वर्णाश्रमव्यवस्था एकमध्ययनम्	डॉ. माधवचन्द्रपण्डा	529
72.	सूर्यदेवः चराचरस्य आत्मा : अध्ययनमेकम्	डॉ. खगेन्द्रनाथदेवशर्मा	530
73.	श्रीजगन्नाथतत्त्वस्य विहङ्गावलोकनम्	श्रीनृसिंहनाथगुरुः	530
74.	अद्वैतवेदान्तस्य वर्तमानकाले प्रसक्तिः	श्रीचन्द्रमाधवसिंहः, मुजफ्फरपुरम्	531
75.	भक्तिप्रपत्त्योः स्वरूपविवेचनम्	डॉ. जयप्रकाशनारायणत्रिपाठी, वाराणसी	532
76.	षडध्वविमर्शः	डॉ. राजनाथत्रिपाठी, वाराणसी	532
77.	उपनिषदुक्त आध्यात्मिक नीति-तत्त्व	डॉ. रमा दुबे, वाराणसी	533
78.	मनुस्मृति एवं पाराशरस्मृतीय दण्ड.....	डॉ. रामचन्द्र सिंह, बिहार	533
79.	श्रीमद्भगवद्गीता में जीवन दर्शन	डॉ. पूजा देवी, दिल्ली	534
80.	बुद्धि के सात्त्विक परिणाम 'ज्ञान' से.....	डॉ. चन्द्रशेखर	535

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

81.	कर्मफल की विश्रान्ति	मारूफउर रहमान, अलीगढ़	535
82.	मण्डन-सुरेश्वर का पार्थक्य	डॉ. उदयनाथ झा अशोक, पुरी	536
83.	मधुसूदन सरस्वती के दर्शन में 'अविद्या'	सुश्री सरिता शुक्ला, वाराणसी	537
84.	कठोपनिषद् का श्रीमद्भगवद्गीता पर प्रभाव	शिव कुमार त्रिपाठी, रायपुर	538
85.	स्वाध्याय : योगसूत्रों के आलोक में	डॉ. कञ्चन माला पण्डित, बिहार	538
86.	योगवासिष्ठ में जीवन्मुक्ति	प्रो. उमेश चन्द्र दुबे, मनोज कुमार तिवारी, वाराणसी	539
87.	मूल्य (पुरुषार्थ) सिद्धान्त : एक अनुशीलन	डॉ. प्रमोद कुमार सिंह, वाराणसी	540
88.	नन्दीसूत्र : एक ज्ञानमीमांसीय अध्ययन	श्री राघवेन्द्र पाण्डेय, वाराणसी	540
89.	गीता में कर्मवाद	सत्येन्द्र कुमार सिंह, छपरा	541
90.	कर्मवाद एवं आत्मतत्त्व	डॉ. सिद्धार्थ शंकर सिंह, छपरा	541
91.	बाणकालिक भारत में मन्त्रिपरिषद्	डॉ. कादम्बरी शर्मा, रायपुर	542
92.	सांख्य का द्वैतवाद	डॉ. सत्येदव मिश्र, वाराणसी	543
93.	कुलार्णवतन्त्र में गुरु एवं शिष्य का.....	डॉ. रवि कुमार मिश्र, वाराणसी	543
94.	वैदिक व्रत और उनका महत्त्व	डॉ. (श्रीमती) प्रवेश सक्सेना, नई दिल्ली	544
95.	चन्द्रज्ञानागम के मुख्य वर्ण्य विषय	श्री विनय प्रकाश मिश्र, सुलतानपुर	545
96.	भक्ति एवं मोक्ष	कु. रीना वर्मा, अलीगढ़	546
97.	श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित जीव की	श्री ब्रह्मानन्द पाठक, लखनऊ	546
98.	भारतीय दर्शन के क्षेत्र में मध्य भारत की देन	डॉ. लक्ष्मी शुक्ला, ग्वालियर	547
99.	शैवमत का स्रोत और विकास	प्रो. रमाशंकर मिश्र, लखनऊ	547
100.	चाणक्य नीति का उर्दू अनुवाद-अनमोल रत्न	डॉ. ज़फर इफितखार, अलीगढ़	548
101.	'पुरुषार्थचिन्तामणि' ग्रन्थानुसार एकादशीव्रत-निर्णय	डॉ. मनोज कुमार दूबे, आजमगढ़	549
102.	हिन्दुओं के विवाह में मेलापक योग का विचार	डॉ. तीर्थनाथ झा, मधुबनी	550
103.	वर्तमान युग में हठयोग और	डॉ. मञ्जुला गुप्ता, दिल्ली	550
104.	ख्याति-विमर्श	डॉ. करुणा अग्रवाल, इलाहाबाद	551
105.	चरकोक्तन्यायः	हंसा महेश कथीरिया, सूरत	552
106.	शिवमाहात्म्यखण्ड के द्वादश अध्याय.....	प्रो. जी. एस. बोरीचा, गुजरात	552
107.	सांख्य-योग दर्शन में पूर्वोत्तर वैदिककालीन	डा. नीलिमा पाठक, राँची	553
108.	आचार्य शङ्कराचार्य के अनुसार अध्यास	देवकुमार यादव, भरवारी	554
109.	जीवनव्यवहार में भगवद्गीता	डॉ. प्रा. सौ. निरूपमा कुलकर्णी, नाशिक	555
110.	याज्ञवल्क्यस्मृति में प्रायश्चित्त विधान	सुश्री श्वेता गुप्ता, हरिद्वार	555
111.	धर्मशास्त्रानुसार अभिवादन व्यवस्था	डॉ. (श्रीमती) मीना शुक्ला, राँची	556
112.	दार्शनिकों की दृष्टि में सांख्यकारिकोक्त.....	डॉ. शशिकान्त द्विवेदी, वाराणसी	557
113.	आधुनिक विश्व-समाज में गीतोक्त	डॉ. चन्द्र कुमार झा, अम्बाला	557

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

114. योगः परमौषधम्	प्रो. महेश कुमार जे. कुथारिया, गुजरात	558
115. क्या सांख्य-दर्शन का ईश्वरनिरपेक्ष.....	डॉ. (श्रीमती) बीना श्रीवास्तव, वाराणसी	558
116. उपनिषदों में मोक्ष का स्वरूप	कु. जीना, चण्डीगढ़	559
117. हिमाचल लोकजीवन में षोडश संस्कार	डॉ. गोकुल चन्द शर्मा, सोलन	560
118. कर्म सिद्धान्त एवं नैतिकता	डॉ. रेणु द्विवेदी, वाराणसी	561
119. श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्णविषयक	प्रो. राजेश लाल मेहरा, इन्दौर	561
120. अद्वैततत्त्वशुद्धि में मिथ्यात्व निरूपण	डॉ. (श्रीमती) दीपक कालिया, दिल्ली	562
121. श्रीमद्भगवद्गीता में कर्ममीमांसा	डॉ. यमुना प्रसाद मिश्र, बलिया	563
122. यमविद्या के (रथरूपक) द्वारा आत्मबोधन	डॉ. श्वेता शर्मा, हिसार	564
123. छान्दोग्य-उपनिषद् में 'ॐ' की विविध.....	प्रो. द्विवेदी कश्यप एम, भूज	564
124. वीरशैव दर्शन का विकास	सतीश चन्द्र शुक्ल, सुलतानपुर	565
125. पूर्वमीमांसाशास्त्र में शब्द-प्रमाण	प्रो. रञ्जना, इलाहाबाद	565
126. अनुबन्धचतुष्टय : विज्ञानभिक्षु की दृष्टि में	डॉ. साधना कंसल, कोटा	566
127. मनुस्मृति में संस्कार विवेचन	डॉ. अवधेश कुमार पाण्डेय, झारखण्ड	567
128. आचार्य विज्ञानभिक्षु की दृष्टि में	श्री महेश प्रसाद श्रीवास्तव, कैमूर	567
129. वैष्णव दर्शन के श्री-सम्प्रदाय में ब्रह्मकारणवाद	डॉ. विनोद कुमार सिंह, कैमूर	568
130. भारतीय दर्शन का विदेशों पर प्रभाव	डॉ. मोहम्मद शरीफ़, अलीगढ़	569
131. आधुनिक युग में विष्णुसहस्रनाम की प्रासङ्गिकता	डॉ. दिवांशु कुमार, छपरा	569
132. न्याय-वैशेषिक में योगज प्रत्यक्ष की अवधारणा	डॉ. अनीता राजपाल, दिल्ली	570
133. छान्दोग्योपनिषद् में निरूपित सृष्टि-प्रक्रिया	डॉ. गीता मौर्य, वाराणसी	571
134. तत्-पदार्थ एवं त्वम्-पदार्थ शोधन की विधि	डॉ. (श्रीमती) ममता गुप्ता, वाराणसी	572
135. योग की अवधारणा	सुश्री नेहा शुक्ला, फैजाबाद	573
136. अष्टावक्रसंहिता और सदानन्दकृत.....	श्री आर.आर. पटेल, राजकोट	574
137. शाण्डिल्य-भक्तिसूत्र और नारद-भक्तिसूत्र.....	डॉ. हेमराज भाई आर. पटेल, बनासकांठा	574
138. मानवीय पृष्ठभूमि में धर्म : जानकीहरण.....	डॉ. त्रिलोचन प्रधान, वाराणसी	575
139. प्राचीन संस्कृत महाकाव्यों में धर्मशास्त्र.....	डॉ. प्रतिभा त्रिपाठी, इलाहाबाद	576
140. शाक्ततन्त्रों को श्रुति का समर्थन	श्री रवीन्द्रकुमार वि. खाण्डवाला, अहमदाबाद	577
141. युक्तिदीपिका में प्रमाण-विवेचन	श्री परमेश्वर सिंह राजपुरोहित, जोधपुर	577
142. श्रीशङ्कराचार्य के परिप्रेक्ष्य में सत्कार्यवाद	सुश्री जया मिश्रा, वाराणसी	578
143. आधुनिक न्यायपद्धति	डॉ. मणिभाई ई. प्रजापति, मेहसाना (गुजरात)	579
144. भारतीय संस्कृति में धर्म और समाज	श्री भारती डी. दानाधार, भूज (कच्छ)	579
145. डॉ. राममनोहर लोहिया की दृष्टि में	डॉ. उत्तीम लाल राय, समस्तीपुर	580
146. चैतन्यमत में प्रमाण-विमर्श	डॉ. श्रीनिवास ओझा, वाराणसी	581

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

147.	गौतम-धर्मसूत्र में आश्रम-व्यवस्था	श्री वेद प्रकाश, कुरुक्षेत्र	582
148.	श्रीयन्त्र का शास्त्रीय अध्ययन	डॉ. सतीरमण झा, मधुबनी	583
149.	पं. जटानन्द झा विरचित श्रीयन्त्र	श्रीमती सुनीला झा, दरभङ्गा	583
150.	वर्तमान सन्दर्भ में मनु की प्रासङ्गिकता	डॉ. मीरा द्विवेदी, बड़ोदरा	584
151.	बीसवीं शताब्दी में अद्वैत वेदान्त	डॉ. कमला देवी, लाहा	585
152.	प्रज्ञाचक्षु गुलाबराव महाराज का दार्शनिक चिन्तन	कलापिनी राणे, रामटेक	585
153.	विष्णुपुराण में तन्त्र	डॉ. शीतला प्रसाद उपाध्याय, वाराणसी	586
154.	'सांख्य और वेदान्त-मत में ईश्वर विचार'	डॉ. कु. उषा माथुर, मेरठ	586
155.	सञ्चालन की विभावना और श्रीमद्भगवद्गीता	डॉ. पङ्कज जी त्रिवेदी, पालिताणा	587
156.	धर्म और धर्मसङ्कट	श्री अमित कुमार झा, दरभङ्गा	588
157.	स्मृतियों में प्रतिपादित मानवीय मूल्यों की.....	डॉ. भारतेन्दु द्विवेदी, हमीरपुर	588
158.	धर्म एवं दर्शन : एक विवेचन	पं. ध्रुवपति पाण्डेय, बलिया (उ.प्र.)	589
159.	युग प्रवर्तक—आद्य शङ्कराचार्य	डॉ. श्रीमती माया त्रिपाठी, भदोही	590
160.	योग-दर्शन में जीवन्मुक्ति	डॉ. सुधा जैन, रोहतक	590
161.	श्रीमद्भगवद्गीता में 'क्षर', 'अक्षर' एवं 'पुरुषोत्तम'	प्रो. गया राम पाण्डेय, वाराणसी	591
162.	क्रियायोग : एक समीक्षा	श्री शिवकुमार वर्मा, होशियारपुर	591
163.	पं. हरेकृष्ण मिश्र कृत वैदिक वैष्णव.....	डॉ. शालिनी सक्सेना, जयपुर	592
164.	भारतीय संस्कृति में गुरु-शिष्य-परम्परा	सुश्री मीनाक्षी, राँची	593
165.	उत्तराध्ययन एवं मनुस्मृति का तुलनात्मक.....	डॉ. मिथिलेश कुमारी मिश्रा, पटना	594
166.	मनुस्मृति एवं याज्ञवल्क्यस्मृति और मानवाधिकार	डॉ. सुधा गुप्ता, कानपुर	594
167.	तन्त्रागम में दीक्षा तत्त्व-विमर्श	डॉ. प्रेमवती, वाराणसी	595
168.	श्री विद्यारण्यस्वामी विरचित पञ्चदशी	प्रो. गमीरसिंह बारीआ, गुजरात	596
169.	भारतीय संस्कृति में धर्म और समाज	श्री आर.आर. कालन कोलेण, कच्छवा	596
170.	वाक्यार्थनिर्णय में मीमांसाशास्त्र की प्रासंगिकता	डॉ. गायत्री शुक्ला	597
171.	गीतगोविन्द में काम-कला	डॉ. आशा शर्मा, भिण्ड	597
172.	चित्तदुत्ति और भक्ति	डॉ. अजय कुमार झा	598
173.	वर्तमान सन्दर्भ में मनुष्य का धर्म	रश्मिबहन पी. मेहता, जूनागढ़	599
174.	भारतीय आस्तिक दर्शनों में शब्द.....	प्रो. बांबुभाई एच. वणकर, मेरसाना	600
175.	योगः कर्मसु कौशलम्	डॉ. शरत् प्रभा, पूर्णियाँ	600
176.	अभिनवगुप्त का रस विवेचन.....	डॉ. श्रद्धा सिंह	601
177.	याज्ञवल्क्य स्मृति में दायभाग व उत्तराधिकार	डॉ. अशोक कुमार शुक्ल, सोनभद्र	602
178.	तन्त्रशास्त्र में शक्तितत्त्व	डॉ. परमात्मा दुबे, वाराणसी	603
179.	तन्त्रागम में स्वप्नविवेचन	डॉ. गोविन्द गन्धे, ग्वालियर	604

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

180.	चार्वाक दर्शन में भौतिकवाद एवं	प्रो. हरेश ए. जोशी, भावनगर	604
181.	वल्लभ-दर्शन में 'ख्याति'	डॉ. गिरिधर गोपाल शर्मा, दिल्ली	605
182.	सूफी विचार और उपनिषद् विचारों का.....	ताम्बोली जैनुद्दीन अ. रसीद, अहमदनगर	606
183.	तत्त्वज्ञान में जीवात्मा का परमात्मा से सम्बन्ध	कु. ज्योति गजेन्द्र वडगणे, नासिक	607
184.	वर्तमान सामाजिक परिप्रेक्ष्य में स्मृतिशास्त्र.....	डॉ. नीरजा दीक्षित, उन्नाव	607
185.	शांकर-वेदान्त में कर्म-चेतना	श्री शाम सुन्दर, चण्डीगढ़	607
186.	अद्वैत वेदान्त के परिप्रेक्ष्य में अविद्यानिवृत्ति.....	डॉ. शशिकान्त पाण्डेय, बेगूसराय	608
187.	अहिंसा आधुनिक सन्दर्भ में	प्रो. रणजीत कुमार, बोध गया	608
188.	मानवधर्म मीमांसा	डॉ. धर्मवीर, दरभंगा	609
189.	प्रासङ्गिकता पुराणों के वास्तु निर्देशों की	श्री योगेन्द्र पाण्डेय	610
190.	श्री पंचाननजी के शक्तिभाष्य में शक्तितत्त्व.....	प्रो. विना वी. थेरकल	610
191.	धर्म की आवश्यकता	श्री पवन कुमार	611
192.	वल्लभ सम्प्रदाय एवं पिछवाई परम्परा	श्रीमती किरन सरना, राजस्थान	611
193.	श्री पंचाननजी शक्ति भाष्ये में शक्तितत्त्व और.....	प्रो. विना वी. थेरकल	612
194.	Traces of Śaivasiddhānta in the	Dr. R. Thiagarajan, Chennai	613
195.	The Sāṃkhya View of the Siddhis.....	Dr. Surendramohan Mishra, Kurukshetra	613
196.	Plant-Kingdom as envisaged in.....	Dr. Baidhar Nayak, Orissa	614
197.	As Source for Sri Vaishnavism	Dr. R.N. Ārlikatti, Pune	615
198.	Dirtism in Ancient Indian Religious.....	Ganesh Umākānt Thite, Pune	615
199.	The Theory of Karma Stated in	Dr. Uma Deshpande, Baroda	616
200.	Does Bādarāyaṇa Inernd Ubhayavya.....	Shailaja Bapat, Pune	616
201.	True Import of Vaiśvānara in the	Dr. Pranati Ghosal, Varanasi	617
202.	Social Values in the Upaniṣads	Kalyāni Goswami, Assam	618
203.	Holidays of the World	Prof. Sadāshiva Praharāja, Orissa	618
204.	Totemism in Maṇipur	Prof. M. Kirti Singh, Manipur	619
205.	Main Doctrine of the Bhagavadgītā	Dr. Krishna Chakraborty, Kolkata	620
206.	Human Rights in India : The	Dr. Harihar Mishra, Puri	621
207.	A Glance on Gandhian Ecology	Smita Dash, Bhubaneswar	621
208.	Devatānāṃ Manusyāṇāṃ Sahavāsoa.....	Dr. Asha Goswami, Delhi	622
209.	Monistic Epistemology : A Critical.....	Prof. Dipak Ghosh, Calcutta	623
210.	Bodhapancadasika of Abhinavagupta.....	Dr. Mrs. Sunanda Y. Shastri, Ahmedabad	624
211.	Evolution of Witness and Evidences	Mrs. Ramadevi Sekhar, Chennai	625
212.	Principles and Evolution of	P. Ramachandrasekhar, Chennai	625
213.	Mind is Soul	Dr. Sukadev Bhoi, Varanasi	626
214.	Origin of the Universe and its.....	Dr. Mrs. Bhabani Ganguli, Calcutta	627
215.	Dream : Appearance and Reality	Dr. Yoganand Jha, Daraanga	627

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

216.	The Power of Remembrance	Ram Kumar Sharma, Lucknow	628
217.	Āpaddharma	Dr. Arunima Mukherjee, Kolkata	629
218.	Logical Debates and their Restrictions	Dr. S. Layek, Kolkata	629
219.	Proprietary Rights of Wife in Ancient.....	Dr. Shalini, Patna	630
220.	Sapakṣa and Sādharmydṛṣṭānta	Nandita Banerjee, Kolkata	631
221.	Ethical and Moral Values of	Dr. Paramesh Acharya, West Bengal	632
222.	Main Doctrine of the Bhagavadgītā	Dr. Krishna Chakraborty, Kolkata	632
223.	Remarriage Rights of Women	R. Subasri, Chennai	633
224.	Implication of Indian Epistemology.....	Prof. N. B. Biswas, Silchar	633
225.	Basics of The Sutras	Shri Sarat Kumar Kar, Orissa	634
226.	Equality Before Law-A Changing	Niladrisankar Banerjee	634
227.	Religion, a Path of Discipline to	Dr. Mrs. Lalita Kuppuswamy	635
228.	Sree Nārāyanaguru and his Religious.....	Dr. V. Sisupala Panicker, Kerala	635
229.	Vedānta for Human Excellence	Dr. Subash Chandra Dash, Bhubaneswar	636
230.	Nyāya-Vaiśeṣika Concept of Padārtha	Miss Kaveri N. Jadhav, Pune	636
231.	Tat-Tu Samanvayāt	Dr. P. Rangarajan, Chennai	637
232.	Subsistance to Government Servants.....	Prof. Ramnika Jalali, Jammu	638
233.	Ānanda Concept of Upaniṣads	Rishi Sagar	638
234.	A Critical Appraisal on the laws	Binima Buzar baruah, Guwahati	639
235.	Criminal Law in Ancient India and.....	Bhupesh Malla Buzarbaruah, Guwahati	640
236.	Human Rights in Ancient India	Dr. Ripima Buzarbaruah, Hajo	640
237.	Tantra in Kerala	Prof. Dr. T. Devarajan	640
238.	Contribution of Sri K. Achyuta.....	Dr. K. Arya Devi, Kalady	641
239.	Concept of Śūdra Based on.....	Bera R. Uday, Kerala	642
240.	Philosophical Relation between.....	Dr. Manik S. Thakar, Pune	642
241.	Significance of Charama Śloka in.....	Dr. C. Umakantham, Tirupati	642
242.	Madhva-Vedanta mein Brahma aaur.....	Vimalesh Kumar	643
243.	Concept of Karma in Vedanta	Dr. R.N. Pandey, Gujarat	644
244.	Relevance of the Kauṭilya's	Dr. P.V. Narayanan	644
245.	Gangeśa Theory of Nyāyāvayava	Prof. S.C. Goswami, Kolkata	644
246.	The Religion & Philosophy of	V. Radhakrishnan Nair, Madurai	645
247.	Traits in Advaita Vedānta : A Study.....	N. Mohana, Tamilnadu	646
248.	Reminiscences of Tantrism in the	Dr. Kamadev Pati, Orissa	646
249.	Illicit Sex : As Dealt in Major.....	Dr. Harekrushna Mishra, Santiniketan	647
250.	Raghudeva and Navya-nyāya	Chandan Bhattacharyya, Kolkata	648
251.	Paddhati Lit. of Śaivāgamas with	S.A.S. Sarma, Pondicherry	648
252.	A Study on the nature of Individual.....	Dr. Sumita Chaudhury, Kolkata	649
253.	The theory of Devata in the vision	Dr. Niranjan Mishra, Jharakhanda	649
254.	Advaita : The Paradigm for a new.....	Swami Tattwamayananda	650

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

255.	The Samkhya Concept of Gunas	Dr. P.K. Sasidharan Nair, Madurai	651
256.	The Principles of Yoga System	R. Surendranath Thamburaj, Madurai	651
257.	Metaphysics in Advaita Vedānta-A	P.P. Sudarsan, Madurai	652
258.	The Methods of Knowledge-A	N. Sivagamikkani, Madurai	652
259.	Theoretical Aspects of Manusaṃhitā	Dr. Dipanwita Chakraborty, Kolkata	653
260.	Some Notes on the Vidyāpīṭhaprati.....	Christelle Barois, Pondicherry	653
261.	Some Considerations on Padārtha	Dr. T. Ganesan, Pondicherry	654
262.	Mokṣa in Prābhākara-Mīmāṁsā	Prof. Rajendra Nath Sarma, Gauhati	654
263.	Arthāpatti, As An Independent	Dhirendra Mohan Kumar, Guwahati	655
264.	Heaven and Moksha	Prof. T. Thomas Varghese, Kerala	656
265.	Lord Śiva in the Meghadūtam	Shrutidhara Chakravarty, Gauhati	656
266.	The Concept of Samādhi in the	T.S. Kumaran, Madurai	656
267.	Description of Heart in Upaniṣads	Dr. Manmohan Acharya	657
268.	Liberation for Householders	Prof. Shankarji Jha, Chandigarh	658
269.	Pāncarātra	Dr. Bijoy N. Ramanuj Das, Puri	658
270.	Śaṅkarācārya's Mohamudgaraḥ	Dr. Rabiprasad Mishra, Puri	659
271.	Non-Vedic School of Indian Thoughts	Pankaj Sarma, Guwahati	660
272.	Concept of Pramāṇa : A	Ms. Bharati Goswami, Guwahati	660
273.	Non-Difference among the Jivas	Dr. Kallianikutty Ponnath, Kerala	661
274.	A Defence of Sankhya Theory	Sukla Majumdar, Kolkata	662
275.	Jaina Dravya Tattva	Shyamali Banerjee, Kolkata	662
276.	The Scientific Background of Sri	K.V. Ramakrishna Rao, Chennai	663
277.	Determinism and Human-Freedom.....	Dr. Daityari Charan Panda, Orissa	664
278.	Bhakti as depicted in Upāsanāśatakam	Dr. (Mrs.) S. Devi, Bhubaneswar	664
279.	The Sankhya Metaphysics	Dr. (Mrs.) Uma Pant, Varanasi	665
280.	The concept of Religion in the	Charubala Mahanty	666
281.	Mother Goddess in Ancient India	Mrs. Dipika Devi, Assam	666
282.	The Advaita Philosophy of Sree	Dr. Dharmaraj Adat, Kerala	667
283.	Role of Swami Vivekananda in the	Dr. P. Syamala Devi, T.V.M.	668
284.	The Buddha as a Vedanta Philosopher	Dr. R. Karunakaran, T.V.M.	668
285.	Analysis of the definition of	Satish Chandra Panda, Orissa	669
286.	Concept of Jivanmukti in Sāṁkhya.....	Dr. Sanghamitra Sengupta, Kolkata	670
287.	Tattvamasi in Chāndogya Upaniṣad	Bagmita Sandilya, Gauhati	670
288.	Hindutva A way of Life	C.R.L. Kalyani, Andhra Pradesh	671
289.	Śivānandalaharī	Geetha R. Bangalore	672
290.	On Nirvikalpaka Pratyakṣa	Dr. Nilakantha Dash, Hyderabad	672
291.	Hermann Hessecs Siddhartha and	Dr. Mamata Dixit, Varanasi	673
292.	Vedic Origin of Śrī Kṛṣṇa's	Dr. Krishna Murari Sharma, Hoshiarpur	673

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

SECTION - 13

TS & FA TECHNICAL SCIENCE & FINE ARTS 675-748

1.	म.म. सामन्तचन्द्रशेखरीये सिद्धान्तदर्पणे	श्री सत्यस्वरूपवाजपेयी, वाराणसी	677
2.	भूमौ ग्रहदृष्टिविचारः	डॉ. हरिप्रसादपाण्डेयः, बड़ौदा	677
3.	चिकित्साव्यवस्था	डॉ. नित्यानन्दमिश्रः, भद्रक, ओडिशा	678
4.	प्राच्यप्रतीच्यदृष्ट्या भूगर्भसमीक्षणम्	डॉ. सदानन्दशुक्लः, वाराणसी	678
5.	संस्कृतवाङ्मये गणितविज्ञानम्	डॉ. कलिपदेवपाण्डेयः, वाराणसी	679
6.	संस्कृतवाङ्मये जलविज्ञानम्	डॉ. विवेकपाण्डेयः, वाराणसी	680
7.	राजयोगानां समीक्षणम्	श्रीकौशलकिशोरतिवारी, वाराणसी	681
8.	ज्योतिषशास्त्रे सूर्यस्य स्थितिः	श्रीजोखनपाण्डेयः, गोरखपुरम्	681
9.	संस्कृते विज्ञानम्	श्रीनारायणः, तृश्शिनपुरम् (केरलप्रान्तः)	682
10.	कौटिल्यस्य दुर्गविज्ञानं ज्योतिषीयविश्लेषणञ्च	डॉ. नागेन्द्रपाण्डेयः, वाराणसी	682
11.	ज्योतिषाङ्गं स्वरशास्त्रम्	डॉ. सत्येन्द्रमिश्रः	683
12.	'अपि गृहस्थोऽपि मुच्यते' आचार्यमण्डनमिश्र.....	प्रो. शङ्करजी झा, चण्डीगढ़	683
13.	प्राच्यप्रतीच्यगणितविमर्शः	श्रीनारायणकिंजवडेकरः	684
14.	भारतदेशे गणितशास्त्रपरम्परा	डॉ. डी.एस. गायत्री, बेंगलोर	684
15.	जातकीयभावविमर्शः	प्रो. दामोदरझाः, होशियारपुरम्	685
16.	विवाहे मेलापकविचारः	डॉ. प्रभातकुमारमहापात्रः, पुरी	686
17.	ग्रहगणिते दृग्गणितैक्यस्य प्रासङ्गिकत्वम्	डॉ. सच्चिदानन्दमिश्रः, पुरी	686
18.	उदयान्तरविमर्शः	प्रो. शिवाकान्तझा, दरभंगा	687
19.	प्राचीनभारते कुल्याप्रकल्पनम्	डॉ. नवलता, कानपुरम्	687
20.	चन्द्रशृङ्गोन्नतिविमर्शः	डॉ. रामजीवनमिश्रः, जम्मू	688
21.	ज्योतिषशास्त्र में वर्णित रोगसम्बन्धी	डॉ॰ नरेश कुमार शर्मा, जानीपुर	689
22.	विश्ववल्लभ में विज्ञान	डॉ. हेमलता बोलिया, उदयपुर	690
23.	नारायण विलास में मधुमेह	डॉ. शक्तिकुमार शर्मा 'शकुन्त', उदयपुर	690
24.	धातुविज्ञान (Metallurgy) में महर्षि	डॉ. (श्रीमती) शैलजा पाण्डेय, इलाहाबाद	691
25.	वैष्णवागम में देवालय कल्पन तथा निर्माण	डॉ॰ शीतला प्रसाद पाण्डेय, वाराणसी	692
26.	वृत्त की संरचना पर आर्यभट्ट तथा यूक्लिड.....	डॉ॰ सुद्युम्न आचार्य, बलिया	692
27.	भारतीय ज्योतिष और मानव-जीवन	श्री सुरेश कुमार शर्मा, जम्मू	693
28.	मनुस्मृति एवं पर्यावरण	डॉ. (श्रीमती) वीणा शर्मा, पटना	694
29.	अथर्ववेद में औषधि-निरूपण एवं रोग-चिकित्सा	श्री मुरारि वि. भट्ट, भावनगर, गुजरात	694
30.	कालिदास के काव्यों में चित्रकला की अभिव्यक्ति	डॉ. विनोद कुमार गुप्त, टिहरी	695
31.	संस्कृत वाङ्मय में सङ्गीतशास्त्र की परम्परा.....	डॉ. राजेन्द्र त्रिपाठी 'रसराज', इलाहाबाद	696

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

32.	शालभञ्जिका : एक अनुपम कला प्रतीक	डॉ. नीरज कुमार पाण्डेय, वाराणसी	696
33.	नारदीय शिक्षा में स्वर विवेचन	सुश्री भारती शर्मा, कुरुक्षेत्र	697
34.	मकरराशि का भौम (मंगल) कुण्डली में		698
35.	मानव जीवन में ग्रहकृत बाधाएँ एवं	सुश्री प्रिया शर्मा	698
36.	दिग्काल विमर्श	डॉ. आशुतोष चतुर्वेदी	699
37.	आचार्य आपस्तम्ब की ज्यामितीय अवधारणा	डॉ. गीता त्रिपाठी, सुल्तानपुर	700
38.	कालिदास और पर्यावरण	श्री जी. एन. बारीआ, गुजरात	700
39.	आयुर्वेद में पंचकर्म का महत्त्व	डॉ. श्रीनिवास उपाध्याय, ग्वालियर	701
40.	भक्ति मार्ग का समर्थ साधन : संगीत	डॉ. सुनीता द्विवेदी, कानपुर	702
41.	रविचन्द्र-ग्रहण-विमर्श	आचार्य नरेन्द्र तिवारी, वाराणसी	703
42.	कोपर्निकस एवं विश्व के सापेक्ष पृथ्वी	श्री कृष्णकान्त पाण्डेय, वाराणसी	704
43.	मुहूर्त्त-ज्योतिषम्	डॉ. चन्द्रमौली उपाध्याय, वाराणसी	704
44.	चरकसंहिता के नैतिक सूत्रों की समीक्षा	श्री आनन्द कुमार, बाँदा	705
45.	मूल्यों की अवधारणा	श्री बृहस्पति पाण्डेय, इलाहाबाद	706
46.	नगर-विनिवेश में मार्ग-विन्यास	श्री विद्याधर सिंह, जम्मू	707
47.	संस्कृतवाङ्मय में कृषिविज्ञान	श्री माता प्रसाद पाठक, लखनऊ	708
48.	सामगान में 'विस्वर' की अवधारणा	डॉ. पंकज माला शर्मा	709
49.	ज्योतिषशास्त्र के अनुसार विभिन्न भावों	श्री राम कुमार, पंजाब	709
50.	संस्कृतवाङ्मय में कृषि विज्ञान	श्री ब्रह्मदेव राम तिवारी, इलाहाबाद	710
51.	गीता में काम की अवधारणा	डॉ. श्रीमती लक्ष्मी मिश्रा, गोरखपुर	711
52.	संस्कृतसाहित्य में संगीत	श्री रवि शंकर मिश्र, मुजफ्फरपुर	712
53.	राग विवेचन और मूर्च्छना पद्धति	डॉ. (कुमारी) सरिता निगम, कानपुर	712
54.	जीवन और स्वास्थ्य के आयुर्वेदिक उपाय	आयु. वैद्य जगदीश प्रसाद, अम्बेडकरनगर	713
55.	श्रीराम के जन्मकाल का वैशिष्ट्य	डॉ. अरुण कुमार पाण्डेय, वाराणसी	714
56.	हिन्दू-धर्म के कतिपय प्रमुख पक्षों का	डॉ. सुभाषचन्द्र सचदेवा, सोनीपत	715
57.	चित्रकाव्यों की परम्परा में महाराज	डॉ. (श्रीमती) सरिता भार्गव, राजस्थान	716
58.	संस्कृत कृषिविज्ञान और प्राचीन उद्यानिकी	डॉ. नीरज शर्मा, अलवर	717
59.	संस्कृत साहित्य में पर्यावरण संरक्षण	डॉ. नन्दन भार्गव, कोटा	718
60.	धन्वन्तरि-योग : एक चिन्तन	श्री अनिल देशमुख, दुर्ग	718
61.	प्राकृतिक-चिकित्सा विज्ञान	श्रीमती अनिता देशमुख, दुर्ग	718
62.	म.म. श्री चन्द्रशेखर सिंह सामन्त की कृति.....	सुश्री चन्द्रश्री पाण्डेय, लखनऊ	719
63.	भगवद्गीता और आयुर्वेद	सौ. उषा श.पाटील, नाशिक	720
64.	भारतीय-संस्कृति में पशुओं की महत्ता.....	डॉ. राकेश बाबू, दिल्ली	720

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

65.	शेखावाटी के भित्तिचित्रों में वैष्णव-धर्म	डॉ. पुष्पा दुल्लर, राजस्थान	721
66.	Technical and Scientific Elements.....	Prof. Hari Dutt Sharma, Allahabad	722
67.	Puruṣottama Kshetra : A Prime	Dr. Balaram Panda, Cuttack	722
68.	The Art of Meditation in Thirty	Dr. Mrs. Rajni Patki, Pune	723
69.	The Shape of the Earth : The	Dr. Braja Sundar Mishra, Orissa	724
70.	Sudarśana-Narasimha Yantra	Dr. P.P. Apte, Pune	724
71.	Vedic Mathematics : Contribution	Dr. Parvati Banerjee, Varanasi	725
72.	Population Related Enviromental.....	Binay Kumar Bhattacharya, W. Bengal	726
73.	Nutritional Guidelines : Spotlight	Dr. Sukla Das, Kolkata	726
74.	Vedic Tantrism as Reflacted in the.....	Dr. (Mrs.) Bidyut Lata Ray, Orissa	727
75.	Medical Profession and diseases in	Prof. Pradyot Kumar Datta, Kolkata	727
76.	Simple motions and high theories.....	Ramashish Prasad Singh, Begusarai	728
77.	Antiquity of Vedas as revealed from.....	Dr. Mohan Gupta	729
78.	Medical Science and the Atharva Veda	Prabhat K. Pandeya, Varanasi	730
79.	Status of Sciences and Technology	Shankar Gopal Nene	730
80.	Can Technology Really Help in	Chirashree Mukherjee	731
81.	Subsistance to Government Servants.....	Prof. Ramnika Jalali, Jammu	731
82.	Mathematics in Sanskrit	Dr. Daya Shankar Tiwari, New Delhi	732
83.	Sketch of Professional Carcer	N.G. Kinjavadekar, Varanasi	732
84.	Mathematics and Metrics	Mrs. V. Uma Maheswari, Chennai	733
85.	Prasnopanisad and Origin of Life	Dr. Mrs. Vaidehi Limaye & Dr. Mrs. Kanchan Chitnis, Mumbai	733
86.	Karmic and Planetary Astrological	Varsha Shah, Mumbai	734
87.	Mensuration in the Śulba : An	Ramkrishna Bhattacharya, Kolkata	734
88.	Vision of Well-being and Classical	Dr. Khagendra Patra, Orissa	735
89.	Surrealistic Art and the Surrealists	Umesh C. Mahapatra, Orissa	736
90.	Dream : Appearance and Reality	Dr. Yoganand Jha, Darbhanga	736
91.	Food Technology in Ancient India	Vid. H.S. Hanumantha Rao, Melkot	737
92.	Ayurvedic and Advaitic Texts	Mrs. J. Balasubramanian, Channai	737
93.	Mathematics in old Sanskrit Literature	Smt. Rina Dutta & Prof. S.R. bhattacharya, Kolkata	738
94.	Ibn al-Haitham and Astronomy	Pradip Kumar Majumdar, Kolkata	738
95.	Crime and punishment in ancient	Dr. Tapati Mukherjee, Kolkata	739
96.	Tridosha Tristmuna Three Pillars of.....	Prof. Rupali Kapare, Pune	739
97.	Socio-Economic Status of Women	Dr. Bharati Dixit, Saharanpur	740
98.	Kuchipudi	Dr. J. Manuel, Tirupati	741
99.	Mānasollāsa and Treatment of	Dr. D. Bujarbarua, Assam	741
100.	The Ancient Indian Musical Instruments	Smt. S. Sarada, A.P.	742
101.	Manuscript of Commentary on.....	Dr. Mitali Chatterjee, Kolkata	742

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

102.	Horticulture in Vrikshāyurveda	Prof. M.V. Praphulla	743
103.	Speech Therapy by Lyrical	Dr. Asha Deshpande, Nagpur	743
104.	Social Stratum and Agriculture	Dr. Anil Kumar Choudhary, Darbhanga	744
105.	Techniques of Painting in Kerala	Anitha K.R., Kerala	744
106.	Therapeutic Ethics in Suśruta Saṃhitā	Dr. Dalia Bandury, Kolkata	745
107.	Folk Elements in Vedic Music	Sm. Bisakha Goswami	745
108.	Agronomic Concepts and Practices	Dr. (Mrs.) Nirmal Trikha, Delhi	746
109.	Musical Aspects (Nāda) in	E.R. Saraswathi	746
110.	Home Remedies for Women	M.N. Shylaja, Bangalore	747
111.	Viṁśottari Daśā Prediction System	Sarvanārāyna Jhā, Lucknow	747

SECTION - 14

WAS	**WEST ASIAN STUDIES**		**749-751**
1.	Ancient India's Foreign Trade with.....	Dr. Ratan Lal Basu, Kolkata	751

SECTION - 15

MS	**MODERN SANSKRIT**		**753-832**
1.	आत्मानुसन्धानाख्यकाव्यस्य समीक्षात्मकमध्ययनम्	प्रो. अंबालालः प्रजापतिः, गाँधीनगर	755
2.	चाणक्यविजयनाटकस्य वैशिष्ट्यम्	गिरिजाशङ्करपतिः, उड़ीसा	755
3.	संस्कृतसाहित्ये 'बिट्ठो' ग्रामस्यावदानम्	डॉ. रामचन्द्र वी.भ., कर्नाटक	756
4.	मगधानां तित्रयः संस्कृतविभूतयः	सुश्री अयोनिजाशास्त्री, झारखण्ड	757
5.	पण्डितजगन्नाथश्रीधरपदेशास्त्रिणा विरचितस्य	पण्डितजगन्नाथश्रीधरः	757
6.	आधुनिकसंस्कृतगीतसाहित्ये राष्ट्रियसमस्यासमा.....	डॉ. जनार्दनप्रसादपाण्डेयः 'मणिः', उत्तराञ्चल	758
7.	बलवन्तसिंहपुत्रजन्ममहोत्सवनाटकस्य वस्तुसन्दर्भे.....	श्रीमहेशचन्दः (शोधच्छात्रः), राजस्थान	759
8.	आधुनिकसंस्कृनाटकं कुमारविजयम्	श्री विनोदकुमारपाण्डेयः, राँची	759
9.	त्रिवेणीकवि-राजेन्द्रमिश्रस्य 'अरण्यानी'	डॉ. हरेकृष्ण-मेहेरः, ओड़िशा	760
10.	श्रीरामानन्ददिग्विजयमहाकाव्ये वैष्णवसिद्धान्त.....	श्री प्रधानधीरेन्द्रायः, पुरी	760
11.	आधुनिकयुगे आदर्शशिक्षकस्य भूमिका का?	श्रीअभिनीतकुमार, मुजफ्फरपुरम्	761
12.	स्वातन्त्र्योत्तरमैथिलविदुषां संस्कृतसेवा	डॉ. इन्द्रनाथझाः, सीतामढ़ी	761
13.	'का त्वं शुभे' गीति-काव्यम्	सुश्री शिप्रा राय, त्रिपुरा	762
14.	भारतामृतमहाकाव्यप्रणेता कविचन्द्रायदिवाकरमिश्रः	डॉ. प्रमोदचन्द्रमिश्रः, पुरी	762
15.	विन्ध्यवासिनीविजयं महाकाव्यस्य रसस्वरूपम्	कु. प्रियदर्शिनी वि. बावडेकर, नागपुरम्	762
16.	मोददायकः व्यङ्ग्यकारः प्रमोदनायकः	डॉ. नारायणदासः, ओडिशा	763
17.	सौन्दर्यसप्तशती-काव्यस्याध्ययनम्	ऋषन् प्रसादभारद्वाजः, सागरम्	764
18.	आधुनिकसंस्कृतसाहित्येषु भाषाप्रयोगः	डॉ. धर्मेन्द्रकुमारसिंहदेवः, नवदेहली	764

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

19.	शशिरेखा : एका समीक्षा	श्रीवैद्यनाथमिश्रः, छपरा	765
20.	जगद्गुरु-श्रीचन्द्रशेखरेन्द्र-सरस्वती-विजय-काव्ये.....	श्रीगिरिशः बी. जानी, महाराष्ट्रम्	765
21.	प्रणवकवेः काव्यप्रणतयः	डॉ. मनुलता शर्मा, वाराणसी	766
22.	आचार्यमहाप्रज्ञकृतभिक्षुगाथाया अनुशीलनम्	डॉ. हरिशंकरपाण्डेयः	766
23.	आधुनिकभाषासु तत्सम-तद्भवादिशब्दानां	डॉ. निरञ्जनदासः, ओडिशा	767
24.	नव्यकाव्यतत्त्वविमर्शः	प्रो. रहसविहारीद्विवेदी, जबलपुरम्	767
25.	त्रिपाठिराधावल्लभप्रणीतमभिनवकाव्यालङ्कारसूत्रम्	डॉ. रमाकान्तपाण्डेयः, जयपुरम्	768
26.	भावविलसित-शिशुयुवदुर्दैवविलसितयोः एकं	डॉ. अमलेन्दु पाड़िया, वर्धमान	768
27.	संस्कृतशिक्षणे अभिक्रमिताध्ययनम्	वी. सुब्रह्मण्यम्, भोपालम्	769
28.	श्रीहरिवनविचरणकाव्यस्य परिशीलनम्	डॉ. प्रेमशंकर गि. शुक्लः, मुम्बई	770
29.	अर्वाचीने संस्कृतसाहित्ये समाजचेतना	श्रीसीतानाथ आचार्यशास्त्री, कोलकता	770
30.	वर्तमानसमये नारीणां संस्कृताध्ययनस्य	डॉ. कु. गुनीता मारबा	771
31.	का त्वं शुभे : एका समीक्षा	श्रीतन्मयकुमारभट्टाचार्यः	771
32.	श्रीमद्वेदान्तदेशिकविरचितपादुकासहस्रे	डॉ. चक्रवर्तिरङ्गनाथः, तिरुपतिः	772
33.	म.म. बटुकनाथशास्त्रिखिस्तेविरचित-.....	डॉ. विनोदरावपाठकः, वाराणसी	772
34.	अमरभारतीपत्रिकासु प्रकाशितसमस्यापूर्तीनां	श्रीविनोदकुमारखिस्ते, वाराणसी	773
35.	वक्रोक्तिः काव्यजीवितम्	डॉ. शारदासामन्तरायः, पुरी	773
36.	आम आदमी की जमीर और उसकी जमीन:....	श्री बनमाली बिश्वाल, इलाहाबाद	774
37.	अपने समय को पढ़ने का एहसास	डॉ. अर्चना तिवारी, फतेहपुर	774
38.	संस्कृत साहित्य में महाकवि वेणीदत्त	डॉ. काशीनाथ मिश्रा, पटना	775
39.	लेनिनामृतम् : नई चेतना का प्रतीक	सुश्री अर्चना लालजिंग, अकोला	776
40.	डॉ. हर्षदेव माधव की उड़ान के नये क्षितिज	डॉ. मञ्जुलता शर्मा, आगरा	777
41.	संस्कृतस्तोत्र काव्य परम्परा में 'जनार्दनमणि'.....	डॉ. (श्रीमती) छाया रानी, उत्तराञ्चल	777
42.	अभिराज राजेन्द्र मिश्र विरचित	डॉ. किरण टण्डन, उत्तराञ्चल	778
43.	जनार्दन मणि विरचित 'रागिणी में जीवन दर्शन'	डॉ. कमलेश वर्मा, आगरा	779
44.	जनार्दनमणि के 'गीतसाहित्य' में	डॉ. शेषनारायण त्रिपाठी, उत्तराञ्चल	780
45.	दूतकाव्य परम्परा में तैलंग व्रजनाथविरचित	सुश्री पूजा सिंह, फैजाबाद	780
46.	आचार्य डॉ. राजदेव मिश्र का संस्कृत	श्री समीर कुमार पाण्डेय, सुलतानपुर	781
47.	वसन्त त्र्यम्बक शेवडे का संस्कृत साहित्य.....	डॉ. बीना सिंह, गोण्डा	782
48.	बीसवीं शताब्दी के दूतकाव्य	श्रीमती कविता गयावाल, भरतपुर	783
49.	राजस्थान में संस्कृत-शिक्षा परम्परा	श्री निहाल सिंह, भरतपुर	783
50.	स्वतन्त्रता पूर्व राजस्थानीय संस्कृतकथासाहित्य	कु. अर्चना मंगल, भरतपुर	784
51.	ज्ञान-गरिमा के शुभ्र शिखर' डॉ. रामकरण शर्मा	डॉ. पर्णम शर्मा, खबड़ा	785

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

52.	तरङ्गदूतम् की सूक्तियों का समीक्षात्मक परिशीलन	डॉ. सुशील कुमार पाण्डेय, सुलतानपुर	786
53.	जनार्दन मणि विरचित 'नीराजना' में	डॉ. बी.बी. त्रिपाठी, पौढ़ी गढ़वाल	786
54.	श्रीराधाचरितमहाकाव्यम् में शक्तिस्वरूपा श्रीराधा	कु. आरती सिंह, लखनऊ	787
55.	श्री चोक्कनाथ : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व	डॉ. श्वेता रस्तोगी, लखनऊ	788
56.	नरनारायणानन्द महाकाव्य की वर्णनशैली	प्रो. एम.आर राठाड़े, गुजरात	788
57.	आधुनिक महाकवि डॉ. शिवप्रसाद भारद्वाज.....	प्रो. एल.एम. पानशेरिया, गुजरात	789
58.	आधुनिक संस्कृत नाट्यकर्त्रियों के उत्पाद्य	प्रो. डॉ. भारतीबेन जे. सोलंकी, जामनगर	790
59.	सनातनकविकृत युगीन महाकाव्य कुमारविजयम्	रश्मि कुमारी, वाराणसी	791
60.	संस्कृत और छत्तीसगढ़ी लोकमानस	डॉ. महेशचन्द्र शर्मा, छत्तीसगढ़	791
61.	प्रो. 'अभिराज' राजेन्द्र मिश्र की कृतियों में.....	डॉ. रमेश चन्द्र मुरारी, गुजरात	792
62.	सुदर्शनोदय महाकाव्य की सूक्तियाँ और	प्रो. जयप्रकाशनारायण द्विवेदी, द्वारका	793
63.	आज की वाणी : सनातनकविकृत 'शरशय्या'	श्री राहुल, वाराणसी	794
64.	जयोदय महाकाव्य रस परिपाक	सुश्री पारूल त्रिपाठी, लखनऊ	795
65.	केशवमिश्रकृत नृसिंहचम्पू का पर्यालोचन	प्रो. राजीव रंजन सिंह, वाराणसी	796
66.	प्रोफेसर राजेन्द्र मिश्र की एकाङ्कियों में	डॉ. वीरेन्द्र कुमार मिश्र, शिमला	796
67.	डॉ. रामकरण शर्मा के उपन्यासों में आदर्शवाद	सुश्री मञ्जुल गुप्ता, रोहतक	797
68.	राजस्थान का लहरी साहित्य	डॉ. सुदेश आहूजा, कोटा	798
69.	काँग्रेसाख्यानम् : एक परिचय	श्री सत्येन्द्र नाथ झा, दिल्ली	799
70.	नायिका जुलेखा : चारित्रिक विवेचना	डॉ. अरुण शर्मा	799
71.	इन्द्रयक्षीयम् : एक विश्लेषण	डॉ. देवेन्द्र सिंह सोलंकी, मेरठ	800
72.	मध्यमरामचरितम् की नाट्यशास्त्रीय समीक्षा	डॉ. (श्रीमती) प्रेमलता मिश्रा, सुल्तानपुर	800
73.	जय भारतदेशः चम्पूकाव्य का अनुशीलन	डॉ. आशा सर्वटे, सागर (म.प्र.)	801
74.	श्री चन्दनमुनिकृत 'आर्जुनमालाकारम्'	कु. रूबी जैन, पंजाब	802
75.	व्रजरजःप्रीतिः (बरवै सप्तशतकम्)	डॉ. श्रीमती सरिता भार्गव, कोटा, राजस्थान	803
76.	आचार्य मधुकर शास्त्री विरचित तुलसीदाससौरभम्	सुश्री मधु शर्मा, कोटा, राजस्थान	804
77.	आधुनिक संस्कृत एकांकी नाटकों में नारी-पात्र	सुश्री आराधना चतुर्वेदी, इलाहाबाद	804
78.	सुदर्शनोदय महाकाव्य की सूक्तियाँ और	प्रो. जयप्रकाशनारायण द्विवेदी, द्वारका	805
79.	आधुनिक संस्कृत नाटकों में वसन्त-ऋतु.....	डॉ. सुषमा देवी गुप्ता, जम्मू	806
80.	18वीं शताब्दी के संस्कृत नाटकों में	श्री कमल किशोर, जम्मू	806
81.	प्राचीन संस्कृत नृत्यनाट्य एवं आधुनिक	डॉ. सुशील कुमारी वर्मा, कानपुर	807
82.	अभिराज राजेन्द्र प्रणीत वामनावतरणम्	कु. अनीता चौहान, मैनपुरी	808
83.	बींसवीं सदी के संस्कृतवाङ्मय में मानव-प्रकृति	प्रो. राजेन्द्र कुमार ए. चोटलिया, गुजरात	809
84.	अर्वाचीन लघु कथाओं का स्वरूप एवं वैशिष्ट्य	श्रीमती माला प्यासी, जबलपुर	809

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

85.	वासुदेवानन्द सरस्वती के 'शिक्षात्रयम्'	प्रो. वीणा भानु, नागपुर	810
86.	पं. केदारनाथ शास्त्री और उनकी कृति.....	डॉ. सत्यपाल श्रीवत्स, जम्मू	810
87.	शतककाव्य-परम्परा में नये दृष्टिकोण से	प्रो. सी.बी. बालस, गुजरात	811
88.	वनमालिदासकृत श्रीहरिप्रेष्ठ महाकाव्य में	डॉ. अनुराधा शर्मा	812
89.	डॉ. परमानन्द शास्त्री और उनके ललित निबन्ध	कु. अम्बिका शर्मा, आगरा	813
90.	संस्कृत का पंजाबी पर प्रभाव : मुहावरे.....	डॉ. राजेन्द्र कुमार शर्मा, होशियारपुर	814
91.	ऐतिहासिक महाकाव्यों की परम्परा में	डॉ. आर.आर. मलिक, हरियाणा	814
92.	डॉ. रसिकविहारी की कृतियों में राधा	डॉ. मधुबाला, हरियाणा	815
93.	संस्कृत की अनिवार्यता : विश्व मानवता	श्री सच्चिदानन्द पाठक, बिहार	816
94.	अर्वाचीन संस्कृतकविता में लोकसंवेदना	डॉ. राजेश कुमारी मिश्र, वाराणसी	816
95.	संस्कृत-साहित्य में मैथिल-कोकिल महाकवि	श्री शिशिर कुमार झा, बिहार	817
96.	रमाशंकर अवस्थी विरचित "आहुतिः	सुश्री नलिनी, कानपुर	818
97.	'जानकीजीवनम्' महाकाव्य में वर्णित	डॉ. वाचस्पति शुक्ल, प्रतापगढ़	818
98.	'सत्यहरिश्चन्द्रोदयम्' एक अध्ययन	डॉ. ज्ञानेन्द्र कुमार मिश्र, सागर (मध्य-प्रदेश)	819
99.	On Modernity and Contemporaneity.....	Arun Ranjan Mishra, Orissa	820
100.	Dramatist Manik and His Bhairava.....	Smt. Nanda Jha, Puri	821
101.	Vedic Influence on the Shishupalavadha	Sipra Roy, Tripura	821
102.	Kali Prādurbhāvam.	Dr. Mrs. Chandra Ramani, Varanasi	821
103.	The Keli-Gopāla of Mahāpuruṣa	Dr. Anupama Mahanta, Assam	822
104.	Critical Appriciation of Tattvagun.....	Dr. Laxmikant V. Mohrir, Karnataka	823
105.	Sanskrti Lyricists of Modern Orissa	Mrs. Namita Pattanaik, Orissa	823
106.	Contribution of Dr. Rajendra Mishra.....	Usha Kataria, New Delhi	824
107.	Concept of Sakti in Sanskrit Literature.....	Mrs. Sita Sundar Ram, Chennai	824
108.	Literary Background of Kṛṣṇānand.....	Dr. Nabakishora Mishra, Orissa	825
109.	Svabhāvokti : A Poetic Concept	Dr. A. Bhattacharya, W. Bengal	825
110.	Kavirāja Giri and his unpublished works	Dr. Bibekananda Banerjee, Kolkata	826
111.	Vaidya Haridāsa and his Work	Subhra Banerjee, Hooghly	826
112.	Sanskrit Language after Independence	Dr. Amar Singh, Kurukshetra	827
113.	Excellence in Modern Sanskrit Poetry	Prof. A. R. Mishra, Varanasi	828
114.	Bhima Caritra of Rāma Sarasvati	Dr. Krishna Kanta Hondique, Assam	829
115.	The Facet of Sanskrit Poetry	Dr. Ajay Kumar Mishra	829
116.	Gurudev Rabindranāth and the	Prof. S. Chakraborty, Kolkata	829
117.	Yamaka Ṛtusaṁhāra of Puruṣottama.....	Pratap Chandra Tripathi, Orissa	830
118.	Rearrangement of Master Degree	Dr. Nirmal Sundar Mishra, Orissa	830
119.	Vaiṣṇavite Kāvyas of Assam with	Dr. Golakeswar Goswami, Guwahati	831
120.	Some Observations on the Sahapāṭhini	Dr. Dipak Kumar Sharma, Guwahati	832
121.	Sanskrit Matri Bhashi's in Varanasi	Jitendra Kumar Tripathi, Lucknow	832

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

SECTION - 16

SEAS SOUTH EAST ASIAN STUDIES 833-853

1.	आर्यावर्तस्वरूपमीमांसा	डॉ. रामचन्द्रद्विवेदी, वाराणसी	835
2.	'मृगाङ्कदूतम्' दक्षिणपूर्वैंशियाक्षेत्रस्यैकमात्रं	डॉ. भारतेन्दुपाण्डेयः, मेरठ	836
3.	भारतीय हिन्दुसंस्कृतीत मंगलाष्टकाचे महत्त्व	पं. मधुकरशास्त्री आर्वीकर, नागपुर	836
4.	श्रीलंका की 'रक्ष संस्कृति' के बदलते	श्री धर्मपाल, जम्मूतवी	837
5.	कम्बुज में भारतीय संस्कृति की अवस्थिति.....	श्री राजेश शर्मा, जम्मू	838
6.	हाई लाईड में भारतीय संस्कृति की चमत्कृति.....	श्री संजीव कुमार पाठक, जम्मू	839
7.	भारतीय संस्कृति से ओतप्रोत है सुवर्णभूमि	श्री जियालाल, जम्मू	840
8.	चम्पा का सामाजिक जीवन एवं भारतीयता	श्री विजेन्द्र कुमार शास्त्री, जम्मू	840
9.	अवेस्ता-गत राम और ऋति यश्त का	डॉ. (श्रीमती) अर्चना सिंह, इलाहाबाद	841
10.	प्राकृत और आर्य-द्रविड़ भाषाओं का मूर्द्धन्य-पक्ष	डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह, सासाराम	842
11.	निरुक्त के कुछ अप्रयुक्त पाण्डुलिपि-ग्रन्थ	श्री शीतांशु रथ, उज्जैन	843
12.	हस्तलेखों की सुरक्षा के विविध आयाम	डॉ. (श्रीमती) बीना मिश्र, इलाहाबाद	844
13.	सिंघलीय आचार्यों का काव्यशास्त्रीय योगदान	डॉ. सोम प्रकाश पाण्डेय, प्रतापगढ़	844
14.	कम्बोडिया पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव	डॉ. दुर्गाप्रसाद मिश्र, मेरठ	845
15.	दक्षिण-पूर्व एशिया में बौद्ध-धर्म का प्रचार-प्रसार	डॉ. सन्तकुमार मिश्र, मेरठ	846
16.	जावा के संस्कृत-अभिलेखों में प्रतिबिम्बित.....	डॉ. विजेन्द्र कुमार तोमर, मेरठ	847
17.	चम्पा की संस्कृति का प्रतिष्ठापक है भारत	सुजाता मंगोत्रा, जम्मू	848
18.	एशिया में पल्लवित भारतीय सभ्यता और	श्री अमन कुमार शर्मा, जम्मू	848
19.	Hindi Spoken in Oriya Tongue	Devaraj Panda	849
20.	Ancient India's Foreign Trade with.....	Dr. Ratan Lal Basu, Kolkata	850
21.	The Development of ' ' in Indo.....	Dr. Sharda ChaTurvedi, Varanasi	850
22.	Influence of Upanishads in Arabic	Dr. L. Sulochana Devi, Kerala	851
23.	The Text of Vasundharavratotpatty.....	Prof. Dr. Ratna Basu, Kolkata	852
24.	Digital Archiving of Manuscripts	Sri R. Raman Nair, Trivandrum	852
25.	Indian Indentured Female Migration.....	Sri Satya Srivastava, Lucknow	853

SECTION - 17

MSS MANUSCRIPTOLOGY 855-868

1.	शाब्दिकाभरणम् एकस्य हस्तलेखस्य परिचयः	श्रीदेवानन्दशुक्लः, नयी दिल्ली	857
2.	मातृकापरिचयनिर्णये ग्रन्थनामनिरूपणे च	श्रावणी चक्रवर्ती, कोलकाता	857
3.	प्राचीन दुर्लभ पाण्डुलिपि– एक अध्ययन	पुरोहित प्रफुल्ल एम., बड़ोदरा	858
4.	अप्रकाशित पाण्डुलिपि 'सुसढकहाः' एक परिचय		858

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

5.	प्राचीन अभिलेखों में इतिहास-बोध	श्री सत्यप्रकाश श्रीवास्तव, इलाहाबाद	859
6.	The Problems of Editing 'Codex.....	Dr. P. Visalakshy, Kerala	860
7.	Mālāyalam Manuscripts of North India	Dr. T.N. Satheesan, Aligarh	860
8.	Role of the Asiatic Society in the	Dr. Jagatpati Sarkar, Kolkata	861
9.	A Note on the Manuscripts on	Gargi Bhttacharya, West Bengal	862
10.	The Need of Using Standard	Prof. B.B. Chaubey	862
11.	Problems of Surveying Catalogued.....	Dr. Ratna Basu	863
12.	A Survey of the Manuscripts in	Sumita Chatterjee, Kolkata	863
13.	Ayurvedic Manuscripts in Orissa	Dr. G.C. Nanda, Patna, Bihar	864
14.	Śucindrasthalamāhātmya A Text	Dr. Anand Dilip Raj., Kerala	865
15.	Modern Trends of Preserving	Dr. Hirak Kanti Chakraborty, Varanasi	865
16.	Development of Manuscripts in.....	Dr. Balaram Mondal, Kolkata	866
17.	Surveying Bengali Manuscripts	Anup Kumar Santra, Kolkata	866
18.	Handling and Tackling the	Jyotee Mitra, Kolkata	867
19.	Technicalities of Assisting the	Niladri Mitra, Kolkata	867
20.	Adhyātmavidyopadeśa An	Atreyee Bagchi Basu, Kolkata	868

SECTION - 18

EP EPICS & PURANAS 869-941

1.	आदिपुराणस्य समीक्षणम्	डॉ॰ रुरुकुमारमहापात्रः, रामनगरम्, वाराणसी	871
2.	अध्यात्मरामायणे नवधा भक्तिः	पं॰ सीतारामदासशास्त्री, उडीसा	871
3.	गारुडपुनर्जन्मसिद्धान्तः	डॉ॰ सुधाकराचार्यः, मेरठनगरम्	872
4.	गरुडपुराणे पुनर्जन्मनः पञ्चहेतवः	सुश्री अंजूरानी, मेरठनगरम्	873
5.	शान्तो भक्तिश्च : विवेचनम्	प्रो. गोपालकृष्णदासः, भुवनेश्वरम्	874
6.	श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्रे प्रभुः काशीविश्वनाथः	डॉ. श्रीनिवास आचार्यः, पुरी	875
7.	पुराणोक्तदीर्घायुष्कतायां वेदसाक्ष्यम्	डॉ. आशुतोषमिश्रः, वाराणसी	875
8.	वैद्यनाथज्योतिर्लिङ्गस्य प्रामाणिकता	प्रो. राधारमणठाकुरः, देवघर	876
9.	पुराणेषु देवीतत्त्वम्	डॉ. काह्नुचरणपण्डा, ओडिशा	876
10.	वाल्मीकीयरामायणे नास्तिकदर्शनानां सन्दर्भाः	डॉ. रामपालशुक्लः, बड़ोदरा	877
11.	महाभारतकथाविस्तारे देवव्रताय शान्तनोः	श्रीमती प्रणतिमिश्रा, शान्तिनिकेतनम्	877
12.	तीर्थाटनमस्य धार्मिकं नैतिकं च मूल्यम्	श्रीव्रजकिशोर स्वाईं, पुरी	878
13.	श्रीमद्भगवद्गीताया योगचिन्तनम्	डॉ. धनञ्जयवासुदेवद्विवेदी, राँची (झारखण्ड)	878
14.	श्रीजगन्नाथस्य यात्रातत्त्वानां धर्मशास्त्ररीत्या समीक्षा	डॉ. खगेश्वरमिश्रः, पुरी	879
15.	श्रीमद्भागवते गोपीगीतस्य काव्यसौष्ठवम्	डॉ. अक्षयकुमारमिश्रः, जगाधरी, हरियाणा	879
16.	पुराणसाहित्ये विष्णुमाहात्म्यम्	डॉ. रवीन्द्रनाथदेवशर्मा, गोलाघाटः, असमः	880
17.	निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन	डॉ. रामाधारद्विवेदी, रीवाँ, मध्यप्रदेशः	880

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

18.	योगेश्वरश्रीकृष्णस्य तिथिक्रमः	डॉ. उमापाण्डेयः, लखनऊ	881
19.	कलौ गतिस्तु श्रीहरिनामसङ्कीर्तनमेव	श्री नी. पञ्चापगेशभागवतः, चेन्नई	882
20.	श्रीमद्भागवते दूतकर्मविमर्शः	श्रीश्यामवापटः, वाराणसी	882
21.	पराशरगीतायां वर्णाश्रमधर्मस्य महत्त्वम्	डॉ. कन्हैयालालः पाराशरः, होशियारपुरम्	883
22.	श्रीमद्भागवतमहापुराणे पर्यावरणम्	डॉ. मखलेशकुमारः, सीतापुरम्	883
23.	पद्मपुराणान्तर्गतपातालखण्डे शैवतत्त्वम्	श्रीरामगुलाममिश्रः, पटना	884
24.	तीर्थाटनेन पापक्षयत्व	डॉ. अतुलकुमारनन्दः, पुरी	884
25.	वाल्मीकिरामायणे वैदिकप्रभावः	डॉ. मिथिलाप्रसादत्रिपाठी, इन्दौर	885
26.	महाभारते अङ्गी रसः ध्वन्यालोकदिशा	डॉ. पि. इन्दिरा	885
27.	महाभारत में सृष्टि-प्रक्रिया	डॉ॰ धर्मेन्द्र शर्मा 'पुन्छी'	886
28.	मत्स्यपुराण में राजधर्म	डॉ॰ श्रद्धा शुक्ला, दिल्ली	887
29.	योगवासिष्ठ महारामायण : एक दृष्टि	डॉ॰ मञ्जुला सहदेव, पटियाला	888
30.	श्रीहरिप्रेष्ठ महाकाव्य एवं श्रीमद्भागवत पुराण	ताबिन्दा ज़ैदी, अलीगढ़	889
31.	भीष्म एक तटस्थ व्यक्ति के रूप में	डॉ. गीताञ्जलि गुप्ता, अलीगढ़	890
32.	कृष्णावतार एवं प्रयोजन	नीतू शर्मा, अलीगढ़	891
33.	महाभारत में भीष्म द्वारा प्रतिपादित .....'	डॉ. पूर्णिमा आचार्य, वाराणसी	891
34.	वाल्मीकि रामायण में त्रिवर्ग का स्वरूप	डॉ. उपेन्द्र देव पाण्डेय, मीरजापुर	892
35.	'शाण्डिल्य-भक्तिसूत्र' और 'नारदभक्तिसूत्र'.....	डॉ. क्षेमराज भाई आर. पटेल, गुजरात	893
36.	पुराणों में आगत विचित्र विद्याओं का समीक्षण	डॉ. मोहन मिश्र, भागलपुर	894
37.	वैदिक और वैदिकोत्तर पौराणिक वाङ्मय	डॉ. वत्सला	894
38.	ब्रह्मवैवर्तपुराण में व्यक्त न्याय, दण्ड एवं.....	डॉ. जे. के. गोदियाल, श्रीनगर	895
39.	भागवतपुराण में 'धर्म' का प्रत्यय	श्री आर. के. श्रीवास्तव, रायपुर	896
40.	ब्रह्मपुराण मे चन्द्रवंश वर्णन के पाठ की.....	डॉ. मनसुख के. मोलिया, गुजरात	897
41.	पुराणों में अवतारवाद	डॉ. शशि मिश्रा, वाराणसी	897
42.	थाई रामकथा में हनुमत्प्रेयसी बेञ्जकयी	डॉ. पूनम भारद्वाज, हरियाणा	898
43.	महाभारत में अपरिग्रह संस्तुति	डॉ. (श्रीमती) इन्दु शर्मा, कुरुक्षेत्र	898
44.	हिमाचल प्रदेश का लोकजीवन और	श्री बलवन्त कुमार शर्मा, शिमला	899
45.	स्वामी दयानन्द की दृष्टि में पुराण-साहित्य	डॉ. विजयलक्ष्मी, मुजफ्फरपुर	900
46.	'मानस' के 'सुन्दर-काण्ड' नामकरण की सङ्गति	आचार्या श्रीमती दुर्गादेवी पाण्डेय, टाँडा	900
47.	भागवतपुराणान्तर्गत 'ऐलगीत' : एक अध्ययन	प्रो. जगदीश शा. पुरोहित, जामनगर	901
48.	गरुड-पुराण में चित्रित समाज	डॉ. जगदीश प्रसाद शुक्ल, सीतापुर	902
49.	शिवपुराण में प्रणवतत्त्व	डॉ. ददन उपाध्याय, वाराणसी	902
50.	भागवतपुराण में वत्सल रस	डॉ. गिरीशचन्द्र पन्त, दिल्ली	903

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

51. महाभारत में जलतत्त्व	सुश्री सीमा सिंह	903
52. श्रीमद्भागवत में बाल-वर्णन	डॉ. आशारानी पाण्डेय, उन्नाव	904
53. श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्णविषयक	प्रो. राजेशलाल मेहरा, इन्दौर	905
54. पुत्रेषणा : ब्रह्मपुराणीय विवेचना	डॉ. शशिभूषण प्रसाद, दरभंगा	906
55. महाभारत में दुर्योधन	प्रियंका सिंह, उदयपुर	906
56. मत्स्यपुराण में राजनीति	कु. राजकुमारी, कानपुर	907
57. वाल्मीकीय रामायण में भावपरक बिम्ब	डॉ. गीता अग्रवाल, पूर्णियाँ	908
58. नरसिंहपुराण में नारीस्वरूप : एक समीक्षा	सुश्री सरस्वती कुमारी, दरभंगा, बिहार	908
59. मत्स्यपुराण के अनुसार प्रजापति दक्ष का.....	श्री शिशुपाल, चण्डीगढ़	909
60. विष्णुपुराण तथा विष्णुधर्मोत्तरपुराण में	डॉ. बालकृष्ण शर्मा, उज्जैन	909
61. महाभारतकालीन अनुशासन	डॉ. सूर्यमणि त्रिपाठी, रीवाँ	910
62. अध्यात्मरामायण के राम	म.म. डॉ. विद्याशङ्कर त्रिपाठी, महोबा	910
63. रामायण में पर्यावरण	डॉ. कनक लता दुबे, इलाहाबाद	911
64. नारदभक्तिसूत्र और उसकी प्रासङ्गिकता	डॉ. नन्द किशोर ठाकुर, दरभंगा	912
65. महाभारत के वनपर्व में वर्णित आख्यानों.....	डॉ. कु. मञ्जुल माथुर	913
66. भारतीय भक्ति-आन्दोलन और श्रीजगन्नाथ	डॉ. रवीन्द्रनाथ, ओडिशा	914
67. अप्सरा	डॉ. रेखा चतुर्वेदी, गोरखपुर	914
68. बृहद्धर्मपुराण के पूर्वखण्ड में वर्णित कालतीर्थ	डॉ. श्रीमती शोभा मिश्रा, कानपुर,	915
69. रामायणकालीन राजतन्त्र	डॉ. विभा जौहरी, उन्नाव	916
70. महाभारत में पर्यावरण संरक्षक भौतिक तत्त्व	डॉ. देवेन्द्र पटेल, गोरखपुर	917
71. हरिवंश पुराण में वसुदेव-सम्बन्धी कथायें	सुश्री प्रीति शर्मा, अलीगढ़	917
72. पुराणों में वर्णव्यवस्था का स्वरूप	डॉ. कु. अञ्जना सिन्हा, लखनऊ	918
73. प्रासङ्गिकता पुराणों के वास्तु-निर्देशों की	श्री योगेन्द्र पाण्डेय	919
74. पुराण साहित्य में अदिति आख्यान	डॉ. ज्ञान प्रकाश शास्त्री, हरिद्वार	920
75. वैष्णव-पुराणो के स्तोत्र और उत्तरकालीन	श्री रवीन्द्रकुमार पी.पटेल, रतनपुर, गुजरात	920
76. गीता में काम की अवधारणा	डॉ. श्रीमती लक्ष्मी मिश्रा, गोरखपुर	921
77. Purusottama : As a Tirtha	Jagabandhu Padhi, Orissa	922
78. Concept of God in Bhāgavata Purāṇa	Prof. Pushpendra Kumar, Delhi	922
79. Sita The Top Epical Tragic Flower	Dr. Hemlata Bittharia, Gwalior	923
80. Ecology in Ancient Hindu Scripture	Dr. Sankarsan Dash, Orissa	923
81. Environmental Awarness as Evinced.....	Dr. Sarat Chandra Parida, Orissa	923
82. The Karma-Siddhānta of the	Satagobind Mishra, Orissa	924
83. The Relevancy of Rāmāvatāra in	Prof. L. Gogoi-Chutia, Gauhati	924
84. Personality of Sitā : A Comparision.....	Dr. Ambika, K.G., Kerala	925

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

85.	Mother Goddess in Ancient India	Mrs. Dipika Devi, Assam	925
86.	A Comparative Study of Pracheena.....	Prof. Shrikant G. Joshi, Karnatak	926
87.	Andal's Krishna Bhakti in	Smt. S. Kumuda Varadarajan, Varanasi	926
88.	The Utathya-Gītā of the	S. Jena, Bhubaneswar	927
89.	Altruism in Valmīki's Concept	Dr. N.K. Sundareswaran, Kerala	927
90.	Evolution and Composition of	Mrs. Manjushree Tripathy, Cuttack	928
91.	Ecology in Ancient Hindu Scriputre	Dr. Sankarsan Dash, Orissa	928
92.	Yaksha-Yudhisthira Samvāda	S.V.R. Murthy, Orissa	929
93.	Jagannātha in Purāṇas	Prof. Gangadhar Panda, Varanasi	929
94.	Environmental Consciousness in.....	Amarendra Biswal, Kurukshetra	930
95.	Transformation Technolgoy as	Prof. Chandra, Chennai	930
96.	Mass Communication in Epics	Abhijit Sukul	931
97.	Vibhudavarya's Subhadrāharana	Prof. D. Akamanchi, Bijapur	931
98.	Goddess as Prakriti, Māyā and	Sushmeta chatterjee	932
99.	Vāmana-Trivikrama Sculptures	Dr. Preeta Nayar, Kerala	933
100.	Nature of Conflict in Human Life.....	Dr. Shahewar Syed & Dr. Apara Tiwari	933
101.	Mis-Interpretation of Mahābhārata.....	Dr. K.K. Vijayan, Kerala	934
102.	Different Aspect of Social Life	Dr. Pranāti Sharma Goswami	935
103.	Rukmini Harana : A Unique	Dr. Manju Goswami, Assam	935
104.	Prose Rendering of Rāmāyaṇa.....	Dr. (Ms.) Rupasree Goswami, Assam	936
105.	The Spiritual and Philosophical	Dr. J.K. Mahanta	936
106.	Manusmruti, is More Scientific	S.K. Dash, Brahmpur S.N. Padhy, Orissa	937
107.	Human Values in Vālmīki Rāmāyaṇa	Prof. D. Narasimha Reddy, Tirupati	938
108.	Rāmāyāṇa Episode as Reflected in	Dr. Anasuya Bhowmik	938
109.	Brahmā in the Purāṇas	Farah Afroz, Ghaziabad	939
110.	Polyandry in the Epic Society	Ratna Dutta, West Bengal	939
111.	On the Austerities of an	Prof. Jyotish Nath, Tirupati	940
112.	Concept of Creation in	BAni Mukherjee, Jadavpur	940
113.	Comparative Study of Vālmikiya	Rasiklal A. Parikh, Haripura, Surat	940
114.	The Concept of Property Rights.....	Smt. Dr. K.S. Raman, Bangalore	941

SECTION - 19

SC SANSKRIT & COMPUTERS 943-947

1.	कम्प्यूटर और संस्कृत कार्यक्रम	डॉ. सुधा वाजपेयी	945
2.	Information Technology in Sanskrit	Dr. Sankarsan Dash,	945
3.	How I use computers for teaching	Dr. Sarasvati Mohan	946
4.	Integration of Sanskrit and Computer	Miss. Pramila Bahadur, Lucknow	946
5.	Computer and Ancient Scriptures	Narottam Mishra, Bihar	947

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

SECTION - 20

IA & P INDIAN AESTHETICS & POETICS 949-1006

1.	काव्यलक्षणविमर्शः	श्रीमणिदीपदासः	951
2.	साम्प्रतिकसमाजं प्रति गीतिकाव्यस्य उपादेयता	श्रीशरच्चन्द्रमिश्रः, उड़िसा	951
3.	पण्डितराजस्य वक्ष्यमाणत्वम्	गोपराजु रामा, इलाहाबाद	952
4.	शान्तो भक्तिश्च : एकं विवेचनम्	प्रो. गोपालकृष्णदासः, भुवनेश्वरः	952
5.	कवेः सृष्टौ कवेर्दृष्टिः	डॉ. कृपारामत्रिपाठी 'अभिराम'	953
6.	काव्यरसविशेषयोजनादर्शनम्	डॉ. बटोही झाः, लखनऊ	953
7.	रसे सारश्चमत्कारः	डॉ. प्रभुनाथद्विवेदी, वाराणसी	954
8.	भ्रमरगीतस्यालङ्कारिकमध्ययनम्	डॉ. निरञ्जनमिश्रः, हरिद्वारम्	955
9.	मल्लारिमाहात्म्ये काव्यसौन्दर्यम्	श्रीचन्द्रशेखरजोशी, कर्नाटक	955
10.	रूपकषट्के कौशिकी	डॉ. रामजियावनपाण्डेयः, अम्बेडकरनगरम्	956
11.	मालविकाग्निमित्रनाटके रङ्गशिल्पः	डॉ. सुधा वाजपेयी	956
12.	शिशुयुवदुर्दैवविलसितस्यारम्भिककलापकस्य.....	डॉ. अरुणकुमारमण्डलः, शान्तिनिकेतनम्	957
13.	बुद्धचरिते उपमालङ्कारविमर्शः	सुश्री मृदुलाराय, शान्तिनिकेतनम्	957
14.	'कुपितो मकरध्वजः' एकं विवेचनम्	डॉ. मीरा द्विवेदी	958
15.	शब्दश्लेषविमर्शः	डॉ. वसन्तकुमारमिश्रः, ओडिशा	959
16.	ध्वनिरसयोः काव्यात्मत्वविमर्शः	डॉ. सुरेन्द्रनाथसारंगी, ओडिसा	959
17.	शब्दालङ्काराणां पौर्वापर्यविमर्शः	डॉ. कामेश्वरशुक्लः, गुवाहाटी	960
18.	पारम्परिकसाहित्यशास्त्रानुसारं श्रीमन्तशङ्कर.....	डॉ. अशोककुमारगोस्वामी, गुवाहाटी	961
19.	व्यभिचारिभावानां रसत्वम्	डॉ. सत्यनारायण-आचार्यः, पुरी	961
20.	साहित्यशास्त्रे रसविमर्शः	श्री गिरजानन्दचौबे, वाराणसी	961
21.	शान्तरसस्यावस्थितिः	श्रीसन्तोषकुमारपाण्डेयः, राँची	962
22.	भारतीय काव्यों में बौद्धिक रस : एक.....	श्री श्यामा सिंह	963
23.	रस-भाव का समीक्षात्मक अध्ययन	श्री वसन्त नाथ झा, बिहार	964
24.	काव्यशास्त्रीय आचार्यों के सन्दर्भ में	प्रो. गिरा.टी. अरालीवाला, अहमदाबाद	964
25.	ध्वन्यालोक में धार्मिक और दार्शनिक चिन्तन	श्री राघव कुमार झा, वाराणसी	965
26.	क्षेमेन्द्र के काव्यों में प्रतिपादित सामाजिक व्यङ्ग्य	डॉ. तरुण कुमार शर्मा, इलाहाबाद	966
27.	करुण रस एक शास्त्रीय विवेचन	श्रीमती उषा टोप्पो, राँची	967
28.	जैनाचार्य विजयवर्णी कृत शृङ्गारार्णवचन्द्रिका	डॉ. फराह जफर, महोबा	968
29.	संस्कृत साहित्य में काव्यशास्त्रीय सन्दर्भ	डॉ. (श्रीमती) प्रीति सिन्हा, लखनऊ	968
30.	राजानक रुय्यककृत सहृदयलीला : एक समीक्षण	डॉ. ताराकान्त शुक्ल, हजारीबाग	970
31.	भरत तथा स्तानिस्लाव्स्की का अभिनय.....	डॉ. हर्ष कुमार महता, पंजाब	970

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

32.	सौन्दर्य चेतना कवि अज्ञेय के सन्दर्भ में	डॉ. कौशल किशोर, बलिया	971
33.	'कालिदास के काव्य का शृङ्गार : चौसठ.....	डॉ. (श्रीमती) वीना विश्नोई शर्मा, हरिद्वार	972
34.	देहवादी आचार्यों की दृष्टि में सौन्दर्य-.....	श्री राजबली	972
35.	'मुख्यार्थहतिर्दोषः' पर काव्यप्रदीपकार की दृष्टि	डॉ. शालिनी मिश्रा, लखनऊ	973
36.	पूर्वराग शृङ्गार औचित्य एवं उपादेयता	डॉ. ए.के. दीक्षित, उन्नाव	973
37.	'वामनचरितम्' में अलङ्कार-योजना	डॉ. सुश्री नीरज शर्मा, जालन्धर	974
38.	भामह का काव्यलक्षण	डॉ. माधव राज द्विवेदी, बलरामपुर	975
39.	क्षेमेन्द्रपूर्ववर्ती आचार्यों की औचित्यसिद्धान्त.....	श्री वेद प्रकाश डिंडोरिया	976
40.	साहित्य में कला का बोध	श्री शङ्कर सिद्धार्थ, मुजफ्फरपुर	976
41.	साधारणीकरण का असाधारणत्व	प्रो. नयना कलपेश नायक, दक्षिण गुजरात	977
42.	साहित्यशास्त्रीय सम्प्रदायों के मूलभूत तत्त्व	डॉ. प्रेम कुमारी सिंह, इलाहाबाद	978
43.	आचार्य कुन्तक का रसविषयक चिन्तन	डॉ. नीना भावनगरी, सूरत	978
44.	जावा के पारम्परिक नृत्यों में भारतीय.....	डॉ. अर्चना अग्रवाल, वाराणसी	979
45.	काव्यसौन्दर्याधायक परिसंख्या-अलङ्कार.....	डॉ. (श्रीमती) नीलम श्रीवास्तव, कानपुर	980
46.	कृष्णावधूत पण्डित-विरचित 'अलङ्कारसूत्राणि'.....	डॉ. हंसा हिण्डोचा, राजकोट	981
47.	प्रेम-सौन्दर्य	श्री डी.एच.विभाजन, कच्छ, गुजरात	981
48.	बीभत्सप्रभृति रसों का औचित्य	डॉ. रामनाथ सिंह, समस्तीपुर, बिहार	982
49.	विक्रमाङ्कदेवचरितम्	कुमारी ज्योति	982
50.	भारतीय सौन्दर्यशास्त्र एवं कवित्व	डॉ. प्रीति चतुर्वेदी, हरियाणा	983
51.	व्याकरणविषयक कविसमय-सिद्धान्त	डॉ. जनार्दन प्रसाद पाण्डेय, प्रतापगढ़	984
52.	भारतीय काव्यशास्त्र में दर्शनशास्त्र की.....	कुमारी अमृता अस्थाना	985
53.	आहार्य अभिनय कल और आज	डॉ. नन्दा पुरी, रामटेक	986
54.	अभिनवगुप्त का रस विवेचन : प्रत्यभिज्ञा.....	डॉ. श्रद्धा सिंह, भुसावर	986
55.	सौन्दर्यशास्त्र सन्दर्भ में स्पन्द की धारणा	डॉ. मीग रस्तोगी, लखनऊ	987
56.	आचार्य कुन्तक की काव्यमार्ग योजना	डॉ.जय सिंह, आजमगढ़	987
57.	कला-काव्य एवं निराला	डॉ. अन्नपूर्णा शुक्ला, वनस्थली	988
58.	चित्तद्रुति और भक्ति	डॉ. अजय कुमार झा, दिल्ली	989
59.	काव्यपाक एवं प्रयोग	श्री शुकदेव शर्मा, अमृतसर	990
60.	काव्यसूत्रसंहिता समन्वयमहर्षी श्री गुलाबराव.....	सुश्री कविता होले, रामटेक	991
61.	रूपक में भारती वृत्ति के अङ्ग आमुख	डॉ. योगिनी के. पंण्या, पञ्चमहल	991
62.	रसाद्यौचित्य का चमत्कार के साथ सम्बन्ध	प्रो. रामप्रताप, जम्मू-तवी	992
63.	आचार्य गोविन्दचन्द्र पाण्डेय का सौन्दर्यदर्शन	डॉ. शिवानी तामकार, सागर	992
64.	शान्तरस का स्थायिभाव	श्री श्यामानन्द मिश्र, अलीगढ़	993

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

65.	भारतीय साहित्यशास्त्र के लक्षणाविचार	आचार्य रामानन्द दुबे, वाराणसी	994
66.	नायक-नायिका भेद एवं रसाभास	डॉ. केदारनाथ शर्मा, जम्मू	995
67.	Aucitya in Uttararāmacharita	Grecjith Y. Unnithan, Kerala	996
68.	A thing of beauty is joy for ever.	Dr. Vidya Kumar, Varanasi	997
69.	Utkalikā A Lyrical Poetry in	Dr. Pramod Bharatiya	997
70.	New Theories in the Field of	Dr. Sadashiv Kumar Dwivedi, Varanasi	998
71.	Upamā Doṣas According to Vāmana	Dr. M.N. Joshi, Dharwad	998
72.	Vāmana's Concept of Vakrokti Alaṅkāra	Dr. Deb Kumar Das, Kolkata	999
73.	Ancillaries of Prahasana by	Dr. S. K. Siddhānta, West Bengal	999
74.	Contribution of Rājacudāmani	Dr. Anand Kumar Srivastava, Kenya	1000
75.	Aesthetic Elements in Sankaradeva'.....	Sri Chandicharan Goswami, Assam	1000
76.	The Sources of Dhvani	Dr. C.Upendra Rao, Puri, Orissa	1001
77.	Poetics as Depicted in Sri	Dr. Amalendu Chakrabarty, Assam	1002
78.	The Aesthetic Appeal of Advaita	Dr. Ramavarapu Saratbabu, Hyderabad	1002
79.	Concept of Dhvani in Indian Poetics	Sandhya B. Nair, Kerala	1003
80.	Stylistic Method of Mentioning	Dipankar Mukhopadhyay, Kolkata	1003
81.	Pratibhāsa : The Poetic Perception	Smt. Sipra Mallick, Orissa	1004
82.	Jagannāth in Skanda Purāna	Dr. Laxmidhar Malik, Delhi	1004
83.	Sahṛdaya	Debabrata Panda, Pondicherry	1005
84.	The Poet, Critic Sahṛdaya Their.....	S. Bandyopaddyay, West Bengal	1005
85.	Dimensions of Abhinavagupta's.....	Dr. (Mrs.) A.R. Tripathi, Shillong	1006

SUPPLEMENTARY LIST OF SUMMARIES 1007

1.	CS	महाकविकालिदासस्य कृतिषु राष्ट्रचिन्तनम्	1009
2.	IL	कारकदर्शनम्, क्रियां-निर्वर्तकम्	1009
3.	IL	वाक्यसंघटनक्रमे कारकाणां महत्त्वं वैशिष्ट्यं तत्स्वरूपानुशीलनञ्च	1010
4.	PR	विशिष्टद्वयाछत्तित्वविचारः	1011
5.	PR	भावातीतं योगरहस्यम्	1012
6.	MS	श्रीमातुरानन्दमय्याः सुरभारत्यामवदानम्	1012
7.	IA & P	काव्यात्मतत्त्वम्	1013
8.	IA & P	अलङ्कारकौस्तुभोक्तोपमालक्षणविमर्शः	1013
9.	V	श्रौतयागों में निहित् वैज्ञानिक रहस्य, डॉ. प्रयागनारायण मिश्र, लखनऊ	1014
10.	CS	भारतीय दाम्पत्य जीवन पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव	1014
11.	CS	अभिज्ञानशाकुन्तलम् में चौंसठ कलाएँ	1015
12.	IS	मुकुन्द शब्दकोष एक समीक्षा	1016
13.	PB	जातकमालाकार आर्यशूर का काल-निर्धारण	1017

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

14.	H	कौटलीय अर्थशास्त्र : साम्प्रतिक परिप्रेक्ष्य में समता एवं विषमता	1017
15.	H	बाणकालिक भारत में मन्त्रिपरिषद्	1018
16.	H	बाण के समय का मन्त्रिपरिषद् : एक अनुशीलन	1019
17.	H	आधुनिक न्याय-व्यवस्था में अर्थशास्त्र की प्रासङ्गिकता	1019
18.	IL	रभसनन्दी के कारकों का विवेचन	1020
19.	IL	लौकिक संस्कृत साहित्य में संहार पद : अर्थ-विमर्श	1021
20.	MS	वीरभा का सामाजिक परिवेश	1021
21.	MS	'मञ्जुनाथीयम् महाकाव्य' काव्यगत वैशिष्ट्य	1022
22.	EP	वायुपुराण में निर्वचन	1023
23.	EP	रामायण में मन्थरा का योगदान	1023
24.	EP	प्रासङ्गिता पुराणों के वास्तु-निर्देशों की	1024
25.	IA&P	कवि अलङ्कार प्रणीत 'देवप्रशस्तिकाव्यम्' का कला पक्ष	1024
26.	IA&P	अभिनवगुप्तकृत लोचन-टीका की समीक्षा	1025
27.	IA&P	'शृङ्गाररसमण्डनम्' और पुष्टि-भक्ति	1026
28.	CS	The concept of विषाद as treated in the Uttararāmācaritam : A Psychological study	1026
29.	CS	The Purpose of Applying Varied Metre at the end of the Sarga of Sanskrit Mahakavyas	1027
30.	H	Science and Political Institutions in Ancient India	1027
31.	H	The Development of Sanskrit Literature in Medieval India.	1028
32	IL	Samāsānta as an atyantasvārthika pratyaya Interesting relations of phonology and morphology	1028
33.	PR	Cultural ethos as in Puruṣa Parikṣā	1029
34.	PR	The Importance of Vyomavyāpimantra	1029
35.	PR	Raghudeva in Nyāya: Few words.	1030
36.	PR	The Philosophy of Visistādvaita	1030
37.	IA&P	'Alamkāratilaka' of Bhanudatta : A Study	1031
38.	IA&P	Aesthetic Reflection of Bāṇa's Harṣacaritam	1032
39.	MS	आधुनिक संस्कृत साहित्य में वर्तमान राजनैतिक सन्दर्भ	1032

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Section - 1

VEDIC STUDIES

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

V-1

वेदेषु राष्ट्रचिन्तनम्

डॉ० रवीन्द्रनाथभट्टाचार्यः, कोलकाता

अदूष्यवैदुष्यविभूष्यमाणतोष्टूयमानां प्रणिपत्य वाणीम्।
वेदोक्तराष्ट्रस्थिततत्त्वचिन्तामाश्रित्य चाट्टं किमपि ब्रवीमि॥

वैदिकवाङ्मये राष्ट्रियतायाः प्रश्नोऽनेकेष्वर्थेषु राष्ट्रियतायाः वर्तमानसम्प्रत्ययेन संयुक्तो भवति। राष्ट्रियतायाः प्रश्नो वर्तमानसमयेऽकस्माद् महत्त्वपूर्णः कथं सम्पद्यमानो वर्तते? किमत्र प्रश्नपृष्ठे वर्तमानसन्दर्भेषु राष्ट्रियताया उपरि कञ्चनाघातोऽथवा राष्ट्रियताज्ञाने मतभेदः, अथवा विभिन्नाञ्चलेषु सङ्कुचितराष्ट्रियतायाः प्रवृत्तिः प्रश्नहेतुतया प्रावर्तत? प्रवर्तमानप्रकरणेषु जनजातिभाषा, भौगोलिकोपादानधर्मनिष्ठा, सामान्यराजनैतिकछद्म-इत्यादिविषयानाधारीकृत्य राष्ट्रियता भाषिता अक्रियत। अनया दृष्ट्या हककोहनमहोदयः स्वग्रन्थेषु आइडिया ऑफ नेशनलिज्म (Idea of Nationalism)। नामकेऽखिलद् यद् एकस्याः राष्ट्रियतायाः जातितत्त्वमाधृत्य निर्धारणं निम्नसभ्यतां प्रति गमनं भवति। आधुनिकप्रपञ्चे राष्ट्रियतायाः पश्चात् स्थिता शक्तिः सम्बन्धिनी नासीत्, परन्तु विचारशक्तिरासीत्। हसकोहनमहोदयोऽग्रे कथयति यद् राष्ट्रियश्रेष्ठता कल्पितकथा स्यान्नाम, परन्तु सा परस्परं पृथग्भूतान् जनान् सङ्घटितान् करोति। सा सर्वेषु जनेषु एकतायाः सङ्गठनस्य वा भावनामभिव्यञ्जयति।

राष्ट्रियताया अवधारणा प्राचीनतमास्ति। वैदिकवाङ्मयं विश्वमात्रस्य प्राचीनतमं साहित्यमस्ति, तत्र वेदे राष्ट्रपरिकल्पनायाः राष्ट्ररक्षायाः राष्ट्राभ्युदयोपायस्य राष्ट्रियसंवर्धनादिसम्बन्धितविभिन्नसन्दर्भाणाञ्च विस्तृता चर्चा मिलति तामाश्रित्याभिलेखं प्रस्तोतास्मीति।

❖

V-2

ऋग्वेदे सृष्टितत्त्वविमर्शः

डॉ० राममूर्तिचतुर्वेदी, वाराणसी

'सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति' इति मनुस्मृतिवचनानुसारं सर्वमिदं पुरोदृश्यमानं स्थावरजङ्गमात्मकं जगद् यतो जायते तत्सर्वं कार्यकारणजातं वेदाद् ज्ञातुं शक्यत इति तात्पर्यार्थः। यतो हि वेदो नाम ज्ञानं, तच्च निर्विशेषं नित्यं ब्रह्मज्योती रूपम्, अतः सर्वविधसृष्टेः पूर्वं ज्ञानस्य विद्यमानत्वात् परमेश्वरनिःश्वासरूपं परिकल्प्यते, तद्विना परमेश्वरस्याप्यासिद्धेः।

'शास्त्रयोनित्त्वात्' इति वैयासिकसूत्रेणापि परमेश्वरास्तित्वे वेदादिशास्त्रमेव मुख्यं कारणं प्रतिपाद्यते, अत एव 'एकोऽहं बहु स्यामिति' श्रुत्या जगत् सिसृक्षुःपरमेश्वरः स्वात्मनो निर्विशेषात् सविशेषं ब्रह्माख्यं रूपं निर्माय,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्मै तदेव पूर्वतो विद्यमानं वेदाख्यं रूपं नित्यं ज्ञानं प्रहिणोति, तज्ज्ञानबलेनैव विधाता चित्रं विचित्रं बहुविधं जगत् स्रष्टुं प्रभवतीति श्रुतेस्तात्पर्यम्।

वेदस्यापौरुषेयनित्यशब्दराशित्वात् सृष्टितत्त्वविमर्शावसरे सर्वतः प्रथमं वेदशब्देभ्य एव सृष्टिः परिकल्प्यते, तद्यथा भुरिति व्याहरत् भुवमसृजदिति श्रुतेः। ततः परं परमेश्वरस्यापरपर्यायशब्देभ्य हिरण्यगर्भप्रजापतिविश्वकर्मपुरुषादिभ्यः सृष्टिर्जायत इति प्रतिपाद्यते।

क्वचित् 'यस्य ज्ञानमयं तपः', 'तपस्तप्त्वेदं सर्वमसृजत' 'अभीद्धात् तपसोऽध्यजायत' इत्यादिश्रुतिभिः तपसो विश्वोत्पत्तिः परिकल्प्यते। क्वचित् 'कालो जगत्सर्जकः' इत्यादिना कालरूपः परमात्मा एव जगत् कारणत्वेन स्तूयते। क्वचित् अब्द्य एव जगत्सृष्टिः प्रतिपाद्यते तथा आप एव स्रष्टुराद्या सृष्टिः परिकल्प्यते। एवमेव क्वचिद्वायुरप्याद्यं सृष्टितत्त्वं निरूप्यते, क्वचिच्च विराट्पुरुषात् सृष्टिर्निष्पद्यते, क्वचिच्चानिर्वचनीयतत्त्वतः सृष्टिर्जायत इति जगत्सर्जने नानाविधं तत्त्वं निमित्तोपादानकारणत्वेन वेदेषु निरूपितं विद्यते, तत्र प्राधान्येन ऋग्वेदे सृष्टिकारकतत्त्वानि तान्येवात्र लघुकलेवरात्मके शोधपत्रे संक्षेपतः निरूपयिष्यन्त इति दिक्।

❖

V-3

श्रीअरविन्ददृष्ट्या अग्नितत्त्वविमर्शः

जगमोहन आचार्यः, भुवनेश्वरम्

निघण्टुव्याख्याकारः यास्कः ब्राह्मणग्रन्थाधारेण अग्निपदस्य त्रिविधं प्रवृत्तिनिमित्तं प्रदर्शयति। अग्रणीर्भवति, अग्रं यज्ञेषु प्रणीयते, अङ्गः नयति सनममानः। स्थौलाष्ठीविर्नामनैरुक्तोऽक्षरसाम्येनास्य पदस्य निर्वक्तिं करोति। अक्नोपनो भवति इति स्थौलाष्ठीविः। न क्नोपयति न स्नेहयति। आचार्यशाकपूणिः धातुरूपेणास्यार्थं निष्पादयति। त्रिभ्यः आख्यातेभ्यः जायत इति शाकपूणिः। व्याकरणप्रक्रियोच्यते अगिधातोर्गत्यर्थक (भ्वादि 146) अङ्गेर्नलोपश्च (उणा. 4।4।90) इत्यौणादिकसूत्रेण निप्रत्ययः इदित्ववान्नुमागमेन प्राप्तस्य नकारस्य (पा. 7.1.58) लोपो भवति। अङ्गति स्वर्गं गच्छति हविर्नेतुमित्यग्निः। अव्याख्येया यतो ह्यसौ सर्वलोकेषु व्याप्तोऽस्तीति अलिखत् (बृ.दे. 8.96) अस्य जन्म आवासस्थलं शक्तिश्च नास्ति भिन्ना (बृ.दे. 1.90)। आचार्यसायणः अथर्ववेदसंहिताभाष्ये अग्निशब्दस्य व्याख्यां करोति यथा अङ्गति गच्छति सर्वजाठरवैद्युतादिरूपेण कृत्स्नं जगद्व्याप्नोतीति अग्निः। स्वामी दयानन्दः अग्निशब्दस्यार्थं प्रतिपादयति यथा अग्रणीः सर्वोत्तमः सर्वेषु यज्ञेषु पूर्वमीश्वरस्यैव प्रतिपादनात्तस्यात्र ग्रहणम्। दग्धादिति विशेषणपादभौतिकस्यापि च अङ्गति सर्वान् पदार्थान् दग्ध्वा देशान्तरे प्रापयति। वेदतत्त्वदर्शी श्री-अरविन्दः ऋचामाध्यात्मिके अर्थे शब्दमिमं ज्योतिर्मयभागवतसङ्कल्पशक्त्यर्थकं व्याचक्षाणः तादृशशक्तिमद्गतेर्वाचकाद् अङ्गतेरेवैतं निर्ब्रूते। एवं चाग्निशब्दः ज्योतिर्मयसङ्कल्पशक्तिं निखिलभुवनेषु समष्टौ व्यष्टौ च कार्यनिरतां भगवतः सङ्कल्पशक्तिमभिधत्ते। अग्निः विशुद्धशक्तिशालितेजोमयः। अग्निःयोऽग्रणीः सर्वप्रधानः शक्तिशाली च।

प्रबन्धेऽस्मिन् अग्नितत्त्वस्य कीदृशी व्यापकताऽस्ति तद्विषये विमर्शेन सहाध्यात्मिकस्वरूपं प्रति समर्थनं प्रदर्शयितुमिष्यते।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

V-4

अथर्ववेदेऽभिहित-वृष्टिस्वरूपविवेचनम्

डॉ० भारतभूषणमिश्रः, जम्मूस्थः

वेदः आध्यात्मिकानामेव तत्त्वानां न विवेचकः, अपि तु सांसारिकजीवनोपयोगिनां वस्तूनां साकल्येन विवेचनं करोति। अथर्ववेदे द्वितीयकाण्डात् प्रारभ्य नवमकाण्डपर्यन्तं वृष्टिसम्बद्धं विस्तृतविवरणं द्रष्टुं शक्यते। वृष्टेः उत्पत्तिस्थानसम्बन्धे अथर्ववेदे विवरणं लभ्यते यत् वृष्टिवाहिनीनां रश्मिरूपाप्सरसां निवासस्थानं समुद्रमन्तरिक्षं च भवति।

यतो हि तत एवैताः रश्मिरूपाप्सरसः आयान्ति यान्ति च। वर्षादिनिमित्तमेता अप्सरसो विश्वावसुनामकस्य गन्धर्वस्य—सूर्यस्याश्रयं गृह्णन्ति। अथर्ववेदे वर्णितं वृष्टिस्वरूपं तथैव वैज्ञानिकमस्ति यथा वैज्ञानिकाः स्वीकुर्वन्ति। यतो हि तत्र एतत् वर्णनं लभ्यते यत् सूर्यस्य किरणैः जलं अवशोषितं सत् पुनः मेघरूपेण वर्षति। तथैव एतस्य मतस्य पुष्टिः अथर्ववेदीयविवरणैः अस्माभिः लभ्यते। अत्रापि एतदपि वर्णनं लभ्यते यत् सूर्यस्य रश्मयः जलं शोषयित्वा अन्तरिक्षपर्यन्तं गच्छन्ति एवं पुनः तदेव वृष्टिद्वारा समुद्रं प्राप्नुवन्ति। अनेन प्रकारेण वृष्टेरुद्गमस्थानं समुद्रमन्तरिक्षं द्वयमपि स्वीकृतं भवति। यदा च वास्तविकवृष्टेरुद्गमस्थलमस्माभिः मेघः स्वीक्रियते।

एतज्ज्ञायते यत् वर्षादिनिमित्तम् अप्सरसः (सूर्यकिरणः) सूर्यमाश्रयन्ते, तदा वृष्टिकर्मणि सूर्यः वरुणमरुद्देवपत्नीनां सर्वासां सहयोगः अपेक्षितो भवेत्, तथा च अथर्ववेदीयविवरणेन स्पष्टं भवति, किन्तु अथर्ववेदे एव वृष्टेः स्वामी इन्द्रः स्वीकृतो वर्तते, एवं वृष्टिकर्मणः प्रमुखसम्पादकौ वायुसवितृदेवौ स्वीकृतौ भवतः, तदा वृष्टिर्वर्षणं तु इन्द्र-वायु-सवितृदेवतादीनामेव ज्ञातं भविष्यति, तदा पुनः पर्जन्यदेवता वरुणदेवतायाः वा का आवश्यकता? एतदुत्तरमथर्ववेदे नवमकाण्डे लभ्यते यथा वृष्टेर्नाम 'मधुकशा' इति लभ्यते। एवमेतस्याः उत्पत्तिः द्युलोक-पृथ्वी-अन्तरिक्ष-अग्नि-वायूनां सम्पर्केणैव भवति। वृष्ट्या मानवजीवनमुत्कर्षं प्राप्नोति; किन्तु अत्यधिकवृष्टिस्थाने ज्वरवर्धनस्यापि भयं भवति। अथर्ववेदे वृष्ट्यर्थं प्रार्थनायाः यज्ञायोजनविवरणेन एतदपि ध्वनितं भवति, यत् वृष्टिर्यज्ञान्तरमवश्यमेव भवति। वृष्टेः विस्तृतविवरणं शोधपत्रे सन्निहितमस्ति।

❖

V-5

विश्वशान्त्यै वेदानामुपादेयत्वम्

डॉ० महेन्द्रपाण्डेयः, वाराणसी

वेदोऽखिलो धर्ममूलमिति सिद्धान्तः। वेदो हि विश्वस्य ज्ञानश्रोत इति सर्वेषां विदुषां दृढः प्रत्ययः। अत एवोक्तं मनुना—'भूतं भवद् भविष्यं च सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति। (मनु. 12.97) यदा यदाऽपि राष्ट्राणां मध्ये महायुद्धमभूत्। तदा तदा तत्राज्ञानता एव मूलम्। तत्र वेदस्याध्यात्मज्ञानं विना भौतिकविज्ञानं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वसंरक्षणाय नालम्। अतः विश्वशान्तिस्थापनायै भौतिकविज्ञानेन सह अध्यात्मज्ञानमपि नितरामावश्यकमिति। भारतदेशोऽयं जगद्गुरुरूपोऽस्ति। अत एव भारतदेशं प्रति कथितम्। यथा—

अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने।
यतो हि कर्मभूरेषां ततोऽन्या भोगभूमयः॥
अत्र जन्मसहस्त्राणां सहस्त्रैरपि सोत्तमः।
कदाच्चिल्लभते जन्तुर्मनुष्यं पुण्यसञ्चयात्॥

राष्ट्रमुत्रेतुं कीदृशाः जनाः ऋतवः पर्जन्याः कामाः स्युरित्याकाक्षायां यथा राष्ट्रसूक्तंमन्त्रः निर्दिष्टः—

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चस्वी जायतामाराष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्। दोग्ध्री धेनुर्वोदानड्नाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा/जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम्। निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु। फलवत्यो न ओषधय पच्यन्ताम्। योगक्षेमो नः कल्पताम्।

एव विश्वकल्याणाय लोकोपकारकोऽयं मन्त्रः निर्दिष्टः—**द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः....शान्तिरोषधयः शान्तिः....सा मा शान्तिरेधि।**

अतः विश्वशान्तिस्थापनायै वेदविज्ञानेन य्वादिप्रकृतेर्ज्ञानं स्वाध्यायात्मज्ञानं, सुसमाजस्य ज्ञानं, वाग्जन्यज्ञानं दूषितपर्यावरणमपाकर्तुमुपायज्ञानमवश्यमेव भविष्यति।

❖

V-6

वेदेषु मानसिकचिकित्सा

डॉ॰ सोमदेवः शतांशः, हरिद्वार

वेदेषु विशेषतः अथर्ववेदे मानसिकचिकित्सा सविस्तरं प्रतिपादिता। अत्र मानसिकचिकित्सायाः स्वरूपम्, मानसिकचिकित्सायाः विविधरूपाणि च वर्णितानि, तद्यथा सङ्कल्पचिकित्सा, ध्यानचिकित्सा, आश्वासन चिकित्सा, आदेशचिकित्सा, अभिमर्शन-मार्जनचिकित्सा, मन्त्रचिकित्सा, प्रार्थनाचिकित्सा, कामक्रोध-मोह-शोक-ईष्यादिचिकित्सा। इदानीमाधुनिकवैज्ञानिका अपि स्वीकुर्वन्ति यत् तथ्यमस्माकमन्तर्मनः स्वीकरोति शरीरे तदनुरूपाः क्रियाः प्रतिक्रियाः वा घटन्ते। रोगोत्पत्तिः पूर्वमस्माकमनुचिताहारविहारेण मनोमयशरीरे सञ्जायते। अस्य प्रतिकारः मानसिकसद्विचारैः सङ्कल्पप्रार्थनादिभिः कर्तुं शक्यते। स्वस्थशब्दोऽपि योगदर्शनोक्तां स्वरूपावस्थितिमभिसङ्केतयति। पतञ्जलिमुनिरपि प्रणवजपफलं प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च इत्युक्त्वा तत्र व्याधिनिवृत्तिं प्रथममभिगणयति।

प्रार्थनासङ्कल्पाश्वासनादिभिः अनेकेऽसाध्यरोगाः दूरीकर्तुं शक्यन्त इत्यस्मित् शोधपत्रे प्रतिपादितम्।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

V-7

वैदिक-खगोलविद्यायाः वैज्ञानिकानुशीलम्

पराम्बा श्रीयोगमाया, भुवनेश्वर

जनसामान्ये एकं भ्रमात्मकमवधारणं वर्त्तते यदृग्वेदः केवलं धार्मिका प्रयोगानुबन्धी। केषाञ्चानां मतेन ऋचः केवलं देवानां स्तुतयः। परन्तु तासां सूक्ष्मानुसन्धानेन ताः आधुनिकविज्ञानस्य तथ्यवितरकाः प्रतीयन्ते; यद्यपि न प्रत्यक्षेणापि तु परोक्षेण।

ऋग्वैदिके काले समयस्य परिज्ञानाय तथा वृष्टेः समुचितकालनिर्णयार्थं नक्षत्रनिरीक्षणं वैदिकार्याणां महाकाशविद्यायाः प्रकृष्टं परिचयं ददाति। आधुनिकविज्ञानदृष्ट्या यद्यपि ज्योतिर्विज्ञानं, खगोलविज्ञानं महाकाशविज्ञानं तथा फलितज्योतिषमेतानि सर्वाणि स्वकीयविषयवस्तुदृष्ट्या भिन्नानि तथापि प्राचीनभारतीयशास्त्रदृष्ट्या सर्वाण्येतानि खगोलविज्ञानान्तर्गतानि।

ग्रहाणां विषये यदा जिज्ञासा भवति तदानीं तेषां बहुविधत्वं विस्मयं सृजति। पृथिवीवदन्यग्रहस्यान्वेषणे आधुनिकमानवं इदानीं कृतभूरिपरिश्रमः परिलक्ष्यते। परन्तु कुत आगताः एते ग्रहास्तथा कदा', तेषां परिचालकः कः? एतेषां सर्वेषामुत्पत्तिप्रक्रियायाः किं स्वरूपम्? एते एव प्रश्नाः सर्वपुरातनं वाङ्मयमृग्वेदमाधृत्य समाधानायात्र गृहीताः सन्ति।

आधुनिकविज्ञानं यदा वस्तुवादप्रधानं तदा वैदिकविज्ञानमध्यात्मप्रधानम्। अत अस्माभिरनुसन्धि साम्प्रतिकं विज्ञानं वेदे न क्रमानुसारमपि तु यत्र तत्र परोक्षतया संकेतितमस्ति। पारस्परिकवैलक्षण्येऽपि समन्वयस्थापनेन नूतनतथ्यस्याविष्कार एवास्माकं लक्ष्यं स्यात्, येन लोककल्याणं त्वरान्वितं भवेत्।

❖

V-8

वैदिकवाङ्मये ग्रामणीविशांपति-राजन्-शब्दानां प्रयोगभेदाः

श्री-अजयकुमारमिश्रः, शान्तिनिकेतन

ग्रामर्गाः विशांपतिस्तथा राजन् शब्दाः सामान्यतया पर्यायवाचिनः प्रतीयन्ते। परन्तु तेषां मध्ये महान् भेदोऽपि व्याकरणदृष्ट्या दरीदृश्यते।

ग्रामः अस्यास्तीति ग्रामणीः। विशां प्रजानां स्वामीति विशांपतिः। राजयति इति राजना, 'राज् दीप्तौ धातोः राजन् शब्दो निष्पन्नो भवति।

सामान्यतया विचार्यमाणे सति एकस्य ग्रामस्य यः प्रधान मुख्यो वा स ग्रामणीः भवति। ग्रामस्याभ्युदायकर्मसु तस्याधिकारः पूर्णतया स्वीकृतो वर्तते।

अप ग्रामण्याधिकारः कीदृशो वर्तत इति विचारणीयम्। पुनरपि विट्शब्दस्य प्रयोगेषु विस्तारस्थानखण्डमिति स्वीकृतम्। कतिपयग्रामसमूहेन विट् विट् उपजायत इति प्रमाणमस्ति।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ विशां पतिः विशपति इति वैयाकरणपदम्। विशांपत्यधिकाराः कीदृशाः सन्ति इत्यादि विषया शोधपत्रेऽस्मिन् विवेचयिष्यन्ते।

❖

V-9

वैदिकदेवताविज्ञानम्

डॉ. शिवप्रसाद-अग्निहोत्री, कानपुर

देवतापदार्थविवेचनात्प्राक् पाणिनीयशब्दानुशासनानुकूलं क्रीडा-विजिगीषा-द्युति-स्तुति-मोद-मद-स्वप्न-कान्ति-गत्यर्थकेन दिव्धातुना अच्प्रत्यये निष्पद्यमानाद् देवशब्दाद् भावे तलि कृते सम्भूतस्य देवतापदस्य निरुक्तिः कीदृशी, कथं च ततः शास्त्रप्रतिपादितदेवतातत्त्वरहस्यमुन्नेतुं शक्यत इति निरूपयितुमादौ तावद् धात्वर्थविभजनक्रमेण देवताशब्दस्य निर्वचनमेव विधीयते।

1. दीव्यति-जगतः सृष्टिस्थितिसंहाररूपक्रियया क्रीडतीति देवः। 2. दिव्यायां क्रीडनात्मिकायां प्रजापतितन्वां ये जातास्ते देवाः। 3. दीव्यतः क्रीडतः प्रजापतेः समुत्पन्ना देवाः। 4. दीव्यति द्योतते स्वयमात्मप्रकाशेनेति देवः। 5. दीव्यते स्तूयते सर्वैरिति देवः। 6. ददाति उपासकेभ्योऽभिलषितान् पदार्थानिति देवः। 7. स्वात्मभिन्नपदार्थान् दीपयति द्योतयति वा इति देवः। 8. देवानग्मुत्पादिका प्रजापतितनूर्दिवा अभवत्। यत्सा दिवा इति तदुत्पन्ना देवाः।

वैदिकदेवतात्वं तु मन्त्रेषु स्तवनीयत्वम्।

'यस्य वाक्यं स ऋषिः या तेनोच्यते सा देवता' (ऋक्सर्वानुक्रमणी)। 'यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन् स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तद्दैवतः स मन्त्रो भवति' (निरुक्तः)।

अर्थमिच्छन्नृषिर्देवं यं यमाहायमस्त्विति। प्राधान्येन स्तुवञ्छक्त्या मन्त्रस्तद्देव एव सः।। (बृहद्देवता)

इतः परं निरुक्तदेवतायाः स्वरूपं परमार्थत एकमनेकं वेति शङ्कायां देवतासङ्ख्याया यथामति निरूपणं समुचितं प्रतिभाति।

❖

V-10

निरुक्तेऽनार्य-संस्कृतिः

डॉ. मञ्जुपाण्डेयः, पलामू

संस्कृतिशब्दः सम् + कृ + क्तिन् प्रत्ययेन सुडागमेन निष्पन्नो भवति। संस्कृतिः कालस्य समाजे स्थितानां मानवानाञ्च स्थितेर्बोधिका भवति। तत्र भोजनावासस्य, वस्त्रधारणस्य, शिक्षादीक्षाया व्यवहारस्याचरस्य धर्माधर्मस्य च समावेशो जायते।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरुक्ते विविधाः संस्कृतयो विवेचिताः। तासु देवसंस्कृतिः, असुरसंस्कृतिः आर्यसंस्कृतिरनार्यसंस्कृतिश्च विशेषेण वर्णिताः। आर्यविषये तत्र प्रतिपादितमस्ति यदार्यः भौतिकसुखोपभोगीति। कीकटशब्दनिर्वचने किं कृताः कीकटाः। कीकटो नामानार्यनिवासः। अनार्या वैदिकधर्मविरोधिनः यज्ञादिक्रियाभिः किम्? न किमपि प्रयोजनम्, भौतिकसुखमेव सर्वमिति स्वीकुर्वन्ति। शोधपत्रेऽस्मिन् तेषां विवेचनं, विचारणा समीक्षणं च विशेषेण भविष्यति!

❖

V-11

उपनिषत्सु स्वाराज्यम्

डॉ. प्रभातरञ्जनमहापात्र, पुरी

चिदात्मा स्वयं प्रकाशः स्वतन्त्रः निरपेक्षः निराधारः आद्यन्तरहितः अपरिच्छिन्नः स्वानुभवगम्यश्च। तमेव चिदात्मानमपरोक्षतया अनुभूय कृतकृत्यो भवति जीवः। अनात्मज्ञानं बन्धनकारणमात्मज्ञानं तु मुक्तिसाधनमिति वेदान्तिनः (अद्वैतिनः) अभ्युपगच्छन्ति। आत्मा सर्वतन्त्रस्वतन्त्रः अपराधीनप्रकाशश्च। अत एव श्रूयते कठोपनिषदि—' न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः, तमेव भान्तमनुभाति सर्वं, तस्य भासा सर्वमिदं विभाति। अपि च श्रीमद्भगवद्गीतायाम्—

न तत् भासयते सूर्यः न शशाङ्को न पावकः। यद् गत्वा न निनिवर्तन्ते तद् धाम परमं मम। इति।

एतेन आत्मनः स्वप्रकाशत्वं स्वतःसिद्धमेव। यदायमात्मा देहेन्द्रियादिजडपदार्थाधीनो भवति, तदापराधीनः सन् दुःखशोकाभिभूतो भवति। अजडात्मज्ञानेनासौ स्वाधीनो भूत्वा स्वाराज्यमाप्नोति। अत एव स्वाराज्यं त्वात्मन्येव वर्तते, नान्यत्र।

हृदयमध्ये स्थितः य आकाशः स दहराकाश इत्युच्यते। तत्र मनोमयः अमृतस्वरूपः हिरण्मयपुरुषः विद्यते तं परमपुरुषं परमात्मानमपरिच्छिनं ज्ञात्वा उपासको जीवः स्वाराज्यमधिगच्छति परमां शान्तिं च लभते। सर्वतः परिपूर्णो भवति। एतदेव प्रबन्धेऽस्मिन् पर्यालोच्यते।

❖

V-12

स यज्ञः तस्य यज्ञः

डॉ. जयनारायणपाण्डेयः, रांची

भारतीयसंस्कृतिः यज्ञपरकैव। भारतीयसंस्कृतौ वेदपुराणेषु च यज्ञानां महत्त्वं निरूपितमस्ति। अतः ये जन्ममरणबन्धनात् मुक्तिमभिलषन्ति ये यज्ञादिशुभंकर्माणि अवश्यं कुर्युः। वेदाः ये परमात्मनः निःश्वासभूताः सन्ति, तेषां मुख्यप्रवृत्तयः यज्ञानामनुष्ठानविधाने इत्थं परमात्मा यज्ञमाध्यमेन विश्वसंरक्षणं करोति। यज्ञकर्ता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अक्षयं सुखमाप्नोति। अत एव न केवलम् ऋषिमुनयः, अपि तु गृहस्थाः अपि नित्यं प्रतिदिनं यागानुष्ठानं प्रकुर्वन्ति। यज्ञैः न केवलं वायुमण्डलं परिशुद्धं भवति, अपि तु पर्यावरणस्यापि संरक्षणं भवति। यतः यज्ञाग्नौ विविधप्रकाराणामोषधीनां वनस्पतीनां च हवनं भवति, येनानेकेषां रोगक्रिमीणां विषाक्तगैसीटद्रव्यानाञ्च विनाशो भवति। यज्ञः एव प्रकृतेः स्थूलतत्त्वेषु शक्तिं सुगन्धिञ्च प्रददाति। पृथिवीजोलतेजवाय्वाकाशपञ्चतत्त्वेभ्यः सृष्टेः संरचनमभवत् एतेभ्यः पञ्चतत्त्वेभ्यः निःसृतसूक्ष्मांशैः मानवशरीरं निर्मितं जातम्। एतेषु पञ्चतत्त्वेषु शुद्धवायुः जलञ्च मानवशरीरायापरिहार्ये स्तः। यतः अस्माकं जीवनभूतप्राणेषु शक्तिसंचरणं वायुनैव भवति। यज्ञाग्निना वायुः सुरभितः सुवासितश्च भवति। फलतः अस्माकं प्राणशक्तिः बलोर्जासम्पन्ना भूत्वा आरोग्यवर्धिका जायते।

ऋग्वेदस्य प्रारम्भः एव यज्ञस्य समस्तोपकरणानां वर्णनं भवति—'अग्निमील पुरोहितं, यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्। यजुर्वेदशब्दः यज्ञप्रतिपादकग्रन्थवाचकः। यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः इत्यनेन स्पष्टं भवति यद् देवाः यज्ञेन यज्ञसम्पादमकुर्वन्। अस्य यज्ञस्य प्रथमं ज्ञानं सर्वप्रथममथर्वन् ऋषिः अददात्—'यज्ञैरथर्वाप्रथमः पथस्ते'। अस्य यज्ञस्योत्पत्तिः सृष्टिप्रारम्भे एवाभवत्। यज्ञस्योद्देश्यं शमनं शान्तिर्वास्ति।

❖

V-13

वैदिकवाङ्मये सूर्योपासनया व्याधिशमनम्

डॉ. वीरेन्द्रकुमारमिश्रः

वैदिकवाङ्मये सूर्यस्य महत्त्वं पूर्णरूपेण दृश्यते। सूर्यः द्युस्थानीयो देवः। सूर्यो देवानां चक्षुः। एतदुपलक्षितानां जगतां प्रकाशकं चक्षुरिन्द्रियस्थानीयं वा इति उक्तमाचार्यसायणेन (ऋग्वेदः 1.115.1 सायणभाष्यम्)। सूर्यः समस्तस्य चराचरस्य संसारस्य आत्मा अस्ति (ऋग्वेदः 1.115.1)। सृष्टेः प्राणात्मकः सूर्यः (शतपथब्राह्मणम् 10.4.5.7), प्राणः अमृतस्वरूपः (शतपथब्राह्मण) (9.1.2.32)। सूर्यं विना जीवनं न सम्भवति।

यस्मिन् स्थाने सूर्यस्य प्रकाशो न प्राप्यते, तस्मिन् स्थाने रोगोत्पादकानां जीवाणूनामुत्पत्तिर्भवति। सूर्यस्य किरणेष्वद्भुता शक्तिर्विद्यते रोगाणां विनाशाय। ऋग्वेदस्य मन्त्रत्रयेष रोगाणां विनाशायोल्लेख उपलभ्यते (ऋग्वेदः 1.5.11-13)। सूर्योपासकानां कृते एतेषां मन्त्राणां प्राधान्यमस्ति। स्वव्याधिशमनार्थं सूर्योपासकाः एतेषां मन्त्राणामुच्चारणं कुर्वन्ति। मन्त्रोच्चारणैः प्रस्कण्व-ऋषेः चर्मरोगस्य निवृतिरभवत्।

न केवलं वैदिकसाहित्ये, अपि तु लौकिकसाहित्येऽपि उल्लेखोऽस्ति यत् सूर्यस्योपासनया मयूरभट्टस्य कुष्ठरोगस्य निवृत्तिः सञ्जाता (काव्यप्रकाशः, कारिकासंख्या 2 वृत्तिः)।

इत्थं स्पष्टं भवति यत् सूर्यस्य सर्वेषां प्राणिनां कृते जीवनधारणायात्यधिकं महत्त्वमस्ति।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

V-14

सामाजिकपर्यावरणं निरुक्तञ्च

डॉ. रामाशीषपाण्डेयः, राँची

निरुक्तं वेदस्य श्रोत्रभूतं वेदाङ्गं वैदिकशब्दानां व्युत्पादने विशेषतोऽर्थप्रकाशे निरतं छन्दोभ्यः समाहृत्य समाहृत्य निघण्टौ समाम्नातानां शब्दानां निर्वचनं प्रस्तौति। अर्थावबोधे निरपेक्षतथा पदजातं यत्रोक्तं तन्निरुक्तमिति। वैदिकसाहित्यस्यार्थप्रकाशने तत्परं निरुक्तं तत्कालीनसमाजस्य चित्रितं विविधचित्रं चित्रयति। विविधचित्रेषु पर्यावरणस्य चित्रमप्येकम्। परि + आङ् + वृ + ल्युट् प्रत्ययेन निष्पन्ने पर्यावरणशब्देन यदावृणोति सर्वान् तत् पर्यावरणमिति। पर्यावरणेषु पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशादीनि पञ्चभौतिकतत्त्वानि विशेषेण वश्रुतानि। आकाशाद्वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथ्वी समुत्पन्नेति विदितम्। समाजस्था मानवा विविधजीवाश्च एभिः पञ्चतत्त्वैर्निर्मिताः सर्वदैव तेषामाश्रय एव तिष्ठन्ति। एतानि प्राकृतिकपर्यावरणानि सर्वथैव मानवोपकारकाणि सर्वानावृत्य तिष्ठन्ति।

मानवः समाजे निवसति। साहित्यं समाजस्य दर्पणभूतं सामाजिकचित्रस्योपस्थापने निरतं भवति। निरुक्तमपि साहित्यान्तर्भूतम्। समाजस्य दर्पणभूते साहित्ये विविधपर्यावरणस्य तत्त्वानि चित्रितानि भवन्ति। विविधपर्यावरणेषु प्राकृतिकं मानसिकं शैक्षिकं सामाजिकञ्च पर्यावरणं प्रसिद्धम्।

निरुक्ते विविधसमाजस्य चित्रणं प्राप्यते, तत्र देवासुरमानवसमाजानां चित्रणं विशेषरूपेण विहितम्। निरुक्तप्रतिपादितं समाजोपकारकं विधिनिषेधपद्धत्या स्वीकरणं सामाजिकपर्यावरणञ्चात्र शोधपत्रे परिशीलितं भविष्यति। पुनश्च मानवेषु प्रचलितानां व्यवहाराणां सामाजिकदृष्ट्या औचित्यमपि द्रष्टव्यं विद्यते। तत्र विवेचितानां सामाजिकव्यवहाराणां पार्थक्यं तथा व्याप्तं प्रदूषणादिकमपि विवेचनीयमिति दिक्।

❖

V-15

निरुक्तेऽभिव्यक्तो वेदाचारः

डॉ. सन्तोषकुमारपाण्डेयः, राँची

समाम्नायः समाम्नातः स व्याख्यातव्यः इत्यनेन समाम्नातानां वैदिकशब्दानां निघण्टौ प्रतिपादितानामर्थावबोधे निरपेक्षतया निःशेषकथनमेव निरुक्तम्। तत्रार्थविवेचनप्रसङ्गे समुपस्थितेषु विविधाचारेषु वेदाचारः प्रथमः। वेदशास्त्रलोककुलाचारेषु प्रतिपादितो वेदाचारो वेदप्रभावः आचारः वेदविहितकर्मणामेवाचारः। वेदविहिताचारे राष्ट्रभावना तु विद्यत एव विश्वबन्धुत्वस्य भावनाऽपि दरीदृश्यते। वेदाचारे वेदप्रभावो यज्ञाचारस्तस्याङ्गभूतः आरण्यकानुमोदितः उपासनाप्रधानः उपासनाचारः, उपनिषत्प्रभवो ज्ञानाचारश्च महत्त्वपूर्णः। निरुक्तकाले देशकालपात्रानुसारमाचरितमाचरणं वेदमार्गानुकूलमार्यैरनुमोदितमासीत्। तदानीमनार्या वेदविरोधिनो वेदाचारस्य निन्दकाः कीकटाः किंकृता किं यज्ञादिक्रियाभिरिति भाषमाणाः स्वकीयमस्तित्वं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थापयन्ति स्म। तेषां मते यज्ञादिकर्मणां सम्पादनं व्यर्थमेव। परं वेदविहिताचारो निरुक्ते चर्चिताश्चारा कालान्तरे धर्मशास्त्रादौ स्मृत्यादौ च स्वीकृताः। निरुक्तकाले प्रवर्तितस्य वेदाचारस्य तस्याङ्गभूतस्य विविधाचारस्य कीदृशी स्थितिरासादिति शोधपत्रेऽस्मिन् चिन्तनीयमिति।

❖

V-16

सायणाचार्य्याणाम् ऋग्भाष्यप्रामाण्यसमीक्षा

डॉ. उदयचन्द्रवन्दोपाध्यायः, कोलकाता

सायणाचार्य्यरचितस्य ऋग्वेदभाष्यस्य प्रामाण्यम् अस्ति न वा इति जिज्ञासा अधुना समुदेति, मन्त्राणाम् प्रामाण्यविषये शाखागता परम्परा एव प्रमाणम्। मन्त्रभेदात् पाठभेदाद्वा शाखाभेदः इति सामुदायिकाः। अधुना ऋग्वेदस्य प्राप्तपाठः कुतः प्राप्तः? सायणाचार्य्याणाम् पाठः प्राप्तपाठात् बहुष्वेव स्थानेषु भिन्नः, शाकलशाखायाः प्रवर्तकः चेत् शाकल्यः तर्हि स एव पदपाठकारः पदपाठे यादृशो मन्त्रक्रमो वर्तते सायणपाठात् संहितापाठाच्च तद्भिन्नः, एक्यं पाठविषये कुत्रापि ऐवयं नास्ति। ऐतरेय-ब्राह्मणात् आरण्यकाच्च अत्र एकाधिके स्थाने भिन्नतरः पाठः आसीत् इति जायते। अतः सायणपाठितानाम् मन्त्राणाम् पाठगत-प्रामाण्य-विषये अधुनापि शङ्का वर्तते।

तस्य भाष्यमपि समुद्रायगतम् इति वक्तुम् न शक्यते। आश्वलायनश्रौतसूत्रम् तेन गृहितम्। पुनः सर्वानुक्रमणीमतम् अपि उद्धृतम्।

❖

V-17

दोषावस्तःपदस्य स्वरानुसारेण अर्थविवरणम्

डॉ. रवीन्द्र अंबादास मुके, महाराष्ट्रम्

उप॑ त्वाग्ने दि॒वेदि॑वे॒ दोषा॑वस्तर्धि॒या व॒यम्।
नमो भ॑रन्त॒ एम॑सि।। (ऋग्वेदः 1.1.7)

इत्यस्मिन् मन्त्रे 'दोषावस्तः, इति एतत् पदमागतम्। सायणाचार्यैः ऋग्वेदभाष्ये 'दोषावस्तः' अस्यार्थः 'रात्रावहनि च, इति अनेन प्रकारेण कृतः। सायणाचार्याः वदन्ति दोषाशब्दः रात्रिवाची वर्तते वस्तर्शब्दः अहर्वाची वर्तते। सायणाचार्यैः 'दोषावस्तर्' इति अयं शब्दः सप्तम्यर्थकः कथं स्वीकृत इति ज्ञातुं न शक्यते। सप्तमीविभक्तिप्रत्ययोऽपि अत्र नास्ति। अन्यच्च वस्तर् शब्दः कुत्रापि अहर्बोधको नास्ति।

सायणाचार्यैः अत्र द्वन्द्वसमासः स्वीकृतः, परं द्वन्द्वसमासस्य पदपाठे अवग्रहः न दृश्यते। अस्य पदस्य पदपाठे दोषोऽवस्तः अनेन प्रकारेण अवग्रहः दृश्यते। अतः अत्र द्वन्द्वसमासोऽपि स्वीकर्तुं न शक्यते।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तैत्तिरीयसंहितायामयमेव मन्त्रः पठितो वर्तते, (1.5.6.2) इत्यत्रापि 'सायं प्रातः' इत्येव अर्थः सायणाचार्यैः कृतोऽस्ति। परं काण्वसंहिताभाष्ये हे दोषावस्तः अग्ने! दोषा रात्रिः तस्यामपि वसति, अजस्रं धार्यमाणत्वान्नोपशाम्यति इति दोषावस्ता' इत्यनेन प्रकारेण दोषावस्त इति पदं सम्बोधनार्थे स्वीकृतम्।

एकस्यैव पदस्य भिन्नो भिन्नोऽर्थः सायणाचार्यैः प्रदत्तः।

दोषावस्तः इति ल्तन् पदम् आद्युदात्तम् वर्तते, अतः स्वरविचारे कृते एतत् सम्बोधनरूपमेव ग्राह्यं भवति। सायणाचार्यैः दोषावस्तः इति एतादृशं विवरणं कथं कृतम्। किं तत्र कारणम्। के तत्र दोषाः, अस्य पदस्य कोऽर्थः ग्राह्य इति अस्मिन् निबन्धे चर्चितम्।

❖

V-18

वैदिकच्छन्दसां छन्दस्त्वम्

डॉ. राजेश्वरमिश्रः, हरियाणा

वेदार्थावबोधनाय प्रत्यक्षतः उपकारकेषु वेदाङ्गेषु च्छन्दोऽन्यतमे स्थाने स्थितम्। छन्दः पादौ तु वेदस्य (41) इत्यनेन पाणिनीयशिक्षावचनेन च्छन्दस्तु वेदस्य पादवदुपकारकमस्ति, यतो हि वैदिकसाहित्यस्य सूत्रपातः छन्दोभिरेव जातः। छन्दोऽनुशासनकारस्याचार्यजयकीर्तेर्मते समग्रं वाङ्मयं छन्दोयुक्तमत्र च च्छन्दसा विना किञ्चिदपि न वर्तते (छन्दोभाग्वाङ्मयं सर्वं न किञ्चिच्छन्दसा विना, 1.2)। नाट्यशास्त्रकारेण भरतमुनिनाऽऽपि च्छन्दोहीनो न शब्दोऽस्ति न च्छन्दः शब्दवर्जितम्। (14.45) इत्युक्त्वा शब्दच्छन्दसोः अन्योऽन्याश्रितत्वं प्रतिपादितम्। पुनश्च वाचः प्रजातानि च्छन्दांसि इति प्रायः सर्वे ब्राह्मणग्रन्थाः स्वीकुर्वन्ति। एवमेव जैमिनीय-ब्राह्मणे अथो सप्त चतुरुत्तराणि छन्दांसि सप्त मुख्याः प्राणाः इत्यनेन वचनेन प्रमुखानि सप्त च्छन्दांसि प्रमुखाः सप्त प्राणा इति मतमुपस्थापितम्। वैदिकग्रन्थानामेभिर्वचोभिरेवं प्रतीयते यत् वेदब्रह्म अक्षय्यवाचो विकसितं रूपं प्राणरूपच्छन्दांसि च तस्य निःश्वासाः।

वैदिक-ग्रन्थेषु च्छन्दःशब्दस्य प्रदत्ताभिर्निर्वचनात्मकव्याख्याभिरपि वैदिकच्छन्दसां छन्दस्त्वं सुतरां स्पष्टम् इत्यनेन निर्वचनेन स्फुटं प्रतिभाति यत् वेषां देवानां मृत्युभयाद् रक्षणात् तथा च साक्षात्कृतधर्मभिर्महर्षिभिः स्वान्तःकरणेऽनुभूतानां देवसम्बद्धानां तत्तद्भावानां छन्दोभिर्मन्त्रेषु च्छादनकर्मणा संरक्षणादेवैतद् छन्दः इत्युच्यते। ब्राह्मणेष्वेतेषामाधिदैविकमाध्यात्मिकञ्च स्वरूपमपि निरूपितम्। तदनुसारं छन्दांसि देवानां पशवः, युक्तान्येतानि देवेभ्यः तथैव यज्ञं वहन्ति यथा युक्ताः पशवः मनुष्येभ्यो भारं वहन्ति (शत. ब्रा. 1.8.2.8; 4.3.1)। छन्दांसि एव देवानां गृहाणि स्वीकृतानि (जै. ब्रा. 1.180). यतो ह्येते देवाः छन्दोभिरेव स्वयज्ञभागं प्राप्नुवन्ति। पुनश्चैतानि प्रजापतेरङ्गान्यङ्गीकृतानि (ए.ब्रा. 2.18)। आध्यात्मिकदृशा, प्रजापतेर्प्राणा एव छन्दांसि वागनुष्टुप् प्रजापतिर्वा अनुष्टुप् इत्यादिभिर्वचनैर्वैदिकच्छन्दांसि वाक्प्राणयोः प्रतीकानि, सर्वत्र परिव्याप्तत्वाच्चैतेषां छन्दस्त्वं स्वतः सिद्धम्।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

V-19

अथ वैमानिकं किञ्चिद्

डॉ. मिताली देव, वाराणसी

वेद उपवेदश्च मनीषिणां मेधाया विश्रामस्थानम्। तत्र उपवेदेषु भौतिकशास्त्राणि बहुत्र श्रूयन्ते चतुष्षष्टिकलास्वपि भौतिकवादः कथञ्चित् प्रस्फुरति। परन्तु साम्प्रतम् उपलब्धेषु उक्तविषयकग्रन्थेषु आर्षविमानविषयकं विवरणजातं दुर्लभम्। यद्यपि वेदादारभ्य महाभारतावधि साहित्यं पाठं पाठम् एतन्निर्णेतुं शक्यं यद् यन्त्राणां महान् विकासस्तदानीम् आसीत्।

प्रस्तुते शोधनिबन्धे कदा प्रभृति विमानाविष्कारो जात इति विमृश्यते। प्राचीनग्रन्थेषु तत्र तत्र विमानप्रसङ्गाः समुपलभ्यन्त एवेति प्रतिपादितम्। परं कुत्रापि कुतः प्रभृति विमान एष आविष्कृत इति नोक्तमिति प्रतिभाति। विश्वस्मिन् आदिमश्च को विमान इत्यपि साम्प्रतं निर्णेतुमशक्यमिव प्रतिभाति, तस्माद् विमानाविष्कारकालगवेषणा काकदन्तगवेषणेवेति चेदत्रोच्यते—

सत्य-त्रेता-द्वापर-कलिनामधेयेषु चतुर्षु युगेषु किल आद्यं सत्ययुगम्। तत्र हि समग्रस्य जगतो धर्ममयत्वेन अणिमाद्यष्टसिद्धिजन्याकाशादिगमनकर्मणां स्वतः सिद्धत्वात् कृत्रिमैरुपायैस्तत्करणस्यानावश्यकतया 'नैव दोषो न समाधानम्' इति सिद्धान्तानुसारं नैव विमानस्य प्रयोजनमासीत्, अतश्च तदाविष्कारप्रयासोऽपि न कृतः कैश्चित्।

व्यतीते च तस्मिन् सत्ययुगे समागते च त्रेतायुगे, नष्टे चैकपादे धर्मे स्वतः सिद्ध्यसिद्ध्यादीनामभावात्तदानीं कार्यसिद्ध्यै झटित्येव इतस्ततो गमनं खलूणायमन्तरा नाऽभवदिति ततः तत्सिद्ध्यर्थं विमानयानं तदानीन्तनैर्वैज्ञानिकवर्यैर्भरद्वाज-स्फोटायनात्रि-शौनक-गर्ग-गालव-नारद-वाल्मीकि-वसिष्ठ-गौतमादिभिर्महर्षिभिः संहत्य विचार्य सर्वविद्याधिदेवमहेश्वरस्यानुग्रहतस्तानि तानि विमानसामान्ययन्त्राणि विमानविशेषयन्त्राणि च निर्माय विमानयानमिदमाविष्कृतमिति। इदमेव द्रढयन्नाह आचार्यो बोधानन्दः, यथा— 'भूतभौतिकशास्त्राणि पूर्वाचार्यकृतानि हि'।

तदेवं त्रेतायुग एव विमान आविष्कृत इति सिद्धम्। एवञ्च त्रेताद्वापरकलियुगानां कालपरिमाण 2592000 द्विनवतिसहस्राधिकपञ्चविंशतिलक्षवर्षाणि। तत्र यदि त्रेतायुगारम्भ एव कदाचिद्विमानाविष्कारो न स्यात्तथापि इतो न्यूनातिन्यूनं पञ्चविंशतिलक्षवर्षेभ्यः पूर्वं तु विमानस्य आविष्कारो बभूवेति निश्चप्रचं व्याहर्तुं शक्यते।

❖

V-20

वेदाङ्गसमीक्षा

डॉ. के.एच. शर्मा, तिरुपतिः

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुद्ध्यते।
एतं विदन्ति वेदेन तस्माद्वेदस्य वेदता॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपौरुषेया वेदा भगवतो निःश्वासरूपेण प्रादुर्भूतास्सन्ति। भारतीयसम्प्रदायानुसारेण षड्भिरङ्गैः चतुर्भिरुपाङ्गैश्च सहिताश्चत्वारो वेदा मानवानां इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारोपायप्रतिपादका इति। वेदा मानवानां हिताय, समाजश्रेयसे, चतुर्विधपुरुषार्थानां प्रदाने च मुख्या विराजन्ते। वेदेषु ज्ञानविज्ञानधर्मदर्शनसदाचारसंस्कृतिनैतिक-सामाजिकराजनैतिकप्रभृतयो जीवनोपयोगिविषयास्समुल्लसन्ति।

मनुनाऽप्युक्तम्—'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्, वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ'। वैदिकसंस्कृतसाहित्ये (1) देवतास्तोत्र-विषयप्रतिपादकः ऋग्वेदः, (2) यज्ञयागादिक्रतूनामनुष्ठानबोधको यजुर्वेदः (3) सङ्गीतस्य स्वराणां च प्रधानोपदेष्टा सामवेदः (4) मानवसंस्कृतेः आचाराणां बोधकः ऐहिकफलप्रदाता अथर्ववेद इति चत्वारो वेदास्सन्ति। एकैकस्य वेदस्य संहिता-ब्राह्मणारण्यकोपनिषद्ग्रन्थाश्च वर्तन्ते। तथा एषां वेदानां श्रीसायणाचार्य-भट्टभास्करप्रभृतिभिर्विरचितानि भाष्याणि विद्यन्ते। वेदानां शिक्षा-व्याकरण-छन्दो-निरुक्त-ज्योतिषकल्पाख्यानि षडङ्गानि सन्ति। वेदाङ्गानि श्लोकरूपेण अथवा सूत्ररूपेण विरचितानि। वेदविहितकर्मणामनुष्ठानाय तत्फलस्य सम्पादनाय वेदमन्त्राणामर्थावबोधाय च एतानि उपयुज्यन्ते।

❖

V-21

शिक्षा प्रातिशाख्यं च : एका समीक्षा

विद्वान् एस. नारायणः, कर्नाटकम्

शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषं तथा।
छन्दश्चेति षडङ्गानि वेदस्यार्हुमनीषिणः॥

इति अभियुक्तैः परिगणितेषु वेदाङ्गेषु षट्सु इदं शिक्षाशास्त्रं प्राथम्यं भजति। वर्णोच्चारणविधौ स्थानकरणप्रयत्नेषु अपेक्षितान् समीचीनान् मार्गान् प्रदर्शयतः, उच्चारणप्रकारांश्च बोधयतोऽस्य शास्त्रस्य प्राथम्यं सूक्तमेव। 'शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य' इति वेदस्य घ्राणस्थानकम्। विशेषत इदं शास्त्रं स्वरज्ञानं शिक्षयति। स्वरज्ञानं शिक्षायत्तम्। सायणेन ऋग्भाष्यभूमिकायामुक्तम्— 'स्वरवर्णाद्युच्चारणप्रकारः यत्र शिक्ष्यते उपदिश्यते सा शिक्षा'। इति।

अस्य शास्त्रस्य विषय एव उच्चारणविधिः। येन विधिना उच्चारिता वर्णाः सन्देष्टव्यमसन्दिग्धमेव प्रकटयेयुः सोऽस्य शास्त्रस्य विषयः। पाणिनीयशिक्षायाम्—

'प्रसिद्धमपि शब्दार्थमविज्ञातमनुबुद्धिभिः।
पुनर्व्यक्तीकरिष्यामि वाच उच्चारणे विधिम्'।।

तदस्यां शिक्षायां वर्णोच्चारणं नाम किं? का तत्र प्रक्रिया? स्थानकरणप्रयत्नादीनां कीदृशं पात्रत्वम्? इत्यादयोऽत्रप्रश्नाः समाधीयन्ते।

प्रातिशाख्यम्—वैदिकं व्याकरणं प्रातिशाख्यम्। एतदपि वेदसंरक्षणाय प्रवृत्तम्। एतत् शिक्षायाश्च पूरकं भवति। प्रातिशाख्यानां पर्यालोचनेन ज्ञायते यद् वैदिकशब्दानां व्याकरणप्रक्रियाप्रदर्शनं हि तेषां प्रयोजनम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एतेषां प्रतिपाद्यविषयाः— वर्णसमाम्नायः; स्वरव्यञ्जनानां गणना, तदुच्चारणविधयश्च, सन्धयः, ह्रस्वादिसंज्ञाः, उदात्तादिस्वरभेदः, वर्णोच्चारणनियमा इत्यादयः।

एतयोः शिक्षाप्रातिशाख्ययोर्विषयप्रतिपादनपर्यालोचनेन प्रतिपाद्यविषयः समानरूप एव प्रतिभाति। अथापि प्रातिस्विकरूपेण शिक्षाणां प्रातिशाख्यानां च विषयवैलक्षण्यं वर्तत एव।

अत एवोक्तम्—सिद्धेश्वरशर्मणा स्वविरचित– Critical Studies in the phonetic observations of Indian Grammers 'इत्याख्ये ग्रन्थे' Shiksha Implied general phonetics, while Pratishakhya signified applied phonetics.

अतः अस्मिन् प्रबन्धे शिक्षाणां प्रातिशाख्यानां च प्रतिपाद्यविषयसाम्यं वैलक्षण्यं च अधिकृत्य किञ्चित् प्रस्तूयते यथामति।

❖

V-22

वेदे आङ्गिरसः

डॉ. गंगादत्तशास्त्री, जम्मूतवी

के ते अङ्गिराः, येषां वेदेषु प्रसङ्ग उपलभ्यते—

ऋग्वेदस्य 1।85।4 स्थले अङ्गिराणाविषये यदुक्तम्— हे इन्द्र! अग्निप्रज्वालकैरङ्गिरैः स्वसुचारुयज्ञ-कर्मभिः सर्वप्रथमं यद् धारितमासीत् (आहुतयस्तुभ्यं प्रदत्ता आसन्) तैः देवैः पणेः पश्वादिकं धनं प्राप्तमासीत्।

अङ्गिरैः सर्वप्रथममग्नौ अन्नस्याहुतयः प्रदत्ता आसन्, इन्द्रेण अङ्गिरैः सह पणेः गावो गृहीताः। वृत्रस्य च वधं कृतमासीत्। ऋग्वेदे अग्निरपि अङ्गिरारूपेण स्वीकृतां।

त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिस्तमः। (ऋ. 1।31।21)

अनेनाङ्गिराणां वह्नेः प्रकाशस्वरूपत्वं प्रतीयते, अन्यत्र च ऋग्वेदे अङ्गिराणां पर्वतभेदनं दुर्गविदारणमित्यादीनि कार्याण्यपि प्रदर्शितानि दृश्यन्ते। पितरोऽप्यङ्गिराः सन्तीति ऋग्वेदमन्त्रेभ्यो प्रतीयते (ऋ. 10।14।5)। तथापि अग्नेर्विषय एवाङ्गिराशब्दस्य बहुशः प्रयोगो वेदेषु दृश्यते। अनेनाङ्गिराणां (ऋषीणां) प्रकाशमयं शरीरमासीदित्यपि प्रतीयते। छान्दोग्योपनिषदि ओम्शब्दस्य विषयेऽभिहितं यद-ङ्गिरैरस्योपासनाऽकारि।

एवञ्च ज्ञायते यद् एतादृशाः केचन विशिष्टा ऋषयोऽङ्गिराशब्देन व्यवह्रियन्ते स्म ये अग्निरूपाः प्रकाशशीलाः, ओम् उपासकास्तथा पितृलोके निवासशीला आसन्।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

V-23

श्रीचन्द्रदिग्विजये भगवतः श्रीचन्द्रस्य वैदिकी दृष्टिः

डॉ. एल.पी. उपाध्यायः, जालन्धरनगरम्

श्रीमता अखिलानन्दशर्मणा विरचिते श्रीचन्द्रदिग्विजये महाकाव्ये प्रस्तुतानि तथ्यानि भगवतः श्रीचन्द्रस्य वैदिकीं दृष्टिं प्रकाशयन्ति। उदासीनसम्प्रदायस्य प्रवर्तकः श्रीचन्द्रः श्रीनगरे गुरोः श्रीमतः पुरुषोत्तमादखिलवेदवेदाङ्गोपाङ्गानामध्ययनमपूरयत् (श्रीचन्द्रदिग्विजयम्, 2/70)। तदनन्तरं श्रीनगर एव सः वैदिकसंहिताः, शतपथादिब्राह्मणग्रन्थान्, श्रौतसूत्र-धर्मसूत्र-गृह्यसूत्रादिसम्बद्धवेदाङ्गग्रन्थान् चाधृत्य वैदुष्यपूर्णं चन्द्रभाष्यमलिखत्। (तत्रैव, 9/14,19,37,40,48)। वाराणस्याः लब्धप्रतिष्ठस्य विदुषः श्रीसोमनाथत्रिपाठी-महाभागस्य पराजयाय श्रीचन्द्रमहाभागेन शास्त्रार्थे प्रबलवैदिकतर्का एव समाश्रिताः (तत्रैव,7/65)। वाराणस्याः श्रीनगरं प्रत्यागत्य असौ 'अविनाशीमुनि'नाम्ना सुप्रसिद्धाद् गुरुवर्याद् उदासीनसम्प्रदायस्य दीक्षां गृहीतवान्। तदैव कृपालोः गुरोः सत्फलदायिन्याः श्रुतिलतायाः सेचनायापि जग्राहादेशम्। उदासीनाचार्यो लोककल्याणार्थं भारतभ्रमणाय मनश्चक्रे। जातिभाषावर्णभेदैर्विभक्तान् भारतीयान् निबन्धुमेकतासूत्रे श्रीचन्द्रः उदघोषयद् यत् श्रुत्युक्तदिशा कर्मानुष्ठाननैव श्रेयोऽवाप्तिस्तदन्यथाऽऽचरणेन दुःखाधिगमश्च। अतो वेदवेदाङ्गानां संरक्षणार्थं संस्कृतविद्यालयानां स्थापनस्यास्ति महत्यावश्यकता। वेदानां सर्वज्ञानमयत्वं विशदीकुर्वता उदासीनाचार्येण निदर्शनरूपेण यानि तथ्यानि प्रस्तुतानि, तेषां कानिचिदत्र विशेषोल्लेखमर्हन्ति। तद्यथा— आधारभेदतस्तोये प्रतिष्ठितसूर्यवद् एकं ब्रह्म एव विविधदेवमूर्तिभेदैरवस्थितम् (तत्रैव, 17/69)। वेदा निःश्वासभूतवचनानि जगन्नियन्तुः (तत्रैव, 15/20)। अतः कर्तव्याकर्तव्यविचारणायां वेदविहिततर्कप्रतिष्ठितं निर्णयमेव संग्राह्यम् (तत्रैव, 16/134) लोके प्रचलिता सनातनी वर्णव्यवस्था परमेश्वरेणैव सृष्टा (16।42)। अतः गुणकर्मविभागशः सर्वे तदनुसारमेव नियोजनीयाः (तत्रैव, 16/25)। यो वेदेनोक्तः, धर्मशास्त्रेणानुमोदितः, आचारतोऽपि सिद्धः, स एव मान्यो धर्मः सनातनः (तत्रैव,16/151)। सततं तपोमयं जीवनं यापयेत्, स्वस्य लोकस्य च हिताय (17/92)। ब्रह्मरूपस्य गायत्रीमन्त्रस्य जपप्रभावाद् नराः समस्तानि पापमूलान्युच्छिद्य ब्रह्मपदं प्रयान्ति (तत्रैव, 16/103)। अनासक्तेनात्मना जगति व्यवहरेत्। दुरन्तासु वासनासु निपत्य त्यागादर्शो न हातव्यः (तत्रैव,17/93)। स्वयं प्रकाशमभ्येत्य घोरान्धकारपतिता अन्येऽपि जनाः समुद्धार्याः (तत्रैव, 17/95)। धर्मसेवा, जातिसेवा, देशसेवा च भगवत्प्रीत्यै भगवत एवानुग्रहात् कर्त्तव्याः (तत्रैव 17/8)।

उपरि निर्दिष्टानि तथ्यानि मनसि निधाय स्वीकरणीयमिदं यत् श्रीचन्द्रदिग्विजये प्रस्तुताः 'एकेश्वरवादः श्रुतीनां स्वतःप्रामाण्यं, धर्मप्राधान्यम्, सनातनी वर्णव्यवस्था, जीवनस्य तपोमयत्वं, त्यागमयता, परोपकारपूर्विकाऽऽत्मोन्नतिः, मातृ-पितृ-गुरुभक्तिः, राष्ट्रसेवेत्यादयो विविधविषया भगवतः श्रीचन्द्रस्य वैदिकीं दृष्टिं सुस्पष्टीकुर्वन्तीत्यलमतिविस्तरेण।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

V-24

वैदिकं सृष्टिविज्ञानम्

डॉ. ब्रह्मचारी व्यासनन्दनः शास्त्री, मोदफलपुरम्

निखिले वैदिकवाङ्मये सृष्टिविज्ञानस्य महन्निरूपणं प्राप्तं भवति। संसारस्य प्रधानतमविषयरूपेण सर्वत्र ऋषिभिः सृष्टिमीमांसा कृता। परमकृपालुपरमेश्वरोऽपि सृष्टियज्ञमाध्यमेन जगतः सृष्टिञ्चकार। चतुर्णां वेदानामपि उत्पत्तिः सृष्ट्यादौ सृष्टियज्ञमाध्यमेनैव भवति। पुरुषसूक्ते एको मन्त्र इत्यस्मिन् सन्दर्भे विद्यते—

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥ (ऋ. 10.90.9)

ऋग्वेदस्य नासदीयसूक्ते पुरुषसूक्ते च सृष्टिविज्ञानस्य विशदं विवेचनं विद्यते। तत्र मन्त्राणामभिप्रायः प्राप्यते यदिदं सकलं जगद् दृश्यते, तत् परमेश्वरेणैव सम्यग्रचयित्वा, संरक्ष्य, प्रलयावसरे वियोज्य च विनाश्यते। पुनः पुनरेवमेव सदा क्रियत इति। पुरुषसूक्ते पुरुषः, न तु व्यक्तिविशेषः, अपितु शक्तिविशेषो जगदीश्वरः। पुरुषशब्दस्य निर्वचनं कुर्वता महर्षिणा यास्केन इत्थं भणितम्—'पुरुषः पुरिषादः पुरिशयः पूरयतेर्वा'। (निरु.अ.2, खं.3) पुरि सर्वस्मिन्संसारेऽभिव्याप्य सीदति वर्त्तत इति, यः स्वयं परमेश्वर इदं सर्वं जगत् स्वस्वरूपेण पूरयति व्याप्नोति तस्मात्स पुरुषः। 'पुरुषं पुरिशय इत्याचक्षीरन्' अर्थात् संसारे शेते सर्वमभिव्याप्य वर्त्तते, सत्पुरुषः परमेश्वरः।

अग्रे सृष्टेः प्राग्धिरण्यगर्भः परमेश्वरो जातस्योत्पन्नस्य जगत एकोऽद्वितीयः पतिरेव समवर्त्तत। स पृथिवीमारभ्य द्युपर्य्यन्तं सकलं जगद्रचयित्वा धारितवान् अस्ति—

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

(ऋ.अ.8, अ.7, व.3, मं.1, यजु.13/4)

अथर्ववेदे समुल्लेखोऽस्ति यत् परमेश्वरेण महद्व्यापकस्य सृष्टेः मूलतत्त्वप्रकृतितः त्रयस्त्रिंशद्लोकान् विरच्य पुनश्च लोकानां ज्ञानार्थं यज्ञस्य निरूपणं कृतम्। दृश्यताम्—'एतस्माद्वा ओदनात् त्रयस्त्रिंशतं लोकान्निरमीत प्रजापतिः। तेषां प्रज्ञानाय यज्ञमसृजत'।। (अथर्व.11/3/3-4) अत्र सृष्टेः मूलतत्त्वम् 'ओदनम्' इति कथ्यते। अत्र सृष्टेः समस्तं कार्यं यज्ञमयं विद्यते तथा च यज्ञेनैव सञ्चालितमस्ति।

❖

V-25

वैदिकशिक्षा : प्राचीना उत नूतना

डॉ. प्रमोदिनी पण्डा, वाराणसी

समाजस्य विकासाय आधारभूतं तत्त्वं भवति शिक्षा। यथा समाजस्य शिक्षाव्यवस्था भवति, तथैव समाजः। वेदकालिनसमाजस्य सर्वविधसमृद्धेः कारणमासीद् व्यवस्थिता शिक्षाव्यवस्था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदानीं शिक्षा गर्भादेव प्रारभ्यत इति विचार आसीत्। अतो विवाहावसरे तथा कन्यायाः चयनं क्रियते स्म या खलु उपयुक्तदायादस्य जननी भवेत्। ततः संस्काराणामपि प्रचलनमासीत्।

इदानीं शिक्षा औपचारिकानौपचारिकनिरौपचारिकभेदेन आजीवनं प्रचलति। शिक्षाया मूलमुद्देश्यं भवति भौतिकी समृद्धिः। तथापि समाजे सर्वत्र विशृङ्खलता।

पुरा यद्यपि शिक्षाया उद्देश्यमासीत् 'सा विद्या या विमुक्तये', तथापि पुरुषार्थचतुष्टयमध्ये धर्मार्थकाममोक्षाः परिगणिता आसन्। येन 'अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते' अर्थात् वेदादिशास्त्राध्ययनेन सांसारिकसमृद्धिं प्राप्य नियमेन जीवन् मुक्तिं प्राप्स्यति, तथा व्यवस्थाऽऽसीत्। नाम शिक्षायाः प्रभावः न केवलमस्मिन् जन्मनि, अपितु परलोके आसीत्।

तदनुसारं शिक्षाया मूलतत्त्वानि परिवारसंस्कार-गुरु-शिष्यसम्बन्ध-गुरुकुल-शिक्षणावधि-पाठ्यक्रम-शिक्षणपद्धति-शिक्षणोपकरणानि दण्ड-स्त्रीशिक्षा-परीक्षाप्रणालीषु सन्निहितान्यासन्।

तेषामनुशीलनं कृत्वा वर्तमानशिक्षाव्यवस्थायामावश्यकपरिवर्त्तनं कर्तुं शिक्षाविदः समर्था भविष्यन्ति यतो हि "वेदः न केवलमाध्यात्मिकज्ञानस्य मूलम्, अपितु सर्वविधज्ञानानां मूलमस्ति।" सूक्ष्मेक्षिकया दृश्यते चेदिदमनुभूयते यत् सर्वविधाधुनिकविषयाणां समावेशः सूत्ररूपेण तत्रासीदिति स्पष्टम्।

❖

V-26

विनियोगवादः

डॉ. रमेशचन्द्रदाशशर्मा, दिल्ली

वेदमन्त्राणां विनियोगविषयेऽस्ति विद्वत्सु कश्चन मतभेदः। तदत्र लेखमाध्यमेन समाधानाय विहितोऽयं प्रयासः।

मानवजीवनेऽविगुणतया कर्मफलनिष्पादनार्थं भगवतो वेदस्य प्रादुर्भावः। तत्र नित्य-नैमित्तिक-काम्य-प्रायश्चित्तभेदेन विभागचतुष्टये प्रयोगसम्पादनार्थं प्रायः वेदमन्त्राः प्रयुज्यन्ते। तानीमानि चत्वारि कर्माणि श्रौतस्मार्तधर्मशास्त्रैरनुशिष्यन्ते नित्यनैमित्तिकानि गुह्यसूत्रैरनुशिष्टानि, काम्यानि श्रौत-स्मार्त-विधानग्रन्थैः प्रतिपादितानि। प्रायश्चित्तानि तु धर्मशास्त्रस्य सूत्र-स्मृति-निबन्धग्रन्थेषु प्रतिपादितानि।

संहिताग्रन्थेषु पठितानां मन्त्राणां लौकिककाम्यकर्मसम्पादनाय विधानग्रन्थेषु विधानं वर्तते। एतेन श्रौतातिरिक्तविनियोगो मन्त्राणां बलादापतति। अथ च लौकिककर्मकाण्डेषु प्रयुक्ताः केचन मन्त्रा मन्त्रार्थ-दृष्ट्या नैव प्रयोगाय सङ्गताः सन्तीति; अस्ति विद्वत्सु विवादः। तदत्र शास्त्रीयसमाधानेन समलङ्कर्तुमयं प्रयासः।

❖

V-27

वेदे वृष्टिविज्ञानम्

डॉ. नरेन्द्रदत्ततिवारी, वाराणसी

वैदिकवाङ्मयं ज्ञान-विज्ञानगतानां विषयाणां सर्वकालोपयोगिप्रामाणिकं स्वरूपं भजते। तत्र वृष्टिकर्मसम्बद्धं सर्वमपि स्वरूपजातं वृष्टिविज्ञानस्य मौलिकं सिद्धान्तस्वरूपं चात्र निर्दिष्टमस्ति। वृष्टिविज्ञानगतस्य सिद्धान्तस्य अत्र साध्य-साधन-इतिकर्तव्यतारूपाणि त्रिविधान्यपि अङ्गानि अत्यन्तमेव

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यावहारिकदिशा प्रतिपादितानि भवन्ति। तत्र च वृष्टिकर्मणो उद्देश्यकोटौ कृषि-चिकित्सा-भूमि-औषधिवनस्पत्त्यादिपदार्थजातानां संरक्षणं सम्वर्धनञ्च समायाति। एतादृशानां साध्यरूपाभिलषितानां फलानां समवाप्तये साधनकोट्यन्तर्गतानि विविधानि यागादिस्वरूपाणि प्रतिपादितानि भवन्ति।

ऋग्वेदस्य प्रथममण्डलान्तर्गते त्र्यधिकैकशतसंख्याके मण्डूकसूक्ते, अथ च अथर्ववेदस्य चतुर्थकाण्डस्य पञ्चदशसंख्याके मण्डूकसूक्ते च मण्डूका देवानां प्रातिनिध्यमभिवहन्तो वृष्टिं कारयन्तीति वर्णितमस्ति। एते मण्डूकाः स्वकीयेन ध्वनिना वर्षर्तौ प्रभूतवृष्टिं जनयन्ति। तथा च वर्षर्तुसमाप्तिकाले एतेष्वेव केचन मण्डूकाः वृष्टिपूर्णतासम्पादनद्योतनार्थं विशिष्टरूपेण ध्वनिं कुर्वन्तीति विज्ञायते। एतेषु केचन मण्डूकाः गौरिव शब्दं कुर्वन्ति, केचन अज इव शब्दं कुर्वन्ति। एतेषु केचन पृश्निवर्णयुक्ताः केचन हरितवर्णयुक्ता दृश्यन्ते। अस्मिन् विषये वेदे उदाहरणरूपेण निदर्श्यते यत् यथा अतिरात्रसंज्ञके सोमयागे ऋत्विजः यज्ञपूर्णताबोधकानि स्तुत-शस्त्राणि पर्यायदिशा वदन्ति तथैव मण्डूकाः वृष्टिपूर्णताबोधकं ध्वनिमुत्पादयन्तीति। एवमेव एकस्मिन् अत्यन्तमहत्त्व-पूर्णसन्दर्भे तदुरनामकस्य मण्डूकस्य स्त्री तादुरी वृष्टिकारणतासम्पादनाय विशिष्टध्वनिं कर्तुं प्रेरितास्तीति ख्यायते।

एतावता प्रस्तूयमाणे पत्रेऽस्मिन् मण्डूकध्वनिना वृष्ट्युत्पादकवेदगतं स्वरूपं प्रस्तुतं करिष्यते।

❖

V-28

वायु-शुद्धिकरणं पर्यावरण-संरक्षणं च- एकं वैदिकं परिशीलनम्

श्रीराधारमणपाण्डेयः, इलाहाबाद

वैदिकचिन्तनानुसारम् इयं समग्रा सृष्टिः, तदन्तर्गतमस्मदीयं शरीरं च पञ्चमहाभूततत्त्वैः विनिर्मितमस्ति। पञ्चमहाभूततत्त्वानि तावत् इमानि वर्तन्ते—पृथिवी, अप्, तेजो (अग्निः), वायुः आकाशश्च। एतेषां पञ्चमहाभूतानां समुचितं सन्तुलनेमव शुद्धं पर्यावरणमस्ति। अस्मिन् प्रसङ्गे वैदिक-समाजे जनानां न केवलं सर्वेषु पर्यावरणघटकेषु समीचीना जागरूकतासीत्, किन्तु तेषां रक्षणावेक्षणेऽपि विविधाः उपायाः वेदेषु समुपलभ्यन्ते। चतुर्षु वेदेषु बहुत्र पर्यावरणंस्य महत्त्वं वर्णितं वर्तते। अस्मात् अनुमीयते यद् वैदिकजनाः पर्यावरण-प्रदूषण-विषये तथा तस्य निराकरणविषये च सचेतनाः आसन्। ते च मन्त्रद्रष्टारः ऋषयः प्रत्यक्ष-रूपेण परोक्षरूपेण वा पर्यावरणरक्षायै समाजस्य ध्यानं प्रदूषणं प्रति समाकृष्टवन्तः। अस्मिन् जगति प्रत्येकं मनुष्यः शतं वर्षाणि यावद् उत ततोऽप्यधिकं जीवितुं समीहते। इदं तथ्यं बहुभिः वैदिकोदाहरणैः समर्थितमपि वर्तते। यथा—'जीवेम शरदः शतम्' (अ. 19/67/2) 'कुर्वन्नेवह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः' (ईश. 2)।

❖

V-29

वेदतत्त्वमीमांसा

डॉ. पतञ्जलिमिश्रः, वाराणसी

सनातनधर्मोभारतीयसंस्कृतिस्तम्भभूतः। विश्ववाङ्मये सृष्टौ प्रथमवाणीरूपः प्राचीनतमग्रन्थो वेद इति—'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै' इति श्रुतिनिदर्शनात्। ऐतिहासिकदृष्ट्याऽत्र पाश्चात्य विचारकाः अनेकमताः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानार्थकविद्धातोर्घञि प्रत्यये कृते आद्युदात्तपवित्रज्ञानपरस्तथा चाऽन्तोदात्तवेदशब्दः कुशमुष्टिवाचक इति। ज्ञानबालसत्ताविचाराद्यर्थेषु विद्विद्लृधातुप्रयोगः पाणिनिव्याकरणे समुपलभ्यते। अत एव विद्वद् वरेण्यैर्वेदनिर्वचने विविधदृष्ट्या बहुविवेचितमस्ति। तद्यथाऽऽह ऋक् प्रातिशाख्ये वर्गद्वयवृत्तौ विष्णुमित्रः—

'विद्यन्ते ज्ञाप्यन्ते लभ्यते एभिर्धर्मादिपुरुषार्था इति वेदाः।

आचार्यसायणेनेष्टप्राप्त्यनिष्टनिवारणायाऽलौकिकोपायनिदर्शको वेदः इत्युक्तम् 'इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेद इति। अर्थात् ज्योतिष्टोमयागादिष्टप्राप्तेः कलञ्जभक्षणत्यागादनिष्टनिवृत्तेश्च प्रत्यक्षानुमानोपमानादिरर्थावबोधो नैव जायते ऋते वेदात्।

आचार्य लौगाक्षिभास्करादयो मीमांसकाः वेदस्यापौरुषेयत्वं स्वीकुर्वन्ति— अपौरुषेयं वाक्यं वेदः' इति वचनात्। मन्त्रब्रह्माणयोर्वेदनामधेयमित्यापस्तम्बः। दार्शनिकयाज्ञिकोभयसमन्वयपुरस्सरं श्रीकरपात्रस्वामिवर्याः शब्दातिरिक्तं शब्दोपजीविप्रमाणातिरिक्तं च यत्प्रमाणं तज्जन्यप्रमितिविषयानतिरिक्तार्थको यो यस्तदन्यत्वे सति आमुष्मिकसुखजनकोच्चारणकत्वे सति जन्यज्ञानाजन्यो यः प्रमाणशब्दस्तत्त्वं वेदत्वम्' इति विलक्षणं वेदलक्षणं प्रतिपादयन्ति।

❖

V-30

वेदेषु जलविज्ञानम्

डॉ. उदयशङ्करपाण्डेयः, हुथआ (बिहार)

सम्प्रति अन्ताराष्ट्रियसमस्यायु जलसमस्या अतीव गभीरास्ति। सम्भाव्यते कालान्तरे जलाभावे प्रकृतिः नष्टा भविष्यति, यतः जीवनमेव जलं विना न सम्भवति। अत एव विचारणीय एष प्रश्नः। नवद्रव्येषु 'आप्' इत्यपि महत्त्वपूर्णमस्ति। कथयति महाकविः कालिदासः—'त्वं जीवनं जीविनाम्'। यद्यपि सिद्धमिदमस्ति यत् पृथिव्याः त्रिगुणं जलमेवास्ति। किन्तु सागरस्य जलं पक्षिणः अपि न पिवन्ति, मनुष्याणां तु का कथा? परिशोधितं शुद्धजलमेव ग्राह्यं भवति।

अस्माकं ऋषयः शुद्धजलार्थं गम्भीरतया विचारितवन्तः। ऋग्वेदे विविधेषु सूक्तेषु, मन्त्रेषु च आपः चिन्तनं दृष्टिपथमायाति। जलमेवावति प्रकृतिम्। अत एव प्रार्थनापूर्वकमाज्येन हव्येन च ऋषयः वरुणदेवं पूजयन्ति, जलस्य रक्षार्थं निवेदयन्ति च। जलसंकटापन्नेन राज्ञा इन्द्रेण भूमिभेदनं कृतम्। ऋग्वेदे 'आप्' इत्यस्य सूक्ष्मतया विवेचनं कृतमस्ति। तत्र 'आप्' चतुर्धा विभाजिता अस्ति।

यो आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति
खनित्रा मा उत वा याः स्वयंजा।
समुद्रार्थाः या शुचयः पावकाः
ता आपो देवीरिह मामवन्तु॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथैव यजुर्वेदेऽथर्ववेदे च बहुशः जल-विज्ञानं वर्णितमस्ति। 'निकामे-निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु' 'गङ्गे च यमुने चैव' 'आपो हि मामभिरक्षन्तु' 'आपोहिष्ठामयो भुवः' 'आपो जनयथा च नः' प्रभृतिमन्त्राः जलविज्ञानस्य रहस्यं सङ्केतयन्ति।

V-31

वेदेषु प्रकृतिचित्रणम्

डॉ. कीर्त्यानन्दप्रचेता ताँती, दरभङ्गा

महाकाव्यलक्षणं निरूपयता साहित्यदर्पणकारेण तत्रभवता आचार्यविश्वनाथेन प्रकृतिचित्रणं महाकाव्यस्य अनिवार्यमपरिहार्यञ्चाङ्गमिति प्रतिपादितम्—

'सन्ध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासराः।
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागरः।। इत्यादि।

अत एव नैकमपि तथाविधं महाकाव्यं नाटकं वा नयनपथमुपयाति यत्र प्रकृतेः विविधस्वरूपाणां विशदवर्णनं चारुतया न विहितं महाकविभिः। प्रकृतिचित्रणमन्तरा परममनोज्ञमपि काव्यकलेवरं सर्वथा विरूपं, विकलाङ्गं प्राणविहीनश्च भविष्यतीति समुद्घोषयति ध्वनिकारः आनन्दवर्धनः-"तदेवं सत्युपमादयः प्रविरलविषयाः निर्विषयाः वा स्युः"। अत एव कालिदास-भारवि-भवभूति-प्रणीतेषु निखिलेष्वपि काव्येषु प्रकृतिवर्णनं प्रभूततया समुपलभ्यते।

न केवलं लौकिकसाहित्य एव, प्रत्युत प्राचीनतमे वैदिकवाङ्मयेऽपि प्रकृतेः मनोज्ञस्वरूपस्यात्यन्तं मनोरमं चित्रणं प्रचुरतया नयनगोचरीभवति। वस्तुतस्तु प्रकृतेः कमनीयक्रोडे समुत्पन्नाः पालिताः, लालिताश्च ऋषयः तत्साहचर्यातिशयवशात् तन्निरूपणं विदधतीति सर्वथा स्वभाविकमेवास्ति। ऋग्यजुःसामाथर्ववेदेषु चतुर्ष्वपि प्रभूततया उषः-प्रातः-मध्याह्न-रात्रि-सूर्य-चन्द्र-ग्रह-नक्षत्र-वनोपवन-लता-पादप-सरित्-सागर-पर्वत-प्रभृतीनां प्रकृतेः विविध-स्वरूपाणां हृदयावर्जकं चित्रणं दृग्गोचरीभवति।

प्रकृतिश्चेतनत्वमापन्ना मनुष्यवच्चेष्टते, हसति, अश्रुपातं च करोति। मानव इव लताः, पादपाः, मेघाः, तडित्, नद्यः, सागराः सर्वेऽपि सुख-दुःख-हर्ष-विषाद-संयोग-वियोगादि-मानवीयभावान् अनुभवन्तीति प्रकृतेः मानवीकरणमपि वेदेषु दृश्यन्ते। ऋग्वेदस्य उषःसूक्ते, नदीसूक्ते, पर्जन्यसूक्ते, आपःसूक्ते, ओषधिसूक्ते च प्रकृतिवर्णनस्य प्रभूतान्युदाहरणानि समुपलभ्यन्ते। यजुर्वेदीयसूर्यसूक्ते सूर्योदयस्य, भूमिसूक्ते भूमेः, यत्र तत्र पयसः, वृष्टेः, वायोः, ओषधीनां च चारुतमं चित्रणं विहितमस्ति। एवमेव सामवेदे अथर्ववेदे च वृष्टिसूक्त-आपः-सूक्तपृथिवीसूक्त-वनस्पति-प्रभृतिसूक्तानि प्रकृतेश्चारुतराणि रमणीयानि चित्राणि प्रस्तुवन्ति। सामवेदीयरात्रिसूक्ते तु रात्रिः दिनस्य प्रेयसी युवतीव चित्रिता। विस्तरभयात् शोधप्रबन्धोऽयं केवलं वैदिकवाङ्मयस्य संहिताभागमेवाधृत्य प्रस्तूयते।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

V-32

वेदों में पुनरुक्ति की समस्या का समाधान

डॉ० सत्यदेव निगमालंकार, हरिद्वार

वेद अध्येता को वेदाध्ययन काल में पुनरुक्ति की समस्या घेर लेती है। एक ही मन्त्र अथवा मन्त्रांश उसी वेद में अथवा अन्य वेदों में एक बार अथवा अनेक बार जब पाया जाता है, तब कथमेवं की समस्या खड़ी हो जाती है। कहीं-कहीं तो सम्पूर्ण सूक्त पुनरुक्त है, कहीं-कहीं अनेकों सम्मिलित मन्त्र एक ही साथ अन्यत्र देखे जाते हैं। यद्यपि आचार्य यास्क, सायण आदि ने इस विषय का समाधान देने का प्रयास किया है, पुनरपि प्रस्तुत लेख में अनेक पुनरुक्त स्थलों को संकलित कर प्रसंग भेद से पुनरुक्ति दोष के निवारण का मार्ग ढूँढा गया है। काव्यशास्त्र के अनेक उदाहरण देकर लेख को आकर्षक बनाया गया है। काव्य की विभिन्न शैलियों के आधार से वेदों में पुनरुक्ति की समस्या का समाधान निकाला गया है, जो हृदयग्राही है।

❖

V-33

वेद शास्त्रों का सारगर्भित रूप : गायत्री

डॉ० विभा शुक्ला

गायत्र्येव मता माता वेदानां शास्त्रसम्पदाम्।
चत्वारोऽपि समुत्पन्ना वेदास्त्वस्या असंशयम्॥

अर्थात्—शास्त्रों की सम्पत्ति रूप वेदों की माता गायत्री ही मानी गई है, निश्चित रूप से चारों ही वेद इनसे उत्पन्न हुए हैं।

वेद कहते हैं ज्ञान को और ज्ञान के चार भेद हैं—ऋक्, यजु, साम और अथर्व।

जो ज्ञान माँ गायत्री के गर्भ में है, वह इतना सर्वांगपूर्ण एवं परिमार्जित है कि यदि मनुष्य उसे भली प्रकार समझ ले और अनपे जीवन में व्यवहार करे, तो उसके लोक-परलोक सब प्रकार से सुख शान्तिमय बन सकते हैं।

गायत्री छन्दसामहम्। अर्थात् छन्दों में गायत्री छन्द मैं हूँ।

भूर्भुवः स्वरिति चैव चतुर्विंशांक्षरास्तथा।
गायत्री चतुरो वेदा ओंकारः सर्वमेव तु॥

अर्थात्—भूर्भवः स्वः यह तीन महाव्यहृतियाँ चौबीस अक्षर वाली गायत्री तथा चारों वेद निःसन्देह ओंकार (ब्रह्म) स्वरूप हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवगुरु बृहस्पति जी का मत है कि देवत्व और अमृतत्व आदि की जननी गायत्री है। इसे प्राप्त करने के पश्चात् कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता है।

सूर्य को वीर्य पृथ्वी को रज कहा गया है। सूर्य की शक्ति से संसार की सब क्रियायें होती हैं। इसी प्रकार आत्मा अपनी क्रियाशीलता द्वारा विविध प्रकार की परिस्थितियाँ उत्पन्न करती हैं। प्रारब्ध, भाग्य, दैव आदि भी अपने प्राचीन कर्मों का परिपाक मात्र है। इसलिये अपने लिए जैसी परिस्थिति अच्छी लगती है, उसी के योग्य अपने को बनाना चाहिये।

'गायत्री प्रत्यग्ब्रह्मैक्यबोधिका'। अर्थात्—गायत्री प्रत्यक्ष अद्वैत ब्रह्म बोधक है। संसार की जन्मदात्री प्रकृति है और जगत् का पालनकर्ता पुरुष है। जगत् में पिता से माता सौ गुनी अधिक श्रेष्ठ है।

इस प्रमाणों से स्पष्ट हो जाता है कि ब्रह्मा ही गायत्री है और गायत्री की उपासना ही ब्रह्म-प्राप्ति का सर्वोत्तम मार्ग है।

❖

V-34

वैदिक साहित्य में धर्म दर्शन

डॉ० बालकृष्ण शर्मा, मुजफ्फरपुर

धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—इस पुरुषार्थचतुष्टय में धर्म को ही प्राधान्य मिला है। धर्म शेष तीन पुरुषार्थों में अनुस्यूत है। उक्त पुरुषार्थचतुष्टय की सिद्धि में इसका योगदान सर्वोपरि है। धर्म ही अर्थ, काम और मोक्ष को नियन्त्रित एवं संतुलित बनाता है। धर्म एक ऐसी व्यवस्था है, जो समाज को मर्यादित एवं अनुशिष्ट बनाती है। धर्म का पालन न्याय से पृथक् होकर करना प्रायः असम्भव है; क्योंकि धर्म न्याय पर आश्रित है। न्याय और धर्म के परस्पर एक दूसरे के पूरक होने के कारण कभी-कभी 'धर्म' शब्द को 'न्याय' के अर्थ में भी ग्रहण किया जाता है। शब्द कोशों में 'धर्म' शब्द के अनेक अर्थ हैं—आचार, नियम (कानून), कर्त्तव्य, न्याय तथा नैतिक गुण आदि।

वैदिक साहित्य में 'धर्म' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम उपलब्ध होता है, जो विविधार्थ में गृहीत हुआ है। यथा—कहीं स्वभाव अर्थ में, कहीं पर विधि अर्थ में, कहीं निश्चित नियम अर्थ में तथा कहीं यज्ञानुष्ठान अर्थ में भी दृष्टिगत होता है। सत्य और ऋत ये दोनों धर्म के स्कन्ध रूप में मान्य हैं। यजुर्वेद में धर्म शब्द का प्रयोग धारण और धारक (स्वरूप) अर्थ में उपलब्ध होता है। अथर्ववेद में धर्म शब्द का प्रयोग—'धार्मिक क्रिया तथा संस्कारों से अर्जित गुण' के अर्थ में किया गया है। ऐतरेय ब्राह्मण में धर्म शब्द का प्रयोग—'समस्त धार्मिक कर्त्तव्य' अर्थ में हुआ है। अथर्ववेद में धर्म की विशद व्याख्या की गई है, यहाँ धर्म का लक्षण बतलाते हुए कहा गया है कि, पराक्रम, प्रगल्भता, सुख-दुःखादि, हानि-लाभ आदि की प्राप्ति में भी हर्ष शोकादि छोड़कर सत्य धर्म में दृढ़ रहना, दुःख का निवारण और सहन करना, ब्रह्मचर्यादि अच्छे नियमों से शरीर का आरोग्य, बुद्धि-चातुर्य आदि बल का बढ़ाना, सत्यविद्या वेद की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा, कोमल प्रिय भाषण करना, इन्द्रियों को पापकर्मों से रोककर सदा सत्य पुरुषार्थों में प्रवृत्त रखना तथा न्याय से युक्त होकर पक्षपातरहित सत्य का आचरण और असत्य का त्याग करना ही धर्म है। (अथर्ववेद, 11.07.17)

उत्तर वैदिक काल में उपनिषद् साहित्य में धर्म शब्द का प्रयोग एक महत्त्वपूर्ण अर्थ में मिलता है जो पश्चाद्वर्ती धर्मशास्त्र में उपलब्ध आश्रम व्यवस्था की पूर्वपृठिका है। छान्दोग्योपनिषद् में धर्म की तीन शाखाएँ हैं—यज्ञ, अध्ययन और दान।

बृहदारण्योकोपनिषद् के अनुसार ब्रह्मा ने श्रेयःस्वरूप धर्म की संरचना की थी। धर्म क्षेत्र का भी क्षेत्र है, बल का भी बल है; क्योंकि धर्म से परे कुछ भी नहीं है। (बृहद्., 01.04.11.14)

वस्तुतः वेदों में धर्म दर्शन से सम्बन्धित अनेक बहुमूल्य विचारों का प्रकथन विविध स्थलों पर भिन्न-भिन्न प्रकार से हुआ है। परवर्ती धर्मशास्त्रों का आधार वेद ही है।

❖

V-35

अथर्ववेद में नीतितत्त्व

सुश्री लीला चौहान, अलीगढ़

वैदिक साहित्य ज्ञान का अक्षय तथा प्राचीनतम स्रोत माना गया है। वैदिक काल में 'वेद' शब्द को वाङ्मय के पर्यायवाची अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। अतः वेद सभी शास्त्रों का मूल ग्रन्थ है, इसलिए नीतिशास्त्र को भी 'वेद' शब्द के अन्तर्गत समझना चाहिए। नीतिशास्त्र दर्शन का अभिन्न अंग है, किन्तु कालान्तर में नीतिशास्त्र को एक अलग शास्त्र के रूप में अभिहित किया गया।

नीतिः—नीयन्ते प्राप्यन्ते लभ्यन्ते अवगम्यन्ते धर्मार्थकामोक्षोपाया अनया अस्यां वा इति अर्थात् धर्म, अर्थ, काम मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थों तथा इन्हें प्राप्त करने के लिए उपायों का निर्देश जिसके द्वारा अथवा जिसमें होता है, उसे नीति कहते हैं। 'णीञ प्रापणे' इस अर्थ में णी(नी) धातु से यह शब्द निष्पन्न होता है। 'नी' धातु का तात्पर्य ले जाना, पथ प्रदर्शन करना अथवा दिग्दर्शन कराना है।

मानव अपनी बुद्धिशीलता के कारण जो व्यवहार करता है, उस व्यवहार को मानव का आचरण कहा जाता है। आचरण सदाचार का पर्याय है और सदाचार नीति का पर्याय है। आचरण मानव की ऐच्छिक क्रिया है, जो सीखकर सोच-विचार कर या जान-बूझकर की जाती है। समाज में व्यक्ति, समाज, जाति, परिवार, राष्ट्र आदि भिन्न-भिन्न घटक होते हैं। इसमें मानव को किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए, इस सम्बन्ध में जो नियम प्रयुक्त किये जाते हैं, वे नीतिशास्त्र की संज्ञा में आते हैं, प्राचीन समय में नीतिशास्त्र को धर्मशास्त्र, राजधर्म, दण्डनीति और अर्थशास्त्र आदि नामों से व्यवहृत किया गया है। नीतिशास्त्र मनुष्य से अभिप्रेत होकर मानव अन्य तत्त्व को जानने की चेष्टा करता है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

V-36

भौतिकता के युग में अनिवार्यता ऊँकार की

डॉ० सुमनलता रस्तोगी, कानपुर

वेद प्रकृति के उन्मुक्त प्राङ्गण में रचित वे ग्रन्थ हैं, जो सदैव हर क्षेत्र में मानव जाति का मार्ग दर्शन करते रहे हैं। वर्तमान युग में इस पतनोन्मुख समाज में वैदिक ज्ञान लुप्त प्राय हो रहा है, वेद विरुद्ध अनेक मत-मतान्तरों का जन्म हो रहा है, जो देश समाज व पूरी मानव जाति को अन्धकार के गर्त में ले जा रहा है। तब आवश्यकता ही नहीं अनिवार्यता है मात्र एक अक्षर 'ॐ' की। 'ॐ' ही वह एक अक्षर है जो सम्पूर्ण सृष्टि को स्वयं में समाये हुए है। सीमित में असीम और गागर मे सागर को समेटे हुए यह एक ऐसा बीजाक्षर है, जो अपने अन्दर ईश्वरत्व को सम्पूर्ण और व्यापक रूप में धारण किये हुए है। मात्र वेद ने ही नहीं, अपितु विभिन्न अध्यात्मवेत्ताओं और अध्यात्मशास्त्रों ने पग-पग पर 'ॐ' की महिमा के गीत गाये हैं।

इस प्रकार हिन्दू धर्म के विभिन्न अध्यात्मशास्त्रों के साथ-साथ इस्लाम, ईसाई, बौद्ध, सिक्ख तथा जैन आदि धर्मो में कुछ परिवर्तन रूप में ओङ्कार का वर्णन मिलता है। ईसाई धर्म के 'असीम' और इस्लाम के 'अर्द्ध चन्द्र' की उत्पत्ति 'ओम्' से मानी गयी है। सिक्ख धर्म में 'एक ओङ्कार सद्गुरु प्रसाद' कह कर नतमस्तक होते हैं। बौद्ध धर्म में 'ओम् मणि पद्मे हुम' का उच्चारण किया जाता है। जैन धर्म में ओऽम् को 'पंचपरमेष्ठि का वाचक' तथा 'सिद्ध चक्र यन्त्र' का 'बीज मन्त्र' माना गया है।

ओङ्कार परब्रह्म का वाचक ध्यान बीज है। इसका किसी भी समय और किसी भी परिस्थिति में ध्यान किया जा सकता है; क्योंकि यह स्वेच्छा से निस्सृत हो जाता है। सभी वेद उपनिषद् और सभी धर्म ग्रन्थ इसकी महिमा का गुणगान करते हैं। सभी वैदिक मन्त्र इस 'ओम्' शब्द के बाद ही उच्चरित होते हैं। गायत्री महामंत्र में भी सर्वप्रथम इसी को स्थान प्राप्त है। इसके बाद ही व्याहृतियाँ एवं मूल मन्त्र है तथा महामृत्युञ्जय मन्त्र भी इसके बिना अधूरा है।

❖

V-37

वैदिककालीन पर्यावरण जागरुकता एवं छोटानागपुर की जनजातियों द्वारा पर्यावरण संरक्षण : एक अध्ययन

डॉ० भावना मौर्य, राँची

पर्यावरण प्रकृति का पर्याय है। प्राचीन भारत में पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाने के लिए हमारे मनीषियों ने कुछ निर्देश व विधान प्रस्तुत किये थे, जिसके फलस्वरूप प्रकृति भी मनुष्य की परम्परा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी। प्रकृति के अंगों उपांगों को देवता के रूप में मानने की परम्परा वैदिक काल की विशेषता थी। यजुर्वेद में इस भावना को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया है—

'अग्निर्देवता, वातो देवता, सूर्यो देवता, चन्द्रमा देवता, आदि।

वैदिककाल पर्यावरण के लिए स्वर्णयुग था। पर्यावरण के संरक्षण के लिए पेड़-पौधों की सुरक्षा, धार्मिक अनुष्ठानों में यज्ञ, जीव-जन्तुओं की रक्षा, कूप, तड़ाग बनवाना एवं उनका संरक्षण करना अति आवश्यक था। अच्छे स्वास्थ्य के लिए ऋतुओं के अनुसार भोजन एवं वस्त्र का समुचित विधान था। नदियाँ, सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्नि को देवी-देवताओं का स्थान दिया जाता था। खेती के अयोग्य भूमि पर वन लगाने का विधान था, जिससे वनों में जीव-जन्तु रह सकें; क्योंकि जीव-जन्तु पर्यावरण के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। पशु-वध पर रोक लगाया गया था। पृथ्वी की आराधना माँ के रूप में की जाती थी।

आदिवासियों के जीवन में प्रकृति का बहुत महत्त्व है। वे पूर्ण रूप से जंगलों पर निर्भर हैं। जलावन के लिए लकड़ी, कन्दमूल, औषधियाँ आदि इन्हें जंगलों से प्राप्त होती हैं। इसलिए वे जंगल को बचाने में सदैव प्रयासरत रहते हैं।

जनजातियों में गोत्र होते हैं। प्रत्येक गोत्र का नामकरण एक टोटम अथवा गणचिह्न के आधार पर हुआ है। टोटम एक पदार्थ, पशु-पक्षी अथवा पौधा होता है, जिसके प्रति एक सामाजिक समूह के सदस्य विशेष श्रद्धाभाव रखते हैं। छोटानागपुर की कुछ जनजातियाँ जो पक्षी, वनस्पति आदि को अपना टोटम मानते हैं, उसे देवता की तरह पूजते हैं, उसे संरक्षित करने का उपाय करते हैं। समान गोत्र वालों का विवाह नहीं होता है। पति-पत्नी एक दूसरे के टोटम का पूरा आदर करते हैं। इनमें टोटम प्राणियों को न मारने, उसका माँस न खाने, टोटम पेड़ का फल न खाने, टोटम प्राणी की मृत्यु पर शोक प्रकट करने, टोटम के चित्र को शरीर पर गोदना के रूप में गोदवाने तथा घर की दीवारों पर उसके चित्र को बनवाने की प्रथा प्रचलित है।

इनके पर्व त्योहार प्रकृति से जुड़े हैं। जैसे कि करमा पर्व में करम के पौधे की पूजा भाई की सुख-समृद्धि के लिए बहनें करती हैं। सरहुल पर्व में समुआ के फूल की पूजा करके उसे प्रसाद के रूप में घर-घर देते हैं। अतः इन पौधों की रक्षा करना इनका धार्मिक कर्त्तव्य बन जाता है। वन और वनों में रहने वाली जनजातियाँ एक दूसरे के पूरक हैं।

❖

V-38

उपनिषदों में शान्तिपाठ

डॉ० इन्दुप्रकाश मिश्र 'इन्दु', इलाहाबाद

सम्पूर्ण विश्व साहित्य का आधार ग्रन्थ है वेद और वेद का अन्त है वेदान्त, जिसे उपनिषद् कहा जाता है। उपनिषद् ज्ञान के भण्डार हैं। सम्प्रति भारत वर्ष में ईश, केन, कठ, मुण्ड, माण्डूक्य, ऐतरेय,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्न, तैत्तिरीय, श्वेताश्वर छान्दोग्य एवं बृहदारण्यक उपनिषद् का ही अध्ययन-अध्यापन हो रहा है। प्राप्ति की दृष्टि से विद्वानों ने एक सौ आठ से लेकर दो सौ उपनिषदों का दावा किया है; किन्तु उपरोक्त ग्यारह उपनिषद् ही प्राप्त हैं।

वर्तमान विश्व में जहाँ भ्रष्टाचार भस्मासुर की तरह शिव रूप संसार को समाप्त करने पर तुल गया है, वहाँ पर आवश्यक हो गया है कि हम भारत के लोग वेदों और उपनिषदों की ओर लौटें। वेद और उपनिषद् आश्रम व्यवस्था एवं वर्ण-व्यवस्था में रहने वाले उस विश्व समुदाय के लिए हैं, जिसके हृदय में विश्वबन्धुता, प्रेम, अपनापन, सह-अस्तित्व, सहकार, संवाद, सहयोग भरा है, जिसके मन में संयम, सङ्कल्प, साधना, सदाचार समरसता और सम्पूर्ण प्राणिसमुदाय के लिए स्नेह है, समत्व है, सन्तुलन है।

शान्ति का तात्पर्य निश्चेष्ट रहने से नहीं, अपितु समुचित प्राकृतिक नियमों के पालन एवं सनातन सुख समृद्धि और अनश्वर सुसंस्कृत आचरणों से है। सभी प्राणी आकाश पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र एवं सम्पूर्ण पर्यावरण से ही अस्तित्व में हैं, सबका अस्तित्व बना रहे, हम सब भी पीढ़ी दर पीढ़ी बने रहे, शान्ति पाठ इस दृष्टि से न केवल पढ़ने के लिए, अपितु जीवन विधान, भावनात्मक एवं व्यावहारिक शास्त्रीय संविधान समझने के लिए भी है, ऐसा करके ही हम कर्म करते हुए सौ वर्ष जी सकते हैं, विश्व को आतङ्क अपहरण, शोषण और अनेकशः अनाचारों से सुरक्षित कर सकते हैं।

❖

V-39

विश्व वृक्ष और वेद

श्री अरुण कुमार उपाध्याय, उड़िसा

भगवद् गीता के 15वें अध्याय के प्रथम श्लोक में कहा गया है कि वेद को वही समझ सकता है, जो विपरीत वृक्ष को समझता है। इस वृक्ष का मूल ऊपर तथा शाखायें नीचे हैं तथा छन्द (सीमाबद्ध रचनायें या छन्दोबद्ध वेद शब्द) पत्ते हैं। वृक्ष अर्थात् मूल से विविध रूपों की सृष्टि का क्रम अविनाशी है। छन्द पत्रों के समान अपेक्षाकृत क्षणभंगुर हैं। इस वृक्ष का आधिदैविक रूप है, सृष्टि में विश्वों के 5 पर्व जो मण्डलाकार हैं—स्वायम्भुव, परमेष्ठी, सौर, चान्द्र तथा पृथ्वी। इनके देवता क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, सोम तथा अग्नि हैं। इनके अक्षर माहेश्वरसूत्रों के मूल 5 स्वर हैं, जो स्वर्णमण्डल के प्रतीक हैं—अ इ उ(ण्)। ऋ ऌ(क्)। इसकी प्रतिमारूप मनुष्य शरीर में विशुद्धि (कण्ठ) से मूलाधार (लिंग तथा गुदा के मध्य) 5 चक्रों के बीज मन्त्र 5 मूल स्वरों के संवर्ण अन्तःस्थ अक्षर हैं—हयवर(ट्)। ल(ण्)। अन्तःस्थः वर्ण आन्तरिक या आध्यात्मिक वृक्ष का क्रम बताते हैं। इन दोनों वृक्षों का मिलाजुला प्रभाव है आधिभौतिक वृक्ष। आकाश के 7 लोकों की तरह पृथ्वी पर 7 लोक तथा उसकी विपरीत दिशा में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

7 तल हैं। इन वृक्षों का वर्णन तथा उनका सम्बन्ध ही वेद है। वेद मन्त्र के तीनों प्रकार के अर्थ होते हैं। सृष्टि रूपी वेद का ही प्रतिरूप शब्दवेद है, जिसकी रचना स्वायम्भुव मनु द्वारा 29000 वर्ष ई.पू. में हुयी तथा 3140 वर्ष ई.पू. के कृष्ण द्वैपायन तक 28 व्यासों ने उसका संकलन सम्पादन किया।

❖

V-40

वेदों में आचार-निरूपण : वर्तमान सन्दर्भ में

डॉ० इन्द्रा रानी गुप्ता, फीरोजाबाद

'आचार मानव-जीवन का सार है' जीवन के सम्यक् व उत्कृष्ट संचालन के लिए आचारों की आवश्यकता है। आचारवान् मनुष्य ही संसार में यश; आयु, सुख सब कुछ प्राप्त करता है तथा आचारहीन मनुष्य इन सब वस्तुओं से वंचित रहता है। 'आचार' शब्द अत्यधिक व्यापक अर्थ वाला है, जिसके अन्तर्गत धर्म-नीति तथा ग्राह्य त्याज्य कर्म आदि का समावेश है। आज मनुष्य भौतिकता एवं विलासिता की ओर दौड़ रहा है; परन्तु उसने अपनी आध्यात्मिक दृष्टि को बन्द कर रखा है। मनुष्य केवल 'स्वहिताय' एवं 'स्वसुखाय' की लिप्सा से ओत-प्रोत होकर येन-केन-प्रकारेण धनार्जनाय प्रयासशील है। उसके जीवन से धर्म, दया, सत्य, अहिंसा, मैत्री, मातृभाव, लज्जा, सहिष्णुता, परहित, शौच आदि गुण लुप्त हो गये है तथा अधर्म, मिथ्यावचन, हिंसा, द्वेष, घृणा, स्वहित तथा अशौच आदि गुणों ने अपना स्थान बना लिया है। ऐसी स्थिति में मानव स्वयं अशान्त एवं दुःखी होकर भ्रमित हो गया है।

ऐसी विषम परिस्थिति में वेद मनुष्य को दिशानिर्देश कर सकते हैं, जहाँ प्रत्येक मन्त्र हीं आचार-रत्न से भरा पड़ा है। वैदिक ऋषि ऋत, सत्य अहिंसा, सर्वकल्याण, मैत्री आदि गुणों से परिपूर्ण है। वह शुभकार्य करने तथा अशुभ कार्य न करने की बात कहता है। वह कहता है—'तन्मे मनः शिव-सङ्कल्पमस्तु' कितनी सुन्दर धारणा है। वैदिक ऋचाओं में श्रद्धा, नमन, पूजन, समर्पण, परकल्याण, के साथ ही परिवार के प्रत्येक सदस्य के लिए आचार निहित हैं। साथ ही परिवार में वृद्ध, बुजुर्ग तथा नारी के लिए भी आदरभाव है। इतना ही नहीं समाज के प्रति भी हर व्यक्ति का आचार क्या हो? इस विषय में भी वेदों में पर्याप्त मन्त्र हैं। राजा का महत्त्व उससे प्रजा का सम्बन्ध तथा प्रजा के प्रति राजा के कर्त्तव्यों का भी यहाँ निदर्शन है।

वर्तमान विषम पतनोन्मुख स्थिति में वेद ही भ्रमित मानव को जो आचारों की ओर से मृतप्राय है, उसे जीवन को आचारों के प्रकाश से पुनरुज्जीवित एवं प्रकाशित कर सकते हैं, जिससे मानव स्वकल्याण करते हुए अखिल विश्व के हित हेतु प्रयास कर सकता है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

V-41

भारतीय कलाओं में सोलह कलाओं की रहस्यमयता

डॉ० रामबहादुर शुक्ल, जम्मू कश्मीर

निःसंदेह भारतीय कलाओं के स्रोत वेद एवं उपनषिद् हैं, क्योंकि वैदिककालीन समन महोत्सव के सन्दर्भ में विविध कलाओं यथा—संगीत, नृत्य कवित्वप्रदर्शन के अतिरिक्त अश्वारोहण, धनुर्विद्या, आखेट, अक्षक्रीड़ा, द्यूतक्रीड़ा आदि प्रतियोगिताओं के संकेत यत्र-तत्र देखने को मिलते हैं (ऋ. 4।58।8, 6।75।3, अथर्व. 2।36।1, 6।92।2, बाज. सं. 9।9)। यही समन महाभारतकाल में 'समज्जा' नाम से लोकप्रिय हुआ। परन्तु सभी कलाओं का क्रमबद्ध विवेचन वात्स्यायन कृत कामसूत्र, बौद्धों के ग्रन्थ ललितविस्तर, जैनों के समवायाङ्गसूत्र, औपपातिक सूत्र, कल्पसूत्र एवं कालिकापुराण में मिलता है। कामसूत्र में प्राप्त 64 कलाओं को परवर्ती विद्वानों यथा—कामन्दक ने अपने नीतिसार एवं क्षेमेन्द्र ने अपने 'कलाविलास' नामक ग्रन्थ में मान्यता प्रदान की है, जबकि बौद्धों के महायान सम्प्रदाय के ग्रन्थ ललितविस्तर के शिल्पसंदर्शन में 89 कलाओं के विवरण की उपस्थिति के साथ-साथ यह भी वर्णन मिलता है कि राजकुमार सिद्धार्थ ने इन सभी में निपुणता प्राप्त की थी। जैनों के समवायांगसूत्र तथा औपपातिकसूत्र में जहाँ 72 कलाओं का विवेचन मिलता है, वहीं कल्पसूत्र तथा कालिकापुराण जैसे जैनी ग्रन्थों में 64 कलाओं को ही मान्यता प्रदान की गयी है, जिनसे मानव बाह्यपक्ष में निखार ला सकता है।

❖

V-42

वैदिक प्रातिशाख्यशास्त्र एवं व्याकरणशास्त्र का अन्तःसम्बन्ध

डॉ. गोपाल प्रसाद शर्मा, नई दिल्ली

जपादौ नाधिकारोऽस्ति सम्यक्पाठमजानतः।
प्रातिशाख्यमतो ज्ञेयं सम्यक्पाठस्य सिद्धये॥

मन्त्रों का उच्चारण शुद्ध हो, इस उद्देश्य से प्रत्येक वेद के लिये अलग-अलग प्रातिशाख्य हैं। जैसे कि वाजसनेयी प्रातिशाख्य का सम्बन्ध शुक्ल यजुर्वेद से है। भाष्यकार अनन्त भट्ट के अनुसार शाखायां शाखायां भवं प्रातिशाख्यम्। प्रतिशाखायां भवं प्रातिशायम्। प्रत्येक प्रातिशाख्य मुख्यतया वेद की किसी एक शाखा का प्रतिनिधत्व करता है। प्रत्येक वेद के उच्चारण की विशिष्ट परम्परा है। उसी विशिष्ट पारम्परिक उच्चारण परम्परा को सुरक्षित एवं व्यवस्थित रखने के लिये प्रातिशाख्य का ज्ञान आवश्यक है। प्रातिशाख्यों की गणना वेद के षडङ्ग के अन्तर्गत तो नहीं की गयी है। परन्तु इन्हें वेद के उपाङ्ग के रूप में हम मानते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याकरण वेद का मुख्य स्थानीय अङ्ग है। अङ्ग से ही अङ्गी की पुष्टि होती है। अङ्ग के अभाव में अङ्गी सर्वाङ्ग परिपूर्ण नहीं कहा जाता है।

प्रातिशाख्य एवं व्याकरण दोनों सूत्र शैली में लिखे गये हैं। सूत्रों की यह विशेषता होती है कि वे संक्षिप्त एवं निश्चित अर्थ को प्रकट करने के लिये उन में पारिभाषिक शब्दों का विधान किया जाता है। ऐसे शब्द ग्रन्थ में एक स्थान पर कहे जाते हैं। बाद में जहाँ जहाँ उनकी आवश्यकता होती है, वहाँ वहाँ उन्हीं पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया जाता है। इस सूत्र शैली की दृष्टि से दोनों शास्त्रों समानता है। इन्हीं विषयों का विवेचन इस शोध निबन्ध में प्रस्तुत किया गया है।

❖

V-43

ऋग्वेद-प्रातिशाख्य में निरूपित उच्चारण दोष

डॉ. प्रज्ञा जोगेश जोषी, अहमदाबाद

ऋग्वेद-प्रातिशाख्य प्राचीनता, प्रामाणिकता तथा विषय के विस्तृत एवं वैज्ञानिक अध्ययन की दृष्टि से सभी प्रातिशाख्य ग्रन्थों में शीर्ष स्थानीय है। इसमें आचार्य शौनक ने ऋग्वेदसंहिता के बाह्य स्वरूप के विषय में अत्यन्त सूक्ष्म एवं वैज्ञानिक नियमों का निमार्ण किया है। शौनक के नियमों की कृपा से ही ऋग्वेदसंहिता के बाह्य स्वरूप की रक्षा सम्भव हो सकी है।

ऋग्वेद प्रातिशाख्य के चतुर्दश पटल में उच्चारण में होने वाले दोषों का वर्णन किया गया है। ऋग्वेद प्रातिशाख्य का यह पटल अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि भारतीय साहित्य में अन्यत्र कहीं भी वर्णों के उच्चारण में होने वाले दोषों का इतना विस्तृत एवं सूक्ष्म विवेचन किया गया है। इस पटल में उच्चारण के स्वरूप को सोदाहरण समझाया गया है और अधिकांश दोषों को विशिष्ट संज्ञायें भी प्रदान की गई है।

संक्षेप में प्रस्तुत लेख में ऋग्वेद प्रातिशाख्य के चतुर्दश पटल में निरूपित उच्चारण-दोष का विस्तृत अध्ययन किया गया है।

❖

V-44

वैदिक संहिताओं में विज्ञान

प्रो. वेद प्रकाश उपाध्याय, चण्डीगढ़

वैदिकसाहित्य का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है, जो संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् नाम से अभिहित है। वैदिक संहिताएँ चार हैं, जो ऋग्वेद, यजुर्वेद सामवेद और अथर्ववेद नाम से विश्रुत हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन संहिताओं में ईश्वर और धर्मविषयक, व्यावहारिक, वैज्ञानिक, कर्त्तव्यशास्त्र तथा समाजशास्त्र सम्बन्धी ज्ञान का कोष विद्यमान है। वास्तव में वैदिककाल में भूगर्भविद्या, गणित, ज्योतिषशास्त्र, खगोलशास्त्र और रसायनशास्त्र आदि विषय आधिदैविक आदि विषय अध्यात्मिक शब्द से व्यवहृत रहे हैं। वैज्ञानिक विषयों से सम्बन्धित अधिकांश ग्रन्थ विलुप्त हो चुके हैं, किन्तु वैदिक ग्रन्थों में इन विद्याओं के व्यापक ज्ञान के संकेत उपलब्ध होते हैं। वेदों के कुछ स्थलों पर इतने उत्कृष्ट वैज्ञानिक तथ्य मिलते हैं, जिससे तत्कालीन वैज्ञानिक उत्कृष्टता का ज्ञान प्राप्त होता है, जिस तक अमेरिका और योरोप के वैज्ञानिक भी नहीं पहुँच पाए हैं। वेदों में प्राप्त वैज्ञानिक संकेत इतने दुरूह हैं कि उपलब्ध भाष्यों से भी उनका सम्यक् ज्ञान नहीं हो पाता, जिसका कारण यह प्रतीत होता है कि भाष्यकारों को उपर्युक्त वैज्ञानिक विषयों का विधिवत् ज्ञान नहीं था। जैसा कि आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति ने 'वेद और उसकी वैज्ञानिकता भारतीय मनीषा के परिप्रेक्ष्य में नामक ग्रन्थ में प्रतिपादित किया है (पृ. 352)। जब तक किसी भाष्यकार को इन सभी विद्याओं का ज्ञान नहीं होगा, तब तक वह सुग्राह्य और सन्तोषजनक भाष्य नहीं कह सकता, अतः यह स्पष्ट है कि वेदों में उपलब्ध भूगर्भशास्त्र, वाणिज्य, कृषिविज्ञान, गणित, ज्योतिष, जलविज्ञान, अग्निविज्ञान, प्राणिविज्ञान, वनस्पतिशास्त्र, भौतिकविज्ञान, युद्धविज्ञान, खगोलविज्ञान और आयुर्विज्ञान का सुव्यवस्थित ज्ञान जिस व्यक्ति को होगा, वही उपयुक्त वेदभाष्यकार बन सकता है और ऐसे ही भाष्यकार के भाष्य को प्रामाणिक माना जा सकता है।

❖

V-45

अथर्ववेद एवं चिकित्सा-तत्त्व

डॉ. दीनानाथ 'आचार्य', दरभंगा

मानव-धर्म, संस्कृति, सभ्यता और ज्ञान-विज्ञान का विशाल प्रासाद विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ वेद की दृढ़ आधारशिला पर सुप्रतिष्ठित है। मनु ने वेदों को सर्वज्ञानमय एवं समस्त धर्मों का मूल ग्रन्थ कहा है—

सर्वज्ञानमयो हि सः' (मनुस्मृति-2/7), 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्' (मनुस्मृति-2/6)।

मानव धर्मों का पालन स्वस्थ शरीर द्वारा ही संभव है, अतः कहा गया है—'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' (कुमारसंभव-5/33)। यद्यपि चारों वैदिक संहिताओं में स्वास्थ्यपरक वर्णन अल्पाधिक उपलब्ध होता है, पुनरपि ऋग्वेद की अपेक्षा अथर्ववेद में चिकित्सा एवं औषधि का वर्णन विशदता से प्राप्त है। अथर्ववेद (11/4/16) में चार प्रकार की चिकित्सा—1. आथर्वणी, 2. आंगिरसी, 3. दैवी एवं, 4. मनुष्यजा का संकेत मिलता है, जो आगे चलकर आयुर्वेद की अष्टाङ्ग चिकित्सा—1. शल्य-चिकित्सा, 2. शालाक्य-चिकित्सा, 3. काय-चिकित्सा, 4. भूत-विद्या, 5. कौमारभृत्य, 6. अगद-तन्त्र, 7. रसायन-तन्त्र एवं 8. वाजीकरण के अन्तर्गत विभाजित होकर विस्तार को प्राप्त किया है। अथर्ववेद

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में चिकित्सा के तत्त्व बीज रूप में उपलब्ध है, जिनका अध्ययन इस शोध-लेख में करने का प्रयास किया गया है।

❖

V-46

वेदोक्त मधुविद्या

डॉ. कृष्णचन्द्र झा, दरभंगा

वैदिक विद्याओं में मधुविद्या का महत्त्वपूर्ण स्थान है। श्रुति विष्णु के पद को मधु का परम-उत्स मानती है। विष्णु त्रिपाद विभूति हैं तथा सच्चिदानन्द स्वरूप विष्णु की लीला-वैचित्र्य का प्राकट्य होता है ऋग्वेद के अनुसार विष्णु नामक गोप रक्षक ने अपने तीन पदों से पृथ्वी का अतिक्रमण किया और धर्म को प्रतिष्ठित किया।

श्रुति में अन्तरिक्ष को मधुच्छत्र और सूर्य या सविता को मधु कहा गया है। सूर्य के मधु को प्राप्त करना ही सविताराधकों की परमाराधना है। मधु-कैटभ असुर इस मधु को विकृत करते हैं, जिनका वध, योगमाया की प्रेरणा से विष्णु के द्वारा होता है।

श्रुति भगवती का कथन है कि इन्द्र ब्रह्म के द्वारा मधु वर्षण होता है और जीवात्मा के हृदयकोश में भी मधु की पुष्टि होती है– जिन्वत्कोशमधुश्चुतम्। जिह्वा के द्वारा उसी मधु का पान किया जाता है। ब्रह्मसूत्र के अनुसार मधुविद्या में जैमिनि को अधिकार प्राप्त है। परन्तु इसके अधिकारी सभी नहीं है।

मैथिली याज्ञवल्क्य को मधुविद्या की सिद्धि प्राप्त थी। इन्होंने सूर्योपासना कर शुक्लयजुर्वेद को प्राप्त किया तथा इससे सम्बद्ध बृहदारण्यकोपनिषद् में इस विद्या का पल्लवन किया गया है।

यागवल्क्य ने मैत्रेयी के प्रति मधुविद्या को उपदेशित करते हुए सूर्य, चन्द्र, जल, पृथिवी, धर्म और आत्मादि को सारे प्राणियो के लिए मधु कहा और सम्पूर्ण प्राणी इनके लिए मधु रूप में कथित हुए।

इसी प्रकार बृहदारण्यकोपनिषद् में गायत्री मन्त्र को मधुविद्या से विन्यस्य किया गया है और मधुवत्ता ऋतायते नामक सुप्रसिद्ध मन्त्र को उद्धृत किया गया है।

❖

V-47

वेदों में निहित विश्वशान्ति और राष्ट्रभक्ति

डॉ. आर. सी. त्रिवेदी, राजकोट

देशप्रेम देशोन्नति तथा राष्ट्रीय प्रेम की भावना संस्कृत भाषा में निबद्ध साहित्य में पूर्ण रीति से विकसित है। संस्कृतसाहित्य ही स्वतन्त्र भारत के साहित्यिक चिन्तन की पूर्ण अभिव्यक्ति है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे प्राचीन साहित्य में राष्ट्रीय चेतना को जागृत करते हुए कई मन्त्र हैं। वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना वैदिक युग के लोगों में रही थी। द्यौर्मे पिता पृथ्वी मे माता। ऋग्वेद का वाग्म्भणी सूक्त, संज्ञान सूक्त नदी सूक्त और अथर्ववेद के भूमिसूक्त में हम राष्ट्रभक्ति देख सकते हैं।

ऋग्वेद में पृथ्वी को माता मानते हुए लोग परस्पर ऊँच-नीच के भेदभाव से रहित और समान भ्रातृभाव वाले दिखाये गये हैं और वे परस्पर मिलकर अपने अपने सौभाग्य का निर्माण करते हैं। सुजातसो जनुषा पृथ्विमातरो दिवो मर्या आ नो अच्छा जिगानत। (ऋ. 5.59-6)

नदी सूक्त का अध्ययन करके हम कह सकते हैं कि नदियाँ कल्याण करने वाली सजीव देवता थी और इसलिए उनसे प्रार्थना सुनने तथा कामना पूरा करने के लिए इतना आग्रह किया गया है। आर्य देश की एकता तथा अखण्डता की इससे बढ़कर शोभन कल्पना क्या की जा सकती है?

❖

V-48

भारतीय आचार पद्धति की वैज्ञानिकता

डॉ. रीना अस्थाना

भारतीय जीवन पद्धति में आचार सनातन काल से चला आ रहा है, इस देश के अग्रजन्मा पूत चरित ब्राह्मणों ने पृथिवी के मानवमात्र को उनके देश काल सापेक्ष आचार (चरित्र) की शिक्षा दी है। मर्यादित आचार का पालन करके मनुष्य देवत्व (स्वर्ग) का अधिकारी होता और पालन न करने पर वह अधम योनि (नरक) का पात्र बना।

भारतीय मनीषियों ने आचार पद्धति का निर्माण गहन चिन्तन और पक्षपात रहित सात्त्विक सोच के अत्यन्त उदार मानस से सर्वजनहिताय किया है, यह आचार पद्धति आज अक्षुण्ण और प्रभावी है, इस पद्धति के निर्माण में सहज सुखद और अनुभूत वैज्ञानिक सिद्धान्तों और तथ्य तत्वों का अप्रतिम योग है, इसी वैज्ञानिक योगबल के कारण हमारी भारतीय आचार पद्धति आज भी चिर नवीन शाश्वत मूल्यों से जुड़ी है। इसें शुद्ध अशुद्ध का संबंध जीवन मूल्यों अथवा हमारे संस्कारों से है, जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त मनुष्य अपने परिवेश तथा संस्कारों से प्रभावित रहता है। जिस जीवन पद्धतिं के नियामक पुरुषार्थचतुष्टय धर्म अर्थ काम तथा मोक्ष जैसा चरम उद्देश्य हो उसकी प्राप्ति के लिए मनुष्य का प्रयास भी उतना उत्कृष्ट होना चाहिए।

भारतीय आचार शास्त्र की वैज्ञानिकता का रहस्य है 'देवो भूत्वा देवान् यजेत्'।

अर्थात् देवों का यजन (पूजार्चन) करने के लिए देव बनना पड़ता है, अर्थात् तद्वत् आचरण करना पड़ता है। इन्हीं विषयों को प्रस्तुत शोध पत्र में अभिव्यक्त किया गया है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

V-49

स्त्रियों के वेदानुशीलन के अधिकार की प्रामाणिकता

डॉ. सुनीता जायसवाल, चन्दौली

प्राचीन भारत में नारी की भी पुरुषों की भाँति सभी प्रकार के शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था थी। परन्तु भारतवर्ष के इतिहास में मध्ययुग का एक ऐसा कालखण्ड आया, जिसके दुष्परिणामस्वरूप रूढ़िवादी हठधर्मी व्यक्तियों द्वारा धर्मग्रन्थों में अनर्गल श्लोकों को प्रक्षिप्त कर स्त्रियों के वेदानुशीलन के अधिकार को प्रतिबन्धित कर उन्हें अनाधिकारिणी घोषित कर दिया गया—'नन्वेव सति स्त्री शूद्रसहिता सर्वेऽवेदाधिकारिणः'। किन्तु प्राचीन धर्मग्रन्थों तथा वेदों में इस प्रकार के प्रतिबन्ध कहीं भी दृष्टिगत नहीं होते है।

वैदिक काल में कन्याओं का वेदाध्ययन उपनयन संस्कार से आरम्भ होता था तथा अध्ययनरत छात्राओं की 'ब्रह्मवादिनी' और 'सद्योवधू' नामक दो श्रेणियाँ थी। ब्रह्मवादिनी आजीवन वेदानुशीलन करती थी, जबकि सद्योवधू विवाह के पूर्व तक। वैदिक युग में गार्गी, मैत्रेयी, अपाला, आत्रेयी,भारती, मेना, वयुना, धारिणी, कात्यायनी, काशकृत्स्न तथा वाचक्नवी आदि अनेक प्रसिद्ध ब्रह्मवादिनी तथा विदुषी नारियाँ थी। प्राचीन युग में स्त्रियाँ वेदों का अध्यापन भी करती थीं, जिन्हें 'उपाध्याया' एवं 'आचार्या' कहा जाता था। वैदिक काल में स्त्रियों ने वैदिक मन्त्रों का साक्षात्कार भी किया था। ऋग्वेद की चौबीस ऋषिकाओं वेदों में स्त्रियों को यज्ञानुष्ठान में भाग लेने, यज्ञ करने, यज्ञ में अग्रणी रहने, पति के साथ यज्ञ करने, विवाह काल में वर-वधू दोनों को एक साथ मन्त्रोच्चारण करने का विधान है।

किचित् रुढ़िवादी वितण्डावादियों द्वारा प्रक्षिप्त, प्रतिबन्धक श्लोकों के आधार पर स्त्रियों को ईश्वर, धर्म, उपासना तथा ज्ञान के मौलिक अधिकारों से वंचित कर प्रगतिपथ को अवरुद्ध कर देना बुद्धिहीनता का परिचायक है, जबकि ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, अथर्ववेद सायणभाष्य, ऋग्वेद दयानन्दभाष्य, अस्यवामीयभाष्य, ऐतरेय ब्राह्मण, तैत्तिरीय ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण आदि विभिन्न ग्रन्थों से स्त्रियों के ज्ञान, धर्म, ईश्वरोपासना, यज्ञ एवं कर्मकाण्ड, वेदमन्त्रोच्चारण तथा वेदानुशीलन के अधिकार की प्रामाणिकता पूर्णतः सिद्ध होती है।

❖

V-50

पारस्करगृह्यसूत्रवृत्ति के अज्ञात रचनाकार पं. गंगाधर

डॉ. माया मालवीय, इलाहाबाद

सम्पूर्ण उत्तरभारत में शुक्लयजुर्वेद के पारस्कर गृह्यसूत्र के अनुसार ही समस्त गृह्यकर्मानुष्ठान सम्पन्न होते रहे हैं। इस पर अनेक टीकाओं, पद्धतियों, वृतियों और प्रबन्धों की रचना हुई, जिनमें गर्ग, जयराम,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरिहर, गदाधर और विश्वनाथ की व्याख्यायें प्रसिद्ध हैं। इनमें कुछ सम्पूर्ण और कुछ सम्पूर्ण नहीं भी है। गदाधर का भाष्य दूसरे काण्ड तक ही है। विश्वनाथ की टीका की अन्तिम पाँच कण्डिकाओं की टीका लक्ष्मीधर ने लिखी। ऐसे ही एक वृत्तिकार गंगाधर थे, जिनकी पारस्कर गृह्यसूत्र वृत्ति प्रथम काण्ड की बारहवीं कण्डिका के द्वितीय सूत्र तक ही प्राप्त हो रही है।

पं. गंगाधर वेद शास्त्र, वैदिक, कर्मकाण्ड, धर्मशास्त्र और मीमांसा के प्रकाण्ड विद्वान् थे, यह उनकी वृत्ति से स्पष्ट है। इन्होंने प्रत्येक कण्डिका के अन्त में मंगलाचरण में गुरु गणपति और कात्यायन की वन्दना की है और गर्गमतानुसार वृत्ति करने का संकल्प व्यक्त किया है। वृत्ति में कात्यायन के लिये भगवत और देवयाज्ञिक के लिये आर्यचरण शब्द का प्रयोग किया है।

इनकी जीर्णप्राय वृत्ति को संवत् 1825 में इन्हीं के वंशज बलभद्र के पुत्र देवभद्र ने लिपिबद्ध किया। इन्होंने कण्डिकान्त में लिखा है कि गंगाधर की यह एक मात्र प्रति थी। इसी प्रति से उन्होंने द्वितीय प्रति तैयार की है। इसमें बलभद्र ने 'सापिण्ड्य-निर्णयार्थ' पूरी वंशावली भी दी है, जिसके अनुसार अपने सभी को गौतम सगोत्रीय कहा है और गौतम, अंगिरस और औतथ्य तीन प्रवर भी बताये हैं। पं. गंगाधर नागर जाति के यजुर्वेदीय माध्यन्दिन शाखा के श्रोत्रिय ब्राह्मण और कात्यायनसूत्रानुसार यज्ञ कराने वाले महायाज्ञिक थे। इनके आदि पुरुष महानन्द पाठक थे। उनके पश्चात् रामकृष्ण, नृसिंह और रामचन्द्र थे, जिनके पुत्र स्वयं गंगाधर थे। गंगाधर की 'वृत्ति' के अतिरिक्त प्रकृति-विकृति, याग-काल विवेक, प्रवासकृत्य और पर्वनिर्णय आदि कृतियाँ हैं। पारस्करगृह्यसूत्रवृत्ति अनेक दृष्टि से वैशिष्ट्य युक्त और महत्त्वपूर्ण है।

❖

V-51

ईशावास्योपनिषद्-विश्वशान्ति एवं विश्वबन्धुत्व के सन्दर्भ में

डॉ. (श्रीमती) मनोरमा गुप्ता, कानपुर

वैदिक वाङ्मय भारतीय धर्म तथा दर्शन का प्राणतत्त्व है। भारत को विश्वविख्यात करने वाली ज्ञानराशि के अन्तर्गत उपनिषदों का सर्वोच्च स्थान है। यजुर्वेद की माध्यन्दिनी और काण्व शाखा का अन्तिम 40वाँ अध्याय 'ईशोपनिषद्' है। इसे ईशावास्योपनिषद् तथा वाजसनेयोपनिषद् भी कहा जाता है।

ईशावास्योपनिषद् के 18 श्लोकों की छोटी-सी परिधि में आत्मा का रहस्यात्मक वर्णन, कर्म तथा ज्ञान का पूर्ण समन्वयात्मक रूप परिलक्षित होता है।

ईशावास्यमिदं... इस प्रथम मन्त्र में जीवन के तत्त्वज्ञान की चर्चा है। ईश-आत्मतत्व और जगत् सृष्टितत्व के सम्बन्ध का निरूपण है। प्रथम मन्त्र के प्रथमार्ध में जीवन लक्ष्य की घोषणा है। ईश आत्मतत्त्व जगत् से ओतप्रोत है। अतः जगत् को छोड़कर भागने से आत्मदर्शन नहीं हो सकता। भागने से भगवान् नहीं मिलता। जगत् के भीतर घुसकर देखने से ही ईश-आत्मदर्शन सम्भव है। किस प्रकार जगत् में रहा जाय। इसकी विधि भी बतला दी गयी है—'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' अर्थात् त्यागभाव से, लोभवृत्ति के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परित्याग से, निष्काम भाव से जगत् में बरतने का आदेश-उपदेश इस मन्त्र में दिया है। आवश्यकतानुसार ही संसार की विषयवस्तु के ग्रहण की व्यवस्था है।

ईशावास्योपनिषद् के अट्ठारहों मन्त्र मणिमाला की भाँति एक दूसरे के साथ अभिन्नता से जुड़े हुए हैं। ईशावास्योपनिषद् असत् से सत्, अन्धकार से प्रकाश, अज्ञान से ज्ञान, भौतिकता से आध्यात्मिकता की ओर ले जाने वाली वह विलक्षण संवित् है, जो अनिर्वचनीय आनन्दानुभूति, आत्मा को तदाकारित कर परमानन्द की अनुभूति कराती है।

❖

V-52

वैदिक विचारों की सार्वभौमिकता

डॉ. शशि तिवारी, नई दिल्ली

विश्व के प्राचीनतम साहित्य ऋग्वेदादि वेदसंहिताओं में वैदिक ऋषियों ने व्यापक, अनन्त और सार्वभौमिक ज्ञान को प्रकट किया है। वेद के प्रमुख प्रतिपाद्य को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है—सृष्टिविद्या, यज्ञविद्या, देवविद्या और ब्रह्मविद्या। ये सभी विषय सार्वकालिक और सार्वभौमिक महत्त्व के है। इनमें ब्रह्माण्डीय संरचना, जगत् के मूल कारण, आधार आदि के जो विवेचन मिलते हैं, वे आधुनिक वैज्ञानिक निष्कर्षों से परिपुष्ट होते है और कई माने में उससे भी आगे की बात रखते है।

यदि हम वैदिक विचारों को आलोचनात्मक दृष्टि से देखें, तो अनेक विचार किसी स्थानविशेष या व्यक्तिविशेष के लिये न होकर सब स्थानों पर रहने वाले, सब लोगों के लिए, सर्वदा के लिए कल्याणकारी प्रतीत होते हैं। तदनुसार भूमि पर सभी मानवों का अधिकार है। मनुष्येतर प्राणी और पर्यावरण की सुरक्षा सबका दायित्व है। विश्वशान्ति, विश्वबन्धुत्व, अभय आदि वे उदात्त भाव हैं, जो सर्वकल्याण के आधार हैं। मानवीय अधिकारों और कर्तव्यों की चर्चा और उसके लिए सदाचरण की अनिवार्यता वैदिक मन्त्रों में प्रतिपादित की गयी है। जीवन में सर्वांगीणता के विकास की आवश्यकता पर वेद ने पुनः पुनः बल दिया है, जिसका महत्त्व सबके लिये और सब कहीं है। प्रस्तुत पत्र में इन तथ्यों का विस्तार से प्रतिपादन किया गया है।

❖

V-53

शुनःशेप आख्यान की प्रासङ्गिकता

डॉ. हेरम्ब पाण्डेय, वाराणसी

वैदिक वाङ्मय में संहिताओं के अनन्तर ब्राह्मण ग्रन्थों का स्थान है। ब्राह्मण ग्रन्थों के विशाल प्रतिपाद्य मुख्य रूप से भेदत्रय-विधि, अर्थवाद एवं उपनिषद् में विभाजित हैं। उक्त भेदत्रय में विधिभाग

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का प्राधान्य है। शाबरस्वामी ने अपने भाष्य (2/1/33) में हेतु, निर्वचन, निन्दा आदि जिन दस विधियों की चर्चा की है, उनमें परक्रिया तथा पुराकल्प आख्यान की श्रेणी में माने गये हैं।

आख्यानों का प्राचीनतम रूप संहिताओं में मिलता है। केवल ऋग्वेद में ही दानस्तुतियों के अतिरिक्त लगभग तीस आख्यान स्पष्ट रूप से प्राप्त होते हैं। इनमें शुनःशेप की विशेष प्रसिद्धि है, यद्यपि ऋग्वेद में इसका उल्लेख अतिसंक्षिप्त (क. 1/24 तथा 1/25 के कुछ मन्त्र) रूप में ही हुआ है। शुनःशेप का यह आख्यान विस्तृत रूपेण ऐतरेय ब्राह्मण (7/13-18) में उपलब्ध होता है। शुनःशेप आख्यान राजसूय के समय जलाभिषिक्त यजमान राजा को पुरोहित द्वारा सुनाया जाता था। एक दृष्टि से यह आख्यान कुछ विवादस्पद भी है; क्योंकि इस आख्यान को हिलेब्राण्ट आदि कुछ पश्चिमी विद्वानों ने वैदिक युग में मनुष्य के बलिदान का परिचायक प्रमाण माना है। प्रत्युत्तर में भारतीय विद्वानों ने हिलेब्राण्ट आदि के मानवबलि से सम्बन्धित उक्त विचार का खण्डन किया है। भारतीय विद्वानों का मत है कि हिलेब्राण्ट जैसे पश्चिमी विद्वानों ने यज्ञ के दार्शनिक पक्ष की अवहेलना की है। सनातन धर्म में मानवबलि का विधान कहीं नहीं है। शाङ्खायन श्रौतसूत्र में पुरुषमेध की राजसूय के प्रसङ्ग में योजना का जो उल्लेख मिलता है, वह वास्तविक नहीं, अपितु काल्पनिक तथा प्रतीकात्मक है। राजा के अभिषेक के समय इस आख्यान का पुरोहित द्वारा कथन एक आवश्यक तथ्य की ओर संकेत करता है। राजा के लिए मनुष्य या देव के प्रति की गयी प्रतिज्ञा को निभाना आवश्यक धर्म के समान है। राजा हरिश्चन्द्र ने भी वरुण के सम्मुख पुत्र के बलिदान की प्रतिज्ञा को निष्कृति के दान से निभाकर अपने सत्यसन्ध होने की बात स्पष्टतः प्रमाणित की है। सदैव कर्मरत रहना ही इस आख्यान का प्रमुख उपदेश है। देवों के राजा इन्द्र ने घर लौटते हुए रोहित को रोककर "चरैवेति-चरैवेति" की जो सुन्दर शिक्षा दी है, वह सम्पूर्ण आर्यजाति के अभ्युदय का संबल है। कर्म की कठोर उपासना ही आर्य संस्कृति का मेरुदण्ड है। कर्म के दार्शनिक पक्ष को भी इस आख्यान के माध्यम से प्रतिपादित किया गया है।

❖

V-54

वेदोक्त राष्ट्र

वन्दना, चण्डीगढ़

वेद ज्ञान-विज्ञान के आगार एवं मानव सभ्यता के मूलस्रोत हैं। मानवमात्र को वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय कर्तव्यों का ज्ञान कराकर उसे सुख, शान्ति और आनन्द का सच्चा मार्ग बताना वेदों का पवित्र उद्देश्य है। वेदों में मानव जीवन के विविध पहलुओं की पर्याप्त मीमांसा प्रस्तुत है। राष्ट्र शब्द का अभ्युदय भी हमें प्रथमतः वेदों में ही मिलता है। इनमें राष्ट्र की न केवल परिकल्पना ही वर्णित है, अपितु उसके आधारभूत तत्त्वों, उपयोगिता, महत्ता तथा उसके प्रति लोगों के दायित्वों एवं कर्त्तव्यों का भी भली-भाँति उपदेश दिया गया है। अपनी जन्मभूमि के प्रति रागात्मक भाव के उदय से ही समाज 'राष्ट्र' का नाम धारण करता है। अपनी जन्मभूमि को 'माता' के समान महान् मानकर अत्यन्त उल्लसित

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और प्राणमय छन्दों में उसकी वन्दना की महिमा सर्वप्रथम वेदों में ही उपलब्ध होती है, जो मानव के मन में अपनी जन्मभूमि के प्रति सहज ही श्रद्धा के बीज बो देती है।

राष्ट्र वह अखण्ड ज्योति है, जो व्यक्ति को निजी संकीर्ण स्वार्थों के घनान्धकार से निकालकर मानव प्रेम, समष्टि कल्याण और 'सत्य शिवं सुन्दरम्' के लिए सर्वस्व समर्पित कर देने का उत्साह प्रदान करती है। व्यक्तियों में अपने राष्ट्र के प्रति आत्मीयता, अनुराग, आदर, स्वभिमान एवं कर्त्तव्य की क्रियाशीलता का अभ्युदय ही राष्ट्र है। इस शब्द में देश, राज्य, जाति और संस्कृति के भाव संनिहित हैं तथा आर्यों की महती भावना, मार्मिक और प्रोज्ज्वल अनुभूति निबद्ध है।

यजुर्वेद में वर्णित राष्ट्रीय प्रार्थना तथा अथर्ववेद का भूमिसूक्त राष्ट्रीयता के प्रेरित परिचायक हैं। इनके अतिरिक्त भी वेदों में राष्ट्ररक्षा, स्वराज्यभावना, मातृभाषा के प्रति आदर, जन्मभूमि को माता के समान महान् मानने का भाव, गौ कामना, सत्य, अहिंसा, आदर्श जीवन, पवित्रता, ओजस्वी जीवन आदि सभी पहलुओं पर राष्ट्रवासियों को प्रेरणा दी गई है, जिनका अनुकरण आज भी देशवासी बड़े गौरव से करते हैं।

❖

V-55

वैदिक वाङ्मय में ऐतिहासिक तथ्य

नीरू रानी, चण्डीगढ़

साधारणतः वर्तमान युग में यह मान्यता है कि वैदिक वाङ्मय में इतिहास लेखन की विद्या का अभाव है, परन्तु जिन विद्वानों की ऐसी धारणा रही है, वह निसन्देह असत्य है; क्योंकि वैदिक वाङ्मय का यदि ध्यानपूर्वक अध्ययन किया जाए, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि इसमें इतिहास लेखन की परम्परा उपलब्ध है। वेदादि ग्रन्थ ऐतिहासिक तथ्यों के प्रथम स्रोत माने जाते है यद्यपि वह सामग्री अस्पष्ट एवं निगूढ़ रूप में प्राप्त होती है। अनेकों ऐसी घटनाएँ आख्यानों के माध्यम से कही गई हैं, जो इतिहास प्रसिद्ध हैं। वैदिक वाङ्मय में वसिष्ठ, विश्वामित्र, कण्व आदि अनेक ऋषियों, सुदास, दिवोदास, हरिश्चन्द्र, जनमेजय आदि अनेक राजाओं एवं उनके वंशों, मिथिला, विदेह, कुरु, कोसल आदि अनेकों जनपदों आदि का वर्णन प्राप्त होता है। इस वाङ्मय में वर्णित संवाद, सूक्त, कथानक, आख्यान आदि इतिवृत्तात्मक वर्णनों में इतिहास का ही मिश्रण प्राप्त होता है। निर्धारित समय-सीमा न होने के कारण भी यह तथ्य अपनी ऐतिहासिकता से शून्य नहीं होते। इस शोधपत्र में वर्णित कुछ तथ्यों को उदाहरणार्थ प्रस्तुत कर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि वैदिक वाङ्मय में भी ऐतिहासिक तथ्य उपलब्ध हैं।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

V-56

ऋग्वेदीय नासदीय सूक्त में सृष्टि-उत्पत्ति

सीमा, चण्डीगढ़

सृष्टि प्रक्रिया इतनी विस्तृत है कि इस विषय में अन्तिम कथन करना सम्भव नहीं है। सृष्टि उत्पत्ति के क्षेत्र में ऋग्वेद का नासदीय सूक्त ही एक ऐसा सूक्त है, जिससे सृष्टि-उत्पत्ति तथा उससे पूर्व की अवस्था का मूल दर्पण सदृश चक्षु का विषय बन जाता है। नासदीय सूक्त के अनुसार—

प्रलयकालीन अवस्था में जगत् का मूल कारण न तो 'असत्' था और न ही 'सत्' था, न कोई लोक था, न ही आकाश था। किसने आवृत्त किया था? कहाँ किसकी सुरक्षा में? अपार गम्भीर जल भी नहीं था। उस समय जन्म और मरण का व्यवहार न मृत्यु थी, न अमृत था। रात्रि तथा दिन का भेदात्मक ज्ञान भी नहीं था। अकेला परमात्मा ही चेतनावस्था में विद्यमान था। प्रगाढ़ अन्धकार की अवस्था थी। तब अपने तप की महिमा से वह एक उत्पन्न हुआ। इस प्रकार मन का बीज काम उत्पन्न हुआ। बुद्धिमान् योगीजनों ने अपने हृदय में विचार करके 'सत्' और 'असत्' को खोजा। परमात्मा के तप से सृष्टि-उत्पत्ति की किरणें चारों ओर फैल गई। सब पदार्थों का कारण, स्वधा नीचे थी तथा प्रयति ऊपर था।

पुनः शंका है कि कौन जानता है और कौन बता सकता है कि सृष्टि कहाँ से आई तथा किससे उत्पन्न हुई? देवताओं से इस रहस्य को जानना उचित नहीं; क्योंकि वे भी इसके पश्चात् ही हुए। यह विसृष्टि कहाँ से हुई, किसने की अथवा किसने नहीं की। सृष्टि का अध्यक्ष जो परमव्योम में रहता है, वही इसका रहस्योद्घाटन कर सकता है।

इस शोधपत्र द्वारा नासदीय सूक्त के दार्शनिक-दृष्टिकोण से सृष्टि-वर्णन करने का प्रयास किया गया है।

❖

V-57

ऋग्वेद-प्रातिशाख्य में निरूपित उच्चारण-दोष

डॉ. प्रज्ञा जोगेश जोषी, अहमदाबाद

ऋग्वेद-प्रातिशाख्य प्राचीनता, प्रामाणिकता तथा विषय के विस्तृत एवं वैज्ञानिक अध्ययन की दृष्टि से सभी प्रातिशाख्य-ग्रन्थों में शीर्ष स्थानीय है। इस में आचार्य शौनक ने ऋग्वेदसंहिता के बाह्य स्वरूप के विषय में अत्यन्त सूक्ष्म एवं वैज्ञानिक नियमों का निर्माण किया है। शौनक के नियमों की कृपा से ही ऋग्वेदसंहिता के बाह्य स्वरूप की रक्षा सम्भव हो सकी है।

ऋग्वेद प्रातिशाख्य के चतुर्दश पटल में उच्चारण में होने वाले दोषों का वर्णन किया गया है। ऋग्वेद प्रातिशाख्य का यह पटल अत्यन्त महत्वपूर्ण है; क्योंकि भारतीय साहित्य में अन्यत्र कहीं भी वर्णों के उच्चारण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में होने वाले दोषों का इतना विस्तृत एवं सूक्ष्म विवेचन नहीं किया गया है। इस पटल में उच्चारण के स्वरूप को सोदाहरण समझाया गया है और अधिकांश दोषों को विशिष्ट संज्ञायें भी प्रदान की गई हैं।

संक्षेप में प्रस्तुत लेख में ऋग्वेद प्रातिशाख्य के चतुर्दश पटल में निरूपित उच्चारणदोष का विस्तृत अध्ययन किया गया है।

❖

V-58

सूर्य चराचर जगत् का प्रत्यक्ष ईश्वर

श्री कृष्णमोहन पाण्डेय, वाराणसी

सूर्य स्थावर-जङ्गम जगत् की आत्मा है— 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'। ऋग्वेद का मन्त्रांश सूर्य को अखिल ब्रह्माण्ड की आत्मा घोषित करता है। जिस ईश्वर की कल्पना भारतीय मनीषा में अवाङ्मनसगोचर है उसका प्रत्यक्ष दर्शन हम सूर्य में कर सकते हैं। यजुर्वेद का एक मन्त्र स्पष्ट घोष करता है कि द्यावा पृथ्वी के मध्य में विद्यमान दिव्यगुणयुक्त, सर्वतो दीप्तिमान्, बुद्धिप्रदाता, क्रान्तकर्मा, अप्रतिहत क्रियायुक्त, सिद्धि की प्रेरणा देने वाले, रमणीय रत्नों के धारक एवं पोषक, दाता, रत्नरूप, ब्रह्मविद्या के धाम, समस्त स्थावरजङ्गम के प्राणभूत, मनन योग्य, अनुपम कल्पना शक्ति सम्पन्न, क्रान्तदर्शी, वेद विद्या के उपदेष्टा परम ब्रह्म सर्वोत्पादक सूर्य की स्तुति की जाती है। ब्रह्म की ज्योति का उपमान सूर्य ही है— 'ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिः'। सूर्य स्वयंभू है, सौरमण्डल का सर्वश्रेष्ठ तत्त्व है, सम्पूर्ण लोकों का प्रकाशयिता तथा सभी प्राणियों को वर्चस् और ज्योति देता है। सूर्य के समक्ष सबका ऐश्वर्य मध्यम पड़ जाता है। विश्व का जीवन सूर्य है। यह सूर्य तत्त्व ही चराचर जगत् को सब ओर से व्याप्त करके इसका रक्षण-पोषण करता है। जहाँ जैसे कर्म, काल या परिस्थिति उपस्थिति होती है, वहाँ उस नाम की स्तुति की जाती है। अनेक उपनिषदों में सूर्य के रहस्य को जानने के लिए अनेक प्रकार की सूर्योपासनाएँ बताई गयीं हैं। जैसे—ब्रह्मविज्ञान, दहर विद्या, मधुविद्या, उपकोसल विद्या, मन्त्रविद्यायें, पञ्चाग्नि विद्या, आदि उपासना करने से इष्ट प्राप्ति होती है, मोक्ष मिलता है। वैज्ञानिकों का मत है कि यदि पृथ्वी पर प्राप्त सूर्य शक्ति का सम्यक् संचयन किया जाय, तो आज संसार में जितनी बिजली पैदा होती है, उससे एक लाख गुना अधिक बिजली पैदा हो सकती है। अतः अनन्त शक्तिसम्पन्न सूर्य में ईश्वरत्व की कल्पना निराधार नहीं है। फिर परोक्ष से प्रत्यक्ष की उपासना श्रेयस्कर होती है।

❖

V-59

ऋग्वेदीय षष्ठमण्डलान्तर्गत अग्निदेव परक तद्धितान्त पदों का स्वर विवेचन

श्री सदानन्द, हरियाणा

वेद विश्वसाहित्य में उपलब्ध प्राचीनतम ग्रन्थ है। इस का महत्त्व न केवल इसकी प्राचीनता के कारण है, प्रत्युत प्राचीनतम भाषा के कारण भी है। वैदिक भाषा में स्वर का विशेष महत्त्व है, क्योंकि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ स्वर ही अर्थ को निर्धारित करता है। स्वर के कारण ही एक शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थ होते हैं। पदों के साथ स्वरों का निर्धारण प्रकृति-प्रत्यय आदि के द्वारा सरलता से किया जा सकता है। आचार्य पाणिनि ने संस्कृत भाषा के पदों को चार प्रत्ययों में विभाजित किया है, यथा— सुप्, तिङ्, कृत् और तद्धित प्रत्यय। इन प्रत्ययों से बने हुए पद क्रमशः—सुबन्त, तिङन्त और तद्धितान्त कहलाते हैं। सुबन्त अथवा नाम पदों के साथ प्रत्युक्त होने वाले प्रत्यय को तद्धित प्रत्यय कहा जाता है। "तेभ्यो हितास्तद्धिताः" इस व्युत्पत्ति के अनुसार यह शब्द 'तद्' और 'हित' इन दो पदों के योग से निष्पन्न होता है। अणादि तद्धित प्रत्ययों के योग से निष्पन्न तद्धितान्त पदों के निर्माण में उपकारक होने के कारण ही इन्हें (अणादि प्रत्ययों को) तद्धित प्रत्यय कहते हैं।

सस्वर होने के कारण वैदिकपदों के विश्लेषण हेतु पाणिनि मुनि ने 'अष्टाध्यायी' में अनुबन्धों की परिकल्पना की है। इन्हीं अनुबन्धों के आधार पर उन्होंने स्वरविधायक 'चितः' 'लिति' आदि सूत्रों का निर्माण किया है, जिनसे वैदिक पदों का स्वर निर्धारण सम्भव है। एवमेव अग्निदेवपरक तद्धितान्त पदों का प्रस्तुत शोध पत्र में स्वरविवेचन किया जायेगा।

V-60

यज्ञ और पर्यावरण

डॉ. राम जीत मिश्र, बरेली

सम्पूर्ण जगत् को नन्दन वन में, समस्त वाक्यों को वेद में, सब भावों को उपासना में परिणत करना ही वैदिक ऋषियों के जीवन का प्रधान लक्ष्य था। व्यापक अर्थ में समस्त कार्य यज्ञ है, संकीर्ण अर्थ में विधिपूर्वक देवता के निमित्त द्रव्य-त्याग करना— आहुति देना यज्ञ है। कर्म द्विविध हैं—भगवान् का कर्म (पुरुषमेध यज्ञ) और जीव का कर्म (नरमेध यज्ञ)। भगवान् का कर्म सृष्टि और स्थित्यात्मक है, जीव का कर्म लयात्मक है। यज्ञ शक्ति का सातत्य है। भगवान् की क्रियाशक्ति का अव्यक्तावस्था से व्यक्तावस्था में आगमन यज्ञ है। यज्ञ कर्मचक्र, धर्मचक्र और जगच्चक्र का अनुवर्तन है। ब्रह्म का जीव रूप में, पिता का पुत्र रूप में, एक का बहुरूप में, अविभक्त का विभक्त रूप में, असीम का ससीम रूप में, 'तत्' पदार्थ का 'त्वं' पदार्थ रूप में परिणति या विवर्तन 'पुरुषमेध यज्ञ' है एवं जीव का शिवत्व लाभ, पुत्र का पिता में लीन होना, बहु की एक रूप में, 'त्वं' की 'तत्' रूप में पुनरुपलब्धि 'नरमेध यज्ञ' है। यह उभयात्मक लीला अभिनय यज्ञतत्त्व के अन्तर्गत है। इस शोधपत्र में यज्ञ को व्यापक अर्थ में न लेकर हम इसे संकीर्ण अर्थ में लेंगे।

किसी समय पुण्यभूति भारत में तपःपूत अरण्य से लेकर समृद्धिपूर्ण राजप्रासाद तक सब यज्ञ-धूम से सुरभित रहते थे। सर्वथा सात्त्विक वातावरण का प्रसार था। सब कुछ प्रदूषण मुक्त था। आज का युग इसके विपरीत है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजकल आधुनिक सभ्यता के साधनों के कारण वायु, जल, पृथ्वी और अन्तरिक्ष में प्रदूषण बड़ी तेजी से बढ़ रहा है, उसे रोकने और समाप्त करने का यज्ञ ही सर्वोत्तम प्रभावशाली साधन है। बाहरी प्रदूषण के साथ-साथ यह भीतरी प्रदूषण को भी समाप्त कर देता है। अतः सम्प्रति यज्ञानुष्ठान की महती आवश्यकता है। इससे आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक त्रिविध तापों का नाश होकर विश्व में सुख-शान्ति का उदय होगा। यज्ञ का बहुत व्यापक प्रभाव होता है। इसका कहीं भी विधिवत् अनुष्ठान हो, उसका प्रभाव सर्वत्र पड़ता ही है। यज्ञ से जो धुआँ उठता है, वह सूर्य की किरणों और वायु से मिलकर आकाश मण्डल में जाकर बादल का रूप धारण करता है तथा सभी देशों में वर्षा कर समस्त संसार का कल्याण करता है। यज्ञ की अग्नि आहुति दी गयी औषधियों की शक्ति कई हजार गुना बढ़ा कर उसे वायुमण्डल में विकीर्ण कर देती है। यज्ञाग्नि से एक हजार की विद्युत् निकलती है, जो आकाशतत्त्व से मिलकर सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमाणुओं के रूप में हमारे शरीर को लाभ प्रदान करती है। यज्ञ द्वारा बड़ी सरलता से महामारियों का विनाश होता है। यज्ञाग्नि के औषधीय गुणों से सम्पूर्ण प्रदेश में बड़ी तीव्र गति से प्रदूषण समाप्त होकर वायुमण्डल शुद्ध हो जाता है और उससे प्रत्येक रोगी अपनी सामर्थ्य के अनुसार विकीर्ण औषधि तत्त्वों को स्वयं ग्रहण करता है।

❖

V-61

अथर्ववेद में मौलिक मानवाधिकार

श्री विजय शंकर द्विवेदी, इलाहाबाद

अधिकार सामाजिक जीवन की उन दशाओं को कहा जाता है, जिसके बिना मनुष्य अपना विकास नहीं कर सकता। अतः पूर्ण विकास के लिए मानवाधिकार की सुरक्षा आवश्यक है, जो वर्तमान में सम्पूर्ण विश्व का विषय बना हुआ है। मानवाधिकार की सार्वभौम घोषणा संयुक्त राष्ट्र की महासभा ने 10 दिसम्बर 1948 को अंगीकार किया, जिसमें नागरिक, राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों का विस्तृत समावेश है। भारतीय संविधान के मूल अधिकार भी मानवाधिकार की सार्वभौम घोषणा और नागरिक और राजनैतिक अधिकारों की अन्तराष्ट्रीय प्रसंविदा के प्रावधानों के अनुरूप ही है। जिसमें 1. समानता का अधिकार, 2. स्वतन्त्रता का अधिकार, 3. शोषण के विरुद्ध अधिकार 4. धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार, 5. संस्कृत और शिक्षा का अधिकार, 6. संवैधानिक उपचारों का अधिकार है।

मानव अधिकार की सुरक्षा कर्तव्यों द्वारा ही सम्भव है। हमारे वैदिक वाङ्मय में ऋषियों ने धर्म और कर्तव्यों के पालन का निर्देश दिए हैं, जिससे फलरूप में मानव अधिकार स्वतः सुरक्षित हो जाते हैं।

संगच्छध्वं संवदध्वं (अथर्ववेद 6.64.1) आदि मन्त्र में सभी मानवों को अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए मिलकर चलने, समान रूप से विचार करने की आज्ञा है, जिसमें समानता का अधिकार प्राप्त होता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यो नो द्वेषत पृथिवी (अथर्ववेद 12.1.14) आदि मंत्र द्वारा स्वतन्त्रता के अधिकार हेतु प्रार्थना की गई है। शत्रुता और द्वेष भावना से युक्त जो लोग हमें परतन्त्रता बन्धन में जकड़ना चाहते हैं, ऐसे शत्रुओं का समूल विनाश करें—ऐसी प्रार्थना इस मन्त्र में की गई है।

अथर्ववेद (12.1.45) के 'जन विभ्रती बहुधा विवाचसं' आदि मन्त्र में कहा गया है कि भिन्न-भाषी एवं भिन्न धर्म मानने वाले लोगों को पृथ्वी अपनी गोद में समेटकर गाय की भाँति ऐश्वर्यों का दोहन करने देती है। इस मन्त्र से धार्मिक स्वतन्त्रता के अधिकार का संकेत मिलता है।

हमारी गरिमामयी भारतीय संस्कृति में 'सर्वे भवन्तु सुखिन' की भावना सर्वोपरि रही है, जो आन्तरिक गुणों के विकास, पवित्र वेदों के अध्ययन, चिन्तन और अनुपालन द्वारा ही सम्भव है।

❖

V-62

ऋग्वेद में सादृश्याभिव्यक्ति हेतु प्रयुक्त गोधेनु, उस्त्रा आदि पदों का विश्लेषण

डॉ. योगमाया, लखनऊ

भावों की तीव्रता, उत्कटता, तन्मयता तथा अनन्यता के कारण प्रातिभ चक्षुसम्पन्न ऋषियों की भावाभिव्यक्ति, सटीकता तथा स्पष्टता से युक्त प्रतीत होती है। भावों की मंजुल अभिव्यंजना के आगार ऋग्वेद में अलंकारों का सन्निवेश चमत्कारसर्जक न होकर स्वतः आविर्भूत है, जो कथन को प्रभावशाली बनाने में, रोचक चित्र के माध्यम से प्रतिपाद्य विषय की स्पष्टाभिव्यक्ति में तथा हृदय के भावों को तदनुरूपा आवर्जित कराने की सामर्थ्य से युक्त है। ऋग्वैदिक ऋषियों ने कुछ विशिष्ट तथ्यों तथा गुणों, समाज के सभी पक्षों से सम्बद्ध तथ्यों, आर्थिक लाभ से सम्बद्ध विशिष्ट सांस्कृतिक प्रतिक्रिया, अलौकिक तत्त्वों, देवों तथा देवियों के तादात्म्य के स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने में सक्षम, जन-जीवन की अभिन्न अंग 'गाय' को उपमान के रूप में ग्रहण किया है।

यद्यपि सादृश्याभिव्यक्ति में इन्द्रिय प्रत्यक्ष ही कार्य करता है, तथापि तत्कालीन संस्कृति एवं नैतिक मूल्य उपमाजन्य अर्थ-विस्तार तथा गहनता तक पहुँचाने का कार्य करते हैं। देवताओं और याज्ञियों की क्रियाओं तथा वैशिष्ट्यों की स्पष्टाभिव्यक्ति हेतु प्रयुक्त वास्तविक साधारण दुग्धप्रदात्री गाय से सम्बद्ध क्रियाकलाप तथा तज्जन्य परिणाम उपयुक्त उपमान सिद्ध होते हैं। प्रतिपाद्य विषय से सम्बद्ध सादृश्य की अभिव्यक्ति का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। ऋग्वेद में गो, धेनु आदि शब्दों से इन्द्र, मरुद्गण, पृश्नि आदि देवों, पृथ्वी, आकाश, अप्सरा, राक्षसी दानु, ऊषा, प्रकाश, दिव्य-जलों वर्ष तथा धार्मिक विचारों का सम्यग्रूपेण सादृश्य प्रस्तुतकर अनुस्यूत भावों की संगति को प्रकाशित किया है, जिससे ऋग्वैदिक विशिष्ट अवधारणाओं की प्रतीति सहजता से होती है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

V-63

वेद और मानवाधिकार

डॉ. प्रदीप कुमार दीक्षित, अकबरपुर

अधिकार सामाजिक जीवन की अनिवार्य आवश्यकताएँ है, जिनके बिना न तो व्यक्ति अपने व्यक्ति का विकास कर सकता है और न ही समाज के लिए उपयोगी कार्य कर सकता है। अधिकारों के बिना मानव जीवन के अस्तित्व की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। राज्य का सर्वोच्च लक्ष्य व्यक्ति के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास है, जिसके लिए राज्य के द्वारा व्यक्ति को कतिपय सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं और प्रदान की जाने वाली इन बाह्य सुविधाओं का नाम ही अधिकार है। मानवाधिकारों का अभिप्राय उन नैतिक अधिकारों से है जिनके बिना मनुष्य, मनुष्य ही नहीं रह जाता और जिनसे मुक्त होकर वह अन्य प्राणियों से भिन्न होता है। अमरीकी तथा फ्रांसीसी क्रान्तियों के पश्चात् मानवाधिकारों की जो घोषणा हुई उसके द्वारा मानव के महत्त्वपूर्ण अधिकारों को स्वीकार किया गया। भारत सरकार ने भी अक्टूबर 1993 में एक राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का गठन किया।

वेद भारतीय संस्कृति के मूल स्रोत हैं। वेदों के पठन-पाठन से ही हमें समाज में उचित ढंग से जीने का मूल मन्त्र प्राप्त होता है। हम परस्पर किस प्रकार का व्यवहार करें। मनुष्य के अधिकार और कर्तव्य क्या हैं? इन सभी पक्षों का पर्याप्त वर्णन हमारे वेदों में प्राप्त होता हैं। वेद ही मानव मात्र का प्रकाशस्तम्भ और शक्ति स्रोत हैं। वेदों में विश्वहित का वर्णन है। वेदों के प्रति निष्ठा, रुचि और मार्गदर्शन की भावना समाज को उन्नति की ओर ले जाती है। यजुर्वेद में वेदों का ज्ञान चार वर्णों तथा अन्य व्यक्तियों के लिए भी कल्याणकारी बतलाया गया है—यथेमां वाचं कल्याणीम्।

ऋग्वेद में परम पिता परमात्मा से प्रार्थना की गयी है कि समाज के सभी वर्ग ओजस्वी और समृद्धिशाली हों और सभी को अधिकार का समान अवसर प्राप्त हो सके— य ओजिष्टस्तमा भर।

उपर्युक्त प्रकार से सिद्ध हो जाता है कि मानवाधिकारों की व्यवस्था आज की व्यवस्था नहीं है, बल्कि हमारे वेदों से इसकी व्यवस्था थी। मानवाधिकारों की शिक्षा अनिवार्य की जानी चाहिए, जिससे सभी को समान अधिकार प्राप्त हो सके।

❖

V-64

वैदिक देवतावाद : एक गवेषणात्मक पत्र वाचन

डॉ. सहदेव शास्त्री, अजमेर

देवतामीमांसा

देवतावाद वेदार्थ के मूलभूत सिद्धान्तों में से एक है। वेद-मन्त्रों के प्रतिपाद्य विषय का नाम देवता है और यह भी निश्चित है कि उस सर्वज्ञ द्वारा दत्त मन्त्रराशि रूप वेद के प्रत्येक मन्त्र का कोई न कोई

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवता तो अवश्य है ही। परन्तु मन्त्रों में देवता ज्ञान अत्यन्त तप और साधना का विषय हो सकता है। देवता ज्ञान से ही मन्त्रार्थ ज्ञान सम्भव है। (द्रष्टव्यः-बृहद्देवता 1.5)

आचार्य यास्क ने निरुक्त शास्त्र में वेदमन्त्रों के देवताओं अग्नि, इन्द्र, वरुणदि के अतिरिक्त आर्यों के देवता-विषय सिद्धान्त पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला है। सायण, महीधर आदि मध्यकालीन भाष्यकार वेद के इन देवताओं को किसी स्थान विशेष के निवासी मानते हैं, जिनका कि यज्ञ में आह्वान किया जाता है। उनको अग्नि में हवि दी जाती है, जिससे ये देवता प्रसन्न होकर यजमान के अभीष्ट की सिद्धि में सहायता करते हैं।

इधर मैक्डॉनल, मैक्समूलर, ए.बी. कीथ, ओल्डनवर्ग आदि पाश्चात्य विद्वानों ने देवताविषयक सिद्धान्त का योरोपीय देवों और वैदिक देवों के बीच तुलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात् ऐतिहासिक दृष्टि से वैदिक देवताओं को प्राकृतिक शक्तियों के प्रतिरूप ठहराया है तथा उन्हें स्वर्गस्थ प्राणी माना। उधर आधुनिक आर्ष प्रणाली के भाष्यकारों जिनमें महर्षि दयानन्द सरस्वती एवं योगी श्री अरविन्द घोष आदि के नाम प्रमुख है, इन्होंने दिव्यगुणों से युक्त परमात्मापरक व आध्यात्मिक एवं यौगिक अर्थ किया।

स्वामी दयानन्द ने वसु, रुद्र, आदित्य शब्दों को एक विशेष प्रकार के एवं एक विशिष्ट संख्या वाले देवताओं के गुणों का वाचक न मानकर इन्हें इन्द्राणि देवताओं के विशेषण मानकर व्याकरणिक धात्वर्थ प्रक्रियानुसार यौगिक अर्थ किये। उन्होंने 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' के वेदविषयक प्रकरण में शतपथ ब्राह्मणोक्त 33 देवों की वास्तविक सत्ता को स्वीकार करके देवता अर्थात् शक्तियों के रूप में सृष्टि के उत्पन्न करने तथा सतत् क्रियाशील बनाये रखने में सहायक होती है ऐसी मान्यता दी।

❖

V-65

वेदों में पर्यावरण

डॉ. प्रभाकिरण, मुजफ्फरपुर

पर्यावरण संरक्षण पर आज सम्पूर्ण विश्व में विशेष बल दिया जा रहा है। हमारे प्राचीन ऋषियों ने पर्यावरण-संरक्षण के जितने उपायों को प्रदर्शित किया और स्वयं पर्यावरण का जितना संरक्षण किया आज यह सम्भव नहीं हो पा रहा है। वैदिक काल में पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि एवं वनस्पति को देवता मानकर, भक्ति-भावना से ओत-प्रोत हो कर ऋषियों ने प्राकृतिक स्त्रोतों की रक्षा की।

हमारी प्राचीन संस्कृति तपोवन संस्कृति थी। यज्ञ उस समय लौकिक और पारलौकिक फल प्राप्ति का साधन समझा जाता था। अग्नि, वायु और आदित्य यज्ञ के रक्षक देव माने जाते थे। 'यज्ञाद् भवति पर्जन्यः' यज्ञ से उक्त समय वर्षा होती थी। यज्ञीय अग्नि की ऊष्मा वाष्प रूप में मेघों के द्वारा गृहीत होकर जल के रूप में बरस कर पृथ्वी को धनधान्य से परिपूर्ण करती है। यज्ञ के धूम से पर्यावरण शुद्ध होता था, जिससे रोग के कीटाणुओं का नाश होता था। पर्जन्य, मित्र, वरुण, चन्द्र और सूर्य—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये पाँच तत्त्व पर्यावरण के रक्षक होने के नाते हमारे लिए पितृ-तुल्य हैं। पर्जन्य वृष्टि द्वारा जल सिंचन कर हमारी रक्षा करता है। मित्र प्राण-वायु के रूप में हमारा जीवन रक्षक है, वरुण जल प्रदान कर हमारे जीवन को गतिशील बनाता है, चन्द्रमा औषधियों का राजा है, इसकी किरणें पृथ्वी पर प्रतिदिन आकर पर्यावरण की रक्षा करता है; क्योंकि इनकी किरण अमृत शीतल है। सूर्य की किरणों से ऊर्जा प्राप्त कर मनुष्य को जीवन शक्ति मिलती है। द्युलोक में स्थिर रहकर सूर्य अपनी विकसित ऊर्जा का प्रभाव पृथ्वी पर डालता है। पृथ्वी और द्युलोक के बीच स्थित अन्तरिक्ष सूर्य के ऊर्जा प्रभाव से रहित है; क्योंकि विज्ञान का नियम है कि विकिरित किरणें जब पदार्थ पर पड़ती हैं, तभी अपनी ऊर्जा उसे देती है, वह बीच के वायुमण्डल को प्रभावित नहीं करती। यही कारण है कि बीच का आन्तरिक लोक और ऊर्जा से अप्रभावित रहता है, अन्यथा वायुमण्डल इतना गर्म हो जाता है कि उसका ताप सहन करना असम्भव होता। प्रकृति को यह अनुशासन पर्यावरण नियन्त्रण के लिए है। ऋग्वेद में इसीलिए अन्तरिक्ष का यम का द्वार कहा गया है।

वैदिक काल में पर्यावरण प्रदूषण की समस्या नहीं थी। प्रकृति के अनुशासन में किसी प्रकार का परिवर्तन होने से इसका संतुलन बिगड़ जाता है। आज यह असन्तुलन बिगड़ रहा है। औद्योगिकीकरण तथा जनसंख्या वृद्धि के कारण वन की कटाई हो रही है, वन्य जीवों का विनाश हो रहा है। ऋतुओं में असन्तुलन हो रहा है। प्राचीनकाल में इस तरह औद्योगिकीकरण का विस्तार नहीं था। जनसंख्या भी स्वल्पतर थी, फलतः प्रदूण जैसी कोई समस्या नहीं थी। प्रकृति अपने सभी संसाधनों से परिपूर्ण थी।

इस आलेख में विस्तार से इन्हीं बिन्दुओं पर विचार किया गया है।

❖

V-66

वैदिक साहित्य में धर्म दर्शन

डॉ. बालकृष्ण शर्मा, मुजफ्फरपुर

वैदिक साहित्य में 'धर्म' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम उपलब्ध होता है, जो विविधार्थ में गृहीत हुआ है। यथा—कहीं स्वभाव अर्थ में, कहीं पर विधि अर्थ में, कहीं निश्चित नियम अर्थ में तथा कहीं यज्ञानुष्ठान अर्थ में भी दृष्टिगत होता है। सत्य और ऋत ये दोनों धर्म के स्कन्ध रूप में मान्य हैं। यजुर्वेद में धर्म शब्द का प्रयोग धारण और धारक (स्वरूप) अर्थ में उपलब्ध होता है। अथर्ववेद में धर्म शब्द का प्रयोग—'धार्मिक क्रिया तथा संस्कारों से अर्जित गुण' के अर्थ में किया गया है। ऐतरेय ब्राह्मण में धर्म शब्द का प्रयोग—'समस्त धार्मिक कर्त्तव्य' अर्थ में हुआ है। अथर्ववेद में धर्म की विशद व्याख्या की गई है, यहाँ धर्म का लक्षण बतलाते हुए कहा गया है कि पराक्रम, प्रगल्भता, सुख-दुःखादि, हानि-लाभ आदि की प्राप्ति में भी हर्ष-शोकादि छोड़कर सत्य-धर्म में दृढ़ रहना, दुःख का निवारण और सहन करना, ब्रह्मचर्यादि नियमों से शरीर का आरोग्य, बुद्धि-चातुर्य आदि बल का बढ़ाना, सत्यविद्या (वेद की शिक्षा),

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोमल प्रिय भाषण करना, इन्द्रयों को पापकर्मों से रोककर सत्य पुरुषार्थों में प्रवृत्त रखना तथा न्याय से युक्त होकर पक्षपातरहित सत्य का आचरण और असत्य का त्याग करना धर्म है। (अथर्ववेद 11.07.17)

उपनिषद् साहित्य में धर्मशब्द का प्रयोग एक महत्त्वपूर्ण अर्थ में मिलता है, जो पश्चाद्वर्ती धर्मशास्त्र में उपलब्ध आश्रम व्यवस्था की पूर्वपीठिका है। छान्दोग्योपनिषद् में धर्म की तीन शाखाएँ हैं—यज्ञ, अध्ययन और दान।

बृहदारण्यकोपनिषद् के अनुसार ब्रह्मा ने श्रेयःस्वरूप धर्म की संरचना की थी। धर्म क्षेत्र का भी क्षेत्र है, बल का भी बल है; क्योंकि धर्म से परे कुछ भी नहीं है (बृहद्. 01.04.11.14)। मीमांसा दर्शन में जैमिनि ने धर्म के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार किया है—

'वेदोक्त अनुशासन के अनुसार चलना ही धर्म है'। महर्षि कणाद ने वैशेषिक दर्शन में धर्म को परिभाषित करते हुए कहा है—'जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि होती है वही धर्म है।'।

वस्तुतः वेदों में धर्म दर्शन से सम्बन्धित अनेक बहुमूल्य विचारों का प्रवेश विविध स्थलों पर भिन्न-भिन्न प्रकार से हुआ है। परवर्ती धर्मशास्त्रों का आधार वेद ही है।

❖

V-67

पृथ्वी स्थानीय देवताओं का अनुशीलन

स्नेहलता दूबे, गोरखपुर

विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक लीलाएँ मानव मात्र के अनुभव के विषय हैं। आदिकालिक मनुष्य प्रकृति की खुली गोद में विचरण करता था। यह विशाल धारित्री उसे माता और द्यौ (आकाश) पिता प्रतीत हुए, अग्नि, सूर्य, चन्द्र आदि से साधारण पिण्ड नहीं, अपितु उसके ऊपर करुणा या क्रोध करने वाले तथा वरदान या अभिशाप, दण्ड देने में समर्थ देव, प्रभु प्रतीत हुए। वस्तुतः वैदिक देवता प्रकृति की विभिन्न शक्तियों के दैवीकरण हैं। ऋग्वेद और अथर्ववेद में देवताओं की संख्या 33 कही गई है। ऐतरेय एवं शतपथ ब्राह्मण में 8 वसु + 11 रुद्र + 12 आदित्य + 1 भव + 1 पृथ्वी = 33 देवताओं की संख्या बताई गयी है, किन्तु यास्क ने निघण्टु में 151 देवों को पृथ्वी, द्यौ एवं अन्तरिक्ष तीन भागों में बाँटा है। बृहद्देवता में भी जड़, चेतन एवं उभयविध 3 वर्गों में सभी देवों को रखा गया है। अथर्ववेद में भी स्थान के आधार पर 3 विभाजन ही मान्य हैं। पृथ्वी स्थानीय देवताओं में अग्नि प्रमुख है। जातवेदस्, वैश्वानर, यम आदि नाम प्रायः इन्हीं के लिए प्रयुक्त हैं, अथवा इनके अंश रूप में वर्णित हैं। अग्नायी, पृथिवी, इडा अग्नि की पत्नियाँ अथवा स्त्री देवता हैं। ब्रह्मस्पति का स्वरूप भी अग्नि तुल्य ही है, किन्तु सोम नाम के देवता रसात्मक एवं चन्द्रबिम्ब युक्त हैं। अन्य पृथ्वी स्थानीय देवगणों में आप्री एवं अश्व समाम्नात देवगण हैं। शुतुद्री, गंगा, यमुना एवं सरस्वती स्त्री देवता हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्नि पृथ्वी स्थानीय देवों में सर्वोपरि है। उनका महत्त्व याज्ञिक क्रियाओं में तो है ही, दैनिक जीवन में भी महत्त्वपूर्ण है। यह मानवमात्र के लिए पृथ्वी पर आगमन से लेकर प्रस्थान करने तक समस्त क्रियाओं में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभातें हैं।

❖

V-68

ऋग्वेद में प्राप्त नैतिक मूल्य

डॉ. श्रीमती प्रमोद बाला मिश्रा, बरेली

विश्व के प्राचीनतम एवं प्रौढ़तम काव्य ऋग्वेद में मानव जीवन को पूर्णता प्रदान करने की अद्‌भुत क्षमता है। मानव जीवन का कोई भी क्षेत्र ऋषि की प्रातिभ दृष्टि से अछूता नहीं है, चाहे जिस दृष्टि से विचार कीजिए, यहाँ समृद्धि की पराकाष्ठा ही दृष्टिगत होती है। सृष्टि के आदि में ऋषियों द्वारा दृष्ट ईश्वरीय ज्ञानस्वरूप वेद समस्त नैतिक मूल्यों का जन्मदाता है।

ऋत, सत्य, अहिंसा, मानव प्रेम, विश्वबन्धुत्व एवं लोककल्याण आदि की नैतिक भावना ही वस्तुतः मानव-समाज एवं मानवता की आधारशिला है। मानवधर्म, मानवशास्त्र और आचारशास्त्र के शाश्वत सिद्धान्तों का बीज ऋक्संहिता में दृष्टिगोचर होता है। इस दृष्टि से महर्षि मनु की 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्' तथा 'वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ' आदि उक्तियाँ ऋग्वेद के विषय में पूर्णतया चरितार्थ होती है। ऋग्वेद में ऋत और सत्य ये दोनों शब्द पर्यायवाची से प्रतीत होते हैं और प्रायः एक अर्थ में प्रयुक्त भी हुए हैं; किन्तु दोनों में सूक्ष्म अन्तर है। ऋत का सिद्धान्त अपने में एक अलौकिकता और दार्शनिक गम्भीरता को लिये हुए है। ऋत परमेश्वर का वह अटल विधान है, जिसके सहारे समस्त सृष्टि-चक्र का प्रवर्तन हो रहा है। ऋग्वेद में मानव जीवन की सुख-समृद्धि का आधार ऋत को माना गया है। ऋत ही राष्ट्र की प्रतिष्ठा का आधार है। ऋग्वेद में ऋत को पारलौकिक सुख-शान्ति और मोक्ष का साधन भी कहा गया है। दशम मण्डल के एक मन्त्र में ऋत और सत्य को सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्म के तप से उत्पन्न कहा गया है। सत्य ही जगत् का नियन्ता एवं सञ्चालक है। स्पष्ट है, सत्य ब्रह्म का पर्याय है। सत्य से विजय एवं अमरत्व की प्राप्ति होती है।

अहिंसा की भावना का मूल उन अनेक मन्त्रों में देखा जा सकता है, जहाँ प्रभु से हिंसा रहित बुद्धि की याचना की गयी है। 'अहिंसा परमोधर्मः' ऋग्वेद का ही सिद्धान्त है। मानव-प्रेम एवं विश्वबन्धुत्व की पावन उदात्त भावना का मूल ऋग्वेदीय मन्त्रों में अनेकशः उपलब्ध होता है। ऋग्वेद के अन्तिम सूक्त में मन, वचन और कर्म की एकता की भावना पर बल दिया गया है। ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों में दान, दया, उदारता, सहिष्णुता, श्रम, तप, ब्रह्मचर्य, धैर्य आदि नैतिक मूल्यों के संकेत मिलते हैं, जिन्हें भारत और भारतीय संस्कृति का आधार-स्तम्भ कहा जा सकता है। इन ऋग्वेदीय संकेतों से स्पष्ट है कि ऋग्वेद

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋत, सत्य, अहिंसा, मानव-प्रेम, लोक-कल्याण, दान, उदारता आदि नैतिक आदर्शों का आदि स्रोत है। इन्हीं नैतिक मूल्यों को विविध धर्मग्रन्थों एवं धर्माचार्यों ने मानवधर्म अथवा शाश्वत नैतिक आचार के रूप में स्वीकार किया है।

❖

V-69

अथर्ववेद : चिकित्सा के परिप्रेक्ष्य में

डॉ. कमला अग्रवाल, बड़ौत

चारों वेदों में लोक-रक्षार्थ एवं लोक-पालनार्थ अथर्ववेद का महत्त्व असंदिग्ध है। इसमें प्रायः उन सभी विषयों का समावेश है, जिनके द्वारा व्यक्ति स्वयं अपनी, अपने समाज की तथा अपने राष्ट्र की उन्नति कर सकता है। उत्तम स्वास्थ्य की उपलब्धि तथा उसकी रक्षा कर जीवन को सरल, सुगम तथा उन्नत बना सकता है।

मनुष्य जीवन समस्त सुखों से इतर विभिन्न दुःखों के चक्र से परिवेष्टित होकर सन्तापित होता रहता है। मानव-जीवन में होने वाले दुःखों के तीन विभाग हैं—आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक। अथर्ववेद के उन्नीसवें अनुवाक् के चौवालीसवें सूक्त में तीनों प्रकार के दुःखों से छुटकारा पाने की प्रार्थना की गई है। साथ ही पहले अनुवाक् के इक्कीसवें सूक्त में शारीरिक, मानसिक व पैतृक रोगों के शमन के लिए अनेक औषधियों का वर्णन मिलता है। मानसिक रोगों को दूर करने के लिए शत्रुओं को मारकर अभय प्रदान करने का उपदेश तथा प्रकार भी यहीं वर्णित है। इसी प्रकार अग्नि, जल, वायु, आकाश, पृथिवा, पदार्थ, नदी, पर्जन्य, नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र सभी दैवीय शक्तियाँ सुखकारी एवं शान्तिप्रद हों, ऐसी प्रार्थना की गई है।

अथर्ववेद में इन्हीं प्रभावशाली प्रार्थनाओं से युक्त वेदमंत्रों के उच्चारण के द्वारा मानसिक क्लेशों एवं रोगों के शमन उपचार के द्वारा मानव को **आध्यात्मिक** तापों से छुटकारा पाने के लिए प्रयास करता हुआ पाते हैं। इसी प्रकार ज्वर-पीलिया, राजयक्ष्मा, चर्मरोग, नेत्ररोग, उदररोग आदि रोगों के शमन के उपचार, हिंसक जीव-जन्तुओं एवं विषैले जीव सर्पादि से रक्षा करने के लिए प्रार्थना के द्वारा **आधिभौतिक** दुःखों से मुक्त होने की भावना देखते हैं। इसके साथ ही पञ्चमहाभूतों, सूर्य, चन्द्र तथा नदी, मेघ, पर्जन्य, क्षेत्र, गौ आदि द्वारा शान्तिकरण की अभिलाषा से **आधिदैविक** दुःखों से मुक्त होने के स्रोत मिलते हैं।

अतः यह स्वीकार करने में किञ्चिन्मात्र भी गत्यावरोध नहीं है कि त्रिविध दुःख-निवृत्ति के लिए प्रवृत्त मानवीय प्रयासों की विरामस्थली मात्र अथर्ववेद का अपरिमित औषध-ज्ञान-भण्डार है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

V-70

कौशिकगृह्यसूत्रोक्त नैमित्तिककर्म : एक अध्ययन

डॉ. सुधाकर द्विवेदी, जौनपुर

कौशिकगृह्यसूत्र अथर्ववेद का एकमात्र गृह्यसूत्र है। अपने विषयवैचिन्य के कारण गृह्यसूत्र वाङ्मय में इसका अप्रतिम स्थान है। यह अन्य गृह्यसूत्रों की भाँति केवल संस्कारों के वर्णन तक ही सीमित नहीं है। इसमें जीवन के विविध पक्षों का समावेश किया गया है। इसमें संस्कार, पौष्टिककर्म, भैषज्यकर्म, राजकर्म, विज्ञानकर्म, सौमनस्यकर्म, सवयज्ञ, अद्भुतकर्म, स्त्रीकर्म, कृषिकर्म तथा नैमित्तिककर्म का सांगोपांग विवरण प्राप्त होता है। प्रस्तुत शोध-पत्र कौशिक-गृह्यसूत्र के पञ्चम अध्याय में व्याख्यात केवल नैमित्तिककर्मों से सम्बद्ध है। इनका विश्लेषणात्मक समीक्षा प्रस्तुत करने हेतु इस शोध-पत्र को दो वर्गों में विभक्त किया गया है। प्रथम वर्ग में कौशिक-गृह्यसूत्र के इन कर्मों का यथाप्राप्ति विवरण है तथा द्वितीय वर्ग में इनकी समीक्षा एवं आलोचनात्मक प्रस्तुत की गयी है। यह विभाजन अधोलिखित है—

नैमित्तिक कर्मों का प्रतिपादन एवं नैमित्तिक कर्मों की तुलनात्मक एवं आलोचनात्मक समीक्षा।

❖

V-71

कतिपय वैदिक नारियों का आध्यात्मिक-योगदान

अशरफुन निशा, गाजियाबाद

प्रायः यही जाना जाता है कि ऋषि मन्त्रद्रष्टा रहे हैं और भारतीय आध्यात्मिकता उनकी देन है। अध्ययन से ज्ञात होता है कि पुरुषों के समान स्त्रियाँ भी मंत्र-द्रष्टा रही हैं। उन के आध्यात्मिकता के योग-दान को भुलाया नहीं जा सकता। ऐसी नारियों में प्रमुख निम्नलिखित हैं—

अदिति, अपाला, घोसा, जुहू, रोमशा, लोपामुद्रा, वागम्भृणी, विश्ववारा, शश्वती, सूर्या, इन्द्राशी, इन्द्रमातरः, इन्द्रस्नुषा, गाधो, यमी-वैवस्वती, शची, श्रद्धा, सार्पराज्ञी तथा सिकता प्रमुख हैं। इस पत्र में संक्षेप में इन के आध्यात्मिक ज्ञान को प्रमुख किया गया है।

❖

V-72

निघण्टु में अनुपलब्ध-निरुक्त में व्याख्यात पद

डॉ. वेदपाल, बडौत

यास्क ने निरुक्त में कुछ ऐसे भी पदों का निर्वचन किया है, जो निघण्टु में अनुपलब्ध हैं। ऐसे पदों की संख्या पाँच सौ के लगभग है। प्रश्न है कि यदि इन पदों का निर्वचन करना था, तो इन्हें निघण्टु में क्यों नहीं पढ़ा? इससे दोनों का एककर्तृत्व भी खण्डित सा होता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्ग के अनुसार—अभिनिविष्ट बुद्धिवाले, मेधावी, दैवतनिदान विदों के उद्यम को भङ्ग करने वाले पद ही (एतेरैव.....ते एव) निघण्टु में पढ़े गए हैं, किन्तु स्वयं यास्क ने 'निघण्टवः' के निर्वचन प्रसङ्ग में एवकार द्वारा पदों का निर्धारण नहीं किया है। इससे निघण्टु में अनुपलब्ध पदों की व्याख्यातव्यता को अवकाश प्राप्त हो गया है।

यास्क भूमिकागत पदों में सर्वप्रथम 'निघण्टवः' ही अति परोक्षवृत्ति है। यह नैगमकाण्ड में होना चाहिए था। यह मन्त्रस्थ पद नहीं है। अतः दुर्बोध होने पर भी निघण्टु में इसका सम्मान सम्भव नहीं था। इसी प्रकार निपाताः पद है यास्क ने निर्वचन करते समय प्रसङ्ग प्राप्त शब्दों का भी निर्वचन कर दिया है। तद्यथा—'श्वः' के प्रसङ्ग में अद्य, द्यु, ह्य आदि। नैगमकाण्ड में अतिपरोक्षवृत्ति पद है। यहाँ भी आचार्य ने मन्त्रस्थ पदों से व्यतिरिक्त पदों को भी व्याख्यात किया है। जैसे—मर्या का अर्थ मर्यादा। पुनः मर्यादा का भी निर्वचन कर दिया है।

दैवतकाण्ड में लगभग दो सौ ऐसे पद हैं, जो निघण्टु में अनुपलब्ध हैं। इनमें से अनेक देवतावाची भी नहीं हैं। जैसे—मन्त्राः, स्तोमः।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि आचार्य ने ऐसे पदों का व्याख्यान करते समय प्रकरण पर विशेष ध्यान नहीं दिया है। ये पद प्रसङ्ग वश कहे गए हैं, किन्तु ये आत्यन्तिक रूप से व्याख्यातव्य थे। इससे निघण्टु निरुक्त का एककर्तृत्व खण्डित नहीं होता है।

❖

V-73

वेदों में मित्रावरुण का स्वरूप

कु. अनु रानी, हरियाणा

परम व्योम का जो परावाग् ऋषियों के विशुद्ध दर्पणरूप अन्तर्योम में सहजभाव से प्रतिबिम्बित होकर ब्रह्माण्ड के सुसूक्ष्म रूप से स्थूल सभी तत्त्वों को आलोकित कर वैखरी के रूप में व्यक्त हुआ उसका नाम वेद है। इन वेदों में हमें देवाधिदेव रुद्ररूप महादेव से लेकर तृण-औषधिपर्यन्त अनेक पदार्थो का वर्णन मिलता है। स्वामी दयानन्द के मत में इन पदार्थों को वैदिक शब्दावली में सामान्यतः देव या देवता के नाम से जाना जाता है। इन्हीं देवों या देवताओं के वेदों में विशिष्ट नाम—अग्नि, इन्द्र, सोम, मित्र, वायु, वरुण इत्यादि हमें देखने को मिलते हैं। इन्हीं में कतिपय युगल देवताओं का नाम भी मिलता है, जैस—अश्विनौ, मित्रावरुण, द्यावापृथ्वी, इन्द्राग्नी, अग्नीषोमा, इन्द्रावायू--------इत्यादि। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद नामक चारों वेदों की मूल संहिताओं तथा भाष्यग्रन्थों में तत्तद् अध्याय, सूक्त या प्रपाठक के आरम्भ में हमें युग्म देवताओं का उल्लेख मन्त्रद्रष्टा ऋषि तथा मन्त्र के छन्द के नाम के साथ मिलता है। प्रस्तुत संगोष्ठी पत्र में मित्रावरुण के आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक स्वरूप के विषय में विचार किया गया है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

V-74

विश्ववारा

डॉ. वन्दना मालवीय, इलाहाबाद

अत्रिकुल के अनेक द्रष्टाओं में अपाला (ऋ0 8.91) एवं विश्ववारा (ऋ0 5/28) यह दो ऋषिकायें हैं। विश्ववारा द्वारा दृष्ट यह सूक्त 6 मंत्रों वाला है, जिनमें अन्तिम दो ऋचाओं का पाठ दर्शपूर्णमास याग में होता है। विश्ववारा के विषय में अन्य वैदिक ग्रन्थों में कोई भी सूचना उपलब्ध नहीं होती। ये अत्रि कुल से संबद्ध हैं, इनके नाम से केवल यही सूचना मिलती है। यजुर्वेद (33.12) में विश्ववारा का एक मन्त्र पठित है, यह मंत्र ऋग्वेद (5/28/3) में अविकल रूप में मिलता है। ऋग्वेद में विश्ववारा पद अनेकशः मिलता है, किन्तु यह पद उषा के विशेषण के रूप मे अनेक स्थानों पर प्रयुक्त है (ऋ0 5/80/3, 1/123/12, 3/61/1, 1/113/19, 5/28/1)। इन स्थलों पर "विश्ववारा" पद का अर्थ समस्त जगत् जिसको चुनता है, ऐसा किया गया है। अन्यत्र दीप्ति के विशेषण के रूप में (दीधितिर्विश्ववारा ऋ0 3.4.3), माता पिता के लिये (विश्ववारा ऋ0 7.7.3) मिलता है।

6 ऋचाओं वाले इस सूक्त में ऋषिका विश्ववारा एक गृहिणी के रूप में अपने परिवार में सुख समृद्धि एवं शान्ति की कामना करती है। अग्नि हव्यावाहन है, अतः अग्नि के भली भाँति प्रज्ज्वलित रूप की स्तुति की गई है। (ऋ0 5.28.1 2,4,5,6)। वैदिक कोष में विश्ववारा पद की व्युत्पत्ति इस प्रकार की है—विश्ववारपदयोः समासे कृते ततः स्त्रियां टाप्। विश्वोपपदे वञ् वरणे (भ्वा0) धातोर्वाऽण्। ततः स्त्रियां टाप् छान्दसः (वैदिक कोषः, सं0 राजवीर शास्त्र, पृ0 881)।

❖

V-75

वेदों में ज्ञान पक्ष

डॉ. रीता भल्ला, शिमला

सर्वमान्य मत है कि वेदों में गहन चिन्तन व अनेकों रहस्य छुपे पड़े है, जिन्हें आधुनिक युग में विज्ञान, बुद्धिवाद और लोकायत दर्शन ने मनुष्य की प्राथमिक मूल वासनाओं को भौतिक धरातल पर इतने प्रबलस्वरूप में उभारा है कि मनुष्य की सभी मान्यताएँ, आस्थाएँ और मूल्य अस्तव्यस्त हो गए है। हमारी समस्त सत्यविद्यायों का मूल मन, चेतना, संकल्प, वाणी, प्राण, जगत्, और वाक् आदि का सम्बन्ध वेद से है, अर्थात वेद समस्त वाङ्मय का आदि स्रोत है।

विश्व की सम्पूर्ण रचना, उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का चक्र जिस व्यवस्था से चला आ रहा है, चल रहा था और चलेगा, उसे वेद के शब्दों में यज्ञ कहते है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदों में सभी विषयों को समझने के लिए प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग किया गया है, जो विषयों को भी रसयुक्त व सुन्दर रूप प्रदान करने में सहायक है। इनमें कृषि को प्रमुख कर्म माना है। जीवन कृषि पर अवलम्बित होने के कारण धरती के प्रति श्रद्धाभाव है। इस समय धार्मिक व्यवस्था अन्धविश्वासों पर बोझिल नही थी। वह सभी शक्तियों को महाशक्ति मानते थे।

इन सभी बातों से स्पष्ट होता है कि आधुनिक युग वेद की नींव पर खड़ा हुआ है। ऋषि अरविन्द के अनुसार वेदों में उन गूढ मनोवैज्ञानिक तथा आध्यात्मिक सत्यों का वर्णन है, जिन्हें ऋषियों ने समाधि की दशा में प्राप्त किया है, अर्थात् वैदिक जीवन दर्शन भारतवर्ष के लिए नही, अपितु समस्त विश्व के लिए आदर्श है।

❖

V-76

वेदों में धार्मिक तथा नैतिक आदर्श

डॉ. सुचित्रा मित्रा, इलाहाबाद

वैदिक वाङ्मय में विकसित नैतिकता के आधार पर मानव के व्यक्तिगत और सामाजिक आचार व्यवहारों का निर्धारण हुआ है। ऋग्वेद से उपनिषद् काल पर्यन्त धर्म का वास्तविक उद्देश्य मनुष्य की सर्वाङ्गीण उन्नति तथा निःश्रेयस् की प्राप्ति रहा है। 'भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः भद्रं पश्येमक्षभिर्यजत्राः' में जहाँ ऋषि कानों से मङ्गलमयी वाणी सुनना तथा आँखों से दर्शनीय वस्तुओं को देखना चाहते हैं, वहीं पर ऋषि हृष्ट-पुष्ट शरीर की कामना भी करते हैं, जिससे कि सर्वतोभावेन ईश्वर का ध्यान कर सकें। तभी तो ऋषि कहते हैं "स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनुभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः' अर्थात् स्थिर अङ्ग और शरीरों से युक्त होकर स्तुति करते हुए देवताओं द्वारा जो निर्धारण आयु हमारे लिए है, उसे हम प्राप्त करें।"

वेदों में प्रकृतिमूलक ज्ञान के आधार रूप में ऋत की अवधारणा है। अनन्त प्रकृति, समस्त चराचर में व्याप्त जो जगत् विषयक नियम है, वैदिक संहिताओं में उसे ऋत कहा गया है। वेदों में उन्हें उच्चतम देवताओं का संचालक और नियन्ता कहा गया है। ऋग्वेद में ऋत की महिमा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वह सभी प्रकार के सुखशान्ति का स्रोत है। इसकी भावना मात्र से सभी पापों का विनाश हो जाता है। यह मनुष्य को उद्बोधित कराने वाला है।

आज मनुष्य बौद्धिक, नैतिक, धार्मिक तथा राजनैतिक वैमनस्य के कारण परस्पर द्वेष की भावना से ग्रस्त है। इनसे मुक्ति पाने का उपाय वेदों के अन्तिम भागों में वर्णित है—(1) सभी विषयों में ईश्वर की महिमा की अनुभूति करना। (2) प्रत्येक को ईश्वर की सन्तान मानकर पवित्र तथा पूर्ण आत्मा कहना। प्राकृतिक नियमों के मूल में जड़ तत्त्व तथा शक्ति के प्रत्येक अणु-परमाणु में एक मात्र वही ईश्वर विराजमान है, जिसके आदेश से वायु चलती है, अग्नि दहकती है और पथिवी पर मृत्यु मँडराती है। आज के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युग में यदि विश्व के पुनरुत्थान की आवश्यकता है, तो केवल वैदिकधर्म के मूलभूत सिद्धान्तों द्वारा ही इनकी समस्याओं का समाधान हो सकता है। वेदों में निर्दिष्ट सभी कर्मों को करते हुए यदि मनुष्य का हृदय ईश्वर में लगा रहे, तो प्रत्येक कार्य सत्कार्य हो जाता है। सुभाषित कहती है—यदि ईश्वरीय प्रेम इहलोक या परलोक में पुरस्कार की प्राप्ति के लिए भी किया जाय, तो वह भी सत्कार्य है।

❖

V-77

वैदिक छन्दोविज्ञान

प्रो० लक्ष्मीश्वर झा, नई दिल्ली

आधुनिक भौतिक शास्त्र में जीव कहाँ से आता है, यह एक जिज्ञासा का विषय बना हुआ ह। इसमें अनेक प्रकार के मत उपलब्ध होते हैं। लेकिन अभी कुछ वर्ष पूर्व आयुका के चेयरमैन और प्रसिद्ध वैज्ञानिक श्रीजयन्त विष्णु नार्लेकर ने अपने एक प्रयोग में सिद्ध किया कि जीव ऊपर के किसी लोक से इस पृथिवी पर आता है। इसके लिए उसने कुछ बैलूनों को ऊपर हवा में ले जा कर छोड़ दिया, पुनः उनको संग्रह कर अध्ययन किया। उस अध्ययन में पाया कि जीवों के जीवाष्म उन बैलूनों पर आ कर गिरा हुआ था। लेकिन ये जीव कहाँ से कैसे आता है, यह रहस्यमय बना हुआ है। मेरे इस लेख में ऐसा कोई समाधान प्रस्तुत नहीं किया गया है, लेकिन वेदों में वर्णित विषयों की चर्चा अवश्य की गई है। आधुनिक वैज्ञानिकों को एक मनोरंजन के लिए ही सही पर वैदिक दृष्टि रखने का प्रयास अवश्य किया जा रहा है।

इस प्रकार वेदों में प्राप्त होने वाले छन्द, स्तोम, ऋतु, देवता का परस्पर सम्बन्ध का वाचक है और उन सम्बन्धो के संयोग से बनने वाले ऋषिप्राण, देवप्राण, असुरप्राण, पितृप्राण, गन्धर्वप्राण तथा प्राजापत्यप्राणों का वर्णन आधुनिक वैज्ञानिकों के लिए शोध का एक मञ्च बनाता है, जो सृष्टि विज्ञान को परमोत्कर्षक पहुँचा सकता है। इसके लिए आधुनिक वैज्ञानिक तथा वैदिक वैज्ञानिकों का संयुक्त दल का गठन होना चाहिए तथा एक साथ मिलकर संवाद बनाकर शोध करने की आवश्यकता है।

❖

V-78

निरुक्त के ऐतिहासिक निर्वचन

डॉ. रागिणी आर. दवे, गुजरात

यास्क प्रदत्त निर्वचनों को वर्गीकृत करने पर यह प्रतीत होता है कि इनके कतिपय निर्वचन व्याकरणाधृत हैं, तो कतिपय निर्वचनों में 'सर्वाणि नामानि आख्यातजानि' का सिद्धान्त कार्यरत है। इस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार समस्त निर्वचनों के निष्कर्ष निकालने का प्रयास करने पर यह दृष्टिगत होता है कि कतिपय निर्वचनों में याज्ञिकों की परम्परा का आधार लिया गया है, कुछेक निर्वचनों में निदान शैली अपनाई गई है, तो कतिपय निर्वचनों में 'तत्र इतिहासमाचक्षते' कहकर इन निर्वचनों की ऐतिहासिक भूमिका समझाई गई है।

इस प्रकार के निर्वचन एवं उनकी ऐतिहासिक भूमिका निम्नानुसार है—

1. अन्तरिक्षः (2/10/1-3); 2. आदित्यः (2/13); 3. द्रुघणः (9/23/18); 4. नदी (2/24); 5. मूषः (4/4-5/6); 6. विश्वकर्माः (10/25/16); 7. वृत्रः (2/16); 8. सरण्यू (12/9/5)

निवर्चनों में ऐतिहासिकता

'इतिहास' शब्द इति + ह+ आस से बना है, अर्थात् इतिहास अतीत में घटित हुई सत्य घटनाओं के विभिन्न पक्षों की परीक्षा करता है। इसके अतिरिक्त 'इतिहास' शब्द काव्य की विभावना को भी व्यक्त करता है। 'रामायण' एवं 'महाभारत' जैसे इतिहास ग्रंथो में इतिहास अर्थात् धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष— इस प्रकार चतुष्पुरुषार्थ की सिद्धि को सोदाहरण स्पष्ट किया गया है—उसे इतिहास कहा गया है, परन्तु 'इतिहासिकाः' कहकर ऐतिहासिक निर्वचन देने में यास्काचार्य का यह अभिप्राय नहीं है। इन्हें तो समाज की अतीतकालीन घटना, मान्यता या प्रवर्तमान कथा ही अभिप्रेत है।

इस प्रकार संवाद या कथोपकथन से विस्तार के साथ गुम्फित निर्वचनों को भी यास्क ने निरुक्त में स्थान दिया है। इस प्रकार के निर्वचनों में विद्यमान मूल दृष्टिकोण को स्पष्ट करना ही इस संशोधन-पत्र का प्रधान उद्देश्य है।

❖

V-79

प्रातिशाख्य-ग्रन्थों का उद्भव और विकास

डॉ. राधेश्याम पाण्डेय, लखनऊ

वैदिक वाङ्मय में प्रातिशाख्य-ग्रन्थों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वैदिक अध्ययन-अध्यापन की परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए प्रातिशाख्य-ग्रन्थों का उद्भव और विकास हुआ। इन ग्रन्थों में वेद की किसी शाखा विशेष से सम्बन्धित वर्ण, पद, सन्धि, स्वर इत्यादि अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों का साङ्गोपाङ्ग विवेचन प्रस्तुत किया गया है, जिससे तत्सम्बन्धित संहिता के बाह्य स्वरूप का सम्यक् ज्ञान हो जाता है।

अतः स्पष्ट है कि वैदिक ऋचाओं के बाह्य स्वरूप के सूक्ष्म ज्ञान एवं परिशीलन के लिए ये ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी हैं। उल्लेखनीय है कि इतनी अधिक उपयोगिता होते हुए भी प्रातिशाख्यों की गणना वेद के षडङ्गों के अन्तर्गत नहीं की गयी है। कतिपय प्राचीन आचार्य प्रातिशाख्य की गणना उपाङ्ग रूप से करते है। किन्तु आधुनिक विद्वानों के अनुसार इसका सम्बन्ध शिक्षा-ग्रन्थों से है। इनका कथन है कि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तैत्तिरीय शिक्षाध्याय में उपदिष्ट शिक्षाग्रन्थों के प्रतिपाद्य विषय प्रातिशाख्यों में भी उपलब्ध होते हैं। अतः इनका सम्बन्ध शिक्षाग्रन्थों से है; किन्तु यह मत उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। इसका कारण यह है कि प्रातिशाख्य-ग्रन्थों में शिक्षा-ग्रन्थों के प्रतिपाद्य विषयों— वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम और सन्तान के अतिरिक्त अन्य नवीन विषयों, यथा— प्रगृह्य-अवगृह्य विषयक विधान, क्रमपाठ इत्यादि का ही प्रतिपादन किया गया है। इन तथ्यों से यह सिद्ध होता है कि प्रातिशाख्य-शिक्षा वेदाङ्ग के अन्तर्गत नहीं है, बल्कि यह एक स्वतन्त्र शास्त्र है। अत एव निःसन्देह कहा जा सकता है कि षड् वेदाङ्गों में प्रातिशाख्यों का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

'प्रातिशाख्य' शब्द का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है—'वेद की किसी शाखाविशेष से सम्बन्धित ग्रन्थ'। एक-एक शाखा से सम्बन्धित होने के कारण ही इन ग्रन्थों को 'प्रातिशाख्य' संज्ञा दी गयी है। वाजसनेयि-प्रातिशाख्य (1/1) पर अपने भाष्य में अनन्तभट्ट ने 'प्रातिशाख्य' शब्द का निर्वचन इस प्रकार किया है—'शाखायां शाखायां प्रति प्रतिशाखम्, प्रतिशाखं भवमिति प्रातिशाख्यम्'। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर मधुसूदन सरस्वती ने प्रातिशाख्य का यह लक्षण किया है—'सभी वेदों पर सामान्य रूप से लागू होने वाले नियम पाणिनि के द्वारा बतलाये गये हैं, किन्तु उन्हीं नियमों को वेद की एक-एक शाखा से सम्बद्ध करके अन्य ऋषियों ने प्रातिशाख्य संज्ञक ग्रन्थों में बतलाया है। कतिपय आधुनिक विद्वानों ने भी प्रातिशाख्य-ग्रन्थों को वेद की एक-एक शाखा से सम्बद्ध बतलाया है'।

तैत्तिरीय-प्रातिशाख्य के वैदिकाभरण भाष्य में उल्लेख किया गया है कि प्रातिशाख्य का सम्बन्ध वेद की अनेक शाखाओं की संहिताओं के साथ है। उदाहरणस्वरूप ऋग्वेद-प्रातिशाख्य का सम्बन्ध ऋग्वेद की शाकल तथा वाष्कल इन दोनों संहिताओं के साथ है। वैदिकाभरणकार ने यह भी कहा है कि तैत्तिरीय-प्रातिशाख्य में उद्धृत जो उदाहरण तैत्तिरीय-संहिता में नहीं मिलते हैं, वे अवश्य ही उन शाखाओं के हैं, जो आज अनुपलब्ध हैं। डॉ. सिद्धेश्वर वर्मा तथा डॉ. बलदेव उपाध्याय जैसे कतिपय आधुनिक विद्वानों ने भी प्रातिशाख्यों का सम्बन्ध वेद की अनेक शाखाओं से माना है।

❖

V-80

ऋग्वेद में युगल देव : द्यावापृथिवी

कुमकुम सिंह, बरेली

द्यावापृथिवी के ऋग्वेद में वर्णित स्वरूप की विवेचना से ऐसा प्रतीत होता है कि ये ऋग्वेदीय युगल देवों के मूलभूत देव हैं। इनका ऋग्वेद के छः सूक्तों में स्वतन्त्र रूप से स्तवन किया गया है। अन्यत्र अन्य देवों के साथ भी इनकी 64 बार प्रख्याति आई है।

द्यावापृथिवीय युगलत्व का सर्वाधिक स्पष्ट एवं सार्थक स्वरूप ऋग्वेद में दृष्टिगोचर होता है— ये द्युलोक और भूलोक एक ही हिरण्यगर्भ (जामी सहोपत्ति) अथवा एक ही प्रजापति या ब्रह्म से उत्पन्न

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। अतः 'संयोनी' हैं, समानबन्धु हैं। एक ही अवकाशरूपी आकाश में स्थित होने के कारण समान स्थान वाले अर्थात् 'समोकसा' हैं तथा दोनों देव माता-पिता के रूप में मिथुनीभूत होकर स्थावर, जङ्गम भूतसमूह को जन्म देने वाले हैं, अर्थात् 'मिथुना' हैं। द्यावापृथिवी देव दो युवतियाँ हैं, जो साथ-साथ चलती हैं। इनके युगलत्व की सार्थकता की सिद्धि करने के लिए ऋग्वेद इन्हें देवपुत्रे, जनित्रे, समोकसा, सुजन्मनी, समन्ते, सद्मनी, सजोषा आदि विशेषणों से विभूषित करता है। निघण्टु, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद् आदि में विभूषित युगल इनका रूप प्राप्त होता है। निरुक्त के आठ द्वन्द्व देवताओं में इनकी गिनती होती है।

परस्पर अत्यधिक घनिष्ठ सायुज्य होने के उपरान्त भी ऋग्वेद में द्यौ और पृथिवी का पृथक् आश्चर्यजनक वर्णन प्राप्त होता है। श्वादिगणीय द्युत् दीप्तौ धातु से बने द्यौ का अर्थ प्रकाशपुञ्ज अर्थात् तेजोमय लोक है। अकेले द्यौ शब्द ऋग्वेद में पाँच सौ बार प्रयुक्त हुआ है।

'प्रथ' विस्तारे धातु से बना पृथिवी शब्द निरुक्तानुसार फैली हुई या फैलाई गई होने से पृथिवी कहलाती है। ऋग्वेदीय सूक्तों में पृथिवी उर्वरा, वृष्टिप्रदायिनी, मही, अर्जुनी, स्थिर एवं धवलचरित्रा वर्णित है। यहाँ यह उदारता, तितिक्षा, सौम्यता, विस्तार, त्याग, तप, शान्ति, क्षमा आदि की प्रतीक है। निघण्टु में पृथिवी के ये इक्कीस पर्याय प्राप्त होते हैं।

द्यावापृथिवी का सर्वाधिक प्रमुख कार्य संसार में ऋत अर्थात् सत्य की वृद्धि करना है, ये विश्वस्वम्भुवा बनकर समस्त संसार में सुखों की वृद्धि करते हैं। दोनों उपजाऊ जलों से युक्त हैं। दोनों सुरेतस् हैं, चैतन्यकारी हैं, यज्ञों को पुष्ट करने वाले हैं। द्युलोक वर्षा करता है, जिससे पृथिवी पर अन्न और औषधियाँ उत्पन्न होती हैं, जिससे सभी प्राणियों का जीवन-निर्वाह होता है। ये देव न केवल मनुष्यादि जङ्गम अपितु वृक्ष-लता-गुल्मादि स्थावर का भी भरण-पोषण और रक्षण अपने पुत्र के समान करते हैं और उन्हें सुवीर्य व अन्न धनों से समृद्ध करते हैं।

ऋग्वेद द्यावापृथिवी का स्वरूप प्राचीन व्याख्या परम्परा में वर्णित होकर और अधिक स्पष्ट रूप से हमारे समक्ष आता है। ब्राह्मणग्रन्थों में द्यावापृथिवी के युगल को प्रतीकात्मक रूप में स्पष्ट किया गया है। ब्राह्मणों में द्यावापृथिवी का सम्बन्ध माता-पिता, सूर्य-भूमि, मन-वाक्, सूक्ष्म व स्थूल शरीर के साथ जोड़ा गया है। आरण्यक द्यावापृथिवी को शरीर, आत्मा, मन, वाणी आदि के रूप में वर्णित करते है। उपनिषद् आध्यात्मिक विषय प्रतिपादित करते हुए द्यावापृथिवी को शरीर, मन, वाणी आदि के साथ जोड़कर इन्हें विश्व के परम पुरुष द्वारा उत्पन्न और धारण किया हुआ बताते हैं तथा इन्हें संकल्प का अधिष्ठाता कहते हैं। निरुक्त ने द्यावापृथिवी के पर्यायवाची शब्दों की निरुक्तियाँ प्रतिपादित करते हुए इनके स्वरूप को विविध रूपों में व्यक्त किया है।

अतः उपर्युक्त ऋग्वेदीय एवं प्राचीन व्याख्या परम्परानुसार द्यावापृथिवी सम्पूर्ण जगत् के जनक, धारक और पालक हैं। ये द्वन्द्व रूप में अनेक जागतिक युगलत्व को धारण करते हैं।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

V-81

गुरुकुल में अध्ययन की व्यवस्था

श्री नारायण कुमार झा, दरभंगा

वैदिक अध्ययन पद्धति में शिक्षा देने की भाषा में ब्रह्मस्वर की विशेष उपयोगिता मानी जाती थी। भाषण की स्पष्टता, सुबोधता, मंजुलता, श्रवणीयता, धाराप्रवाहशीलता, क्रमानुकूलता, गम्भीरता और उच्चता का ही दूसरा नाम ब्रह्मस्वर है। मनुस्मृति के अनुसार विद्यार्थी अध्ययन के पूर्व एवं पश्चात् गुरु के समक्ष 'ओ३म्' शब्द का उच्चारण मधुरतापूर्वक करता था। मनु के द्वारा शिष्यों को मधुर एवं प्रांजल वाणी के माध्यम से सीख देने का विधान निम्न श्लोक में प्रस्तुत किया गया है—

अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोऽनुशासनम्।
वाक् चैव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममिच्छता॥ (22.159)

मनु ने प्रत्येक छात्रों के लिए परमावश्यक कर्त्तव्य निर्धारित किया है कि वह यज्ञ के रूप में नित्य अध्ययन और अध्यापन करें। इसीलिए मनु ने कहा है—

"अध्ययनं अध्यापनं च ब्रह्मयज्ञः"॥ (मनुस्मृति, 3.70)

वैदिक काल से ही लोगों के मध्य यह धारणा बनी है कि आचार्य विद्यार्थी को ज्ञानमय शरीर प्रदान करते हैं। अथर्ववेद के अनुसार उपनयन संस्कार के अवसर पर आचार्य शिष्य को गर्भ में धारण करते हैं तथा तीन रात्रि तक उदर में उसका भरण-पोषण करके चौथे दिन उसको जन्म देते हैं—

"आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।
तं रात्रीस्तिस्त्र उदरे विभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः"॥ (1.5.3)

"विद्यार्थी के अन्तेवासी नाम की जानकारी ब्राह्मण युग से भी प्राप्त होती है। ब्रह्मचारी का एक पर्याय आचार्यकुलवासी भी रहा है। विद्यार्थी प्रारम्भ से ही ब्रह्मचर्य का व्रत धारण कर गुरुकुल में रह सकता था"।। (तैत्तिरीयोपनिषद्, 1.11)

निरुक्त में कहा गया है कि आचार को ग्रहण कराने वाले व्यक्ति ही आचार्य कहलाने योग्य होते हैं। आचार्य तभी आचार ग्रहण करा सकते थे, जब वे स्वयं आचारनिष्ठ हों। नंगलीस जातक (123) के अनुसार आचार्य अपने मन्दमति शिष्य को नई-नई उपमाओं और बातों को कहने का अवसर प्रस्तुत करके उससे प्रश्न पूछते थे, जिससे उसकी पर्यवेक्षण और वर्णन की शक्ति के साथ-साथ शिष्य की बुद्धि का विकास भी बढ़ता था। आचार्य और शिष्य की संगति को महाभारत के अनुसार आदर्श माना गया है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

V-82

वैदिक साहित्य में शिल्प की अवधारणा

डॉ. (श्रीमती) इला घोष, सिवनी (म.प्र.)

यद्येकवृषोऽसि सृजारसोऽसि--------

यदि दशवृषोऽसि सृजारसोऽसि

यद्येका दशोऽसि सोपोदकोऽसि॥

"तुममें एक वृष के समान सर्जन-शक्ति हो अथवा दस वृष के समान; सर्जन अवश्य करो– अन्यथा तुम 'अरस' हो, इस सृष्टि के लिए तुम्हारा कोई प्रयोजन नहीं है।"

अथर्ववेद के इस ग्रन्थ में सर्जन में ही मानव जीवन की सार्थकता मानी गई है, अतः समग्र विश्व में प्रागैतिहासिक काल से अद्यतन युग तक शिल्पों की एक समृद्ध परम्परा देखी जाती है।

भारतीय शिल्पों की सहस्त्रों वर्ष पुरातन वह महान् धरोहर जो वर्तमान कला स्मारकों में सुरक्षित नहीं रह पाई है; उन्हें संरक्षित करने का महनीय कार्य हमारे प्राचीन वाङ्मय ने किया है। संस्कारसम्पन्न समृद्ध संस्कृत-भाषा में ही आत्मा का संस्कार करने वाले शिल्पों की सशक्ततम अभिव्यक्ति हुई है।

शिल्प शब्द का प्रथम प्रयोग हम विश्व के प्रथम वाङ्मय ऋग्वेद में पाते हैं—

सुशिल्पे बृहती मही पवमानो वृषण्यति।

नक्तोषासा न दर्शते।

"पवमान सोम ऐसी रात्रि एवं उषा की कामना करते हैं, जो सुशिल्प (सुरूप) बृहत् महान और दर्शनीय है।"

शिल्प पद का यह प्रथम प्रयोग शिल्प के सम्बन्ध में निम्न सूत्र देता है—

1. शिल्प सुन्दर रूप की सृष्टि है। 2. शिल्प दर्शनीय होता है। 3. शिल्प चिरन्तन काल से काम्य रहा है। 4. शिल्प-सृष्टि आकार में छोटी होते हुए भी मूल्य में बड़ी होती है। 5. वह रचना महती अर्थात् किसी महान् भाव की अभिव्यञ्जिका होती है।

शिल्प के सम्बन्ध में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ ऐतरेय ब्राह्मण में प्राप्त होता है—

शिल्पानि शंसन्ति। देवशिल्पा ये तेषां वै शिल्पानामनुकृतीह शिल्पमधिगम्यते—हस्ती कंसो वासो हिरण्यमश्वतरीरथः शिल्पम्।

शिल्प दो प्रकार के हैं— देवशिल्प और मानुषशिल्प। देवशिल्पों की अनुकृति पर इस मनुष्यलोक में शिल्प-सृष्टि देखी जाती है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार शिल्प का प्रयोजन छन्दोमयरूप में आत्मा का संस्कार करना है—

आत्मसंस्कृतिर्वा शिल्पानि च्छन्दोमयं वा एतैर्यजमान आत्मानं संस्कुरुते।

इस प्रकार वैदिक वाङ्मय में शिल्प की महनीय अवधारणा का प्रकाशन ही प्रस्तुत आलेख का लक्ष्य है।

❖

V-83

वेदों में धार्मिक तथा नैतिक आदर्श

डॉ. सुचित्रा मित्रा, इलाहाबाद

वैदिक वाङ्मय में विकसित नैतिकता के आधार पर मानव के व्यक्तिगत और सामाजिक आचार-व्यवहारों का निर्धारण हुआ है। ऋग्वेद से उपनिषद् काल पर्यन्त धर्म का वास्तविक उद्देश्य मनुष्य की सर्वाङ्गीण उन्नति तथा निःश्रेयस की प्राप्ति रहा है। 'भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः' में जहाँ ऋषि कानों से मङ्गलमयी वाणी सुनना तथा आँखों से दर्शनीय वस्तुओं को देखना चाहते हैं, वहीं पर ऋषि हृष्ट-पुष्ट शरीर की कामना भी करते हैं, जिससे कि सर्वतोभावेन ईश्वर का ध्यान कर सकें। तभी तो ऋषि कहते हैं—"स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः" अर्थात् स्थिर अङ्ग और शरीरों से युक्त होकर स्तुति करते हुए देवताओं द्वारा जो निर्धारित आयु हमारे लिए है, उसे हम प्राप्त करें।

वैदिक ऋषियों ने तपस्या के द्वारा प्रकृति के विभिन्न रूपों में दिव्य शक्तियों का अनुभव किया। विभिन्न देवी, देवता, प्रकृति की विभिन्न शक्तियों के प्रतिनिधि के रूप में प्रकट होकर हमारा कल्याण साधित करते रहते हैं। जैसे माता के रूप में पृथिवी विभिन्न वनस्पतियों के द्वारा हमारी रक्षा करती है तथा वसुन्धरा को शस्य श्यामला बना देती है। पिता के रूप में द्यौः, द्युलोक में रहकर वहीं से प्राणीमात्र को प्रकाश देते रहते हैं। उनके प्रकाश की किरणों को लेकर क्रमशः ऊषा तथा सूर्य आते हैं। इन्द्र, जल तथा प्रकाश को रोकने वाले बादल वृत्र तथा अहि नामक असुरों को हटाकर जल उपलब्ध कराते हैं और बल नामक असुर को विदीर्ण कर प्रकाश प्रदान करते हैं। सवितृ देवता जीवन में प्रेरणा जगाते हैं और सबको नैतिक आदर्शों पर चलने के लिए बाध्य करते हैं। उनकी अवमानना करने पर वरुण देवता अपने पाशों में बाँध लेते हैं।

आज के युग में यदि विश्व के पुनरुत्थान की आवश्यकता है, तो केवल वैदिक धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों द्वारा ही इसकी समस्याओं का समाधान हो सकता है। वेदों में निर्दिष्ट सभी कर्मों को करते हुए यदि मनुष्य का हृदय ईश्वर में लगा रहे, तो प्रत्येक कार्य सत्कार्य हो जाता है। सुभाषित कहती है—यदि ईश्वरीय प्रेम इहलोक या परलोक में पुरस्कार की प्राप्ति के लिए भी किया जाय, तो वह भी सत्कार्य है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

V-84

अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः

डॉ. दिनेश पाण्डेय, बलिया

सम्पूर्ण वैश्विक क्रियाकलापों की धुरी में यज्ञ की ही स्थिति है। उसी के सहारे विश्व ब्रह्माण्ड का गति-चक्र घूमता है, इसीलिए वैदिक ऋषियों ने यज्ञ को भुवन का—इस समग्र सृष्टि का आधार बिन्दु कहा है—'अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः'—अथर्व0। विश्व सृजन एवं पालन यज्ञप्रक्रिया के ही प्रतिफल हैं। ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में सभी वेदों, पशुपक्षिमनुष्यादि जीवों, सूर्यचन्द्रादि देवों की उत्पत्ति यज्ञ-पुरुष से ही बतलायी गयी है। यह सम्पूर्ण जगत् भी यज्ञमय है—'सर्वं यज्ञमयं जगत्'— का0पु0। प्रकृति स्वयं ही अध्वर्यु के रूप में यजन कर रही है। इस ब्रह्माण्ड में जो कुछ हो रहा है, वही प्रतीक रूप में किया जाता है। यज्ञ सृष्टि नियमों के क्रियान्वयन में सहायक भी है। अग्नि में डाली गयी हवि वायु के माध्यम से ऊपर की ओर उठकर सारे अंतरिक्ष में फैल जाती है, फिर वही हवि मेघमण्डल के साथ नीचे की ओर उतरती हुई सभी प्राणियों को तृप्त करती है। यज्ञ द्वारा पृथ्वी और अंतरिक्ष के पदार्थ तथा सूर्य की रश्मियाँ भी पवित्र होती हैं। सूर्य जहाँ अपनी शक्ति से संसार की दुर्गन्धि को दूर करता है और जल को पवित्र बनाता है, वहीं मनुष्यकृत अग्निहोत्र भी इन्हीं दोनों कार्यों को सम्पन्न करता है। यज्ञ को वेदशास्त्रों में सर्वत्र सकल कल्याणकारक तथा सकल सृष्टि-संरक्षक कहा गया है।

समस्त कर्मों में श्रेष्ठतम होने के कारण इस विश्व में यज्ञ ही परम आराध्य वस्तु है—'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म'—श.ब्रा.। जो निष्काम भाव से यज्ञ करता है, उसे परमात्मा की प्राप्ति होती है—'निष्कामः कुरुते यज्ञं स परं ब्रह्म गच्छति'—मत्स्य-पु0। श्रेयःप्राप्ति के अभिलाषी मनुष्य के लिए यज्ञानुष्ठान ही परम उन्नति का साधन है।

यज्ञ को सभी देवों की आत्मा कहा गया है—'सर्वेषां देवानाम् आत्मा यद् यज्ञः'। यज्ञ को प्रजापति, विष्णु, सूर्य, सविता और इन्द्र भी कहा गया है। यज्ञ से ही देवशक्तियों का संवर्धन होता है। देवताओं के सन्तुष्ट और तृप्त होने पर ही यज्ञफल की प्राप्ति होती है—'तुष्टेषु सर्वदेवेषु यज्वा यज्ञफलं लभेत'—महाभारत। वेदविहित यज्ञों के द्वारा मनुष्य सब प्रकार के सुखों और यहाँ तक कि स्वर्ग को भी प्राप्त करने में समर्थ होता है। यज्ञ विविध कामनाओं की पूर्ति का सुगम मार्ग है।

यज्ञ मनुष्य के सब प्रकार के पापों का नाशक है। अथर्ववेद के अनुसार यज्ञ करने से शत्रु नष्ट हो जाते हैं—'अग्निहोत्रिणे प्रणुदे सपत्नाश्च'। यज्ञाग्नि विविध तापों से यजमान की रक्षा करती है।

'यज्-देवपूजा-संगतिकरण-दानेषु' धातु से नङ् प्रत्यय करने से निष्पन्न 'यज्ञ' शब्द के तीन अर्थ होते हैं—देवशक्तियों की पूजा, संगतिकरण एवं दान। ईश्वरीय दिव्य शक्तियों की आराधना, उपासना, उनकी समीपता-संगति तथा अपनी समझी जाने वाली वस्तुओं का उनके निमित्त त्याग—समर्पण—यही यज्ञ की आध्यात्मिक प्रक्रिया है। का0श्रौ0सू0 के देवताविशेष के लिए द्रव्य का अग्नि में प्रक्षेप यज्ञ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है—'द्रव्यं देवतात्यागः'। मत्स्य-पुराण में यज्ञ का लक्षण उसके अंगों के आधार पर इस प्रकार किया गया है—'देवां देयहविषां ऋक्सामयजुषाम् तथा। ऋत्विजां दक्षिणानां च संयोगो यज्ञ उच्यते'। श्रीमद्भागवत में यज्ञानुष्ठान की श्रौत्र (वैदिक), स्मार्त (तांत्रिक) और मिश्र (पौराणिक)—ये तीन मुख्य शैलियाँ बतलायी गयी हैं—'वैदिकास्तान्त्रिको मिश्र इति मे त्रिविधो मखः'। गौ0ध0सू0 में हव्य द्रव्यों के आधार पर यज्ञ की तीन संस्थाओं का निर्देश करते हुए प्रत्येक के सात भेदों का उल्लेख है। वेदविहित यागों में वे याग प्रकृति-याग कहलाते हैं, जिनमें यज्ञ के सभी अंगों का पूर्णतया विधान होता है।—'समग्राङ्गोपदेशः प्रकृतिः'। विकृति-याग में केवल उन्हीं विधियों का उल्लेख किया गया है, जो प्रकृति-याग में वर्णित नहीं है।

यज्ञ पुरुषार्थ प्रयोजन के लिए किया जाने वाला एक उच्चस्तरीय पुरुषार्थ है। ऐहिक और आमुष्मिक सभी प्रकार के फलों की प्राप्ति यज्ञ द्वारा सम्भव है। 'यज्ञोऽयं सर्वकामधुक्'—पद्मपु0। यज्ञानुष्ठान पर आज अधिक बल देने की इसलिए भी आवश्यकता है, ताकि सूक्ष्म जगत् में असुर शक्तियों की जो तीव्रगति से वृद्धि हो रही है, वह रुके और क्षीण होती देव-शक्तियाँ परिपुष्ट एवं सन्तुष्ट होकर शान्तिमय वातावरण की सृष्टि करें। दैवी प्रकोपों से बचने का वैज्ञानिक आधार है— यज्ञ। यह यज्ञ ही पृथिवी को धारण किये हुए है— 'यज्ञेन ध्रियते पृथिवी'। इसीलिए यज्ञ हमारी संस्कृति का आराध्य इष्ट रहा है।

❖

V-85

देवराज चानना कृत ऋग्भाष्य-संग्रह में अग्नि की महत्ता

श्री नारायण कुमार झा, दरभंगा

वेद का शाब्दिक अर्थ होता है—ज्ञान। वैदिक संहितायें चार तरह की हैं—1. ऋग्वेद, 2. यजुर्वेद, 3. सामवेद एवं 4. अथर्ववेद। इन सभी वेदों में ऋग्वेद को सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है एवं इसे महत्त्वपूर्ण स्थान से भी विभूषित किया जाता है। इसमें अनेक ऋषियों के द्वारा निर्मित सूक्तों में प्रधान रूप से 33 देवताओं का वर्णन किया गया है।

वैदिक आर्यों के लिए इन्द्र के बाद अग्निदेव का सर्वप्रमुख स्थान था। ऋक्संहिता में 200 सूक्त अग्नि देवता के स्तवन में लिखे गये हैं। प्रत्येक मण्डल में इन्द्र-सूक्तों से पहले अग्नि-सूक्तों का आना ही अग्नि के माहात्म्य की पुष्टि करता है। इन्द्र को अग्नि का जुड़वाँ भाई भी समझा जाता है; क्योंकि अग्नि (आग) और इन्द्र (पानी) ये दोनों जीवन की दो मूलभूत आवश्यकताएँ हैं।

माता-पितारूपी अरणियों के संघर्षण में बल की आवश्यकता होने के कारण अग्नि को शक्तिपुत्र भी कहा जाता है—

"सह जायसे मथमानः सहो महत्। त्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः"॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धूम के आकाश में उड़ने के कारण ही इसे धूमकेतु के नाम से भी जाना जाता है—

''धूमस्ते केतुरमद्विवित्रतः''॥

कहीं-कहीं पर अग्नि का स्तवन करते हुए उसे पुरोहित की संज्ञा से भी विभूषित किया गया है—

''ॐ अग्निमीळे पुरोहितम्। यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्''॥

अन्य जगहों पर अग्नि की महिमा का वर्णन करते हुए लिखा गया है कि—

''राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्। वर्धमानं स्वे दमे॥''

''स न पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये॥''

अग्नि की अपूर्वतम पवित्रता के कारण ही उसकी महत्ता आज तक विद्यमान है। अग्नि के बिना मनुष्य का कोई भी कार्य सम्पादित नहीं हो सकता है। सरल एवं मधुरतम रूपों में अग्नि की अनेक जगहों पर स्तुतियाँ की गई हैं। हम मानवों के द्वारा उस अग्नि का स्तवन किया जाता है, जो यज्ञ, देवताओं तथा मनुष्यों, प्राचीन तथा नवीनतम ऋषियों के द्वारा पूजा करने योग्य है।

❖

V-86

ऋग्वेद में मानव पारिस्थितिकी और वनस्पति जगत्

डॉ. नन्दिता सिंघवी, बीकानेर

मानव और प्रकृति के अन्तःसम्बन्धों की व्याख्या मानव पारिस्थितिकी है। मानवीय सभ्यता में मानव, वनस्पति जगत् का अन्तःसम्बन्ध अति प्राचीन काल से रहा है। मानव के सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकासक्रम के सभी स्तरों एवं आनुवंशिक परिस्थितियों में वनस्पतियों का प्रमुख योगदान रहा है। औषधि और वनस्पतियाँ मानव के स्वास्थ्यरूपी धन के संरक्षक हैं (ऋग्वेद - 7.34.23)। औषधियाँ फूलों और फलों से रोगी का उपचार कर रोग-पीड़ाओं को रोकती हैं और रोगी को कष्ट से पार कराती हैं (10.97.3)। औषधियाँ जिस रोगी मनुष्य के अंग प्रत्यंग और ग्रन्थि-ग्रन्थि में व्याप्त हो जाती है, उसके शरीर में से रोग को दूर कर देती हैं (ऋ 10.97.12)। 'सोम' को 'रक्षोहा' (ऋग्वेद 9.37.3; 9.67.20) कहा गया है; क्योंकि सोमरस पान से रोग वाइरस और वैक्टीरिया दूर हो जाते हैं। अपमीवा भवतु रक्षसा सह (ऋ. 9.85.1)। औषधियाँ अनेक कर्म सामर्थ्य से युक्त होती हैं और आरोग्य प्रदान करती हैं (ऋ. 10.97.2)। सहस्त्रों औषधियाँ ऐसी हैं, जिनसे बच्चे पुष्ट होते हैं (ऋ. 7.46.3)। सोमरस पान से चैतन्य-रूपी धन की प्राप्ति होती है—रयिं कृण्वन्ति चेतनम् (ऋ. 9.31.1)।

वस्तुतः हमें प्रकृति से औषधियाँ, जल और पृथ्वी ऐश्वर्यसम्पन्न प्राप्त हुई हैं, अतः हम मानवों का कर्त्तव्य है कि इनका संरक्षण कर इन्हें ऐश्वर्य सम्पन्न बनाये रखें। इस कार्य को वेदों ने महान् कर्म माना है—महद् देवानामसुरत्वमेकम् (ऋ. 3.55.22)।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान में मानवकृत वनस्पति जगत् के विनाश से पारिस्थितिकी असन्तुलन व भीषण पर्यावरणीय समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं, जिनका समाधान वैदिक चिन्तन के परिप्रेक्ष्य में संभव है।

प्रस्तुत शोधपत्र में मानव-वनस्पति जगत् की अन्तःप्रक्रियाओं के अध्ययन द्वारा मानव के जीवन और उसकी भौतिक व आध्यात्मिक योग्यता के विकास हेतु आवश्यक संभावनाओं को प्रस्तुत कर वनस्पति जगत् के सन्दर्भ में मानव के स्थान का निर्धारण किया गया है।

❖

V-87

उपनिषदों के अनुसार प्रणव का महत्त्व

कु. अञ्जलि वसंत टोपरे, रामटेक

भारतीय दर्शन का मुख्य आधार उपनिषद् है। भारतीयों की परमात्ममीमांसा और तदन्तर्गत ज्ञानमीमांसा और मूल्यमीमांसा, उसी प्रकार भारतीयों की राजनीति और न्यायपद्धति, भारतीयों का धर्म, उनकी कला और उनके साहित्य— इन सब पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष उपनिषदों के विचारों का प्रभाव दिखता है। भारतीयों का जीवनमूल्य, चैतन्यशक्ति उपंनिषदों में ही है। भारतीयों के वैयक्तिक और आध्यात्मिक जीवन में उपनिषदों का अद्वितीय स्थान है।

उपनिषदों को ही "वेदान्त" कहा जाता है। ब्रह्म स्वरूप का संकलन और आत्मदर्शन की साधना, इनका संपूर्ण विकास और अर्थविस्तार उपनिषदों में दिखता है। इसलिये उपनिषदों को आम्नायमस्तक अर्थात् वेदों का उत्तमांग कहा जाता है।

प्रवण का अर्थ होता है— मानव-जीवन में सर्वकल्याण का निधान, अर्थात् 'ओङ्कार'। उपनिषदों की संख्या वैसे तो बहुत है। उनमें से अतिप्राचीन एवं महत्त्वपूर्ण उपनिषद् दस हैं। इनमें प्रतिपादित प्रणव का स्वरूप इस निबन्धों में प्रस्तुत किया गया है।

❖

V-88

वेदाङ्ग साहित्य का परिचय

श्री कृष्ण कुमार झा, दरभंगा

भारतीय वेदाङ्ग साहित्य का विश्व सभ्यता-संस्कृति में एक महत्त्वपूर्ण स्थान हैं।

ब्राह्मण काल के अनन्तर सूत्रकाल का आरम्भ हुआ है। इस काल में हम लोग श्रुति से हटकर स्मृति में आते हैं। इन ग्रन्थों की रचना बड़ी विलक्षण है, क्योंकि छोटे-छोटे अल्प अक्षरों के द्वारा विपुल

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थों के प्रदर्शन का प्रयास किया गया है। यज्ञ-याग का इतना अधिक विस्तार हो गया था कि इसे याद करने के लिए ऐसे छोटे-छोटे ग्रन्थों की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। इस काल में जो ग्रन्थ रचे गये, वे वेद के अर्थ तथा विषय को समझने के लिए नितान्त उपयोगी हैं। इसीलिए इन्हें वेद का अङ्ग या वेदाङ्ग कहते हैं। जो संख्या में छः हैं—

1. शिक्षा, 2. कल्प, 3. व्याकरण, 4. निरुक्त, 5. छन्द, 6. ज्यौतिष्। प्रस्तुत निबन्ध में इन्हीं का विशेष परिचय है।

❖

V-89

आपस्तम्ब-धर्मसूत्र में वर्ण-व्यवस्था

श्री विजयपाल सिंह, कुरुक्षेत्र

वैदिक संस्कृति की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता वर्ण-व्यवस्था है। वैदिककाल में वर्ण-व्यवस्था अपनी आरम्भिक अवस्था से चलकर पूर्णावस्था पर पहुँच जाती है और धर्मसूत्रों में इसी व्यवस्था का अन्तिम रूप दिखाई पड़ता है। आपस्तम्ब-धर्मसूत्र में वर्ण-व्यवस्था मेरे शोध-पत्र का विषय है, जिसके अन्तर्गत सर्वप्रथम 'वर्ण' शब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ को यास्कीय निरुक्त, सिद्धान्त-कौमुदी, विभिन्न शब्दकोशों के अन्तर्गत स्पष्ट किया गया है। तत्पश्चात् वेदों, ब्राह्मण-ग्रन्थों तथा धर्मसूत्रों के अन्तर्गत आपस्तम्ब-धर्मसूत्र में 'वर्ण' शब्द के अर्थ को स्पष्ट किया गया है। तत्पश्चात् वर्णों के व्युत्पत्ति सम्बन्धी आधार के विषय में बताया गया है कि वर्ण-व्यवस्था का आधार जन्म है या गुण एवं कर्म। तत्पश्चात् वर्णों के प्रकार एवं कर्त्तव्य के बारे में विस्तार से चर्चा की गई है। सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय में वर्णों के चार प्रकार स्वीकार किये गये हैं। आपस्तम्ब-धर्मसूत्र भी चारों वर्णों का समर्थन करता है, अर्थात् वर्ण चार हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र। वेदों, ब्राह्मण-ग्रन्थों, मनुस्मृति तथा आपस्तम्ब-धर्मसूत्र में 'ब्राह्मण' शब्द के अर्थ एवं कर्त्तव्यों का विवेचन किया गया है, अर्थात् जो व्यक्ति ब्राह्मणों के विहित कर्मों का करने वाला हो, वही व्यक्ति ब्राह्मण कहलाता है। तत्पश्चात् क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र आदि शब्दों की व्युत्पत्ति, प्रकार एवं कर्त्तव्यों पर प्रकाश डाला गया है। उपर्युक्त शोध-पत्र के विवेचन से हमारे सामने अनेक रोचक तथ्य सामने आते हैं कि वर्ण-व्यवस्था और वर्णों के अपने-अपने कर्त्तव्यों का पालन एक समृद्ध राष्ट्र के निर्माण का आधार कहा जा सकता है।

❖

V-90

वर्तमान समय में निष्काम कर्म उपासना ही है : आत्मज्ञान का आधार

सम्पूर्ण प्राणिवर्ग में मनुष्य ही बुद्धिशील प्राणी है, जिसके पास उचित-अनुचित का विवेक है। वर्तमान समय में मनुष्य भौतिक भोगों में लिप्त होने के कारण इस संसार-सागर से पूर्ण रूप से मुक्तिप्राप्ति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के विषय में चिन्तन ही नहीं कर पाता है; परन्तु कुछ ज्ञानीजन अपने कर्तव्यों को करने के साथ ही आत्मज्ञान भी प्राप्त करना चाहते हैं। ऐसे लोगों के लिये निष्काम कर्म का मार्ग ही सर्वोत्तम है। इस जगत् के समस्त प्राणी कर्म के बन्धन से बँधे हुये हैं, परन्तु मनुष्य ही है जो कर्म में आसक्त हुये बिना कर्मों को करते हुए इस भवबन्धन से मुक्त हो सकता है।

कर्म तीन प्रकार के होते हैं—कर्म (स्वधर्म), विकर्म तथा अकर्म। कर्म वे कार्य हैं, जिनका आदेश प्रकृति के गुणों के रूप में प्राप्त किया जाता है। अधिकारी की सम्मति के बिना किये गये कर्म विकर्म कहलाते हैं और अकर्म का तात्पर्य है कर्मों को न करना।

वह परमात्मा सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक होते हुये भी कर्म के अटल सिद्धान्त को किसी भी अंश में नहीं बदल सकता। जो कर्म आसक्ति त्याग के बिना किये जाते हैं, वही बन्धन के कारण होते हैं।

सर्वप्रथम उपनिषद् ईशवास्योपनिषद् में भी वर्णित है कि—'जो कुछ इस जगत् में दृश्यमान् है, उसका त्यागपूर्वक भोग करो'।

कठोपनिषद् में भी विवेचन है कि—'कर्म किये तो जायें परन्तु निष्काम होकर; वासनाओं की तृप्ति के लिये नहीं, वरन् उनके उपशम के लिये'।

पुनः अन्यत्र कहा गया है—'जो व्यक्ति फल की कामना को छोड़कर कर्म करता है, जो शोक का अतिक्रमण कर गया है, वह धातु के प्रसाद से आत्मा की महिमा का अनुभव करता है। यहाँ 'धातु' का तात्पर्य अन्तःकरण और इन्द्रियों से है'।

अष्टावक्र-गीता में भी कर्म के विषय में इस प्रकार विवेचित है—'सुख-दुःख, जन्म-मरण दैवयोग से ही होता है; ऐसा निश्चय वाला व्यक्ति साध्य कर्म का द्रष्टा रहकर निरावास कर्मों को करता हुआ न कोई कामना करता है, न किसी वस्तु के लिये शोक करता है'।

अवधूत-गीता में भी कहा गया है—'मैं कर्म से रहित हूँ, फिर भी परमकर्म को निरन्तर करता हूँ'। अन्यत्र दत्तात्रेय पुनः कहते हैं कि—'शरीर, मन एवं वाणी से भिन्न शुद्ध आत्मस्वरूप होने से न मैं कर्मों का कर्ता हूँ न भोक्ता'।

श्रीमद्भगवद्गीता में भी वर्णित है—'कर्मफल में आसक्ति का त्याग हो और अकर्म में भी आसक्ति न हो'।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मात्र कर्म ही अन्तःकरण की शुद्धि एवं परमपुरुषार्थ की प्राप्ति का साधन है। उस पुरुषार्थ को हम मुक्ति, कल्याण या निर्वाण कह सकते हैं। मेरे विचार में निष्काम कर्म ही आध्यात्मिक उन्नति का सर्वश्रेष्ठ साधन है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

V-91

मानव कल्प में विवेचित अहीनयाग

डॉ. हरीराम यादव, सुलतानपुर

सौमिक यागों के अन्तर्गत अहीनयाग का अनुष्ठान विधान प्रायः सभी प्रस्थानों के श्रौताचार्यों ने निहित किया है। मैत्रायणी शाखा की उपशाखा जिसे मानव शाखा अभिधान प्राप्त है, के अन्तर्गत अहीन सोमयाग का अनुष्ठान विधान वैज्ञानिक दृष्टिकोण से किया गया है। वस्तुतः दो दिवसों से आरम्भमाण तथा द्वादश दिवसपर्यन्त सम्पद्यमान सोमयाग अहीन सोमयाग के नाम से ज्ञेय है। इस याग का सम्पादन विविध कामनाओं की पूर्ति हेतु, जैसे—प्रजाओं (सन्तानों) की प्राप्ति के अभिलाषी तथा पशुकामी यजमान को अङ्गिरसाओं का द्विदिवसीय याग, सर्वकामी तथा विजयाकांक्षी व्यक्ति को विश्वदेवों के भर्ग नामक त्रिदिवसीय अहीनयाग का अनुष्ठान विहितव्य है। चतुर्दिवसीय अहीनयाग में अत्रि का याग प्रथम है, जो चार वीर पुत्रों की कामना से अनुष्ठेय है। इसी भाँति जमदग्नि का याग, वशिष्ठ का संसर्प याग, विश्वामित्र का संजय याग आदि अनुष्ठेय हैं। षट्दिवसीय याग प्रबल सहायता तथा वीर्यकामी व्यक्ति द्वारा अनुष्ठेय है। इसी भाँति अनेक दिवसीय यागों का विहित प्रधान देवता, ऋषि, छन्द आदि का विधान मानव कल्प में विविध कामनाओं हेतु किया गया है। इस भाग में अनेक दिवसों में सम्पद्यमान यागों के लिए दक्षिणा की विविधतायें भी निरूपित हैं।

मानव कल्प में विवेचित अहीनयाग आनुष्ठानिक दृष्टि से परिपूर्ण है। इसके अनुष्ठान हेतु किसी अन्य शाखा के आचार्य के सिद्धान्त के अवलम्बन की आवश्यकता नहीं है।

❖

V-92

प्रातिशाख्य-ग्रन्थों का उद्भव और विकास

डॉ. राधेश्याम पाण्डेय, लखनऊ

वैदिक वाङ्मय में प्रातिशाख्य-ग्रन्थों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वैदिक अध्ययन-अध्यापन की परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये प्रातिशाख्य-ग्रन्थों का उद्भव और विकास हुआ। इन ग्रन्थों में वेद की किसी शाखाविशेष से सम्बन्धित वर्ण, पद, सन्धि, स्वर इत्यादि अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों का साङ्गोपाङ्ग विवेचन प्रस्तुत किया गया है, जिससे तत्सम्बन्धित संहिता के बाह्य स्वरूप का सम्यक् ज्ञान हो जाता है।

अतः स्पष्ट है कि वैदिक ऋचाओं के बाह्य स्वरूप के सूक्ष्म ज्ञान एवं परिशीलन के लिए ये ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी हैं। उल्लेखनीय है कि इतनी अधिक उपयोगिता होते हुए भी प्रातिशाख्य की गणना उपाङ्ग रूप से करते हैं। किन्तु आधुनिक विद्वानों के अनुसार इसका सम्बन्ध शिक्षा-ग्रन्थों से है। इनका कथन है कि तैत्तिरीय शिक्षाध्याय में उपदिष्ट शिक्षाग्रन्थों के प्रतिपाद्य विषय प्रातिशाख्यों में भी उपलब्ध होते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः इनका सम्बन्ध शिक्षाग्रन्थों से है। किन्तु यह मत उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। इसका कारण यह है कि प्रातिशाख्य ग्रन्थों में शिक्षा-ग्रन्थों के प्रतिपाद्य विषयों— वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम और सन्तान के अतिरिक्त अन्य नवीन विषयों तथा प्रगृह्य-अवगृह्य विषयक विधान, क्रमपाठ इत्यादि का ही प्रतिपादन किया गया है। इन तथ्यों से यह सिद्ध होता है कि प्रातिशाख्य शिक्षा वेदाङ्ग के अन्तर्गत नहीं है, बल्कि यह एक स्वतन्त्र शास्त्र है। अत एव निःसन्देह कहा जा सकता है कि षड् वेदाङ्गों में प्रातिशाख्यों का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

❖

V-93

यजुर्वेद में पर्यावरण चेतना

श्री उपेन्द्र कुमार त्रिपाठी, वाराणसी

पर्यावरण शब्द अंग्रेजी के (Environment) शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। यह शब्द वैदिक एवं लौकिक संस्कृत वाङ्मय में सामान्यतया उपलब्ध नहीं होता। पर्यावरण शब्द परि + आवरण इन दो शब्दों से बना है। परि का अर्थ अपने चारों ओर तथा आवरण का अर्थ आच्छादन है। जिसे हम व्यापक दृष्टि से कह सकते हैं कि 'हमारे चारों तरफ ही नहीं अपितु स्थावर, जंगम के अतिरिक्त सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को चारों तरफ से आच्छादित करने वाला पदार्थ या तत्त्व समूह पर्यावरण है।

❖

V-94

अथर्ववेद एवं चिकित्सा-तत्त्व

डॉ. दीनानाथ 'आचार्य', दरभंगा

मानव-धर्म, संस्कृति, सभ्यता और ज्ञान-विज्ञान का विशाल प्रासाद विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ वेद की दृढ़ आधारशिला पर सुप्रतिष्ठित है। मनु ने वेदों को सर्वज्ञानमय एवं समस्त धर्मों का मूलग्रन्थ कहा है—

'सर्वज्ञानमयो हि सः' (मनुस्मृति-2।7), 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्' (मनुस्मृति-2।6)।

मानव-धर्मों का पालन स्वस्थ शरीर द्वारा ही सम्भव है, अतः कहा गया है—'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' (कुमारसम्भव-5.33)। चरक-संहिता (सूत्रस्थान-1.15) में पुरुषार्थ-चतुष्टय— धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि का मूल उत्तम स्वास्थ्य कहा गया है। यद्यपि चारों वैदिक संहिताओं में स्वास्थ्यपरक वर्णन अल्पाधिक उपलब्ध होता है, पुनरपि ऋग्वेद की अपेक्षा अथर्ववेद में चिकित्सा एवं औषधि का वर्णन विशदता से प्राप्त है। अथर्ववेद (11।4।16) में चार प्रकार की चिकित्सा—1. आथर्वणी, 2. आंगिरसी, 3. दैवी एवं 4. मनुष्यजा का संकेत मिलता है, जो आगे चलकर आयुर्वेद की अष्टांग

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिकित्सा—1. शल्य-चिकित्सा, 2. शालाक्य-चिकित्सा, 3. काय-चिकित्सा, 4. भूत-विद्या, 5. कौमारभृत्य, 6. अगद-तन्त्र, 7. रसायन-तन्त्र एवं 8. वाजीकरण के अन्तर्गत विभाजित होकर विस्तार को प्राप्त किया है। अथर्ववेद में चिकित्सा के तत्त्व बीजरूप में उपलब्ध हैं, जिनका अध्ययन इस शोध-लेख में करने का प्रयास किया गया है।

❖

V-95

हिन्दुओं के विवाह में मेलापक योगविचार

डॉ. तीर्थनाथ झा, मधुवनी (बिहार)

वर एवं कन्या के विवाह में मेलापक योग के आधार पर ही विवाह होना चाहिए। वैसे वेद के आधार पर चार वर्ण-व्यवस्था की गई है—1. ब्राह्मण, 2. क्षत्रिय, 3. वैश्य, 4. शूद्र।

इन चारों वर्णों में विवाह के लिए भिन्न-भिन्न कूट की आवश्यकता होती है। इस प्रसंग में गौतम ऋषि का मत है कि—

विप्राणां दशकूटं स्यात् क्षत्रियाणां तथाष्टकम्।
वैश्यानामथ षड्भेदं शूद्राणां च चतुष्टयम्॥

अर्थात् विप्रों के लिए 10, क्षत्रियों के लिए 8, वैश्यों के लिए 6 तथा शूद्रों के लिए 4 कूट होते हैं। वैसे व्यवहार में आठ कूटों का ही विचार सभी वर्णों में किया गया है। आठ कूटों में 36 गुणों के आधार पर एवं 10 कूटों में 55 गुणों के आधार पर विवाह उत्तम होता है। पुनः इस प्रसंग के दश कूटों का भी प्रमाण आता है, जो इस प्रकार है—

वर्णो वश्यं नृदूरं च वल्लभत्वं च तारका।
योनिर्मित्रगणे राशिर्नाडिकेति क्रमाद्दश॥

वैसे मेलापक योग के आधार पर विवाह उत्तम माना जाता है। दम्पत्ति के जन्म या नाम-नक्षत्र से सुख, सन्तान के लिए विवाह से पूर्व राशि का मिलान करना चाहिए। यदि जन्म नक्षत्र नहीं हो, तो नाम-नक्षत्र के आधार पर ही विचार करना चाहिए। इस सन्दर्भ में वसिष्ठ जी की उक्ति है—

अज्ञातजन्मनां नृणां नामभे परिकल्पना।
तेनैव चिन्तयेत् सर्वं राशिकूटादि जन्मवत्॥

अर्थात् इस मेलापक के आधार पर ही विवाह उत्तम होता है। इस क्रम में आठ कूटों का वर्णन आया है, जो निम्न हैं—1. वर्ण कूट, 2. वश्य कूट, 3. तारा कूट, 4. योनि कूट, 5. ग्रह मैत्री कूट 6. गण कूट 7. भकूट-विचार 8. नाड़ी-कूट-विचार।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपर्युक्त आठ कूटों के आधार पर विचार करने पर कम से कम 18 गुणों एवं अधिक से अधिक 36 गुणों के आधार पर विवाह उत्तम होता है। आठ कूटों का जो नाम दिया गया है, उनमें जो कूट हीन पड़ता है, उसकी शान्ति करा देने पर वह प्रभावशाली होता है। अगर उत्तम गुणों से मेलापक योग मिलता है, तो उत्पन्न होने वाली सन्तान पर भी प्रभाव पड़ता है। वैसे जन्म कुण्डली के 1,4,6,8,12 वें भाव में मंगल या अन्य पापग्रह होता है, तो पति-पत्नी नाशक कहा गया है। इन स्थानों में मंगल रहने पर पुरुष की कुण्डली में समंगल एवं स्त्री की कुण्डली में रहने पर मंगली संज्ञक योग होते है।

❖

V-96

वायु-प्रदूषण : कारण और निवारण

डॉ. कृष्णा रंगा, कुरुक्षेत्र, हरियाणा

वैदिककाल में मनुष्य प्रकृति के अत्यन्त निकट था। उसके सौन्दर्य को आत्मसात् कर, उसकी विराटता की अनुभूति कर, उसके कण-कण के सङ्गीत का श्रवण कर ही वह 'मन्त्रद्रष्टा' बन सका था। मनन की इसी प्रक्रिया से एक ओर द्यौ, पृथ्वी, सूर्य, अग्नि, वायु तथा जल देवरूप में कल्पित हुये, तो साथ ही औषधियाँ और वनस्पतियाँ भी स्तुति की पात्र बनीं। भारतीय संस्कृति सदा से ही समन्वय की संस्कृति रही है। जीवन के हर क्षेत्र में यह विशेषता झलकती है। यन्त्र तथा विज्ञान प्राचीनकाल में भी उन्नत रहे हैं; परन्तु महत्त्व यहाँ अध्यात्म को ही दिया गया है। जीवन के त्रिवर्ग में धर्म, अर्थ, काम में से धर्म को ही महत्त्व मिला। परिणामस्वरूप हमारा सांस्कृतिक आदर्श त्याग का रहा, भोग का नहीं। इसी त्याग की भावना के द्वारा बड़े स्वभाविक रूप से प्रकृति का संरक्षण होता रहा। लेकिन आधुनिक समय में अर्थ और काम मुख्य हो गये और धर्म पृष्ठभूमि में चला गया। एक ओर विकास के नाम पर प्रकृति का अन्धाधुन्ध दोहन व शोषण, तो दूसरी तरफ सांस्कृतिक मूल्यों का ह्रास हो रहा है। इसी कारण देश में अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो गई हैं। उन्हीं में से एक समस्या पर्यावरण-प्रदूषण की है, जो अनेक प्रकार का है, जैसे—जल-प्रदूषण, वायु-प्रदूषण, ध्वनि-प्रदूषण आदि। अन्य प्रदूषण की अपेक्षा वायु-प्रदूषण विशेष रूप से हानिकारक होता है, क्योंकि पहले तो यह क्षेत्रीय नहीं होता और दूसरा कोई भी जीव अधिक समय तक साँस नहीं रोक सकता, जिससे प्रदूषित वायु से बचा जा सके। प्राचीनकाल में वायु पूर्ण रूप से शुद्ध था, फिर भी मानव-स्वभाव को जानने वाले ऋषियों ने जीवन की इस तरह व्याख्या की, जिससे कोई समस्या उत्पन्न न हो और यदि हो भी जाय, तो उसका समाधान करने का प्रयत्न भी किया गया है। वैदिक ऋषि की यह सजगता और जागरूकता वैदिक साहित्य में पदे-पदे दिखाई देती है। वायु को शुद्ध करने के संकेत भी वैदिक संहिताओं में उपलब्ध होते हैं। उन्हीं का उल्लेख मैंने अपने शोध-पत्र में करने का प्रयास किया है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

V-97

वैदिक वाङ्मय का व्यावहारिक पक्ष

डॉ. हरीश्वर दीक्षित, जौनपुर

वैदिक वाङ्मय में मानव-जीवन सम्बन्धी पर्याप्त उपदेश दिये गये हैं। वैदिक वाङ्मय के व्यावहारिक पक्ष से तात्पर्य यह है कि वे सभी भौतिक एवं आध्यात्मिक, लौकिक एवं अलौकिक उपाय, कार्य, कर्त्तव्य एवं धर्म इत्यादि जो मानव जीवन की आधिभौतिक एवं आधिदैविक उन्नति में सहायक हों, व्यावहारिक पक्ष के अन्तर्गत आते हैं। इसमें व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र के चतुर्दिक् विकास, साम्प्रदायिक सद्भाव एवं विश्वबन्धुत्व की भावना निहित है। वैदिक वाङ्मय के अन्तर्गत संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् तथा वेदांगों में कल्पसूत्र के अन्तर्गत श्रौत, गृह्य एवं धर्मसूत्रों में मानव जीवन के व्यावहारिक सूत्र पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं, जो मानव की उन्नति में सहायक हैं। उच्च लक्ष्य की प्राप्ति हेतु ऋत एवं सत् के साथ श्रद्धा एवं विश्वास को आवश्यक बताया गया है। व्यावहारिक जीवन में वाणी के उचित प्रयोग तथा त्याग एवं दान के द्वारा मानव उत्कृष्टता के उच्चतम शिखर पर पहुँच सकता है। संज्ञान-सूक्त सामाजिक सौहार्द तथा पुरुषसूक्त सामाजिक नियम एवं व्यवस्था का परिचायक है। यज्ञ मानव को सब कुछ प्रदान कर सकता है। नासदीय-सूक्त मानव व्यवहार के बौद्धिक पक्ष का प्रतिपादन करता है। अक्ष-सूक्त जुआ खेलने का निषेध करता है। विवाह-सूक्त स्त्री के कर्तव्य एवं परिवार में उसका स्वामित्व निर्धारित करता है। पुरूरवा-उर्वशी, यम-यमी संवाद अनैतिक कामाचार, बलात्कार एवं अपहरण को रोकने का उपदेश देते हैं। सरमा-पणि संवाद राष्ट्रीय राजदूत का कर्तव्य एवं गुप्तचर व्यवस्था का निर्देश करते हैं। यजुर्वेद में यज्ञ-प्रक्रिया, राष्ट्र-रक्षा हेतु प्रार्थना एवं जागरण, विश्वबन्धुत्व की भावना, आतंकवाद से लड़ने एवं रक्षा का उपदेश तथा मानव जीवन के विविध व्यवहारोपयोगी पक्ष वर्णित हैं। अथर्ववेद में राष्ट्र में समानता का अधिकार, राष्ट्रीय एकता, देशरक्षा, राजा के कर्तव्य, सैनिक शासन के दोष, राजकीय आय के साधन तथा शासन प्रणाली एवं संसद के कार्य-व्यवहार उपदिष्ट हैं।

❖

V-98

सामवेद की कौथुम-शाखा में अलङ्कार-तत्त्व

श्रीमती डॉ. वन्दनापाण्डेय, वाराणसी

वैदिक वाङ्मय ज्ञान-राशि है। इसमें सामवेद का सर्वाधिक महत्त्व सदैव सर्वमान्य रहा है। 'वेदानां सामवेदोऽस्मि' कहकर स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने इसकी श्रेष्ठता को शीर्षस्थ सिद्ध किया है।

वैदिक युग में रचनाकार के समक्ष एकमात्र लक्ष्य था—प्रतिपाद्य। तथापि विषयवस्तु के सम्यक् तथा सुरुचिपूर्ण प्रतिपादन के लिए ऋषियों ने शब्दार्थ की योजना की अथवा उन्हें जिन मन्त्रों के दर्शन हुए,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनमें विविध अलंकारों को सहज ही देखा जा सकता है। काव्यांगभूत अन्य तत्त्वों की भाँति अलंकार भी यहाँ वैदिक मर्यादा के साथ विद्यमान हैं। ये अलंकार यहाँ काव्यचारुता के ही साधक नहीं बने हैं, अपितु ये हमें वेदार्थों के आधिदैविक एवं आधिभौतिक आदि रूपों से भी परिचित कराते हैं और खरे उतरते हैं 'वैचित्र्यम् अलंकारः' की कसौटी पर।

'अलंकरोतीति अलंकारः' तथा 'अलंक्रियते इति अलंकारः' आदि से परिभाषित अलंकार को आचार्य मम्मट ने काव्य का अस्थिर धर्म अवश्य माना है, तथापि अलंकारों से काव्य-सौन्दर्य का उत्कर्ष अवश्य होता है। भरत, मम्मट, दण्डी, रुद्रट आदि के द्वारा अलंकारों के दो प्रमुख भेद स्वीकारे गये हैं— 1. शब्दालंकार, 2. अर्थालंकार। शब्दों एवं अर्थों पर आश्रित इन अलंकारों की छटा कौथुम-संहिता में पर्याप्त देखने को मिलती है।

देवताओं की स्तुति में प्रयुक्त 'साममन्त्र' शब्दालंकारों से युक्त होकर और भी कर्णप्रिय बन पड़े हैं, जो देवताओं को प्रसन्न कर स्तोता की अभीष्ट सिद्धि में सहायक हुए हैं। शब्दों एवं वर्णों की आवृत्ति के साथ कोमला, परुषा आदि वृत्तियाँ भी सम्मिलित होकर विषयगत भावों की अधिक सशक्त प्रस्तुति में सहायक बनी हैं।

❖

V-99

वेदों में द्यूत-निन्दा

डॉ. आशा रानी राय, कानपुर

सृष्टि के आरम्भ में मानव मात्र को सुख-शान्ति से जीवन-यापन करने हेतु परमेश्वर की अमृतमयी वेदवाणी श्रुति परम्परा से लेकर ग्रन्थ के रूप में आज भी मानव को दुरितों, दुर्व्यसनों व दुःखों से विरत कर प्रसन्नता की दोले में दोलायमान करने में सक्षम, समर्थ व सार्थक है।

वेदों की अमर ऋचाओं में न केवल आध्यात्मिकता, धार्मिकता व नैतिकता है, वरन् सदाचार, सदाशयता व जीवन-जीने की कला भी है। जीवन के उत्थान करने वाले सद्गुणों सङ्कल्पों व वचनों के कथन के साथ-साथ पतन के मार्ग पर ले जाने वाले दुर्व्यसनों व दुर्गुणों का मार्मिक-चित्रण कर उससे होने वाले अनिष्टों का हृदयग्राही और प्रेरक वर्णन है। ऋग्वेद में स्पष्ट है कि सात मर्यादाओं में से एक भी मर्यादा अर्थात् पाप को करता है, वह पापी होता है। हिंसा, चोरी, व्यभिचार, मद्यपान, जुआ, असत्य-भाषण और इन पापों के करने वाले दुष्टों के सहयोग का नाम सप्तमर्यादा है। इस प्रकार काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और अहंकार की प्रवृत्तियाँ कर्मेन्द्रियों व ज्ञानेन्द्रियों को पाप-कर्म की ओर प्रेरित करती हैं, पापकर्म कर्त्ता सर्वदा नकारात्मक चिन्तन से युक्त होता है। ऋग्वेद के दशम मण्डल के अक्षसूक्त में जुआरी का रोचक वृतान्त वर्णित है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्हीं भावों को किसी कवि ने अपने श्लोक में बहुत सुन्दर वर्णन किया है कि एक भिक्षु को माँस खाते देखकर कोई पूछता है— अरे भिक्षु माँस खा रहे हो। वह बोलता है— प्रतिदिन नहीं खाता हूँ जब कभी मद्यपान करता हूँ, तभी खाता हूँ। अरे तुम मदिरा भी पीते हो। अरे प्रतिदिन नहीं पीता, जब जुएं में जीत जाता हूँ। अहा, जुआं खेलते हो। प्रतिदिन नहीं खेलता जब वेश्या के पास जाना होता है। विवेक से पतित व्यक्ति दलदल में प्रविष्ट होने के समान व्यसनों रूपी दलदल में चला जाता है, पतित होने की सारी सीमाएं समाप्त हो जाती है।

यह दृश्य आज भी जुआ खेलने वाले परिवार में देखा जा सकता है। इसलिए कि जुए की आदत में एक से सौ बनाने का लालच होता है वेद कहता है कि हे मनुष्य तू एक सौ बना, लेकिन जुए से नहीं, कृषि से, पासे से नहीं, बीज बोकर। खेती करके प्रसन्न रहो; क्योंकि खेती से सारी प्रसन्नताएं व आवश्यकताएँ पूर्ण होगीं। घर पर गाएँ रभाँ रही होगीं, पत्नी मुस्कराते हुए स्वागत कर रही होगी, बच्चे खेल रहे होगें, सुखद व सुन्दर परिवार होगा। अतः द्यूतक्रीड़ा को त्यागो और कृषि जैसा पवित्र कर्म करो। इस प्रकार व्यक्ति दृढ़ संकल्प लेवे कि हमारे जीवन के समस्त दुःख, दुर्गुण व दुर्व्यसन दूर होवें तथा कल्याणकारी गुण, कर्म व स्वभाव हमें प्राप्त होवें तथा हमारी पाँच ज्ञानेन्द्रियों (कर्ण, नासिका, नेत्र, जिह्वा और त्वचा) तथा इन को प्रेरित करने वाला छठाँ मन शान्त हो तथा सद्संकल्पों वाला हो।

❖

V-100

जीवनव्यवहार में भगवद्गीता

डॉ. प्रा. सौ. निरुपमा कुलकर्णी, नाशिक

"कर्मण्येव अधिकारस्ते---------" इस गीतावचन की अध्यात्मिक उपयुक्तता कुछ भी हो, किन्तु गीतावचन से जीवन की व्यथा निश्चित रूप से कम हो जाती है। अपेक्षा ज्यादा रही, तो दुःख भी बढ़ जाता है। गीता अपेक्षारहित कर्तव्य बताती हैं।

2. "वासंसि जीर्णानि--------।" इस तत्त्ववचन से शोक की तीव्रता कम हो जाती है। अपनी कोई प्रिय व्यक्ति चल बसा, तो भी वह व्यक्ति दूसरे शरीर में जीवित है, यह विश्वास हो जाता है।

3. चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं---------।" जातिभेद निर्मूलन के वास्ते यह वचन अनमोल है। समाज में पुरुष के अलग-अलग अवयव ही अलग-अलग जाति हैं। इस वचन से सभी जाति श्रेष्ठ है, यह सूचित किया गया है।

4. "अयं आत्मा ब्रह्म---------।" आदि वचनों से इन्सानों में मानवता निर्माण हो सकती है। एक ही ब्रह्म तत्त्व से सभी इन्सानों ने जन्म लिया है, यह बात बन्धुभावना निर्माण कर सकती है। राष्ट्रीय एकात्मकता के लिये यह ब्रह्मकल्पना महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

5. अर्जुन की व्यक्तिगत समस्या का सामान्यीकरण हो गया है। आदमी कई बार उलझन में पड़ जाता है। निर्णय लेने में असमर्थ हो जाता है, तब गीता आदमी में निर्णय क्षमता का निर्माण करती है।

6. भगवद्गीता ने आध्यात्मिकता के माध्यम से व्यवहार सिखा दिया है।

❖

V-101

वैदिक(वैखानस)श्रौतसूत्र का विवेचनात्मक परिशीलन

डॉ. मीरा वाणी, लखनऊ

वैखानस सम्प्रदाय का परिचयात्मक विवरण—वैखानस श्रौतसूत्र कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय शाखा का अन्तिम सूत्र है। यह विखना मुनि द्वारा प्रणीत है—

"इतिश्री वैखानसा ऋषिणा प्रोक्ते मूलगृह्ये श्रौतसूत्रे--------।

एक स्थल पर विखना मुनि की वन्दना की गयी है :

"श्रीलक्ष्मीवल्लभाद्यान्तां विखनामुनिमध्यमाम्।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम्॥"

वैखानस सम्प्रदाय का सम्बन्ध वैखानस श्रौतसूत्र से है तथा यह सम्प्रदाय वैष्णव सम्प्रदाय से सम्बद्ध है। जिसमें नारायण (विष्णु) की उपासना तथा अर्चना प्रचलित है। इस सम्प्रदाय को मानने वाले अधिकांश जन दक्षिण भारत के हैं। तिरुपति आदि मन्दिरों में आज भी वैखानसों की नियुक्ति पुजारीरूप में होती है। वैखानस श्रौतसूत्र तथा उसमें वर्णित विषय-वस्तु (क) इष्टियाग (ख) सोमयज्ञ (ग) पशुबन्ध (घ) अन्य श्रौतयज्ञ।

वैखानस श्रौतयागों की सांस्कृतिक, सामाजिक तथा दार्शनिक उपादेयता—

वैदिक वाङ्मय में सांस्कृतिक तथा सामाजिक गतिविधियों का केन्द्र बिन्दु यज्ञ प्रतीत होता है। यज्ञ-संस्था के बिना वैदिक धर्म, दर्शन तथा संस्कृति जानना असम्भव है।

"यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म।" "विष्णुर्वै यज्ञः।" (शतपथ ब्राह्मण 1.7.4.5)

दार्शनिक दृष्टि से वैखानसों की आस्था विशिष्टाद्वैत के तत्वत्रय-जीव, ईश्वर तथा प्रकृति में है। ये शिखा, त्रिदण्ड तथा यज्ञोपवीत धारण करते हैं। आन्ध्र प्रदेश के गूंटूर, गोदावरी आदि जिलों में इनकी संख्या अधिक है। वैखानस कल्प में 32 अध्याय हैं। उनमें 12 से 32 अर्थात् 21 अध्यायों में श्रौत-सूत्र हैं। इस पर बौधायन, आपस्तम्ब तथा सत्याषाढ़ तीनों श्रौत सूत्रों का प्रभाव पड़ा है। वर्ण्य-विषय बौधायन श्रौतसूत्र के तुल्य है।

वैखानसकल्प वाङ्मय (श्रौतसूत्र) का सर्वांगीण विवेचन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1. अग्न्याधेय और पुनराधेय 2. अग्निहोत्र 3. दशपूर्णमास 4. आगयण और चातुर्मास्य 5. निरूढ़ पशुबन्ध 6. सौत्रामणी 7. अग्निष्टोम तथा प्रवर्ग्य 8. उक्थ्य षोडशी, आप्तोर्याम तथा वाजपेय 9. अग्नि-चयन 10. इष्टि विषयक प्रायश्चित्त तथा सोम विषयक प्रायश्चित्त।

अतः ऋग्वेदीय युग में धर्म और यज्ञ दोनों ही मानव-जीवन के अभ्युदय एवं निःश्रेयस् के साधन रहे हैं। मानव-जीवन के विकास में दोनों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इन्हीं उपर्युक्त विषयों की विवेचना प्रस्तुत पत्र का प्रतिपाद्य विषय है।

❖

V-102

वैदिक वाङ्मय में सूर्य का चेतनत्व

डॉ. पुष्पा झा, जबलपुर

विश्व में सर्वाधिक तेजस्वी सूर्य के प्रखर वर्चस्व से वैदिक वाङ्मय परिलुप्त है। समग्र सृष्टि की उत्पत्ति, सम्पोषण, संहार तथा मोक्ष के साधन के रूप में उनकी लोकोत्तर शक्ति की महिमा वैदिक ऋषियों ने विपुल रूप में वर्णित की है। अभ्युदय एवं निःश्रेयस्—दोनों के कारक होने से सूर्य, वैदिक ऋषियों की उपासना के मूल बिन्दु रहे हैं।

सूर्य शब्द से प्रायः जड़, तेजोमण्डल का बोध होता है, किन्तु वैदिक वाङ्मय की विचार परम्परा जीवन शक्ति के प्रदाता, जीवों के सम्पोषक, वर-शाप, निग्रह तथा अनुग्रह करने में समर्थ, सत्कर्मों में बुद्धि के प्रेरक तथा परमात्मा के रूप में संस्तुत सूर्य के चेतनत्व को सुनिश्चित करती है। संस्कृतवाङ्मय में सूर्य का आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक रूप आरेखित है। प्रतिदिन दर्शन देने वाला दिव्य तेजोमण्डल आधिभौतिक सूर्य है जो जड़ है, तेजोमण्डनान्तर्गत मण्डलाभिमानी पुरुष आधिदैविक सूर्य है जो चेतन है तथा समस्त ज्योतियों की ज्योति। नेत्रस्थ ज्योतिर्मय प्रभा आध्यात्मिक सूर्य है। मानव शरीर के समान सूर्य जड़-चेतनात्मक है।

उपनिषदों में ब्रह्म और आदित्य का एकत्व प्रतिपादित करके उनके चेतनत्व को प्रमाणित करने वाली अनेक श्रुतियाँ विद्यमान हैं। बृहदारण्यकोपनिषद् का कथन है "आदित्यमण्डल में जो तेजःस्वरूप अमृतमय पुरुष है, यह जो अध्यात्म-चाक्षुष-तेज अमृतमय पुरुष है, वही आत्मा है, अमृत है एवं ब्रह्म है"

"षू प्रेरणे (तुदादि प.) क्यपो रूट् सुवति कर्मणि लोकं प्रेरयतीति सूर्यः" अर्थात् लोक को कर्म की प्रेरणा देने के कारण सूर्य कहा जाता है। यह व्युत्पत्ति सूर्य के चेतनत्व को स्पष्ट करती है; क्योंकि चेतन ही प्रेरणा दे सकता है। ऋग्वेद में सूर्य को धीर कहा गया है। (ऋग्वेद 1/164/21) धीर का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ है— "धियमीरयतीति धीरः" अर्थात् बुद्धि को प्रेरणा देने वाला। इसी कारण प्रसिद्ध गायत्रीमन्त्र "तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्" के द्वारा सर्वसिद्धिदायिका बुद्धि को सन्मार्ग पर प्रेरित करने के लिये प्रार्थना सविता से की गई है।

वैदिक ऋषि सूर्य के आधिभौतिक रूप जड़ तेजसमूह से विविध प्रकार से उपकृत होते थे तथा उसमें विद्यमान चेतन सूर्य-देव से बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करने की प्रार्थना करके अभ्युदयपूर्वक, उनसे अभिन्नता का अनुभव करते हुए मोक्ष-प्राप्ति के लिये प्रार्थन्म भी करते हैं। वैदिक ऋषि-चेतना ने समस्त विश्व में अनुस्यूत सूर्य को ब्रह्म से अभिन्न प्रतिपादित करके उन्हे स्थावर और जंगम की आत्मा के रूप में स्थापित करके उनमें चेतनत्व को प्रतिपादित किया है—

"सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।"

❖

V-103

'अग्नि' शब्द में अर्थ-परिवर्तन

सुश्री संगीता निगम

वैदिक काल में वेदाङ्गों का आविर्भाव हुआ, जिसमें शब्दार्थ-चिन्तन की दृष्टि से यास्क (600 ई.पू.) का निरुक्त अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। निघण्टु नामक वैदिक शब्दकोश की व्याख्या के रूप में प्रस्तुत निरुक्त में वैदिक मन्त्रों के अर्थ ज्ञान के लिए पर्याप्त विवेचन है। ऋग्वेद के विभिन्न मन्त्रों को उद्धृत कर उसकी व्याख्या करते हुए यास्क ने यह मत प्रतिपादित किया है कि अर्थविज्ञान ही भाषा-विज्ञान का सर्वस्व है। वाणी का पुष्प और फल अर्थ ही है— 'अर्थवाचः पुष्पफलमाहः'।

इसमें अर्थ के निवर्चन पर विचार करते हुए अर्थातिशय का विचार किया है। जिसका अर्थ है— प्रत्येक शब्दसंरचना की अलग-अलग अर्थसंरचना होती है।

निरुक्त की वेद के षडङ्गों में गणना की गई है। वैदिक साहित्य में यास्क द्वारा रचित निरुक्त का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यास्क द्वारा रचित निरुक्त में निघण्टु में संगृहीत शब्दों की व्याख्या की गई है। यास्क द्वारा शब्द का निर्वचन करते समय जो अर्थ किये गये हैं, उनके वैदिककोश में आते-आते परिवर्तन हो गये हैं। इसी प्रकार वेद में प्रयुक्त अर्थ लौकिक कोश में आते आते परिवर्तित हो गये हैं।

शोध पत्र में अग्निशब्द की व्याकरणिक व्युत्पत्ति, यास्क निर्वचन, वैदिककोश तथा लौकिक कोश में अग्नि शब्द के विभिन्न अर्थ, यास्क द्वारा उल्लिखित अर्थों से वैदिक तथा लौकिककोशों के अर्थों से भिन्नता तथा अर्थों में हुए परिवर्तन की दिशा आदि बिन्दुओं पर विचार किया गया है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

V-104

सूत्रग्रन्थों में शिक्षा

श्री पियूष खजूरिया, जम्मू

भारतीय भाषाओं में शिक्षा के पर्यायवाची के रूप में विद्या तथा ज्ञान शब्दों का प्रयोग भी किया जाता है। विद्या शब्द का उद्‌गम 'विद्' धातु से हुआ है, जिसका अर्थ होता है— जानना, पता लगाना अथवा सीखना। बाद में 'विद्या' शब्द पाठ्यक्रम के रूप में रूढ़ हो गया। आरम्भ में विद्या के अन्तर्गत चार विषयों का समावेश किया गया। कुछ समय पश्चात् मनु ने 'आत्मविद्या' नामक पञ्चम विद्या का अन्तर्भाव किया और शनैः शनैः विद्याओं की संख्या चौदह हो गई, जिनमें वेद, वेदाङ्ग, धर्म, न्याय, मीमांसा आदि का समावेश किया गया, परन्तु मूलतः विद्या शब्द का अर्थ ज्ञातव्य के रूप में प्रचलित रहा।

वैदिककाल में शिक्षा के मूल में श्रद्धा की भावना थी। छात्र समाज में पूर्णतः आदर का पात्र था। वस्तुतः मानव जीवन की सफलता के लिए विभिन्न तत्त्वों में श्रद्धा का प्रधानतम स्थान है। श्रद्धा से समस्त कार्य अनायास ही सम्पन्न हो जाते हैं। श्रद्धा की भावना अपने गुरुजनों को वश में करने का सर्वसुलभ साधन है। छात्रों में श्रद्धा की भावना का सञ्चार होने पर गुरु प्रदत्त शिक्षा जीवनोपयोगी बन जाती है। शिक्षा के क्षेत्र में श्रद्धा की भावना होने से वैदिक छात्र सभ्य एवं शिष्ट थे।

इस शोध-पत्र में सूत्रग्रन्थों में वर्णित प्राचीन कालीन शिक्षा के विभिन्न तत्त्वों का वर्णन किया गया है। यथा—उपनयन, शिक्षण-पद्धति, गुरु-शिष्यसम्बन्ध, नारी-शिक्षा आदि।

❖

V-105

भारतीय संस्कृति और पर्यावरण संरक्षण

डॉ. श्रवण कुमार चौधरी, दरभंगा

अखण्ड ब्रह्माण्ड का निर्माण प्रकृति के विविध अवयवों के मेल से हुआ है। इसमें विद्यमान सभी जीव-जन्तु, पेड़-पौधे, नाना प्रकार के दृश्य एवं अदृश्य पदार्थ के मिलन से चराचर जगत् की सृष्टि हुई है, जिसमें पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन्हीं पाँच तत्त्वों से सृष्टि की संरचना हुई है और इन्हीं पाँच तत्त्वों के सूक्ष्मांश से शरीर भी निर्मित हुआ है।

'छिति, जल, पावक, गगन समीरा। पञ्च रचित यह अधम शरीरा।।' इनमें से शुद्ध वायु और जल सृष्टि में जीव के लिये अपरिहार्य हैं; क्योंकि हमारे जीवनभूत प्राणों में शान्ति का संचार वायु से होता है। जीवन का आधार जलीय तत्त्व खाने के रूप में हमारे धमनियों में प्रवाहित होता है। अतः अखण्ड ब्रह्माण्ड के इन अवयवों में से किसी एक की भी यदि क्षति पहुँचायी गयी, तो समस्त सृष्टि का नैसर्गिक चक्र ही खण्डित हो जायेगा और इसके परिणामस्वरूप पर्यावरण अतिक्रमण का वर्त्तमान संकट और अधिक गम्भीर होगा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋग्वेद (1.90.6.57) की ये ऋचायें इस तथ्य को स्पष्टतः उद्घाटित करती हैं कि हमारे मनीषी ऋषि-मुनि प्रकृति और पर्यावरण को कितना महत्त्व देते थे।

❖

V-106

ऋग्वेद में ज्योतिष

डॉ. पुरुषोत्तम शर्मा, जम्मू

ऋग्वेद में ज्योतिष की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। ऋग्वेद में खगोलविषयक नाना प्रकार के ज्ञातव्य तथ्यों का विशिष्ट वर्णन प्रसङ्गतः उपलब्ध होता है। वैदिक आर्य इस विचित्र विश्व के रहस्य का ज्ञान प्राप्त करने के लिए सर्वदा उत्सुक थे और अपनी पैनी दृष्टि से उन्होंने इन रहस्यों का उद्घाटन बड़ी मार्मिकता से किया है; क्योंकि ज्योतिषशास्त्र का भूगोल और खगोल दोनों से सीधा सम्बन्ध है। यह एक स्वतन्त्र शास्त्र या विज्ञान है। इसका भौतिकी, रसायन, वनस्पति, जन्तुविज्ञान, शिल्प, कृषि, वृष्टि, पर्यावरण, भूगर्भ तथा गणितादि से साक्षात् सम्बन्ध है। अतः ज्योतिष जीवन से सम्बन्धित शास्त्र है। वेदों में यज्ञ का सर्वाधिक महत्त्व है। यज्ञों के लिए काल निर्धारित है। काल ज्ञान के बिना वेद विहित यज्ञादि कार्य सम्पन्न नहीं हो सकते।

पाणिनि शिक्षा में 'ज्योतिषामयनं चक्षुः' कहकर ज्योतिष को वेद का नेत्र कहा गया है। ज्योतिषरहित ज्ञान उसी प्रकार अपूर्ण कहा जायेगा, जैसे नेत्रविहीन मनुष्य अपूर्णता का द्योतक है। ज्योतिष की प्रशंसा में कहा गया है कि जैसे मयूरों की शिखा और नागों की मणियां प्रधान हैं, उसी प्रकार वेदाङ्गों में ज्योतिष मूर्धन्य है। विश्वसंस्था के उत्पादक लोक तीन हैं—पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा द्यौः (आकाश)। सम्पूर्ण प्राणियों की क्रीडास्थली यह पृथ्वी है। अथर्ववेद के पृथ्वीसूक्त में इसका बड़ा ही भव्य और उदात्त वर्णन उपलब्ध होता है। पृथ्वी के गोल होने का संकेत वैदिक मन्त्रों में मिलता है। सूर्य ही क्रियाभेद के कारण नाना देवों के रूप में कल्पित किया गया है। विश्व में चैतन्य का संचरण करने हेतु वही सविता है, लोकों को नाना व्यापारों में प्रेरक होने से वहीं विष्णु है। विश्व को पुष्ट करने के कारण वह पूषा है, तो विश्व का कल्याण सम्पादन के कारण वही मित्र है। समस्त भुवनों का वहीं आधार है।

❖

V-107

शिक्षा-वेदाङ्ग में नैतिक शिक्षा

सुश्री सुमेधा आर्या, नई दिल्ली

शिक्षा वेदाङ्ग में नैतिक शिक्षा विषयक प्रस्तुत निबन्ध में भारतीय मूलों में स्थापित नैतिक मूल्यों से सम्बद्ध आदेशों का अध्ययन किया गया है। वैदिक शिक्षण पद्धति का मूलाधार ही शास्त्रगत ज्ञान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के साथ-साथ शिष्य को नैतिक आचरण की शिक्षा देता ही रहा है। संभवतः इसलिए तत्कालीन समाज में गुरुकुल परम्परा का प्रचलन था, क्योंकि स्वयं गुरु आदर्श रूप में शिष्यों को सदाचरण की शिक्षा देता था। सभी वर्णों के अध्येताओं के साथ समान व्यवहार शिष्यों को समन्वयता की शिक्षा देता था। धार्मिक कृत्यों के लिए समिधा इत्यादि उपक्रमों का अर्जन शिष्यों को श्रमशील रहने की प्रेरणा देता था। ब्रह्मचर्य के पालन से शिष्यों को संयमशक्ति का उपाय बतलाया जाता था।

इस प्रकार शिक्षण पद्धति में शिष्य को शास्त्रज्ञान के साथ, व्यावहारिक ज्ञान भी कराया जाता था। जिससे शिष्य एक सुदृढ़ समाज का सजग नागरिक बन सके।

प्रस्तुत निबन्ध में शिक्षा ग्रन्थों में उपलब्ध नैतिक शिक्षण सम्बन्धी कतिपय तथ्यों का समाकलन किया गया है। आशा है कि वर्तमान युग में उन आदर्शों का परिपालन कर आज की शिक्षण पद्धति भी वैदिक शिक्षण पद्धति के समान समृद्ध और प्रभावी बन सकेगी।

❖

V-108

वेदों में समाजशास्त्र

श्री भारतभूषण धर द्विवेदी, इलाहाबाद

इस विश्व का ज्ञान कराने वाला शब्दरूपी ब्रह्म वेद ही है। वेद का अर्थ ज्ञान है, अतः वेद सारे ज्ञानों का राशिपुञ्ज है। वेद में समाजशास्त्र के विषय में हमें निम्न मन्त्र संदेश दे रहा है—

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानानां उपासते॥ (ऋ. 10/191/02)

परमात्मा की सृष्टि का प्रत्येक पदार्थ हमें ज्ञान और प्रेरणा दे रहे हैं। अपने कर्त्तव्य के प्रति तत्पर रहने के लिए निम्न मन्त्र उद्घोष कर रहा है—

'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः॥ (यजु. 40/02)

अर्थात् कार्य करते हुए जीने की इच्छा करें, किन्तु 'मा गृधः कस्य स्विद्धनम्' की भावना से सर्वथा ओतप्रोत रहें।

परमात्मा की सृष्टि से समाजशास्त्र के बारे में बहुत कुछ सीखकर अपने समाजशास्त्र का निर्माण कर सकते हैं। समाजशास्त्र ही मानव धर्म है। समाजवाद का दर्शन मानव में ही नहीं, वरन् पशु-पक्षियों में भी होता है। गौ, भेड़, बकरी आदि पशुओं में तथा शुक, कपोत, सारस आदि पक्षियों में भी समूह में रहने की अतिप्रबल भावना दिखाई पड़ती है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज के व्यक्तियों को सर्वदा सत्यपूर्ण व्यवहार करना चाहिए। वेद कहता है कि श्रद्धा, विश्वास, प्रेम आदि सत्य के प्रति ही जागृत होते है।

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत्सत्यानृते प्रजापतिः।
अश्रद्धामनृतेदधाच्छ्रद्धासत्ये प्रजापतिः॥ (जयु. 19/77)

❖

V-109

वेदकालीन नारी-नारी प्रगति की अभीष्ट दिशायें

डॉ. नीलम त्रिवेदी, कानपुर

वैदिक काल में नारी का अत्यन्त गौरवपूर्ण इतिहास रहा है। हमारे वेद प्राचीन काल से चली आ रही नारी की सभ्यता और संस्कृति पर प्रकाश डालते हैं। उसे सदैव एक स्वतन्त्र सत्ता के रूप में स्मरण किया गया है। कुछ विदुषी नारियाँ अपने सद्गुणों के कारण तथा मन्त्रों का साक्षात्कार करने के कारण ऋषिकाओं के रूप में प्रतिष्ठित हुई हैं। वैदिक महामयी नारियाँ मन्त्रदृष्टि ऋषिकाओं अथवा देवियों के रूप में प्रसिद्ध हैं। जैसे— धन की देवी लक्ष्मी, शक्ति की देवी दुर्गा और विद्या की देवी सरस्वती हैं। इन्हें कही देव माता तथा कहीं देवकन्या बताया गया है।

ओऽम् स्तुता मया वरदा वेदमाता।
प्रचोदयन्ताम् पावमानी द्विजानाम्॥
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविडं ब्रह्मवर्चसम्।
मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्॥ (अथर्ववेद 19.71.1)

नारी के सर्वशक्तिमान् होने की यर्थाथ कल्पना यजुर्वेद में की गयी है—

अहं केतुऽहं मूर्धाऽमुग्रा विवाचनी।
ममेदनु कतुं पतिः सेहानाया उपाचरेत। (10.159.2)

बृहदारण्यक उपनिषद् में (3.6.15) तो नारी सब भूतों में रहते हुये भी सबसे पृथक् है। 'स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ' (ऋग्वेद 8.33.19) इसके अनुसार ब्रह्मा नारी का ही प्रतिरूप है।

नारी ज्ञानवान् शक्ति का उद्गम स्थान है। वह तेजस्विनी है। वह विवेकशील विवेचना शक्ति से पूर्ण है। वह सत्कर्म के लिये प्रयास करती है। वह इच्छा करती है कि उसका पति उसके सत्कर्मों के समान आचरण करने वाला हो।

वैदिक काल से लेकर वर्तमान साहित्य के विभिन्न अंगों का अवलोकन किया जाय, तो यह स्पष्ट होता है कि सभी क्षेत्रों में स्त्रियों का विशेष योगदान रहा है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

V-110

सामवेदीय उपनिषदों में पुनर्जन्मवाद

डॉ. उमारानी त्रिपाठी, लखनऊ

प्रस्तुत शोधपत्र का विषय 'सामवेदीय उपनिषदों में पुनर्जन्मवाद' है। जिसके अन्तर्गत सामवेदीय षोडश उपनिषदों का अनुशीलन करते हुए जिन-जिन बिन्दुओं पर प्रकाश डाला गया है, वे इस प्रकार हैं—

1. सामवेदीय उपनिषदों के अनुसार पुनर्जन्मवाद सिद्धान्त मूलतः कर्म-फल सिद्धान्त पर आधारित है। अत एव कर्मफल सिद्धान्त का स्वरूप एवं प्रक्रिया-पद्धति अवश्य ही व्याख्येय है। प्राणी को निज कृत शुभाशुभ कर्मों का फल-भोग करोड़ो कल्पपर्यन्त नष्ट नहीं हो सकते।

2. पुनर्जन्म प्राप्ति का प्रमुख प्रयोजन क्या है?

3. पुनर्जन्म-परम्परा की निवृत्ति किस प्रकार सम्भव हो सकती है?

4. जन्म-पुनर्जन्म परम्परा के नष्ट हो जाने पर भी प्राणी की सत्ता विद्यमान रहती है, अथवा नही?

5. अविद्यामूलक पुनर्जन्म शृङ्खला की समाप्ति हो जाने पर प्राणी को दुःखलय निवृत्तिपूर्वक स्वरूपानन्दात्मक मोक्ष की प्राप्ति होती है। तत्पश्चात् वह संसार में पुनः नहीं लौटता।

6. अविद्या के कारण प्रवृत्त कर्म-फल बन्धन के चक्र से प्राणी को तत्त्वज्ञान के द्वारा ही मोक्ष मिल सकता है। तत्त्वज्ञान प्राणी के कर्मबन्धन को अग्नि के समान भस्म कर देती है, फलतः प्राणी पुनर्जन्म परम्परा से मुक्त हो जाता है।

❖

V-111

संस्कार का वैज्ञानिक विवेचन

डॉ. एस.वी. श्रद्धा रमणी, टाटानगर

वैश्विक मंच पर दो ही प्रतिष्ठाएँ हैं, संस्कृत एवं संस्कृति। संस्कृति की आत्मा संस्कार में अनुभूत है और संस्कार अपने पूर्वजों से हमें विरासत में मिला है। संस्कारों के विषय में सम्प्रति अनेक भ्रान्तियाँ प्रचलित हैं। कुछ लोग संस्कारों को मानसिक विकार का परिणाम कहते हैं, तो कुछ अन्धविश्वास एवं रूढ़िवादिता का प्रतिबिम्ब मानते हैं और कुछ के अनुसार वे सारे विधि-विधान तथाकथित पण्डितों के फैलाये वाग्जाल हैं। परन्तु बहुत कम लोगों को ज्ञात होगा कि अद्भुत ज्ञानचक्षु सम्पन्न हमारे ऋषि-महर्षियों द्वारा विहित संस्कार वस्तुतः पूर्ण वैज्ञानिक हैं और वैज्ञानिकों द्वारा समादृत कार्य-कारणवाद सिद्धान्त पर आधारित हैं।

पाश्चात्य देश के प्रसिद्ध वैज्ञानिक तथा दार्शनिक विद्वान् हार्बटर्च स्पेन्सर साहब ने भाषा के अनुसार चान्स या आकस्मिकता का अर्थ पतन माना है। प्रकृति के राज्य में चान्स का कोई अस्तित्व नहीं है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान और चान्स ये दोनों एक साथ रह भी नहीं सकते, जैसा कि लैप्लेस साहब ने कहा है हम चान्स शब्द का प्रयोग तभी करते हैं, जब कि किसी कार्य के कारण के विषय में हमे अज्ञता रहती है और इसी से उसके फल के विषय में भी हम अनुमान नहीं कर सकते। विश्वरचना के प्रारम्भ से ही प्रकृति राज्य में घटना घटने के कारण निर्दिष्ट हो चुके होते हैं। धर्मशास्त्र का भी यही सिद्धान्त है। हमारे धर्मशास्त्र बिना कारण किसी कार्य की उत्पत्ति नहीं मानते, अपितु किस प्रकार उत्तम कारण का आश्रय लेने पर अत्युत्तम कार्य सम्पन्न हो सकता है, इसकी पुष्टि हमारे धर्मशास्त्र करते है। संसार में शिल्पकला की सहायता से जिस प्रकार भिन्न-भिन्न जातियाँ अत्युत्तम सामग्री तैयार कर लेती हैं, उसी प्रकार वैदिक प्रक्रियाओं के द्वारा मनुष्य को पूर्ण मनुष्य, उत्तम मनुष्य, उत्तम विभूति सम्पन्न मनुष्य बना देने का अधिकार धर्मशास्त्र रखता है। इन्हीं अधिकारों में से एक अधिकार का नाम षोडश-संस्कार है।

❖

V-112

पौर्णमासेष्टि यागविधानों के प्रतीकार्थ

डॉ. श्रीमती चन्द्रकान्ता राय, वाराणसी

समस्त इष्टि यागों की प्रकृति दर्शपूर्णमासेष्टि बताई गई है। दर्शपूर्णमासेष्टि का विशद विवरण शतपथ ब्राह्मण में प्राप्त होता है। इष्टियाग में श्रौतसूत्रों के विधानानुसार क्रियाकलाप अनुष्ठित होते हैं; किन्तु प्रत्येक क्रिया या विधि का निहितार्थ क्या है, यह शतपथ ब्राह्मण के विशिष्ट अध्ययन से ही ज्ञात होता है। आज के तार्किक युग में क्रिया या विधि का जब तक स्वारस्य प्रतिपादित न किया जाय, तब तक इष्टियाग की विधियों का याग के पूर्व दिन अर्थात् पूर्णिमा को 'उपवसथ' नाम से अभिहित किया जाता है। शतपथ ब्राह्मण में इसका रहस्य बताते हुए 'अशनानशन' प्रसङ्ग में कहा गया है कि पूर्व दिवस में व्रतग्रहण के बाद यजमान को भोज्य पदार्थ के रूप में कुछ भी ग्रहण नहीं करना चाहिए, क्योंकि देवगण मनुष्य के मन को जान लेते हैं, फलतः जब यजमान याग हेतु व्रत ग्रहण करता है, तो उसकी भावना को समझते हुए अदृश्य रूप में उसके घर में आ जाते हैं। यजमान के घर में देवगणों का उप+वास (=निवास) हो जाता है। अत एव इष्टियाग के पूर्व दिन का 'उपवसथ' (उप=समीप, वास=निवास का दिन) यह सार्थक संज्ञा हो जाती है।

मैंने अपने शोधपत्र में पौर्णमासेष्टि याग विधानों के प्रतीकार्थ को यथासाध्य उद्घाटित करने का प्रयास किया है, जिससे यागविधानों का स्वारस्य तो प्रतिफलित होता ही है, आर्षचिन्तन की तर्कसम्मत विश्वदृष्टि भी परिलक्षित होती है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

V-113

वेदार्थनिर्धारण में विविध शैलियों का महत्त्व

डॉ. विक्रम कुमार, चण्डीगढ़

भावों को अभिव्यक्त करने का साधन भाषा है। भाषा में तीन तत्त्व होते हैं—शब्द, अर्थ और भाव। शब्द और अर्थ क्रमशः शरीर व प्राण है, तो भाव आत्म-स्वरूप होता है। काव्यशास्त्र में आत्मभूत अर्थ व्यङ्ग्यार्थ ही होता है। खाता-पीता घर हैं तथा घर में खाने-पीने वाले हैं, इन वाक्यों में वाच्यार्थ एक ही है, जबकि व्यङ्ग्यार्थ विपरीत अर्थ वाले हैं। प्रथम वाक्य से घर की सम्पन्नता घोषित है, तो द्वितीय वाक्य गृह-सदस्यों के शराबी-कबाबी होने का बोध कराता है। प्रकरणानुसार ही भावार्थ की भिन्नता का ज्ञान हो पाता है।

वैदिक भाषा की भी यही स्थिति है। मन्त्रों के वाक्यार्थमात्र को ही वेदार्थ समझ लेना सर्वथा भ्रान्ति है। यद्यपि अनेकत्र मन्त्रों का वाच्यार्थ ही अन्तिम वास्तविक अर्थ होता है। जैसे—'अन्योऽन्यमभिहर्यत वासं जातमिवाह्वया' आदि मन्त्र। तथापि बहुत मन्त्रों का वाच्यार्थ इतना असंगत होता है कि प्रमत्त-प्रलाप सा प्रतीत होता है, जैसे—'अश्मा भवतु नस्तनूः' 'सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्' इत्यादि मन्त्र।

विभिन्न शैलियों के माध्यम से ये वाच्यार्थ विशिष्ट अर्थों व भावों के बोधक होने के कारण सुसंगत हो जाते हैं। किसी भी शास्त्र के कथ्य को समझने के लिए उसकी भाषागत एवं अर्थगत शैलियों का ज्ञान अनिवार्य होता है। इन तथ्यों की उपेक्षा के कारण ही अनेक वेदभाष्यकार मुख्यार्थ = वाच्यार्थ के अन्धकार में ही भटकने के कारण भावार्थ रूप आलोक को देख नहीं पाते। जबकि वास्तविकता यह है कि जो मन्त्र शैली से अपरिचय होने के कारण, अस्पष्ट प्रतीत होते हैं, वही शैली-परिज्ञान के अनन्तर स्पष्ट होने लगते हैं।

❖

V-114

ऋग्वेदीय ज्ञानमीमांसा का स्वरूप

डॉ. मुरलीमनोहर पाठक, उज्जैन

भारतीय दर्शन परम्परा में ज्ञानमीमांसा शब्द का प्रयोग प्रायः उपलब्ध नहीं होता। वहाँ इसी अर्थ में प्रमाण-मीमांसा शब्द का व्यवहार होता है। भारत में प्रमाण-मीमांसा के अन्तर्गत प्रत्यक्षादि प्रमाणों द्वारा प्राप्त ज्ञान, उसके स्रोत तथा प्रामाण्य-अप्रमाण्य आदि का विवेचन इष्ट रहा है। जहाँ तक ऋग्वेद का प्रश्न है, विश्व की प्राचीनतम कृति होते हुए भी उसमें हमें प्रायः सभी तन्त्रों या अनुशासनों के बीज किसी रूप में उपलब्ध हो जाते हैं। दर्शन, अथ च भारतीय दर्शन का मूल उत्स भी ऋग्वेद में ही निहित है। प्रस्तुत शोधपत्र में ऋग्वेद में निहित ज्ञानमीमांसा के बिन्दुओं के माध्यम से उसके स्वरूप को स्पष्ट

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने का प्रयास किया गया है। भारतीय दर्शन परम्परा में प्रमा, प्रमाण, प्रमाता और प्रमिति शब्दों का प्रयोग ज्ञानमीमांसा के अन्तर्गत किया गया है। ऋग्वेद में प्रमा शब्द का प्रयोग दो बार दृष्टिगत होता है। उसे आधुनिक दार्शनिक अर्थ के साथ जोड़ा जा सकता है। यद्यपि ऋग्वेद में हमें प्रत्यक्ष इत्यादि प्रमाणों का स्पष्ट उल्लेख नहीं प्राप्त होता, किन्तु इनका भाव या फल अवश्य ही उक्त अर्थों में ही प्रयुक्त है।

ऋग्वेद के एक मन्त्र (10.10.6) में प्रत्यक्ष, अनुमान एवं शब्द—तीनों प्रमाणों के बीज निकाले जा सकते हैं। वेद स्वयं ही शब्द प्रमाण के सर्वोच्च निदर्शन है। वाणी तथा शब्द में कोई मौलिक भेद नहीं है। इस प्रकार हम देखत हैं कि ऋग्वेद में प्रत्यक्ष, अनुमान एवं शब्द तीनों प्रमाणों के सङ्केत प्राप्त होते हैं। इसे ही ऋग्वेद की ज्ञानमीमांसा के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

❖

V-115

ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषदों में प्राण का स्वरूप

डॉ. अरुण शुक्ला, होशियारपुर

वैदिक वाङ्मय में प्राण तत्त्व का भूरिशः उल्लेख मिलता है। वहाँ वर्णित प्राण शब्द का क्या अर्थ है, इस विषय में विद्वानों में ऐकमत्य नहीं। 1901 में डॉ. इविंग ने 'जर्नल ऑव अमेरिकन ओरियन्टल सोसायटी में (The Hindu Conception of the function of Breath) नाम से एक लेख प्रकाशित किया था, जिसमें उसने निष्कर्ष रूप में प्राण का अर्थ श्वास रूप में अन्दर आने वाली वायु (Inhalation or inbreathing) किया था तथा अपान का अर्थ श्वास का बहिर्गमन। इसी प्रकार कुछ समय बाद प्रो. कलान्द ने अपने दो निबन्ध प्रकाशित किये थे, जिसमें उसने बताया था कि प्राचीन वैदिक ग्रन्थों में जहाँ प्राण तथा अपान का एक साथ उल्लेख किया गया है, वहाँ प्राण का अर्थ है श्वास का बहिर्गमन (expiration) तथा अपान का अर्थ है श्वास वायु का अन्तर्गमन (Inspiration)। उस समय अधिकांश विद्वानों ने इसी अर्थ को स्वीकार किया। डॉ. जार्ज ब्राउन ने अपने 'द ह्युमन बॉडी इन उपनिषद्' शीर्षक एक निबंध में जो 1919 में 'जर्नल ऑव अमेरिकन ओरियन्टल सोसायटी में प्रकाशित हुआ था यह मत व्यक्त किया था कि उपनिषदों में जहाँ कहीं प्राण शब्द आया है, वहाँ उसका अर्थ है— फेफड़े में श्वास का संचार (Breath in lungs) तथा अपान का अर्थ शरीर के निचले भाग अर्थात् पेट में वायु का संचार (Air in bowels of the lower parts of the body)। प्रो. एफ.एडगर्टने ने प्राण तथा अपान के इसी अर्थ को स्वीकार किया था। पी. ई. डोमन्ट (P.E. Dumont) ने अपने एक निबन्ध में The.Meaning of the Prāṇa and Apāna in the Taittirīya Brāhmaṇa जो जर्नल ऑव अमेरिकन ओरियन्टल सोसायटी में 1959 में प्रकाशित हुआ था, तैत्तिरीय ब्राह्मण (3.3.1.5) के एक उद्धरण के आधार पर यह मत व्यक्त किया था कि वहाँ प्राण का अर्थ 'श्वास का बहिर्गमन' (Outbrithing) तथा अपान का अर्थ श्वास वायु का अन्तर्गमन (Inspiration) है। किन्तु प्रो. एडगर्टन ने अपने Prāṇa and Apānā शीर्षक एक निबन्ध में जो जर्नल ऑव अमेरिकन ओरियन्टल सोसायटी में 1958 में प्रकाशित हुआ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था, डोमन्ट के उस मत का खण्डन किया। इन पाश्चात्य विद्वानों के प्राण तथा अपान विषयक मान्यताओं के देने का हमारा अभिप्राय केवल इतना ही है कि उन्होंने प्राण के वास्तविक स्वरूप को जैसा ब्राह्मणों, आरण्यकों तथा उपनिषदों में प्रतिपादित किया गया है, उसको नहीं समझा। ब्राह्मणों में प्राणतत्त्व का जो विवेचन मिलता है, वह केवल श्वास का आगमन और बहिर्गमन ही नहीं है, बल्कि प्राण सृष्टि का एक महत्त्वपूर्ण सर्वश्रेष्ठ तत्त्व है। विशद विवेचन शोधलेख में प्रस्तुत है।

❖

V-116

वेदों में अंक ज्योतिष

डॉ. लक्ष्मी नारायण शर्मा, जम्मू

आर्यसाहित्य संस्कृतवाङ्मय में ही उपलब्ध होता है। उसमें प्रत्येक शास्त्र पुरुषार्थचतुष्टय धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इस चतुर्वर्ग की प्राप्ति के लिए ही आविर्भूत हुआ है। इसी को लक्ष्य रखकर सर्वशास्त्र मूर्धन्य ज्योतिशास्त्र की गणना समस्त संस्कृतवाङ्मय देवनागरी वर्णमाला पर आधारित है। वर्णमाला एवं अङ्क-गणना दोनों आकाशीय मूलतत्त्व नक्षत्र— ये तीनों स्वयं वर्गों में प्रकृति द्वारा आबद्ध हैं। जैसे वर्णमाला में स्वर 16 हैं, तो 4×4 = 16 चतुवर्ग में ओत-प्रोत हैं। व्यञ्जन 25 हैं, तो 5×5 = पञ्चवर्ग से सम्बद्ध है। अन्तःस्थ य, र, ल, व— ये चार हैं, तो 2×2=4 दो के वर्ग (द्विवर्ग) में है एवं ऊष्म श, ष, स, ह भी पूर्ववत द्विवर्गायत हैं। यदि हम समग्र वर्णसमुदाय 16+25+4+4=49 को ही लें, तो 'त्रिषष्टिः चतुःषष्टिर्वा वर्णाः शम्भुमते मताः' 64 वर्णात्मिका मात्रा 8×8=64 अष्टवर्गायत हुई। हेमाद्रिशिक्षा में 'एकाशीतिवर्णाम्नाता' तो भी 9×9=81 नववर्ग में सिद्ध होगी। जैमिनिशाखा के प्रातिशाख्य में 'वर्णाः शतमिताः सूक्ष्माः सार्धमात्रा प्रकीर्तिताः, शतवर्णात्मिका सूक्ष्मवर्णमाला भी 10×10 दशवर्गायत है। इसी प्रकार एकोतर द्व्यत्तर, त्र्युतर, चतुरुत्तर, पञ्चोत्तर, षडुत्तर, सप्तोत्तर, अष्टोतर, नवोत्तर, दशोत्तर आदि गणनायें भी आपको दिखाई देगीं।

इसी तरह सप्तवर्ग 7×7=49 का ब्रह्मा एवं

चतुष्षष्टिर्भवेद् बर्हि यज्ञादिसर्वकर्मसु।
एकाशीति भवेद् बर्हि गृहकार्येषु सर्वदा॥

अर्थात् अष्टोत्तर या नवोत्तर में (अष्टवर्ग वा नववर्ग में ही) 64 या 81 की बर्हि एवं 256 मुठी चावल का पूर्णपात्र भी षोडशवर्ग में 16×16=256 का ही होता है। हर प्रकार के वर्गों में कर्मकाण्ड की प्रत्येक

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

V-117

उपनिषद्-आख्यानों का पुराणों पर असर

प्रो. उर्वशी सी. पटेल, अहमदाबाद

भारतीय परम्परा में पुराणों का महत्त्व सुस्पष्ट है। यथा— 'इतिहासपुराणानि पञ्चमं वेदमीश्वरः।' वेद के बाद पुराण परम्परा विकसित हुई। पुराणों में आख्यानों का अत्यन्त महत्त्व है। आदिपुराण में उल्लेख मिलता है— 'अनाश्रित्येदमाख्यानं कथाभुवि न विद्यते।' और 'इदं कविवरैः सर्वैराख्यानमुपजीव्यते।'

जिस तरह पुराणों में प्रसङ्गोपात आख्यानों का प्रयोग हुआ है, उसी तरह उपनिषदों में भी आख्यान मिलते हैं, जैसे कि यम-नचिकेता संवाद, यक्षोपाख्यान आदि। तो क्या पुराणों पर उपनिषद् के आख्यानों का कोई प्रभाव पड़ता है? अथवा क्या उपनिषद् के आख्यानों का कोई नया स्वरूप पुराणकारों ने अपनाया है? अथवा पुराण स्वतः विकसित हुए हैं? इन मुद्दों पर प्रस्तुत शोधपत्र में चर्चा की गई हैं।

❖

V-118

ऋग्वैदिक उषस् का अन्य देवताओं के साथ सम्बन्ध

डॉ. सुमन दुबे, इलाहाबाद

ऋग्वेद में ऋषियों ने उषा देवी की स्तुति अनेक देवताओं के साथ की है। जिनमें सूर्य, अग्नि, अश्विनौ, इन्द्र , सोम, चन्द्रमा, द्यावापृथिवी, रात्रि इत्यादि देवता उषा देवी से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है। सूर्य देवता को उषा देवी के प्रेमी के पति के रूप में वर्णित किया गया है। जैसे सूर्य को उषा का प्रेमी कहा गया है, उसी प्रकार से अग्नि को भी उषा का प्रेमी कहा गया है। उषाकाल में अग्निदेव अतिथि के रूप में मनुष्यों के घर जाते हैं। अश्विनौ देवों को उषस् का मित्र कहा गया है। उषा ने अश्विनौ को जगाया। सम्पूर्ण उषस् सूक्त में उषा को द्युलोक पुत्र के नाम से आह्वान किया गया है। द्यावापृथिवी के उषस् का माता-पिता कहा गया है। उनकी गोद को उषा अपने तेज से पूर्ण करती हुई अपने विशाल प्रकाश को विशेष रूप से फैलाती है। इन्द्र देवता ने उषा को उत्पन्न किया। सोम उषा को बल को बढ़ाने वाला है। वह उषा का तेज बढ़ाते हुए उषाओं को एक श्रेष्ठ पति की पत्नियाँ बनाया है।

नित्य नवीन जन्म देने वाले उषा के पूर्व ही लुप्त होकर दिन के आगमन की सूचना देने वाले चन्द्रमा को उषा से सम्बद्ध किया गया है।

उषा और रात्रि दोनों बहने हैं, दोनों उषा और रात्रि अपने-अपने वर्ष को (शुभ्र और कृष्ण वर्मा को) प्राप्त होती है। वे दोनों परस्पर संघर्ष नहीं करती है और न ही परस्पर समय का उलङ्घन करती है।

इस प्रकार उषा सभी देवताओं के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

V-119

अथर्ववेदीय षष्ठ काण्ड में ऋषि अथर्वोपदिष्ट आचार-शिक्षा

रजनीश गौड़, कुरुक्षेत्र

सत्य सनातन वैदिकधर्म विश्व का प्राचीनतम धर्म है। संसार में प्रवाहित ज्ञान-विज्ञान की धाराओं का आदि स्रोत वेद ही है। वेद ईश्वरीय वाणी है। अतः उसमें छिपा ज्ञान भी सत्य ही है। वेदों में आचार-शिक्षा पर विशेष बल दिया गया है। इसी धारणा से प्रस्तुत शोध-पत्र में अर्थवेदीय षष्ठ काण्ड में अथर्वोपदिष्ट आचार-शिक्षा पर विचार किया गया है।

मानव जीवन में आचार-शिक्षा का बहुत महत्त्व है। जब किसी भी समाज, देश व राष्ट्र में सार्वजनिक अविश्वास, छल-कपट, भ्रष्टाचार, पारस्परिक वैमनस्य, अशान्ति तथा उन्माद-जनित बलात्कार आदि भावनाएँ विकसित हो जाती हैं तो इन सबका मूल कारण आचारगतहीनता ही होती है। वेद उदात्त चरित्र के निर्माण का सन्देश देता है। तदनुसार व्यक्ति को कभी भी मन में पाप भावना नहीं रखनी चाहिए। इस विषय में ऋषि अथर्वा का मन्तव्य है कि मन की पापभावना को दूर कर देना चाहिए तथा निन्दनीय कर्म में प्रवृत्त नहीं होना चाहिए। उनकी प्रबल धारणा है कि अपने मन को घर की समृद्धि और गौओं की सेवा में लगाना चाहिए। ऋषि अथर्वा के अनुसार व्यक्ति को युद्ध में भी आचार का पालन करना चाहिए। युद्ध में घायल व्यक्तियों की सेवा करने वालों पर, बच्चों पर, ब्रह्मवेत्ताओं और वेदवेत्ताओं पर युद्ध में वज्रप्रहार नहीं करना चाहिए।

अथर्ववेद में प्रतिपादित यह आचार-शिक्षा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण है। अतः चरित्र की रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि चरित्रहीन व्यक्ति को ज्ञान भी पवित्र नहीं करता। आचार के बिना ज्ञान का कोई महत्त्व नहीं रह जाता। यही अथर्ववेदीय आचार-शिक्षा का प्राण है।

❖

V-120

ऋग्वैदिक सरस्वती नदी का ऐतिहासिक परिशीलन

डॉ. गणेश दत्त भारद्वाज, होशियारपुर

ऋग्वैदिक सरस्वती नदी के पुनर्शोध से वैदिक इतिहास, पुरातत्त्व और संस्कृति के क्षेत्र में एक नये युग का सूत्रपात हुआ है। ऋग्वेद संहिता में सरस्वती नदी के जिस 'अम्बितमे देवितमे नदीतमे' स्वरूप का चित्रण हुआ, उसकी पुष्टि विभिन्न पुरातात्त्विक उत्खनन से प्राप्त प्रमाणों से हुई है।

इस (मूल) शोधपत्र में वैदिक सरस्वती नदी से जुड़े विभिन्न तथ्यों का क्रमशः विवेचन किया गया है। ऋग्वैदिक काल का निर्धारण, सारस्वत और सिन्धु सभ्यताओं की अभिन्नता, आर्य-आक्रमण के मिथक का अन्त, ऋग्वेद में सरस्वती नदी का वर्णन, सरस्वती का प्राकृतिक इतिहास, उसका मध्य हिमालय के ग्लेशियर से उद्गम तथा आदि बद्री में प्रकटीकरण और मैदानी क्षेत्र से सिन्धु सागर तक का मार्ग और कालान्तर में सरस्वती के लुप्त होने के कारण आदि।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन भारत की इस सदानीरा वेगवती सरस्वती के विलुप्त होने लिए पृथ्वी के भूवैज्ञानिक प्रक्रम (निरन्तर गतिशील प्राकृतिक परिवर्तन) ही उत्तरदायी हैं। इन्हीं प्राकृतिक परिवर्तनों ने हिमालय को जन्म दिया और पुराने महाद्वीपों को विघटित करके नये महाद्वीपों को जन्म दिया, इन्हीं प्राकृतिक परिवर्तनों के कारण सरस्वती नदी के हिमजलस्रोत अवरुद्ध हो गये, इसकी सहयोगिनी नदियाँ दृषद्वती तथा शतुद्रि का प्रवाह बदल गया और मौसम परिवर्तन के कारण शिवालिक पादक्षेत्र में वर्षा का अभाव हो गया। इन्हीं कारणों से प्रबल वेगवती सदानीरा सरस्वती का जल काल के गर्त में समा गया।

ऋग्वैदिक सरस्वती नदी के ऐतिहासिक परिशीलन से वैदिककालीन संस्कृति, सारस्वतसभ्यता और आर्य मूलस्थान आदि अनेक महत्त्वपूर्ण का उद्घाटन हुआ है; जो सांस्कृतिक और सामाजिक दृष्टि से भी मूल्यवान हैं।

❖

V-121

प्राचीन संस्कृत साहित्य में उच्चारण विधि

श्रीमती विनीता सिंह, बरेली

उच्चारण के दोषों से रहित तथा माधुर्यादि गुणों के साथ सामञ्जस्य पूर्ण रीति से शब्दों का उच्चारण 'साम' है। विभिन्न प्राणियों में उच्चारणवृत्ति की भिन्नता, उच्चारण गति की विषमता अथवा भिन्नता का होना अति स्वाभाविक है। अज्ञानवश मन्त्रोच्चारण में विलम्ब या शीघ्रता से अनर्थ संभव है। अतः आचार्यों ने उच्चारण विधि को स्पष्ट करते हुए उच्चारण में संभावित दोषों को दूर करने का उपदेश दिया है तथा गुणों से युक्त उच्चारण की प्रेरणा दी है। उच्चारणावयव तथा वृत्ति आदि का परिचय प्रस्तुत करते हुए शिक्षाकारों ने उच्चारण विधि या नियम प्रदर्शित किये हैं। इसे शिक्षा साहित्य में 'साम' अभिधान प्रदान किया गया है।

❖

V-122

वेद में विज्ञान के क्वान्टम सिद्धान्त की व सूर्यरचना की मूल (थियोरी) परिकल्पना

डॉ. विष्णुकान्त वर्मा, बिलासपुर

वेद में विज्ञान के सिद्धान्त बीजरूप में पाये जाते है। आधुनिक विज्ञान की क्वान्टम थियोरी के अनुसार प्रकाश स्रोत से शक्ति के गुच्छों में प्रसारित होता है। यह थियोरी ऋग्वेद के मन्त्र में बीज रूप में है। सूर्य का पिण्ड नाभिकीय कर्णों (न्यूक्लीयर पार्टिकिल्स) का समुच्चय है। सौर्य ऊर्जा की उत्पत्ति और प्रसार में तीन प्रमुख वैज्ञानिक तथ्य हैं, ये हैं— (साईक्लिक रिएक्शन) चक्रीय क्रिया कार्बन नाईट्रोजन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साईकिल। दूसरा तथ्य उत्प्रेरकों की भूमिका और तीसरा तथ्य है केवल धनात्मक विद्युत् वाहक कणों की भूमिका से कार्बन नाइट्रोजन साईकिल का चलना। वेदमन्त्रों में सौर्य ऊर्जा मुक्ति में ये तीनों तथ्य निहित हैं। वेद के अनुसार प्रकृति त्रिवर्गी है। वेद के मित्र वरुण ऋणात्मक धनात्मक विद्युत वाहक कण के प्रतीक है। मन्त्र में कहा गया है कि वाम एकः अनु आववर्त, मित्र वरुण में से एक धनात्मक विद्युत् वाहक चक्र को बार-बार घुमाता है। चक्रीय क्रिया का संपादन कर्ता है। मन्त्र में प्रेरणार्थक धातु ईर् से व्युत्पन्न शब्द ईर्मा से, निरुक्त के अनुसार जिसका अर्थ बाहु है, दो प्रेरक शक्तियों की भूमिका का होना भी कहा गया है। इस प्रकार विज्ञान की पूरी परिकल्पना बीजरूप में वेद में विद्यमान है।

❖

V-123

वेद में स्वप्न-विचार

डॉ. (श्रीमती) कृष्णा सैनी, होशियारपुर

जब से मनुष्य ने पृथ्वी पर पदार्पण किया, तभी से उसने स्वप्न देखना प्रारम्भ कर दिया। स्वप्न के विषय में चिन्तन करना भी साथ-साथ उदय हो गया। भारतीय जीवन की सभी विद्याओं का स्रोत वैदिक साहित्य है। वेद स्वप्न-चिन्तन के विषय में मौन नहीं है। उसमें तद्विषयक प्रचुर सामग्री मिलती है। उपनिषद्, पुराण, भारतीय दर्शन तथा आधुनिक मनोविज्ञान में भी स्वप्न के विविध-पक्षों पर विचार हुआ है। 'स्वप्न' एक प्राचीन शब्द है। जिसका प्रयोग ऋग्वेद के कई स्थलों पर हुआ है। मानव-जीवन की दो स्थितियाँ है—जाग्रत और स्वप्न। जब कर्मेन्द्रियाँ शिथिल होकर मन से एकीभाव प्राप्त कर लेती हैं, तो मनुष्य निद्रा की स्थिति में होता है। निद्रा की स्थिति में मन विलीन नहीं होता। सारी इन्द्रियों की चेष्टायें उसमें विलीन हो जाती हैं। स्वप्न का दिखाने वाला मन है। स्वप्न केवल वर्तमान ही नहीं, बल्कि भूत एवं भविष्य की कई घटनाओं को भी दर्शाता है। अथर्ववेद में स्वप्न को ग्राही का पुत्र, निर्ऋति-पुत्र, अभूति-पुत्र, देवजामि-पुत्र, वरुण-वरुणानि का पुत्र तथा गन्धर्व-अप्सरा का पुत्र कहा गया है। उसे यम का करण भी कहा है तथा अन्तक, मृत्यु आदि नामों से पुकारा है। वेद में भद्र और अभद्र दोनों प्रकार के स्वप्नों का उल्लेख मिलता है। स्वप्न से दुःस्वप्नों को शत्रुओं की ओर भेजे जाने के लिए प्रार्थना की गई है। इसी वेद में कहा गया है कि 'स्वप्न में जो अन्न मैं खाता हूँ। प्रातः काल जगने पर सत्य दिखाई नहीं देता। वह स्वप्न में खाया हुआ अन्न कल्याणकारी हो'। इस प्रकार वेद स्वप्न को शिव तथा अशिव परिणाम वाला मानता है। स्वप्न को यमलोक से आया हुआ माना गया है।

प्रस्तुत शोध-पत्र में वैदिक-संहिता, ब्राह्मण-साहित्य, उपनिषद् ग्रन्थों में स्वप्न के विषय में जो सन्दर्भ उपलब्ध होते हैं, उनके आधार पर तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक दृष्टि से विचार किया गया है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

V-124

Scientific Vision of Vedic Seers

ARYA DEV

Importance of Vedas lies latent from none who has some literary, historical and scientific perspective. Western scholars considered Vedas, especially Rigveda, song of Gipsy wanderers, whereas Indian scholars who had usually a traditional approach, took Vedas as a repository of every branch of knowledge. Hence, great need still persists that an anylytical study of scientific vision of Vedic seers, who saw or formulated Vedic *mantras* should be taken up. No concrete research work in this direction had been done so far. The present study is proposed to be spread over a wide area. First of all, scientific vision will be defined in an elaborate manner.

It also consists of the following subject matter : how far the scientific vision of the seers underwent a change from Rigveda to Yajurveda, new visions of the Yajurvedic seers, their critical analysis, how far these visions impressed the seers of the later age.

Samaveda, an original source of music is also replete with many scientific views and visions. How far the seers of the Rigveda impressed the Samavedic seers would also be taken up for study.

Atharvaveda, which was considered among Vedas at a later stage, is a Veda of different kind. Many new beliefs, traditions, incantations, magic, are found emerged and developed during the period of Atharvaveda. How far the tradition etc. are scientific in nature or futile to be discarded, Newly developed scientific vision of the Atharvavedic seers would be taken up. It will be of paramount value in the sense that orthodoxy mostly to be thrown away is certainly scientific to some extent. The seers used to sanctify something in order to propagate it among the people, who blindly adopted it in their way of life. Hence orthodoxy proved science, sometimes would be particular feature of this study.

❖

V-125

Concept of Kalaśa in Vedic Literature

DR. SUKUMAR CHATTOPADHYAY, VARANASI

The term *kalaśa* current denotation of water vessel, water-pitcher, jar, wine jar, drinking bowl, etc. occurs several times in the Saṃhitās and Brāhmaṇas. Though it is a symbolical concept of Indian art, an essential part of pūjā ritual, marriage ceremony; etc.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

indicating auspiciousness, blessings, and felicitous fortunes, but its primitive nature as a jar or vessel containing wine or honey is deeply rooted in the Saṃhitās, specially in the ninth maṇḍala of Ṛgveda. Yāska has given the etymology of the term *kalaśa* in his Nirukta in the sense of a container of soma-juice mostly used in sacrificial rites : *kalaśaḥ kasmāt? Kalā asmiñcherate mātrāḥ* (Nirukta XI.12), i.e. *kalaśa* is so called because a particular measures (*kalā*) of *soma* is deposited in it (derived from *kalā* + *śī*). The grammarians prefer to derive it from the root *lā* 'to take' preceded by the word *ka* 'water' (*kaṃ lāti kalayati vā kalaśaḥ*— Kṣīrasvamin on Amara Koṣa II.9.31-32). In the sense of water-jar it may be derived from the root *las* 'to play', 'to sound' or 'to embrace' preceded by the word *ka* 'water' and followed by the suffix *ac* (*kaṃ lasati yatra*). It denotes a water vessel in which water plays or sounds. So *kalaśa* is a container for keeping soma-juice, as recorded in the Vedic literature or it is a vessel for keeping water, an essential element of life. Its synonyms like *kumbha, ghaṭa,* etc. are also recorded in the Vedic literature.

The ninth maṇḍala of Ṛgveda records the term *kalaśa* several times in connection with pressing and collecting of soma : *ā kalaśaṃ madhumāntsoma naḥ sadaḥ* (ṚV.106.7), where soma is invoked to sit down on sacrificer's pitcher mixed with honey. For auspicious enjoyment and manifold blessings *kalaśa* is praised : *etāni bhadrā kalaśa kriyāma*.....etc. (ṚV X.32.9). A *kalaśa,* full of water is considered as a symbol of holiness and prosperity (*āpūrṇo asya kalaśaḥ*— ṚV III.32.15). In the Yajurveda (VIII.42), *kalaśa* is praised for desiring wealth : *ā jighra kalaśaṃ mahhyā tvā viśantvindavaḥ.* The Atharvaveda (XIX.53.3) praises the *pūrṇa kumbha* by setting upon the cosmic time, indicating the pulsation with buoyant life and vegetating in multifarious forms : *pūrṇaḥ kumbhodhi kāla āhita* etc. In the Maitrāyaṇī Saṃhitā the term *kalaśa* occurs several times : *mūrdhā droṇakalaśaḥ, kukṣī kalaśau* (IV.5.9);.....*kukṣī te kalaśau pātāṃ* (IV.8.7). In the Brāhmaṇas also the concept of *kalaśa* is developed with its multidimensional aspect (cf. *yasya kalaśa upadasyati*— (Tāṇḍya Br IX.9.1).

An attempt has been made in this paper to find out a semantic relation between the modern concept of water-jar or pitcher and the Vedic wine-jar (*somakalaśa*) by presenting the various sources, recorded in the Saṃhitās and Brāhmaṇas.

❖

V-126

Importance of Cow in the Vedic Economy

MRS. LEELA TRIPATHI, ALIGARH

The Veda is replete with references to cow and her products in variuos froms including her progeny and preparations out of her milk. Kings, seers and the common man,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

all figure here possessing large numbers of cows offering, exchanging and seeking to multiply them to any extent. Even the worthiness of students is sometimes tested by their capacity to increase the number of cows entrusted to their care by their teachers. 'Cow is not to be killed but is rather to be allowed to grow herself and increase the number of her progency so as to bring great fortune to mankind, observes the Atharvaveda. Similarly, the Śatapatha Brāhmaṇa (III-1.2.21) points out that 'neither the cow nor her calf ought to be killed since killing of them is equivalent to killing one's own foetus'. These statements bear out how cow formed the mainstay of life in the Vedic age.

❖

V-127

A Study of the fifth book of the Atharvaveda (Śaunaka)

DR. T.N. ADHIKARI, KOLKATA

The *Atharvaveda*, concerned scholars acknowledge, characteristically differs from the other three Vedas. The heterogeneous elements of this Veda have invited interest and controversy down the ages. The import of meaning is often debated. At this stage, it is imperative, we suggest, a multi-angled study of the Veda book by book, verse by verse. The proposed paper is a small attempt with a view to unfurl the objective character of this Veda. The present study is based on the fifth book of the *Atharvaveda* (Śaunaka recension). The fifth book consists of 31 hymns, divided into six *anuvakās* with 5 hymns in each group. Major portions of the hymns have a normal length of 8 verses. Apparently this book does not show any major departure from its own character (The first 7 book have a common character). Yet a thorough scrutiny may reveal some new findings.

The most interesting finding is, Sāyaṇa, the noted commentator, prepared no commentary on this veda though he was well aware of scholarly writings of the said veda from his application of the montras.

Numerous verses found in this book bear obscure meaning. Whitney even admitted mechanical translation thereof. Metrical usage did not always follow metrical formula of Piṅgala. Repetition in recitation is sometimes prescribed; grammatical forms are not always according to Pāṇini.

In the proposed paper, all the above mentioned points, along with some others are to be taken up and probable reasons are to be investigated.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

V-128

Atharvanic Manuscripts of Orissa with special reference to *Angirasakalpa*

SRI PRAFULLA K. MISHRA, BHUBANESWAR

1. Orissa being the mine house of palm leaf manuscripts had deposits of thousands of palm-leaf manuscripts collected in Orissa State Museum, Bhubaneswar and Utkal University library. There are as good as 13 texts of Paipalada Samhita, Texts of 64 Atharvanic Upanisad and 14 ancillary texts.

2. The findings of 29 pieces of palm leaf Manuscripts in Orissa State Museum have following contents in brief-Samhita, Upanisad and some other like Kalpa etc.

3. Besides the Samhita texts available in Orissa State Museum (OSM) some of the significant ancillary texts like *Atharvangirasa Kalpa*, which is lost to scholarly world, could throw new light, if they could be edited.

4. The Upanisadic texts under Atharvanic Tradition comprises complete information for the scholarly world, besides the text of this published Atharvanic Upanisad, which could be revised by taking note of the published ms. of OSM and Utkal University Library.

5. For a critical edition there are enough mss. of Angirasa Kalpa in Orissa state museum and Utkal University Library. These contents vary in text from ms to ms. The variants would be sorted out by a critical edition.

❖

V-129

Agni and Rudra : A Possible Relation

MRS. K.P. KANE, MUMBAI

All of us know that Rigveda Samhita begins with the word Agni. It is an important Vedic devatā. Rigveda contains more than 250 Suktas for Agni Devatā alone. In a way, it is indicative of the importance of Agni devatā.

Another important devatā found in Rigveda is Rudra. Suktas are devoted in priase of Rudra also. Interestingly, these suktas are used (viniyoga) mainly in the *Yagnya* processes.

Yagnya is a process used to invoke cosmic powers to achieve peace, prosperity and wholesome development of mind. In the post pauranik time Shiva Abhishek got

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

acknowledged and accepted to pray Lord Shiva to achieve peace and prosperity. Suktas are used in both the processes.

The suktas, whether, for Agni, Rudra or any other Devatas used in praise of the devatā by referring adjectives indicative of their character, quality, property, etc. Interestingly, some of the adjectives used to address Agni and Rudra are exactly similar. For example, Sughandhi, Babhru, Meedh, etc. are some of the common words used in Rigveda and Yajurveda to refer to both Agni and Rudra.

Is this a mere coincidence or is it indicative of any relationship between the two devatās?

❖

V-130

Mūlyādhyāya : A Study

NABANARAYAN BANDOPADHYAY, KOLKATA

Mūlyādhyāya is traditionally a 12th Pariśiṣṭa (i.e. supplementary work) of the Śukla-Yajurveda, ascribed to Kātyāyana. This text dealing with the Śrauta rituals is edited by Shridharashastri Vare of Nashik with his commentary *Viṣamapadālaṃkriyā* along with ten Pariśiṣṭas and published at Pune. C.G. Kashikar in the *Survey of the Śuklayajurveda Pariśiṣṭas* (Published by BORI, Pune, 1994) observed that 'It presents a table of items which have been prescribed to be given as regular and extra Dakṣiṇās. The conversions of these Dakṣiṇās into coins have been recorded at the same time' (p. 26). In his opinion also 'This evaluation of Dakṣiṇā items seems to have been evolved some time in the medieval period, as the Kārikā composition also suggests' (p. 28). There are also three commentaries on it, written by—(a) Gopāla, (b) Dikṣīta Kāmadeva and (c) Vaidyanātha Pāyaguṇḍe. I have the privilege of consulting Xerox copies of manuscripts of those commentaries, preserved at Vaidik Samshodhan Mandal, Pune. The text has seven Kārikās only. But Vaidyanātha has written a vast commentary comprising 102 folio. He has tried to a certain extent, to refute the views propounded by his predecessors or contemporaries. In his commentary he has referred to or cited from not less than 100 source-books, on the subject like Vedas, Kalpasūtras, Purāṇas, Smṛtis, Abhidhāna, Vyākaraṇa, Nyāya, Gaṇita, Jyotiṣa, Alaṃkāra, etc. (Cf. *Descriptive Catalogue of Sanskrit Manuscripts*, ed. T.N. Dharmadhikari, Vol. I, VSM, Poona, 1974, p. 356). On the basis of these commentaries a short study of the text will be presented in the proposed paper. The text along with commentaries is very important from mathematical and economical points of view since it determines the ancient Indian value system relating to sacrifical

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

fees and commodities offered to priests in the context of change and continuity of Vedic religion.

❖

V-131

Luṭ Lakāra and the Veda

MALHAR KULKARNI, MUMBAI

Pāṇini's grammar is considered to be the most precise grammar of all times. In this grammar, we find mention of two types of future tenses—what Pāṇini calls—*luṭ* (First Future—indicating tomorrow's futrue) and *lṛṭ* (Second Future—indicating Today's Future). The treatment of *luṭ* in the Pāṇinian grammar can be said to be inconsistent to a certian extent.

The present paper aims to study the Vedic data related to *luṭ* and aims at arriving at trying to explain away these inconsistencies.

❖

V-132

The Vedas for Unity and Integrity of the Mankind

PROF. MOHD. ISRAIL KHAN, GHAZIABAD

There is no denying the fact that the *Vedas* are for the mankind. It is said that, at the outset, God gave the knowledge of the *Vedas* to seers and for the welfare of the mankind, the seers transmitted it (the knowledge) to men. Thus, all men were benefitted by the lore of the *Vedas*. At the beginning, there were no divisions among human beings as all *Vedic* people were called *Āryans*. People of the age were united and as a result, the society and the country developed as a unit. A gnome beautifully shows this unity as follow :

There are numerous gods and goddesses, who belong to various spheres, but they are all united and go to merge in one unit, called Brahman. Similarly, in the *Vedic* period and in the *Vedic Bhārata*, different types of people were apparently different, but were one and the same on the basis of *nara—rāṣṭra* concept. The *Vedic* people talked of *jagat* or *viśva* inhabited by people and not of Bhārat only. Presently, in the age of the *Kaliyuga*, men are usually the victim of *kāma, krodha, lobha, moha, mada* and *īrṣyā*, but bonds with their neighbours have led the life full of content. The teachings of the Vedas amply suffice this. The *Vedas* clearly show us the road to unity and exhort us : Let us walk together, let us

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

talk together and so on and so forth. Undoubtedly, the secular matter of the *Vedas* leads us towards this goal. This paper intends to study the issue deeply.

❖

V-133

Aims of Upanisadic Education

DR. UMA SHANKAR SHARMA, PATNA

The paper analyses the principal objectives of Upanisadic education in the light of a *śanti-patha—saha navavatu* etc. These objectives comprise protection of the self, economic efficiency, physical efficiency, mental strength, development of personality and spirit of tolerance. These are discussed with reference to the sentences used in the aforesaid *śāantipatha* of the Katha Upanisad.

❖

V-134

Kalpasutras : Their Universal Relevence

DR. VANITHA RAMASWAMY, KARNATAK

The Kalpavedanga which has directly emerged out of the Brāhmaṇas is a sacrificial manual giving details of the actual performance (अनुष्ठानक्रम) of the ritual. The Kalpasūtras are grouped boadly under two divisions called श्रौत and स्मार्त sūtras. The first deals with public sacrificial rituals like अश्वमेध, राजसूय or based on the श्रुति. स्मार्त sūtras deal with संस्कारs necessary for a householder, hence also called गृह्य sūtras. There is an addition of धर्मसूत्र which enjoins rules of normal conduct in the family and in the community. The शुल्व Śutras provide details of measurements required for he construction of vedic altars, platforms etc.However the word यज्ञ has a more profound connotation.

यज्ञ is defined as 'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म'. According to this definition all noble deeds which are performed with sincerity, dedication and symbolised by no selfish motivation (निष्काम) are यज्ञs. That is the purpose of इदं न मम after the offerings. But the prime concern is to control and maintain the universe as it is. यज्ञ purifies the atmosphere. This is achieved by performing ritual which constitute our धर्म and also maintains धर्म of the universe. This means the maintenance of proper equilibrium of the cosmos. यज्ञ performed for लोककल्याण. In nature there is what is called 'Nature's cylce 'प्रकृतिचक्र' in which every object gets back its source. On this basis we have अहोरात्र चक्र, ऋतुचक्र, वर्षचक्र, सौरचक्र, चान्द्रचक्र etc. The Ṛgveda states in the यज्ञ of वर्षचक्र :

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद् हविः।।

Thus knowledge is the principal means and the ritual its application. The paper further discusses about the universal relevence of यज्ञs.

❖

V-135

A study on Usas sukta

ANNAPOORNA DEVI S.V., KATTAYAM

The wonder and beauty of Rigveda literature lies in the form in which it is written 'the poetry'. The Rigvedic poetry is sacerdotal, ritualistic and primitive. The repetitions maintain familiarity, produces ease in comprehensions, preserves traditionalism and innate conservatism. It speaks of the religious thought in the light of priestly thoughts and expressions. But Usas hymns excude a special charm. The rich poetic beauty of these hymns satisfies the quest of the research scholar who enquires the archaic form of literature in old texts.

Usas, the daughter of heaven, who awakes the whole world from darkness, and lead to life. Like a youthful lady in shining attire she appears in the east and informs the arrival of day. It is the time to kindle the sacrificial fire. It is commonly sun in these hymns. (1.124). In another mantra, Usas appears as a mother, who awakes her sleeping children, after the preparation of meals for them (1.124). The arrival of Usas is compared to a lady not having brothers who approaches her father for dress and ornaments; and also like a widow approaches court to claim for her right in property (1.124).

❖

V-136

कन्याभिमन्त्रणमन्त्रs of एकाग्निकाण्ड

DR. RUPA, MYSURE

'सोमः प्रथमो विविदे' (ए.1.3.1) and 'सोमोऽददद्गन्धर्वाय' (ए.1.3.2)–these are the two कन्याभिमन्त्रणमन्त्रs. सोम had got you first (सोम was your first पति); then गन्धर्व got you second (गन्धर्व was your second पति); अग्नि was your third पति; human being i.e., myself

CC-0.Pānini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

am your fourth husband. This is the literal meaning of the first मन्त्र. सोम gave you to गन्धर्व; गन्धर्व gave you to अग्नि and then, अग्नि gave you to me along with wealth and progeny. This is the literal meaning of the second मन्त्र.

'सोम' means 'चन्द्र' and he is the lord of the mind. गन्धर्व can be taken as सूर्य as said by जयराम and गदाधर, and सूर्य is the lord of the intellect. 'सोम, गन्धर्व and अग्नि are her पतिs' means 'सोम, गन्धर्व and अग्नि are her rulers'. सोम rules her mind, सूर्य rules her intellect, and अग्नि leads her (अग्रं नयति इति अग्निः); she has been given to me (bridegroom) by the god अग्नि, who leads us in the right path.

In brief, these मन्त्रs suggest that the bridegroom should think that the bride is the devine gift to him.

❖

V-137

Flora in Vedic Literature : A Descriptive-Analytical Viewpoint

SUMITRA V. BHAT, KARNATAKA

Reference to flora and fauna in day-to-day living in Indian is as old as the Indian civilization itself. This research paper argues that human life is intricately woven with the nature and its system of life patterns that have been captured in the Vedic literatur vividly. The Vedic sages considered the interdependence and inter-penetration so deep and dense that speaking of human habitat or culture without reference to nature was widely regarded as resonant and hollow.

Vedic literature makes specific allusions to forests and wild life forms. Great sages of India lived in forests and ran their *gurukulas* to impart education to their chosen disciples to provide knowledge about the ultimate truth, its inception, nature and the environment around. Needless to say that Vedic literature, with its numerous texts of *Samhitās, Brāhmaṇas, Āranyakas, Upaniṣads* and *Vedāṅgas,* is rich and versatile to its core. It makes a number of references spontaneous as well as pointed to trees, plants and forest produces in terms of their diverse uses. The research paper concludes that this is time wherein common people and their use of floral wealth demands an understanding as well as analysis of Vedic descriptions. The most ancient texts of this land have expressed a fine sense of understanding pertaining to the wealth of floral nature.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

V-138

Ṛgveda and National Integration

DR. R. LAXMI, DHARWAD

The term National Integration and its relevant aspects are no innovation. It is true that modern society is making great efforts to bring about National Integration although politically the Indian Republic is a Sovereign State since 1947. The age of the Vedas, particularly the Ṛgveda was marked by small tribal groups and a nation was just emerging, the origin being the clan, the political unit. The Rajan was the head of a group of clans. A critical study of the Ṛgveda gives rich information on the ideas of a Nation and a State. In fact, it is no exaggeration to say that the period of the Vedas was a nation in the making. In this paper, an attempt is made to glean relevant mantras from the Ṛgveda which are enough to substantiate this point.

❖

V-139

A note on Ānandarāyamakhin's Commentary on the Mantras of Āśvalāyanagṛhyasūtra

DR. SULOK SUNDER MAHANTY, ORISSA

Manuscript No 11763 in the Sarasvatimahal Library, Tanjore is the commentary on the Āśvalāyanagṛhysūtra (ĀGS) by Ānandarāyamakhin (1684-1710 AD.), who was the son of Narasiṁharāyamakhin and the grandson of Gaṅgādharamakhin. This commentary is not yet printed.

The published commentaries of ĀGS by Devasvāmin, Nārāyaṇa and Haradatta do not comment on the mantras prescribed in text. This commentary, however comments on the mantras of the ĀGS. Some striking aspects of Ānandarāya's comments on the mantras of this text are discussed in this paper.

❖

V-140

The 31st Chapter of the Śukla Yajurveda vis-a-vis the Puruṣasūkta of the Ṛgveda : A study

SUDHENDU MOHAN BHADRA, GUWAHATI

Known is the fact that mantras of the Ṛgveda are largly found in other saṃhitās also. For this reason, the Ṛgveda stands in the first place among the four samhitas.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The puruṣa sūkta of the Ṛgveda (X.90) is found occupying the front coverage in the 31st chapter of the Vājasaneyī Saṃhitā of the Śukla Yajurveda. It is found there that the mantras of the śukla Yajurveda are wholly borrowed from the Ṛgveda with great variations. Sometimes, one word occured in a mantra of the Vājasaneyī Saṃhitā is replaced by some other word which is not found in the Ṛgveda text. Moreover, the order of the mantras as found in the Ṛgveda is violated in the Śukla Yajurveda. This leads one not to arrive satisfactorily at the decision with regard to the *'apauruṣeyatva'* of the veda.

'Apauruṣeyatva', therefore, seems to lay stress on the interpretation that the theme of every sūkla or better to say every mantra is *'apauruṣeya'* as it is beyond human grasp so far the realized vision of sūktas or maṇtras is concerned. As such, the language is of the seer or seers, but the theme of a sūkla is beyond human affort. If we pay deep attention to the origin of the speech, we find that words or speeches are also evolved under god's grace. However, without going to the hair splitting discourse on the origin of words, it is mainly dealt with the *'apauruṣeyatva'* of the hymns that their themes were visioned through constant meditation and as such, veda is *'apauruṣeya'*.

❖

V-141

Is Kapota hymn (ṚV 10.165), A Vaisvadeva Hymn? Some Remarks

PROF. D.V. SHASTRI, RAJKOT

The Ṛṣc of Ṛv. 10.165 is said to be Nairṛtaḥ Kapotaḥ having only 5 śes, written in Triṣṭubh metre.

It is said to be addresed to the 'Viśve-devāḥ' by the authorities like Ludwig and Max-Muller, perhaps following the theory Devāḥ=Viśve-devāḥ, and also by the scholarly editors of Ṛv from Hoshiarpur and Poona. But is it so always in the Ṛv?

Devāḥ is used in general about 'All-gods', but not in the sense of 'Viśve-devāḥ', many a times.

Conceptually, The Vaiśvadeva' hymn has many types in the Ṛv, e.g. Even an enigmatic hymn without the name of any god, is termed as 'Vaiśva-deva' by Śaunaka, and others, e.g. Ṛv. 1.164.1-41.

Here Kapota symbolically may mean the 'Soul' of the human-being, and not only the Pigeon. Here in this hymn, Kapota is said to be the messenger of Nirṛti (Destruction,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Death) and the female-bird, Hetiḥ (calamity) Pakṣiṇī, and should not be destructive, though it is the messenger of Yama, the Death (Mṛtyu) incarnate.

It should be auspicious, giving Śam (Prosperity) and keeping away all the Duritāni (Misfortunes, Troubles) and giving the worshippers the Ūrjam (Vigour, strength).

This Kapota-hymn really should be treated as a Vaiśvadeva hymn, meant for giving all types of Happinesses, and keeping away the misfortunes of life, a real concept of a Vaiṣvadeva-hymn in the Ṛgveda.

❖

V-142

Ideals of Upaniṣadic Education

DR. K.S. JAYASREE, NEW DELHI

The Upaniṣads reveal that the ultimate aim of education is the acquisition of real knowledge. Real knowledge extolled in the Upaniṣad is based on spiritual wisdom. The Upaniṣads suggest the means and methodology for achieving spiritual wisdom i.e., leading an individual towards the realisation of self. Acquiring knowdledge by purifying and elevating one's character is the means to this.

Education in the Upaniṣads not only emphasized devotion to social duties but also laid stress on the promotion of social happiness. The deliberations on the philosophical matters in the Upaniṣads have thus not been delinked from the worldly life. Upaniṣadic education lays the base for selfless life, broad mindedness, good thoughts and deeds, good relations with fellow beings and empathy with them.

❖

V-143

The One and the Many Manus in the Veda

PROF. MAITREYEE BORA, GAUHATI

The word *manu*, as it appears, came into use in the *Ṛgveda* as an epithet or a person who took upon himself to perform a *Yajña*. Etymologically the word denotes a 'person who can think' i.e. 'one who has the power of cognition'. In the Veda the sacrificer was given the appellation *'manu'* for, he was wise enough to recognize the importance of performing a *Yajna*, which the Vedic seer hailed as the very source of the world (*'bhuvanasya nābhi'*).

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

When used in the plural the word stood for the performers of Vedic rituals. As per Vedic lore the gods too recognized the wisdom of a *'manu'*. They helped him in his endeavour to perform his rituals and granted him all the blessings. In course of time the word evolved into a proper noun and Manu emerged as a mythical figure— the father of mankind and the very first performer of a Vedic ritual. Manu performed his *Yajña* for the well being of all men. The ritual thus performed by him became the prototype of all the Yajñas and Manu came to be identified with the *Yajña* itself. In the origin and development of the concept of *'manu'* has been reflected the significance of the role of *Yajña* in Vedic religion.

❖

V-144

Vedic Conceptions of the World and its Origin

SUNITI GUPTA, VARANASI

According to the strictly orthodox idea, Veda is a revealed text breathed out by Brahmā at the beginning of the Cosmic cycle. It is not a human production. Its purpose is to show man the way to prosperity and solvation. Vedanta teaches the lesson of Oneness. The fictitious difference between religion and the life of the world must vanish.

In the Vedanta, philosophy has no practical relevany. But when Vedanta is spoken of as practical it is meant that it is a high ideal which at the same is to be put into practice without any compromise or dilution.

❖

V-145

The Greateness of Prajāpati as depicted in the Upaniṣadic Literature

JAGADISH SARMA, GAUHATI

God Prajāpati is extolled as one of the prominent god in the Vedic literature as a creator and sustainer of this universe. He is acclaimed as the unique position in the Vedic literature as well as in the post-Vedic literature. He is recognised as the distinct god mainly in the *Brāhmaṇa* literature. In the Epic-Purāṇic liturature in his grateness the deity has come to be designated as Brahmā and thus Prajāpati, whose position usurps in the post-vedic period as a supreme god.

The *Aitareya-Upaniṣad* identifies Prajāpati as Brahman, the Ultimate Reality. It is stated that Prajāpati is Brahman. He is Indra and he is all the gods. He is the five elements

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

earth, wind, ether, water and light (A.U.5.3). The *Śvetāśvetara-Upaniṣad also* describes Prajāpati as Brahman and states that he is indeed, Agni, Vāyu and Chandramas (Śvet.U.4.2).

The present research paper aims at describing the grateness of Prajāpati as the Supreme Being as depicted in the Upaniṣadic literature.

❖

V-146

Pre-requisite Qualification for Vedic Studies : A desideratum for Vedic Research

DR. (MRS) PRATIVA MANJARI RATH, ORISSA

The principles for correct chanting of Vedas are to be found in the *Śikṣā* texts. Perfect recitation of vedic mantras was regarded as the pre-requisite for vedic studies and besides the knowledge of phonetics, physical and mental attitude of the learner is also significant for vedic learning. *Śuddhapāṭhi* of vedic mantra was regarded with high esteem in the vedic tradition. Thus it is said—

na me priya dvijaḥ kaścicchuddhapāṭhī tvatipriyaḥ (Verse 159 of *Pārāśarīśikṣā*)

It is significant to note that those principles are necessary not only for correct pronunciation but also for correct understanding of the Vedas. Now a days when meaning analysis and context analysis of vedic texts have gained importance in India and abroad in the field of vedic studies than the traditional chanting of Vedas, then the question comes to one's mind whether the vedic researcher possesses requisite qualifications to do justice to the proper understanding of Vedas?

❖

V-147

'Agni' in First Maṇḍala of the Ṛgveda in the Light of Modern Views

R.K. SAHA, SOMA BASU & SANSKRITI BASU, KOLKATA

'Agni' one of the two Chief deities of Ṛgveda has revealed itself in the nature of Divine and through the phenomenon of Nature in Vedic literature which is composed by the Aryans. Elucidation of phenomenal qualities of 'Agni' such as burning, shining, consuming, striking, pervasive, to act as messenger, protector, presence everywhere etc. by

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vedic seers is explained and interpreted in this paper as nothing but what modern science is saying from last few hundred years. Leaving aside the aspect of glory and splendor of the Divine nature of 'Agni' we have concentrated our attention on the phenomenal side of the verses relating to 'Agni' in First Maṇḍala of the Ṛgveda to present though the divine side of 'Agni' is the central theme of most of the hymns related to 'Agni' of the Ṛgveda. 'Agni' in other Maṇḍalas of Ṛgveda will follow next.

❖

V-148

Some Special Features of Vedic Interpretation of Yāṣka

MISS SUCHANDRA DAS, WEST BENGAL

Nirukta brings out the etymological meaning of the vedic words. According to Pāṇinīyaśikṣā Nirukta is ear of the veda-purusa. If we like to examine the view of Yāṣka with regared to the interpretation of the vedas, we find some special features of his interpretation. Such as, (i) Yāṣka has referred to the various schools of vedic interpretations....Nairukta, Paribrājaka, Aitihāsika, Adhidaivataṃ, Adhyatma etc. (ii) Yāṣka has also referred to the names of some of his predecessors who had contributed to the vedic interpretations in their own ways. They are Śākaṭāyana, Gālava, Garga, Śākapūṇi, Udumbara etc. This proves beyond doubt that the meaning of the words of the vedas had already begun to be obscured and started to grow dim even before the time of Yāṣka. Yāṣka has also admitted this for some of the words. Yāṣka explained about five hundred words of the Nighaṇṭu. In this small article an attempt has been made to highlight some special features of Yāṣkas interpretation.

❖

V-149

Man and the Green World : From the Vedas Down to Centuries....

DR. NILANJANA SIKDAR DATTA, KOLKATA

The Vedic seers looked at nature with awe and respect. Their attitude is reflected in the anthropomorphological conceptions of deities. The vast surrounding nature that was the resort of the food-gathering society inspired their imagination. The famous Aranyani-Sukta (RV) or the Bhumi-Sukta (AV) reflect this imaginative gratitude of those seers. The Atharva Veda also indirectly expresses their dependence on nature as it refers to profuse use of herbs and other natural ingredients as medicine. This attitude of social dependence

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

on nature continued down to centuries and the Sanskrit poets are well known for their association or nature. In other older civilizations also we find that their natural surroundings dictated their mythology and their pantheon. Throughout the world, primitive tribal societies treated some plants, groves, lakes as sacred.

❖

V-150

Dialogues in the Ṛgvedic Brāhmaṇas

SANGHAMITRA MUKHERJEE MAJUMDAR, KOLKATA

Mode of dialogues is often used in the Sanskrit literature for imparting teaching. In the Vedic literature, right from the Ṛksaṁhitā we sometimes come across the dialogues. Eg: dialogues between Pururava and Urvasi (10.15), Yama and Yami (10.10) etc. It is interesting to note that apart from the wellknown dialogue hymns, Vedic literature also contains different types of dialogues. Some of them are based on rituals (Aitareya Brāhmaṇa I.7, Kausitaki Brāhmaṇa I. 1, VI. 2) and some of them are found in context of legend (AB VII. 13). Some of them are totally mystic and designated as Brahmodaya.

An attempt has been made in this paper to make a thorough discussion on different types of dialogues, as found in the Brahmanas of the Ṛgveda.

❖

V-151

Treatment of Metres in the Ṛkprātiśākhya

DR. DIDHITI BISWAS, KOLKATA

Ṛk Prātiśākhya, a treatise on Śikṣā, stands as an exception, as it makes an elaborate discussion on Vedic metres. Metre or Chanda forms a separate branch of Vedānga as it helps to get into the meaning of the Vedic literature and is represented mainly by the Chandaḥsūtra by Pingala. But the deliberation on metre made by the Ṛk Prātiśākhya in its last three Paṭalas excels the Chandaḥsūtra in many respects to a great extent. There are some unique features of the Vedic metres as indicated by the Ṛk Prātiśākhya for the first time, long before the Western scholars. As for example, the specific number of syllales in a foot of a metre (17.37; 38; 40), the place of *laghu* and *guru* (17.39), the determination of the ending of a foot (17.24-27) and others. An attempt has been made in this paper to trace the uniqueness of the Ṛk Prātiśākhya in its treatment of Vedic metre.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

V-152

Contribution of The Vedas Towards The Development of Mathematics

DR. PARVATI BANERJEE, VARANASI

Available sources of Vedas with Vedic Mathematics are very poor. Almost all the literature on the subject concerned has perished. Thus, for an insight into the Vedic Mathematics we have to depend on secondary sources such as literary works.

In Vedic times, Vedic Hindus used geometry or Śulva to solve propositions about the construction of various rectilinear figures. Vedic people contributed directly towards the development of Mathematics, they anticipated the work of the great Mathematicians of later days. Their indirect contribution to the subject through their immediate followers was considerable.

He (God) is pūrna (complete). This (world) is complete because pūrna is developed from pūrna. Its mūla Śūtra is found in AV X. 8.25. The Puruṣasūkta of the Ṛgveda (X.90) reveals the orchetypal Man, the origin and personification of the universe and of society, who is coextensive with the universe and get transcends it. The man became the five divisioned metre. The Puruṣa is said to be fivefold. From here we get the concept of 5 layers of the sacrificial altar.

❖

V-153

Numerals in Ṛgveda

PROF. PRADEEP KUMAR MAJUMDAR, KOLKATA

In this paper I shall show how the idea of numerals basically came from Ṛgveda. For this pursose I deal with different mandalas of Ṛgveda. The paper is devided into the following sections (i) The Serial order of the numbers, (ii) Characteristic Features of the Vedic number system. (iii) The method of counting, (iv) Original number, etc.

❖

V-154

Importance of Directions in Vedic Ritual

MUGDHA GADGIL, PUNE

In vedic rituals, directions are considered to be important. The Brāhmaṇas prescribe various directions in the context of various rituals.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Usually eastern and northern directions are considered to be auspicious and thus prescribed in the rituals for the gods and the men. On the other hand, southern direction is prescribed in the rituals for the fathers. Western direction is prescribed sometimes as an option for the east and the north.

In this paper, an attempt is made to find out why specific directions are considered suitable or appropriate for specific rituals.

❖

V-155

Rites of Women in The Atharva Veda

PROF. NALINI DEVI MISRA, GAUHATI

The seers of the Atharvaveda revealed a large number of hymns relating to the rites of women. Amongst these the rites relating to the safe delivery of a woman, securing a woman's love, warding off the pains of co-wives, conception of child by a woman are remarkable. These rites relating to woman have close similarity with those of the Gṛhyasūtras. Manusaṁhitā too has some important deliberations upon these rites. Our aim and object of the present study is to reflect on these rites and their relevance to the present day society. Kauśika too contributed certain important suggestions to such a study. Such study will also throw light on the status of woman in Indian society of the Vedic period.

❖

V-156

Secular Hymns of The Ṛgveda : A Note

DR. SABITA DEVEE, GUWAHATI

Secular hymns occupy an important place in the Ṛk Samhita. It implies those hymns which contains no religious attitude or invocation to any particular god.

Wedding hymns carries a pattern of married union in general. Funeral hymns throw light on the lives after death. Frog song is also a secular hymn. The awakening of the frogs at the beginning of the rainy season is described with a graphic power. It is appreciated best by those who lived in India. Again importance of Dana-stuti is that one is able to know the historical events as well as the names of the patrons. Poetic riddles are poem themselves. Dialogue hymns have given a landmark in the beginning of sanskrit drama. Because the idea of drama comes to mind following the conversation of Pururava and Urvashi, Yama and Yami etc. of the dialogue hymns. From the didactic poems we can have a glimpse on

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

the social values of that period. Philosophical hymns throw light on the philosophy of the Veda i.e., the knowledge of the Upanisads.

❖

V-157

Knowledge Management in Veda

DR. D.N. PANDEY, RAJSTHAN

In Indian culture knowledge appears as an instrument of spiritual rank that changes the individual personality to make a man supreme being. Because of the mysterious phenomenon of the knowledge it is explained and understood variously by the Indian and western philosophers and logicians. In Indian literary and philosophical terms it is called Jnanam ज्ञानम् : In Upanishadic literature it is defined as सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म to mean Brahma is real entity, knowledge itself and everdasting. But this maxim of spitirual category can be analysed as the aphorism of the old fashioned KM=knowledge Management, depicted in Vedic literature. The paper sheds light on the old fachioned process and Management of natural knowledge and motivated knowledge in light of the Vedic literature. It also tries its best to establish the spontaneous relation of the Vedic KM with the modern perception of KM and Information technology of India. The purpose of the paper is that, to put Values in modern KM, the Vedic ideology of the same must be scrutinized and understood properly to make India much more advanced in the field of Information technology. If humanitarian elements of the Vedic KM are added to the modern Indian KM, India must be looked upon by developed countries as a tourch-bearer country in the field of Science and Technology, based on value based knowledge-management.

❖

V-158

The Relevance and the Importance of the Discourse between Yama and Naciketā

DR. VINOD KUMAR DIXIT, DEVRIA

The Vedas are the oldest extant literary work in the history of religion and philosophy. The Upaniṣads are the most developed part or the climax of them; that is why they are called 'Vedanta'. They bear the acme of the vedas.

Generally, the Upaniṣads are discourses delivered by their precepters to highly intelligent pupils, As we find in Chandogya Upanisad, even Indra, the king of Paradise had

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

to come as a student to understand the mystical nature of Brahma. Almost all the schools of ancient Indian philosopy, whether theistic or atheistic, seem to be indebted to the subtle, sublime and profound doctrine of the Upanisads. Kathopanisad is one of the most important of them.

❖

V-159

The Characteristics of the Ṛgvedic Female Deity Sarasvatī as Reflected in Sāyaṇas Ṛgvedic Commentary

DR. (MRS.) DIPTI SARMA, ASSAM

The Ṛgvedic pantheon of Gods is by all means predominantly partriarchal in nature. In the midst of the mighty Gods like Indra, Agni, Vāyu, Sūrya etc. lauded in the hymns of Ṛgveda, Sarasvatī occupies an important place.

In the concept of the Ṛgveda, Sarasvatī has a two-fold existence. The terrestrial counterpart of the celestial Sarasvatī was a mighty river on the banks of which the Vedic people held many great sacrifices. In the hymns dedicated to Sarasvatī both these forms are depicted side by side. In this way Sarasvatī becomes the river par excellence of Vedic India.

In the Ṛgveda Sarasvatī is invoked as a Goddess of speech. Sāyaṇa is of the opinion that Sarasvatī is depicted as a goddess of learning. It should always be noted that in the verses of the Ṛgveda, Sarasvatī has been identified with the goddess Vāk.

While discussing the nature of Ṛgvedic Sarasvatī one needs to take into account two other noteworthy aspects of her nature as a female divinity. The first of this aspect is her association with the Pitṛs and the second is her depiction as a bestower offsprings. Lastly, Sarasvatī as a femal divinity would easily lead to the conception of Sarasvatī as a mother Goddess a symbol of fertility.

❖

V-160

Mensuration in the Śulbasūtras : An Unexplored Area

RAMKRISHNA BHATTACHARYA, KOLKATA

The Śulbasūtras have so far been studied by schoalrs from Thibaut to Datta, Kulkarni, and Sen and Bag almost exclusively as the first texts of geometry. However, the Śulba is also

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

the earliest source of learning how the art and science of mensuration came to be applied in piling the fire altars of different shapes. The fire altars are required to conform to two fixed conditions : (a) the number of bricks is confined to 1000, neither more nor less, with 200 bricks in each of the five layers, and (b) the area must be 1000, 800 square aṅgulas or 7 puruṣas, as laid down in the Baudhāyana Śulbasūtra, 2.1 and 2.26. The piling of the rectilinear fire altars was not so difficult in the initial stage. But the circular and curvilinear citi-s posed quite a challenge to the *śulbavids*. They boldly faced the challenge by varying the shapes and sizes of the bricks some of which had one or two curved sides. The paper provides, the areas of the bricks mentioned in the Baudhāyana and Āpastamba Śulbasūtras.

❖

V-161

Different Stages of the Development of the Vedic Literature

UPENDRA NATH SARMA, ASSAM

The whole range of the Vedic literature is a vast one. We have references to these different stages of the development of Vedic literature. They are *Samhita* period, *Brahmana* period and the *Sutra* literature period.

The four *Vedas* evaluate during the Samhita period. This was creative and poetic age. Different hymns and prayers were composed in this period.

The second stage, that is the *Brahmana* period is the transit period from verses to prose. The *Brāhmanas* are the oldest prose writing of the Indo-European family. *Brāhmanas* deal with six subjects such as *vidhi, arthavāda, nindā, prasaṁsa, purākalpa* and *parakriti*. The later portions of the *Brāhmanas* are the *Āranyakas* and *Upanisadas*. They are of theosophical character. The *Āranyakas* are designed as *Upāsanā Kānda* and *Upanisadas* as *Jnānakānda*.

The third and the last stage of the development of Vedic literature is the *Sutra* stage. Some *Sutras* are based on *Sruti*. They are called *Srautasutras*. They deal with the ritual of the greater sacrifices. The other division of the ritual *Sutras* is based on *Smṛtī*. or tradition. They are called *Gṛhyasutras*. They deal with household ceremonies. There is another class of *Sutras* called *Dhamasutras* which are also based on *Smṛti*. The are the oldest sources of Indian law. Several other works were produced in *sutra* period of different purposes. They are *Prātisākhya Sutras, Anukramanis* and so on.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

V-162

Humānism in the Vedas

DR. SHIUBI GHOSH,

The term 'Humanism' came with referecne to history, moral philosophy, Rhetoric etc. It first entered the vocabulary of the west during the renaissance period and meant the revival of interest in Greek and Roman Philosophers. Then gradually it adopted a broad connotation of meaning. It now signifies the recognition of human dignity in general. In humanism belief is founded on reason and human experience. It also recognizes that all humanbeings are entitled to the basic human right and given due respect and recognition to men without any discrimination.

Going through the Vedas one can feel the profound love and respect of the Vedic Ṛṣis for human life. Their prayer 'may we live a hundred years, may we see a hundred Autumns etc.' are very significant in this connection. The seed of humanism is rooted in the concept of Rtam. The dignity of man has been proclaimed in a number of sūkts in the Vedas. In the Upaniṣad it is all the more clear and there it has achieved its programmatic used. A boy of unknown identity has been enriched by Ṛṣi Gautam as the foremost of the Brahmins due to his truthfulness. There can be no better example of humanism than this.

The paper aims at revealing the conception Humanism rooted in the Vedic Saṁhitas and the Upaniṣads.

❖

V-163

Vedic Roots of Modern Science

GOMATHI RAMANATHAN, CHENNAI

Science pervades the entire world with its branches spreading far and wide. However, hidden by the sands of time its roots could be traced to the ancient Vedic India.

The Mathematical foundaiton of western science is a gift from the Indians, Chinese and Babylonians. (Dick Teressi) The number 0-9 were invented in India. The inventions of zero and negative numbers have been found to have an Indian origin.

In the field of Physics, it has been found that India developed enduring atomist theory of matter. Greek atomist thought was influenced by India via Persia. (D.M. Bian)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Chemistry : According to Will Durant, the Vedic Hindus were ahead of Europe in industrial Chemistry.

The Atharva Veda deals with man living in the rich varied Bio-diversity. The fellowship of man and nature is the central theme of Atharva Veda. Vṛksa Ayurveda, Gaja Ayurveda, Asva Ayurveda all speak about the scientific Management aspects of sciences like bio-technology and genetic engineering.

Summing up, researchers have come to the conclusion that the 'ancient Indian Wisdom, known under the generic name of the Vedas' is the root of modern science.

❖

V-164

Historical Background of the Concept of Svarga (Ṛgveda Saṁhitā-Mantras Only)

DR. RAJEEV KUMAR JHA, DURGAPUR

Literature is an art. It is different from history. In spite of being so it can supply many historical materials and philosophical thoughts, because it is the nature of literature to reflect many aspects of social history and philosophical speculations. In short many historical points are available there. Hence our historians succeeded in presenting a complete history of ancient time by means of these sources. It is true that we cannot give any answer to the question whether the ancient people had any concept of Heaven before the Vedic age. Since the *Ṛgveda* is the oldest literary documents, which contains such concepts if can give some information in this regard. No literary document is available in India which dates earlier than *Ṛgveda*. We can assume only that in the *Harappā* civilization there is a probability of the concept of other world after death, because according to some Anthropologists and historians every primitive society had some concept about the life after death and some sort of other world *paraloka*.

Now a question arises as to what was the concept of the other world in the Vedic age, and how that concept gradually developed through ages. The answer to these questions requires a thorough analysis of the historical development of the concept of Heaven.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

V-165

Arṇava in the Ṛgvedasaṃhita

PROF. RANVIR SINGH, KURUKSHETRA

All the declensions of nominal derivative stem *arṇava*, which occur in the text of *Ṛgvedasaṁhita (ṚV.)*, have been treated in this research paper. *Arṇavaḥ* occurs in seven mantras; *arṇavam* in thirteen; *arṇavān, arṇavaiḥ* and *arṇavāt* in one mantra each and *arṇavasya* in two mantras.

Arṇava can be derived from ṛ of the first conjugation (*bhvādi*) by adding *nuṭ* after the suffix asun (*udake nut ca- Uṇādi.*- IV. 196) and thus after *arṇas* suffix *va* is added and *s* is deleated (*arṇaso lopaśca- Vārttika* on Pāṇi.V.2. 109). *Nighantu* has read *arṇah* in the name of water (*udakanāma*-I.12.1) and river (*nadināma*-I.13.20).

The stem *arnava* has been used in *ṚV.* as an adjective as well as a nominative. Sāyaṇa has explained it a 'possessing water'; 'bestower of water'; 'residing grounds of wealth'; 'ocean'; 'cloud'; 'great like ocean'; 'place of water'; 'island of a ocean' etc. Dayānanda explains *arṇava* as 'present like ocean'; 'ocean of the earth'; 'possessing heavy water'; 'sky'; 'river' etc. The European Indologists explain it as 'billowy'; 'agitated'; 'billowy flood'; 'foaming sea'; 'restless'; 'wave' etc.

This paper discusses thoroughly the treatment of *arnava* done by vedic scholars ancient as well as modern.

❖

V-166

Animism and Animitism as reflected in the Rigveda

GAYATRI DEVI BORTHAKUR

The worship of natural objects and activities is the paradigm beneath the *Vedic* beliefs. In the primitive age, human life was attributed to the various forces and phenomenon of nature by which man is controlled. **Animism** and **Animitism** are the beliefs related to the supernatural power or natural phenomenon.

Animism in the ideology of imposing sprits working behind natural phenomena and natural objects. At length, in **Animism** every individual is considered as beings with a life sprit or a phantom. The worship of natural gods might have sprung up from the regards paid to the soul. Such an origin has been suggested in the ***Rigveda*** in the character of

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Rudra. The *Marutas* and of *Yama* and so as of the *Gandharva, Rakhasas, Dashyu, Asur* and *pisaca* to name a few.

Animitism in its primitive form attributes life to natural phenomen and natural objects. **Animitism** is of basic importance referring to supernatural power. The tutelary gods related to nature in the ***Rigveda*** are *Vastopatik, Kshetrasyapati, Śun-sira, Oshadhi, Vanaspati* are also personified as animistic power, **Animitism** is also reflected in the characters of *Dhāṭṛ, Tvaṣṭṛ, Saviṭṛ* in the *Rigveda.*

Animism and **Animitism** are the two basic aspects of Rigveda that demand serious discussions.

❖

V-167

Paippalādavivāhādipaddhatiḥ

MS. SHILPA SUMANT, PUNE

Paippalādavivāhādipaddhatiḥ is a prayoga text, a guideline book for Gṛhya rituals. It belongs to the Atharvaveda Paippalāda recension. The tradition is still a prominent tradition in various parts of Orissa and the priests are following this riual book, Paippalādavivāhādipaddhatiḥ gives the information about the Gṛhya Saṃskāras starting from marriage. The present text is made available in printed form by Shri Umakant Panda of Balasore, Orissa.

The present paper intends to present the salient features especially of the marriage ritual prevailing in the Paippalāda tradition of Orissa and comparing it with the Śaunaka tradition wherever necessary.

❖

V-168

Rigvedic Society : An ideal for Social Solidarity

SAILENDRA KUMAR MAHANANDA, SAMBALPUR

This is a summary of my assessment on Rigvedic Society and its various aspects contributing to Social Solidarity. If we look into the vast panorama of human civilizations, the Rigvedic Aryans had the most enlightened and advanced civilization with greater human equality and simplicity. No civilization after that had much to say for peace,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

harmony and social solidarity. Society after Rigvedic age had much progressed but it suffered from many pitfalls. Social inequality, untouchability and religious dogmas had crept into the social fabric. Man became so pre-occupied with the vague and orthodox ideas that Indian society lost its inner vitality. Indian society was gradually parcelled out like watertight compartments. The caste system with its strictly hereditary and rigid exclusiveness did not exist in vedic society; it was later development when the Vedic Aryan had settled in the middle country.

❖

V-169

The Brotherless Maidens (AV I.17.1)

S.S. BAHULKAR, PUNE

The hymn Atharvaveda (AV) I. 17 is employed in a remedial rite for stopping the flow of blood. In the very first verse, the veins in the body from which the blood flows are compared with the maidens clothed in red garments, like sisters without a brother and requested to 'stand still, bereft of strength'. The verse also occurs in the Paippalāda Saṁhitā of the Atharvaveda in its Kashmirian as well as Orissan transmissions (XIX. 4.15) and in the Nirukta (III.4) with certain variants. Durga, the commentator of the Nirukta, reckons the verse as one belonging to the Atharvans. He further mentions that the blood vessels shall stand still, like brotherless maidens that remain (unmarried) in the house of their parents for the sake of continuation of the family, discharging the duty of performing the ancestral rites. The present paper studies variants of the verse in question and attempts to throw light on the ancient custom of preventing brotherless girls from getting married.

❖

V-170

Yupa and it's Reference

SHITAL J. DESHPANDE, PUNE

In animal sacrifices and soma sacrifices the Yūpa is an essential thing according to the tradition.

In this paper I am trying to discuss the following concepts regarding Yūpa :

1. How the concept of yūpa occurs
2. Etymology

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

3. Different measurements of yūpa
4. Yūpa from particular trees
5. Sybmolism of Yūpa
6. Observations

❖

V-171

Influence of Mantras

VINAYAK A. WALANKAR, PUNE

In our life we enchant the mantras to achieve our goal. For that we do worship of God but sometimes we are not aware of reasons behind it.

In this paper I am going to discuss following points about Mantras.

1. What is mantra
2. Why to enchant the mantra
3. What is the scientific base of the mantra

❖

V-172

'Brahmagavi' in Vedas and the Importance of Cow in Later Periods

RADHIKA S. CHANDRACHOOD, PUNE

In Atharva Veda we find the sūktas viz. 'Brahmagavi' (5.18, 5.19). In these sūktas the importance of Brahman and his cow is mentioned.

In later periods we can see that, very much importance is given to the cow, and there are so many reasons for that. In this paper I am trying to observe that, whether there is any connection between Brahmagavi sūktas and the importance of cow in later periods.

❖

V-173

The Empowerment of Women in the Upaniṣads

DR. (MRS.) INDIRA SAIKIA BORA, ASSAM

Man and woman are supplementary to each other and this is the law of Nature that perfection in life may be had of only when there, exists a positive attitude between the two.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The mutual relation between man and woman denotes the standard of leaving of people in a society. It becomes, therefore, apparent that the empowerment of women can be one of the judging factors of the quality of a society.

The Upanisads are also called *Vedanta* which literally means 'The end of the Vedas' (*Vedasya antah*). The Upanisads are considered as the end of the Vedas because the Upanisads from the concluding part of the Vedic literatue. The main aim of the Upanisads is to record the highest knowledge of the Ultimate Reality as revealed to the Vedic sages.

In the present subject we can gather some ideas about the Upanisadic women especially about their educational empowerment and status from some of the stories related in the Upanisads.

❖

V-174

Educaiton System in the Vedic Age and its Later Development

PROF. PIYUSHKANTI ACHARYA, ASSAM

Is it not a glaring fact that modern education aims mainly at sharpening the intellect but it has no eye upon development of the heart? Today, we complain of students 'indiscipline, disobedience but how can we expect the desired result when under the present set-up there is hardly any provision for the culture of the heart-aspect of the students?

Our ancients were fully aware of he real needs of the students. In the Vedic age there was the 'Gurukula' system in the secular aspect. Narada, the celebrated devotee is said to have the knowledge of sixty-four kinds of arts and eighteen branches of sciences. This proves the vastness and varieties of Indian's ancient knowledge. Gandhiji, Dr. Radhakrishna, Bankimchandra, Vidyasagar, Rabindranath etc. are the follower of the vedic system and they ae the reformers of the modern age. It is my opinion, our educational authorities should be given full freedom and autonomy to work out their own cherished end considered today.

❖

V-17

Upaniṣadic Concept of Indra

DR. MADHU BALE GHOY, HOSHIARPUR

In Vedic Saṃhitās and Brāhmaṇic Literature, Indra has been presented as the king of gods. The maximum number of hymns has been dedicated to the attributes and feats of

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Indra. Though in vedic saṃhitās, Indra's personality has been depicted at large, but in Upaniṣads, we witness, Indra rising to the spiritual and philosophical heights with the help of symbolic significance; but as an individual, Indra loses his royal character, and is simply an instrument in the hands of the Supreme Power. In Upaniṣads, we come across with the references of Indra occuring in Bṛhadāraṇyaka, Kauṣītakī, Kena, Jaiminīya, Aitereya, Chhāndoyya and Maitrāyaṇī Upaniṣads. The word Indra also occurs in composition as Indra-loka, Indra-senā, Indra-nagara Indra-jāla, etc. The relation of Indra + Indriya also indicates symbolic relevance. Indra is equated with Vāk, Udgītha, Satyam, Āditya, Vidyut etc. There are places in Upaniṣads, where etymologies of Indra have been presented. In this brief investigation, the evolution and growth of the concept of Indra from Saṃhitas to Upaniṣads has been comparatively and critically dealt with.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Section - 2

IRANIAN STUDIES

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Section - 2

IRANIAN STUDIES

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IR-1

सभी धर्मों में वैदिक : इला

डॉ. असहाब अली, गोरखपुर

आज के भौतिकवादी युग के प्रतिकूल प्राचीन विश्व में धर्म का वर्चस्व अपेक्षया अधिक था। प्रत्यक्ष प्रमाणमात्र के आधार पर सांसारिक विषय-वासनाओं में रमण करना और इसे ही अपने जीवन का चरम लक्ष्य स्वीकार करने वाले चार्वाकवादियों की तुलना में सात्त्विक जीवन को श्रेयस्कर समझने वालों तथा लौकिक जीवन के साथ ही पारलौकिक जीवन को अभीप्सित रखने वालों का ही महत्त्वपूर्ण स्थान था। अतः साहित्य समाज का दर्पण होता है, इसलिए सामाजिक मान्यताएँ (धार्मिक एवं अधर्मिक) उसमें स्पष्ट प्रतिबिम्बित होती है। इसलिए धर्मविमुख आधुनिक भौतिकवादी युग के साहित्य के तुलना में प्राचीन साहित्य धर्म को ही अधिक प्रश्रय देते है। धर्म मानव की अपरिहार्य आवश्यकता है। इसकी प्राचीनता मानव की उत्पत्ति के साथ ही जुड़ा है। इसलिए धर्म मानव के लिए है और मानव धर्म क लिए। प्राचीन काल से ही मानव किसी न किसी प्रकार के धर्म से जुड़ा रहा है। भारतवर्ष ही नहीं, अपितु संसार के सभी देशों एवं जातियों में धार्मिक मान्यताएँ रही हैं। धार्मिक क्रियाकलाप के मूल में देवताओं की ही मान्यता सर्वत्र पायी जाती है। यह अवश्य है कि कहीं एकेश्वरवादी, कहीं द्विदेववादी एवं कहीं बहुदेववादी व्यवस्थाएँ प्रचलित है।

यहूदियों एवं अरबों के समवेत पूर्वज हजरत अलै. (अबराम) बेबीलोनिया के उर नगर के निवासी थे। इन्होंने ईल् के ही सर्वोच्च देवता के रूप में प्रतिष्ठापित किया। इस देवता का भावात्मक स्वरूप भी स्थापना में सहायक हुआ। इब्राहीम अलै. के एकेश्वरवादी व्यवस्था में ईल (इलह) ही एकमात्र देवता माना गया। इसके पूजकत्व का प्रमाण उनके पुत्र इस्माईल के नाम से प्रकट है, जिसका इबरानी (हिब्रू) रूपान्तर है—शुभा-ईल्। इसका अर्थ है—ईल् (ईश्वर) ने (मेरी प्रार्थना) सुन लिया। एक नेक पुत्र के लिए हजरत इब्राहिम अलै. ने अपने खुदा (ईल्) से प्रार्थना की थी। पुत्रोत्पत्ति के पश्चात् उन्होंने उसका नाम ही रख दिया—शुभा ईल् (इस्माइल)। यही इल् यहूदियों के धर्मशास्त्र में सर्वोच्च देवता के रूप में प्रतिष्ठित है, जिसको इलोहिम के नाम से अभिप्रेत करते हैं। फिनिशियो में भी यह देवता एल् के रूप में सर्वत्र पूज्य रहा है। हजरत इब्राहीम अले. ने अपने पुत्र हजरत इस्माईल अलै. को मक्का नामक स्थान पर छोड़ा बाद में वहाँ एक आबादी हो गयी, जहाँ पिता-पुत्र ने एकेश्वरवादी व्यवस्था के अधीन लोगों को मूर्तिपूजा से विरत किया। यहाँ भी वही सर्वोच्च देवता ईल् (इलह्) ही प्रतिष्ठित हुआ। अरबी भाषा में इलह् शब्द के पूर्व अल् को जोड़ कर अल्+इलह् =अल्लाह शब्द की निष्पत्ति हुई, जिसके मूल में इलह् (इलः) ही है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IR-2

Into-Iranian Goddesses : Sinīvālī and Ardokṣho

DR. VIPULA DUBEY, GORAKHPUR

Sinīvānī, the Vedic goddess of the first new moonday is mentioned in *Rigveda*, the *Atharvaveda* and later Vedic texts. The word Sinīvālī is a compoun of which the first part *sini* has been interpreted as a lady having riches (*Annavati*), since *Sinam* means wealth or property-*Sinam-annam bhavati*. The word in the sense of the property occurs in the Rigveda-Sumangalam sinavad=astu satam, 'may my share be auspicious and full of riches'. Yaska in his nirvachanas (explanation), observes-Sinati badhnati bhutani–'One who binds creatures', Here, ostensibly an attempt is made to derive 'Sina' from Sinati–'one who binds'. This, however is not grammatically tenable, but at the same time, it gives an inking about the nature of *Sina*, the property. The root Si of which Sinati is the form of present tense, third person, singular number, variously occurs in the Rigveda.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Section - 3

CLASSICAL SANSKRIT

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-1

जयोदयमहाकाव्ये पुरुषार्थचतुष्टयम्

डॉ. वाई.पी. दूबे, कौशाम्बी

षोडशसंस्कारैः संस्क्रियमाणमानवजीवनस्य लक्ष्यं नाम किमिति जिज्ञासायां पुरुषार्थचतुष्टयस्य भावना प्रादुर्भूता जाता। शरीरस्थजीवात्मा 'पुरुषः' इति कथ्यते। पुरि देहे शेते इति पुरुषः। पुरुषैरर्थ्यते प्रार्थ्यते इति पुरुषार्थः। पुरुषस्य चत्वारः प्रमुखविभागाः सन्ति नाम शरीरं, मनःबुद्धिः भूतात्मा च। तेषां परिशुद्धिहेतवे मनुस्मृतौ कथितमस्ति।

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति॥

पदार्थचतुष्टयस्य महत्यावश्यकतास्ति। ते च वर्तन्ते धर्मः अर्थः कामः मोक्ष इति। चतुर्षु पुरुषार्थपदवाच्येषु वर्गेषु विभाजिताः सन्ति। आधुनिके मनोवैज्ञानिकयुगे स्वीकृताः मानवानां सप्तैषणाः— जिजीविषा, रतिः मानम्, ज्ञानम्, न्यायः, धर्मः, परलोकश्च। जीवनस्याभिलाषः अर्थे, स्त्रीपुत्रादीनां भावः कामे, ज्ञानन्याययोः धर्मे, परलोकस्याभिलाषः मोक्षे, समाहितो भवति। इत्थं पुरुषार्थः केवलं चत्वार एव, एषां पुरुषार्थानां प्राधान्याप्राधान्यदृष्ट्या केचन कमपि एके पुरुषार्थं प्रधानं मन्यन्ते। केचन कमप्यपरं परुषार्थं मन्यन्ते।

वस्तुतस्तु, न केवलं भारतीयसनातनसंस्कृतावपि तु सामान्यतया निवृत्तिप्रधानजैनदर्शनेऽपि मोक्ष एव परमपुरुषार्थः अन्ये च पुरुषार्थाः गौणाः सन्ति। धर्मपुरुषार्थस्य स्वीकृतिः मोक्षानुकूला भवति। कामार्थयोः पुरुषार्थयोः नास्ति किमपि स्थानम्। जैनविचारकानुसारैः अर्थः भवत्यनर्थजनकः सर्वाः कामभावनाः दुःखात्मिकाः भवन्ति; परन्तु विचारोऽयमेकाङ्गी। किमपि जिनवचनं एर्कान्तमथवा निरपेक्षयुक्तं नास्ति। सदैव सर्वेभ्यः मानवेभ्यः स्वपुरुषार्थधनोपार्जनाय प्रेरणाः प्रदत्ताः। भवतु नाम वैचारिकविभिन्नता, परन्त्वस्माकं सर्वेषु जैनसंस्कृतमहाकाव्येषु षोडशसंस्कारः, आश्रमचतुष्टयम्, वर्णचतुष्टयम्, पुरुषार्थचतुष्टयमितिसामाजिक-सांस्कृतिकसंरचनात्मकरूपमधिकृत्य बहुशः सार्थकं वर्णनं वर्णितं वर्तते नाम जैनसंस्कृतमहाकविभिः। शोधपत्रेऽस्मिन् केवलं वाणीभूषणभूरामलशास्त्रिविरचते जयोदयमहाकाव्ये पुरुषार्थचतुष्टयमधिकृत्य विचार्यते।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-2

सुलोचनामाधवचम्पूकाव्ये बच्चाझामहोदयानां नव्या दार्शनिकदृष्टिः

डॉ. लक्ष्मीनाथझाः, दरभंगा

यदत्र सुलोचनामाधवचम्पूकाव्ये समेषां न्याय-वैशेषिकसांख्ययोगवेदान्तादिदर्शनानां भारतीयानां बौद्धजैनप्रभृतिदार्शनिकानाञ्च मतानि च परिशीलयता आचार्यप्रवरेण पूज्यपादेन बच्चाझामहोदयेन शिवशक्ति-स्वरूपात्मकं निखिलं जगदिति स्वानुभव-स्वाध्यायचिन्तनादिदिशा स्पष्टीकृतं विद्यते। एकस्यैव परमात्मनः शिवस्य विविधानि रूपाणि लोकाराधनदृष्ट्या सुप्रतीतानि भवन्ति। शक्त्या रहितः शिवः शव इति कथ्यते। अत एव सांसारिकजनानाम्, अलौकिकानां परमपुरुषार्थसाधकानामपि कृते शिव एव सर्वप्रधानो देवः। काव्येऽस्मिन् यन्नामकरणं कृतं महर्षिप्रवरेण झामहोदयेन तत्रापि गूढ़ार्थरहस्यं किञ्चित्रिहितमस्ति मया स्वतन्त्रोद्भावनया परिकल्प्यते। सुलोचनेति नामकरणस्यौचित्यं सिद्धान्तव्यवहारोभयदिशा सङ्गच्छते। सू-उपसर्गपूर्वकात् लोचृदर्शने इति धातोः ल्युट्प्रत्ययान्तः स्त्रीप्रत्ययान्तः सुलोचना इति सङ्गच्छते। अत्र लौकिकदृष्ट्या सम्यग् दृश्यते। अथ च पारलौकिकदृष्ट्या स्वानुभवसंस्काराध्यात्मदृष्ट्या वा यद् दृश्यते सा सुलोचनेतिपदं जगन्मातुः शक्तेः प्रतीकम्। मायाः धवः माधवः इति व्युत्पत्त्या माधवशब्दः निष्पद्यते। तद्दिशापि समग्रैश्वर्यस्य ज्ञानादेश्च पतिः माधवः शिवस्वरूप एवेति। दार्शनिकदृष्ट्या माधवस्य शिवस्वरूपत्वं सुलोचनायाश्च मातृस्वरूपत्वं प्रतिपद्यते। उभयोश्च समवायेन तादात्म्यतया वा जीवस्य जगतश्च सर्वविधं समीप्सितं शिवं साधयितुं शक्यत इति।

❖

CS-3

संस्कृतसाहित्ये गङ्गा

प्रकाशचन्द्रपन्तः

'भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतं संस्कृतिस्तथा' इति यथा सर्वैरपि संस्कृतज्ञैः मनीषिभिः मुहुर्मुहुः गीयते कथ्यते वा तथैव इदमपि तारस्वरेण वक्तुं शक्यते यद् यावत् नगाधिराजः समुन्नतः तिष्ठति तथा च यावत् प्रवहति भागीरथी तावत् भारतदेशस्य कीर्तिचन्द्रिकां न कश्चिदपि आविलयितुं क्षमः।

आदिकविः वाल्मीकिः त्रैलोक्यवन्दनीयायाः मन्दाकिन्याः गौरवं गायति। द्रष्टव्यं, (रामायणम् 43/29)

गङ्गायाः माहात्म्यं को न जानाति अस्यां स्नानेन, जलपानेन महापातकवृन्दान्यपि क्षयं यान्ति यथा उक्तमस्ति केनचित् कविना—

स्नानात्पानाच्च जाह्नव्यां पितृणां तर्पणात्तथा।
महापातकवृन्दानि क्षयं यान्ति दिने दिने॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदनन्तरं पण्डितराजः जगन्नाथः 'गङ्गालहरी'काव्यस्य आरम्भं कुर्वन् गङ्गां वन्दमानः कथयति—द्रष्टव्यं (गङ्गा लहरी-2, पं. जगन्नाथ)

इत्थमस्मिन् शोधपत्रेसंस्कृतसाहित्ये भगवत्याः भागीरथ्याः यच्चारुचित्रणमस्ति तदेव सहृदयानां संस्कृतमनीषिणां पुरस्तात् समासेन प्रस्तोतुकामोऽहं सर्वान् सुरभारतीसमुपासनारतान् प्रणमामि।

❖

CS-4

कालिदासकृतिषु वनस्पतिविषयको दृष्टिकोण

डॉ. विश्रामतिवारी, दरभंगा

शिवार्चको महाकविकालिदासः पञ्चभूतात्मिकां प्रकृतिमेव स्वकीयेष्टदेवतां सम्मनुत इति तदशेषकृतिपरिशीलनेन स्पष्टं भवति। अयं ह्यनन्यो भारतीयसंस्कृतेः प्रतिष्ठापकः समुद्गायकश्चेति सर्वैरनुमोदितमस्ति। यद्यपि एतद्विषयका अनेके निबन्धा उपन्यस्तास्तथाप्यधुना बहवः प्रसङ्गास्तत्कृतिषु पुनः सम्यक्परिशीलनापेक्षां दधति। अधुनातनपर्यावरणविकृतिबिभीषिकायां समुपस्थितायां संस्कृतसाहित्यस्य, तत्रापि कालिदासीयकृतीनामध्ययनम् अपरिहार्यतां गतमस्ति। देवदारुवृक्षस्य समुद्वेजकः सद्यो हन्तव्य इति शिवनिर्देश-मादाय तद्रक्षकत्वेन सिंहः प्रतिनियुक्त आसीत्। 'पुत्रीकृतोऽसौ वृषभध्वजेन' इत्यादिकस्यांशस्य साम्प्रतिके समाजे पुनर्व्याख्याऽपेक्ष्यते। उपद्रवी वन्यो गजोऽप्यवध्यः' इत्यजयात्राप्रसङ्गात् परिज्ञायते। वृक्षादिकस्य परिरोपणे संरक्षणे च तुरीयाश्रमीयाः तपस्विनश्च विशेषेणाधिकृता आसन्निति ज्ञाप्यते। प्रकृतिवनदेव्येव शाकुन्तले शकुन्तलारूपमाधृत्य निवसति स्मेति बहुप्रकारैर्ज्ञातव्यमस्ति। 'पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशस्तु' जगतो मूलाधारा एव सन्ति, येषां समुद्वेजने व्यभिचरणे च नास्ति जगतो हितमिति। अत उपर्युक्तविषयमाधृत्य निबन्धोपस्थापनं रुचिकरं स्यादिति चिरादनुभवामि, विश्वसिमि चेदं विद्वन्मनोहारि भविष्यतीति शम्।

❖

CS-5

श्रीजगन्नाथमुपजीव्योत्कलीयकवीनां संस्कृतकाव्यानि, एको दृष्टिपातः

डॉ. व्रजकिशोरनायकः, पुरी

विपुलं खलु संस्कृतकाव्यवाङ्मयम्। विपुलेऽस्मिन् संस्कृतकाव्यवाङ्मये श्रीजगन्नाथदेववर्णनविषयकाणि काव्यरत्नानि सामाजिकानां समक्षमनितरसाधारणानि परमरमणीयानि प्रतीयन्ते। जगतां नाथः श्रीजगन्नाथः कविवर्णनाविषयीभूतोऽस्ति। किं भूतस्तत्र च विशेषत उत्कलीयकवीनां काव्यचिन्तनेनासौ कथमस्ति चित्रित-स्तदत्रातिसंक्षिप्ततया समुपस्थापनं विद्वज्जनमनस्तोषाय मे समीहा वेदितव्या। सम्प्रति श्रीजगन्नाथचेतना विश्वस्मिन्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वे सर्वत्र राराजतेतरामिति महते प्रमोदाय प्रकल्पते। सर्वत्र श्रीजगन्नाथदेवस्य घोषयात्रोत्सवः सानन्दं साटोपञ्च परिलाप्यते जनैर्नैकानि जगन्नाथमन्दिराणि सुरम्याणि च निर्मीयन्त इति जगन्नाथरतिर्महती प्रकटिता भवति।

बहुप्राचीनकालादारभ्य उत्कलदेशेऽस्मिन् देशस्यास्य प्रमुखदेवताहेतोः कवय एतद्देशीयाः श्रीजगन्नाथदेवमुपजीव्य नैकानि स्वीयकाव्यरत्नानि निर्माय गीर्वाणवाणीसाहित्यभाण्डागारं सुसमृद्धं व्यदधुः। हा हन्त! सर्वाणि कविविरचितानि तानि काव्यरत्नानि श्रीजगन्नाथदेवविषयकाणि साम्प्रतं नैवोपलभ्यन्ते, नैकानि काव्यानि महतः कालस्य करालगर्भे विलुप्तप्रायाणि।

साम्प्रतं समुपलब्धेषु श्रीजगन्नाथविषयकसंस्कृतकाव्येषु चक्रपाणिपट्टनायकस्य गुण्डिचाचम्पूः कविराजब्रह्मणो भगवद्रथस्य गुण्डिचोत्सववर्णनम्, कस्यचित् पतितस्य कवेः पतितपावनाष्टकम्, नित्यानन्दकविकृतं जगन्नाथशतकम् सदाशिव-उद्गातुरभिनवजगन्नाथप्रस्तावो, महामहोपाध्यायजगन्नाथमिश्रस्य नवकलेश्वरषडषीतिः वेदाध्यापकपण्डितरामचन्द्रमिश्रस्य नीलाद्रिमहोदयः राष्ट्रपतिसम्मानितपण्डितकुलमणिमिश्रस्य पुरुषोत्तमाष्टकम्, जगन्नाथत्रोटकम्, जगन्नाथषट्पदी, सुदर्शनाचार्यस्य जगन्नाथशतकञ्च सन्ति प्रणिधानयोग्यानि।

एतद्व्यं मुक्तककाव्यानि श्रीजगन्नाथदेवविषयकाणि सन्ति संख्यातुमशक्यानि। मुक्तककाव्यकारेषु पण्डितानन्दमिश्र, पण्डितवासुदेवमिश्रः, पण्डितभागवतप्रसादत्रिपाठी, पण्डितवैकुण्ठविहारिनन्दशर्मा प्रमुखाः सन्ति स्मरणयोग्याः।

किञ्च गङ्गवंशचरिताभिधानेचम्पूकाव्ये वासुदेवसोमयाजिना भक्तिवैभवनाटके कविडिम्बिमेन जयदेवाचार्येण सिद्धान्तदर्पणे सामन्तचन्द्रशेखरेण च जगन्नाथमुपजीव्य लिखिताः श्लोकाः सन्ति सहृदयहृदयावर्जकाः।

साम्प्रतिके समये श्रीजगन्नाथदेवमुपजीव्य काव्यं विरचयत्सु कविषु पण्डितवैकुण्ठविहारिनन्द-पण्डित-सुदर्शनाचार्य-एस. सुन्दरराज-गौरीकुमारब्रह्म-पण्डितगोन्दिचन्द्रमिश्रप्रमुखाः सन्ति पाठकानां सुपरिचिताः। एभिः श्रीजगन्नाथमुपजीव्य लिखितानि काव्यानि सन्ति प्रकाशितानि।

सर्वेषां कविवराणां काव्येषु श्रीजगन्नाथस्वरूप-तन्मूर्तिविशेषता मूर्तिनिर्माणैहित्ह्य-नौकायात्रा विशेषतो गुण्डियायात्रा तत्रेत्रोत्सववर्णन-नवयौवनवर्णन-नवकलेवरवर्णन-तत्पतितपावनपताकामहिमपरब्रह्मत्वप्रतिपादनादीनि वर्णनानि सहृदयमानसमान्दोलयन्ति। अन्ततो गत्वा श्रीजगन्नाथः परमपुरुषार्थमोक्षस्य प्रदातास्तीति मत्वा तत्प्राप्तये सर्वे च कवयो व्याकुलिता दृश्यन्त इति दिक्।

❖

CS-6

कुमारसम्भवे आतिथ्यम्

पं. सञ्जयकुमारपण्डा, बेलासोर

भारतीयपरम्परायां आतिथ्यस्य महत्स्थानं वर्त्तते। देवपूजायामावाहन-संस्थापन-सन्निधान-सरलीकरण-धेनुमुद्रा-महामुद्रादयः दशसंख्यकाः उपचाराः विद्यन्ते। तथैव सनातनसंस्कृतौ स्वागत-आसन-कुशलजिज्ञासा-अर्घ्य-भोजन-अनुसरण-प्रभृतयः अतिथिसत्कारविशेषाः दृश्यन्ते। भारतीयसंस्कृतेः महान् पूजकः कालिदासः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वकृतिषु तेषां तेषां वैशिष्ट्यानां सविस्तरवर्णनं विदधाति। तेषु कुमारसम्भवमहाकाव्यस्य आतिथ्यवर्णनं सर्वान् अतिशेते। प्रबन्धेऽस्मिन् तेषां समीक्षणात्मकं विवेचनं विदुषां विनोदनाय प्रस्तूयते।

❖

CS-7

रसकल्पद्रुमे विप्रलम्भः

डॉ. श्रीमती कादम्बिनी दाशः, भुवनेश्वरः

रसे आद्यरसः शृङ्गारः। तत्र शृङ्गारपोषकतया विप्रलम्भस्य प्राधान्यम्। प्राचीनार्वाचीनग्रन्थेषु विप्रलम्भस्य स्वरूप-प्रकारभेदविषये वर्णनं दृश्यते। अष्टादशशताब्द्याः उत्कलीयालङ्कारिकः जगन्नाथमिश्रः रसकल्पद्रुमनामके विशालग्रन्थे रसतत्त्वस्य पुङ्खानुपुङ्खं विवेचनं करोति। एतादृशो ग्रन्थः कलेवरदृष्ट्या विषयपरिवेषणदृष्ट्या चापूर्वः। ग्रन्थेऽस्मिन् विप्रलम्भस्य लक्षणमित्थं वर्ण्यते।

यदा रतिः सप्रकर्षाप्यभीष्टं नाधिगच्छति।
विप्रलम्भः स विज्ञेयः इत्थं स च चतुर्विधः।
पूर्वानुरागो मानाख्यः प्रवासः करुणाभिधः। (रसकल्पद्रुमे, 2.5.2)

पूर्वानुरागभेदविषये वैमत्यं दृश्यते। अत्र प्राचीनार्वाचीनानामालङ्कारिकाणां भेदप्रदर्शनपूर्वकमेतादृशस्य भेदग्रहणस्य समन्वयविधायकत्वं लोकग्राह्यत्वं च प्रतिपादयितुमिष्यते। अत्र भेदचतुष्टयं विश्वनाथमतं पोषयति। काव्यप्रकाशकारः मम्मटः अभिलाष-विरहेर्ष्या-प्रवासशापहेतुकः पञ्चविधो विप्रलम्भ इति दर्शयति।

दशरूपके अयोगो विप्रयोगः सम्भोगश्चेति शृङ्गारस्य त्रिधा भेदो दृश्यते। सम्भोगात् प्राक् संयोगावस्थातः भिन्नत्त्वाद् अयोगस्य विप्रयोगे अन्तर्भावः कर्तुं शक्यते।

रसकल्पद्रुमे विप्रलम्भस्य वर्णनं सोदाहरणं विस्तृतमस्ति। वैष्णवालङ्कारशास्त्रे पूर्वरागस्य वर्णनं वैशिष्ट्यमावहति। अत्र पूर्वरागे नायिकाविषयकदशाविशेषे अभिलाषस्य ग्रहणं भवति। ऊढाया अनूढायाश्च दशा वर्णिताः। तथैव नायकस्य नायिकाविषयकः पूर्वरागोऽपि पृथक्तया वर्णितः। एवंविधं वर्णनं विरलम्। एतादृशस्य ग्रन्थस्य लोके शास्त्रे चोपयोगिता अस्तीति दर्शयितुं निबन्धोऽयं प्रस्तुतः।

❖

CS-8

सुस्थसमाजगठनस्य कृते कथासाहित्यम्

श्री लक्ष्मणचरनविश्वालः, बेलासोर

संस्कृतवाङ्मये कथाकाव्यस्य प्राचीनता परिलक्ष्यते। कथासाहित्यस्य विश्वसाहित्यं प्रति योगदानमविस्मरणीयम्। सम्पूर्णविश्वे एवंभूतो देशो नास्ति यत्र भारतवर्षोद्भवस्य कथासाहित्यस्य प्रभावो न

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पतितः। पञ्चतन्त्रादिविविधकृतयः विभिन्नदेशेषु भाषान्तरं प्राप्ताः सन्ति। भारतादेव कथाकाव्यस्य गल्पसाहित्यस्य वा मूलतया आविर्भावो जातः। यो मनुष्यः कस्माच्चित् कारणात् वेदस्मृतिपुराणादीनां पठनपाठनार्थं समर्थो नाभूत्, तस्य कृते नीतिधर्ममूलस्य कथासाहित्यस्य विकासो जातः।

ऋग्वेदे संवादसूक्तस्योपादेयता विद्वद्भिरनुभूयते। एतदेव कथासाहित्यस्य मूलनिदर्शनम्। अत्र चमत्कारकथाः संयोजिताः सन्ति। एतद् विहाय स्मृतिमूलकेषु सामान्यसूक्तेषु अपि विभिन्नदेवानां विषये कमनीयानि मनोरञ्जकानि शिक्षाप्रदानि समाख्यानानि च समुपलब्धानि भवन्ति। अतएव वैदिकसाहित्यान्तर्गतेषु ब्राह्मणोपनिषत्स्वपि सविस्तरं संयोजितानां कथानां समुपलब्धिर्जायते।

भारतीयसाहित्ये प्राचीनकाले कथाचक्रद्वयं समुपलब्धं भवति। बृहत्कथा पञ्चतन्त्रं च। संस्कृतलोककथासु बृहत्कथायाः यथा विशालता तथा सर्वश्रेष्ठतापि अनुभूयते। सोमदेवः कथासरित्सागरे भारतीयसमाजस्य सम्पूर्णचित्रणं कृतवान्। बृहत्कथां पञ्चतन्त्रं च विहाय शुकसप्ततिः, सिंहासनद्वात्रिंशका, वेतालपञ्चविंशतिश्चेत्यादीनां मूल्यबोधता अपि मानवस्य कृते महत्त्वपूर्णा अस्ति। सर्वतो दृष्ट्या सुस्थसमाजगठनार्थं कथासाहित्ये अन्तर्निहितानि विभिन्नतत्त्वानि काले काले मुख्योपादेयानि सन्ति।

अन्ततोगत्वा प्रस्तोष्यमाणः विषयः सामूहिकालोचनार्थमपेक्षणीयः, तत्र निर्यासश्च सांप्रतिकसमाजस्य आवश्यकतानुसारं ग्रहणीयः।

❖

CS-9

कालिदाससाहित्ये 'समवेदना'

निरञ्जनदासः, बेलासोर

भारतीयसंस्कृतेः प्रमुखवैशिष्ट्येषु संवेदना अन्यतमा। परस्य दुःखेषु दुःखप्रकाशनन्तु संवेदना इति कथ्यते। क्रौञ्चपक्षिणः चरमदुर्दशां लक्षीकृत्य महाकवेः वाल्मीकेः मुखारविन्दात् सहसैव संवेदनापरिपूर्णा वाणी विनिर्गता। परवर्त्तिनि काले बहवः कवयः स्वस्वकृतिषु संवेदनां प्रमुखविभावत्वेन प्रकाशितवन्तः। तेषु महाकवेः कालिदासस्य स्थानं स्वतन्त्रम्। कालिदासस्य साहित्ये 'संवेदना' यादृशी मर्मस्पर्शिनी तादृशी रसानुकारिणी च। प्रस्तुतप्रबन्धे एतेषां समीक्षात्मकमालोचनं करिष्यते।

❖

CS-10

ट्र्याजिक्नायकसमुद्भासितमूरुभङ्गम्

डॉ. पूरबी घोष

अन्तर्गूढ़कारुण्यस्य उद्भास अन्येष्वपि दृश्यकाव्येषु विद्यते एव; परन्तु ट्र्याजेडिलक्षणाक्रान्तमीदृङ्नाटकं संस्कृते साहित्ये 'न भूतो न भविष्यति'।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुरुक्षेत्रस्याहवे रणनीतिमुल्लङ्घ्य धृतराष्ट्रतनयस्योरुद्वयं भग्नीकृतं भीमसेनेन। महाभारतवृत्तान्त-मिममवलम्ब्यानुपममूरुभङ्गं विरचितं भासकविना।

नाटकेऽस्मिन् उपाख्यानगतमैक्यमस्ति, भयस्य करुणायाश्चोद्रेके यथोपयुक्ताः कार्यसमूहाश्च विद्यन्ते। नायकस्य विपर्ययः, उपाख्यानस्य पूर्णावयवता, परिशेषे श्रोतृचित्तस्य विमोक्षणयोग्यता इत्येतेषां गुणानां समवायेन ऊरुभङ्गं ट्र्याजिक्लक्षणाक्रान्तम्। तस्यैव चरित्रस्य वर्णने ट्र्याजेडि उद्भास्यते यः कश्चित् दुर्योगमापन्नः, स्वयं वा दुर्योगस्य कारणम्। अत्र कुरुराजस्य पतने यथा नियतिः तथैव तस्यात्मनः पापकार्यसमूहाश्च प्रभावशीलाः। तथापि मरणद्वारोपगतस्य कुरुराजस्य, हतभाग्यं पितरं प्रति ममत्वं, मातरं प्रति श्रद्धाबोधः, पुत्रं प्रत्यपारः स्नेहः, भार्यां प्रति चानुरागः यथा प्रकाशितस्तेन पाठकाः भवन्ति विमोहिताः। सर्वत्रैव पुनः करुणातरङ्गैः सह वीरभाव उपचीयते। परिणामे दुर्योधनः शान्तभावेन सज्ञानं यथा मरणमालिङ्गति, विश्वसाहित्ये तस्योपमा सुदुर्लभा। अत्रैव नाटकस्य ट्र्याजेडि, अत्रैव नाटकस्याभिनवत्वम्।

❖

CS-11

'संस्कृतवाङ्मये राष्ट्रियता विश्वबन्धुत्वभावना च'

डॉ. हरिपालद्विवेदी, देवरिया

संस्कृतभाषा देवभाषा, देववाणी, सुरभारती इत्यादिभिः नामभि निगद्यते। इयं भाषा केवलं देववाणी एव न अपितु एषा लोकवाणीति भूत्वा भारतीयबौद्धविकासस्य भारतीयदर्शनस्य धर्मस्य, अस्माकं पूज्यायाः संस्कृतेश्च प्राणभूता। संस्कृतवाङ्मये राष्ट्र-प्रेम, देशोन्नतिः राष्ट्रियसमुदयस्य भावना, संस्कृतभाषायाः निबद्धसाहित्येषु पूर्णरीत्या विकसिता वर्तते। संस्कृतसाहित्यमेव स्वतन्त्रभारतस्य साहित्यचिन्तनस्य च पूर्णाभिव्यक्तिसाधनं वर्तते। फलतः संस्कृतसाहित्ये राष्ट्रमङ्गलस्य भावना, एका राष्ट्रियपरिकल्पना, ज्ञानस्य बुद्धेश्च चरमोत्कर्षः प्राप्यते। वेदेषु इयं भावना प्रथमं विशेषतया प्राप्यते।

यदि समाजे, राष्ट्रे, विश्वस्मिन् सङ्घटनस्य भावना, साम्यवादिता च स्थापनीया स्यात्, तर्हि वेदानामुद्घोषणोपरि अस्माभिध्यानं दातव्यम्।

विष्णुपुराणे तु इदमपि कथितं वर्तते यद् देवा अपि अस्य भारतवर्षस्य प्रशंसां कुर्वन्ति। भारतवर्षे जन्मग्रहणं देवानामपि ईष्यार्या विषयो वर्तते। देवाः अपि अत्र आगन्तुमिच्छन्ति, स्पृहयन्ति च। संकल्पावसरे सर्वे समुपासकाः अखण्डभारतस्य भौगोलिकं चित्रं समुपस्थापयन्ति। स्नानावसरे यस्मिन् समये स्नानार्थी सप्तसिन्धूनां स्वकीये जले समावेशनाय प्रार्थनां करोति, तदा तस्य मानसपटले भारतवर्षस्य अखण्डरूपस्य चित्रं प्रस्तुतं भवति। तच्च यथा—

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥

अस्माकं पूजनपाठनादिके धार्मिकक्रियाकलापे ऐक्यभावनायाः अवलोकनं सदैव सर्वत्रैव च दृश्यते।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-12

संस्कृतस्य देववाणीत्वम्

डॉ. कौशलकिशोरश्रीवास्तवः, इलाहाबाद

संस्कृतभाषा देववाणीत्यभिधानेन प्रसिद्धिमुपगतास्ति लोके। भाषैषा किमर्थमभिधीयते देववाणीति। देवैः व्यवह्रियमाणत्वात् संस्कृतं देववाणीत्युच्यत इति धारणा प्रचलिता वर्तते। ब्रह्मविष्णुमहेश्वरादयः प्रमुखाः देवाः अपरे चान्ये देवाः संस्कृतेनैव संलपन्ति। तस्मादेव व्यवहारप्रयुक्ता एषा देववाणीति नाम्ना ख्याता भुवि।

संस्कृतस्य कृते देववाणीपदस्य प्रयोगोऽप्रचलित आसीत्पुरातनकाले। तदा पदेनानेन संस्कृतवाङ्मये न प्रयोगधरातलमलम्भि। अमरसिंहहलायुधमेदिनीकारयादवप्रकाशप्रभृतिभिर्कोशकारैः न कुत्रचिदपि 'देववाणी' पदमुल्लिखितम्। एवं स्पष्टमेतद्यत्प्रसिद्धाः कोशप्रणेतारः एतेन 'देववाणी'पदेनापरिचिताः आसन्। तेषां युगे 'देववाणी' पदं प्रयोगार्हतां नाभलत। विचारणीयमेतदधुना यत्संस्कृतस्य कृते प्रयुक्त एष देववाणीति शब्दः यदा सुविख्यातेष्वपि कोशेषु नोपलभ्यते तर्हि कुतश्चिदागतः प्रचलितश्चाभूत्। सर्वप्रथममाचार्येण दण्डिना पदस्यास्य प्रयोगः कृतः। एतदेव मूलं देववाणीपदप्रचारस्य। 'देव'पदं देवतार्थकं गृहीत्वा कालान्तरे 'देव'पदपर्यायभूतैरन्यैरविपदैः साकं वागर्थकान् शब्दान् संयोज्य देववाणी, सुरभारती, दैवीवाक्, गीर्वाणगीः इत्यादयः संस्कृतपर्यायवाचिनः शब्दाः विकासिताः अर्वाचीनैःकविभिराचार्यैश्च। वाचस्पत्यशब्दकल्पद्रुम-शब्दार्थचिन्तामणिप्रभृत्याधुनिकेषु कोशेषु तूपलभ्यते देववाणीपदम्।

देवशब्दस्य विदुषां कृते लाक्षणिकं प्रयोगमवलम्ब्य 'देवाः विद्वांसः' इति विद्वदर्थकः देवशब्दः इत्यभिदधति केचित्। तेषां मते विदुषां भाषात्वात् संस्कृतस्य देवभाषात्वं प्रचलितम्। किं देवतानां भाषात्वात्संस्कृतस्य देववाणीत्वम्, उत विदुषां भाषात्वात्, आहोस्विद् अन्येन केनचित्कारणेन संस्कृतं देववाणीत्यभिधीयते। एतेषां प्रचलितानां विविधमतानां सम्यग् विश्लेषणं कृत्वा संस्कृतस्य कृते देववाणीपदप्रयोगस्य युक्तियुक्तकारणाविष्करणे यत्नः कृतः शोधपत्रेऽस्मिन्।

❖

CS-13

बाणभट्टस्य चित्रणचातुरी

डॉ. सि. ललिता राणी, तिरुपति

संस्कृतसाहित्ये गद्यकाव्यानामस्ति। विलक्षणं स्थानम्। तत्र अत्युन्नतं स्थानमधितिष्ठति कविताकामिनीहृदयपञ्चबाणः भट्टबाणः।

मधुराविजयकाव्यनिर्माणेन लब्धप्रतिष्ठा आन्ध्रकवयित्री गङ्गादेवी बाणमेव प्रशंसितवती—

वाणीपाणिपरामृष्टवीणानिक्वणहारिणीम्।
भावयन्ति कथं वान्ये भट्टबाणस्य भारतीम्॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाकविनानेन हर्षचरितमिति आख्यायिका कादम्बरीति कथामयं गद्यकाव्यं पार्वतीपरिणयमिति नाटकञ्च प्रणीतमिति ज्ञायते। पक्षेऽस्मिन् बाणप्रणीतां कादम्बरीमेव प्रधानतया आधारीकृत्य चित्रणचातुरी संग्रहस्वरूपं सम्यक् उपदर्शयितुं प्रयत्नः क्रियते।

शोधप्रबन्धेऽस्मिन् बाणभट्टस्य देशकालादिकं निरूप्य तत्कृतिषु विद्यमानं वैशिष्ट्यं कीदृशमिति निरूपयितुं प्रयत्नः क्रियते।

❖

CS-14

महाकविकालिदासकृतमेघदूतम्

डॉ. चित्तरंजनदयालसिंहः, कुरुक्षेत्र

महाकविकालिदासस्य मेघदूतं मह्यमत्यन्तं रोचते। मेघदूतस्य रसानुभूतिः कमपि अलौकिकमद्भुतमनिर्वचनीयमानन्दमुत्पादयति। मेघदूतस्य गीतिकाव्यत्वं सरसत्वञ्च बलात् हरति सहृदयानां चेतांसि। नारीचेतनायाः बाह्यसौन्दर्यमन्तःसौन्दर्यञ्च संयोग-वियोगशृङ्गारवर्णने स्फुटतया प्रतिपादितम्। मेघदूते मेघ एव दूतरूपे यक्षस्य सन्देशम् अलकापुर्यां स्थितां यक्षिणीं प्रति प्रापयति। यक्षस्य प्रत्येकं कथनं सारगर्भितम्। हृदयग्राहिण्यः सूक्तयः पदे पदे समाकर्षयन्ति पुनः पुनः पठितुं तत्तत्पद्यम्। तस्मादेव उच्यते—'मेघे माघे गतं वयः' अमराभिः सूक्तिभिः जातमिदममरं मेघदूतम्। न जाने कति अनुवादाः कति भाषासु विहिताः। शोधपत्रेऽस्मिन् प्रस्तूयते संक्षेपेण मेघदूतान्तर्गतसूक्तीनां चारु चमत्कारः।

❖

CS-15

महाभारताश्रितसंस्कृतमहाकाव्यानां नायकः

डॉ० मनोजकुमारपाण्डेयः, राँची

महाभारतं भारतस्य उज्ज्वलज्ञानपरम्परायाः एकमात्रं स्मारकशास्त्रं विद्यते। शास्त्रमिदमसंख्यज्ञानसरितामेकत्रीकरणं विद्यते। कथनमिदं सर्वथा समीचीनं यत्रेहास्ति न तत् क्वचित्। यदत्र नास्ति तद् धरायां कुत्रापि नास्ति, इदं बृहद्राष्ट्रस्य ज्ञानसर्वस्वम्। इदमितिहासपुराणं महाकाव्यं धर्मशास्त्रञ्चास्ति। स्वासामान्यविशेषगुणबाहुल्यात् पञ्चमवेदनाम्ना ख्यातमपि विद्यते। इदमनुपमं शास्त्रमनेकेषां काव्यानां महाकाव्यानां नाट्यकृतीनां जन्मदातृ प्रेरणादातृशास्त्रं विद्यते।

महाभारतमनेकमहाकाव्यानामुपजीव्यशास्त्रं विद्यते। तेषु किरातार्जुनीयम्, शिशुपालवधम्, नैषधीयचरितम्, भारतमञ्जरी, राघवपाण्डवीयादिकं विशेषरूपेण ख्यातमस्ति। एतेषां महाकाव्यानां नायकोपरि स्वतन्त्ररूपेण ग्रन्थानामभावो विद्यते। अन्नया दृष्ट्या अस्याध्ययनमपेक्षितं विद्यते। किरातार्जुनीयमहाकाव्यस्य नायकः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्जुनः पाशुपतास्त्रं प्राप्तुं कठिनं तपः करोति। धीरोदात्तः अर्जुन; परमतेजस्वी धनुर्धरः दुष्टानां संहारकः प्रजावत्सलश्च विद्यते। शिशुपालवधस्य नायकः श्रीकृष्णः कूटनीतिज्ञः, विदुषां समादारकर्त्ता दुष्टानां दलनकर्त्ता चास्ति सः प्रजापीडकं शिशुपालं शतापराधानन्तरं सुदर्शनचक्रेण हन्ति। नैषधीयचरितं सर्वलक्षणसम्पन्नं महाकाव्यं विद्यते। अस्य नायकः राजा नलः प्रेमी प्रजावत्सलो विदुषां सम्मानदाता चासीत्। राघवपाण्डवीयं महाकाव्यं रामायणमहाभारतयोः आश्रितमस्ति। अत्र रामयुधिष्ठिरयोः चरित्रं वर्णितं विद्यते। क्षेमेन्द्रस्य भारतमञ्जरी महाभारतस्य संक्षिप्तरूपान्तरणमस्ति।

अस्मिन् शोधपत्रे सर्वेषां नायकानां तुलनात्मकं विवेचनं कृतमस्ति। सर्वेषां चरित्राणां सामाजिकराजनैतिकमाध्यात्मिकं वैशिष्ट्यं चास्ति वर्णितम्।

❖

CS-16

अनर्घराघवस्य व्याख्या : इष्टार्थकल्पवल्ली तदीयं वैशिष्ट्यञ्च

डॉ॰ जी.एस.आर. कृष्णमूर्तिः

विदितमेव विदुषां प्रशस्तवाग्विलक्षणस्य मुरारिभट्टस्याद्वितीयं नाटकमनर्घराघवम्। 'मुरारेस्तृतीयः पन्थाः' इति आभाणकमत्रैव प्रसिद्धम्। संस्कृतसाहित्ये रामायणं रघुवंशरूपेणावतारितवान् कालिदासः। महावीरचरितं च भवभूतिः व्यरीरचत्। एतद्विलक्षणतया मुरारिरनर्घराघवं रचयामास। अनर्घराघवं तु अतिजटिलं नाटकम्। नाटकमिदमामूलचूडं व्याख्यानसापेक्षम्। अस्य नाटकस्य शैली अतीव प्रौढा अतः नेकाः व्याख्याः व्यलिखन् व्याख्याकाराः। तासु व्याख्यासु इष्टार्थकल्पवल्ली अन्यतमा। सेयं व्याख्या श्रीरामानन्देन विरचिता। इयं च आन्ध्रभाषायां (A.D. 1905) तमे वर्षे मुद्रापिता। अस्याः व्याख्यायाः पुनर्मुद्रणं न जातम्।

इष्टार्थकल्पवल्ली इति नामकरणमेव सूचयति यं यमर्थमभिलषन्ति विद्वांसः तं तमर्थं प्राप्नुयुरनया व्याख्यया।

अयं व्याख्याकारः श्रीरामानन्दयोगीन्द्रः। अस्य समयः अष्टादशशतकम्। अस्य देशः आन्ध्रदेशः। काश्यपगोत्रः, इयं च व्याख्या नितरां प्रौढा। मुरारेस्तु बुद्धौ अयमर्थः भवति वा न वा। परं व्याख्याकारस्य बुद्धौ तु स्फुरत्येव। नान्दीप्रस्तावनादिषु लक्षणसमन्वयपुरस्सरं टीका चेय भरतनाट्यलक्षणनिर्देशनपुरस्सरा भवति।

नान्द्यां काव्यार्थसूचनं कर्तव्यम्। तदुक्तम् अर्थतश्शब्दतो वापि मनोवाक्काव्यार्थसूचनम्, अत्र किञ्चित् सूच्यते इति भगवतः इति 'भगः कामः 'भगः श्रीकाममाहात्म्यवीर्ययत्नार्ककीर्तिषु' इत्यमरः। तं वक्तीति प्रेर्यत्वेन गच्छतीति भगवः कामपरतन्त्रः + वा गतिगन्धनयोः' इति धातोः आतोऽनुपसर्गे क इति कप्रत्ययः ततः भगवतः इत्येवं रूपेण व्याख्याय स्वकीयस्य व्याख्याग्रन्थस्य अन्वर्थतां दर्शयति।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवमादीनि नैकानि उदाहरणानि अत्र प्रदाय इष्टार्थकल्पवल्लीव्याख्यायाः वैशिष्ट्यमुपपाद्यते अस्मिन् शोधपत्रे इति शम्।

❖

CS-17

नाट्ये नायकः सहायकाश्च

श्री अनिलकुमारसिंहः, मुजफ्फरपुर

नाटके वर्णितस्य प्रधानफलस्य भोक्तृपात्रं नायकः भवति। अस्य प्रधानफलस्य प्राप्तौ सहयोगिनः विभिन्नकोटिकाः पात्रविशेषा भवन्ति, ये तस्य सहायकाः कथ्यन्ते। नायकः नेता इति कथ्यते। वस्तु-नेतृ-रस-प्रभृतित्रिविधनाटकीयतत्त्वेषु नेता वस्तुतः नाटकस्य सर्वाधिकः महत्त्वपूर्णोऽपरिहार्यश्चाङ्गविशेषः भवति। वस्तु-रस-भावादयोऽपि नेत्रावलम्बिताः भवन्ति यतः 'नयतीति नेता' भवति। सः नाटकीयवस्तूनि आरम्भतः पर्यवसानपर्यन्तं स्वोपरि आरोप्य नयति। रूपक-शब्दस्य सार्थकताप्रदायकः अयमेवास्ति यः विभिन्नभूमिकां चरित्रञ्च स्वयमेव आङ्गिक-वाचिक-सात्त्विक-आहार्याद्यभिनयचतुष्टयेन अङ्गीकृतं कुर्वन् तेषां तत्तद्दशां चेष्टाञ्च अभिव्यञ्जयति। सः वस्तु-रस-भावप्रभृति स्वपूर्णचेष्टया निष्ठया च सर्वजनसंवेद्यं करोति।

संस्कृतनाटकस्य नायके धैर्यस्य स्थितिः आत्यावश्यकी। अस्मात्कारणादेव नायकस्य सर्वैः भेदैः सह 'धीर' इत्यस्य विशेषणस्य प्रयोगः अवश्यमेव क्रियते। नाट्यदर्पणकारः मध्यमस्य उत्तमस्य च नायकस्य स्वभावानुसारं चतुर्भेदान् कृतवानस्ति—धीरोद्धत-धीरोदात्त-धीरललित-धीरप्रशान्ताः। स्थिरता-गम्भीरता-दृढताप्रभृति वा गुणाः तु सामान्यतया प्रत्येके नायके भवन्ति, किन्तु एतेषां गुणानां पराकाष्ठा धीरोदात्तनायके एव मिलति। अनेन प्रकारेण शोधनिबन्धेऽस्मिन् प्रकृतविषयस्योपरि सम्यक् विचारः कृतवः अस्ति।

❖

CS-18

पञ्चतन्त्रे वानराः

श्रीसुबोधकुमारमिश्रभागवती, गुवाहाटी

पञ्चतन्त्रं हि विष्णुशर्मविरचितं नीतिशास्त्रम्। सम्पूर्णराजनीतिशास्त्राणां तत्त्वानि सम्यग्रूपेण पर्य्यालोच्य विश्वेषु प्रचलिताः परम्परा व्यावहारिकदिशा चानुभूय विष्णुशर्मणा मित्रभेद-मित्रसम्प्राप्ति-काकोलूकीयलब्धप्रणाशापरीक्षितकारकाणि चेति पञ्चतन्त्राणि रचयित्वा पञ्चतन्त्रकनामकं नीतिशास्त्रमिदम् बालावबोधनार्थं भूतले प्रवृत्तम्। पञ्चतन्त्रे कथाच्छलेन बालानां नीतिः कथ्यते। तस्यां कथायां वानरस्य स्थानं सर्वोत्कृष्टम्। हितोपदेश-तन्त्राख्यायिका-पञ्चाख्यानकमित्यादि कथासाहित्यवद् विष्णुशर्ममहाभागः अपि तस्य पञ्चतन्त्रे वानरकथामाध्यमेन उपदेशविशेषान् ददाति। वानरः कदाचित् मूर्खरूपेण, कदाचित् ज्ञानिजनरूपेण,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कदाचिद् आलस्येन ग्रस्तनिष्कर्म-व्यक्तिरूपेण चेति प्रतिभाति। पञ्चतन्त्रस्य प्रथमे तन्त्रे मित्रभेदे 'कीलोत्पाटिवानरकथा' इति प्रथमा कथा, यत्राव्यापारेषु व्यापारं कर्तुमिच्छन् एकः चपलः वानरः निधनं याति। तत्र वानरः चञ्चलजीवस्य प्रतीकरूपेण चित्रितः भवति। 'वानर-चटकदम्पतिकथा', 'सूचीमुख-वानरयूथकथा', 'नृपसेवकवानरकथा' इत्यादिकथायां वानरस्य मूर्खत्वं दृश्यते।

संस्कृतकथासु वानरः न सर्वदा मूर्खो भवति, किन्तु कथाविशेषेषु अयं महतीं व्यावहारिकीं बुद्धिमपि प्रदर्शयति। पञ्चतन्त्रस्य लब्धप्रणाशं नाम चतुर्थतन्त्रे एकः रक्तमुखः नाम वानरः, तस्य प्राणान् मकरात् रक्षति इति दृश्यते। पञ्चतन्त्रस्य अन्तिमे तन्त्रे अपरीक्षितकारके 'चन्द्रभूपतिकथा' इति कथायां कुलक्षयजं वैरं वानरेन साधितमस्ति। वस्तुतः अद्यापि समाजे एते लोकाः वर्तन्ते, ये कुलक्षयस्य वैरतां स्वजीवने साधयितुमिच्छन्ति ते तीक्ष्णबुद्ध्या स्वाभिलाषं सम्पादयन्ति। वस्तुतः वानरवत् चञ्चलः सन् अव्यापारेषु व्यापारमकृत्वा क्रोधशून्यः सन् जनः कार्ये धैर्य्येन प्रवृत्तः स्यात्। मूर्खजने विश्वासः न कार्यः। परन्तु तात्कालिकबुद्ध्या रक्तमुखवानरवत् स्वप्राणान् जनाः रक्षेयुः इत्यस्माकं मतिः।

❖

CS-19

वाल्मीकिरामायणे वैदिकप्रभावः

डॉ. मिथिलाप्रसादत्रिपाठी, इन्दौर

'स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां मा प्रमदितव्यम्', 'स्वाध्यायान्मा प्रमदः' इत्यादिभिर्वचनैः प्रभावितो मुनिरारभत स्वकीयां नवीनां वृत्तेन शैल्या चापूर्वां रचनां या रम्या रामायणी कथेति प्रथिता पश्चात् यथा—'तपः स्वाध्याय-निरतं तपस्वी वाग्विदां वरम्। 'काण्ड'पदस्य प्रयोगपाटवीमनुचिन्त्यैव काण्डात्मकान् भागान् रामायणस्य व्यधान्मुनिः। वैदिकयुगस्य सन्धिस्थले रिरचयिषया यद् व्याजहार च्छन्दोमयीं वाणीमकस्मान्मुनिस्तां प्रति किमिदं व्याहृतं मयैवौक्तम्। न पूर्वं कदा चैतादृशं छन्दोबन्धं श्रुतं दृष्टं वा। यथैव वैदिको महर्षिर्मन्त्रविग्रहं शब्दब्रह्मतया शिष्याय श्रुतिपरम्परया समादिशत्तथैव भरद्वाजाय तमसातटस्थाय सर्वं यथावद् ग्रहणाय वाल्मीकिरपि व्यादिदेश। 'मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्' इत्यस्यं सन्देशः समग्रेऽपि रामायणे चरितनायकेन प्रसारितः।

रामायणे वैदिकः प्रभावः यज्ञाचरणेन सत्यसंरक्षणेन धर्माचरणेन, अधर्णिमां विनाशेनापि भृशं प्राप्नोति। प्रतीयते यद् रामायणकथा वेदप्रतिपादितानाचारानेव स्वीकृत्य विरचिता वर्तते।

वाल्मीकिरामायणे 'आहुः सत्यं हि परमं धर्मं धर्मविदो जनाः' इति वैदिकमेव स्मारयति सन्देश सत्यधर्मयोरैक्यं चापि। तैत्तिरीयोपनिषदः 'सत्यं वद। धर्म चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। देवपितृकार्याभ्यां न प्रमद्रितव्यम्, मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। इत्यादीनि शिक्षासूत्राणि संकलितानि सन्ति रामायणे। अथर्ववेदस्य 'शतहस्त समाक्षर सहस्रहस्त संकिर' इति वाक्यमपि व्याख्यातं भवति रामायणे। समग्रं रामायणं वैदिकादर्शान् समुपबृंहयति तथा च कथामाध्यमेन वैदिकमेवोपदेशान् विस्तारयति।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-20

कालिदासकाव्येषु चित्रकला

श्री शिशिरकुमारपाण्डेयः, राँची

महाकविः कालिदासः संस्कृतकाव्येषु साहित्येषु सर्वश्रेष्ठः। तस्य सप्तकृतिषु व्यापकं ज्ञानं विद्यते। तत्र दर्शनं मनोविज्ञानं ज्योतिषादिविभिन्नविषयजातं पर्याप्तरूपेण वर्णितमस्ति। शिल्पक्षेत्रे सङ्गीतकलानृत्यकला चित्रकलादिविभिन्नविषयाणां सैद्धान्तिकं व्यावहारिकं च ज्ञानं यत्र-तत्र प्रकटितं विद्यते। तस्य महानुभावस्य हृदि चित्रकारस्य सर्वे संस्काराः पूर्णरूपेण विद्यमाना सन्ति। स दृश्यानां वर्णनं न केवलं बाह्यरूपेण, अपि तु साङ्गोपाङ्गरूपेण करोति। कुशलचित्रकारं इव प्रमुखानां रङ्गागां तेषां प्रकाराणाञ्च विवरणं प्रस्तौति।

काव्यकलाकर्त्ता कविः उदारमनाः सहानुभूतिपूर्णः च भवति। सः सुन्दरासुन्दरवस्तूनां चित्रणं कल्पनाशक्त्या इत्थं करोति येन तत् चित्रणं सुन्दरं चित्ताकर्षकञ्च भवति। कालिदासः चित्रकार इव स्वदृष्ट्या वस्तूनां सम्यग् रूपेणावलोकनं करोति, पश्चात् अन्तस्तले अवतारयति। काव्यचित्रयोः कलासु संगतेः तात्त्विकं महत्त्वं विद्यते। चित्रकलायामियं सङ्गतिः विद्यते। यत्र विभिन्नकृतीनां रङ्गरेखानाम् अनुपातेन इयं सङ्गतिः निर्गता भवति। कालिदासः अनुपातस्य अनेन सूक्ष्मतत्त्वेन सम्यग्रूपेण परिचितः आसीत्। तस्य चित्राङ्कितं दृश्यं सजीवरूपेण प्रस्तुतं भवति। तस्य कृतिषु चित्रकलायाः सिद्धान्तानां स्फुटमोऽस्फुटश्च सङ्केतः परिदृश्यते। कालिदासः चित्र-नृत्यकलायामनुकृतितत्त्वे बलं ददाति—'यथा नृत्ये तथा चित्रे त्रैलोक्यानुकृतिः स्मृता'।

कालिदासस्य काव्येषु चित्रकलासिद्धान्तानां महत्त्वपूर्णं स्थानं विद्यते। यदि कुमारसम्भवे 'चित्रोन्मीलनम्' सिद्धान्तः प्रस्तुतमोस्ति, तदा मेघदूते चित्रकलायाः 'सादृश्यवादः' प्रस्तुतोऽस्ति। यदि रघुवंशे 'रेखाङ्कनप्रक्रिया' वर्णिता विद्यते तदा ऋतुसंहारे जगतः सूक्ष्मात् सूक्ष्मजडविषयाणां चित्रं प्रस्तुतमस्ति। इत्थम् एतेषु काव्येषु चित्रकलायाः सादृश्यवादस्य चित्रोन्मीलनस्य च संकेतः विशदरूपेण वर्णितमोस्ति। चित्रकलायाः सर्वप्रथमा प्रस्तुतिः कालिदासेन कृता। सादृश्यवाद इव चित्रोन्मीलनमपि संस्तुत्यं प्रशंसनीयञ्चास्ति चित्रोन्मीलनस्यायं सिद्धान्तः चित्रकलाक्षेत्रे अपूर्वः विद्यते। तस्य कृतिषु चित्रकलायाः अपूर्वः संयोगः तत्कालीन- समाजस्य बहुमुखत्वं प्रतिपादयति।

❖

CS-21

स्तोत्र-काव्येषु स्तोत्र-मन्दाकिनी

श्री मणिकान्तपाण्डेयः, लोहरदगा

प्रारूपम्–

1. स्तोत्रकाव्यविवेचनम्
2. स्तोत्रमन्दाकिन्याः रचयिता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

3. स्तोत्रमन्दाकिन्याः विषयः
4. स्तोत्रमन्दाकिन्यां धार्मिकी भावना
5. स्तोत्रमन्दाकिन्या वैशिष्ट्यम्
6. उपसंहारः

❖

CS-22

वत्सराजकृतत्रिपुरदाहडिमे रसविधानम्

श्री राजेशकुमारनिषादः, टाँडा

काव्येषु नाटकं रम्यमिति वचनात् चारुतया सहृदयान् आर्वजयन् वत्सराजकृते त्रिपुरदाहाख्यडिमः हिमवान्निव रसनिर्झरी।

वेद्यान्तरस्पर्शशून्यस्य ब्रह्मानन्दसहोदरस्य परमानन्दस्य रसस्य निष्पत्तिप्रकारः परमकविना भरत-मुनिना निर्दिष्टः—'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः' यथा दुग्धम् अम्लयोगेन रूपान्तरितं भूत्वा दधीत्युच्यते, तथैव रत्यादि-स्थायिभावः परमप्रवीण-कविना कयापि विलक्षणया वैदग्ध्यप्रणाल्या काव्यनाट्य-समर्पित-विभावानुभावसञ्चारि-संयोगेन चिदानन्द-चमत्कार-स्वरूपेण परिणतः सन् 'रस'पदेन व्यवह्रियते।

आलोच्येऽस्मिन् डिमे रसवैदग्ध्य-प्रवीणेन वत्सराजेन—'रौद्र-वीर-बीभत्स-करुण-भयानकाद्भुत-शान्तादीनां रसानां हृदयहारि, चमत्कारसुललितपाटवकलितविधानं कृत्वा रसप्रवणकविषु स्वस्थानमारक्षितम्। तस्य इयं वीभत्सयोजना अतीव हृद्या।

❖

CS-23

संस्कृतवाङ्मये भारतीयसंस्कृतिः

डॉ० के. राजगोपालम्, तिरुपति

संस्कृते विद्यमानं वाङ्मयं विविधं विशालं विपुलं च भवति। समस्तवाङ्मयभाण्डागारे ऋग्वेद एव प्रथमं ग्रन्थरत्नं विद्योतते। एवमन्येऽपि वेदाः अङ्गोपाङ्गसहिताः ब्राह्मण-आरण्यक-उपनिषद्ग्रन्थाश्च संस्कृते एव विराजन्ते। लौकिकसंस्कृते आदिकविना विरचितमादिकाव्यं वाल्मीकिरामायणं संस्कृतभाषायामेव वर्तते। एवं श्रीमन्महाभारतं, पुराणानि, महाकाव्यानि सर्वाणि गीर्वाणवाण्यामेव विलसन्ति। ते सर्वेऽपि ग्रन्थाः कर्तव्याकर्तव्यबोधकाः, शुभाशुभनिदर्शकाः, जीवनस्योन्नायकाः, विश्वहितसम्पादकाः भवन्ति। समस्तं वाङ्मयं चतुर्वर्गप्राप्तिस्वरूपञ्च भवति।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एतादृशे महत्त्वपूर्णे संस्कृतवाङ्मये अनेके विषयाः निर्दिष्टाः। तत्र भारतीयसंस्कृतिः इति विषय-माधारीकृत्य प्रस्तोष्यमाणस्य पत्रस्य सङ्क्षिप्तिका विनिवेद्यते।

संस्कृतिशब्दः सम्पूर्वकात् कृञ् (करणे) धातोः भावे क्तिनि सुडागमे सिध्यति। संस्क्रियते मनः अनया इति व्युत्पत्तिः। समिति सम्यक् शोभना या कृतिः क्रिया सा संस्कृतिरिति व्युत्पत्तिः। संस्कृतिः मानवजीवनस्य महते उपकाराय कल्पते। दुर्भावान् अपोह्य दुर्गुणान् दन्दहति। दुःखानि पापानि च दूरीकृत्य ज्ञानज्योजिः ज्वलयति। सत्यं संस्थाप्य सुखं साधयति।

संस्कृतवाङ्मये भारतीयसंस्कृतेः वैशिष्ट्यं विद्यते। पत्रेऽस्मिन् पितृभक्तिः, गुरोरनुग्रहः, दैवभक्तिः, त्रिकरणानां शुद्धिः, निष्कामप्रवृत्तिः, कर्मनिष्ठा, आध्यात्मिकी भावना, समत्वभावना, त्यागस्य माहात्म्यम्, जीवनशैली, नमस्कारप्रभावः, पुरुषार्थाः, सत्यं कण्ठस्य भूषणम्, स्त्रीणाम् औन्नत्यं, धर्मस्य लक्षणम्, आश्रमव्यवस्था भारतीयविवाहव्यवस्था इत्यादिविषयाः विन्रियन्ते।

❖

CS-24

उत्कलेषु संस्कृतवाङ्मयस्य परम्परा

डॉ॰ मनमोहनमहापात्र, ओडिशा

उत्कलभूखण्डे प्रचलितसंस्कृतवाङ्मयस्य प्राचीनमितिवृत्तं नोपलभ्यते, परन्तु संस्कृतसाहित्यस्य चर्चा प्राचीनकालादारभ्य प्रचलिता बहूनां प्रख्यातयशसां कवीनां परिचयम्, अभिलेखमालां, दानपत्राणि च ऐतिहासिकाः स्वशक्त्यनुसारमुपस्थापयन्ति। केषाञ्चन नामानि इतिहासाद् गोचरीभूतानि न भवन्ति, परन्तु तेषां कृतयः उपलभ्यन्ते। केषाञ्चन नामानि लभ्यन्ते परन्तु कृतयः नोपलभ्यन्ते एवमन्यत्रापि नामानि न सन्ति कृतयोऽपि न सन्ति।

ततः पूर्वमुत्कलप्रदेशे या भाषा आसीत्, सा तु प्राकृतभाषा एव। कुत्रचिद् पालिभाषायाः प्रचलनं आसीत्। अस्य मतस्योपरि बहवः ऐतिहासिकाः संशयं प्रकटितवन्तः। खीष्टपूर्व-षष्ठशतके अस्मिन् भारतभूखण्डे भगवता बुद्धदेवेन बौद्धधर्मस्य संस्थापनं कृतम्। ब्राह्मणधर्मे प्रचलितानां कुसंस्काराणां निराकरणाय तेन सरलोपायः उपस्थापितः। तदानीन्तनसमाजे प्रचलितपशुबलिं विरुद्ध्य साम्यवादप्रचाराय च गौतमबुद्धः प्रतरां प्रयत्नं कृतवान् अनन्तरं तेन ब्राह्मणधर्मं अपाकृत्य बौद्धधर्मः प्रतिष्ठापितः। बौद्धधर्मप्रचारस्य प्रमुखमाध्यमरूपेण प्राकृतभाषां पालिभाषां च जनाः आश्रितवन्तः। अतः यद्यपि चतुर्थशतकात् प्राक् पालिभाषायाः प्राकृतभाषायाः वा प्रचलनम् उत्कलेषु सम्भूतमिति ज्ञायते तथापि तदा ततः पूर्वं वा उत्कलेषु संस्कृतस्य चर्चा क्रियते स्म यतः पैपलादशाखा उत्कले एव लभ्यते स्म। अस्मिन् शोधपत्रेऽयमेव विषयः प्रपञ्चितः।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-25

स्वप्ननाटके संलापगतं वैशिष्ट्यम्

श्री मौसुमीचन्द्रः, पश्चिमवङ्गः

संस्कृतसाहित्यजगति स्वप्नवासवदत्तमिति नाटकं प्रथितयशसा भासकविना विरचितं विद्वत्सु प्रतिष्ठितम्। साहित्यसमालोचकेन राजशेखरेनोक्तम्—'स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः' इति। तदभिमतं सर्वथा समीचीनं दृश्यते। न केवलं वस्तुनिर्देशेन चरित्रचित्रणेन वा स्वप्नवासवदत्तवस्य महत्त्वं परन्तु नाटकस्यास्य संलापनिर्माणवैशिष्ट्येन महद्गौरवम् उपन्यस्तम्। अत्र संलापस्य द्रुतपठनं प्रस्तावनामप्यतिक्रम्य नाटकाभ्यन्तरं प्रविशति। द्वितीयाङ्के तृतीयाङ्के च प्राकृतभाषया निर्मितं कथोपकथनं कदापि न विरक्तिं जनयति। अस्मिन् नाटके चरित्रप्रकाशनाय नाट्यगतिवर्धनाय च असाधारणसंलापप्रयोगेन महाकविभासः प्रसिद्धिं लेभे। तस्य वाक्प्रतिमानिर्माणे खल्वदैर्घ्यवाक्यबन्धस्य गुरुत्वमस्ति। शृङ्गाररसस्तथा करुणरसश्च प्रकाशेन कवेर्नैपुण्यं बहुत्र दृश्यते। संलापो नाटकस्य प्राणस्वरूप एव। पञ्चमाङ्के स्वप्नदृश्ये संलापस्य गुरुत्वमस्ति। उदयनवासवदत्तयोः संलापैः स्वप्नदृश्यं माधुर्यमण्डितं जातमिति।

❖

CS-26

शिशुपालवधमहाकाव्ये अलङ्कारविवेचनम्

श्री मनोजकुमारशर्मा, कोलकाता

महाकवेर्माघस्य काव्यवाणी नितरामलङ्कृता। सहृदयानि चमत्करोति। प्रायेणासुलभरूपैव महाकवेर्माघस्य तादृशी कापि कविता यत्र नास्ति कस्यापि अलङ्कारस्य कथमपि योगः। अलङ्कारप्रयोगवैविध्येनायं प्राचीनान् कविमुख्यान् कालिदासभारविप्रमुखानतिशय्य विराजत इति मे मतिः।

शब्दालङ्काराणां यमकानुप्रासादीनां प्रतिसर्गं प्रयोगपाटवे विद्यमानेऽपि चतुर्थसर्गे कविना तत्र सविशेषमवधानं दत्तम्। शब्दालङ्कारप्रयोगबाहुल्येन तत्र महाकवेः काव्यवाणी सङ्गीयमाना प्रतिभाति।

उपमारूपकपरिणामसन्देहभ्रान्तिमानपह्नुत्युत्प्रेक्षातिशयोक्तिव्यतिरेकसहोक्तितुल्ययोगितादीपकप्रतिवस्तूपमा-दृष्टान्तनिदर्शनासमासोक्त्यप्रस्तुतप्रशंसाप्रमुखानामर्थालङ्काराणाम् प्रयोगेण सुसमृद्धं तावदिदं महाकाव्यम्।

एतेषामलङ्काराणां क्वचिद् ध्वनिमत्त्वं क्वचित् रसाभिव्यञ्जकत्वं क्वचित् वर्णनोपयोगित्वं क्वचित् संलापसंग्रथनपटुत्वम् एवमादिकं बहुविधवैचित्र्यम् समुपस्थास्यमाने प्रबन्धे आलोचितं भवेत्। अन्येभ्यः कविभ्यः कवेरस्य अलङ्कारप्रयोगे वैशिष्ट्यमपि विवेचितं भवेत्।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-27

श्रीहर्षकाव्ये कालिदासकाव्यचिन्तायाः प्रतिबिम्बनम्

डॉ. राधानाथ आचार्यः, पश्चिमबंगः

ऐतिह्यानुसारितां विना किमपि शिल्पकर्म साहित्यकर्म वा न सफलतां प्राप्नोति। अतश्च उत्तरकालिकानां कवीनां काव्येषु वाल्मीकिकालिदासादीनां प्रथितयशसां कवीनां प्रभावो नितरामालोक्यते। अस्मदीये प्रबन्धे श्रीहर्षकृतौ नैषधचरिते कालिदासस्य काव्यचिन्तायाः प्रभावः पर्य्यालोचितो भवेत्।

यद्यपि द्वयोरनयोः कविवरयोः कालिदासश्रीहर्षयोः रचनाशैली भिन्ने वर्त्मनि पदं कृतवती तथापि अन्तरान्तरा परिलक्ष्यमाणँ तयो रचनासादृश्यं सुतरामेव विस्मयावहम्। तथा हि नैषधचरितस्य सप्तमे सर्गे दमयन्त्या रूपवर्णनावसरे कालिदासवर्णितायाः पार्वत्याः सौन्दर्यस्य स्मृतिः श्रीहर्षस्य मानसे समुदिताभवत्। किञ्च रघुवंशकाव्ये (7/5-12) नगरं प्रविशतोः अजेन्दुमत्योः कुमारसम्भवे (7/56-69) परिहृतपरिणयवेशस्य महेश्वरस्य दर्शनव्यापारे पौराङ्गनानां यथौत्सुक्यातिरेकस्तथैव नैषधचरिते (15/73-83) वरवेशेन समागतस्य निषधेश्वरस्य विलोकनविधौ। अपि च नैषधचरिते दमयन्तीस्वयम्वरवर्णनायां रघुवंशे वर्णितस्य इन्दुमतीस्वयम्वरस्य च्छाया बाहुल्येनापतिता। विवाहोत्सववर्णनायामपि द्वयोरनयोः कविवरयोः सादृश्यं नितरामापतितम्। अन्यच्च मेघदूते समवतारिताया अलकावर्णनायाः किञ्चित् सादृश्यं समापतितं नैषधचरितस्य द्वितीयसर्गगतायां कुण्डिननगरवर्णनायाम्। अपरञ्च नैषधचरितस्य अष्टादशसर्गे नलदमयन्त्योः सम्भोगचित्रं कुमारसम्भवस्याष्टमसर्गे वर्णितेन हरपार्वत्योः सम्भोगचित्रेण सादृश्यमावहति। एवमादीनि सादृश्यानि श्लोकादिसमुद्धरणपूर्वकं विशदं निरूपयिष्यन्ते। प्रसङ्गेऽस्मिन् काव्यगतसादृश्यमधिकृत्य प्राच्यपाश्चात्त्यकाव्यतत्त्वसमीक्षकाणां मतान्यपि विवेचयिष्यन्ते।

❖

CS-28

चण्डीग्रन्थस्य श्लोकसंख्याविषये एका समीक्षा

श्रीकालीसाधनधरः, कोलकाता

मार्कण्डेयपुराणस्य त्रयोदशाध्यायगतस्य देवीमाहात्म्यं चण्डी इति नाम्नापि सुपरिचितम्। सप्तशती इति परिचयेनापि सुधीषु प्रसिद्धिरस्य वर्तते। निर्दिष्टश्लोकसंख्यापूरणेन काव्यरचानायाः प्रवणता भारतीयसाहित्यिकानां सुप्रचलिता। तदनुसारेण चौरपञ्चाशिका, नीतिशतकम्, वैराग्यशतकम् शान्तिशतकम्, गाहासत्तसई, आर्यासप्तशती, श्रीमद्भगवद्गीता, चण्डीप्रभृतीनां परिचितिः। चण्डीगीतादीनां ग्रन्थानां सप्तशतीत्वं सुप्रसिद्धम्। प्रचलिते अष्टादशाध्यायगते गीताग्रन्थे सप्तशतश्लोका वर्तन्ते; परन्तु चण्डीमाहात्म्ये अष्टसप्तत्यधिकपञ्चशतं श्लोका विद्यन्ते। निर्दिष्टश्लोकसंख्यकत्वात् नामकरणेऽपि एतेषु ग्रन्थेषु तत्तत्संख्यायाः तारतम्यं दृश्यते। एतत्तु प्रायिकम्। कतिपयश्लोकानामाधिक्ये न्यूनतायां वा शतकादिनामकरणे न कापि अनिष्टापत्तिर्जायते।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्लोकसंख्याया एतत्तारतम्यं न कदापि शताधिकश्लोकैः भवति; परन्तु चण्डीग्रन्थस्य अष्टसप्तत्यधिकपञ्चशतत्वं यत् सप्तशतात् द्वाविंशत्यधिकशतेन न्यूनं तत् कथं सप्तशतीत्वम् अधिकरोति। शताधिकानाम् एतेषां श्लोकानां न्यूनताया न कदापि अस्य सप्तशतीत्वं सङ्गतं भवेत्। उपरि यत् चण्डीपाठात् प्राक् अर्गलास्तोत्राद्यङ्गपाठेषु 'सप्तशतीपाठाङ्गजपे विनियोगः' इत्यादिकं विनियोगवाक्यं साधुना उच्चार्यते। तस्मादस्य सप्तशतीत्वमपि स्वीक्रियते, यतः ऋषिणा उच्चारितं सङ्कल्पवाक्यं कदापि न मिथ्या भवति। प्रचलितसंस्करणे गीतादिग्रन्थानामीदृशो व्यत्ययो न दृश्यते। चण्डीग्रन्थस्य सप्तशतीत्वं सङ्गतमसङ्गतं वा एतद् यथासाध्यं विचार्यतेऽस्मिन्निबन्धे। सम्भाव्यते सप्तशती इति नामकरणे न श्लोकसंख्या; परन्तु मन्त्रसंख्या विचारणीया। प्राप्तपरिमाणचण्डीश्लोकेषु एव सप्तशतीत्वं यथाकिञ्चित् कर्तुं शक्यते।

❖

CS-29

भारविकालिदासयोः रचनासादृश्यम्

श्रीमती कल्पना सोपनामिका

पूर्ववर्त्तिनः कालिदासस्य काव्यरचनाशैली एकविधा, अपरविधा च सा शैली परवर्त्तिनो भारवेः। तथापि तयो रचनायामन्तरान्तरा लक्षणीयं सादृश्यं सचेतसां नयनयोरापतति। परिलक्ष्यमाणेषु बहुविधेषु सादृश्येषु केषाञ्चित् समीक्षणाऽत्र प्रबन्धे विधास्यते।

कुमारसम्भवे पार्वत्याः किरातार्जुनीये च धनञ्जयस्य तपस्या वर्णिता। एतयोस्तपस्याचरणविधौ सादृश्यं प्रतिभाति। तपस्यापरीक्षणार्थमेकत्र च्छद्मवेशिना महादेवेन अपरत्र तादृशेन वासवेन समागतम्। प्रसङ्ग-द्वितये संलापादिविषये सादृश्यं विद्यते। कुमारसम्भवस्य षष्ठे सर्गे समागतान् सप्तर्षीनभिलक्ष्य हिमालयेन यत् कथितं तस्य सादृश्यं विद्योतते किरातार्जुनीयस्य तृतीये सर्गे समुपस्थितं व्यासदेवं प्रति युधिष्ठिरस्य उक्तौ। रघुवंशस्य सप्तदशे सर्गे वर्णिताया राज्यशासनपद्धतेः किञ्चित् किञ्चित् सादृश्यं परिदृश्यते किरातार्जुनीयस्य प्रथमे सर्गे समुपस्थापितायां दुर्योधनस्य राज्यशासनपद्धत्याम्। कुमारसम्भवे समाधिमग्नस्य महादेवस्य वर्णनायाः प्रतिच्छाया परिदृश्यते किरातार्जुनीये शिवगणैः सहाभियोक्तुमुद्यतस्य धनञ्जयस्य वर्णनायाम्। एतद् व्यतिरेकेण क्षेत्रान्तरेष्वपि सादृश्यानि बहूनि विद्यन्ते। तथा हि योग्यवस्तुद्वितयसम्मेलनवर्णनायां स्वभावे सुन्दराणां पदार्थानां नियतसौन्दर्य्यमयत्वप्रकटने वृक्षादिभिर्नायकादेरभ्यर्थनवर्णनायां विकारहेतौ विद्यमानेऽपि सतामविकारित्व-प्रतिपादने क्षत्रियशब्दस्य व्युत्पत्तिगतार्थप्रदर्शने एवमादिषु सुस्पष्टविधया सादृश्यानि सचेतसां चेतश्चमत्करोति। कविद्वितयगतानि अनुरूपभावप्रकाशकानि उक्त्यन्तराणि यथा—

अतिस्नेहः पापशङ्की (शाकुन्तले); प्रेम पश्यन्ति भयान्यपदेऽपि (किराते)। प्रतिबध्नाति हि श्रेयः पूज्यपूजाव्यतिक्रमः (रघौ); दिशत्यपायं हि सतामतिक्रमः (किराते)। पदं हि सर्वत्र गुणैः निधीयते (रघौ); कमिवेशते रमयितुं न गुणाः (किराते)। अनुरूपाणि अन्यानि भावसादृश्यानि सुलभान्येव। तेषां दिङ्मात्रं प्रदर्शितम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवीनां कृतिषु सम्भवदेतादृशं सादृश्यजातमवलम्ब्य प्राच्यानां तथा प्रतीच्यानाञ्च काव्यतत्त्वकोविदानां समीक्षात्मिका दृष्टिरपि प्रबन्धेऽस्मिन् विवेचिता भवेत्।

❖

CS-30

वैयाकरणानां मीमांसकानां नैयायिकानाञ्च लक्षणाविषये मतवैषम्यम्

श्रीसुनीलकुमारजाना, पश्चिम-वङ्ग

इदमन्धतमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते॥

इत्यादिना ज्ञायते वागाख्यं ज्योतिः यदि जगदभिव्याप्य न दीप्यते तर्हि सर्वं जगत् चक्षुर्विकलमिव शानशुप्यं जायेत। अतः वाग्व्यवहारेण लोकयात्रा प्रचलति। स तु व्यवहारः शब्दात्मक इति स्थितिः। किञ्च शब्दस्य अर्थद्योतिका शक्तिरप्यस्ति।

तत्र शक्तेः स्वरूपविभागविषये अपि अस्ति मतवैषम्यम्। शक्तिस्तु ईश्वरेच्छा उत इच्छारूपा। सा शक्तिस्तु व्यापारात्मिका। तत्र शब्दस्तु वाचक-व्यञ्जक-लाक्षणिकभेदात् त्रिधा भिद्यते। अतो वृत्तिरपि अभिधा-लक्षणा-व्यञ्जनाभेदात् त्रिविधा। तत्र अभिधावृत्तिस्तु शक्यार्थं प्रकाशयति। यथा—गामानय। व्यञ्जना तु व्यङ्ग्यार्थं गमयति। यथा—'अर्कोऽस्तङ्गतः'। अभिधायाः लक्षणायाः व्यञ्जनायाश्चोदाहरणम् एकेनैव वाक्येन दर्शयितुं शक्यते, यथा—'गङ्गायां घोषः'। लक्षणा तु 'शक्यसम्बन्धरूपा'।

परन्तु अस्ति तत्र व्याकरणे मीमांसायां न्यायनये च लक्षणाङ्गीकारे मतविरोधः। आलङ्कारिकैस्तु लक्षणा स्वीकृता। वैयाकरणास्तु शब्दार्थबोधानुकूलरूपेण लक्षणावृत्तिं नाङ्गीकुर्वन्ति। तेषां मते सभेदात्मकः शब्दस्तु नित्यत्वात् शब्दार्थयोः सम्बन्धोऽपि नित्य इति। अतः—

अनादिनिधनं नित्यं शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः॥

सुतराम् अर्थबोधं सभेदात्मकस्य शब्दस्य केवलमपादानत्वमेव 'मञ्चाः हसन्ति', 'यष्टीः प्रवेशय' इत्यादिभिरुदाहरणैः। यदुक्तं महाभाष्यकारेण 'पुंयोगादाख्यायाम्' इति तत्तु न लक्षणाविषयकम्। कैयटमते तत्तु—'आरोप्यते तद्रूपम्, न तु मुख्यम्'। जाज्यमिदं नगरम्, इत्यादौ पतञ्जलिना लक्षणा निराकृता। 'गङ्गायां घोषः' इत्यादौ तीरधर्माधारत्वारोपेण गौणाधिकरणे सप्तमी, न तु लक्षणा इति 'स्वरितेनाधिकारः' इति सूत्रे सुदृढीकृतम् तात्पर्यवृत्तिमाश्रित्य गौर्वाहीकाः इत्यादौ व्याख्यानं संगच्छते। यतः—'सति तात्पर्ये सर्वे सर्वार्थवाचकाः'। अतः वैयाकरणमते लक्षणा जघन्या वृत्तिः।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-31

काव्यरसविशेषयोजनादर्शनम्

डॉ. बटोहीझा, लखनऊ

ललितोचितसन्निवेशचारुणो लोकोत्तरवर्णनानिपुणकविकर्मणो नानाप्रयोजनकस्य काव्यस्य रसास्वादनं मुख्यं प्रयोजनम्। तत्काव्यस्य कारणं कविगता केवला प्रतिभेति जगन्नाथः। एवं काव्यं कवित्वप्रतिभाविलसितम्। तच्च द्विविधम्—भावात्मकं रसात्मकञ्चेति। रसात्मकमपि पुनर्द्विविधम्—स्वादात्मकम्, आनन्दमात्रपर्यवसितञ्चेति। एतेन 'रसो वै सः', 'रसमेवाऽयं लब्ध्वाऽऽनन्दीभवती'ति श्रुतिवचनं काव्यात्मपरमसाररसस्य लोकोत्तरत्वसन्दर्भे सकलसहृदयप्रत्यक्षं प्रमाणम्।

तथाविधस्य काव्यस्य नानाविधत्वेऽपि स्थूलतया दृश्यश्रव्यात्मना द्वैविध्यम्। तत्र दृश्यभेदे दशविधरूपकेषु शृङ्गाररसप्रधानं प्रकरणं, वीररसप्रधानः समवकारो, रौद्ररसप्रधानो डिमः, करुणरसप्रधानोऽङ्को, हास्यरसप्रधानं प्रहसनमिति। एवमत्र रूपकभेदेषु प्रधानस्य नाटकस्य लक्षणे—'एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वेति' शृङ्गारवीरयोर्द्वयोरेकस्य रसस्य प्राधान्यकरणे कथमालङ्कारिकनिर्देशः?

एवमेव श्रव्यकाव्यनानाभेदेषु मुख्यतमस्य महाकाव्यस्य लक्षणे चोक्तम्—'शृङ्गारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते'। अत्रापि नवरसरुचिरायां कविभारत्यां सत्यां कथं शृङ्गारादीनां त्रयाणामेव रसानां मध्ये कस्यचिदेकस्य रसस्य प्राधान्यकरणव्यवस्था? तदन्यै रसैः किमपराद्धमिति विशेषतः चिन्तनीयम्।

महाकाव्यलक्षणे करुणस्य प्राधान्यं नहि काव्यशास्त्रेषु व्यवस्थापितं; किन्तु वाल्मीकिरामायणमादिमहाकाव्यम्, तच्च करुणरसप्रधानमेव प्रख्यातम्। एवमेव नाटकलक्षणे करुणस्य प्राधान्यं नोक्तं, परं करुणरसप्रधानमेवोत्तररामचरितनाटकं मन्यते। एवमादिसमाधानं यथामति काव्यरसविशेष-योजनादर्शनात्मना निबन्धेन प्रस्तोतव्यमस्तीति।

❖

CS-32

अष्टौ वा नव नाट्ये रसाः स्मृताः

प्रो. हरेकृष्णशतपथी, पुरी

भरतमुनिना प्रणीतस्य नाट्यशास्त्रस्य बहूनि संस्करणानि सन्ति। एतेषु केषुचित् प्राचीनसंस्करणेषु काव्यनाट्ययोः रससंख्याविषये भिन्नमतानि अवलोक्यन्ते। एकस्मिन् पाठे—'शृङ्गारहास्य.....अष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः' इति कारिका उपलभ्यते। अतो ज्ञायते यत् नाट्ये केवलम् अष्टानां रसानां सम्भवः। शान्तरसस्य परिवेषणं नाट्ये न सम्भवति। नाट्यशास्त्रस्य अन्यस्मिन् संस्करणे यत् पाठान्तरं दृश्यते तस्मात् ज्ञायते यत्—'शृङ्गारहास्य.....शान्ताश्च नव नाट्ये रसाः स्मृताः' इति। अर्थात् नाट्ये शान्तरससमेतान्तं नवरसानां परिवेषणं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्भवति। काव्यप्रकाशकृता मम्मटेन 'अष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः' इति पाठोऽङ्गीकृतः। तन्मतानुसारं नाट्ये शान्तरसस्य परिवेषणं कर्तुं न शक्यते।

सम्प्रति प्रश्नः नाट्ये शान्तरसः सम्भवति किम्? 'अष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः' इति पाठो युक्तः, आहोस्वित् 'नव नाट्ये रसाः स्मृताः' इति पाठ उपपन्नः? तथैव आचार्यमम्मटस्य मतं युक्तमयुक्तं वा? इति शोधप्रबन्धे सविस्तरमालोचयिष्यते।

❖

CS-33

आलङ्कारिकाभिमतमात्मचैतन्यम्

डॉ. छोटेलालत्रिपाठी, वाराणसी

"रसो वै सः", रसं लब्ध्वा ह्येवायमानन्दी भवति प्रभृति श्रुतिस्वारस्येनेदमवगम्यते यदालङ्कारिका आत्मचैतत्यमेव रसापरपर्यायत्वेनामनन्ति। अत्र "चित्" धातो आत्मचैतन्य-शब्दोऽयं विशेषणत्वेन निष्पद्यते। शद्वश्चायं जीवात्मबोधकः परमात्मबोधकश्च वर्तते। समस्तेष्वपि भारतीयदर्शनेषु बाहुल्येन चैतन्यपदस्य प्रयोगाः दृश्यन्ते। अतः निश्चीयते यत् समग्रेयं भारतीयदर्शनपरम्पराऽऽत्मचैतन्यपदेनाप्लाविताऽस्ति। शब्दब्रह्मवादिभिः वैयाकरणैरपि चैतन्यस्य महत्त्वं समभिव्याहृतं सन्दर्भेऽस्मिन्—

"अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यथा॥

भर्तृहरिप्रोक्ता कारिकेयं प्रमाणम्। कथनेनानेन शब्दार्थमयस्य परात्परपरब्रह्मरूपस्य चैतन्यस्य परा स्थितिः स्पष्टतयावगम्यते। ततः व्याकरणानुगामिनामलङ्कारिकाणामपि निकाये तदात्मचैतन्यं रसपरतया युक्तिप्रमाणाभ्यां प्रतिष्ठापितम्। तथा हि काव्यस्य शब्दार्थौ शरीरं, रसश्चात्मा। उक्तं हि—"रस एव आत्मा साररूपतया जीवनाधायको यस्य", अत्र न कस्यचिद्विमतिः।

❖

CS-34

सुबन्धुकृतवासवदत्तायां पञ्चसन्धिविवेचनम्

श्री नबूरि हेममार, तिरुपति

काव्यरचनाव्यवसाये इतिवृत्तस्य महत् स्थानं वर्तते। दृश्यश्रव्यादिकाव्यमिदमनुश्रुत्य इतिवृत्तमपि वैविध्यं भजते। आलङ्कारिकैः, रूपकलक्षणकर्तृभिश्च दशविधरूपकाणां लक्षणनिरूपणावसरे वस्तुनः नेतुः रसस्य च

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राधान्यं समुचितरीत्या समुन्नतस्थाने परिकल्पितमासीत्। रूपकाणामितिवृत्तस्य निरूपणावसरे लाक्षणिकैः कश्चन विशिष्टक्रमः प्रतिपादितः। तक्रममनुश्रुत्य रूपके निवृत्ते पञ्च अर्थप्रकृतयः पञ्चकार्यावस्थाश्च सभवन्ति। ते पञ्चसन्धीन् परिकल्पयन्ति। अतः पञ्चसन्धिषु आश्रित्य चतुष्षष्ठि अङ्गानि विलसितानि। दशविधनाटकेषु प्रतिनाटकमपि पञ्चसन्धि-सन्ध्यङ्ग-समन्वितःस्यादिति लाक्षणिकानाम् आशय। परन्तु भामहादिभिः कैश्चित् रूपकसाहित्यपरिमिताना पञ्चसन्ध्यङ्गानां प्रधान्यं श्रव्यकाव्येष्वपि अन्वेतुं शक्यते इति उपदेशः कृतः। इति।

❖

CS-35

कालिदाससाहित्ये प्रकृतिः

डॉ. सुदेशगौतमः, शिमला

प्रपूवाद् डुकृञ् करणे धातोः क्तिन् प्रत्यये कृते सति प्रकृतिशब्दोत्पत्तिः सञ्जायभते। प्रकर्षेण करोति कार्यमुत्पादयति इति प्रकृतिः। इयं प्रकृतिः ऑग्लभाषाया शब्दस्यानुवादमात्रं नास्ति परञ्च संसृतेः कार्यस्य साधिका सम्पादिका वर्तते।

अथर्ववेदे सत्त्वरजस्तमसां साभ्यावस्था प्रकृतिरीति कम्याथितमस्ति। इदमेव लक्षणं सांख्यदर्शनेऽपि मिलति। अथर्ववेदे कथितमस्ति यत् परमात्मा द्यू पिता च पृथिवी अर्थात् प्रकृतिः सर्वेषां जननी अस्ति। त्रिगुणात्मकप्रकृतेः सर्वेषामुत्पत्तिर्भवति। अतः सुखात्मकं दुःखात्मकमिदम् जगद् । भारतीयवाङ्मये साहित्यप्रकृतेरुभयोः क्षेत्रयोः अतीवमहत्त्वमस्ति। प्रकृतेः शब्दस्यार्थोऽतीव व्यापकोऽस्ति। अस्मिन् जगंति यत्किञ्चिद् वाह्याभ्यन्तरं वर्तते तत् सर्वं संसृतिरेवास्ति।

कविनक्षत्रमण्डले राकेशो महाकविः कालिदासः प्रकृतिचित्रणे परमनिपुणो गगनमण्डले मार्तण्ड इव विभाति। अस्य महाकवेः प्रकृतिचित्रणं षड्भागेषु विभक्तुं शक्यते। यथा—1. आलम्बनरूपे, 2. उद्दीपन-रूपे, 3. मानवीकरणरूपे, 4. अप्रस्तुतप्रशंसारूपेऽपि वालङ्कारविधानरूपे, 5. उपेदिशकारूपे—अस्मिन् शोधपत्रे महाकवेः साहित्ये षड्विधप्रकृतेः चित्रणस्य वर्णनं कृतमस्ति।

❖

CS-36

किरातार्जुनीयस्य आद्यसर्गत्रये त्रिवर्गसङ्घर्षः

सुश्री यालि अनुपमा

सर्वेषु प्राणिषु मानवः अत्युत्तमः यस्मै विधात्रा प्रचुरश्रेष्ठता दत्ता। श्रुतिस्मृत्यादीनां द्रष्टारः स्रष्टारश्च ऋषयः धर्मार्थकाममोक्षाः चतुर्विधपुरुषार्थाः मानवैः प्राप्तव्या इति जगदुः। तत्र पुरुषार्थेषु

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मस्यैवाग्रेसरत्वम्। उक्तञ्च यत् ध्रियते लोकोऽनेन धरति लोकं वा इति धर्मः। तत्र अर्थकाममोक्षान् प्राप्तुं मूलाधारः धर्म एव।

सर्वे गुणाः क़ाञ्चनमाश्रयन्ते यस्यार्थस्तस्य मित्राणि इत्यादयः उक्तयस्तु प्रसिद्धा एव। किन्तु इदं धनमपि धर्मानुरूपमेवार्जनीयमस्ति। इत्थं काममोक्षावपि धर्मस्यैव अनुषङ्गिकौ वर्तेते।

महाकविभारविविरचितकिरातार्जुनीयमहाकाव्ये द्रौपदीभीमार्जुनाः त्रिवर्गविषये सङ्घर्ष्यमाणाः आसन्। ते वनेचरात् कौरवानां वर्धनं श्रुत्वा धर्मराजमुत्तेजयन्ति युद्धाय प्रेरयन्ति च। तेषां भाषणेन ते अर्थकामाभ्यां मिथुनीकृताः इति ज्ञायते। धर्मराजस्तु सार्थकनामधेयः, प्रतिभावान्, दृढनिश्चय इव काव्येऽस्मिन् भासते। सः अन्यतमधार्मिक इव द्योतते। धर्मपथि गच्छति सति तस्य वनवासजीवने अनेके सङ्घर्षाः दृश्यन्ते। सः सङ्घर्षोऽपि साध्वसाध्वोः सात्त्विकराजसिकगुणयोः दैविकासुरिकभावयोः सत्यक्षात्रधर्मयोः भाग्याभाग्ययोः आशानिराशयोः मध्ये जातः।

इत्थं युधिष्ठिरः अर्थकामौ त्यक्त्वा स्वीयजीवने धर्मस्यैव प्राधान्यमदादिति नास्ति संशयः। धर्मराजः कथं त्रिवर्गाणां सङ्घर्षे अर्थकामौ विहाय धर्मस्यैव प्राधान्यं ददौ, इति विषयेऽस्मिन् समुचितविचारः क्रियतेऽस्मिन् पत्रे।

❖

CS-37

सौन्दर्यलहरी

श्री के.के. नागरः, चैनई

इह खलु श्रीमद् आद्यशङ्कराचार्येण ग्रथितं सौन्दर्यलहरी इति खण्डकाव्यमिदं संस्कृतस्योपासकतल्लजानां च करतलकमलेषु सम्प्रति निधीयते, अस्मिन् ग्रन्थे उपासनाद्वारा कथं शाम्भवस्थितिः उन्मनोऽवस्थाव प्राप्तव्या इत्यादिविषया आचार्येण सरलीक्रियन्ते।

❖

CS-38

कालिदासग्रन्थेषु मानवाधिकारस्य चर्चा

डॉ. जीवानन्दझा, बिहार

महाकविकालिदासस्य ग्रन्थेषु मानवाधिकारस्य चर्चा इति विषयस्याभिज्ञानाय सर्वप्रथमं मानवाधिकारस्य ज्ञानमावश्यकमस्ति, यतो हि अद्यत्वे शिक्षिताः व्यक्तयः अपि असावधानतयोदासीनतया च मानवाधिकारस्य निहितार्थेन प्रायः अपरिचिताः सन्ति। मानवाधिकारस्य अभिप्रायः तैः अधिकारैः स्पष्टो भवति यैः अधिकारैः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्यस्य सर्वथा कल्याणं जायते। ते अधिकाराः जन्मना प्रकृतिरुपेण वा उपलभ्यन्ते। मनुष्याणामधिकारा जन्मना प्राकृतिकरूपेण वा उपलभ्यन्ते। व्यक्तयः कीदृशाः सन्ति तत्र लिङ्गवर्ग-जाति-सम्प्रदाय-देश-प्रदेश-धर्मैः सम्बन्धिताश्च निर्धनाः भवेयुः नवा एतेषां समुचित-विकासाः संरक्षणानि सम्मानस्थानानि च जीवनस्य धारणाय जन्मना प्राप्यन्ते। मानवाधिकारः विधायिकया विहितः न तु नियमद्वारा भवति। मानवाधिकारनियमः पूर्वतः विद्यमानः तेभ्यः प्राकृतिकाधिकारेभ्यः मान्यतामात्रं ददाति।

❖

CS-39

डॉ. ओमप्रकाशपाण्डेयविरचितं जीवनपर्वनाटकम् : एकानुशीलनम्

डॉ. रेखा शुक्ला, लखनऊ

जीवनपर्वनाटकम् ऐतरेयब्राह्मणस्य त्रयस्त्रिंशेऽध्याये वर्णितहरिश्चन्द्रोपाख्यानाधारितमस्ति। राज्ञः पुरोहितः राज्याभिषेकावसरे राजानाम् एतादाख्यानं श्रावयति स्म। समाजशास्त्रधर्मशास्त्रनृतत्त्वशास्त्राणां दृष्ट्या अस्य महती विशिष्टता अस्ति। शुनःशेपाख्यानेन प्रसिद्धे एतदाख्याने कर्मनिष्ठजीवनस्य पुरुषार्थसाधनायाः गौरवगाथारूपेण चरैवेति चरैवेति उद्घोषोऽस्ति।

सप्ताङ्केषु विभक्तमिदं नाटकम् ऐतिहासिकं सदपि कवेः मौलिककल्पनां प्रकटयति। स्वराष्ट्रकल्याणाय पुत्रस्यापि बलिं प्रदातुं उद्यतो राजा, स्वमित्राय स्वप्राणान् दातुं प्रस्तुतः शुनःशेपः, तेन सह सुनन्दायाः उद्वाहः, ब्राह्मणकुलोत्पन्नवेदविज्ञ-ऋषेः अजीगर्तस्य तन्त्रमार्गावलम्बनम् इत्यादिप्रसङ्गाः प्रसिद्धाख्यानेन भिन्नरूपेण प्रस्तुताः कविः मानवीयदृष्ट्या पात्राणामुदात्तस्वरुपं प्रस्तौति।

❖

CS-40

अभिज्ञानशाकुन्तले अभिज्ञानविचारः

श्री जितेन्द्रकुमारदाशः, कटकः

विश्वसाहित्ये अभिज्ञानशाकुन्लतनाटकस्य स्थानं स्वतन्त्रं विराजते। विश्वकवेः कालिदासस्य वैचक्षण्यं काव्यानां विरचने यथा विद्यते, ततोऽधिकं वर्त्तते तेषां नामकरणे। अहो वैचित्र्यं कालिदासस्य शाकुन्तल-नाटकस्य नामकरणे। नाम्नः व्युत्पत्तिविषये तद्विद आमनन्ति यद् अभिज्ञानेन ज्ञाता (स्मृता) शकुन्तला, अभिज्ञानशकुन्तला। ताम् अधिकृत्य कृतं नाटकम् अभेदोपचाराद् अभिज्ञानशाकुन्तलमिति। शापकारणतः राजमनसो विस्मृतिं गता शकुन्तला पुनः अभिज्ञानेन ज्ञाता (स्मृता) इति हेतोः अभिज्ञानस्य प्राधान्यमिच्छति कविः नामकरणप्रसङ्गे। सत्यं चेद् अभिज्ञानस्य विशेषत्वम्, तर्हि किमस्ति तत्र अभिज्ञानम्? केचन कालिदासतत्त्वविदः मुद्रिकामभिज्ञानं स्वीकुर्वन्ति। परन्तु नाटके परिलक्ष्यते यत् यद्यपि धीवरात् मुद्रिकां प्राप्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा विस्मृता प्रियां पुनः स्मरति तथापि इयं सा मे प्रिया शकुन्तला इति यत् प्रत्यभिज्ञानं राज्ञः दुष्यन्तस्य मनसि सञ्जातं तत् प्रत्यभिज्ञानं (Recognition) मुद्रिकां प्राप्य न भवति, परन्तु सर्वदमनम् (भरतं) एव प्राप्य भवति। सह सिंहेन खेलन् सर्वदमनः यदा तापस्या वारितः तदा तापसी द्वितीया मृण्मयूरम् उपहृत्य वदति सर्वदमन! शकुन्तलावण्यं प्रेक्षस्व। तस्मिन्नवसरे सर्वदमनः सदृष्टिक्षेपं वदति — कुत्र वा मम माता? तदा एव राजा जानाति नूनम् एषः शाकुन्तल इति। पुनः मणिबन्धस्पर्शेन स्वस्य सर्पदंशजनितं मरणं न भवति इति जानाति। एषा प्रत्यक्षीकृता विक्रिया राजानं स्वप्रियां शकुन्तलां स्मारयति। पुनर्यदा बालः मातरं प्रति गन्तुम् इच्छति तदा राजानं वदति—मम खलु तातो दुष्यन्तः, न त्वम्। प्रविशन्तीं शकुन्तलां दृष्ट्वा दुष्यन्तो वदति सा इयम् अत्रभवती शकुन्तला, या एषा—

वसने परिधूसरे वसाना नियमक्षाममुखी धृतैकवेणिः।
अतिनिष्करुणस्य शुद्धशीला मम दीर्घं विरहव्रतं बिभर्त्ति॥

तत्र शकुन्तला जानाति पतिं पुत्रेण। राजाऽपि शकुन्तलां प्रत्यभिजानीते सर्वदमनमाध्यमेन। यतः स स्वयं वदति—प्रिये! क्रौर्य्यमपि मे त्वयि प्रयुक्तमनुकूलपरिणामं संवृत्तं यद् इहम् अदानीं त्वया प्रत्यभिज्ञातम् आत्मानं पश्यामि। अत्र प्रत्यभिज्ञेति शब्दः कालिदासस्य निचितः। कस्तावत् प्रत्यभिज्ञातः? स्वयं दुष्यन्त एव। कस्मिन् विषये प्रत्यभिज्ञातः? शकुन्तलाविषये। प्रत्यभिज्ञायाः साधनम् अथवा प्रत्यभिज्ञानमत्र किम्? मुद्रिका वा सर्वदमनो वा? नूनं सर्वदमनः, यतः सप्तमाङ्के दुष्यन्तमुखेन कविः स्वयम् एतत् स्वीकरोति।

❖

CS-41

आनन्दवर्धनसम्मत-अलङ्कारतत्त्वविवेचनम्

पण्डितप्रतापचन्द्रशतपथी, ब्रह्मपुरम्

खीष्टाब्दस्य नवम्यां शताब्द्यां प्रादुर्भावमुपेतः श्रीमदानन्दवर्धनाचार्यो ध्वनिप्रस्थानप्रतिपादपकतया काव्यालङ्कारशास्त्रजगत्यप्रतिभटं पदमध्यास्ते एतत्प्रणीतो ध्वन्यालोकाभिधो ध्वनिप्रस्थानव्याख्यानग्रन्थः काव्यात्म-तत्त्वबुभुत्सूनां परिषत्सु प्रतिपाद्यस्य विषयस्य गाम्भीर्येण विवेचनस्य सौष्ठवेन च चिराय समुपास्यमानो विराजते, ग्रन्थेऽस्मिन् साङ्गोपाङ्गस्य ध्वनेस्तदितरस्य च प्रसक्तानुप्रसक्तस्य विषयजातस्य सुविशदं सयुक्तिकं च निरूपणं समुपलभ्यते।

चिरन्तनैर्भामहादिभिः काव्येष्वलङ्काराणामेव चारुत्वहेतुता प्रतिपादिता, वामनेन गुणसंस्कृत-पदसन्निवेशस्वरूपस्य रीतितत्त्वस्य काव्यात्मत्वं प्रतिज्ञातं चमत्कारसमर्पकाणामखिलानामेव तत्त्वानामलङ्कारेषु रीतिषु च यथोचितमन्तर्भावादविशिष्टस्य रामणीयकप्रकारस्य सद्भावं प्रति विप्रतिपन्न-बुद्धिभिस्तदानीन्तनैः काव्यालङ्कारविद्भिः प्रत्याखातं ध्वनिलक्षणमर्थं काव्यात्मतया सोपपत्तिकं सप्रपञ्चञ्च सुप्रतिष्ठितं विधाय सहृदयानन्दवर्धनेन श्रीमदानन्दवर्धनेन काव्यालोचनजगत्यक्षयालोकभासुरो ज्ञानमयः प्रदीपः प्रज्वालितः।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-42

मालतीमाधव-मल्लिकामारुतप्रकणयोः साम्यपरिशीलनम्

डॉ. कम्भम्पाटि साम्बशिवमूर्तिः, पुरी

संस्कृतसाहित्ये भवभूतिः सुप्रसिद्धः कविः। उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते इति वचनं तस्यानुपमां कीर्तिं प्रकटयति। मालतीमाधवम् इति तस्य प्रकरणं संस्कृतजगति सुपरिचितमेव। उद्दण्डः महान् पण्डितः कविश्च। पञ्चदशशताब्दीयः उद्दण्डः वाधूलगोत्रोद्भवः। आपस्तम्बशाखीयः, गङ्गानाथस्य पुत्रश्चासीत्। जन्मप्रदेशः तुण्डीरमण्डले क्षीरनदीतीरे लाटपुरमिति अग्रहारः। अनेन विरचिता ग्रन्थाः–मल्लिकामारुतम् (प्रकरणम्), कोकिलसन्देशः (सन्देशकाव्यम्), नानार्थरत्नमाला (कोशग्रन्थः), स्वातिचाटु (मुक्तकम्), नटाङ्कुशः। दशाङ्कोपेतं शृङ्गाररसप्रधानं मल्लिकामारुतप्रकरणमिदं संस्कृतप्रकरणेषु उत्तमप्रकरणग्रन्थेन परिगण्यते।

उद्दण्डः मल्लिकामारुतप्रकरणं भवभूतेः मालतीमाधवप्रकरणमनुकृत्य व्यलिखत्। यद्यपि अनुकृत्यैव प्रकरणरचनां चकार, तथापि तस्य स्वाभाविकीं शैलीं नात्यजत्।

लेखेऽस्मिन् विषयोऽयं प्रस्तूयते यत् मालतीमाधवमल्लिकामारुतप्रकरणयोः साम्यं केषु केषु विषयेषु अस्तीति। पात्राणां नामसाम्यं, पात्रचित्रणम्, इतिवृत्तं, घटनाः, वर्णनाः इत्यादिविषयेषु साम्यं वर्तत इति।

❖

CS-43

संस्कृतमाध्यमेन पाठने समस्याः

कु. श्रद्धा उपेन्द्र-टोकेकर

सम्प्रति संस्कृतक्षेत्रे नैकाः समस्या दृश्यन्ते। तत्रापि पठनक्षेत्रे समस्या वर्तन्ते। एतासां समस्यानां स्वरूपमपि यथास्थानं भिन्नं दृश्यते। अधुना देशे समानरूपेण वर्तमाना एका एव समस्या अस्ति। सा संस्कृतमाध्यमस्य समस्या देशे। कुत्रापि अद्य संस्कृतमाध्यमेन पाठनं न भवति। अतः देशे संस्कृतक्षेत्रे च समस्यानां पर्वत उद्भूतः। एतस्य पर्वतस्य उत्पाटनार्थं प्रत्येकं संस्कृतानुरागिणां मनसि यत् चिन्तनं भवति तत् प्रातिनिध्यरूपेण अत्र प्रस्तोतुमिच्छामि।

शिक्षणक्षेत्रस्य शिक्षकःच्छात्रः, पाठशाला, पाठनपद्धतिश्चेति महत्त्वपूर्णबिन्दवः। शिक्षकछात्रयोः मध्ये सेतुरूपेण शिक्षणपद्धतिः कार्यं करोति। अतः तैत्तिरीयोपनिषद्यपि—

आचार्यः पूर्वरूपम्, अन्तेवास्युत्तररूपम्, विद्यासन्धिः प्रवचनं संधानम् इति वर्णितं दृश्यते। पूर्वतन कालेऽपि शिक्षणं महत्त्वपूर्णमासीत्। तदा एतया एव भाषया जनानां सर्वे व्यवहाराः प्रचलन्ति स्म। कैय्यटव्याख्यानं, पाणिनीयव्याकरणं, पतञ्जलिमहर्षीणां महाभाष्यम् अत्र प्रामाण्यमभिधत्ते।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सद्यः परिस्थितिमवबोधयामश्चेत् ज्ञायते यत् अद्यतनशिक्षणपद्धतिः—1. पारम्परिकी, 2. आधुनिकी चेति धाराद्वये विभाजिता अस्ति। द्वयोः अर्वाचीनपद्धतौ कुत्रापि संस्कृतमाध्यमेन पाठनं न भवति।

एतादृशी परिस्थितिः अस्ति चेदपि तस्याः दूरीकरणम् अशक्यं न। अन्यविषयाणामिव संस्कृतभाषायाः अपि पाठनं तयैव भाषया भवति चेत्, परिस्थितिः सुकरा भवेत्। तदर्थं पाठनमाध्यमरूपेण संस्कृतस्य महत्त्वं ज्ञातव्यम्।

1. बालकस्य स्वाभाविकस्मृतिवर्धनार्थम्
2. संस्कृतस्य सर्वतोमुखविकासाय
3. सर्वेषां पठन-पाठनसौकर्यार्थम्
4. संस्कृतसम्भाषणविषये छात्राणामात्मविश्वासवर्धनार्थम्
5. पुरातनग्रन्थेषु विद्यमानज्ञानस्य संरक्षणार्थम्

संस्कृतं माध्यमरूपेण आवश्यकम्।

संस्कृतमाध्यमेन पाठने समस्याः—

1. शिक्षकेषु भाषणकौशलाभावः।
2. प्राथमिकस्तरे संस्कृतमाध्यमेन अपठित्वापि स्नातकस्तरे संस्कृतमाध्यमेन अधीयानानां छात्राणां समस्या।
3. शिक्षकसंख्यायाः न्यूनता।
4. प्रथमाकक्षातः संस्कृतम् अनिवार्यं नास्ति।
5. शिक्षाशास्त्रीछात्राणां कृते संस्कृतमाध्यमम् अनिवार्यं नास्ति।

समस्यानां निराकरणोपायाः—

1. शिक्षक-छात्रप्रशिक्षणवर्गाः स्वीकरणीयाः।
2. भाषणकुशलानां शिक्षकाणां नियुक्तिः कर्तव्या। इत्यादयः।

भारतदेशस्य समग्रत्वं, भारतीसंस्कृतेश्च महत्त्वं संस्कृतेनैव ज्ञातुं शक्यम्, अतः देशे सर्वत्रापि संस्कृतं माध्यमरूपेण पाठनीयम् इति शेषः।

❖

CS-44

मानवजीवने सुभाषितानां पात्रम्

श्री जि. पद्मनाभम्, तिरुपति

आहारनिद्राभयमैथुनञ्च सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्।
ज्ञानं हि तेषामधिको विशेषो ज्ञानेन हीनाः पशुभिस्समानाः॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्लोकेन अनेन ज्ञायते यत् मानवानां महत्त्वं कीदृशम् इति? चतुरशीतिलक्षसु जीवराशिषु मानवानां कृते महन्महत्त्वं विद्यते। एतेषु जीवराशिषु मानवाः बुद्धिमन्तः। इतरजीवानाम् अपेक्षया मानवानां जीवनं विलक्षणतया भवति। मानवाः आत्मनः बुद्धिबलेन भाषणे, पठने, लेखने इतरजीवानामपेक्षया भिन्नाः भवन्ति। अनेकसहस्रवत्सरेषु मानवैः यत् ज्ञानं सम्पादितं यत् साहित्यं संवर्धितम्, तदितरेषां सुतरां नास्ति।

मानवाः मनोबलेन बुद्धिबलेन आत्मनः अनुभवबलेन दैनन्दिनजीवने याः समस्याः आगताः, ताः सम्मुखीकृत्य भाविपौराणां कृते अपेक्षितानि अमूल्यानि सुभाषितानि आरचितवन्तः।

आदौ तावत् किं नाम सुभाषितम्? इत्यत्र ईषत् विवरणं प्रदीयते। सम्यक् भाषितं सुभाषितम्। जनहिताय, सौकर्याय, आचरणे स्थापनाय, जीवनगतिविधीनां परिवर्तनाय, समीचीनजीवनयापनाय परेषां आदर्शजीवनाय, धर्मार्थकाममोक्षाणां सम्पादनाय च एतद्विहितम् इति ज्ञायते। कवीनाम् अनुभवबलेन इदं तैः स्पष्टीकृतं स्यात्।

बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः।
अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमङ्गे सुभाषितम्॥ (भ.नी. 2)

अनेन भर्तृहरिणा विरचितेन श्लोकेन ज्ञायते यत् कविभिः अनुभवज्ञैः, महात्मभिश्च सुभाषितानि उक्तानि भवन्ति इति। परं सुभाषितश्रोतारः तानि न शृण्वन्ति फलतः सुभाषितं वक्तुः हृदये एव जीर्णं भवति इति श्रूयते।

एतानि सुभाषितानि मानवहितकराणि जीवनभागधेयानि, दशादिशानिर्देशकानि। यथार्थतः एतानि जीवने आचरणे स्थापितानि चेत्—सः मानवः प्रजास्वाम्ययुक्तः, संघसंस्कर्ता, सन्नागरिकः, धर्मप्रवर्तकः, देशभक्तश्च भवेत्। सामान्यमानवजीवनं परिवर्तयितुम् एकमेव सुभाषितमलम्। किमुत सर्वेषां समवायः? एकेनैव सुभाषितेन तदीयं जीवनं परिवर्तितं चेत् अनेकैः सुभाषितैः इतोऽप्यधिकतया परिवर्तितं भवेत्। नास्त्यत्र संशयः। एकेनैव वाक्येन वक्तुं शक्यते यत् सुभाषितैः मानवाः चतुरस्राः, धार्मिकाः, सर्वाङ्गीणविकासयुक्ताः मोक्षगुणयुताः साक्षात् देवसदृशा एव भवेयुः। एवं मानवजीवने सुभाषितानां पात्रं कीलकम् इति वक्तुं शक्यते।

❖

CS-45

छन्दःशास्त्रस्य समासेन परिचयः

डॉ. विद्यानन्द-मुद्गलः, वाराणसी

छन्दसाम् उत्पत्तिः कदाभूत् इति सम्यक्प्रकारेण न निश्चेतुं शक्यते; यतो हि सर्वेऽपि वेदाः छन्दोमयाः सन्ति। अतः इदमेव वक्तुं युक्तं यत् अतिप्राचीनकालादेव च्छन्दांसि प्रतिष्ठितानि सन्ति। गायत्र्यादिवैदिक-च्छन्दोभिरेव लौकिकच्छन्दसामपि उत्पत्तिरभूत्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छन्दसां व्युत्पत्तिः निरुक्तिश्च—छदि संवरणे धातोः च्छदि आह्लादने धातोः छन्दः शब्दः उत्पद्यते। महर्षियास्केन निरुक्ते उक्तं यत् च्छन्दांसि छादनात् इति व्युत्पत्तिनिरुक्तिभ्यां निश्चीयते यत् आह्लादमयमाच्छादनं छन्दः।

शब्दानाम् अनेकार्थाः इति सिद्धान्तानुसारेण छन्दःशब्दोऽपि अनेकार्थतां भजते। यथा छन्दः पद्ये विलासे च स्वैराचायरे पद्ये अभिलाषायाम् रश्मिसु अन्येष्वपि अर्थेषु छन्दःशब्दस्य प्रयोगो भवति, तथापि पद्यरूपः अर्थ एव प्रसिद्धः।

छन्दसां व्यापकत्वं—सर्वं वैदिकं लौकिकं च वाङ्मयं छन्दोमयमेव वर्तते, अतः भरतमुनिः व्याहरति नाट्यशास्त्रे छन्दोहीनो न शब्दोऽस्ति, शिक्षायामप्युक्तं छन्दः पादौ तु वेदस्य, ऋक्सर्वानुक्रमण्यां कात्यायनोऽपि ब्रवीति यदक्षरपरिमाणं तत् छन्दः, कविवरराजशेखरेणोक्तम्—यत्, काव्यपुरुषस्य रोमाणि च्छन्दांसि, अनेन छन्दसाम् आवश्यकत्वं, व्यापकत्वञ्च स्पष्टम्।

छन्दःशास्त्रस्य परम्परा—महतीयम् छन्दःशास्त्रस्य परम्परा। साम्प्रतं प्राथम्येन पिंगलाचार्यस्य पिंगल-छन्दःसूत्रस्य ग्रन्थः समुपलभ्यते, किन्तु, पिंगलाचार्यात् प्रागपि कपिलकौंडिन्यशौतवप्रमुखाः छन्दःशास्त्रस्य अनेके आचार्या समबभूवुः तेषां मतानि पिंगलछन्दःसूत्रे उद्धृतानि सन्ति। पिंगलाचार्यानन्तरन्तु शताधिकाः छन्दःशास्त्रस्य आचार्या अभवन् येषाम् अद्यापि प्रशस्ततमग्रन्थाः समुपलभ्यन्ते। पूर्वं छन्दसा द्वौ भेदौ वार्णिकच्छन्दांसि, मांत्रिकच्छन्दांसि च। पुनः वार्णिकच्छन्दसां पंचप्रकाराः प्रसिद्धाः—सम, अर्द्धसम,-विषम,-उपजाति,-दण्डकभेदात्।

समस्तानि च्छन्दांसि मगणादिगणैः निर्मितानि बभूवुः भवन्ति च, तत्र अष्टौ गणाः लघु गुरु च भवतः, एभिः छन्दःशास्त्रस्य प्राणभूतैः दशभिरक्षरैः समस्तं वाङ्मयं व्याप्तम्। उक्तं च हलायुधभट्टेन-एभिः दशभिरक्षरैः समस्तं वाङ्मयं व्याप्तम्, त्रैलोक्यमिव विष्णुना।

छन्दसां काव्येन सह विशिष्टः सम्बन्धः—यद्यपि आयुर्वेद-ज्योतिषप्रमुखानि सर्वाणि शास्त्राणि छन्दोमयानि सन्ति। तथापि रसैकप्राणभूतत्वात् सहृदयहृदयावर्जकत्वात् लोकोत्तराह्लादमयत्वात् च काव्येन सह छन्दसां विशिष्टः सम्बन्धः संघटते।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-46

प्रियदर्शिका और रत्नावली में साम्य

महेश के. मेत्रा, गुजरात

'प्रियदर्शिका' और 'रत्नावली' दोनों ही श्रीहर्ष की कृतियाँ है। दोनों नाटिकाओं में वस्तु-विन्यास अन्यन्त प्रभावशाली और सुनियोजित है। दोनों नाटिकाओं में गतिशीलता और धारावाहिकता है। दोनों में कल्पना की ऊँची उड़ान भी देखने को मिलती है। 'प्रियदर्शिका' कवि का कल्पना-पक्ष उतना उभरकर सामने नहीं आता है, जितना 'रत्नावली' में। रत्नावली में कवि की कल्पना अपने प्रौढ़ रूप में है। 'प्रियदर्शिका में गर्भ नाटक की मौलिक कल्पना है, इसी प्रकार रत्नावली में ऐन्द्रजालिक का दृश्य मौलिक अवदान है। इसमें वेशभूषा से सम्बन्धित नवीन उद्भावनाएँ की गयी हैं। इसके कारण ही सागरिका अपने आपको वासवदत्ता के रूप में प्रस्तुत कर पाती है।

दोनों नाटिकाओं में कतिपय साम्य दिखायी पड़ते है। जैसे दोनों नाटिकाओं में राजा अपनी प्रियतमा पर कुछ उपकार करता है। 'प्रियदर्शिका' में वह उसे भ्रमर-बाधा से बचाता है और विष का प्रभाव उतारता है। उधर 'रत्नावली' में वह फाँसी लगाकर प्रियतमा को मरने से बचाता है और कृत्रिम आग की लपटों से भी उसकी रक्षा करता है। दोनों नाटिकाओं में अन्य कई दृष्टि से भी साम्य है।

❖

CS-47

महाकवि भास की रङ्गोपादेयता के आयामों की खोज

डॉ. सङ्गीता गुन्देचा, भोपाल

भासनाटकचक्र के तेरह रूपकों में विविध पात्र और संवाद अभिनेताओं के लिए सदियों से आकर्षण का केन्द्र रहे हैं। इसका एक कारण तो यह है कि भास अपने चरित्रों के कई आयामों को उद्घाटित करते हैं। 'उरूभङ्गम्' में दुर्योधन के चरित्र को भास ने इस तरह रचा है कि उसके बारे में दर्शकों के मन में यह द्वन्द्व उत्पन्न हो जाता है कि वह दुर्योधन है या सुयोधन। दुर्योधन के इन दो आयामों के बीच भास इस तरह का तनाव बनाये रखते हैं कि रूपक की समाप्ति पर भी वह तनाव जीवन्त बना रहता है। इसी तनाव का वहन करते हुए अभिनेता दुर्योधन के चरित्र को अनेक दिशाओं में विस्तार दे पाते हैं। इस तरह के चरित्रों का अभिनय करने के लिए विशिष्ट अभिनय प्रतिभा अपेक्षित होती है, इसीलिए अभिनेताओं को भास के चरित्रों का अभिनय करना चुनौतीपूर्ण लगता रहा है।

समकालीन आधुनिक एवं पारम्परिक रङ्गनिर्देशक हो, अभिनेता हो या नाट्यकार, सभी ने रङ्गकर्म के आदिपुरुष भास से कुछ न कुछ ग्रहण करते हुए उनकी रङ्गोपादेयता की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है। महाकवि भास ने अपने रूपकों में जो नाट्यनिर्देश दिये हैं, वे अभिनेताओं और रङ्गनिर्देशकों को अनेकानेक रङ्गोत्प्रेक्षाएँ करने के लिए प्रेरित करते रहे हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाकवि भास के रूपकों में आये नाट्यनिर्देशों और संवादों की रङ्गोपादेयता को प्रदर्शित करने में मैंने प्रस्तुत शोध-पत्र के भाग-एक में 'भास के नाट्यनिर्देश और चाक्यार', 'भास के नाट्यनिर्देश और रङ्गनिर्देश', 'भास के नाट्यनिर्देश और अभिनेता' तथा भाग-दो में 'भास के संवाद और चाक्यार', 'भास के संवाद और रङ्गनिर्देशक' एवं भाग-तीन में भास के रूपकों की दृश्यावलियों की ओर सामाजिकों का ध्यान आकर्षित करते हुए यह शोध निष्कर्ष दिया है कि भास के रूपकों में अन्तरित भावों, स्थितियों, घटनाओं, विडम्बनाओं, संक्षिप्त संवादों और उनकी दृश्यावलियों को प्रदर्शित करने के लिए कल्पनाशील रङ्गनिर्देशक तथा क्षमतावान् अभिनेता अपेक्षित है, जो अपनी सूक्ष्म रङ्गदृष्टि से इन रूपकों का मञ्चन करते हुए उसमें अभिव्यञ्जित रस का गम्भीर सामाजिकों को अनुभव करा सकें। कावालम नारायण पणिक्कर, शान्ता गाँधी, हबीब तनवीर, रतन थियम, बंसी कौल जैसे कुछ रङ्गनिर्देशकों ने यह प्रयत्न किया है और अपने प्रयत्नों में वे संवेदनशील सामाजिकों तक भास के रूपकों में अन्तर्भूत इन आयामों को सम्प्रेषित करते हुए समकालीन रङ्गजगत् के लिए उनकी रङ्गोपादेयता को सिद्ध करने के प्रयास में सफल हुए हैं; लेकिन ऐसे निर्देशकों और अभिनेताओं की संख्या बहुत थोड़ी है। हम कह सकते हैं कि भास के संवाद अभिनेता की मध्यस्थता पर आत्यन्तिक रूप से निर्भर है, सीधे पढ़े जाने पर वे उतने उर्जस्वित नहीं जान पड़ते, जितने कल्पनाशील अभिनेताओं और निर्देशकों की मध्यस्थता के बाद। वे अभिनेताओं की जीवन्त उपस्थिति के सहारे ही अपनी पूर्णता प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए भास के रूपकों का लिखित पाठ प्रथमतः अभिनेताओं और निर्देशकों को सम्बोधित है और उन्हीं के माध्यम से दर्शकों को।

❖

CS-48

संस्कृत और छत्तीसगढ़ी लोकमानस

डॉ. महेशचन्द्र शर्मा, दुर्ग

संस्कृत के बिना भारत और भारत के बिना संस्कृत की परिकल्पना नहीं की जा सकती। संयुक्त मध्यप्रदेश और उसके पूर्वकाल से ही छत्तीसगढ़ भारत व संस्कृत का हृदय रहा है। प्राचीन इतिहास में इस भू-भाग को दक्षिण कौशल कहा जाता था। नवोदित छत्तीसगढ़ राज्य का अपना एक समृद्ध सांस्कृतिक इतिहास रहा है। पुरातात्त्विक सम्पदा से यह राज्य समृद्ध रहा है। संस्कृत के सम्बन्ध में इस राज्य की श्रीसम्पन्नता के उदाहरण हमारे सांस्कृतिक इतिहास में भरे पड़े हैं। यह सुखद और आश्चर्यजनक संयोग है कि आदिकवि महर्षि **वाल्मीकि**, आदिनाट्यशास्त्री **भरतमुनि**, कविकुलगुरु **कालिदास**, पद-वाक्य-प्रमाणज्ञ महाकवि **भवभूति** के साथ ही विश्व के श्रेष्ठ गद्यकार महाकवि **बाणभट्ट** का सम्बन्ध भी इस पावन भूमि से रहा है। संस्कृत साहित्य के सर्वाधिक लोकप्रिय महानायक श्रीराम जी का सम्बन्ध इस पुण्यभूमि से रहा है। रायपुर जिले में स्थित तुरतुरिया को आज भी आदिकवि का स्मारक माना जाता है। वनवास के 14 में से 11-12 वर्ष उन्होंने यहीं व्यतीत किये। पुराविद् और इतिहासकार इस बात को जानते तथा मानते हैं कि बस्तर का महाकान्तर ही दण्डकारण्य था। रामकथा की मुख्य घटनाएँ यहीं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर घटित हुई। यही नहीं भगवान् राम की माता कौशल्या भी इसी कौशल प्रदेश की पुत्री थीं। कौशल्या भी वे इसी कारण कहलाईं। विवाह के पश्चात् भी कन्या अपने जन्मस्थान अथवा माइके के नाम से जानी जाती हैं। पूरे राष्ट्र के समान छत्तीसगढ़ में भी यह परम्परा आज भी जारी है। रायपुर की लड़की कहीं भी विवाहित होकर जायेगी, तो रयपुरहिन ही कहलायेगी। इसका अर्थ होगा रायपुर वाली। आदिकाव्य के इन महान् पात्रों की तीन पीढ़ियों का इस क्षेत्र से सम्बन्ध रहा है। रामकुमार **लव** के नाम से **लवन** और **कुश** के नाम से **कसडोल** नाम के स्थान छत्तीसगढ़ में हैं। कविकुल गुरु के रघुवंश में कौशलदेश की पुत्री कौशल्या का विवाह दशरथ जी के साथ होने का उल्लेख है। महाकवि भवभूति के **उत्तरचरितम्** में दण्डकारण्य (बस्तर) की भयंकरता का बड़ा ही जीवन्त वर्णन किया है। सम्राट् एवं कवि श्रीहर्ष अपनी **रत्नावली** में तथा ज्योतिर्विद् वराहमिहिर अपनी **बृहत्संहिता** में छत्तीसगढ़ का सविशेष उल्लेख करते हैं। छत्तीसगढ़ के महान् संस्कृत कवि **ईशान** के समकालीन बाणभट्ट तथा आठवीं सदी के कवि पुष्पदन्त दोनों ही ईशान का उल्लेख करते हैं। प्रसिद्ध बौद्ध प्रचारक तथा संस्कृत महाकाव्य **सिद्धार्थचरितम्** के प्रणेता बुद्धघोष ने अपने छत्तीसगढ़ प्रवासों का उल्लेख किया है। संस्कृत साहित्य में इस प्रदेश के योगदान की यह लम्बी परम्परा अभी तक जारी है। **पण्डवानी गायन** जो कि छत्तीसगढ़ की पहचान है, संस्कृत के सबसे महत्त्वपूर्ण महाग्रन्थ **महाभारत** से सीधे प्रेरणा ग्रहण करता है। पण्डवानी में भी वेदमती शैली अधिक लोकप्रिय है।

पद्मभूषण डॉ. तीजन बाई ने **व्यास परम्परा** से प्राप्त इसी पण्डवानी गायन के माध्यम से छत्तीसगढ़ और भारत की पहचान पूरे विश्व में बनायी। इस गायन में काव्य, कथा तथा नाट्य तीनों तत्त्व रहते हैं। जन-मन में लोकप्रिय इस विधा से संस्कृत और छत्तीसगढ़ की पृष्ठभूमि की जानकारी जनसामान्य को हो जाती है।

संस्कृत इस प्रकार हर क्षेत्र में प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से छत्तीसगढ़ जनजीवन को आज भी प्रभावित कर रही है। आगे भी करती रहेगी। अनेक प्रमाणों के माध्यम से इस विस्तृत शोध-पत्र में उपर्युक्त विचारों को प्रामाणिक ढंग से प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास किया गया है। आशा की जा सकती है कि छत्तीसगढ़ी संस्कृति, जन-जीवन, लोकानुभव, लोकविश्वास तथा अन्ततः जनमानस के सोच-विचार को प्रभावित करने वाले महान् संस्कृतसाहित्य का यह रूप भी प्राच्यविद्याविशारदों तथा भारतविद्यानुरागियों को अच्छा लगेगा। संस्कृतसाहित्य के अध्ययन तथा अनुसन्धान को इससे एक नयी दिशा मिलेगी।

❖

CS-49

रामायणमञ्जरी में नैतिक उपदेश

डॉ. मधुबाला सिन्हा

कश्मीरी महाकवि क्षेमेन्द्र (1000 ई.-1070 ई.) ने प्रायः चालीस पुस्तकें लिखी थीं, जिनमें आज अठारह उपलब्ध तथा प्रकाशित हैं। वे एक साथ काव्यशास्त्री, महाकवि, व्यंग्यकार तथा समाजसुधारक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी थे। अपने समाज की विकृतियों पर व्यंग्य करते हुए नैतिक मूल्यों की रक्षा के प्रति उनका प्रयास निरन्तर वर्तमान रहा। प्रस्तुत पत्र में क्षेमेन्द्र की प्रायः प्रथम कृति के रूप में मान्य रामायणमञ्जरी के विभिन्न स्थलों में कवि के नैतिक उपदेशों की झाँकी दी गयी है। कुछ उपदेश पारम्परिक तथा रामायण से लिए गये हैं, तो कुछ उपदेशों में क्षेमेन्द्र की मौलिकता प्राप्त होती है, जहाँ उन्होंने अपने समाज के कुत्सित पक्ष को तो प्रस्तुत किया ही है, उसके आदर्श रूप की कल्पना भी उनके मन में विद्यमान है। उदाहरणार्थ उन्होंने गुण की महत्ता दिखाते हुए कहा है कि गुणवान् होने पर किसी शत्रु को स्वजन बनाने में आपत्ति नहीं; किन्तु द्वेषी स्वजन का परित्याग कर देना चाहिए। इसी प्रकार उन्होंने कहा है कि पृथ्वी की रक्षा न करने वाले क्षत्रिय, वेदज्ञान से विहीन ब्राह्मण एवं दान न करने वाले धनिक पृथ्वी के भार हैं। रामायणमञ्जरी में इस प्रकार के शताधिक नीतिवाक्य हैं, जिनमें कुछ को उदाहरणार्थ इस पत्र में प्रस्तुत किया गया है।

❖

CS-50

कुमारसम्भवे हिमालयवर्णनसमीक्षा

श्रीमती सोनमन्ती देवी, राँची

प्रकृति वर्णन के अद्वितीय आचार्य महाकवि कालिदास रचित कुमारसम्भव महाकाव्य में हिमालय-वर्णन बहुत ही रोचक है। कवि ने वन-सम्पदा, वन्य-प्राणी तथा गंगा आदि नदियों का सजीव चित्रण किया है। प्रकृति वर्णन के द्वारा कवि ने पर्यावरण को सुरक्षित रखने का काव्यात्मक शैली में उपदेश दिया है। कवि का यह सन्देश सार्वकालिक और सार्वभौम है। विस्तृत चर्चा सम्पूर्ण शोध-पत्र में।

❖

CS-51

मेघदूते नारी समीक्षा

श्री उमाकान्त मिश्र, राँची

मेघदूत खण्डकाव्य महाकवि कालिदास की अमर कृति है। यह खण्डकाव्य प्रकृति पुरुषात्मक वर्णन प्रधान है। प्रकृति और पुरुष में पारस्परिक समन्वय मंगलदायक होता है। प्रकृति का चित्रण इस काव्य में नारी के रूप में हुआ है। सृष्टि के विस्तार में नारी का महत्त्वपूर्ण योगदान है। नारी प्रेरणारूपा है। प्रकृति के बिना पुरुष उत्साहहीन रहता है। नारी प्रकृति और सृष्टि की संचालिका शक्ति है। विस्तृत चर्चा सम्पूर्ण शोध-पत्र में।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-52

रघुवंशे पर्यावरणम्

श्रीमती उषा देवी, राँची

कवि कालिदास रचित रघुवंश महाकाव्य में पर्यावरण की सुरक्षा का सन्देश काव्यात्मक शैली में प्रस्तुत है। जल, वायु और आकाश की स्वच्छता को रोचक शैली में प्रस्तुत किया गया है। कवि का कालजयी सन्देश हृदयग्राह्य है। विशेष सम्पूर्ण शोध-पत्र में।

❖

CS-53

रघुवंशे राजनीतिसमीक्षा

श्री वीरेन्द्र पाठक, राँची

कवि कुलगुरु कालिदास रचित रघुवंश महाकाव्य में स्वच्छ तथा लोकोपकारी राजनीति का वर्णन हुआ है। श्रीराम परिपक्व राजनेता हैं। लंका विजय के उपरान्त विभीषण को वहाँ का राज सौंप देना सफलता और प्रजाहित का महान् सन्देश है। विशेष पूर्ण शोध-पत्र में।

❖

CS-54

कुमारसम्भवे कामदेवस्य चरित्रसमीक्षा

श्री गणेश मिश्र, राँची

देवताओं के आग्रह से मनसिज देवाधिदेव महादेव के मन में वसन्तादि साधनों से कामविकार उत्पन्न करने का प्रयास करता है। परिणाम अत्यन्त दुःखद है। अपने से अधिक शक्तिशाली के ऊपर प्रभाव दिखाना विपत्ति और विनाश का कारण बनता है। अतः काम विवेक हीनता का उदाहरण है। विशेष पूर्ण शोध-पत्र में।

❖

CS-55

रघुवंशे करुण-रस समीक्षा

कुंज विहारी शर्मा, राँची

कवि कालिदास शृंगार रस के परिपक्व आचार्य सर्वमान्य हैं; किन्तु करुण रस की धारा में पाठकों को डुबकी लगाने के लिए भी विवश किया है। रघुवंश में अजविलाप का प्रसंग करुण रस का अनुकरणीय उदाहरण है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-56

शाकुन्तले गान्धर्वविवाहसमीक्षा

श्री रमावल्लभ शर्मा, राँची

गान्धर्व विवाह को कवि निरापद नहीं मानता है। कण्व ऋषि की इच्छानुसार गुरुभाइयों के साथ जब शकुन्तला हस्तिनापुर में राजद्वार में पहुँचती है, तो राजा उसे पहचानने से अस्वीकार कर देता है। आज का प्रेम-विवाह भी अन्ततः कष्ट में परिणत हो जाता है। विशेष पूर्ण शोध-पत्र में।

❖

CS-57

अभिज्ञानशाकुन्तले दुष्यन्तस्य समीक्षा

श्रीमती चन्द्रावती देवी, राँची

कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तल में दुष्यन्त राजा को विवेकशील शासक के रूप में चित्रित किया है। कण्व ऋषि के आश्रम में उसका प्रवेश संयमित और मर्यादित है। आश्रम में उसके प्रति सम्मान की भावना है। विलोम विवाह के प्रति राजा प्रतिकूल है। अतः शकुन्तला के विषय में उसके मन में अन्तर्द्वन्द्व होता है।

❖

CS-58

कुमारसम्भवे राजनीतेः समीक्षा

श्री जयकुमार पाठक, राँची

कवि कुलगुरु कालिदास ने कुमारसम्भव महाकाव्य में परिपक्व राजनीति का परिचय दिया है। कामदहन, तारकासुर का कुमार कार्तिकेय द्वारा वध आदि का प्रसङ्ग-राजनीति वर्णन का ज्वलन्त उदाहरण है। विशेष पूर्ण-शोध में।

❖

CS-59

संस्कृत काव्यों में शकुन प्रसंग

सुश्री रंजना कुमारी, सिवान

परोक्ष तथ्य को जानने हेतु मानव प्रजा आदिकाल से लालायित रहा है। फलतः ज्योतिषशास्त्र आदि ग्रन्थों में शकुनशास्त्र के रूप में इसे वैज्ञानिक ढंग से श्लोकबद्ध किया गया है। त्रैलोक्य का अनुकरण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने वाले नाटक तथा मानव-स्वभाव का चित्रण करने वाले काव्यों में भी इस तथ्य का प्रसंगानुसार यत्र-तत्र उल्लेख मिलता है।

शकुन का शाब्दिक अर्थ है— वह साधन जिसके द्वारा भावी शुभ या अशुभ का ज्ञान मानव को प्राप्त होता है।

रामायण में धनुष-यज्ञ के समय सीता तथा परशुराम का बायीं आँख फड़कना शुभ-अशुभ की सूचना एक साथ देता है, तो मृच्छकटिक में पुष्करण्डक उद्यान जाते समय वसन्तसेना की दायीं आँख फड़कना उसे मृत्यु मुख में फेंक देता है। अभिज्ञानशाकुन्तल में दुष्यन्त की दाहिनी भुजा फड़ककर 'वामेतरकरस्पन्दो वरस्त्रीलाभसूचकः' शकुन्तलाप्राप्ति की सूचना देती है। दुर्वासा को मनाने हेतु उद्यत अनुसूया के हाथों से फूल की डाली गिर जाती है। इससे शकुन्तला का शापग्रस्त होना निश्चित होता है। भगवान् बुद्ध के जन्म के पूर्व उनकी माँ स्वप्न में गर्भ में एक उज्ज्वल हाथी को प्रवेश करते देखती है। हर्षचरित में हर्षवर्धन का चौथे प्रहर में देखा गया दुःस्वप्न राजा-रानी की असामयिक मृत्यु की सूचना देता है।

रामायण के सुन्दरकाण्ड में त्रिजटा मुण्डित तैल लिप्त सपुत्र रावण को दक्षिण दिशा में देखती है तथा श्वेतछत्र चामर युक्त राम को लंका आते दर्शन करती है। इससे रावण वंश का नाश तथा राम की विजय ध्वनित होती है। उत्तररामचरित में दुर्मुख का नाम सुनते ही राम भयभीत हो जाते है, जिसकी परिणति पूर्णगर्भवाली सीता के वन में त्याग के रूप में होता है।

कहीं अंगस्फुरण के द्वारा, कहीं पक्षी की आवाज के द्वारा, कहीं स्वप्न द्वारा, कहीं सम्मुख आए इष्ट-अनिष्ट व्यक्ति या प्राकृतिक उपादान के द्वारा कवियों ने भावी घटना को ध्वनित करने का सफल प्रयास किया है। प्रस्तुत शोध-पत्र काव्यगत इसी ध्वनन शैली का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत करता है।

❖

CS-60

'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में पर्यावरण

श्री शंकर महतो, मुंगेर

महाकवि कालिदास बाह्य प्रकृति के पूरे विश्व स्तर पर सर्वोत्कृष्ट कवि माने जाते हैं। बाह्य-प्रकृति ही वस्तुतः पर्यावरण है। आधुनिक जगत् में पर्यावरण की सुरक्षा और संरक्षा के सन्दर्भ में चिन्ता की जा रही है, कालिदास ने बाह्य प्रकृति का सुन्दर उपयोग एवं अनिवार्यता दिखाकर पर्यावरण की सुरक्षा का ही सङ्केत दिया है।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक यद्यपि शृङ्गार रस प्रधान है फिर भी उस शृङ्गार रस के समायोजन में कालिदास ने पर्यावरण का सब तरह से सुन्दर उपयोग किया गया है। नाटक के मङ्गलाचरण में ही जल, अग्नि, यजमान, सूर्य, चन्द्रमा, आकाश, पृथ्वी एवं वायु को शिव की भूमि कहा है, ये सब पर्यावरण के उपादान है, इनको शिव का रूप कहकर कवि ने पर्यावरण की पूरी पवित्रता को बनाये रखने का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सङ्केत दिया है। नाटक की प्रस्तावना में ग्रीष्म के वर्णन में पर्यावरण का सुन्दर उपयोग कर कवि ने इसके माध्यम से नाटक की सुखान्तता को सूचित किया है।

दुष्यन्त और शकुन्तला के प्रेम का अङ्कुरण एवं पल्लवन भी पर्यावरण के मध्य होता है। महर्षि कण्व अपनी कोमलाङ्गी प्यारी पुत्री से पर्यावरण की सुरक्षा के लिए लता पादपों का सिंचन करवाते हैं जो राजा दुष्यन्त को अखड़ जाता है, इसलिए वह हठात् कह बैठते हैं—

'असाधुदर्शी खलु भगवान् कण्वः,

इस तरह पूरे अभिज्ञानशाकुन्तलम् में कवि ने नाटकीय तत्त्व-वस्तु, नेता और रस को पर्यावरण के माध्यम से बड़ा ही मनोरम वर्णन किया है।

प्रस्तुत शोध लेख में कालिदास की 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में कही गई पर्यावरण की परिकल्पना दिखायी गई है।

❖

CS-61

प्रतीक नाटकों में रति-मन्मथ

डॉ. श्री प्रकाश राय, रामगढ़

भरतमुनि द्वारा नाट्यशास्त्र में जो मार्ग प्रदर्शित किया गया, प्रायः सभी परवर्ती नाटककारों ने उसका अनुसरण किया; किन्तु कतिपय निरङ्कुश कवियों द्वारा नाटक का अभिनव प्रकार आविष्कृत हुआ जिसे आजकल समालोचक 'प्रतीक नाटक' ऐसी संज्ञा प्रदान करते हैं। इसमें अमूर्त दया-क्षमा-भक्ति इत्यादि पदार्थों का मूर्त रूप में वर्णन होता है।

प्रतीक नाटकों के आरम्भ काल के सम्बन्ध में कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता; परन्तु मध्य एशिया से प्राप्त कतिपय पाण्डुलिपियों के आधार पर प्रसिद्ध बौद्ध-दार्शनिक अश्वघोष का शारिपुत्र-प्रकरण आद्य प्रवर्तक माना जा सकता है जिसमें बुद्ध-कीर्ति-धृति इत्यादि का मूर्तत्वेन वर्णन है। अतः प्रतीकनाटक का समारम्भ 100 ई. स्वीकार किया जा सकता है। भवभूति के उत्तररामचरितम् में भी वासन्ती-तमसा-मुरला आदि अमूर्त पात्र मूर्तरूप में अवतरित हैं। विष्णु पुराण में भक्ति का अपने पुत्रों के लिए विलाप करना तथा ऋषिवर नारद द्वारा उन्हें समझाना और विष्णु के आयुध शङ्ख-चक्र-गदादि, प्रद्युम्नानिरुद्ध के रूप में अवतार की धारणा प्रतीक प्रयोग की प्राचीनता को सुदृढ़ करती है। 'वनस्पतयः सत्रमासतुः' के प्रयोग से वेद में भी इसकी स्थिति प्रतीत होती है। शारिपुत्र-प्रकरण से प्रारम्भ यह परिकल्पना ग्यारहवीं शताब्दी में कृष्णमित्र के प्रबोधचन्द्रोदय में स्पष्टतया विकसित हुई। इनके परवर्ती वेदान्तदेशिक (13वीं श.) ने सङ्कल्पसूर्योदय, कर्णपूर (16वीं) ने चैतन्यचन्द्रोदय और आनन्दमयि (18वीं) ने विद्यापरिणयनम् तथा मैथिल कवि गोकुलनाथ ने अमृतोदय की रतना की।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रतिमन्मथ नाटक की प्रतीकता विचारणीय है। प्रायः भक्त कवियों एवं दार्शनिकों द्वारा इस विधा को अपनाया गया है। भक्त शिरोमणि जगन्नाथ पण्डित ने विष्णु-भागवतादि पुराणों में वर्णित रतिमन्मथ के जन्मान्तरीय रूपों का अभेद प्रदर्शन करते हुए वर्णन किया है, जिसमें भगवती ललितादेवी का माहात्म्य प्रदर्शन प्रमुख उद्देश्य है और 'नाधिकारिवधः कुर्याद्' इस भारतीय नाट्यशास्त्र के नियमानुसार कवि ने मूलकथा में परिवर्तन-परिवर्धन किया है।

❖

CS-62

वासवदत्ता कथा में वर्णित धार्मिक स्थिति

सुश्री शिल्पी, अलीगढ़

सुबन्धु संस्कृत साहित्य के गद्यकारों में विशिष्ट प्रमुख स्थान रखते हैं। उनकी एकमात्र कृति 'वासवदत्ता' कथा साहित्य की प्रमुख कृतियों में से एक है। वासवदत्ता कथा में कवि ने अपनी विद्वत्ता एवं कल्पना के अद्भुत सामञ्जस्य को प्रस्तुत किया है। इस कृति में तत्कालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति का स्पष्ट चित्रण उपलब्ध होता है। सुबन्धु ने तत्कालीन धार्मिक स्थिति पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। धर्म मनुष्य को धारण करता है। उसका पालन-पोषण करता है तथा उसे सुख शान्ति प्रदान करता है। वस्तुतः मनुष्य की उन्नति का कारण धर्म ही है। सुबन्धुकालीन समाज में वैदिक धर्म उन्नति को प्राप्त था। वैदिक धर्म के अतिरिक्त बौद्ध तथा जैन धर्मों का प्रादुर्भाव हो चुका था। लोग यज्ञ, दान एवं तप में विश्वास करते थे। वेद, उपनिषद्, पुराण तथा रामायण, महाभारत का पठन-पाठन किया जाता था। अवतारवाद तथा बहुदेववाद का प्रचलन था। समाज में अन्धविश्वास तो प्रचलित थे ही, साथ ही मूर्तिपूजा भी की जाती थी। लोग संस्कारों का पालन करते थे। अतः कहा जा सकता है समाज के लोगों में धर्म के प्रति विश्वास था।

❖

CS-63

कुन्दकुन्दाचार्य कृत नाटकत्रय में दार्शनिक तत्त्व

प्रो. (श्रीमती) सलमा महफूज़, अलीगढ़

ईसा की प्रथम शताब्दी के पूर्वार्द्ध में दक्षिण भारत के कर्नाटक प्रदेश के कोण्डकुन्दे नामक स्थान पर अवतीर्ण हुए कुन्दकुन्दाचार्य का दिगम्बर-जैन-परम्परा के आचार्यों में अग्रगण्य स्थान है। आत्म-केन्द्रित दार्शनिक दृष्टिकोण से पंचास्तिकाय, प्रवचनसार, समयसार का उनकी कृतियों में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन तीनों कृतियों को प्राभृत-त्रय तथा नाटकत्रय की संज्ञा से अभिहित किया गया है। कुन्दकुन्दाचार्य की कृतियाँ द्वादशाङ्गवाणी से सम्बद्ध होने से मान्य हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनकी तीनों कृतियों में पंचास्तिकाय की रचना का प्रयोजन जिनवाणी की भक्ति से प्रेरित होकर भव्यजीवों के लिए मोक्षमार्ग की प्रभावना है। पञ्चास्तिकाय ग्रन्थ में कुन्दकुन्दाचार्य ने आस्तिकाय, सत्ता, द्रव्य, पञ्चास्तिकाय, कालद्रव्य एवं मोक्ष-मार्ग का निरूपण किया है।

प्रवचनसार, कुन्दकुन्दाचार्य की महत्त्वपूर्ण कृतियों में से एक है। इसकी महत्ता इसी तथ्य से प्रमाणित हो जाती है कि इसका स्थान प्राकृतत्रय तथा नाटकत्रय में है। कुन्दकुन्दाचार्य के अनुसार जो पुरुष श्रावक अथवा मुनि की चर्या से संयुक्त हुआ उपदेश को समझता है, वह थोड़े ही काल में प्रवचनसार अर्थात् सिद्धान्त के रहस्यभूत परमात्मभाव को प्राप्त कर लेता है। प्रवचनसार की सम्पूर्ण विषयवस्तु का प्रस्तुतीकरण कुन्दकुन्दाचार्य ने श्रमण तथा श्रामणधर्म को केन्द्रबिन्दु मानकर किया है। कुन्दकुन्दाचार्य का प्रयोजन विशुद्ध आत्मद्रव्य का कथन करते हुए संसारी जीवों के लिए मोक्ष का मार्ग निर्दिष्ट करना है।

समयसार का अर्थ त्रैकालिक शुद्ध स्वभाव अथवा सिद्ध पर्याय आत्मा है। यही आत्मा की शुद्धावस्था 'समयसार' ग्रन्थ का प्रतिपाद्य है। कुन्दकुन्दाचार्य ने समयसार में सप्त पदार्थ-जीव, अजीव, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध, तथा मोक्ष का निरूपण करते हुए भेदविज्ञान एवं कर्तृ-कर्म की भी चर्चा की है।

इस प्रकार कुन्दकुन्दाचार्य कृत पञ्चास्तिकाय में सम्यग्दर्शन, प्रवचनसार में सम्यग्ज्ञान तथा समयसार में सम्यक् चारित्र में दर्शन होते हैं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र अर्थात् नाटकत्रय को एक साथ प्राप्त करने पर ही मोक्ष प्राप्ति सम्भव है।

❖

CS-64

'उल्लाघराघवम्' में राम

डॉ. श्रीनारायण सिंह देव, धनबाद

रामकथा, रामविषयक साहित्य, रामविषयक जनश्रुतियाँ और वर्तमान विश्व में रामचरित की प्रासङ्गिकता सर्वमान्य है। मात्र एक ही आदर्श वाक्य हमारी भारतीय संस्कृति के आदर्श को स्थापित किए हुए हैं—रामादिवद्वर्तितव्यं न रावणादिवत्।

वह राम कौन है? कैसा है? युग-युगान्तर से उसकी कथा प्रचलित है, फिर भी वह प्रासङ्गिक बना हुआ है, इसका कारण क्या है? 'वाल्मीकिरामायण' की मूल रामकथा के साथ तारतम्य स्थापित करते हुए कीर्तिकौमुदी, रामशतकम् एवं कर्णामृत-प्रपा प्रणेता महाकवि सोमेश्वर ने रामकथा का आश्रय लेकर उल्लाघराघवम् नाटक की रचना की है। महाकाव्यीय रम्यारामायणी कथा का नाट्य रूपान्तरण अनेक साम्य-वैषम्य नवीन कल्पनाओं, घटनाओं, दर्शकानुकूल विभावादि, नाट्यरसों, सन्धियों, वृत्तियों का सुन्दर समन्वय करते हुए किया गया है। सोमेश्वर ने रामकथा को ही अपना वस्तु क्यों बनाया?

सोमेश्वर के राम और उनकी दृष्टि में 'रामकथा' उसका वैशिष्ट्य एवं उससे प्राप्त निष्कर्ष ही प्रस्तुत शोध प्रपत्र का प्रतिपाद्य है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-65

आचार्य भवभूति और नारी

डॉ. मधु कुमारी, भागलपुर

करुण रस के पुरोधा महाकवि भवभूति ने अपने नाटकों में नारी को महनीय पद प्रदान किया है। नारी के कन्या, पत्नी और माता—इन तीनों रूपों का इन्होंने विशद चित्रण किया है। नाना प्रकार की सामाजिक परिस्थितियों और विभिन्न मनोदशाओं में भवभूति के नारी-पात्र विभिन्न प्रकार के व्यवहार करते हैं; परन्तु उनके उदात्त चरित्र पर कहीं असर नहीं पड़ता। भवभूति की दृष्टि में कन्या परायी वस्तु है जिसे किसी न किसी को देना है—'कन्यायाश्च परार्थतैव मता'। कन्या की याचना तो कोई भी कर सकता है, फिर समयों की तो बात ही क्या?

कन्या के दान से बड़ों के साथ सम्बन्ध और मित्रता हो जाती है। यह स्नेह-सूत्र का संस्थापक है। कन्यादान में पिता ही अधिकारी होता है। भवभूति की कन्या अत्यन्त सुशील है। वह समस्त दुःखों को झेलने के लिए प्रस्तुत है, पर माता-पिता का दुःख वह सहन नहीं कर सकती। कौमार्यकाल में कन्या किसी पुरुष से सम्बन्ध स्थापित करना बुरा समझती है। वे अत्यन्त कोमल, असहनशील और कुसुम सदृश सुकुमार होती है। भवभूति को स्त्री-जाति के प्रति कितना सम्मान था, इसका अनुमान उनके अधोलिखित सिद्धान्त वाक्य से लगाया जा सकता है—

गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः।

स्त्री के पत्नी रूप का भी भवभूति ने बड़ा ही मनोरम तथा प्रोज्ज्वल रूप प्रदर्शित किया है। वह गृह की लक्ष्मी है, पति के लिए आनन्ददायिनी है, उसकी बाँहे कण्ठ में हार सदृश हैं।

भवभूति की नारी सन्तान के प्रति करुणामयी है। भगवती पृथ्वी सीता के सुख और कल्याण के लिए सदा चिन्तित हैं। पशु-पक्षियों और तृण-जुल्मों के प्रति भी नारी अपत्य-सम्बन्ध स्थापित कर लेती है और उसके भी सुख-सुविधा का उतना ही ध्यान करती है वार्धक्य में उसकी करुणा और बढ़ जाती है। कौसल्या और अरुन्धती बच्चों के मङ्गल-सम्पादन में सर्वदा-सर्वथा सचेष्ट हैं।

प्रस्तुत शोध निबन्ध में आचार्य भवभूति के नारी चित्रण पक्ष का सम्यक् अवलोकन करने का प्रयास किया गया है।

❖

CS-66

रघुवंश महाकाव्य में प्रयुक्त तद्धितप्रत्ययों का अनुशीलन

डॉ. श्वेता दुबे, शहडोल

संस्कृत पद विभाग के अन्तर्गत नाम प्रथम पद विभाग है—'नामख्याते चोपसर्गनिपाताश्च'। इसके अन्तर्गत मुख्य रूप से संज्ञा और विशेषण आते है। संस्कृत में कृदन्त और तद्धित प्रत्ययों से नाम पद

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का निर्माण होता है। धातु के साथ कृत् प्रत्यय लगाने पर कृदन्त पद का निर्माण होता है। कृदन्त शब्दों में तद्धित प्रत्ययों के लगाने से तद्धितान्त पद का निर्माण होता है। इस प्रकार कृत और तद्धित प्रत्ययों के योग से बने हुए अधिकांश शब्दों का प्रयोग संज्ञा शब्दों के तुल्य होता है। भाषा-शास्त्र की दृष्टि से कृत और तद्धित प्रत्यय नाम बनाने वाले प्रत्यय है। अत एव ये दोनों नामकीकरण के मूलभूत तत्व है। प्रस्तुत निबन्ध रघुवंश में प्रयुक्त तद्धित प्रत्ययों के अनुशीलन का प्रयास है।

इस निबन्ध में रघुवंश में प्रयुक्त तद्धित प्रत्ययों के विभिन्न अर्थों में प्रयोग को स्पष्ट करने का यत्न हैं।

❖

CS-67

राष्ट्रतत्त्व और महाभारत

डॉ. दीपा अग्रवाल, इलाहाबाद

दीप्त्यर्थक राज् धातु से औणादिक ष्ट्रन प्रत्यय जोड़कर निर्मित राष्ट्र शब्द देश, राज्य तथा जाति का वाचक है। राष्ट्र शब्द का सम्बन्ध एक ऐसे भू-भाग विशेष से है, जहाँ के सभी लोग किसी एक पद्धति विशेष के शासन में रहते हैं। राष्ट्रीयता एक आध्यात्मिक भावना अथवा सिद्धान्त है, जिसका सम्बन्ध एक भू-भागीय लोगों के रीति-रिवाज, विचार परम्परा तथा एकता की भावना से है। यह राष्ट्रीयता धर्म की भाँति ही आत्मचेतनानिष्ठ है, मनोवैज्ञानिक है, एक मनोदशा है, आध्यात्मिक सम्पत्ति है। अनुभव, चिन्तन तथा जीवन-यापन करने की पद्धति है। अपने राष्ट्र की भूमि, जनसमूह, संस्कृति, सभ्यता, इतिहास, धर्म, साहित्य, कला, राजनीति, जीवन-दर्शन आदि के प्रति जनमानस में गरिमा एवं महिमा का जो सहज स्वाभिमान होता है, वही 'राष्ट्रतत्त्व' है।

वैदिक ऋषियों का समस्त समष्टिगत चिन्तन-समूह कल्याण की भावना, मातृभूमि, मातृभाषा एवं मातृसंस्कृति-माताओं के त्रिक स्वरूप की कल्पना वेदव्यास प्रणीत महाभारत में प्रत्येक पात्र के वाणी व्यवहार एवं कार्यशैली में दृष्टिगत होती है। भीष्म, विदुर, कुन्ती, द्रौपदी, युधिष्ठिर, कृष्ण यहाँ तक कि यदा-कदा दुर्योधन का मानस भी राष्ट्रभावना से समवेत हो जाता है। एक ओर पितृविहीन बढ़ते हुए पाण्डुपुत्र (पाण्डव) तथा दुर्योधन, दुःशासन आदि कौरवों के मध्य स्वार्थ की टकराहट, पुत्रमोह, शकुनि के दाँवपेंच हैं; वही दूसरी ओर भीष्म, विदुर, गान्धारी, कुन्ती की राष्ट्रभावभरित शिक्षाएँ एवं भावनाएँ भी हैं। वस्तुतः वर्तमान समाज का प्रतिबिम्बस्वरूप महाभारत में आयी राष्ट्रीय भावनापरक एक-एक पंक्ति वर्तमान में जाति, वर्ग, वर्ण, भाषा, क्षेत्र की दृष्टि से बँटे प्रत्येक समाज को एकता के सूत्र में बाँधने में समर्थ है। आवश्यकता है उनके सही प्रचार-प्रसार एवं सत्य अर्थ को जानने की।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-68

कालिदास की कृतियों में नदियाँ

डॉ. प्रभात सिंह ठाकुर, होशियारपुर

प्रकृतिरूपी नदी के सौन्दर्य की वृद्धि करने के लिए नदियाँ विशेष सहायक हैं। नदियों के प्रवाह की संगीतमयी ध्वनि, पक्षियों के कलरव से युक्त तटों की मनमोहक छटा तथा संगमों के सुन्दर दृश्य किस सहृदय के हृदय को आकृष्ट नहीं करते। नदियाँ मानव जीवन के लिए बहुत ही उपयोगी हैं। वे अपने आसपास के क्षेत्र की धाय के समान पोषक होती है। नदियों में कई बान्ध बनाये जाते हैं, इसके जल से हम अपनी खेती को सींचते हैं। नदियों से कई व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध होता है।

महाकवि कालिदास भी नदियों के सौन्दर्य के सच्चे पारखी थे। उन्होंने मानवीकरण के माध्यम से नारी सौन्दर्य की शृङ्गारिक चेष्टाओं की सुन्दर अभिव्यञ्जना नदियों को लक्ष्य करके की है। कालिदास को नदियों का गम्भीर तथा व्यापक ज्ञान था। उनको नदियों के बारे में सूक्ष्म ज्ञान भी था। वे बृहत्तर भारत की विशालतम और लघुतम नदियों से पूर्णरूपेण परिचित थे। नदियों के प्रवाह प्रकृति का भी उन्होंने यथास्थान परिचय दिया है।

❖

CS-69

विलक्षण अनुवाद एवं आस्वाद की भावभूमि पर बिहारीसतसई के प्राचीन संस्कृत अनुवाद की दुर्लभ पाण्डुलिपि

श्री प्रताप कुमार मिश्र, लखनऊ

कविवर बिहारी और उनकी अद्वितीय कालजयी कृति बिहारीसतसई हिन्दी ही नहीं, सम्पूर्ण भारतीय साहित्य की अनमोल निधि है। बिहारी के इस साहित्यशास्त्र के अतिशय महत्त्व के साक्षीभूत अनगिनत हिन्दी टीकाग्रन्थों, व्याख्याग्रन्थों से हम भली-भाँति परिचित हैं। यहाँ यह भी ध्यान दिला दूँ कि टीका/व्याख्या ग्रन्थों के अलावे कितनी ही भारतीय एवं विदेशी भाषाओं में सतसई के अनुवाद भी किए जा चुके हैं। इन अनुवाद-ग्रन्थों में अधिकांश से साहित्य समाज परिचित है, जबकि कुछ ऐसे भी अनुवाद हैं, जो काल के थपेड़ों में पड़कर प्रायः अज्ञात ही रह गए और साहित्य संसार में उन्हें वह स्थान, महत्त्व एवं सम्मान आज तक प्राप्त नहीं हो सका, जो उन्हें सैकड़ों वर्ष पूर्व ही प्राप्त हो जाना चाहिए था। इस क्रम में सतसई के एक संस्कृत अनुवाद की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ।

काशी नरेश स्वर्गीय श्री चेतसिंह (ई. 1770-1781) के दरबारी पण्डित 'पण्डित हरिप्रसाद' के द्वारा अपने आश्रयदाता के आदेश पर सतसई का एक विलक्षण संस्कृत अनुवाद किया गया। वर्तमान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में यह अनुवाद संस्कृत समाज और साहित्य समाज दोनों में ही प्रायः अज्ञात या अल्पज्ञात है। भारतीय भाषाओं एवं साहित्य के गम्भीर अध्येता, गवेषक एवं अनुसन्धाता विदेशी विद्वान् डॉ. जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने 1896 ई. में अपने द्वारा सम्पादित बिहारीसतसई के संस्करण में सतसई के एक संस्कृत अनुवाद का परिचय देते हुए कहा था कि यह अप्राप्य अथवा दुर्लभ अनुवाद है। इसी प्रकार आधुनिक हिन्दी विद्वान् पण्डित सुधाकर पाण्डेय ने भी स्वसम्पादित संस्करण में इसी प्रकार के एक संस्कृत अनुवाद का परिचय देते हुए घोषणा की थी कि यह अप्राप्य है। ध्यातव्य है कि उपर्युक्त दोनों विद्वानों द्वारा उद्धृत यह संस्कृत अनुवाद पण्डित हरिप्रसाद का ही अनुवाद है, जो कि काल के कुचक्र में फँसकर साहित्य समाज से विलुप्त सा हो गया।

उपर्युक्त इसी अनुवाद की एक प्राचीन पाण्डुलिपि; प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक को 'नागरी प्रचारिणी सभा, काशी' के विशाल हस्तलेख संग्रहालय में प्राप्त हुई। हस्तलेख के प्रारम्भिक अध्ययन के बाद एवं इसके स्रोतों के अनुशीलन से यह सिद्ध हो गया कि ग्रियर्सन एवं सुधाकर पाण्डेय ने अपने संस्करणों में जिन पाण्डुलिपियों की चर्चा की है, वह यही प्रति है और आश्चर्य की बात यह कि ग्रियर्सन तो नहीं, किन्तु सुधाकर पाण्डेय के समक्ष स्वयं उन्हीं की संस्था में यह हस्तलेख विद्यमान था, फिर भी कतिपय कारणों से पाण्डेय जी ने इसे अप्राप्य और दुर्लभ बताया।

❖

CS-70

काव्यों का प्रथम वर्ण

डॉ. अमरनाथ ठाकुर, सिवान

'परोक्षार्थस्य दर्शकम्' शास्त्रों के निर्माता ऋषियों ने काव्यों में प्रयुक्त प्रथम वर्ण में भी कवियों परोक्ष भविष्य का साक्षात्कार किया है। अक्षरं ब्रह्म परमं के रूप में प्रख्यात वर्णों के गुण, स्वभाव, रूप, रंग का विवेचन भारतीय प्रज्ञा का प्रिय विषय रहा है। अपने गुण और स्वभाव के अनुरूप लेखन में प्रयुक्त प्रथम वर्ण भी कवि जीवन, लेखन, वृत्ति, प्रसिद्धि आदि को प्रभावित करते मिलते है।

महाकवि बाण हर्ष-चरित का श्रीगणेश नकार 'नमस्तुङ्गशिरश्चुम्बच्चन्द्रचामरचारवे' से करते हैं। फलतः भुजङ्गा की भाँति भ्रमण करते बाण को साम्राट् हर्षवर्धन का सामीप्य और राजसुख प्राप्त होता है। नकार के प्रथम प्रयोग का फल सुख ही बतलाया गया है। 'नः सुखम्' किन्तु, कादम्बरी का प्रारम्भ रकार रजोजुषे जन्मनि सत्त्ववृत्तये' से होता है। 'रस्तु दाहः' के अनुरूप कवि काव्य-समाप्ति के पूर्व ही कालकवलित हो जाते हैं। 'नः सुखम्' के अनुरूप नैषधकार को भी 'निपीय यस्य क्षितिरक्षिणः कथाः' से कान्यकुब्जेश्वर से 'ताम्बूलद्वयमासनं च' की प्राप्ति होती है। नकार के सात्विक गुण के कारण ये 'क्व च माघः क्व च भारविः' को चरितार्थ करते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदास कुमारसम्भव की शुरूआत 'अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा' अकार से कहते हैं। अकार रजोगुण से उत्पन्न पीत वर्ण का माना गया है। रजोगुण के अनुरूप देवचरित का नख-शिख वर्णन करने लगते हैं। कहा जाता है कि इससे कवि कुष्ठाग्रस्त हो जाते हैं। वकार 'वागर्थाविव सम्पृक्तौ' से रघुवंश का लेखन प्रारम्भ कर कवि लेखन-व्यसन के कारण महाकवि की श्रेणी में कनिष्ठिकाधिष्ठित हो जाते हैं। 'व्यसनमथ लवौ' के अनुसार वकार का प्रथम प्रयोग लेखन में व्यसन का आधान करता है। यकारादि 'या सृष्टिः सष्टुराद्या' से प्रभूत लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। यकार सर्वव्यापक पवित्र और लक्ष्मीप्रद वर्ण माना गया है। शाकुन्तल से कवि विश्वविश्रुत होते हैं।

इस प्रकार, सत्त्व, रज तथा तम गुणों से युक्त वर्ण अपने-अपने स्वभाव के अनुरूप कवि के स्वास्थ्य, ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति, काव्य की लोकप्रियता व प्रसिद्धि की पूर्व सूचना देने वाला अनुपम अक्षर ब्रह्म है।

❖

CS-71

नाटिका लक्षण की दृष्टि से रत्नावली तथा चन्द्रकला

डॉ. रीता तिवारी, लखनऊ

सद्यः निरूपित नाटिका लक्षण की दृष्टि से रत्नावली तथा चन्द्रकला का विवेचन करने पर विदित होता है कि इसमें अधिकांशतः लक्षण पूर्णतः घटित हो जाते हैं, जिन्हें अधोलिखित रूप में देखा जा सकता है।

सर्वप्रथम नाटिका की कथावस्तु कविकल्पित होती है, इस आधार पर रत्नावली तथा चन्द्रकला दोनों नाटिकाओं की कथावस्तु पूर्णतः कविकल्पना प्रसूत है। नाटिका के लक्षण के अनुरूप दोनों ही नाटिकाओं की कथावस्तु चार अङ्कों में समाप्त हो जाती है। नाटिका में स्त्री पात्रों की अधिकता होती है, इस दृष्टिकोण में भी रत्नावली में, यथा—वासवदत्ता, सागरिका, सुसङ्गता, कांचनमाला, चूतलतिका, मदनिका, निपुणिका तथा वसुन्धरा इत्यादि स्त्री पात्रों का बाहुल्य है। इसी प्रकार चन्द्रकला नाटिका में भी यथा—लक्ष्मी, वसन्तलेखा, चन्द्रकला, रतिकला, माधविका, सुनन्दना आदि स्त्री पात्रों की अधिकता है। नाटिका का नायक धीरललित होता है। रत्नावली का नायक भी नाटिका के अनुरूप धीरललित कोटि का है।

नाटिका में अन्तःपुर से सम्बन्धित तथा ज्येष्ठा महारानी के ही वंश की कोई अनुरागवती मुग्धा कन्या नायिका होती है। प्रस्तुत रत्नावली-नाटिका की नायिका रत्नावली महारानी वासवदत्ता की बहिन है तथा वह चित्रकला में प्रवीण, भावुक तथा अनुरागवती मुग्धा कन्या है। वह राजा उदयन को प्रथम दर्शन में ही साक्षात् कामदेव समझकर अपना हृदय समर्पित कर देती है।

इसी प्रकार चन्द्रकला नाटिका की भी नाटिका चन्द्रकला ज्येष्ठा नाटिका महारानी वसन्तलेखा की बहिन है। लावण्य तथा अप्रतिम सौन्दर्य से युक्त वह अनुरागवती कन्या है। चन्द्रकला प्रमदवन में राजा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को देखते ही उस पर अनुरक्त हो जाती है। नाटिका के लक्षण के अनुसार ही रत्नावली में महारानी वासवदत्ता राजा की प्रधान महिषी तथा राजवंश की प्रगल्भा नायिका है। वह पद-पद पर मान करती है और उदयन पैरों पर गिर कर उसे बार-बार मनाता है। इसी प्रकार चन्द्रकला नाटिका की भी महारानी वसन्तलेखा राजा चित्ररथदेव की मुख्यरानी और राजवंश की प्रगल्भा नायिका है, जो कि वासवदत्ता के समान ही मान करती है और नायक उसे बार-बार मनाने का प्रयत्न करता है।

इस प्रकार 'रत्नावली' तथा 'चन्द्रकला' दोनों ही कृतियों में नाटिका का सम्पूर्ण लक्षण घटित होने से ये दोनों रचनायें नाटिका की श्रेणी में आती हैं।

❖

CS-72

सोमदेव भट्ट कृत 'कथासरित्सागर' में नैतिक विचार

श्री विशाल भारद्वाज, अमृतसर

'कथासरित्सागर' महाकवि सोमदेव भट्ट की एकमात्र रचना है। 'कथासरित्सागर' में नीति से सम्बन्धित विचारों की चर्चा से पूर्व 'नीति' शब्द पर विचार किया गया है। ये नैतिक विचार ही मनुष्य के कर्त्तव्यों, अकर्त्तव्यों, उचित तथा अनुचित कर्मों का वास्तविक उत्तर उसे प्रदान करते हैं। 'कथासरित्सागर' में ऐसे अनेक नैतिक विचारों को दर्शाया गया है। सम्पत्ति की निन्दा करते हुए इसे बिजली व सन्ध्या के समान क्षणस्थायी बताया गया है। धन की निन्दा के साथ-साथ इसके महत्त्व को भी वर्णित किया गया है। सभी कार्यों को सोच-समझकर करने का निर्देश दिया गया है। बुद्धिमान् की प्रशंसा तथा मूर्ख की निन्दा की गई है। भाग्य की प्रधानता का वर्णन करते हुए कहा गया है कि फल की ओर ले जाने वाला भाग्य ही होता है, पुरुषार्थ तो एक निमित्तमात्र है। उद्यम करने वालों के लिए कुछ भी असाध्य नहीं होता। आत्मघाती की निन्दा करते हुए कहा गया है कि आत्मघाती को परलोक में भी अत्यधिक कष्ट उठाने पड़ते हैं। राज्यलक्ष्मी द्यूतक्रीड़ा की तरह कूटचालों वाली, लहरों की तरह चपल तथा मदिरा के समान उन्मत्त करने वाली होती है। अतः कहा जा सकता है कि इस प्रकार के नैतिक विचारों से कथासरित्सागरकालीन समाज की प्रबुद्ध चेतना का पता चलता है।

❖

CS-73

मानवीय पृष्ठभूमि में धर्म : जानकीहरण के सन्दर्भ में

श्री त्रिलोचन प्रधान, वाराणसी

लोकमङ्गल की साधना में व्यक्ति के दायित्व की व्याख्या करना धर्म का काम है। धर्म के द्वारा व्यक्ति का आचार-व्यवहार निर्मित होता है। इसलिए धर्म को चरित्र व आचरण का परिचायक माना गया

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। 'अभयदेव' एवं 'कुन्दकुन्द' ने चरित्र को ही धर्म कहा है। वैदिक परम्परा में मनु ने 'आचारः परमो धर्मः' का उल्लेख कर धर्म का लक्षण चरित्र या आचरण बताया है। धर्म 'धृ' धातु से बना है, जिसका अर्थ है—धारण करना 'ध्रियते लोकोऽनेन, धरति लोकं वा।' जो प्रजा को धारण करता है अथवा जिससे समस्त प्रजा का धारण या संरक्षण होता है, वही धर्म है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार ऊष्मा अग्नि का धर्म है, उसी प्रकार व्यक्ति के धारणयोग्य तत्त्व धर्म की श्रेणी में आते हैं। व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एवं सम्पूर्ण विश्व का धारण, पोषण, संघटन एवं सामञ्जस्य का सम्पादन करने वाला तत्त्व धर्म है। व्यक्ति के धार्मिक मूल्य उसकी श्रद्धा तथा शाश्वत परम्पराओं से निर्मित होते हैं। धार्मिक-मूल्यों में आस्था रखने वाला व्यक्ति ही सफल अर्थात् विजयी होता है—'धर्मो जयति नाधर्मः'। धर्म-मार्ग का अनुसरण कर व्यक्ति सुखी तथा सार्थक होता है। 'अभिधानराजेन्द्रकोश' के अनुसार 'धर्म आत्मा का विशुद्ध स्वरूप है और आदि, मध्य और अन्त सभी में कल्याणकारी है'। इसलिए धर्म के विषय में कहा गया है कि धर्म से ही अर्थ की प्राप्ति होती है, धर्म से सुख का उदय होता है और धर्म से ही मनुष्य सब कुछ पा लेता है, इस संसार में धर्म ही सारभूत तत्त्व है

केवल पूजापाठ में आस्था रखने वाले धार्मिकजन धर्म की अपेक्षा अर्थ को अधिक महत्त्व प्रदान करते हैं। इसमें उनकी धार्मिक चेतना प्रभावित (कुण्ठित) होती है। वे अर्थ को धर्म प्राप्ति का साधन मानते हैं। उनके अनुसार 'धनाद् धर्मः ततः सुखम्'। वे वाल्मीकि के इस वचन से असहमत प्रतीत होते हैं कि 'धर्मादर्थः प्रभवति धर्मात् प्रभवते सुखम्'; क्योंकि उनके लिए 'अर्थ' का अर्थ केवल धन-सम्पत्ति रूपी 'अर्थ' से है।

जानकीहरण के रचयिता कवि कुमारदास धर्म सम्बन्धी इन सिद्धान्तों को अपनी कृति जानकीहरण में अंकित करने का सफल प्रयास करते हुए जिन धार्मिक-मूल्यों को प्रस्तुत किया है, उनका विवेचन इस शोध-पत्र में किया गया है।

❖

CS-74

मुद्राराक्षस नाटक के प्रणेता आचार्य विशाखदत्त की नाट्यशैली

श्री सुशान्त गौरव, भागलपुर

मुद्राराक्षस के प्रणेता महामना विशाखदत्त की अपनी अलग शैली है। ये अपनी कला के अद्वितीय निर्माता तथा निर्वाहक हैं। राजनीति में धोखा किस प्रकार देना चाहिए, इसका सूक्ष्म और यथार्थ वर्णन उनकी विशेषता है। उनकी शैली स्पष्ट, प्रभावशाली और प्रवाहमयी है। वे व्यर्थ के शब्दाडम्बर से दूर हैं। उनकी शैली नाटक के विषय के अनुरूप बदलती है। क्रोध को व्यक्त करने के लिए उनके शब्दों का चयन सुन्दर है। नाटक की शैली गम्भीर, सशक्त और लक्ष्यता लिए हुए है। राजनीति जैसे नीरस विषय को भी काव्य एवं नाटक का विषय बना देना उसमें सरलता और मनोरञ्जकता का समावेश कर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देना, अभिनय के गुणों से भरपूर बना देना—किसी सामान्य कलाकार का काम नहीं है। इस दृष्टि से वे मूर्धन्य कलाकार हैं। मानवीय भावनाओं के विश्लेषण में वे सिद्धहस्त हैं।

आचार्य विशाखदत्त की शैली की अन्यतम विशेषता है— उनका श्लेष। व्यङ्ग्यार्थ के प्रकाशन के लिए भी उन्होंने श्लेष का आश्रय लिया है। बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव पर आश्रित उपमा का भी प्रयोग करने में वे सिद्धहस्त हैं। उन्होंने अपने नाटक मुद्राराक्षस में 'भंग्यन्तर कथन' का भी प्रयोग किया है। नाटकीय सौष्ठव को दूषित करने वाली क्लिष्ट कल्पना, लम्बे-लम्बे समास और वर्णनों के आधिक्य से वह दूर है। बीच-बीच में आनुषंगिक बातों में रुकना उनकी प्रकृति के प्रतिकूल है। सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में मुद्राराक्षस अपने विषय का एकमात्र नाटक है, यह महामना विशाखदत्त की अद्वितीय नाट्यशैली का परिचायक है।

प्रस्तुत शोध निबन्ध-सार में आचार्य विशाखदत्त की अद्भुत नाट्यशैली पर प्रकाश डालने का पूर्णरूपेण प्रयास किया गया है।

❖

CS-75

कालिदास के रूपकों में स्त्री-पात्रों की बहुलता

डॉ. वकील प्रसाद यादव, गोण्डा

महाकवि कालिदास ने अपने रूपकों में स्त्री पात्रों को अत्यधिक महत्त्व दिया है। रूपकों के नामकरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है—अभिज्ञानशाकुन्तलम्, विक्रमोर्वशीयम् तथा मालविकाग्निमित्रम्। इन तीनों रूपकों में क्रमशः शाकुन्तला, उर्वशी एवं मालविका नायिका हैं। इनके तीनों रूपकों में अनेकानेक स्त्री पात्रों का वर्णन मिलता है, जिसमें कुछ की उपस्थिति मुख्य पात्र के रूप में है तथा कुछ की उपस्थिति गौण पात्र के रूप में हुई है।

इस प्रकार अभिज्ञानशाकुन्तलम् में सत्रह विक्रमोर्वशीयम् में नौ और मालविकाग्निमित्रम् में चौदह स्त्री-पात्रों का वर्णन मिलता है जिसकी कुल संख्या चालीस हो जाती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि उनके रूपकों में स्त्री-पात्रों की संख्या बहुत अधिक है। इतने अधिक स्त्री-पात्रों का चित्रण दो कारणों से हो सकता है—

(1) कवि का अपना विचार, (2) तत्कालीन परिस्थितियाँ

तात्पर्य यह है कि कालिदास मूलतः कोमलपक्ष के कवि रहे हैं। अतः कवि स्वतः स्त्रियों की स्थिति पर अधिक विचारशील रहा होगा। साथ ही जैसा कि ऐतिहासिक विचार उभरता है कि कालीदास चन्द्रगुप्त, विक्रमादित्य द्वितीय गुप्तवंशीय राजा के समकालीन थे। भारतीय इतिहास के अनुसार यह युग स्वर्णयुग रहा, अर्थात् सांस्कृतिक परिष्कर सर्वोत्कृष्ट रहा होगा, जिसमें स्त्रियों की स्थिति समाज में उत्कृष्ट रही होगी, जिसने कवि को प्रभावित किया होगा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कारण जो भी हो, किन्तु उनके रूपकों में स्त्री-पात्रों की बहुलता स्पष्ट परिलक्षित होती है।

❖

CS-76

कालिदास के रूपकों में ग्रीवा-अभिनय

डॉ. भावना श्रीवास्तव, भोपाल

भारतीय वाङ्मय में संस्कृत साहित्य अपनी सरसता और गांभीर्य की दृष्टि से अनुपम रचनाओं का अक्षय भण्डार है। संस्कृत-साहित्य में नाट्यशास्त्र की भी एक परम्परा रही हैं। नाट्यशास्त्र के निर्माता के रूप में आचार्य भरत का नाम विश्वसाहित्य में अमर हो चुका है। भरतमुनि ने 'अभिनय' शब्द की व्युत्पत्ति की है। इसका अर्थ है कि सामाजिकों के सम्मुख प्रयोग के द्वारा अभिनेतक अर्थ को पहुँचाना अभिनय है। आचार्य भरत ने सम्पूर्ण अभिनय को चार भागों में विभक्त किया है—(1) आङ्गिक, (2) वाचिक, (3) सात्त्विक तथा (4) आहार्य।

शरीर के अङ्ग, उपाङ्ग, एवम् प्रत्यङ्ग द्वारा किये जाने वाले विशिष्ट अर्थ के बोधक साङ्केतिक अभिनय को आङ्गिक अभिनय कहते हैं। ग्रीवा शरीर के प्रत्यङ्ग के अन्तर्गत आता है।

कविताकामिनीकान्त विश्वविख्यात महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के ज्वाजल्यमान नक्षत्र हैं, जिनका प्रकाश चारों दिशाओं में फैला है। उनके तीन नाटक (1) अभिज्ञानशाकुन्तलम्, (2) विक्रमोर्वशीयम्, (3) मालविकाग्निमित्रम् है।

प्रस्तुत शोध-पत्र में भरतकृत नाट्यशास्त्र पर आधारित ग्रीवा-कर्म के सिद्धान्तों के आधार पर कालिदास के रूपकों में ग्रीवा-कर्म को खोजने का नवीनतम प्रयास किया गया है। ग्रीवा शिर का आधार हैं। ग्रीवा के सभी कर्म शिर के कर्मों का अनुसरण करते हैं। आचार्य भरत ने ग्रीवा के नौ भेद बताये हैं—(1) समा, (2) नता, (3) उन्नता, (4) त्र्यस्रा, (5) रेचिता, (6) कुञ्चिता, (7) अञ्चिता, (8) वलिता तथा (9) विवृत्ता।

यहाँ प्रस्तुत शोध पत्र को एक उदाहरण देकर भरतकृत ग्रीवा-कर्म (अभिनय) के सिद्धान्त को कालिदास के रूपक में प्रस्तुत कर रही हूँ—उन्नताग्रीवा-उन्नताभ्युनयनमुखी ग्रीवा चोर्ध्वा दिग्दर्शने (ना.शा. 8.170, पृ.35) ऊपर की ओर देखने के भाव में प्रयुक्त होता हैं। इस सिद्धान्त को कालिदास के 'विक्रमोर्वशीयम्' के द्वितीयाङ्क में राजा विदूषक को ऊपर की ओर देखकर समय के बारे में बताते हुए कहते हैं—

राजा—(ऊर्ध्वमवलोक्य) गतमर्धं दिवसस्य। अतः खलु—उष्णालुः शिशिरे निषीदति तरोमूलालवाले शिखी निर्भिद्योपरि कर्णिकारमुकुलान्यालीयते षट्पदः।.....

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ऊपर की ओर देखकर) आधा दिन बीत गया। इसीलिए यह मयूर गर्मी से घबराकर पेड़ के नीचे शीतल थाले में बैठ गया है, भौंरा कनेरे की कली को खोलकर उसके भीतर छिप गया है....।) राजा द्वारा ऊपर की ओर देखने के भाव को उन्नतग्रीवा का अभिनय कहेंगे।

❖

CS-77

कालिदास के नाटकों में पर्यावरण चेतना

डॉ. वीना अग्रवाल, हरिद्वार

संस्कृत नाटककारों में सर्वोच्च स्थान पर अधिष्ठित कविकुलगुरु कालिदास के नाटक विश्व साहित्य की अमरनिधि हैं। नाट्य-सौन्दर्य, रसविधान, अलंकारयोजना, चरित्र-चित्रण आदि की दृष्टि से सर्वोत्कृष्टता को प्राप्त महाकवि के अभिज्ञानशाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय और मालविकाग्निमित्र नाटकों में प्रकृति चित्रण के माध्यम से पर्यावरण चेतना का जो रमणीय स्वरूप अभिव्यक्त हुआ है, वह प्रशंसनीय है।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् का शुभारम्भ नान्दी स्वरूप जिस मंगल पद्य से किया गया है, उसमें महाकवि की पर्यावरण चेतना अभिव्यक्त हो रही है।

इस पद्य में वन्दना करते हुए पर्यावरण के प्रमुख आठ तत्त्वों का उल्लेख किया है। ये आठ तत्त्व हैं—जल, अग्नि, यजमान, सूर्य, चन्द्रमा, आकाश, पृथ्वी और वायु। इनके द्वारा पर्यावरण की रक्षा होती है।

महाकवि कालिदास का प्रकृति के साथ गहरा सम्बन्ध है। वृक्ष, लता, पुष्पादि से तथा मयूर, मृग आदि वन्य पशुओं से कालिदास के पात्रों का हार्दिक अनुराग है। कालिदास की विश्वप्रसिद्ध नायिका शकुन्तला कण्व ऋषि के आश्रम में रहते हुए अपनी प्रिय सखियों के साथ प्रतिदिन आश्रमवृक्षों को स्नेहपूर्वक पुत्रवत् सींचती है। मृग-शिशु के व्रण पर लेप लगाती है, आश्रम से विदा होते समय अश्रु प्रवाहित करती है। प्रकृति के कण-कण से उसका अनुराग है। प्रकृति रक्षा में ही पर्यावरण रक्षा निहित है।

महाकवि का आश्रमों, तपोवनों तथा यज्ञों के प्रति श्रद्धा का भाव भी उनकी पर्यावरण चेतना को अभिव्यञ्जित करता है।

❖

CS-78

अभिज्ञान शाकुन्तल में पर्यावरण चेतना

सुश्री गरिमा राजपूत, बिजनौर

निर्विवाद रूप से महाकवि कालिदास को संस्कृत का सर्वश्रेष्ठ नाटककार माना जाता है। कालिदास के तीनों नाटकों में 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' का स्थान सर्वोपरि है। 'काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला'

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहकर विद्वान् समीक्षकों ने शाकुन्तल की श्रेष्ठता प्रमाणित की है। शाकुन्तल के गौरव में जहाँ रस अलङ्कार आदि की उत्तम योजना, पात्रों का चारु चित्रण, भाषा की कमनीयता आदि अनेक कारण हैं, वहाँ सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है—सम्पूर्ण नाटक की कथा-वस्तु का प्रकृति की गोद में प्रारम्भ होना और उसी में पूर्णता को प्राप्त कर लेना। 'कवितावनितविलास' महाकवि कालिदास प्रकृति के विविध रूपों को अपने पाठकों और दर्शकों के समक्ष इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं कि चेतन और अचेतन का द्वैत समाप्त हो जाता है तथा मानव और प्रकृति के बीच अद्वैत तत्त्व की स्थापना हो जाती है।

प्रकृति मानव की चिर सहचारी है, वह कहीं माता के रूप में लालन-पालन करती है, तो कहीं प्रेयसी बनकर उसे सुख प्रदान करती है। अशान्त, उद्विग्न, संतप्त, मानव-प्रकृति की क्रोड में अनिवर्चनीय आनन्द प्राप्त करता है। जब तक मानव प्रकृति के साथ जुड़ा हुआ था, तब तक सब प्रकार से स्वस्थ, सुखी और शान्त था। तब उसका अपनी संस्कृति सभ्यता और जीवन-मूल्यों से निकट का नाता रिश्ता था; किन्तु धीरे-धीरे मानव प्रकृति से दूर होता चला गया और उसका भयानक परिणाम प्रदूषण के रूप में चारों ओर दिखायी दे रहा है। जल, पृथ्वी, वायु, आकाश आदि सभी तत्त्व प्रदूषित हो रहे हैं, जबकि इनके बिना मानव जीवन की कोई कल्पना ही नहीं की जा सकती है।

प्रदूषण की समस्या से जूझ रहे संसार को यदि कहीं से मार्ग मिल सकता है, तो वह है 'प्राचीन संस्कृत साहित्य'। उसमें भी कालिदास और कालिदास के साहित्य में भी—'अभिज्ञानशाकुन्तलम्'।

ये सभी तत्त्व प्रदूषण को दूर कर पर्यावरण की रक्षा करने वाले हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में इसी विषय को सहृदय समीक्षकों की सेवा में प्रस्तुत किया जा रहा है।

❖

CS-79

भास-नाटककार का विदूषक

कु. शैलजा राजेन्द्र भामरे, नासिक

संस्कृत नाट्यसृष्टि को अन्य रसों के अनुसार हास्य रस का एक अलग ही स्थान है और यही हास्यरस विदूषक नामक पात्र द्वारा नाटकों में समाविष्ट होता है।

महाकवि कालिदास ने भी जिनकी प्रशंसा की है, ऐसे भास नाटककार के नाटकों से विदूषक नामक पात्र की वर्ण्य-रेखा का समावेश इस शोध निबन्ध में किया गया हैं।

भास नाटककार के 14 नाटकों में से पाँच नाटकों में विदूषक पात्र है। (1) स्वप्नवासवदत्तम्, (2) प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्, (3) अविमारकम्, (4) चारुदत्तम्, (5) यज्ञफलम्—

नाट्यशास्त्र के नियमानुसार पौराणिक जो कथायें हैं, उनमें यह पात्र नहीं होता है; परन्तु भास नाटककार ने यह प्रयोग किया है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदूषक एक हास्य अभिनेता होता है। उसका नाम पुष्प या ऋतु के नाम का होता है। विदूषक राजा का मित्र होता है और वह कहानी को आगे ले जाने में मदद करता है। इसी पात्र की कल्पना, भूमिका और व्यंक्तिरेखा का विचार इस शोध-निबन्ध में किया गया है।

❖

CS-80

प्रसन्नराघवे नायिका सहायिकाश्च

श्रीमती नूतनबाला, मुजफ्फरपुर

यद्यपि संस्कृत रूपक में नायक का विशेष महत्त्व है। तथापि नायिका का महत्त्व भी उससे किञ्चित् न्यून नहीं है। शृङ्गार प्रधानं रूपक में तो नायिका पर ही नायक भी पूर्णतः अवलम्बित होता है। आचार्य भरत ने अनेक प्रकार से नायिकाभेद प्रस्तावित किये हैं। उन्होंने नायिका भेद का विवेचन करते समय कामशास्त्रीय पृष्ठभूमि, नारी की सामाजिक स्थिति एवं मनोविज्ञान को अपना आधार बनाया है। प्रकृति-भेद की दृष्टि से उत्तमा, मध्यमा और अधमा। आचार की दृष्टि से बाह्या, आभ्यन्तरा और बाह्याभ्यन्तरा। सामाजिक प्रतिष्ठा की दृष्टि से दिव्या, नृपपत्नी, कुलस्त्री और गणिका। काम-दशा की अवस्था की दृष्टि से वासकसज्जा, विरहोत्कण्ठिता, स्वाधीनपतिका, कलहान्तरिता, खण्डिता, विप्रलब्धा, प्रोषितपतिका, अभिसारिका।

नाट्यदर्पणकार ने किञ्चित् परिवर्तन के साथ भरत द्वारा प्रतिपादित दिव्या, नृपपत्नी, कुलस्त्री और गणिका को क्रमशः कुलजा, दिव्या, क्षत्रिया और पण्यकामिनी कर दिया है। भरत के परवर्ती आचार्यों में धनञ्जय, शारदातनय, रामचन्द्रगुणचन्द्र, शिंगभूपाल एवं साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ आदि ने नायक-नायिका भेदों पर विशद विवेचन प्रस्तुत किया है। कुछ परिवर्द्धन अथवा परिवर्तन के साथ परवर्ती आचार्यों ने प्रथमतः नायिका की तीन कोटियाँ प्रस्तुत की—स्वकीया, परकीया और सामान्या। स्वकीया नायक की विवाहिता पत्नी होती है। वह सुशील, सलज्ज, पतिभक्त और व्यवहारकुशल होती है। परकीया नायक की अपनी पत्नी नहीं होती, वह किसी अन्य की अविवाहिता कन्या या पत्नी भी हो सकती है। सामान्या को साधारण स्त्री भी कहते हैं। यह सर्वजनसुलभा वेश्या भी मानी जाती है।

इस प्रकार प्रस्तुत शोध निबन्ध में नायिका के विविध भेदों एवं उसकी सहायिकाओं की चर्चा करते हुए प्रसन्नराघव में वर्णित नायिका और उसकी सहायिकाओं पर विचार किया गया है।

❖

CS-81

संस्कृत लघुकथा साहित्य में मद्यपान एवं धूम्रपान की समस्या

डॉ. रुचि कुलश्रेष्ठ, इटावा

मद्यपान एवं धूम्रपान हमारे समाज की वो बुराई है जो दीमक के समान हमारी युवा पीढ़ी को खोखला और कमजोर बना रही है। जिस युवा पीढ़ी के हाथ में हमारे देश की बागडोर है, जिनके

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कन्धों पर हमारे देश का भविष्य टिका हुआ है वही युवा पीढ़ी नशे की लत में पड़कर लड़खड़ाने लगी है।

साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है। साहित्य की प्रत्येक विधा अपने समय की सामाजिक स्थिति को प्रस्तुत करती है। विधाओं में लघुकथाएँ जन-जीवन के अधिक समीप है, उसमें स्वाभाविकता तथा वास्तविकता के साथ यथार्थ की सच्ची अभिव्यक्ति है। लघुकथाओं के माध्यम से कथाकारों ने समाज की विभिन्न प्रमुख समस्याओं को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है; क्योंकि लघुकथाएँ सामाजिक बुराइयों को जानने तथा उनको दूर करने का सशक्त साधन रही हैं। मद्यपान एवं धूम्रपान की समस्या भी इन्हीं प्रमुख समस्याओं में से एक है और संस्कृत लघु-कथाकार भी इस समस्या से अछूता नहीं रहा है। उसने भी लघुकथाओं के माध्यम से मद्यपान एवं धूम्रपान जैसी समस्या को समाज से दूर करने का प्रयास किया है।

धूम्रपान एवं मद्यपान जैसी बुराइयाँ जब व्यक्ति को अपने शिकंजे में जकड़ लेती हैं उस व्यक्ति को अपने सम्मान व सम्पत्ति को खोने का डर भी समाप्त हो जाता है। व्यक्ति कभी अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति नष्ट कर देता है तो कभी चोरी जैसा वर्जनीय कार्य करने से भी नहीं हिचकता, जैसे 'शुभाशुभं कर्मफलम्' में कृषक पुत्र अपनी इन्हीं इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए अपनी पूर्ण सम्पत्ति बेच देता है—

'कृषकस्य पुत्रस्तु मद्यपो द्यूतसंसक्तः सर्वासम्पदं विक्रीतवान्।'

वही 'दोषी' नामक कथा में श्रीकान्त का कनिष्ठ पुत्र भी चोरी करता है—

'कनिष्ठ पुत्र अत्र तत्र चोरयित्वा मद्यपानमभ्यस्यति।'

मद्यपान, धूम्रपान एवं द्यूत आदि व्यसनों ने भारतीय युवा पीढ़ी को दिग्भ्रमित कर रखा है, मस्तिष्क जड़ हो रहे हैं और शरीर खोखले। नशे की आदत ने घरों को बिखेर दिया है तो सम्बन्धों को तोड़ दिया है। इस प्रकार युवकों की शक्ति का ह्रास हो रहा है। जो युवा ऊर्जा देश और समाज के कल्याणार्थ काम आनी चाहिए, वही मदिरालयों और जुआघरों की देहरी पर तड़पती हुई दम तोड़ रही है। इस बुराई एवं उससे होने वाले कष्टों को दिखाकर संस्कृत कथाकार ने चिन्ता अभिव्यक्त करते हुए लोगों को मद्यपान एवं धूम्रपान जैसी समस्या के प्रति जागरुक करने का प्रयास किया है।

❖

CS-82

श्री मूलशङ्कर माणिक लाल याज्ञिक की संस्कृत नाट्यकृतियों की अभिनेयता

श्री प्रज्ञा शङ्कर, बरेली

नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा एवं विलक्षण काव्य प्रतिभा सम्पन्न, आधुनिक संस्कृत साहित्य की श्रीवृद्धि में सहायक, अपनी कृतियों से सहृदयों के हृदय को आह्लादित करने में पूर्णतया समर्थ श्री मूलशङ्कर माणिक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाल याज्ञिक जी वस्तुतः विद्यादायिनी माँ शारदा की रत्नमाला के मध्यमणि हैं। उनकी संस्कृत नाट्यत्रयी क्रमशः छत्रपतिसाम्राज्यम्, प्रतापविजयम् एवं संयोगितास्वयंवरम् ने उनकी कीर्ति-कौमुदी को सर्वत्र उद्भासित किया है। आधुनिक संस्कृत साहित्य के वह सबसे प्रभावशाली एवं सफल नाटककार हैं।

नाटक की सफलता अभिनय पर आधारित होती है। अभिनेयता ही नाटक की वास्तविक कसौटी है। रङ्गमञ्च और साहित्य बाह्यता दो नितान्त भिन्न प्रकृति के रूप हैं। साहित्य लिखित एवं भाषिक अभिव्यक्ति है, जो कवि या लेखक की एकान्तिक सर्जनात्मक प्रक्रिया का परिणाम है और जीवनानुभूतियों के प्रस्तुतिकरण का माध्यम है।

इसके विपरीत रङ्गमञ्च विभिन्न कलाओं से युक्त, क्रिया-प्रतिक्रियाओं के प्रत्यक्षीकरण का सशक्त माध्यम है; किन्तु यदि हम इसके अन्तःसम्बन्ध पर सूक्ष्म दृष्टिपात करें तो नाटक और रङ्गमञ्च परस्पर सापेक्ष है। यदि नाटक को शरीर मानें तो रङ्गमञ्च उसकी आत्मा है। किसी भी भाँति नाटकों की उत्कृष्टता का प्रश्न और निर्णय बिना मञ्च के सम्पर्क के सम्भव नहीं है।

अभिनय के चतुर्विध प्रकार आङ्गिक, वाचिक, सात्त्विक एवं आहार्य अभिनय तथा अभिनेयता के आवश्यक तत्त्वों की कसौटी पर श्री मूलशङ्कर माणिक लाल याज्ञिक जी की नाट्यत्रयी कहाँ तक खरी उतरती है इस तथ्य की खोज का निष्कर्ष ही लिखित रूप में मेरे इस शोधपत्र के प्रस्तुतिकरण का आधार है।

❖

CS-83

संस्कृत साहित्य में रावण का उदात्त चरित्र

भावना शर्मा, चण्डीगढ़

वाल्मीकि रामायण को आधार बनाकर अनेक कवियों ने रामकथा की विभिन्न प्रस्तुतियाँ की हैं। रावण रामकथा का प्रतिनायक है। प्रतिनायकत्व की दृष्टि से रावण के चरित्र का विश्लेषण भी हम उन्हीं आधारों पर करते आए हैं। जिस प्रकार खारे समुद्र में रत्न भी मिल जाते हैं, उसी प्रकार रावण में दुर्गुणों के साथ-साथ गुणों का भी समावेश है। वह एक ओर वीर है तो दूसरी ओर तपस्वी भी है। नरवाहन कुबेर के वैभव से आकर्षित होकर वह तपस्या करता है। प्राचीन भारतीय विचारधारा के अनुसार किसी को भी ऐश्वर्य, धन, पद बिना तपस्या तथा धर्मानुष्ठान के नहीं मिल सकता। रावण में वैसे कष्ट सहिष्णुता थी। वह भारी तपस्वी भी रहा था। उसकी वीरता में कोई सन्देह नहीं था। स्वाभिमान, आत्मविश्वासी, शूरवीरता, धीरता आदि उसके विशिष्ट गुण हैं। अपने सम्बन्धी, भाई, पुत्रों के युद्ध में मारे जाने पर भी वह उसी उत्साह के साथ लड़ता रहा। सत्य, ईमानदारी आदि वह अपने व्यवहार में राक्षस वर्ग के साथ अवश्य निभाता रहा होगा तभी तो इतना बड़ा राक्षस वर्ग उसे अपना सरदार मानता था। यह तथ्य है कि रावण पण्डित था, तपस्वी था, राजनीति कुशल था, धीर एवं वीर था; परन्तु वह अहंकारी भी था। उसका अहंकार एक वीर का अहंकार था। अपने अहंकार के कारण ही उसे अपना सब कुछ खोना

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ा। गम्भीरता से विवेचन करने के पश्चात् हम कह सकते हैं कि रावण का 'रावणत्व' ही उसका सबसे बड़ा दुर्गुण बन गया, जिसके द्वारा कामादि षड्विकार उसमें स्वतः समा गए। उसके मरने पर उसका तेज राम के मुख में समा गया। सत् से निकलकर जो शक्ति असत् के रूप में हो गई थी, वह फिर सत् में विलीन हो गई।

❖

CS-84

किरातार्जुनीय में चित्रालङ्कार

डॉ. (श्रीमती) सरोज भनोट, चण्डीगढ़

अलङ्कार शास्त्रियों ने ऐसे अलङ्कारों की कल्पना की है जो अनेकविध चित्र का रूप धारण करते हों। कवियों ने अपने काव्य को ऐसे ही अनेक चित्रालङ्कारों से विभूषित किया है। चित्र शब्द का तात्पर्य 'वर्णविन्यास द्वारा चित्र की समानता' स्वीकृत किया गया है। चित्त को आकृष्ट करने वाली वस्तु चित्र है—'चित्तं रातीति'। भारवी ने अपने काव्य के पञ्चदश सर्ग को अनेक चित्रालङ्कारों से सुसज्जित किया है। यथा—

1. दूढ़ चित्र,
2. अर्धभ्रम बन्ध,
3. गोमूत्रिका बन्ध,
4. सर्वतो भद्र,
5. गति चित्रः 'क' गत प्रत्यागत गति चित्र 'ख' श्लाकान्तर गति चित्र
6. वर्ण चित्र 'क' एक व्यञ्जन पाद 'ख' एक व्यञ्जन 'ग' द्विव्यञ्जन।
7. स्थान चित्र निरोष्ठ्य वर्ण

यद्यपि शब्दालङ्कारों से काव्य की बाह्य सज्जा होती है तथापि भारवि की इस शाब्दिक क्रीड़ा में अर्थ गरिमा है। एक अनुपम कला का निदर्शन है।

❖

CS-85

शाकुन्तल नाटक में 'अतः परीक्ष्य कर्तव्यं' इत्यादि श्लोक की परिव्याप्ति

डॉ. कुसुम भूरिया (दत्ता), सागर

अभिज्ञानशाकुन्तल की कथा से हम सभी परिचित हैं। कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तल के पञ्चमाङ्क में शार्ङ्गरव के मुख से एक श्लोक कहलवाया है—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इत्थमात्मकृतमप्रतिहतं चापलं दहति।
अतः परीक्ष्य कर्तव्यं विशेषात् सङ्गतं रहः।
अज्ञातहृदयेष्वेवं वैरीभवति सौहृदम्॥ (5/24)

इस एक श्लोक के माध्यम से कवि ने अपने अद्वितीय नाटक अभिज्ञानशाकुन्तलम् की मानो सम्पूर्ण कथा को अभिव्यक्त कर दिया है। यह श्लोक नाटक में आद्यन्त अपना प्रभाव बनाए रखता है। नाटक के पूर्वार्ध में यह श्लोक अपना प्रत्यक्ष प्रभाव डालता है।

कालिदास ने नाटक के प्रथम तीन अङ्कों में उस रूप को खूब उभारा है, जिसका आधार शारीरिक सौन्दर्य है और जिसका परिणाम है—कामवासना की तृप्ति। एक ओर आश्रमकन्या, प्रकृति पुत्री, रूपवती शकुन्तला है, तो दूसरी ओर धन-वैभव तथा राजसी ठाठ-बाठ से गर्वित चतुर, चालाक, दुष्यन्त। रसिक भ्रमर दुष्यन्त रूपसम्पदा से लुभावनी कली शकुन्तला पर रीझकर मँडराने लगा और उस पर न्यौछावर हो गया। नवयौवना, मुग्धा शकुन्तला भी तपोवन की पवित्रता की परवाह न करती हुई दुष्यन्त से गान्धर्व विवाह कर लेती है। बाह्य रूप और वैभव के वशीभूत दोनों ने ही एक-दूसरे के 'हृदय' की थाह नहीं ली, उस पर विचार भी नहीं किया। उनकी यही भूल नाटक में इस प्रकार प्रतिफलित हुई कि शकुन्तला को दुष्यन्त के राजप्रासाद में महारानी तो क्या; दासी का भी स्थान नहीं प्राप्त हुआ तथा वह पितृगृह वापस लौटने में भी असहाय हो गई। दुष्यन्त भी वर्षों तक व्याकुल होता रहा। यह सब उस 'अज्ञातहृदयत्व के संगम' का ही दुष्परिणाम था।

अपने इस अक्षम्य अपराध का प्रायश्चित्त शकुन्तला ने मारीच ऋषि के आश्रम में साधना, तपस्या तथा त्यागमय जीवन को अपनाकर किया तथा दुष्यन्त ने भी निरन्तर पश्चात्ताप के माध्यम से। त्यागमयी शकुन्तला और पश्चात्ताप से शुद्ध अन्तःकरण वाले दुष्यन्त का सात्त्विक मिलन नाटक में अन्त में दिखलाया गया है, जो उस श्लोक के अप्रत्यक्ष प्रभाव को दर्शाता है। आलेख में इसका विस्तृत विवेचन किया गया है।

❖

CS-86

दूतघटोत्कच रूपक में प्रतिनायक की भूमिका

श्री रामा शङ्कर रजक, मुजफ्फरपुर (बिहार)

महाकवि भासकृत रूपक 'दूतघटोत्कच' का नामकरण हिडिम्बा-भीम पुत्र घटोत्कच के दौत्यकर्म से सम्बद्ध है। प्रसिद्ध कथावस्तु, उद्धत नायक, वीररस एवं अभिनय का अवकाश, सामाजिकों में उत्साह जगाने वाला वीरोचित सम्वाद और करुणरस का समावेश, सबको गुम्फित कर नाट्यकार भास अपनी नवीन चिन्तनधारा से 'दूतघटोत्कच' के रूप में परिष्कृत किया है। जिसका प्रतिनायक दुर्योधन है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तुत रूपक में प्रतिद्वन्द्वी पात्र दुर्योधन का आगमन अकेला नहीं; अपितु अपने अनुरूप दो साथियों के साथ हुआ है, वे हैं— दुःशासन तथा शकुनि। रङ्गमञ्च पर ये तीनों पात्र अभिमन्यु वध के कारण आनन्दातिरेक से उत्फुल्ल दिखायी देते हैं।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि अपनी संक्षिप्त भूमिका में भी घटोत्कच का चरित्र इतना प्रभावशाली है कि वह दुर्योधन, दुःशासन एवं कुटिल मति शकुनि को आक्रामक तर्कों से निरुत्तरित कर, अपने प्रभाव से सभी को आवेष्टित कर लेता है। अपने सम्पूर्ण चरित्र में घटोत्कच एक वीर, युद्धप्रिय, तर्कपटु, उद्धत किन्तु धीरनायक है। वह आज्ञापालक एवं शिष्टाचार से पूर्णतः परिचित है। वह राक्षस होते हुए भी दुर्योधन से श्रेष्ठ है। दुर्योधन अत्यन्त अभिमानी तथा क्रूर प्रदर्शित किया गया है। प्रत्येक प्रसङ्ग में वह गर्वपूर्ण वचन ही बोलता है। इस प्रकार घटोत्कच का नायकत्व एवं दुर्योधन का प्रतिनायकत्व सिद्ध होता है।

❖

CS-87

कुमारसम्भव में आदर्श भारतीय नारी का चित्रण

माधुरी यादव, इन्दौर (म.प्र.)

महाकवि कालिदास भारतीय साहित्य की सर्वश्रेष्ठ विभूति हैं। उनका साहित्य विश्व की अनमोल निधि है। 'कुमारसम्भव' कालिदास की अमरकृति है, जिसमें शिव-पार्वती के मिलन और उनके पुत्र कार्तिकेय के जन्म की कथा है। कुमारसम्भव के नारी-पात्रों का सजीव सुन्दर चित्रण कालिदास ने किया है। सभी नारी पात्र भारतीय संस्कृति के आदर्शों की ही स्थापना करते हैं। पार्वती इत्यादि भारतीय नारी के उज्ज्वल चरित्र ने भारतीय संस्कृति के जीवन मूल्यों को अपनी दीर्घकालीन साधना के आलोक में प्रतिष्ठित किया है। शारीरिक सुन्दरता नारी की सर्वोत्कृष्ट सम्पत्ति नहीं है और इसी प्रकार आध्यात्मिक सौन्दर्य के प्रति आत्मसमर्पण कोई पराजय नहीं है। नारी के प्रति भारतीय संस्कृति का यही अमर सन्देश इस महाकाव्य में प्रभावोत्पादक ढंग से व्यञ्जित हुआ है।

इस प्रकार 'कुमारसम्भव' में मूलतः तीन नारियों का चित्रण किया गया है। भारतीय संस्कृति में नारियों के अन्तर्गत कन्या, माता एवं गृहिणी के रूप मिलते हैं। मैना, मातृरूपा है तो रति, गृहिणी स्वरूपा है और पार्वती कन्या, गृहिणी एवं मातृरूपा भी हैं। 'रतिविलाप' में आदर्श गृहिणी ही नहीं, अपितु भारतीय दम्पत्ति का वियोगज स्वरूप उत्कृष्टरूप से मुखरित हुआ है। पार्वती की तपस्या से हिमालय का गौरी-शिखर या गौरीशङ्कर नाम होना, उनका स्वयं अपर्णा नाम पड़ना और स्वयं निर्णय से शिव को सकाम करना तथा 'न ययौ न तस्थौ' का परिणाम प्राप्त करना भारतीय नारी की निर्णयात्मिका वृत्ति का उदाहरण है। इस प्रकार 'कुमारसम्भव' में भारतीय नारी का आदर्शरूप चित्रित हुआ है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-88

महाकवि जयदेव का काव्यगत वैशिष्ट्य

श्री राजेश कुमार, मुजफ्फरपुर

'गीत गोविन्द' के प्रणेता महाकवि जयदेव का व्यक्तित्व और कृतित्व संस्कृत-साहित्य के गीतिकाव्य की परम्परा में भूयसी प्रतिष्ठा से सम्पृक्त है। राजा लक्ष्मणसेन के सभा पण्डित जयदेव का काव्य भक्तिरस से ओत-प्रोत है। 'गीत गोविन्द' में 12 सर्ग हैं। सभी सर्ग गीतों से समन्वित हैं। 'गीत गोविन्द' भगवती संस्कृत भारती के सौन्दर्य तथा माधुर्य की पराकाष्ठा है। इस काव्य में कोमलकान्त पदावली का सरस प्रभाव तथा मधुर भावों का मधुमय सन्निवेश है। शब्द माधुर्य के लिए तो 'गीतगोविन्द' विश्वप्रसिद्ध है— 'ललितलवङ्गलतापरिशीलनकोमलमलयसमीरे'।

भावों का सौष्ठव भी अत्यन्त हृदयावर्जक है। विरहिणी राधा के वर्णन में कवि जयदेव की उक्ति अत्यन्त अनूठी प्रतीत होती है। राधा के दोनों नेत्रों से आसुओं की धारा बह रही है। ऐसा प्रतीत होता है मानो विकट राहु के दाँतों के गड़ जाने से चन्द्रमा से अमृत की धारा बह रही हो—

वहति च वलित-विलोचनजलधरमाननकमलमुदारम्।
विधुमिव विकटविधुन्तुददन्तदलनगलितामृतधारम्॥

अलङ्कारों के प्रयोग में भी कवि जयदेव सिद्धस्त हैं। उपमा की कल्पना एवं उत्प्रेक्षा की उड़ान सर्वत्र दृष्टिगत होती है। साथ ही शृङ्गार के उभयपक्षों का भी कवि ने अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ वर्णन किया है। प्राकृतिक रमणीयता का भी कवि ने मनोहारी वर्णन किया है। कवि की अर्थमाधुरी जगत् प्रसिद्ध है—

दृशौ तव मदालसे वदनमिन्दुसन्दीपकं
गतिर्जनमनोरमा विजितरम्भमूरुद्वयम्।
रतिस्तव कलावती रुचिरचित्रलेखे भ्रुवावहो
विबुधयौवनं वहसि तन्वि! पृथ्वीगता॥

सर्वत्र माधुर्य भक्तिरस की छटा से आच्छादित 'गीत गोविन्द' काव्य की महनीयता का आकलन सुधीजनों के शोध का विषय होगा।

इस आलेख में इन्हीं बिन्दुओं पर विचार किया गया है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-89

रूपकों में वीररस की स्थिति

श्री हिमचन्द्र द्विवेदी, मुजफ्फरपुर

रसों में वीररस का अङ्गीरस के रूप में नाटकों में स्वल्पतर निबन्धन ही है। प्रमुख नाटकों में मुद्राराक्षस, नागानन्द और वेणीसंहार है। वीररस की उत्पत्ति ऋग्वेद से हुई है। महेन्द्र को इस रस का देवता कहा गया है। साथ ही इस रस का वर्ण गौर बताया गया है।

वीररस प्रधान रस में गिने गये शृङ्गार आदि चार रसों में एक है। इसकी प्रधानता का आधार यह है कि यह अपनी अस्वाद्य स्थिति के लिए किसी दूसरे पर निर्भर नहीं है। वीररस की निष्पत्ति पर विचार करते समय ऐसी मनोवृत्ति का उल्लेख किया गया है, जिसमें भाव का जागरण उद्दीपन-सम्पोषण तथा अभिमानयुक्त रजोगुण-मिश्रित सत्वत्ति की दशा विद्यमान रहती है। इस प्रकार वीररस की निष्पत्ति में अभिमान के साथ ही साथ रजोगुण एवं सत्ववृत्ति का अस्तित्व स्वीकार किया गया है।

इस आलेख में वीररस के भावों और भेदों पर विचार कर प्रमुख रूपकों में इसके निबन्धन और इसके अस्वादकत्व का विश्लेषण किया गया है।

❖

CS-90

कालिदास के काव्यों में वर्णित राजनीति का स्वरूप

श्री दिलीप कुमार, मुजफ्फरपुर

महाकवि कालिदास ने अपनी साहित्यिक रचनाओं में विभिन्न राजाओं का विस्तार के साथ वर्णन किया है तथा इन राजाओं की प्रकृति और राज्य के स्वरूप को भी दर्शाने का सफल एवं श्लाघनीय प्रयास किया है। इसी सन्दर्भ में महाकवि ने प्रसङ्गानुसार राजनीति से सम्बद्ध अमात्य-सचिव, नर्म सचिव, सेनापति, गुप्तचर, दूत आदि का भी संक्षिप्त रूप से वर्णन किया है। इसके आधार पर तत्कालीन समाज में व्याप्त राजनीति के सामान्य स्वरूप का अनुमान निश्चितरूपेण हो जाता है, जिसका निर्धारण निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है—

राज्य का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथा विशिष्ट व्यक्ति राजा होता है। महाकवि ने अपनी रचनाओं में रघु, दिलीप, अज, दशरथ, राम, दुष्यन्त आदि अनेक राजाओं का वर्णन किया है। रघु के वर्णन के प्रसङ्ग में राजा-विषयक अपनी धारणा को स्पष्ट करते हुए महाकवि ने लिखा है कि 'जिस प्रकार आनन्द देने से चन्द्रमा और सन्ताप देने से सूर्य सार्थक नाम वाले हुए उसी प्रकार वे रघु प्रजा को प्रसन्न करने से सार्थक नाम वाले हुए, इससे यह स्पष्ट होता है कि राजा की सार्थकता प्रजा की प्रसन्नता में ही निहित

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, जो राज्य की राजनीति का मेरुदण्ड हुआ करता है। इसके अतिरिक्त 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के भरत-वाक्य में भी महाकवि ने राजा-विषयक अपनी ऐसी मान्यता को व्यक्त करते हुए लिखा है कि 'राजा लोग प्रजा के हित के कार्यों में हमेशा संलग्न रहे, नाट्यशास्त्र की मान्यता के अनुसार भरत-वाक्य में प्राणिमात्र के लिए मङ्गल कामना निहित रहती है। यहाँ भी महाकवि ने राजा से प्रजा के कल्याणप्रद कार्यों के सम्पादन की कामना को व्यक्त किया है। राजा के ऐसे ही स्वरूप का दर्शन 'मालविकाग्निमित्र' तथा 'विक्रमोर्वशीयम्' में भी होता है।

इस आलेख में कविकुलगुरु के द्वारा प्रसङ्गवश उपदिष्ट-निर्दिष्ट तत्कालीन राजनीति के स्वरूप का संक्षिप्त विवेचन किया गया है।

❖

CS-91

आख्यातप्रयोगजन्य शाकुन्तल-नाटक की काव्यभाषात्मक लावण्य-विच्छित्ति

श्री शिव कुमार, मुजफ्फरपुर

आख्यात एक महत्त्वपूर्ण वाक्यावयव है। यह समग्र अभिव्यक्तियों का मूलाधार है। यद्यपि वाक्य क्रियारहित भी होते हैं और उनकी अभिव्यक्ति अन्य शब्दों अथवा सङ्केतों से भी सम्भव है तथापि प्रत्येक वाक्य में क्रियात्मक प्रतिपत्ति अवश्य विद्यमान रहती है। ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धन के अनुसार भी आख्यात या क्रियापदों के विशिष्ट रूप में संयोजन से प्रतीयमान अर्थ अत्यधिक अभिव्यञ्जित हो उठता है। आनन्दवर्धन ने एक उदाहरण से आख्यात-पदों की व्यञ्जना का विशिष्ट विश्लेषण किया है—

अपसर रोदितुमेव निर्मिते मा पुसय हते अक्षिणी मे।
दर्शनमात्रोन्मत्ताभ्यां याभ्यां तव हृदयमेवं रूपं न ज्ञातम्॥

यहाँ 'अपसर' यह आख्यात पद है, इससे व्यङ्ग्यार्थ ध्वनित होता है कि—तुम्हारा मुझे मनाने की चेष्टा करना व्यर्थ है, जब दैव ने ही ऐसा विधान कर दिया तो उसे कौन बदल सकता है? इस व्यञ्जना के द्वारा नायिका, नायक से अपने अन्तस् की व्यथा का निवेदन कर उसके हृदय में सद्भावना उत्पन्न कराना चाहती है। इस प्रकार यहाँ 'अपसर' यह आख्यात 'तिङन्त' व्यञ्जक है और इससे प्रतीयमान अर्थ और अधिक अभिव्यञ्जित हो उठता है।

प्रस्तुत आलेख में विस्तार से शाकुन्तल-नाटक की काव्यभाषा में आख्यातजनित लावण्य का विश्लेषण किया गया है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-92

कालिदास के नाटकों की कथानक : रूढ़ियों का आकलन

सुश्री रूपा झा, मुजफ्फरपुर

कालिदास के रूपकों में कथानक-रुढ़ियाँ परिमाणतः स्वल्प; किन्तु प्रभावतः निस्सीम हैं। संख्या नहीं तत्त्व को वरीयता देने वाली दृष्टि इनके महत्त्व का अपलाप नहीं कर सकती है। वर्णानुक्रमेण अदृश्यता, अभिज्ञान, अज्ञान में अपराध और शाप तथा शापमुक्ति, आकाशगमन, आकाशवाणी, रक्षाकरण्डक, राक्षस या दानव द्वारा स्त्री-हरण और नायक-द्वारा उसका उद्धार, समयपरिवर्तन आदि इस सन्दर्भ में परिगणनीय है।

इस आलेख में इन्हीं तथ्यों का विस्तार से विवेचन है।

❖

CS-93

संस्कृत नाटकों में करुणरस

श्री अनिल कुमार मिश्र, मुजफ्फरपुर

धन, स्वजन आदि के विनाशरूप आलम्बन से तथा उनके गुण आदि के उद्दीपन से उद्बुद्ध, अश्रुपात, परिदेवन, वैवर्ण्य आदि अनुभावों से प्रतीति योग्य एवं निर्वेद, ग्लानि, दैन्य आदि व्यभिचारियों से परिपुष्ट शोकरूप स्थायीभाव का आस्वाद करुणरस है।

इष्टावधदर्शनाद्वा विप्रियवचनस्य संश्रयाद्वापि।
एभिर्भावविशेषैः करुणरसो नाम सम्भवति॥

करुणरस का परिचय देते हुए शारदातनय का कथन किया गया है। इसमें करुणरस के परिचयात्मक विवरण से करुण पद की व्युत्पत्तिगत अर्थ प्रकृति का सामञ्जस्य भी दिखाया गया है। इस प्रसङ्ग में 'करु'पद को क्लेशार्थक बताते हुए यह कहा गया है कि जिसकी बुद्धि क्लेश न सह सके, उस स्थिति के बोधक पद को करुण कहा जाता है। इस प्रसङ्ग में शारदातनय ने करुण पद के लोकसम्मत अर्थ की प्रकृति सङ्गति का भी निर्वाह किया है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए आपका कहना है कि जहाँ पराश्रित क्लेश की असहिष्णुता रहती है, वहाँ मन का जैसा भाव होता है उसे करुण कहा जाता है। अपने व्युत्पत्तिमूलक उपर्युक्त विवेचन में शारदातनय ने सबसे पहले करुण शब्द 'करु' अंश का सम्बन्ध क्लेशार्थक से जोड़ते करुण पद के दुःखमूलक भाव का पूर्ण संरक्षण किया है। विद्वान् आचार्य ने इसे दुःखात्मक स्थिति को स्वाश्रित दुःख से सर्वथा पृथक् सिद्ध करते हुए विवेचना क्रम में पराश्रित क्लेश का स्पष्ट उल्लेख किया है। यह एक ऐसा तथ्य है जो करुण पद के लोकसम्मत अर्थ का पूरा प्रतिनिधित्व करता है। आचार्यों ने रजोहीन अलङ्कारवर्जित रौद्र से ही करुण की उत्पत्ति बताई है।

इस आलेख में इसी करुणरस का कुछ विशिष्ट नाट्यों में प्रयोग समीक्षित है, पर प्रकाश डाला है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-94

भारतीय संस्कृति और पर्यावरण

डॉ. इन्दु तिवारी, उन्नाव

'संस्करोतीति संस्कृतिः' अर्थात् संस्कृति वह है जिससे संस्करण होता है। 'पर्यावरण' में हमारे चारों ओर का प्राकृतिक भौतिक व सांस्कृतिक आवरण समाहित है। संस्कृति हमारे जीवन में व्याप्त है। उसकी रचना और विकास में अनेक सदियों के अनुभवों का हाथ है। पर्यावरण भी हमारे जीवन में व्याप्त है। भारत के भौगोलिक पर्यावरण ने भारत की एकता एवं संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखा, इसी प्रकार भारतीय संस्कृति के प्रमुख तत्त्वों में पर्यावरण शुद्धि की महत्ता को स्वीकार कर पर्यावरण को दूषित होने से बचाया। इस प्रकार संस्कृति एवं पर्यावरण का अटूट सम्बन्ध है।

भारत की प्राचीनतम संस्कृति 'अरण्य संस्कृति' तो मात्र प्रकृति की उपासना ही है। हमारे पूर्वजों ऋषि-मुनियों ने प्रकृति को माँ की तरह पूजा तथा पञ्चतत्त्वों की उपासना की।

हमारे धार्मिक ग्रन्थों में अन्तर्निहित सिद्धान्त हमें सिखाते हैं कि हमें प्रकृति की उपासना जीवन-साध्य के रूप में करनी है। उन्नत हिमालय के शिखर, वृक्ष-कुञ्जों से सुशोभित ऋषि आश्रम, गुरुकुल, ज्ञानपीठ तथा पवित्र नदियों के निर्मल जल से सिञ्चित वन-उपवन इसके साक्षात् प्रमाण हैं। प्रकृति प्रदत्त जीवनदायिनी व्यवस्था में वनस्पति, जीवजन्तु, वायुमण्डल तथा भू-जल मण्डल सभी एक-दूसरे पर निर्भर रहकर एक स्वस्थ पर्यावरण की संरचना करते हैं।

हमारी संस्कृति के बीजमन्त्र—यज्ञ, सूर्य, अग्नि, जल, वायु, तुलसी आदि की उपासना पर्यावरण शुद्धि के परिचायक हैं। हमारे ऋषिगण सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक थे, जिन्होंने सृष्टि की प्रत्येक क्रिया का वैज्ञानिक दृष्टि से पर्यवेक्षण किया। धर्मभीरु मानव की मानसिकता को जानकर यज्ञादि कर्मों को धर्म से सम्बद्ध कर दिया।

संस्कृति का मानवीय संस्कारों से घनिष्ट सम्बन्ध है। संस्कारों के निर्माण में परिवेश की महती भूमिका होती है। पर्यावरण इन्हीं अर्थों में संस्कार एवं मन संस्कृति से जुड़ा है।

भारतीय संस्कृति में समन्वय करने की अनूठी क्षमता है। भारत का धर्म, दर्शन, रीति-रिवाज एवं विभिन्न धर्मों के त्यौहार यह सब भारतीय वातावरण के अनुकूल ही पनपे हैं। अतः समन्वय की क्षमता ने ही पर्यावरण को सन्तुलित रखने में सफलता प्राप्त की है।

इस प्रकार भारतीय संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में पर्यावरण की अवधारणा को स्पष्ट करने का लघु प्रयास किया है। सम्पूर्ण तथ्यों का विशद विवेचन इस शोधपत्र में दृष्टव्य होगा।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-95

भवभूति के 'उत्तररामचरितम्' में पर्यावरण चेतना

डॉ. राम कुमार शर्मा, ग्वालियर (म.प्र.)

'अनुभूति' जब मञ्जुल भाषा का आश्रय लेकर अभिव्यक्त हो जाती है तब काव्य बन जाती है। यही कारण है कि काव्य जीवन की विभिन्न अनुभूतियों का एक कमनीय सङ्कलन होता है। कवि अपने काव्य में जीवन एवं जगत् की सभी घटनाओं तथा तथ्यों को वर्ण्य विषय बनाता है। इन्हीं वर्ण्य विषयों में एक महत्त्वपूर्ण वर्ण्य-विषय हैं— 'पर्यावरण चित्रण'। संस्कृत के सभी महाकवियों के काव्यों में पर्यावरणीय तत्त्वों का प्रचुर वर्णन प्राप्त होता है। इस दृष्टि से संस्कृत के महान् नाट्यकार भवभूति की रचना 'उत्तररामचरितम्' सर्वथा परिशीलन योग्य है। 'उत्तररामचरितम्' नाटक में कवि की चेतना 'पर्यावरण चित्रण' में असाधारण रूप से सफल रही, चाहे पृथ्वी के कोमल पक्ष का चित्रण हो या कठोर पक्ष का; चाहे भूमि, जल, वायु, आकाश एवं अग्नि का चित्रण हो चाहे विभिन्न जीव-जन्तुओं का; सूक्ष्म निरीक्षण सापेक्ष चित्रण हो या वनस्पतियों एवं भौगोलिक तत्त्वों का चित्रण, हो सर्वत्र भवभूति की प्रतिभा समान रूप से अप्रतिहत गति से प्रसार को प्राप्त हुई है।

कवि ने जहाँ एक ओर नाटक में पृथ्वी, भागीरथी जैसे पात्रों को अवतरित किया है, वहीं सारे के सारे दृश्यों को पञ्चवटी एवं दण्डकारण्य से जोड़ रखा है। जिसके परिणामस्वरूप कवि को पर्यावरण चित्रण हेतु प्रचुर अवसर प्राप्त होता है। पर्यावरण तत्त्वों में भूमि, जल, वायु, अग्नि, आकाश, वनस्पति, औषधियाँ, नदी, पर्वत, निर्झर, जीव-जन्तु, पुष्प, फल, वृक्ष, लता, रत्न, मणियाँ, दिशाएँ, काल और खनिज पदार्थ आदि सभी का उपादान किया जाता है। इन्हीं तत्त्वों में से कुछ तत्त्वों का भवभूति के 'उत्तररामचरित' नाटक में संक्षिप्त विवेचन किया गया है, जिससे अभी की पर्यावरण चेतना का अनुमान किया जा सकता है। वर्तमान समय में संस्कृत जैसी प्राचीन काल की भाषा के साहित्य एवं पर्यावरण चेतना जैसे महत्त्वपूर्ण आधुनिक विषय को मिलाकर अध्ययन करने की महती आवश्यकता अनुभव की जा रही है। इसी दिशा में यह एक प्रयास है।

❖

CS-96

कालिदास एवं भवभूति साहित्य में यज्ञ सन्दर्भ

डॉ. ब्रह्मदेव, हरिद्वार

भारतीय संस्कृति में 'यज्ञ' प्राणभूत तत्त्व के रूप में स्वीकार्य है। अत एव पुरातन वैदिक वाङ्मय की भाँति कालिदास एवं भवभूति साहित्य में भी इसका वर्णन अनेकत्र प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्निहोत्र वहाँ अवश्यकरणीय कार्यों में स्वीकार्य है। उत्तररामचरित में राम का जनक महाराज विषयक-उल्लेख इसी अवधारणा की परिपुष्टि करता है—

किन्त्वनुष्ठाननित्यत्वं स्वातन्त्र्यमपकर्षति।
सङ्कटा ह्याहिताग्नीनां प्रत्यवायैर्गृहस्थता॥ (उत्तररामचरित 1.8)

कालिदास का रघुकुल विषयक 'यथाविधिहुताग्नीनाम्' (रघुवंश 1.6) नामक प्रसिद्ध श्लोक भी इसी ओर इङ्गित कर रहा है। राजा अज का प्रातःकालिक यज्ञादिविधि का निष्पादन करने को बतलाने वाला 'अथ विधिमवसाय्य शास्त्रदृष्टं दिवसमुखोचितम्' (रघुवंश 5.76) यह श्लोक भी उक्त को ही चरितार्थता प्रदान कर रहा है।

इस प्रकार का विभिन्न यज्ञों से सम्बद्ध कालिदास एवं भवभूति साहित्य में उल्लेख किस रूप में विद्यमान् है, वह समाज को किस प्रकार प्रभावित करता है। आज के समाज के सन्दर्भ में यज्ञों की क्या प्रासङ्गिकता हो सकती है। वह किस रूप में पर्यावरण-प्रदूषण आदि का निवारक हो सकता है—इसका उल्लेख प्रकृत लेख के माध्यम से प्रस्तुत रहेगा।

❖

CS-97

'उत्तररामचरितम्' तथा 'मेघदूतम्' में वर्णित जीव-जन्तु वर्णन –एक तुलनात्मक अध्ययन

कु. रुचि गुप्ता, बड़ौत (बागपत)

जीव-जन्तुओं का मानव जीवन में महत्त्व सर्वविदित है। आज वैज्ञानिक प्रगति के शिखर पर पहुँच जाने पर भी इन जीवों के महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता।

संस्कृत कवियों ने प्रारम्भ से ही अपने काव्यों में इन जीवों को विशिष्ट स्थान प्रदान किया है। संस्कृत साहित्य की प्रायः प्रत्येक विधा जीव-जन्तुओं के वर्णन से ओत-प्रोत है। महाकवि कालिदास विरचित प्रबन्धकाव्य 'मेघदूतम्' तथा महाकवि भारवि द्वारा रचित रूपक 'उत्तरामचरितम्' में भी विविध जीव-जन्तुओं का प्रमुखता से वर्णन किया गया है। भिन्न-भिन्न कवियों की कृतियाँ होने के कारण इनमें वर्णित जीव-जन्तु वर्णन में कुछ समानताएँ व असमानताएँ हैं। इन्हें क्रमशः निम्नवत् देखा जा सकता है—

विवेच्य दोनों काव्यों में वानर, अश्व, मयूर आदि विभिन्न जीवों के प्रति धार्मिक भाव दर्शाये गये हैं। दोनों में विविध जीवों के प्रति मानवीय भाव प्रकट किये गये हैं। दोनों ही ग्रन्थों के पात्रों में विविध जन्तुओं अर्थात् हिरण, मयूर, मछली, भ्रमर, सिंह आदि के शरीर व स्वभाव में मानव को देखा है। इन दोनों कृतियों में जीव-जन्तु विषयक बहुत-सी मान्यताओं तथा इनके विविध उपयोगों का भी वर्णन मिलता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार इन दोनों काव्यों के जीव-जन्तु वर्णन में पर्याप्त समानताएँ हैं; किन्तु इनमें विभिन्नताओं का भी अभाव नहीं है।

'मेघदूतम्' में सर्वत्र सुन्दर, कोमल जीवों का ही वर्णन मिलता है। यहाँ सर्वत्र पंक्तिबद्ध बलाकाओं, सुन्दर हंस, मतवाले गज, कूजते सारस, गुञ्जन करते भ्रमर, नृत्य करते मयूर, कस्तूरी गन्ध फैलाते मृगों का ही वर्णन है।

इसके विपरीत 'उत्तररामचरितम्' में अति कठोर, भयावह जीवों का भी वर्णन बहुलता में मिलता है। यद्यपि यहाँ 'मेघदूतम्' सदृश वर्णनों का अभाव नहीं है; किन्तु क्षुद्रातिक्षुद्र कीट तथा अति हिंसक जन्तुओं का स्वाभाविक चित्रण भी पर्याप्त मात्रा में है।

भाषा, शैली, छन्द, रस आदि की दृष्टि से यदि विचार किया जाये, तब भी इन दोनों कृतियों के इस वर्णन में बहुत अधिक असमानता है। 'मेघदूतम्' में सर्वत्र सरल भाषा, वैदर्भी शैली, मन्दाक्रान्ता छन्द तथा शृङ्गार रस से ही यह वर्णन सिक्त है; जबकि 'उत्तररामचरितम्' में यह जीव-जन्तु विषयक वर्णन सरल एवं दीर्घ समासयुक्त भाषा, विभिन्न प्रकार के छन्द, विभिन्न रसों से पुष्ट किया गया है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि 'मेघदूतम्' में वर्णित जीव-जन्तु विषयक वर्णन एकपक्षीय-सा प्रतीत होता है, जबकि 'उत्तररामचरितम्' का यह वर्णन बहुपक्षीय है।

❖

CS-98

पर्यावरण मूर्द्धन्य महाकवि कालिदास

डॉ. प्रभात रञ्जन कुमार, मुजफ्फरपुर

एतद् विषयक प्रकृति अध्ययन का मूल उद्देश्य है—कालिदास के काव्यों में चित्रित प्रकृति को पर्यावरण के आधुनिक दृष्टि से परिलक्षित करते हुए एक तथ्यपूर्ण विशिष्ट समाकलन प्रस्तुत करना। कालिदास के प्रकृति-चित्रण के लोक माङ्गल्यस्वरूप के रूपायन में वस्तुनिष्ठता के आग्रह के कारण प्रस्तुत गवेष्य विषय का प्रक्षेत्र अत्यन्त व्यापक हो गया है। 'पर्यावरण संरक्षा' की साम्प्रतिक समस्या के आलोक में कालिदास के उदात्त विचारों से भलीभाँति परिचय प्राप्त हो सके, यही वास्तविक लक्ष्य है।

कालिदास विश्व कवि हैं, अतः उनके काव्य में अखिल विश्व हेतु कल्याणकारी सन्देश भरे पड़े हैं। प्रकृति और मानव के तादात्म्य में कैसा अनिर्वचनीय नैसर्गिक आनन्द प्राप्त होता है, इसकी अनुभूति और अभिव्यक्ति में कालिदास ने जिस शाश्वत मूल्य की स्थापना की है, वह विश्व साहित्य में अद्वितीय है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्तु, कालिदास की पर्यावरण विषयक नूतन दृष्टि को लक्षित करने हेतु शत-सहस्र पृष्ठ ही पुनर्वार क्यों न लिखे जाते रहें, तदपि उनकी एतद्विषयक सूक्ष्म संवेदनशील दृष्टि के विषय में उक्त सन्दर्भ अल्प ही होगा।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि आद्य ग्रन्थ ऋग्वेद से समसगत पर्यावरण विषयक आर्ष दृष्टि आदिकवि वाल्मीकि, व्यास तथा भास के समय तक उत्तरोत्तर विकसित होती चली गई है। कालिदास ने उदात्त तथा सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा अपने काव्यों में प्रकृति का जो स्वरूप प्रदर्शित किया है, वह निश्चय ही उनके पर्यावरण विषयक दृष्टिकोण को नये रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है।

❖

CS-99

आधुनिक संस्कृत एकाङ्क नाटकों की दिशा

डॉ. राजकुमार शाण्डिल्य

आलोच्य एकाङ्क साहित्य में प्रथम सात एकाङ्कों में मेघदूतम्, कुमारसम्भवम्, स्वप्नवासवदत्तम्, किरातार्जुनीयम्, महाभारत, कठोपनिषद्, हर्षचरितम् तथा श्रीमद्भगवद्गीता आदि ग्रन्थों से श्लोक उद्धृत हैं। 8 से 19 तक समस्या प्रधान एकाङ्क नाटक हैं। 'मधुमाधुरी' एकाङ्क में लक्ष्मीधर द्विवेदी जी ने दहेज जैसी सामाजिक समस्या के साथ ही सरकारी कार्यालयों में अकर्मण्यता, धनलोभ तथा उत्कोच प्रवृत्ति की समस्या को भी उठाया है। 'स पलायित एव' एकाङ्क में उत्कोच-भुक् लेखपाल के पुनः पुनः रिश्वत माँगनें पर क्रुद्ध किसान उसकी गर्दन काटकर स्वयं अपना अपराध स्वीकार करके थाने जाना चाहता है। डॉ. कृष्णलाल विरचित 'भोलानाथः' 'आश्चर्यम्', 'दूरसन्देशः', 'अपसरमहिमा' आदि एकाङ्कों में अनेक सामाजिक समस्याओं को स्वाभाविक ढंग से प्रस्तुत किया है।

आलोच्य एकाङ्क साहित्य में श्री दुर्गादत्त शास्त्री, डॉ. सुदर्शन शर्मा, ओमप्रकाश राही, डॉ. जगदीश प्रसाद सेमवाल, डॉ. राधाकृष्ण निगम बोध, डॉ. लक्ष्मण सिंह अग्रवाल आदि के एकाङ्क भारतीय नाट्यशास्त्र में वर्णित नाट्यरुढ़ियों नान्दी, प्रस्तावना, भरतवाक्य से युक्त हैं। डॉ. कृष्णलाल, डॉ. शिवप्रसाद भारद्वाज, श्री साधु राम, श्री कुबेर नारायण उपाध्याय विरचित एकाङ्क साहित्य नान्दी, प्रस्तावना, भरतवाक्य विरहित होने के कारण इस पर पाश्चात्य नाट्य साहित्य का प्रभाव परिलक्षित होता है। आजकल नाट्यसाहित्य में आदर्शवादी नहीं यथार्थवादिनी दृष्टि ही सर्वत्र व्याप्त है।

भारतीय भाषाओं के आधुनिक नाटककार पाश्चात्त्य नाट्यसाहित्य से प्रभावित हैं। अतः इन्होंने नाट्यशास्त्रीय नियमों का पूर्णतः पालन नहीं किया है। प्रायः नाट्य सन्धियों अर्थ प्रकृतियों तथा कार्यावस्थाओं का साग्रह निर्वाह करने के लिए कोई भी नाटककार बाध्य नहीं है।

नाटक मूलतः काव्य होने के कारण उसमें काव्यशास्त्रीय तत्त्व तो होंगे ही। आलोच्य एकाङ्की में किञ्चित् काव्यशास्त्रीय तत्त्व दृष्टिगोचर होते हैं।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-100

कर्णाभिजात्य नाटक में सामाजिक चिन्तन

डॉ. अरुणा शर्मा, कुरुक्षेत्र

'कर्णाभिजात्यम्' नाटक डॉ. बलभद्र प्रसाद गोस्वामी द्वारा रचित एक अभिनव नाट्य रचना है। इस रचना का प्रादुर्भाव एक कविहृदय की उस अनुभूति का प्रतिफल है, जो समाज में व्याप्त विसंगति, पीड़ा, व्याकुलता और उपेक्षा से आन्दोलित होकर कविहृदय को झकझोर देती है। कर्ण के जन्म की व्यथाकथा से सम्पूर्ण भारतीय समाज सुपरिचित है। अविवाहित कुन्ती के गर्भ से कर्ण का जन्म हुआ; किन्तु सामाजिक तिरस्कार के भय से माता द्वारा उसका परित्याग कर दिया गया। सूतपत्नी राधा के द्वारा उसका पालन किया गया और वह सूर्यपुत्र होते हुए भी सूतपुत्र कहलाया। अपनी जननी की एक भूल का दर्द कर्ण को आजीवन झेलना पड़ा। कर्ण की इसी वेदना को लेखक ने अपनी इस रचना में स्वर प्रदान किया है। इसी कर्णकथा के साथ आभिजात्य का प्रश्न भी जुड़ा है। इसी आभिजात्य ने कर्ण को पग-पग पर मर्माहत किया तथा उसकी योग्यता, प्रतिभा और शूरता की समाज ने निरन्तर उपेक्षा की। आज भी आभिजात्य का प्रश्न समाज में अनेक सुयोग्य, विद्वान् और प्रतिभाशाली लोगों की प्रोन्नति के मार्ग में प्रतिबन्धक के रूप में विद्यमान है और निरन्तर कितने ही युवा इससे मर्माहत होकर, उपेक्षित होकर अथाह वेदना के शिकार हो रहे हैं। युवावस्था की भूल के फलस्वरूप अथवा सामाजिक अनाचारों की शिकार हुई कन्याओं के गर्भ से जन्म लेकर कितने ही 'कर्ण' आज भी समाज में घृणा, उपेक्षा और प्रताड़ना के पात्र बनकर मर्माहत हो रहे हैं। ऐसे ही युवाओं की मनोवेदना प्रस्तुत नाटक में मुखर हुई है। समाज की इन ज्वलन्त समस्याओं को प्रकाशित करने के लिए ही नाटककार बलभद्र प्रसाद शास्त्री ने 'कर्णाभिजात्यम्' नाटक का प्रणयन किया है।

उपरिलिखित नाटक में प्रतिबिम्बित सामाजिक चिन्तन को उद्घाटित करना ही प्रस्तुत शोधपत्र का प्रतिपाद्य विषय है।

❖

CS-101

रघुवंश में सिद्ध क्रियाओं का सौन्दर्य

डॉ. सुशील कुमार, मुजफ्फरपुर

महाकवि कालिदास विश्व कवि हैं इसका मुख्य कारण यह है कि उनकी कविता हृदय संवादी है। यह कवि उस काल में प्रादुर्भूत है, जब संस्कृत भाषा अपने लोक भाषात्व के लगभग समाप्त हो जाने की स्थिति में थी। यह एक सन्धिकाल था, जहाँ भाषा की सहजता के अवरोध आ रहा था और क्रमशः अलंकृत शैली का उदय हो रहा था; किन्तु कालिदास अपने को कला-पक्ष के तथा कथित गौरव से अलग

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही रख पाये हैं। उनकी काव्यभाषा अलंकृत भाषा नहीं है। पाण्डित्य और विदग्धता का यहाँ कोई आडम्बर नहीं है। यहाँ केवल उचित की विचित्रता है। प्रतीयमान अर्थ की स्निग्धता और है, पदों की पेशलता जो उनकी रचनाओं को कालजयी बनाती है; सार्वत्रिक बनाती है और सर्वजनीन। विशेषतः उनका रघुवंश काव्य भाषा की स्फीति का विशिष्ट उदाहरण है।

उपयुक्त भाव के लिए उपयुक्त शब्द का चयन कर उससे तथ्य की अभिव्यञ्जना करने में कालिदास की कोई तुलना नहीं है। इस शोधपत्र के माध्यम से रघुवंश में प्रयुक्त क्रियापद के सौन्दर्य को स्पष्ट करने की कोशिश कर रहा हूँ।

❖

CS-102

मुद्राराक्षस नाटक के प्रणेता विशाखदत्त की नाट्यशैली

श्री सुशान्त गौरव, भागलपुर

मुद्राराक्षस के प्रणेता महामना विशाखदत्त की अपनी अलग शैली है। ये अपनी कला के अद्वितीय निर्माता तथा निर्वाहक हैं। राजनीति में धोखा किस प्रकार देना चाहिए, इसका सूक्ष्म और यथार्थ वर्णन उनकी विशेषता है। उनकी शैली स्पष्ट, प्रभावशाली और प्रवाहमयी है। वे व्यर्थ के शब्दाडम्बर से दूर हैं। उनकी शैली नाटक के विषय के अनुरूप बदलती है। क्रोध को व्यक्त करने के लिए उनके शब्दों का चयन सुन्दर है। नाटक की शैली गम्भीर, सशक्त और लक्ष्यता लिये हुए है। राजनीति जैसे नीरस विषय को भी काव्य एवं नाटक का विषय बना देना उसमें सरलता और मनोरञ्जकता का समावेश कर देना, अभिनय के गुणों से भरपूर बना देना—किसी सामान्य कलाकार का काम नहीं है। इस दृष्टि से वे मूर्धन्य कलाकार हैं। मानवीय भावनाओं के विश्लेषण में वे सिद्धहस्त हैं।

आचार्य विशाखदत्त की शैली की अन्यतम विशेषता है उनका श्लेष। व्यङ्ग्यार्थ के प्रकाशन के लिए भी उन्होंने श्लेष का आश्रय लिया है। बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव पर आश्रित उपमा का भी प्रयोग करने में वे सिद्धहस्त हैं। उन्होंने अपने नाटक मुद्राराक्षस में 'भंग्यन्तर कथंन' का भी प्रयोग किया है। नाटकीय सौष्ठव को दूषित करने वाली क्लिष्ट कल्पना, लम्बे-लम्बे समास और वर्णनों के आधिक्य से वह दूर है। बीच-बीच में आनुषङ्गिक बातों में रुकना उनकी प्रकृति के प्रतिकूल है। सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में मुद्राराक्षस अपने विषय का एकमात्र नाटक है, यह महामना विशाखदत्त की अद्वितीय नाट्यशैली का परिचायक है।

प्रस्तुत शोधनिबन्ध-सार में आचार्य विशाखदत्त की अद्भुत नाट्यशैली पर प्रकाश डालने का पूर्णरूपेण प्रयास किया गया है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-103

कालिदास कालीन शिक्षा

डॉ. मिथिलेश कुमार, पटना (बिहार)

कालिदास के कुमारसम्भवम् और अभिज्ञानशाकुन्तलम् में भी शिक्षा सम्बन्धी अनेक महत्त्वपूर्ण निर्देश है, पर विस्तार भय से यहाँ **'मालविकाग्निमित्र'** का ही विवेचन प्रस्तुत है।

कालिदास ने अपनी रचनाओं में सांस्कृतिक मान्यताओं, धर्म-दर्शन-कला-शिक्षा आदि की चर्चा की है। शिक्षा के सम्बन्ध में उनके विचार सुस्पष्ट हैं। शिक्षा का उद्देश्य क्या हो, शिक्षक का व्यक्तित्व कैसा हो, शिक्षक और छात्रों के बीच सम्बन्धों का स्वरूप कैसा हो, शिक्षण संस्थाओं में अनुशासन की अपरिहार्यता है या नहीं, शिक्षा के प्रति शासन की नीति क्या हो, लोक का शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण किस प्रकार का हो, शिक्षा में परीक्षा तथा उपाधि का क्या सम्बन्ध हो आदि प्रश्नों का उत्तर हमें उनकी कृतियों में मिलता है।

सम्प्रति ऐसा कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है कि महाकवि ने अध्ययनार्थ किसी शिक्षण संस्थान का आश्रय लिया था, फिर भी शिक्षा के सम्बन्ध में जो विचार उन्होंने सामाजिकों के सामने रखा है, वह सराहनीय है। शिक्षा के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए महाकवि कहते हैं कि कोरे पुस्तकीय ज्ञान को प्राप्त कर लेना अपने में कोई अर्थ नहीं रखता है। विद्या अर्जन के पश्चात् सतत अभ्यास की आवश्यकता होती है।

इसी प्रकार एक अच्छे शिक्षक के सम्बन्ध में अपना विचार व्यक्त करते हुए महाकवि ने कहा है कि श्रेष्ठ शिक्षक वही है जिसकी अपने विषय में गहरी पैठ हो।

श्लिष्टा क्रिया कस्यचिदात्मसंस्था सङ्क्रान्तिरन्यस्य विशेषयुक्ता।
यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एव॥

शिक्षा के प्रसङ्ग में जो कुछ कहा गया है, वह मौलिक है और आज की शिक्षा-समस्याओं के समाधान निमित्त मूल्यवान् सूत्रों को उपस्थित करता है। अतः आज भी उनकी अवधारणाएँ मानवीय एवं विचारणीय हैं।

❖

CS-104

कालिदास के नाटकों में प्रकृतिचित्रण

सृष्टि के आदिकाल से आने वाले युगों तक मानव और प्रकृति का अटूट सम्बन्ध रहा है। जन्म से मृत्युपर्यन्त की यात्रा में प्रकृति के साथ मनुष्य जुड़ा हुआ है। मानव जाति के चिन्तन की दिशाएँ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृति की अनुभूतियों से प्रभावित हैं। समस्त वैदिक वाङ्मय इस प्रकृति देवता के अनेक रूपों की अवतार कथा है, जो इस देश की समृद्ध कल्पना और भावप्रेम की चित्रशाला है। समस्त संस्कृत काव्य में प्रकृति सहचारिणी बनकर अंकित हुई है।

कालिदास के तीनों नाटकों में प्रकृति का जो स्वरूप वर्णित हुआ है, उसको चार विभागों में विभाजित किया गया है। प्रकृति के विविध तत्त्वों को कालिदास ने आलम्बन और उद्दीपन विभाव स्वरूप, अलङ्कारों में उपमान स्वरूप और सजीवीकरण में मानवीय स्वरूप वर्णित किया हैं।

'विक्रमोर्वशीयम्' नाटक में प्रमदवन में वसन्त के आगमन समय आलम्बनरूप और उर्वशी के राजा प्रति प्रेमपत्र में उद्दीपनरूप प्रकृतिचित्रण देखने को मिलता है। 'मालविकाग्निमित्रम्' नाटक में सुन्दर पूर्णोपमा अलङ्कार प्रस्तुत हुआ है। जैसे—मालविका मानो पाण्डुर परिणत पत्रों युक्त कुन्दलता हो। इसके सिवा रूपक, उत्पेक्षा, उल्लेख, समासोक्ति, काव्यलिंग, प्रतीप, अर्थान्तरन्यास आदि अलङ्कारों का चित्रण है।

कालिदास ने प्रकृति में मानवीय भावों को आरोपित किया है। 'अभिज्ञानशाकुन्तल' की नायिका शकुन्तला को वृक्षों से प्रेम होने के कारण उसे सहोदर स्नेह का रूप दिया हैं।

अतः उपरोक्त वर्णनों पर दृष्टिपात करने से ज्ञात हो जाता है कि संसार के किसी कवि ने प्रकृति के फैले हुए कलेवर का इतना सुन्दर वर्णन नहीं किया। कालिदास की भारती तो निसर्ग के प्रत्येक अंश में समन्वित हैं। इतना प्रकृतिमय संसार का कोई कवि नहीं हुआ। कालिदास को जितना गृह का आँगन प्रिय है, उतना की प्रकृति का प्रांगण। जितनी माँ की गोद प्यारी है, उतनी ही प्रकृति की गोद। उनके प्रकृतिवर्णन में निरीक्षण की नवीनता, सहृदय की सरसता तथा कल्पना की कमनीयता भरी पड़ी है। मेकडोनल के शब्दों में यह गहरे मनोभावों और प्राकृतिक सौन्दर्य से पूर्ण हैं। राइडर ने कहा है कि कालिदास का निरीक्षण कवि का था, वैज्ञानिक का नहीं।

❖

CS-105

नरनारायणानन्द की वर्णनशैली

प्रो. एम.आर. रानाडे, राजकोट

कविश्री वस्तुपाल रचित 'नरनारायणानन्द' महाकाव्य की कथा महाभारत के आदिपर्व के 'सुभद्राहरण' एवं 'हरणहारिक' पर्वों में से उद्धृत की गई है। महाभारत के चार अध्यायों की कथा को वस्तुपाल ने इस महाकाव्य में चालीस सर्गों में निरूपित किया है। इस छोटे से कथातत्त्व को महाकाव्य का सुदीर्घ स्वरूप देने के लिए कवि ने कई अप्रस्तुत घटनाएँ एवं परम्परागत महाकाव्योचित वर्णन का आश्रय लिया है। इस महाकाव्य में कवि की अद्भुत वर्णनशैली माघ, भारवि आदि की याद दिलाती है। इस महाकाव्य में विभिन्न वर्णन किया गया है, जैसे की उत्तुङ्ग महल, नगर, नगर के लोग, रैवतक, कृष्णचरित्र, पर्वत, वन, सूर्योदय, सूर्यास्त, मध्याह्न आदि का मनोहर वर्णन किया है। इस वर्णन में कवि ने कई शब्दानुबन्ध

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का प्रयोग किया है और उत्तम कोटि की वर्णन-शैली का प्रदर्शन किया है। जिसकी आलोचना करने का इसमें प्रयत्न किया है।

❖

CS-106

सिसृक्षा की उद्भावना : संस्कृत काव्यशास्त्रीय अनुचिन्तन

श्री राघवेन्द्र पाठक, दिल्ली

अपूर्व वस्तुरूपी काव्य की रचना के विश्लेषण में 'प्रतिभा' को विशेष महत्त्व दिया गया है। मूलतः नैसर्गिक शक्ति होने पर भी व्युत्पत्ति और अभ्यास इसके संवर्धन के सहायक उपादान हैं। विचारों के नवनवोन्मेष की स्रोतस्विनी प्रज्ञा के रूप में स्वीकृत प्रतिभा काव्यसृजन को सम्भव बनाती है। इस निबन्ध में भामह, वामन, रुद्रट, आनन्दवर्धन प्रभृति आचार्यों के विश्लेषण को ध्यान में रखकर प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास के स्वरूप और उनके पारस्परिक सम्बन्ध को निरूपित किया गया है।

❖

CS-107

रामायण में वर्षा ऋतु का वर्णन और उसका कालिदास पर प्रभाव

प्रा. सौ. दाक्षायणी ध. भाटे, संगमनेर

आद्यकवि वाल्मीकि जी द्वारा रचित रामायण के 'किष्किन्धाकाण्ड' अष्टाविंश सर्ग में प्रभु श्री रामचन्द्र जी द्वारा किया हुआ वर्षा ऋतु का मनोहारी वर्णन वाल्मीकि जी ने यहाँ प्रस्तुत किया है। अष्टाविंश सर्ग के आरम्भ में ही—

अयं स कालः सम्प्राप्तः समयोऽयं जलागमः।
संपश्य त्वं नभो मेघैः संवृतं गिरिसन्निभैः॥
नवमासधृतं गर्भं भास्करस्य गभस्तिभिः।
पीत्वा रसं समुद्राणां द्यौः प्रसूते रसायनम्॥

इतनी सरल सुमधुर भाषा और यथोचित उपमाओं से वर्षा ऋतु का वर्णन अतीव सुस्वरूप और चित्तहारी हुआ है। इसका प्रत्यय हमें ये वर्णन पढ़ते-पढ़ते ही आता है।

मेघकृष्णाजिनधरा धारा यज्ञोपवीतिनः।
मारुतापूरितगुहाः प्राधीता इव पर्वताः॥

मेघस्वरूप कृष्णाजिन और पर्जन्यधारास्वरूप यज्ञोपवीत पहने हुए ये पर्वत पवनप्रपूरित मांद से युक्त होने से ज्ञानार्जन करते हुए छात्र के समान दिखाई देते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्षा ऋतु के वर्णन का प्रभाव अनेकविध कविओं के काव्यों में दिखाई देता है। इस निबन्ध में रामायण में वर्षा ऋतु का जो वर्णन किया हुआ है, उसका प्रभाव महाकवि कालिदास जी के काव्यों पर दिखाई देता है, इसका अंशतः अध्ययन किया गया है। किष्किन्धाकाण्ड के अष्टाविंश सर्ग के 20वें श्लोक में कवि वाल्मीकि जी ने मेघ को मत्त गजेन्द्र की उपमा दी है, ऐसी ही उपमा कालिदास जी के मेघदूत के पूर्वमेघ में भी दिखाई देती है। इसी तरह—

मेघाभिकामा परिसम्पतन्ती सम्मोदिताभाति बलाकपङ्क्तिः।
वातावधूता वरपौण्डरीकी लम्बेव माला रुचिराम्बरस्य॥

उपर्युक्त उपमा कालिदास जी के मेघदूत में दृष्टिगोचर होती है। इस तरह कालिदास जी के अन्य काव्यों में भी इस विषय का प्रभाव दिखाई देता है। रामायण के किष्किन्धाकाण्ड के अष्टविंश सर्ग में 66वें श्लोकों में आद्यकवि वाल्मीकि जी ने पर्जन्य का अतीव मनभावन वर्णन किया है। इस निबन्ध का उपयोग महाविद्यालयीय छात्रों एवं छात्राओं को अवश्य होगा, ऐसी कामना करती हूँ।

❖

CS-108

रस-संख्या के सम्बन्ध में प्राचीन एवं अर्वाचीन साहित्यशास्त्रियों के मतों की समीक्षा

डॉली जैन, वनस्थली विद्यापीठ

साहित्यशास्त्र के इतिहास में रस-सिद्धान्त का प्रवर्त्तन भरतमुनि ने किया। उन्होंने अपने ग्रन्थ नाट्यशास्त्र में रस के विभिन्न उपादानों का विवेचन किया है। रस के सम्बन्ध में भरत द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों की ही व्याख्या उत्तरवर्ती आचार्यों ने की। रसों की संख्या पर भी आचार्यों ने पर्याप्त विचार किया है। साहित्यशास्त्र के आचार्यों ने आठ से बारह तक रसों की संख्या मानी है। इसके अलावा 'एकरसवाद' मानने की परम्परा भी साहित्यशास्त्रियों में रही है। आधुनिक साहित्यशास्त्री डॉ. ब्रह्मानन्द शर्मा ने काव्य में उत्साह स्थायिभाव व वीररस को प्रधान माना है। संसार में प्रवृत्ति ही जीवन है और इस प्रवृत्ति का कारण उत्साह है। उत्साह भाव सब भावों में प्रधान है; क्योंकि सम्पूर्ण लोक इस पर आश्रित है। अतः इस उत्साह भाव से प्रवृत्त वीररस की प्रधानता हमें स्वीकार्य होनी चाहिए।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-109

बृहत्कथामञ्जरी, कथासरित्सागर और बृहत्कथाश्लोकसंग्रह का मूलस्त्रोत : बृहत्कथा

श्रीमती अमिता तिवारी, इलाहाबाद

संस्कृत-साहित्य के कविगण गुणाढ्य की रचना **'बृहत्कथा'** से अपनी कथाओं की रूपरेखा ग्रहण करते थे। साहित्य-जगत् के अनेक नाटककार एवं गद्यकारों ने अपनी रचना का आधार **'बृहत्कथा'** को ही माना है। जैसे—शूद्रक-कृत मृच्छकटिकम् में वसन्तसेना का चित्रण **'बृहत्कथा'** में वर्णित कलिंगसेना के आधार पर किया गया है। इसके अतिरिक्त भासकृत **'अविमारक'** और हर्षकृत प्रख्यात नाटक **'नागानन्द'** तथा दण्डीकृत दशकुमारचरित की कथावस्तु निश्चयेन ही बृहत्कथा से अधिगृहीत है।

इसी प्रकार क्षेमेन्द्रकृत **'बृहत्कथामञ्जरी'** और सोमदेवकृत **'कथासरित्सागर'** और बुधस्वामीकृत **'बृहत्कथाश्लोकसंग्रह'** की कथावस्तु का मूलस्त्रोत गुणाढ्यकृत बृहत्कथा है। इसमें मूलकथा को यथावत् रखते हुए उपकथाओं में यत्र-तत्र परिवर्तन करके पद्यमय शैली का अनूठा प्रयोग किया गया है। उपकथाओं में यत्र-तत्र परिवर्तन भी किया गया है।

यह तीनों ग्रन्थ एक ही ग्रन्थ बृहत्कथा के अनुवाद रूप हैं। प्रधान कथा की अभिन्नता होने पर भी अवान्तर कथाओं के संकोच एवं विस्तार में पार्थक्य परिलक्षित होता है। तीनों विद्वानों ने मूल कथा को यथावत् रखते हुए अनेक नीतिपरक उपकथाओं को बड़े रोचक ढंग से काव्यमय शैली में प्रस्तुत किया है। रामायण और महाभारत की तरह यह महाकाव्य हमारी साहित्य परम्परा की अपूर्व निधि मानी गई है। अत एव इसका स्थान रामायण एवं महाभारत से कम नहीं है। इसे ही आधार मानकर अनेक नाटकों की रचना की गई है। अतः एव तीनों ग्रन्थों का मूलस्त्रोत 'बृहत्कथा' ही है। इस बात की पुष्टि इस लेख के माध्यम से की गई है।

❖

CS-110

आचार्य मम्मट और कविकर्णपूरकृत 'काव्यप्रयोजन'

अंजना शर्मा, दिल्ली

काव्य कवि का कार्य है। प्रत्येक कार्य का कोई न कोई प्रयोजन अवश्य होता है। अतः काव्यरचना का प्रयोजन प्रारम्भ से ही साहित्यशास्त्रीय आचार्यों के लिए विवेचनीय विषय रहा है। प्रायः सभी आचार्यों ने इस विषय पर अपने मत व्यक्त किये हैं। किन्तु उन सभी मतों का समाहाररूप काव्यप्रयोजन साहित्यशास्त्र के मूर्धन्य आचार्य मम्मट का है। इस पत्र में मैंने उन्हीं के काव्यप्रयोजन की तुलना उनसे परवर्ती आचार्य कविकर्णपूर से की है और यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि आचार्य मम्मट और कविकर्णपूर कृत काव्य-प्रयोजन एक-दूसरे के पूरक हैं। कविकर्णपूर ने आचार्य मम्मट कृत काव्यप्रयोजनों को स्वीकार करते

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए उन्हें पूर्णता प्रदान की है। जैसे—आचार्य मम्मट के मतानुसार यश, अर्थ, काव्य के प्रयोजन हैं। इनमें उन्होंने आनन्द को 'सकलप्रयोजनमौलिभूतं' कहा है, अर्थात् सर्वप्रमुख माना है। किन्तु यह आनन्द लौकिक अथवा जीवगत आनन्दांश है, जो कि आनन्द की पूर्वभूमिका है। उनके बाद कविकर्णपूर ने काव्य का प्रयोजन करते हुए कहा है कि केवल यशप्रभृति ही नहीं, अपितु काव्य का प्रमुख फल श्रीकृष्ण के गुण, लावण्य और क्रीड़ाओं का उपनिबन्धन करते समय चित्त में व्याप्त होने वाला सान्द्रानन्द है। इस काव्य-प्रयोजन में उन्होंने आनन्दराशि भगवद्गत आनन्द को साध्य बनाया है, जो कि आनन्द की पूर्णावस्था है। ऐसा करके उन्होंने जीवगत आनन्दांशरूपी पूर्वभूमिका को उत्तरावस्था तक, पूर्णता तक पहुँचाकर काव्य को 'रसो वै सः' की प्राप्ति तक पहुँचा दिया है।

❖

CS-111

कालिदास के काव्यों में कविसमय-मीमांसा

अलका चितकारा, चण्डीगढ़

प्रत्येक कवि और उसका काव्य अपनी एक विशिष्टता लिए रहता है। यथा—कालिदास के काव्यों में उपमा अलंकार विशेष रूप से द्रष्टव्य होता है, तो भारवि के काव्य में अर्थगौरव। दण्डी पदलालित्य के लिए प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार प्रत्येक कवि और उसका काव्य अपनी किसी विशिष्टता के कारण लोक-प्रसिद्ध होता है। सभी काव्यों की अपनी-अपनी विशिष्टताएँ होने पर भी काव्य की उत्कृष्टता इस तथ्य से ज्ञात होती है कि वह काव्य लौकिक तथा शास्त्रीय नियमों का किस प्रकार पालन करता है। यदि काव्य में निर्धारित नियमों का उल्लंघन किया जाता है, तो उस काव्य को उत्तम काव्य स्वीकार नहीं किया जाता। किन्तु, संस्कृत के सभी श्रेष्ठ कवियों और उनकी श्रेष्ठतम रचनाओं में सभी शास्त्रीय एवं लौकिक नियमों का पूर्ण पालन किए जाने पर भी अनेक ऐसे उद्धरण प्राप्त होते हैं, जो शास्त्र तथा लोकानुवर्ती नहीं होते। अर्थात् उन उद्धरणों में शास्त्र और लोक का प्रचलित रूप दिखाई न देकर, उनसे भिन्न रूप दिखलाई पड़ता है। यथा—मकर आदि सदैव नदी अथवा तालाब में ही होते हैं; किन्तु कविजन उनका उल्लेख प्रायः समुद्रों में करते हैं। कोयल का स्वर ग्रीष्म ऋतु में भी सुनाई देता है, जबकि कवि कोयल का उल्लेख केवल वसन्त ऋतु के सन्दर्भ में ही करते हैं।

संस्कृत काव्य-जगत् के मूर्धन्य कवियों में सुशोभित महाकवि कालिदास भी अपने सभी काव्यों में ऐसे अनेक उद्धरणों का प्रयोग करते हैं, जो शास्त्र अथवा लोकानुवर्ती नहीं होते।

रघुवंश के चतुर्थ सर्ग में रघु के यश के श्वेत वर्ण का उल्लेख प्राप्त होता है कि हंसों की पंक्तियों में, नक्षत्रों में और कुमुदों से युक्त जल में रघु के यश का श्वेत वर्ण ही फैला हुआ था। (रघुवंश-4/19)

यद्यपि व्यक्ति के यश का कोई भी रंग दृष्टिगोचर नहीं होता; किन्तु कवि इसके श्वेत वर्ण का उल्लेख करते हैं।

इसी प्रकार कालिदास कोयल-कूजन का केवल वसन्त ऋतु में ही वर्णन करते हैं। (ऋतुसंहार 6/2, मालविका. 4/3)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे उद्धरणों को, जो शास्त्र और लोक के विपरीत दिखलाई पड़ते हैं, कतिपय विद्वान् दोषयुक्त स्वीकार करते हैं; किन्तु, राजशेखर अपनी 'काव्यमीमांसा' में ऐसे उद्धरणों को 'कविसमय' अर्थात् कवियों की प्रचलित परम्परा की संज्ञा से अभिहित कर इन्हें काव्य के उपकारक तत्त्व अथवा काव्यमार्ग का प्रदर्शक स्वीकार करते हैं।

कालिदास भी अपने सभी काव्यों में कविसमय के अन्तर्गत निर्धारित तत्त्वों का पूर्णतः पालन करते दिखलाई पड़ते हैं।

❖

CS-112

रघुवंश महाकाव्य में पशु-पक्षी-साम्राज्य

डॉ. कान्ता रानी भाटिया, नई दिल्ली

पर्यावरण सन्तुलन में पशु-पक्षियों का योगदान किसी से भी छिपा नहीं है। बढ़ती हुई जनसंख्या, शहरीकरण आदि के द्वारा आज पेड़-पौधों एवं पशु-पक्षियों का अस्तित्व संकट में पड़ गया है, जिसके फलस्वरूप यह सम्पदा धीरे-धीरे कम होती जा रही है। हमारे प्राचीन कवि इस सम्पदा की महनीयता को भलीभाँति जानते थे, इसी कारण काव्यलक्षण करते हुए आचार्य दण्डी पेड़-पौधों, पशु-पक्षी आदि के वर्णन को महाकाव्य के प्रमुख लक्षण के रूप में स्वीकार करते हैं। कवियों ने अपने काव्यों में इनका भरपूर वर्णन किया है। कालिदास ने अपने काव्यों में बाह्य एवं अन्तः प्रकृति के चित्रण में पशु-पक्षियों की विशिष्ट भूमिका प्रदर्शित की है। यहाँ तक कि उनके काव्यों में अधिकांश घटनाएँ पशु-पक्षियों पर आधारित हैं।

प्रस्तुत शोधपत्र में कालिदास के रघुवंश के आधार पर पशु-पक्षियों का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। पशु-पक्षी मानव के सुख एवं दुःख दोनों को प्रभावित करते हैं। रघुवंश के प्रथम राजा दिलीप कामधेनु गो की उपेक्षा के कारण पुत्रप्राप्ति के सुख से कई वर्षों तक वञ्चित रहे। जंगली गज की हत्या न करके राजा अज 'सम्मोहन' नामक गन्धर्वास्त्र प्राप्त करने में सफल हुए; जबकि निर्ममता से पशुओं की हत्या के परिणामस्वरूप राजा दशरथ को पुत्रवियोग में प्राण त्यागने पड़े। उधर सुग्रीव एवं हनुमान् की मित्रता के द्वारा श्रीराम रावण जैसे पराक्रमी का वध कर सीता को प्राप्त कर सके।

कालिदास का यह सन्देश है कि पशु-पक्षियों के प्रति स्नेहपूर्ण व्यवहार से सिद्धियाँ स्वतः प्राप्त हो जाती हैं।

❖

CS-113

प्राचीन संस्कृत-साहित्य में पर्यावरण

सुश्री वनिता सलाथिया, जम्मू

किसी राष्ट्र या जाति का वास्तविक इतिहास ही उसका साहित्य है। साहित्य ही समाज की तत्कालीन चिन्ताओं, धारणाओं, भावनाओं, आकांक्षाओं व आदर्शों का समुचित चित्र हमारे सम्मुख उपस्थित करता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। भारतीय साहित्य जिस भाषा में निबद्ध है, उसका नाम है—संस्कृत-भाषा, देववाणी अथवा सुरभारती। संसार की समस्त परिष्कृत भाषाओं में संस्कृत प्राचीनतम है। इस दृष्टि से संस्कृत-साहित्य भारत का गौरवमय मणिमुकुट है।

साहित्य से समाज को दिशा-निर्देश, प्रेरणा और मार्गदर्शन मिलते हैं। साहित्य में साहित्यिक चित्रण दो प्रकार का होता है— पहला यथार्थवादी और दूसरा आदर्शवादी। जहाँ तक पर्यावरणिक चेतना का सम्बन्ध है, इसमें यथार्थवादी चित्रण का ही महत्त्व है; क्योंकि पर्यावरण की चिन्ता मानव के वास्तविक जीवन का एक सुचिन्तित पक्ष है। इस चिन्तन की पृष्ठभूमि में आदिम युग के मानव और प्रकृति का परस्पर सहकार एवं सहचर होना प्रमुख कारण था; क्योंकि तत्कालीन मानव की प्रकृति पर शत-प्रतिशत निर्भरता से मनुष्य को प्रकृति के गुण-दोष का सत्यालोकन एवं सत्यानुमान करने का एक सुअवसर मिल गया था।

प्राचीन संस्कृत-साहित्य में पर्यावरण के प्रति सचेष्टता एवं सजगता दृष्टिगत होती है। सम्पूर्ण संस्कृत-साहित्य के अवलोकन करने से पर्यावरण संरक्षण के ढेर सारे प्रमाण अवलोकित होते हैं, जिनका विश्लेषण शोधपत्र में यथायोग्य किया जाएगा।

❖

CS-114

कालिदास के काव्य का शृङ्गार-कला परिपूर्ण मेघदूत

डॉ. (श्रीमती) वीना विश्नोई शर्मा, हरिद्वार

महाकवि कालिदास की कविता देववाणी का शृङ्गार है। माधुर्य का निवेश, प्रसाद की स्निग्धता, पदों की सरस शैया, अर्थ का सौष्ठव, अलङ्कारों का मञ्जुल प्रयोग, क़मनीय काव्य के समस्त लक्षण कालिदास की कविता में अपना अस्तित्व धारण किये हुए हैं।

कालिदास के काव्य में हृदय पक्ष का प्राधान्य है। आनन्दवर्धन तथा जर्मन कवि गेटे ने एक स्वर से कालिदास के भावों की उदात्तता तथा महनीयता की प्रशंसा की है। रसमयी पद्धति तथा सुकुमार मार्ग के कवि ने जहाँ मानवीय भावों की उदात्त अभिव्यक्ति की है, वहीं शृङ्गार के वियोग व संयोग पक्ष का भी सुन्दर सामञ्जस्य प्रस्तुत किया है।

वात्स्यायन द्वारा वर्णित कामशास्त्र की अङ्गभूत चौंसठ कलाओं का सुन्दर प्रदर्शन कालिदास के ग्रन्थों में पर्याप्त मिलता है। इनके सारे ग्रन्थ क्या महाकाव्य, क्या गीतिकाव्य, क्या नाटक, सभी कला की आलोचनात्मक किसी भी कसौटी पर कसे जाने पर खरे उतरते हैं। कालिदास का मेघदूत नामक दूतकाव्य वियोग, शृङ्गार व कलाओं की अद्भुत काव्यमाला है। इसमें विरही यक्ष आषाढ़ मास में पहाड़ की चोटी पर उमड़े हुए मेघ को देखकर व्याकुल हो उठता है तथा विरही कामाभिभूत यक्ष सजीव व निर्जीव का भी भेद न करते हुए मेघ को दूत बनाकर अलकापुरी में स्थित अपनी पत्नी को सन्देश भेजता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेघदूत में कामशास्त्र की अङ्गभूत चौंसठ कलाओं में से गन्धयुक्ति, दशवसनांगराग, तण्डुलकुसुमबलिविकार, वाद्य, गीत, नृत्य, भूषण-योजन, वीणाडमरुकवाद्य, चित्रकारी, वृक्षायुर्वेद, शुक-सारिका-प्रलाप, चारण-मातृका, मानसी काव्य-क्रिया आदि अन्य प्रमुख कलाओं का सुन्दर प्रदर्शन मिलता है। कालिदास का सन्देशकाव्य मेघदूत कामशास्त्र की अंगभूत कलाओं का सम्पूर्ण दिग्दर्शन है, उन्होंने वात्स्यायन के कामसूत्र की कलाओं का समावेश कर अपने शृङ्गारप्रधान काव्य का शृङ्गार किया है, जो काव्य जगत् में कलापरिपूर्ण कविहृदय का ही शृङ्गार है।

❖

CS-115

भवभूति की नाटक-कृतियों में प्रकृति-चित्रण

श्री शिवज्योति शर्मा, जम्मू

संस्कृत साहित्य जगत् में महाकवि भवभूति का नाम अग्रगण्य है। इन्होंने तीन नाटक कृतियों की रचना की है, जिनमें से दो रामकथा से सम्बन्धित हैं और एक स्वतन्त्र प्रेमकथा पर आधारित है। ये तीनों नाटक संस्कृत-साहित्य-गगन में अपनी अलग काव्यात्मकता एवं पाण्डित्यमयी शैली के लिए विशेष प्रसिद्ध हैं।

भवभूति ने इन तीनों नाटकों में जिन आदर्शों का स्थापना की है, उनमें प्रकृति-चित्रण भी एक विशिष्ट स्थान रखता है। भवभूति का प्रकृति-वर्णन यथार्थ होने के कारण सर्वथा स्वाभाविक है। यद्यपि नाटक में कवि को प्रकृति-वर्णन की उतनी स्वतन्त्रता नहीं रहती, जितनी महाकाव्यों में। फिर भी भवभूति ने अपने तीनों नाटकों में अनेक स्थल पर प्रकृति का प्रसंगानुकूल चित्रण किया है।

प्रकृति के प्रति उनके मन में असीम अनुराग है। उन्होंने प्रकृति को निकट से देखा है और उसके साथ आत्मीयता का सम्बन्ध स्थापित कर लिया है। उन्होंने प्रकृति के केवल रम्य रूप को भी उतनी ही तन्मयता के साथ अंकित किया है।

महावीरचरित में प्रायः सभी स्थानों पर प्रकृति का चित्रण आलम्बन रूप में किया गया है। मालतीमाधव में प्रकृति-चित्रण आलम्बन और उद्दीपन दोनों में प्राप्त होता है। उत्तररामचरित में मानव का प्रकृति के साथ जैसा घनिष्ठ सम्बन्ध उन्होंने दर्शाया है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

अन्ततः हम कह सकते हैं कि भवभूति के प्रकृति-वर्णन में मौलिकता, नवीनता, सौन्दर्य का अवलोकन होता है; शोधपत्र में इस पर विस्तारपूर्वक चर्चा की जाएगी।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-116

वर्तमान सन्दर्भ में नीतिशतक की उपादेयता

डॉ. तुलजा शंकर श्रीमाली, राजकोट (गुजरात)

सांसारिक कार्य-व्यवहार-निर्वाह करने और सुख-शान्तिपूर्वक जीवन-यापन करने के लिए जिसकी महती आवश्यकता है, वह 'नीतिशास्त्र' है। 'नीतिशास्त्र' का लोकभोग्य व्यावहारिक स्वरूप हमें महाराजा भर्तृहरि के नीतिशतक में उपलब्ध होता है।

विशेषरूप से आज की विषम सामाजिक परिस्थिति, जिसमें व्यक्ति बहार की बढ़ती चकाचौंध से इतना घिर गया है कि भीतर का चिन्तन बन्दप्राय हो गया है, व्यक्ति नीतिशास्त्रों से दूर हो गया है। मनुष्य सूचनाओं और सुविधाओं के एक विशाल जंगल में खो गया है। धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष में से अर्थ अकेला ही शेष तीनों पर छाया हुआ है। व्यक्ति अकेला स्वयं के लिए जीने लगा है। ऐसे में मनुष्य के व्यावहारिक जीवनमूल्यों की पुनः स्थापना में नीतिशतक का बहुत ही बड़ा योगदान है। नीतिशतक का सीधा सम्बन्ध मानव जीवन के व्यावहारिक पक्ष से है। भर्तृहरि के इस शतक में मनुस्मृति और महाभारत की नैतिकता कवि की गम्भीर एवं नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के माध्यम से अभिनव स्वरूप में प्रस्फुटित हुई है। 'नीतिशतक' में 'कर्माकर्मविवेक' का सुन्दर वर्णन है। समाज में व्यक्ति, परिवार, जाति, वर्ग, राष्ट्र आदि भिन्न-भिन्न घटक होते हैं, इन सभी में सामंजस्य बिठाकर जीवन विकास के पथ पर कैसे आगे बढ़ाना चाहिए, इसके सुन्दर उपाय नीतिशतक में उपलब्ध हैं।

प्रस्तुत शोध आलेख में ऐसे ही विविध तथ्यों को उजागर करने का प्रयास है। चूँकि साहित्य तो शाश्वत मूल्यों से भरा होता है, जो प्रत्येक देश, काल एवं परिस्थिति को प्रभावित करने की पूर्ण क्षमता रखता है। वर्तमान समाज में मानवीय जीवनमूल्यों का उत्तरोत्तर जो ह्रास हो रहा है, इस पर लगाम कसने के लिए नीतिशतक की क्या भूमिका हो सकती है? यही प्रस्तुत शोधपत्र का विषय है।

❖

CS-117

कालिदास एवं शेक्सपीयर के ग्रन्थों में विवाह

डॉ. वन्दना वागीश्वरी

साधारणतः 'विवाह' शब्द का अर्थ है कि वधू को उसके पिता के घर से विशेष रूप में ले जाना अथवा किसी विशेष कार्य के लिए अर्थात् पत्नी बनाने के लिए ले जाना। संस्कृत में विवाह के लिए 'पाणिग्रहण' शब्द प्रयुक्त हुआ है। 'पाणिग्रहण' का अर्थ है, वधू का हाथ ग्रहण करना।

विवाह एक संस्कार है, जिसे धर्माचरण, सन्तति तथा पितरतृप्ति के लिए किया जाता है। यह वैवाहिक बन्धन प्रणयगत स्नेह का परिणाम समझा जाता था। यह स्नेह स्वयं दो व्यक्तियों को अपने आपको पूर्णतः मिटा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देना था, जो अपने अस्तित्व को एकमय कर देना चाहते थे। इसलिए महाकवि कालिदास ने 'शाकुन्तल' में दुष्यन्त को अर्हत एवं शकुन्तला को 'मूर्तिमती', 'सत्क्रिया' कहा है। इतना ही नहीं, विवाह रत्न को सुवर्ण में पिरोना है, जन्मजन्मान्तर के लिए दो हृदयों का एकमय होना है तथा प्रकृति और पुरुष का संयोग है।

शेक्सपीयर भी विवाह को पवित्र बन्धन मानते थे, उन्होंने प्रेम की पूर्णता विवाह में ही मानी है तथा वे सामाजिक मर्यादा के पक्षपाती हैं। विवाह-पूर्व स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों को अवैध घोषित करते हुए उन्होंने उसके लिए उचित दण्ड का प्रावधान किया है। वर-वधू के चुनाव के समय उसके रूप, शील, चरित्र, स्वस्थता और परिवार को देखना चाहिए। कालिदास के ग्रन्थों में विवाह के आठ प्रकारों में से स्वयंवर, प्राजापत्य, गान्धर्व तथा एक अन्य स्थान पर असुर विवाह का उल्लेख मिलता है। शेक्सपीयर के ग्रन्थों में इन चार प्रकार के विवाहों के अतिरिक्त राक्षस-विवाह का भी वर्णन मिलता है।

❖

CS-118

आनन्दवर्धनाचार्य : एक कवि

कु. रचना ल. धनोडकर, रामटेक, नागपुर

ध्वनि सम्प्रदाय प्रवर्तक के रूप में प्रसिद्ध आनन्दवर्धनाचार्य काश्मीर में ई.स. 860 से 890 के समय में थे, ऐसा महामहोपाध्याय काणे का मत है। आनन्दवर्धनाचार्य की रचनाओं में देवीशतक, विषमबाणलीला, अर्जुनचरित काव्य मिलते हैं। आनन्दवर्धनाचार्य के कुछ श्लोक ध्वन्यालोक के तीन उद्योतों में मिलते हैं। आनन्दवर्धनाचार्य का संस्कृत के अतिरिक्त अन्य भाषाओं पर भी प्रभुत्व दिखाई देता है। उनके कुछ विषमबाणलीला में 'तदा जायन्ते गुणा.....' और 'तत्तेषां श्रीसहोदररत्नाहरणे.....' ये दो श्लोक सैन्धवी भाषा में मिलते हैं। चतुर्थ उद्योत में प्रस्तुत श्लोक सैन्धवी भाषा में बताया है। इस श्लोक का संस्कृत अनुवाद इस प्रकार है— 'मम मम इति भणतो व्रजति कालो जनस्य तथापि न देवो जनार्दनो गोचरो भवति मनसः।'

'मेरा', 'मेरा' की रट लगाते हुए व्यक्ति का समय बीत जाता है, तथापि देव जनार्दन मन के गोचर नहीं होते। इस श्लोक में विरोधालंकार की छाया है।

इसी प्रकार आनन्दवर्धनाचार्य तृतीय उद्योत में अप्रस्तुतप्रशंसा का उदाहरण विवक्षित वाच्य से दिया है।

उत्तम काव्यों के गुणों का विश्लेषण करने वाले आचार्य स्वयं अपने श्लोकों में कितना सौन्दर्य रखकर सहृदयों को कृतार्थ कर रहे हैं। सहृदयों को परमानन्द देने वाले आनन्दवर्धनाचार्य के श्लोकों विश्लेषण इस निबन्ध का विषय है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-119

संस्कृत वाङ्मय में व्रतोपवास

डॉ. राजकृष्ण विद्यालंकार, यमुनानगर, हरियाणा

हमारी संस्कृति में धर्म का बहुत बड़ा स्थान है। इसका आदर करते हुए निर्गुण निष्ठावान् मनुष्य को धर्मानुष्ठान में प्रवृत्त होने का संकेत किया है। इस प्रकार इस पथ पर प्रशस्त होने के लिए शास्त्रकारों ने नाना व्रत एवं उपवास करने का आदेश दिया है। इन व्रत एवं उपवासों का पालन करता हुआ मनुष्य ईश्वरानुभूति द्वारा कृतकृत्य हो जाता है।

व्रत शब्द वृञ् धातु (वरणार्थक) से अतच् प्रत्यय लगाकर निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है— किसी विषय का सुदृढ़ संकल्प, पक्की प्रतिज्ञा करना। अतः सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, संयम, नियम, अस्तेय आदि मानसिक सात्त्विक भाव व्रत माने जाते हैं। इन व्रतों से शरीरिक शुद्धि के साथ मानसिक शुद्धि भी होती है। अन्तःकरण पवित्र हो जाता है।

हमारे महामनीषी मनु ने समाज के कल्याण के लिए अनेक धार्मिक नियमों का उपदेश दिया है, जिनमें विभिन्न व्रतों का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

इन व्रतों के पालन से जीवन में जाने-अनजाने किये गये पापकर्मों का प्रायश्चित्त हो जाता है। इस प्रकार से निर्मल मन होकर मानव आत्मकल्याण के योग्य हो जाता है। ये व्रत अनुष्ठान अन्तःकरण की शुद्धि, अनिष्ट, निवारणार्थ, पापशान्ति और सद्बुद्धि हेतु अवश्य करने चाहिए।

उपवास शब्द उप-पूर्वक वस् धातु से निष्पन्न होता है, जिसका शाब्दिक अर्थ उप+वास=पास में रहना; परन्तु शास्त्रों में उपवास का अर्थ आहार का परित्याग करना है।

मन एवं इन्द्रियों को वश में रखने के लिए व्रत एवं उपवास उत्तम उपाय हैं। अध्यात्ममार्ग के लिए व्रत एवं उपवास की सख्त आवश्यकता है। इसीलिए संस्कृत साहित्य में व्रत एवं उपवास का महत्त्व वर्णित किया गया है।

❖

CS-120

चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्

आचार्य सन्त, पाठक जटाशंकर, भदोही

आर्यावर्तीय साहित्य एवं संस्कृति की सुदृढ़ धुरी, विश्वबन्धुत्व की आधारशिला के रूप में प्रतिष्ठित रामकथा विश्व साहित्य में सबसे सशक्त एवं सर्वाधिक मान्य 'यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्' के प्रतिमान के रूप में स्थित है। सकल आपत्तियों के विराम, भव्याशयों के आराम भगवान् श्रीराम की पावन कथा का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस धराधाम पर सर्वोत्तम, सर्वप्रथम, सर्वाङ्गीण दिव्य काव्यात्मक अवतार महर्षि वाल्मीकि की ऋतम्भरा प्रज्ञा के सरस प्रवाह के रूप में हुआ, जो ब्रह्मा और देवर्षि नारद के निर्देशानुदान से आलोकित था। देवर्षि नारद से चरितबोध परामर्श कर, ब्रह्मा द्वारा निर्धारित नाम 'रामायण' काव्य की सृजनवेला में महर्षि वाल्मीकि ने सौ करोड़ श्लोकों में श्रीराम के पावन चरित को साकार किया, जो मनोरम वृत्त, मनोरम अर्थ, मनोरम पद से सुशोभित सम अक्षरों और सुश्लोकों से समन्वित है।

रामायण आदिकाव्य के रूप में गौरवान्वित है। कालान्तर में देश-विदेश के रामकथाप्रिय विद्वानों की लेखनी द्वारा विविध भाषाओं में रामकथा काव्यों का सृजन हुआ। उन काव्यों का कुछ विशेषणों के साथ रामायण नामकरण अनिवार्य-सा हो गया। आनन्दरामायण; अद्भुत., अग्निवेश., कृत्तिवास., भावार्थ. आदि रामायण नामकरण की अनुसरणात्मिका प्रक्रिया के प्रमाण हैं।

'शतकोटिप्रविस्तरम्'—आदिकाव्य रामायण में सम्प्रति 24000 श्लोक ही उपलब्ध हैं। 99 करोड़, 99 लाख, 76 हजार श्लोक ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित हैं (आदिकाव्य के टीकाकारों की लेखनी से)। तीनों लोकों तथा सातों द्वीपों और उनके वर्षों के आधार पर 100 करोड़ श्लोक का विभाजन करके भगवान् शंकर ने क्षीरशायी श्रीविष्णु के निर्देश पर उन लोकों, द्वीपों और वर्षों के लोगों में वितरित कर दिया (आनन्द रामायण)। महर्षि वाल्मीकि के प्रिय शिष्य भारद्वाज ऋषि 24000 श्लोकों, में उपलब्ध रामकथा को सुनकर निवेदन करते हैं कि—इन 24000 श्लोकों वाली रामायणकथा तो सुन लिया, अब कृपया सौ करोड़ श्लोकों में कही गई रामकथा को सुनायें (अद्भुत-रामायण)।

प्रस्तुत प्रबन्ध 'चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्' में इस तरह की अनेक मौलिक भ्रान्तियों की चर्चा करते हुए विश्व की प्रतिभाओं का आह्वान है कि एक सशक्त मञ्च पर सर्वाधिक ओजस्विनी रामकथा की भ्रान्तियों का काव्यात्मक मूल्याङ्कन कर विद्यमान विविध विसङ्गतियों का निराकरण करें।

❖

CS-121

कालिदास के नाटकों का वैशिष्ट्य

डॉ. आलोक त्रिपाठी, भदोही

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते॥

नाटक के इस बृहदाकार आयाम को दृष्टि में रखते हुए महाकवि कालिदास ने संस्कृत साहित्य को नाटकत्रय से विभूषित किया है—

(1) मालविकाग्निमित्रम्; (2) विक्रमोर्वशीयम्; (3) अभिज्ञानशाकुन्तलम्।

वस्तु, नेता तथा रस की दृष्टि से इन तीनों नाटकों का वैशिष्ट्य अप्रतिम है। नाट्यकला एवं मञ्च पर अभिनय की दृष्टि से भी आज इन नाटकों की प्रासंगिकता है। कालिदास के नाटकों में कथोपकथन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्ष्म, प्रसङ्गानुकूल हैं तथा कथानक लघु हैं। भाव बहुत ही सारगर्भित एवं तथ्यपरक हैं। भावात्मक पद्य भी कथानक के प्रवाह को बढ़ाने में सक्षम हैं। कालिदास की मनोहारिणी वैदर्भी रीति सरस, अकृत्रिम तथा प्रभावोत्पादक है। भाषा एवं संवाद प्रवाहपूर्ण तथा पात्रानुकूल हैं।

परवर्ती नाटककारों के लिए कालिदास के नाटक उपादेय सिद्ध होते हैं। इनके नाटकों की विशेषताओं के कारण ही इन्हें भारतीय साहित्य में वाल्मीकि तथा व्यास की परम्परा में भारतीय प्रतिभा का एक अवतार पुरुष माना जाता है।

❖

CS-121

पण्डितराज जगन्नाथविरचित 'लहरीपञ्चक' में वैदिक चिन्तन का प्रभाव

डॉ. अर्चना जोशी, इन्दौर

पण्डितराज जगन्नाथ की रचनाएँ आलोचनात्मक और सृजनात्मक प्रतिभा का दुर्लभ और विलक्षण समन्वय हैं।

आद्य शङ्कराचार्य की 'सौन्दर्यलहरी' से प्रवर्तित लहरी काव्य परम्परा का पल्लवन पण्डितराज जगन्नाथ के 'लहरीपञ्चक' से हुआ है। स्तोत्र काव्यों में लहरीकाव्यधारा वेदों से अनुप्राणित होकर प्रवहमान हुई है। प्रस्तुत शोधपत्र पण्डितराज के लहरीकाव्यों के वर्ण्य की वेदमूलकता को स्पष्ट करने का एक विनम्र प्रयास है।

वेदों में प्राकृतिक शक्ति के प्रतीकात्मक देवों की परिकल्पना के अनुरूप पण्डितराज ने पृथ्वीस्थानीय प्रकृति देवता नदियों की स्तुति 'गङ्गालहरी' एवं 'अमृतलहरी' काव्य में तथा द्युस्थानीय देवता सूर्य की स्तुति 'सुधालहरी' काव्य में की है। वैदिक मन्त्रों में अभिव्यक्त भावनाओं को आत्मसात् करते हुए पण्डितराज ने नदियों तथा सूर्य के आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक त्रिविध स्वरूप को स्वीकार किया है। उपनिषदों के ब्रह्मस्वरूप निरूपण का सारार्थ यहाँ समाहित है।

'करुणालहरी' (विष्णुलहरी) में करुणानिधि कृष्णावतारधारी भगवान् विष्णु से प्रार्थना का आर्त हृदय का स्वर मुखर है।

देवी-स्तुति में पण्डितराज ने लक्ष्मीलहरी का प्रणयन किया है। साधक देवी-शक्ति के माध्यम से ब्रह्म की ही उपासना करता है। ब्रह्म और माया का सिद्धान्त वेदान्त में सृष्टि के प्रवर्तक रूप में पल्लवित हुआ है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि पण्डितराज जगन्नाथ के लहरीपञ्चक में वैदिक अवधारणाएँ प्रतिफलित हैं। पण्डितराज के प्राकृतिक उपादानपरक लहरीकथा वेद से प्रत्यक्षतः अनुप्राणित हैं। उनके देवस्तुतिपरक लहरी काव्यों पर जहाँ वैदिक प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से नहीं दिखाई देता, वहाँ सङ्केतित पौराणिक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आख्यान भी वेदार्थ से सन्दर्भित हैं; क्योंकि पुराण वेदों के उपबृंहण हैं। वस्तुतः पौराणिक आख्यान वैदिक चिन्तन के सूक्ष्म बीजों की विशद व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। अतः यह स्वीकार करने में कोई विप्रतिपत्ति प्रतीत नहीं होती कि पण्डितराज के लहरीकाव्य वैदिकचिन्तन के अवदान से अनुप्राणित हैं।

❖

CS-122

संस्कृत साहित्य में व्यायोग

डॉ. आशिमा जोशी, अम्बाला

संस्कृत साहित्य में व्यायोग रूपकों की कोई 'नाटक' की भाँति दीर्घ शृङ्खला उपलब्ध नहीं है। अब तक जितने व्यायोगों के नाम मिल पाए हैं, उनकी संख्या 22 या 23 के लगभग ही है। इनमें से कुछ तो प्रकाशित हो चुके हैं और कुछ अभी तक तिमिराच्छन्न हैं, परन्तु जितने भी व्यायोग हैं उनका संस्कृत साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। एकांकी रूपकों में तो व्यायोग महत्त्वपूर्ण ही नहीं अपितु लोकप्रिय भी रहा है। मध्यकालीन संस्कृत साहित्य में व्यायोग के माध्यम से ही राष्ट्र के पुनरुत्थान की प्रेरणा प्राप्त हुई है। इसी काल में मुसलमानों का प्रभुत्व होने से भयत्रस्त एवं पतनोन्मुख भारतीय जनता को पुनरुत्साहित करने तथा समाज-सुधार करने के लिए ही अन्य सामाजिक एकांकी रूपकों की रचनाएँ हुईं। प्राचीन व्यायोगों जैसे दूतवाक्य तथा मध्यमव्यायोग में भी मानवता का सन्देश दिया गया है और अधर्म पर धर्म की विजय दिखाई गई है।

व्यायोग की महत्ता इस बात से भी सिद्ध होती है कि इसको रूपक के मुख्य दस भेदों में स्थान मिला है और सभी नाट्याचार्यों ने व्यायोग के स्वरूप की व्याख्या की है। प्रयोगात्मक दृष्टि से भी व्यायोग अतिमहत्त्वपूर्ण माना जाता है। विभिन्न आचार्यों द्वारा अपने-अपने लक्षण-ग्रन्थों में दिये गए लक्षणों का सम्यगालोचन करने पर ज्ञात होता है कि इन सभी नाट्याचार्यों ने व्यायोग पर भरत निर्धारित नियमों की छाया में ही विचार किया है, कहीं-कहीं थोड़ा हेर-फेर अवश्य दृष्टिगत होता है। इसमें से कुछ बातें ऐसी हैं, जो सभी आचार्यों को समान रूप से स्वीकृत हैं। अतः निष्कर्ष रूप में हम इन सभी बातों को ग्रहण करते हुए व्यायोग का एक सामान्य स्वरूप निर्धारित कर सकते हैं।

❖

CS-123

शिवमहिम्नःस्तोत्र की हरसिद्धि-टीका

प्रो. अंजना मेहता, अहमदाबाद, गुजरात

संस्कृत के स्तोत्र-साहित्य में शिवमहिम्नःस्तोत्र का अनुपम स्थान है। गन्धर्वराज पुष्पदन्त द्वारा भगवान् शिव की महिमा का स्तवन इस स्तोत्र में किया गया है। शिवमहिम्नःस्तोत्र पर आचार्य मधुसूदन सरस्वतीकृत

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टीका प्रसिद्ध है, जिसमें स्तोत्र का शिवपरक तथा विष्णुपरक अर्थ किया गया है। आधुनिक युग के वरिष्ठ संस्कृत आचार्य डॉ. बच्चूलाल अवस्थी 'ज्ञान' ने शिवमहिम्नःस्तोत्र पर संस्कृत में 'हरसिद्धि' नामक व्याख्या लिखी है। इस टीका का प्रकाशन कालिदास अकादमी, उज्जैन द्वारा विक्रम संवत् 2045 में किया गया है।

शिवमहिम्नःस्तोत्र की हरसिद्धि टीका भारतीय पारम्परिक शास्त्रीय शैली में लिखी गयी है। यह टीका वर्तमान युग में परिनिष्ठित शास्त्रीय संस्कृत-भाषा में व्याख्या की रचना का अनुपम उदाहरण है। इस टीका में टीकाकार का बहुमुखी पाण्डित्य उजागर हुआ है।

हरसिद्धि टीका में यथावसर विभिन्न दार्शनिक प्रस्थानों की सूक्ष्म विवेचना भी प्रस्तुत की गयी है। उदाहरणार्थ—'त्रयी सांख्यं योगः' इत्यादि पद्य के सन्दर्भ में सांख्य, योग तथा पाशुपतदर्शन के तत्त्वों का सारगर्भित विवरण प्राप्त होता है। 'ध्रुवं कश्चित् सर्वम्' इत्यादि पद्य की टीका में ध्रुव, अध्रुव एवं ध्रौव्याध्रौव्य पदों की व्याख्या करते हुए वैष्णव, पाशुपत, बौद्ध, नैयायिक, वैशेषिक एवं मीमांसक आचार्यों की तत्त्वमीमांसा को प्रस्तुत किया गया है।

शिवमहिम्नःस्तोत्र की हरसिद्धि-टीका इस महनीय स्तोत्र में निहित गूढ़ तत्त्वों के उन्मीलन के साथ ही काव्यगत सौन्दर्य को भी प्रकाशित करती है।

❖

CS-124

कालिदास के साहित्य में वृष्टि-विज्ञान

डॉ. मीरा शर्मा, आगरा

मानवीय संवेदनाओं के कुशल चित्रकार के रूप में महाकवि कालिदास का विश्व वाङ्मय में विशिष्ट स्थान है, तो प्रकृति के सूक्ष्म पारखी के रूप में भी उनकी ख्याति कम नहीं है। प्रकृति का सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप व्यापारों के ब्यौरे के साथ अंकन महाकवि के अत्यन्त जागरूक संवेदनशील होने को परिलक्षित करता है। उनकी प्रकृति कहीं आलम्बन या उपमान के रूप में मन को आह्लादित करती है, तो कहीं मानवीकरण के रूप में संवेदनाओं से सीधा रिश्ता जोड़ लेती है; किन्तु कालिदास मात्र शब्दशिल्पी या सौन्दर्यप्रेमी ही नहीं अपितु उनकी सूक्ष्म निरीक्षण दृष्टि के पीछे एक वैज्ञानिक चिन्तन भी दृष्टिगोचर होता है। मेघ को दौत्य कर्म के लिए नियुक्त करना कवि की अनूठी कल्पना हो सकती है; किन्तु 'धूम-ज्योतिः सलिल-मरुतां सन्निपातः क्व मेघः' (मेघ. 5) कहकर मेघ की रचना में सहायक तत्त्वों का उल्लेख कर वृष्टि-प्रक्रिया सम्बन्धी विज्ञान का संकेत दिया है। सामान्य प्रक्रिया के अनुसार मेघों का निर्माण इन्हीं तत्त्वों से मिलकर होता है। सूर्य (ज्योति) अपनी किरणों से समुद्र आदि के जल (सलिल) को भाप (धूम) के रूप में आकाश में ले जाता है। वहाँ वह भाप धूलिकणों के सम्पर्क से और शीतल वायु (मरुत्) के कारण घनीभूत होती है और मेघ बनकर वृष्टि का हेतु बनती है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यजुर्वेद (2.76, 6.21), अभिज्ञानशाकुन्तलम् (7.7) के 'अयमरविवरेभ्यः'..... में चातकों और बिजली के तेज से रंजित घोड़ों के द्वारा जल से परिपूर्ण बादलों के ऊपर चलने को सूचित किया गया है। भास्कराचार्य ने सिद्धान्तशिरोमणि में कहा है कि—'भूमेर्बहिर्द्वादशयोजनानि भूवायुरत्राम्बुदविद्युदाद्यम्' अर्थात् पृथ्वी से बादलों तक भूवायु या 'आवह' (वायु-प्रकार) है यहाँ मेघ और विद्युत् का स्थान है। पद्य के वर्णन से स्पष्ट होता है कि दुष्यन्त का रथ 'आवह' नामक वायु-प्रदेश से नीचे उतर रहा है।

इसी प्रकार के वृष्टि-विज्ञान सम्बन्धी सन्दर्भों को प्रस्तुत शोध-पत्र में विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है।

❖

CS-125

अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक में नारीस्वरूप : एक समीक्षा

सुप्रिया, दरभंगा

संस्कृत वाङ्मय में कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक का सर्वोच्च स्थान है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक के सर्वोच्च स्थान का कारण इसके स्त्रीपात्रों के कारण ही हो सका है। इस नाटक में कुल तेरह स्त्रीपात्र हैं, जिनमें सबों को सामाजिक दायित्व निर्वहण करने की जो शक्ति है, उसी के कारण सर्वोच्च स्थान प्राप्त हुआ है।

शकुन्तला, प्रियंवदा और अनसूया समांज के अन्य साधारण कुमारियों के जैसा गुरु आश्रम में ही शिक्षा ग्रहण करने के लिए जाती हैं। आश्रम के अनुसार ही शिक्षा के साथ-साथ कृषिकार्य एवं आतिथेय का भी कार्य करती हैं। गौतमी एवं अदिति दोनों ही शकुन्तला की अपनी माता नहीं रहती हुई भी माता के जैसा व्यवहार करती हैं।

सानुमती जो सामाजिक कार्यकर्त्री के रूप में शकुन्तला के चित्र का निर्माण करती है, तो दुष्यन्त के हृदय में खोई हुई शकुन्तला के प्रति पुराना ज्ञान हो जाता है। तापसियों के द्वारा मारीच के आश्रम में सर्वदमन की रक्षा नारी का सामाजिक स्वरूप दिग्दर्शन कराता है, जो कि आज भी हम लोगों के लिए अनुकरणीय है।

❖

CS-126

भासकृत 'चारुदत्तम्' नाटक की धार्मिक विशेषता

डॉ. गंगाधर झा, दरभंगा, बिहार

संस्कृत वाङ्मय के प्रथम नाटककार भासकृत रूपक 'चारुदत्तम्' का एकमात्र लक्ष्य आनन्द प्राप्त करना एवं मन का रंजन करना ही माना जाता रहा है। लगभग यह प्रमाणित हो चुका है कि नाटक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की उत्पत्ति चारों वेदों से हुई है। त्रेतायुग में देवताओं के द्वारा ब्रह्मा से प्रार्थना की गयी कि शूद्रों के लिए भी वेद की रचना हो; क्योंकि उनके लिए वेदाध्ययन निषिद्ध था। इस पर ब्रह्मा ने ऋग्वेद से सम्वाद, साम से गीत, यजुष् से अभिनय तथा अथर्ववेद से रस तत्त्वों को मिलाकर पंचम वेद नाट्य-वेद की रचना की—

जग्राह पाठ्यं ऋग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि॥

वेदों के बाद रामायण, महाभारत, बौद्ध-ग्रन्थों तथा वात्स्यायन के कामसूत्रों में भी नाटकों का संकेत मिलता है। अतः यह मानना आवश्यक हो जाता है कि नाटक का प्रादुर्भाव हमारे धार्मिक ग्रन्थों से ही हुआ होगा। नाटक की परिभाषा में भी धार्मिक भाव निहित हैं—'अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्'। प्रस्तावना में ही धार्मिक भावना से नटी कहती है कि—'अभिरूपपतिर्नाम मम उपवासः अस्ति'। प्रथम अंक में नायक चारुदत्त अपनी दरिद्रता का वर्णन करते हुए कहता है कि—'यासां बलिर्भवति मद्गृहदेहलीनां.....कीटमुखा बलीह'।

इस नाटक का अधम पात्र संवाहक भी अपनी पूजा पर विश्वास करता है—'पूजाविशेषेण जानामि कार्यमिति'। तृतीय अंक में चेटी सुवर्ण-पेटी लेकर आर्य चारुदत्त को कहती है कि—यह सुवर्णभाण्ड है, षष्ठी तथा सप्तमी तिथि व्यतीत होने पर मैं इसे परिवर्तित कर देना चाहूँगी। क्योंकि आज अष्टमी है। तृतीय अंक में ब्राह्मणी विदूषक को दान करने के लिए कहती है। यह षष्ठी व्रत के अवसर का है।

इस तरह सम्पूर्ण नाटक में मनोरंजन की अपेक्षा धार्मिक भावना ज्यादा ही उभरकर सामने आती है।

❖

CS-127

संस्कृत साहित्य में शकुन-अपशकुन

डॉ. हरि सिंह शास्त्री, यमुनानगर

संस्कृत साहित्य में शकुन, अपशकुन का निरूपण प्रचुर मात्रा में मिलता है। वैदिक काल से सम्प्रति यावत् यह भावना विद्यमान है। इसका दायरा विस्तृत है, मनुष्य, पशु-पक्षी एवं वनस्पतियों तक में शकुन अपशकुन के लक्षण विद्यमान हैं। वैदिक वाङ्मय भारतीय संस्कृति का मूल स्रोत है। वर्तमान भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक मान्यताएँ उसी की प्रतीक हैं। उसी का विकास अद्यतन संस्कृति को प्रवाहित एवं प्रभावित कर रहा है। तत्कालीन साहित्य में पाई जाने वाली शकुन, अपशकुन की शुभाशुभ भावना आज भी संस्कृत साहित्य में मिलती है।

शकुन शब्द शक् धातु से उनन् प्रत्यय लगाकर निष्पन्न हुआ है— शक्नोति शुभं विज्ञातम् अनेन इति शकुनम्। शुभाशुभद्योतक चिह्न या लक्षण शकुन-अपशकुन होते हैं। शकुन का अर्थ चील पक्षी भी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। अब शकुन या शकुन्त शब्द पक्षियों के अर्थ में भी प्रयुक्त होने लगा है। यही कालान्तर में शुभाशुभ अर्थों में प्रयुक्त होने लगा है। शुभाशुभसूचक चिह्नों को ही लक्षण कहते हैं। शारीरिक अंगों के द्वारा शुभाशुभ सूचक लक्षण प्राप्त होते हैं। आचार्य पाणिनि भी यही स्वीकार करते हैं कि शुभाशुभ के सूचक चिह्न ही लक्षण हैं। ये चिह्न किसी अज्ञात घटना अथवा अज्ञात वस्तु की ओर संकेत करते हैं। ये शकुन-अपशकुन नाना प्रकार के होते हैं।

❖

CS-128

भट्टनायक का भुक्तिवादः संकेतत्रय के आलोक में

पारुल मांकड, अहमदाबाद

लोल्लट और श्रीशंकुक की तरह ही भट्टनायक भरत नाट्यशास्त्र के टीकाकार हैं। वे भी काश्मीरी आचार्य हैं। सम्भवतः उनका समय शंकरवर्मन् के समय में अर्थात् ई.स. 883-902 में निर्धारित किया जा सकता है। आचार्य अभिनवगुप्त ने भट्टनायक को 'मीमांसकाग्रणी' कहा है। भट्टनायक ने आनन्दवर्धन के ध्वनि-सिद्धान्त का ध्वंस करने के लिए 'हृदयदर्पण' अथवा 'सहृदयदर्पण' नामक ग्रन्थ रचा था, जो आज हमारे चक्षुओं से ओझल हो गया है। भट्टनायक के भुक्तिवाद नामक रससिद्धान्त के सम्बन्ध में जो कुछ भी सामग्री प्राप्त होती है, वह नाट्यशास्त्र के टीकाकार आचार्य अभिनवगुप्त की कृति 'अभिनवभारती' और ध्वन्यालोक पर उनकी टीका 'लोचन' की बदौलत।

मम्मट ने काव्यप्रकाश के चतुर्थ उल्लास में लोल्लट, शंकुक, भट्टनायक और आचार्य अभिनवगुप्त के रससिद्धान्तों की संक्षेप में चर्चा की है। काव्यप्रकाश के आरम्भिक तीन टीकाकार रुय्यक, सोमेश्वर और माणिक्यचन्द्र के टीकाग्रन्थों के नाम भी योगानुयोग से 'संकेत' हैं, हालाँकि, सोमेश्वर के टीकाग्रन्थ का पूरा नाम 'काव्यादर्शसंकेत' है; किन्तु परम्परा में 'संकेत' इसी लघुनाम से वह प्रसिद्ध है।

प्रस्तुत शोधलेख में रुय्यक, सोमेश्वर और माणिक्यचन्द्र के 'संकेत'—टीकात्रय के 'आलोक' में भट्टनायक के 'रससिद्धान्त' भुक्तिवाद की समालोचना प्रस्तुत की गई है।

❖

CS-129

महाकवि भारवि के स्थितिकाल की विवेचना

डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री, अमेठी

संस्कृत महाकाव्यों की बृहत्त्रयी में प्रथम नाम 'किरातार्जुनीयम्' का ही आता है। इसके रचनाकार महाकवि भारवि हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाकवि कालिदास की भाँति भारवि ने अपने विषय में कुछ भी संकेत नहीं किया है। अतः अन्तरंग प्रमाणों के अभाव में बहिरंग प्रमाणों के अधार पर भारवि के स्थितिकाल पर जो प्रकाश पड़ता है, उसका संक्षिप्त विवरण इस शोधपत्र में प्रस्तुत है।

❖

CS-130

रसभाव का समीक्षात्मक अध्ययन

श्री बासुकीनाथ झा, मधुबनी

'काव्यस्यात्मा रस इति' संस्कृत साहित्य जगत् में रस श्रेष्ठ माना गया है। शब्दार्थरूप काव्य शरीर रस को मानते हैं विद्वान् लोग। रस से ब्रह्मपद का बोध होता है। रस का बोध अनेक प्रकार से होता है, यथा—'रसास्वादस्यापि मात्रानिर्वचनेन समर्थाः सामाजिकाः'।

रस का ज्ञान रसास्वादन से तथा तर्कज्ञान से भी होता है। सर्वप्रथम भरत ने नाट्यशास्त्र में रस के विषय में लिखा है—'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः'।

'विभावानुभावव्यभिचारिभावानां परिभाषा' का आचार्य मम्मट अपने काव्यप्रकाश ग्रन्थ में वर्णन किया है।

आचार्य विश्वनाथ पण्डितराज जगन्नाथ आदि अपने-अपने काव्य-ग्रन्थ में रस की व्याख्या अपने ढंग से किये हैं। रसों का विभाग अनेक प्रकार से किया गया है। यथा—शृङ्गार-रस, वीर-रस, रौद्र-रस, करुणरस इत्यादि।

आयुर्वेदशास्त्र में भी षड् रसों का वर्णन किया गया है, यथा—मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त और कषाय। संसार की सभी वस्तुओं का इसी षड्रस में समावेश किया गया है। आयुर्वेदिक चिकित्सा इसी षड् रस के आधार पर की जाती है। इसलिए साहित्यकोविद लोग रस को ही ब्रह्म मानते हैं।

❖

CS-131

रघुवंश और नैषधीयचरित के स्वयंवर-वर्णन का तुलनात्मक अध्ययन

सुश्री अनामिका, वाराणसी

कवितांकामिनीकान्त कालिदास की प्रतिभा का काव्यरूप में सर्वोत्तम निदर्शन 'रघुवंश' महाकाव्य है। यह 19 सर्गों में निबद्ध है। विद्वत्समुदाय में आदर्शरूप में स्वीकृत 22 सर्गों में निबद्ध 'नैषधीयचरित' प्रखर पाण्डित्ययुक्त महाकवि श्रीहर्ष की रचना है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग्यतम वर के चयन के लिए स्वयंवर का आयोजन तत्कालीन समाज की एक विशिष्ट, प्रसिद्ध एवं प्रचलित प्रथा थी। इसी प्रथा के वर्णन में कालिदास एवं श्रीहर्ष ने भी अपनी-अपनी लेखनी का चमत्कार प्रदर्शित किया है। प्रस्तुत लेख में इसका विस्तृत वर्णन किया गया है।

❖

CS-132

जयोदय-महाकाव्य में रसपरिपाक

श्री पारुल त्रिपाठी, लखनऊ

काव्यशास्त्र में 'रस' को काव्य का आत्मतत्त्व कहा गया है। वेद, पुराण तथा उपनिषदों में भी रस शब्द अनेक अर्थों, यथा—दूध, जल, पेय पदार्थ तथा परब्रह्म के रूप में प्राप्त होता है।

जयोदय महकाव्य का आद्योपान्त अनुशीलन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस महाकाव्य का अन्तिम भाग तो शान्तरस से परिपूर्ण है ही, किन्तु इस रस की अनुभूति पाठक ग्रन्थ के आरम्भ में भी सूक्ष्म रूप से कर सकता है। महाकवि ने इस काव्य के 25 से 28 सर्ग तक शान्तरस के अतिरिक्त किसी अन्य रस का प्रवेश भी नहीं होने दिया है।

❖

CS-133

साधारणीकरण का असाधारणत्व

श्री नयना कल्पेश नायक, नवसारी, गुजरात

नाट्याचार्य भरत के रसनिष्पत्ति सूत्र तथा रसास्वादन की प्रक्रिया समझाते हुए भट्ट लोल्लट, शंकुक, भट्टनायक तथा अभिनवगुप्तादि विद्वान् आलंकारिकों ने अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। भट्टनायक रसास्वादन प्रक्रिया में साधारणीकरण को आवश्यक मानते हैं। तत्पश्चात् सभी आलंकारिकों ने साधारणीकरण को रसानुभूति के लिए आवश्यक माना है। देशकाल से परे होना, अपनी अनुभूति, अवधारणाएँ तथा परिस्थिति से विगलित होना—साधारणीकरण के लिए यह अतीव महत्त्वपूर्ण एवं प्राथमिक शर्त है। किन्तु वास्तव में सामाजिक चाहकर भी अपने स्वभाव से, अस्तित्व से परे नहीं हो सकता। सहृदयी सामाजिकों में वैयक्तिक भिन्नता सदैव दिखाई देने से प्रेक्षागार के हर भावुक का साधारणीकरण विभिन्न स्तर पर रहेगा। प्रस्तुत शोधपत्र में मनुष्य स्वभाव की मर्यादा से निष्पन्न साधारणीकरण की मर्यादा बताते हुए साधारणीकरण में जो असाधारणत्व है, इसकी चर्चा की गई है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-134

भारतीय वाङ्मय के दो युगप्रवर्तक महाकवि

श्री शीतल चन्द्र शर्मा, रायपुर, छत्तीसगढ़

विश्व के सभी वाङ्मय में भारतीय मनीषा की सर्वश्रेष्ठता स्वतः सिद्ध है। उसे किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। भारतीय साहित्य की सुदीर्घ एवं महनीय परम्परा में प्रत्येक देश, काल एवं घटना-क्रम में समय-समय पर ऐसे प्रातः स्मरणीय ऋषितुल्य महाकवि हुए हैं, जिसमें उनकी ख्याति एवं उनका साहित्य कालजयी एवं शाश्वत रहा है। चाहे वह महाकवि व्यास हों या वाल्मीकि। इन्हीं महाकवियों की विराट् परम्परा का अनुवर्त्तन करते हुए दो ऐसे भिन्न-भिन्न देशकाल एवं सामाजिक वातावरण में महाकवि हुए हैं, जिनका साहित्य चिरनवीन एवं विश्ववन्द्य है।

❖

CS-135

राजतरंगिणी में राजधर्म

डॉ. वैभव कान्हे, रायपुर

संस्कृत साहित्य की पृष्ठभूमि सदा से ऐतिहासिक रही है। तत्कालीन समाज में व्याप्त शासनपद्धति सामाजिक व्यवस्था, शासन तथा नागरिकों का सम्बन्ध इन सभी तथ्यों के आधार पर साहित्यकारों ने अपने साहित्यरूपी भवन का निर्माण किया है, अतः यह कहना समीचीन ही होगा कि साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब है। इतिहास से लेकर आधुनिक काल तक विभिन्न प्रकार की शासन व्यवस्थाओं का विस्तृत वर्णन है, यथा—पूर्व में भारतवर्ष में राजतन्त्र शासन प्रणाली हुआ करती थी, इस राजतन्त्र शासन प्रणाली में राजा ही प्रमुख हुआ करता था। राजा अपनी प्रजा का पालन करें, एतदर्थ स्मृति ग्रन्थों में राजाओं के लिये कुछ कर्तव्य निश्चित किये गये थे। मनुस्मृति में राजाओं के कर्तव्यों के रूप में राजधर्म निश्चित किये गये। इसी स्मृति के आधार पर महाकवि कालिदास ने रघुवंश में— प्रजानां विनयाधानात् रक्षणाद् भरणादपि।

इस सन्दर्भ में काश्मीरक कवि कल्हण द्वारा रचित राजतरंगिणी में वर्णित राजधर्म के विषय में प्रस्तुत शोधपत्र में चर्चा की गयी है।

इस शोधपत्र में विशिष्ठ रूप से राजतरंगिणी के राजधर्म का ही संकेत किया गया है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-136

भास के नाटकों में संगीत

श्रीमती वसुन्धरा कान्हे, रायपुर

संस्कृत साहित्य में प्रारंभ से ही संस्कृत नाटकों की आधारभूमि संगीतमय रही है। आचार्य भरत के अनुसार सामवेद से संगीत लेकर नाटकों की रचना हुई। इसी सन्दर्भ में कविता कामिनी के हास महाकवि भास के नाटकों की पृष्ठभूमि में संगीत की धारा सतत प्रवाहित होती दिखती है।

'गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते'—इस आधार पर वाद्य भी संगीत का अविभाज्य अङ्ग है। इस सन्दर्भ में भास के प्रसिद्ध नाटक स्वप्नवासवदत्तम् में घोषवती वीणा का उल्लेख मिलता है। राजा उदयन का घोषवती वीणा के प्रति अपार अनुराग वीणा की विशेषताओं की ओर संकेत करता है।

प्रस्तुत लेख में वीणा वादन की परम्परा को ऐतिहासिक दृष्टि से चित्रित किया गया है।

❖

CS-137

चारुदत्त के नामपदों में प्रयुक्त प्राकृत-प्रत्यय

श्री अश्वनी कुमार, शिमला

संस्कृत नाटककारों में महाकवि भास का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने तेरह नाटकों की रचना की है। ये हैं—स्वप्नवासवदत्तम्, प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्, अविमारकम्, प्रतिमानाटकम्, पञ्चरात्रम्, मध्यमव्यायोग, दूतवाक्यम्, दूतघटोत्कचकर्णभारम्, उरुभङ्गम्, बालचरितम् और चारुदत्तम्। इन नाटकों में अविमारकथम् और चारुदत्तम् प्राकृत भाषा की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण नाटक हैं।

'चारुदत्तम्' की प्राकृत में भास ने तीन प्रकार के नामपदों का प्रयोग किया है—सामान्य नामपद, सर्वनामपद और संख्यावाची नामपद। सामान्य नामपदों के अन्तर्गत संज्ञापदों और विशेषण के रूप में प्रयुक्त नामपदों को ग्रहण किया गया है। यद्यपि इन सामान्य नामपदों में प्रथमा से लेकर सम्बोधन पर्यन्त सभी विभक्तियों के प्राकृत प्रत्ययों का प्रयोग हुआ है, परन्तु कुछ विभक्तियाँ ऐसी भी हैं, जिनमें बहुवचन का प्रयोग हुआ ही नहीं है।

'चारुदत्तम्' की प्राकृत में सर्वनाम पदों में भी सभी विभक्तियों का प्रयोग हुआ है। अधिकांश रूप एकवचन में ही प्राप्त होते हैं। बहुवचन का प्रयोग कुछ ही विभक्तियों में हुआ है। इनके अतिरिक्त कुछ स्थलों पर सर्वनाम को विभक्ति प्रत्यय सहित आदेश मुक्त रूप भी प्रयुक्त हुए हैं।

'चारुदत्तम्' में कुछ संख्यावाची नामपदों से भी प्राकृत के प्रत्ययों का प्रयोग हुआ है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-138

सिसृक्षा की उद्भावना : संस्कृत काव्यशास्त्रीय अनुचिन्तन

श्री राघवेन्द्र पाठक, दिल्ली

अपूर्व वस्तुरूपी काव्य की रचना के विश्लेषण में 'प्रतिभा' को विशेष महत्त्व दिया गया है। मूलतः नैसर्गिक शक्ति होने पर भी व्युत्पत्ति और अभ्यास इसके संवर्धन के सहायक उपादान हैं। विचारों के नवनवोन्मेष की स्रोतस्विनी प्रज्ञा के रूप में स्वीकृत प्रतिभा काव्यसृजन को संभव बनाती है। इस निबन्ध में भामह, वामन, रुद्रट, आनन्दवर्धन प्रभृति आचार्यों के विश्लेषण को ध्यान में रखकर प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास के स्वरूप और उनके पारस्परिक सम्बन्ध को निरूपित किया गया है।

❖

CS-139

अविमारक नाटक में प्रयुक्त सूक्तिवैभव

डॉ. मनीष कुमार सिंह, पटना

महान् रूपककार महाकवि भास ने अपने पात्रों के कथनोपकथनों को सरस और ग्राह्य बनाने के लिए उपदेश, प्रेम एवं नीति सम्बन्धी कतिपय सूक्तियों का सुन्दर सन्निवेश अविमारक में किया है। लोकवृत्ति अथवा नैतिक शिक्षा का निरूपण काव्य की अनुरंजनकारिणी भाषा में सम्पन्न होने के समस्त सन्दर्भ को रसमय बनाने की क्षमता सूक्ति वाक्यों में समाहित रहती है। शर्करामिश्रित औषध के समान काव्य-चमत्कार उत्पन्न करते हुए सदुपदेश देना या किसी विशेष भाव को उत्पन्न करना सुभाषितों का लक्ष्य होता है। सत्य, त्याग, उदारता, अहिंसा, क्षमा, मार्दव प्रभृति का चमत्कारी उपदेश काव्य की भाषा में अंकित रहता है। इस प्रकार सूक्तिवाक्य सदाचार सम्बन्धी सार्वजनीन सिद्धान्तों का काव्य सन्दर्भों में समावेश करते है। यही कारण है कि नाटककार भास ने अपनी कृतियों में सूक्तिवाक्यों का समावेश कर सन्दर्भों में सहृदयजनसंवेद्यता उत्पन्न की है।

❖

CS-140

मंखक की भाषा-शैली–एक विश्लेषण

डॉ. सुलेखा देवी, भागलपुर

कश्मीरी कवि मंखक ने 25 सर्गों में उपनिबद्ध 'श्रीकंठचरितम्' महाकाव्य का प्रणयन किया। इनके पिता का नाम विश्ववर्त था। ये कश्मीर के राजा जयसिंह के सभापण्डित थे। इनके गुरु रूय्यक थे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनका समय 1127 से 1149 के बीच अर्थात् 12वीं शती का पूर्वार्ध माना जाता है। महाकवि कल्हण इनके समकालीन थे। कश्मीर की साहित्यिक परम्परा में महाकवि मंखक का अन्यतम स्थान रहा है। कल्हण और क्षेमेन्द्र के बाद इन्हीं का नाम आता है। महाकाव्य का वर्ण्य-विषय 'शिव के द्वारा त्रिपुरनाश' है।

मंखक की भाषा-शैली भारवि, माघ और श्रीहर्ष की अलंकृत शैली से भिन्न है। इन्होंने कालिदास की वैदर्भी शैली में अपने काव्य का प्रणयन किया। कवि ने इस महाकाव्य में वस्तु पर कम परन्तु रस-योजन पर विशेष बल दिया है। इन्होंने शृंगार-रस के वर्णन में माधुर्य गुण का सर्वाधिक प्रयोग किया है। वीर-रस के प्रसंग में इनके ओज गुण की योजना श्लाघनीय है। इसमें लम्बे-लम्बे समास तो है ही, पदरचना उद्धत एवं दीप्त हो गई है। कवि ने महाकाव्य की भाषा में प्रासादिकता का भी अतिशय सन्निवेश किया है। वैदर्भी रीति के ये प्रबल पक्षधर प्रतीत होते हैं। कवि के भाषा का एक पक्ष अलंकार भी होता है। रूपक कवि का प्रिय अलंकार है। वर्ण्य-विषय को उपस्थित करने में कवि ने कई दुरारूढ़ कल्पनाएँ भी की हैं, जिससे उनकी भाषा कदाचित् अस्वाभाविक सी हो गई है, परन्तु इनके काव्य में कोमल पदावली युक्त सरस भावों की पूर्ण अभिव्यक्ति पायी जाती है। काव्य-शैली में इन्होंने कालिदास का अनुगमन किया हैं। 'श्रीकण्ठचरितम्' पर कालिदास के कुमारसंभव, रघुवंश का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। कालिदास के बाद इनके आदर्श महाकवि भारवि, माघ प्रतीत होते हैं।

इस प्रकार शृङ्गार एवं वीर, माधुर्य एवं ओज, प्रासादिकता, वैदर्भी रीति, रूपक अलंकार, दुरारूढ़ कल्पनाएँ, कोमलकान्त पदावली आदि के प्रयोग से अन्य काव्यों की अपेक्षा श्रीकंठचरितम् का वैशिष्ट्य कुछ भिन्न हो गया है।

प्रस्तुत निबन्ध में इन्हीं तथ्यों के आलोक में 'श्रीकण्ठचरितम्' की भाषा शैली की समीक्षा की गई है।

❖

CS-141

रघुवंश में ध्वनिकाव्य

डॉ. गोविन्द झा, मुजफ्फरपुर

काव्य जगत् में महाकवि कालिदास की लोकप्रियता का प्रधान कारण है उनकी शैली की ध्वन्यात्मकता, जिससे भविष्य में होने वाली घटनाओं की सूचना मिल जाती है। वे अपने वर्ण्य-विषय का विस्तृत वर्णन न करके सूक्ष्म रूप से ही उसकी व्यंजना करते हैं। कालिदास का आविर्भाव ऐसे युग में हुआ था, जब रस, गुण, रीति, अलंकार आदि विभिन्न तत्त्व व्यंग्य के रूप में स्वीकृत तो थे, किन्तु इसका जो रूप परवर्ती काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में प्रकट हुआ है, वह उस समय तक स्पष्ट नहीं था।

उपर्युक्त रस, गुण आदि तत्त्वों को सभी आलंकारिकों ने किसी न किसी रूप में उपादेय माना है। संस्कृत वाङ्मय में आचार्य आनन्दवर्धन ध्वनि-सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं। उन्होंने सर्वथा एक नवीन मतों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को जन्म दिया, जो ध्वनि-सम्प्रदाय, के नाम से अभिहित हुआ। ध्वनिवादी आचार्यों ने ध्वनि के तीन मुख्य भेद स्वीकार करते हैं—वस्तु, अलंकार और रस। इसमें रसध्वनि का स्थान सर्वोपरि माना गया है।

कालिदास सामान्य रूप से शृंगार के कवि कहे जाते है, किन्तु रघुवंश में वीररसोचित नायकों के प्राचुर्य के आधार पर वीर रस को अंगीरस माना गया है। दिलीप के देश भक्ति में, रघु की दिग्विजय यात्रा एवं विभिन्न रघुवंशीय राजाओं के स्वकर्तव्य पालनों में हमें वीररस के विभिन्न आलम्बनों के दर्शन होते हैं। इस काव्य में वीर रस के अनन्तर शृंगार का ही स्थान है। अन्य रसों में करुण, हास्य, अद्‌भुत, रौद्र आदि का भी सन्निवेश हुआ है।

❖

CS-142

आचार्य मम्मट कृत 'शब्दव्यापारविचार'

डॉ. निरुपमा त्रिपाठी, कानपुर

आचार्य मम्मट की अमर कृति 'काव्यप्रकाश' से समस्त साहित्य-प्रेमी एवं साहित्यशास्त्रमर्मज्ञ सुपरिचित ही हैं। 'काव्यप्रकाश' के अतिरिक्त आचार्य मम्मट ने 'शब्दव्यापारविचार' नामक एक अन्य काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ की भी रचना की है। यद्यपि इस ग्रन्थ को 'काव्यप्रकाश' जितनी प्रसिद्धि नहीं मिली, तथापि काव्यशास्त्रीय जगत् में इस ग्रन्थ का महत्त्व कम नहीं है।

'शब्दव्यापारविचार' एक संक्षिप्त प्रकरणग्रन्थ है। डॉ. सुशील कुमार डे की पुस्तक 'संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास में इसका नाम 'शब्दव्यापारचय' मिलता है। इस ग्रन्थ में शब्द-शक्तियों की विवेचना की गयी है। शब्दों की चार प्रकार की उपाधियों, लक्षणा, उसके भेद, व्यञ्जनाशक्ति के वर्णन के साथ ही संक्षेप में व्यञ्जना-विरोधी मतों की उपस्थापना तथा उनका खण्डन किया है।

'शब्दव्यापारविचार' की रचना 'काव्यप्रकाश' के विषय को आधार बनाकर की गई है। इस दृष्टि से इस ग्रन्थ की महत्ता एवं उपयोगिता के विषय में आलौचकों के मन में सन्देह होता रहा है, किन्तु 'शब्दव्यापारविचार' के सम्यक् परिशीलन से स्पष्ट हो जाता है कि यह एक आलोचनात्मक ग्रन्थ है तथा मुख्यरूप से आचार्य मुकुलभट्टकृत 'अभिधावृत्तिमातृका' की आलोचना में लिखा गया है।

आचार्य मम्मट ने 'शब्दव्यापारविचार' की रचना 'काव्यप्रकाश' के पश्चात् की है तथा एक आलोचनात्मक ग्रन्थ के रूप में साहित्यशास्त्रीय ग्रन्थों में इसकी अपनी प्रतिष्ठा एवं महत्त्व है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-143

अभिज्ञानशाकुन्तलम् में माधुर्य

डॉ. दिनेश प्रसाद तिवारी, कानपुर

महाकवि कालिदास संस्कृत मनीषा के दिव्य दर्पण हैं। "अभिज्ञानशाकुन्तलम्" कवि के रचना चातुर्य का दिव्य दर्पण है। "अभिज्ञानशाकुन्तलम्" में माधुर्य की विच्छित्ति मण्डित आभा बरबस नेत्रों को आकृष्ट करने वाली है। माधुर्य, काव्य गुणों में सर्वोच्च स्थानीय-तत्त्व है। आचार्य मम्मट माधुर्य को परिभाषित करते हुए कहते हैं—"आह्लादकत्वं माधुर्यं शृङ्गारे द्रुतिकारणम्।"

इसी प्रकार आचार्य विश्वनाथ के अनुसार— चित्तद्रवीभावमयो ह्लादो माधुर्यमुच्यते।" (सा.द. 8/1)

आशय यह है कि माधुर्य एक ऐसा आह्लाद है, जिसमें हृदय द्रवीभूत हो उठता है। "अभिज्ञान शाकुन्तलम्" में हृदयद्रावक अनेक दृश्य हैं, जिन्हें देखकर हृदय पिघल पड़ता है। उनमें उल्लेखनीय है— "अहो मधुरमासां दर्शनम्"

आकर्षण का यह बिम्ब कवि ने क्यों उपस्थित किया है, यह विचारणीय है। भारत की संस्कृति, श्रमप्रधान, कृषिप्रधान, वन एवं बाग सेवा प्रधान रही है। श्रम एवं तप करती हुई नायिका भारत की आत्मा है।

निष्कर्षात्मक उपस्थापन प्रो. विद्यानिवास मिश्र के शब्दों में इस प्रकार किया जा सकता है—

"कालिदास सम्पूर्ण देश काल के कवि हैं, इसीलिए उनमें मनोरम ऋतु चित्र हैं, मनोरम देश चित्र है, और उन सब चित्रों में अभिव्याप्त है, एक मानवीय आकांक्षा का माधुर्य मात्र चैतन्य है। माधुर्य मात्र शिव है, जो बाहर है, वही भीतर है, जो देह में है वही देही है, वही आत्मा है।

❖

CS-144

ऋग्वेद में अलङ्कार–योजना

डॉ. कपिलदेव शुक्ल, गोरखपुर

ऋग्वेद विश्वसाहित्य का प्राचीनतम ग्रन्थ है। इसमें 'वेद को देव का अमर काव्य कहा गया है। वेद परमात्मा के निःश्वास में है! अतः स्थान-स्थान पर परमात्मा के लिए 'कवि' शब्द का प्रयोग वेदों में हुआ है। मन्त्र-प्रणयन काल में भी कवि-निबद्ध वाणी को काव्य ही कहा जाता था। अत एव वेद स्वयं काव्य रूप हैं और उसमें काव्य का सम्पूर्ण सौन्दर्य पाया जाता है। काव्यसौन्दर्य के आधायक गुण, रीति, अलङ्कार, रस तथा ध्वनि आदि तत्त्व वेदों में मूल रूप से पाये जाते हैं। वेदों में रचना के माधुर्य, ओज और प्रसादादि गुणों के उदाहरण अनेक स्थलों पर मिलते हैं। गुणों के आधार पर रीतियों का निर्धारण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है। इसलिए रीतियों के दृष्टान्त भी वेद में गवेषणीय हैं। साधारण उक्ति में किसी बात को सीधे ढंग से कह दिया जाता है, जबकि काव्य में उसी को बना-सँवार कर कहा जाता है। बनाव-शृंगार की इस प्रक्रिया को संस्कृत में अलम्+कृ से प्रकट किया जाता है। इस सौन्दर्यधायकतत्त्व अलङ्कार के कारण ही काव्य साधारण उक्ति की तुलना में अधिक उपादेय बन जाता है। आचार्य वामन अलङ्कार को सौन्दर्य परक मानते हैं। दण्डी ने भी काव्य के सौन्दर्याधायक धर्मों को अलङ्कार के नाम से ही व्यवहृत किया है। इस प्रकार काव्यसौन्दर्य के सभी नियामक तत्त्व अलङ्कार अभिधान के अन्तर्गत समाहित हैं।

वैदिक ऋषि अपने हृदयगत भावों की अभिव्यञ्जना थोड़े से सुबोध शब्दों के माध्यम से कर देता है। वह कभी भावसंवेग की तीव्रता की अभिव्यक्ति हेतु जान बूझकर काव्यसौन्दर्य के अभिवर्द्धक तत्त्वों के प्रति अभिनिवेशित नहीं होता, अपितु सहज सरल भावाभिव्यक्ति के समय में स्वतः उसके वाग्विन्यास में उपस्थित हो जाते हैं। ऋग्वेदीय सूक्तों में देवताओं की यज्ञ में उपस्थिति, मित्रवत् सांसारिक सौख्यसम्पादन एवं आध्यात्मिक दृष्टि के उन्मेष के लिए विभिन्न प्रकार के छन्दों में स्तुति की गयी है। उनके रूपों के नानात्व का वर्णन कविकला का विलास है। सृहृत्कामना में कोमल भावों तथा हृदयस्पर्शी संवेगों की मधुर अभिव्यञ्जना है। काव्यगत गुणों का प्राकट्य आकस्मिक नहीं, अपितु तन्मयता एवं अनन्यता से संवलित भावपेशलता की सहज अभिव्यक्ति में स्वतः स्फूर्त हो जाता है। उषा के सूक्तों में सौन्दर्य की सुकुमार भावना का अतिरेक, इन्द्रसूक्तों में वीरता एवं तेजस्विता का मधुर मिलन, अग्नि के वर्णन में स्वभावोक्ति का कथन तथा वरुण के सूक्तों में हृत्तन्त्री की सुकोमल झंकार का निरूपण ऋषि के भाववैविध्य का सफल निदर्शन है।

वेद काव्य चर्चा के साथ ही काव्यसौन्दर्य के अभिवर्धक तत्त्वों का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। ऋग्वेद की कविता अलंकारों की मञ्जुल छटा से चमत्कृत है। यहाँ अलङ्कार स्वयं आविर्भूत हैं, जो कविता को प्रभावशाली बनाने, कथ्य की रोचक प्रस्तुति तथा हृदय के भावों को प्रस्फुटित करने में सर्वथा समर्थ हैं। ऋग्वेद में अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, व्यतिरेक, विशेषोक्ति आदि अलङ्कारों का सुन्दर वर्णन वाच्य एवं व्यंग्य रूप में पाया जाता है।

❖

CS-145

प्रभावतीपरिणयम् का नाट्यशास्त्रीय अध्ययन

सुश्री ऋचा मिश्रा, लखीमपुर

'प्रभावतीपरिणयम्' शृंगार— रसप्रधान नाटक है। इसमें श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न और वज्रनाभासुर की कन्या प्रभावती का पावन और प्रेममूलक परिणय वर्णित किया गया है। यह आख्यान पौराणिक है तथा यह सात अंकों का नाटक है।

प्रभावतीपरिणयम् नाटक का उद्गम स्थान हरिवंशपुराण है। इसमें शृङ्गार तथा वीर रसों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया गया है। पूर्ववर्ती नाटककारों की छाया पड़ने से नाटक में नवीनता का अभूतपूर्व

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संचार हुआ है।

अलङ्कार मुख्यरूपेण सौन्दर्य वृत्ति के साधन है। काव्य में इनका उपयोग भावों को सजाने और रमणीयता प्रदान करने के लिये होता है। आचार्य भरतमुनि ने "नहि रसादृते कश्चिदप्यर्थः प्रवर्तते" के माध्यम से अलङ्कार के अङ्गित्व रसादि के अङ्गत्व का प्रतिपादन किया गया है।

"प्रभावतीपरिणयम्" नाटक में शब्दालङ्कारों और अर्थालङ्कारों का प्रयोग हुआ है, जो इस प्रकार अनुप्रास, यमक, रूपक, तुल्योगिता, अतिशयोक्ति, विरोधाभास, उत्प्रेक्षा और ससन्देह है।

"प्रभावतीपरिणयम्" में प्रकृति-चित्रण को अत्यन्त मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया है। इसके प्रथम अङ्क में मध्याह्न का वर्णन, द्वितीय तथा चतुर्थ में प्रभात और वर्षा का, छठें में वायु का वर्णन बड़े ही सजीव ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

"प्रभावतीपरिणयम्" की शैली का वर्णन किया गया है, इसी शैली में अद्भुत सौष्ठव है। लेखक द्वारा इसमें सरल से सरल तथा गाढ़बन्ध पदों की सर्जना की गयी है। नाटक में भद्र तथा सारण का कथोपकथन, शुचिमुखी कुमार का वार्तालाप तथा कुमार और भद्र का वार्तालाप हृदय को आकृष्ट करते है। इस प्रकार प्रभावतीपरिणयकार ने अद्भुत शैली स्वाभाविक रूप से प्रस्तुत की है।

❖

CS-146

नाट्यशास्त्र में काव्य लक्षण और अलङ्कार

डॉ. जय प्रकाश नारायण, लखनऊ

नाट्यशास्त्र के 17 वें अध्याय में 36 लक्षणों एवं 4 अलंकारों का वर्णन है, परन्तु वहाँ इन दोनों में कोई स्पष्ट अन्तर नहीं किया गया है। परिणामतः प्रारम्भ से ही लक्षण और अलंकार के भेद को लेकर आचार्यों के विविध मत रहे हैं। कुछ विद्वान् लक्षण को अलङ्कारों से पृथक् स्वीकार करते हैं तथा कुछ विद्वान् लक्षणों को अलंकार से अभिन्न मानते हैं।

आधुनिक समीक्षक अलंकारों के विकास में लक्षणों का योगदान भी स्वीकार करते हैं। अभिनवगुप्त के काल से ही लक्षणों के विकास की यह प्रवृत्ति दिखायी देने लगती है। वस्तुतः लक्षण और अलङ्कार दोनों ही काव्य के भूषण हैं। काव्य के सन्दर्भ में इन दोनों का अपना भिन्न-भिन्न धर्म है। भरत के द्वारा प्रयुक्त वाक्यों से ही इन दोनों के धर्म का स्पष्टीकरण हो जाता है। जैसे—

"काव्याविभूषणानि काव्येषु----------सम्यक् प्रयोज्यानि----------। (ना.शा. 16.39)

काव्यस्य रूप हैं और [illegible]ारः परिकीर्तिताः।

यहाँ आचार्य ने काव्यलक्षण को काव्य में स्वाभाविक रूप से रहने वाला तत्त्व माना हैं और अलंकार काव्य आरोपित धर्म हैं। इस प्रकार लक्षण काव्य का अविच्छेद्य धर्म है। ये लक्षण शरीर के अवयव

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के समान काव्य के ऐसे भूषण हैं, जो तद्रूप होकर रहते हैं। जैसे—नेत्रों की विशालता। किन्तु अलंकार काव्य के वे भूषणत्वेन भिन्न रूप से प्रतीत होते हैं—जैसे नेत्रों में लगा हुआ अञ्जन या भाल में लगा हुआ तिलक। अतः एक स्वाभाविक भूषण है और दूसरा आरोपित।

आचार्य भरत काव्यबन्धों में लक्षणों के सम्यक् विनियोग का निर्देश देते हैं—

एतानि वा काव्यविभूषणानि षड्त्रिंशदुद्देश्यनिदर्शनानि।
काव्येषु सोदाहरणानि तज्ज्ञैः सम्यक् प्रयोज्यानि बलानुरूपम्॥

काव्यलक्षण और अलंकार के उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि काव्यलक्षण काव्य का महत्त्वपूर्ण एवं अनिवार्य अंग थे और वे आन्तरिक सौन्दर्य के रूप में उपस्थित थे, अलंकार बाह्य सौन्दर्य के रूप में। परवर्ती काल में बाह्य चमत्कार की ओर कवियों का अत्यधिक आकर्षण ही काव्य लक्षण को एक विस्मित अध्याय एवं अलंकार को शताधिक संख्या में गणना की गई है। अलंकारों के विकास में काव्यलक्षण का योगदान ही काव्यलक्षण के महत्त्व को दर्शाता है।

❖

CS-147

संस्कृत नाटक में प्रतीक नाटक के तत्त्व

सुश्री शुभ्रा मिश्रा, लखनऊ

प्रतीक शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की जा सकती है—प्रतीयते ज्ञायते वा इति प्रतीकम्। इस प्रकार जिससे जाना जाए अथवा जो ज्ञात कराये, वह प्रतीक कहलाता है।

अभिनेयप्रधान साहित्य का मुख्य अंग नाटक ही है। सभी प्रकार के अभिनेय काव्यों का परिचायक रूपक हैं।

संस्कृत नाट्य में लिखें गये नाटकों को प्राचीन प्रभेद दो ही थे— शृंगारप्रधान तथा वीरप्रधान। आचार्यों ने जब देखा कि वीर और शृंगार पर आधारित नाटकों में कुछ नवीन विचारधारा का निरन्तर अभाव होता जा रहा है, तब उन्होंने एक प्रकार के नाटक का निर्माण करना प्रारम्भ किया, जिसमें अमूर्त भावों का मानवीकरण किया गया।

इस नये प्रकार के नाटक को 'प्रतीक नाटक' कहा गया। इस तरह के नाटक के प्रणयन की दिशा में सर्वप्रथम 'प्रबोधचन्द्रोदय' के प्रणेता श्रीकृष्ण मिश्र का नाम आता है।

'प्रबोधचन्द्रोदय', 'चैतन्यचन्द्रोदय' आदि नाटकों में अमूर्त भावों का मूर्तिकरण या मानवीकरण किया गया है। ये अमूर्त पात्र काम, क्रोध, आदि भावनाओं के प्रतीक या द्योतक हैं। भौतिक जगत् में मूर्तरूप में इनकी सत्ता उपलब्ध नहीं होती, अतः इन नाटकों को प्रतीक नाटक कहा गया है। इन नाटकों में इस प्रकार कल्पित मूर्तपात्रों को रंगमंच पर लाया जाता है और उनके माध्यम से दार्शनिक, धार्मिक अथवा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। औषधिविज्ञान से सम्बन्धित प्रश्नों पर भी कभी-कभी इनके माध्यम से विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इन नाटकों का सामान्य नाटकों से अलग एक प्रधान वैशिष्ट्य यह है कि सामान्य नाटकों के पात्र भौतिक जगत् के स्त्री पुरुष आदि अथवा दिव्य जगत् के देवी-देवता आदि होते हैं, जबकि इन नाटकों के पात्र अमूर्त, ऐतिहासिक और पौराणिक तथा मानवीय भावना प्रधान होते है। रसाभिव्यंजना के हेतु ये भावनायें मानव पात्रों की भूमिका में प्रस्तुत की जाती है।

❖

CS-148

प्राचीन संस्कृत-नृत्यनाट्य एवं आधुनिक लोक-नृत्यनाट्य का साहित्यिक, सैद्धान्तिक तथा प्रायोगिक तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. सुशील कुमारी वर्मा, कानपुर

ललित कलाओं में नाट्य कला सर्वश्रेष्ठ है। नाट्य दृश्य एवं श्रव्य दोनों है। प्राचीन काल में संस्कृत नृत्य, नाट्य अत्यधिक समुन्नत था, किन्तु आज उसका ह्रासकाल है। आधुनिक काल में अनेक लोकनृत्य और शास्त्रीय नृत्य प्राचीन परम्परा का आधार लेकर विकसित हुए। यह नाट्यविद्या प्राचीन काल में भी अत्यन्त लोकप्रिय थी तथा आज भी है। दृश्य और श्रव्य होने से इसका महत्त्व सभी के लिए समान है। शास्त्र पक्ष एवं लोक पक्ष, दोनों का समन्वय होने से विद्वज्जन और सामान्य जन दोनों के लिए यह कार्य ग्राह्य होगा।

वस्तुतः नृत्त, नृत्य और नाट्य एक कला की तीर्थयात्रा की तीन भिन्न पथ धारायें हैं, अपितु एक ही मूल से प्रारम्भ वह अद्वितीय रसभरी धारा हैं, जो आदि में एक, किन्तु कभी द्विविध, कभी त्रिविध और कभी पुनः अपनी विशाल उदारता और गम्भीरता महत्ता के साथ एक प्रतीत होते है।

संगीत नृत्य, वाद्य और गीत की समष्टि है, तो नृत्य-नाट्य अर्थात् उपरूपक, संगीत, अभिनय तथा साहित्य की समष्टि है, स्कृति का ललित सार है। अतः इसको पल्लवित एवं पुष्पित देखने की महती कामना जन-मानस में जागृत करना; साहित्य साधना का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। पाश्चात्य शैली एवं मूल पर आधारित चलचित्रों के आज के युग में संस्कृत रंगमंच एवं नृत्य-नाट्यों को निठुरता के साथ अवसर न देने का निश्चय सा किया है। निर्जीव तथा कृत्रिम, आधुनिक पाश्चात्य प्रेक्षापद्धति जीवित शरीरिणी संस्कृत नाट्य कला का अभिशाप बन गई है। संस्कृत रूपक परीक्षा तथा विद्वानों की विषय वस्तु बनकर रह गये हैं। इस प्रकार के काल में, समय के मूल्य को देखते हुए लघुकाय, संगीत, अभिनय तथा साहित्य की मधुरिमाओं से सम्पन्न नृत्य-नाट्य अर्थात् उपरूपक ही पुनः भारतीय आस्वद्यता जागृत करने में सक्षम हो सकते हैं। केवल एक मात्र उपरूपक ही ऐसा सम्बल है, जो संस्कृत रंगमंच के अभाव के इस युग में भी पुनः प्रस्थापित किया जां सकता है। साहित्यिक तत्त्व अवगत करने में अक्षम भी दर्शक नृत्य, वाद्य, गीत एवं अभिनय की सहायता से रसावगाहन एवं मनोरंजन करने में समर्थ देखा जाता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। अतः भारतीय ललित कलाओं के प्रति भारतीय जनमानस में आकर्षण तथा अनुराग जागृत करने में उपरूपकों की दृश्यता अत्यन्त महत्वमयी है, इसका प्रमाण उपरूपकों की आधारशिला पर स्थिर होकर उठने वाले अनेकविध वर्तमान नृत्य-नाट्य, भरतनाट्यम्, कथकली, मणिपुर आदि हैं, जो आजकल सक्षमता के साथ शिक्षित-अशिक्षित, साधारण-सम्भ्रान्त एवं राजपुरुष-जनता सभी का आकर्षण और मनोरंजन आशातीत सफलता के साथ कर रहे हैं, विदेशों में भी उनकी जनप्रियता आज हो रही है।

❖

CS-149

बालरामायण में रस-परिपाक

डॉ. अरुण दयाल, लखनऊ

महर्षि वाल्मीकि प्रणीत रामायण संस्कृत का आदिकाव्य माना जाता है। रामायण को उपजीव्य बनाकर लिखे गये नाटकों में राजशेखर विरचित बालरामायण का प्रमुख स्थान है।

मेरे शोधपत्र का विषय 'बालरामायण में रस-परिपाक' है। इस शोधलेख को विषयानुसार तीन भागों में विभक्त किया गया है। प्रथमभाग में बालरामायण का सामान्य परिचय दिया गया है। द्वितीयभाग में काव्य के विभिन्न तत्त्वों में रस की महत्ता की चर्चा की गयी है और तृतीयभाग में बालरामायण में प्रयुक्त रसयोज़ना की समीक्षा की गयी है।

बालरामायण नाटक दस अङ्कों में विभाजित है, जिसकी कथा का आधार वाल्मीकिरामायण है। इसमें वाल्मीकिरामायण के बालकाण्ड में सीता-स्वयंवर से लेकर युद्धकाण्ड में रावण-विजय तक के प्रसङ्गों को राजशेखर ने नवीन कल्पनाओं द्वारा प्रस्तुत किया है। बालरामायण में काव्य के सभी तत्त्व रस, छन्द, अलंकार, रीति, वृत्ति, गुण इत्यादि का प्रयोग यथावसर हुआ है।

बालरामायण नाटक में वीररस के चारों प्रकार युद्धवीर, धर्मवीर, दयावीर और दानवीर का प्रयोग अत्यन्त सुन्दर रूप में हुआ है।

❖

CS-150

कालिदास के नाटकों में स्वकीया नायिकाओं की संवेदनायें

डॉ. ईश्वर एल. मेहरा, अहमदाबाद

महाकवि कालिदास अपने तीनों नाटकों में कुटुम्ब एवं राज्य दोनों संस्थाओं का महत्त्व करते है। कुटुम्ब के बिना समाज का अस्तित्त्व नहीं है और राज्य के बिना सलामती नहीं है। बहुशः उनका चित्त इन संस्थाओं के स्वास्थ्य के बारे में चिन्ता करता हुआ मालूम पड़ता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुटुम्ब के आधारस्तम्भ स्त्री और पुरुष अर्थात् पति-पत्नी के जीवन में संवादितापूर्ण व्यवहार से ही दाम्पत्य मंगलमय हो सकता है। कालिदास के तीनों नाटकों में प्रणय त्रिकोण-चतुष्कोण निरूपित है। जिसमें कवि का लक्ष्य—मानों कि 'एक कोने को सुरक्षित रखने का है' ऐसा प्रतीत होता है। उन्हीं ने सपत्नी पीड़ित राजमहिषिओं की संवेदनाओं की अभिव्यक्ति की है, जिससे उनका जीवनदर्शन व्यक्त होता है। बहुपत्नीत्व प्रथा के कारण स्वकीया नायिकाओं अर्थात् राजमहिषिओं को अति कष्ट झेलना पड़ा।

कई आलोचकों ने इन स्वकीया नायिकाओं की उदारता और त्यागभावना को "भारतीय सन्नारी के आदर्श" की उपाधि देकर उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इस तरह उनकी हृदयसंवेदनाओं की सराहना करके अवमानना की है। किन्तु कालिदास अपनी मर्यादा में रहते हुए भी अन्यसंक्रान्तहृदय पति से खण्डित नायिकाओं की वेदनाएँ-संवेदनाएँ क्वचित् बलिदानस्वरूप, क्वचित् उपालम्भस्वरूप, क्वचित् असूया एवं क्रोधस्वरूप, तो क्वचित् मूकभाव से प्रदर्शित करते हैं।

कालिदास ने राजमहिषिओं के प्रणयविधान एवं संघर्ष के जरिये कथानिर्वाह तो किया ही है। साथ में बहुपत्नी का अनिष्ट भी बताया है।

सपत्नीओं की संवेदनाओं को अभिवाचित करके उनकी लाचार एवं असहायस्थिति का सूचन किया है और उसके द्वारा एकपत्नीत्व के सिद्धान्त को स्वीकार किया है। एक पत्नी के मनोभावना प्रेम से जीवन संवादी, मधुर एवं सुखमय बनता है— ऐसी कालिदास की दृष्टि रही होगी। यही उनका जीवनदर्शन कहलायेगा।

❖

CS-151

चम्पूकाव्य परम्परा और वरदाम्बिका परिचय

सुश्री सुनीता सिंह गौतम, इलाहाबाद

दृश्य, श्रव्य विधाओं के आधार पर चम्पूकाव्य श्रव्यकाव्य के विख्यात प्रभेद प्रबन्धकाव्य के अन्तर्गत आता है। वरदाम्बिकापरिणय चम्पूकाव्य की कवयित्री तिरूमलाम्बा का चम्पूकाव्य के सृजन में महत्त्वपूर्ण योगदान है। यह विजयनगर साम्राज्य की राजमहिषी थी। प्रस्तुत काव्य में विजयनगर के अधिपति महाराज अच्युतराय और उनकी रानी वरदाम्बिका के प्रणय तथा परिणय की कथा अत्यन्त मनोहर शैली में वर्णित है। इस दृष्टि से इस काव्य का ऐतिहासिक महत्त्व भी है। कलहस्ति शिलालेखों से ज्ञात होता है कि महाराज अच्युतराय का समय 1529 ई. से लेकर 1542 ई. है। अतः यह काव्य इसी समय के मध्य में लिखा गया है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि डॉ. लक्ष्मणसरूप ओरियन्टल कालेज, लाहौर के प्रधानाचार्य, को 1924 ई. में तंजोर लाइब्रेरी से प्राप्त हुई थी। डॉ. लक्ष्मण सरूप और डॉ. हरिदत्त शास्त्री ने 1932ई. में इसका संपादन करके प्रकाशित किया था।

इस ग्रन्थ के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इस काव्य के 51 वर्णनों में इतिहास और कल्पना का समन्वित रूप है। इसमें पुरुष के सौन्दर्य का मार्मिक वर्णन हुआ है। यह शृङ्गार रसप्रधान काव्य है, जिसमें अलङ्कारों और छन्दों का समावेश अत्यन्त ललित शैली में हुआ है।

यह ग्रन्थ अत्यन्त प्रौढ़ शैली में लिखा गया है। इसकी भाषा परिमार्जित, सरस; सालङ्कार और पाण्डित्य-पूर्ण है। क्लिष्ट पदावली और लम्बे समासों के होने पर भी ग्रन्थ में अपूर्व आकर्षण है। इस ग्रन्थ में तत्कालीन भारतीय संस्कृति एवं समृद्धि सुदृढ़ स्वरूप परिलक्षित होता है। यह काव्य संस्कृत-साहित्य में समुपलब्ध विपुल चम्पूकाव्यों में अन्यतम है तथा संस्कृत वाङ्मय के उत्थान में स्त्रियों का कितना योगदान है, इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

❖

CS-152

नाट्यशास्त्रोक्त छत्तीस नाट्यलक्षण : सिद्धान्त और व्यवहार

डॉ. मधु अग्रवाल, विजनौर

आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र में छत्तीस नाट्यलक्षणों का वर्णन किया है। अभिनवगुप्त का कथन है कि समस्त अर्थालङ्कारों के बीजभूत एवं कथा-शरीर में विचित्रता को लाने वाले वक्रोक्तिरूप चमत्कारों का "लक्षण" शब्द से व्यवहार होता है। 'लक्षण' गुण एवं अलङ्कारों की महिमा की अपेक्षा न करके अपने सौभाग्य से सुशोभित होते हैं। इस सन्दर्भ में पुरुष का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए अभिनवगुप्त का मन्तव्य है कि महापुरुष की पद्मादि रेखाओं के सादृश्य "लक्षण" काव्य में सौन्दर्य का आधान करते हैं। अलङ्कार रत्ननिर्मित आभरणादिवत् हैं, जिनके बिना पुरुष एवं नायिका अपने सौन्दर्य से सुशोभित नहीं होते हैं। गुण तो प्रवृत्ति से द्योतित धैर्य आदि के सदृश काव्यगत शब्द और अर्थ की रचना के आश्रय से रहता है. किन्तु जैसे अलङ्कारादि से युक्त लक्षणों से रहित पुरुष को 'सुन्दर' शब्द से नहीं कहा जा सकता है, उसी प्रकार कथाशरीर गुण एवं अलङ्कारों से उज्ज्वल होने पर भी नीरसता को प्राप्त करने के कारण 'प्रौढ़ काव्य' शब्द से अभिधान के योग्य नहीं हो सकता है। अत एव कथा-शरीर सम्पन्न काव्य (नाट्यादि) में 'लक्षणों' के सम्पादन का विधान भरत मुनि ने किया है।

सागरनन्द ने विशेषताओं के आपादक लक्षणों से युक्त नाटक को कल्याणसूचक चिह्नों एवं उत्तम गुणों को धारण करने से चक्रवर्ती पद प्राप्त करने वाले सम्राट् के सदृश, श्रेष्ठता प्राप्त शोभित होने वाला कहा है। शिङ्गभूपाल एवं विश्वनाथ ने भी नाट्य के वस्तु-शरीर को नाट्यलक्षणों से अलङ्कृत करने का निर्देश दिया है। विश्वनाथ ने इन नाट्यलक्षणों का गुण, अलङ्कार, भाव एवं सन्ध्यङ्गों में अन्तर्भाव स्वीकार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करके भी 36 नाट्यलक्षणों का उल्लेख करते हुए, इनके विशेष कथन का उद्देश्य नाटकादि में इनकी अवश्यप्रयोज्यता बताया है। साथ ही रस की आकांक्षा से यथायोग्य प्रयोग करने का विधान किया है।

छत्तीस नाट्यलक्षणों में से नागानन्द में अट्ठारह नाट्यलक्षणों का सम्यक् प्रयोग किया गया है।

❖

CS-153

नाट्य एवं काव्यशास्त्र में रस एवं शान्तरस की अवधारणा

डॉ. (श्रीमती) जया तिवारी, नैनीताल

नाट्य एवं काव्यशास्त्र में रस एवं शान्तरस की अवधारणा—संक्षिप्त विवेचन में नाट्य एवं काव्यशास्त्र में रसस्वरूप का विवेचन करते हुए रस की महत्ता प्रतिपादित की है—'न हि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते'' (नाट्यशास्त्र)— अर्थात् रस के बिना कोई प्रयोजन प्रवृत्त नहीं हो सकता है तथा रस एवं आत्मा साररूपतया जीवनाधाय को ''यस्य तेन बिना तस्य काव्यत्वानङ्गीकारात्'' (साहित्यदर्पण)— अर्थात् काव्य की आत्मा रस है, जिससे आत्मानन्द का अनुभव होता है। रस का सर्वप्रथम वर्णन भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में हुआ है।

कुछ आचार्यों ने शान्तरस को अभिनयात्मक काव्य का रस नहीं माना है तथा शान्तरस का खण्डन किया है। भरतमुनि के अनुसार भावों की संख्या उनचास(49) है। शम को स्थायीभाव मानने में भावों की संख्या पचास हो जायेगी, जिससे पूर्व की संख्या बढ़ जाएगी, अतः शान्तरस नहीं माना जा सकता है। दूसरा कारण यह है कि कामादि का अभाव शान्तरस का अनुभाव नहीं हो सकता; क्योंकि वीर आदि रसों में भी कामादि का अभाव दिखाई देता है। अन्वयव्यतिरेक से भी कामादि का अभाव शान्तरस का कार्य नहीं माना जा सकता है। शान्तरस का किसी अभिनय में समावेश नहीं किया जा सकता; क्योंकि चेष्टाशून्य होना ही शम है, चेष्टा के अभाव का अभिनय भी सम्भव नहीं है, आदि अन्य कारणों से शान्तरस का खण्डन किया है। आचार्य धनञ्जय एवं धनिक ने शान्तरस को नाट्यरस नहीं माना है तथा—''निर्वेदादिरताद्रूप्यादस्थायी स्वदते कथम्'' से आठ ही स्थायी भाव मानते हुए आठ ही रस स्वीकार किए हैं और शान्तरस का खण्डन किया है, जिसका उल्लेख प्रस्तुत विषय में निबद्ध है।

❖

CS-154

मालतीमाधव में नाट्य-दोष

सुश्री ए. रानी, दिल्ली

महाकवि भवभूति ने अपने नाटकों की रचना रंगमंच पर अभिनय के लिए की थी। महावीरचित का सूत्रधार गर्व के साथ कहता है कि कवि भवभूति हमारे मित्र हैं। मालती-माधव का सूत्रधार कहता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि महाकवि भवभूति ने अपना प्रकरण मालती-माधव हमें अभिनय के लिए दिया है। तीनों नाटकों का अभिनय सर्वप्रथम कालप्रियनाथ की यात्रा में किया गया था। परन्तु अभिनय की दृष्टि से मालती-माधव में दोष दिखाई पड़ता है। महावीरचित की असफलता के परिमार्जन के लिए मालती-माधव की रचना की गई। वीररस की प्रधानता को इस सफलता का कारण मानकर शृंगार रस से सराबोर मालती-माधव लोगों के सामने प्रस्तुत किया गया। परन्तु आलोचकों ने इसके अभिनय की भी आलोचना की। इस आलोचना पर प्रहार करते हुए भवभूति ने कहा कि इसके लिए सामाजिकों की अल्पज्ञता और दुर्जनता दोषी है। साथ ही साथ बाद की रचना में सफलता में बाधक तत्त्वों को दूर करने का प्रयास किया।

मालती-माधव में महाकवि भवभूति ने अनेक स्थलों पर गौड़ी रीति का प्रयोग किया है। उचित स्थानों पर गौड़ी रीति का प्रयोग होता, तो अभिनय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। परन्तु कई जगहों पर अनावश्यक रूप से गौड़ी रीति का प्रयोग किया गया है। लम्बे-लम्बे समासों का प्रयोग केवल पद्य में ही नहीं, अपितु गद्य में भी किया गया है। प्रथम अंक में मकरन्द के साथ वार्तालाप करते हुए माधव ने दीर्घ समासों से युक्त अपनी गद्यमयी भाषा का जो प्रयोग किया है, उसे अभिनय की दृष्टि से असफल कहा जा सकता है। कवि ने इस प्रकार की शैली का प्रयोग प्राकृत में भी किया है। तीसरे अंक में लड़कियों का चालीस पंक्तियों का लम्बा भाषण केवल दर्शकों को ही नहीं, अपितु अभिनेता-अभिनेत्री को भी कठिनाई खड़ा कर सकता है। इस प्रकरण में कई बार कवि ने प्राकृत भाषा में दीर्घ समास युक्त लम्बे भाषणों द्वारा सामाजिकों के धैर्य की परीक्षा ली है। सप्तम अंक में मदयन्तिका और अष्टम अंक में कलहंस का भाषण देखा जा सकता है। उपर्युक्त दोषों से यदि बचा जाता, तो अभिनय में अधिक सफलता मिल सकती थी। इसके साथ ही इसमें भाषा तथा अन्यान्य दोष हैं।

❖

CS-155

आचार्य दण्डी का दीपक अलंकार चिन्तन

डॉ. श्रीधर मिश्र, गोरखपुर

दीपक अलंकार उन चार अलंकारों में से एक है, जिनकी चर्चा आचार्य भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में 'उपमा दीपकं चैव रूपकं यमकं तथा। काव्यस्यैते ह्यलङ्काराश्चत्वारः परिकीर्तिताः।।' सर्वप्रथम किया है। इसमें से उपमा दाक्षिणात्य काव्य मान्यता का प्रथम प्रतिष्ठित अलंकार है और रूपक औदीच्य काव्य मान्यता का। वहीं निश्चित रूप से किसी काव्य संप्रदाय ने दीपक को प्रथम अलंकार की मान्यता प्रदान की थी। संभवतः वह ऐसे भावकों का काव्य संप्रदाय था, जो स्वभाव तथा औपम्य प्रस्तुति से अधिक उक्तिवैचित्र्य में ही काव्य की प्रतिष्ठा को स्वीकार करते थे। इसीलिए वक्रोक्तिजीवितकार कुन्तक ने दीपक अलंकार का वरीयता से पहले विवेचन किया है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीपक की दो व्युत्पत्तियाँ आलंकारिकों को अभिमत हैं। प्रथम व्युत्पत्ति के अनुसार— दीप्त्यर्थक ण्यन्त की दीप् धातु से कर्तृ अर्थ में ण्वुल् प्रत्यय तथा वु को अक् आदेश होने पर दीपक 'दीपयति प्रकाशयति प्रस्तुतसम्बन्धेन अप्रस्तुतमप्यर्थ इति दीपकम्' शब्द निष्पन्न होता है। जो समग्र पदार्थ (प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत) को एक साथ प्रकाशित या उपस्कृत करे, उसे दीपक कहते हैं। द्वितीय व्युत्पत्ति के अनुसार— आलंकारिकों की मान्यता है कि 'दीप्यते इति दीपः' जो दीप्त या प्रकाशित हो, उसे दीप कहते हैं। जहाँ प्रस्तुतनिष्ठ एक धर्म दीप की भाँति प्रसाद को प्रकाशित करते हुए समीपस्थ मार्ग को भी प्रकाशित करता है, 'दीप इव स्थितमिति दीपकम्' उसे दीपक कहते हैं। दिवादि की दीप् धातु से कर्तृ अर्थ में पचाद्यच् करने पर दीप, उसमें इवार्थ में कन् प्रत्यय करने पर दीपक शब्द की निष्पत्ति होती है।

आचार्य दण्डी ने वाच्य सादृश्य वाली उपमा और लक्ष्य सादृश्य वाले रूपक का निरूपण करने के बाद व्यङ्ग्य सादृश्य वाले दीपक अलंकार का निरूपण किया है।

❖

CS-156

रसमंजरी में प्रवत्स्यत्पतिका नायिका

डॉ. भानु प्रकाशधर द्विवेदी, गोरखपुर

रसमञ्जरीकार आचार्य भानुदत्त ने अवस्थाधारित अष्टविध नायिकाओं के सोदाहरण विवेचन के अनन्तर अमरूक शतक के अधोलिखित श्लोक—

प्रस्थानं वलयैः कृतं प्रियसखैरस्रैरजस्रं गतं
धृत्या क्षणमासितं व्यवसितं चित्तेन गन्तुं पुरः।
यातुं निश्चितचेतसि प्रियतमे सर्वे समं प्रस्थिता
गन्तव्ये सति जीवित! प्रियसुहृत्सार्थः किमु त्यज्यते॥

को प्रस्तुत करते हुए अवस्था पर आधारित नवें भेद का प्रतिपादन किया है।

आचार्य भानुदत्त ने प्रवत्स्यत्पतिका को परिभाषित करते हुए लिखा है कि 'लक्षणन्तु—यस्याः पतिरग्रिमक्षणे देशान्तरं यास्यत्येव सा प्रवत्स्यत्पतिका' अर्थात् जिसका प्रिय (पति) अग्रिम क्षण में देशान्तर (विदेश) जाएगा ही, वह नायिका प्रवत्स्यत्पतिका कहलाती है।

प्रवत्स्यत्पतिका नायिका काकु या व्यङ्ग्यपूर्ण वचनों के द्वारा बार-बार प्रिय को कोसती रहती है एवं दीन-हीन सी होकर कातर दृष्टि से उसे देखती है। उसके प्रवासार्थ गमन में अनेक विघ्नों की कल्पना करती है। यह नायिका प्रायः निर्वेद, संताप, सम्मोह, निःश्वास एवं वाष्प प्रकट करती है।

आचार्य भानुदत्त का कथन है कि 'प्रवत्स्यत्पतिका' नायिका का नवम भेद होना चाहिए; क्योंकि प्रवत्स्यत्पतिका को प्रोषितभर्तृका आदि अष्टविध नायिकाओं में सम्मिलित नहीं किया जा सकता है। उन्हीं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने अवस्थाधारित आठों प्रकार की नायिकाओं से प्रवत्स्यत्पतिका की भिन्नता प्रदर्शित करते हुए उनमें इसके अन्तर्भाव का खण्डन किया है।

❖

CS-157

संस्कृत एकांकी रूपकों में दृश्य वैविध्य का अध्ययन

प्रो. उर्वी प. दवे, अहमदाबाद

संस्कृत साहित्य के नाटक को "दृश्य काव्य" कहा जाता है। सामान्यतः देखा जाय, तो कविता कान की कला है, अतः जो कर्णप्रिय होता है, उसे काव्य कहा जाता है। जिस काव्य का आस्वादन चक्षुओं द्वारा प्रत्यक्ष दृश्य विधान के माध्यम से किया जाता है, उसे दृश्य काव्य कहते हैं। दृश्य काव्य को रूपक, रूप, नाट्य आदि अन्य नामों से भी पहचाना जाता है। रंगमंच पर जिसका अभिनय किया जाता है, वह रूपक है। दृश्य काव्य के दो प्रमुख भेद हैं— रूपक और उपरूपक। रूपक दृश्य काव्य का प्रमुख प्रकार है, जब कि नाटक प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, इहामृग, प्रहसन, वीथी, उत्सृष्टिकांक और डीम आदि अन्य प्रकार हैं।

संस्कृत साहित्य के सर्वप्रथम नाट्यकार भास के 13 रूपकों में से पाँच रूपक केवल एकांकी ही हैं। संस्कृत साहित्य में इतनी बड़ी मात्रा में एकांकी रूपक वर्तमान समय में केवल भास के ही उपलब्ध होते हैं। यहाँ भास के एकांकी रूपकों जैसे की दूतवाक्य, दूतघटोत्कच, मध्यमव्यायोग, ऊरूभंग, कर्णभार तथा कवि बोधायन रचित भगवदज्जुकीयम् रूपक में एक अंक होते हुए भी उसमें दृश्य वैविध्य विद्यमान रहता है। यह दृश्य वैविध्य स्थल और समय के परिवर्तन से ही नहीं सर्जित होता, बल्कि कभी-कभी पात्रपरिवर्तन से अथवा कभी तो नये प्रसंग के आगमन से दृश्य में परिवर्तन आता है। इसके अलावा प्रसंग परिवर्तन एवम् कहानी प्रवाह में परिवर्तन हो, तब भी विविधता सर्जित होती है। परिणामस्वरूप एकांकी होते हुए भी नाट्य दर्शनीय बनता है।

एकांकी में विशेषतः स्थल और समय में तो दो या तीन बार ही परिवर्तन होता है, पर पात्र या प्रसंग परिवर्तन से ही दृश्यवैविध्य सर्जित होता है, उदाहरण—अगर सुबह से शाम के दृश्य में समय तो तीन बार ही परिवर्तित होता है, किन्तु पात्रों और प्रसंगों में बहुत से परिवर्तन होते है, परिणामस्वरूप दृश्य में विविधता आती है।

प्रस्तुत आलेख में संस्कृत एकांकी रूपकों के दृश्यवैविध्य का अध्ययन करके दृश्य की विभावना एवम् उसके प्रकारों की चर्चा करना ही अभीष्ट है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-158

नैषधमहाकाव्य की भाषा का वैशिष्ट्य

डॉ. सविता रस्तोगी, ग्वालियर

कविषु दधतमुत्कर्षं विस्फुरदनवद्यहृद्यं वाग्वर्षम्।
इह खलु खलप्रधर्षं श्रीहर्षं नौमि हर्षसंघर्षम्॥

नैषधीयचरित संस्कृत के गौरवपूर्ण महाकाव्यपंचक में अन्यतम ही नहीं, अपितु सर्वोत्तम है। नैषधीयचरित विविधशास्त्रवेत्ता श्रीहर्ष द्वारा विरचित चमत्कारपूर्ण शैली का 22 सर्गों में विभक्त एक बृहत् महाकाव्य है, जिसमें नल-दमयन्ती के पास्परिक प्रेम से विवाहोपरान्त क्रीड़ाओं तक की कथा वर्णित है।

पूर्ण ब्रह्मज्ञ श्रीहर्ष ने नैषध में अपने पाण्डित्य का उपयोग भावचित्रण के साथ ही शब्दचयन में अधिक किया है। अतः भाषा को सँवारने एवं आवश्यकतानुसार शब्द ढालने की कला में उनका प्रावीण्य स्पष्ट रूप से दिखायी देता है। नैषध की भाषा में शब्द स्वयं अपना स्थान ग्रहण करते हुये से प्रतीत होते हैं। नैषध में शब्द और अर्थ के मनोहर सामंजस्य से कवि ने अपनी अलोकसामान्य प्रतिभा को जाज्वल्यमान रूप से उद्भाषित कर दिखाया है, उन्होंने किसी भी नवीन अर्थ का परित्याग नहीं किया है। "एकात्मत्यजतो नवार्थघटनाम्"

कवि ने महाकाव्य की भाषा में प्रचलित शब्द लेते हुये भी अप्रचलित अर्थों का प्रयोग, कोश से बाहर के अर्थों का प्रयोग, वैदिक शब्दों का प्रयोग तथा पारिभाषिक शब्दों का भी प्रयोग किया है। ऐसे प्रयोगों ने महाकाव्य को जटिल बना दिया है। लेकिन फिर भी कवि का भाषा एवं शैली पर पूर्ण अधिकार दिखायी देता हैं।

भाषा की दृष्टि से नैषध का अध्ययन करते समय भाषा के विभिन्न पक्षों में से श्लिष्ट पदावली ही नैषध का मुख्य अंग दिखायी देता है। श्री हर्ष का श्लेष पर एकछत्र अधिकार है। प्रतीत होता है कि वे स्वयं अपनी कृति 'परिरम्भक्रीड़ाचरणशरणा' (श्लेषक्रीड़ा से युक्त) मानते हैं।

दुधर्ष तार्किक श्रीहर्ष ने शब्दचमत्कार तथा शब्दक्रीड़ा की प्रवृत्ति के कारण यमक और श्लेष जैसे अलंकारों के प्रयोग से भाषा को दुर्बोध बना दिया है, जिससे सामान्य पाठक को सहज ही अर्थानुभूति नहीं हो पाती है।

❖

CS-159

काव्य के परिप्रेक्ष्य में कवि प्रतिभा–एक समीक्षा

डॉ. गया प्रसाद दूबे, रायबरेली

कवि-सर्जना का प्रसंग आने पर एक प्रश्न सहजरूप से मानसपटल पर दोलायमान हो जाता है कि लोकोत्तरवर्णननिपुण कविकर्म के मूल में वह रहस्यात्मक तत्त्व क्या है, जिसका सम्बल प्राप्त कर कवि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपार काव्य-जगत् का एकमात्र प्रजापति होता है? संस्कृत काव्यशास्त्रीय आचार्यों ने इस विषय की पर्याप्त मीमांसा कर शक्ति या प्रतिभा, व्युत्पत्ति या निपुणता तथा अभ्यास को काव्यकारकतत्त्व के रूप में प्रतिपादित किया है। परन्तु इस विषय पर वे सर्वथा एकमत नहीं हैं, इनमें से कुछ कारणत्रय, कुछ कारणद्वय और कुछ ने एक ही तत्त्व को कवि की नवरसरुचिरा निर्मिति का मूल कहा है। वामन, भामह, रुद्रट, दण्डी और मम्मट कारणत्रय के समर्थक हैं। राजशेखर ने प्रतिभा और व्युत्पत्ति दोनों को काव्यनिर्माण में श्रेयस्कर माना है। काव्यमीमांसा में किसी मंगलाचार्य के मत का उल्लेख करते हुए राजशेखर ने व्युत्पत्ति को श्रेष्ठ कहा है। उनके मत में कवि की अशक्ति से उत्पन्न दोष व्युत्पत्ति के द्वारा पूर्णतया आवृत्त हो जाता है, जबकि इसके विपरीत आचार्य आनन्दवर्धन की सम्मति में "प्रतिभा और व्युत्पत्ति में प्रतिभा ही श्रेष्ठ है, जो कवि के अव्युत्पत्तिजन्य समस्त दोष को ढक लेती है।" इस सन्दर्भ में पण्डितराज जगन्नाथ का मत सर्वथा स्पष्ट है, जिन्होंने मात्र प्रतिभा को काव्य का मूल कारण कहा है। यद्यपि काव्य मीमांसाकार ने भी अन्ततः प्रतिभा के प्रभाव को स्फुट शब्दों में प्रदर्शित किया है, "प्रतिभा से युक्त कवि अप्रत्यक्ष भावों का प्रत्यक्ष के समान वर्णन करता है, परन्तु प्रतिभाहीन के लिए पदार्थ परोक्ष ही रहता है।

इस प्रकार आचार्यों के काव्यकारणतामूलक चिन्तन से यह तथ्य तो स्पष्ट ही है कि सभी ने निरपवाद रूप से प्रतिभा को काव्य का मूल कारण कहा है जो उनकी अपनी पृथक्-पृथक् सम्मति में शक्ति, दृष्टि, प्रज्ञा आदि संज्ञाओं से अलंकृत है। वस्तुतः यह कवि शक्ति क्या है? इसका स्वरूप क्या है? कवि इसके बल पर अपने भावों को शब्दार्थ की त्वचा में मूर्त कैसे कर लेता है? आदि प्रश्न सहज रूप से विचारणीय हो जाते हैं।

काव्यस्रष्टा अपने भावों की अभिव्यक्ति लोकमंगल और आनन्द की भावना से करता है। उसके भाव प्रतिभाशक्ति के अनुकूल ही अभिव्यक्ति पाते हैं। सम्पूर्ण समष्टि की प्रतिभा साधारणीकृत अवस्था में पहुँच जाती हैं। भावों के साधारणीकरण की शक्ति ही काव्यशक्ति है।

❖

CS-160

मृच्छकटिक में कला-परिशीलन

डॉ. (श्रीमती) सावित्री गुप्ता, दिल्ली

प्रस्तुत पत्र महाकवि-शूद्रक-प्रणीत मृच्छकटिक में वर्णित गीति-वाद्य-नृत्य-द्यूत-चौर्य-निमित्तज्ञान-प्रेमाभिव्यक्ति आदि अनेक कलाओं के समीक्षण पर आधारित है।

महाकवि शूद्रक वेदों, अनेकानेक विद्याओं, कलाओं, शिक्षाओं आदि के ज्ञाता थे। उस समय कलाएँ उन्नत अवस्था में थीं, जिनका समीक्षात्मक चित्रण यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत प्रकरण के तृतीय अङ्क में गीतिकला तथा वाद्ययन्त्रों का विशद विवेचन प्राप्त होता है। ताल तथा लय-सहित संगीतकला का सुन्दर-चित्रण यहाँ उपलब्ध होता है। गणिका वसन्तसेना द्वारा हाव-भाव

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहित गाए गए गीत सुन्दर नृत्यकला के उदाहरण हैं। मृच्छकटिक के द्वितीय, तृतीय आदि अङ्कों में द्यूतकला का बहुत सुन्दर विवेचन किया गया है। द्यूत को बिना सिंहासन का राज्य कहा गया है। चौर्यकला के प्राचीन एवं नवीन दोनों रूप इस प्रकरण में दृष्टिगोचर होते हैं। मृच्छकटिक का नवाँ अङ्क नाटककार के शकुनज्ञान को भली-भाँति प्रस्तुत करता है।

नायक-नायिका के पारस्परिक प्रेम और विश्वास की अभिव्यक्ति—यह भी तो एक महत्त्वपूर्ण कला है। सच्चे प्रेम के सामने ईश्वर को भी झुकना पड़ता है—इस कथन की पुष्टि करता है यह प्रकरण।

❖

CS-161

महाकवि कालिदास विरचित मेघदूत में रस एवं संगीत योजना

डॉ. शील निगम, कानपुर

मेघदूत कालिदास के हृदय का सरस निबन्ध है। यह संस्कृत के गीतिकाव्य की समृद्ध परम्परा को प्रारम्भ कर देने वाला यह गीतिकाव्य भावाभिव्यंजना, रसनिष्पत्ति तथा प्रेमी युगल के विरह व्यथित हृदय की प्रणयवेदना को मुखरित कर देने की दृष्टि से सर्वोत्तम है। शृंगार तो रसराज है, एकमात्र सर्वश्रेष्ठ रस है—

'शृङ्गारैकरसः'' संयोग और वियोग शृंगार के दो पक्ष हैं। बिना बियोग के शृंगार पुष्ट नहीं होता—

न बिना विप्रयोगेन संयोगः पुष्टिमश्नुते।
कषायिते हि वस्त्रादौ भूयान् रागो विवर्धते॥

मेघदूत की भाषा में प्रसाद और माधुर्य गुण के साथ-साथ संगीतात्मकता भी है, जिससे हृदय की वीणातन्त्री झंकृत होती रहती है। अपनी प्रियतमा के विरह से पीड़ित यक्ष ने आठ महीने व्यतीत किये, परन्तु आषाढ़ के पहले ही दिन मेघदर्शन यक्ष की विरह व्यथा का उद्दीपन बन गया और भावविह्वल यक्ष ने मेघ से अपनी विरहिणी यक्षिणी तक अपना कुशलक्षेम पहुँचाने के लिये 'मेघ' को 'दूत' बना लिया।

मेघदूत का अध्ययन करते समय सहृदय रसिक को यह अनुभव ही नहीं हो पाता कि यक्ष अपना ''पटुकरणैः प्रापणीयः'' सन्देश किसी जड़ वस्तु को सुना रहा है। इस गीति काव्य में विप्रलम्भ शृंगार के कारुण्य तथा सौकुमार्य का, रमणीय रूप की ललित मानसिक भावाभिव्यक्ति का जैसा अनूठा चित्रण मिलता है, वैसा अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं होता।

संक्षेप में परिपक्वकला कल्पना का असीम विस्तार, माधुर्यपूर्ण ललितभाषा, विषय की एकतान गति, संगीत एवं लय का एकत्र समन्वय तथा रस की सम्पूर्ण निर्भर निष्पत्ति— यही मेघदूत गीतिकाव्य है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-162

'मुद्राराक्षस' में अभिव्यक्त राष्टहितैषिणी कूटनीति

डॉ. कन्हैया लाल झा, बलिया

विशाखदत्तप्रणीत 'मुद्राराक्षस' नाटक में जिस कूटनीति का विनियोग दिखाई देता है, वस्तुतः वह राष्ट्रहित के लिए ही प्रतीत होता है। उदात्तमना कर्मयोगी चाणक्य महामात्य 'राक्षस' को अत्याचारी एवं संस्कृतिनाशक राजा 'नन्द' की व्यक्तिनिष्ठा से निकालकर ऐसे राजा चन्द्रगुप्त के निष्ठावान् अमात्य के रूप में दायित्व स्वीकार करने हेतु बाध्य करता है, जो राजा प्रजावत्सल एवं संस्कृतिरक्षक है, राष्ट्ररक्षक है। वस्तुतः चाणक्य की वे कूटनीतिक चालें चन्द्रगुप्त के प्रति स्वयं की व्यक्तिनिष्ठा अथवा किसी क्षुद्र स्वार्थ की सिद्धि हेतु नहीं, प्रत्युत संस्कृतिरक्षक अर्थात् राष्ट्ररक्षक चन्द्रगुप्त को सुसाधनसम्पन्न एवं निष्कण्टक तथा आसेतुहिमाचल विशाल राज्य वाला सम्राट बनाने के परमार्थ अथवा राष्ट्रभक्ति से अभिप्रेरित हैं। इसी लक्ष्य-प्राप्ति के क्रम में वह महामात्य राक्षस की गुप्तचरी से हाथ लगी हुई मुद्रा का षडयन्त्र के रूप में प्रयोग करता है। मलयकेतु के मन में राक्षस की निष्ठा के प्रति शंका उत्पन्न करवा कर भेदनीति से झगड़ा करवाता है और राक्षस के परिवार को आश्रय देने वाले चन्दनदास को गिरफ्तार कराता है।

कुछ विद्वान् यह मान सकते हैं कि यह पूरा नाटक एक विशाल अखाड़ा है, जिसमें दो अखण्ड पहलवान चाणक्य तथा राक्षस अपनी बुद्धि और कूटनीति से युद्ध करते हैं। परदे की ओट से ही अपना दाँव-पेंच दिखलाकर दर्शकों को आश्चर्यचकित किया करते हैं; किन्तु वास्तव में नाटक की मूल-ध्वनि कूटनीतिक सामर्थ्य को राष्ट्रहित में विनियुक्त करने की ही है।

राष्ट्र-विषयक वास्तविक अवधारणा स्पष्ट होने पर ऐसी ही प्रतीति समस्त समीक्षकों को होगी। 'राष्ट्र' एक सांस्कृतिक इकाई है, 'राज्य' एक राजनैतिक इकाई है, जबकि 'देश' एक भौगोलिक इकाई है। एक मातृभूमि, समान इतिहास, परम्परा, मूल सांस्कृतिक धारा, आदर्श, श्रद्धाकेन्द्र, समान जीवन-लक्ष्य, समान सुख-दुःख, समान शत्रु-मित्र-भाव, समान आशा-आकांक्षा आदि भावों से राष्ट्रीयता प्रकट होती है। किसी साहित्यकार के लिए ऐसे आदर्श राजा आदि राष्ट्रनायक के प्रति श्रद्धालु होना सर्वाधिक महत्त्व की बात है, जिसने राष्ट्ररक्षा के निमित्त, राष्ट्रोद्धार के निमित्त एवं राष्ट्र के विकास हेतु असाधारण पुरुषार्थ प्रकट किया हो। नाटककार विशाखदत्त का भाव-पक्ष उपर्युक्त गुणों वाले राष्ट्रोद्धारक सम्राट् चन्द्रगुप्त तथा उनके गुरु आचार्य चाणक्य के प्रति श्रद्धावान् है और उन आर्य चाणक्य की विलक्षण राष्ट्रसाधना की झाँकी प्रस्तुत करना उनकी नाट्यवस्तु का प्रेरक तत्त्व बना। नाटक का भरतवाक्य भी इस तथ्य की पुष्टि करता है— 'वाराहीमात्मयोनेः.....पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः।'

अर्थात् 'सम्प्रति म्लेच्छों से पीड़ित वसुन्धरा ने राजा चन्द्रगुप्त के शरीर को धारण करने वाले भगवान् विष्णु की दोनों भुजाओं का आश्रय लिया है। ऐसे सम्पन्न बन्धुजनों और भृत्यों से युक्त महाराज चन्द्रगुप्त चिरकाल तक पृथिवी का शासन करें'।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवि के मन में म्लेच्छों (शक-हूण-यवनादिकों) द्वारा अपनी राष्ट्रभूमि को आक्रान्त एवं पीड़ित किए जाने का गहरा विषाद भरा हुआ प्रतीत होता है। उन म्लेच्छों को मारभगाकर राष्ट्रभूमि को सुरक्षित करने वाले राजा चन्द्रगुप्त के चिरशासन की जो कामना प्रकट की गई है, उसी चन्द्रगुप्त को समर्थ राजा बनाने में सफल प्रयत्न वाले आर्य चाणक्य का वह चरित-वर्णन कवि का अभीष्ट रहा, जिसमें वह कर्मयोगी प्रतिद्वन्द्वी अमात्य राक्षस के जीवन को समाप्त न करके राष्ट्रकल्याणकारी राजा चन्द्रगुप्त का अमात्य बनाने की चालें चलता है। अतः नाटक में यह सन्देश ध्वनित होता है कि राष्ट्रहित साधना में कूटनीति का प्रयोग भी कोई राष्ट्रभक्त कर्मयोगी करता है, तो वह प्रशंसनीय है। कूटनीतिक प्रतिभा के राष्ट्रहित में विनियोग हेतु राष्ट्रभक्त राजनेता अभिप्रेरित हों, यह इसका उद्देश्य है।

❖

CS-163

'मृच्छकटिकम्' का सामाजिक अध्ययन

श्रीमती मंजू सचान

'मृच्छकटिकम्' का समाजिक अध्ययन नामक शोध-पत्र अनुसन्धात्री ने वर्ण-व्यवस्था, व्यवसाय, नारी की स्थिति, विवाह, यातायात के साधन, उत्सव एवं पर्व, शिक्षा-व्यवस्था इत्यादि की दृष्टि से शूद्रक द्वारा वर्णित तत्कालीन सामाजिक-व्यवस्था पर शोध किया है।

तत्कालीन समाज में चार वर्ण विद्यमान थे; किन्तु प्रत्येक व्यक्ति अपनी रुचि के अनुसार व्यवसाय का चयन कर सकता था। छुआछुत का प्रचलन प्रायः नहीं था, क्योंकि प्रकरण के प्रथम अङ्क में प्राप्त होता है कि ब्राह्मण, शूद्र और मूर्ख सभी बावड़ी में एक साथ स्नान करते थे—

"वाप्यां स्नाति विचक्षणो द्विजवरो मूर्खोऽपि वर्णाधमः"।

इसी प्रकार से शोध-पत्र में समाज के अन्य बिन्दुओं पर भी विस्तार से विचार किया गया है।

❖

CS-164

कालिदास के पात्रों में दिव्य एवं भारतीय गुण 'रघुवंश' के सन्दर्भ में

डॉ. सुशील कुमार, वख्तियारपुर

समस्त राष्ट्र की आशाओं और आकांक्षाओं का दर्शन हमें साहित्य रूपी दर्पण से ही प्राप्त होता है। कालिदास कृत 'रघुवंश महाकाव्य' में दिव्य एवं मानवीय गुणों से युक्त पात्रों की कल्पना ये दोनों दिव्य गुणों से युक्त कवियों की ही देन है। जो भिन्नता इनके काव्यों में दृष्टिगोचर होती है। वह कवि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की नियति कृतनियमरहिता ह्लादैकमयीमनन्य परतन्त्राम्। नरसरुचिरां निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति। के कारण ही।

रामायण के राम-लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न चारों पात्रों में दिव्यता है। दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ में प्रकट एक दिव्य पुरुष द्वारा प्रदत्त खीर के खाने से रानियों के गर्भ में उन चारों की उत्पत्ति होती है। विष्णु का आधा अंश राम में चतुर्थांश भरत में अष्टमांश लक्ष्मण और शत्रुघ्न में था। विष्णु के अंश के अनुसार ही इन पात्रों की दिव्यता का निर्वाह काव्य में किया गया है। विष्णु होते हुए भी एक मनुष्य के रूप में अवतरित पात्र का मनुष्य भावों से युक्त होना स्वाभाविक ही है। अतएव महाकवि ने उन पात्रों को मानवीय स्वभावों से युक्त चित्रित किया है। अन्यथा रसानुभूति नहीं हो पाती।

❖

CS-165

महाकवि कालिदास का स्त्रीधर्म

प्रो. श्रीपति त्रिपाठी, दरभंगा

स्त्री पुत्री, जननी एवं जाया के रुप में प्रकृति के आदिकाल से संसार के कल्याण में सतत् संलग्न रहने के कारण सृष्टि में महत्त्वपूर्ण रही है। विशेषतः भारतीय संस्कृति स्त्री को समाज में विशिष्ट स्थान प्रदान कर उसे उत्कृष्टपद पर प्रतिष्ठित करती है। यही कारण है कि वैदिक साहित्य से लेकर आधुनिक साहित्य तक स्त्री का महत्त्व एवं उसे कर्मो के विवेचन में साहित्यकार संलग्न रहे है। मनु एवं याज्ञवल्क्य आदि स्मृतिकार तथा वेदव्यास ने स्मृतियों, महाभारत तथा पुराणों में सर्वाधिक महत्त्व प्रदान करते हुए स्त्री के महत्त्व तथा धर्म का प्रतिपादन किया है तथा इनकी रक्षा एवं आदर करने का निर्देश भी दिया है।

भारतीय संस्कृति के अनन्यभक्त तथा उन्नायक महाकविकालिदास भी इसके अपवाद नहीं है। जहाँ कहीं भी उन्हें अवसर प्राप्त हुआ है वहाँ उन्होंने मुक्त कण्ठ से स्त्री की प्रशंसा करते हुए उसके धर्म का विवेचन किया है। कालिदास ने विशेषरुप से स्त्री के पत्नीरुप क वर्णन किया है और उसके माध्यम से स्त्री को महत्त्वपूर्ण पद प्रदान करते हुए सम्पर्ण स्त्रीधर्म का विवेचन किया है। महाकवि ने स्त्री के कर्तव्यों उसके सर्वसामान्यधर्म, विधवाधर्म, सतीप्रथा, उसके योग एवं सन्यास में अधिकार, प्रषितमर्तृका का धर्म, यज्ञाधिकार तथा धनाधिकार का वर्णन अपन कृतियों में यथास्थान किया है। महाकवि का यह वर्णन तत्सम्बन्धी धर्मशास्त्रीय मतों के सर्वथा अनुकूल है।

प्रस्तुत शोधपत्र में महाकविकालिदास द्वारा प्रयुक्त स्त्रीधर्म से सम्बन्धित स्थलों को प्रस्तुत करते हुए स्मृतियों एवं धर्मसूत्रों में प्रयुक्त तत्सम्बन्धी विचारों के साथ उनका तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-166

भारतीय नारी

कु. मीनू पाण्डेय, वाराणसी

भारत संस्कारों एवं आदर्शों का देश है। यहाँ की संस्कृति सबसे प्राचीन व पवित्र है। यहीं पर सभ्यता की पहली किरण प्रकाशित हुई तथा यहीं से ज्ञान के अजस्र स्रोत भी बहे। कहा जाता है कि संसार एक रंगमंच है, जहाँ स्त्री एवं पुरुष दोनों को ही अभिनय करना पड़ता है। देश के निर्माण में पुरुषों के साथ स्त्रियों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। भारतीय समाज में नारियों की पूजा विभिन्न रूपों में होती है। प्राचीन भारत के इतिहास के पृष्ठ भारतीय महिलाओं की गौरव-गाथा से भरे हुए हैं। 'मनु-स्मृति' में कहा गया है—

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः'।

अर्थात् जहाँ नारी की पूजा की जाती है, वहाँ देवता निवास करते हैं। भारतीय मनीषियों ने ही सम्पूर्ण मानव को मानवता का ज्ञान कराया एवं विश्वबन्धुत्व की कामना से जुड़ने का ज्ञान भी प्रदान किया, ऐसे संस्कारमय भारत में नारी को उचित एवं योग्य स्थान मिलना कोई अनौचित्य नहीं है। भारतीय नारी सम्पूर्ण विश्व में आदर्श एवं गरिमा के लिए वन्दनीय है। कहा जाता है कि अगर किसी गैरभारतीय महिला को नारीत्व का बोध हो जाय, तो उसका जीवन-चक्र ही परिवर्तित हो जायेगा एवं उसके व्यवहार में विशेष परिवर्तन आ जायेगा। ऐसी प्रभावशाली भारतीय नारी स्नेह एवं ममता से पूर्ण होने के कारण, लज्जा एवं विनम्रता से परिपूर्ण होने के कारण ममता की देवी के रूप में स्थापित एवं सम्बोधित है। भारतीय नारी की परिकल्पना करते ही मानस पटल पर एक सुन्दर-सी कंचनकाया लजाती, सकुचाती हुई साम्राज्ञी का स्वरूप धारण कर उत्पन्न हो जाती है, जिसके हर भाव में मोहकता होती है। मादकता नहीं, आकर्षण होता है। भारतीय नारी का यही वास्तविक स्वरूप उसकी अन्य राष्ट्रों की नारियों से अगल पहचान को कायम रखता है।

अतीतकाल में नारियों को पुरुष के समान अधिकार प्राप्त थे, परिवार में उनका स्थान प्रतिष्ठापूर्ण था, गृहस्थी का कोई भी कार्य उनकी सहमति के बिना नहीं हो सकता था। इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब श्रीरामचन्द्र ने अश्वमेध यज्ञ किया, तो उन्होंने सीता जी के वनवास के कारण उनकी स्वर्ण-प्रतिमा रखकर यज्ञ की पूर्ति की थी। आवश्यकता होने पर स्त्रियाँ पुरुषों के साथ रणक्षेत्र में भी जाती थीं। देवासुर-संग्राम की उस घटना को कौन भूल सकता है, जिसमें कैकेयी ने अपने अद्वितीय कौशल से महाराज दशरथ को भी विस्मित कर दिया था। प्राचीनकाल में नारियों को अपनी योग्यता के अनुसार पति चुनने का अधिकार था। कैकेयी, शकुन्तला, सीता, अनसूया, दमयन्ती, सावित्री आदि प्रमुख स्त्रियाँ इसके मुख्य उदाहरण हैं।

प्रस्तुत शोधपत्र में भारतीय नारी के स्वरूप का विशद विवेचन किया गया है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-167

'Megha Prati Sandesha'—A Magnificant Duta Kavyam

K.R. RAVI KUMAR, BANGALORE

Kalidasa's Meghadutam is a very popular Sanskrit Lyric. This is the first Sandeshakavya, i.e., 'Message Poetry' in Sanskrit. This Master-Piece has called forth a number of imitations such as the 'Shuka Sandesha' and Vedantadesikas 'Hamsa Sandesha' etc. One such imitations is 'Megha Pratisandesha' of late Mandikal Ramashastry, a modern poet of Karnataka. of 19-20th century.

Megha-Prati Sandesha is a message poetry which is indebted to Kalidasa's Meghadutam. Here Yaksha's wife sends her reply to Yaksha through cloud. As the cloud of Meghadutam travels in the Northern Direction from Ramagiri of earth to Alaka of heaven, the cloud of Prathsandesham travels in the Southern Direction, carrying the message to Yaksha.

In Meghaprati Sandesham, the message is first narrated in charning verse and the route of the journey is described in the second canto. The cloud is advised to start from Himalaya and move upto Rameshwaram and Kanyakumari. In addition to the Northern Indian places the poet gives more details about Karnataka which is his native region. He makes colud to visit his native place Mandikal. All important places of Karnataka like Hampi, Nandidurga, Bangalore, Mysore, Melkote, Srirangapatanam, are described in the poem. The Historical importance of these regions and piligrimage centers is also mentioned. Later the cloud travels to Kerala and reaches the birth place of Adishankara.

The Style of Poetry shows a pictorial quality with musical expression. All the Poems are constructed in the Mandākrāntā Metre which is the right one to express the emotion of a heart filled with yearning and melancholy as has been done by Kalidasa. Relevant figures of speech like Upamā, Utprekshā, Samāsokti, Anuprāsa and particularly Arthāntaranyāsa are used in the Kavya.

❖

CS-168

Contribution of Orissan Authors to Sanskrit One-Act Plays

DR. TRINATH HOTA, BHUVANESWAR

Orissan contribution to different fields came to light with glorious names of Viśwanātha Kabirāja and Vidyādhar. Continuous search and research have brought to light

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

numerable works in different fields like Veda, Purāṇa, Kāvya, Alaṅkāra, Dharmaśāstra, Tantra, Grammar and other branches of learning. It is quite strange that different One-Act plays are lying scattered in Orissa State Museum, different libraries of the country and abroad. The proposed paper aims at bringing out the rare works to lime light. The proposed paper deals with the autorship, time, subject matter, source and dramatic technique of the following one-Act plays— (i) Parśurām Vijaya, (ii) Abhinava Pratijñā, (iii) Abhinava Veṇisamharaṇa, (iv) Rāma Kauśikāṅka, (v) The Śrī Rāmachandrā nandodaya, (vi) Chandravatī-haraṇa, (vii) Utsāhavatī, (viii) Pīyuṣa-Laharī, (ix) Triśiravadha, (x) Ambriṣadurvāsāṅka, (xi) Śrīkṛṣṇa-vijaya, (xii) Rāmābhiṣeka, (xiii) Bhagavatyāna, (xiv) Śrikṛṣṇa-bhakta-vātsalya-carita, (xv) Syamantaka Haraṇa, (xvi) Śaṅkara Vijaya, (xvii) Prachaṇḍa-vṛkodara, (xviii) Rāsa-goṣṭhī rūpaka.

The above said one-Act Plays were also staged in different festive occasions of Lord Jagannāth and Lord Śhiva, Lokanātha in Puri to entertain the people of Orissa. These One-Act plays not only enrich the Indian literature but also convey the custom and tradition of the Oriya people, as well as the wit of the play wrights in the field of dramatic literature.

❖

CS-169

The Food Habits for Hindus as Prescribed in the Smṛtis

DR. DINANATH SHARMA, AHMEDABAD

Food is vital object of life. All living beings need food, water and air for their survival. Water and air are common to all creatures, but food varies from creature to creature and man to man. It can broadly be divided into two groups, vegetarian and non-vegetarian. In ancient Indian society both, kinds of food were prescribed by Smṛtis. These habits have been objects of study and Buddha and Jain way of life as well.

❖

CS-170

Weapons in the Nāṭyaśāstra

BULBUL DEVI, ASSAM

The Nāṭyaśāstra, ascribed to Bharata is a unique work of Indian literature as well as Sanskrit literature. It deals with the faculty of art and drama. Nāṭya is a representation of human life and the world that we live in. Amongst the various things that Nāṭya is

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

supposed to represent, there is mention of war and killing of persons. The author of the Nāṭyaśāstra says that those who are engaged in a war or an angry conflict, use different kinds of weapons. (NS 21.164). When these scenes or actions are presented on the stage, weapons and armours also have to be shown. So the Nāṭyaśāstra prescribes rules for the use of weapons and armours.

We come across the names of weapons mainly in the *adhyāyas* 3,9,10,13,21 and 27. The third *adhyāya* which prescribes stage ceremonials refers to the weapons of Viṣṇu and Indra. The ninth *adhyāya* which deals with the gesture of hands describes the various weapons to be represented by Śikhara hand. These weapons are : *Ankuśa, Dhanuṣ, Cāpa, Cakra, Tomara, Asi, Kunta, Gadā, Sākti* and *Vajra*. In the tenth *adhyāya*, ways of discharging missiles are also mentioned. These four ways are : *Bhārata, Sāttvata, Vārṣagaṇya* and *Kaisika*.

The present article will shed light on the weapons in the Nāṭyaśāstra.

CS-171

Influence of Sanskrit Poetics on Śrīrāmcaritamānasa of Goswāmi Tulasidas

PADMANAV TRIPATHY, CUTTACK

The story of Rāmāyaṇa or Rāmakathā has gained utmost popularty in this country. The story is considered to be as pure as the river Gangā. It has its eternal values considering its positive impact on the behavioural pattern of human society. Right from the age of Vālmikī till today, many poets and writers have composed literature based on Rāmāyaṇa. It is obvious that they imbibe their themes from the original epic of Vālmikī. Simultaneously they do also follow the poetic fellings, style and imagery from their predecessors. This has been emphatically pronounced by the eminant poet laureate Jayadeva in his Prasannarāghavam as follow :

bhāsvadvaṃśavataṃsa kīttiramaṇī raṅgaprasaṅgasvanad
vāditraprathamadhvanirvijayate valmīkajanmā muniḥ/
pītvā yadvadanenḍumanḍalagalat kāvyāmṛutābdheḥ kima-
pyākalpaṃ kavinūtanāmbūdamayī kādambinī varṣati // (Prasannarāghavam-1/9)

Gosvami Tulsidāsa has composed his unique scripture Śrīrāmacaritamānasa, which has been extensively influenced by the poetry of his predecessors. The poet himself has

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

owed his allegiance to all the scriptures and poems, based on Rāmāyaṇa and composed before his time, in the following verse :

nānā purāṇa nigamāgamasammataṃ yad
rāmāyaṇe nigaditaṃ kvacidanyato'pi/
svāntaḥsukhāya tulasi raghunāthagāthā
bhāṣānibandhamatimañjulamātanoti ॥ (SRCM-1/7)

Here *kvacidanyato'pi* implies that the poet has expressed his indebtedness to the poets of this age also. The poet has mentioned the names of some poems whom he regarded with high esteem in the following compositions known as *chowpāi-s.*

vyāsa ādi kavi puṃgava nānā/jihn sādara hari sryasa vakhānā ॥
carana kamala vandaun tihnkere/puravahun sakala manoratha mere ॥
kali ke kavihna karaun paranāmā/jihn varane raghupati gunagrāmā ॥ (SRCM-1/13(2-4)

❖

CS-172

Impact of Bhāsa on Kālidāsa : A Critical Review

DR. SUDARSHAN KUMAR SHARMA, PARWANOO

Kālidāsa in Mālavikāgnimitram has expressed his great respect for Bhāsa along with Kaviputra and Saumillaka or with Saumilla and Kaviputra (2 Variant versions available in different editions).

In offering this encomium to Bhāsa, Kālidāsa had yajñaphalam I-7.17; II-41; III-16, 29,38; IV-9, 29, 33; V-14 and VI-18 in view while bringing out his Raghuvaṃśa III-2, V-13 and Abhijñānāśākuntala V-14, II-18, Raghuvaṃśa II-4, Abhijñānāśākunatala VI-31, I-10, Act V., p. 180, M.R. Kale ed. and verse V.4 (p.160, M.R. Kale ed) Kumāra Sambhava Vi.63, Abhijñāna Śākuntala VII-4, 120.

Apart from this Avimāraka Act-II '*sarvamalaṃ kāro bhavati hi surūpānām*' has a parallel idea in Abhijñānaśākuntala I-18 '*Kimiva hi madhuraṇāṃ maṇḍanaṃ nākṛtīnāṃ*', yajñaphalam III 23 having an impact on Raghuvaṃśa XI-1 '*guṇaiḥ stutyaḥ saravobhavati. navayaḥ kāraṇamiha*', *tejasāṃ na hi vayaḥ samīksyata*' and Kumāra Sambhava V-16 as : *na dharma vṛddeṣu vayaḥ samīkṣyate.*'

Instances have been quoted from Avimāraka, (IV-20) having impact on Kumārasambhava (IV-33), Ṛtusamhāra and Meghadūta making it amply evident that Kālidāsa recognized Bhāsa's authorship of *yajñaphalam* while raking to his dramatic talent.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-173

Ānandavardhan's Indebtedness to Bāṇabhaṭṭa

PROF. BIDYUT BARAN GHOSH, KOLKATA

Any theory requires widespread application to gain ground. This is also true in the case of Ānandavardhana's Dhvani-theory. Ānandavardhana has consolidated the theory of Dhvani with the help of examples drawn from the compositions of Vālmīki, Vyāsa, Kālidāsa Bāṇabhaṭṭa, etc. These examples are of immense value as they provide instances for the application of the new theory of Dhvani.

Bāṇabhaṭṭa's writings have a major contribution in the formation of the rules of literary art. Bhāmaha and Rudraṭa seem to have framed their rules about Kathā and Ākhyāyikā on the basis of Bāṇa's two master-pieces. Bāṇa has been held in high esteem by Ānandavardhana, the doyen of Indian aesthetics. One can find atleast six instances, when Ānandavardhana has referred to or quoted from Bāṇa to substantiate his ideas. For example, according to Ānandavardhana only that poetry which does not require any extra effort on the part of a poet is to be admitted as a figure of suggestive poetry. *apṛthagyatnanirvartyaḥ śo'laṃkāro dhvanau mataḥ* (Dhv. II.16). So, a poet should try to avoid the use of Yamaka as it requires extra effort in the choice of words. However, the figures like Upamā, Rūpaka, etc. which also require some kind of effort are not to be avoided by a poet as they come spontaneously to him.

In this way, we have endeavoured to highlight the indebtedness of Ānandavaradhana to Bāṇa by pointing out the examples utilised by Ānandavardhana to provide sound footing to the Dhvani-theory.

❖

CS-174

Effect of Seasons on Plant and Animal Life as Depicted in Kālidāsa's Works

DR. (MRS.) MUKTA BISWAS, GAUHATI

The spirit of love for nature is an integral part of our religion and culture. From the earliest times the great Indian sages, writers and poets in Sanskrit literature had established close proximity with nature in real life or literature. Nature developed spontaneous emotions and inspirations in their personality and most of the litterateurs expressed the beauty of nature in their writings. As a poet of nature Kālidāsa occupies a pre-eminent position. He was gifted with a keen, critical and appreciative sight that enabled him to

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

portray the essential features of any landscape at a glance. His intense love for nature and his inimitable way of appreciating the beauty of season finds expression in the course of his narratives. Kālidāsa is known for his fond of describing seasons. In the *Kumārasambhava* we perceive a vivid portrayal of the vernal seasons. The rainy season is beautifully delineated in the *Vikramorvarśīyaṁ* and *Meghadūtaṁ*. A vivid description of summer season is found in the *Abhijñānaśakuntalaṁ* and *Ṛtusaṁhāra*. In describing these seasons the poet tells us how each season, as it glides in general, alters the form and colour of trees and creepers and how it affects the behaviour of birds and animals. The present write-up is an attempt to throw some light on animal and plant life as influenced by change in season that is depicted in the literary contribution of the great poet Kālidāsa originating from his sharp and scientific observation. The *Ṛtusaṁhāra* depicts a monograph on seasons correlated with animal and plant life that is in unison with scientific observation that seasonal changes in environment always determine the physiological and behavioural condition of animals and plants. Not only in *Ṛtusaṁhāra* but in other works of Kālidāsa there lies scattered valuable information about the effect of seasons on plant and animal life.

❖

CS-175

The Relevance of Nitishataka of Bhartrihari at Present Time

URMI GANGOPADHYAY, KOLKATA.

Towards the end of the era of Kalidasa, Bhavabhuti, Bharavi and Magha, the tendency of composing Mahakavya or Nivaddha Kavyas was decreasing. The type of Muktaka or Anivaddha Kavya was being composed by the poets. The Shataka-type Kavya was the result of such tendency. Bhartrihari, Mayura, Amaru and Banabhatta were the pioneers of that type of Kavya.

Bhartrihari's Nitishataka belongs to the charateristices of Muktaka-Kavya. In Muktaka each verse is independent, self-sufficient and preserves the eternal appeal or Rasa. Nitishataka consists of one hundred verses approx. The term *niti* means policy, rules and regulations, morality and ethics, or values. The verses of Nitishataka express the deep thought of human life. Nitishataka is so named because the book has discussed the definition of values in human life. Every person has good and evil sides in his character. He or she cannot realise the nature of values in his or her life, because ignorance, egoism and infatuation destroy his or her good senses good feelings as well. The poet, therefore, has pointed out the importance of Viveka in human life.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

At present time we cannot overcome the bondage of sensual pleasure. The world is now pursuading after the sensual enjoyments. The definition of human values has been distorted. We have lost the sense of ethics, morality and self-respect. Human-culture is decaying day by day. I am, therefore, trying to re-evaluate Nitishataka of the great poet Bhartrihari, by presenting my paper.

❖

CS-176

Judiciary in Kālidāsa

PROF. ALAKANANDA BANDYOPADHYAYA, SANTINIKETAN

Kālidāsa is a great poet. As a poet he has attained universal admiration. His works abundant testify a profound scholarship and a versatile poetic genius. He was acquinted not only with Literature and Philosophy but with different branches of Science, such as Mathematics, Physical Science, Architecture, City Planning, Navigation, Medicine, Astronomy, Ancient Laws, Political Science as well. He had a very intimate knowledge of administration and judiciary of his time. The poet followed the administrative standard propounded by the treatise on Arthasastra and Smṛti literature.

Kālidāsa's kings are favourite rulers of their subjects. They earn the goodwill of the people by their noble rule. The subjects are treated as their relatives. Kings are dutiful. Their service to the people is their penance. The happiness of the king lies in the happiness of the subjects.

In regard to the law of inheritance Kālidāsa follows the smṛities. The property of a deceased father will be inherited by his legal sons. The property of a son-less son will be inherited by the father. If the father is dead, brothers will take his property. Manu did not declare that the wife is the heir of a son-less man. In the Abhijñānasākuntalam we find that at the death of the merchant Dhanamitra on a voyage of the sea, leaving no issue, the ministers decide to hold his property for the state. But the king declares that an unborn issue, remaining in the womb of a mother, would deserve to inherit the property of the deceased father. The king is informed that one of his wives was pregnant and he orders to give possession of property to that unborn baby.

In this paper an attempt has been made to discuss in details the judicial system as revealed in Kālidāsa's works.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-177

Kālidāsa in Kāshi

DR. MRS. KRISHNA DASS, RAIPUR

Kāshi was a great seat of learning in ancient India and retains her glory upto present time, which is immortal. People from different parts of the world visited it for learning. The kingdom of काशी had कोशल on the north, मगध on the East and वत्स on the west. काशी and विदेह were closely connected, as modern twin cities.

Evidence of (काशी) from Kālidāsa's Literature and its Translation :

1. In विक्रमोर्वशीयम् the kingdom of काशी is mentioned by कालिदास as an independant kingdom : काशीराज III.15, देवीं काशीराजपुत्रम् II.2 are also mentioned.
2. In 18th canto of रघुवंशम् 'विश्वेश्वर' word is meant as काशी विश्वनाथ by the translator पं. सीताराम चतुर्वेदी.
3. In शाकुन्तलम्, अनसूया herself proves the perfect multipurpose education system of वाराणसेय गुरुकुल in which no doubt grammar and śāstras were on top but the other aspects like girls training etc. were also included. अनसूया knows the physical illness of शकुन्तला from her sastric knowledge 'हला शकुन्तले यादृशी इतिहासनिबन्धेषु श्रूयते...तादृशी....।
4. Again in (कुमारसम्भवम्) Kālidāsa's deep शिवभक्ति-एकैव मूर्तिर्विभेदे त्रिधा सा (7.44) hints him to be of काशी.

This paper will discuss other evidences of Kāshi as a old cultural city, found in Kālidāsa's writings.

❖

CS-178

Rādhā in Sanskrit Love-Lyrics of Orissa

RAGHUNATH PANDA, BHUBANESWAR

Rādhā is the leading female character in the *Gītagovinda* of Jayadeva. Her character has become popular in Indian literature beginning from the days of the *Mahāpurāṇas*, even from *Harivaṁśa*, an auxiliary text of the *Mahābhārata*.

The personal charms, she had her character right from *Gītagovinda*, induced the subsequent poets all over India to write on her. Baladev Upadhyaya's *Bhāratiya Vāṅmaya me Śrīrādhā* (Hindi) provides ample testimony on this fact. Now, in the present paper special attention has been paid for analysis of various aspects of her character, based on the lyrical Sanskrit poems of Orissan poets like Kavicandra Raya Divākara Miśra, Rāyā Rāmānanda Pattanaik and others.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-179

The Ancient Indian Society in the writing of Kālidāsa

ARNAV SHARMA, RANGIA

The picture of the social life as found in the writing of Kālidāsa is both broad and vivid. In his writing every aspects of social life of the four traditional castes or *varṇas*, viz. *Brāhmaṇa, Kṣatrīya, Vaiśya* and *Śūdra* are found profusely. From the very ancient time the four stages of Hindu life or the *āśramas* are regarded as the essential duties of a man to attain the stage of emancipation. This idea of acquiring the stage of emancipation is also elevated by Kālidāsa through his writings. Again we read of four types of marriage referred to in the works of Kālidāsa. The custom of giving dowry, plurality of wives, i.e. polygamy, intercaste marriage, the custom of *Satī* or wife of a deceased husband immolating herself to death on the funeral pyre of her husband, the custom of Pardah etc. which reflect the society of then India, are also found in the works of Kālidāsa. The staple food of the people during the time of Kālidāsa were mainly the rice, barley and wheat. Kālidāsa has given references to various sorts of garments, ornaments and the articles of toilet of both men and women suiting all weathers and occasions of India. Relationships between man and man as shown in the works of Kālidāsa are the mirror of the social habits and heredity of the people of ancient India. Music, wine, the game of dice, story-telling etc. are shown as the main medium of entertainment for the people of the time of Kālidāsa. References of courtesans and prostitutes are also found in his writings. The furniture and other household necessaries produced and used by the ancient Indian people were naturally costly and were mostly made of gold and silver with set gems.

The entire Kālidāsa's writings contain more valuable informations about the social habits, structure of society, food, dress, toilet and other incidents of social life of the people of Kālidāsa's own age and earlier. These valuable informations not only bear a great historical value but also show Kālidāsa's power of writings in depicting the social life of both general people and royal families.

❖

CS-180

Uttararāmacarita and Kundamālā : a comparative study

DR. RAMA RAY, KOLKATA

In the range of the whole dramatic literature in Sanskrit, there are only very few works that deal with the incidents of the Uttara-Kanda of the Rāmāyaṇa as their theme. The Uttararāmacarita of Bhavabhuti is one such drama that deals with the later history of Rāma.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

It narrates in seven acts the story of the repudiation of Sitā which eventually culminates in the re-union of the hero and the heroine. The Kundamālā of Dinnāga describes in five acts the later life of Rāma. The plot of the Kundamālā is exactly the same as that of the Uttara-rāmacarita. But unfortunately no conclusive evidence is available on the date of author of the Kundāmāla. So at the first sight, it seems impossible to point out whether Bhavabhuti was influenced by Dinnāga or the latter derived his inspiration from the Uttara-rāmacarita. Divergent opinions have been expressed by the scholars on this matter.

As both the dramas derive their themes from the Uttara-Kānda of the Rāmāyana, so there are several similar incidents, thoughts and expressions. As it is not possible to fix a more definite date for Dinnāga, we therefore admit in the present state of our knowledge that one of these two Bhavabhuti and Dinnāga must have imitated the ideas of the other.

❖

CS-181

Nāndi in the dramas of Kālidāsa

MEERA MORTAN, HOSHIARPUR

Nāndi, the word has been variously explained. it is commonly derived from 'Nand' (to please). It is called Nand because it pleases God as it eulogizes him. It pleases the spectactors too as it confers blessing upon them. Nāndi is defined by Bharata that 'the Sutradhara will recite, in Madhyama tone, the Nāndi verse, which is adorned by twelve or eight Padas. Salutation to all the Gods; blessing for the twice born class. Let there be bliss for cows and Brahamans'.

The dramas of Kālidāsa, like other plays in Sanskrit open with a benediction, as required by the rules of Sanskrit Dramaturgy. All the three benedictions show that Kalidasa was primarily a devotee of Lord Śiva.

The benedictions of our dramatist consist of four Padas and are technically called Patravali. The benediction verses of the Vikramorvasiyam praises Lord Shiva. (He describes Siva as the sole Purusha, spoken of Vedanta, as remaining without space to occupy, after having exceeded the measure of heaven and earth). In the Mālavi..āgnimitra, Kālidāsa glorifies Siva and blesses the audience that Lord Siva may remove their state of ignorance so as to enable them to behold the path of the rightcousness.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-182

The Parāsaragitā : An interpretative analysis of a less known Gitā in Mahābhārata

DR. MRS. SUPRIYA BANIK PAL, WEST BENGAL

It is interesting to note that when the word 'Gitā' is uttered, it is supposed to mean Srimadbhagavadgitā, which is the quintessence of all Upanishadas and cream of the Mahābhārata. However, there are more gitās in the Mahābhārata, which lie in the cool shade of a lesser-known identity. One such gitā is the Parāsaragitā, which finds a place in the Sāntiparvan, the 12th book of Mahābhārata and covers eight chapters of the Moksadharmaparvan of Sāntiparvan.

This gitā opens with a discourse between Bhisma and Yudhisthira on the simple-means of attainment of good. In reply to the question asked by Yudhisthira, Bhisma unfolds his views on these means that relate mainly to the life of man in the world rather than in the next one. This gitā intends to highlight the implementation of social and moral, ethical and spiritual values and projects the necessity of following a regulated code of conduct. Parāsaragitā also tenders advice to the eternal man on the ways to be followed for attainment of good and well being. It is for this reason that Parāsaragitā has got a special importance of its own. Instead of expending its energies in explaining indestructible nature of the Self and the necessity of realizing the identity of the self of the man with the self of the universe, it speaks of certain mundane things and shows the ways which are capable of being followed by the common man for his personal benefit, as also for the benefit of the society. This paper aims at clarifying all these issues.

❖

CS-183

Child in Sanskrit Poems

DR. VENEEMADHAVA SHASTRI JOSHI, DHARWAD

That : 'a child is more precious than all the other gifts that earth can offer.' is the intrinsic feeling experienced in the company of a child by men and women of all the times. Sanskrit poets are solicitus to parade their brilliance in disigning various fancies on children and to bring them to the doors of readers through their graceful writings. A child is treated to be the main source of joy and affection, and as such it is caught in the spotlight of Vātsalyarasa by these poets in their works.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Some find divinity in children, some call them toy of joy; some describe them as surprising bank of affection and some others seek parents tie of love. 'प्रसवः खलु प्रकर्षपर्यन्तः स्नेहस्य।' A child, irrespective of riches or poverty brings along with its birth all sorts of gay colours and puts stop at least to some extent to most of the worries and fretful tones. The very news of the birth of a child especially a male child makes its father jump and dance with joy.

In fine, child is the core of a house and it shapes the future of a family. Only the blessed people have this golden opportunity of enjoying the sweet scene in which a child is crawling aimlessly from corner to corner.

गृहे जानुचरः केल्या मुग्धस्मित-मुखाम्बुजः।
पुत्रः पुण्यवतामेव पात्रीभवति नेत्रयोः॥

Thus, we can see that the Sanskrit poets have a soft corner for children. The literary style in such contexts is full of ease and grace, and as such it touches at once the heart and soul of a reader.

❖

CS-184

Deities and Celestial Carriages in Kālidāsa

A RANI, DELHI

In Sanskrit literature, a number of deities are described along with their celestial carriages in the form of different animals and birds. Various incidents and stories connected with each form of these deities are found narrated in our scriptures. Different carriages, *vāhanas* in the form of animals and birds are attributed to these gods. All these are found described in our scriptures and literature just to bring forth the magnificent glory of these deities in the eyes of the devotees and readers.

Vāhana is a carrier, carriage or a vehicle. With regard to deities, it stands for animals and birds who serve the gods as carriages in Hindu mythology. In the present paper, an attempt is being made to bring forth a study of numerous deities, their glorious qualities, attributes and their carriages in the form of animals and birds for the enjoyment of connoisseurs and devotees.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-185

The Poetic Figure Vyatireka : A Review

DR. HARIPADA CHAKRABORTY, ASSAM

Rasa, the soul of poetry according to Dhani school, is brought to a relishable state by Guṇa (excellence) and Alaṃkāra (poetic figure). Alaṃkāras are supposed to reside in the expression in the form of Vibhāva (excitant). Anubhāva (ensuant) and Vyabhicāribhāva (accessory) and help the appreciator in the realisation of Rasa. Thus the presence of Alaṃkāra in poetry is justified in its effective relation with Rasa.

The poetic figure Vyatireka, where the difference between the upameya and the upamāna is represented as prominent is based on similarity. All the Alaṃkārikas are unanimous in presenting the figure Vyatireka where the aspect of difference between the upameya and the upamāna is highlighted by emphasising the superiority of the one of the two over the other. But the Alaṃkārikas are not unanimous on the point as to which of the upameya and the upamāna should be shown as superior. There are two schools of thought on this point. The Alaṃkārikas of one school think that the upameya in Vyatireka should be represented as being superior to the upamāna, while that of the other school hold the view that either of the upameya or the upamāna should be shown to be a superior member.

This paper attempts to analyse the views of the two schools and tries to reconcile the controvertial views.

❖

CS-186

Influence of Mammaṭa on Viśvanātha's Treatment of Kāvyālaṅkāras

AMIYA KUMAR BHATTACHARYA, WEST BENGAL

In the whole range of Sanskrit poetics (Alaṅkāraśāstra), Mammaṭa's *Kāyvaprakāśa* (11th C.A.D.) and Viśvanātha's *Sāhityadarpaṇa* (14th C.A.D. Approx) excel almost all other writings of Sanskrit Poeticians measured in the yardstick of popularity.

The influence of Mammaṭa on Viśvanātha' treatment of Kāvyālaṅkāras is doubtful. Some scholars think that in the treatment of Kāvyālakāras, Viśvanātha followed Ruyyaka's *Alaṅkārasarvasva*. But in our opinion this decision is not fully correct. An intensive study of the Kāvyālaṅkāras of *Sāhityadarpaṇa* will prove that though in some cases (such as in the treatment of Pariṇāma, Paryāyokta, Prativastūpamā, Arthāntaranyāsa, Vikalpa etc.)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Viśvanātha followed Ruyyaka, but the influence of Mammaṭa is not negligible. In this small article an attempt has been made to highlight the influence of Mammaṭa on Viśvanātha's treatment of Kāvyālaṅkkāras.

❖

CS-187

Uṣārāgodaya-nāṭikā and Madhurāniruddha-nāṭakam : Some Critical and Comparative Notes on the Two Dramas

PAMAPA, KOLKATA

Rudra Candra Deva or Rudra Deva, the author of Uṣārāgodaya-nāṭika (URN), was a native of Himalayan State Kūrmācala and flourished in the 15th century A.D. He wrote four plays. One of them is Uṣārāgodaya-nāṭikā (URN). This is a drama of four acts.

Cayani Candra Śekhara Rāyaguru was the author of Madhurāniruddha-nāṭakam (MNN, an unpublished drama). He was a native of Orissa and flourished in the 18th century A.D. When Vīrakiśora Deva ascended the throne of Khurda dynasty. His only work Madhuraniruddhanāṭaka (MNN) is available to us. This is a drama in eight acts.

These two dramas deal with the secret love of the uṣā, the daughter of demon Bāṇa and Aniruddha, the grandson of Kṛṣna and the defeact of Bāṇa by Kṛṣna.

The object of this paper is a critical and comparative study on the two dramas.

❖

CS-188

Significance of Vāmana's Treatment of Alaṁkāra

DR. GAYATRI SARMA

Vāmana is the propounded of Rīti theory. He declares 'Rīti' to be the soul of peotry. Therefore Guṇas play an important role in his work Kāvyālaṁkārasūtravṛtti. Apart from the Guṇas the Alṁkāras are also found to be very important topic discussed in his work. His famous declaration 'Kāvyam grāhyaṁ Alaṁkārāt' has become proverbial and accepted by all. This Alaṁkāra as Vāmana says is nothing but 'Beauty'. This beauty is to be attained by employing Guṇas and avoiding Doṣas. He uses the term Alṁkāra both as an abstract noun denoting embellishment and possessing vast enough scope, and as a noun signifying means of embellishment. The first sense is wider and unique. The second narrower sense basically siginfies the individual figures. Among the individual figures Upamā is foremost

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Arthālaṁkāra. All other Arthālaṁkāras are perceived under the umbrella of Upamā, which is known as Upamāprapañca. There are only two Śabdālaṁkāras discussed by Vāmana. The treatment of individual Alaṁkāras are also very significant. There are certain figures like Vakrokti and Sleṣa, treatment of which are unique and very particular. The interesting point to be noted in Vāmana's Kāvyālaṁkārasūtravṛtti is the scheme of Vāmana's treatment of Guṇa and Alaṁkāra. Being Rītivādin he is obliged to give more prominence to Guṇa than to Alaṁkāra and for this reason he had to make a clear cut distinction between Guṇa and Alaṁkāra. Whatever may be the status of Guṇas in poetry, they are also included within the purview of Alaṁkāra, in the broader sense of the term, as Guṇas also generate beauty. Vāmana will be misunderstood if the comprehensive sense of Alaṁkāra is not imbibed.

❖

CS-189

Sanskrit Study in Assam in the Medieval Period

RATUL BUJAR BARUAH, ASSAM

Every part of India has its own contributions in the field of Sanskrit study. Assam can rightly boast of her contributions towards the rich treasure of Sanskrit literature. There are various epigraphical and literary evidence which stand as testimony of Assam's contributions towards Sanskrit literature. The history of Assam has been divided into three periods, namely, the Ancient period (upto 12th century A.D.), the Medieval period (13th-18th century A.D.) and the Modern period (from the beginning of 19th century A.D.). During the period between the 4th and the 13th century A.D. which can be termed as the golden period for Sanskrit learning in Assam, many stone-pillar and copper-plate inscriptions are found to have been composed. In the medieval period there was extensive study of philosophy in Assam. Medieval Assam contributed a lot in the development of *Tantra* literature. With the composition of dramas Assam has immensely contributed in the development of dramatic literature. Sanskrit scholars exhibited their interest in writing works on the science of metre in the medieval Assam. Most of the *smṛti* works were composed in medieval Assam. Some works on devotion are found to be composed in Assam in ancient and medieval times. The most notable contribution of Assam to *Vyākaraṇa* in Sanskrit literature is the *Prayogaratnamātā* of Puruṣottama Bhattāchārya composed in 1569 A.D. with eight divisions called the *Vinyāsas*.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-190

Nāṭakacandrikā : In the Perspective of Indian Dramaturgy

DR. MINA HATI, BURDWAN

Rūpa Goswāmī's Nāṭakacandrikā is a work on dramaturgy wherein he has attempted to bring vaiṣṇava ideas to bear upon the general theme of dramatic rasa. In this work, a huge number of illustrations of dramatic techniques have been drawn from his own dramatic works Vidagdhamādhava and Lalitamādhava. Nāṭakacandrikā is a unique work on dramaturgy containing within itself items from Bharata's Nātyaśāstra and Rasārṇavasudhākara of Simhabhūpāla. The illustrations dealing with the dalliance of Rādhā and Kṛṣṇa have been taken from Rūpa's above mentioned dramatic works and are well fitted in the Nātakacandrika, conforming the general rules of dramaturgy. In all respects, Rūpa has tried to devlop the Nāṭakacandrikā as work that can please all the connoisseurs of poetic art. Rūpa intends to make the Nāṭakacandrikā 'sarvānandpradāyaka': a term coined by Rūpa himself. In the present paper, a comparative study has been made to show how far Rūpa is identified to Bharata with regard to the definition illustration of Nātaka and how far Rūpa has been able to retain his originality.

❖

CS-191

Stageworthiness of Sanskrit Vyāyoga Rūpakas

DR. K. SRINIVASAN, CHENNAI

In this paper the stageworthiness of Vyāyoga rūpakas is analysed. Sage Bharata in his magnum opus *Nāṭya Śāstra* mentions ten types of dramas, such as Nātaka, Prakaraṇa, Prahasana, Bhāṇa, dima, Vyāyoga, Samavākara, Vīthi, Aṅka and Ihāmṛga.

In respect of Vyāyogas its smallness of contents, crisp dialogues, adventurous acts, delineation of adbhuta, via rasas and duration when stages, go to prove that they are stageworthy to a great extent. *Madhyama Vyāyoga* was the forerunner of other Vyāyogas.

Nowadays in northern parts and southern areas, Sanskrit plays are being enacted on occasions. Kerala, Karnataka, Maharashtra States are encouraging playing rupakas have intrinsic stageworthiness in their composition, there should be resurgence for enacting those plays by modern students of Sanskrit. Without doubt, Vyāyogas will be very much appreciated.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-192

Echo-Aesthetic Approach to Kalidasa's Poetry

DR. T. VASUDEVAN, KERALA

Ecological and environmental studies became a new branch of knowledge towards the end of the last century as industrial pollution, destruction of nature and urbanization in the name of human progress and development caused great concern among thinkers and writers. They pointed out that man's attitude towards nature that it is made for his own consumption and exploitation and he is the owner and conqueror of nature ought to be changed. Instead, earth and its environment should be viewed as a system in which diverse kinds of beings take share and live together and man is only one among them.

Literature and art has showed much interest in the togetherness of man and nature. Eco-aesthetics, a new type of literary criticism, looks into how nature is represented in the works of art. In literature, nature appears often as a background, sometimes as a decisive factor, setting the tone of human emotions described. In India, the ancient Vedic literature portrayed the mysterious natural forces. Following the path of Sage Valmiki, the classical poets, especially Kālidāsa and Bhavabhuti, found nature highly related to man's material and spiritual life.

Kālidāsa was conscious about the duties and responsibilities of man towards nature and surroundings. The ideal coexistence of all living things in harmony is well depicted in his descriptions ashramas and forests. He takes into account of both inner and outer nature.

The paper will also consider how the nature contributes to the portrayal of various rasas and bhavas. The close affinity of Kālidāsa' characters and environment produces in his kavyas a basic field of universal emotions which are related to his ethical and aesthetic visions.

❖

CS-193

Critical Appriciation of Kādambari of Bānabhatta

DR. P.B. SANTAPPANAWAR, KARNATAKA

Sanskrit is the classical language of India unlike Greek of Latin in Europe. The literature in Sanskrit is not only enormous in quantity but is also remarkable for its variety

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

and richness in the range of subjects and branches of knowledge covered; mythology, religion, philosophy, Champu, fables, etc. All knowlege was systematized by Sanskrit and codified in texts. 'Kādamabari' is a novel, written by a great poet Bāna. Bānabhatta himself told 'Kādambari' is a story (Kathā) and Harshcharita is an Akhyāyikā.

❖

CS-194

Literary Contributions of Shadāksharadeva

DR. CHANDRAMOULI S. NAIKAR, DHARWAD

Shadāksharadeva, the literary prodigy both in Sanskrit and Kannada was rare genius. He lived some 360 years ago. He was bron in 1636 in a village called Dhanuguru. He belonged to the *Hiremath* (*Ārādhya*) family of the village and as such he was a chief of the monastery of the *Lingāyata or Veerashaiva* religion. Dhanuguru is in Mālavalli taluka of Mandya district of the Karnātaka State. As a member of the Ārādhya family of the *Veerashaiva* religion, he studied *Veda, Purāna, Nighantu, Vyākarana, Kāvya, Nātaka, Chandolankāra, Tarka* etc. under a teacher-pandit Chik(k)aveeradeshika in Dhanuguru itself. Shadāksharadeva completed his learning at an early age and became a profound scholar very soon. He has paid rich tributes to his teacher in his poetic compsoitions.

❖

CS-195

Kavikarnarasāyanam : A Study

PROF. JAYA G. DANDAVATIMATH, KARNATAKA

The *Kavikaranarasāyanam* (An Enlivener of Poets) is otherwise known as *Cholabhoopaleeyam*. The poet proficient both in Kannada and Sanskrit poetry, undertook to compose the well-known and fascinating Sanskrit poem : *Kavikarnarasāyanam* (K.K.R.).

The purpose of writing this epic is to depict the greatness of Lord *Shiva, Shivabhaktas* and their *Shivabhakti*. The story of Vikramachola, Sundarachola, Manakanjara and Pāndya kings is the subject-matter of this literary composition.

It is a *varnaka kāvya,* and its subjectmatter is real with imaginative incidents and full of descriptions in poetic verses.

This epic consists of 12 cantos with the story of Manakanjara and Sundarachola, the pauranic personalities, who by their virtues like the genuine *shivabhakti* attained the

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

shivaganatva (A permanent place in the highest abode of Shiva) and they are worshipped even today among the 63 *purātanas* (A group of ancient and aged *shivabhaktas*).

❖

CS-196

The Importane of Plot in the Sanskrit Drama

SUPARNA BANDYOPADHYAY, BARDHAMAN

Though aesthetic taste *(rasa)* has been claimed to be the quintessence of the dramatic art, the importance of plot (*vastu, itivṛtta*) has not been underrated in Sanskrit dramaturgy. Plot is the very body of drama. A well-knit plot contributes to the development of *rasa*. This is why there is a detailed treatment of plot construction in Sanskrit dramaturgy involving five dramatic junctures (*pañcasandhi*). The plot may be subordinate to *rasa*, but not secondary in importance. The position is comparable with that in Aristotle.

❖

CS-197

Critical Appriciation of Tattvagunādarsha Champu of Bukkapattana Annyyacharya-IV

DR. LAXMIKANT V. MOHRIR, KARNATAKA

The Champu is a tale narrated in mixed prose and verse. Normaly we may expect such a form to have mediated the transition form the metrical Kavya to the prose Kavya. But as a matter of fact, it arose after the prose Kavya. As the latter approached more & more the ornate Kavya and began to incorporate verses, there came a time when the form gave up all pretence of being a prose work with occasional verses and became on in which prose and verse balanced in their proportion.

Here in this context I am narrating importance of Tattvagunadarsha Champu of Bukkapattana Annayyacharaya-IV.

❖

CS-198

Influence of Kālidāsa on the Dramatist Śriharṣa

DR. NAVA KUMAR HANDIQUE, DIBRUGARH

Priyadarśikā, Ratnāvalī and Nāgānanda of Śrīharṣa are the three unique and enchanting plays of Sanskrit literature. According to Sanskrit Dramaturgy the former two plays belong to the category of Nāṭikā and the last one to Nāṭaka.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

.Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Before him, Śrīharṣa finds the greatest luminaries in the field of Sanskrit dramatists such as Bhāsā, Śūdraka, Kālidāsa and others. He inherits a colourful and glorious past and it would perhaps be not an exaggeration if it is said that he is the product of such a splendid and magnificent past. In this respect, Kālidāsa rises to such a phenomenal heights that it becomes almost impossible for later dramatists including Śrīharṣa to remain outside the jurisdiction of the influence of this master artist. A general study of the plays is enough to justify this fact.

In addition to the dramatic sequences and actions of the two playwrights, many similarities in cases of ideological expressions, dialogue and languages may also be traced.

Inspite of these resemblances, it would be fairly injustice to deny the originality of Śrīharṣa. There are many instances of ideas taken from Kālidāsa but they are used in a novel method quite befitting to his own dramatic situations and needs. This shows the dramatic skill of Śrīharṣa.

❖

CS-199

Tirumangai Alwar's Periya Tirumozhi— A Study from Krishnasuri Commentary with Special Reference to Literary Beauty

DR. K.K.A. RANGARAJAN, TIRUPATI

The rehabilitation of bhakti movement took place in full swing during the sixth century due to the appearance of the Shaivite and Vaishnavite saints. In Vaishnavite, Alwars twelve in number, were the early torch bearers. Among the twelve, Tirumangai Alwar placed the last. He praised the Omniscient, Sriman Narayana, in his six Prabandhas, Periya Tirumozhi, Tirukkurundankam, Tirunedunthandakam, Tiruvegzhukkutrirukkai, Periya Tirumadal and Siriya Tirumadal.

The glossary also revails the inner meaning, comparing with that of the clouds which roar, Alwar addresses Lord Sri Srinivasa of Tirumala as *'Sri Venkatādri Sikharālaya Kālamegam'*.

Periya Achanpillai, otherwise called Krishnasuri, wrote commentaries for all the four thousand hymns of all Alwars. So he is called 'Vyākhyāna Chakravarthi' (Emperor of Commentaries). He explains the literary beauty of Tirumangai Alwar's hymns Periya Tirumozhi, with a number of sinties.

I will substantiate the above statements in my full paper.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-200

Bhogavali in Yasastilaka Campu of Somadeva Suri : A Socio-Cultural Study

DR. (MISS) PUNYA BARUAH

Bhogavali and other representative art has an entirely different source and appeal. It springs from the desire to represent some interesting object and its appeal is based on the contents and forms of representation. So far as it is merely representation without skill, it has only the slightest relation to art. When executed with technical skill the Bhogavali has the double appeal of content and form.

These forms also follow fixed rules of arrangement. The mental effect of all these products is based on the pleasure given by virtuosity and by a feeling for form. The form of Bhogavali song by the bhogavali pāthaka rhythmically to inspire the soldiers of the king. Metaphoric expressions, cumulative synonyms, parallelism of bhogavali form in the yasastilaka campu kāvya are used as artistic devices. We find songs describing the beauties of nature and different imports appealing.

❖

CS-201

Influence of Gitagovinda on Bengali Literature

PROF. (MRS.) CHHANDA ACHARYA, WEST BENGAL

The 'Gitagobinda' by Joydeva is a small poetry collection, dealing on the spontaneous love episode of Rādhā and Krishna. This book is devided into twelve chapters, containing speeches and dialogues in lyrical style with an earnest desire for union of two souls. For the sense of structural creation and also of the devotional aspect as reflected herein, this book gained much popularity and appreciation all over India.

Following the 'Gitagovinda' the poets of Bengali literature spontaneously being inspired, created a lot in their respective fields. The content, the language, the style, the rhetoric rhymes of the 'Gitagovinda' influenced most of the Bengali Literature.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-202

Buddhism as Depicted in The Mṛcchakaṭika

SRI ARINDAM BHATTACHARYYA, AGARTALA

The *Mṛcchakatika* is as yet the only work where the *Bauddhas* appear undisguised. The terms like *bhiksu, sramanaka* and *parivrājya* are mentioned in the play. These terms are associated with Buddhism at its root. We may cite the case of *Samvāhaka* turning to be a Buddhist monk. Buddha's doctrine of peace, self-sacrifice, kindness and charity have been revealed in his activities. There is also reference to a big monastery situated near the old *puspakarandaka* garden, where the monks and the nuns dwelt. In the end of the play, *Samvāhaka*, with the help of *Cārudatta* holds the highest rank of all the monasteries in the country which reveals that the kings enjoyed much influence over these monasteries. Patronised by kings, Buddhism was in a flourishing stage. The *bhiksua* were generally respected but instances of their sight being considered inauspicious are available especially from the people of upper class. Notwithstanding apparently flourishing condition of Buddhism, a strong prejudice against the Buddhist monks was prevalent as evident from the manner in which *Sakāra* tortures the monks.

❖

CS-203

A Critical Approach to Some Morals of Panchatantra

ANINDYA BANDYOPADHYAY

Panchatantra is a unique ancient Indian collection of fables, composed mainly to train the truant princes. The author's aim is to teach Rājanīti. So the author did not pretend to declare the Kutaniti sometimes, which were against public morality. Generally speaking the author, Visnusarman had no hidden agenda. In such open-minded attitude of the writer there were some concealed indications contained in some morals. The real intention was not revealed in primary meaning. This paper is a humble attempt to decipher some of them.

❖

CS-204

Yogic Elements in Naiṣadhīyacarita of Śrīharṣā

DR. K.S. BALASUBRAMANIAN, CHENNAI

Śrīharsa's *Naiṣadhīyacarita (NC)* is one of the five traditional Mahākāvyas. This great poem deals with a part of the well-known story of Nala and Damayantī in twenty two

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

cantos, ending with the description of the marriage and amorous sports of Nala and Damayantī, leaving aside the latter part of their life.

Śrīharṣa exhibits his skill in all aspects of poetic expressions. He was also a great scholar in all systems of philososhy. His *Khaṇḍanakhaṇḍakhāvya* is a masterly work which tries to establish the supremacy of Advaita Vedānta on a logical basis. In his *NC* he refers to the doctrines of all systems of philosophy and passes in review a number of characteristic theories as if he desired his poem to serve also as an introduction to the study of philosophical systems.

An attempt is made in this paper to discuss some Yogic elements referred to in his poem.

❖

CS-205

Śāstric Elements in Nīlakaṇṭhavijaya Campu of Nīlakaṇṭha Dīkṣita

T.V. VASUDEVA, CHENNAI

From out of the early beginnings of the prose-verse form of composition as found in the Vedic *ākhyānas*, the Palī Jātakas and the Sanskrit fables, it is quite obvious that the *campū* should have emerged as a recognised literary type before the 7th century AD. The earliest *campūs Nala-campū* by Trivikrama Bhaṭṭa, *Yaśastilaka campū* by Somadeva and *Jīvandhara campū* by Haricandra all belonged to 10th century AD.

Among those written during 11th and 15th centuries is the one *Nīlakaṇṭha Vijayacampu* of Nīlakaṇṭha Dīkṣita written in AD. 1637-38. In about 250 verses spread through five chapters called *āśvāsas*, it deals with the story of the churning of the ocean for nectar.

'An attempt is made in this paper to highlight the author's erudition in Śāstras-Dharmaśāstra texts and philosophical texts in the light of Mahādeva Sūri's commentary.

❖

CS-206

Vedic influence on the Shishupalavadha

SIPRA RAY, TRIPURA

Magha, the great poet treads in case over different branches of ancient Sanskrit knowledge and literature. The diversified knowledge of the poet is revealed in his literary

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

epic named 'Shishupalavadha'. His literature is an inexhaustible source of knowledge in the field of Veda, Vedanta, Drama, Darshan, Vyākarana, Music, Yoga etc. This epic is a testimony of the poetic genius of the poet in all directions. In my paper, I have tried to show how Māgha was influenced by Vedic literature.

❖

CS-207

Requisites of Personal Decoration in Bāṇa's Kādambarī

MS. KALPITA BUJARBARUA, ASSAM

Bāṇa's Kādambarī is an out and out prose romance. It is purely a fanciful love-story. The love-episode of Mahāśvetā and Puṇḍarika and the love-episode of Kādambarī and Candrāpīḍa are the main themes of this work. The Kādambarī has received a great deal of attention of the eminent scholars of India and abroad. Its celebrity is due to more than one reason. It is of great importance for the knowledge of the social condition of India in the 7th century AD. A full and graphic picture of the then Indian society is depicted in this work. Bāṇa was a keen observer and therefore, he was able to portray all the valuable information about the life and society of the people of that time.

It is observed that the people of the then Indian society were very luxurious. They beautified their body with various types of ornaments, flowers and cosmetics. Both men and women wore different types of ornaments for their personal decoration. They applied various types of scented articles on their body as their cosmetics. In the Kādambarī, Bāṇa has referred to various articles of luxury, suggestive of popular fashions of the society, depicted therein. So, it is intended to discuss in detail all the requisites of personal decoration in the proposed paper, on the basis of the text of Kādambarī.

❖

CS-208

Sixty-four Lotus Blossoms in Kālidāsa

PROF. SUSHMA KULSHRESHTHA, DELHI

कमले कमलोत्पत्तिः श्रूयते न च दृश्यते।
बाले! तव मुखाम्भजे दृष्टमिन्दीवरद्वयम्॥

According to an anecdote, the second line of this *Samasyāpūrti padya* was accomplished by none other than Kālidāsa. Kālidāsa was well versed in plant science and he psossessed commendable knowledge of the plant-kingdom of India. He was very fond of

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

plants, trees and flowers of this country. He has mentioned about 120 plants and trees in his works. He has referred to more than forty kinds of flowers in his works. He had a careful eye for colour. He knew all the uses of various flowers. Some flowers were used by women for decoration, while some were offered to deities. Kālidāsa had full knowledge of the habitat of flowers and also the time of their bloom. It is remarkable that he had an intimate knowledge of the form and colour of the flowers. Glancing at his references to different flowers, it appears that the lotus in its various forms and varieties was his most favourite flower. He has made 177 references to this lucky flower that has achieved 'Saubhāgya' at the hands of Kālidāsa. He has used 30 different words for this lovely flower.

In the present paper, an attempt is made to show Kālidāsa's expertise in plant science with reference to only one flower-*kamala*— Lotus.

❖

CS-209

Treatment of Lakṣaṇā in Mammaṭa and Viswanāth

DR. BHAGIRATHI BISWAS, SILCHAR

Lakṣaṇā has an important place in poetics. To realize the supreme pleasure of the poetic aesthetics in the world we are to take the appropriate application of Lakṣaṇā. Because the signifying force of the word i.e. Lakṣaṇā conveys the inner meaning of the word and also the sentence which has a mystic philosophy of its own. The Rhetoricians interpret it in their own realization and perspective. To bring out the inner meaning of the word and the sentence and to enjoy the poetic sentiment they examined it in various ways and there is hardly any difference of the realization of the meaning among the scholars but difference in their presentation. The available literature reveals that hardly any study has been taken up to examine the treatment given by Mammaṭabhaṭṭa and Viswanātha on Lakṣaṇā and the present paper is designed in that line.

❖

CS-210

Importance (role) Mūdrā (Aṇgūliyaka) in Sanskrit drama

KU. SANIKA JAYANT BAPAT, PUNE

In Sanskrit Literature we find three drāmās using 'Mūdrā' as an effective instrument to give a turn to the plot. Mālavikāgnimitraṃ of Kālidāsa and Mūdrārāksasa of Vīsākhādatta. I have tried to deliniate the importance of Mūdrā and it's different usage in these three drāmās.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-211

Influence of Sanskrit Literature on Bengali Literature with Special Reference to the works of Kālidāsa

DR. SATYANARAYAN CHAKRABORTY, KOLKATA

Love and admiration for Kālidāsa led modern Bengalee poets and critics to compose hundreds of dramas, poems and essays on his works and philosophy of life. Kālidāsa literature in Bengali translation also deserves a special mention in this regard. Influence of Sanskrit literature on Bengali literature will also be mentioned briefly.

We cannot appreciate Kālidāsa properly if we do not go through Tagore's literature. Bankim Chandra Chattopadhay's appreciation of the character of Śakuntalā in comparison to Miranda and Desdemona and remarks on this point will also be discussed in short. Michael Madhusudan Dutta also was a great lover of Kālidāsa's works so much so that two entire cantos of an epic and a good number of sonnets were either entirely devoted to the appreciation of Kālidāsa or his works. We shall try to present a brief analysis of the same also. A few other personalities of bengali literature would only be mentioned in this regard.

❖

CS-212

Aspect of economy in the works of Kālidāsa : Some observations

DR. JIBAN CH. PATHAK, ASSAM

The literary works of Kālidāsa is said to be the transparent proto type of the whole of India. The literary accounts of his poetic pieces give reflection of his broad knowledge of geography, multi faceted Indian culture and different branches of learnings. His knowledge's reach indicates his association with the various mountains, forests, hills and rivers of the various places of Indian. He had the full physio-graphical knowledge of various plants and trees that grown up in different places of India. The economic plan and projections adopted in his time presents a keynote of the economic system of India. The revenue was collected from the common people on the agricultural products and wealths were kept deposited in the royal treasury.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-213

The metres Sārdulavikriditam and Sragdharā in the drama Mudrārāksasa

CHAYA DATTA, BIRBHUM

The drama is included in Misra-Kavya. It contains both the prose and the poetry. Perhaps there is no strict principle a dramatist should follow to the metre for the verses in a drama. Indeed in a good speciman of drama the poetry arises as and when the situation demands. But it is true that the selection of the metre depends on the choice of the author himself. The expressions in a dramatic literature support either directly or indirectly the principal sentiment of the drama. The Mudrārāksasa is a drama of purely political intrigue, in which resolute action in various form contitutes the exclusive theme. In this drama the author Visākhadatta while delineating the principal sentiment of Vīra (Heroic) desired to employ mostly the metres sārdulavikridita, sragdharā. He had also used vasantatilaka and sikharīni. Other metres are sporadic but no rare kind is attempted. In this paper I have tried to show the metres which the dramatist thought to be the most suitable for carrying the sentiment.

❖

CS-214

Triarthī-Kāvyas : A Bird's Eye view

DR. KSHITISWAR DASH, BALASORE

Such Poems are written by means of Vakrokti (equivocation or a turn of expression peculiar to poetry) and Śleṣa (double entendre) which is comprehended by the former. The earliest reference to Śleṣa in Alaṁkāra Literature is perhaps found in Bharata's Nāṭyāśāstra where it has been described as a Prabandha guṇa.

This is a poem in which three stories are described simultaneously. Such poems are otherwise known as Trisaṁdhāna-Kāvya. Moreover it is termed as Bahutārthaka-Kāvyas.

In this paper an effort has been made to bring out the literary merits of triarthī-kāvyas which are quite a few. They are Rāghava-Pāṇḍa-Yādaviyam by Cidāmbarasumatī, Yādava-Rāghava-Pāṇḍavīyam by Anantācarya etc.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-215

An Appraisal of Māgha : From the view-point of Ālaṁkārikas

INDIRA CHATTERJEE

Māgha is undoubtedly a great poet in Sanskrit literature and his Śiśupālavadham is an established classic. As far as his rhetorical eruditeness is concerned we find that except a few rhetoricians like Bhāmaha and Daṇdin almost all famous rhetoricians are posterior to him. But, still in many important works on Alaṁkāraśāstra a number of verses from Śiśupālavadham have been quoted to explain different alaṁkāras, dhvanis, rasas etc.

We shall try to show that on account of Māgha's careful command of rhetorical technique different rhetoricians have taken verses from Śiśupālavadham and we shall try to assess also the poet in the view of rhetoricians accordingly.

❖

CS-216

The Dramatic Skill of Viśvanātha Kaviraja in Candrakalā Nāṭikā

SMT. B.L. ACHARYA, BHUBANESWAR

Viśvanāth Kaviraja, the celebrated rhetorician of 14th Century has the credit of writing Candrakalā Nāṭikā. He exposes his dramatic skill here. They are as follows :

1. Plot
2. Characters
3. Style
4. Figure of Speech
5. Sentiment
6. Art
7. Dramaturgical arrangements. etc.

This play has been written as a model for other play wrights, for them to follow the principles of dramaturgy in theory and in practice. Viśvanāth gives many examples from Candrakalā to illustrate his theory of Dramaturgy in 6th chapter of Sahitya Darpaṇa, which is evident that Candrakalā serves as a model.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-217

Dhiresvarācharya as a poet in the light of the Vṛttamañjarī

GOUTAM CHOUDHURY, ASSAM

The Vṛttamañjarī is a treatise on classical Sanskrit metre (chandas), authored by Dhīreśvarāchārya, who hailed from the village Āthgharia under the present day Nalbari district of Assam. This work consists of seven chapters and it stands as a useful one for everyone studying Sanskrit prosody. The Vṛttamañjarī is a relatively modern work on prosody that came to be published in 1961 by the Department of Historical and Antiquarian Studies, Government of Assam, Guwahati. The author has made the text understandable for the readers by adding a commentary of his own. Not only as a prosodist but Dhīreśvarāchārya exhibits his proficiency as a poet as well. The proposed paper is an attempt to highlight some of the aspects in adherence to his poetic excellence.

❖

CS-218

Dr. Willian Carey and the Sanskrit Translation of the Holy Bible

DR. INDIRA MUKHOPADHYAYA, KOLKATA

Early in the first century Christianity came into this country with St. Thomas, a disciple of Jesus Christ, finally settling in India. The Parthian king Gondophernes is believed to have taken a liberal view of the new religion. Led by the Portuguese, Europeans following St. Thomas had combined trade with their proselytising zeal. The trend continued through successive groups of European traders coming to India from the sixteenth century.

In this background Rev. William Carey reached India (11th November 1797) as an enthusiast of the Baptist Mission Society of England. 'Expect great things from God and attempt great things for Him' had been the dictum that inspired him. After a few rounds in the Bengal district, he had finally landed at Serampore, a picturesque Dutch settlement on the bank of the river Hooghly. Here he met his two lifetime associates. Josua Marshman and William Ward. The celebrated Trio then established the Serampore Baptist Mission (January 1800) and set to translating the Holy Bible in Bengali. By 1801, the translation was complete and Bengali Bible was published from teh Baptist Mission Press, Serampore.

The present paper seeks to assess the importance of Sanskrit translation of the Holy Bible by Rev. William Carey.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-219

Letter writing and its importance in Sanskrit Literature and Indian Culture

DR. ANITA BANDYOPADHYAY, KOLKATA

Letter writing was considered a techique in ancient India, when keeping historical records were perhaps not in vogue. The scholars are divided in their opinion on this point. There are at least two sources from where we may gather specimens of letter writing– Political source and letter literature. In the Mahābhārata there are two elements, named Lekha and Mātrika. Lekha is the written letter meterial and this is available in ancient scripts of kings. This is available from prehistorical ages. The poetical merit of Horisens Allahabad Prasasti is formidable.

In the present paper, we shall discuss the importance and modes i.e. flang of such letters.

❖

CS-220

Appreciation of M.M. Lakshmana Suri's play 'Ghosa yatra'

SMT. N. UMAMAHESWARI

Mahā Mahopādhyāya Lakshmana Suri hailing from Ramnad in Madras Presidency, lived between 1859-1919 A.D. His contribution to the world of Sanskrit Literature is rich and varied. Author of many works, in his three plays Dilli Samrajyam, Paulastya Vadham and Ghosa yātrā he shows his scholarly approach, treatment and presentation.

The play Ghosa yātrā as the title suggests is an inspection of the large herds of cattle owned by the king which were kept in pastures near the borders of the kingdom. Under the pretence of inspection, Duryodhana along with Dussasana, Karna and all female members of his family visit that place to exhibit his newly acquired wealth and power to the Pandavas who were living in a nearby forest in utter poverty. There, he picks up a quarrel with Gandharvas and subsequently is imprisoned by them along with the female members of his family. Hearing this, Yudhishthira sends Bhima and Arjuna to their rescue and finally he orders Gandharvas to the effect that they be released immediately.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-221

Mṛcchakatikam a Study

PROF. TAPAS KUMAR BAGCHI, HOOGHLY

Mṛcchakatikam, a 'Kohinoor' in the galaxy of Sanskrit dramatic literature, provides a greater and better interpretation of human life through the bend and trend of philosophic theme in ten Acts along with a Prakarana. The cosmopolitan characters of this play find their gradual exposition in its Kaleidoscopic plot and sub-plot with its Superb effect upon the general readers and viewers. Chārudatta and Vasantasena, the hero and the heroine of the play, are not conventional characters, rather they are very much familiar in the society. The gambler scene in the second Act, the Sarvilaka's burglary in the house of Chārudatta, the presentation of thunder, rain and lightning in the fifth Act, the episode of interchange of carriage, flight of Aryaka and stangling of Vasantasenā in the sixth Act, Chārudatta's trial and Vasantasenā's arrival in the nick of the moment are full of dramatic suspense and the spectators witness the drama with throbbing heart. The simplicity of diction and his lucid expression command over a multitude of minds though Sudraka lacks beauty and grace of Kālidāsa or eloquence and elegance of Bhavabhūti. He truly deserves to be called Vāk-part, 'Lord of Speech'. This paper efforts to establish the uniformity of all these in Sudraka's Mṛcchakatikam.

❖

CS-222

The Keli-Gopāla of Mahāpuruṣa Śaṅkaradeva of Assam : A Study

DR. ANUPAMA MAHANTA, ASSAM

The saint, religious leader, social reformer Śaṅkaradeva introduced the Vaiṣṇava Bhakti movement during the Fifteenth and Sixteenth Centuries. He composed six dramas which are called the 'Ankiyā Nāt. The play 'Keli-Gopāla' is one of these plays. Śaṅkaradeve composed the play 'Keli-Gopāla' taking theme from the 10th book of the Bhāgavata Purāṇa. In the Bhāgavata Purāṇa book X, Chapters 29-33, the rāsalilā of Kṛṣṇa is described. The main theme of the play is Kṛṣṇa's sportive dance and dalliance with the cowherdesses (Gopis). Śaṅkaradeva included the legend of theYakṣa Śankhacūḍa only to enrich the principal theme.

In this play, though sentiments like sambhoga and Vipralambha sngāra are depicted. Yet the śānta rasa is the principal sentiment of this play.

In this paper an attempt has been made to discuss the play Keli-Gopāla.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-223

Kali Pradurbhavam

DR. MRS. CHANDRA RAMANI, TAMILNADU

Drama is a powerful genre, an effective medium and Kalipradurbhavam, a play in 7 Acts is no exception. Sri Y. Mahalinga Sastri, the playwright is a versatale scholar and a poet. He was inspired by a story from Mahabharata narrated to Sri Sastri in brief by his friend. The Tamil translation of the play was published in the 'Silpa Sri' under the Caption Kali in Mudal Tava and Sanskrit in Udayana Patrika. This play unfolds the spirit of the Kali as the playwright envisages moral degradation. This drama is short but impressive. It brings out how the time spirit affected the Ddharmic outlook of the brahmin; the vaisya and the king made them wealth and power minded. The Great mastery of the poet over the language is seen through out the Work. The usage of proverbs and popular aphorims also is a notable feature of the writing of the poet. The Play is original in its Concept and neat in its execution. It is incredible that a playwright of the 19th Century prophesied truth and unfortnately his vision of a value-eroded society has turned out to be the harsh reality.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Section - 4

ISLAMIC STUDIES

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IS-1

Islam Darshan

SUJAUDDIN N. SHAIKH, VALSAD

The Matters of Belief, Allah Ta'ala, The Angels, The Books of Allah Ta'ala, The Quran Sharif, Ambiya-e-kiram (Alai), Hazrat Muhammed Mustafa (Sallalahu Alaihi Wa-Sallam), Sahab-e-Kiram (Radi), Auliya-e-Kiram (Rah.) Miracle, Noble and Excellent Deeds, Grave, Death The Dooms day, Fate, Re-birth/Re-life, The Matters of Paganism, The Matters of Infidelity, Innovations in Religion, Deviations, Seductions, Unlawful Matters, Forbidden Matters, Divine Precepts, Obligations, Duties, Essentials, The Matters of Sunnat, Preferable Matters, Allowed Permissible, Abominable Things, Unrestrained behaviour, Durood Sharif, Parents, Muharram, Contemplation, Oath, Various Problems, The Description of Water, Impurity of Dirty and Minor Dirtness, Washing or Cleaning the Private Parts after a Natural Evacuation, Purity and Impurity, Wuzu (Ablution), Bath, Taymmum (Dry-Ablution) Azan, 'Ekamat' (Resting Place) 'Kabah', The Timings of Namaz, The Sunnat Namaz, The Nafal Namaz, Qirat in Namaz (Sijdah) : Prostration, (Sijda-e-Sahv), Kaza Namaz (Jamaat) An Assembly for Offering Namaz (Imamat), Forbidden Things in Imamat. Abominable Things in Namaz, Offering of Prostration during the Reading of Quran Sharif, The Namaz of Sick Person, The Namaz of Kasar, The Namaz of Friday, 'Idul Fitra', 'Idul Azha/Idd Uz Zuha', The Problems of Namaz, Looking into the Holy Book for a good augury seeking to obtain the Divine Favour, Death, The Bath of the Deadbody, the Namaz of the Deadbody, Funeral Ceremony, Conveying Reward for the Dead, The Description of Fasting, (E'tikaf) Retirement to a Mosque for a continuing prayer (Namaz) Retirement for Allah Ta'ala worship, Tarawhin Zakat, Sa-d-ka-e-Fitra, 'alms in Charity', Hajj, Hajje Badal, Qurbani, The skins (Hides) of Qurbani, Akikah, The Mosque, A trustee of a Mosque, waqf Legacy, trust, Various problems. This are some of the main features of Islam Darshan.

❖

IS-2

Changing Status of Women in Post Revolution of Iran

DR. GHULAM MURRALEEM, ALIGARH

Women in Iran are in a far better position than in many Arab coutnries today. They had played a very active role in Islamic revolution in Iran from the very beginning. The

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Shah had imposed reforms based on westernisation, abolished the veil and encouraged western dress. However, these and other reforms were quite superficial, as women had no freedom to participate in political activities. It was a western imitation of western culture than the freedom for women. Women too, therefore, joined the Islamic Revolution. They, without any compulsion, chose to give up their mini skirts and took to the *chadars*. Ayatollah Khomeini had also argued them of full political, cultural and social freedom after the Revolution. But after the revolution, Ayatollah Khomeini did not fulfil his promise and women were, however, disappointed because of more restriction were imposed upon them. Therefore, they did not give up fighting for their rights.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Section - 5

ARABIC & PERSIAN

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Section - 5

ARABIC & PERSIAN

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

AP-1

Role of Arab Geographers in Modernizing Geographical Knowledge : An Insightful Introduction

PROF. ABDUL ALI, ALIGARH

It is a well-known fact of history that Arab scholars and scientists took keen interest in geography and astronomy for practical purposes. The need for determining the direction for travellers crossing the desert as well as for knowing the azimuth of Mecca, the exact times of prayers and the first appearance of the moon gave religious impetus to their study of astromomy and scientific geography. As in other sciences, in geography also they not only preserved and assimilated the ancient legacy, but greatly enriched it with fantastic original contributions of their own.

Since the Arabs had been adventurous navigators from ancient periods of time, there flourished among them a good number of fact-finding travellers, who made significant maritime discoveries. They also developed the compass and a very accurate sea-map giving a clear account of sea-routes which were followed. They sailed as far as Korea, and discovered a number of islands in the Indian Ocean and the Chinese Sea. They are also credited with having discovered the American Continent, for which full credit is erroneously given to Christopher Columbus. It is quite possible that they knew about Australia also. The place described by the geographer Ibn Rustah as the land of the Zanjis where 'the day lasts only six hours' is said to refer to South Australia.

An attempt has been made in this paper to give a brief estimate of the role played by Arab geographers in modernizing scientific and mathematical geography with illustrations drawn from the researches done by some eminent geographers like al-Mas'udi, al-Biruni, al-Idrisi, al-Qazwini, Ibn Majid, etc.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Section - 6

PALI & BUDDHISM

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PB-1

ललितविस्तरे रसपोषणम्

सुश्री अजिता मिश्रा, उड़ीसा

ललितविस्तरः बौद्धमहायानसम्प्रदायस्य एकः पुण्यप्रदः ग्रन्थः। ललितविस्तरे भगवतो बुद्धस्य लोकोत्तरं जीवनचरितं वर्णितमस्ति। ग्रन्थोऽयं बहुष्वध्यायेषु विभक्तः कश्चन विशालः बौद्धमहायानसूत्रग्रन्थः। ललितविस्तरे अध्यायाः परिवर्ताः इत्युक्ताः। ग्रन्थोऽयं सप्तविंशतिपरिवर्तेषु विभक्तः। ललितविस्तरे यद्यपि अन्ये रसाः विभिन्नेषु स्थानेषु यथावसरं वर्णिताः, तथापि शान्तरसः एवात्र अङ्गीरस इति वक्तुं शक्यते। ललितविस्तरे सर्वत्रापि सामान्यतया आध्यात्मिकभावानामेव विस्तारः परिलक्षितः भवति। अत एव सर्वत्रापि शान्तस्यैव प्राधान्यं विद्यते।

सर्वेषां परिवर्तानामपेक्षया अत्र षोडश, सप्तदश, अष्टादश, परिवर्ताः विशेषरूपेण आध्यात्मिकभावभावितास्सन्ति। तत्र विषयाः आध्यात्मिकानन्दप्रदायकाः शान्तरसनिष्ठाः च।

बुद्धेनोक्तं यत् संसारः दुःखमयः। इमं दुःखार्णवं तरितुं सद्धर्मनौकायाः महती आवश्यकता विद्यते। अनया नौकया विना दुःखसागरतरणाय नान्यत् साधनं समुपलभ्यते। न केवलमेतत् ग्रन्थेऽस्मिन्, भक्तिभावपूर्णाः आध्यात्मिकभावमयाः मङ्गलमयविचारोपेताः बह्व्यः गाथाः समुपलभ्यन्ते।

❖

PB-2

सोगतधम्मे ब्रह्मविहारभावनाय महच्चं

डॉ. हरप्रसाद दीक्षित, वाराणसी

समाधिभावनाय पसंगे सोगतसासने ब्रह्मविहारभावनाय पभूतमहच्चं दिस्सति, साधनाय उत्तरोत्तरविकासक्कमे चत्तालीसकम्मट्ठानभावनाय ब्रह्मविहारानं वण्णनं दस्सति, एतेसं 'अप्पमाणा' पि वुच्चन्ति। यो चत्तारो होन्ति-1, मेत्ता; 2. करुणा; 3. मुदिता; 4. उपेक्खा। एत्थ ब्रह्मविहारो इति सद्दस्स इदमत्थं—'ब्रह्मो ति उत्तमो सेट्ठो, विहरन्ति एतेहीति विहारा', एते सेट्ठा विहारा। तथा 'ब्रह्मा सद्दो तथागतबुद्धस्सापि अधिवचनमत्थि', अनेनप्पकारेण ब्रह्मा वा धम्मराजतथागतस्स विहारमिव विहरणधम्मितायप्पभावेन इमे ब्रह्मविहारं कथयन्ति।

मेत्ता—एतासु सब्बपठमं मेत्ताब्रह्मविहारभावनाय परिपुण्णो एव योगावचरो अप्पनासमाधिं पापुणोति। मेत्ता सद्दस्साभिप्पायो अत्रेदं—'मेज्जतीति मेत्ता, सिनिय्हती ति अत्थो' तथा 'मित्ते वा भवा एसा पवत्ती ति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पि मेत्ता' भवति। मेत्ताभावना भावयितुं योगावचरं दोसो आदीनवं दिस्वा खन्तिगुणस्स पच्चवेक्खणं कातब्बं, तदनन्तरं 'अहं सुखितो होमि निद्दुक्खो' ति अत्तकल्याण भावनाय अभिवड्ढनं करोन्तो पठमं यो पियो मनापो गरुभावनीयो आचरियो उपज्झायो वा तेसु मेत्ताभावना करणीयं, एतदनन्तरं अतिप्पिसहायके, मज्झत्ते, वेरीपुग्गले च मेत्तासहगतेन चित्तेन समापन्नो हुत्वा विहारं करोन्तो सीमासम्भेदं स्वीकरित्वा जगतस्स सब्बसत्तेसु मेत्ताय सीमावित्थारं करणीयं। एताय भावनाय साधको अरहत्तपदं नोपलब्भे सति सुखपुब्बकं ब्रह्मलोके उप्पन्नो होति।

करुणा—एत्थ 'करुणा' ति 'परदुक्खे सति साधुनं हदयकम्पनं करोतीति करुणा' करुणाभावनाय भावेन्तस्स साधकस्स पठमं करुणायितब्बरूपं, परमकिच्छप्पत्तं, अतिदुक्खतो, दुग्गतो पुरिसो दिस्वा, करुणायितब्बो। तदनन्तरं सुखितेसु पुरिसेसु करुणा वड्ढेतब्बो। तथा अनेन सह पटिघभावनाय अतिक्कमित्वा 'सब्बे सत्ता दुक्खा मुच्चन्तु' एवं पकारेण भावनाय वड्ढेत्वा पसारेत्वा वा अप्पनासमाधिं परिपुण्णं कातब्बं।

मुदिता—'मुदिता' सद्दस्स भावं इतमत्थि—'मोदन्ति ताय तं समङ्गिनो सयं वा मोदति, मोदनमत्तमेव वा मुदिता' मुदिताभावनाक्कमे योगावचरं सब्बप्पठमं पियपुग्गलं सुखितं, पमोदितं दिस्वा मुदिताभावनाय आरभन्तो तदनन्तरं सब्बपाणेसु भावनाय वित्थारेतब्बो।

उपेक्खा—उपेक्खती ति 'उपेक्खा' इमस्मिं उपेक्खाभावनायं योगावचरो पियपुग्गलं दिस्वा न कोचि रागो, तथा अप्पियम्पि पुग्गलं दिस्वा तस्स चित्ते न कोचि दोसभावो उप्पन्नो होति, सो साधको उपेक्खाभावनाय सम्पन्नो होति। एवमेव सब्बसत्तेसु उपेक्खाभावना पवड्ढेन्तो विहारं कातब्बं।

एतेसं ब्रह्मविहारानं भावनाय सत्तो रूपारूपझानेन सब्बङ्गसमापन्नो हुत्वा जगतेसु सब्बसत्तेसु समपवत्तितचित्तसहगतेन हितकामताय सब्बदा अग्गसरो हुत्वा 'महासत्तो' ति इमाय सञ्ञाय विभूसितो होति।

❖

PB-3

बौद्धधम्मे तिसिक्खाय महच्चभावं

प्रो. ब्रह्मदेवनारायणशर्मा, वाराणसी

भगवता बुद्धेन लोकस्स अत्थाय हिताय सुखाय धम्मो च विनयो च देसितो। सो सीलसमाधिपञ्ञापटिमण्डितो सद्धम्मे। जनानं हितकरो च सुखकरो च होति। तेसु सीलं पठमं ठानं लभति। सीलं सब्बेसं कुसलानं धम्मानं आधारो विज्जति। सीताभरणेहि समलङ्कतो पुरिसो अब्भामुत्रोचन्दो व लोके पभासेति। सब्बदासीलसम्पन्नो आरद्धविरियो पञ्ञवा नरो इमस्मिं लोके परम्हि च जयं पत्वा अतिविय सोमनस्ससहगता हुत्वा सुखानुभरनं करोति। सीलं ति सेट्ठाचरणं सुभाचरणं वा। सम्मावाचा, सम्माकम्मन्तो, सम्माआजीवो एवं सीलं। सील संवलितो पुग्गलो साधनामग्गे आगतानं मच्चूहानं निराकरणं कत्वा अवातुरो हुत्वा निवसति। अस्मिं काले सामाजिके जीवने सीलस्स अतिसयं महच्चं वट्टति। अञ्ञजना दुराचरणेन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुस्सीलेन च परिभिपट्ठा दिस्सन्ति। पापकं असोभनं कम्मं कायेन च वाचाय च कत्वा जने संपीडेति संतासं जनेति। तस्मा कारणा अस्मिं समये पञ्चसीलस्स अनुपालनं युत्तं विज्जति। यत्थ तत्थ सब्बत्थ अस्मिं कालेपाणातिपातं, अदिन्नादानं, कामेसुमिच्छाचारं, मुसावादं, धनत्पत्राय अपहरणादिकं च दिस्सन्ति। भयाकुला जना गेहे मग्गानुमग्गे वा दुम्मनो हुत्वा पिचरणं करोन्ति, तेसं हदये भयं सतांस च विज्जन्ति। अतो अम्टे सरणीयं यं भातरट्टस्स सीसं भूसनं अतिमहन्तं मण्डनं विज्जति। सीससम्पदमनवाया भारतरट्ठो विस्से धरामण्डले सुरिभो न विरोचमानं आसी। अतो सीलस्स अनुरक्खणं अनुपालनं सब्बेसं जनानं हिताय सुखाय च भविस्सतीति। सोगतसासने सीलस्स अच्चन्त महच्चभावं दिस्सति। यतो हि सीलेन कायदुच्चरितस्स वचीदुच्चरितस्स च पहानं भवति। समाधिना मनोदुच्चरितं विनस्सति। पञ्ञाय धम्मसभावस्स विजाननं भवति। तेन तण्हा विनस्सति। ततो परं निब्बानस्स सच्छिकारं होति।

यो समाधि भावेति सो पञ्ञा अधिगच्छति—'पञ्ञाय परिसुज्झती' ति वचनतो पञ्ञालोके योगावचरो सम्माप्पकारेण जानाति यं सब्बे सङ्खारा अनिच्चा, सब्बे सङ्खारा दुक्खा, सब्बे धम्मा अनत्ता ति का पञ्ञा ति पञ्हस्स समाधानं करोन्तो कथितं—'कुसलचित्तसम्पयुत्तं विपस्सनाञाणं पञ्ञा। पञ्ञा इति सद्दस्स अत्थं पकासेन्तो कथितं विसेसप्पकारेन जाननं पजाननं ति। पजाननट्ठेन पञ्ञा ति। धम्मसभावपटिवेध लक्खणापञ्ञा। पञ्ञाय अविज्जन्धकारं विनस्सति विज्जोभासं जनेति। छेदन लक्खणा-पञ्ञा ओभासनलक्खणाति मिलिन्दपञ्हे वुत्तं। अनेन अयं पटिभाति यं पञ्ञाय किलेसानं छेदनं होति। यदा किलेसानं छेदनं होति तदा चित्रं परमपरिसुद्धरूपेन उपट्ठति। यदा चित्तं सब्बमलविरहितं होति अच्चन्त परिसुद्धं तदा तं एव निब्बानस्सअधिगमो तिवुच्चति। पञ्ञापभेदकथा पिटकानुपिटकेसु वित्थारेण वण्णिता विज्जति। तस्स पभेदकथा परतो आविभविस्सति।

एवमेव बौद्धधम्म तिसिक्खाय महच्चभावं सुपाकटं। तेनेव कथितं धम्मपदे—

सब्बपापस्स अकरणं कुसलस्सुपसम्पदा।
सचित्तपरियोदपनं एतं बुद्धानसासनं ति॥

❖

PB-4

योगाचारदर्शनतत्त्वविमर्शः

प्रो. रमेशकुमारद्विवेदी, वाराणसी

बौद्धदर्शनस्य चत्वारि दार्शनिकप्रस्थानानि विश्वविश्रुतानि वर्तन्ते। यथा वैभाषिकः, सौत्रान्तिकः, योगाचारः, माध्यमिकश्च, इत्येतेषामपि अनेके अवान्तरभेदाः संगण्यन्ते। यद्यपि इमे भेदोपभेदाः भगवतः बुद्धस्य वचनमाधारीकृत्य प्रादुर्भूताः विकसिताश्च तथापि एतेषां व्याख्या पारस्परिकं वैमत्यं समुपस्थापयति। अत एव एतत् पृथग्दर्शनप्रस्थानरूपेण उरीक्रियते।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एषु चतुर्षु प्रस्थानेषु केचन सन्ति दार्शनिकाः पक्षाः। यथा—ब्राह्यार्थता, निर्वाह्यार्थता, ज्ञानस्वरूपता आकारराहित्यं, स्वतोऽप्रामाण्यं, परतः प्रामाण्यमित्यादयो विषयाः वादिप्रतिवादिभ्यां शास्त्रार्थप्रसङ्गे समालोडिताः। पूर्वपक्षतः वैदिकदर्शनानामुपस्थानानि चाधारीकृत्य उत्तरपक्षतः बौद्धदर्शनं विशेषरूपेण समृद्धं परिपूर्णञ्च बभूव। बाह्यार्थः त्रैकालिकः असन् विज्ञानमेव सदिति ये अङ्गीकृतवन्तः ते खलु विज्ञानवादिनः।

इमे विज्ञानवादिनो भागद्वये विभक्ता विद्यन्ते। आगमानुयायिनः अपरे युक्त्यनुयायिनश्च। आर्यसङ्गबसुबन्धुप्रभृतयः आगमानुयायिनः तथा आचार्यदिङ्नागः, धर्मकीर्तिः इत्यादयः युक्त्यनुयायिनः प्रसिद्धा आसन्।

विज्ञानवादिष्वपि भागद्वयं मण्डितं विद्यते। सत्याकारविज्ञानवादिनः अपरे मिथ्याकारविज्ञानवादिनश्च। भोटदेशीयविदुषां मतानुरोधेन आगमानुयायिनः युक्त्यनुयायिनश्च सत्याकारवादिनां, मिथ्याकारवादिनाञ्च मतसम्पोषकाः सन्तीति।

आगमानुयायिनः—आर्योऽसङ्गः श्रावकभूमिशास्त्रं प्रत्येकं बुद्धभूमिशास्त्रादिभिः नामभिः पञ्चभूमिशास्त्राणि रचयामास। ये प्रस्तुतभूमिशास्त्रानुरोधेन स्वपदार्थान् व्यवस्थापयन्ति सहैव आलयविज्ञानस्य क्लिष्टमनोविज्ञानस्य च सत्तां स्वीकुर्वन्ति ते आगमानुयायिनः कथ्यन्ते।

युक्त्यनुयायिनः—दिङ्नागस्य प्रमाणसमुच्चय एवं धर्मकीर्तेः सप्तवर्गीयप्रमाणशास्त्रमिति ग्रन्थद्वयानुरोधेन ये पदार्थमीमांसां व्यवस्थापयन्ति सहैव बाह्यार्थैः भिन्नाः घटपटादय इति प्रमाणयन्त आलयविज्ञानं क्लिष्टमनोविज्ञानञ्च खण्डयन्ति, ते युक्त्यनुयायिनः कथ्यन्ते।

सत्याकारवादिनः—ज्ञानगतनीलाकारः पीताकारः, इत्यादि ज्ञानस्वरूपमिति स्वीकुर्वन्तः तयोः यथार्थतः सत्तां स्वीकुर्वन्ति, अर्थात् तयोः सत्ता कल्पिता नैव इति विचारसम्पन्नाः सत्याकारवादिनः निगद्यन्ते।

मिथ्याकारवादिनः—ज्ञाने समागतानि नीलाकारः पीताकार इत्यादीनि ज्ञानस्वरूपाणि नैव इति विचिन्त्य तेषां यथार्थतः सत्तापि नैव प्रत्युत वासनाजन्या इति तर्कसम्पन्नाः मिथ्यावादिन इति अभिधीयन्ते।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PB-5

बौद्ध कर्मवाद का व्यावहारिक पक्ष

डॉ० वीरेन्द्र कुमार अलंकार, चण्डीगढ़

कर्म जीवन का वह व्यावहारिक पक्ष है, जिससे स्वस्थ समाज की निर्मिति होती है। वैदिक काल से लेकर सम्प्रति यावत् कर्म की मीमांसा होती रही है। बौद्धों का कर्मवाद बड़ा व्यावहारिक है।

(क) **कर्म स्वयं ही नियामक है**—बौद्ध चिन्तन में सम्पूर्ण भौतिक और मानसिक व्यापारों का नियामक तत्त्व कर्म है। ईश्वर को नियामक मानने में बौद्धों की कोई रुचि नहीं है। दरिद्रता, निर्बुद्धि, सुगति, स्वास्थ्य, प्रज्ञा आदि सभी तो कर्म के शुभ-अशुभ होने पर निर्भर है। इसलिए अदृष्ट की कल्पना से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है।

(ख) **धर्म का क्रियात्मक रूप ही कर्म है**—कर्म ही भगवान् बुद्ध के नैतिक आदर्शों की आधार शिला है। इसलिए वही धर्म को देखता है जो कर्म कर रहा है। जिसका कर्म अच्छा है, वह बुद्ध के पास है।

(ग) **कर्मविभेद**—मानसिक, वाचिक और कायिक—इनमें मानसिक कर्म प्रधान हैं। कायिक और वाचिक कर्म की भूमि मनस्तल पर तैयार होती है। कर्म के मूल में लोभ, द्वेष, और मोह रहते हैं। इसी आधार पर कर्म के तीन भेद किए गए हैं—अकुशल कर्म, कुशल कर्म और अव्याकृत।

(घ) **पुनर्जन्म एवं कर्मफलभोक्ता**—विपाक कर्म सम्भव है। कर्म से पुनर्जन्म होता है। इस नामरूप के द्वारा जो कर्म किए जाते हैं, उनसे एक अन्य नामरूप उत्पन्न होता है, जो संसरण करता है। मृत्यु के समय जो नामरूप है, पुनर्जन्म ग्रहण करने वाला वह अन्य नामरूप होता है।

(ङ) **समाज निर्मिति का आधार 'कर्म'**—समाज की निर्मिति में जन्म का नहीं, कर्म का महत्त्व है। कर्म के आधार पर ही ब्राह्मण आदि व्यवहार होता है, कर्म के अनुरूप सामाजिक दायित्व सौंपना ही सही व्यवस्था है।

वस्तुतः बौद्धों के कर्मवाद में आगे बढ़ने का भरपूर अवकाश है। यह पलायन का दर्शन नहीं है। कर्म ही उद्धार करेगा, कर्म के नियम के कारण ही प्रतीत्यसमुत्पाद का चक्र चलता है। अपने भाग्य को रोना क्लीबता है। अपनी सुगति और दुर्गति के लिए हम स्वयं जिम्मेदार हैं। कर्म की धुरी पर ही यह समाज, समाज की विविधता, जन्म-मरण और सुगति-दुर्गति टिके हैं।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PB-6

जातक में प्रतिबिम्बित उद्योग और व्यापार

कु० कंचन सिंह, लखनऊ

अनेक उद्योगों के विषय में प्राचीनकाल से साहित्यिक सूचना प्राप्त होती है। तत्कालीन समय में सभी उद्योग एक समान नहीं थे। कतिपय उद्योग ऐसे थे जो कच्चे माल प्राप्ति के स्थान से बहुत दूर तक विकसित नहीं थे। अनेक उद्योगों के होते हुए भी धातु उद्योग की विशेष प्रगति हुई थी। धातु विज्ञान के क्षेत्र में हुई प्रगति का स्पष्ट सङ्केत मिलता है और धातु को पिघला कर विविध सामानों को परिष्कृत ढंग से बनाने की विस्तृत सूचना पालि-साहित्य से प्राप्त होती है। धातु उद्योग से सम्बन्धित अनेक लोग होते थे—जिन्हें लोहार, स्वर्णकार और कँसेरा कहा जाता था। धातु कार्यों के अतिरिक्त बढ़इयों, कुम्भकारों, दन्तकारों, मालाकारों तथा बुनकरों आदि के सम्बन्ध में भी सूचना प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त जौहरियों के भी उल्लेख प्राप्त होते हैं।

जातक से ज्ञात होता है कि लोहे को परिष्कृत तथा मजबूत बनाकर उससे विविध औजारों का निर्माण किया जाता था। युद्ध में प्रयुक्त हथियारों के अतिरिक्त पुरुषोचित कवच तथा लोहे की अति बारीक सुई बनाई जाती थी, जो लोहे, ताँबे और काँसे की प्लेटों में आसानी से छिद्र बना देती थी। सुवर्णकार और मणिकार बहुमूल्य धातुओं का काम करते थे। उस समय की बहुमूल्य धातुओं में स्वर्ण, रजत, हीरा, मणि, स्फटिक और जवाहरात की गणना की गयी है।

जातक में वर्णित वस्त्र उद्योग के साथ-साथ कताई, बुनाई और रंगाई का कार्य भी प्रगति पर था। लोग हाथी दाँत का भी व्यापार करते थे। उस समय सुगन्धित वस्तुओं के व्यापार के अतिरिक्त मालाकार भी होते थे। जातक से यह भी ज्ञात होता है कि मृद्भाण्ड का निर्माण कुम्भकारों द्वारा तथा चर्म उद्योग चर्मकारों द्वारा प्रमुखता से किया जाता था। पशुपालन और उनके व्यापार के विषय में जातकों से ज्ञात होता है।

❖

PB-7

बौद्ध शिक्षण पद्धति : एक आदर्श

डॉ० आभारानी, बोधगया

भारतीय शिक्षण पद्धति तपोमय माना गया है। अनुशासन शिक्षा की प्रथम कड़ी है। बौद्ध शिक्षण पद्धति के अनुशासन में प्रायः सर्वथा मध्यमा प्रतिपदा दृष्टिगोचर होती है। बुद्ध ने विद्यार्थियों के जीवन के आचार-व्यवहार की जिस पद्धति को निरूपित किया, उसमें शरीर को कष्ट देने वाले व्यवहार नहीं दिखाई पड़ते।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्ध के समय में शरणत्रय और दस शिक्षा पद नामक व्रत भिक्षुओं को आरम्भ से ही लेने पड़ते थे। दस शिक्षा पद में अहिंसा व्रत को सर्वोच्च स्थान दिया गया। भिक्षु के लिए नियम था कि वह अपनी ज्ञानेन्द्रियों पर संयम रखें और सभी विषयों के प्रति अनासक्त हों। उसे अध्ययनरत होना चाहिए। बुद्ध ने अपने शिष्यों की जिज्ञासा को प्रखर बनाने की सदैव चेष्टा की और सदा के लिए बौद्ध शिक्षण में शिष्यों के तर्क और पर्यालोचन को प्रतिष्ठित किया। बुद्ध ने स्पष्ट शब्दों में आदेश दिए—किसी वस्तु को सुनकर उसे स्वीकार न कर लो और न यही समझो कि यह सदा से लोक प्रतिष्ठित परम्परा से सत्य ही है। सांघिक जीवन का आदर्श प्रस्तुत करते हुए बुद्ध ने कहा है—भिक्षुओं! पशु भी परस्पर प्रेम, आदर और विश्वास के साथ रहते हैं। तुम्हें इस प्रकार रहना चाहिए कि तुम्हारा प्रकाश तुम्हारे सामने शोभा पाए। बुद्ध ने अपने जीवन-काल में भिक्षुओं के उत्तरदायित्व को समझाते हुए उन्हें कुछ छूट दी। उन्होंने निर्देश दिए—यदि भिक्षु चाहे तो वन में रहें या गाँव के पड़ोस में बसें। वह भिक्षा माँग कर खाये या उपासकों के निमन्त्रण स्वीकार करें।

बुद्ध ने भिक्षुओं को जीवन के आचार-व्यवहार की जो रूपरेखा प्रतिष्ठित की वह आगे चलकर भी प्रायः वैसी ही बनी रही। बौद्ध शिक्षण पद्धति का आदर्श स्वयं बुद्ध ने प्रतिष्ठित किया था। उन्होंने अपनी शिक्षण पद्धति का विवेचन करते हुए कहा है—'जिस प्रकार समुद्र की गहराई शनैः-शनैः बढ़ती है, सहसा नहीं; हे भिक्षुओं, उसी प्रकार इस धर्म की शिक्षा शनैः-शनैः होनी चाहिए।

पद-पद चलकर ही अर्हत बना जा सकता है। इस कथन से प्रतीत होता है कि भिक्षु की योग्यता देखकर ही व्याख्यान का स्तर नियत होता था। बुद्ध ने अपने शिष्यों को अपनी-अपनी भाषा में उपदेश ग्रहण करने का सरल मार्ग खोल दिया। बुद्ध के शिक्षण में प्रासंगिक उपमा, दृष्टान्त, उदाहरण और कथा का समावेश होता है। वर्तमान काल में बुद्ध की शिक्षण पद्धति अनुकरणीय है।

❖

PB-8

विसुद्धिमग्ग : बौद्धधर्म का विश्वकोश

डॉ० निरंजना वोरा, अहमदाबाद

आचार्य बुद्धघोष विरचित 'विशुद्धिमग्ग' (विशुद्धिमार्ग) पालि साहित्य का अमूल्य ग्रन्थरत्न है। भारतीय दार्शनिक साहित्य में भी उसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। बौद्धधर्म के विविध सिद्धान्तों के बारे में गहन चिन्तन करके उनका सुष्ठु ढंग से विशद परिचय दिया है। उन्होंने विशुद्धिमग्ग में गौतम बुद्ध के उपदेश वचनों की विशद रूप से व्याख्या की है। इस ग्रन्थ में बौद्ध दर्शन का इतना सांगोपांग और समग्रलक्षी निदर्शन हुआ है कि उसे 'बौद्धधर्म का विश्वकोश' कहा जाता है।

जैसे हम जानते हैं विशुद्धिमग्ग के रचयिता आचार्य बुद्धघोष हैं। उनके जीवन विषयक जानकारी चूलवंस, बुद्धघोसुप्पत्ति, गन्धवंस, सासनवंस और सद्धम्मसंगह से प्राप्त होती है। उनका जन्म ब्राह्मण कुटुम्ब

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में हुआ था और बाल्यावस्था से ही शिल्प और तीनों वेदों में पारङ्गत होकर अनेक विद्वानों से शास्त्रार्थ करते रहते थे। बौद्ध आचार्य रेवत के साथ चर्चा में पराजित होने के बाद वे बौद्धधर्म में प्रवजित हुए। उनकी आवाज तथागत के जैसी धीर-गम्भीर होने से उन्हें बुद्धघोष कहते थे। उनका समय ई.स. की चौथी-पाँचवी शताब्दी का माना जाता है।

बुद्धघोष पालि साहित्य के युगविधायक हैं। गुरु-आज्ञा से सिलोन जा कर उन्होंने सिंहली अट्ठकथा और अन्य साहित्य का पालि में अनुवाद किया। 'विशुद्धिमग्ग' के उपरान्त त्रिपिटक के सभी ग्रन्थों के विषय में उन्होंने अट्ठकथा (अर्थकथाओं) की रचना की। इससे यहाँ अर्थकथा-साहित्य की परम्परा का प्रारम्भ हुआ। उनके साहित्य में बुद्ध के उपदेश वचनों का गहन, सूक्ष्म चिन्तन से युक्त, सदृष्टान्त निरूपण हुआ है। इनके ग्रन्थों में बुद्धकालीन समाज और जीवन का तथा अपने युग का जीवन्त चित्रण है। अतः संस्कृति के अभ्यास की दृष्टि से भी उसका निजी महत्त्व है। प्रस्तुत निबन्ध में इसी विशुद्धिमग्ग का साङ्गोपाङ्ग परिचय प्रस्तुत किया गया है।

❖

PB-9

बोधिसत्त्व : स्वरूप और अवधारण

डॉ० पी.जी. योगी

बोधिसत्व शब्द की अनेकशः व्याख्याएँ की गई हैं। 'बोधि' का अर्थ है—ज्ञान, अभिज्ञा। सत्व शब्द का निर्वचन एवं विश्लेषण अनेकविध रूपों में उपलब्ध होता है।

मोनियर विलियम्स ने 'सत्व' शब्द का अर्थ सत्व, स्वभाव, यथार्थ तत्त्व किया है। उन्होंने—'बोधिसत्व' का अर्थ इस प्रकार किया है—वह जो सारतत्व के रूप में पूर्ण प्रज्ञा को रखता हो। इलियट ने बोधिसत्व का अर्थ किया है—वह जिसका सत्व बोधि के लिये हो।

'सत्व' शब्द भी अनेक रूपों में व्याख्यात है—कोई जीवित या सचेतन प्राणी। पालि 'सत्त' का अर्थ भी जीवित प्राणी, प्राणी, सचेतन और विवेकी-प्राणी है। पूर्ण प्रज्ञा के अधिगम के लिये सचेष्ट-प्राणी। बोधि का प्राणी, प्रज्ञा प्राणी, पवित्र और सर्वशक्तिमान आत्मा।

पातञ्जल योगसूत्र में सत्त्व का अर्थ चित्त तथा बुद्धि किया गया है और सत्त्व को वहाँ पुरुष से भिन्न कहा गया है—'सत्त्वपुरुषोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यम्'। एच.कर्न के अनुसार बोधिशब्द 'बुद्धि' शब्द से सम्बद्ध है; क्योंकि बुद्धिसत्त्व शब्द योग-वाङ्मय में उपलब्ध होता है। इस प्रकार बोधिसत्व को प्रज्ञा का प्रतिमान कहा जा सकता है।

कुछ विद्वानों की धारणा है कि संस्कृत सत्त्व शब्द पालि 'सत्त' का भ्रामक रूपान्तरण है। बोधिसत्त शब्द बोधिसक्त का रूपान्तरण हो सकता है, जिसका अर्थ है—बोधिज्ञान में व्यतिषक्त, बोधि में संलग्न।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्वन्यात्म-परिवर्तन के कारण संस्कृत में बहुविध शब्द यथा—सत्त्व, सप्त, शप्त, सक्त आदि पालि में 'सत्त' हो गये हैं। पालि 'सुत्त' शब्द भी संस्कृत के सूक्त (सु + उक्त) शब्द से सम्बद्ध हैं 'सूत्र' से नहीं। पालि का 'सुत्ति' शब्द भी इस प्रकार सूक्ति का ही रूपान्तरण है। इस प्रकार संस्कृत बोधिसक्त ही पालि बोधिसत्त में रूपान्तरित हो गया है।

संस्कृत में 'सत्त्व' के अन्य अर्थ भी उपलब्ध होते हैं—यथा, बल, शक्ति, ऊर्जा, तेज, उत्साह। इस प्रकार बोधिसत्त्व का अर्थ होगा वह व्यक्ति जिसकी शक्ति एवं वीर्य बोधि की ओर पुरस्सृत हो।

❖

PB-10

स्थविरवाद बौद्धधर्म में अर्हत् की अवधारणा

डॉ. रमेश प्रसाद, वाराणसी

गामे वा यदि वारञ्ञे निन्ने वा यदि वा थले।
यत्थारहन्तो विहरन्ति तं भूमिं रामणेय्यकं॥

—अर्थात् गाँव हो या जंगल, नीची भूमि हो या ऊँचा स्थल, जहाँ अर्हत् विहार करते हैं, वही रमणीय भूमि है।

धम्मपद की इस मंगल गाथा में अर्हत् के महत्त्व को स्थापित किया गया है। अब प्रश्न उठता है कि अर्हत् में ऐसे कौन से गुण विद्यमान हैं, जिसके कारण कोई भूमि रमणीय हो जाती है। इस प्रश्न के समाधान के लिए अर्हत् की पृष्ठभूमि का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करना आवश्यक है।

अर्हत् (पालि में अरहन्त) शब्द में दो पद हैं—'अरि' तथा 'हंत'। 'अरि' का अर्थ शत्रु होता है एवं 'हंत' पद हनन करने के अर्थ में प्रयुक्त है। अत एव अर्हत् वह व्यक्ति है, जिसने अपने शत्रुओं को नष्ट कर दिया है। यहाँ शत्रु से तात्पर्य बाह्य शत्रु से नहीं है, अपितु अपने अन्दर के जो विकार हैं, वही हमारे वास्तविक शत्रु हैं। अतः जिसने अपने अन्दर के समस्त विकारों को क्षीण कर दिया है, उसे ही अर्हत् कहा जा सकता है। हमारे अन्दर के विकार राग, द्वेष तथा मोह हैं, जो अविद्यास्वरूप उत्पन्न होते हैं। जब व्यक्ति के अन्दर प्रज्ञा का प्रादुर्भाव होता है, तब ये विकार प्रहीण हो जाते हैं और व्यक्ति वीतराग, द्वेषविहीन एवं मोहातीत अवस्था को प्राप्त होता है। मन की ऐसी निर्मल अवस्था को प्राप्त व्यक्ति ही अर्हत् कहलाता है।

'यतो खो, आवुसो, रागक्खयो दोसक्खयो मोहक्खयो—इदं वुच्चति अरहत्तं।'

ध्यातव्य है कि व्यक्ति जन्मतः परिशुद्ध होता है; लेकिन ज्यों-ज्यों वह बड़ा होता है, त्यों-त्यों उसमें मनोविकार उत्पन्न होने लगते हैं और एक समय ऐसा आता है, जब वह राग, द्वेष, क्रोध, अहंकार आदि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकारों से घिर जाता है। ऐसी स्थिति में वह स्वयं भी अशान्त रहता है और दूसरों को भी अशान्त करता है। जब उसके अन्दर सद्भाव जगता है, तब वह इन विकारों से अपने को मुक्त करना चाहता है; लेकिन लम्बे समय के पाप धर्मों से पोषित संस्कार भार रूप में प्रकट होकर उसे उसके लक्ष्य में सफल नहीं होने देता है; लेकिन अनवरत प्रयास से व्यक्ति कामावचर अवस्था से क्रमशः रूपावचर एवं अरूपावचर अवस्था को पार करते हुए लोकोत्तर अवस्था को प्राप्त होता है। इस अवस्था को प्राप्त व्यक्ति ही अर्हत् कहलाता है। इस अवस्था में उसके सारे आस्रव क्षीण हो चुके रहते हैं, सांसारिक बन्धनों से वह मुक्त हो जाता है एवं भव-परम्परा को समाप्त कर देता है।

❖

PB-11

बौद्धधर्म में शील का महत्त्व

श्री कर्मा सङबो शेर्पा, वाराणसी

बौद्धधर्म एक व्यवहारिक धर्म है। इसमें आचार व्यवहार के साथ-साथ नैतिकता की शिक्षा समाहित है। ऐसी शिक्षा का मूल ही शील है। शील का अर्थ सदाचार, सद्वृत्ति, शुद्धचरित, विनयशीलता आदि किया जा सकता है। सभी कुशल धर्मों का आधार शील है, यथा—जीव-हिंसा से अलग रहना, चोरी न करना, व्यभिचार न करना, असत्यवचन नहीं बोलना, शिकायत नहीं करना, कठोर वचन न बोलना, व्यर्थ की बातें नहीं करना इत्यादि। अतः काय एवं वाचिक धर्मों को अच्छी तरह संधारण करना ही शील है।

बौद्ध साहित्य में शील के कई प्रकार बतलाएँ गये हैं, यथा—प्रातिमोक्ष संवर शील, आजीवपरिशुद्धि शील, इन्द्रिय संवर शील तथा प्रत्यय सन्निहित शील। आचार-गोचर से सम्पन्न रहना, अल्प मात्र दोष में भी भय देखना आदि प्रातिमोक्ष संवर शील कहलाता है। शरीर या वाणी द्वारा शीलों का उल्लंघन न करना ही इन्द्रिय संवर शील है। मिथ्या आजीविका से अलग रहना ही आजीवपरिशुद्धि शील कहलाता है। ढोंग करना, इन्द्रजाल दिखाना, स्वयं को बढ़ चढ़कर बतलाना, बड़े लाभ के लिए छोटे लाभ का त्याग करना इत्यादि आजीविका के मिथ्या ढंग बतलाये गये हैं। चीवर, पिण्डपात, शयनासन तथा भैषज्य इन चार प्रत्ययों का प्रज्ञापूर्वक सेवन करना ही प्रत्यय सन्निश्रित शील है।

बौद्ध शासन में शील का अत्यन्त महत्त्व है। यह सभी गुणों का मूल है तथा दोनों के बल को नष्ट करने वाला है। अतः शील के महत्त्व को देखते हुए हमें शील का पालन करना चाहिए। विशुद्धि मार्ग में इसकी महत्ता प्रकट करते हुए कहा है—

शीले पतिट्ठाय नरो सपञ्ञो चित्तं पञ्ञं च भावयं।
आतापी निपको भिक्खु सो इमं विजटये जटं' ति॥

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PB-12

बौद्धधर्म में योग की अवधारणा एवं इसकी उपयोगिता का समीक्षात्मक विचार

डॉ. नरेन्द्र कुमार, नवादा

भारत भूमि कई धर्मों की मातृभूमि हैं। यहाँ पर हिन्दू, बौद्ध, जैन तथा सिक्ख धर्मों की उत्पत्ति हुई है। प्रायः सभी धर्मों का लक्ष्य परमार्थ ज्ञान की प्राप्ति है। जीवन के दुःखों से छुटकारा दिलाना तथा परम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति है।

योग एक माध्यम है, जिसके द्वारा दुःखों से छुटकारा पाया जा सकता है तथा परम लक्ष्य परमार्थ ज्ञान अथवा मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। पतञ्जलि ने सर्वप्रथम योग का विचार दिया है। उनके अनुसार योग 'चित्तवृत्ति का निरोध' है। पतञ्जलि के अनुसार योग के द्वारा योगी समाधि को प्राप्त कर यथार्थ, अर्थात् परमार्थ ज्ञान की प्राप्ति करता है। योगी समाधि के द्वारा कैवल्य की प्राप्ति करता है।

महात्मा बुद्ध बौद्ध धर्म के प्रवर्तक हैं। बौद्ध धर्म का विकास उनके उपदेशों तथा वचनों से हुआ है। इन सभी उपदेशों का मूल ग्रन्थ 'त्रिपिटक' है, जिसमें योग से सम्बन्धित विचारों का विवेचना है। बौद्ध धर्म का मूल विचार चार आर्य-सत्य है।

जिस प्रकार योग का लक्ष्य दुःखों से छुटकारा तथा कैवल्य की प्राप्ति है, ठीक उसी प्रकार बौद्धधर्म में दुःख जिसमें (सभी प्रकार के कष्ट-व्याधि इत्यादि) का विशद वर्णन है तथा साथ ही साथ दुःखों के कारणों पर प्रकाश डाला गया है। इसके अलावा दुःख निरोधगामिनी पथ का वर्णन किया गया है, जिसे अष्टांग मार्ग कहा जाता है, जो पातञ्जलयोग से मिलता जुलता है।

महात्मा बुद्ध ने जीवन का लक्ष्य निर्वाण माना है। निर्वाण समाधि की वह अवस्था है, जिसमें दुःखों का अन्त हो जाता है तथा जन्म-मरण् के चक्र से छुटकारा मिल जाता है। बौद्धधर्म में भी समाधि का विशद वर्णन है। समाधि के द्वारा योगी निर्वाण प्राप्त कर मृत्यु के पश्चात् परिनिर्वाण को प्राप्त करता है। योग का उपयोग वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्राप्त व्याप्त आतंकवादी व्यवस्था, भ्रष्टाचार से ग्रस्त, दुःख एवं व्याधिग्रस्त जीवन एवं समाज के उत्थान के लिए आवश्यक है।

❖

PB-13

महावंस में स्त्रीजीवन

श्री सन्तोष कुमार

वंस साहित्य में महावंस ग्रन्थ को महत्त्वपूर्ण स्थान है। क्योंकि इसी में प्राचीन भारत और श्रीलंका का इतिहास तथा इसके बारे में बहुत कुछ जानकारी मिलती है। इसीलिए यह ग्रन्थ को ऐतिहासिक दुवा भी कहा जाता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महावंस में समाज का चित्रण सामाजिक जीवन रूढ़ि, परम्परा, स्त्री का जीवन, सामाजिक श्रद्धा, दानधर्म पद्धति, सामाजिक विधि विवाह, अन्धश्रद्धा आदि के बारे में विस्तृत जानकारी आती है। लेकिन प्रस्तुत निबन्ध में केवल 'स्त्रीजीवन' विषय पर सविस्तर अध्ययन किया जायेगा।

❖

PB-14

अट्ठासालिनी में बुद्धघोष का योगदान

डॉ. जनार्दन शुक्ल, वाराणसी

अट्ठसालिनी अभिधर्मपिटक के सर्वप्रथम एवं महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ धम्मसंगणि की अट्ठकथा है। अभिधर्म में अभि शब्द का अर्थ अतिशय या विशेष है, अतः अभिधर्म का अर्थ विश्लेषण प्रतिपादित है तथा उनकी तात्त्विक और मनोवैज्ञानिक पद्धति से गणना की गयी है। अभिधर्मपिटक धर्म के स्वरूप विवेचन में गहराई में उतरता है। धम्मसंगणि सम्पूर्ण अभिधर्म साहित्य की प्रतिष्ठा है और इनके प्रतिष्ठा, विवेचन और विस्तार में ही सम्पूर्ण ग्रन्थ परिसमाप्त होता है। इस ग्रन्थ का प्रारम्भ कुशलत्रिक मात्रिक से होता है।

परम्परा के अनुसार महाराजा अशोक के पुत्र स्थविर महेन्द्र और उनके साथी भिक्षु पालित्रिपिक के साथ साथ अट्ठकथाओं को भी श्रीलंका ले गये। लेकिन इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता है। फिर भी प्राचीन सिंहली अट्ठकथाओं का अस्तित्व साहित्यिक साक्ष्यों के आधार पर प्रमाणित होता है और जिन प्राचीन सिंहली अट्ठकथाओं का उल्लेख मिलता है उनमें महाअट्ठकथा, महापच्चरी कुरन्दी, अन्धट्ठकथा, संखेप अट्ठकथा, आचरियानं समानट्ठ कथा एवं आगमनट्ठकथा आदि का उल्लेख अट्ठसालिनी में उपलब्ध होता है। अट्ठकथाओं की रचना बुद्ध के प्रायः एक हजार वर्ष बाद प्रारम्भ हुई और समय के इतने लम्बे व्यवधान के कारण इन अट्ठकथाओं की प्रामाणिकता उतनी सबल नहीं होती, यदि ये परम्परा प्राप्त प्राचीन सिंहली अट्ठकथाओं पर आधारित न होती, तो आचार्य बुद्धघोष द्वारा विरचित अभिधम्मपिटक की अट्ठकथाओं में सबसे पहला स्थान अट्ठासालिनी का होता है, जो धम्मसंगणि की अट्ठकथा है।

पालित्रिपिटक के बाद के साहित्य में वस्तुतः अट्ठसालिनी के समान गम्भीर एवं विचार प्रवण दूसरा ग्रन्थ है ही नहीं। महावंश के धम्मकिति विरचित परिवर्धित अंश के अनुसार बुद्धघोष ने अट्ठसालिनी की रचना श्रीलंका जाने से पहले की थी। महावंश के अनुसार बुद्धघोष ने ज्ञानोदय अट्ठसालिनी एवं त्रिपिटक पर एक संक्षिप्त अट्ठकथा श्रीलंका जाने से पहले लिखे थे यह निश्चित नहीं हो पाता है; क्योंकि श्रीलंका जाकर बुद्धघोष ने विसुद्धिमग्ग नामक ग्रन्थ की रचना की यह तो निश्चित है लेकिन अट्ठसालिनी उससे पहले की रचना है, यह निश्चित तौर पर प्रामाणित नहीं होता; क्योंकि अट्ठसालिनी की प्रारम्भिक गाथाओं में स्वयं आचार्य बुद्धघोष ने कहा है कि सभी कर्म स्थान चर्चा अभिज्ञा एवं विपश्यनाओं का वर्णन मैं विसुद्धिमग्ग में कर चुका हूँ। अतः यहाँ फिर उनका विवरण नहीं करूँगा। आचार्य बुद्धघोष के इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि अट्ठसालिनी निश्चय ही विसुद्धिमग्ग के बाद की रचना है। अभिधर्म के जिज्ञासुओं के लिए अट्ठसालिनी का चिन्तन, मनन कितना आवश्यक है, इसे स्वयं महसूस किया जा सकता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य बुद्धघोष का जन्म बोध गया के समीप हुआ था और यह बचपन से ही अत्यन्त कुशाग्रबुद्धि के थे। ये बचपन से ही शिल्प एवं तीनों वेदों में पारंगत थे, किन्तु इसमें तरह-तरह की विसंगतियाँ हैं।

❖

PB-15

प्राचीन भारतीय इतिहास के एक विश्वनीय स्रोत के रूप में पालि-साहित्य

डॉ. श्रीमती नीहारिका लाभ, ज़म्मू

इतिहास अतीत का विषय होने के कारण हमारी दृष्टि से ओझल होता है, किन्तु ज्ञान न केवल हमारे लिए गौरव का संवर्धन करता है, अपितु बहुधा हमारे भविष्य के लिए प्रेरणास्पद भी होता है। प्रश्न उठता है कि क्या जो कुछ भी कथा-कहानियों में हमें उपलब्ध होता है, उसे हमें आँख मूदकर सत्य मान लेना चाहिए या फिर अतिरंजनाओं तथा अनेकों बार विकृतियों से भी बचते हुए उन तथ्यों का निष्पक्ष व सन्तुलित आकलन करना चाहिए। अस्तु, इस कार्य में उपलब्ध स्रोत सामग्रियाँ हमें काफी सहायता पहुँचाती है।

प्राचीन भारत इतिहास के ज्ञान में पुरातात्विक साक्ष्यों के साथ ही वेद, ब्राह्मण, आरण्यक. संहिता, पुराण, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि अनेकों प्रकार के साहित्य हमारे लिए बहुमूल्य सिद्ध हुए हैं।

बुद्धकाल (7वीं शताब्दी ई. पू.) से लेकर गत कुछेक शताब्दियों तक पालि में प्रभूत साहित्य सर्जित हुए हैं और इनसे भारतीय इतिहास के अनेक आवृत्त पृष्ठ अनावृत्त होकर हमारे समक्ष उद्घाटित हो जाते है।

पालि त्रिपिटक जहाँ बुद्धकालीन भारतीय धर्म, अध्यात्म, दर्शन, संस्कृति, समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था, मनोरंजन के साधन आदि को विश्वसनीय ढंग से सूचित करते हैं, वहीं अनुपिटक पालि साहित्य से न केवल बुद्धकालीन इतिहास, अपितु अशोक, मिनाण्डर, कनिष्क, गुप्त-शासक, हर्षवर्द्धन, पाल, सेन आदि शासकों के समयों में बौद्ध धर्म के विकास का विस्तृत विवरण हमें उपलब्ध होता है। तक्षशिला, नालन्दा, ओदन्तपुरी, विक्रमशिला, वल्लभी आदि अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व के शैक्षिक केन्द्रों के बारे में तो विश्वनसीय जानकारी मिलती ही है, साथ ही श्रीलंका, म्यांमार, दक्षिण-पूर्व एशियाई, थाईलैण्ड, कम्बोडिया, चीन, जापान, कोरिया, मंगोलिया, पश्चिम एशिया आदि में बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार एवं भारत के साथ-साथ उनके सम्बन्ध के विविध आयाम भी प्रकाशित होते हैं। 'वंस साहित्य' इस दृष्टि से विशेष रूप सें उल्लेखनीय है, जिसमें बौद्ध धर्म के क्रमिक विकास का इतिहास हमें उपलब्ध होता है।

❖

PB-16

मिलिन्दपञ्हो का दार्शनिक वैशिष्ट्य

डॉ. विजय कुमार जैन, लखनऊ

मिलिन्दपञ्हो अनुपिटक साहित्य का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। पहली शताब्दी की इस रचना में राजा मिलिन्द और नागसेन का संवाद है। इसमें थेरवाद नय से बौद्धदर्शन का विवेचन किया गया है। फिर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी अपना एवं नयों से युक्त होने के कारण इसका दार्शनिक वैशिष्ट्य है। इसमें परवर्ती दार्शनिक परम्पराओं के बीज भी मिलते हैं। इस शोध पत्र में मिलिन्दहो में प्राप्त दार्शनिक सिद्धान्तों का विस्तार से विश्लेषण किया जाएगा।

❖

PB-17

धर्म के विकास में शाक्यों का योगदान

श्री नेत्रपाल सिंह बौह, वाराणसी

शाक्य वंश एक प्राचीन ऐतिहासिक क्षत्रिय वंश है। भारत वर्ष में ही नहीं, अपितु विश्व के इतिहास में यह अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। भगवान बुद्ध शाक्य वंश कुलोत्पन्न थे। इसलिए उन्हें पालि त्रिपिटक में 'शाक्यमुनि' के नाम से पुकारा जाता है। शाक्य लोग प्रमुख तीन शाक्य, कोलिम और मोरिय शाखाओं के रूप में विभक्त थे।

भगवान बुद्ध ने अपना प्रथम उपदेश सारनाथ में देकर , बोधगया पुनः वापस आ गये तथा कश्यप बन्धुओं को संघ में प्रव्रज्जित करके, राजगृह में राजा बिम्बसार को अपना उपासक बनाया। इसी समय बुद्ध अपने पिता राजा शुद्धोदन की सूचना पाकर शाक्यों की राजधानी कपिलवस्तु की ओर चल पड़े। शाक्यों ने भगवान् बुद्ध को न्योग्राधाराम महाविहार में ठहराया तथा भगवान् बुद्ध ने अपने पुत्र राहुल तथा मौसेरे भाई नन्द को संघ में प्रव्रजित किया। पालि त्रिपिटक के अनुसार शाक्य लोग बुद्ध के उपदेशों से इतने प्रभावित हुये कि उन्होंने अपने-अपने प्रत्येक शाक्य परिवार से एक तरुण शाक्य भिक्षु संघ में प्रव्रज्जित करने के लिए संकल्प लिया था। इसलिए ऐसा अनुमान लगाया गया है कि बुद्ध काल में शाक्य भिक्षुओं की संख्या 80,000 होगी, जिसमें अनुरुद्ध शाक्य, आनन्द शाक्य, भृगु शाक्य, किम्बिल शाक्य, देवदत्त शाक्य राजकुमार प्रमुख रूप से थे। आयुषन आनन्द शाक्य थेर ने बुद्ध द्वारा उपदेशित 84000 धर्म स्कन्धों में से 82000 धर्म स्कन्धों को कण्ठस्थ रखा था।

पालि परम्परा के अनुसार केवल शाक्य राजकुमारों में ही नहीं, अपितु शाक्य राजकुमारियों के द्वारा भी बुद्ध के धम्म में श्रद्धा देखी जा सकती है। बुद्ध की मौसी महाप्रजापति गौतमी ने अपने साथ 500 शाक्य राजकुमारियों को लेकर वैशाली में बुद्ध से धर्म दीक्षा लेकर प्रथम भिक्षुणी संघ की स्थापना की थी। महावंश टीका और महाबोधि वंश के अनुसार सम्राट् अशोक की माता धम्मा मोरिया, शाक्य राजकुमारी तथा पत्नी विदिसा महादेवी शाक्य राजकुमारी थी, जिसने महान् पुत्र महेन्द्र एवं पुत्री संघमित्रा को जन्म दिया था। इस समय तक मोरिय वंश की स्थापना अवश्य हो चुकी थी, परन्तु यहाँ यह ध्यान देना होगा कि मोरिप वंश, शाक्य मात्र है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PB-18

काव्यालङ्कार में भामह द्वारा प्रस्तुत बौद्ध-प्रमाण-मीमांसा : एक विश्लेषण

प्रो. विजय रानी, कुरुक्षेत्र

यदि भरत मुनि रस-सिद्धान्त के प्रवर्तक आचार्य होने के कारण भारतीय काव्यशास्त्र के जनक कहे जाते हैं, तो भामह भी अलङ्कारशास्त्र के प्रवर्तन और सूक्ष्म साहित्यिक विश्लेषण के कारण भारतीय-सौन्दर्यशास्त्र में अत्यन्त उच्च स्थान के अधिकारी हैं। उनका 'काव्यालङ्कार' नामक ग्रन्थ जो अलङ्कारशास्त्र का प्राचीनतम ग्रन्थ है, उनकी प्रतिष्ठा को सर्वोच्च शिखर पर पहुँचाने में पर्याप्त समर्थ है। इसके छः परिच्छेदों में से पञ्चम परिच्छेद पूर्णतः तर्कशास्त्र पर आधारित हैं, इसमें प्रत्यक्ष-अनुमानादि प्रमाणों के लक्षणों पर विशेष चर्चा की गई है। छठें परिच्छेद में शाब्द-बोध विषयक चर्चा करते हुए बौद्धों के अपोहवाद को भी प्रस्तुत किया गया है।

आचार्य भामह यद्यपि मूलतः एक काव्य मर्मज्ञ हैं, तथापि उनके प्रस्तुत ग्रन्थ काव्यालङ्कार से ज्ञात होता है कि वे एक बहुत अच्छे बौद्ध न्यायविद् और एक दार्शनिक भी हैं। काव्यालङ्कार के प्रारम्भिक श्लोक में ही उन्होंने 'मानसिक, शारीरिक और वाचिक कर्मों से उस परमशक्ति को प्रणाम किया है, जो 'सार्व' और 'सर्वदा' हैं। यों तो सामान्य रूप से 'सार्व' और 'सर्वज्ञ' पद क्रमशः सर्वहितकारी और सर्ववेत्ता के अर्थ में प्रयोग किए जाते हैं, लेकिन विशेष रूप से ये दोनों पद महात्मा बुद्ध के लिए प्रयोग किये जाते हैं; क्योंकि सम्यक्-सम्बोधि के बाद उन्हें समाज द्वारा सर्वज्ञ और सर्वहितैषी (सार्व) की उपाधि से विभूषित किया गया था।

यदि भामह के काल पर विचार किया जाए, तो उन्हें 400 ई. से 600 ई. के बीच कहीं निश्चित किया जा सकता है। यह समय भारतीय इतिहास में बौद्ध-धर्म-दर्शन और न्याय की उन्नति का सर्वश्रेष्ठ युग माना जा सकता है। इसी काल में बौद्ध न्याय के जनक आचार्य दिङ्नाग का आविर्भाव हुआ। भामह दिङ्नाग और उनके प्रमाण-मीमांसा सम्बन्धी विचारों से पूर्णतः परिचित थे और इतना ही नहीं, वे वसुबन्धु के भी प्रत्यक्षादि प्रमाणों के लक्षणों से पूर्णतः अभिज्ञ थे, क्योंकि भामह ने अपने 'काव्यालङ्कार' में बौद्धों के प्रमाणादि लक्षणों को प्रस्तुत कर उनका खण्डन भी तर्कपूर्ण विधि से किया है। प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य भामह द्वारा प्रस्तुत बौद्ध प्रमाण-मीमांसा सम्बन्धी ऐसे ही स्थलों को खोजकर उनका अध्ययन एवं विश्लेषण करना है।

❖

PB-19

बौद्धानुमत बाह्यार्थभंगवाद एवं योगभाष्यकार द्वारा उसकी आलोचना

श्री सुरेश कुमार, कुरुक्षेत्र

बुद्धि मानव को प्रदत्त एक विशिष्ट शक्ति है, जिसके आधार पर वह मनन करता है। जिज्ञासु दृश्यमान् जगत् और इसके सुन्दर-सुन्दर उपादानों को देखकर विचार करता है कि यह दृश्यमान जगत्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्य है या मिथ्या; क्योंकि उसकी चिन्तन परम्परा में कभी-कभी तो वह प्रत्यक्ष दिखाई देने वाली वस्तु को यथार्थ रूप से सत्य मान लेता है, तो कभी-कभी कहीं कोई वस्तु होती ही नहीं, फिर भी द्रष्टा वहाँ पर उस वस्तु के दर्शन करता है। इसी कारण दर्शन परम्परा में दो धाराएँ प्रचलित हो गई। (1) बाह्यार्थवाद (यथार्थवाद) और (2) बाह्यार्थभंगवाद (प्रत्ययवाद)। इन दोनों पदों में से प्रथम अर्थात् बाह्यार्थवाद से अभिप्राय बाह्यपदार्थ घट-पटादि की यथार्थ सत्ता को स्वीकार करने से है, जबकि बाह्यार्थभंगवाद से अभिप्राय बाह्य पदार्थ (घट-पटादि) की सत्ता को न स्वीकार करने से है। ये दोनों धाराएँ एक दूसरे के विरोध में बहती है।

बाह्यार्थवादी सम्प्रदायों के अन्तर्गत चार्वाक, सांख्य-योग, न्याय-वैशेषिक, पूर्वमीमांसा (कुमारिल एवं प्राभाकर) तथा जैनदर्शन के साथ-साथ बौद्धों के वैभाषिक एवं सौत्रान्तिक सम्प्रदायों की गणना की जा सकती है। दूसरी और बाह्यार्थभंगवादी सम्प्रदायों में शङ्कराचार्य के अद्वैतवेदान्त के अतिरिक्त बौद्धों के विज्ञानवादी और शून्यवादी सम्प्रदायों की गणना की जा सकती है।

दार्शनिक ग्रन्थों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि यथार्थवादी और प्रत्ययवादी दर्शनों में किन्ही बिन्दुओं को लेकर परस्पर संघर्ष रहा है। सांख्य-योग, न्याय-वैशेषिक, मीमांसा आदि यथार्थवादी सम्प्रदायों के ग्रन्थों में यत्र-तत्र कतिपय ऐसे सन्दर्भ उपलब्ध होते हैं, जहाँ पर उन्होंने प्रत्ययवादियों के क्षणभंगवाद, अनात्मवाद, बाह्यार्थभंगवाद, बाह्यार्थविवर्तवाद आदि सिद्धान्तों का खण्डन किया है।

प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य बौद्धों के बाह्यार्थभंगवाद के स्वरूप को दर्शाते हुए योगाचार्य भाष्यकार व्यास द्वारा इसकी आलोचना को प्रस्तुत करना है।

❖

PB-20

धर्मकीर्ति के अनुसार हेतु का स्वरूप

श्री देवी सिंह, कुरुक्षेत्र

भारतीय न्याय में बौद्धन्याय का अत्यन्त महत्त्व है। बौद्ध-न्याय के जनक आचार्य दिङ्नाग माने जाते हैं। जिन्होंने अन्य ग्रन्थों के साथ-साथ 'प्रमाणसमुच्चय' नामक ग्रन्थ के आधार पर न्याय-शास्त्र में सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर लिया। इनके परवर्ती आचार्यों में धर्मकीर्ति प्रमुख हैं, जो बुद्धिमत्ता में अपने गुरु से भी आगे थे। बौद्धन्याय पर इन्होंने अनेकानेक ग्रन्थ लिखे, जिनमें से 'प्रमाणवार्तिक' नामक ग्रन्थ सर्वप्रमुख है। इसके अतिरिक्त 'प्रमाणविनिश्चय', 'न्यायबिन्दु', 'हेतुबिन्दु', 'सम्बन्धान्तरपरीक्षा', 'वादन्याय' और 'सन्तानान्तरसिद्धि' आदि ग्रन्थ इनकी प्रतिभा में चार चाँद लगाते हैं। धर्मकीर्ति ने अपने ग्रन्थों में प्रमाणमीमांसा का विशेष विवेचन किया है। जिनमें से अनुमान प्रमाण पर बल देते हुए अनुमान के तीन अवयव स्वीकार किये हैं—प्रतिज्ञा, हेतु और दृष्टान्त। इन तीनों अवयवों में से भी अनुमान के लिए 'हेतु'

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की विशेष महत्ता है, जिसके स्वरूप और भेदादि पर धर्मकीर्ति ने अपने तीनों मुख्य ग्रन्थों (प्रमाणवार्तिक, न्यायबिन्दु, हेतुबिन्दु) में विस्तृत प्रकाश डाला है।

प्रस्तुत शोध-पत्र का प्रयोजन धर्मकीर्ति के विभिन्न ग्रन्थों के आधार पर 'हेतु' के स्वरूप पर विशेष विचार करना है। इन्होंने नैयायिकों के पञ्चरूपोपपन्न-हेतु के स्थान पर त्रैरूप्य-लिङ्ग की आवश्यकता पर बल दिया है और यह बहुत विस्तार से समझाया है कि पक्षसत्त्वादि तीनों रूपों की क्या-क्या प्रयोजनीयता है।

❖

PB-21

महाकवि शान्तिभिक्षुविरचित बुद्धविजयकाव्य में पारमिताओं का समीक्षण

डॉ. आर. के महाजन, फिल्लोर

बौद्ध धर्म में पारमिताओं का विशेष महत्त्व माना गया है। चित्त में बुद्धांकुर प्रस्फुरित होने के पश्चात् बोधिसत्त्वप्राप्ति हेतु जिन शिक्षाओं की ओर प्रयत्नशील होना होता था, उन्हें पारमिताएँ कहा गया है। बौद्ध दर्शन के ग्रन्थों में यद्यपि दस पारमिताओं का उल्लेख हुआ है, परन्तु इन पारमिताओं का समावेश प्रचलित छः पारमिताओं में ही हो जाता है। महायान साहित्य में वर्णित इन छः पारमिताओं के नाम हैं—दान-पारमिता, शीलपारमिता, क्षान्तिपारमिता, वीर्यपारमिता, ध्यानपारमिता, प्रज्ञापारमिता।

महाकवि शान्तिभिक्षु शास्त्री विरचित 'बुद्धविजय'-काव्य में इन पारमिताओं का विस्तृतरूपेण विवेचन हुआ है। भिक्षु जी ने सर्वप्रथम इन पारमिताओं का उल्लेख सुमेधा की कथा के प्रसंग में षष्ठ सर्ग में किया है।

महाकवि भिक्षु जी ने बुद्धविजय काव्य के सातवें सर्ग में 'दानपारमिता' की चर्चा करते हुए कहा है कि धन नहीं, पुत्र, पत्नी, यहाँ तक कि अपने शरीर तक को किसी की कार्यपूर्ति के लिए अर्पित करना दानपारमिता है। उनके अनुसार बोधिव्रत परायण दानचित्त के समुत्पन्न होने पर शीलव्रत में स्थित हो स्वच्छ आचरण करता है। मद्य मांसादि से विरत रहना, असत्य न बोलना, सब प्राणियों के हित में रत रहना ही शीलपारमिता है। क्षान्तिपारमिता का उल्लेख करते हुए भिक्षु जी ने जप, तप से तथा दान-शील से, युद्ध मन वाले का एकान्त विहार से धर्म को ग्रहण करना क्षमा कहा है और संसार में युद्ध, बन्ध, वध और अन्य पापों के मूल को अक्षमा कहा है। भिक्षु जी पुनः कहते हैं कि आलस्यरहित व्यक्ति को शुभ कार्यों को करते हुए समय को सार्थक व्यतीत करते हुए वीर्यसिद्धि उत्पन्न होती है।

इस प्रकार शान्तिभिक्षुशास्त्री जी ने अपने बुद्धविजयकाव्य में अनेकत्र इन षट्पारमिताओं का सुन्दर विश्लेषण किया है, इसमें सन्देह नहीं है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PB-22

Buddhism and Behavioural Dignity

DR. BAIDYANATH LABH, JAMMU

Indian philosophy in general and Buddhist philosophy in particular, believes in and seeks for complete elimination of suffering by way of eliminating desire—the root cause, and finally attainment of *nibbāna*. However, the uniqueness of Buddhism lies in the faith of human potential and actions only and there too, it emphasizes that there is no need of seeking for any Godly patronage, protection, blessings or even help. Instead, Buddhism suggets performing moral actios, which are indeed the basic factor for one's purification inwardly as well as outwardly—'*tumhehi kiccaṃ ātappaṃ, akkhātāro tathāgatā*'. A person gets impure or purified due to his own actions and nobody purifies or pollutes him '*attanā va kataṃ pāpaṃ.....attanā va visujjhati. Suddhi asuddhi paccataṃ nāñño aññaṃ visodhaye*'. While performing actions, a person interacts with others and this makes him a social being. Though nibbāna is a personal achivement, its path goes through society in the sense that the seeker cannot live in complete isolation. Even in case of a recluse, a person has to depend on the society for fooding, clothing, etc. On the other hand, if a person leads a worldly life and is confined to his spouse and children or family only, his outlook too, becomes narrow, but when he enlarges his love and atachment towards society, nation and even the enitre world, his love develops from physical to purely emotional and transforms into universal love, loving kindness or friendliness and his selfish attachment turns into unbounded detachment. It helps him in becoming socially and amiably acceptable and inwardly calm and cool, and if he practices such an attitude continuously, it leads him to the state of *nibbāna*.

While performing physical and vocal actions, a person interacts with others. Buddhism teaches him to have full self-confidence or faith unto himself, rational approach towards life, a sense of equality with others, kind and compassionate outlooks humanistic as well as balanced and civic behaviour. These qualities make him dignified and respectful.

The paper discusses and highlights in details the behavioural dignity and humanistic face of Buddhism.

❖

PB-23

Concept of Māra in Buddhist Literature

DR. NARASINGHA CHARAN PANDA, VARANASI

Māra is a multi-layered concept in the Buddhist literature. The term *māra* is derived from the root *mṛ* with the suffix *ghañ*, meaning to kill, to slay, etc. In the Amarakośa, Māra

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

is stated as an epithet of Madana, the god of Kāma (*madano manmatho māraḥ* : I.1.25). Māra is a demon in Buddhist legends, who with his followers, tried to tempt Buddha to desist from meditaiton. he is known as Namuci (lit. 'non-liberator', i.e. opponent of liberation) in the texts like : Mahāvastu (II.26.2), Lalitavistara (XXI.173), and Suttanipāta (426). He appears in the texts both as a real person (as a deity) and as personification of evil and passions, of the totality of worldly existence and of death. The Māra has designated himself as the Lord of Kāma and advised Bodhisattva to leave *sādhanā* and come under his shelter, as he rules over all creatures, including gods, demons and human beings (*kamesvaro'smi vasita iha sarvaloke*.....Lalitavistara XXI.165). According to Suttanipāta (Padhānasutta III.2) when Buddha was meditating near Neranjanā river, Māra tried in vain, to obstruct his attainment of enlightenment. In spite of several obstrucitons by Māra, Buddha was not disappointed. He addressed Māra as an evil one and said : *kāma* is your first *senā*; discontent (*arati*) is called your second; your third is hunger and thirst (*khuppipāsā*); the fourth is called craving (*taṇhā*). Sloth and torper (*thinamiddham*) are your fifth; the sixth is called fear (*bhīru*); your seventh is doubt (*vicakicchā*); hypocrisy and obstinacy (*makkhothambho*) are your eighth *senā*. The Māra had Chased Buddha for seven years, looking for any weakness in him but finally Māra failed to get an opportunity against the fully enlightened one, who possesses mindfulness (Suttanipāta 446).

The Mahāvastu (Chs XXVI, XXXVI) describes in detail regarding Māra's great powers, ebullient attributes, dreadful associates and evil intension, through which he tries to control over Bodhisattva. The Buddhacarita (Ch. XXI) also clearly elaorates Māra's true nature and deeds. Some other texts like Dhammapada, Visudhimagga, etc. also record Māra's wicked desire and his unholy associates to disturb Bodhisattva's mind for not allowing him to obtain *nirvāṇa* (liberation). These texts define Māra as an 'evil power', 'temper' or an anti-spiritual *śakti* in the field of *sādhanā*—for going towards enlightenment.

An attempt will be made in this paper to highlight various aspects of Māra as recorded in the Buddhist literature.

❖

PB-24

Bharat Singh Upadhyaya and His Contribution to Pali and Buddhist Studies

SANGHASEN SINGH, NEW DELHI

Born in 1915, Bharat Singh Upadhyaya's contribution to Pali and Budhist Studies is unique and according to some Buddhologists, unparalleled. The merits and extent of his writings can only be adjudged by a combined team of Buddhologists and Hindi scholars.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

An attempt in this direction has revealed that Dr. Bharat Singh Upadhyaya represented a rare combination of a scholar, a saint and a philosopher of the highest order.

Dr. Upadhyaya's first book entitled 'Buddha Darsana Tatha Anya Bharatiya Darsana' (The Buddhist Philosophy And Other Indian Pholosophies) was published in 1944 which fetched him an award by the Bangal Hindi Mandala during the same year. Dr. Upadhyaya was a prolific writer and his last book was his magnum opus, entitled the Mahabuddhavatthu in Pali in six volumes (covering more than 2,500 printed pages).

He was a man of very few words and therefore, his colleagues would call him a Pacceka-buddha.

Dr. Upadhyaya did not believe in rituals, nor in astrological calculations. But at the same time he did not confront any body on these sensitive matters. As was his nature, he naver criticized the tenets of any other religion.

As is evident on the basis of his writings, during the later phase of his life Dr. Upadhyaya leaned towards Dhyana System of Buddhism. In this context, it may also be emphasized that *bhakti* or devotion towards the Buddha became a dominant feature or Dr. Upadhyaya's life and he, if fact, lived with it till he breathed his last.

❖

PB-25

Buddhism in Sikkim with special reference to Sikkimese Buddhist culture

DR. BANDANA MUKHERJEE, KOLKATA

Sikkim, the land of Denzong is rich in culture. Although the kingdom of Sikkim was established in the vicinity of Nepal as a new kingdom by a brave and mighty ruler Phuntshong Namgyal in 17th century A.D. but it has a greater proximity with regard to its culture and religion, to Tibet. In Nepalese dialect the word Sikkim means a new place or a 'new kingdom'. On the other hand the Tibetans call this place *'denzong'*, which means 'land of rice'.

In this paper as attempt is made to discuss Buddhism in Sikkim and Sikkimese Buddhist culture.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PB-26

The Text of Vasundharāvratotpattyavadans : A Sanskrit Buddhist Narrative

PROF. DR. RATNA BASU, KOLKATA

The hitherto unpubhished text of *Vasundarāvratotpattyavadana* (VVA) is available in the holding of the Asiatic Society of Bengal, Kolkata; manuscript no. B 44 in the B.H. Hodgson collection of Sankrit Buddhist Texts brought from Nepalese sources. This ms. has been documented in details, by R.L. Mitra in the well-known work *'The Sanskrit Buddhist Literature of Nepal*, pp.266-270 (Calcutta 1882, rpt. 1971). The present author is involved in preparing a text-critical edition of the text available in the aforementioned collection in Hewari script.

The text of VVA, a Bhudhist *avadana* of later period deserves our attention for its style of narration in verses which are suited to musical tune, for the language which is rich in diction and often takes freedom of deviating from the Pāṇinian grammatical forms to suit the metrical measure and tune so far, it does not stand in way of understanding of the listener. The sociocultural tradition of worshipping the mother earth as goddess for peace, prosperity.

❖

PB-27

Buddhist Concepetion of a True Brahmin : A Study

SAHELI DAS, KOLKATA

Religion exists in a social setting. The Hindu society had a four-fold division, viz., Brāhmaṇa, Kṣatriya, Vaiśya and Śūdra. The earliest literary monument, i.e., Ṛgveda [Puruṣa Pūjra X.90.12] furnishes information about the creation of four-fold divisions. This professional class system was crystallized into caste system, in the course of time. But in Gītā [IV.13], Lord Kṛṣṇa stated that he had created four orders on the basis of guṇa and karma, i.e., quality and work. Similar opinion is propounded by Lord Baddha in his teachings. Actually, Brahmins (Brahmaṇas) got, rather took the superiority in the social framework. Lord Buddha was against this hereditary concept of Brahmin and he established his own theory about a true Brahmiṇ.

The objective of the present study is the Buddhist conception of a true Brahmin based on the materials culled from the Pali Canonical literature.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PB-28

The Concept of Brāhmaṇa : According to Buddhism

DR. V.K. HAMPIHOLI, KUMTA

The term *Brāhmaṇa* has wide connotation in India and in Indian culture. We come across this term in the *Vedas*, the *Sūtras* and in the literature. The term denotes the superior man, the intetectual man, the soul realised man, the texts relating to sacrifice, the things relating to *Brahma* and a set of *mantras*. The Bṛhadāraṇyakopaniṣad defines the term as a man who knows the reality. Brāhmaṇa was known for his character, intelligence, austerity, self command, charity, truthfulness, cleanliness, compassion, knowledge, wisdom and belief in the God. He was respected in the society. He was leading his life for the welfare of the society. Hence all the members of the society were showing respect to him.

Gautama Buddha the profounder of Buddhism, has great regard towards Brāhmanas. The Dhammapada which is ascribed to Bhuddha, defines and describes Brāhmana in detail. The definition and the description clearly mention that Brāhmana was a good man. He was thinking about the welfare or the society. It seems that Buddha was not against of Brāhmana or the concept Brāhmana. It is known that Buddha was against of priests and priesthood.

The paper describes the qualities of Brāhmana depicted in the Dhammapada and shows the importance of him in the society.

❖

PB-29

The Position of Women in Early Buddhism

DR. K.K. AMBIKADEVI

There is a story in Majjhimanikaya as an example for the attitude of Buddha towards women. When King Pasenadi of Kosala heard the news of the birth of a girlchild to his Queen Mallika he was disappointed. Buddha said to him, 'A woman child, Oh Lord of Men, may prove even a better offspring than a man'. Many instances of this consideration and courtsey have been shown by Buddha towards woman. Buddha was a great reformer not only in the field of religion but also in the field of social progress. He was also responsible for some improvement in the status of women. Some testimonials are available in support of such assertions.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

In this paper I have tried to analyse the position of women during the life time of Buddha and afterwards based on the materials in the early Buddhist texts like Jātakas, Milindapanha, Nikāyas, Vinayapitakas and Therigāthās.

❖

PB-30

Sanghavedavastu Leading to Diversity in The Buddhist Thought

DR. ANANDAMAYEE GHOSH, SANTINIKATAN

Gautama the Buddha founded an organization 'sangha', monastic in character but democratic in structure, Every individual belonging to the sangha had the freedom of speech to express one's own opinion. As a result of that in course of time there had been division of opinion amounting to Sanghaveda. In the Mūlasarvāstivāda Vinaya (MSV) in Sanskrit found in fragments from Central Asia and that from Gilgit in Kasmir preserved the account of devision in Sangha during the life time of Buddha among the Kosambi monks, Gautama the Buddha, the leader of the monastic organization, intervened to settle the dispute among them.

In the history of Buddhism Sanghavedavastu was the primary case to bring out diversity in ideas and organization. The paper attempts to deal with the account of Sanghaveda from the MSV and aims to justify the pluralistic growth of Sangha, not only in India but also in the countries like China, Japan, and South-East Asia where Buddhism prevails till date.

❖

PB-31

The Mahajjātakamālā (MJM) A Critical Study

SMT. KAKALI, GHOSH, KOLKATA

In the galaxy of *Avadāna* Literature of the Buddhist tradition in Sanskrit Language, *Mahajjātakamālā* is a brilliant collecion of poetic versions of a large number of *Avadānas*. At it is a very big storehouse of narratives, variety is its structure and essence is quite obvious. Thanks to the monumental research work *'Do grosse Legendenkranz (Mahajjātakamālā)'* of the renounced Indologist and Indo-Tibetologist Prof. Dr. Hichael Hahn, Bonn, Germany. The text is published about tow decades ago and is avilable to us in printed form. Like many other narrative works of the Buddhists, here in this collection also, no watertight-compartment has been made between the *Jātakas* and *Avadānas*. In fact, those narrative stories illustrate and evaluate the *Avadānas*, i.e. the note worthy or heroic

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

deeds of the *Jātakas*, i.e. of the *Bodhisattvas*, the heroes of the stories. No reference of the text is found in the standard works on Historical Literatures and Buddhist Literatures, as well, obviously because of the unavailability of the same.

The present paper aims to cover only the above-noted three stories at the beginning of MJM for a total documentation of grammatical usages, literary style and critical observation of the content, Buddhist conceptual words and the narrative structure as a whole.

❖

BP-32

The Decline of Buddhism in India

DR. RAM NANDAN SINGH, JAMMU

Buddhism sprang into existence in the sixth century B.C. In fact, it was a reformation movement against the violation of human dignity, exploitation, inequality, discrimination based on birth and some other negative dispensation. Budhdism was, undoubtedly, a reigning religion in India. However, as the time rolled by Buddhism declined and almost disappeared from the land of its origin.

Finally, it is essential to learn a lesson from the historical event. It has been rightly said that those who forget history are condemned to repeat it. In this background, a critical study of the decline of Buddhism is urgently needed to avoid further decline of living Buddhism in India.

❖

PB-33

Buddhist Tilakkhaṇa : its different perceptibility in our life

MS. DIPA DAS, C.U.

It is a known fact that our mind is restless. It goes from one object to another within no time and thus it becomes defiled. It is true that mind itself is very pure in nature, but when it comes under the influence of five hindrences viz., *Kāmacchanda, Vyāpāda, Thīnamiddha, Uddhaccakukkucca, Vicikicchā* it becomes polluted. So, we cannot, perceive that all conditioned things are impermanent (*anicca*), unsatisfactory or sufferings (*dukkha*) and non self (*anattā*). *Anicca, Dukkha*, and *Anattā* are the three terms which occur in the Buddhist texts in connection with all discussions, relating to the principal characteristics of Buddhist thought and these are the three cardinal doctines or *Tilakkhaṇa* of Buddha's teachings which form the core of Buddhist philosophy.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Section - 7

PRAKRIT & JAINISM

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PJ-1

जैनदर्शने चतुर्दशगुणस्थानानि – एकं परिशीलनम्

डॉ. प्रेमलालशर्मा, होशियारपुरम्

गुणशब्देन जैनदर्शने एको भिन्नार्थ एवाधिगम्यते। तथा हि गुणशब्दोऽनेकेष्वर्थेषु दृष्टप्रयोगः कदाचिद्रूपादिषु रूपादयो गुणा इति, क्वचिद् भागार्थाय प्रवर्तते द्विगुणस्त्रिगुणे वा लाभः कदाचित् परोपकारार्थे गुणज्ञ उपकारज्ञ इति यावत्। एवमेवानेकेष्वर्थेषु प्रसंगवशादसौ प्रयुज्यते इति जैनागमसिद्धान्तः। एवमेव यस्य माहात्म्येन द्रव्यं द्रव्यान्तराद् भिद्यते स नाम गुणशब्देनोच्यते। गुणो हि द्रव्यसमवायमध्ये एकं द्रव्यमपरास्मात् पृथक् करोति। तस्माद् यावद्द्रव्यभाविनः सकलपर्यायानुवर्तिनो गुणाः वस्तुरूपरसगन्धस्पर्शादयो विद्यन्ते। कश्चनापि गुणो न कस्यापि गुणस्य अन्तर्भारी भवतीति, नाधारो नापि चाधेय इति। एतेन शब्दोऽयं गुणोऽनेकस्मिन्नर्थे प्रयुज्यमानः सन्नपि अर्थजातं यतो यावत् स्याद् अनन्तगुणात्मकञ्च भवेत्, सचेतन आत्माऽनन्तधर्मात्मको नु भवेत् स एवात्र गुणशब्देनाधिगन्तव्यः।

आत्मनो ये भावाः परिणामा वा गुणशब्देनात्राभिप्रेताः। ते चात्मिका भावाः पञ्चविधा भवन्ति औदयिकौपशमिक-क्षायिक-क्षयोपशमिक-पारिणामिक-भेदात्। कार्मणपुद्गलानामुदयाद् आत्मन औदयिकपरिणामो जायते। तेषामेवोपशमनात् संवराद् वा तस्यौपशमिको भावो जायते। कार्मणप्रोद्गलानां निर्जरावशाद् आत्मनो यः परिणामनिष्पद्यते स क्षणिको निगद्यते। केषाञ्च कार्मणपुद्गलानां निर्जरावशात् केषाञ्चित् प्रशमनात् निष्पद्यत आत्मनः क्षयोपशामिकः परिणामः। कार्मणपुद्गलानां जीवे निष्पद्यमानाः प्राकृता भावाः पारिणामिकाः निगद्यन्ते।

तस्माज्जीवस्य संसारावस्थातः मोक्षपर्यन्तं ये भावाः परिणामा वाऽऽपतन्ति ते खल्वत्र गुणस्थान्नानीति। इदमत्र विधेयं शुक्ललेश्योदयादथ वा शुभलेश्योदयाद् जीवस्य कषायक्षरणे सति क्रमिको विकासो निष्पद्यतेऽशुभानां कर्मप्रकृतीनां निरासश्च जायते इत्येतावदेवात्र जीवस्य गुणस्थानेति संज्ञयाऽभिज्ञायते। आत्मनः क्रमिकविकासावस्था गुणस्थानमिति तात्पर्यार्थः।

❖

PJ-2

जैनदर्शने कालस्य द्रव्यत्वमनस्तिकायत्वञ्च

डॉ. धर्मचन्द्रजैनः, जोधपुरम्

कालस्य द्रव्यत्वमधिकृत्य जैनदार्शनिकाः न सन्त्येकमताः। दिगम्बरपरम्परायान्तु निर्विवादरूपेण कालस्य द्रव्यत्वमङ्गीकृतम्, किन्तु श्वेताम्बराचार्याः मतद्वयं प्रस्तुवन्ति। ये कालस्य पृथग्द्रव्यत्वं नाङ्गीकुर्वन्ति ते कथयन्ति यद् धर्मास्तिकायादिद्रव्याणां पर्याय एव कालोऽस्ति, तस्य पृथगस्तित्वं न सिध्यति। तेषां प्रतिपादने व्याख्या प्रज्ञप्तिसूत्रस्य संवादोऽपि आधारः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैनाचार्यः कालस्य द्रव्यत्वमपि विभिन्नैः तर्कैः साधितम्। उत्तराध्ययनसूत्रे (28.7) षड्द्रव्येषु कालस्य स्पष्टरूपेण गणना विहिता—'धम्मो अहम्मो आगासं, कालो पुग्गल जंतवो।' आचार्यैः केचन अन्येऽपि तर्काः प्रस्तुताः, यथा—'धर्मास्तिकायादीनि द्रव्याणि यद्यपि स्वतः वर्तन्ते, परिणमनशीलानि च भवन्ति, तथापि तेषां वर्तनायां परिणमनादिकार्ये च यत् निमित्तं, स एव कालः। 2. सभयावर्लिकामुहूर्त्तादिविशेषस्वरूपाधारेण कालस्य सिद्धिर्भवति। 3. लोके वलिकामुहूर्त्तादिविशेषस्वरूपाधारेण कालस्य सिद्धिर्भवति। 3. लोके नानाविधः ऋतुभेदोऽवाप्यते, तस्य कारणं काल एव। 4. भूतभविष्यद्वर्तमानव्यवहारोऽपि कालद्रव्यं विना नैव सम्भवति। इत्थं विभिन्नैः तर्कैः कालस्य द्रव्यत्वं साधितम्। अन्येषु द्रव्येषु यथा गुणपर्यायवद्द्रव्यमिति लक्षणं घटते तथैव कालेऽपि एतल्लक्षणं सिध्यति। कालोऽपि वर्तनाहेतुत्वसूक्ष्मत्वामूर्तत्वादिगुणयुक्तो पर्यायपरिणामनाच्च पर्याययुक्तोऽपि भवति।

कालो द्रव्यं भूत्वाऽपि 'अनस्तिकाय' एव, यतो हि कालो असम्बद्धकालाणुषु विभक्तोऽस्ति। अस्य प्रदेशप्रचयो अखण्डस्वरूपं वा नावलोक्यते। काले द्रव्यस्य लक्षणन्तु घटते, किन्तु अस्तिकायस्य लक्षणं नैव घटतेऽतोऽयमस्त्यनस्तिकायः।

कालस्य द्रव्यत्वाद्रव्यत्वे द्रव्यत्वपक्ष एव साधुः प्रतीयते। आगमेष्वप्यस्य पुष्टिर्भूयो भूयो जायते। तत्र कालस्य स्थाने 'अद्धासमय' शब्दस्य प्रयोगोऽधिकतयाऽवलोक्यते। षड्द्रव्येषु आल्पबहुत्वप्रसङ्गे प्रोक्तं यत् 1. धर्मास्तिकायः, 2. अधर्मास्तिकायः, 3. आकाशास्तिकायश्च त्रयोऽपि तुल्याः द्रव्यापेक्षया सर्वतोऽल्पाः। 4. जीवास्तिकायस्ततो द्रव्यापेक्षया अनन्तगुणः, 5. पुद्गलास्तिकायस्ततोऽप्यनन्तगुणः, 6. अद्धासमयः (कालः) ततोऽप्यनन्तगुणः। कालस्याणवः आकाशप्रदेशेष्वस्थिताः भूत्वा सर्वेषामन्यद्रव्याणां वर्तना-परिणाम-क्रिया-परत्वापरत्वेषूपग्रहकारकाः भवन्ति। वर्तनालक्षणः कालः पारमार्थिकः, परिणामादिलक्षणः परत्वापरत्वलक्षणश्च व्यावहारिकः। समयाऽऽवतिकामुहूर्त्तादिलक्षणोऽपि कालः व्यावहारिकः। कालाणवः स्निग्धरुक्षादिगुणविरहिता अतः परस्परमसम्बद्धाः प्रचयरहिताश्च भवन्ति। एतदेव कारणं यदस्यास्तिकायत्वं नैव सिध्यति।

❖

PJ-3

भगवमहावीरस्य जीवगदरिसणं

डॉ. हरिशंकरपाण्डेय

जइणाद्धमागही आगमगंत्थेसु आयारंगसुत्तस्य पसिद्धत्तणं पाईणत्तफं रमणिज्जत्तणं सीयरियमत्थि। आयारंगसुत्तस्य पढमसुयक्खंधस्स नवमज्झययणम्मि भगवस्स नायपुत्तस्य अणागारस्स विविहाभिहाणाभिहियस्य महावीरस्स जीवणचरया तवचरां ज्ज्ञाणपयारं य वण्णिअमत्थि। तमासरिय भगवस्य महावीरस्य जीवणदरिसणमहं वण्णेमि त्ति पइण्णाविसेसओ।

जीवणस्सोत्थणं पइ दिट्ठीकरेणं जीवणदरिसणं होइ। जीवणोत्थाणस्य तत्ताइं आयरिव्वाइं ताइं सव्वाइं जीवणदरिसणे वण्णणिअव्वाइं अत्थि। भगवमहावीरो संकप्पसत्ति-सीगरीयमग्गें—अण्णण्णसद्धा-दिढविस्सास-सययसाहणायरणज्झाणायरण-तवायारणादियाइं सम्मंस्वेण आयरिऊण सेट्ठसिवतित्थयरपयं लहीअ। सयं संसारसागरं तरिऊण अणंतजीवा वि तारीअ। अस्सि सोहप्पबंधे उवज्जुत्ताइं तत्ताइं एवं आगमसत्थाणुसारेण वण्णिआइं अत्थि।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PJ-4

जैन साहित्य में स्त्री-विमर्श

श्री रजनीश शुक्ल, उदयपुर

जैन दर्शन, इतिहास एवं सामाजिक परिपेक्ष्य में नारी का क्या स्थान है, इसका विश्लेषण करने के लिए हमें जैन साहित्य पर विंहगम दृष्टि डालनी होगी। जैन धर्म में प्रत्येक आत्मा का अन्तिमलक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति माना गया है। आत्मा पर लगे पुद्गलों का क्षय करने से ही मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होता है तथा इसकी प्राप्ति मनुष्य योनि द्वारा ही संभव है, अन्य योनि में नहीं।

आदि संस्कृत की परम्परा के जनक प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव थे, जिनका वर्णन वेद एवं पुराणों में भी मिलता है। विश्व की सभी प्राचीन संस्कृतियों में वे पूज्य हैं। उन्होंने सर्वप्रथम अंक विद्या और लिपि विद्या अपनी पुत्रियों सुन्दरी और ब्राह्मी को प्रदान की थी। आज भी ब्राह्मी लिपि संसार की प्राचीनतम लिपियों में प्रमुख मानी जाती हैं। सुन्दरी और ब्राह्मी का वर्णन उस युग की नारी के स्वरूप का उत्कृष्ट उदाहरण है।

मैगस्थनीज की इंडिका (तीसरी सदी ई. पू.) में वर्णित लेखों से ज्ञात होता है कि आर्यों के पूर्व जो संस्कृति थी, वह श्रमण संस्कृति थी।

जैन परम्परा में प्राग्वैदिक युग से आज तक श्राविका तथा भिक्षुणी बनने वाली असंख्य नारियाँ नियमित रूप से शास्त्र का अध्ययन करती तथा तीर्थकरों के तीर्थ चतुर्विध संघ में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान होता था।

जहाँ सांसारिक जीवन में नर-नारी सम्मिलित होकर जीवन संग्राम में अवतीर्ण होते हैं और पारस्परिक सहयोग से जीवन को सुखमय बनाने की चेष्टा में रहते हैं, वहीं आध्यात्मिक क्षेत्र में अग्रसर होने वाले नरनारी दोनों ही समान रूप से चरम उत्कर्ष की प्राप्ति कर सकते हैं।

जैन साहित्य के अनुसार मुक्ति का दरवाजा भी एक स्त्री द्वारा खोला गया। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की माता मरुदेवी मोक्ष जाने वालो में सबसे प्रथम थी। यह स्त्री जाति के लिये अति गौरव का विषय है। वैदिक सभ्यता से पूर्व सिन्धु सभ्यता में मातृदेवी की मूर्ति मिली है तथा सभी आदि को प्राचीनतम संस्कृतियों जैसे बेबीलोन, सीरिया, मिस्र श्रमण संस्कृति की देन कहा जा सकता है। सरस्वती देवी की सबसे प्राचीन मूर्ति मथुरा के कंकाली टीले में प्राप्त जैन सरस्वती है।

जैन साहित्य में संतान कामना की गयी है, लेकिन सिर्फ पुत्र की प्राप्ति की इच्छा ही नहीं। जब कि वैदिक साहित्य में हम देखते है कि जहाँ एक ओर 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' अर्थात् जहाँ स्त्री की पूजा होती है, वहाँ देवता वास करते हैं, का वर्णन है। जैन दर्शन कर्म प्रधान है तथा प्रत्येक आत्मा चाहे वो स्त्री की हो या पुरुष की हो, ईश्वरत्व प्राप्त कर सकता है। आगमों में पुत्र को किसी प्रकार का धार्मिक महत्व नहीं दिया गया है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PJ-5

आदिपुराण का वास्तुपरक विश्लेषण

डॉ. श्रीमती कृष्णा जैन, ग्वालियर

भारतीय दृष्टिकोण से स्थापत्य का सम्पूर्ण भूमण्डल ही नहीं सम्पूर्ण विश्व ही प्रतिपाद्य विषय है, कोई भी निर्मित 'वास्तु' है कोई भी योजना 'वास्तु' है, पृथ्वी पर जितनी भी सृष्टि है, वह सभी 'वास्तु' है।

पुराणों का यह वैशिष्ट्य है कि वे अपने काल के ज्ञान कोश हुआ करते हैं, उनमें इतिहास के अतिरिक्त सामाजिक, धार्मिक बातों का विशेष रूप से समावेश पाया जाता है। महापुराण जैन पुराणों में मुकुट मणिरूप है। आचार्य जिनसेन की यह कृति संस्कृत साहित्य का एक अनुपम रत्न हैं। यह महाकाव्य है, धर्मकथा है, धर्मशास्त्र है, वास्तुशास्त्र है, राजनीति एवं आचार शास्त्र है और युग की आद्य व्यवस्था को बतलाने वाला महान् इतिहास है।

भवन निवेश के लिए पुर निवेश पहली इकाई है। पुर निवेश के अन्तर्गत प्राचीन काल के नगर निवेश अर्थात् टाउन प्लानिंग में सबसे पहले रक्षा, यातायात एवं स्थानादि विभाग के लिए चारों दिशाओं एवं चारों उपदिशाओं में महाद्वारों एवं पक्षद्वारों का विधान परमावश्यक था। गोपुर द्वार प्रतोली, पौरि आदि भी प्राचीन परम्परा में प्राप्त होते हैं। नगर का चारों ओर प्राकार वलय पर आश्रित था। अतः प्राकार रचना, परिखा खनन, वप्र निर्माण, अट्टालक विनिवेश आदि नगर निवेश के प्रमुख अंग हैं। साथ ही साथ नगर के मार्गों राजमार्ग, रथमार्ग, यानमार्ग, घण्टामार्ग आदि नानावर्गीय प्रधानमार्गों तथा प्रतोली (गंली) आदि उपमार्गों पर आश्रित थी।

आदिपुराण में पुर निवेश की सभी विशेषताओं को समाहित किया गया है। एवं आचार्य जिनसेन द्वारा प्रणीत इह महापुराण में वास्तु के नियमों को ध्यान में रखते हुए ही नगर, राजधानी, राजभवन, जिनालय आदि की रचना हुई है। इन सभी का वास्तुपरक विश्लेषण विशेषकर समरांगणसूत्रधार के आधार पर करने का प्रयास किया गया है। विस्तार भय के कारण कुछ प्रमुख सिद्धान्तों का संकेत मात्र किया गया है; क्योंकि अयोध्या एवं अलङ्कापुरी का वर्णन, समवशरण का अलंकारिक वर्णन इतना विस्तृत एवं भव्य है कि उन सभी पर एक-एक स्वतन्त्र आलेख लिखा जा सकता है।

वास्तु एवं ज्योतिष का घनिष्ठ सम्बन्ध है, जहाँ मनुष्य वास्तु के अनुसार अपने भवन, नगर आदि का विन्यास करता है, वहीं वास्तु शान्ति, वास्तु पूजन आदि क्रियाओं को गृहप्रवेश के अवसर पर सम्पन्न करता है। वास्तु एवं ज्योतिष की इसी युति सम्बन्ध की ओर यह पक्तियाँ हमारा ध्यान आकृष्ट कराती हैं; क्योंकि वास्तु शास्त्र जहाँ वास्तु शिल्प या निर्माण की बात करता है, वहीं वास्तु में निवास करने वाले प्राणियों के रक्षण, पोषण एवं परिवर्द्धन के उपायों का चिन्तन भी करता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तुत शोध पत्र में आदि पुराण की वास्तुपरक व्याख्या करने का संक्षिप्त उपक्रम किया गया है, जिसमें जिनालय, महाराज ऋषभ द्वारा देशों का विभाजन, उनका निर्माण, इन्द्र द्वारा अयोध्या की रचना, अलका पुरी का वैशिष्ट्य विजयार्ध पर्वत के नंगर, वसति विन्यास, कूप, जलाशय, परिखा, सुरक्षा आदि की दृष्टि से अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

❖

PJ-6

गृहस्थाचार : जैन ग्रन्थों के सन्दर्भ में

डॉ. सुदर्शन मिश्र, आरा

आचार शब्द प्रायः धर्म का समानार्थक शब्द ही माना जाता है। मनु ने 'दशकं धर्मलक्षणम्' के द्वारा आचार को ही विशेष स्पष्ट करने की चेष्टा की है। जैनधर्म में तो इसका महत्त्व और अधिक है। जैनधर्म में व्रतों के दो स्तर स्थापित किये गये हैं—अणु और महत् अर्थात् एक देश और सर्वदेश। व्रतों के अणु और महत्—इन दो विभागों द्वारा गृहस्थ और साधु आचार के बीच समानता और भेद बतलाने वाली स्पष्ट रेखा खींच दी गई है।

जैन ग्रन्थों में सम्यक् दर्शन को गृहस्थ धर्म का प्रवेश द्वार माना गया है तथा कषाय जय को गृहस्थ धर्म की साधना की आधारभूमि। गृहस्थों के लिए द्यूत-क्रीड़ा, मद्यपान, मांसाहार, वेश्यागमन, परस्त्रीगमन, शिकार और चौर्यकर्म—इन सप्त दुर्व्यसनों के त्याग पर बल दिया गया है। हेमचन्द्र ने अणुव्रत साधना के पूर्व 35 मार्गानुसारी गुणों का विवेचन किया है जो गृहस्थों के लिए आवश्यक आचार के रूप में प्रतिपादित है।

❖

PJ-7

जैनाचार साहित्य : एक अध्ययन

कुमार शिव शंकर, आरा

जहाँ तक आचार-विषयक साहित्य की बात है, वह बहुत विशाल है। आज इस वैज्ञानिक युग में भी आचारसम्बन्धी ग्रन्थों से आपूरित ऐसे ग्रन्थागार और ग्रन्थ भण्डार हैं, जहाँ अभी तक विषयानुसार पुस्तक-सूची तैयार करना दुष्कर कार्य समझा जाता है। इस साहित्य की विशालता का प्रधान कारण यह कहा जा सकता है कि प्राचीन काल से ही धर्म और अध्यात्मचर्या विषयक जो ग्रन्थ लिखे गये, उनमें आचार से अछूता शायद ही कोई ग्रन्थ बचा हो। इन सभी धार्मिक ग्रन्थों में मानव के चरित्र को निर्मल एवं उज्ज्वल बनाने के यथासम्भव सभी प्रयत्न किये गये हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैन श्वेताम्बर और दिगम्बर आगम ग्रन्थों में शायद ही कोई ऐसा ग्रन्थ हो, जिसमें आचार की चर्चा न आयी हो। जैन-परम्परा में मूलाचार जैसे अनेक स्वतन्त्र ग्रन्थ भी आचार प्रतिपादन के लिए रचे गये हैं।

❖

PJ-8

पाँच महाव्रतों का महत्त्व

श्री नरेन्द्र कुमार पाण्डेय, आरा

जैन साहित्य में गृहस्थों के लिए अणुव्रत और मुनियों के लिए महाव्रत की चर्चा पायी जाती है। मुनियों के व्रत महाव्रत अर्थात् बड़े व्रत कहलाते हैं; क्योंकि वह हिंसादि का पूर्णतः त्यागी होता है। सर्वविरति अर्थात् सर्व त्यागरूप महाव्रत पाँच हैं—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। इन्हें क्रमशः (1) सर्वप्राणातिपात-विरमण, (2) सर्वमृषावाद-विरमण, (3) सर्वअदत्तादान-विरमण, (4) सर्वमैथुन-विरमण और (5) सर्वपरिग्रह-विरमण भी कहते हैं।

आत्मिक विकास में बाधक कर्म बन्ध को रोकने तथा बँधे हुए कर्मों को नष्ट करने के लिए इन पाँच महाव्रतों की अनिवार्यता मानी गयी हैं, जिसमें व्यक्ति और समाज दोनों का कल्याण होता है। इस प्रकार व्यक्तित्व विकास और समाज दोनों के उत्कर्ष के लिए पाँच महाव्रतों का अत्यधिक महत्त्व है।

❖

PJ-9

भारतीय संस्कृति पर जैन संस्कृति का प्रभाव

श्री शशिकान्त कुमार, आरा

भारतीय संस्कृति एक मिली-जुली संस्कृति मानी जाती है। इसके विकास में ब्राह्मण एवं श्रमण दोनों संस्कृतियों का अपना-अपना योगदान रहा है। ब्राह्मण परम्परा ने वैदिक साहित्य का निर्माण कर तथा जैनों ने अपने सिद्धान्त ग्रन्थ की रचना कर भारतीय संस्कृति के निर्माण में अपने-अपने ढंग से योगदान दिया है। यह सत्य है कि दोनों परम्पराओं में बहुत सी समानताएँ हैं; किन्तु यह भी असत्य नहीं है कि दोनों की अपनी-अपनी विशेषताएँ एवं विभिन्नताएँ हैं।

जहाँ तक भारतीय संस्कृति पर जैन संस्कृति के प्रभाव का प्रश्न है, उसमें सर्वाधिक महत्त्व अहिंसा का रहा है। जैनों द्वारा प्रतिपादित अहिंसा परम्परागत भारतीय संस्कृति को अत्यधिक प्रभावित करती हुई दिखायी पड़ती है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PJ-10

जैनाचार्य तुलसी का राजस्थानी साहित्य को अवदान

श्री सूरजमल राव, लाडनूँ

भारतीय वाङ्मय में जैनाचार्यों का योगदान सर्वविदित है, जिन्होंने साहित्य को प्राच्य विद्याओं से पुष्टकर लुप्त होती साहित्य धरोहर को संरक्षित किया है। संस्कृत, प्राकृत और उससे उत्पन्न अपभ्रंश भाषा एवं आधुनिक भारतीय भाषाओं के समस्त साहित्य को जैनाचार्यों के अवदान की एक समृद्ध परम्परा दृष्टिगत होती है।

बीसवीं शताब्दी के जैन श्वेताम्बर तेरापन्थ धर्मसंघ के नवम आचार्य तुलसी ने जैन आचार्यों की इस परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखा है और राजस्थानी में विपुल साहित्य सृजित किया। उन्होंने न केवल साहित्य संवर्द्धन किया, बल्कि राजस्थानी साहित्य की प्राच्य विधाओं को संरक्षण भी प्रदान किया। जैनाचार्य तुलसी विरचित राजस्थानी साहित्य की अमूल्य धरोहर के रूप में लगभग पैंतीस रचनाओं का संग्रह है। जिसके अन्तर्गत 'कालूयशोविलास' जैसी कृति महाकाव्य शैली की महत्त्वपूर्ण रचना है, वहीं चरित्र काव्य के रूप में 'मगनचरित्र' अपने आप में उत्कृष्ट रचना है। गुरु-आराधन स्तुति पर आचार्य की लेखनी अनवरत चली और प्रबन्धकाव्य शैली में 'माणकमहिमा' स्तुति साहित्य सृजित हुआ। कालू उपदेश वाटिका नैतिक शिक्षा के साथ अध्यात्म की उत्कृष्ट रचना है। वहीं जैनाचार्य के विहार वर्णन, पदयात्रा वर्णन और पत्र शैली में प्राञ्जल गद्य साहित्य निरूपित हुआ। इसके साथ नीतिपरक, मुनिचर्या, मुनि आचरण, धर्मदर्शन, तत्त्वचिन्तन इस साहित्य की विषयवस्तु है।

इस विपुल साहित्य में गुणयुक्त काव्य भाषा, सुन्दर शब्दसंयोजन, उत्कृष्ट रस-विमर्श, अलङ्कार विन्यास, छन्दोबद्ध, छन्दगेयता, सुन्दर वस्तुविन्यास, निरूपणशैली, पात्रों की चारित्रिक विशेषता, कथोपकथन के साथ कथ्यविधान का सुन्दर समायोजन दृष्टिगत होता है।

जैन आचार्य तुलसी के इस साहित्य में भाषा-सौष्ठव का उत्कृष्ट रूप से विन्यास हुआ है। संस्कृतनिष्ठ राजस्थानी भाषा में लोकसाहित्य की अनेक विधाओं का सुन्दर प्रयोग हुआ है। लोक प्रसिद्ध लोकगीतों की राग-रागिनियों, मुहावरों, लोकोक्तियों के साथ गीतित्व का सम्मिश्रण आचार्य तुलसी के साहित्य की मौलिक विशेषता है।

गद्य-पद्य एवं चम्पू शैली में विरचित आचार्य तुलसी के राजस्थानी साहित्य में राजस्थानी भाषा का विकसित स्वरूप दृष्टिगत होता है, जिसके अन्तर्गत राजस्थानी भाषा के प्राच्य काव्य रूपों एवं काव्य शैलियों का प्रयोग हुआ है। मेरे इस शोध आलेख में जैनाचार्य तुलसी विरचित राजस्थानी साहित्य के इन समस्त पक्षों को उजागर करने का प्रयास किया जायेगा।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PJ-11

एक सद्गृहस्थ (श्रावक) की भूमिका : सामाजिक संवादिता के सन्दर्भ में

डॉ. शोभना आर. शाह, अहमदाबाद

भगवान् महावीर के उपदेशों का प्रथम प्राचीनतम जैन ग्रन्थ आचाराङ्ग जिसमें मुनियों के आचार के नियम है। आचार ही जीवन की मुख्य भूमिका है। उसके बिना ज्ञान, दर्शन और क्रिया-काण्ड इतने उपयोगी नहीं होते हैं।

मुनियों का जीवन संसार से कम सम्पर्क रखता है। परन्तु गृहस्थों को संसार चलाने के लिए क्या करना और क्या नहीं करना यह प्रश्न उपस्थित होता है। अतः गृहस्थों के लिए भी नियम बनाये गये कि सांसारिक जवाबदारियों को निभाते हुए भी उच्छृंखल, अमर्याद, कषायों आदि से अभिभूत नहीं हो करके सन्तुलित जीवन चलाओ जिससे समाज, देश और विश्व तथा सकल जीव जगत् का भी हित बना रहे, तुम्हारे और उनके भी सुख और शान्ति में बाधा न आए। इन नियमों का विवरण आगम ग्रन्थ उवासग दशाओं में मिलता है।

पाँच अणुव्रतों के साथ सात शिक्षा पद मिलकर गृहस्थ आचरण के लिए 'दुवालस विह गिहि धम्मं' बताया गया है। पाँच अणुव्रतों के साथ सात शिक्षापद इसमें जोड़े गये हैं। इनमें से कुछ व्रतों का वर्णन करती हूँ, जिससे प्रतीत होगा कि उनमें आचरण की गहराई और सूक्ष्मता कितनी है।

पाँच व्रतों के पालन की विधि में न करना, न करवाना और वह भी मन, वचन और काय से 'दुविहं तिविहेणं, न करेमि न कारवेमि मनसा च वयसा कायसा'। (उवासगदशांग-सूत्र 15)

उपासकदशांग सूत्र का परिचय

उपासकदशांग सूत्र आगम अंग साहित्य में सातवाँ आगम ग्रन्थ है। उपासकदशा के दस अध्ययनों में महावीर के दस उपासकों के आचार का वर्णन है, इसलिए इसे उवासगदसाओ कहा जाता है। धर्म में उपासकों की श्रद्धा-भक्ति स्थिर रखने के लिए इस अंग की रचना की गई है। इसमें सभी कथानक एक साँचे में बद्ध है—जो गणधर सुधर्मा द्वारा जम्बू को प्रतिपादित किये गये हैं। इसमें भगवान् महावीर के समकालीन आनन्द, कामदेव, चुलनीपिता, सुरादेव, चुल्लसतक, कुण्डकौलिक, सकडालपुत्र, महाशतक, नन्दिनीपिता, व सालिहीपिता—इन दस श्रावकों के जीवन-चरित्रों का वर्णन है।

प्रस्तुत निबन्ध में आनन्द गाहापति का सांगोपांग उदाहरण प्रस्तुत किया है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PJ-12

जैनदर्शन में पाँच कारण-समवाय का सिद्धान्त

डॉ. अनेकान्त कुमार जैन, नई दिल्ली

जैनदर्शन के अनेक सिद्धान्त और मान्यताएँ इतनी विशिष्ट हैं कि वे अन्यत्र दुर्लभ हैं। इनमें एक महत्त्वपूर्ण है— पञ्च समवाय का सिद्धान्त।

जैनदर्शन में पाँच कारण समवाय के सिद्धान्त की अपनी विशिष्ट मान्यता है। इसे 'पञ्च समवाय' के संक्षिप्त नाम से जाना जाता है। कार्य की उत्पत्ति कारण से होती है। विश्व की संरचना और परिणमनशीलता के विषय में प्राचीन काल से ही अनेक मत प्रचलित हैं। जैनदर्शन में कार्य की उत्पत्ति में निम्न पाँच कारण अनिवार्य माने गये हैं—(1) काल, (2) स्वभाव, (3) नियति, (4) कर्म और (5) पुरुषार्थ। इनमें से एक की भी अनुपस्थिति कार्योत्पत्ति में बाधक बन जाती है। जैनागमों तथा शास्त्रीय ग्रन्थों में यत्र-तत्र इन पञ्च समवायों की चर्चा विद्यमान है। अन्य भारतीय दर्शनों के साथ जैनदर्शन की मान्यता की तुलना भी की जा सकती है। सर्वज्ञता और क्रमनियमित पर्यायों के सन्दर्भ में भी पञ्च समवाय की जानकारी आवश्यक होती है। शोध-पत्र में इसी विषय पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। यह विषय अपने आप में अनुपम तो है ही, अन्य दर्शनों में इस तरह की चिन्तन दृष्टि भी दुर्लभ है।

❖

PJ-13

जैन-ग्रन्थों में मंगल : एक संक्षिप्त विवेचन

डॉ. वीरसागर जैन, नई दिल्ली

'मंगल' जैन-ग्रन्थों का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय है। जैनाचार्यों ने 'मंगल' शब्द की व्युत्पत्ति, मंगल का अर्थ, मंगल के पर्यायवाची, मंगल के भेद-प्रभेद, उन सभी का पृथक्-पृथक् स्पष्टीकरण, मंगल का प्रयोजन, मंगल के अधिकार इत्यादि सभी दृष्टियों से इतना अधिक लिखा है कि आज उस पर एक स्वतन्त्र ग्रन्थ का निर्माण किया जा सकता है।

'मंगल' शब्द का व्युत्पत्त्यर्थ द्विविध है—(1) मं + गल = मंगल। (2) मंग + ल = मंगल। प्रथम व्युत्पत्ति के अनुसार 'मं' का अर्थ है—मल या पाप, और 'गल' का अर्थ है—गलाना या नष्ट करना; अर्थात् जो पापरूपी मल को गलाए या नष्ट करे वह मंगल है। द्वितीय व्युत्पत्ति के अनुसार 'मंग' का अर्थ है—सुख और 'ल' का अर्थ है—लाता है, देता है; अर्थात् जो सुख को प्रदान करता है वह मंगल है। जैनाचार्यों ने मंगल की परिभाषा इन दोनों को जोड़कर भी इस प्रकार प्रस्तुत की है—जो पापरूपी मल को गलावे, नष्ट करे और सच्चा सुख उत्पन्न करे, वही मंगल है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुण्य, पूत, पवित्र, प्रशस्त, शिव, भद्र, क्षेम, कल्याण, शुभ, सौख्य आदि मंगल के अनेक पर्यायवाची हैं।

मंगल सामान्य से एकविध है; परन्तु अन्य-अन्य दृष्टियों से द्विविध, त्रिविध, चतुर्विध, पंचविध, षड्विध आदि भी सिद्ध होता है।

मंगल का फल द्विविध है—अभ्युदय रूप और निःश्रेयस रूप। इनको क्रमशः व्यावहारिक और पारमार्थिक फल भी कह सकते हैं। जैन-ग्रन्थों में इनका भी विस्तृत निरूपण उपलब्ध है।

मंगल के 5 प्रयोजन हैं—(1) निर्विघ्न कार्यसिद्धि, (2) नास्तिकत्वपरिहार, (3) पुण्यप्राप्ति, (4) शिष्टाचार-पालन, (5) कृतज्ञता-ज्ञापन।

जैन-ग्रन्थों में मंगल का विवेचन मंगल के 6 अधिकारों द्वारा भी किया गया है—(1) मंगल, (2) मंगलकर्ता, (3) मंगल करने योग्य, (4) मंगल का उपाय, (5) मंगल के भेद, (6) मंगल का फल। यह समस्त जानकारी अत्यन्त व्यापक एवं गूढ़ है। आवश्यकता है आज इसे सुव्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करने की।

❖

PJ-14

जैनाचार में सामायिक : एक समीक्षात्मक अनुशीलन

श्री अनिल कुमार सोनकर, वाराणसी

भारतीय आचार की सभी धाराओं का परमश्रेय 'समत्व' जैनाचार-मीमांसा के अन्तर्गत मानसिक क्षेत्र में 'अनासक्ति' या 'वीतरागता' के रूप में, सामाजिक क्षेत्र में 'अहिंसा' के रूप में, वैचारिकता के क्षेत्र में 'अनाग्रह' या 'अनेकान्त' के रूप में और आर्थिक क्षेत्र में 'अपरिग्रह' के रूप में अभिव्यक्त होता है; अर्थात् जैनाचार-मीमांसा में परमश्रेय के रूप में जो मोक्ष है वही धर्म है, जो धर्म हैं वहीं समत्व-प्राप्ति है और यह समत्व-प्राप्ति जिस साधना द्वारा सम्प्राप्त होती है, वस्तुतः वह सामायिक-साधना है। जैनाचार में श्रमणों हेतु पाँच चारित्रों में प्रथम चारित्र तो गृहस्थ साधकों के चार शिक्षाव्रतों में प्रथम शिक्षाव्रत एवं जैनागम में चार मूल सूत्रों के अन्तर्गत द्वितीय मूलसूत्र 'आवश्यक' का प्रथम अध्ययन सामायिक नैतिक साधना का अथ एवं इति दोनों है। यद्यपि समत्व-साधना में साधक जहाँ बाह्य रूप में सावद्य प्रवृत्तियों का परित्याग करता है, वहीं आन्तरिक रूप में सभी प्राणियों के आत्मभाव एवं सुख-दुःख, लाभ-हानि प्रभृति में समभाव रखता है, तथापि इन दोनों से ऊपर वह अपने विशुद्ध रूप में आत्म-साक्षात्कार का प्रयत्न है।

'सम' का अर्थ है श्रेष्ठ और 'अयन' का अर्थ है आचरण; अर्थात् श्रेष्ठ आचरण का नाम ही सामायिक है। मन, वचन और काय की दुष्ट वृत्तियों को रोककर अपने निश्चित लक्ष्य की ओर ध्यान केन्द्रित कर देना ही सामायिक है। सामायिक के मुख्यतः दो भेद हैं—द्रव्य-सामायिक (सामायिक ग्रहण करने के पूर्व सम्पन्न होने वाले

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि-विधान) और भाव-सामायिक (आत्म-भाव में स्थिरता)। सामायिक में द्रव्य और भाव दोनों की ही आवश्यकता होती है। अहिंसा, समता प्रभृति सद्गुणों से सम्पन्न श्रेष्ठ आचरण अर्थात् सामायिक-साधना सम्पन्न की जाती है; क्योंकि इसकी ही अनुपस्थिति में कर्मों के निमित्ति से राग-द्वेष के विषमभाव का आविर्भाव होता है; द्वन्द्व और तनाव का वातावरण सृजित होता है। परिणामतः प्रकृति में विकृति, व्यक्ति में तनाव, समाज में विषमता, युग में हिंसा प्रभृत्ति तत्त्वों का उदय होता है। सामायिक साधना व्यक्ति, जाति अथवा राष्ट्र तक सीमित नहीं है, प्रत्युत सभी के लिए है। इसके समाचरण द्वारा जीवन के विविध पक्षों में समन्वय संस्थापित होता है और साथ ही व्यक्तिगत व सामाजिक जीवन के संघर्षों का भी क्षय हो जाता है।

❖

PJ-15

प्राकृत काव्यों में शृङ्गार-तत्त्व

डॉ. उमापति उपाध्याय, वाराणसी

भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के अनुसार शृङ्गार शब्द 'शृङ्गारभृङ्गारौ' इस उणादि सूत्र से निपातन होकर बनता है। 'अग्निपुराण' के अनुसार अहङ्कार या आत्मप्रतीति अभिमान का दूसरा नाम शृङ्गार है, इसे शृङ्गार इसलिए कहते हैं; क्योंकि यह मनुष्य को शृङ्ग तक पहुँचा देता है। 'अग्निपुराण' का यह शृङ्गार स्त्री-पुरुष के वासनात्मक प्रेम का प्रकर्ष नहीं, बल्कि आत्मनिष्ठ रति (निरपेक्ष) प्रेम है। इसी शृङ्गाररस से अन्य रस अभिव्यक्त होते हैं। इस प्रकार 'अग्निपुराण' का यह रस-चिन्तन सर्वथा वैज्ञानिक एवं मौलिक है। पण्डित राज जगन्नाथ का कथन है कि शृङ्गार रस मधुर होता है, जबकि 'मम्मट' कान्ता-विषयक रति को शृङ्गार रस कहते हैं।

शृङ्गारिक गीतियों का अस्तित्व महर्षि पातञ्जलि के महाभाष्य में प्रसंगवशात् परिलक्षित होता है। ये शृङ्गारिक प्रवृत्तियाँ अपने बीजरूप में पूर्व से उपस्थित थी। दिनकर के अनुसार आभीरों के आने से उचित वातावरण तथा सामाजिक परिवेश पाकर शृङ्गारतत्त्व अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित और फलित होने लगी। कविता में इहलौकिकता की वृद्धि होने से शृङ्गार ने एक नया रंग पकड़ा जिसका प्रमाण राजा हाल की 'गाथासप्तशती' है। समसामयिक तथा प्रादेशिक परिस्थितियों के कारण प्राकृत में उन्मुक्त शृङ्गारिक वर्णन की सुदीर्घ परम्परा का सूत्रपात हुआ। शनैः शनैः शृङ्गारिक रचनाओं की अधिकता हो जाने से लोगों में यह धारणा बलवती हो चली कि शृङ्गारिक काव्यों की रचना के लिए प्राकृत ही उपयुक्त है, संस्कृत नहीं। राजा हाल ने स्वतः लिखा है कि जो लोग अमृतरूपी प्राकृत काव्य को पढ़ना-सुनना नहीं जानते ऐसे लोग कामतत्त्व (शृङ्गार) सम्बन्धी चर्चा करते हुए लज्जित क्यों नहीं होते। वस्तुतः हाल कृत गाथासप्तशती में शृङ्गार रस ने ऐसा एक नया रंग पकड़ा, मानो सम्पूर्ण कामकला-विलास इसी में समाहित हो गया हो। ख्यातिलब्ध ग्रन्थ 'वज्जालग्गं' में चार कदम आगे जाकर यहाँ तक लिखा है कि युवति-जनप्रिय ललित मधुराक्षर शृङ्गार से ओत-प्रोत प्राकृत काव्य को पाकर संस्कृत काव्य को पढ़ ही कौन सकता है। जिस दौर में संस्कृत में गम्भीर भावपूर्ण कविता का चलन चरम पर था, उस समय भी प्राकृत की कोमलता संस्कृत की अपेक्षा ग्राह्य थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिए प्राकृत भाषा संस्कृत की तुलना में तब भी कर्णप्रिय थी। 'गोवर्धनाचार्य' ने भी स्वीकार किया है कि स्वयं मैंने भी प्राकृत के शृङ्गाररस को बलपूर्वक संस्कृत के काव्यों में व्यक्त किया है।

❖

PJ-16

जैनशास्त्रों में वर्णित विज्ञान की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उपयोगिता एवं महत्त्व

डॉ. संजीव सराफ, सागर

जैन धर्म पूर्णतः वैज्ञानिक है। वर्तमान में विज्ञान ने जो भी विकास किया है, उसका यदि चिन्तन एवं अनुसन्धान करके विश्लेषण किया जाय तो विज्ञान की देन के उद्भवसूत्र जैनदर्शन में प्राप्त होते हैं। चाहे वह आचार्य यतिवृषभ द्वारा रचित तिलोयपण्णत्ति ग्रन्थ हो जिसमें गणित, खगोल, भूगोल, जीवविज्ञान जैसे मौलिक विषयों का प्रतिपादन हो, या फिर आचार्य पुष्पदन्त और भूतबलि द्वारा सर्वप्रथम लिपिबद्ध ग्रन्थ 'षट्खण्डागम', जिसमें गुणस्थान तथा मार्गणाओं के माध्यम से जीवन-तत्व की विशद चर्चा के अलावा सम्पूर्ण जगत के जीवों के निवास की जानकारी तथा उनकी रक्षा का उपदेश देकर अहिंसा के माध्यम से पर्यावरण को सुरक्षित रखने का उपाय भी लगभग 2000 वर्ष पूर्व बताया है, या फिर 'तत्वार्थसूत्र' जैसे बहुत से अन्य जैनशास्त्र जो वैज्ञानिकता से परिपूर्ण हैं।

अनेकान्त को न केवल दर्शन के रूप में; किन्तु सर्वमान्य जीवनधर्म के रूप में, विश्वशान्ति के आधार स्तम्भ के रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय 24वें जैन तीर्थंकर भगवान् महावीर को ही है। भगवान् महावीर सिद्धान्तवादी ही नहीं अपितु प्रयोगवादी विशुद्ध वैज्ञानिक रहे हैं। उन्होंने अपने 500 मुनियों को जातिस्मरण प्रयोग विधिवत रूप से कराया था। इस प्रयोग साधना के चार चरण और चार भिन्न-भिन्न साधनाएँ थी। आज का उन्नत मनोविज्ञान इन चार चरणों में से प्रथम चरण का अनुसरण आंशिक रूप से भय या कुण्ठाग्रस्त मन के उपचार के रूप में कर रहा है।

भारतीय संस्कृति के विकास में जैनधर्म की विराट संस्कृति, साहित्यिक, दार्शनिक व वैज्ञानिक उपलब्धियों का अपना विशेष महत्त्व है। प्रस्तुत शोध-पत्र में जैन शास्त्रों में वर्णित विज्ञान की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उपयोगिता एवं महत्त्व को सरल शैली में उपलब्ध कराते हुए सर्वसुलभ बनाने का प्रयास किया गया है।

❖

PJ-17

जैन मुनियों के लिए प्रतिपादित आचार

डॉ. रामजी राय, आरा

जैन मुनि आचार के अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण साधन वे अमूल्य ग्रन्थ-समूह हैं जो श्वेताम्बर जैनागमों में छेद-सूत्रों के अन्तर्गत आते हैं और दिगम्बर परम्परा के साहित्य में चरणानुयोग के अन्तर्गत

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आते हैं। इन आगम ग्रन्थों के अतिरिक्त आलोचनात्मक साहित्य भी जैन मुनि आचार अध्ययन के लिए बड़े सहायक हैं।

श्रावक की सबसे ऊँची एवं अन्तिम सीढ़ी ग्यारहवीं प्रतिमा के पश्चात् मुनि-धर्म का प्रारम्भ होता है, जिसमें आदित परिग्रह का पूर्ण रूप से परित्याग कर नग्न वृत्ति धारण की जाती है। मुनियों के अट्ठाइस मूल गुण कहे गये हैं, जिनमें प्रथम अहिंसादि पाँच व्रतों का महाव्रत के रूप पालन करने की प्रतिज्ञा ली जाती है। इसके अतिरिक्त जैन ग्रन्थों में मुनियों के जिन आचारों का निरूपण किया गया है उससे यह स्पष्ट है कि अहिंसा जैनधर्म की आधारशिला है। जैन आचार की दूसरी विशेषता अपरिमित कष्ट सहने की प्रवृत्ति है, जिसका वर्णन प्रस्तुत निबन्ध में विस्तार से वर्णित है।

❖

PJ-18

अपभ्रंश भाषा एवं व्याकरण

डॉ. रामेश्वर शर्मा, दरहेटा लारी

भारतीय आर्य भाषाओं के विकास में अपभ्रंश साहित्य काफी महत्त्वपूर्ण चरणों का निर्माण करता है। इतना होने पर भी यह बहुत समय तक विद्वानों का ध्यान आकर्षित नहीं कर पाया। इसका प्रारम्भ 1918 में पूर्णतः और आलोचनात्मक अपभ्रंश कृति के प्रकाशन से हुआ। इससे सम्बन्धित धनपाल द्वारा लिखित 'भविष्यत कहा' प्रसिद्ध है, जिसका सम्पादन हरमन जैकोवी ने किया था। यह अपभ्रंश साहित्य के उत्थान की दिशा में काफी अभिरुचि जागृत की और तब से विभिन्न प्रकार की कृतियों ने इसे प्रकाश में लाया।

अपभ्रंश भाषा से सम्बन्धित अपभ्रंशशब्द के प्राचीनतम लिखित प्रमाण पतञ्जलि के 'महाभाष्य' (खण्ड 1, पृ. 2) में पाये जाते हैं, लेकिन यह लगभग छठीं शताब्दी के मध्यकाल के उत्कीर्ण शिलालेखों में पायी जाती है (दरसन II का वल्लभी देन) जिसे हम निश्चित रूप से अपभ्रंश को एक भाषा के रूप में स्वीकार करते हैं। भामह और दण्डी ने भी इसे अपनी मान्यता प्रदान की है। सभी वैयाकरणाचार्यों में इस भाषा की मान्यता प्रदान करने में कण्डा सबसे प्राचीन हैं; जिन्होंने अपनी कृति 'प्राकृतलक्षण' में इसे कुछ पूर्ण सूत्र प्रदान की है, जो अब भी अविस्मरणीय है। बाद के वैयाकरणाचार्यों ने केवल इसके मूलतत्त्वों का ही नहीं, वरन् इसके शैलियों एवं अलङ्करणों का भी सिर्फ नकल ही की है।

इसके बावजूद भी हेमचन्द ने एक बिन्दू को छोड़ ही दिया। इन्होंने किसी भाषा में उसके वास्तविकता को जाहिर करने वाले शब्दों को छोड़ दिया है। तथापि समुच्चयबोधक शब्दों एवं स्वर वर्णों ऋ के पुनर्स्थापन में काफी योगदान किया है। काव्यशास्त्रों के लेखकों में नमि साधु तथा वैयाकरणाचार्यों में क्रमदीस्वर और मार्कण्डे ने अपभ्रंश के तीन नामों को बतलाया है। नमि साधु ने इसे उपंगरा, अभीरा तथा ग्राम्या और शेष दोनों लेखकों ने वक्रता, नगरा और उपैनागरा नामों से पुकारा है। अब तक की खोजी गयी अधिकांश

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रचनाओं की भाषा नागरा अपभ्रंश के नियमों को प्रमाणित करती है जो एक यथार्थ नमूना के रूप में प्रतीत होता है तथा हमारी आज की रचना भी इसी से ली गयी है (सनत इन्त्रों, भविस इन्त्रों)।

❖

PJ-19

जैनदर्शन में मोक्ष की अवधारणा

डॉ. कंचन गुप्ता, टिहरी गढ़वाल

श्रमण-चिन्तन-परम्परा के फलस्वरूप उद्भूत जैन एवं बौद्धदर्शन वेदविरोधी होने के कारण नास्तिक दर्शन की श्रेणी में रखे जाते हैं; किन्तु वेदविरोधी होने के बावजूद आत्मा, पुनर्जन्म एवं मोक्ष जैसे तत्त्वमीमांसीय प्रश्नों को इन दर्शनों ने विस्तृत रूप से व्याख्यायित किया है। प्रस्तुत शोध-पत्र में जैन दर्शन के बन्धन एवं मोक्ष सम्बन्धी विचारों को प्रस्तुत करते हुए जीव, अजीव, आस्रव, संवर, निर्जरा आदि तत्त्वों के स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

जैनदर्शन सापेक्षवादी अथवा वास्तववादी दर्शन है एवं नयवाद को स्वीकार करता है। नयवाद को स्वीकार करने के कारण जैनदर्शन में जीव के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि शुद्ध नय के अनुसार जीव में विशुद्ध ज्ञान तथा दर्शन अर्थात् सविकल्पक एवं निर्विकल्पक ज्ञान रहता है; किन्तु व्यवहार की दशा में वह कर्मों की गति के प्रवाह से पाँच भावप्राणों—औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदायिक व परिणामिक से सम्बद्ध होने के कारण 'भावदशापन्नप्राण' द्रव्य के रूप में व्यक्त होकर संसारी अथवा जीव कहलाता है। चैतन्य इसका स्वभाव है तथा यह अनन्त चतुष्टय से सम्पन्न है। जैनदर्शन की एक सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें जीव को 'मध्यमपरिमाण' वाला माना गया है। अन्य दर्शनों में जहाँ जीव को अणु एवं विभु परिमाण का स्वीकार किया गया है वहीं जैनदर्शन में जीव को शरीर के परिमाण वाला (अर्थात् जीव जिस प्रकार के शरीर में रहता है उसी आकार का हो जाता है) माना गया है।

जैनाचार्यों के अनुसार जीव के बन्धन का मुख्य कारण उसका पुद्गल कणों से संयोग होना है। कषायों के कारण कर्मानुसार जीव का पुद्गल से आक्रान्त हो जाना ही बन्धन है। जैनागमों में स्पष्ट रूप से यह स्वीकार किया गया है कि बन्धन का मुख्य कारण अविद्या है। अविद्यावशात् ही जीव अपने अनन्तचतुष्टयात्मक स्वरूप को भूलकर वासना का शिकार बन जाता है और बन्धन में पड़ता है। जीव की तरफ जो कर्म पुद्गलों का प्रवाह होता हैं वह आस्रव कहलाता है। आस्रव का क्षय संवर एवं निर्जरा के द्वारा ही सम्भव है। नवीन पुद्गल कणों को जीव की ओर प्रवाहित होने से रोकने की प्रक्रिया संवर तथा पुराने पुद्गल कणों का क्षय निर्जरा कहलता है।

मोक्षप्राप्ति के साधन के रूप में जैनदर्शन में त्रिरत्नों को अत्यन्त महत्त्व दिया गया है। जीव एवं मोक्ष सम्बन्धी सिद्धान्त का विश्लेषण करने पर इसमें कुछ कमियाँ भी दृष्टिगोचर होती हैं। इनका मध्यम

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिमाणवाद का सिद्धान्त एवं मोक्षप्राप्ति हेतु कठोर तपस्या, आचार-विचार एवं अहिंसा आदि से सम्बन्धित विचारों पर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या यह व्यावहारिकता की कसौटी पर खरा उतर सकता है? इस प्रकार प्रकृत विषय पर प्रस्तुत शोध-पत्र में शोधपरक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। अन्त में शोध-सन्दर्भ की सूची देकर समापन किया गया है।

❖

PJ-20

जैनदर्शन में आत्मविचार : एक दार्शनिक अनुशीलन

श्री भूपेन्द्र शुक्ल, वाराणसी

भारतीय दार्शनिक परम्परा में 'आत्मा की अवधारणा' एक महत्त्वपूर्ण अवधारणा के रूप में अपना स्थान रखता है। प्रत्येक भारतीय दार्शनिक सम्प्रदाय (नास्तिक चार्वाक से लेकर आस्तिक अद्वैत वेदान्त तक) आत्मा की सत्ता को किसी न किसी रूप में स्वीकार करते हुए आत्म-तत्त्व को जानने का निरन्तर प्रयास करता रहा है। इसी कारण आत्म-ज्ञान को सर्वश्रेष्ठ ज्ञान की संज्ञा दी गई है। भारतीय दर्शन में जहाँ चार्वाक आत्मा के सम्बन्ध में देहात्मवाद को, बौद्ध अनात्मवाद को स्वीकार करता है, वहीं जैन अनेकात्मवाद को स्वीकार करता है। सामान्यतः जिस तत्त्व को भारतीय चिन्तन परम्परा में आत्मा कहा गया है उसे ही जैन परम्परा में जीव की संज्ञा दी गई है।

जैनदर्शन में जीव को 'चेतना लक्षणो जीवः' कहकर परिभाषित किया गया है, अर्थात् चेतना या ज्ञान जीव का आवश्यक लक्षण है। इसी स्थल पर जैनों का नैयायिकों से स्पष्टतः विरोध और सांख्य से साम्य दृष्टिगोचर होता है। नैयायिक चेतना को आत्मा का आवश्यक गुण न मानकर आगन्तुक गुण मानते हैं। जैनदर्शन के अनुसार जीव नित्य है। यह ज्ञाता, कर्ता, और भोक्ता तीनों है। जीव अनन्त है। इनमें चार प्रकार की पूर्णताएँ पायी जाती हैं, जिन्हें अनन्त चतुष्टय कहा जाता है। ये हैं—अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त शक्ति और अनन्त सुख। उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त जैनदर्शन में आत्मा या जीव की महत्त्वपूर्ण विशेषता विस्तार है। सर्वप्रथम भारतीय दर्शन में जैनदर्शन ही आत्मा के शरीर के अनुसार परिणाम की बात करता है। जैसे—चींटी की आत्मा चींटी के शरीर के अनुसार और हाथी की आत्मा हाथी के शरीर के अनुसार ही उसके शरीर को व्याप्त करती है। इस प्रकार जैन दर्शन शरीर के अनुसार आत्मा का बड़ा होना स्वीकार करता है। पाश्चात्य दार्शनिक प्लेटो और एलेक्जेंडर ने भी आत्मा के विस्तार को स्वीकार किया है। आत्मा का विस्तार जड़ पदार्थों के विस्तार से भिन्न है। दो जड़ पदार्थों का विस्तार एक ही स्थान में सम्भव नहीं है; लेकिन समान स्थान में दो जीवों का समावेश सम्भव है। जिस प्रकार दो दीपक एक ही कमरे को आलोकित कर सकते हैं उसी प्रकार दो आत्माएँ एक ही शरीर में निवास कर सकती हैं। जैन दर्शन में जीव को अस्तिकाय कहा गया है। इसके अनुसार जीव अनेक हैं। इस प्रकार जैन दर्शन अनेकात्मकवाद में विश्वास करता है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PJ-21

प्राकृत खण्डकाव्य कंसवहो : एक अनुशीलन

श्री सत्यनारायण भारद्वाज, नागौर

साहित्य-जगत् में प्राकृत-साहित्य का अपना महत्त्वपूर्ण एवं उत्कृष्ट स्थान है। साहित्य की अनेक विधाएँ प्रचलित हैं, जिनमें खण्डकाव्य नामक विधा भी अत्यधिक प्रचलित एवं प्राकृत-साहित्य में अपना उत्कृष्ट स्थान रखती है। यद्यपि प्राकृत भाषा में खण्डकाव्यों की संख्या अधिक नहीं है तथापि यह विधा महनीय एवं जनप्रिय है।

कंसवहो नामक खण्डकाव्य में कंसवध की घटना का बड़ा रोचक एवं मार्मिक ढंग से निरूपण किया गया है। इसमें वीरता, लोकजीवन तथा प्रेमतत्त्व का एक साथ समावेश दिया गया है। इसके कथानक का आधार श्रीमद्भागवत्पुराण है। इसकी शैली पर कालिदास, भारवि तथा माघ की रचनाओं का प्रभाव प्रचुरमात्रा में दृष्टिगोचर होता है।

इस काव्य के रचयिता रामपाणिवाद हैं, जो मलावर प्रदेश के नम्बियम् जाति के थे। इनका जन्म ई. सन् 1707 के लगभग हुआ। इन्होंने संस्कृत, प्राकृत और मलयालम भाषाओं में समान रूपं से काव्यसृजन किया। इस काव्य में 4 सर्ग तथा 233 पद्य हैं। इस काव्य की भाषा महाराष्ट्री, शौरसेनी तथा मागधी प्राकृत है।

प्रस्तुत शोधपरक लेख का प्रमुख उद्देश्य यही है कि इसमें समाहित सामाजिक, सांस्कृतिक एवं काव्यतत्त्वों को समाज के समक्ष उपस्थित कर साहित्य-जगत् को सुदृढ़ एवं रस से सराबोर करना।

❖

PJ-22

पं. तेजपाल कृत अपभ्रंश पाण्डुलिपि 'वरांगचरिउ' : एक परिचय

श्री सुमत जैन, लाडनूं

भारतीय श्रमण परम्परा अतिप्राचीन परम्परा है, जिसके अन्तर्गत वैदिक, जैन एवं बौद्ध इन तीन परम्पराओं का समावेश दो धाराओं में प्राप्त होता है। एक वैदिक परम्परा तथा दूसरी जैन एवं बौद्ध की संयुक्त श्रमण परम्परा, जिसका स्वरूप आज विद्यमान है। इन तीनों परम्पराओं का स्वतन्त्र एवं पृथक्-पृथक् अस्तित्व है। वैदिक परम्परा में वेद, जैन परम्परा में आगम तथा बौद्ध परम्परा में त्रिपिटक स्वीकृत किये गये हैं।

भगवान् महावीर ने जन सामान्य तक अपनी वाणी पहुँचाने के लिए अपने उपदेशों में प्राकृत भाषा का प्रयोग किया। यह प्राकृत मध्यकालीन भारतीय आर्यशाखा परिवार (ई.पू. 600 से 1200 ई. तक) से सम्बन्धित है। प्राकृत भाषा के अनेक भेदों में अपभ्रंश भाषा भी आधुनिक काल का एक भेद माना गया है। अपभ्रंश का समय ई. छठी-सातवीं शताब्दी से प्रारम्भ होता है और लगभग सत्रह-अठारहवीं शताब्दी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक इस भाषा में अनवरत काव्य-साहित्य लिखा जाता रहा है। अपभ्रंश साहित्य जो आज प्रकाशित है, उससे भी अधिक साहित्य आज ग्रन्थ भण्डारों में सम्पादन एवं प्रकाशन की प्रतीक्षा में पाण्डुलिपि के रूप में भरा पड़ा है।

पाण्डुलिपि का संरक्षण करने वाले ग्रन्थ भण्डार सांस्कृतिक धरोहर के केन्द्र हैं। अप्रकाशित पाण्डुलिपि के रूप में अपभ्रंश भाषा में रचित वरांगचरिउ नामक काव्य पं. तेजपाल कृत प्राप्त होता है। वरांगचरिउ की परम्परा लगभग सातवीं शताब्दी से प्रारम्भ हो जाती है, जिसमें संस्कृत भाषा में जटासिंह नन्दी विरचित वरांगचरित प्राप्त होता है, जिसका समय 783 ई. माना जाता है। इसका सम्पादन डॉ. ए.एन. उपाध्ये द्वारा किया गया एवं हिन्दी अनुवाद प्रो. खुशालचन्द्र गोरावाला ने किया। इसकी विषयवस्तु 13 सर्गों में विभाजित है। इसमें राजा वरांग का जीवन-चरित्र वर्णित है। इसके पश्चात् द्वितीय वरांगचरित्र वर्धमान कवि का है, जिसका समय लगभग 13वीं शताब्दी है। वर्धमान कवि ने जटासिंह नन्दी विरचित वरांगचरित की संक्षिप्त विषयवस्तु का ही अनुकरण किया है। प्राकृत की परवर्ती परम्परा में अपभ्रंश भाषा में जो साहित्य आज अप्रकाशित है, उनमें 15वीं शताब्दी के रचनाकार पं. तेजपाल की कृति वरांगचरिउ काव्य कोटि का एक महान् ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में राजा वरांग का चरित्र वर्णित है, साथ ही 15वीं शताब्दी में समाज का क्या स्वरूप है? इसका वर्णन किया गया है। इसके रचयिता पं. तेजपाल राजस्थान के प्रसिद्ध कवि एवं मूर्धन्य विद्वान् थे। अपभ्रंश में काव्य रचना करने की इनकी विशेष रुचि थी। ये मूलसंघ के भट्टारक भुवनकीर्ति, धर्मकीर्ति एवं विशालकीर्ति की आम्नाय के थे। ये खण्डेलवाल जाति के सिरमौर थे। इनकी अब तक तीन कृतियाँ उपलब्ध हो चुकी हैं, जिनके नाम हैं—पासणाहचरिउ, सम्भवणाहचरिउ एवं वरांगचरिउ।

वरांगचरिउ कवि तेजपाल की अपभ्रंश भाषा में रचित तीसरी कृति है, इसमें चार सन्धियाँ हैं। इसका रचनाकाल पाण्डुलिपि के अनुसार सम्वत् 1507 की वैशाख शुक्ला सप्तमी है। रचना सरल एवं सरस है तथा हिन्दी के विकास पर प्रकाश डालने वाली है। चार सन्धियों के अन्तर्गत प्रथम सन्धि में 22 कडवक, द्वितीय में 15 कडवक, तृतीय में 21 कडवक एवं चतुर्थ में 25 कडवक हैं।

भारतीय परम्परा के अनुसार सर्वप्रथम मङ्गलाचरण स्वरूप पञ्चपरमेष्ठी का स्तवन करके ग्रन्थ का प्रारम्भ किया गया है। अतः ग्रन्थ का अन्त कवि अपने परिचय से समाप्त करता है।

❖

PJ-23

प्राकृत जैनविद्या

डॉ. धर्मेन्द्र शास्त्री (जैन), अलीपुर

तिलोयपण्णत्ति प्राकृत भाषा का प्राचीनतम ग्रन्थ है। इसके कर्त्ता आचार्य यतिवृषभ है। इनका समय दूसरी शताब्दी है। तिलोयपण्णत्ति के वैशिष्ट्य, अर्थ, समय आदि विषयों पर तो कई विद्वानों ने मीमांसा की है। परन्तु यह ग्रन्थ किस प्राकृत में है, इस विषय पर अद्यावधि विचार नही किया गया है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिलोयपण्णत्ति शौरसेनी प्राकृत में निबद्ध है। शौरसेनी प्राकृत के नियम तिलोयपण्णत्ति में सर्वत्र प्राप्त होते हैं। जैसे—

1. शौरसेनी में त का द होता है।

जदिवसह आइरिय विरइदा (ति. प. भाग—1 1/1)

(-) स्थान में त का द हुआ है।

2. क्रिया के ति का प्रायः द होता है। यथा

वेढेदि तस्य जगदी (ति.प.—4/15)

3. सम्बन्ध कृदन्त में दूण प्रत्यय का प्रयोग होता है।

अण्णत्थं ठाविदूण विंदफलं (ति.प्र.—1/167)

4. थ का ध विकल्प से होता है।

इसका प्रयोग ति.प. में पदे-पदे प्राप्त होता है। अथवा-अधवा आदि

5. इह के ह का ध विकल्प से होता है। इसके प्रयोग भी ति. प. में कोई स्थानों पर है।

6. शौरसेनी प्राकृत में सप्तमी एक वचन में म्मि प्रत्यय की बहुलता है। इसके प्रयोग ति.प. में बहुत है। जैस—सव्वकालम्हि (ति.प्र.—1/100), अब्भतरम्मि (ति.प. 4/26) णंदीसरम्मि दीवम्मि (ति. 5/83)

इस प्रकार के प्रयोगों से तिलोयपण्णत्ति में शौरसेनी का सर्वत्र साम्राज्य दृष्टिगोचर होता है। ति.प. में पद्य के साथ-साथ गद्य का भी प्रयोग है। अतः तिलोयपण्णत्ति शौरसेनी प्राकृत का प्राचीन ग्रन्थ है।

❖

PJ-24

जैनधर्म में पुनर्जन्म

श्री नन्द कुमार तिवारी, बिहार

जैनधर्म में प्रत्येक संसारी जीव को कर्मों से बद्ध मानता है। वह कर्म-बन्धन उसके किसी अमुक समय में नहीं हुआ, किन्तु अनादि से है। वैसे, खान से सोना सुमैल ही निकलता है, उसी तरह संसारी आत्मा भी अनादिकाल से कर्म-बन्धन में जकड़े हुए ही पाये जाते हैं। यही कर्म-बन्धन 'पुनर्जन्म' का मुख्य कारण है। इसी 'पुनर्जन्म' के कारण जीव का चौरासी लाख योनी में न जाने कहाँ-कहाँ जन्म होता है। जीव जन्म लेते ही मृत्यु की ओर दौड़ लगाता है। इस बीच हर 'पुनर्जन्म' में व्याधियाँ, शोक बेचैनी तरह-तरह के भौतिक दुःख, बुढ़ापा, आदि आते ही रहते हैं। ये दुःख सदा-सर्वदा चलते ही रहते हैं। इसके मुख्य कारण हैं—काम, क्रोध, मद, लोभ, राग, द्वेष आदि।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैनधर्म इस 'पुनर्जन्म' के फँन्दे से निकलने के लिए सर्वोत्तम मार्ग ढूँढ़ निकालता है। उसका कथन है कि जीव जब तक पापमयी क्रियाओं में लगा रहेगा, तब तक उसे 'पुनर्जन्म' से मुक्ति मिल ही नहीं सकती, चाहे वह मनुष्य, कीट-पतंग, पशु-पक्षी, प्रेत-असुर आदि कोई भी हो। उसके अनुसार आत्मा का विनाश कभी नहीं होता। वह अपने आप में उत्पाद-व्यय करते ही रहता है। ऐसा सम्भव नहीं कि वह एक शरीर परित्याग करने के बाद नष्ट हो जाय। जब जीव वीतराग, निर्दोष के बल ज्ञानी परमात्मा हो जाता है, तब वह अशरीर सिद्ध हो जाता है। लेकिन जो राग-द्वेष सहित मृत्यु को प्राप्त करते हैं, वे इस राग-द्वेष अवस्था में रहने वाले शरीर बन्धन की तरह भविष्य में भी शरीर-बन्धन प्राप्त करते हैं, जिसे 'पुनर्जन्म' के नाम से जाना जाता है।

❖

PJ-25

सोमेश्वरदेव रचित कीर्तिकौमुदी– एक ऐतिहासिक दृष्टिकोण

सुश्री सरिता प्रियदर्शनी, अलीगढ़

संस्कृत साहित्य में निबद्ध जैन आचार्यों द्वारा रचित महाकाव्यों में हेमचन्द्र रचित द्वयाश्रयमहाकाव्य, सोमेश्वरदेव रचित कीर्तिकौमुदी, अरिसिंह रचित सुकृतसंकीर्तन तथा बालचन्द्रसूरि रचित वसन्तविलास महाकाव्य प्रसिद्ध जैन ऐतिहासिक महाकाव्य हैं, जिनमें लगभग हमें चालुक्यवंशी राजाओं के विषय में मिलता-जुलता वर्णन प्राप्त होता है। इन महाकाव्यों में कीर्तिकौमुदी एक उच्चकोटि का महाकाव्य है; क्योंकि इस महाकाव्य में चालुक्यवंश का विस्तार से कवि ने वर्णन किया है।

कीर्तिकौमुदी एक ऐतिहासिक प्रतिष्ठित प्रशस्तिपरक महाकाव्य है। इसकी रचना तेरहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध (1179-1262) के मध्य हुई। इस महाकाव्य में मध्यकालीन गुजरात के इतिहास की जानकारी उपलब्ध होती है। यह प्रशस्ति अन्य प्रशस्तियों से भिन्न है। अधिकांश प्रशस्तियों का विषय राजा आदि की होता हैं, किन्तु यह प्रशस्ति सोमेश्वर ने अपने आश्रयदाता अमात्य वस्तुपाल द्वारा किये सुकृत कार्यों की प्रशंसा में लिखी है।

श्रीसरस्वतीकण्ठाभरण, लघुभोजराज, महाकवि महामात्य की उपाधि से युक्त वस्तुपाल तेरहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में गुजरात के बघेलवंश के धवलकपुर के राणक वीरधवल के प्रधानमन्त्री थे। वस्तुपाल श्रेष्ठ मन्त्री होने के साथ कुशल राजनीतिज्ञ तथा साहित्य और कला के महान् संरक्षक भी थे। इन्होंने नरनारायणानन्द महाकाव्य के अतिरिक्त शत्रुञ्जयमण्डन, आदिनाथ स्तोत्र, गिरिनारमण्डन, नेमिनाथस्तोत्र, अम्बिकास्तोत्र आदि स्तोत्रों की रचना की।

ऐतिहासिक महत्त्व की दृष्टि से कीर्तिकौमुदी एक प्रसिद्ध महाकाव्य होने के साथ काव्यात्मक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण जैन ऐतिहासिक महाकाव्य है। इसमें चालुक्यवंशी राजा, मूलराज की लाटदेशीय राजा पर विजय का वर्णन मिलता है। मूलराज के पश्चात् चामुण्डराज, वल्लभराज, दुर्लभराज, भीम, श्रीकर्ण,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्धराज, अर्णोराज, कुमारपाल, अजयपाल आदि के विषय में विस्तृत विवेचन किया गया है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।

प्रस्तुत शोध पत्र में कीर्तिकौमुदी महाकाव्य का कुछ प्रमुख ऐतिहासिक और काव्यात्मक दृष्टि से विवेचन किया जायेगा।

❖

PJ-26

णायाधम्मकहाओं में वर्णित प्राच्य भारतीय संस्कृति एवं लोक जीवन

श्री गोपाल प्रसाद, आरा

प्राकृत जैनागम साहित्य में 'णायाधम्मकहा' द्वादशांगी का छठा अंग आगम ग्रन्थ है। अन्य आगमों की अपेक्षा इसका आगम साहित्य में विशिष्ट स्थान है, जबकि यह एक कथा प्रधान आगम ग्रन्थ है। इसकी भाषा-शैली अन्य आगमों की अपेक्षा अधिक प्रौढ़ एवं साहित्यिक है। इसमें अनेक आवन्तर कथाओं का समावेश किया गया है।

इस आगम ग्रन्थ को ज्ञान-विज्ञान का विश्व-कोष माना गया है, क्योंकि उसमें केवल सिद्धान्त दर्शन एवं आचार का ही वर्णन नहीं है, अपितु अनेक सरस एवं मर्मस्पर्शी आख्यान वर्णित है, जिसके माध्यम से प्राच्य भारतीय सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों की झाँकी प्राप्त होती है। उस समय की भारतीय भूगोल, वैदेशिक व्यापार, आयात-निर्यात, उद्योग-धन्धे, कृषि एवं खनिज-तत्त्व, यातायात के साधन आदि की भी प्रासंगिक चर्चाएँ इसमें दिखाई पड़ते हैं।

प्राच्य भारतीय संस्कृति एवं लोक जीव की दृष्टि से इसमें प्राचीन नगर राजगृह का उल्लेख प्राप्त होता है जहाँ भगवान महावीर ने अपना धर्म प्रचार का केन्द्र बनाया। राजगृह के प्राचीन नाम के रूप में गिरिव्रज, वसुमति, मगधपुर, वराह, वृषभ, ऋषिगिरि आदि है।

इसके अतिरिक्त वाराणसी नगरी का भी वर्णन प्राप्त होता है, जो प्रागैतिहासिक काल से ही भारत की एक प्रसिद्ध नगरी रही है, जो जैन, बौद्ध एवं वैदिक परम्पराओं के विकास के ऐतिहासिक क्षणों को निहारा है तथा साथ ही साथ द्वारिका नगरी का भी वर्णन प्राप्त होता है।

प्रस्तुत आगम साहित्य में लोक जीवन के रूप में बहत्तर प्रकार के कलाओं का भी उल्लेख प्राप्त होता है, जो प्राचीन समय के गुरु-कुल की याद को ताजा कर देता है। कहा जाता है कि प्राचीन समय में भारत में गुरु-कुल की परम्परा फलती-फूलती थी जिसमें गुरु-शिष्य का रिस्ता अटूट होता था और वहीं गुरु-शिष्य को पाठ के रूप में बहत्तर प्रकार की कला सिखाते थे। कहा जाता है कि पुरुष शिष्य को बहत्तर प्रकार की और महिला शिष्य को चौंसठ प्रकार की कला सिखायी जाती थी।

सब कुछ मिलाकर प्रस्तुत ग्रन्थ जैनविद्या एवं प्राकृत आगम साहित्य का गौरव ग्रन्थ माना जा सकता है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PJ-27

प्रमुख जैन स्तोत्रों का समीक्षात्मक अध्ययन

रानी मजूमदार, अलीगढ़

जैन कवियों ने प्राचीन काल से ही संस्कृत कवियों की भाँति भक्तिरस से सिंचित, आत्मसमर्पण की भावना से युक्त सुन्दर स्तोत्रों की रचना की है। ये स्तुतियाँ तीर्थङ्करों के प्रति कवि के भक्तिभाव की पराकाष्ठा को प्रस्तुत करती है। जैन पुराणों में अनेक स्तोत्र उपलब्ध होते हैं। जैन स्तोत्रों की रचना संस्कृत तथा प्राकृत दोनों ही भाषाओं में हुई है। जैन कवियों की प्राचीन स्तुतियाँ प्राकृत भाषा में निबद्ध थीं; क्योंकि जैनों की भाषा प्रमुख रूप से प्राकृत ही है। जैनस्तोत्र काव्य की रचना की परम्परा का समय महावीर के काल में ही माना जाता है। इस परम्परा के अनुसार ईसा की प्रथम शताब्दी में आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा रचित 'तित्थयरशुद्धि' नामक स्तोत्र प्रथम प्रामाणिक जैनस्तोत्र है। तत्पश्चात् भद्रबाहु ने विक्रम संवत् 568 के लगभग 'उवसग्गहार' नामक पाँच पद्यों वाले स्तोत्र की रचना की।

संस्कृत भाषा में जैनस्तोत्रों की रचना का प्रारम्भ द्वितीय शताब्दी में हुआ और तदनन्तर इन स्तोत्रों की रचना निरन्तर होती रही।

संस्कृत में सर्वप्रथम स्तोत्र-रचना आचार्य समन्तभद्र ने द्वितीय शताब्दी के अन्त में की। इनके रचित चार स्तोत्र हैं— स्वयंभूस्तोत्र, देवागमस्तोत्र, युक्त्यनुशासन तथा जिनशतकालंकार। तत्पश्चात् सिद्धसेन दिवाकर (तृतीय शताब्दी) ने द्वात्रिंशिका, पूज्यपाद देवनन्दि (450-500) ने सिद्धभक्ति, क्षुतभक्ति आदि 12 भक्तियों की सुन्दर विशद स्तोत्रों की रचना की है। इसी शताब्दी में पात्रकेसरी द्वारा रचित जिनेन्द्रगुण संस्तुति है, जिसमें 50 पद्य हैं। इसके बाद सातवीं शताब्दी में प्रख्यात जैनकवि मानतुंग आचार्य हुए, जिनका 48 पद्यों में वसन्ततिलका छन्द में रचित 'भक्तामरस्तोत्र' अत्यन्त प्रसिद्ध है। यह स्तोत्र श्वेताम्बर तथा दिगम्बर दोनों सम्प्रदायों के लिये मान्य तथा ग्राह्य है। इसी परम्परा में कुमुदचन्द्ररचित कल्याण-मन्दिरस्तोत्र, धनञ्जयरचित विषापहारस्तोत्र (नवीं शताब्दी), हेमचन्द्र आचार्य कृत महावीरस्वामिस्तोत्र तथा भूपालकवि कृत जिनचतुर्विंशतिका आदि हैं। तेरहवीं शताब्दी में गुजरात के महामात्य वस्तुपाल ने भी चार स्तोत्रों की रचना की (i) आदिनाथस्तोत्र (ii) नेमिस्तवस्तोत्र (iii) अम्बिकास्तोत्र तथा (iv) आराधना। ये स्तोत्र ऐतिहासकि दृष्टि से ही नहीं, अपितु काव्यात्मक दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

इस प्रकार जैन-परम्परा में रचित अन्य स्तोत्र हैं, जो समय-समय पर रचे जाते रहे हैं। प्रस्तुत लेख में कुछ प्रमुख जैनस्तोत्रों का काव्यात्मक तथा दार्शनिक विवेचन किया जायेगा।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PJ-28

भारतीय न्याय-विद्या के विकास में जैनाचार्यों का योगदान

प्रो. फूलचन्द जैन 'प्रेमी', वाराणसी

भारतीय न्यायशास्त्र के विकास में जिन प्रमुख तीन दार्शनिक परम्पराओं का नाम विशेषता के साथ लिया जाता है, उनमें—1. न्याय-वैशेषिक, 2. बौद्ध तथा 3. जैन ये तीन दर्शन प्रमुख हैं। जैनधर्म-दर्शन-न्याय में कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ ऐसी हैं, जो अपना अलग स्वतन्त्र महत्त्व रखती हैं। यह न तो ईश्वर को सृष्टिकर्ता मानता है और न ही वेद के प्रामाण्य को स्वीकार करता है। यहाँ ईश्वर कर्तृत्व की अवधारणा द्वारा सांसारिक कामनाओं की पूर्ति के लिए ईश्वर को प्रसन्न करने का प्रलोभन नहीं है। मोक्षप्राप्ति हेतु संयमसाधना में किसी प्रकार की शिथिलता (छूट) स्वीकार नहीं है।

इसलिए वैदिक दार्शनिक जब दर्शनों का विभाजन आस्तिक और नास्तिक इन दो भागों में करते हैं, तो चार्वाक और बौद्ध के साथ ही जैन दर्शन को भी नास्तिक दर्शनों की क़ोटि में रखते हैं। यह तो आग्रहवशात् किया गया एकपक्षीय निर्णय और विभाजन। यदि दर्शन जैसे महत्त्वपूर्ण चिन्तन के क्षेत्र में भी इसी प्रकार की मनमानी चलने लगे, तब तो सभी अपने को 'आस्तिक' और दूसरे को 'नास्तिक' कह सकते हैं।

वस्तुतः इस प्रकार के गलत विभाजन ने ही हमारी आपसी दूरियाँ बढ़ाई हैं; अन्यथा जैनदर्शन तो अपने वास्तविक रूप में उनसे भी बढ़कर 'आस्तिक' दर्शन है। जीव (आत्मा), परमात्मा, पुनर्जन्म, लोक-परलोक आदि विषयों की गहन अवधारणायें जैनधर्म-दर्शन को पूर्ण आस्तिक प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त हैं।

जहाँ तक जैन-न्याय का प्रश्न है, वहाँ जैनदर्शन ने अपने को न्यायविद्या तक ही सीमित नहीं रखा, अपितु ज्ञानात्मक चिन्तन के लिए कुछ ऐसे सिद्धान्त स्थापित किये हैं, जिनका प्रयोजन वस्तु के स्वरूप पर विशाल दृष्टि से विचार करना तथा संकुचित दृष्टि का निषेध करना है। इसी उद्देश्य से सत्ता की परिभाषा उत्पाद-व्यय और ध्रौव्यात्मक रूप से की गई तथा पदार्थ के यथार्थ ज्ञान के लिए प्रमाण के साथ ही 'नय' जैसे मौलिक विषय की आवश्यकता पर भी जोर दिया गया। स्याद्वाद और अनेकान्तवाद रूप बुद्धि एवं वचनशैली का प्रतिपादन समन्वयवाद को प्रतिष्ठापित करने की अद्भुत क्षमता रखता है।

प्रस्तुत निबन्ध में आचार्य उमास्वामी से लकर समन्तभद्र, सिद्धसेन, पूज्यपाद अकलंक, हरिभद्र, विद्यानन्द, माणिक्यनन्दि, प्रभाचन्द्र, लघु अनन्तवीर्य, हेमचन्द, मल्लिषेण तथा उपाध्याय यशोविजय तक के तथा बीसवीं सदी के लगभग पचास से भी अधिक जैन दार्शनिक मनीषियों एवं इनके दार्शनिक साहित्य की चर्चा की गयी है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PJ-29

पंचपरमेष्ठी की महत्ता

डॉ. हिफ़्ज़ुर्रहमान, अलीगढ़

असीम सुखसागर में निमग्न रहने वाले देव भी जिस पर्याय की आंकाक्षा रखते हैं, वह मनुष्य पर्याय संसार की चौरासी लाख योनियों में सर्वप्रधान और सर्वश्रेष्ठ मानी गई है। मनुष्य भव को धारण कर आत्मा, सिद्धालय की पर ऊँचाइयों का स्पर्श करता है। मनुष्य का शरीर चन्दन की लकड़ी के सदृश होता है, जिसे क्षुद्र कामोपभोगवासनाओं के कुण्ड में जलाना अकिंचन प्रयोजन के लिए आत्मसर्वस्व को नष्ट करना है।

पंचपरमेष्ठी मन्त्र द्वारा आत्मा आत्मसाधना कर संसार की चौरासी लाख योनियों के भ्रमण से छूट जाता है। अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और लोक के सर्व-साधु पंचपरमेष्ठी कहलाते हैं। परमेष्ठी शब्द का अर्थ विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न रूपों में व्यक्त किया है, परन्तु समग्र रूप में उसका अर्थ यह है कि जो मलरहित अर्थात् अट्ठारह दोषों से रहित, शरीररहित, अनिन्द्रिय, केवलज्ञानी, विशुद्धात्मा, परमजिन और शिवंकर हो, वह परमेष्ठी हैं।

परमेष्ठी मन्त्र का अभिप्राय णमोकार मन्त्र ही है। इस मन्त्र का ध्यान करने से योगीजन त्रिलोक के उत्तम पदार्थों को प्राप्त कर लेते हैं। साथ ही सहस्रों पापों का सम्पादन करने वाले और सैकड़ों जन्तुओं की हत्या करने वाले तिर्यञ्च भी इस मन्त्र की भक्ति से स्वर्ग को प्राप्त करते हैं। पंचपरमेष्ठी की भक्ति करके व्यक्ति सुगमतापूर्वक संयम धारण कर लेता है, जो पुरुष पंचपरमेष्ठी की भक्ति किये बिना संयम धारण करता है, उसका यह प्रयास ऊसर खेत में बीज बोने के सदृश होता है।

इस प्रकार पंचपरमेष्ठी लोकोत्तम एवं वीर होने के साथ-साथ विद्याधरों द्वारा पूजनीय भी है।

❖

PJ-30

जैनपरम्परा में मंत्र-तंत्र, उपासना-पद्धति

डॉ. श्रीमती राका जैन, लखनऊ

भारतीय जीवन पद्धति में शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक या आधिभौतिक व्याधियों के अवसर पर शास्त्र-जनों का ध्यान मन्त्र, तन्त्र और उपासना में जाता है। पुरुषार्थी बुद्धिजीवियों के लिए मन्त्र का विकास हुआ, जिससे स्वयं की साधना से शक्ति जागरण होता है। मन्त्रसिद्धि में यन्त्रों का उपयोग हुआ। जैनों में तन्त्र का प्रचलन नगण्य था। जो भी है, वह उत्तरवर्ती एवं शैव-शाक्त प्रभावित है।

प्रारम्भ में तन्त्र थे मन्त्रों में ही समाहित; किन्तु कालान्तर में मन्त्र जब अध्यात्म शक्ति के प्रतीक बन गये, तो तंत्र भौतिक क्रियाओं के समुच्चय के रूप में उनसे पृथक् हो गए। यह पृथक्कता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सातवीं-आठवीं सदी में माना जाता है। फिर भी तन्त्र शब्द प्रत्यक्ष या परोक्षरूप से मन्त्र और यन्त्रों से सम्बन्धित है। इस प्रकार मन्त्र मनःस्थिति, तन्त्र भौतिक क्रियाप्रधान शक्ति और यन्त्र मन्त्र-तन्त्र का अधिकरण है। अपने शोध निबन्ध में इस पर विशेष चर्चा करेंगे।

❖

PJ-31

प्रश्नव्याकरण में अपरिग्रह : स्वरूप और प्रासंगिकता

डॉ. दिनेश मिश्र, राजस्थान

द्वादशांगी आगम में दशम स्थान प्राप्त प्रश्नव्याकरणसूत्र का वर्ण्यविषय आस्रव एवं संवर तत्त्व का निरूपण है। आस्रव-संवर क्रमशः भवहेतु और मोक्ष के कारण हैं। जीव का लक्ष्य भव-भ्रमण से मुक्त होकर मोक्ष गति प्राप्त करना है। मोक्षोपाय का विस्तार से वर्णन होने के कारण श्रमणाचार विषयक ग्रन्थों में प्रश्नव्याकरणसूत्र का एक अलग ही पहचान है। इसमें संवरतत्त्व के अन्तर्गत अहिंसादि सारभूत व सार्वभौम जीवन-मूल्यों का निरूपण किया गया है, जिसकी वर्तमान सामाजिक परिप्रेक्ष्य में महत्ती उपयोगिता है।

अपरिग्रह आन्तरिक और ब्राह्य परिग्रहों का त्यागरूप है। अन्तरंग परिग्रह ही बाह्य परिग्रहों के ग्रहण, संरक्षण व वर्द्धन में निमित्त या मुख्य कारण हैं। इसके सद्भाव से हिंसादि बुराईयाँ जन्म लेती हैं, जो सामाजिक व्यवस्था को अस्त-व्यस्त करती हैं। आधुनिक समाज इसी संकट के दौर से गुजर रहा है। सर्वत्र हिंसा, झूठ, चोरी आदि का वर्चस्व बढ़ता जा रहा है। परिग्रह को लेकर दुःख, अशान्ति, चिन्ता, व्याकुलता, उद्विग्नता, निराशा मानव मन को परेशान किये हुए है। परिग्रहजन्य तनाव और उसमें उत्पन्न व्याधियों से मनुष्य का जीवन बोझिल सा हो गया है। ऐसे में अपरिग्रह के सिद्धान्त को समझकर उसे जीवन में उतारने की जरूरत है।

परिग्रह त्याग रूप अपरिग्रह की महत्ता का गुणगान दशवैकालिक, उत्तराध्ययन आदि आगम ग्रन्थों में तो किया ही गया है। उपनिषद्, गीता आदि वैदिक ग्रन्थों में भी समत्व भाव, इन्द्रिय संयम और त्याग रूप में अपरिग्रह की प्रतिष्ठा की गयी है। प्रश्नव्याकरण की विशेषता असंयम से असातना तक के बोलों का संज्ञानपूर्वक त्याग कर उपादेय का श्रद्धा से ग्रहण है। इसके अतिरिक्त धर्म-वृक्ष का रूपकीय शैली, निग्रन्थों का आन्तरिक स्वरूप और इकतीस उपमानों में अपरिग्रह का सांगोपांग निरूपण किया गया है। अपरिग्रह की सुरक्षा व पालन इन्द्रिय संयम से होता है। अपरिग्रही के पहचाने में भी कई बार दिक्कतें होती हैं। इसका निराकरण भी इसमें किया गया है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PJ-32

आचार्य तुलसी का संस्कृत साहित्य को योगदान

डॉ. प्रकाश सोनी, मुंबई

संसार में सभ्यता व संस्कृति के उषःकाल से ही भारत वर्ष अपनी समृद्धिशालिनी परम्परा का धनी रहा है और इसकी समृद्धि का प्राणतत्त्व है— संस्कृत भाषा और उसमें निबद्ध साहित्य। हमारे प्राचीन ऋषि-महर्षियों की ऋतम्भरा प्रज्ञा की अमृतमयी वाणी इसी भाग में समाहित है। प्राचीनकाल से ही भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में संस्कृत-संस्कृति का साम्राज्य रहा है।

भारतीय वाङ्मय में जैन-साहित्य अपनी प्राचीनता, विशालता, गम्भीरता, व्यापकता की दृष्टि से महनीय स्थान रखता है। यह भारतीय मेधा का सर्वोत्तम प्रतिनिधि है। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध का आदमी एक आत्मघाती सभ्यता के दंश से पीड़ित है। उसकी अनास्था, असंतोष, असुरक्षा, बिखराव, आक्रोश और कुंठाओं से संत्रस्त मानसिकता को इस दिशा-दर्शन की अपेक्षा है, जो उसे अन्तर्मुखी बना सके। विश्व के क्षितिज पर ऐसे अनेक व्यक्तियों का उदय होता रहा है, जो अपने युग को सही दिशा देने में सक्षम रहे हैं। आचार्य तुलसी भी उन्हीं दुर्लभ महान् व्यक्तियों में से थे, जिन्होंने अपने समाज, देश और युग की समस्याओं का समाधान देने का प्रयत्न किया। आचार्य तुलसी के करुण मन से साहित्य का जो संगीत प्रस्फुटित हुआ, वह जीवन के सर्वांगीण पहलुओं को छूता हुआ मानव मन की वीणा को झंकृत करता है। वे साहित्य-सर्जन को साधना का अंग मानकर चलते थे, इसलिए बिना प्रयोजन के न बोलते थे और न लिखते थे। वे तब बोलते या लिखते, जब उसकी सार्थकता या प्रयोजनीयता उन्हें प्रतीत होती थी।

आचार्य तुलसी सृजन का उद्देश्य इन शब्दों में व्यक्त करते हैं—"साहित्य का सही लक्ष्य है— आत्मसाधना की ज्योति से जाज्वल्यमान वाणी द्वारा जन-जन को प्रकाश देना"।

❖

PJ-33

जैनधर्म में श्रावकाचार मीमांसा

डॉ. सनत कुमार जैन, जयपुर

जैन वाङ्मय में मानव सभ्यता और सामाजिक जीवन के विकास का जो पारस्परिक वर्णन प्राप्त होता है, उससे जैन श्रावकाचार के क्रम विकास की महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है।

प्राकृत वाङ्मय में गृहस्थ के लिए विशेष रूप से दो शब्दों का व्यवहार हुआ है— 1. सावग या सावय और 2. उपासग। यहाँ ये दोनों शब्द जैन तीर्थङ्करों द्वारा निर्दिष्ट जीवनपद्धति को अपनाने वालों के लिए आये हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पालि ग्रन्थों में भगवान् बुद्ध के अनुयायी गृहस्थों के लिए 'उपासग' शब्द का व्यवहार किया गया है। उक्त शब्दों के संस्कृत में क्रमशः श्रावक और उपासक रूप प्रयुक्त हुए हैं।

सावग या श्रावक की जीवन-पद्धति के लिए तिजस आचार संहिता का निर्माण हुआ, उसे प्राकृत में सावग या सावयधम्म, उपासगाचार, उपसायाज्झयण तथा संस्कृत में श्रावधर्म, श्रावकाचार, उपासकाध्ययन, उपासकाचार आदि नाम दिये गये है।

तीर्थङ्कर महावीर के उपदेशों का संग्रह जिन द्वादश अंगों में किया गया था, उनमें उवासगदसांग नामक अंग में श्रावकाचार का विवेचन किया गया था। दिगम्बर परम्परा के अनुसार मूल अंग-साहित्य दीर्घकालावधि में समाप्त हो चुका है। श्वेताम्बर परम्परा मान्य उपलब्ध अर्धमागधी आगमों में श्रावकाचार का विवरण सातवें श्रुतांग उवासगदशाओं में उपलब्ध होता है। इसमें इस उपासकों के कथानकों के माध्यम से श्रावकाचार का प्रतिपादन किया गया है।

दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों परम्पराओं के अनुसार प्राकृत, संस्कृत तथा अपभ्रंश में श्रावकाचार विषयक अनेक ग्रन्थों की रचना हुई।

वैदिक वाङ्मय में गृहस्थ को सदाचारमय जीवन-पद्धति के लिए नियमोपनियम ब्राह्मण ग्रन्थों में तथा स्मृति ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं और जनसामान्य के लिए उन नियमों को पालन करने का विधान है।

जैन आगमों में गृहस्थाचार के नियमों को दृढ़तापूर्वक पालन करने का निर्देश है। इसीलिए गृहस्थ के प्रारम्भिक (नियमों) व्रतों का पालन करने वाले पाक्षिक श्रावक और उसके आगे नैष्ठिक श्रावक तथा तीसरी श्रेणी में साधक श्रावक जो गृहस्थाचार से ऊपर व्रतों का पालन करते हैं।

श्रावक के बाह्य तथा अन्तरंग चारित्रिक विकास की दृष्टि से श्रावक की एकादश प्रतिमाओं का विश्लेषण किया गया है। श्रावकाचार ग्रन्थों में अष्टमूल गुणों तथा बारह उत्तर गुणों को पालन करने वाला श्रावक प्रतिमाओं का पालन करता हुआ उत्तरोत्तर चारित्रिक विकास करके अन्तिम ग्यारहवीं श्रेणी पर पहुँचकर साधक श्रावक साधु बनने की पूर्ण पात्रता प्राप्त कर लेता है। यह जैन श्रावकाचार का संक्षिप्त प्ररूपण प्रस्तुत है।

❖

PJ-34

कच्छ में जैनधर्म का प्रचार

डॉ. नीता ठाकर, कच्छ

कच्छ में जैनधर्म कब से है? उसका प्रत्युत्तर खुद महेश्वर बसई महातीर्थ का ही देन है। इस तीर्थ के स्थापना की कथा सूम के अनुसार भगवान् महावीर स्वामी के निर्वाण बाद पहली पच्चीस जितना प्राचीन कहा जाता है। कच्छ में ओशपाल और श्रीमान जैन मुख्य है। उसमें भी 'गुर्जर' और 'कच्छी'

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे दो विभाग हैं। यदी जैनधर्म की विशेषता ये है कि अंचलगच्छ, तपगच्छ, खरतरगच्छ और पार्श्वचन्द्रगच्छ, इन सभी के बीच सुगमता का वातावरण है। जिनकी महित 'मारी कच्छ यात्रा' ग्रन्थ में लेखक विद्यावीजयसी जी ही हैं।

कच्छ में जैनधर्म के विकास में कच्छ के शासकों का योगदान भी विशिष्ट रहा है, जिन्होंने 'अहिंसा' को प्राधान्य दिया और अपने राज्य में जैनधर्मियों को योग्य स्थान देकर जैनधर्म के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की है। कच्छ के राज़दरबार में गारेज मोतीचन्द्र जी (आयुर्वेद), गोरजी माण के गरेजा द्वितीय (राजकुमार को पहला अक्षर सिखाते थे), गारेजी श्वांमिविजय जी (सोडो बारेल) वगैर जैनशास्त्रियों का राजकीय योगदान भी प्रशंसनीय रहा है। जैनधर्म के प्रसार में श्रेष्ठियों महाजन का प्रदान भी प्रशंसनीय रहा है। उसने अपना धन प्रजाकल्याण खर्च करके एक महाजन का कर्तव्य निभाया है। जिसमें पहला नाम श्री जगूडशाह का आता है। उनकी कार्यशैली का विवेचन श्री सर्वानन्दसूरिज ने 'जगडूचरित' महाकाव्य में किया है।

कच्छ में अनेक जैनतीर्थ हैं। जिसने प्राचीन अङ्गोक्षर-वसई महातीर्थ है— कथासूत्र के अनुसार इस सिद्ध में यह देरासर का निर्माण (इ.स. 393) किया था। उसके बाद जीर्णोद्धार होता रहा है और बड़ी पंचलक्ष, छोटी पंचलक्ष का भी विशेष महत्व रहा है।

❖

PJ-35

जैन साहित्य में नियतिवाद की चर्चा

सुश्री श्वेता जैन, जोधपुर

जत्तु जदा जेण जहा जस्स यणि यमेण होदि तत्तु तदा।
तेण तहा तस्स हवे इदि वादो णियदिवादो दु॥

अर्थात् जो कार्य जिस समय, जिस साधन से, जिस प्रकार और जिस नियम से होना होता है, वह उस समय, उस साधन से, उस प्रकार, उसमें होता है, यह मान्यता ही नियतिवाद है।

नियतिवाद का स्वतन्त्र ग्रन्थ न होते हुए भी प्राचीन बौद्ध और जैन वाङ्मय में इसकी पर्याप्त चर्चा प्राप्त होती है। दोनों दर्शनों में मंखलि गोशालक को नियतिवाद का प्रणेता बताया गया है। दीघनिकाय में कहा है कि सभी सत्त्व, सभी भूत और सभी जीव नियति के संग के भाव से परिणत होकर प्रकार की अभिजातियों में सुख-दुःख का संवेदन करते हैं। जैनागम-साहित्य के अन्तर्गत भगवतीसूत्र में नियतिवाद गोशालक का परिचय और सूत्रकृतांग में सांगतिक शब्द से नियतिवाद का स्वरूप निरूपित हुआ है। यथा—: 'तसथावरा पाणा ते एवं संघायमावज्जंति, ते एवं परियायमावज्जंति, ते एवं विवेगमावज्जंति, ते एवं विहाणमागच्छन्ति, ते एवं संगइयंति' अर्थात् त्रस एवं स्थावर सभी प्राणी नियति के प्रभाव से औदारिक शरीर, बाल्यावस्था, युवावस्था, वृद्धावस्था तथा अन्त में मृत्यु को प्राप्त होते हैं। प्रश्नव्यवस्था में भी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियतिवाद का उल्लेख है तथा उसकी टीकाओं में विस्तृत चर्चा हुई है। इसके अतिरिक्त आचारांगसूत्र की शीलांक टीका में, नन्दीसूत्र की अवचूरि में तथा स्थानांग में प्रसंगवश नियति की चर्चा सम्प्राप्त होती है। उपासकदशाङ्ग में अनेकान्तवाद सिद्धान्त के प्ररूपक भगवान् महावीर द्वारा किया गया नियतिवाद का निरसन कारण की ऐकान्तिकता को सदोष बताताया है।

नियतिवाद के निरूपक ग्रन्थ की रिक्तता को जैनाचार्य सिद्धसेन तीसरी-चौथी शती के नियति द्वात्रिंशिका की समुच्चय और लोकतत्त्व निर्णय में नियतिवाद को अंकित किया है तथा इसकी ऐकान्तिकता का खण्डन भी प्रस्तुत किया है। मल्लवादी क्षमाश्रमण (पाँचवी शती) रचित द्वादशारनयचक्र, उपाध्याय यशोविजय (17वीं शती) कृत नयोपदेश तथा तिलोक ऋषि के काव्य में भी नियतिवाद की झलक दृग्गोचर होती है। स्वम्भूस्तोत्र (छठी शती), गोम्मटसार कर्मकाण्ड (10वीं शती), स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा आदि दिगम्बर, ग्रन्थों में भी नियतिवाद का संक्षेप में उल्लेख मिलता है और जैनेन्द्र सिद्धान्त-कोश में नियति को काललब्धि के रूप में प्रस्तुत किया गया है। आचार्य महाप्रज्ञ ने भी नियति की वैज्ञानिक व्याख्या की है।

❖

PJ-36

श्रीपद्मावती देवी : एक सत्यशील अध्ययन

प्रो. वीणा.बी. ठक्कर, भरुच, गुजरात

जैनधर्म में शक्ति उपासना के विविध स्वरूप में देवी पद्मावती जी। तीर्थङ्करों और उनके साथ संलग्न देव-देवियों की उपासना में श्रीपद्मावती देवी का स्थान-प्रभाव और उनकी साधना का वर्तमान काल में उत्तरोत्तर विकास क्रम। श्रीपद्मावती देवी की साधना के द्वारा प्राप्त होने वाली अनेक विध सिद्धियाँ। पौराणिक उल्लेखों और भिन्न-भिन्न स्थलों, ग्रन्थों और धर्मों में श्रीपद्मावती देवी का परिचय और उनका माहितीसभर और रसप्रद अध्ययन। उपसंहार।

❖

PJ-37

जैनदर्शन में जीव का स्वरूप

डॉ. हरि प्रकाश शर्मा, हरियाणा

जैनदर्शन में जीव एवं अजीव भेद से दो तत्त्व स्वीकार किए गए है। इनमें जीव चेतन अथवा ज्ञानस्वरूप तथा अजीव अचेतन अथवा अज्ञानस्वरूप है। जीव को आत्मा तथा अजीव को अनात्मा भी बतलाया गया है। जीवतत्त्व को स्वाभाविक रूप से अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सामर्थ्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि गुणों से युक्त स्वीकार किया गया है, किन्तु अपने ही शुभ-अशुभ कर्मों के प्रभाव से आवरण पड़ा होने के कारण जीव के ये स्वाभाविक गुण प्रायः प्रकट नहीं होते। शुभ कर्मों के अनुष्ठान के कारण ही जीव को इन गुणों का साक्षात्कार होता है। दर्शन, ज्ञान आदि गुणों की विविधता के कारण ही जीव अनेक प्रकार के हैं। जीव ही कर्ता एवं भोक्ता है। यह स्वाभाविक रूप से पूर्ण है, किन्तु पुद्गल से संयुक्त होने के कारण इसके गुण तिरोहित हो जाते है। नित्य होते हुए भी जीव परिणामशील है। जीव जिस भौतिक शरीर से सम्बद्ध होता है, उसी के परिणाम के अनुसार यह विस्तृत अथवा संकुचित होता है, जैसे कि हाथी के विशालकाय में यह जीवतत्त्व विशाल परिणाम वाला तथा चींटी के अल्पकाय में अल्पपरिमाण वाला है। अतः जीव का स्वरूप पुद्गल के साथ सम्पृक्त होने के कारण प्रभावित होता है। इस प्रकार अन्य दर्शन जहाँ जीव को अपरिवर्तनशील स्वीकार करते हैं, वहाँ जैनदर्शन इसे परिवर्तनशील मानता है। तात्त्विक दृष्टि से अरूपी होने के कारण इसका ज्ञान इन्द्रियों के द्वारा सम्भव नहीं है, अपितु स्वसंवेदन प्रत्यक्ष तथा अनुमान के द्वारा इसको जाना जा सकता है।

❖

PJ-38

अपभ्रंश काव्य करकण्ड चरित के सांस्कृतिक सन्दर्भ

श्री कृष्ण कुमार करण, आरा

करकण्ड चरिउ अपभ्रंश काव्य का एक अनुपम रत्न है। इसमें उत्कृष्ट काव्य गुणों के अतिरिक्त सांस्कृतिक सामग्री विपुल परिमाण में पायी जाती है। इतिहास पुरुष करकण्डु के सरस आख्यान में एक प्रकार के सांस्कृतिक उपकरण प्रस्तुत किये गये हैं। इस ग्रन्थ में जीवन का विभिन्न दृष्टिकोणों से विवेचन किया गया है। जनपद, नगर, गाँव, नदियाँ, पर्वत, वन-प्रदेश आदि का सोपपत्तिक विवेचन उपलब्ध होता है। व्यवसाय-वाणिज्य, यातायात के साधन, जीवन संस्कार, समाज व्यवस्था, पारिवारिक घटक एवं कर्त्तव्याकर्त्तव्य की सुन्दर मीमांसा की गयी है। धर्म एवं दर्शन के विभिन्न तत्त्वों पर प्रकाश डाला गया है। निस्संदेह यह काव्य ग्रन्थ भारतीय जीवन का सांस्कृतिक इतिहास लिखने के लिए अत्यन्त उपादेय है। करकण्डु के जीवन का सम्बन्ध विशेषतः अंगदेश, सौराष्ट्र और दक्षिणवर्ती प्रदेशों से रहा है। उनमें चेल, चोल और पांड्य नरेश प्रमुख है। अंगदेश भागलपुर से मुंगेर तक फैले हुए भूभाग का नाम था। इस देश की राजधानी चम्पापुरी थी, जो भागलपुर से पश्चिम दो मील पर स्थित है। प्राचीन भारत में चम्पा एक अत्यन्त सुन्दर और समृद्ध नगर था। यह व्यापार का केन्द्र था और जहाँ वणिक बहुत दूर-दूर से समान खरीदने के लिए आते थे। महाभारत में दक्षिण दिशा के तीर्थों के वर्णन प्रसंग में सौराष्ट्र के अन्तर्गत चमसोद्भेद, प्रभास क्षेत्र, पिंडारक एवं र्ज्जयन्त (रैवतक) पर्वत आदि पुण्य स्थानों का उल्लेख आया है। करकण्डु महाराज दक्षिण के यात्रा के बीच तेरापुर रुके, जहाँ उन्होंने पश्चिमी दिशावर्ती पहाड़ी में गुफा देखी। उसमें तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ की प्रतिमा विराजमान थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुनि कनकामर ने करकण्ड चरिउ में पूजा, उपवास और सम्यक् तपस्या पर बल दिया है। अमित वेग वाले कथानक में हाती तेरापुर में पार्श्वनाथ भगवान् की पूजा करता है और उसके प्रभाव से वह मरणोपरान्त स्वर्ग प्राप्त करता है। धनदत्त के जीव ने भक्तिपूर्वक एक पुष्प से जितेन्द्र भगवान् की पूजा की थी, जिसके फल से वह चम्पाधिराज करकण्डु हुआ।

सांस्कृतिक विरासत की उपलब्धि का एक मात्र साधन शिक्षा है। करकण्ड चरिउ में शिक्षा के पर्याय के रूप में विद्या का उल्लेख है।

❖

PJ-39

हरिवंश पुराण में वसुदेव सम्बन्धी कथायें

सुश्री प्रीति शर्मा, अलीगढ़

जैन साहित्य के अन्तर्गत हरिवंश पुराण एक अति विशिष्ट पुराण है। इस पुराण को अरिष्टनेमि पुराण भी कहते है। इस पुराण की रचना पुन्नाट संघीय आचार्य जिनसेन ने शक संवत् 705 में की थी, जो कि विक्रम संवत् 840 होता है। यह पुराण दिगम्बर सम्प्रदाय के तथा साहित्य में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। हरिवंश पुराण में वसुदेव से सम्बन्धित अनेक रोचक कथाएँ प्राप्त होती हैं। इस पुराण में वसुदेव की कथाओं के साथ ही जैन तीर्थकरों का विवेचन, विद्याधर राजाओं की कथायें एवं श्री कृष्ण के जीवन चरित, वसुदेव के विषय में भी विस्तार से वर्णन किया गया है। वसुदेव के विषय में वर्णन मिलता है कि यह देखने में आकर्षक थे, एवं चातुर्य में भी निपुण थे। जब वसुदेव महल से बाहर घूमने के लिये निकलते थे, तो समस्त नगरवासी इनके सौन्दर्य को देखकर आकृष्ट हो जाते थे एवं अपने आवश्यक कार्यों को भी करना भूल जाते थे। तब नगर के वृद्धजनों ने इनके भाई राजा समुद्रविजय से इनके बाहर निकलने पर प्रतिबंध लगवा दिया। जब वसुदेव को भाई की इस नीति का पता चला, तो वह घरवालों से रुष्ट होकर घर से निकल गये तथा सभी ने यह समझा कि वसुदेव मृत्यु को प्राप्त हो गये। तब वसुदेव घर से भागने के उपरान्त अनेक नगरों में गये एवं भ्रमणोपरान्त अनेक विद्याधर राजाओं से मिले एवं इन विद्याधर राजाओं से अनेक प्रकार की विद्यायें सीखीं। इन विद्याओं में गन्धर्व विद्या, संगीत शास्त्र, वेदशास्त्र, वाद्य यन्त्रों को कुशलता से बजाना, मल्ल युद्ध आदि प्रमुख विद्यायें थी। इन्हीं विद्याओं में निपुण होने के पश्चात् वसुदेव ने बहुत ख्याति प्राप्त की, जिससे इनकी योग्यता से प्रसन्न होकर विद्याधर राजाओं एवं अन्य प्रसिद्ध व्यक्तियों ने अपनी श्रेष्ठ कन्याओं का विवाह इनके साथ कराया। इन विवाहों में सोमा और विजयसेना, श्यामा, गन्धर्वसेना नीलयंशा, सोमश्री, वनमाना, कपिला, पद्मावती, चारुहासिनी, रत्नवती, वेगवती, मदनवेगा, बन्धुमती, प्रियङ्गु सुन्दरी, प्रभावती, जरा, रोहिणी, बालचन्द्रा, देवकी आदि अनेक कन्याओं से इनका विवाह विभिन्न नगरों में भ्रमण के उपरान्त हुआ। इनकी कन्याओं में से कुछ विद्याधर राजाओं की पुत्रियाँ थी और कुछ श्रेष्ठजनों की कन्यायें थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तुत लेख में वसुदेव के अद्भुत कृत्यों तथा विद्याधर कन्याओं के साथ विवाह का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जायेगा।

❖

PJ-40

जैन आगमों में नियतिवाद

सुश्री वन्दना मेहता, नागपुर

जैन परम्परा द्वारा अंग सूत्रों में सूत्रकृताङ्ग का द्वितीय स्थान है। महावीर के युग में प्रचलित मत-मतान्तरों का वर्णन इसमें विस्तृत रूप से हुआ है। सूत्रकृतांग में स्वसमय एवं परसमय का वर्णन है। यहाँ हम नियतिवाद का उल्लेख करेंगे।

नियतिवाद आत्मा की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार करता है। यह आत्मा का पुनर्जन्म भी मानता हैं तथा आत्मा को सुख-दुख की अनुभूति होती है। यह आत्मा के सुख एवं दुःख को स्वकृत एवं परकृत नहीं मानता, अपितु नियतिकृत मानता है। निर्वाण का सुख एवं दुःख भी स्वकृत एवं परकृत नहीं है; अपितु वे नियतिकृत है। इनके अनुसार बल, बीर्य, पराक्रम सब निरर्थक है। सारे जीव अबल, अवश, अवीर्य हैं। नियतिवादी आजीवन सम्प्रदाय का मुख्य सिद्धान्त है एवं इसके प्रवक्ता मंखलि गोशलक था। इस लेख में नियतिवाद के स्वरूप, सिद्धान्त एवं इसके विविध पक्षों का विस्तृत रूप से वर्णन हुआ है।

❖

PJ-41

आचार्य महाप्रज्ञ जी के स्तोत्रसाहित्य में दर्शन

सोमानी संगीत प्रज्ञा, लाडनूं

जैन धर्म के तेरापन्थ धर्मसंघ के दशम अधिशास्त्र आचार्य श्री महाप्रज्ञ ने साहित्यप्रकाश में अनेक विद्याओं में अपनी लेखनी को गति दी है। उदाहरणस्वरूप—गद्य-साहित्य, पद्य-साहित्य, काव्य-साहित्य इत्यादि। काव्य-साहित्य के अन्तर्गत उनके विशिष्ट संस्कृत स्तोत्र साहित्य में दार्शनिक पक्ष को उजागर करने के लिए मेरा इस पत्र-वाचन में विनम्र प्रयास रहेगा।

❖

PJ-42

जिणागमम्मि पाहुडस्स महाप्पं

डॉ. ऋषभचन्द्र जैन, वैशाली, बिहार

जैन परम्परा में आगम का विशेष महत्त्व है। आगम को ही वहाँ श्रुत कहा गया है। वह बारह अंगरूप होने से द्वादशांग भी कहलाता है। परमागम, सिद्धान्त गणिपिटक आदि इसके नामान्तर है। उपलब्ध

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बारह अंगों के नाम इस प्रकार है—1. आचारांग, 2. सूत्रकृतांग, 3. स्थानांग, 4. समवायांग, 5. व्याख्या प्रज्ञप्ति अंग, 6. ज्ञातृधर्मकथांग, 7. उपासकाध्ययनांग, 8. अन्तकृद्दशांग, 9. अनुत्तरोपपादिकशांग, 10. प्रश्नव्याकरणांग, 11. विपाक्सूत्रांग और 12. दृष्टिवांग।

बारहवें अंग दृष्टिवाद के पाँच भेद है—परिकर्म, सत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका। वस्तु और पाहुड दृष्टिवांग के आन्तरिक विभाजन है। ऐसा विधान शेष ग्यारह अंगों में उपलब्ध नहीं है। दृष्टिवांग के अन्तर्गत पूर्वगत के चौदह भेद हैं—1. उत्पादपूर्व, 2. आरायणीयपूर्व, 3. वीर्यानुवादपूर्व, 4. अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व, 5. ज्ञानप्रवादपूर्व, 6. सत्यप्रवादपूर्व, 7. आत्मप्रवादपूर्व, 8. कर्मप्रवादपूर्व, 9. प्रत्याख्यानपूर्व, 10. विद्यानुवादपूर्व, 11. कल्याणप्रवादपूर्व, 12. प्राणावायपूर्व, 13. क्रियाविशालपूर्व और 14. लोकबिन्दुसारपूर्व। पूर्वगत का परिमाण ग्यारह अंगों से बहुत विशाल था। जहाँ तक कहा जाता है कि शेष अंगों का ज्ञान भी पूर्वों से समाहित था। व्यवहारसूत्र में कहा गया है कि पहले आचार प्रकल्प में नौवें प्रत्याख्यान पूर्व में गर्भित था, वहीं से लेकर उसे आचारांग में रखा गया। चौदह पूर्वों में एक सौ पंचानवे वस्तु अधिकार तथा प्रत्येक वस्तु अधिकार में बीस-बीस पाहुड होते हैं। इस प्रकार पूर्वगत का कुल परिमाण तीन हजार नौ सौ पाहुड होता है।

'पाहुड' जैनागम परम्परा की महत्त्वपूर्ण एवं विशिष्ट विधा है! पाँचवें ज्ञानप्रवादपूर्व के दसवें वस्तु अधिकार में 'पेज्ज पाहुड' के ज्ञान से आचार्य गुणधर ने 'कषायपाहुड-सुत्त' की रचना की है। दूसरे अग्रायणीय पूर्व के पंचम वस्तु अधिकार के चौथे प्राभृत का नाम 'कर्मकृतिप्राभृत है, इसी से 'छक्खंडागमसुत्त' की रचना हुई है।

❖

PJ-43

जिनसेन-गुणभद्र के महापुराण का आलोचनात्मक परिशीलन

श्रीमती सीता मणि त्रिपाठी, कैमूर

महापुराण जिनसेन और गुणभद्र की उस विशाल रचना का नाम है, जो छिहत्तर पर्वों में विभक्त है। सैतालिस (47) पर्व तक की रचना का नाम आदि पुराण है और उसके बाद अड़तालिस से छिहत्तर तक का उत्तरपुराण। इस बृहत्काय ग्रन्थ का अनुष्टुप् छन्दों में परिमाण 19207 श्लोक है। यह संस्कृत वाङ्मय का एक अनुपम रत्न है। यह अपने नामानुसार प्राचीन काल का एक महान् आख्यान है। इसमें जैनधर्म की मान्यतानुसार चौबीस (24) तीर्थङ्कर, बारह चक्रवर्ती, नौ बलभद्र, नौ नारायण और नौ प्रतिनारायण इन तिरसठ शालाका पुरुषों का मुख्यतः चरित्र वर्णन किया गया है। यथार्थतः इन चरित्रों द्वारा आध्यात्मिक विकास के नाना दृश्य उपस्थित किये गये हैं, जिनसे धार्मिक श्रद्धा उत्पन्न हुए बिना नहीं रहती है।

महापुराण श्रमण संस्कृति के महापुरुषों का श्रेष्ठ परम्परागत इतिहास है। इसमें हमें आदि महान् कृष्ण-पाण्डव तथा बाहुबली, ब्रह्मदत्त आदि महान् व्यक्तियों के कथानक प्राप्त होते हैं, जो कथाओं के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुलनात्मक अध्ययन के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। इसके विस्तृत कलेवर से हम पुराण, महाकाव्य, धर्मकथा, राजनीतिशास्त्र, आचारशास्त्र और युग की आदि व्यवस्था को सूचित करने वाले एक बृहत् इतिहास के दर्शन करते हैं। यह ग्रन्थ दिगम्बर जैन का एक ऐसा विश्वकोश है तथा एक प्रकार से वह सब कुछ है, जो उन्हें जानना चाहिए।

साहित्यिक गुणों की दृष्टि से इनके अनेक खण्ड संस्कृत काव्य के सुन्दर उदाहरण हैं। महाकाव्य के नायक रूप में ऋषभदेव के अतिरिक्त अनेक पात्र हैं। प्रकृति चित्रण इस काव्य में पृष्ठभूमि रूप में प्रचुर मात्रा में किया गया है। सौन्दर्य चित्रण में कवि ने शास्त्रीय पद्धति अपनायी है। इस योजना की दृष्टि से इसमें शृङ्गार, करुण, वीर, रौद्र एवं शान्तरस के प्रमुख रूप से दर्शन होते हैं। इसमें भाव और भाषा को सजाने के लिए अलंकारों की योजना बड़ी चातुरी से की गयी है। इस कृति का पश्चाद्वर्ती अनेक कवियों ने अनुकरण किया है।

❖

PJ-44

श्रावक धर्म कथा का विश्लेषण

प्रो. दुधनाथ चौधरी, आरा

जैनधर्म-दर्शन संस्कृति का मूल आधार वितराग सर्वज्ञ की वाणी है, जो समग्र को जानते हैं, वे ही तत्त्वज्ञान के यथार्थ निरूपण कर सकते हैं। इतना ही नहीं, वे लोग परम हितकारी समाज के समक्ष यथार्थ उपदेश दिये, जो आगम के नाम से अभिहित हैं, ठीक उसी प्रकार उपासक दशा सूत्र भी उपदेशात्मक रूपी कथा पर आधारित धर्म ग्रन्थ है। इसमें उस समय के समाज में रहने वाले तथा घर-परिवार में रहते हुए भी उपदेशों को सुनकर अपनी साधनामय जीवन व्यतीत कर मोक्ष को प्राप्त करते थे। 'उपासकदशा' सूत्र में दस श्रावकों की कथावस्तु का विस्तृत वर्णन किया गया है। साथ ही इसमें सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टिकोण से वर्णन किया गया है जो इतिहास के लिए प्रमुख जानकारी प्रदान करता है। जैनधर्म में श्रावक के व्रत अंगीकार का क्रम भी बड़ा वैज्ञानिक है, वह इस साधना क्रम में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह को स्वीकार तो करता है पर सीमित रूप में अर्थात् अपने आप में जितना आत्मबल और सार्मथ्य संजो पाता है। उपनिषद्कार के अनुसार साधना फलित होने का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से बहुत ही सुन्दर ढंग से विश्लेषण किया गया है। यहाँ पर यह बात तो स्पष्ट तौर पर व्यवहृत है कि केवल श्रमण के पास बैठने से वह श्रमणोपासक नहीं बन जाता है। विभिन्न व्यक्तियों की क्षमताएँ तथा सार्मथ्य विविध प्रकार का होता है वह अक्षरशः सत्य है। धीरे-धीरे साधक अपनी इच्छा शक्ति को बढ़ाता हुआ अपने आगे का मार्ग प्रशस्त करता है जिसमें अपने लक्ष्य को हासिल करने में कोई कठिनाई न हो।

महावीर के प्रमुख अंतेवासी गौतम आनन्द से अवधिज्ञान की सीमा के सम्बन्ध में एक वार्तालाप में एकाएक विवाद हो गया और यह एक रोचक प्रसंग बन जाता है। यहाँ पर भगवान् महावीर आनन्द के मन्तव्य को ठीक बतलाते है। भगवान गौतम के पास आकर क्षमा याचना करते हैं।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PJ-45

प्राकृत साहित्य के यशस्वी कथा सर्जक आचार्य नेमिचन्द्र सूरि : एक समालोचना

डॉ. आभा यज्ञसेनी, वाराणसी

1. आख्यानक मणिकोश जैन साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण कथा काव्य माना जाता है। इस कथा काव्य में जैन आचार-विचार, संयम, व्रत, उपवास, दान, सदाचरण आदि के महत्त्व को प्रस्तुत किया गया है। निश्चित ही इन कथाओं से समाज में संयम, अनुशासन एवं धार्मिक सद्भाव का प्रयास होता आ रहा है। अतः इन कथाकाव्य की उपादेयता स्वतः प्रमाणित है।

2. आख्यानक मणिकोश की कथाओं में तथा इसकी वृत्ति में जन्म जन्मान्तर की घटनाओं से पूर्व जन्म की आस्था एवं सदाचरण में उत्तम फल की प्रेरणा प्राप्त होती है।

3. आख्यानक मणिकोश के मूलकर्ता वृहद्गच्छ के नेमिचन्द्र सूरि हैं। इनके गुरुभ्राता जिनचन्द्र सूरि के शिष्य आम्रदेवसूरि ने आख्यानक मणिकोश पर वृत्ति तथा बृहद्काय टीका लिखी है।

4. आचार्य नेमिचन्द्र सूरि का पूर्व नाम देवेन्द्रमणि था। इनका काल विक्रम का बारहवाँ शतक माना जाता है।

5. रचनाएँ—छोटी-बड़ी कुल मिलाकर नेमिचन्द्र सूरि की पाँच रचनाएँ हैं—1. आख्यानक मणिकोश। 2. आत्मबोधक अथवा धर्मोपदेश कुलक, 3. उत्तराध्ययन वृत्ति, 4. रत्नचूडकथा, 5. महावीरचरियं। आख्यानक मणिकोश इनकी प्रथम कृति है।

6. आख्यानकमणिकोश में 127 कथाएँ है। जिनको बावन गाथाओं में संकलित किया गया है।

7. आख्यानकमणिकोश वृत्ति की रचना आचार्य आम्रदेवसूरि ने विक्रम संवत् 1190 (सन् 1133) में की थी।

8. मूल गाथाओं पर संस्कृत भाषा में वृत्ति है, परन्तु कुछ आख्यानकों में संस्कृत के अतिरिक्त अपभ्रंश भाषा एवं प्राकृतभाषा का प्रयोग किया गया है। कुछ की रचना चम्पूशैली में तथा कुछ आख्यानक प्राकृत गद्य में है।

9. छन्द प्रयोग—123 क्रमाङ्क आख्यानक उपेन्द्रवज्रा छन्द में तथा अवशिष्ट 115 आख्यानक आर्या छन्द में विरचित हैं। यत्र-तत्र अन्य छन्दों के भी प्रयोग मिलते हैं। प्रत्येक अधिकार के अन्त में संस्कृत भाषा में बसंततिलका छन्द का प्रयोग हुआ है। मंगलाचरण और उनकी प्रशस्ति संस्कृत के विविध छन्दों में प्रस्तुत है।

10. प्रभाव— वृत्तिकार ने चन्द्रार्याख्यानक तथा कंबल—सम्बलाख्यानक को नेमिचन्द्र सूरि की कृत महावीरचरियं से अक्षरशः उद्धृत किया है। वृत्तिकार ने रामचरित, हरिवंश, निसीथ, उत्तराध्ययन आदि ग्रन्थों को भी देखने का निर्देश दिया है। इनके आख्यानक जैन परम्परा के साथ ही अजैन परम्परा का भी प्रतिनिधित्व करते हैं।

11. आख्यानकों में सुभाषितों, सूक्तियों एवं लोकोक्तियाँ का भी प्रयोग किया गया हैं।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PJ-46

गाथासप्तशती तथा बिहारी सतसई में नायिका भेद : तुलनात्मक विवेचन

प्रो. कमले शास्त्रद, आगरा

संस्कृत काव्यशास्त्र तथा नाट्यशास्त्र एवं कामशास्त्र में नायिका भेद का विस्तृत एवं गहन निरूपण उपलब्ध है। कवियों ने भी अपने काव्य में इन नायिकाओं का चित्रण किया है। आचार्यों के लक्षणग्रन्थों में तो नायिकाओं के भेद तथा उनके लक्षण एवं उदाहरण मिलते ही है; परन्तु अनेक ऐसे ग्रन्थ हैं, जिनमें लक्षण तो नहीं दिये गये हैं; परन्तु उनमें चित्रित नायिकाओं को पूर्णतः शास्त्रों में वर्णित नायिकाओं के वर्गीकरण के अन्तर्गत रखा जा सकता है। ऐसे ग्रन्थ लक्षणग्रन्थ न होते हुए भी नायिका-भेद का सूक्ष्मातिसूक्ष्म उदाहरण हैं। हाल की गाथासप्तशती तथा हिन्दी में बिहारी की सतसई ऐसी ही रचना हैं। गाथा सप्तशती में धीरा, ललिता, मध्या, मुग्धा तथा प्रगल्भा आदि सभी प्रकार की नायिकाओं के प्रचुर उदाहरण हैं। इस ग्रन्थ को नारी के विविध रूपों का ऐसा विशालतम कोश कहा जा सकता है, जिसमें नारी की विविध ध्वनियाँ ही नहीं, अपितु उसकी विविध मनः स्थितियों, उसके बदलते हुए तेवरों तथा भावों के उतार-चढ़ाव, उसकी उपेक्षाओं तथा आशाओं आदि का समावेश है। मानवती मानिनी नायिका भी समावेश हैं। सत्यनय डाह में जलती नायिका भी। बिहारी सतसई भी रीतिकाल की एक ऐसी रचना है, जो लक्षणग्रन्थ न होते हुए भी पूर्णतः रीतिसिद्ध रचना है। नायिका के सूक्ष्म से सूक्ष्म परिवर्तनों तथा बदलावों का लखा-जोखा इस ग्रन्थ में है। नारी सौन्दर्य के भारतीय प्रतिमानों तथा रूढ़ियों का इसमें यदि उल्लेख हैं, तो कल्पना की समादृत शक्ति से एक ही नायिका में अनेक मुखों तथा क्रियाओं का समाहार है। स्वकीया तथा परकीया दोनों ही प्रकार की नायिकाएँ यहाँ उपस्थित है। इन दोनों ही ग्रन्थों में नारी के विविध रूप हैं, जो शास्त्रीय नायिका भेद की कसौटी पर कसे जा सकते हैं। इतना ही नहीं, नारी के आन्तरिक सौन्दर्य का भी उत्कृष्टतम वर्णन इन रचनाओं में उपलब्ध है। इन दोनों में वर्णित नायिकाओं का तुलनात्मक विवेचन ही प्रस्तुत शोधपत्र का विवेचन है।

❖

PJ-47

जैन रामायण में हनुमत् पराक्रम

प्रो. रामाकान्त प्रसाद श्रीवास्तव, पटना

जैन रामायण एवं जैन धर्म की कथाओं के अनुसार श्री राम की अपरमपार लीला के साथ ही रामभक्त हनुमान् के पराक्रम का महत्त्व वर्णित हैं। सूर्य के समान तेज शक्ति वाले हनुमान् सुग्रीव आदि की सहायता में भी परम-बन्धु की भूमिका का निर्वाह करते हैं। राम के आदेश से लंका गमन और वहाँ जाकर रावण के आदेश के बिना सीता से मिलना उनके पराक्रम की पराकाष्ठा है। जब सीता जी से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हनुमान् की मुलाकात होती है, तो कहते हैं—हे माते! मैं इन राक्षसों को थोड़ा बहुत अपना पराक्रम दिखाता हूँ। यह रावण अपने आपको सर्वत्र सर्वविजयी समझता है, वह दूसरों के बल को नहीं जानता। इसलिए मैं बताना चाहता हूँ कि राम तो क्या उनके दूत भी कैसे पराक्रमी हैं, मेरी भूमिका से आपको पता चल जायेगा। तत्पश्चात् वन के हाथी की तरह अपने भुजबल से हनुमान ने चारों द्वारों के द्वारपाल राक्षसों की उपस्थिति में देवरमण उद्यान को नष्ट कर दिया, जो प्रबल पराक्रम का परिचायक है।

❖

PJ-48

लोककथा तत्त्व के आयाम

डॉ. कामेश्वर तिवारी, भोजपुर

कथाओं में लोक मानस की सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति का रहना ही लोककथा तत्त्व है। कथाकार को जो कुछ कहना सुनना है, उसे समूह की वाणी बनाकर और समूह में घुल-मिलकर ही रहना है। यही कारण है कि लोक कथाओं में लोक संस्कृति का वास्तविक प्रतिबिम्ब रहता है। जो कथायें लोकचित्त से सीधे उत्पन्न होकर सर्वसाधारण को आन्दोलित करती है वह जनता की बोली में लिखी जाती है, वे लोक कथाओं के पद पर आसीन होने के अधिकारिणी हैं। लोक चेतना का साहित्य अपनी मूल प्रेरणा लोकमानस से ग्रहण करता है, किन्तु उसका ऊपरी ढाँचा साहित्य की शास्त्रीय मार्मिकताओं पर आश्रित होता है। सारे विश्व में लोक कथाओं का रूप प्रायः एक जैसा पाया जाता है। लौकिक सौन्दर्य-बोध, लोकचिन्ता की एकरूपता और सामान्य अभिव्यञ्जना प्रणाली विश्व की लोक कथाओं में समान रूप से उपलब्ध है।

❖

PJ-49

जैनागम साहित्य में सामाजिक संगठन

डॉ. डी.पी. श्रीवास्तव, पटना

वर्णव्यवस्था प्राचीन भारतीय समाज का मेरुदण्ड था। जैन सूत्रों में आर्य और अनार्य जातियों में भेद किया जाता है। वैदिक साहित्य में दोनों जातियों में मुख्य भेद रंगभेद था। आर्य विजेता गौर वर्ण के थे, जबकि अनार्य उनके अधीन और कृष्ण वर्ग के थे। जैन सूत्रों में आर्यों की पाँच जातियाँ बतलायी गई हैं—क्षेत्र आर्य, जाति आर्य, कुल आर्य, कर्म आर्य, भाषा आर्य और शिल्प आर्य। प्राचीन व्यवस्था के अनुसार चार वर्ण बतलाये गये थे। जैन धर्म और बौद्ध धर्म में ब्राह्मणों के उपर क्षत्रियों का प्रभुत्व स्वीकार करते हुए व्यवस्था का विरोध किया गया है। लेकिन इससे यह सोचना कि महावीर और बुद्ध के काल में जाति व वर्ण भेद सर्वथा नष्ट हो गया था, सही नहीं है। जैनसूत्रों में बंभण, खत्रिय, वाइस्स और सूद्र नाम के चार वंर्णों का उल्लेख प्राप्त है। जैनागम साहित्य में वर्ण के अलावा ग्रहपति, श्रेणी-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संगठन, म्लेच्छ, नीच और अस्पृश्य, आर्थिक परिस्थितियाँ, उत्पादन, आभूषण, पूँजी, विनिमय इत्यादि की व्यवस्था समाजिक संगठन के अन्तर्गत किया गया है।

❖

PJ-50

विज्ञान के विकास में अध्यात्म का अध्ययन आवश्यक

डॉ. विजय कुमार सिन्हा, पटना

आज मनुष्य अशान्त, विक्षुब्ध एवं तनावपूर्ण स्थिति में है। बौद्धिक एवं पर्याप्त ज्ञान-राशि और बौद्धिक विकास से प्राप्त भौतिक सुख-सुविधा एवं आर्थिक समृद्धि, मनुष्य की आध्यात्मिक, मानसिक एवं सामाजिक विपन्नता को दूर नहीं कर पायी है। सामान्यतः आज विज्ञान और अध्यात्म को परस्पर विरोधी अवधारणाओं के रूप में देखा जाता है। आज जहाँ अध्यात्म को धर्मवाद तथा परलौकिकता के साथ जोड़ा जाता है, वहाँ विज्ञान को भौतिकवाद तथा इहलौकिकता के साथ जोड़ा जाता है। एक हमें बाह्य जगत् में जोड़ा है, तो दूसरा हमें अपनों से जोड़ता है। दोनों ही योग है। जब तक हम अध्यात्म का अध्ययन नहीं करेंगे विज्ञान का विकास अधूरा रह जायेगा।

❖

PJ-51

अहिंसा : सामाजिक नैतिकता का तत्त्व

डॉ. हरेन्द्र प्रसाद सिंह, आरा

मोह और क्षोभ, वैयक्तिक एवं सामाजिक समता के विचलन के दो कारण हैं। मोह अर्थात् आसक्ति विचलन का एक आन्तरिक कारण है, जो राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि के रूप में प्रकट होता है और क्षोभ, हिंसा, शोषण, तिरस्कार या अन्याय के कारण मानस को पीड़ित करते हैं। मोह वैयक्तिक बुराई है, जो समाज-जीवन इत्यादि को दूषित करती है। जबकि क्षोभ सामाजिक बुराई है, जो वैयक्तिक जीवन को दूषित करती है। मोह का केन्द्रीय तत्त्व आसक्ति (राग या तृष्णा) है, जबकि क्षोभ का केन्द्रीय तत्त्व हिंसा है। जैन आचार दर्शन में सम्यक् चरित्र की दृष्टि से अहिंसा और अनासक्ति ये दो केन्द्रीय सिद्धान्त हैं, जो सामाजिक नैतिकता को उजागर कर सकते हैं।

❖

PJ-52

जैनधर्म में अनासक्ति

प्रो. डॉ. चन्द्रदेव राय, आरा

जैन आचार दर्शन में जिन पाँच महाव्रतों का विवेचन है, उनमें से तीन— अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह; अनासक्ति के ही व्यवहारिक रूप हैं। व्यक्ति के अन्दर निहित अनासक्ति दो रूपों में प्रकट होती

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं—1. संग्रह भावना और 2. भोग भावना। इस प्रकार आसक्ति बाह्यतः तीन रूपों में होती है—शोषण, भोग और संग्रह। आसक्ति के तीन रूपों का निग्रह करने के लिए जैन आचार दर्शन में अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह महाव्रतों का विधान है। संग्रहवृत्ति का अपरिग्रह से, भोगवृत्ति का ब्रह्मचर्य से और अपहरण वृत्ति का अस्तेय महाव्रत से निग्रह होता है।

❖

PJ-53

प्राकृत साहित्य में अंकित ज्योतिष

डॉ. जयकुमार उपाध्ये, नई दिल्ली

प्राकृत साहित्य में सिद्धान्त और दर्शन का जितना विवेचन है, उतना ही लौकिक और जीवविज्ञान से सम्बन्धित विषय भी प्रतिपादित हुआ है। जैन साहित्य विभिन्न भारतीय भाषाओं में उपलब्ध है, परन्तु इस साहित्य की प्रारम्भिक और आधारभूत भाषा प्राकृतभाषा है। प्राकृत साहित्य में विभिन्न विद्याओं का विश्लेषण हुआ है। जैनागम की दृष्टि से ज्योतिष का विकास विद्यानुवाद अंग और पाँच परिकर्मों से हुआ है। जैनाचार्यों ने ज्योतिष को मुख्यतः दो भागों में विभक्त किया है—1. गणित (सिद्धान्त) और 2. फलित ज्योतिष।

फलित ज्योतिष का विषय अत्यन्त व्यापक व मौलिक है। निमित्तज्ञान जैन ज्योतिष का एक प्रमुख विषय है। अष्टांग निमित्तज्ञान की चर्चाएँ भी आगम ग्रन्थों में मिलती हैं। ज्योतिष की अनेक मौलिक बातों का संग्रह आगम ग्रन्थों में मिलता है। जैसे—सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति, ज्योतिषकाण्डक, अंगविज्जा, गणिविज्जा, जोइससार, लोकविजययंत्र, रिट्ठसमुच्चय, जातकतिलक, केवलज्ञान, प्रश्नचूड़ामणि, मानसागरी आदि ज्योतिष के मौलिक ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं।

प्रस्तुत आलेख में कर्मफल सूचक निमित्तों का संक्षेप में वर्णन किया गया है। आठ निमित्तों के नाम—1. व्यञ्जन, 2. अंग, 3. स्वर, 4. भौम, 5. छिन्न, 6. अन्तरिक्ष, 7. लक्षण, 8. स्वप्न।

इन आठ निमित्तज्ञान के द्वारा सुभिक्ष-दुर्भिक्ष, जय-पराजय, लाभ-हानि, सुख-दुःख, सुवर्षा-अतिवर्षा आदि तथ्यों का लौकिक जीवन में मौलिक जानकारी प्राप्त होता है। एक फ्रांसीसी पर्यटक फ्राक्वीस बर्नियर ने इस बात का समर्थन किया है कि भारत देश में इन विद्याओं का विकास स्वतन्त्र रूप से हुआ है। यह सत्य है कि अष्टांग विद्या भारत में जन्मी तथा समृद्ध होकर पूरे विश्व में फैल गयी है। यह ज्ञान मानव जीवन में समय-समय पर उपस्थित होने वाले संकटों को दूर करने के लिए अत्यन्त लाभकारी ज्ञान है. इस ज्ञान के द्वारा राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि अन्य विषयों पर सटीक निर्णय प्राप्त कर देश के सर्वांगीण विकास में मौलिक योगदान प्रस्तुत किया जा सकता है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PJ-54

गाहासत्तसई में वर्णित भाषा-शैली

श्री सच्चिदानन्द सिंह, आरा

गाहासत्तसई की प्रकृति महाराष्ट्री है। संस्कृत की भाँति प्राकृत भी भारतीय ज्ञान-विज्ञान की वाहन भाषा थी, जो सम्भवतः वैदिक सभ्यता के समय से ही भारतीय जन-जीवन में अपने विविध दैशिक और कालिक रूपों में प्रवर्तमान होती चली आ रही थी। कई विद्वानों ने संस्कृत तथा प्राकृत दोनों को पृथक् भाषा माना है और 'प्राकृतस्य तु सर्वमेव संस्कृतं योनिः' (प्राकृतसञ्जीवी) को अमन्तव्य घोषित किया है। जो हो, जब से संस्कृत ने अपने को उत्कृष्टतम साहित्य के पद पर प्रतिष्ठित कर लिया, तब से बहुत कुछ उसका जन-सम्पर्क छूट गया और तभी से प्राकृत ही जन-साधारण की भाषा बनी। यही कारण है कि प्राकृत ने विभिन्न भारतीय देशों में अपना अलग-अलग स्वरूप धारण किया और अपेक्षाकृत इसकी रवानगी बनी रही।

बहुत आगे चलकर प्राकृत ने भी अपना साहित्यिक रूप ग्रहण किया और तब से प्राकृत-साहित्य या साहित्यिक प्राकृत के विभिन्न पहलुओं पर सभ्य और शिक्षित लोगों का भी ध्यान गया। जिन्हें साहित्यिक प्राकृत कहा गया उनमें महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी (अर्धमागधी) और पैशाची के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। प्राकृत-व्याकरण के यशस्वी विद्वान् पिशेल के अनुसार स्वच्छन्द प्रयोग के लोप होने पर आर्य भाषा के लौकिक मध्यकालीन रूप का विकास हुआ; किन्तु प्राकृतों के विकास का आधार प्राचीन और प्राचीनतर आर्यभाषाओं की विशेषताएँ हैं।

संस्कृत से प्राकृत के उद्भव सिद्धान्त में सिंहदेवमणि के अनुसार 'प्रकृतेः संस्कृताम् आगतं प्राकृतम्' (बागभटालङ्कारटीका) है, अर्थात् संस्कृत ही प्रकृति है और उससे आगत या विकसित भाषा (प्राकृत) कहलायी। 'प्रकृतसंजीवनी' में भी कहा है—'प्राकृतस्य तु सर्वमेव संस्कृतं योनिः' अर्थात् सभी संस्कृत प्राकृत की योनि या उद्भव स्थान है। इसी प्रकार अन्य लोगों ने भी संस्कृत को ही प्राकृत का उद्भवस्थान माना है, जैसे—'संस्कृतायास्तु विकृतिः प्राकृति मता' (नरसिंहकृत षड्भाषाचन्द्रिका); 'प्रकृतिः संस्कृतं तत्र भवं प्राकृतमुच्यते' (मार्कण्डेयकृत प्राकृतसर्वस्व)। इन प्रमाणों के आधार पर प्राकृत भाषाओं का मूल आधार संस्कृत भाषा ही ठहरती है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PJ-55

Nature of a Nāya-Type of Story

VIMAL ANIL BAFANA, PUNE

The earliest evidence of *nāya* is fouud in Nāyādhamma-kahāo. Here we don/t get a perecise interpretation of *nāya*. This title of the sixth *aṅga* has bee variously rendered as (i) *jñātṛdharmakathāḥ* = 'Tales of the religion preached by jñātṛ', Lord Mahāvīra who belonged to the *jñātṛ* clan. Obviously this interprectation is strain. (ii) The compound '*Jñātṛdharmakathā*' may either be taken as a *karmadhāraya* or a *dvandva*. In the first case the meaning will be 'known tales' which does not deliver any precise sense. In the second case it will be 'the *Nāya*-type of Tales and other Religious Tales'.

Regarding the meaning of the word *nāya* there is no doubt because it has always been used in the sense of example and also equated with *udāharana* and *dṛṣṭānta*. It may be because of *udāharaṇa* or *dṛṣṭānta* as its equivalent that it has been associated with *nyāya*. *udāharaṇa* or *dṛṣṭānta* being a component of a logical syllogism. But the problem is that *jñāta* (known) from which the commentators derive the word '*nāya*' has no association with the commentators derive the word '*nāya*' has no association with *nyāya*. Moreover, this derivation is in accordance with the phonetic rules governing the evolution of the prakṛit words. So the main issue is how to relate *jñāta* semantically with an example. One possibility is that the example stories happened to be called a *jñāta* because of their being widely known. But this hypothesis has little support because in Sanskrit, *jñāta* is nowhere used in the sense of a well known story. In Pañcatantra and Hitopadeśa, there are numerous example stories, but none of these has been called a *jñāta*.

Nāyādhammakāhāo has a very big collection of *nāyas*. Most of these are explicitly illustrative (*dṛṣṭāntaparaka*) or analogical.

❖

PJ-56

Jainism and Spirituality

DR. KOKILA H. SHAH, MUMBAI

Jainism is pluralistic realism which is characterized by its soul oriented Philosophy and Psychology. Jaina Philosophy is humanistic in its approach and spiritualistic in its depth. It has made an important contribution in the field of consciousness. The living substance is different from non-living substance. The paper highlights the fact that the soul is the life-force-consciousness in its essence. It is manifestation of consciousness in its

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

perfect form which is the same as godhood or enlightenment—the highest stage of spiritual existence. The focus is on spirituality, on realizing transcendental nature of the soul which the individual feels as his own. Jainism, is the religion of the 'Jina'-the spiritual conqueror. Spirituality consists in realizing that soul is self-established. There is no creator God. But every soul is potentially God and can become God by his own strenuous efforts. Jainism thus believes in divinity of the soul. Capacity of self-realization is inherent in the soul. Spirituality is eventually an individual endeavor Soul's attainment of perfection is liberation. The state of complete bliss-which is beyond expression. Self-knowledge forms an essential part of spirituality. Jaina spiritualism culminates into mysticism.

It is evident that Jaina tradition is spiritual from the beginning to the end.

❖

PJ-57

Yakṣa Cult in Jainism

SHILPA CHHEDA

The worship of the God & Goddesses has been an integral part of Indian religious viz. Hinduism, Buddhism and Jainism. Apart from them, the references of the worship of Yakṣa, Yakṣis, Nāgas, Gandhrvas and innumeral local dieties can also be traced through ancient Indian literature and Art.

The word Yakṣa is mentioned several times in Rigveda, Atharva Veda, Brāhmans and Upanishads where it is not clearly definable but conveys the meaning 'something wonderful or terrible'. Yakṣas were regarded as both, benevolent and malevolent by all three Indian traditions. They were also regarded as attendants of their Lord Vaiśravaṇa (Kubera), King of Yakṣas.

In the present paper I have tried to trace the origin and development of Yakṣa worship in Jaina tradition citing the references from Canonnical & Non-canonnical literature and archaeological evidences.

❖

PJ-58

Education in the Gāthāsaptaśatī

DR. SUCHITRA RAY, KOLKATA

Gāthāsaptaśatī is an anthology composed by Hāla, a King of Sātavāhana dynasty. The characters of this erotic literature are the general people. An attempt has been made

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

here to show whether there was any system of education among the general people. If we go through the book we get some words which indicate the education system of that time. In a verse we get the word *'uvajjhāo'* (Skt. Upādhyāya). The word 'upādhyāya' or instructor in this verse informs us that the 'upādhyāya' class was well known in that society. The great importance was attached to the teacher. In the ancient system of education high reverence was shown to him in the society. The 'upādyāya' or instructor used to teach in the various streams of learnings.

❖

PJ-59

Bṛhatkathākośa of Hariṣeṇa Sūri

DR. HIMANSHU SHEKHAR ACHARYA, ALIGARH

The rich contribution of Jainas to Indian Literature in general and narrative literature in particular is universally acknowledged. In spite of their richness and preciousness, large number of Jaina works are still untouched. They are indeed full of materials useful for the researchers of socio-cultural history, linguistics, lexicons and other branches of Indology.

Bṛhathatkākośa of Hariṣeṇa Sūri (10th century A.D.) is such a work which has not evoked much interest in the minds of scholars of past and present. The present paper comprises a short introduction to the text, its author, time and place of composition and highlights its significance for the researchers of Indology. It also emphasises on the need for intensive studies on similar neglected texts of Jaina Sanskrit literature which will certainly enrich the fields of indological research and recognise the valuable contribution of Jainas to the different branches of knowledge.

❖

PJ-60

Pūrta [Before Gupta Empire] Based on Inscriptional Record

DR. DEVI PRAKASH TRIPATHI, RAJSTHAN

The period under consideration has immense importance in religious History. Pūrta is mentioned in several Vedic and Non-Vedic Literatur. Therefore definitions of Pūrta exist in Vedic literature, however one thing is common to all and that is 'Public welfare works are Pūrta works' for example digging Pool, Water tank, Gardening, Constructions of Temple etc.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

A large number of inscriptions from all over India that mentioned Pūrta work have been brought to light under considerable.

As per inscriptional record of the period under consideration that time several people worked for Pūrta. They constructed temple and helped to dig Well, Dam, Pond or Pool, Large Lake, Garden, constructed recreation hall or rest room, organized entertainment programme for public welfare.

The public welfare was the first aim of Pūrta. Secondly, it was also for self materialistic and immaterialistic happiness.

❖

PJ-61

Social Implicaitons of 5 Anuvratas

SOMANI SHAHSI PRAGYA, RAJASTHAN

Tirthankara Mahāvira propounded two fold restrain namely Anuvratas and Mahāvratas for ascetics. Trithankara Mahāvira preached the vow of complete restraint (Mahāvratas) twelve Anuvratas (small vows) especially for the house-holders. But I would discuss only social relevance of five principles of Anuvratas in this paper. No religion of the world has explained the principle of Ahimsa, Satya, Asteya, Brahmacharya and Iccha pariman as deeply, profoundly and systematically as has been discussed with its applicability in life in Jainism. An absolutely original notion of acceptance of equal consciousness in six classes of beings is the very heart of Tirthankara Mahavira's non-violence. The observance of gross non-violence can help in preventing ever bursting problem of environmental pollution, animal cruelty in the cosmetic tests, exploitation of natural resources for comforts, non-stop production of nuclear weapons etc. and thereby eco-friendly life can be maintained in the society. Like wise the vow of self imposed limitation over one's possession and limitation over consumable and non-consumable goods can act as a panance in the removal of many social problems namely economical in equality, ecological imbalance, corruption, adulteration, poverty, black-marketing etc. in the society and can help in realising the Gandhian dream of stateless state and *vasudhaiva kutumbakam* on this earth.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Section - 8

HISTORY

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

H-1

स्मृतिशास्त्रे न्यायव्यवस्था दण्डव्यवस्था च

प्रो. वेदप्रकाशशास्त्री, हरिद्वारे

सृष्टिकालादेव आरभ्य मानवजगत् नियमयितुं विविधा व्यवस्थाः प्रदत्ताः। सर्वप्रथमं वेदा एव परमेष्ठिवाचा विविधान् उपायान् मानवजगतः संयमने प्रादुः। वेदान् एव अनुसरद्भिः स्मृतिकारैः सर्वे नियमाः स्थाने स्थाने संयोजिताः। साम्प्रतिकी या व्यवस्था विश्वे प्रचरति सा क्वचित् स्मृतिशास्त्रेण सम्मता क्वचिच्चासम्मता। अद्यत्वे जगत्यां प्रायशः दण्डव्यवस्था न्यायव्यवस्था य खण्डितेव आभाति, अत एव निखिलं जगत् दुर्विचार-वृत्ति-दोष-दूषितं जातम्। स्मृतिशास्त्रेषु न्यायव्यवस्थाविषये ये नियमाः संदिष्टास्त एव सम्प्रति सन्त्युपयोगिताभाजः। दण्डव्यवस्था तु सम्प्रति उपहासमयी जाता, अपराधवृत्तियुतानां पुंसां दण्डप्रताडनम् अपेक्षितवृत्त्या नोपलभ्यते। दण्डप्रकार एव सर्वान् नियमयितुं प्रभवति। अस्मिन् लेखे स्मृतिशास्त्रोदीरितां न्यायव्यवस्थां दण्डव्यवस्थां चाभिलक्ष्य समुचितानां विचाराणां संयोजनं समपेक्ष्यते।

❖

H-2

मण्डनमिश्रस्य प्रामाणिकः परिचयः

डॉ. वैद्यनाथझा, मुजफ्फरपुरम्

मिथिला-मही-मण्डल-मण्डनभूतस्य समादरणीयमण्डनमिश्रस्य निवासः 'महिषी'ग्रामे समासीत्। अस्य प्राचीनं नाम 'महिष्मती' इत्यस्ति। अयं ग्रामश्च विहारप्रान्ते सहर्षा-(सहरसा) मण्डले धर्ममूला-(प्रसिद्ध-धेमुड़ा) नदीसमीपे विद्यते। मण्डनमिश्रस्य वासभूमेः समीपे एव भगवत्या उग्रतारायाः प्रसिद्धं मन्दिरमस्ति। एकः महाविद्यालयोऽपि तत्रैव आचार्यमिश्रनाम्ना प्रचलति। अतो मिश्रमहोदयस्यात्र निवासे न कोऽपि सन्देहो वर्तते। अत्र प्रमाणान्यपि बहूनि सन्ति।

प्राचीना विद्वांसः स्वग्रन्थे निजपरिचयप्रदाने आत्मश्लाघां मन्यन्ते स्म। अत एव तेषां परिचये महान् विवादोऽद्यत्वे समुपलभ्यते। आचार्यमण्डनमिश्रस्यापि सम्बन्धे इयमेवास्ति स्थितिः।

माधवाचार्यविरचितश्रीशङ्करदिग्विजयग्रन्थानुसारं लोके प्रसिद्धमिदं संजातं यद् मण्डनशङ्करयोः शास्त्रार्थयुद्धं समभूत्, तत्र मण्डनमिश्रः पराजितः सन् संन्यासग्रहणं कृतवान्। संन्यासग्रहणानन्तरं स एव सुरेश्वराचार्यनाम्ना प्रसिद्धः। अयं च दक्षिणभारते शृङ्गेरिमठस्य प्रथमोऽध्यक्षोऽभवदिति।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शङ्करदिग्विजये माधवाचार्यस्य कथनमिदं कपोलकल्पितमवास्ताविकं च विद्यते। एतच्च ग्रन्थविरोधः, युक्तिविरोधः, इतिहासविरोधः, परम्पराविरोधश्चेति चतुर्भिः प्रकारैः खण्डितं भवति।

❖

H-3

आयुर्विज्ञानेतिहासः

डॉ. कृष्णनारायणपाण्डेयः, दिल्ली

1. 3257 ई.पू. वेदसंहितासम्पादनं कृष्णद्वैपायन-व्यासद्वारा।
2. 3102 ई.पू. हिमालये प्रथमायुर्विज्ञानसम्मेलनम्। पुनर्वसु आत्रेय-द्वारा आयुर्वेदसंहितानिर्माणम्।
3. 1500 ई.पू. तक्षशिलाविश्वविद्यालये जीवकद्वारा औषधीयपादपानुसंधानम्।
4. 1000 ई.पू. चरकसंहितासंकलनम् पतंजलिसमये।
5. 550 ई.पू. सुश्रुतद्वारा नवसंहितासंकलनम्।
6. 450 ई.पू. चीनी-वैद्यकग्रन्थ-प्रकाशनम्/एक्यूपंचरवर्णनम्।
7. 460-370 ई.पू. हिप्पोक्रेटसबुकरातयूनानीवैद्यद्वारा पाश्चात्यचिकित्सारंभः।
8. 550 ई. बाणभट्टद्वारा अष्टांगहृदयरचना कृता।
9. 750 ई. सिद्धयोग आयुर्वेद-प्रारम्भः।
10. 1300 ई. शारंगधरद्वारा नवसंहितासंकलनं कृतम्, नाड़ी-विज्ञानसंयुक्तम्।
11. 1600 ई. भावप्रकाशनिघण्टुः, भावमिश्रद्वारा विरचितः।
12. 1683 ई. जीवाणु-बैक्टीरिया-शोधः हालैण्डस्य लीवन-हरक-द्वारा।
13. 1796 ई. टीकाकरणम्, ब्रितानी एडवर्ड-टेनरद्वारा।
14. 1847 ई. क्लोरोफार्म-शोधः ब्रितानी जेम्स-सिक्सनद्वारा।
15. 1912 ई. विटामिन-शोधः, एफ जी हापकिंस-(ब्रिटेन) द्वारा।
16. 1921 ई. मधुमेह-इंसुलिन-शोधः कनाडियन बैटिंग तथा बेस्ट द्वारा।
17. 1928 ई. पेंसिलीन-शोधः, एलेक्जेंडर-फ्लेमिंग-(ब्रिटेन) द्वारा।
18. 1953 ई. हृदयशल्यचिकित्सा, वाल्टनलिलोहल-अमरीका-द्वारा।
19. 1967 ई. हृदयप्रत्यारोपणम्, डॉ. क्रिश्चियनवर्नाड दक्षिणी अफ्रीकाद्वारा।
20. 1978 ई. प्रथमपरखनलीशिशुजन्म ब्रिटेनदेशे।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

H-4

विश्वसभ्यतायामसमराज्यस्यावदानम्

श्रीटोपोपेश्वरवरा शास्त्री, असम

जगत्सृष्टेरादितः मानवसभ्यतायाः विकासः असमराज्ये कदा अभवत् तस्यैवालोचनमत्र निबन्धे क्रियते। साङ्गवेदपुराणरामायणमहाभारतानुसारम् असमभूखण्डे कस्य कस्य वंशधराः जाताः तेषां कीर्त्तयश्च सयुक्तिकं विचार्यन्ते। आश्रम-मन्दिर-प्रभृतीनामुल्लेखेन सह ब्रह्मपुत्रतीरस्य सभ्यतायाः पूर्णविकासः भारतीय-सभ्यतासरूपासीत्। विष्णुधरित्र्योस्तथा कश्यप-ऋषेः वंशोद्भवाः सर्वे जनाः वैदिक-तान्त्रिकाचारानुशासि-तास्तद्विपरीताः नास्तिकाश्चासन्। ततः इदानीं भिन्नवृत्तयः सञ्जाताः। तच्च देव-दैत्य-दावन-असुर-राक्षस-किरात-म्लेछ-यवन-द्रविड-मागध-खस-कंक-ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र-प्रभृति-नाम्ना प्रख्याताः। प्रकृतेः गुणत्रयानाम्वि-परिणामकारणात् भोगासक्तजानानां संख्याःगरिष्ठाः जाताः। ततः जगति हिंसा-पैशुन्य-द्वेष-प्रभृतिकार्यजातं क्रमोन्नतिप्रापमभवत्। अनेनैव असमराज्ये तथा विश्वेऽस्मिन् भोगवादस्य प्रभावः प्रबलतरं सर्वानुभवसिद्धः भवति।

परिवर्त्तनशीलं जगत् समग्रमावर्तनशीलमेव सनातनरूपम्, सत्यं शिवं सुन्दरमिति विभाति। अतः जगत् समग्रं विष्णुमयमिति।

❖

H-5

मिथिला के शक्ति-पीठों का ऐतिहासिक परिचय

श्रीमती नीलिमा ठाकुर, बिहार

वैश्वानल असि अग्नि से उत्पन्न हुई गौतम रहुगण की यह तपोभूमि मिथिला, जो मिथि से धरोहर के रूप में शेष छप्पन जनकों को प्राप्त हुई, का प्रत्येक भू-भाग, बाट, घाट, तीर्थ, सिद्धपृष्ठ, देवालय, सर, नदी, कुण्ड, कूप, ऋष्याश्रम आदि से पटी पड़ी है। अपने तपोपूत ऋषियों, सिद्धों एवं साधकों के बल पर इसने अवतारी देवों को भी बार-बार यहाँ आने को विवश किया है। ब्रह्मशाप से विमुक्त होने हेतु सदाशिव रुद्र भी जनकपुर के ब्रह्मकुण्ड में स्नान कर शापमुक्त हुए हैं, जिसकी कथा शिवपुराण एवं ब्रह्मवैवर्त पुराणों में वर्णित है।

वैसे तो यहाँ शाक्त, शैव एवं वैष्णव तीनों ही मतों के लोग साथ-साथ रहते हैं; परन्तु प्रधानता शाक्त मतावलम्बियों की ही है। बंगाल की तरह ही मिथिला भी अपने शक्तिपीठों के कारण वैदिककाल से ही अत्यन्त प्रसिद्ध रहा है; परन्तु यहाँ यह कहना ज्यादा उपयुक्त प्रतीत होता है कि मैथिल शाक्त-भक्तों के कारण ही बंगाल के शक्तिपीठों का भी यशोगान विश्वव्यापी बन पाया। उक्त तथ्य के प्रमाणस्वरूप बंगाल के तमाम पीठों पर, चाहे वे शांक्त हों या शैव या फिर वैष्णव, मैथिल सरदार पंडाओं का ही वर्चस्व देखने को मिलता है। उदाहरण के तौर पर कामाख्या के जगत्प्रसिद्ध पृष्ठ पर श्यमणी कान्त या रमणी कान्त पंडा का प्रभाव एवं देवघर के शिव मन्दिर में भवप्रीतानन्द की सरदारी तो देखी ही जा सकती हैं। उपरोक्त तथ्यों पर बंगाल के प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. सुनीतकुमार चटर्जी ने बार-बार प्रकाश डाला है। अतः उपरोक्त सन्दर्भ में ये बातें कोई नवीन नहीं कही जा सकती।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँ का राजा देहधारी होकर भी विदेह हो। प्रजा गौतम, कण्व, कपिल और याज्ञवल्क्य हों। वेद निर्मात्री नारियाँ—गार्गी, मैत्रेयी, गौतमी, भारती और अन्ततः भारती आदि गृहणियाँ मातायें हों और जहाँ दशावतार विष्णु के बौद्ध रूप का आविर्भाव हुआ हो, उस धरती का भला कहना ही क्या?

सूत, शौनक, सनत्कुमार, सनक सनन्दन सहित कण्व और कपिल ऋषियों ने अपने अमूल्य विचारों से इस भूमि को सर्वदा उर्वरा बनाये रखा, वहीं पूर्ववर्ती ऋषियों के बाद मध्यकालीन विद्वानों में अक्रूर, चाणक्य, बाणभट्ट और आर्यभट्ट सदृश मण्डन मिश्र, हलायुध, वररुचि और विद्यावाचस्पति भला कैसे भुलाये जा सकेंगे?

❖

H-6

प्राचीन भारतीय आर्थिक विचारों का इतिहास

(कौटिल्य के विशेष सन्दर्भ में)

डॉ. राजनाथ, वाराणसी

प्राचीन भारतीय समाज में आर्थिक विचारों में मनु का प्रथम स्थान माना जाता है। मनु ने अराजक स्थिति से बचाने के लिए आर्थिक व्यवस्था में राजा (शासक) की महत्त्वपूर्ण भूमिका माना है। भारतीय दृष्टि से मनु को सृष्टि के प्रारम्भ में माना जाता है; किन्तु दासता के कारण और भारत के वैभव को देखकर पाश्चात्त्य इतिहास लेखकों ने मनु का काल निर्णय ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी माना है, जो सर्वथा असत्य है। मननशील होने से मनु को मानव का पिता माना जाता है। मनु ने मानव जीवन में अर्थ के महत्त्व को बताते हुए कहा है कि 'उस युग में जिसके पास पशु, कृषि और कृषि से उत्पादित वस्तु होती थी, वही अर्थवान् माना जाता था, जीवन यापन करने और जगत् के व्यवहार चलाने के लिए अर्थ का महत्त्व अधिक था। अर्थप्राप्ति का उद्योग ही मुख्य साधन था। मनु ने अपनी मनुस्मृति में आजीविका पर इस प्रकार अपने विचार व्यक्त किये हैं—'वाणिज्य को झूठ-सच बोलने के कारण सत्यानृत कहा गया है। सेवावृत्ति को श्वानवृत्ति कहा गया है'।

मनु के पाश्चात् शुक्राचार्य ने शुक्रनीति में अपने आर्थिक विचारों को बड़ी ही कुशलता से व्यक्त किया है। शुक्र ने मानव जीवन में सभी दृष्टियों से अर्थ को आवश्यक साधन माना है। नीति से ही अर्थ का सही उपार्जन होता है। न्याय अर्थात् सही मार्ग से उपार्जित अर्थ मानव को सुख और अभ्युदय का मार्ग दिखाता है। न्याय के पक्ष से विचलित होने से सब कुछ शीघ्र नष्ट हो जाता है, अतः जीवन में अर्थ की परमावश्यकता होती है; किन्तु अर्थोपार्जन में विवेक से कार्य लेना चाहिए। संसार की सभी वस्तुओं की प्राप्ति का मूल अर्थ को ही माना जाता है; क्योंकि अर्थहीन व्यक्ति को सभी व्यर्थ समझकर अवहेलना करते हैं। निर्धन व्यक्ति गुणवान् होने पर भी स्त्री, पुत्र द्वारा त्याग दिया जाता है। अतः संसार के व्यवहार को चलाने के लिए अर्थ ही एकमात्र सार माना जाता है। शुक्र ने कहा है कि मनुष्य अर्थ का दास है और अर्थ किसी का दास नहीं। अतः अर्थ को प्राप्त करने वाले को सदा यत्न करना चाहिए।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन आर्थिक विचारों में कौटिल्य का आर्थिक विचार महत्त्वपूर्ण है। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र के प्रथम श्लोक में बड़ी ही कृतज्ञता के साथ लिखा है—'पृथ्वी को प्राप्त करने और पुनः उसका पालन करने के लिए पूर्व आचार्यों ने जितने अर्थशास्त्र लिखे है, मैंने प्रायः उन सभी को एकत्रित कर एक अर्थशास्त्र बनाया है।' कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र का प्रयोजन स्पष्ट करते हुए कहा है कि 'यह शास्त्र भौतिक सम्पदा (पृथ्वी) के अर्जन और सम्पोषण का शास्त्र है'। इसमें निहितार्थ यह है कि आर्थिक मूल्य को न केवल प्राप्त किया जाना चाहिए, बल्कि विश्व और मनुष्य के सम्पोषण के लिए उसका उपयोग भी किया जाना चाहिए। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र को पारिभाषित करते हुए कहा है कि 'मनुष्यों की जीविका को अर्थ कहते हैं और मनुष्यों वाली भूमि को अर्थ कहते हैं'। 'भूमि को पाने और उससे लाभ लेने वाले उपायों को बताने वाले शास्त्र को अर्थशास्त्र कहते हैं'।

❖

H-7

विक्रमादित्य(षष्ठ)कालीन मनोरञ्जन के साधन

डॉ. ऋचा शुक्ला, लखनऊ

मनोरञ्जन मनुष्य की प्रथम आवश्यकता है। प्राचीन भारतीय समाज में अनेक मनोरञ्जन के साधन थे। विक्रमाङ्कदेव(षष्ठ)–कालीन इतिहास का ज्ञान श्री विल्हणरचित विक्रमाङ्कदेवचरित नामक महाकाव्य से प्राप्त होता है। इस काव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस समय समाज में स्त्रियों तथा पुरुषों के लिए पर्याप्त मनोरञ्जन के साधन विद्यमान थे और लोग कार्य की व्यस्तता तथा विचारों की प्रवणता से बोझिल होकर अनुकूल समय में मनोरञ्जन के द्वारा आनन्दात्मक क्षणों को व्यतीत करते थे। उस समय विशेषरूपेण सामान्यजन कन्दुकक्रीड़ा, जलविहार, आखेट, मल्लयुद्ध तथा द्यूतक्रीड़ा के द्वारा अपना मनोरञ्जन किया करते थे। राजा लोग अश्वारोहण, गजारोहण, मृगया, अस्त्र-शस्त्राभ्यास तथा व्यायाम आदि के द्वारा भी मनोरञ्जन करते थे। स्त्रियाँ भी अपने प्रियजनों के साथ उपर्युक्त मनोरञ्जन के माध्यम से अपने को आनन्दित करती थीं। प्रस्तुत शोध-पत्र में इन सब तथ्यों का ससन्दर्भ उल्लेख करके तत्कालीन व्यवस्था में मनोरञ्जन के साधनों पर प्रकाश डाला गया है। महाकवि विल्हणकृत विक्रमाङ्कदेवचरित से साक्ष्यों को एकत्र करके विक्रमादित्य(षष्ठ) के सामयिक मनोरञ्जन के साधनों पर किञ्चित्कथन इस शोधपत्र का प्रमुख उद्देश्य है।

❖

H-8

भारतवर्ष का नामकरण

श्री अरुण कुमार उपाध्याय, ओडिशा

विश्व के 7 द्वीपों और 7 समुद्रों के प्राकृतिक विभाजन के अनुसार हिमालय द्वारा विभाजित भूखण्ड हिमवर्ष था। उत्तर में मेरु से या चीन की तरफ से देखने पर मध्य भारतखण्ड का आकार चन्द्रमा की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरह है। हिमालय पर्वतमाला तिब्बत के दक्षिण वलयाकार है, जो अर्धचन्द्र का भीतरी वलय है। दक्षिण भारत तक चन्द्रमा बाहरी वलय है। इसके अतिरिक्त हिमालय चन्द्र की तरह शीतल है तथा नक्षत्रों में जैसे चन्द्रमा प्रकाश केन्द्र है, उसी प्रकार भारत पूरे विश्व में ज्ञान केन्द्र था। इन तीन कारणों से चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भारत को इन्दु कहा है, जिससे इण्डिया बना है। सृष्टि क्रम में विन्दु से इन्दु, विसर्ग तथा सिन्धु होते हैं। भारतवर्ष लाल सागर (पश्चिम) से चीन सागर तक फैले धनुषाकार हिमालय का दक्षिणी भाग है। सिन्धु से पश्चिम का वरुण या मैत्रावरण भाग हुआ तथा उसके पूर्व का भाग इन्द्र या इन्द्राग्नि का हुआ। बाद में 78 ई. में शालिवाहन शक आरम्भ में भी यही सीमा निर्धारित हुई। दक्षिण समुद्र से देखने पर भारत का केन्द्र भाग कुमारिका खण्ड है। इसमें सप्तसिन्धु हैं—गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु, कावेरी। इसके पूर्व तथा पश्चिम में कुल 8 खण्ड भारतवर्ष के और हैं। उनमें भी 7-7 सिन्धु हैं। तीन सप्तसिन्धुओं की अलग व्याख्या भी है। सप्तसिन्धु या हफ्त हिन्दू अहुरमज्दा द्वारा निर्मित 15 क्षेत्रों में सर्वश्रेष्ठ था (जेन्द अवेस्ता) यह भी हिन्दु नाम का मूल है। भारत का अग्नि या अध्यक्ष विश्व का भरण-पोषण करता था, अतः यह भारत कहलाया। इसी अर्थ में ऋषभ पुत्र भरत तथा दुष्यन्त पुत्र भरत यहाँ के चक्रवर्ती राजा थे। भारत में सदा से अतिथि सत्कार या उनके भरण की परम्परा है।

❖

H-9

मिथिला एवं उसकी ऐतिहासिक रूपरेखा

डॉ. जगन्नाथ झा, बेगूसराय

मिथिला का मिथिलात्व शत्रुओं के मन्थन के रूप में प्रकट होता है। नदीमात्रिक क्षेत्र मिथिला को तीरभुक्ति भी कहा जाता है। सीता की जन्मदात्री मिथिला सदा प्रख्यात रही है। मिथिला के आद्य नृपति निमि के शरीर मन्थन से उत्पन्न पुत्र मिथिल (मिथि) के नाम पर भी मिथिला शब्द का अर्थ निरूपण किया जाता है। मिथिला की सीमा के रूप में उत्तर में हिमालय, दक्षिण में गंगा, पूर्व में कौशिकी और पश्चिम में गंडकी का उल्लेख किया जाता है। पुराणों में महाभारत काल तक अनेक जनकों की सूची मिलती है और बौद्धग्रन्थों में बौद्ध जनकों का भी उल्लेख हुआ है।

जनकों के अतिरिक्त मिथिला में अनेक राजवंशों का शासन हुआ। कर्णाटवंशीय राजाओं से सम्बद्ध कई ऐतिहासिक कथाएँ मिथिला में प्रचलित है। ओइनवार वंशीय राजाओं में शिवसिंह ऐसे नृपति हो गए, जिनके राज्याश्रित मैथिल कोकिल विद्यापति थे। कर्णाटवंशीय नृपति गंग़ादेव और ओइनवार वंशीय नृपति शिवसिंह से सम्बद्ध अनेक पुरातात्त्विक अवशेष मिथिलांचल में विद्यमान हैं।

इसी प्रकार खंडवला कुल के नृपतियों का शासन भी मिथिलांचल में रहा। म.म. महेश कुमार ने अकबर से मिथिला राज्य प्राप्त किया। इनके वंश में लक्ष्मीश्वर सिंह और रमेश्वर सिंह नामक नृपति हो गए, जिनका नाम इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिथिला में याज्ञवल्क्य ने शुक्लयजुर्वेद सूर्य से प्राप्त किया। बृहदारण्यकोपनिषद् में याज्ञवल्क्य की वाणी सरस्वती प्रकट हुई है। शतपथब्राह्मण आदि वैदिक ग्रन्थों में तत्त्वविवेचन के क्रम में प्रकारान्तर से मिथिला के वैशिष्ट्य प्रकट हुए है। अक्षपाद गौतम ने न्यायसूत्र का प्रणयन किया और नव्यन्याय के प्रतिष्ठापक के रूप में तत्त्वचिन्तामणिकार गंगेश उपाध्याय का उल्लेख होता है। कपिल, कणाद, जैमिनि आदि ऋषियों की भूमि की ऐतिहासिक सम्पदा संग्रहणीय है। निगम (वेद) के अतिरिक्त आगम की भूमि भी मिथिला रही है और आगम (तन्त्र) ने मैथिल संस्कृति को प्रभूत प्रभावित किया है। इस प्रकार मिथिला का इतिहास अवलोकनीय है।

❖

H-10

शालभञ्जिका : एक अनुपम कला प्रतीक

डॉ. नीरज कुमार पाण्डेय, वाराणसी

भारतीय कला यहाँ की धार्मिक, दार्शनिक एवं सामाजिक संस्कृति का समाहित रूप है। जीवन के गम्भीर एवं गूढ़ तात्त्विक विवेचनों की प्रतीकात्मक व्याख्या हमें भारतीय कला में सर्वत्र दिखाई देती है। ऐसी ही तात्त्विक विवेचना से परिपूर्ण भारतीय कला का एक अनुपम प्रतीक हैं—शालभञ्जिका।

प्रारम्भिक अवस्था में शालभञ्जिका शब्द 'उद्यान क्रीड़ा' के नाम से प्रचलित था, जो पूर्वी भारत में स्त्रियों द्वारा खेला जाता था। जातक ग्रन्थों में उत्तर पूर्वी भारत की स्त्रियों द्वारा उद्यान क्रीड़ा नामक खेल खेलने की प्रथा का उल्लेख है। इससे इस खेल की लोकप्रियता का पता चलता है। कालान्तर में क्रीड़ा या पर्व के स्थान पर शालभञ्जिका शब्द ललित कलामुद्रा का वाचक बन गया, जिसमें तरुणी शालवृक्ष के नीचे त्रिभंग मुद्रा में खड़ी उसकी शाखा को नीचे की ओर झुकाती प्रदर्शित की गई है। मौर्य-शुंग काल तक यह कलामुद्रा पूर्ण रूप से विकसित हो चुकी थी। कला के अतिरिक्त शालभञ्जिका प्रतीक का वर्णन साहित्यिक सन्दर्भों से भी प्राप्त होता है।

शालभञ्जिका कलामुद्रा के दो स्पष्ट रूप हमें देखने को मिलते हैं। पहला रूप बुद्ध जन्म से सम्बन्धित है, फलतः इसे मांगलिक प्रतीक के रूप में जाना जाता है। इसका दूसरा स्वरूप लौकिक है, जिसका अत्यधिक अंकन हुआ है। लौकिक शालभञ्जिकाओं को नारी सौन्दर्य का प्रतिमान भी माना गया है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारतीय कला की ये शालभञ्जिकायें हमारे सुखमय जीवन के विभिन्न पक्षों को उजागर करती हैं।

❖

H-11

बिहार के राजनीतिक दल-बदल में कम्युनिष्टों का योगदान

डॉ. अरविन्द कुमार, आरा

बिहार के राजनीति में कम्युनिष्ट पार्टी की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है। दल-बदल भारतीय राजनीति की ही नहीं बिहार की राजनीति की भी आधुनिकतम तथा सबसे अधिक खतरनाक प्रवृत्ति है। इसने राज्यों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की राजनीति तथा शासन में अस्थिरता लाकर सत्ता की घृणित राजनीति में वृद्धि कर दी है। इसके परिणामस्वरूप आज मन्त्री पद या अन्य कोई पद की प्राप्ति के लिए किसी भी दल का विधायक किसी भी स्थिति तक जाने के लिए तैयार दिखाई पड़ रहा है। 1967 से लेकर 1997 के काल को देखा जाए, तो यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि दल-बदल ने सत्ता की राजनीति में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। साथ ही दल-बदल की यह प्रवृत्ति विखराव एवं अस्थिरता की स्थिति उत्पन्न कर दी है। वर्तमान समय में कोई भी राजनीति दल ऐसा नहीं बचा है, जो इस खतरनाक व्याधि से ग्रस्त न हो, इस व्याधि के माध्यम से सत्ता प्राप्त करने के लिए या सरकार बनाने के लिए कई दलों का अस्तित्व ही समाप्त हो गया या कई छोटे-छोटे दलों का निर्माण भी हुआ, जो बहुदलीय पद्धति के विकास में सहायक सिद्ध हुआ।

कम्युनिस्ट दल को छोड़कर बिहार के सभी प्रमुख संगठित दलों ने दल-बदल के कारण अपनी बहुत से सीटों को खोया। एक बड़ी लम्बे संख्या में विधायकों ने दल-बदल कर अन्य दल को नहीं अपनाया, अपितु अपनी शक्ति एवं स्थिति की सुदृढ़ता के लिए नए दलों का निर्माण भी किया।

सन् 1967 के बाद से आज तक दल-बदल की ऐसी क्रियाएँ आए दिन हुआ करती हैं। वर्तमान बिहार की राजनीतिक स्थिति परजीवी कोड़ के समान है। कभी सत्ता बदलती है, तो कभी दल बदलते हैं, तो कभी मुख्यमन्त्री बदलते हैं, कुल मिलाकर बिहार की सम्पूर्ण राजनीतिक स्थिति यही है कि जिस सत्ता या पार्टी को सरकार में अपनी स्वार्थी विचारधाराओं को पनपने का अवसर नहीं मिला है, वह अपनी कमजोरियों को छिपाने के लिए राजनीतिक चालों से सत्ता एवं पार्टी की बात उठाने लगते हैं।

❖

H-12

काशी शास्त्रार्थ सभा एवं वैदिक धर्म का पुनरुदय

डॉ. विनोद कुमार, आरा

उन्नीसवीं शताब्दी में जन्म लेकर जिन महापुरुषों ने भारतीय राष्ट्र, धर्म, समाज तथा संस्कृति की अपूर्व सेवा की, उनमें दयानन्द सरस्वती का नाम सर्वोपरि है। दयानन्द सरस्वती का जन्म गुजरात के टंकारा नामक नगर में लगभग सन् 1823 ई. में हुआ था। दयानन्द ने पूर्ण रूप से ज्ञान प्राप्त कर गुरु के आशीर्वचन को साकार करने के लिए समाज में फैली बुराइयों को दूर करने एवं समाज के नवनिर्माण में जुट गये।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वैदिक धर्म के पुनरुत्थान के लिए जगह-जगह पर शास्त्रार्थ करने लगे, जिससे समाज में फैली अन्धकार दूर भगाया जा सके। स्वामी विरजानन्द ने कहा कि 'दयानन्द यह बात याद रहे कि मनुष्य के बनाये हुए ग्रन्थों में ईश्वर और ऋषि-मुनियों की निन्दा भरी है; परन्तु ऋषियों के बनाये हुए ग्रन्थों में यह बात नहीं है। यही दोनों में अन्तर है। स्वामी दयानन्द सत्य अभियान में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरन्तर जुटे रहे। उन्होंने मथुरा, मेरठ, अजमेर में शास्त्रार्थ कर अपने वेदों की पताखा लहराते हुए हरिद्वार के कुम्भ मेले में भी व्याख्यान दिया, सैकड़ों शास्त्रार्थ किया। उन्होंने समाज में कुरीतियों को दूर भगाने के लिए सैकड़ों पुस्तक बाँटे। लेकिन उनकी सार्थकता तभी हो सकती थी, जब काशी नगरी में पंडितों को पराजित कर सके।

स्वामी दयानन्द अनेक स्थानों का भ्रमण करते हुए संवत् 1925 को रामनगर पहुँचे।

भारतवर्ष में काशी नगरी संस्कृत विद्या के लिए बहुत पुराने समय से प्रसिद्ध होती चली आ रही थी। वेद, दर्शन, व्याकरण आदि ग्रन्थों की शिक्षा जैसी यहाँ मिलती थी, वैसी शिक्षा शायद दूसरी जगह न मिलती रही होगी। आज भी हिन्दुस्तान के कोने-कोने से हजारों विद्यार्थी यहाँ आकर शिक्षा ग्रहण करते हैं।

स्वामी दयानन्द कार्तिक सुदी 2 संवत् 1926 को काशी पधारे। काशी नगरी पहुँचते ही संस्कृत के विद्वानों का उनके पास आने-जाने का क्रम जारी रहा।

कार्तिक सुदी 12 संवत् 1926 शास्त्रार्थ की तिथि निश्चित कर दी गई। काशी के सारे पण्डित अपने पोथी-पत्र लेकर शास्त्रार्थ करने के लिए आ पहुँचे। शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। सबसे पहले तारा चरण जी सामने आये, इसके पश्चात् विशुद्धानन्द जी खड़े हुए। इसके बाद अनेकों विद्वानों ने काशी-शास्त्रार्थ में भाग लिया। काशी-शास्त्रार्थ में दोनों ओर से प्रश्नोत्तर होते रहे। अन्त में श्री माधवाचार्य वेद के दो पत्र स्वामी दयानन्द के सामने रखकर कहा कि इसमें लिखा है कि यजमान यज्ञ के पूर्ण होने पर दसवें दिन पुराण का पाठ सुने। बताया जाए कि यहाँ पुराण किसका विशेषण है। उस समय अन्धेरा था। स्वामी दयानन्द ने दीपक मँगवाया। इसी पर वहाँ के सारे पण्डित उठ खड़े हो गये एवं हल्ला करने लगे। दयानन्द की हार हो गई। सारे पण्डित जय-जयकार करने लगे।

इस प्रकार हुल्लड़बाजी के साथ काशी में शास्त्रार्थ सम्पन्न हुए। हालाँकि वास्तविकता यह थी कि स्वामी दयानन्द की जीत हुई। समाचार पत्रों ने भी इस बात की पुष्टि की है।

हालाँकि काशी के पण्डितों के पास वेद की पुस्तकें उपलब्ध नहीं थीं, तो उनके पास वेद का ज्ञान होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता; लेकिन हुल्लड़बाजी से शास्त्रार्थ पर स्वामी दयानन्द से विजय हासिल करना चाहते थे। अतः स्वामी दयानन्द ने काशी के पण्डितों पर विजय का पताका लहराते हुए पूर्वी भारत की यात्रा प्रारम्भ किये। इसके बाद बिहार भ्रमण करते हुए पुनः बम्बई पहुँच कर 10 अप्रैल 1875 को गिरी गाँव में आर्यसमाज की स्थापना किये।

❖

H-13

प्रवासी भारतीयों का ऐतिहासिक सर्वेक्षण

डॉ. मनोज कुमार, आरा

प्रवासी भारतीय जिन्हें हम आज N.R.I. के नाम से जानते हैं, आज हमारे देश के लिए अति महत्त्वपूर्ण हो गये हैं। आज हमारे देश में N.R.I. की अनेक संस्था काम कर रही हैं। N.R.I. आज

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे देश की विदेशी मुद्रा को बढ़ाने में काफी सहायक सिद्ध हुए हैं। ये प्रवासी भारतीय भी अपनी मातृभूमि की सेवा करने में हमेशा तत्पर रहते हैं। हर साल भारत में अनेकों N.R.I. परिवार अपनी जन्म-भूमि के दर्शन को आते रहते हैं। ये प्रवासी भारतीय अपने-अपने देशों में काफी महत्त्वपूर्ण शक्ति के रूप में उभरे हैं। कई देशों में ये प्रधानमन्त्री, राष्ट्रपति की कुर्सी तक जा विराजे हैं।

प्रवासी भारतीयों की आज की इस चमक-दमक के पीछे बड़ी ही मर्मस्पर्शी कहानी छुपी हुई है। वे कौन से हालात थे, जिनके चलते हमारे कुछ देशवासियों को अपना देश छोड़कर दूसरे देशों में जाकर मेहनत-मशक्कत करनी पड़ी। उन्हें जीवन-यापन के लिए बड़ी ही कठिन दौर से गुजरना पड़ा। इनमें से तो कई इस संघर्ष में वहीं मर-खप गये, तो कई किसी तरह स्वदेश आने में सफल हो पाये। लेकिन कुछ प्रवासी भारतीयों ने कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी अपने धैर्य को बनाये रखा। इसी का नतीजा है कि आज के N.R.I. हमारे देश के वर्तमान निवासियों की तरक्की से काफी आगे निकल गये हैं।

❖

H-14

भारत की दिव्यतम विभूति मागध मण्डन मिश्र

श्री नागेन्द्र उपाध्याय 'नलिन', आरा

धरा जब-जब विकल होती, महानाश का समय आता।
किसी भी रूप में कोई महामानव चला आता।। (डॉ. मधुकर)

मंगलमय विभु, पावन प्रभु, पवित्रतम परमात्मा के पावन पुष्प स्वरूप भव्य भारत पर जब-जब अत्याचार, अनाचार, मिथ्याचार तथा पापाचार का आधिक्य होता है, तब-तब अलौकिक ईश्वर का अंशावतार होता है। इसी परिप्रेक्ष्य में महान् मीमांसक माननीय मण्डन मिश्र का आविर्भाव वैदिक युग के इतिहास में अनुपम अवतार का प्रतीक है। जिस दिन भारत अवैदिकता (नास्तिकता) के पंकपयोधि में पड़कर छटपटा रहा था, बौद्ध सिद्धान्त के शून्यवादी बाण से वेधित हो वैदिकता-रहित होने की स्थिति में आ चुका था कि सहसा वैदिक धर्म (सनातन धर्म) का सरस स्वर निनादित करते हुए कुमारिल भट्ट के परम शिष्य एवं बहनोई माननीय मण्डन मिश्र के रूप में स्वयं ब्रह्मा ही अवतरित हो गये—'सुरेश्वराचार्य इति साक्षात् ब्रह्मावतारकः' (ब्राह्मणोत्पत्तिमार्तण्ड, पृ. 610)।

ब्रह्माऽपि सहायार्थं मण्डनो नाम भूसुरः।
भविष्यति महेन्द्रोऽपि सुधन्वा नाम भूमिपः।। (शंकरदिग्विजय)

ज्ञातव्य है कि मण्डन मिश्र के पूर्व का नाम विश्वरूप तथा शंकराचार्य का शिष्यत्व स्वीकारने के बाद सुरेश्वराचार्य था। इनकी पत्नी का नाम भारती एवं शारदा था। प्रस्तुत लेख में इन्हीं मण्डन मिश्र के व्यापक व्यक्तित्व और उन्हें मगध देशवासी सिद्ध किया गया है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

H-15

आर्य-संस्कृति का आदिस्त्रोत भारत

डॉ. श्रीनिवास तिवारी 'मधुकर', पटना

'सम्' उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु से भूषण अर्थ में सुटागमपूर्वक 'क्तिन्' प्रत्यय द्वारा निष्पन्न संस्कृति शब्द का अर्थ आदर्श संस्कार होता है। वास्तव में उदात्त संस्कारों से शरीर निर्मल एवं आत्मा पवित्र बनता है। ठीक उसी तरह संस्कृति की अनुपम ऊर्जा प्राप्त कर कोई भी राष्ट्र सशक्त एवं महान् बनता है। वस्तुतः राष्ट्रीय जीवन का रस संस्कृति ही होती है। प्रत्येक देश की संस्कृति की अपनी पहचान होती है, उसकी अन्तर्धारा होती है। भारत राष्ट्र की संस्कृति की भी मुख्य धारा है और वह है—आर्यधारा। इसे हिन्दूधारा या भारतीय धारा भी कहा जाता है। सही अर्थों में भारत आर्यों का मूल देश है, एतदर्थ आर्य संस्कृति ही भारत की मूल संस्कृति है। इस महान् संस्कृति का मूल सिद्धान्त है। मानव में उदात्त चरित्र एवं नैतिकता का विकास, मानवता का कल्याण।

आर्यों के मूल उपास्य देव भगवान् सूर्य रहे हैं और भारत सूर्य-उपासक लोगों के देश को ही कहा जाता है। भारत शब्द भा–रत जैसे दो सार्थक शब्दों के मेल से बना है। 'भा' का शाब्दिक अर्थ भगवान् भास्कर द्वारा प्राप्त निर्मल एवं विशिष्ट ज्योति अर्थात् बुद्धि या प्रतिभा और रत का अर्थ लीन होता है। इस तरह भारत शब्द का अर्थ होगा, भगवान् भास्कर द्वारा प्राप्त विशिष्ट प्रतिभा विषयक कार्यों में लीन रहने वाले सत्पुरुषों, विद्वज्जनों एवं सुविज्ञ सन्तों-ऋषियों एवं ज्ञानियों का पवित्र देश—'भायां प्रतिभायां रतं यं तं देशं भारतम्'। हमारे देश का नाम भारत अति प्राचीन काल से रहा है।

भगवान् सूर्य के बारह नामों में एक नाम 'अर्य' अथवा 'अर्यमा' भी है और इन्हीं अर्य (सूर्य) की उपासना करने वाले को आर्य कहा गया है और आर्यों का मूल निवास होने के कारण ही भारत को आर्य+आवर्त—आर्यावर्त्त कहा गया है। आर्यों के मूल ग्रन्थ ऋग्वेद में इन्हें ज्ञानवाला बताया गया है।

व्याकरण की दृष्टि से 'आर्य' शब्द भवादि गणीय 'ऋ' धातु से 'ऋहलोर्ण्यत्' सूत्र द्वारा 'ण्यत्' 'य' प्रत्यय और 'अचो णिति' सूत्र से 'ऋ' के स्थान में वृद्धि-कार्य (आर) तथा आर का 'र' को रेफ करके आर्य शब्द बनता है, जो श्रेष्ठ शील एवं कुलीनता-सम्पन्न जनों का वाचक है—'अर्तुं गन्तुं प्राप्तुं वा योग्यः आर्यः, अथवा शीलाभिजनसम्पन्नः आर्यः' अर्थात् आर्य शब्द का प्रयोग अति उदात्त चरित्र सम्पन्न लोगों के लिए किया गया है। वस्तुतः भारत के मूल निवासी आर्यों ने ही सम्पूर्ण मानवता को अपने उदात्त चरित्र से प्रकाश प्रदान किये हैं—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥ (मनुस्मृति)

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

H-16

प्राचीन भारतीय इतिहास के एक विश्वसनीय स्त्रोत के रूप में पालि साहित्य

डॉ. (श्रीमती) नीहारिका लाभ, जम्मू

इतिहास अतीत का विषय होने के कारण हमारी दृष्टि से ओझल होता है; किन्तु इसका ज्ञान न केवल हमारे लिए गौरव का संवर्धन करता है, अपितु बहुधा हमारे भविष्य के लिए प्रेरणास्पद भी होता है। प्रश्न उठता है कि क्या जो कुछ भी कथा-कहानियों में हमें उपलब्ध होता है, उसे हमें आँख मूदकर सत्य मान लेना चाहिए या फिर अतिरंजनाओं तथा अनेकों बार विकृतियों से भी बचते हुए उन तथ्यों का निष्पन्न व सन्तुलित आकलन करना चाहिए। अस्तु, इस कार्य में उपलब्ध पालि स्त्रोत सामग्रियाँ हमें काफी सहायता पहुँचाती हैं।

प्राचीन भारतीय इतिहास के ज्ञान में पुरातात्त्विक साक्ष्यों के साथ ही वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, संहिता, पुराण, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि अनेकों प्रकार के साहित्य हमारे लिए बहुमूल्य सिद्ध हुए हैं।

अतिरंजना साहित्य का एक अपरिहार्य पक्ष है; क्योंकि इससे साहित्य के सौन्दर्य एवं सौष्ठव में वृद्धि होती है। इसके विपरीत इतिहासपरक तथ्यों के अन्वेषण में अतिरंजनों से बचना बहुत आवश्यक है। इस दृष्टि से वैदिक एवं उसके उपजीव्य साहित्य की अपेक्षा पालि-बौद्ध साहित्य अधिक सन्तुलित एवं विश्वसनीय है।

बुद्धकाल (7वीं शताब्दी ई.पू.) से लेकर गत कुछेक शताब्दियों तक पालि में प्रभूत साहित्य सर्जित हुए हैं और इनसे भारतीय इतिहास के अनेक आवृत्त पृष्ठ अनावृत्त होकर हमारे समक्ष उद्घाटित हो जाते हैं।

पालि त्रिपिटक जहाँ बुद्धकालीन भारतीय धर्म, अध्यात्म, दर्शन, संस्कृति, समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था, मनोरंजन के साधन आदि को विश्वसनीय ढंग से सूचित करते हैं; वहीं अनुपिटक पालि साहित्य से न केवल बुद्धकालीन इतिहास अपितु अशोक, मिनाण्डर, कनिष्क, गुप्त-शासक, हर्षवर्द्धन, पाल, सेन आदि शासकों के समयों में बौद्धधर्म के विकास का विस्तृत विवरण भी हमें उपलब्ध होता है। तक्षशिला, नालन्दा, ओदन्तपुरी, विक्रमशिला, वल्लभी आदि अन्तर्राष्ट्रिय महत्त्व के शैक्षिक केन्द्रों के बारे में तो विश्वसनीय जानकारी मिलती ही है, साथ ही श्रीलंका, म्यांमार, दक्षिण-पूर्व एशियाई देश, थाईलैण्ड, कम्बोडिया, चीन, जापान, कोरिया, मंगोलिया, पश्चिम एशिया आदि में बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार एवं भारत के साथ उनके सम्बन्ध के विविध आयाम भी प्रकाशित होते हैं। 'वंस साहित्य' इस दृष्टि से विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिसमें बौद्ध-धर्म के क्रमिक विकास का इतिहास हमें उपलब्ध होता है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

H-17

भारतीय संस्कृति का मानवाधिकार में योगदान

श्री धनेश्वर पण्डित, सीतामढ़ी

आज 'मानवाधिकार' विश्व चिन्तन का प्रमुख विषय है। जिसका केन्द्र बिन्दु 'वसुधैव कुटुम्बकम्' है। 'सम्पूर्ण विश्व एक मानव परिवार है', अर्थात् दुनिया के सभी देशों के मानव एक परिवार के सदस्य है। सुख-दुःख में परिवार के एक व्यक्ति का दूसरे के प्रति कर्त्तव्य बनता है, तभी परिवार में सुख-शान्ति कायम रह सकती है। सभी सदस्यों की प्रतिष्ठा और उसके आत्मसम्मान की रक्षा ही विश्व में शान्ति स्थापित कर सकता है।

आज का मानवाधिकार कहता है कि जन्म होने के पश्चात् मनुष्य होने के नाते मान-मर्यादा के साथ जीना उसका मूलभूत नैतिक गुण है, यही नैतिक गुण व्यवस्थित तथा स्पष्ट रूप में मानवाधिकार है। व्यक्ति के पास इन अधिकारों को होने का एक मात्र अर्हता है कि वह मानव जाति में जन्म लिया है।

मानवाधिकार को जाति, धर्म, लिंग, स्थान, भाषा, रंग, वेश से ऊपर उठकर समान रूप से केवल दो भागों में बाँटा गया है—(1) नागरिक एवं राजनैतिक अधिकार, (2) आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकार।

विश्व के सम्पूर्ण मानव को समान अधिकारों से विभूषित करने के उद्देश्य से संयुक्त राष्ट्र संघ ने 10 दिसम्बर 1948 को विश्व मानवाधिकार (Universal Decleration of Human Rights) की घोषणा की। इसलिए प्रत्येक वर्ष 10 दिसम्बर को मानवाधिकार दिवस के रूप में मनाया जाता है।

प्राचीनकाल से विश्व के विभिन्न देशों में भिन्न-भिन्न रूपों में मानवाधिकार मौजूद था।

❖

H-18

मिथिला संस्कृति की दशा एवं दिशा

प्रो. देवेन्द्र झा, मधुबनी

जगज्जननी जानकी की पुण्य हवेली एवं जनकयाज्ञवल्क्य का पुण्य दरवाजा मिथिला अति प्राचीन काल से ही इस विशाल भारत भूखण्ड के अधीन अपनी पवित्र एवं महिमा मण्डित आध्यात्मिक परम्पराओं एवं सुसज्जित इतिहासों से अलंकृत रहा है। मिथिला के हजारों सपूतों ने अपने ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक तथा राजनीतिक मर्यादाओं एवं सारस्वत प्रतिभाओं से अपने प्रान्त एवं सम्पूर्ण देश को पुष्पित एवं पल्लवित करते हुए भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता को ऊँचा करने का पुनीत काम किया है।

बिहार प्रान्त के अधीन शस्य श्यामला मिथिला का यह पवित्र भूखण्ड आपसी सद्भावना एवं सहिष्णुता के सम्मिलन के केन्द्र बिन्दु के रूप में अपने सम्पूर्ण राज्य एवं देश में एक मिशाल है। मिथिला

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की प्रचलित भाषा मैथिली अपनी मधुरता के लिए सम्पूर्ण विश्व में विख्यात है, जो किसी खास वर्ग-विशेष का ही नहीं, अपितु मिथिला में बसे सभी वर्गों, जातियों एवं सम्प्रदायों का है। भाषा में प्रचुर मिठास के कारण ही यहाँ के लोग अपनी भाषा में झगड़ तक नहीं पाते, इसके लिए उन्हें अन्य किसी भाषा का ही सहारा लेना पड़ता है।

❖

H-19

प्राचीन भारत में यातायात के साधन

प्रो. दक्षा जी प्रजापति, अहमदाबाद

भारतीय परिवहन का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। पूर्व वैदिक काल से ही हमें विभिन्न स्थल तथा जल परिवहनों के बारे में विस्तृत सूचनाएँ मिलती हैं। पाणिनि की अष्टाध्यायी, कौटिल्य के अर्थशास्त्र, पतञ्जलि के महाभाष्य एवं पुरातात्त्विक स्रोतों से प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि परिवहन का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है तथा कालक्रमानुसार इसमें विकास भी होता रहा है।

प्राचीन भारतीय स्थल परिवहन के साधनों में शकट, रथ, शिविका (पालकी) एवं पत्रवाहन के अन्तर्गत हाथी, अश्व, उष्ट्र, गदर्भ, बैल आदि के उल्लेख मिलते है। साहित्यिक तथा पुरातात्त्विक सभी साक्ष्यों से विदित है कि ये वाहन प्राचीन काल से ही लोगों के आवागमन के प्रमुख साधन थे। व्यापार-व्यवसाय के अतिरिक्त इनका प्रयोग दैनन्दिन-जीवन में, सेना में भी था। पुरातात्त्विक उत्खननों तथा कला-कृतियों से भी इन वाहनों तथा भारवाही पशुओं की उपयोगिता प्रमाणित होती है।

स्थल परिवहन की तरह ही प्राचीन भारत के आर्थिक एवं सामाजिक जीवन में जल-परिवहन की भी लोकप्रियता थी। नौ परिवहन का महत्त्व सांस्कृतिक एवं व्यावहारिक दृष्टियों से तो था ही, साथ ही इसका महत्त्व यातायात के साधन के रूप में सैन्धव संस्कृति के काल से ही लोक जीवन में परिव्याप्त रहा है। वैदिक काल में भी लोगों को समुद्र यात्रा का ज्ञान था। ऋग्वेद के मन्त्रों में साधारण नौकाओं तथा डाडोंवाली नौकाओं के उल्लेख मिलते है। महाकाव्यों में भी नौकाओं का उल्लेख है। अर्थशास्त्र के विवरण से ज्ञात होता है कि मौर्य-शुंग काल में नौ-परिवहन विकसित था और उस पर राज्य का पूर्ण नियन्त्रण था।

❖

H-20

संयुक्त प्रान्त में महान् आर्थिक मन्दी का कृषि पर प्रभाव

डॉ. अमिताभ तिवारी, मीरजापुर

प्राचीनकाल से ही भारत एक कृषिप्रधान देश रहा है। यह स्थिति आधुनिक काल में भी बनी रही। अंग्रेजों ने अपना शासन स्थापित करने के बाद कृषि व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन किया। उन्हें

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक से अधिक धन चाहिए था। इसलिए राजस्व की वसूली में अनेक प्रयोग किये गये। जमींदारों को जमीन का मालिक बनाया गया और उनके माध्यम से मनमाना धन वसूला गया। संयुक्त प्रान्त (आधुनिक उ.प्र.) के किसान भी इससे अछूते नहीं रहे। किसानों का शोषण चल ही रहा था कि 1929 में पूरा विश्व महान् आर्थिक मन्दी की चपेट में आ गया। इसके कारण चाहे जो भी रहे हों, उन पर इसने कृषि व्यवस्था पर विपरीत प्रभाव डाला। भारत के हिस्सों की तरह संयुक्त प्रान्त की कृषि भी प्रमुख रूप से मानसून पर आधारित थी। मानसून में होने वाली गड़बड़ी का असर कृषि पर पड़ना स्वाभाविक था और दुर्भाग्य से मानसून किसानों से रूठ भी गया। आर्थिक मन्दी के कारण कृषि उत्पादों की कीमतों में अप्रत्याशित गिरावट आयी। सन् 1929 में तो कोई विशेष प्रभाव नहीं दिखाई दिया, पर 1930 में कीमतें तेजी से गिरने लगीं। अप्रैल 1930 में कृषि उत्पादों की कीमत में गिरावट का दौर शुरू हुआ और दिसम्बर 1930 तक आते-आते उल्लेखनीय गिरावट परिलक्षित होने लगी। त्रासदी यह भी थी कि प्राकृतिक आपदाओं के कारण उत्पादन घट गया था। 1930 में सिर्फ रबी के उत्पादन में पूरे प्रान्त में औसत 8 प्रतिशत की गिरावट आयी थी। अगले वर्ष 1931 के अक्टूबर महीने में हुई अत्यधिक वर्षा ने खरीफ की फसल को भारी नुकसान पहुँचाया।

फरवरी-मार्च 1936 में विधान परिषद् में एक बिल लाकर भी किसानों का हित करने का प्रयास किया गया, पर इस प्रयास में भी ईमानदारी नहीं थी। अतः अपेक्षित परिणाम नहीं निकला। धीरे-धीरे महान् आर्थिक मन्दी के बादल छँटे, पर इसने संयुक्त प्रान्त के किसानों की कमर तोड़ दी थी।

❖

H-21

इतिहास के आलोक में मन्दसौर-प्रशस्ति

डॉ. गीता श्रीवास्तव, वाराणसी

प्राचीन भारतीय इतिहास के सृजन, संकलन एवं विवेचन में अभिलेखीय साक्ष्यों का विशिष्ट स्थान रहा। वस्तुतः अभिलेख को पुरातत्त्व का वह प्रभावी अङ्ग माना गया है, जो मानव के लौकिक एवं पारलौकिक जीवन के समस्त पहलुओं को प्रस्फुटित करता है तथा सभ्यता एवं संस्कृति की एक सम्यक् एवं मनोरम झाँकी प्रस्तुत करता है।

इसी परिप्रेक्ष्य में गुप्तवंशीय शासक कुमारगुप्त के शासनकालीन मन्दसौर शिलालेख (मालव संवत् 529) के रचनाकार वत्सभट्टि ने सर्वप्रथम भगवान् सूर्यदेव की वन्दना करते हुए उनकी देदीप्यमान महिमा का दिग्दर्शन किया है। अभिलेख के लेखक ने इतिहास के आलोक में अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यों पर प्रकाश डालने का सफल प्रयास किया है।

प्रस्तुत अभिलेख के माध्यम से ऐतिहासिक ज्ञान प्रतिबिम्बित होता है। इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि इसमें न केवल कुमारगुप्त प्रथम के राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक इतिहास को इंगित

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया गया है, बल्कि तत्कालीन परिवेश में लोगों के सामान्य जीवन की गतिविधियों का भी विवेचन किया गया है।

मन्दसौर-प्रशस्ति में सामाजिक इतिहास से सन्दर्भित यह तथ्य भी उद्घाटित किया गया है कि विभिन्न कोटि के शिल्पियों का सामाजिक जीवन अत्यन्त उन्नतिशील अवस्था में था तथा वे व्यवसायों और कार्यों के आधार पर सर्वसम्पन्न हो गये थे। इस अभिलेख में लोगों के धार्मिक इतिहास का भी अंकन है।

इसी प्रकार प्रस्तुत अभिलेख के माध्यम से कुमारगुप्तकालीन आर्थिक इतिहास भी प्रतिध्वनित होता है। इस अभिलेख के अनुसार शिल्पियों में से अधिकांश शिल्पी रेशम बुनने के अपने व्यवसाय में सिद्धहस्त एवं विश्वविख्यात थे। उनके द्वारा निर्मित रेशमी वस्त्रों की प्रशंसा अभिलेख में उल्लिखित है।

अतः मन्दसौर-प्रशस्ति के सम्यक्रूपेण अध्ययनोपरान्त यह निष्कर्ष निकलता है कि इससे कुमारगुप्त प्रथम के शासनकालीन सांस्कृतिक स्थिति एवं इतिहास का निरूपण होता है। अन्त में अभिलेख के शब्दों में प्रशस्ति के रचयिता, लिपिक, पाठक एवं श्रोताओं का कल्याण हो, सिद्धि हो।

❖

H-22

वस्तुपाल से सम्बन्धित महाकाव्यों में 'वसन्तविलास' का स्थान

कु. रीता, अलीगढ़

मध्यकालीन गुजरात के इतिहास को जानने के लिए जैन कवियों ने अनेक ग्रन्थों की रचना की है, जिनमें अनेक रचनाएँ वस्तुपाल के जीवन से सम्बन्धित हैं। महामात्य वस्तुपाल गुजरात के इतिहास में ही नहीं अपितु संस्कृत साहित्य में भी विख्यात हैं। संस्कृत के अधिकांश महाकाव्य राजाओं अथवा उनके वंशों से सम्बन्धित रचे गये हैं; परन्तु वस्तुपाल कोई राजा नहीं वरन् एक मन्त्री थे।

वस्तुपाल गुजरात के राणक वीरधवल के प्रख्यात मन्त्री थे। मन्त्री पद के सफल निर्वाह के कारण ही ये इतने विख्यात हो गये हैं कि इनके विषय में विशाल साहित्य की रचना समय-समय पर होती रही है। जिनमें से जैनाचार्य हेमचन्द्र रचित 'द्वयाश्रयमहाकाव्य', सोमेश्वर रचित 'कीर्तिकौमुदी' एवं अरिसिंह रचित 'सुकृतसंकीर्तन' है। इसी शृङ्खला में 'वसन्तविलास' महाकाव्य जैनकवि बालचन्द्र सूरि द्वारा रचित चौदह सर्गों का एक ऐतिहासिक महाकाव्य है। 'कीर्तिकौमुदी', 'सुकृतसंकीर्तन' आदि काव्य संवत् 1286 में वस्तुपाल के जीवनकाल में ही रचे गये थे; परन्तु 'वसन्तविलास' काव्य की रचना वस्तुपाल की मृत्यु के पश्चात् हुई। इस काव्य में वस्तुपाल के स्वर्ग-गमन का वर्णन भी किया गया है। बालचन्द्र सूरि वस्तुपाल के समकालीन थे। अतः 'वसन्तविलास' में तत्कालीन घटनाएँ ऐतिहासिक हैं तथा इसमें सामाजिक परिस्थितियों के पूर्ण प्रमाण उपलब्ध होते हैं।

यह एक महाकाव्य है, अतः इसमें महाकाव्य के सभी लक्षण घटित होते हैं। उदाहरणार्थ ऋतुवर्णन, पुष्पचयन, जलक्रीड़ा, चन्द्रोदय तथा युद्ध आदि का बड़ा मनोहारी वर्णन किया गया है। यह एक वीररस-प्रधान काव्य है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वसन्तविलास' महाकाव्य ऐतिहासिक, काव्यात्मक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से एक पूर्ण महाकाव्य है। प्रस्तुत लेख में 'वसन्तविलास' महाकाव्य की प्रमुख विशेषताओं तथा कवि बालचन्द्र सूरि की मौलिकता पर प्रकाश डाला जायेगा।

❖

H-23

कात्यायनकालिक भारत में शिक्षा व्यवस्था

श्री सतीशचन्द्र झा, मुजफ्फरपुर

महर्षि पाणिनि और भगवान् पतञ्जलि के बीच मुनित्रय की परम्परा में द्वितीय मौलिक वैयाकरण कात्यायन हैं। अब यह स्थापित सत्य है कि कात्यायन पाणिनि के समकालीन नहीं थे; अपितु पाणिनि के पश्चाद्वर्ती थे तथा पाणिनि के बाद प्रायशः तीन सौ से चार सौ वर्षों के अन्तराल में लोकभाषा संस्कृत में जो परिवर्तन हुए, उन्हें नियमबद्ध करने के लिए अथवा कुछ ऐसे भाषा-प्रयोग, जो पाणिनि के समय में प्रचलन में थे; किन्तु पाणिनि से लक्षित नहीं हो सके, उन्हें स्पष्ट करने के लिए कात्यायन ने वार्तिकों की रचना की। इन वार्तिकों से तत्कालीन जन-जीवन, संस्कृति आदि के भी निर्देश प्राप्त होते हैं। इस क्रम में कात्यायनकाल में भारत की शिक्षा-व्यवस्था कैसी थी, इसका एक संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत आलेख के माध्यम से उपस्थापित है। इस क्रम में कुछ उदाहरणों से पहले यह स्पष्ट किया गया है कि संस्कृत कात्यायन के समय (सम्भवतः 300 से 400 ई. पूर्व) लोकव्यवहार की भाषा थी। उष्ट्रमुखः, जागरा, सौस्नातिकः, सौखरात्रिकः, जांगलपथिकः, शीतालुः, हृदयालुः, कुक्कुटाण्डम्, गिरिणदी-गिरिनदी, चक्रणितम्बा, चक्रनितम्बा, घटीयति, पटपटायते, दमदमायति, कोटायते, पोटायते, नीहारायते, सुदिनायते, कष्टायते, फेनायते आदि प्रयोग जो कात्यायनवार्तिकों से व्युत्पन्न होते हैं, यह सिद्ध करते हैं कि कात्यायनकाल में संस्कृत लोकभाषा थी। अतः मुख्य रूप से संस्कृत-भाषा की शिक्षा का प्रसार उस समय हो रहा था। छात्रों और गुरुओं के पारस्परिक सम्बन्धों के विषय में, विविध शास्त्रों की अध्ययन परम्परा के सन्दर्भ में, विविध आचार्यों के नाम और उनके सम्प्रदायों के प्रसङ्ग में कुछ उत्कृष्ट शिक्षक और कुछ निकृष्ट छात्रों के विषय में, कात्यायन के वार्तिकों से निर्देश मिलते हैं। इस आलेख में इन्हीं कतिपय तत्त्वों का विवेचन किया गया है।

❖

H-24

इस्लाम में स्त्रियों की शिक्षा

शाइस्ता परवीन, अलीगढ़

अशिक्षा और इस्लाम धर्म के प्रारम्भ में स्त्रियों की स्थिति जानने के पश्चात् यह बात प्रकट होती है कि इस्लाम धर्म के आते ही स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन आया है। इस्लाम से पहले अरबों में लड़कियाँ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने माता-पिता पर भार समझी जाती थीं। लड़की का जन्म लेना माता-पिता के लिए अत्यधिक दुःखदायी होता था। वह वातावरण जहाँ पर लड़की का जन्म लेना घृणित समझा जाता हो, भला उस वातावरण में स्त्री-पुरुष के लिए समस्त समान अधिकार प्रदान करना और प्रमुख रूप से शिक्षा के क्षेत्र में समान अधिकार प्रदान करना उनकी सोच से बाहर था; किन्तु इस्लाम धर्म ने स्त्रियों के लिए जो कार्य किये हैं, उनमें से सबसे महत्त्वपूर्ण यह है कि उसने स्त्री-पुरुष दोनों को समान अधिकार प्रदान किये हैं, जैसे मानवता का अधिकार, शिक्षा व सम्पत्ति का अधिकार, धार्मिक अधिकार इत्यादि स्त्रियों को प्रमुख रूप से शिक्षा के विकास में विशेष बल दिया। इसलिए हजरत मोहम्मद (स.) ने स्त्री-पुरुष दोनों की शिक्षा पर बल दिया।

'ज्ञान की प्राप्ति प्रत्येक मुसलमान के लिए आवश्यक है (इबने माजा)'। इसी आदेश के साथ शिक्षा-प्राप्ति के क्षेत्र में स्त्री-पुरुष दोनों पर व्यवहारिक रूप से बल दिया गया। शुक्रवार व अन्य दिन की नमाजों में पुरुषों के साथ-साथ स्त्रियाँ भी सम्मिलित होकर लाभ प्राप्त करती थीं। इस समय अधिकांश मुस्लिम स्त्रियाँ धार्मिक व ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में इतनी अधिक पिछड़ी हुई हैं कि सामाजिक पृष्ठभूमि में उनका बहुत कम योगदान है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि मुस्लिम स्त्रियों की शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़ने का कारण इस्लाम धर्म और उसके उपदेश नहीं हैं, बल्कि इस्लाम धर्म में कुछ ऐसे व्यक्ति हैं, जो इस भय से स्त्रियों को शिक्षा के अधिकार से वंचित रखना चाहते हैं; क्योंकि ज्ञानप्राप्ति होने पर स्त्रियाँ अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो जायेंगी। लेकिन आज कुछ देशों में जैसे—ईरान, इण्डोनेशिया, मलेशिया में शिक्षा के क्षेत्र में मुस्लिम स्त्रियों के द्वारा किये गये प्रमुख कार्य दृष्टिगोचर होते हैं।

प्रस्तुत शोध-पत्र में इस्लाम धर्म में स्त्रियों की शिक्षा के विषय में कुछ तथ्यों का विस्तार से विवेचन किया जायेगा।

❖

H-25

उड़ीसा का चौहान राजवंश

श्री मधु रंजन सिंह, वाराणसी

दिल्ली के अन्तिम हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज चौहान के पतन के बाद चौहान वंश मैनपुरी के पास एक क्षेत्र में स्थापित हुआ और 14वीं शताब्दी तक शासन करता रहा। इस काल में नौ राजा हुए। अन्तिम राजा विशालदेव आक्रान्ता मुस्लिमों द्वारा युद्ध में मारे गये। इसके बाद 14वीं शताब्दी में उड़ीसा के पश्चिमी भाग पाटना में चौहानवंशीय राज्य की स्थापना हुई, जिसका स्रोत मैनपुरी का चौहान राजवंश ही था। पुनः यह वंश पाटना और सम्बलपुर के दो क्षेत्रों में बँट गया। वहाँ इस राजवंश में रामाईदेव से आरम्भ कर बलियार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिंह देव (सत्रहवीं शताब्दी) तक कुल सोलह राजा हुए। इस वंश के ऐतिहासिक उल्लेख का स्रोत केवल कुछ महाकाव्य—हम्मीरमहाकाव्यम् और कोशलानन्दमहाकाव्यम् हैं। विशेषतः कोशलानन्द महाकाव्य के अतिरिक्त उड़ीसा के चौहान राजवंश का विवरण देने वाला अन्य कोई प्रामाणिक स्रोत नहीं है।

प्रस्तुत लेख उपलब्ध स्रोतों के आधार पर इस राजवंश का विवरण प्रस्तुत करता है।

❖

H-26

भारत छोड़ो आन्दोलन में उत्तर-प्रदेश की भूमिका

श्री कमलनयन सिंह, भभुआ

'मधुर मनोहर अतीत सुन्दर यह सर्वविद्या की राजधानी' मुखरित होने वाला कुलगीत वाराणसी की प्राचीनता एवं गौरव-गरिमा की ओर ही नहीं सङ्केत करता है, बल्कि इसकी राजनैतिक चेतना, जन-जागरण में गौरवपूर्ण भूमिका एवं सक्रियता को भी प्रदर्शित करता है। जब-जब भारत में सामाजिक, धार्मिक या राजनैतिक जो कुछ भी उथल-पुथल हुआ, उससे काशी बिना प्रभावित हुए नहीं रही है। काशी की पवित्र भूमि से देश के मूर्द्धन्य विद्वान्, राजनयिक एवं धार्मिक नेताओं का किसी न किसी रूप में सम्बन्ध अवश्य रहा है।

उत्तर-प्रदेश इस देश के सबसे जागरूक प्रान्तों में से एक था। इस कारण इस प्रान्त के राष्ट्रीय जागरण के विवेचन से राष्ट्रीय संघर्ष के स्वरूप को प्रस्तुत किया जा सकता है। इस चुनाव का एक कारण यह भी है कि इस स्वाधीनता संग्राम में उत्तर-प्रदेश के स्वतन्त्रता सेनानियों एवं नेताओं की भूमिका अग्रणी रही है। ऐसे नेताओं में प्रमुख थे— पं. जवाहरलाल नेहरू, पं. मदन मोहन मालवीय, डॉ. सम्पूर्णानन्द, पं. कमलापति त्रिपाठी, श्री लाल बहादुर शास्त्री, आचार्य नरेन्द्रदेव, श्री शिव प्रसाद गुप्त, श्री रफी अहमद किदवई, डॉ. गैरोला, डॉ. रघुनाथ सिंह, प्रो. राजाराम शास्त्री, प्रो. राधेश्याम शर्मा इत्यादि।

सन् 1942 का भारत छोड़ो आन्दोलन भारत के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण वर्ष है; क्योंकि देश उस समय राजनीतिक तथा आर्थिक, अनेक कठिनाइयों से गुजर रहा था। द्वितीय विश्वयुद्ध ने उसकी स्थिति को और खराब बना दिया था और न चाहते हुए भी देश को इस युद्ध में झोंका गया था। 1942 में कांग्रेस ने भारत छोड़ो आन्दोलन आरम्भ किया। यह आन्दोलन विदेशी सत्ता को उखाड़ फेंकने की अन्तिम कड़ी थी, जिसका प्रारम्भ असहयोग आन्दोलन से हुआ था।

प्रदेश के अन्य स्थानों पर भी प्रतिनिधि मण्डल भेजा गया कि वहाँ और भी आन्दोलन को सक्रिय किया जा सके। जहाँ काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय के छात्र आन्दोलन में सक्रिय भाग ले रहे थे, वहीं काशी विद्यापीठ पर 9 अगस्त को पुलिस ने अधिकार कर लिया था तथा वहाँ के अनेक अध्यापक गिरफ्तार कर लिये गये। जैसे— प्रो. राजाराम शास्त्री, आचार्य वीरबल, श्री सम्पूर्णानन्द आदि।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पूर्णानन्द जी ने इसे स्वीकार करते हुए लिखा है कि इस आन्दोलन को निचली जातियों, गरीब और शिक्षित जतना का भी उतना ही सहयोग मिला जितना कि समाज के उच्च वर्ग का। सरकार के दमन की नीति ने छोटे-छोटे बच्चों को भी इस आन्दोलन में भाग लेने से विमुख नहीं कर सकी।

संगठनों ने उत्तर-प्रदेश के जनपदों वाराणसी, गाजीपुर, देवरिया, आजमगढ़, जौनपुर, मिर्जापुर, लोहता, कपसेठी इत्यादि स्थानों पर भी अपना प्रतिनिधि भेजकर ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ फेंकने का प्रयास किया। पूर्वी उत्तर-प्रदेश आन्दोलन का केन्द्र बन गया। इस प्रकार भारत छोड़ो आन्दोलन में उत्तर-प्रदेश ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

❖

H-27

लोककथा का विदग्ध-वाङ्मय तक प्रवास : विक्रमोर्वशीय के सन्दर्भ में

डॉ. सौ. साधना गोखले, नासिक

'विक्रमोर्वशीय' यह महाकवि कालिदास जी का एक सुरम्य नाटक है। इसका मूल ऋग्वेद में (मं.-10 सू-94) मिलता है। उसमें पुरूरवा राजा और उर्वशी अप्सरा का संवाद है। संभव है कि 'पुरूरवा-उर्वशी' की लोककथा जनमानस में स्थापित रही होगी। अतः उस पर ऋग्वेदकालीन सामाजिक जीवन का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। कालक्रमानुसार ब्राह्मणकाल में शतपथ-ब्राह्मण, पुराणकाल में मत्स्य- पुराण, विष्णुपुराण में भी यह कथा कही गयी है। आगे चलकर 'कथासरित्सागर' में भी इस कथा का समावेश किया गया है। इन सब कथाओं का आलोडन किया, तो एक बात स्पष्ट रूप से आगे आयी है कि हर कथा में कुछ न कुछ बदलाव दिखाई देता है।

जब कालिदास जी ने इस कथा को नाट्य-संहिता के रूप में स्वीकार किया, तब उन्होंने भी इस लोककथा में नाट्य जैसे विदग्ध वाङ्मय परिवर्तन करने के लिये कुछ आवश्यकतानुसार बदलाव किये हैं। इन बदलावों के कारणों में कुछ कालिक, कुछ सामाजिक और कुछ सांस्कृतिक कारणों का समावेश है।

एक लोककथा का विदग्धवाङ्मय तक का यह प्रवास निश्चित रूप से रोचक है। इस निबन्ध में इसी प्रवास का शोध करने का प्रयास किया गया है।

❖

H-28

हिन्दी साहित्य में विद्यापति का योगदान

श्रीमती सुधा झा, दरभंगा

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में अनेक दृष्टियों से मैथिली का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उत्तरी भारत में जितनी भी आधुनिक आर्य भाषाएँ प्रचलित हैं, उनमें मैथिली को ही सर्वप्रथम साहित्यिक माध्यम बनने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का सुअवसर प्राप्त हुआ है। इसी भाषा में सर्वप्रथम "ज्योतिरीश्वर ठाकुर" ने वर्णरत्नाकर की रचना की थी। इस रचना की प्रौढ़ गद्यशैली से यह स्पष्ट है कि मैथिली में साहित्यिक रचना की परम्परा ईशा की 11वीं शदी में ही प्रारम्भ हो चुकी थी। जिसकी परिणति ज्योतिरीश्वर के वर्णरत्नाकर में अभिव्यञ्जना समर्थ गद्यशैली के रूप में हुई।

"ज्योतिरीश्वर" के लगभग एक शतक के वाद कविकोकिल विद्यापति का जन्म हुआ और अपूर्व प्रतिभा के धनी इस विद्वान् ने संस्कृत, प्राकृत और मैथिली में समान सफलता के साथ अनेक रचनाएँ प्रस्तुत कीं। संस्कृत में रचित इनकी विभिन्न रचनाओं में लिखनावली, पुरुष-परीक्षा और भू-परिक्रमा प्रसिद्ध हैं। अवहट्ठ में रचित कीर्तिलता तथा कीर्तिपताका ने भी आधुनिक भारतीय आर्यभाषा साहित्य में प्रमुख स्थान पाया, पर विद्यापति को कविकोकिल, कविकण्ठहार, अभिनव जयदेव आदि उपाधियाँ प्राप्त कराने का श्रेय उनकी मातृभाषा मैथिली में रचित पदावली को ही है। उक्त पदावली में भक्ति और शृङ्गार के अधिकतर पद्य हैं। इन्हीं पद्यों के कारण विद्यापतियुग में मैथिली का प्रसार समग्र उत्तर भारत में, विशेषतया बंगाल, आसाम और उड़ीसा में हुआ। इसके अतिरिक्त विद्यापति को ही अपनी मातृभाषा को अन्तरराष्ट्रीय भाषा बनाने का श्रेय है, क्योंकि विद्यापति के पदों का प्रसार भारतवर्ष में ही नहीं वरन् नेपाल में भी हुआ था। विद्यापति के कारण ही कृष्णभक्तिपरक पदों के बंगला में वैष्णव भक्तों के बीच अधिक प्रयास से उनकी भाषा के अनुकरण पर लिखे गये पद्यों की माध्यम भाषा के रूप में व्रजवुली नाम से एक मिश्रित भाषा अस्तित्व में आयी। उस भाषा में रचित कृष्णभक्तिपरक पदों का प्रसार केवल पूर्वी भारत में ही नहीं, प्रत्युत मिथिला के पश्चिम क्षेत्रों में भी हुआ। इन क्षेत्रों में व्रज क्षेत्र प्रमुख था। उस क्षेत्र के मथुरा, वृन्दावन आदि अंचल कृष्णभक्ति के प्रमुख केन्द्र थे। उन केन्द्रों के वैष्णव भक्तों में सूरदास सर्वाधिक लोकप्रिय हुए। सूरदास ने व्रज भाषा में अपनी भक्तिपरक रचनाएँ प्रस्तुत कीं। उनकी रचनाएँ देखने से स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने विद्यापति के पदों के अनुकरण पर अनेक पद लिखे, जिन पर विद्यापति की भाषा की स्पष्ट छाप है। इसके अतिरिक्त सूरदास ने विद्यापति के पदों में अभिव्यक्त भावों को भी अपनी भाषा में छन्दोबद्ध किया था। इस दृष्टि से देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि मध्ययुग में विद्यापति ने अपनी मातृभाषा मैथिली में पदों की रचना कर समग्र उत्तर भारत के सांस्कृतिक पुनर्जागरण में अपनी भूमिका निभायी और परवर्ती हिन्दी साहित्य के कर्णधारों के लिए एक आदर्श भी प्रस्तुत किया।

इन्हीं तथ्यों को कुछ विस्तार के साथ अधिवेशन में प्रस्तुत किये जाने वाले लघुनिबन्ध में प्रस्तुत करना अभिप्रेत है।

❖

H-29

अग्निवर्ण और वाजिद अली शाह : एक तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. मीता बनर्जी, इलाहाबाद

रघुवंशकुलोत्पन्न, जितेन्द्रिय, विद्वानों में श्रेष्ठ राजा सुदर्शन ने अपनी वृद्धावस्था के आगमन पर अग्नि के समान अपने तेजस्वी पुत्र अग्निवर्ण का राज्याभिषेक करके नैमिषारण्य का आश्रय लिया। अग्निवर्ण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने पिता द्वारा प्रदत्त राज्य के शासन-भार को चलाने में कथमपि, किञ्चिदपि कष्टानुभव नहीं किया; क्योंकि उनके पिता ने पहले ही समस्त शत्रुओं को परास्त कर पुत्र के लिए राज्य को निष्कण्टक बना दिया था; किन्तु कामुक प्रवृत्ति वाले अग्निवर्ण ने अपने कुलोचित प्रजापालन के कर्त्तव्यों का कुछ वर्षों तक पालन किया। अनन्तर राज्य-भार सचिवों पर डालकर अपना यौवन स्त्रियों के अधीन कर दिया। स्त्रैण अग्निवर्ण ने मृदंग-ध्वनि से पूर्ण राजभवनों में पहले की अपेक्षा अधिक समारोह सम्पन्न होने वाले उत्सवों को भी पीछे कर दिया।

रति में अत्यधिक आसक्ति होने से उत्पन्न (राजयक्ष्मा) रोग ने राजा अग्निवर्ण को उस प्रकार क्षीण कर दिया, जिस प्रकार दक्ष के शाप ने चन्द्रमा को क्षीण कर दिया था। अन्ततोगत्वा अग्निवर्ण राजयक्ष्मा नामक रोग से पीड़ित हो गया। राजा अग्निवर्ण के क्षयरोग का रोगी होने पर रघुकुल क्षीण लौ वाले दीपक-पात्र के समान हो गया। राजवैद्य लोग उस रोग पर उसी प्रकार काबू न प्राप्त कर सके, जैसे वायु पर दीपक। अन्त्येष्टि-संस्कार की विधि के ज्ञाता पुरोहितों ने मन्त्रियों के साथ मिलकर राजा अग्निवर्ण को गृहोपवन में ही रोग-शान्ति का बहाना बनाकर गुप्त रीति से जलती हुई चिता पर रख दिया।

इसी के समानान्तर अमजद अली शाह के पुत्र वाजिद अली शाह का नाम अविस्मरणीय है, जिनका शासन अन्यतम पूर्वी दरबार के इतिहास का अन्तिम पृष्ठ और उस कुल के प्राचीन शोकगीत का अन्तिम पद्य है। ये दोनों नायक सौन्दर्य-प्रेमी, कलानुरागी, संगीतप्रेमी अन्यान्य कलात्मक विधाओं के मर्मज्ञ हैं। अग्निवर्ण के सदृश ही वाजिद अली शाह ने परीखाना बनाया, जहाँ अत्यन्त रूपवती और संगीत कला आदि में निपुण रमणियाँ स्वेच्छा से रह सकती थीं। 'परीखाना' नामक पुस्तक रंगीले पिया जाने आलम वाजिद अली शाह अख्तर की स्वचरित प्रेम-जीवन की गाथा है। इनके जीवन का अन्त भी अग्निवर्ण के समान परमकारुणिक रहा।

❖

H-30

मौर्यकालीन स्त्रियों की स्थिति

डॉ. अखिलेश कुमार शुक्ल, लखनऊ

वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति बेहतर थी। बाद के समय में इसमें दिनोंदिन ह्रास हुआ है। उस समय समाज का जो रूप था, उसमें पश्चात् के स्वरूप का प्रतिबिम्ब नही दिखलाई पड़ता। ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में प्रथम बार समाज को चार वर्गों में बाँटा गया—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। यहाँ पर पुरुष और स्त्री के बारे में कोई अलग से उल्लेख नहीं किया गया। मौर्यकाल में समाज पर बौद्ध-धर्म का प्रभाव अधिक था, इसलिए महिलाओं पर भी इसका प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इस काल में स्त्रियों को बौद्ध संघ में शामिल होने की अनुमति प्राप्त थी। बौद्ध भिक्षुणियों की स्थिति सामान्य महिलाओं से बेहतर थी। बौद्धधर्म ने महिलाओं के योगदान के महत्त्व को स्वीकार किया और उसे केवल संतान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्पन्न करने वाली वस्तु नहीं माना। बौद्धधर्म से सम्बन्धित किसी भी अनुष्ठान को सम्पन्न करने के लिए पुत्र की आवश्यकता नहीं बतायी गयी है; परन्तु कौटिल्य के अर्थशास्त्र में तथा ब्राह्मण धर्म से सम्बन्धित साहित्य में स्त्री पुत्र की उत्कट कामना किया करती थी और पुत्र उत्पन्न होने पर बड़ा हर्ष मनाया करती थी। पतञ्जलि के अपने महाकाव्य में पुत्रोत्पत्ति की खुशी में 10,000 गायें तक दान किए जाने का उल्लेख प्राप्त होता है।

इस शोधपत्र में मौर्यकाल की स्त्रियों के बारे में बताने का प्रयास किया जा रहा है, वह भी "दलित और शोषित वर्ग" के विशेष सन्दर्भ में। मौर्यकाल में स्त्रियों की स्थिति पुरुषों की अपेक्षा काफी निम्न थी। परन्तु कौटिल्य तथा कुछ सुधारवादी मौर्य शासकों ने इसको बेहतर बनाने का प्रयास किया, ऐसी सूचना मिलती है। अधिकारियों की सहायता भी निर्धन तथा कमजोर स्त्रियों को हुई, ऐसी भी सूचना है। इसमें सूत्राध्यक्ष का योगदान प्रमुखरूप से था।

❖

H-31

सोमेश्वरदेवरचित कीर्तिकौमुदी : एक ऐतिहासिक दृष्टिकोण

सुश्री सरिता प्रियदर्शिनी, अलीगढ़

कीर्तिकौमुदी एक ऐतिहासिक प्रतिष्ठित प्रशस्तिपरक महाकाव्य है। इसकी रचना तेरहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध (1179-1262) के मध्य हुई। इस महाकाव्य में मध्यकालीन गुजरात के इतिहास की जानकारी उपलब्ध होती है। यह प्रशस्ति अन्य प्रशस्तियों से भिन्न है। अधिकांश प्रशस्तियों का विषय राजा आदि ही होते हैं, किन्तु यह प्रशस्ति सोमेश्वर ने अपने आश्रयदाता अमात्य वस्तुपाल द्वारा किये गये सुकृत कार्यों की प्रशंसा में लिखी है।

श्री सरस्वतीकण्ठाभरण, लघुभोजराज, महाकवि महामात्य की उपाधि से युक्त वस्तुपाल तेरहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में गुजरात के बघेलवंश के धवलकपुर के राणक वीरधवल के प्रधानमन्त्री थे। वस्तुपाल श्रेष्ठ मन्त्री होने के साथ कुशल राजनीतिज्ञ तथा साहित्य और कला के महान् संरक्षक भी थे। इन्होंने नरनारायणानन्द महाकाव्य के अतिरिक्त शत्रुञ्जयमण्डन, आदिनाथस्तोत्र, गिरिनारमण्डन, नेमिनाथस्तोत्र, अम्बिकास्तोत्र आदि की रचना की। वह शौर्य, औदार्य, दया, दाक्षिण्य आदि अनेक अद्भुत गुणों से सम्पन्न थे। वे स्वयं जैन-धर्मानुयायी थे तथा जैनधर्म के प्रचार-प्रसार में भी उनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। उनके अद्भुत गुणों को लेकर जितने काव्य, रूपक, प्रबन्ध और प्रशस्तियों की रचना हुई, उतना साहित्य आज तक रामायण या महाभारत के पात्रों के अतिरिक्त दूसरे किसी राजपुरुष के लिये नहीं लिखा गया है।

प्रस्तुत शोधपत्र में 'कीर्तिकौमुदी' महाकाव्य का कुछ प्रमुख ऐतिहासिक और काव्यात्मक दृष्टि से विवेचन किया जायेगा।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

H-32

धर्मशास्त्रों में प्रतिपादित दण्डविधान : स्त्रीसन्दर्भ में

श्रीमती शची मालवीय, वाराणसी

समाज को उदात्त, आदर्श एवं सुव्यवस्थित बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि स्त्री का चरित्र और आचरण उज्ज्वल और सुसंस्कृत हो। स्त्री के चरित्र एवं व्यवहार से परिवार और समाज का उत्कर्ष होता है। स्त्री के नैतिक आचरण और निष्ठा से परिवार की गरिमा बनती है। आचरणहीन स्त्री समाज एवं परिवार के लिए कलंक मानी गई है।

हिन्दू समाज में स्त्री का दूसरे पुरुष के साथ गमन को गम्भीर अपराध माना गया है। कतिपय धर्मशास्त्रकारों ने स्त्रियों के इस अनैतिक अपराध को बहुत बड़ी त्रुटि मानकर कठोर मार्ग पर चलने का निर्देश दिया है तथा उसे कुत्तों द्वारा कटवाने तक का विधान किया है, तो कतिपय अन्य धर्मशास्त्रकारों ने ऐसी त्रुटि के लिए सदाशयता का परिचय देते हुए उदारतापूर्वक दण्डित करने की व्यवस्था दी है। प्रस्तुत शोध-निबन्ध में स्त्रियों के अनैतिक आचरण एवं स्त्रियों के अन्य अपराधों के लिए धर्मशास्त्रों में प्रतिपादित दण्ड-व्यवस्था की विवेचना करने का प्रयास किया गया है।

❖

H-33

राजतरंगिणी में राजधर्म

डॉ. वैभव कान्हे, रायपुर

संस्कृत साहित्य की पृष्ठभूमि सदा से ऐतिहासिक रही है। तत्कालीन समाज में व्याप्त शासन-पद्धति, सामाजिक व्यवस्था, शासन तथा नागरिकों का सम्बन्ध इन सभी तथ्यों के आधार पर साहित्यकारों ने अपने साहित्यरूपी भवन का निर्माण किया है, अतः यह कहना समीचीन ही होगा कि साहित्य समाज का प्रतिबिंब है। इतिहास से लेकर आधुनिककाल तक विभिन्न प्रकार की शासन व्यवस्थाओं का विस्तृत वर्णन है, यथा पूर्व में भारतवर्ष में राजतन्त्र शासन प्रणाली हुआ करती थी। इस राजतन्त्र शासन प्रणाली में राजा ही प्रमुख हुआ करता था। राजा अपनी प्रजा का पालन करे, एतदर्थ स्मृति-ग्रंन्थों में राजाओं के लिए कुछ कर्तव्य निश्चित किये गये थे। मनुस्मृति में राजाओं के कर्तव्यों के रूप में राजधर्म निश्चित किये गये। इसी स्मृति के आधार पर महाकवि कालिदास ने रघुवंश में—'प्रजानां विनयाधानाद् रक्षणात्भरणादपि'– इन राजधर्मों का उल्लेख किया है।

इस सन्दर्भ में काश्मीरक कवि कल्हण द्वारा रचित 'राजतरंगिणी' महाकाव्य में वर्णित राजधर्म के विषय में प्रस्तुत शोधपत्र में चर्चा की जा रही है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत ग्रन्थकारों ने शासकों के कर्तव्यों की विवेचना अपने ग्रन्थों में क्यों की? यह प्रश्न अनायास ही मन में उपस्थित हो जाता है। इस प्रश्न के समाधान के रूप में एक तथ्य सामने आता है कि—

'स्वाधिकारात् प्रमत्तः'—अर्थात् यदि राजाओं के लिये कोई कर्त्तव्य निश्चित नहीं किये जाते, तो वे राजा निरंकुश बन जाते तथा जनकल्याण की भावना से च्युत हो जाते। इस स्थिति से शासन व्यवस्था सुचारु रूप से नहीं चल पाती, अतः जो राजा जनकल्याण न कर सके, जो राजा निरंकुश हो जाय, ऐसे शासन का क्या अर्थ है? इन सब स्थितियों के निवारणार्थ राजतरंगिणी आदि ग्रन्थों में स्मृति-ग्रन्थों के आधार पर शासकों के कर्त्तव्यों का निर्धारण किया गया है। इन कर्तव्यों के पालन से शासन सार्थक तथा जनकल्याणकारी बनते हैं, ये राजधर्म मनुस्मृति में प्रणीत—

वेदस्मृतिसदाचारं स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्॥

इन सामान्य धर्म लक्षण के आधार पर निर्धारित किये गये हैं। इस शोधपत्र में विशिष्ट रूप से रजतरंगिणी के राजधर्म का ही संकेत किया गया है।

❖

H-34

भारत का अन्तिम दिग्विजयी राजा

डॉ. कृष्णनारायण पाण्डेय, नई दिल्ली

कश्मीर नरेश (700-737ई.) प्रताप ललितादित्य मुक्तापीड भारतवर्ष का अन्तिम बहिर्जगत् दिग्विजयी राजा था। उसके समय में अन्तिम बार भारतीय सेना भारत से बाहर दिग्विजय हेतु गई थी। 1300 वर्ष इस घटना को बीत गए, भारत गौरववृद्धि हेतु भारतीय सेना भारतीय सीमा के बाहर नहीं जा सकी।

कल्हण की रजतरंगिणी में विस्तार के साथ ललितादित्य का वर्णन है। उसमें प्रचुर ऐतिहासिक सामग्री है। राजा ने भारत के बाहर के भूखंड पर राज्य स्थापित किया था। विदेशी विद्वानों ने भी ललितादित्य का उल्लेख किया है। ललितादित्य का अपर नाम प्रतापादित्य भी था। उसकी मुद्रायें काश्मीर से उत्तर प्रदेश तथा बिहार में मुंगेर तक प्राप्त हुई हैं। कन्नौज के राजा यशोवर्मा को उसने पराजित किया था। तंगवंशीय चीन सम्राट् हुएन्त्सुंग (सन् 713-755ई.) के विवरणों में सन् 736-747ई. के मध्य मुक्तापीड का उल्लेख मिलता है। वह भारत का अंतिम विदेश दिग्विजयी राजा था। उसका समय देशी तथा विदेशी सैनिक अभियानों में व्यतीत हुआ था। कल्हण का वर्णन ऐतिहासिक घटनाओं तथा रोमांचक रुचिकर कथानकों से भरा पड़ा है।

काश्मीर वीरों की सैन्यवाहिनी काश्मीर से अभियान करती, दुंदुभी बजाती, यशः-पताका फहराती, कान्यकुब्जेश्वर यशोवर्मा को पराजित करती, उत्तर प्रदेश, बिहार को पार करती, पूर्व सागर तक पहुँची।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी में भी साहस नहीं था कि जो काश्मीरी वीरों का सामना करता। वहाँ से प्राग्ज्योतिष (असम) की ओर होती, काश्मीरवाहिनी दक्षिण पथ की ओर मुड़कर, गौड़ (बंगाल) एवं कलिंग का अतिक्रमण करती, कर्णाट देश पहुँचकर, कावेरी तट (तमिलनाडु) पर नारिकेल जलपान करती है। पुनः गुजरात से होती हुई, किन्नर नरेश, काम्बोज, भौट्ट, दरद, उत्तर सिंधु, उत्तर कुरु, बालुकाम्बुधि (गोवी), सिकता सिंधु तुषार, स्त्रीराज्य (लद्दाख), जालन्धर (कांगड़ा), लोहर (पूंछ) पर अधिकार करती है।

राजा का अन्तिम अभियान कश्मीर के बाहर आर्याणक (ईरान) पर हुआ था। वहीं वह दिग्विजय करता हुआ दिवंगत हुआ।

❖

H-35

आचार्य धरणीधर पन्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

डॉ. संकर्षण त्रिपाठी, गोरखपुर

देवभूमि उत्तरांचल का पूर्वभाग कूर्मांचल अपनी विशिष्ट विद्वत्परम्परा के कारण बहुमान्य है। यहाँ की विद्वद्दुर्वरा भूमि ने अनेक जाज्वल्यमान नक्षत्र उत्पन्न किए। किन्तु आचार्य विश्वेश्वर, पं. प्रेमनिधि पंत, म.म. नित्यानन्द पंत आदि विद्वानों के प्रकृष्ट प्रकाश में अन्य विद्वान् अप्रसिद्ध ही रहे। ऐसे ही अप्रसिद्ध विद्वान् पं. धरणीधर पन्त के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की समालोचना प्रस्तुत निबन्ध में की गयी है। पं. धरणीधर पन्त कूर्मांचल के निवासी भारद्वाज गोत्रोत्पन्न नेपाल राज्याश्रित प्रसिद्ध तान्त्रिक पं. प्रेमनिधि पन्त के अनुज पं. हरिनिधि पन्त के पुत्र मीमांसा, धर्मशास्त्र आदि विविध विद्याओं के विद्वान् पं. रेवाधर पन्त के पुत्र थे। उक्त विवरण तत्कृत सापिण्ड्यतत्त्वप्रकाश के प्रारम्भिक श्लोकों से प्राप्त होता है। यही विवरण उनके अन्य ग्रन्थों की पुष्पिका में भी प्राप्त होता है। उक्त वंशवृक्ष का समर्थन काशीस्थ पं. गोपालदत्त पाण्डेय जी के वंशावली संग्रह से भी होता है।

नेपालस्थ आचार्य शिवराज कौण्डिन्यायन के उल्लेखानुसार पं. धरणीधर जी नेपाल के गोरखानरेश तन्त्रशास्त्रविद् राजेन्द्र विक्रम शाह के द्वारा राज्याश्रय प्राप्त थे। उन्होंने अपने ईशतत्त्व नामक ग्रन्थ में राजेन्द्र विक्रम शाह, रंगनाथबुध, भीमसिंह आदि का नामोल्लेख किया है। इनमें से रंगनाथ बुध नेपाल नरेश के प्रधानमन्त्री थे। इनके द्वारा प्रणीत ग्रन्थों का अनुशीलन करने से प्रतीत होता है कि पं. धरणीधर पन्त भगवान् राम के परम उपासक थे।

प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, बड़ौदा के मातृकासागर धरणीधर पन्त कृत 'भारतसावित्रीस्तोत्रव्याख्या' तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के मातृकागार में पं. धरणीधर कृत पराशरधर्मशास्त्र की 'धर्मरत्न' नामक टीका का पता चला है। इस प्रकार उपर्युक्त विवरणों पर ध्यान देने पर इनकी रचना सम्पत्ति इस प्रकार व्यवस्थित होती है—1. यमद्वितीयानिर्णय, 2. ईशतत्त्व, 3. रामतापनीयोपनिषद्व्याख्या, 4. रामरक्षाविवेक,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

5. माधवीयकालनिर्ण्यव्याख्या, 6. चातुर्वर्ण्य-विवेचन, 7. चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था, 8. सापिण्ड्यतत्त्वप्रकाश, 9. सापिण्ड्यसार, 10. गोरक्षाराजवंशावली, 11. संक्रान्तिविचार, 12. भागवतविचार, 13. पराशर-धर्मशास्त्रटीका (धर्मरत्न), 14. भारतसावित्री-स्तोत्र व्याख्या।

❖

H-36

प्राचीन भारत में न्याय एवं दण्ड व्यवस्था

डॉ. मोनालिसा बनर्जी, मुजफ्फरपुर

प्राचीन भारत में न्याय का आधार धर्म था। धर्म के आधार पर मानव के लिए कुछ अधिकार एवं कर्त्तव्यों का निरूपण किया गया था। निष्पक्ष न्याय व्यवस्था थी। महाभारतकार का कथन है कि पक्षपातपूर्ण-न्याय अन्याय कहलाता था और यह अपराध माना जाता था। इस अपराध के लिए राजा को प्रजा द्वारा किये गये पापों का एक चौथाई भाग का योगदण्ड के रूप में देना पड़ता था। अतः राजा को दण्डित न होना पड़े इसके लिए निष्पक्ष न्याय की व्यवस्था दी। राजा प्रजा पर पुत्रवत् स्नेह रखता था, पर स्नेहवश वह पक्षपात नहीं कर सकता था। सभी अपराधों के लिए एक प्रकार की दण्ड व्यवस्था नहीं थी वरन् अपराध के अनुसार धिक, दण्ड, वाकदण्ड, धनदण्ड और वधदण्ड—ये चार प्रकार के दण्ड दिये जाते थे। कौटिल्य के समय में तीन प्रकार के दण्ड प्रचलित थे— अर्थदण्ड, शरीरदण्ड और कारागार दण्ड। दण्ड का पहला सिद्धान्त अपराध पर आधारित था, दूसरा अपराधी की आर्थिक क्षमता पर, तीसरा वर्ण-व्यवस्था पर। सामान्यतया अपराधी को अर्थदण्ड एवं कारागार दण्ड ही दिये जाते थे। दो प्रकार के कारागार की व्यवस्था थी—बन्दीगृह और सुधारगृह। इससे यह स्पष्ट है कि प्राचीन काल में प्रचलित दण्ड-व्यवस्था सुधारात्मक और वैज्ञानिक थी।

कौटिल्य के अनुसार राज्य में एकीकृत न्याय प्रणाली थी, अर्थात् न्याय करने में राजा का न्यायालय अन्तिम न्यायालय माना जाता था, जिसका न्यायाधीश राजा होता था। न्याय, कानून एवं नैतिकता पर आधारित था। कौटिल्य के अनुसार समाज में कानून के चार मुख्य स्रोत थे—धर्म, व्यवहार, चरित्र और राज्यशासन। धर्म सत्य पर आधारित था, व्यवहार साक्षियों पर, परम्परागत रूप से चले आये नियम चरित्र कहलाते थे और राजा द्वारा प्रचलित आज्ञा राज्य-शासन कहलाता था।

इस आलेख में प्राचीन भारत में न्याय-व्यवस्था की इन्हीं बिन्दुओं पर विचार किया गया है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

H-37

Controversy of KARNAT Kingdom Andharatharhi, Vs Simraogarh

DR. S.N. THAKUR, GAYA

(Most of the historians whose works, either available in the market, or lying in libraries does not revil this confusing question.) No doubt right from Prof. Rādhā Krishna Chaudhary to the times of Dr. C.P.N. Sinha, as many as five or six works are available including Dr. Upendra Thākur who liked to keep mum over these puzling and unfortunate questions like controversy of Karnat Kingdom and the real identity of its founder king Nanya Deva and his where abouts as well as his real identity.

Mithila, the heart land of Bihar faced a crisis but it was quite different in nature and was centralied in peripleral zones. It witnessed the emergence of feudalism or Zamindari System, accompanied by quite a new tenancy system of taxes and tolls based on the south Indian system of economics and commerce with the arrival of Karnats at 'Tharhi' which perhapes became the first stayel point or their shelters for settlement turning into the first 'foot capital' with their king, kingsman and luskar. It is they who turned one Tantrik prelude of 'Thah' into Thaur.

❖

H-38

Stratification in India-Old & New

SANJAY KUMAR SAHOO

No society exists without social stratification. Social stratification is nothing but ranking of society into different layers. So every society, whether traditional, medieval or modern, is stratified on some bases. These bases may be of caste, class, race, ethnicity, races, occupations, prestige, etc. These bases may vary from society to society. It is true that the primitive societies were stratified on the basis of caste consideration. These societies are ranked into four groups such as : Brāhmṇas, Kshatriyas, Vaishyas and Shudras. Norms and values differ considerably from one social system to another, but everywhere some norms and values guide in interaction and furnish standards for making evaluations. Social stratification is now a common factor in each and every sphere. The Preamble to the Constitution declares that ours is a democratic and socialistic state but no where the principles of democracy and socialism are maintained; as a result the society is splitting into various ranks. The privileges meant for the scheduled castes and scheduled

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

tribes are not reacking their rightful owners. In the economic field, the introduction of division of labour acts as another leading factor for a split in society. Here, the officers or haves always try their best to subordinate their officials or have-nots which stratifies the society. In the present world, the principle of equality, i.e., all are equal in the eyes of Law, is nowhere visible. By which the dignity of honest person is put to jeopardy.

❖

H-39

Mhasobā : His Origin and Growth

DR. MADHUSUDAN MISHRA, BALASORE

Among the folk deities of India who have a close association with Durgā, the crushar of the demon Mahiṣā, Mhasobā enjoys a prominent and popular position in Mahārāshtra in general and Pune in particular. In spite of belonging to the fold of Vaiśyas and Śūdras of ancient Indian social order, this deity is worshipped with an elaborate ritual system. Traditionally, he is the consort of Durgā. However, he was deliberately denied the position he deserved and was relegated to oblivion. Despite the fact that he led a highly, cultured society, he suffered irreparably in the hands of the dogmatic Śāstrakāras.

An attempt has been made in this paper to present a sketch of his character in a historical perspective.

❖

H-40

Saura cult in Karnātaka

DR. K.B. SUDARSHAN

The foregoing points have discussed how Surya originated as a Vedic deity, how the Saura cult grew and how it influenced Surya worship. It is also surveyed, how the cult spread to Karnatāka and what importance, it had during various political epochs. The identification of Surya with Brahmā, Vishnu and at times with Śiva, who is popularly called Arkeswara being inseparable from Surya is also mentioned. Many independent Surya temples in Karnatāka were built till the 9th century, Aihole being the finest example. Achārya Sankara gave Surya a place in his Sanmata Scheme. Surya, no doubt, had separate temples, when Saura cult was popular. In Karnatāka Kālamukhas, Vinasaivism, Srivaisnavism and Madhva Vaisnava school gave much importance to Surya as an important deity. In the Iconography of Surya, he got the full justice at the hands of

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Chālukya and Hoysala sculptors. People of Karnātaka had many folk and religious beliefs too regarding Surya. Worship of Surya together with Siva was very popular in Gangawadi.

The Sauras as an exclusive cult did exist in Karnatāka. Hampi, Gokarna and Begur are referred to as Bhāskara Kshetras. Karnatāka inscriptions testify the practice of self-immolation in ancient Karnatāka on the day of solar eclipse. Sankrānti and Rathasaptami were important festivals celebrated in hour of Surya. These show how Surya cult has its influence on the life of people.

❖

H-41

Some Problems in the Study of Early Indian Coins

CHANDRA NEEL SHARMA, VARANASI

Although it is universally accepted that the punch-marked coins are the earliest form of fixed medium of exchange in India, but there are varied views and difference of opinion among the numismatists regarding their antiquity. It is chiefly due to the absence of inscriptions on these coins and very meagre and obscure help from the ancient literature. Some basic problems in the study of early Indian coins are—

(i) Ascertaining the exact period of beginning of their circulation, (ii) Identifying the issuing authorities. (iii) Accomplishing the chronological sequence, (iv) Interpreting the significance of various symbols, (v) Establishing relation between the literary references and the specimens.

It is a known fact that not much information can be derived from these coins alone, except for their weight, shape, size, fabric, chemical composition and the technique of minting upto some extent. For drawing information out of these coins for the purpose of reconstruction of history, one has to rely upon the comparative study, viz. the stratigraphic sequence of excavations, the availability of other datable objects of the same layer, corroboration by literary references, etc. While the coins recovered from the scientific archaeological excavations do get some help from the accompanying sources for their identification, the stray finds are much more problematic. These have to largely depend upon speculations, which are liable to acceptance or rejection by some or all at any stage. So the numismatists mostly present only their observations and never bet on their conclusions as far as the early coins of India are concerned.

This paper aims at looking into the basic problems arising before the numismatists in the reconstruction of ancient history, especially while dealing with early Indian coins that are devoid of inscriptions or legends.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

H-42

M.M. Pt. Krishna Mādhava Jha : A Study

DR. RANGARAJAN, PUNE

Krishnamādhava Jha was one of the greatest Philosophers of the present century in Bihār. He was eldest son of the six sons of Pandit Goverdhan Jha and Bhageshwari Devi. His grand father's name was Hemadatta Jha and maternal grand father was Pt. Shivanandan Jha. Pandit Goverdhan Jha was a famous resident of Sarisab Pani in Darbhangā District which was a great Centre of Shrotriya Brāhmins. He was a great genius gifted with unparalleled foresight. He was also a lover of music. His fifth son Pt. Chandramadhava Jha, a disciple of Deenavandhu Jha was not only a scholar and researcher, but also a great vocalist with a magical voice. The above information though scanty gives us a rough idea about the development of music in his family and some writings in this field. But so far as the activity of writing original works on musicology in Sanskrit is concerned, the contribution is poor.

His early life was a continuous struggle, while working as a teacher. He appointed the Principal of JBM Sanskrit College in Bombay. His early life was a relentless struggle and even later, he had not been roses all the way. It was sheer grit and quiet courage, hard work and unflagging perseverance which enabled him to achieve what he did. In most of such self-made persons, iron enters the soul. They become strong and self-reliant, but also a bit too self consious and cynical of others' weakness and better in their view of human nature and almost always less than kind in their dealings with others.

❖

H-43

Gita : A guide to Indian Freedom Struggle

DR. MAMATA DAS, CATTACK

India's struggle for freedom was not just a political agitation or military operation, it was an arduous process of the national rebirth of the ancient soul of India. Freedom was not a sudden brief happening, but the slow blossoming of a great country with glorious heritage, perennially nourished by ancient scriptures like the Vedas, Upanisads and the Gitā. Ramā and Krishna are adopted and worshipped as apostites of valour and virtue. Srimad Bhagavad Gitā had always been a deeply revered and widely reputed text throughout India for its elevated philosophy, noble thought and lucid expression.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The Gitā played the role of an enlightened guide, leading the Indian people in their freedom struggle. Like the Ganges and Tulsi, the Gitā became symbol of Indian Identity and imspired the people to fight against social evils like ritualism, rigidity in caste system and untouchability, to shake off the sackles of fear and inertia, to nurture a feeling of intense patriotism and the spirit of supreme sacrifice for the motherland. The Gitā assured the people that Lord is with them in their fight for freedom, but they have to pare the road for themselves. None else but the people will have to fight for their rightful cause. The influence of the philosophy of the Gita during the freedom struggle is evident not only in its constant practice but also in the autobiographies and memories of various freedom fighters. It is also proved by official reports that the Gitā and the writings of Swāmi Dayānanda, Vivekānanda, Sri Aurovinda and Bankim Chandra, etc. were read and followed by the revolutionaries and many copies of them were seized by the police in course of their searches. The Gitā was the inspiring force for the Swadesi movement and gave people the moral courage and spiritual support to adopt. Truth and Nonviolence as the weapons to fight against the mighty British Empire.

The translations and commentaries on the Gita by numerous freedom fighters like Rāja Rāmmohan Ray, Annie Besant, Lokamānya Tilak, Swāmi Sradhānanda, Sri Aurovinda, Subrahmanya Bhārti, C. Rājagopālachāri, Āchārya Vinova Bhave, M.K. Gāndhi, Pandit Nilakantha Das, etc. were written during the pre-independence period establish the importance of the Gita in the freedom struggle, Gāndhiji included regular recital of the Gitā in his routine prayer meetings. Gitā became so very elementary for freedom fighters that H.P. Podar, an eminent leader established Gitā Press in Gorakhpur in 1923 to make the Gitā available to common men at nominal price.

Thus the Gitā which is called the Moksa Śāstra proved itself to be a text of liberation from the foreign rule as well.

❖

H-44

Methods of Teaching in Ancient India

DR. LATA PANT TELANG, VARANASI

The educational achievements of our ancestors in various fields of knowledge are remarkable in the history of the world. In fact every knowledge is the outcome of teaching-learning process. If we want to perceive clearly a particular branch of ancient knowledge, it is essential to know something about the methods of teaching, used in particular subjects in those days. Actually ancient system of education should be a major section of Oriento logy.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The present paper highlight the characteristics of methods of teaching in ancient Indian education system. In fact immense number of books have been written by ancient scholars, but not a single book is available on *shikshāshāstra*, hence the researcher in this field has to depend on literary sources only.

After a perusal of ancient literature, we can say that recitation, comprehension and memorization etc., teaching devices were used by the ancient teachers to elaborate the subjects. The teaching method differed according to the emphasis laid on one or the other aspect of the subject.

Along this, *swādhyāya* was compulsory for every learned person. The word means daily repetition of some portion of memorized or studied material, so that it is ready for use whenever required, because the ancient acharyas used to believe in complete mastery and ready recall.

❖

H-45

An Evaluation of Ashoka's Writing Life

DR. PRAMODARANJAN MUKHOPADHYAY, KOLKATA

Bittho is an obscure village in Madhubani district, of Mithila. The present state of Bihar comprises the region earlier know as Mithila & Baishali in North Bihar, Anga in east, Magadh in south etc.

Some 45 years ago, a boy was born (on April 6th, 1959) in an indigent family at Bittho; moreover, in those days the community in which he was born, was backward, both economically and educationally. This summarizes the life-story of Dr. Udayanātha Jha. His early life was a continuous struggle and while working as a Head-master in Bhāgirathi Sanskrit High School of Kanakapur, near Lohana Road in Darbhanga district, he got his Acharya and then second Acharya as a private candidate in 1980, when he was appointed a lecturer in Vyākarana department in NS Collage.

Dr. Jha, known as Ashok, is one of the best poets of Bihar. He is eldest son of Dr. Gangānātha Jha and grandson of Mm. Pdt. Krishna Mādhav Jha. His mother's name is Nirmalā Devi and great-grandfather's name was Pdt. Govardhan Jha. Goverdhan Jha was so famous and resident of Sarisab-pahi in old Darbhangā district which was great centre of Shrotriya Brahmins. Ashokji has written many poems, some of which were self-recited in Sanskrit conference distinguished some of the features, such as erudition in Sanskrit, meaningfulness of diction. Fluency of language and an artistic expression of feeling is

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

evident in his poetry. Though most of his Sanskrit poems are unpublished but Saraswati Stotra, Durgāshatanāma Stotra, Prāth darshan dehi Gange etc. are published works which represent his poetic spirits.

Dr. Jha's contribution to the development of Sanskrit studies in Mithila is valuable and outstanding, but in the ultimate analysis, a man is to be measured not by what he has achieved but by what he is, the essential personality of the man, stripped of all external paraphernalia. When we asses a persons this manner, we find that there are two kinds if man; those whose achievements are in proportion to, or even greater than their personality and secondly those, who are greater than their works. Dr. Jha falls into the second category and hence, it will not be out of place to present in brief my personal impression of Dr. Jha, the man.

He has participeted in numerous seminars and work-shops not only in Bihar, but at National and International level also, and the organisations which invited him include such reputed ones such as All Indian Oriental Conference, Indian History Congress, Kalidas Samiti of Ujjain etc. He has been honoured with many awards and distinctions.

❖

H-46

The Movement of 1857 and Orissa's Participation : Role of Chakhi Khuntia alias Chandan Hazoori

DR. AMAL KUMAR MISHRA, ORISSA

The 'Movement of 1857' was a landmark in the history of struggle for freedom in India. The British colonial rule received a severe jolt and as a result the days of English East India Company as the ruling power became over in 1858. The popular movement however was more manifest in northern and central India; the eastern region not withstanding, Chakhi Khuntia alias Chandan Hazoori from Puri in Orissa discharged a tremendous duty during this important phase of Indian History on the call given by Rani of Jhansi, Laxmi Bai, Originally being a priest in the temple of Lord Jagannath at Puri, he raised his voice against the excesses and abuses committed by the British authority and organised the youth mass to give a befitting reply to the company's misrule. The 'Movement of 1857' thus became the right occasion for him to demonstrate his valour and patriotism and the call coming from no less than a person of the stature of Rani Laxmi Bai ignited his spirits skyhigh. He swung into action and joined the freedom fighters in central and north India. Actually he worked as a secret service agent and in the guise of a priest from Puri distributing Mahāprasād he visited regularly different British cantonments on the

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

express orders of Queen Laxmi Bai and Nana Saheb of Kanpur. Working as a conduct between the two he was able to a great extent in carrying the message of the movement and firing the imagination and sentiments of the Sepoys. He stood by the queen of Jhansi till her fast ditch struggle with the British. Even he was declared a proclaimed offender by the British but he did not care. He gave a slip to the British network of intelligence and went to Lucknow and thence, to Nepal where he went underground. Under a changed circumstance in 1865 he did return to Puri when everybody had given up hope for his home-coming. He breathed his last in 1885 and died a martyr's death as one of the proud sons of Orissa and remained thus, her contribution to India's Movement of 1857.

❖

H-47

Ripuñjaya Bhaṭṭācārya and His Works

PROF. NALINIRANJAN SHARMA, GAUHATI

Ripuñjaya Bhaṭṭācārya is one of the important highly honoured scholar on dharmashastra of the Kāmarūpa school. It is supposed that he flourished in the village Śālkocā in the east of Goalpara district of western Assam during the first half of the seventeenth century A.D.

He compiled a big treatise on Dharmashastra matters entitled *Pūrṇacandra*. The work is a big compendium of Dharmashastra matters in the form of a nibandha. The work is divided into three parts, namely, *Prāyaścitta, Tithikṛtya* and *Śrāddhākhaṇḍa* dealing with subjects indicated by the respective names. A few manuscripts copies of the work is preserved in the libraries of the Kāmarūp Sanskrit Sañjivanīsabhā, Nallari and K.K.H. library, Gauhati University. The work is not published uptil now. The Prāyaścitta portion was published once but no printed copy is available now.

An atempt is made here in this paper to discuss about this unknown author and his works.

❖

H-48

Why should we not Change our Ancient Indian History

D.M. KULKARNI, PUNE

Western scholars, however somehow, or we may say, even deliberately, neglected an important historical fact that this very Gautam Buddha was born in Ikshwaku dynasty

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

with Kings Raghu, Rāma and Brihadbal as his predecessors. We also find number of reliable references in epic Mahābhārata which confirms that, King Brihadbal, physically participated in Mahābhārata War!

These British scholars also put forth a totally false and imaginary theory of Āryan invasion on the territory of India. They opined that Āryans must have invaded Dravidians by the middle of second millenium B.C. Without any kind of sound and reliable proof, they also began to construct fictitious stories about the so called battles between foreign Āryan invaders and Harappan Dravidians. I am of the humble opinion that all this is nothing but a mere speculation!

It has been, on the other hand, pointed out very recently by a veteran Indian scholar that, the dates of Harappan culture and Mahābhārata War are contemporary to each other! Not only that, the dates of Lord Krishna and King Rāma have also been calculated to be about 3000 and 5000 years B.C. respectively. It is also customary among Indians that, just like the date of Gautam Buddha, they celebrate brith dates of King Rāma and Lord Krishna also.

Now, fifty-four years have already past since the Independence of India, but still we are teaching our new generation the same old history as prepared by British rulers, in which there is no place for Rāma and Krishna. Should we not, therefore, think of changing the History of Ancient India, which may definitely affect the current model of world history also?

❖

H-49

APJ Abdul Kalam's Historical Work in the Light of Itihasachāryā Rajwade's Thouths

DR. P.D. JAGTAP & A.S. YAWALKAR, JALGAON

'Itihasāchārya V.K. Rajwade (1864-1926), the historian with the scientific set of mind, and an odd mixture of Hegel and Agustue Comte used to define himself as :'I am rational and my method is historic'. His mind was deeply hurt by the painful thought of India's slavery and it remained always obsessed with the urge to find ways to make it free from shackles of foreign rule. He considered India in the year 1900 A.D. to be in the metaphysical stage. On the basis of inductive analysis of historic events, he even predicted that India will be in the positivistic stage in 2078 A.D. B.V. Bhat, a well known historian called the (group of) believers in this thought as 'Rajwade Vichar Sampradayis'.

CC-0.Pahini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

We see reflection of Rajwade's above conviction about strong India inherent in the thoughts of eminent Indian personalities, including the famous technical President of India A.P. Abdul Kalam. Born in year 1931 A.D., and professionally a rocket engineer of nearly 40 years' outstanding career in the research and development of missile technology, he firmly believes in the tremendous potential for dynamism in Indian youth. We (Indians) are all born with a divine fire in us. We should give wings to this fire and fill the world with the glow of its goodness. 'Rajwade also dreamed of the same glow. Hence, we are *of the view that AJP Abdul Kalam is a devout 'Rajwade Vichar Sampradayi'.*

❖

H-50

Some Observations on Plant-Domestication in Ancient India

DR. NANDITA BHATTACHARJEE GOSWAMI, GUWAHATI

The culture of India developed from the shades of trees. People lived in the forest, educational institutions conducted courses of studies in the natural background. The whole concept of life was given formation in *four asrams* : the idea of which is concentrated to the atmsophere of forest. Thus plant world has been closely associated with the people of this land of ours. Human beings searched out all the materials indispensable for the maintenance of life from the plant world. The necessity of plants became simply unavoidable. Thus plant domestication developed in its own way. Ample information on this is available in various works in Sanskrit literature.

This paper makes an effort to highlight the concept of plant domestication as reflected in *Bānabhatta's Harsacharita.*

❖

H-51

Vyāsa's Portraiture of the Indian Civilization

DR. T.N. INDIRA BHAI

During the times of the Rāmāyana as well as of the Mahābhārata, the Hindus have spread over the Jamuna-Gangā plains and had achieved a high degree of civilization. The people of India as described in the Mahābhārata seem to have been a comparatively civilized and refined and happy people. The Mahābhārat refers to Āryāvarta as the country between the Himālayas mountain and the Vindhya range.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Though there were many States in India and monarchy was the norm, yet the democratic elements in the political life were fairly strong. The doctrine of social contract is adumbrated in the Mahābhārata. There was also the vision of all India under one royal umbrella. The taxation was mild and the people were under an efficient political administration.

In regard to religion, we have to note that though Vishnu as Sri Krishna is glorified in the Mahābhārat, the veneration is shown to Shiva also. The most perfect gem in the poem is of course the peerless Bhagawad Gitā which contains the highest philosophy and religion.

❖

H-52

Universalism and the Medieval Mind

POONAM PANT, GORAKHPUR

We are now in the 21st century, an age in which the key themes need to be the culture of peace and dialogue among civilizations. In marked contrast to these ideals the world appears beset with a sense of looming crisis. The trends from the negative legacy of the violence ridden 20th century continue to accelerate and expand.

In this paper an episode which took palce in he year Hijri 1191 has been reconstructed with the view that since history is a social science, the search for universals in the social processes of a given culture are our commitment to develop an ethic of co-existance. It is no intellectual examination of doctrinal theory. What comes forth is a simple philosophy, which explains how one can live happily and creatively with one another.

❖

H-53

Proprietary Right of Wife in Ancient Sanskrit Literature (Evolution from the Vedic Era Till the Modern Age)

DR. SHALINI, PATNA

Economic independence and property have important bearing on the status that the various sections enjoy in the society. In the long process of its living past people of India came in contanct with a varieties of tribes, races and cultures. This has lent a peculiar and fascinating impression upon its customs, usages, thoughts and ideologies, Naturally, the

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'Proprietary Right' of women, along with theological tenets of the ancient Ārynas, also reflected changes accordingly.

The law of Proprietary Right is related to the laws of inheritance and heir ship. It comprises rules that govern the devolution property on the death of a person upon other persons solely on account of their relationship with the former.

❖

H-54

Wage System in the Kautiliya

DR. ANAGHA VISHWAS JOSHI

The Sanskrit term for wages is वेतनम्. It is defined in the commentary पराशरमाधव on नारदस्मृति (9.1) i.e. वेतनं कर्ममूल्यम्।

In this paper an attempt is made to understand this concept as reflected in the Kautilya's Arthśāstra and some Dharmaśāstra texts along with the modern aspect of 'Remuneration of employee'.

❖

H-55

Sanskrit Study in Āssām in the Medieval Period

RATUL BUJAR BARUAH, GAUHATI

Every part of India has its own contribution in the field of Sanskrit study. Assam can rightly boast of her contributions towards the rich treasure of Sanskrit literature. There are various epigraphical and literary evidences which stand as testimony of Assam's contributions towards Sanskrit literature. Then history of Assam has been divided into three periods, namely, the Ancient period (upto 12th century A.D.), the Medieval period (13th-18th century A.D.) and the Modern period (from the beginning of 19th century A.D.) During the period between the-4th and 13th century A.D. which can be termed as the golden period for Sanskrit learning in Assam, many stone-pillar and copper-plate inscriptions are found to have been composed. In the medieval period there was extensive study of philosophy in Assam. Medieval Assam contributed a lot in the development of *Tantra* literature. With the composition of dramas Assam has immensely contributed in the development of dramatic literature. Sanskrit scholars exhibited their interest in writing works on the science of metre in the medival Assam. Most of the *smṛti* works were composed in medieval Assam. Some works on devotion are found to be composed in Assam in ancient and medieval times. The most notable contribution of Assam to

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vyākaraṇa in Sanskrit literature is the *Prayogaratnamālā of Puruṣottama Bhattācārya* composed in 1969 A.D. with eight divisions called the *Vinyāsas*.

❖

H-56

Orient Beyond Orientalism : History, Representation and Woman

ANUP KUMAR DHAR

This paper takes a close look at a possible (re)construction and (re)conceptualization of the 'orient' beyond scriptures and stricture, beyond paradigms and linguistics tropes set to work by'Orientalism', or for that matter, the'orientalist project'. Working with awareness the'orientalism' is never full in its (metaphysical) presence : that 'orientalism' is *also* pushed and pulled in contradictory directions that 'orientalism' is never operative uni-linearly— this paper, rather obstinately, tries to *think and orient beyond mere orientalism.*

To *think an orient beyond mere orientalism* it takes up the space 'History' and within the rather contested interstices of history or for that matter of 'histories' the issue of the 'representation of woman' is important in the context of both the 'orientalism' because the issue of 'woman' has been crucial in the very construction and conceptualization of the orient.

All three forms informed the construction and conceptualization of the orient : a construciton and conceptualization that remains steeped with an 'orientalist' streak. To undo this particular construction and conceptualization of the Orient (a construction and conceptualization streaked with 'orientalism') one needs also to undo or for that matter re-examine the representation and rendition of the 'idea of the oriental woman'.

Taking off from nineteenth century debates on *Sati* and working through twentieth century representations of woman (representation in a 'conservative' sense....in a 'progressivist nationalist' sense.... in a 'Gandhian' sense) this paper tries to do just that.

❖

H-57

The Atrocity on women and Reform Movement : with Speical Reference to 19th Century

DR. CHANDRA PRAKASH SINGH, BIHAR

The 19th Century is highly significant in modern Indian History from the point of view of reform movement against atrocity on women.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

In the Century a movement was started which was a revolutionary step in order to improve the status of women. On one hand the new elite-middle-Class educated in liberal western culture, and on the other hand those Indians influenced by the glorious cultural tradition of Ancient India, having given a new form to the Hindu religion, tried to tackle the challenge of western culture and to improve the condition of those women who were deprived of socio-economic right; they aroused a consensus along with a constant pressure upon the British Government to prohibit these inhuman ills.

Consequently, various laws regarding Sati system, Widow Re-marriage Act, Special Marriage Act, Child Marriage Restraint Act, Married Women property Act, Civil Marriage Act, Femicide were framed to declare these inhuman evils as a punishable crime. These gave rise to a Socio-Political consciousness and inclination to education and economic self-dependence among women. It has been evident Socio-Economic co-operation of the 20th Century.

❖

H-58

Indian Globalisation Process in the Ancient Period

PROF. RAJ KUMAR SEN, KOLKATA

While many consider globalisation as an economic phenomenon of recent period, in reality it is an ancient one if by the term we mean free trade and free movement of goods and wealth among nations. On the other hand, the present gloablisation process is a truncated one as it is interested in free movement of capital and commodities throguh international trade, but restricts free movement of labour.

Under the current globalisation process, India is in a disadvantageous position and can learn from the experiences of ancient globalisation, where she was a gainer.

❖

H-59

Continuity and Change in Indian Tradition

DR. VED KUMARI GHAI, JAMMU

Tradition implies a set of values and customs, which are observed by a particular society over a fairly long period of time. It includes the basic values of human life like truth, love, sympathy etc. which are independent of time and do not need any change but it also includes other practices like social relations, social status and role-performance of

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

various classes of human beings in the society which change from time to time and place to place. Being part of the society, an individual feels happy only when his actions have the sanction of the society to which the professes to belong and he feels embarrased if his activities are unacceptable to the society. Deviations from the standards of normal society are not liked generally. But no society can progress without change. Even the most traditional and conservative society has to introduce some changes for the sake of progress. When some old customs and attitudes, become totally useless and rather harmful for the society, these begin to lose hold on the minds of the people and then some independent thinkers come forward to articulate their dissent. This very note of dissent indicates the initial stage for the process of change. Thus both tendencies can exist side by side at any point of time. One tendency is that of the individual's conforming to the traditional customs, attitudes and ways of life and another is that of rebellion on the part of the individual when the society does not welcome conditions which would contribute to the maximum development of its members or when it clings to those ways of living which bring suffering to a considerable number of the members of the society.

The paper tries to trace out and throw light on such a few elements of dissent in ancient Indian tradition, which initiated the process of change in Indian society.

❖

H-60

Acrobats : The Folk Theatre Artistes

DR. IRAVATI, VARANASI

On the basis of Buddhist and Jain literature it seems that Acrobatic shows were one of the most popular entertainment in ancient India. The terms used for acrobats in both these literature are *Lankha, Langhika, Langhnanata* and *Jalla*. The popularity of this art is corroborated by the sculptural depictions of Sunga and Kusāna age.

Jain texts like *Rajprasneyi Sūtra* and *Aupapatika Sūtra* etc., *Jatakas* and *Dhammapada* commentary refer to such artistes-male and female-and often give details about their art and style of performance.

Sunga art of Bharhut, Bodhgayā and Kusāna art of Gāndhāra and Mathurā often depict their performance. Some sculptural depictions of the period seem to be inspired by their art. In all probability they had a fixed costume and were accompanied in their performance by Dhol and Flute.

The study of this ancient art may open new ground in the study of Indian Theatre.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

H-61

Export Business in Ancient India

PROF. SONALI BOSE, KOLKATA

In writing this article it is observed that the ancient Indians were advanced in material civilization. They conducted extensive commerce and business both internal and foreign and were amply supplied with the luxuries of life.

India is known to have traded on all kinds of wild beasts like leopards, tigers, elephants, serpents, hyenas, baboons and parrots by sea-route to Rome. Leathers furs, skins and various kinds of leather manufactures exported direct from the Indus to the Egypt. Clarified butter, pumped, cattle and buffalo's horn and tails; yaks, wools and woollen garments, blankets etc. were also supplied to Rome. The hides teeth and horns of rhinoceros's, ivory, tortoise shell, skins of camels were exported by the land sea-routes to foreign country. Pearls and coloured lac were exported from India to Rome and Greece.

India exported all kinds of plant-produces by sea-route to Rome, Syria and other foreign countries. Pepper, cinnamon, nard, Aaloes, Indigo, rice and wheat, turmeric, sugar, cotton fabrics like muslins were exported from India to Rome, Greece and middle-east Asia by sea-route. Most of the Sanskrit works have noted that India exported ebony and other kind of woods like teakwood, Blackwood, sandalwood to South-East Asia and the countries of middle-east.

❖

H-62

Epidemics in Ancient Indian Medical Texts

DR. MRIDULA SAHA, KOLKATA

The concept of Epidemics is a very important topic of discussion in Environmental studies, with special regards to public health care. Epidemics are referred to as *Janapadadhvaṃsa* in ancient Indian medical texts. These are considered to be the problems not only in modern era but in ancient period also. Etymologically epidemics, *Janapadadhvaṃsa* means the factors, which are responsible for the occurrence and spread of infectious diseases in a community. It finally can lead to country wide destruction. Therefore Epidemics are the diseases, which affect the people having different characteristics in their physical constitution, food habit, and age etc. at the same time. The factors, common for the affliction of diseases of all people of a community are : *vāyu* (air), *jala* (water), *deśa* (land), *kāla* (time). In fact these four natural elements when become deranged, bring the diseases with the same symptoms in large number of people and cause mass destruction.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

In this paper an attempt has been made to trace the characteristic featrues of these four factors and to show how these factors in their abnormality may cause the destruction of a country.

❖

H-63

Town Planning in Ancient India according to Saudhikāgama

DR. SADANANDA DAS, VARANASI

In the wide range of works on architecture and iconography, the Saudhikāgama occupies a distinct place. It is an unpublished Sanskrit Text of encylopadic nature on Orissan temple architecture, town planning and iconography comprising about 4457 verses divided into nine chapters. It deals with both secular and religious art and architecture.

While explaining the Characteristics of towns, their divisions and plan of their layouts (*nyāsamārga*) as prescribed by the scriptures on architecture, the author describes four types of town called Nandāvarta, Svastika, Tribhaṅga and Teruṇḍaka.

The present paper aims at giving a brief account of these four types of towns and analysing some of the important characteristics of them and their layouts (*nyāsamārga*) as described in Saudhikāgama.

❖

H-64

Kauṭalya on Sociology

DR. NIRANJAN PATI, ORISSA

Arthaśāstra of Kauṭalya is the greatest treasure of Sankrit Literature in general and art of governance in particular. This treatise is a scientific one which presents various aspects of scientific truth written coherently in a differentiated manner. It makes Sanskrit more relevant and vibrant times to come.

Arthaśāstra is a unique work which is found to be the storehouse of knowledge on Polity, Sociology and Economics. Its contributions to sociological aspects are more spectacular and resonant than political aspects.

In this paper an humble attempt is to be made to highlight some sociological problems and their solutions with the stand of Kauṭalya and others.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

H-65

Chandassāra of Cintāmaṇi : A Rare Work of a Pandit from Kolhapur

Y. WAKANKAR, VADODARA

The Royal Family of the State of Kolhapur in Mahārāshtra was a very progressive and forward-looking. They had patronised many Pandits, experts in different Sanskrit Śāstras, especially, Jyotiṣa and the State was till recently, an abode of Sarasvatī, spreading the name of the Kings and the State of Kolhapur. There was one very famous family of Sanskrit Pandits, known earlier as Jyotirvids (which name later on changed to Joshirao) because the members of this family were Royal Astrologers, since the latter part of the 17th century till the middle of the 19th century. One of the topmost Astrologers was known as Jīva and his son was named as Cintāmaṇi, who has written two very original works, viz. Śyāmalābhāṇa in 1826 A.D. and the present work, known as Chandassāra. In the present paper, an tempt is made to introduce the Chandassāra to the assembly of scholars.

❖

H-66

Kautalya & Financial Emergency

MRS. KATYAYANI MAHAPATRA, ORISSA

Kautalya is the epitome of Ancient Indian Political System and his Arthaśastra is an encyclopedia of polity and governance. Though the state and its government became the primary subject, everything coming under government including the life and activities of citizens is discussed in Arthaśastra. Kautalya gives the concept and idea of a sovereign country. His Mandala theory and deposition of inimical powers is a contribution to the problem of war, peace and external relations. In internal administration, in gathering intelligence, in rooting out of internal enemies, spies of enemies, corrupt officers etc. Kautaly's genuis leaves no stones unturned. He highlights some important suggestions in regards to financial emergency. This paper is intended to discuss after them.

❖

H-67

Role of Swāmi Vivekānanda in the National re-construction of India

DR. P. SYAMALA DEVI, KERALA

The Vedantic movement of Swami Vivekananda brought about a spiritual movement which would recognise Divinity in every creature high or low and would concentrate all its energy in aiding humanity to realise its ture nature.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

He made religion an instrument of social good and considered Advaita Vedanta as the greatest concept of religion. He knew that day to day problems of man had to be tackled on the ideological plane first. Modern problems of India are predominently socio-economic. We have a greater need for Advaita Vedanta expounded by Swāmi Vivekānanda. Swamiji's Vedantic vision, Human service, Universal brotherhood, Social and Religious reconstruction which made him a role model for people all around the world especially in India-are highlighted in this paper. An attempt is made to examine how Swami Vivekānanda applied practical Vedanta for the national re-construction.

❖

H-68

Political History as the Study of Factors and Forces Operating in Society

SHANKAR GOYAL, RAJASTHAN

In recent times political history has lost much of its popularity and economic, social and cultural history seem to have captured the imagination of historians. The most damaging criticism levelled against the current form of political history in the west is that it is elitist in content, that it lays too much emphasis on kings and heroes, and that it pays too much attention to political events, military conquests and chronology. This criticism may be levelled even with greater force against writings on ancient Indian political history, for these deal with nothing except chronlogy, wars and conquests of great kings. In the western world the problem of the decline of political history is being solved by transforming the very concept of political history. The dictum of Jacques Pirenne that 'the true aim of historical research is a knowledge of the factors that control men living in society' will perhaps be acceptable, at least on a tentative basis, to the majority of present-day western scholars for their investigations. This definition implies that the different aspects of history cannot be studied in isolation from one another but only as facets of an integrated reality, and that the focal point of history is not an individual however great he may be, but society. If this view is correct, political history can be regarded neither as a mere chronicle of events nor only as an account of kings and emperors, it should be regarded as basically the study of the political aspect of social life. Actually both of them are woven into a variegated texture by various elements which in the pattern are inextricably joined. In such a view of political history, as Herbert Butterfield argues, society is not merely a picture of still life or a kind of background to the story that is being told a massive piece of scenery to be described in an introductory chapter of mentioned on occasion in parenthesis.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

H-69

Kālidās and Orissa

DR. PRAHLAD CHARAN MAHANTY, ORISSA

Kalidas a poet par-excellence, has earned world wide reputation for his poetic genius. His writings have not only influenced the Sanskrit poets, but also poets of regional languages of India for century together.

There is no such authentic record as can be believed as original or faithful life history of Kālidās. As a result the historians and scholars of different parts of India claim Kālidās to be son of their respective regions, putting forward speculative arguments.

In absence of historical or factual evidence the imcro-analysis of textual writings of Kalidas may throw some light about the truth. The first stanza of Meghaduta of Kalidas may be referred in this context.

In this paper the view that Kālidās belongs to Orissa has been discussed.

H-70

Subsistance To Government Servants According to Kautilya

PROF. RAMNIKA JALALI

The King should fix one fourth of the total revenue, the charges of maintaining his servants. He should look to the bodily comforts of his servants by providing such emoluments as can infuse in them the spirit of enthusiasm to work. The chief of military corporations, the chiefs of elephants, of horses, of chariots and of infantry and commissioners be paid 8,000 panas per annum.

The Rtvig, the teacher, the minister, the priest, the commander of the army shall receive 48,000 panas per annum.

In case of adultery of any type the king should change double of the amount or article from the culprits. Thus when both the receipts and expenditure are properly cared for the king will never find himself in financial difficulties.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

H-71

Indian Society and Culture in Sudraka's Mrichhakatika

DR. PREMLATA SRIVASTAV, A.P.

The plot of Mrichhakatika is neither legendary nor historical, but one of the writer Sidraka's own invention. Regarding the authorship of the play, concerning whose age not much was definitely known, except in Avanti Sundarikatha, a work of Dardin which is recently discovered, where a life sketch has been given of king Sudraka :

'शूद्रकेणासकृज्जित्वा स्वच्छया खड्गधारया।
जगद्भूयोऽभ्यवष्टब्धं वाचा स्वचरितार्थया।।'

However, the beginning of the play itself disclosed alone the writer's super intellictuality and द्विजमुख्यतमः, the best among the Brāhmanas.

❖

H-72

The Aryans Abobe

PROF. URMILA SRIVASTAVA, KENYA

The word Ārya connotes different meanings in ancient Sanskrit literature, such as, a person of high family, a gentleman, decent natured, righteous and as an adjective like the word 'Sir' which is commonly added in English culture. It is derived from the Sanskrit root Ri-to go in the sense of rambling or wandering, so often it was taken to refer a group of people who were fond of wandering. So consequently, in Indian a racial concept of an Āryān invasion became handly for modern historians. The religious Hindu scriptures or Sanskrit texts provided plenty of evidence for its decision. As a result it can be decided that in ancient Hindu scriptures it is used neither in the sense of invaders nor in the sense of groups of fair complexioned persons, who came to India from far away lands of South Russia or Central Asia. It denotes only who were the original habitants of Āryāvarta or Bhārat are Āryas.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Section - 9

ARCHEOLOGY

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Section - 9

ARCHAEOLOGY

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ARCH-1

प्राकृत भाषा और शिलालेख

सौ.व्ही. बी. भगरे, मुम्बई

प्राचीन भारत में अनेक भाषाएँ बोली जाने के बावजूद संस्कृत भाषा विकसित नागरी भाषा के रूप में पहचानी जाती थी, तो अन्य प्रतीक भाषांओं को पालि प्राकृत भाषा के नाम से संबोधित किया जाता था। भगवान् महावीर और भगवान् बुद्ध के द्वारा अपना उपदेश सामान्य जनों के बोलियों में करने के कारण प्राकृत भाषा के विकास को चलान मिली। इसलिए देहातों में बोली जानेवाली प्राकृत भाषा राजदरबार में पहुँच गई। इतना ही नहीं वह तो अशोक के शिलालेख की भाषा कहकर सम्मानित हुई। इ.स. पूर्व 2 शती में लिखे गये। अशोक के 30 शिलालेखों में से 14-15 शिलालेखों में प्राकृत और प्रांतिक भाषाओं का प्रयोग पाया जाता है। इसलिए इ.स. पूर्व 2-3 शती के शिलालेखों में प्राकृत भाषा का विशेष स्थान दिखायी देता है।

शिलालेखों के निर्माता सम्राट् अशोक ने (70-80%) भारत पर सत्ता स्थापित की थी। कलिंग राजा के साथ जो लड़ाई हुई, उसमें अशोक विजयी हुआ था। फिर भी अशोक ने यह विजयोत्सव नहीं मनाया। इस युद्ध का अशोक पर इतना परिणाम हुआ कि उन्होंने जनों की भाषा पालि-प्राकृत पत्थरों पर लिखी। कई स्थानों पर पालि-प्राकृत में तो कई स्थानों पर वहाँ की बोली भाषा में तथा प्राकृत भाषा का प्रयोग दिखाई देता है। लेकिन मौर्य कुल के अन्त के बाद पुष्यमित्र ने संस्कृत में शिलालेख लिखवाया। पुलकेशी, वाकाटकों के दक्षिण के शिलालेख संस्कृत में हैं।

❖

ARCH-2

आसाम के अभिलेखों में वर्णित आर्थिक स्थिति

डॉ. (कु.) रञ्जना सिनहा, उन्नाव

प्राचीन अभिलेख इतिहास ज्ञान में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं। इन्हीं आभिलेखिक साक्ष्यों के माध्यम से असम के आर्थिक जीवन की जानकारी प्राप्त होती है।

अभिलेखों में तत्कालीन राजाओं की वंश-परम्परा के साथ-साथ राजा द्वारा दान में दिये गये भूखण्ड का विवरण मिलता है। दान में दी गयी भूमि कर-मुक्त होती थी, अतः भूमिकर की प्रथा असम में पाँचवी शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी तक प्रचलित थी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गाँव के लिए अनेक नाम हैं, जिनके अन्त में आटी (हालाधिआटि), कुचि (सुवालकुचि), गढ (डिब्रूगढ़), गरा (रंग गागरा), जुलि (ढेकियाजुलि), पाट (दक्षिण पाट), पारा (ध्रगापारा), बर (कालियाबर), बारी (नलबारी), मरा (सियालमरा), मुख (द्वापरमुख), हाट (जोरहाट), हाटी (गुवाहाटी) शब्दों का प्रयोग हुआ है।

शुभकर पाटक दानपत्र में पाटक गाँव के बुनकरों का उल्लेख है। वस्त्रों का व्यापार भी रहा होगा, "चतुर्विंशतितन्त्रगणामभूसीम्नि' और 'ओराङ्गीतन्त्राणामभूसीम्नि' से इस तथ्य की पुष्टि होती है। राजाओं द्वारा व्यवसाय हेतु दिये जाने वाले गाँवों को 'अग्रहार' कहते थे। गाँव प्रायः नदियों के किनारे बसते थे। दानपत्रों में ब्रह्मपुत्र, निधनपुर दानपत्र में कौशिकी, वनमाल दानपत्र में त्रिसोवा, इन्द्रपाल के गुवाहाटी ताम्रपात्र में दिगभी और पुष्पभद्रा दानपत्र में जौगतल नदियों का उल्लेख है। कृषि योग्य भूमि के चारों ओर वृक्षों हेतु खाली भूमि छोड़ दी जाती थी। गाँव की सीमा से लगा चारागाह भूखण्ड 'गोप्रचार' कहलाता था। इन्द्रपाल के बरगाँव दानपत्र से नगर दुर्जया की सीमाओं का तथा बलवर्मन् के दानपत्र की श्लोक संख्या चौदह में राजधानी दुर्ज्जया प्रासादों का विवरण है। पुरों, कस्बों, नगरों का आर्थिक जीवन समृद्ध था, अतः उनका व्यापारिक महत्त्व भी रहा होगा।

❖

ARCH-3

वीरभूम की मृण्मय मन्दिर कला

डॉ. रागिनी राय, वीरभूम, पश्चिम बंगाल

भारतीय कला में मृण्मय मन्दिर एवं मूर्तियों का गुरुत्वपूर्ण विशेष स्थान है। भारतीय मृण्मय मूर्तियों की कला चार सहस्र वर्ष से अधिक प्राचीन सिद्ध होती है, इसकी सामग्री अधिक मात्रा में है और प्राचीन भी है, साथ ही मूर्तियों में ढाले गये विषय भी विविध प्रकार के हैं। सिन्धुघाटी सभ्यता (ल.2500 ई.पू.—1880 ई.पू.) से लेकर अद्यावधि पार्थिव मूर्तियों का प्रचलन रहा है। महाभारत और उत्तरकालीन समय के साहित्य में मृण्मय मूर्तियों का उल्लेख प्राप्त होते हैं। गुप्त कालीन कुछ बड़े मन्दिर मिलते हैं, जो मृण्मय ईटों, फलकों से अलंकृत है। उदाहरणस्वरूप भीतर गाँव का मृण्मय मन्दिर, अहिच्छत्रा का शिव-मन्दिर आदि, सोलहवीं-सतरहवीं और अठारहवीं शदी में अलंकृत ईटों के कितने ही मन्दिर पश्चिम बङ्गाल में बने, जिनमें पकाई हुई मिट्टी के फलक और मूर्तियाँ लगी हैं। उस समय मृण्मय कला ने बङ्गाल की भूमि में गहराई तक अपनी जड़ें जमा ली थीं। वैष्णव भक्ति आन्दोलन के नेता श्रीकृष्ण चैतन्य ने बङ्गाल के वैष्णव धर्म को जो नयी चेतना प्रदान की, उसका साक्षात् फल काष्ठ-शिल्प, चित्रकर्म और मृण्मय शिल्प में अभिव्यक्त हुआ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पश्चिम बंगाल में वीरभूमि एक जिला है, यह भूमि अनेक महान् कलाकारों एवं साहित्यकारों की जन्मस्थली रही है। राजनैतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों के निरन्तर बदलते रहने पर भी बङ्गाल में मृण्मय कला का विस्तार व विकास सदैव होता रहा, वहाँ पर अनेक मन्दिरों का निर्माण हुआ। जिसमें वैष्णववाद की प्रधानता है। इन शैलियों में विभिन्न शैलियों का समावेश किया गया है—जैसे वक्रीय रेखाड़पुल एक बंगला, जोड़ बंगला, चारचाल एवं आठचाल शैली, रत्ना शैली, समतल छत्तीय मन्दिर, अष्टकोणीय मन्दिर, ढोलमञ्च एवं रासमञ्च शैली, मीनार एवं गुम्बज शैली आदि। इन्हीं विभिन्न शैलियों पर आधारित अनेक मन्दिर वीरभूम को गौरवान्वित कर रहे हैं। वहाँ के प्रमुख मन्दिरों में से गोपाल, लक्ष्मी-नारायण मन्दिर, जोड़ शिव मन्दिर, जयदेव मन्दिर, गौराङ्ग महाप्रभु मन्दिर, लक्ष्मी जनार्दन मन्दिर, वकुल ताला शिव मन्दिर आदि ये सभी साधारण आकार के कुछ मन्दिर भव्य रूप में निर्मित हुए हैं। इन मृण्मन्दिरों में गहराई एवं उभार को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई, साथ ही प्रमुख द्वार को ही सार्वधिक महत्त्व दिया गया है। रामायण, महाभारत, दशावतार तथा पौराणिक कथाओं के अतिरिक्त तात्कालिक सामाजिक विषयों को भी अपनी पूरी निष्ठा के साथ दर्शाया गया है।

❖

ARCH-4

अति तमे वडनगर : एक विहंगावलोकन

श्री दुष्यन्त किशोर कान्त शुकल, भावनगर

उत्तर गुजरात के महेसाना जिले में आया हुआ वडनगर आनर्तपुर, आनन्दपुर क्षेत्र चमत्कारपुर, मदनपुर, नगर, वृध्धपुरम्, वृध्ध-नगर, पण्डूनगर, वडनगर, चार युग पुराना इतिहास सम्हालकर बैठा है। विद्या व्यासंरोक ब्राह्मणों की तपोभूमि संगीत, नृत्य कला का उद्‌गम स्थान और ऐतिहासिक एवं शिल्प स्थापत्य के अनेक अवशेषों को सम्हालकर रखा हुआ प्राचीन नगर है। वडनगर की स्थापना कब हुई, इस विषय में कोई निश्चित प्रमाण, समय मिलते नहीं। परन्तु सौरष्ट्र कच्छ, गुजरात में नागर ब्राह्मण जाति में विवाह समय में पढ़ा था जातासाक्षीपत्र देखने को मिलता, 404 चरिसे चलोत्राम में आनन्द पुर का उल्लेख देखने को मिलता है। इतना ही नहीं, लेकिन विक्रम संवत् 1208 में गुजरात के कुमारधाल प्रशस्ति शिलालेख में वि. संवत् 1208 अश्विन सुकल द्वितीय का निर्देश देखने को मिलता है। यह शिलालेख वडनगर में अर्जुनबारो, दरबारो पर आज भी दिखने को मिलता है। मोरान शहनशाह अकबर के नवरत्न पैफी सम्राट् तानसेन और उनके दिपकराग के दीपक मेघमल्हार राग गाकर शीतलता प्रदान करके नूतन जीवन अर्पित देने वाली नागर कन्याएँ तानवालाशिर के नाम के साथ संलग्न वडनगर एक ऐतिहासिक नगर होने के नाते इस नगर में सुरक्षित खंडित अवशेषों और प्राचीन शिलालेख का आधार साबित कर सकते हैं।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ARCH-5

मिथिला के उपेक्षित पुरातात्त्विक स्थल के अन्तर्गत सुदै गाँव का पुरातात्त्विक विश्लेषण

सुश्री सरस्वती कुमारी, दरभङ्गा

वैदिक युग से आज तक मिथिला में पुरातात्त्विक दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण स्थल रहा है। हिमालय के दक्षिण एवं समतल भू-भाग पुरातात्त्विक अवशेषों से भरा-पूरा है। भारत सरकार के प्रयास से कुछ जगहों की खुदाई हुई है। परन्तु बहुत सारे ऐसे गाँव हैं, जहाँ पुरातात्त्विक वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। परन्तु जानकारी के अभाव में उसका उचित विश्लेषण नहीं हो पा रहा है।

सुदै गाँव जो वर्तमान में मधुबनी जिला के दरभङ्गा-निर्मली रेलवे के अन्तर्गत चिकना स्टेशन से लगभग पाँच किलोमीटर उत्तर-पश्चिम की दिशा में स्थित है। इसी गाँव के पश्चिम में परसा नाम का टीला है, जो प्राचीन में सुदै का ही एक भाग था। वहाँ एक भव्य कला पत्थर से निर्मित सूर्य की मूर्ति प्राप्त हुई है। इस गाँव के उत्तर दिशा में लगभग दो सौ एकड़ टीलानुमा जमीन है, जहाँ अब लगभग सम्पूर्ण भाग में आम का बगान लग चुका है। वहाँ समय-समय पर पकी हुई मूर्तियाँ मिलती रही हैं। इस गाँव के उत्तर-पश्चिम में एक शिवमन्दिर भी है, जिनके गर्भगृह के बाहर कोने पर एक काला शिलापट्ट पर कुछ लिखावट है, जो सामान्य लोगों के द्वारा नहीं पढ़ा जा सका है।

❖

ARCH-6

हर्ष के कुरुक्षेत्र ताम्रपत्रलेख की संशोधित तिथि : संवत् 53 (659 ई.)

डॉ. ओम प्रकाश लाल श्रीवास्तव, इलाहाबाद

पुष्यभूति सम्राट् हर्ष का यह ताम्रपत्रलेख 1999 ई. में हरियाणा में कुरुक्षेत्र के निकट प्राप्त हुआ था। वाराणसी स्थित 'ज्ञान-प्रवाह' में सुरक्षित इसकी तिथि को प्रो. आर.सी. शर्मा आदि नें संवत् 23 (629 ई.) पढ़ा है। इस पाठ में उन्होंने संवत् शब्द के स्थान पर मात्र 'संव' ही पढ़ा है। इसके बाद के 'त' अक्षर को '20' मान लिया है, जो 'त' का अलंकृत रूप है। संवत् के पाठ में 'त' को 20 मानकर उसके बाद कोष्ठक ( ) का चिह्न लगाकर तदनन्तर 3 पढ़ा है [संव 20 ( ) 3]। कोष्ठक लगाने से ऐसा प्रतीत होता है कि वे कोष्ठ में भी किसी संख्या की कल्पना कर रहे हैं। इस प्रकार 20 और 3 के बीच में भी कोई संख्या होनी चाहिए; किन्तु अंग्रेजी अनुवाद करते समय उन्होंने 20

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बाद 3 लिखकर उसके आगे कोष्ठक में प्रश्नवाचक चिह्न लाग दिया है और इसे ईसवी सन् में परिवर्तित करके 629 ई. माना है और वहाँ पर भी प्रश्नवाचक चिह्न अंकित किया है [year 20. 3 (?) (AD. 629 ?)। इससे लगता है कि वे अपने पाठ के प्रति आश्वस्त नहीं हैं।

हर्ष के इस कुरुक्षेत्र ताम्रपत्रलेख में बाँसखेड़ा और मधुबन ताम्रपत्रलेखों की तरह अङ्क-लेखन की प्राचीन परम्परा (क्रमशः 22 के लिए बीस और दो तथा 25 के लिए बीस और पाँच के चिह्नों की भाँति 53 के लिए पचास और तीन) का प्रयोग न करके स्थानमान सिद्धान्त के अनुसार 5 और 3 के चिह्नों का प्रयोग किया गया है। 53 पाठ हो जाने पर किसी कोष्ठक अथवा प्रश्नवाचक चिह्न की आवश्यकता नहीं पड़ती और संवत् भी केवल 'संव' न होकर पूरा शब्द 'संवत्' हो जाता है तथा कोई भी चिह्न बिना पढ़ा हुआ शेष नहीं रहता।

इस प्रकार संवत् 53 (659 ई.) का हर्ष का कुरुक्षेत्र ताम्रपत्रलेख ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसके आधार पर हर्ष का शासन-काल 606 ई. से 659 ई. तक निर्विवाद रूप से प्रमाणित होता है और उसके बाद भी कुछ समय तक उनके शासन की कल्पना की जा सकती है।

❖

ARCH-7

Rāma Janmabhūmi Issue : Literature & Archeology

PROF. C.V. MEHTA, GUJARAT

The Rām Janmabhūmi has reached critical dimensions. The issue, at the moment, is in Supreme Court. The present paper intends to bring forward the opinions of eminent scholars of Archeology search about the issue but I shall try to evaluate the situation analytically. Several books have been written about this ongoing controversy. You may find the facts briefly in this paper. I shall concentrate myself on 'Ayodhyā', the Archaeology after the demolition. The slab on which the verses inscribed in Sanskrit about the construction of Vishnu Hari Temple by the king Naya Chandra and Āyush Chandra [1114-1154], is found from the foundation of Debris on 6th Dec. 1992.

❖

ARCH-8

SAPTAMĀTRIKĀS

NEETA MALIK, MUMBAI

The worship of the female spirit, in some form or another can be traced to ancient times, viz : The mother goddess cult in the Indus Valley Culture and the Divine Energy in Rig-Vedic age.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

With the flourishing of the Bhakti Movement, the development of Purānic Literature, the increase in Image worship and temple constructions and the evolution of iconographic details of different form took place. In different parts of India, the images of the Mātrikās, arose in different forms.

The large number of Goddesses, which loom large on the later Vedic, Epic and Purānika horizons are the progeny of the non Āryān Female deities first witnessed on the Pre-Vedic Indus Seals. Since then the adoration of Sakti (Supreme Energy) conceived Anthroporphically, as the female deity became continuously popular. Belief in the several forms of Parvati, Saraswati and other Goddesses are attributable only to the influence of this tradition. In the resurgence of these Mother-Goddesses, in the Epic Paurānika religion as the Mātrikās, the various aspects of the fundamental feminine divinity assume new dimensions.

In this short paper, I propose to throw some light on the Saptamātrikās or the Seven Mothers, the worship or the cult of which played an important role in the history of the religious beliefs and practices of India.

❖

ARCH-9

Finding of Bhagvānlāl Indraji Bhatt at Sopara

DR. RENUKA PORWAL

In ancient India there were two main traditions-1. Vedic tradition 2. Sramana tradition. Hinduism belongs to vedic tradition while Buddhism and Jainism belong to Sraman tradition. Sraman tradition developed in Magadha kingdom and from there it spread everywhere. Sopara, Junnar, Nasik Nanaghat etc. were powerful Buddhist centres in Mahārāshtra. Cities like Karla, Kanheri, Sopara, Junnar, Nasik, were in the route between Sanchi to Sri Lanka. Stupas were built on the relics of holy persons after their death. It's a very old tradition prevalent in Buddhism and Jainism.

His Life : Bhagvānlāl was one of the prominent archaelogists born in early 19th century in the year 1839 A.D. at Junāgad Girnar. He carried out series of research work in India and abroad within only 49 years. He came to Bombay at the age of 22 as political agent of Kathiyāvād and resided with archaeologist Dr. Bhau Daji. Bhagavānlāl discovered many new sights.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ARCH-10

An Archaeological and Cultural Survey of Amreli - A town of Western India.

KĀLINDI PARIKH, AMRELI

Amreli, a District town of Saurashtra in Gujarat State is a place of considerable archaeological, historical and cultural importance. In 1934 A.D. the Archaeological Department of the then Baroda state started excavation of a mound on the banks of two rivers of Amreli. The excavation unfolded a huge amount of relics, consisting coins, clay tablets, copper plates and fragments of pottery. A careful study of these relics suggested that ancient Amreli was connected with Buddha Vihārs during the period of Guhasen with Mauryān age, with Gadhai Kingdom and ultimately, with the Vallabhi under the reign of Dharsen kings. After the invasion of Arabs the town was inhabited by Muslims. In course of time, it was under the rule of Mahamad Begada, the Sultan of Junāgadh. Then it was a part of Barodā of Gāykwāds, under the patronage of British rule.

Some of the great poets, dramatists, writers and artists of Gujarāt have their roots in Amreli.

❖

ARCH-11

Vedic Sarasvatī : The Lost River of Proto Historic India and Its Identification

NALINĀKSH PANDYA

Now and for many ages past, the Gangā has been regarded as the most sacred river of India, but in proto historic period, when the Āryān culture was flourishing in northern and middle India, it was the river Sarasvatī that occupied the pride of place. In the Rigveda, the Yajurveda, the Mahābhārata and the Purānas, the Sarasvatī finds frequent mentions.

In the Rigveda the Sarasvatī is eulogistically described as a river larger than the Sindhu (i.e. the Indus) and as flowing from the mountains to the sea, both unspecified. It is in the Mahābhārata that the course of this river is described completely in Baladeva's *Sarasvatī Pratisrotayātrā.*

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Out of all these Sarasvatīs, only the Sarasvatī described in Baladeva's *Sarasvatī Pratisrotayātrā* is identifiable with the original Sarasvatī of the Vedic lore on the basis of its palaeo-geographical description, identification of the sacred places on its bank with modern places, and the archaeological finds. The remaining rivers of the same name are the later Sarasvatīs renamed to commemorate the lost protohistoric Sarasvati so sacred and dear to the early Indians.

❖

ARCH-12

Weapons Mentioned in the Allahabad Inscription

SHOMOSREE ROY CHOWDHERY, KOLKATA

From ancient times it is found that man has two instincts, i.e. self protection and self expansion. Firstly he fought against each other and later there was fight between clans.

It appears from 'Allahabad Inscription' that Samudragupta took part in hundreds of battles with skill and triumphant attitude. The king bore on his person numerous marks of wounds, from different weapons like Paraśu, Śara, Śaṅku, Śakti, Prāsa, Asi, Tomara, Bhindipāla, Nārāca, Vaitastika etc.

The probable identification of the said weapons will be furnished on submission of my Research Paper.

❖

ARCH-13

Archaeological Vestiges of Śrīpura : An Overview

DR. D.B. MISHRA, ORISSA

Śrīpura (20° 25" N. Lat, 82° 10'; E.long. MSL 262 m.), a small village in present Mahāsamund district of Chhatisgarh State on the eastern bank of the Mahānadi, is a site of a vast corpus of archaeological antiquities, assigned to from very early times, upto 8th century AD. The present paper intends to survey the salient features of the development of the monuments of architectural importance during (cir. AD 650-800) when Sripura was the capital of South Kośala under the rule of two illustrious rulling dynasties viz., the Amarāryakula or the Śarahapurīyas (Cir., 650 AD-700) and the Pāṇḍuvaṁśīs or Somavaṁśīs (Cir. 700 AD-800)

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ARCH-14

Rānīpur-Jhariāl : An Archaelogical Survey

SANTOSH KUMAR PRADHAN, ORISSA

Rānīpur-Jhariāl an archaeological site, located between two adjacent villages bearing the two names, is situated in a remote corner of western Orissa in Balangir district. It contains a huge amount of ruins of early medieval time on an outcrop of flat-rock which measures half a mile in length and a quarter of a mile in width. Presently there are about forty unicameral, votive temples, a pyramedical (Khakhar style) temple, a hypaethral open temple, and a bicameral temple and a brick temple. These monuments are in various stages of preservation.

J.D. Beglar, the British archaeologist, who visited the site in 1974-75 AD. has left a vivid description of the place. He has described that there were 120 temples in ancient times, of which 57 have survived and are in an extremely decaying condition during his visit, which has come down to 40 in our time. Those forty temples are seen in thick clusters in a small place and present a spectacular archaeological site.

❖

ARCH-15

Archaeological Study of the Sacred Places of Purānas

DR. YOGINI HIMANSHU VYĀS, GĀNDHINAGAR

The nuture of Hindu pilgrimage is capsuled in the Indian expression tīrtha-yātrā, which literally means 'undertaking journey of river fords' The practice of pilgrimage in Hindusim follows from some of the basic underpinnings of its philosophy. Four dominant ideas have persisted in Hindu thought concerning attitudes to life. These are dharma, artha, kāma and mokṣa. The Garuda Purāna gives two separate lists of Holy palces or tirthas. The Matsya Purāna indicates that the worship of the mother Goddess may have come into prominance during the medieval period of India.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Section - 10

INDIAN LINGUISTICS

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IL-1

शब्दशास्त्राधारेण भारतीयविदुषां प्राणिविज्ञानचेतना

(विशेषतः आरण्यानां प्राणिनां पक्षिणां क्षुद्रजन्तूनां च सन्दर्भे)

डॉ० राधामाधवदासः, भुवनेश्वरम्

प्राकृतिकपर्यावरणं जीवोद्भिज्जगद्व्याप्तं विमण्डितमनादिकालतः प्रत्यक्षं विराजते यस्येदमित्थन्तया निर्णयप्रक्रियानन्तकालपर्यन्तं प्रसरेत्। न केवलं वैज्ञानिका आधुनिककाले इदानीं च तद्विषयकं शोधकार्यं कुर्वन्तः सन्ति, भारतभूमौ पूर्वकालेऽपि विद्वद्भिः पर्यावरणोपादानरूपाणीवोद्भिदां विषयेऽनुसन्धानं कृतमायुर्वेदशास्त्रादि प्रणीतं च। तेषां गुणाचरणप्रवृत्तिनिरीक्षणपूर्वकं तत्तत्पर्यायवाचिनामान्यपि प्राचीनकोशग्रन्थे सङ्कलितानि सन्ति। संस्कृतशब्दा व्युत्पत्तिमूलाः प्रवृत्तिमूलाश्च। पुनर्व्युत्पत्तिप्रवृत्तितत्त्वानां ज्ञानं विशेषतया व्याकरणनिरुक्तशास्त्राधिकारविषयोऽस्ति। शब्दशास्त्रिणो न केवलं प्राणिनां पर्यायचिन्तनं कुर्वन्ति, तेषां गुणकर्माणि सम्यगनुध्याय लोकप्रचलित-समसामयिकधारणां च समीक्ष्य तेषां विषये तथ्यान्यपि प्रयच्छन्तो दृश्यन्ते।

प्रस्तुते प्रबन्धे त्रिमुनिव्याकरणे विशेषतोऽन्तिममुनेः पतञ्जलेर्महाभाष्ये समुपलब्धानामारण्यप्राणिनां पक्षिणां क्षुद्रजन्तूनां च सन्दर्भे सङ्गृहीततथ्यानां वैज्ञानिकतत्त्वाश्रयित्वं विमृश्यते।

❖

IL-2

शाब्दिकशब्दमीमांसा

डॉ. केदारनाथत्रिपाठी, वाराणसी

शब्द्यत आविष्क्रियते बोध्यतेऽर्थोऽनेनेति शब्दः। अत्र आचार्येण पाणिनिना अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपादिकम्, कृत्तद्धितसमासाश्चेति प्रातिपदिकसंज्ञार्थमुक्तम्। धातुप्रत्ययप्रत्ययान्ततदादिभिन्नं कृत्तद्धितान्ततदादि-समासश्चार्थवच्छब्दस्वरूपं प्रातिपदिकसंज्ञं स्यादिति तत्तात्पर्यम्।

अत्राचार्यो नागेशः 'एतत्संज्ञाफलभूतविभक्तीतरसमभिव्याहारानपेक्षया लोकेऽर्थविषयकबोधजनकत्वमिति' शब्दस्वरूपमुभयसूत्रसाधारणमुक्तवान्। लोकेऽर्थविषयकबोधजनकतावान् शब्द इति निष्कर्षः।

अपरं वचोऽशब्दसंज्ञायाम्, स्वं रूपं शब्दस्याशब्दसंज्ञा इति सूत्रे शब्दविषये शालातुरीय आचार्यः पाणिनिरुक्तवान्। शब्दस्य स्वं नाम स्वीयं किं स्यादर्थं विना। शब्दस्य स्वमात्मीयोऽर्थरूपं शब्दस्वरूपं च संज्ञि। अर्थविशिष्टः शब्दः संज्ञीति भावः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्यच्च पृषोदरादीनि यथोपदिष्टमित्यत्र यदोपदिष्टानां शब्दानां साधुत्वबोधात्, युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश् इत्यत्र शित्करणाच्च शब्दस्य नित्यत्वमङ्गीकृतवानाचार्यः। कात्यायनस्तु सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे इति वार्तिकोद्घोषद्वारा शब्दार्थसम्बन्धविषये स्वाभिप्रायं प्रकटितवान्।

दर्शननकेसरिणा हरिणा तु शब्दविषये वाक्यपदीय इत्थमुक्तम्—

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः॥

अथायमान्तरो ज्ञाता सूक्ष्मे वागात्मनि स्थितः।
व्यक्तये स्वस्य रूपस्य शब्दत्वेन विवर्तते॥

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते॥

महाभाष्ये तु निकषभूतेनोत्तरमुनिनाऽचार्येण पतञ्जलिना अथ शब्दानुशासनमिति प्रतिज्ञावाक्येन विचारं कुर्वतोक्तं केषां शब्दानां यतो हि शब्दशब्दपदव्यदेश्यतानदीघोषादीनामपि लोके वर्ततेऽतोऽग्रे स्वयमुत्तरं दत्तं लौकिकानां वैदिकानां च।

तदग्रे विचारं कुर्वता पतञ्जलिना स्वयं लिखितम्, अथ गौरित्यत्र कः शब्द इति। द्रव्ये गुणे क्रियायामाकृतौ च शब्दस्य सन्देहः प्रस्तुतोऽन्तरं द्रव्यं नाम तत्, गुणो नाम सः, क्रिया नाम सा, आकृतिर्नाम सेति भिन्नेन्द्रियग्राह्यत्वादेतेषां समेषां शब्दत्वाशङ्का निराकृता। अग्रे येनोच्चारितेन सास्नालाङ्गूलककुदखुरविषाणिनां सम्प्रत्ययो भवति सः शब्दः अथवा प्रतीतपदार्थको लोके ध्वनिः शब्द इति प्रतिपादितम्। वस्तुतो ध्वनिः शब्दो नास्ति। ध्वनिः शब्द इति कथनं तु तादर्थ्यात्ताच्छब्द्यमिति बोध्यम्। अत्र प्रमाणं तु तपरस्तत्कालस्येति सूत्रस्य महाभाष्यं गृहाण—स्फोटः शब्दः, ध्वनिस्तु शब्दगुण इति। पातञ्जलराद्धान्तेन शब्दोऽपशब्दश्चेति शब्दस्य द्विविधो भेदो भवति। अर्थबोधकता तूभयत्र समाना दृश्यते। समानायामर्थावगतौ शब्दैश्चापशब्दैश्च शास्त्रेण धर्मनियमः क्रियते, एवं क्रियमाणम्युदयकारि भवति। शब्देनैवार्थोऽभिधेयः, नापशब्देन। अन्यच्च महाभाष्ये शब्दस्य नित्यत्वं प्रतिपादितम्। समासतो वैयाकरणानां मते शब्दविषयिणी मीमांसा प्रस्तुता। व्यासतस्तु सत्यवसरे विचारं प्रस्तोष्यामि।

IL-3

महाभाष्ये पठितश्लोकवार्तिकानां वर्गीकरणम्

डॉ० त्रिलोकझा, दरभंगा

कस्यापि वस्तुनः विषयस्य वा विशेषधर्ममाश्रित्य वर्गविशेषे स्थापनं वर्गीकरणं कथ्यते। वर्गीकरणे वस्तुनः विषयस्य वा यथार्थपरिज्ञाने सौलभ्यं भवतीति दृष्ट्या श्लोकवार्तिकानामपि वर्गीकरणं विविधग्रन्थसाहाय्येनात्र प्रस्तूयते—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'व्याकरण वार्तिक एक समीक्षात्मक अध्ययन' इति ग्रन्थे वेदपतिमिश्रेण श्लोकवार्तिकानां त्रयः वर्गाः प्रदर्शिताः। ते च एवं सन्ति—

1. भाष्यकारेण व्याख्यातम्। 2. भाष्यकारेण अव्याख्यातम्। 3. भाष्यकारेण अंशतो व्याख्यातम्। एषामुदाहरणनि, यथा—1. भाष्यकारेण व्याख्यातम्—'आद्गुणः' 6.1.89 इति सूत्रे महाभाष्ये। वार्तिकमिदं महाभाष्ये यथार्थं व्याख्यातम्।

व्याख्यातश्लोकवार्तिकस्यापि द्वौ वर्गौ कर्तुं शक्येते।

क. कात्यायनेन वार्तिकेन सम्बद्धं व्याख्यातं श्लोकवार्तिकम्।

ख. कात्यायनवार्तिकेनासम्बद्धं भाष्यकारेण व्याख्याप्रसङ्गे उद्धृतं व्याख्यातं श्लोककार्तिकम्।

2. भाष्यकारेणाव्याख्यातम्—अस्मिन् वर्गे तानि श्लोकवार्तिकानि आयान्ति, येषु भाष्यकारेण किमपि व्याख्यानं न कृतम्। इमानि वार्तिकानि भाष्यकारेण स्वकीयव्याख्याप्रसङ्गे केवलमुद्धरणरूपेण प्रदतानि। एषां श्लोकवार्तिकानामपि द्वौ वर्गो भवतः।

क. पूर्वकथितवार्तिकानां व्याख्यानात्मकं सारसंग्रहात्मकं वा श्लोकवार्तिकम्।

ख. स्वतन्त्रश्लोकवार्तिकम्।

भाष्यकारेण अंशतो व्याख्यातम्—अस्मिन् वर्गे तानि वार्तिकानि आयान्ति येषां कतिपये अंशाः व्याख्याता कतिपये च अव्याख्याता भवन्ति। तद्यथा—'छन्दासि निष्टर्क' 3.1.123 इति सूत्रे श्लोकवार्तिक पठितं विद्यते—

निष्टर्क्ये व्यत्ययं विद्यान्निसः षत्वं निपातनात्।
ण्यादायादेश इत्येतावुपचाय्ये निपातितौ॥

इति वार्तिके 'निष्टक्यं चिन्वीत पशु कामः, इत्येतादेव व्याख्यानं भाष्ये दृष्यते, न तु सम्पूर्णश्लोकस्य। श्लोकवार्तिकानां व्याख्याताव्याख्यातांशव्याख्यात इति वर्गत्रय सम्बन्धे प्रो. गोल्डस्टूकरमहोदयस्य Panini नामके ग्रन्थेऽपि विवेचनं विद्यते। डॉ. कमलाभारद्वाजनामिकया लेखिकया लिखिते 'पतञ्जलिकृतमहाभाष्य के श्लोकवार्तिक' इति ग्रन्थे महाभाष्ये पठितश्लोकवार्तिकानां त्रयोदशः वर्गाः प्रस्तुताः सन्ति।

विष्णुधर्मोत्तरपुराणस्य 'प्रयोजनं संशयनिर्णयौ च व्याख्याविशेषौ गुरुलाघवञ्च, कृतव्युदासोऽकृतशासनं च सवार्तिको धर्मगुणोऽष्टकश्च' इति वचनानुसारेण समान्यवार्तिकानामिव श्लोकवार्तिकानामपि निम्नलिखितरूपेण वर्गीकरणं कर्तुं शक्यते। यथा—

1. प्रयोजनात्मकं श्लोकवार्तिकम्। 2. संशयनिर्णयात्मकं श्लोकवार्तिकम्। 3. व्याख्याविशेषात्मकं श्लोकवार्तिकम्। 4. गौरवलाघवात्मकं श्लोकवार्तिकम्। 5. कृतव्युदासात्मकं श्लोकवार्तिकम्। 6. अकृत-शासनात्मकं श्लोकवार्तिकम्।

एवं हि श्लोकवार्तिकानामध्ययनं महाभाष्ये यथास्थानं पठितानुसारेण सह उपर्युक्तविविधवर्गानुसारेणापि कर्तुं शक्यते। प्रस्तोष्यमाणे शोधपत्रे सर्वेषां वर्गाणां विस्तृतं विवेचनं करिष्यते।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IL-4

शास्त्रीयाऽपपाठनिराकरणम् : जुमरव्याकरणम्

डॉ० देवराजपाणिग्रही

उपक्रमः—पाणिनिपरवर्त्तिकालिकस्य अस्य व्याकरणस्य रचयिता आचार्यक्रमदीश्वरः इति संक्षिप्तसारव्याकरणात् ज्ञायते। अस्य समयः प्रायशः द्वादशत्रयोदशशतकयोर्मध्यवर्त्तिकालिक इति। अस्य व्याकरणस्य आन्तस्रोतःपरिशिलनात् बोधः जायते। दैवदुर्योगाद् अन्यकस्मात् कारणात् वा संक्षिप्तसारव्याकरणस्य असम्पूर्णनिर्माणमासीत्। ततः परमस्य व्याकरणस्य अत्यन्तोपयोगि संस्करणं पुनरुद्धरणं च जुमरनन्दिना संविहितम्। अतोऽस्य नामकरणं 'संक्षिप्तसारम्' इत्यस्य स्थाने 'जुमरव्याकरणम्' संजातम्। अत्र व्याकरणस्य सामग्रिक-विषयाणां साङ्गोपाङ्गतया प्रर्शनं कृतमस्ति। स्थलविशेषे प्रक्रियाप्रदर्शनवेलायां शब्दानां साधुप्रयोगप्रदर्शनार्थं विभिन्नानां शास्त्राणामुद्धरणं यथारीत्या सम्प्रदर्शितम्। तत्र केचित्सु स्थलेषु पूर्वैः शास्त्रकारैः कथं तत्र तत्र शास्त्रे स्थाने स्थाने अपपाठाः प्रदर्शिताः तस्योपस्थापनं लघुप्रबन्धेऽस्मिन् सन्निवेशितम्।

❖

IL-5

प्रातिशाख्यस्य प्रयोजनानि

डॉ० कृष्णदत्तमिश्रः, वाराणसी

वेदानां सुरक्षार्थं प्राचीनाचार्यैः अनेकानेकग्रन्था विरचिताः। तन्निमित्तं शिक्षाकल्पव्याकरणच्छन्दो-निरुक्तज्योतिषां षण्णां वेदाङ्गानां रचना कृता। तदुद्देश्यपूर्त्यर्थमेव प्रातिशाख्यग्रन्थानामपि प्रणयनमभवत्। आचार्यकात्यायनेन स्वग्रन्थे वाजसनेयिप्रातिशाख्ये उद्घोषितं यद् वर्णदोषविवेकार्थं प्रातिशाख्यमिदं विरचितम्। तात्पर्यमिदं यत् यावत् पदविशेषस्य साधुरूपस्य तत्प्रयुक्तवर्णानां शुद्धोच्चारणस्य च ज्ञानं न भवति तावत् तत्पदविशेषस्य शुद्धतायाः ज्ञानमपि न भवितुं शक्नोति। पदानां शुद्धरूपस्य शुद्धोच्चारणस्य ज्ञानानन्तरं तद्दोषपरिहारं कर्त्तुं शक्नोति। अतएव वर्णोच्चारणदोषाणां परिहारार्थं प्रातिशाख्यग्रन्थानामध्ययनमत्यावश्यकं विद्यते।

शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्यस्य प्रथमाध्यायस्य प्रथमसूत्रस्य भाष्ये प्रातिशाख्यस्य प्रयोजनं प्रतिपादितं यद् मन्त्राणां यथोचितपाठज्ञस्य जनस्यैव जपादौ अधिकारः विद्यते। अतएव मन्त्राणां शुद्धोच्चारणस्य ज्ञानार्थं प्रातिशाख्यस्याध्ययनमावश्यकम्।

तैत्तिरीये प्रातिशाख्ये अभिहितं वेदाध्येतृणां कृते गुरुता-लघुता-साम्य-ह्रस्वदीर्घप्लुत-विक्रमसंज्ञक-स्वरद्वित्त्व-उदात्तानुदात्तस्वरित-श्वास-नादाङ्गाङ्गिभावानां बोधः अनिवार्यः। वेदस्य शिक्षकाचार्याणां कृते पदपाठ-क्रमपाठ-संहितापाठ-उदात्तादिस्वर-ह्रस्वादि-मन्त्राणां ज्ञानमावश्यकम्।

एवं प्रतीयते यत् शिक्षाछन्दोव्याकरणेषु सामान्यतः वेदानां सम्पूर्णशाखानां संहितांविषयकं विधानं विद्यते परञ्च प्रातिशाख्येषु शिक्षादिविहितान् नियमान् शाखाविशेषस्य संहितांविषये सीमितान् कृत्वा तेषां विधानं कृतम्। एवं स्पष्टं यत् प्रातिशाख्यग्रन्थानां प्रणयनं शाखाविशेषस्य संहितायाः शुद्धमन्त्रोच्चारणमधिकृत्य कृतम्।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IL-6

पाणिनीयव्याकरणेऽनुवृत्तिनिवृत्त्योर्ज्ञानोपायाः

डॉ० सुरेश्वरझा, दरभंगा

'अष्टाध्यायी' इति नाम्ना प्रसिद्धं पाणिनीयव्याकरणं सूत्रात्मकं विद्यते। सूत्राण्यल्पाक्षराणि भवन्ति। तत्र सारभूतानामर्थानां सङ्केतमात्रं भवति। तेषां वाक्यत्वसम्पादनाय, ततोऽर्थबोधनाय च पदानामध्याहार आवश्यको भवति। अध्याहारो द्विविधो भवति—1. सूत्रान्तरात् पदानामध्याहारः। 2. क्रियावाचकपदानामध्याहारश्च।

सूत्राणां वाक्यत्वसम्पादनाय, ततोऽर्थबोधनाय च सूत्रान्तरात् पदानामानयनं पाणिनीयव्याकरणे अधिकारः, अनुवृत्तिः, अपकर्षो वा कथ्यते। यत् सूत्रं स्वतन्त्ररूपेणाविधायकं सत् स्वाधिकारस्थितसूत्रेषु उपस्थितं भवति तत्सूत्रस्य तत्राधिकार इति कथ्यते। विध्यादिसूत्रघटकपदानामुत्तरत्रोपस्थितिरनुवृत्तिरिति कथ्यते। अनुवृत्तिर्द्विविधा भवति—1. धाराप्रवाहन्यायेन। 2. मण्डूकप्लुतिन्यायेन च।

शोधपत्रेऽस्मिन् पाणिनीयव्याकरणस्य पद्धतिं समीक्ष्य अनुवृत्तिनिवृत्त्योर्ज्ञानस्य उपायाः प्रदर्शिताः सन्ति।

❖

IL-7

सम्बन्धस्वरूपविषये वंश्या वैशिष्ट्यम्

डॉ० मधुसूदनपाण्डेयः, औरंगाबाद

पण्डितश्रीवंशीधरमिश्रप्रणीता वंशी परमलघुमञ्जूषाया टीका वर्त्तते। अस्यां व्याकरणशास्त्रीयानि रहस्याणि महाभाष्यादिप्रमाणैः समुद्घाटितानि सन्ति, यानि टीकान्तरेषु दुर्लभानि। अस्मिन् शोधपत्रे 'सम्बन्धो हि सम्बन्धिद्वयभिन्नत्वे सति' इत्यादि सम्बन्धलक्षणमाश्रित्य टीकाया वैशिष्ट्यं प्रदर्शयितुं मे लघीयान् प्रयासः। शोधपत्रस्थायं सारभागः—

1. सम्बन्धलक्षणे 'आश्रयतया' इति पदस्य 'द्विष्ठत्वे' इति पूर्वपदेनान्वयः।
2. सम्बन्धः सम्बन्धिभ्यां भिन्नो भवति।
3. अयमाश्रयतानियामकेन सम्बन्धिद्वये तिष्ठति।
4. अनेन विशेष्यविशेषणतत्सम्बन्धत्रितयावगाहिनी विशिष्टबुद्धिर्जन्यते।
5. अयं कस्यापि पदस्य शक्यो न भवति।
6. अयं क्रियया जन्यते।
7. सम्बन्धः सर्वत्र सांसर्गिकविषयतया भासते।
8. आश्रयतया नियामकेन द्विष्ठत्वाभावात् 'इमौ घटौ संयुक्तौ' इत्यत्र संयुक्तपदेन प्रकारतया भानाच्च वैयाकरणमते संयोगो न सम्बन्धः।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IL-8

समासादिवृत्त्यर्थविषये वंश्या वैशिष्ट्यम्

आचार्यबच्चनमिश्रः, गया

नागेशभट्टप्रणीतपरमलघुमञ्जूषाया बहवष्टीकाकाराऽभूवन्, परन्तु बिहारप्रान्तीयस्वर्गीयपण्डितवंशीधर-मिश्रस्य परमलघुमञ्जूषोपरि यादृशी टीका अस्ति तादृशी अन्यस्य टीका न। व्याकरण-साहित्य-नव्यन्याय-वेदान्तादिशास्त्रपाण्डित्योपार्जितयशश्चन्द्रेण प्रणीतानेकग्रन्थेन श्रीमता वंशीधरमिश्रेण प्रणीता परमलघुमञ्जूषाया वंशीटीका सर्वासु टीकासु मूर्द्धन्या, मूलार्थविद्योतननिपुणा, ससाराप्रामाणिकी च विद्यत इति मन्ये। अस्यां वंशीव्याख्यायां यद्यपि विविधानि वैशिष्ट्यानि सन्ति तथापि समासादिवृत्त्यर्थविषये यदस्या वैशिष्ट्यं तत्प्रदर्शयितुं शोध-प्रबन्धेऽस्मिन् मे लघीयान् प्रयासः।

शोधपत्रस्यायं सारभागः—

1. समासादिवृत्यर्थनिरूपणप्रसङ्गे आदिनाशब्देन कृत्तद्धितैकशेषसनाद्यन्तधातुसञ्ज्ञकानां परामर्शः।
2. 'समर्थः पदविधि'रितिसूत्रे भाष्ये 'अथ तेषामेवं ब्रूवतां किं जहत्स्वार्था वृत्तिर्भवति आहोस्विदजहत्स्वार्था? किं चातः? यदि जहत्स्वार्थावृत्तिः 'राजुपरुषमानय इत्युक्ते पुरुषमात्रस्यायनं प्राप्नोति' 'औपगवमानय इत्युक्ते अपत्यमात्रस्य'।
3. 'समर्थःपदविधि'रितिसूत्रेण एकार्थीभावात्मकसामर्थ्यस्य विशिष्ट एव बोधनादिति भावः।
4. एकशेषे रामावित्यादौ व्यपदेशिवद्भावेन स्वपर्य्याप्त्यधिकरणघटितत्वं स्वनिरूपकेतरव्यक्ति-निरूपितशक्तिपर्य्याप्त्यधिकरणघटितत्वं बोध्यम्।

एवं वंशीव्याख्या महाभाष्यादिप्रमाणैः समासादिवृत्त्यर्थविषयं सुस्पष्टतया पाठकबुद्धौ सन्निवेशयति। समासादिवृत्यर्थविषय एतदस्या वैशिष्ट्यम्। एवमनेकानि वैशिष्ट्यानि द्रष्टुं शक्यन्त इति।

❖

IL-9

पाणिनिपूर्वकारकविभक्तेः स्वरूपम्

डॉ० लालाशङ्करगयावालः, भरतपुर (राजस्थान)

वेदोत्तरवाङ्मयेषु वेदार्थसहायकरूपेण वेदाङ्गग्रन्थानां वर्णनं विभिन्नेषु ग्रन्थेषु प्राप्यते। वेदाङ्गानां षडङ्गरूपेण निर्देशः प्राचीनग्रन्थेषु मण्डितः। मुण्डकोपनिषदि अपराविद्यायां वेदोत्तरषडङ्गवेदानां परिगणनं मिलति—तत्रापरा ऋग्वेदो, यजुर्वेदः, सामवेदो, अथर्ववेदः, शिक्षा, कल्पो, व्याकरणं निरुक्तं, छन्दो, ज्योतिषमिति।

वेदाङ्गेषु व्याकरणस्य परमविशिष्टं स्थानमस्ति। वेदपुरुषस्य मुखमित्यभिधीयते—'मुखं व्याकरणं स्मृतम्'। महाभाष्यकारेण पतञ्जलिनापि महाभाष्ये वेदाङ्गाध्ययनं समर्पितम्—'ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्चेति।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याकरणशब्दस्य सर्वप्रथमोल्लेखः यजुर्वेदे प्राप्यते—'दृष्ट्वारूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः' अनन्तरं रामायणे, महाभारते, गोपथब्राह्मणे, मुण्डकोपनिषदि च व्याकरणशब्दप्रयोगः मिलति।

शब्दप्रक्रियायां व्याकरणशास्त्रे कारकविभक्त्योर्महत्त्वं वाक्यशास्त्रे विशिष्टमस्ति। सर्वप्रथमम् ऋग्वेदे कारकाभिव्यक्तये विभक्तीनां व्यवस्थितं रूपं वैदिककाले एतयोः सुदृढाधारं वर्णयति। यद्यपि ऋग्वेदे कारकविषयकं चिन्तनं न मिलति किन्तु विभक्तीनां सुव्यवस्थितः प्रयोगः अस्मानेतत् चिन्तयितुं निरोधयति यत् तत्त्ववेतृणाम् ऋषीणां मस्तिष्के कारकविभक्तिविचारः अतिविकसितः प्रौढश्चासीत्।

ऋग्वेदस्य प्रथममण्डलस्य प्रथमसूक्तात् वयं जानीमः कारकविभक्तेः विस्तृतं रूपम्। कारकविभक्तौ सर्वप्रथमोल्लेखः विभक्तीनां भवति तत्र गोपथब्राह्मणे उल्लेखः वर्तते—'ओंकारं पृच्छाम.....' इति।

मैत्रायणीसहितायामपि विभक्तिसंज्ञायाः उल्लेखः प्राप्यते—तस्मात् षडविभक्तय ऐतरेयब्राह्मणे विभक्तिरूपेण सप्तधा विभक्तीनां वर्णनं मिलति—'सप्तधा वै वागवदत्'। सप्तविभक्तय इति भट्टभास्करः। भाष्यकारेण पतञ्जलिनापि ऋग्वेदस्य—यस्य ते सप्तसिन्धवः इति मन्त्रे सप्तसिन्धवः = सप्तविभक्तय इत्युल्लेखः कृतः।

अथर्ववेदे एकत्र भाषायाः तत्त्वानामुल्लेखे वर्णनमस्ति—वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतस्पृशम् इन्द्रात् परिवन्वममे। अत्र वाण्याः अष्टपदात् प्रथमादयः सप्तविभक्तयः सम्बोधनश्चाष्टममभिप्रेतः।

❖

IL-10

स्फोटवादस्य दार्शनिकसमीक्षा

प० रामानुग्रहशर्मा, राँची (झारखण्ड)

दर्शनाचार्यभगवद्वेदव्यासरचितभागवतपुराणस्य दशमस्कन्धे 85 तमाऽध्याये 15 तमे श्लोके वसुदेवः कृष्णं स्तौति—

दिशां त्वमवकाशोऽसि दिशःखं स्फोट आश्रयः नादो वर्णस्त्वमोंकार आकृतीनां पृथक् कृतिः।। अत्र भगवान् कृष्णः स्फोटरूपेण वर्णितः।। भर्तृहरिणा स्वकीयव्याकरणदर्शनग्रन्थे वाक्यपदीये परब्रह्म स्फोटरूपेणैव प्रतिपादितम्—

'अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्त्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः'।।

शब्दस्य ब्रह्मरूपत्वं ब्रह्मण एवायं विवर्त्त—इति मुनित्रयेण कण्ठतो नोक्तं तथाप्ययं विषयो व्याडिना सुस्पष्टं प्रतिपादितो यथा—'शब्दार्थयोरसम्भेदे व्यवहारे पृथक् क्रिया।

यतः शब्दार्थयोस्तत्त्वमेकं तत् समवस्थितम्।। व्याडिसम्मतोऽयं वादः कथं त्रिमुन्यभिमतःस्यात्रोच्यते; महाभाष्यकारः पतञ्जलिरेव संग्रहग्रन्थस्य प्रामाण्यं प्राकाशयत् यथा—संग्रहे तावत् प्राधान्येन परीक्षितम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याकरणप्रयोजनव्याख्यानावसरे—'चत्वारि शृंगा' इत्यादि वाक्येन शब्दस्य महादेवत्ववर्णनद्वारा भाष्यकारोऽपि शब्दस्य ब्रह्मरूपत्वमङ्गीचकार; तथैव वाचश्च चतस्रोऽवस्था अपि तत्रैव भाष्यकारेण—'चत्वारि वाक् परिमिता पदानि' इत्याख्ये ऋङ्मन्त्रे 'गुहा त्रीणि निहिता नेंगयन्ति तुरीयं वाचो यन्मनुष्या वदन्ति' इत्युत्तरार्धेऽपि न्यासेनाङ्गीकृता एव। इति।

❖

IL-11

प्राचीननव्यव्याकरणयोः साम्यवैषम्यमीमांसा

प्रो. श्रीकान्तपाण्डेयः, वाराणस्याम्

निखिलस्यापि संस्कृतवाङ्मयस्य सिंहद्वारायितं निर्दुष्टं सुपुष्कलञ्च पाणिनीयव्याकरणशास्त्रमिति न तिरोहितम्प्रेक्षावताम्। यद्यपि महर्षिपाणिनेः सूत्राष्टाध्यायी प्राचीननव्यव्याकरणयोः मूलाधारभूता। अतः व्याकरणत्वेन साम्येऽपि अधःप्रस्तुतैः भेदककारणैरुभयोः परस्परं वैषम्यं वर्तते।

विशेषणं स्वभावत एकं विशेष्यमपरस्माद् विशेष्यात् पृथक् करोति। यथा प्राचीनेतिहासः, आधुनिकेतिहासः। किं वा प्राचीनन्यायः नव्यन्यायः इत्यादि। एवमेव प्राचीनव्याकरणं नव्यव्याकरणमित्येवं रूपेण द्वयमपि सर्वथा वैषम्यं भजते।

प्राचीनव्याकरणस्य तात्पर्यमस्ति—पाणिनेरष्टाध्यायी सूत्रक्रमेण प्रस्तुतं पतञ्जलेर्महाभाष्यम् जयादित्यवामनस्य काशिका जिनेन्द्रपादबुद्धेः न्यासः तथा सूत्रक्रमेणैव लिखिताः सन्धिविषयः नामिकः आख्यातिकः, ऋजुपाणिनीयम्, पाणिनिप्रबोधः इत्यादयो ग्रन्थाः। नव्यव्याकरणस्य तात्पर्यमस्ति—अष्टाध्यायीसूत्राणां व्युत्क्रमेण प्रस्तुताः प्रक्रियापरिष्कारप्रधानाः लघुसिद्धान्तकौमुदी, वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी, प्रौढमनोरमा, लघुशब्देन्दुशेखरः, व्युत्पत्तिवादादयोः ग्रन्थाः। प्राचीनव्याकरणे सम्पूर्णस्यापि व्याकरणमहाभाष्यस्यांध्ययनं सम्पद्यते, किन्तु नव्यव्याकरणे प्रथमाध्यायस्य प्रथमपादमात्रं नवाह्निकं शास्त्रिकक्षायाः प्रभृति आचार्यं यावन्निर्धारितं तत् च 1।32 (द्वात्रिंशत्तमभागमात्रम्) वर्तते। एवञ्च व्याकरणपरिभाषाव्याकरणदर्शनज्ञानदिशानिर्धारितग्रन्थानां साम्येऽपि मौलिकं वैषम्यं वर्तत एव।

प्राचीनव्याकरणस्य पाठ्यग्रन्थाः मुख्यतया विक्रमसंवत्सरात् त्रिसहस्रपूर्वकालादारभ्याष्टमशताब्दं यावन्निर्मिताः पश्चाद् भवा अपि ग्रन्था अष्टाध्यायीसूत्रक्रमानुरोधिन एव सन्ति। नव्यव्याकणस्य पाठ्यग्रन्थानां निर्माणं विक्रमस्य षोडशशताब्दात् प्रारब्धमिति ऐतिहासिकस्तरेणापि वैषम्यं दरीदृश्यते।

❖

IL-12

गीताद्वारा व्याकरणाध्ययनम्

डॉ. गोपबन्धुमिश्रः, वाराणसी

व्याकरणाध्ययनपुरःसरं गीतादिग्रन्थावगाहनं सहजतया अनुमोदितमस्ति। परन्तु गीतातुल्याः अतिप्रसिद्धग्रन्थाः केन प्रकारेण भाषाज्ञानं वर्धयितुं क्षमाः तद्विषये चिन्तनं न्यूनमेव प्रचलति।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गान्धीविवेकानन्दसाहित्यद्वारा सरल-आङ्ग्लभाषाप्रयोगक्षमतावृद्धिः इव प्रसिद्धगीताद्रिग्रन्थद्वारा संस्कृतभाषा-प्रयोगज्ञानसंवर्धनं कर्तुं शक्यते।

इत्येतादृशे श्लोके 'यतश्च निर्धारणे' इत्यनेन अष्टाध्यायीसूत्रेण साध्यमाना निर्धारणषष्ठी सहजतया द्रष्टुं शक्यते। एवमेव सन्धि-समास-कारक-कृत्तद्धितप्रत्ययादीनां गीतागतसहजप्रयोगद्वारा तत्तन्नियमाध्यवसायः तत्साध्यव्यापकप्रयोगक्षमता च केन प्रकारेण सरलतया साधयितुं शक्येते तद् अस्मिन् पत्रे विमृश्यते।

❖

IL-13

पाणिनीयव्याकरणे णत्वविधानम्

डॉ० सत्यप्रकाशदूबे, जोधपुरम्

णत्वविधानं व्याकरणशास्त्रीयपरम्परायां नान्तरीयकं कार्यम्। एतच्च णत्वं नकारस्थाने विधीयते। अस्य विधाने रकारषकारयोः निमित्तता भवति इति प्रतिपादितं भगवता पाणिनिना 'रषाभ्यां नोणः समानपदे' इति सूत्रं प्रणयता। इदं सूत्रं समानपदे एव विद्यमानयोः निमित्तनिमित्तिनोः सतोःणत्वं विधत्ते। यथा—यूष्णः पूष्णः इत्यादीनि। अत्र निमित्तनिमित्तिनोः एकपदस्थत्वं वर्तत एव। यत्र तु निमित्तनिमित्तिनोः वैयधिकरण्यं तत्र तु णत्वं नैव भवति। यथा—रामस्य नाम 'रामनाम' इति पदं पदद्वयघटितमस्ति। तत्र चैकस्मिन् पदे निमित्तं रकारः अपरस्मिन् पदे च निमित्ती नकारः इति निमित्तनिमित्तिनोः समानपदस्थत्वाभावात् णत्वं न भवति।

इदमत्र विचार्यते यत् रषाभ्यामिति सूत्रे निमित्तिपदेन कस्य ग्रहणं क्रियताम्। यदि निमित्तिपदेन नकारः गृह्यते तर्हि तत्तु न वरम्। न हि रकारसकाराभ्यां नकारः सम्पाद्यते, निमित्तमनपेक्ष्यैव तस्य सिद्धत्वात् अपि तु रषाभ्यां णकार एव क्रियते। एवञ्च निमित्तिपदेन णकार एव ग्रहणीयः। किन्त्वेवं स्वीकारे निमित्तनिमित्तिनोः रकारणकारयोः समानपदवृत्तित्वं नैव शक्यते वक्तुम्। यतो हिं नकारस्य णत्वे कृते एव णकारः सम्पद्यते न तु रकारणकारौ एकस्मिन् पदे पूर्वत एव वर्तेते येन निमित्तनिमित्तिनोः समानपदस्थत्वं स्यादिति प्रस्तोष्यमाणे शोधनिबन्धे सातिशयेन विचारयिष्यते।

❖

IL-14

प्रयोगशरणं व्याकरणम्

डॉ० कैलासचन्द्रदासः

मनुष्यः स्वान्तर्भावान् प्रकटीकर्तुं भाषासहकारं स्वीचकार। अतः कारणाद् व्याकरणं भाषाया अनन्तरमेवेति सर्वनिश्चयः। एवञ्च व्याकरणस्यानन्तर्ये सिद्धेऽपि एतस्य धर्मनियमत्वं प्रत्यपादि महाभाष्ये महर्षिपतञ्जलिना। एतत्सर्वमालोच्यैव प्रयोगशरणं व्याकरणमेवेति विद्वद्भिररीकृतं कर्तव्यमेव च, नान्या गतिः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्र महाभाष्यवचनमेव प्रमाणम्। तद्धि 'नहि लक्षणेन पदकारा अनुवर्तनीयाः पदकारैर्नाम लक्षणमनुकरणीयमिति'।

किञ्च 'भङ्क्तुं प्रभुर्व्याकरणस्य' इत्यादिश्लोके शशी इव मृगी इति न भवतीति हेतोः व्याकरणमत्र स्थले चन्द्रार्थबोधनेऽसामर्थ्यं व्यनक्तीत्याह श्रीहर्षः। एतेनादौ व्याकरणं तदनु लोकप्रयोगः इति न, अपि तु प्रयोगाणां प्राथम्यं व्याकरणस्यानन्तर्यमेवेति फलितम्। अस्तु! प्रयोगाणामादित्वेऽपि सन्ति केचन प्रयोगाः ये हि केनापि लौकिकेन (कविना) अप्रयुक्ताः, अनभिधानकोटौ सन्निवेशिताः आदित्यदर्शः, हिमवच्छ्रावः, वक्षमाणेत्यादयः। तेषां का गतिः, अत्र स्थितौ त्ववश्यं लोकदौर्बल्यमेवेति मन्तव्यम्, सकलप्रयोगराशेः कविकर्मसु प्रयोगाऽशक्यत्वात्। वस्तुतः विविच्यमाने प्रयोगविषयमधिकृत्य कथनन्तु जलताडनव्यापारं विना नान्यद्भवेत् यतोऽनन्ता वै शब्दाः। तद्धि स्पष्टयति पतञ्जलिः पस्पशायां 'बृहस्पतिरिन्द्राय दिव्यं वर्षसहस्रं प्रतिपदोक्तानां शब्दानां शब्दपारायणं प्रोवाच नान्तं जगाम' इति। एतस्माद्भाष्यवचनाज्ज्ञायते यदेतादृशाः बहवः प्रयोगाः भवेयुः येषां प्रयोगः कविभिर्न कृतः, ये हीदानीमनभिधानकोटौ सन्निवेशिताः। एतेषां प्रयोगः सम्प्रति कर्तुं शक्यो वा नवेति द्वन्द्वे कर्तुं शक्य एवात्र नास्ति शङ्कापङ्कावकाशः। अतोऽप्रयुक्तानां शब्दानामिदानीं प्रयोगे तु व्याकरणमेव शरणमिति सारः।

❖

IL-15

आचार्यपाणिनेः व्यक्तित्वं कृतित्वं च

श्रीसत्येन्द्रशास्त्री, ग्वालीयर

अर्थज्ञान-ऋषिज्ञानं भूयिष्ठमुपकारकं वर्तते। पाणिनिः एकः प्रकाशस्तम्भः शब्दचिकित्सकः शब्दसागरस्य अद्वितीयः वैयाकरण आसीत्। एकविंशतितमायां शताब्द्यां अष्टाध्यायीक्रमस्य पुनः उद्धारे बहुकालानन्तरं प्रथमः प्रयासः दण्डिविरजानन्दसरस्वतीनाम्। तस्य शिष्यादयानन्दसरस्वतीस्वामिनामेव कृपा वर्तते यद् वयं साम्प्रतम् अष्टाध्यायीपठनपाठनक्रमस्य विषये किञ्चिद् लिखितुं समर्थाः स्मः। वैदिकवाङ्मये व्याकरणसंसारे मुनित्रयं पाणिनिपतञ्जलिकात्यायनं नमस्कृत्य पाणिनेः व्यक्तित्वं कर्तृत्वं च प्रस्तौमि। लेखनीयमस्ति पाणिनिभूगोलेतिहासशब्दशास्त्रेषु तथा च लोकव्यवहारेषु महाविद्वांसः वैयाकरण आसन्। मानवमस्तिष्कस्य अतीवमहत्त्वपूर्णमाविष्कारणं तस्य अष्टाध्यायी पुस्तकं वर्तते। सूत्रकारस्य दृष्टिः सूक्ष्मेक्षिका वर्तते।

❖

IL-16

व्याकरणशास्त्रीय-शब्दनित्यत्वप्रतिपादनम्

श्री-अनिलचन्द्रनौटियालः, वाराणसी

सर्वोऽपि लौकिकवैदिकोभयव्यवहारः शब्दाधीनः सोऽपिशब्दमर्थमन्तरेण नैवोपयुज्यते यतो हि 'अर्थं बुद्ध्वा शब्दरचना' इति अभियुक्तोक्तेः। अतः शब्दः अर्थाधीनः अर्थश्च शक्य-लक्ष्य-व्यंगभेदेन त्रिधाभिन्नः केचन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तात्पर्ययार्थोपिकेषुचित्' इति रीत्या चतुर्धा अर्थानाम् भेदान् इच्छन्ति। तत्र व्याकरणं व्यङ्ग्यकोशादिसंकेतितं मुखमिवप्रधानत्वात् मुख्यः। शब्दस्य नित्यत्वानित्यत्वविषयेपि परस्परविरुद्धानि विभिन्नानि मतानि उपलभ्यन्ते, नैयायिका शब्दानाम् अनित्यत्वं वाञ्छन्ति तत् च वैशेषिका अपि अनुमोदन्ते।

परन्तु तद्विपरीतं खलु नित्यः शब्दः तस्याऽनित्यत्वे द्वयोर्गुरुशिष्ययोः, अध्ययनाध्यापने च या प्रवृत्तिः सा न स्यात्—'आचार्यस्य शब्दो यदन्ते वासिनामापद्यते तदेवाऽध्यापनम्' यदि नित्यः शब्दस्तदा विद्यमानस्य शिष्यस्य देशान्तरप्राप्तिरुत्पद्यते अनित्यत्वे नास्य देशान्तरप्राप्तिर्घटते। किञ्च अध्यापनं नाम शिष्येभ्यः शब्दस्य दानं स यदा स्थिरो भवेत् तदा तस्य दानं सम्भवेत्।

अतो वैयाकरणाः शब्दस्य नित्यत्वं स्वीकुर्वन्ति। भाष्यकृताऽपि नित्येषु, शब्देषु कुटस्थैरभिचालिभिर्वर्णैरूपजन विकाररहित्येन भवितव्यम् इत्युक्तम्।

❖

IL-17

सिद्धान्तकौमुद्यामधिकाराणामनवगतिः

सुश्री दीक्षितपुष्पा, बिलासपुरम्

अष्टाध्याय्यां सर्वं विज्ञानमधिकाराननुवृत्तीश्चाश्रित्य तिष्ठति। एकैकमधिकारसूत्रं कृत्वा आचार्यास्तत्सम्बन्धीनि सर्वाणि सूत्राणि तत्रैवोपन्यस्यन्ति। न तत्र किमपि रिष्यति। किन्तु प्रक्रियानुरोधादेते सर्वेऽधिकाराः सिद्धान्तकौमुद्यां स्वीयमधिकारत्वं विहाय तिष्ठन्ति। केनाप्युपायेन तेषामधिगतिर्न जायते। यथा संज्ञासन्धिप्रकरणेऽधीतवता केनचिदजन्तपुंल्लिङ्गप्रकरणे 'प्रत्ययः', आपञ्चमपरिसमाप्तेरधिकारोऽयमित्युक्ते न किमप्यधिगन्तुं शक्यते। चतुर्थपञ्चमावश्यायावाहत्य कृता 'यचि भम्' इत्यनेनं भसंज्ञा, अथ च 'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने' इत्यनेन कृता पदसंज्ञाजन्तपुंल्लिङ्गप्रकरणादारभ्यातद्धितप्रकरणं वरीवृत्यते, एतयोरवगतिरपि कृच्छ्रेण जायते।

कारकप्रकरणे 'कारके' इत्यधिकृत्य, 'अनभिहिते' इत्यधिकृत्य, 'कर्मप्रवचनीयाः' इत्यधिकृत्य, नानाधिकाराः समाविशन्ति; किन्तु नैकस्य स्वरूपं स्पष्टतयावगम्यते। 'तद्धिताः' इत्यधिकृत्य केवलं 'यूनस्ति'रित्युच्ते, अनन्तरं कारकप्रकरणं, समासप्रकरणानि, समासान्तप्रकरणं, समासाश्रयविधिश्च व्यवायीभूयायान्ति। अथ यदा तद्धितप्रकरणमारभ्यते, तत्र नास्ति तद्धिताधिकारः।

'समासान्ताः' इत्यधिकृत्य कृताः प्रत्ययाः यदा सर्वेषु समासेषु पृथक्कृत्य विभक्ता, तदा समासान्तप्रकरणस्य पृथक् कावश्यकता वर्तते? तत्रत्यान्युदाहरणान्यपि समासेषु तथैव विभज्यानि स्युः। प्राग्दीव्यतीयाधिकारस्तु 'तस्यापत्यम्' इत्यतः प्रागारभ्यते, अतः अपत्यार्थाः, शैषिकाः, चतुरर्थिकाश्च प्रत्यया अपि प्राग्दीव्यतीया एव; किन्तु कौमुद्यां अपत्यशैषिकचातुरर्थिकानि च प्रकरणान्युक्त्वानन्तरं प्राग्दीव्यतीयप्रकरणमुच्यते। अच्सन्धिविषयकाणि सर्वाणि सूत्राणि 'संहितायाम् 6.1.72' इत्यस्मिन्नधिकारे सन्ति, किन्त्वच्सन्धिप्रकरणं विहायैततत्सूत्रं हल्सन्ध्यन्त उपन्यस्यते, अत्र न किमपि विज्ञानम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हल्सन्धिविषयकाणि सूत्राणि तु 'तयोर्यावृति संहितायाम् 8.2.108' इत्यस्मिन्नधिकारे वर्तन्ते; किन्तु कौमुद्यामेतत्सूत्रं विनैव सर्वाणि हल्सन्धिविषयकाणि सूत्राण्युच्यन्ते, एतत् सूत्रन्तु वैदिकप्रकरणे वर्तते। वस्तुतस्तु सर्वं णत्वप्रकरणं, मूर्धन्यादेशप्रकरणं च संहिताकारे समाविशतः, तान्यपि सूत्राणि यत्र तत्र विकीर्णान्यधिकारस्य स्वरूपावबोधं कारयितुमक्षमाणि। 'आर्धधातुके' इत्यधिकृत्य केवलं 'अतो लोपः' इत्युच्यते। 'अङ्गस्य' इत्यधिकृत्य सूत्रत्रयम्।

इत्थञ्च यद्विज्ञानमाश्रित्याष्टाध्यायी विरचिता तस्य दर्शनमपि न भवति कौमुद्याम्। अत्र कारणमनुसन्धेयम्। कौमुदीकारा दीक्षितमहाभागा अष्टाध्यायी पुरतः संस्थाप्य तस्या व्याख्यानरूपेण सिद्धान्तकौमुदीं विरचयन्ति, किन्त्वष्टाध्याय्या अध्येतारः प्रक्रियामेव सर्वस्वं मन्यमाना अष्टाध्यायीमदृष्ट्वैव प्रक्रियां साधयन्ति। यदि तैरष्टाध्यायीं पुरतो निधाय प्रथमत एव सम्यगवधार्येयातामधिकाराणां सीमानौ, तदा कौमुद्यप्यष्टाध्यायीवत् क्रीडनकं स्यादिति।

❖

IL-18

तद्धितेष्वधिकारव्यवस्था

सुश्री मनीषा पाठक, रायपुरम्

तद्धितप्रत्ययानामधिकारावधेः निर्णयः प्रत्ययादारभ्यार्थं यावद् भवति। तत्र प्रत्ययोऽधिक्रियते, अर्थश्चावधित्वेनावसीयते। यथा—'प्राग्दीव्यतोऽण्' इत्यतः अण्प्रत्ययोऽधिक्रियते, 'तेन दीव्यति खनति जयति जितम्' इत्यर्थोऽवधित्वेनावसीयते। अतः 'प्राग्दीव्यतोऽण्' इत्यतः आरभ्य 'तेन दीव्यति खनति जयति जितम्' इत्यस्मादर्थात् प्राक् सन्ति ये चतुश्चत्वारिंशत्संख्याका अर्थास्तेष्वर्थेष्वण्प्रत्ययोऽधिकृतो वेदितव्यः, इति सूत्रार्थः। इदमेव तात्पर्यं चतुश्चत्वारिंशत्संख्याकेषु प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेण्प्रत्ययस्याधिकारस्य। एवमेव सर्वेष्वर्थेषु पञ्च प्रत्यया अधिकृताः सन्ति—

1. चतुश्चात्वारिंशत्संख्याकेषु प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेष्वण्प्रत्ययस्याधिकारोऽस्ति।
2. षट्त्रिंशत्संख्याकेषु प्राग्वहतीयेष्वर्थेषु ठक्प्रत्ययस्याधिकारोऽस्ति।
3. एकत्रिंशत्संख्याकेषु प्राग्घितीयेष्वर्थेषु यत्प्रत्ययस्याधिकारोऽस्ति।
4. प्राक्क्रीतीयेषु त्रिष्वर्थेषु छप्रत्ययस्याधिकारोऽस्ति।
5. सप्तविंशतिसंख्याकेषु प्राग्वतीयेष्वर्थेषु ठञ्प्रत्ययस्याधिकारोऽस्ति।

एतेऽर्था आहत्य एकचत्वारिंशदधिशतसंख्याकाः सन्ति। इतोऽधिका सन्ति येऽर्थास्तेष्वण्प्रत्ययस्याधिकारोऽस्तीति शेषाधिकारेण निर्णीयते। एकस्य प्रत्ययस्याधिकारेऽन्ये प्रत्यया अपवादत्वेनागच्छन्ति।

अनेन विभाजनेनाधिकाराणां स्वरूपनिर्धारणं कर्तुमशक्यम्। अतोऽष्टाध्यायीक्रमेणाधिकाराः सम्यग् ज्ञेयाः।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IL-19

भर्तृहरिमते स्फोटतत्त्वम्

डॉ. कामदेवः झाः, हरियाणा

स्फोटतत्त्वं शाब्दिकानां प्रतिपाद्येष्वेकतममिति। स्फोटरत्नमिदं शाब्दिकानां कदा हस्तगतं जातमिति न स्फुटं ज्ञायते। यद्यपि हरिवंशस्य (16.52) भविष्यपर्वण्यक्षराणामकारस्त्वं स्फोटत्वं वर्णसंश्रय इत्यनेन प्रतिपादितमस्ति। गीतायामप्यत्र (10.33) अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य चेति। अवङ् स्फोटायनस्य सूत्रमिदमाश्रित्य पदमञ्जरीकारहरदत्तनागेशभट्टयोर्मते स्फोटायनःऋषिरेव स्फोटस्य प्रथमः प्रतिपादक इति। यद्यपि स्फोटस्यास्य प्रथमः प्रयोगः महाभाष्ये (1.1.70) स्फोटः शब्दः, ध्वनिः शब्दगुणः इत्यनेन संदृश्यते। स्फोटः स्फुट् (विकासे) धातुना निष्पन्नो भवतीति। स्फोटस्य व्यत्पत्तिप्रसङ्गे नागेशस्तु स्फुटति प्रकाशतेऽर्थोऽस्मादिति स्फोटः इतिप्रतिपादयति। अनेनावबोध्यते यत् स्फोटोऽयं अर्थप्रकाशकः। ध्वनिना प्रकाश्यते स्फोटः। अतः ध्वनिः प्रकाशकः अभिव्यञ्जको वेति। स्फोटस्तु प्रकाश्य अभिव्यङ्ग्यो वेति भावः। ध्वनिस्तु द्विविधः प्राकृतो वैकृतश्च। प्रकृतौ भवः प्राकृतः। ततः परं ततिरूपेण यः नादः श्रूयते स वैकृत इति स्फोटः प्राकृतध्वनिना प्रकाश्यते। अतः नित्योऽयं स्फोटः भूत्वाऽपि प्राकृतस्य ध्वनेः कालः स्फोटत्येत्युपचर्यत इति भावः। भर्तृहरिणा सङ्ग्रहकारस्य मतमुद्धृत्य स्वोपज्ञवृत्तौ प्रत्यपादि यत् कथमत्र प्राकृतध्वनिना स्फोटःप्रकाश्यते। यथोक्तं तत्र—

स्फोटस्य ग्रहणे हेतुः प्राकृतो ध्वनिरिष्यते।
वृत्तिभेदे निमित्तत्वं वैकृतः प्रतिपद्यते॥ (स्वोपज्ञवृत्तौ, वा.प. 1.76)

एतदप्यत्रावधेयं यत् स्फोटस्य ग्रहणे प्राकृतो ध्वनिः व्यञ्जकः समुद्घोषितः, परं नागेशभट्टेन परमलघुमञ्जूषायां (पृ.सं. 97) मध्यमा वाक् स्फोटस्याभिव्यञ्जकरूपेण स्मृतेति चिन्तनीयमस्ति।

❖

IL-20

अष्टाध्याय्याः परिभाषासूत्राणि

डॉ. श्रीप्रकाशपाण्डेयः, बिहार

अष्टाध्याय्याः षड्विधसूत्रेषु परिभाषासूत्रमेकं सूत्रप्रकारं सद् अष्टकं संश्लिष्टं करोति।

अन्यविधसूत्रमिव परिभाषासूत्रमपि विधिसूत्रम् उपकरोति अतः परिभाषासूत्राणाम् उपादेयता अनिवार्यता च सुविदिता। महाभाष्ये परार्थकत्वात् अधिकारशब्देन परिभाषापि गतार्था चेदपि परिभाषाधिकारयोः आपाततः प्रतीयमानं सादृश्यं तयोः अभिन्नत्वं प्रमाणयितुं न शक्नोति। परिभाषा, अधिकारश्च पृथक्-पृथक् सूत्रभेदः इति अष्टाध्यायाः अनुशीलतेन सम्यक् ज्ञायते।

इको गुणवृद्धिः इति परिभाषाया अभावे सार्वधातुकार्धधातुकयोः इत्यादिसूत्रेषु गुणस्य स्थानिनः बोधः सम्भवः नास्ति तद्वत् मिदयोऽन्त्यात्परः, अनेकालशित्सर्वस्य, ङिच्च, आद्यन्तौ टकितौ इत्येतेषां परिभाषाणाम्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभावे नुम्, नुट्, वुक् प्रभृत्यागमानां स्थानिनिर्णयः कर्तुं न शक्यते। एवमेव तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य इति परिभाषाभावे इको यणचि इत्यादिविधिसूत्राणाम् अर्थबोधः सम्भवः नास्ति न तु तस्मादित्युत्तरस्य इति परिभाषाभावे 'उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य' इति सूत्रस्य लक्ष्यं स्पष्टं भवति।

केषाञ्चन सूत्राणां तु वास्तविकसूत्रविधानिर्धारणेऽपि काठिन्यमनुभूयते।

निष्कर्षरूपेण परिभाषासूत्राणि पाणिनीयतन्त्रमवगन्तुं कुञ्जिका इव सन्ति। विस्मृतायाञ्च तस्यां न तु तालमुद्घाटयितुं शक्यते न तु गृहे प्रवेष्टुं शक्यते।

❖

IL-21

ऋग्वेदप्रातिशाख्यगतप्रश्लिष्टसन्धेः पाणिनिप्रोक्तस्वरसन्धिभिः सह तुलना

श्री रणजितबेहेरा, नवदेहली

वेदाध्ययनपरम्परायां प्रातिशाख्यानां स्थानमद्वितीयम्। प्रातिशाख्येषु सामान्यतया स्वशाखायाः बाह्यस्वरूपवर्णन-पद-स्वर-च्छन्दआदीनां वैशिष्ट्यं प्रतिपादितं वर्तते, यतोहि संहितापाठात् पदपाठकरणाय वर्ण-पद-स्वर-सन्ध्यादयः विभिन्नदृष्ट्या विचार्यन्ते। ऋग्वेदप्रातिशाख्यमृग्वेदस्य शाकलशाखायाः शैशिरोयोपशाखायाः प्रातिशाख्यं वर्तते। प्रातिशाख्यस्यास्याष्टादशसु पटलेषु वर्ण-पद-सन्धि-स्वरादयः सम्यक्तया प्रतिपादिताः सन्ति। ऋक्प्रातिशाख्ये वर्णितासु षट्सु सन्धिषु स्वरसन्धिरन्यतमा। पदस्यादावन्ते वर्तमानयोः स्वरयोर्मेलनं स्वरसन्धिरित्युच्यते। प्रातिशाख्येऽस्मिन् प्रतिपादितानां स्वरसन्धीनां विभाजनमनेन प्रकारेण कृतमस्ति यत्—

(1) प्रश्लिष्टसन्धिः, (2) क्षैप्रसन्धिः, (3) भुग्नसन्धिः, (4) अभिनिहितसन्धिः, (5) पदवृत्तिसन्धिः, (6) उद्ग्राहसन्धिः, (7) उद्ग्राह्यपदवृत्तिसन्धिः, (8) उद्ग्राहवत्सन्धिः, (9) प्राच्यपाञ्चालपदवृत्तिसन्धिः, (10) प्रकृतिभावसन्धिः।

ऋक्प्रातिशाख्ये प्रतिपादितासु स्वरसन्धिसु प्रश्लिष्टसन्धिः अन्यतमा। शोधपत्रेऽस्मिन् ऋक्प्रातिशाख्यस्य प्रश्लिष्टसन्धिविषयकं साङ्गोपाङ्गविवेचनं प्रतिपाद्य तस्याः तुलनाष्टाध्यायीगत-दीर्घ-गुण-वृद्धि-सन्धिभिः सह प्रतिपादयिष्यते।

❖

IL-22

अण्-प्रत्ययस्य भाषाशास्त्रीयमध्ययनम्

श्रीहेमनारायणझाः, भागलपुरम्

प्रस्तुतशोधपत्रे श्रीमद्भगवद्गीतायां प्रयुक्तस्य तद्धितसञ्ज्ञक-अण्-प्रत्ययस्य भाषाशास्त्रीयमध्ययनं कृतमस्ति।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृतशोधपत्रे सर्वप्रथममिदं प्रदर्शितमस्ति यद् अष्टाध्याय्यां तद्धितसञ्ज्ञक-अण्-प्रत्ययस्य कति अर्थाः सन्ति। तदनन्तरं श्रीमद्भगवद्गीतायामण्-प्रत्ययस्य कति अर्थाः उल्लिखिताः सन्ति।

ततः पश्चाद् अण-प्रत्ययस्य प्रकृतीनामध्ययनं कृतमस्ति। सहैव अण्-प्रत्ययान्तप्रातिपदिकस्यापि अध्ययनं कृतमस्ति।

अन्ते अण्-प्रत्ययस्य विधानेन प्रकृतिषु विहितं ध्वनिपरिवर्तनं दर्शितमस्ति।

❖

IL-23

अच्-प्रत्ययस्य भाषाशास्त्रीयमध्ययनम्

डॉ. लक्ष्मीश्वरझाः, भागलपुरम्

संस्कृतभाषायां प्रत्ययानां सङ्ख्याः प्रायः अष्टौ शतं सन्ति, तेषु प्रत्ययेषु तद्धितानां संख्या प्रायः शतकत्रयं विद्यते।

अस्मिन् लघुशोधपत्रे प्रातिपदिकेभ्यः अस्त्यर्थे (=मत्वर्थे) विहितस्य अच्-प्रत्ययस्य भाषाशास्त्रीय-मध्ययनं कृतमस्ति।

अच्-प्रत्ययः भारतीय-आर्यशाखाभ्यः बहिः अज्ञातः अस्ति। भारतीय-आर्यशाखासु संस्कृतभाषायाम् अच्-प्रत्ययस्य उद्भवः ऋग्वेदे एवाभवत्, विकासश्च प्रायः सर्वत्र दृश्यते।

अच-प्रत्ययः सम्प्रत्युपलब्ध-संस्कृत-साहित्यस्याधोलिखितेषु प्रमुखेषु ग्रन्थेषु सर्वथा नूतनेभ्यः प्रायः अष्टात्रिंशतः (38) प्रातिपदिकेभ्यः विहितः मिलति।

अस्य शोधपत्रस्य व्याकरणसम्बन्धिनोऽध्ययनस्याधारः पाणिनीयं व्याकरणमेवास्ति, पुनरपि तुलनात्मकस्याध्ययनहेतोः पाणिनीयेतरेषां व्याकरणानामपि उपयोगः कृतोऽस्ति।

❖

IL-24

यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यम्

डॉ. देवनारायणझाः, दरभङ्गा

यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यमित्यस्या अवधारणायाः पारम्परिकविद्वद्भिः स्वकीयरीत्या विश्लेषणं विधीयते। तत्र—एतेषां विदुषां सामान्यत इदमभिमतं वर्तते यत् पाणिनिकात्यायन-पतञ्जलीति त्रिषु वैयाकरणेषु मध्ये—उत्तरोत्तरवर्तिवैयाकरणः निजपूर्ववर्तिवैयाकरणस्य तात्पर्यमेव विशदयतीति। अर्थाद् वार्तिककारेण पाणिनेस्तात्पर्यमेव व्याख्यातं निजवार्तिकेषु। तथैव महाभाष्यकारेणापि पूर्ववर्तिनोर्द्वयोर्वैयाकरणयोस्तात्पर्यमेव

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशदीकृतम्। तथ्यमिदं प्रकटयितुमवधारणेयं प्रचलिता—इति हि तेषां मतं, किन्तु अभिमतमेतद् नैव सन्तोषप्रदरीत्या वस्तुस्थितिं विशदयति।

एतद्धि प्रत्यक्षरूपेण दृश्यते यद् भाषा परिवर्तनशीला वर्तते, परिवर्तनं हि भाषायाः प्रकृतिर्वर्तते। भाषान्तरप्रभावं विनाऽपि भाषा परिवर्तते। महर्षिणा पाणिनिना स्व-समकालिक्यां लौकिकसंस्कृतभाषायां वैदिक्याञ्च भाषायां व्याकरणं लिखितम्। तस्य समये यादृशाः प्रयोगाः भाषायामुपलब्धा आसन् तेषां शिष्टाभिमतानां शब्दानां तेनानुशासनं कृतम्। उदाहरणार्थं पाणिनिसमये सूर्यवाचि-मार्त्तण्डशब्दः मार्ताण्डरूपेण प्रयुक्त आसीदिति वेदेभ्यः ज्ञायते। तस्य शब्दस्य सिद्धिः 'अकः सवर्णे दीर्घः' इति पाणिनिसूत्रेणैव सञ्जायते, अतस्तेन मार्तण्डरूपविधानार्थं पृथक् विधानं न कृतम्। किन्तु दृश्यते यत् परवर्तिषु कालेषु पूर्ववर्तिमार्ताण्ड-शब्दः मार्तण्डरूपेण संस्कृतभाषिभिः गृहीतः। रूपमिदं पाणिनिरीत्या न सिद्ध्यति। किन्तु शब्दोऽयं शिष्टानुमतः सञ्जातः, अत एव संस्कृतभाषायां व्यापकं रूपमलभत मार्तण्डरूपेण। अतस्तत्सिद्धये वार्तिककारेण कात्यायनेन 'शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्' इति वार्तिकं लिखितम्। अनेन वार्तिकेन शकन्धुः, मार्तण्डः, मनीषा, इत्यादयः शब्दाः शिष्टानुमताः घोषिताः। एवमेव टुत्वविधानप्रसङ्गे वर्गोत्तरवर्तिनकारस्य टुत्वनिषेधके 'न पदान्ताट्टोरनाम्' इति सूत्रे—अनाम् इत्युल्लिख्य पाणिनिना नाम्-भिन्न-दन्त्य-ध्वनीनामेव टुत्वनिषेधो विहितः। अतः षण्णामित्यत्र नामित्यस्य टुत्वनिषेधाभावात् नकारस्य णत्वं जातम्। पाणिनिसूत्रतः स्पष्टं ज्ञायते यत् तस्य समये संस्कृतभाषायां तादृशेषु स्थलेषु टवर्गोत्तरवर्ति-दन्त्य-नकारवतां शब्दानां मध्ये केवलं नामवति, शब्दे एव दन्त्यनकारे णत्वस्य प्रवृत्तिः आसीन्नेतरेषु। अतस्तेन एतादृशानामन्येषां प्रयोगाणां नकारादिवतां शब्दानां सिद्धये नैव सूत्रं विहितं न वाऽस्मिन् सूत्रे एतादृशानां शब्दानां गणना कृता, किन्तु दृश्यते यद् वार्तिककारसमये षण्णामिति रूपवत् षण्णवति—षण्णगर्य इत्यादयोऽपि णत्वविशिष्टाः शब्दाः संस्कृते स्थानमलभन्त। अतः वार्तिककारेण पृथक् वार्तिकं लिखितम्। 'अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम्' एतादृशानि स्थलान्यनेकानि वर्तन्ते, यत्र वार्तिककारेण तत्समये शिष्टजनप्रयुक्तशब्दानां सिद्धये अनेकानि वार्तिकानि लिखितानि। महाभाष्यकारेण पतञ्जलिनाऽपि एतादृशोऽभ्युपायो विहितः। तेन खलु कियन्ति वार्तिकानि प्रत्याख्यातानि बहूनि च समर्थितानि।

अतः तथ्यमिदं स्पष्टतरं प्रतीयते यत् तथोत्तरं प्रामाणिकं भाषाप्रवाहमभिलक्ष्यैव यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यमिति वैयाकरणप्रवादः प्रचलित इति। विस्तरन्तु—अग्रे दर्शयिष्यामः।

❖

IL-25

पुराणोक्तव्याकरणसमीक्षणम्

डॉ. धर्मदत्तचतुर्वेदी, वाराणसी

सर्वशास्त्रेषु प्रथमतया ब्रह्मणा संस्मृतानि वेदोपबृंहणसंवलितानि सर्गप्रतिसर्गवंशमन्वन्तर-वंशानुचरितवर्णनप्रधानानि परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनमिति व्यासस्य वचनद्वयनिरूपकाणि ब्रह्माण्डरहस्योद्घाटकानि सर्वज्ञानोपपादकानि तीर्थसमुद्रद्वीपपर्वतनदीनां देशकालादीनां च परिचायकानि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरातनभारतीयवैभवज्ञापकानि भारतीयसंस्कृतिसभ्यताकलादिस्वरूपबोधकानि भारतीयदर्शनसिद्धान्तख्यापकानि काव्यशिल्पायुर्वेदतन्त्रज्यौतिषादिविद्याप्रतिपादिकानि धर्माध्यात्मविवेचकानि देवस्तुतिमन्त्रगायकानि भगवन्माहात्म्यनिष्ठाप्रचारकाणि गद्यपद्योभयमिश्रितकाव्यानि चम्पूरिति काव्यव्यपदेश्यानि पुराणानि व्याकरणशास्त्रीयसिद्धान्तानां संरक्षकाणि पोषकाणि समुद्घाटकानि चापि विलोक्यन्ते। नूनं पुराणानि व्याकरणशास्त्रमुपासते। पौराणिका व्याकरणज्ञानमन्तरेण प्रामाण्यं न भजन्ति। कोऽपि पौराणिको विना व्याकरणेन पुराणानि ज्ञातुं न प्रभवति। पुराणोक्तं व्याकरणं प्रसादगुणोपेतं सुहृत्सम्मितोपदेशपरं सरसपदावल्या चालङ्कृतं दरीदृश्यते। पुराणोक्तवर्णनानि व्याकरणदृष्ट्या समीक्ष्यमाणानि स्युः. सुबन्त-तिङन्त-सन्धि-समास-कृत्तद्धिप्रभृतीनि प्रकरणानि पद्यभाषया निबद्धानि लभ्यन्ते। पाणिनिकृतं व्याकरणं पुराऽवर्तत एवातः पुराणेषु व्याकरणोपदेशस्य किं प्रयोजनम्? किं सूत्रशैल्या व्याकरणबोधनं दुःशकमभवत्? सूत्रशैल्या व्याकरणज्ञानं पौराणिकैः कर्तुं न शक्तन्तदैव पद्यभाषया संवादरूपेण व्याकरणन्तत्रोपादेशि। पद्यभाषया व्याकरणसिद्धान्तानामवबोधे सौकर्यमेवानूभूतं मन्ये पौराणिकैः।

❖

IL-26

मुख्यार्थं विहाय गौणार्थे व्याकरणप्रतिपाद्यं साधुत्वम्

सुश्री पार्वती चक्रवर्तिनी, कोलकाता

अभिधाशक्त्या यथा लौकिकव्यवहारे शब्दानां मुख्यार्थ एव प्रथममङ्गीक्रियते, पश्चाद् अनुपपत्तौ सत्त्यां प्रयोजनान्तरे वा सति अप्रधानो'ऽर्थः गृह्यते, शब्दानुशासनशास्त्रेऽपि तथैव एतदेव मनसि कृत्त्वा गौणमुख्यपरिभाषा उदीरिता आचार्यैः। यदा तु अभिधालभ्यो'ऽर्थः बाधाः प्राप्तः भवेत्, तदा लक्षणया भिन्नोऽर्थः स्वीक्रियते लौकैरनुपपत्तिपरिहारार्थं 'गंगायां घोषः' इत्यादिस्थलेषु। वैयाकरणैस्तु लक्षणा नाङ्गीकर्तव्या इत्युद्घोष्यते स्पष्टतया आचार्यैः। परन्तु शब्दानां साधुत्वनिष्पादनाय कुत्रचित् स्थलेषु शब्दानामुपचरितोऽर्थः ग्रहीतव्य इति समुपलभ्यते व्याख्यातृणां वचनेषु। अन्यथा पाणिनेः सूत्रस्यासङ्गतिरपि स्यादेव। एवं प्रधानार्थं परित्यज्य उपमानलभ्योऽर्थः तथा उपचरितोऽर्थः आरोपितार्थो वा गृह्यते पदसाधुत्वनिष्पादनाय। तथा च व्याकरणशास्त्रे कथं कुत्र मुख्यार्थत्वं परित्यज्यते भिन्नोऽर्थश्च जिघृक्ष्यते तदेवानुसन्धेयमस्मिन् प्रबन्धे।

❖

IL-27

फिट्-सूत्राणामध्ययनम्

डॉ. सीताचरणझाः, बिहार

भट्टोजिदीक्षितविरचितवैयाकरणसिद्धान्तकौमुद्यां चतुष्पादात्मकं फिट्सूत्रप्रकरणं विद्यते। अस्य चतुष्पादात्मकस्य फिट्सूत्रप्रकरणस्य रचयिता शान्तनुः शान्तनवो वा इति प्रश्नः समालोचकैः बहुधा निरूपितः, एतद्विषये पूर्वपक्षोपस्थापनपूर्वकं सिद्धान्तपक्षः शोधलेखेऽस्मिन् प्रदर्शितः। अथ च सत्यामपि पाणिनि-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रणीतस्वरप्रक्रियायां स्वराध्ययनार्थं फिट्सूत्राणां क उपयोगः इति विषये विचारः कृतः। फिट्सूत्राणां नामकरणस्य चिन्तनं शोधलेखेऽस्मिन् कृतमस्ति। फिट्सूत्राणामध्ययनविषये एतेषां पाणिनेः प्राचीनत्वमर्वाचीनत्वं वेति विचारोऽपि अत्र कृतोऽस्ति। यद्यपीदानीम् फिट्सूत्रप्रकरणस्याध्ययनम् सर्वथा लुप्तप्रायमेव प्रतिभाति, किन्तु शास्त्रीयचिन्तनसन्दर्भे एतादृशानां लुप्त प्रायाणां शास्त्राणां पुनर्जीवनम् यथा भवेत्, तथा एतादृशः प्रयासः कृत इति।

❖

IL-28

माहेश्वरसूत्रसमीक्षा

डॉ. अशोककुमारचौधरी, वाराणसी

शास्त्रीयज्ञानस्यावाप्तिः आप्तजनैः समाधौ भवति। सापि परमकारुणिकया दृष्ट्या इति भारतीयचिन्तनम्। तथैव पाणिनिना महर्षिणा प्रतिज्ञातं यदाखण्डस्य नादस्य विस्तरः, तेन शिवढक्कानिनादेन समुपलब्धः। तदेव ज्ञानं प्रपञ्चदृष्ट्या व्याकरणानुरोधेन चतुर्दशसूत्रेषु विभज्य समुपस्थापितम्। तत्र किं सूक्ष्मतत्त्वमस्मिन् उपस्थापने इति टीकाकृद्भिः बहुशः विवेचितम्। यथा नागेशेन षड्विधसूत्रेषु संज्ञासूत्राणि इति निर्दिष्टानि। एवमेव अत्रोपस्थापनविषये किं स्वरूपम्? किं उद्देश्यं किं वा प्रवृत्तिनिमित्तम्? इति व्याख्याकाराणां मतं समीक्ष्य सर्ववादिसम्मतं सरलं व्याख्यानं करणीयम्। तदपि सूक्ष्मं व्यवस्थितञ्चेति अस्य शोधलेखस्य व्यवसायः।

❖

IL-29

व्याकरणदृष्ट्या लिङ्गनिर्णयः

श्री सचिन म कठाले, नागपुरम्

लोके स्त्रीपुंनपुंसकमिति लिङ्गत्रयं प्रसिद्धम्। केन प्रत्ययेन किं लिङ्गं भवतीति पाणिनिमहर्षिणा।

लिङ्गदृष्ट्या शब्दास्त्रिविधाः, नियतलिङ्गानियतलिङ्गालिङ्गाश्चेति यथा पुरुषः, प्रकृतिः, जगद् इत्यादयो नियतलिङ्गाः, तटः-तटी-तटम् इत्यादयः अनियतलिङ्गाः, अव्ययानि तु अलिङ्गशब्दानामुदाहरणम्। केचन तु सलिङ्ग-अलिङ्ग-भेदेन शब्दो द्विधा इत्याहुः। सलिङ्गाः एकलिङ्ग-द्विलिङ्ग-त्रिलिङ्गा। तत्र द्विलिङ्गशब्दो द्वयोर्लिङ्गयोर्वाचको भवति। एवं निर्णीतलिङ्गाः शब्दाः प्रसिद्धेषु एव लिङ्गेषु प्रयोक्तव्याः। तदेव लिङ्गानुशासनं नाम विचारितमत्र।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IL-30

महाभाष्ये धार्मिकतत्त्वानि

प्रो. किशोरचन्द्रपाढ़ी, पुरी

महाभाष्यं न केवलं व्याकरणनिबन्धमात्रमित्यवगन्तव्यम्। ग्रन्थेऽस्मिन् सर्वाण्यपि ज्ञातव्यानि विषयजातानि स्थाने स्थाने विवेचितानि। तथोक्तं भर्तृहरिणा—

कृतेऽथ पतञ्जलिना गुरुणा तीर्थदर्शिना।
सर्वेषां न्यायबीजानां महाभाष्ये निबन्धने॥ (2.497)

तत्र सर्वोऽपि लैकिकव्यवहारः तिष्ठति। स समाजं निर्माति, स्थापयति, अवधारयति, सर्वोपरि रक्षति। अतः महाभाष्यस्य धर्मशास्त्रीयविचारद्वारा तदानीन्तन समाजस्य स्थितिः स्वरूपञ्च प्राप्यते।

महाभाष्ये संस्कारः धार्मिककृत्यं, महापातकानि, परलोकः, श्राद्धम्, दानम्, शौचम्, ज्ञातिः, कुलमित्यादयो विषयाः सूत्राणां व्याख्यानावसरे चर्चिताः। अतः प्रबन्धेऽस्मिन् एतेषां सर्वेषां धार्मिकतत्त्वानां विचारार्थं यत्नः करिष्यते।

❖

IL-31

व्याकरणस्य ज्ञानप्रयोगविषयकधर्मविचारः

श्री धनञ्जयकुमार आचार्यः, वाराणसी

इह शब्दसंसारे केचन साधुशब्दाः केचन असाधुशब्दाः। साधुशब्दैः यथा शाब्दबोधः तथैव असाधुशब्दैरपि तर्हि उभयोः शब्दयोः कस्य प्रयोगः विधातव्यः? साधुशब्दज्ञाने पुण्यावाप्तिः इति सिद्धान्तं मन्यमानाः वदन्ति यत् ज्ञाने धर्मः, किन्तु केचन विलक्षणप्रतिभासम्पन्ना निगदन्ति, न केवलं ज्ञाने धर्मः, अपितु ज्ञानपूर्वकप्रयोगे धर्मः। अत एव 'एकः शब्दः सम्यक् ज्ञातः इह परलोके च कामधुक् भवति' इत्यादीनां शिष्टोक्तीनां सङ्गतिः संलक्ष्यते। ज्ञानपूर्वकप्रयोगे धर्मः इति भाष्याख्यानप्रसङ्गे समागतानां वर्तिकानां विविधतर्कैः समीक्षणं शोधपत्रे विहितमस्ति।

❖

IL-32

शब्दानुशासनविचारः

डॉ. अमरचन्द्रठाकुरः, वाराणसी

व्याकरणशास्त्रस्य अपरं नाम शब्दानुशासनम्। शब्दानुशासनमेव व्याकरणस्य प्रत्यक्षात्मकं प्रयोजनम्, एतदतिरिक्तं तु रक्षोहादिमुख्यप्रयोजनत्वेन व्याकरणशास्त्रे अङ्गीकृतं वर्तते।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्मिन् शोधप्रपत्रे इदं व्याकरणं केन प्रकारेण शब्दान् अनुशास्ति? अनुशिष्टेषु शब्देषु प्रकृतिप्रत्ययादीनाम् अर्थाननुसन्धाय किं प्रकारकं शाब्दबोधं जनयति? एवञ्च अनुशिष्टानां शब्दानां प्रयोगात् भवति धर्मः इत्यादयः विचाराः दृष्टिगोचराः भविष्यन्ति। सहैवात्र भाष्यवार्तिके कः समासः? कर्तृकर्मणोः कृतिः इति पाणिनिसूत्रे उभयप्राप्तौ कर्मणि इति सूत्रद्वयस्य प्रदीपोद्योतदृष्ट्या संक्षेपतः सिद्धान्तप्रदर्शनमपि स्फुटीकृतमस्ति।

❖

IL-33

धर्मः कुत्रः? शब्दज्ञाने अथवा प्रयोगे

श्री दिनेशः वि. खवासः, नागपुरम्

संस्कृतभाषा संभाषणपथे आसीत् न वा? इति विषये कांश्चन विचारान् प्रस्तोतुमिच्छामि। एषा भाषा केवलं पण्डितानां भाषा एव आसीत् इति केषाञ्चन विचारः। इयं भाषा केवलं ग्रान्थिकी एव इति कश्चन विचारः। संस्कृतभाषा सर्वैरपि भाष्यमाणा आसीत्। अस्मिन् राष्ट्रे वणिग्भिः स्त्रीभिः कृषकैः च एतया भाषया भाषणं क्रियते स्म। तस्य प्रबलानि प्रमाणानि सन्ति च। तानि कानि इति विचारयामः। वयं तु संस्कृतं व्यवहारभाषा आसीद् इत्येव मन्यामहे। न केवलमभिमानेन तथा चिन्तयामः, अपि तु वास्तविकानि तथ्यानि अपि तदेव सत्यं प्रमाणयन्ति।

अस्मिन् शोधनिबन्धे पाणिनिवररुचिपतञ्जलानां प्रभाविकत्वमङ्गीकृतं तेषामेव प्रयोगेभ्य उदाहरणानि दत्तानि सन्ति। पाणिनेः सूत्राणि अपि अस्मिन् विषये प्रमाणीभूतानि सन्ति। गणपाठादप्यत्र उदाहरणानि सन्निवेशितानि वर्तन्ते। जीवनस्य भिन्नभिन्नक्षेत्रे एव प्रयुज्यमानाः शब्दाः अत्र उदाहरणरूपेण दत्ताः। केवलं शब्दज्ञानेन एव प्रयोजनं न, किन्तु शब्दज्ञानेन सह तस्य प्रयोगे साफल्यमिति अस्मिन् शोधनिबन्धे समर्थनं क्रियते।

❖

IL-34

पाणिनीयव्याकरणस्य सरलीकरणे श्रीहरिनामामृतव्याकरणस्य योगदानम्

डॉ. सीनेली देव, उडीसा

पाणिनीयव्याकरणं सर्वेषां पाणिनीयेतराणां परवर्त्तिव्याकरणग्रन्थानां प्रकृतिभूतमस्ति। एतेषु कातन्त्रचान्द्रादिषु अर्वाचीनव्याकरणेषु पाणिनीयव्याकरणस्य तत्त्वानि निहितानि वर्त्तन्ते। यद्यपि संस्कृतभाषाशिक्षणप्रसङ्गे पाणिनीयव्याकरणं काले काले सर्वातिशायि वर्त्तते। तथापि एतानि पाणिनिपरवर्तीनि कातन्त्रचान्द्रादीनि व्याकरणानि विविधसम्प्रदायेषु क्षेत्रविशेषेषु च तत्तत्कालेषु प्रसिद्धानि आसन्। पाणिनीयव्याकरणमाधारीकृत्य विरचितेषु अपि एतेषु व्याकरणेषु स्वकीयमौलिकता अवश्यं दृश्यते। खैस्तीयषोडशशतके श्रीजीवगोस्वामिना विरचितं श्रीहरिनामामृतव्याकरणं वैष्णवसम्प्रदाये अतीव समादृतमासीत्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतीतकाले उत्कलप्रदेशे वङ्गप्रदेशे च अस्य व्याकरणस्य सन्ति कानिचन वैशिष्ट्यानि विद्यन्ते च काश्चित् स्वकीयमौलिकताः। एवंविधेषु वैशिष्ट्येषु पाणिनीयव्याकरणस्य सरलीकरणप्रवृत्तयः अन्यतमाः।

अनेन 'न संज्ञाया' (ह.ना.व्या.सू. 2244) इति समानसूत्रेणैव श्रीहरिनामृतव्याकरणकारेण श्रीजीवगोस्वामिना 'कृष्णदेवः' (कृष्णो देवोऽस्य) इति वैष्णवशब्दः निष्पादितः।

❖

IL-35

पाणिनीय-व्याकरणे काल-विचारः

डॉ. श्रीमती पूर्णिमा केलकर, रायपुरम्

लौकिकदृष्ट्या लोकानामन्तकृत् कालः इत्येव कालस्य रूपमभिमतम्, सूर्यसिद्धान्ते कालो द्विधा प्रोक्तः। एकोऽखण्डदण्डायमानः चेतनाचेतनानां विनाशकृत् मृत्योपरपर्यायः लोकेषु प्रसिद्धः। अपरः कलनात्मकः खण्डकालः स्थूलसूक्ष्मभेदाभ्यां द्विविधः। वस्तुतः इयत्तावच्छिन्नपरिमाणोऽसौ कालः स्थूलो मूर्त इत्युच्यते।

सम्प्रति पाणिनीयतन्त्रमनुसृत्य कालतत्त्वं मयानुसन्धीयते। अष्टाध्यायामुपलब्धप्रमाणैः पाणिनेः कालविषयको विचार उपस्थाप्यते।

पाणिनीयतन्त्रे कालस्य भेदकल्पना तत्तत्कालावच्छिन्नक्रियावाचक—धातुभ्यः लकारविधानप्रयुक्तैव अभ्युपगन्तव्या।

सर्वप्रथमं भूते इत्यधिकृत्य लिडादयो विहिताः। परोक्षे लिट् सूत्रे किं नाम पारोक्ष्यम्? परोक्षत्वस्य मनोहारि व्याख्यानं भाष्ये कृतम्। वस्तुतः अक्ष्णः परम् परोक्षमित्युच्यते। क्रियायाः सर्वतः परोक्षत्वात् ततः तस्याः इन्द्रियजन्यज्ञानाविषयत्वात् तदर्थं परोक्ष इति विशेषणं व्यर्थम्।

वर्तमानकालविषयेऽपि अतिसूक्ष्मं चिन्तनं शास्त्रे कृतम्। वर्तमानात्मकक्षणस्य अग्राह्यात्वमज्ञेयत्वं परिकल्प्य नास्ति वर्तमानः कालः इति केषाञ्चिन्मतम्। क्रियासु नैरन्तर्यं वीक्ष्य अस्ति वर्तमानः कालः इत्यपरेषां मतम्। सर्वमेतत् शोधपत्रे विस्तरेण समीक्षितम्।

❖

IL-36

तद्धित-प्रकरणेऽधिकारव्यवस्था

डॉ. श्रीमती मनीषापाठक, रायपुरम्

तद्धितप्रकरणेऽतिविचित्रा खलु अधिकारव्यवस्था अष्टाध्याय्यां वर्तते।

स्त्रीप्रत्ययेष्वसितेषु तद्धिताः (4.1.76) इत्यधिकृत्य पञ्चमाध्यायसमाप्तिपर्यन्तमणादयः तद्धितसंज्ञकाः प्रत्ययाः पठिताः। मध्ये मध्ये तदपवादभूताः ण्यादयः उक्ताः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अणादयः पञ्च महोत्सर्गाः उच्यन्ते। ते च अण्-ठक्-यत्-छ-ठञादयः वृत्तिकारैः प्रोक्ताः। एतेषां पञ्च उत्सर्गाणां प्रत्ययानां प्रकृतिविशेषेभ्यो विहिताः तत्तदर्थेषु अपवादप्रत्यया अपि पठ्यन्ते।

तद्धितप्रकरणस्यायमस्ति विशेषः, यत् प्रत्ययेषु उत्सर्गापवादभाववत् अर्थेष्वपि दृश्यते। उत्सर्गापवादभावस्य सर्वोऽपि प्रपञ्चः लेखेऽस्मिन् विशदीकृतः।

❖

IL-37

कारकतत्त्वानुशीलनम्

श्रीविष्णुकान्तझाः, देवघरम्

करोति—क्रियां निर्वर्तयति इति। करोतीत्यस्यार्थः साधयति निष्पादयति इति वा। अत एव क्रिया जनकत्वं कारकत्वमिति लक्षणं निष्पन्नम्।

कर्त्ता—स्वतन्त्रः कर्ता इति पाणिनिसूत्रम्। यथा—पुरुषः खादति।

कर्म—कर्तुरीप्सिततमं कर्म इति सूत्रम्। यथा—बालश्चन्द्रं पश्यति अत्र चन्द्रमित्यत्र कर्मत्वं कर्मत्वात् द्वितीया।

करणम्—साधकतमं करणमिति पाणिनिसूत्रम्। यथा—असिना छिनत्ति। अत्र असिनेत्यत्र करणं कारकम्, अतः कर्तृकरणयोस्तृतीयेति तृतीया विभक्तिः।

सम्प्रदानम्—कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्। यथा—राजा विप्राय गां ददाति। अस्मिन् वाक्ये विप्रशब्दस्य सम्प्रदानसंज्ञा (अतः चतुर्थी)।

अपादानम्—ध्रुवमपायेऽपादानमिति सूत्रम्। यथा—वृक्षात् पर्णं पतति। अत्र वृक्षशब्दस्य अपादानसंज्ञा। अतः अपादाने पञ्चमी इति सूत्रात् पञ्चमी विभक्तिः।

अधिकरणम्—आधारोऽधिकरणमिति पाणिनिसूत्रम्। यथा—कटे आस्ते मोक्षे इच्छास्ति इत्यादि। अत्र सर्वत्र सप्तम्यधिकरणे इति सप्तमी।

विवक्षातः कारकाणि भवन्ति। अत स्थाली पचति। स्थाल्यां पचति। स्थाल्या पच्यते इत्यादि वाक्यानि कारकाणि वा वक्तुः विवक्षाऽधीनानि भवन्ति।

सम्बोधनस्य न कारकत्वम्—सम्बोधनपदं यच्च तत् क्रियायां विशेषणमित्यनुशासनात्।

❖

IL-38

जहत्स्वार्था अजहत्स्वार्था च

डॉ. रविशंकरपाण्डेयः, वाराणसी

शब्दार्थयोः कः सम्बन्ध इति शब्दनिष्ठार्थबोधकः व्यापारः शक्तिर्नाम कल्प्यते। व्याकरणं शास्त्रे अग्नौ दाह इव शब्दार्थयोः किञ्च ताभ्यां शक्तेश्च नित्यः सम्बन्धः स्वीकृतः। अपरत्र परार्थाभिधानं वृत्तिरिति द्वितीयः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्पोऽपि समादृतः। अस्मिन् द्वितीयपक्षे पञ्चधा वृत्तिर्भवति। तासु एका समासवृतिर्नाम। समासे अजहत्स्वार्था वृत्तिर्नाम विलक्षणो व्यापारो भवति, येन शब्दाः विगलितस्वरूपाः नूतनं स्वरूपमवलम्ब्य एकार्थभावेन तिष्ठन्ति। अत्र पुनः प्रातिपदिकत्वात् नूतनत्वमवश्यमेव। अत्र जहत्स्वार्थापक्षेऽपि विचारो वर्तते, येषां सम्यक् परिशीलनेन अस्य वृत्तिद्वयस्य विचारः स्फुटीभविष्यति। लेखोऽयममुमेव विषयं गाढमवगाहते।

❖

IL-39

पाणिनेः शब्दान्वाख्यानपद्धतिः

श्रीशैलेशकुमारतिवारी, वाराणसी

अपरिमेयशक्तिसम्पन्नेश्वरकर्तृकेऽस्मिन् लोके कर्तव्याकर्तव्यविचारशीलतया मनुष्यः सर्वश्रेष्ठः प्राणी किल। तत्र विचारविनिमयसाधनं स्वाभिप्रायप्रकाशनसाधनं वा भाषैव विद्यते। सा च भाषा वाक्यरूपा भवति। वाक्यानि च अनन्तानि संख्यया किञ्च व्याकरणशास्त्रीभ्यं प्रयोजनं शब्दान्वाख्यानमेव। तत् कथं स्यात्? इत्युद्दिश्य अनेके मुनय आचार्या ऋषयश्च प्रायतन्त। तत्र तेषामनन्तवाक्यानां वृत्तिपरिच्छेदाय कृतप्रयत्नेषु सर्वेष्वप्याचार्येषु भगवान् पाणिनिः शिरोमणिः वरीवर्ति। अनेन हि भगवता चतुर्दशमाहेश्वरसूत्राणि गृहीत्वा चतुःसहस्रसंख्यापरिमितसूत्रद्वारैत्र निखिलेयं सुरवाग् निरूपिता। एतावद् लघुकायं व्याकरणं अद्यावधि नास्मिल्लोके कुत्रचिदुपलब्धमुपलभ्यते उपलप्स्यते वा। सा च का पद्धतिः भगवतः इत्येतद्विषये यथोचितविस्तरं निरूपयिष्यते निबन्धे। अत्र अतिसमासरूपेण एतद् वक्तुं शक्यते यद् शब्दस्य अखण्डत्वे नित्यत्वेऽपि कार्यपक्षमवलम्ब्य वाक्ये पदकल्पना, पदे प्रकृति-कल्पना तत्तदर्थविभागकल्पना, प्रत्ययकल्पना च भगवता कृता। तत्र पदस्य किं स्वरूपम्? कति भेदाः, प्रकृतिश्च किंस्वरूपा कतिभेदाश्च तस्याः? प्रत्ययः किंरूपः? कति भेदाः इत्यादीनां सप्रमाणं विवेचनं करिष्यते। सहैव तत्र प्रकृतिप्रत्ययादीनां काल्पनिकार्थविचारोऽपि करिष्यते। प्रत्ययकल्पनायां प्रकृतिकल्पनायां वा अनुबन्धानां किं कार्यं कियती संख्या वा एतत्सर्वं विचारयिष्यते। पाणिनीयसूत्राणां षड्विधत्वं, तत्र पाणिनिकल्पिताः संज्ञाः परिभाषाः नियमः, विधिः इत्यादीनां विवेचनमपि प्रस्तोष्यते। पाणिनीयपरिकल्पितपरिभाषातिरिक्ता अपि पाणिनिसम्मता कियत्यः परिभाषाः? किञ्च तासां कार्यमिति चर्चा भविष्यति। किञ्च न केवलं सखण्डपक्षं कार्यपक्षं वा आदाय शब्दा अन्वाख्यातुं शक्याः, अपि तु तदर्थं नित्यत्वपक्षोऽपि आश्रयणीयः, अन्यथा असम्भवमन्वाख्यानमेतत्। तत्र कुत्र नित्यत्वपक्षः समाश्रयणीयः कुत्र कार्यपक्षो वा एतस्यापि विवेचनं शोधपत्रे सम्पादयिष्यते। किञ्च यौगिकधातोः (सनन्त-मङन्त-यङलुगन्त-नामधात्वादीनां) भेदाः, प्रत्यये धात्वधिकारोक्तप्रत्ययाः धात्वधिकाराविहितप्रत्ययाः, वा के? इति विषयोऽपि प्रकाशयिष्यते। इत्थं भगवता यां पद्धतिं समाश्रित्य शब्दान्वाख्यानं कृतम्, तस्याः पद्धतेः किं वैशिष्ट्यम्? किं स्वरूपमित्यादीनां यथोचितविस्तरं निरूपणमस्मिन्निबन्धे करिष्यते।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IL-40

नादब्रह्म उपास्महे

डॉ. श्रीमती कुमुद कान्हे, रायपुरम्

नकारं प्राणनामानं दकारम् अनलं विदुः।
जातः प्राणाग्निसंयोगात् तेन नादोऽभिधीयते॥

अर्थात् प्राणाग्निसंयोगात् नादोत्पत्तिः भवतीति प्रसिद्धम्। सकलं जगत् नादाधीनमस्ति। नादब्रह्मणः उपासनां विधाय अस्माकम् ऋषयः परमपदं प्राप्तवन्तः। 'शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति' (वाक्यपदीयम्) नादब्रह्मणः महिमा सङ्गीतशास्त्रेषु वर्णितः। सङ्गीतरत्नाकरे सत्यमुक्तम्—

चैतन्यं सर्वभूतानां विधृतं जगदात्मना।
नादब्रह्म तदानन्दमद्वितीयमुपास्महे॥

सकलभूतेषु चैतन्यरूपः नादः दृश्यते। तदेव ब्रह्मणः स्वरूपम्। अतः ईशाराधनाय स्वीकुर्वन्ति ऋषयः ओकारम्। धर्मार्थकाममोक्षाणम् इदमेवैकं साधनम्। पुरुषार्थचतुष्टयम् भारतीयसंस्कृतेर्मूलम्।

❖

IL-41

विभक्त्यर्थविचारः

डॉ. दुर्गाचरणषडङ्गी, पुरी

व्याकरणशास्त्रे विभक्तिः एका संज्ञा। पाणिनिव्याकरणे एतदर्थं 'विभक्तिश्च' इति सूत्रं पाणिनिना प्रणीतम्। अनेन सूत्रेण सुपां तिङां च विभक्तिसंज्ञा विधीयते। पाणिनेः प्रागपि एषा विभक्तिसंज्ञा व्याकरणशास्त्रे प्रचलिताऽऽसीत्। गोपथब्राह्मणे विभक्तिशब्दस्य प्रयोगः दृश्यते।

अस्मिन् प्रबन्धे विभक्तेः अर्थं निरूप्य विभक्तीनां द्योतकत्वं वा वाचकत्वं वा इति विचारः प्रस्तूयते।

वार्त्तिककारस्य कात्यायानस्य मते संख्याकर्मादयश्च सुपां तिङां चार्थाः। भाष्यकारेणापि एतन्मतम् अङ्गीकृतम्।

भर्तृहरिमते संख्याकर्मादयश्च विभक्त्यर्थाः। अस्य मते 'बहुषु बहुवचनम्' इत्यादिना संख्या विभक्तिवाच्यत्वेनोपदिष्टा।

विभक्तीनामर्थाः कर्मादिकारकस्वरूपाः इति हेलाराजेनोक्तम्। कैयटमते 'कर्मणि द्वितीया' इत्यादेः प्रकरणस्य 'बहुषु बहुवचनम्' इत्यादेश्च स्वादिसूत्रेण सहैकवाक्यता भवति।

उद्योतकारस्याप्ययमाशयः। विभज्यतेऽनया प्रातिपदिकार्थः इति विभक्तिः। विभक्तिः नाम कारकशक्तिः इति शब्दकौस्तुभे दीक्षितेन उक्तम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्दशक्तिप्रकाशिकायां संख्यात्वावान्तरजात्यवच्छिन्नशक्तिमान् यः प्रत्ययः सा विभक्तिः इति जगदीशतर्कालङ्कारेणोक्तम्।

सा च विभक्तिः सुपतिङ् भेदेन द्विविधा। यः शब्दः स्वार्थे धर्मिणि स्वप्रकृत्यर्थविधेयकान्वयबोधम्प्रति समर्थः सा सुबादिविभक्तिः उच्यते। सा विभक्तिः प्रथमाद्वितीयादिभेदेन सप्तविधा। तिङ्स्तु स्वार्थभावनाद्यन्वयित्वेन बोधयन्ति। न तु स्वप्रकृत्यर्थेति। स्वभिन्नप्रथमान्तस्य नाम्नः अर्थे स्वार्थसंख्याबोधं प्रति-समर्थाः प्रत्ययाः तिङः उच्यन्ते।

व्युत्पतिवादस्य द्वीपिकाटीकाकारस्य मते संख्यात्वावान्तरजातिमच्छक्तत्वे सति प्रत्ययत्वं विभक्तित्वम्। नैयायिकानां मते संख्याकर्मादयश्च विभक्त्यर्थाः।

भोजराजस्य मते विभक्त्यर्थः त्रिधा-संख्या कारकं शेषश्च।

❖

IL-42

उरण्रपरः इति सूत्रविमर्शः

डॉ. टी.एन. वैष्णवः, रायपुर

उरण्रपरः इतिसूत्रम् अच्सन्धिप्रकरणे सिद्धान्तकौमुद्यां प्रतिपादितमस्ति, अष्टाध्याय्यां तु महर्षिपाणिनिना (1.1.5) क्रमाङ्के उद्धृतम्। भट्टोजिदीक्षितेन उक्तसूत्रे तु चत्वारः पक्षाः उल्लिखिताः विस्तरेण सूत्रेऽस्मिन् ऋकारस्य षष्ठ्यन्तप्रयोगः 'उः' इति, एवं सति उः + अण् इतिविच्छेदेन 'उरण्' इति भवति, अत्र विद्यमान— 'अण्' प्राणने इति धातुगतः अर्थोऽपि समाहितः वर्तते न वेति तार्किकमतं विविच्यते। ऋकारस्य तात्त्विकार्थः कृष्ण इति पदे निहितोऽस्ति—

कृषिर्भूवाचकः शब्दः षश्च निर्वृत्तिवाचकः।
तयोरेव समाहारः कृष्णेति परिगीयते॥

अत्र एवं विचार्यते यत् कथम् उरण्रपरः इति सूत्रेण 'ब्रह्मेति' पदवाच्यं कथङ्कारं व्यनक्ति, 'उरण्' इति तु बाह्यदृष्ट्या उकारः रकारः (रेफः) णकारश्चेतित्रिकवर्णसंयोगाः वर्तन्ते, अत्रोकारः विप्रः/वह्निः/निकेतः इति शब्दानामपरपर्यायः (निपाताव्ययोपसर्गवृत्तौ) उकारेण ब्रह्मप्रजापतिरिति बोधोऽपि भवति। उकारेण विष्णुपदस्यापि बोधः वायोरपि बोधः, अनेन प्रकारेण उकारेण (विष्णुना/वायुना/ब्रह्मणा च सर्वे प्राणिनः अनति (प्राणान् धारयति) अन प्राणने धातोः सिद्धे सति।

अत्र सूत्रस्य शास्त्रीयपक्षेण सह तात्त्विकविवेचनं यथामति करिष्यते।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IL-43

समुपेक्षिताः बिहारराज्योद्भवाः कतिपयवैयाकरणाः

डॉ. रामकृष्णपाण्डेयः परमहंसः, पं. बंगालस्य

शताधिकाः शाब्दिकप्रवराः विद्वन्मण्डलमण्डितेऽस्मिन् बिहारराज्ये समये-समये समवतीर्णाः येषाममूल्ययोगदानेनात्र व्याकरणवाङ्मयस्य पाणिनीयशाखाः पाणिनीयेतरशाखाश्च वृद्धिमापन्नाः मण्डिताश्च। एतादृशां विशिष्टविदुषामुल्लेखः इतिहासग्रन्थेषु नितान्तमावश्यकः; परन्तु दौर्भाग्यात् नोपन्यस्तास्ते इतिहासकारैः। बिहारसञ्ज्ये समुत्पन्नाः अन्येऽपि परश्शताः एतादृशाः शाब्दिकाः येषां कृतयो विनष्टाः अप्रकाशिताः अद्यापि पुस्तकालयेषु, संग्रहालयेषु च स्थापिताः कीटदष्टाः अनुदिनं विनष्टाः भवन्ति। एतादृशग्रन्थरत्नानां सङ्ग्रहः, संरक्षणं, प्रकाशनं तल्लेखकानां देश-काल-वैदुष्यादिवर्णनञ्च भाविनां वैयाकरणानामनुसन्धित्सूनाञ्च कृते कल्पिष्यते कल्याणाय, उत्साहाय, ज्ञान-विवर्धनाय, व्याकरणवाङ्मयस्य श्रीवृद्धये च इति कृत्वा मया शोधपत्रस्य कृते विषयोऽयमङ्गीकृतः।

❖

IL-44

अथ शब्दानुशासनमित्यस्य विमर्शः

डॉ. केशवकुमाररायः, झारखण्डम्

अथ शब्दानुशासनमिति पाणिनीयं सूत्रं पातञ्जलं वाक्यम्वेति संशयः बहूनां विदुषां मध्ये। तदपि पाणिनीयं प्रथमं सूत्रं, पातञ्जलं प्रथमं वाक्यम्वेत्यत्र विवदन्ते विपश्चितः। पाणिनीयप्रथमसूत्रत्वेन विदुषां मतमालोच्य पातञ्जलप्रथमवाक्यत्वेन सिद्धान्तितमस्मिन् शोधनिबन्धे।

❖

IL-45

पाणिनीयव्याकरणे तदन्तविधिः

डॉ. रमेशचन्द्रपण्डाः, वाराणसी

विदितमेव समेषां विदुषां यत् पाणिनिः स्वरचिताष्टाध्यायीग्रन्थे प्रथमाध्यायप्रथमपादे तदन्तविधायकं 'येन विधिस्तदन्तस्येति सूत्रं प्रणिनायेति। अष्टाध्यायीसूत्राणां व्याख्यातारः सूत्रान्तराणां व्याख्यासौकर्याया-भिहितपदसाधनाय च सूत्रस्यास्य विविधां व्याख्यां कृतवन्तः। न केवलमेतदपि तु पाणिनिः स्वग्रन्थे बहुत्र अन्तग्रहणमपि चकार। किं तत्तत्सूत्रेषु येन विधिस्तदन्तस्येति सूत्रं न प्रवर्तते वा? प्राचीना व्याख्याकृतो विषयेऽस्मिन् स्वानुमतं विचारं स्वस्वग्रन्थेषु प्रादर्शयन्। एतेषां मतानुसारेण क्वचिद् अन्तग्रहणं परिभाषाया ज्ञापकम्, क्वचित्स्पष्टार्थम्, क्वचिच्चान्यदर्थमिति ज्ञायते। ज्ञापकसिद्धपरिभाषाणाञ्च समीक्षणं करणीयमिति धिया लिखितोऽयं लेखोऽनेन जनेन।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IL-46

अभिराम कृत काव्य मन्दाकिनी की पाणिनीय परीक्षा

सुश्री ज्योत्स्ना त्रिपाठी, सुल्तानपुर

आचार्य पाणिनि ने अष्टाध्यायी में—1. विधि, 2. निमन्त्रण, 3. आमन्त्रण, 4. अधीष्ट, 5. संप्रश्न तथा 6. प्रार्थना इन छः प्रकार के वाग्व्यवहारों में लिङ्लकार के प्रयोग का विधान किया है। काव्य के प्रयोजनों को बताते समय आचार्य मम्मट ने कान्तासम्मितोपदेश को काव्य का अन्तिम तथा सर्वातिशायी प्रयोजन बतलाया है। यद्यपि उपदेश प्रभुसम्मित तथा सुहृत्सम्मित भी होते हैं। काव्य उपदेशात्मक होते हुए भी रसात्मकता की संजीविनी से जीवन्त रहता है। काव्य मन्दाकिनी आद्यन्त भुजङ्गप्रयात छन्द में उपनिबद्ध है। इसमें कुल 132 पद्य हैं तथा सभी पद्यों के अन्त में 'स्यात्' क्रियापद का प्रयोग किया गया है। यह 'अस्' धातु का लिङ्लकार प्रथमपुरुष एकवचन का प्रयोग कहीं विधि में है तो, कहीं निमन्त्रण में, कहीं आमन्त्रण में है, तो कहीं संप्रश्न में और कहीं अधीष्ट में तो, कहीं प्रार्थना में है। कहीं एक अर्थ वाच्य है, तो कोई दूसरा लक्ष्य हो गया है। लक्ष्य के साथ-साथ व्यंग्यार्थ का चमत्कारपूर्ण स्फुरण होता हुआ हृदय को आह्लादित करता है। कई स्थलों पर वाच्यार्थ में अधिक चमत्कार होने से गुणीभूत व्यङ्ग्य की स्थिति परिलक्षित होती है। किसी-किसी पद्य में तो एक से अधिक अर्थ वाच्यार्थ की कोटि में झलक रहे प्रतीत होते हैं। बोद्धा अपनी रुचि के अनुरूप अर्थ का अनुसन्धान कर सकते हैं। वस्तु ध्वनि के कई स्थल ऐसे हैं, जो बहुत ही मनोहर लगते हैं। अलंकार ध्वनि तथा रसध्वनि के अनेक पद्य हैं। रचनाकार ने एक ही क्रिया पद के प्रयोग के द्वारा अपने अनेक प्रकार के आशयों की अभिव्यक्ति में सफलता प्राप्त की है। उदाहरणार्थ—प्रथम पद्य में ही कवि ने सम्पूर्ण भूमण्डल के सुव्यवस्थित एवं सुरक्षित होने की बात कही है, उसका कारण अपनी निष्ठा के अनुरूप यह बताना है कि सारे भूमण्डल के ऊपर हनुमत्कृपा की कल्पलता का वितान छाया हुआ है, जो सब प्रकार की विपदाओं से समस्त भूमण्डल के प्राणियों की रक्षा ही नहीं करता बल्कि समस्त कामनाओं की पूर्ति अनायास करता है। प्राणी को जो दुःख तथा सन्ताप मिलता है, वह उसके अपने कर्मों के परिणाम है, अतः उसको सदैव शुभ कर्मों के सम्पादन में ही मन लगाना चाहिए। यदि कोई दूसरा दुःखी है, तो हो सकता है उसमें हमारा कोई कर्तृत्व कारण हो। इसलिए हमें सदैव सावधान रहते हुए शुभकर्म करना चाहिए। हमें सदैव आत्मदर्शन करते रहना चाहिए। अपने में दोषों को देखकर उन्हें दूर करना चाहिए। हमें सदैव सरल तथा कोमल होना चाहिए, जो कुटिल तथा कठोर हैं, उनका भी कल्याण अभीष्ट है। इसलिए कठोर तथा कुटिलों को दण्डित करने वाले भगवान् राम से यह प्रार्थना की गयी है (यह विधि भी है, आमन्त्रण, निमन्त्रण, संप्रश्न तथा अभीष्ट भी है) कि कठोर हृदय वालों को नादान समझकर भगवान् उन पर भी अनुकम्पा बनाये रखें।

कवि ने अपने को ही खर अर्थात् खल मानकर अपने ऊपर भगवान् की अनुकम्पा के लिए धात्वर्थ के सभी लिङर्थों को विनियुक्त कर लिया है, ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है। इस प्रकार काव्य मन्दाकिनी के प्रत्येक पद्य में षडर्थों का संग्रह है। यह एक ऐसा शुभ तथा काव्यात्मक षडयन्त्र है, जो अद्भुत अर्थगौरव

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की सृष्टि कर रहा है। इस शोध पत्र में इस रहस्य के उद्घाटन का प्रयास किया गया है कि कवि की प्रतिभा तथा कविभारती किसलिए वन्दनीय तथा अभिनन्दनीय है।

❖

IL-47

'भविष्यत् कहा' का आलोचनात्मक परिशीलन

श्री रामानुज पाण्डेय

अपभ्रंश को आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की जननी होने का श्रेय प्राप्त है। इसी भाषा में रचित महाकवि धनपाल की 'भविष्यत कहा' का आलोचनात्मक परिशीलन इस शोध विषय के माध्यम से किया गया है। भविष्यत कहा की विषयवस्तु, वस्तु वर्णन, सामाजिक रीतिरिवाज, सौतेली माँ का व्यवहार, सौतेला भाई का व्यवहार आदि का बडा ही रोचक विस्तृत वर्णन है, जो सामाजिक बुराईयों को दूर करने के लिए प्रेरणा का स्रोत देता है।

शोध विषय की कथानक रुढ़ियों के माध्यम से सामाजिक समरसता, न्याय आदि की महत्ता प्रदर्शित करते हुए कथानक को मनोरंजक, गतिशील आदि बनाने का प्रयास किया गया है।

अपभ्रंश के महासाहित्य भविष्यत कहा में काव्यरूपों तथा मात्रा छन्दों का प्रेरक वर्णन है। जीवन के हर बिन्दु की गति तथा प्रगति मिली है। इस प्रकार अपभ्रंश साहित्य में भविष्यत् कहा का विशिष्ट स्थान है तथा बिना इसके अध्ययन मनन के भारतीय दर्शन, इतिहास, धर्म, संस्कृति, लोकजीवन आदि का ज्ञानपूर्ण नहीं हो सकता। लौकिक कथा भविष्यदत्त कहा जैनधर्म में लोकप्रिय कथा है तथा चरित्र विकास में सर्वाधिक सहायक है।

❖

IL-48

पाणिनीय उपपद : विभक्तियों का अध्ययन

कु० गुंजन गर्ग, भरतपुर

संस्कृत व्याकरण के आधारभूत आचार्य पाणिनि संस्कृत जगत् में पदवादी आचार्य के रूप में सुविख्यात हैं। वाक्य की प्रधान इकाई पद को 'सुप्तिङन्तं पदम्' सूत्र द्वारा व्याख्यायित करने का श्रेय आचार्य पाणिनि को ही जाता है। वाक्य संरचना को व्याख्यायित करने वाले 'पाणिनीय कारक-विभक्ति सूत्र' प्रमुख हैं। कारक को परिभाषित करते हुए आचार्य पतञ्जलि कहते हैं—'साधकं निर्वर्तकं कारकसंज्ञं भवति' अर्थात् जो क्रिया का साधक हो, उसे सम्पादित करता हो, उसे कारक कहते हैं। 'क्रियाजनकत्वं कारकत्वम्' कारक की यह परिभाषा सर्वविदित है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाणिनीय अष्टाध्यायी में कारक सम्बद्ध 115 सूत्रों का प्रतिपादन किया गया है, जिसके अन्तर्गत क्रिया को निमित्त मानकर विभक्ति निर्देश करने वाले 51 सूत्र कारक-विभक्ति के तथा पद को निमित्त मानकर विभक्ति-निर्देश करने वाले 49 सूत्र उपपदविभक्ति के तथा अन्य 18 सूत्र जिनमें से 3 सूत्र पूर्वगृहीत हैं। (संज्ञा-सूत्र, विधि-सूत्र, अधिकार-सूत्रादि)

जिज्ञासा होती है कि 'क्रियाजनकत्वं कारकत्वम्' है, तो पद को निमित्त स्वीकार कर विभक्ति निर्देश करने वाले सूत्र अधिक संख्या में क्यों हैं? कारक विभक्ति तथा उपपद विभक्ति सूत्रों की लगभग समकक्ष संख्या यास्कीय निरुक्त के 'तद् यत्रोभे भावप्रधाने भवतः' इस परम्परासम्मत एवं समस्त वैयाकरणसम्मत वाक्य को भी अतिक्रान्त कर देती है। प्रश्न उठता है कि यह विभक्ति-निर्देश क्रियाधार पर प्रमुख है या पदाधार पर। मन में प्रस्फुटित होने वाले इस प्रश्न पर एक विहंगम दृष्टि डालने का प्रयास इस शोधपत्र में प्रस्तुत किया जायेगा। वाक्य के प्राण कारक तथा विभक्ति में उपपद, विभक्ति सूत्रों का स्थान, महत्त्व तथा साहित्य जगत् में पाणिनिसम्मत उनके प्रयोग और अप्रयोग का प्रदर्शन प्रस्तुत शोधपत्र का प्रतिपाद्य होगा।

❖

IL-49

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा का संक्षिप्त अध्ययन

श्रीमती डॉ० पुष्पकरम्, मुजफ्फरपुर (बिहार)

भारतीय आर्यभाषा को तीन भागों में बाँटा गया है—

1. प्राचीनकालीन भारतीय आर्यभाषा,
2. मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा और
3. आधुनिककालीन भारतीय आर्यभाषा

प्राचीन भारतीय आर्यभाषा का काल 1500 ई.पू. से 500 ई.पू. तक माना जाता है, इस वर्ग में भाषा के दो रूप थे—(i) वैदिक संस्कृत, (ii) लौकिक संस्कृत।

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा का काल 500 ई. पूर्व से 1000 ई. तक माना जाता है। इसमें पालि, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं का अध्ययन है।

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का काल 1000 ई. से लेकर वर्तमान काल तक माना जाता है। इसमें दक्षिण भारत की भाषाओं को छोड़कर प्रायः सम्पूर्ण भारत की भाषाओं का अध्ययन किया गया है।

'मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं का काल 500 ई.पू. से 1000 ई. तक माना जाता है। इस पूरे काल की भाषा को सामान्य रूप से 'प्राकृत' कहा गया है। इस प्राकृत को तीन भागों में विभाजित किया गया है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(i) प्रथम प्राकृत : (काल 500 ई.पू. से ई. सन् के आरम्भ तक)। इस काल की भाषा में (क) पालि और (ख) शिलालेखी प्राकृत आती है।

(ii) द्वितीय प्राकृत : (काल ई. सन् के आरम्भ से 500 तक) इस काल की भाषा प्राकृत ही कहलाती है तथा इसके अनेक रूप हमें उपलब्ध होते हैं। प्राकृत के जो रूप हमें प्राप्त होते हैं, वे धर्म, साहित्य और भाषा-विज्ञान पर आधारित हैं।

(iii) तृतीय प्राकृत : (काल 500 ई. से 1000 ई. तक)।

इसे अपभ्रंश भाषा कहते हैं। इसके भी अनेक रूप उपलब्ध होते हैं। जो निम्नलिखित हैं—(i) मागधी, (ii) अर्द्धमागधी, (iii) महाराष्ट्री, (iv) खस, (v) ब्राचड़, (vi) शौरसेनी, (vii) पैशाची।

प्रस्तुत शोध-निबन्ध में उपर्युक्त बिन्दुओं पर विचार किया गया है।

❖

IL-50

व्याकरण विषयककविसमय सिद्धान्त

डॉ० जनार्दन प्रसाद पाण्डेय, प्रतापगढ़

काव्य में प्रयोज्य शब्द : 1. लौकिक शब्द 'स्वस्ति'। 2. वृद्धि जनित पद 'मार्जन्ति'। 3. वार्तिक एवं भाष्य सिद्ध पद। 4. एक शेष पद 'वरुणौ' 'इन्द्रौ' 'भवौ' आदि। तथा प्रातिपदिक से विहित 'पट्यति' आदि। तृच् प्रत्ययान्त शब्द तथा अकप्रत्ययान्त शब्द समास रहित होने पर ग्राह्य है। जैसे—वृत्रस्य हन्ता, तस्य गमकः। 5. द्विगु समास का स्त्री लिङ्ग में प्रयोग, जैसे—पञ्चराजी, त्रिलोकी आदि। 6. अभूत तद्भाव विषयक भृशादि गणीय हल् का लोप अभीष्ट है। जैसे—सुमनस्, उन्मनस्, विमनस् आदि। से क्यङ् प्रत्यय करने पर सुमनायते, उन्मनायते, विमनायते। 7. क्विप् प्रत्ययान्त शब्दों का तृतीया एक वचन एवं षष्ठी बहुवचन अभीष्ट है। जैसे—बलभिदा, सुरुचा, विद्युता आदि। तथा बलभिदां, सुरुचां, विद्युतां। इसी प्रकार से असन्त शब्द। जैसे—अम्भसा, भासा, यशसा, षष्ठी में अम्भसां यशसां, भासां। क्वसु, प्रत्ययान्त शब्दों का पुलिङ्ग एवं स्त्रीलिङ्ग में प्रयोग इष्ट है। जैसे—पुलिङ्ग, उपेयुषां, स्त्रीलिङ्ग में 'दधुषी' आदि। 8. शबलादि से विहित णिच् प्रत्यय से निष्पन्न शब्द, जैसे—शबलयति, वीजयति। 9. ताच्छिल्यविषयक पाणिनि का प्रयोग तीनों लिङ्गों में ग्राह्य है। जैसे—हारी, हारि, हारिणी, ताच्छील्यादि में तृनादि सभी प्रत्यय प्रायः ग्राह्य हैं जिसमें युच, कुरच्, वरच्, इष्णुच् विशेष रूप से इष्ट है। जैसे—युच्, चलन्, कम्पन् आदि। कुरच्—विदुर, भिदुर, स्थावर, ईश्वर, इष्टच, अलंकरिष्णु, निराकरिष्णु आदि। 10. आस् धातु से नित्य युच् जैसे—'उपासना', कर्तरि ल्युट् का भी जैसे—देवन्, रमन् आदि। अणन्त से ङीप् जैसे—पुरन्दर से पौरन्दरी, लाक्षा और रोचन से ठक् लाक्षिक, रौचनिक। कुमुद् नड् वेतस् से ड्मतुप्। जैसे—कुमुद्वत्, नड्वत्, वेतस्वत्। इसके बाद इस निबन्ध में काव्य में अप्रयोज्य शब्दों पर विचार किया गया है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IL-51

कालिदास के रूपकों के नामधातु का भाषाशास्त्रीय अध्ययन

डॉ. भोला मिश्र, देवघर

नामधातु नामिक शब्दों द्वारा धातु बनाने की एक प्रक्रिया है जिसके प्रयोग ऋग्वेदसंहिता से ब्राह्मण तक में उपलब्ध हैं।

इसका अर्थ तद्वत् होना, तद्वत् आचरण करना, प्रतिनिधित्व करना, तद्वत् ग्रहण करना, मानना, प्रेरक होना, बनाना, व्यवहार करना, प्रयोग करना, चाहना, इच्छा करना तथा लालायित होना है। पूर्व के लक्ष्य ग्रन्थों में विहित इसके प्रयोग की विविधता के आधार पर ही आचार्य पाणिनि ने अपने पाणिनीय-व्याकरण 'अष्टाध्यायी' के तृतीय अध्याय (प्रथम पाद) में विहित सनादि गणपठित प्रत्ययों में से क्यच, काम्यन्व, क्यड क्यष्, क्विप्, णिच् और णिङ् प्रत्ययों द्वारा नामधातु की निष्पत्ति का कथन किया है।

संस्कृत अन्यान्य लक्ष्यग्रन्थों में से क्यङ्, क्यच्, क्यष्, णिच् एवं णिङ् कुल पाँच प्रत्ययों के प्रयोग मिलते हैं जिनमें क्यङ् से, क्यच् 3 क्यष् 2 णिच् 6, तथा णिङ् केवल एक अंग कामयते विः में देखा जा सकता है।

इस तरह एकाधिक स्थलों को छोड़ यथा—अवतन्सय ज्या 2/4)—अवतन्स + णिच् + लोच + सिप्—इनके सारे प्रयोग वर्तमानकालिक हैं।

❖

IL-52

भाष्यकार के अनुसार 'सन्निपात परिभाषा' की आवश्यकता पर विचार

श्री भीम सिंह, कुरुक्षेत्र

आचार्य पाणिनि के प्रतिष्णात सूत्रों के छह प्रकारों में परिभाषा सूत्रों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अनियम प्रसङ्ग में नियम का विधान करने वाले या शास्त्र के एकदेश में पठित होकर भी सर्वत्र व्यापृत रहकर शास्त्र को दिशा दिखाने वाले सूत्र, परिभाषा सूत्र कहलाते हैं। व्याकरणशास्त्र में तीन प्रकार की परिभाषाएँ प्राप्त होती हैं, तद्यथा—वाचनिक, ज्ञापकसिद्ध तथा (लोक) न्यायसिद्ध। प्रकृत 'सन्निपात परिभाषा' लोकव्यवहारानुभवसिद्ध है। इस परिभाषा का स्वरूप इस प्रकार है—'सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्य'। इसका अर्थ है कि जो दो के सन्निपात या सम्बन्ध अथवा संश्लेष को निमित्त मानकर विधि होती है, वह उन दोनों के सन्निपात या सम्बन्ध को विघात करने वाली किसी दूसरी विधि का निमित्त कभी नहीं बना करती।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाष्यकार ने 'कृन्मेजन्तः' (पा. 1.1.38) सूत्रभाष्य में 'अनन्यप्रकृतिरिति; इस वार्तिक के अन्यथा सिद्धि करने के लिए उक्त परिभाषा को उपस्थापित करके इसकी सविस्तर आवश्यकता प्रतिपादित की है। तदनुसार इसके अनेक प्रयोजनों में से एक को सोदाहरण स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि यदि यह परिभाषा न मानी जाए तो फिर 'वृत्रहभिः' इत्यादि में 'न' लोप हो जाने पर अनिष्ट 'तुक्' प्राप्त होता है। परन्तु प्रकृत परिभाषा के द्वारा यह 'न' लोप पदसंज्ञा प्रयुक्त आनन्तर्य के विघात का निमित्त नहीं बनेगा। फलतः यहाँ अनिष्ट 'तुक्' नहीं होगा। इसके बाद भाष्यकार स्वयं इन प्रयोजनों का खण्डन करते हुए इस परिभाषा को मानने में दोष देते हुए कहते हैं कि यदि परिभाषा मानी जाए तो फिर 'क्रापयति' में 'णिच्' परे रहते विहित आत्व को 'पुक्' आगम का निमित्त नहीं होना चाहिए।

अब यहाँ विचारणीय है कि फिर इस परिभाषा को रखा जाए या नहीं? इस विषय में भाष्यकार दो लोकन्यायों के द्वारा कण्ठरवेण यह स्पष्ट घोषित करते हैं कि इस परिभाषा को मानने पर कुछ दोष प्राप्त होते हैं। तथापि उसका यह तात्पर्य नहीं है कि यह परिभाषा रखी ही न हो, जैसे पशु खेती को खा जायेंगे। इसका तात्पर्य नहीं कि खेती करना ही छोड़ दे या भिक्षुक माँगने आयेंगे। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि हम थाली में भोजन रखकर खाना छोड़ दें। अर्थात् यह सब होने पर भी जिस प्रकार उक्त दोनों कार्य निर्बाधरूप से होते रहते हैं इसी प्रकार यहाँ भी इस परिभाषा को मानने पर प्राप्त होने वाले सारे दोष तो यहाँ दिखा दिए गए हैं, जबकि प्रयोजनों के उदाहरणमात्र ही दिए गए हैं। अतः प्रयोजनों की आवश्यकता को देखते हुए यह परिभाषा अवश्य स्वीकार करनी चाहिए तथा इसको मानने पर प्राप्त होने वाले दोषों का ज्ञापक आदि के द्वारा प्रतिविधान कर लेना चाहिए। जैसाकि प्रदीपकार कैयट ने इस परिभाषा को मानने पर प्राप्त होने वाले सभी दोषों का सप्रमाण समाधान कर भी दिया है।

❖

IL-53

सिद्धहेमशब्दानुशासनगत बहुव्रीहिसमासविधायक सूत्र : एक विमर्श

सुश्री ज्योति शर्मा, कुरुक्षेत्र

संस्कृत व्याकरण का पूर्ण श्रेय महामुनि पाणिनि को जाता है। पाणिनि के परवर्ती व्याकरणग्रन्थों के प्रणेताओं में श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय के आचार्य हेमचन्द्र का नाम विशेष रूप से स्मरणीय है। इनका व्याकरणग्रन्थ 'सिद्धहेमशब्दानुशासन' आठ अध्यायों तथा बत्तीस पादों में विभक्त है। इसमें प्रथम सात अध्याय संस्कृत शब्दानुशासन तथा अन्तिम अष्टम अध्याय प्राकृत-शब्दानुशासन है। संस्कृत शब्दानुशासन को चार भागों में बाँटा गया है—

1. चतुष्कवृत्ति, 2. आख्यावृत्ति, 3. कृद्वृत्ति, 4. तद्धितवृत्ति। प्रथमभाग में 'समास-प्रकरण' वर्णित है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाणिनि ने प्रत्याहार सूत्रों का निर्माण किया है। इन सूत्रों का स्मरण किए बिना संज्ञाओं का अर्थबोध नहीं हो सकता, लेकिन हेमचन्द्र ने प्रत्याहार सूत्रों का पृथक् निर्माण न करके अपनी आवश्यकता के अनुसार संज्ञाओं का विधान किया है। इन्होंने सूत्र, वृत्ति के साथ प्रक्रिया और उदाहरण भी लिखे हैं। पाणिनि ने जहाँ एक बात को स्पष्ट करने के लिए दो-तीन सूत्रों का निर्माण किया है, वहाँ हेमचन्द्र ने एक ही सूत्र लिखकर उसकी वृत्ति में स्वयं पूर्णतया अर्थ स्पष्ट कर दिया है, यथा उन्होंने 'नाम नाम्नैकार्थ्यं समासो बहुलम्' (सि.हे.श., 3.0.1.18) सूत्र द्वारा समास का विधान किया है। जबकि पाणिनि ने इसके लिए 'प्राक्कडारात् समासः' (अष्टा. 2.1.2), सहसुपा' (अष्टा. 2.1.4) सूत्रों की रचना की है।

सिद्ध हेमचन्द्र ने शाकटायन वैयाकरण के अनुसार 'बहुव्रीहि समास' से समास-प्रकरण का आरम्भ किया है। जबकि पाणिनि ने अव्ययीभाव समास से किया है।

इस प्रकार प्रस्तुत शोधपत्र में पाणिनि व हेमचन्द्र के बहुव्रीहिसमासविधायक सूत्रों का तुलनात्मक विवेचन करने का प्रयास किया गया है। दोनों व्याकरणों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि पाणिनि के व्याकरण की जटिलता को त्यागकर हेचमन्द्र ने जिस नवीन व्याकरण की रचना की है, उसमें बहुशः पाणिनि का ही अनुसरण दिखाई देता है। तथापि कहीं पर कुछ नवीनता व व्याकरण का सरलरूप दृष्टिगोचर है।

❖

IL-54

शान्तनवाचार्य के फिट्सूत्र का उपयोग

कु. प्रियंका राय

पाणिनीय वैयाकरण सम्प्रदाय में आदृत स्वर विषयक एक छोटा सा ग्रन्थ है जो फिट्-सूत्र के नाम से प्रसिद्ध है। शान्तनवाचार्य ने फिट्-सूत्रों की रचना की है। ये फिट्-सूत्र पाणिनीय सम्प्रदाय में अपना विशिष्ट महत्त्व रखते हैं।

अति प्राचीन काल में संस्कृत-भाषा के सभी शब्द यौगिक माने जाते थे। उस समय शब्दों के स्वरों का ज्ञान प्रकृति-प्रत्यय विभाग द्वारा होता था, किन्तु उत्तरोत्तर जब शब्दों की एक बड़ी राशि रूढ़ माने जाने लगी, तब भी जो आचार्य नामों को रुढ़ नहीं मानते थे, उनके मत में उन शब्दों के स्वरों की व्यवस्था औणादिक प्रकृति-प्रत्यय द्वारा उत्पन्न हो जाती थी। परन्तु जिनके मत में औणादिक शब्द रूढ़ है, अर्थात् अव्युत्पन्न है, उनके मत में प्रकृति विभागरहित शब्दों के स्वर ज्ञान के लिए किसी ऐसे शास्त्र की आवश्यकता हुई, जो अखण्ड शब्दों का परिज्ञान करा सकें। यथा—

श्वेतवनवासी (उणादिवृत्ति में) के अनुसार—

अव्युत्पत्तिपक्षे तु लघावन्ते द्वयोश्च बह्वषो गुरु इति मध्योदात्तः।
अस्य फिट्सूत्रस्य अयमर्थः.....।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाभाष्य प्रदीपोद्योत में नागेश भट्ट के अनुसार—

प्रकृतिप्रत्ययविभागशून्येष्वेव फिट्सूत्रप्रवृत्तेश्च।

उपर्युक्त तथ्यों से ही निष्कर्ष निकलता है कि फिट् सूत्रों की प्रवृत्ति अव्युत्पत्तिपक्ष में ही होती है। इन फिट् सूत्रों का प्रयोग पतंञ्जलि, कात्यायन, नागेश भट्ट, भट्टोजिदीक्षित हरदत्त, चन्द्रगोमी आदि प्राचीन एवं अर्वाचीन वैयाकरणों ने आदरपूर्वक किया है।

❖

IL-55

'प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा'-सूत्रस्थ 'परिमाण' शब्द के अर्थों की विचारणा

डॉ. निहारिका पटेल, अहमदाबाद

प्रस्तुत संशोधन-लेख में प्रातिपादिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा (2.3.46) सूत्र का अर्थ समझा कर इसकी विस्तृत समजूती दी गई है। प्रतिपदिकार्थमात्र में, लिङ्गमात्राधिक्य में, परिमाणमात्र में और वचनमात्र में प्रथमा विभक्ति का प्रयोग किया जाता है, ऐसा सूत्रार्थ है। किन्तु प्रातिपादिकार्थ से किसका बोध होता है? पाणिनि को लाघव न करके लिङ्ग-वचनादि को भिन्न स्वतन्त्र अर्थ के रूप में प्रयोजन की क्या आवश्यकता थी? उसका विचार करके 'परिमाण' शब्द के टीकाकारों ने दिये हुए विविध अर्थघटनों को प्रस्तुत कर, ऐतिहासिक दृष्टिकोण से 'परिमाण' शब्द का नया अर्थ किसने कब दिया? उसका विमर्श करना यह प्रस्तुत संशोधन-लेख का हार्द है।

❖

IL-56

सिद्धान्तकौमुदी में अनुवृत्ति की समस्या का समाधान

श्री अभिजित दीक्षित, विलासपुर

सिद्धान्तकौमुदी वस्तुतः पाणिनीय अष्टाध्यायी की व्याख्या है। श्रीभट्टोजि दीक्षित ने प्रक्रियानुरोध से उसे लिखा है और उसे लिखते समय उनके सामने अष्टाध्यायी अपने सारे विज्ञान के सहित उपस्थित थी। यही कारण है कि अनुवृत्ति और वृत्ति, उनके लिये समस्या नहीं थी, किन्तु अष्टाध्यायी को किनारे करके जो सिद्धान्तकौमुदी के अध्ययन की विधि विकसित हुई, उससे अनेक अध्याय, पादों के सूत्रों के एकत्रावस्थान से सूत्रों के क्रम को जान सकना और जानकर धारण कर सकना प्रायशः असम्भव हो गया। इसलिये टीकाकारों के लिये आवश्यक हो गया है कि वे दो असंगत सूत्रों के बीच में सुसंगति स्थापित

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने के लिये बीच के सारे सूत्रों को देकर कहे 'इत्येष सत्रक्रमः'। यह उन्हें स्थान-स्थान पर करना ही पड़ता है। यह सूत्रों का क्रमभङ्ग ही हमें विवश करता है कि हम वृत्ति रटें।

सूत्रक्रम के ज्ञान के बिना 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्', 'पूर्वत्रासिद्धम्' और 'असिद्धवदत्राभात्' आदि सूत्रों की प्रवृत्ति करना भी दुष्कर होता है। कौन सा अधिकार कहाँ से लेकर कहाँ तक जाता है, यह जानना भी सिद्धान्तकौमुदी के छात्र के लिये कठिन होता है, क्योंकि कौमुदी में अधिकार एकसूत्रात्मक ही हैं।

अतः जिस प्रकार श्री भट्टोजिदीक्षित ने अष्टाध्यायी को सम्मुख रखकर कौमुदी की रचना की, उसी प्रकार हम भी अष्टाध्यायी को सम्मुख रखकर और कौमुदी को उसकी व्याख्या मानकर अष्टाध्यायी का अध्ययन करें। जो भी अधिकार आये, उसका प्रत्यक्ष दर्शन हम अष्टाध्यायी में करें। जहाँ से अनुवृत्ति आ रही हैं, उन स्थलों को हम अष्टाध्यायी में प्रत्यक्ष देख लें, तो वृत्ति रटने से भी मुक्ति मिल जायेगी और कौमुदी में किस स्थान पर बैठा हुआ सूत्र अष्टाध्यायी के किस स्थान से आया है, यह बोध भी सुदृढ़ होता जायेगा। इस प्रकार अष्टाध्यायी साध्य हो और कौमुदी उसका साधन बने तो अधिकार और अनुवृत्ति की समस्याएँ स्वतः समाहित हो जायेंगी।

❖

IL-57

परिभाषाओं के सन्दर्भ में वाक्यार्थपरिसमाप्ति विचार

डॉ. श्रीकृष्ण शर्मा, कुरुक्षेत्र

पाणिनीय-तन्त्र को अत्यन्त सुव्यवस्थित और वैज्ञानिक पद्धति से सूत्रित माना जाता है। इतना होते हुए भी अध्येताओं को अनेक स्थानों पर सूत्रार्थ की अन्विति में सन्देह उपस्थित होने लगता है। ऐसे प्रसंगों में सहायकभूत अन्यान्य प्रमाणों में ही सन्देह की निवृत्ति करके शास्त्रवचन की संगति की जाती है। इस दृष्टि से आचार्य पाणिनि के अनुयायियों को, व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्न हि सन्देहादलक्षणम्' इस प्रकार के सिद्धान्तवाक्यों का प्रवर्तन करना पड़ा। पाणिनीय सम्प्रदाय के विद्वान् इस प्रकार के समाधानपरक सिद्धान्तवाक्यों को परिभाषा कहते हैं। 'विधौ नियमकारिणी परिभाषा'—यह लक्षण परिभाषा के महत्त्व को सम्यक्तया अभिव्यक्त कर देता है। 'परितो व्यापृतां भाषां परिभाषां प्रचक्षते'—इस लक्षण का भी यही तात्पर्य है कि जो सिद्धान्तवचन सन्देह की स्थिति उत्पन्न होने पर सम्पूर्ण रूप से समर्थ समाधान प्रस्तुत करे, उसे परिभाषा कहा जाता है। ये परिभाषाएँ चार प्रकार की हैं—ज्ञापित, वाचनिक, न्यायसिद्ध तथा मिश्रित। प्रस्तूयमान शोधपत्र में परिभाषाओं के आलोक में यह विवेचन किया जाना अभीष्ट है कि पाणिनीय सूत्रों द्वारा उपदिष्ट कार्य की अन्विति (= वाक्यार्थपरिसमाप्ति अर्थात् सूत्र द्वारा कथित प्रयोजन की सर्वतोव्यापिनी निर्दुष्ट अन्विति = संगति) किस रूप में चरितार्थ होती है। प्रस्तुत शोधपत्र की सामग्री तीन न्यायसिद्ध परिभाषाओं पर आश्रित है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IL-58

क्रिया-मीमांसा

डॉ. (श्रीमती) आभा सिंह, आरा

शब्द के बिना दैनन्दिन का व्यवहार असंभव है। व्याकरणशास्त्र में शब्द के विविध स्वरूप पर विचार किया गया है। संस्कृत में शब्दों का मूल धातु को माना जाता है। धातु का लक्षण भाववाचक भी किया जा सकता है और क्रियावाचक भी। कैय्यट भाव को क्रियामात्र क्रियासामान्य के तुल्य मानते हैं। समग्र धातु भाव या क्रियामात्र की वाचक है।

धातु के सन्दर्भ में दो शब्दों का प्रायः प्रयोग प्राप्त होता है—भाव तथा क्रिया। जो आचार्य दोनों को परस्पर भिन्न मानते हैं, उनका मत है कि क्रिया निष्पन्न करने वाली हैं, तो भाव क्रिया से निष्पादित होती है। कुछ दूसरे आचार्यों का यह मत है कि भाव स्वयं साध्य है। साध्य और उसका फल परस्पर भिन्न वस्तुएँ नहीं हैं।

आचार्य पतञ्जलि का मानना है कि धातु क्रियावाचक है, कारकों की प्रवृत्तिविशेष है, अनुमेय है और अस् भू आदि सत्ता अर्थ वाले भी धातु ही हैं। धातु कारकों की प्रवृत्तिविशेष है और उसमें भी कर्त्ता की प्रवृत्तिविशेष है। क्रिया अनुमेय हैं; क्योंकि क्रिया सावयव होती है। इसके सारे अवयव समानकालीन नहीं हो सकते। ये एक प्रयोजन को पूरा करने के लिए अस्तित्व में आते हैं। इस प्रयोजन की पूर्णता से उनके ऐक्य का ज्ञान होता है।

क्रियापद सत्ता को भी साध्य रूप में ही रखता है। क्रियारूप में व्यवहृत होने पर उनमें भी कालिक भेद होते हैं। यही कारण है कि हम अभूत, अस्ति और भविष्यति जैसा प्रयोग कर पाते हैं। इसलिए सत्तावाचक अस्, भू तथा विद् को भी धातु ही मानना चाहिए।

क्रिया का यह लक्षण व्यक्तिरूप क्रिया और जातिरूप क्रिया दोनों पर ही लागू होता है। क्रिया वास्तव में महासामान्य सत्ता की ही अभिव्यक्ति है। सारी वस्तुएँ इसी की अभिव्यक्ति है। सारे शब्द इसी सत्ता के वाचक हैं। शब्द भी अखण्ड इकाई है। उसका प्रकृति-प्रत्यय में विभाग काल्पनिक है।

❖

IL-59

सप्तमीविभक्ति के अर्थों का पर्यालोचन

डॉ. तेजनी जी. मुंशी, अहमदाबाद

पाणिनीय सम्प्रदाय में अधिकरण को प्रायः तीन प्रकार का समझा गया है। किन्तु 'तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य' (1-1-66) सूत्र का प्रवृत्तिप्रदेश केवल औपश्लेषिक सप्तम्यन्त पदों के रूप में समझने की सूचना दी गई है। अतः वह सार्वत्रिक प्रयोग में नहीं जा सकता। उपर्युक्त सूत्र से जो कहा गया है, उन औपश्लेषिक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सप्तम्यन्त पदों को टीकाकारों ने परसप्तम्यन्त रूप से जाना है। लौकिक भाषा प्रयोग में सप्तमी के जो अर्थ प्रचलित है, तद् उपरान्त उस 'अष्टध्यायी' के सूत्रों में सूत्रकार ने विभक्ति को अन्य अर्थों में भी प्रयुक्त किया है। वह अभ्यास का विषय है। इस तरह सप्तमी विभक्ति वाले पद अनेकत्र प्रयुक्त हैं, पर अर्थघटन की भूमिका में वैविध्य देखने को मिलता है। क्वचित् कुछ सप्तम्यन्त पद अधिकरण के एक से ज्यादा प्रकारों के वाचक भी बन सकते हैं। उदाहरण रूप से 'न मुने' (8-2-3) अष्टध्यायी के क्वचित् सूत्रों में निमित्तार्थक सप्तम्यन्त पद निमितात्कर्मसंयोगे (पा. सू. 2-3-36 इत्यत्र वार्त्तिकम्) वार्तिक से विहित सप्तमी के वाचक नहीं है। निमितार्थक सप्तम्यन्त पदों को परसप्तम्यन्त पद के रूप में भी समझा नही जा सकता। तद्यपि निमितार्थक सप्तम्यन्त रूप में भी जाना जाता है। उल्लेखनीय है कि निमितार्थक सप्तम्यन्त पद 'अष्टाध्यायी' में अल्परूप से देखने को मिलते है। इस तरह निर्धारणार्थक सप्तम्यन्त पद भी विरल है। क्वचित् विशिष्ट सन्दर्भ में प्रयुक्त तत्रोपपदं सप्तमीस्थं (13-1-92) जैसे सूत्र भी है। अन्त में कारक में (1-4-23) सूत्रस्थ सप्तमी वैयाकरण परम्परा में चर्चास्पद हुई है, उनका विशद निरूपण करने का नम्र प्रयास किया है।

❖

IL-60

श्रीमद्भगवद्गीता में प्रयुक्त क्त-प्रत्यय का भाषाशास्त्रीय अध्ययन

श्री प्रणय कुमार झा, भागलपुर

प्रस्तुत लघु शोधपत्र में गीता में प्रयुक्त क्त-प्रत्यय का भाषाशास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

सर्वप्रथम इसमें अष्टाध्यायी में क्तप्रत्यय विधायक विधिसूत्रों के अनुसार क्त-प्रत्यय के अर्थों का अध्ययन किया गया है। तदन्तर गीता में प्रयुक्त क्त-प्रत्यय के अर्थों का अध्ययन किया गया है।

पुनः इसमें क्त-प्रत्यय की प्रकृतियों का अध्ययन किया गया है। साथ ही क्त-प्रत्यान्त प्रातिपदिक का भी अध्ययन किया गया है।

अन्त में क्त-प्रत्यय की प्रकृतियों में होने वाले ध्वनि-परिर्वतनों का अध्ययन किया गया है।

❖

IL-61

प्राकृत और आर्य-द्रविड भाषाओं का मूर्द्धन्य-पक्ष

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह

आर्य-द्रविड़ भाषाओं की एकता, सम्बन्ध और प्रभाव को लेकर कई बातें सामने आयी है। इनमें सर्वाधिक गुत्थम-गुत्था मूर्द्धन्य ध्वनियों को लेकर है। प्राकृतों में मूर्द्धन्य ध्वनियों का व्यवहार संस्कृत की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुलना में अधिक है। मूर्द्धन्य ध्वनियों का आधार यदि स्वीकार हो, तो प्राकृत भाषाएं तमिल एवं द्रविड़कुल की अन्य भाषाओं के निकट है। इन मूर्द्धन्य ध्वनियों का जो अध्ययन भाषावैज्ञानिकों ने प्रस्तुत किया है। उसमें प्राकृत भाषाएँ हाशिये पर हैं। यदि प्राकृत भाषाओं को भी जरूरी एवं महत्त्वपूर्ण समझ कर इन ध्वनियों पर पुनर्विचार किया जाए, तो आधुनिक भाषाओं को समझने में सुविधा होगी।

हिन्दी भाषा का इतिहास जैसे प्राकृत भाषाओं से जोड़कर प्रस्तुत किया जाता है, वैसे क्या तमिल का भी प्रस्तुत किया जा सकता है? क्या दक्षिण भारत की भाषाओं को भी प्राकृत भाषाओं की परम्परा प्राप्त है? यदि प्राकृत भाषा लौकिक रूप में व्यवहृत उस समय की संस्कृतेतर सभी जनपदीय बोलियों का नाम है, तब यह ठीक है कि हिन्दी भाषा ही नहीं, अपितु भारतवर्ष की सभी आधुनिक भाषाएँ- तेलुगु, तमिल, कन्नड़ तथा मलयालम भी प्राकृतों की परम्परा से विकसित हुई है। आगे यह भी कि यदि दक्षिण भारतीय भाषाओं का आधार विभिन्न प्राकृतें हैं, तो ट—वर्गीय ध्वनियों का उद्‌गम स्रोत द्रविड़कुल की भाषाओं की जननी प्राकृतें रही होंगी।

माना यह जाता है कि वैदिक संस्कृत में मूर्द्धन्य पार्श्विक 'ल' ध्वनि थी, लौकिक संस्कृत में लुप्त हो गयी है। तब यह विचारणीय है कि पालि-प्राकृत में इनका प्रवेश कैसे हुआ? मूल भारोपीय भाषा की ध्वनि व्यवस्था में 'ल' शामिल नहीं है, तब क्या मैकडानल द्वारा की गयी वेदभाषा मे 'ल्' की अस्वीकृति सत्य है? यदि सत्य है, तब यह माना जाना चाहिए कि 'ल' वाली मूर्द्धन्य ध्वनि प्राकृतों की है। माना यह भी जाता है कि मूर्द्धन्य ध्वनियों का विकास आर्यों के भारत में प्रवेश करने के बाद हुआ है। फिर मूर्धन्य 'ऋ' को आदि इण्डोयूरोपियन भाषा की मूल ध्वनि में शामिल कैसे किया जाता है, जबकि भारत का कोई भी आर्येतर भाषा-परिवार इस ध्वनि का व्यवहार नहीं करता है। क्या इस अन्तर्विरोध का समाधान पश्चिमोत्तर की प्राकृतों में खोजा जा सकता है?

❖

IL-62

प्रो. 'अभिराज' राजेन्द्र मिश्र की कृतियों में नूतन शब्द-प्रयोग

डॉ. रमेश चन्द्र मुरारी, गुजरात

भाषा वैज्ञानिक सिद्धान्तों के अनुसार भावों के अनुकूल भाषा का परिवर्तन स्वाभाविक है। सभ्यता, विज्ञान एवं संस्कृति के विकास के साथ-साथ दैनिक व्यवहार में कालक्रमानुसार असंख्य अर्थों के बोध के लिए विभिन्न कारणों से नये-नये शब्दों के प्रयोग की आवश्यकता होती रहती है, जिसका प्रभाव साहित्य की विधाओं पर भी बहुत गहराई के साथ पड़ता है, संस्कृत एक प्राचीन भाषा है, जिसने समय और परिस्थिति के अनुसार अपने विविध ज्ञान शाखाओं में परिवर्तन स्वीकारा है और इसका स्वागत भी किया है, जिसके परिणामस्वरूप प्रयोग में असंख्य नूतन शब्दों का व्यवहार चिरकाल से देखा जा रहा है, इसी सिद्धान्त को ध्यान में रखकर संस्कृत साहित्य के अर्वाचीन महारथी महाकवि अभिराज राजेन्द्र

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिश्र ने भी अपने महाकाव्यों, नाटकों, ललित निबन्धों, एकांकियों एवं अन्यविध रचनाओं में बहुसंख्यक ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है, जो व्यवहार, भाषा, शास्त्र एवं व्याकरण के नियम के सर्वथा अनुरूप है। ऐसे शब्दों को यदि वर्गीकृत किया जाए, तो उनके वर्गों की संख्या अनेक हो जायेगी, फिर भी यथा-शक्ति मैंने उन शब्दों का विवरण प्रकृत शोध निबन्ध में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। ध्यातव्य है कि ये शब्द जिस किसी भी प्रसंग में जहाँ भी प्रयुक्त किये गये हैं, वे परम स्वाभाविक, अर्थ गाम्भीर्य संवलित प्रासंगिक, कर्णप्रिय एवं आवश्यकतानुसार प्रयोग किये जा सकते हैं, उनके प्रयोगों को देखते हुए कवि के प्रयुक्ति औचित्य में किसी प्रकार का संदेह नहीं किया जा सकता, कही तो वे शब्द प्रयोग लक्ष्यार्थ एवं ध्वन्यर्थ तक को प्रभावित करते हुए नजर आते हैं।

❖

IL-63

पाणिनीय व्याकरण में वचन व्यवस्था का अभ्यास

विजयानन्द जी पटके, गुजरात

यह तो सर्वविदित है कि पाणिनीय व्याकरण शब्दशास्त्र है। अष्टाध्यायी में शब्दों के रूपाख्यान किए गए हैं। प्रस्तुत अभ्यास में पाणिनि ने वचन (सम्भाषण सन्दर्भ) के निर्देश सूचित किए है।

लोक में कुछ ऐसे प्रयोग भी किये जाते है, जिसका सम्भाषित शब्दों से अतिरिक्त अर्थ होता है। जैसे कि—'माता च पिता च'। इस उदाहरण में एक विशेष पितरौ पद के द्वारा माता और पिता दो पदों का वचन अभिलिखित है। ऐसे कुछ निर्देश पाणिनि ने 1.4.64 से 1.1.74 सूत्रों में दिए है। उन प्रयोगों का अभ्यास प्रस्तुत अभ्यास लेख में किया गया है।

❖

IL-64

व्याकरणदृष्ट्या कालस्वरूपम्

कु. यामिनी धनंजय, नागपुर

काल मनुष्य के जीवन से गहरा सम्बन्ध रखता है। काल के स्वरूप का चिन्तन विश्व के सभी देशों में हुआ है, अभी भी हो रहा है। जिसका स्वयं एकमात्र है, उस काल के स्वरूप को जानने के लिये मनुष्य का प्रयत्न हमेशा होता रहा है। भारतीय दर्शन में कालस्वरूप की चर्चा की गयी है। सांख्य और योगदर्शनों में काल को विकल्प माना है। अर्थात् क्षण एक ही सत्य है, बाकी केवल व्यवहार है। न्याय और वैशेषिक दर्शन में भी काल को व्यवहार हेतु माना है। इनके अनुसार काल एक द्रव्य है। अद्वैत दर्शन में काल एक भाषा का ही परिणाम है। ब्रह्ममात्र सत्य होने के कारण काल भी मिथ्या है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा का महत्त्वपूर्ण अंश काल है। वाक्यप्रयोग में भूत, भविष्यत् वर्तमान कालों में ही वाक्यप्रयोग होता है। इस विषय पर व्याकरणशास्त्र में बड़ी चर्चा की गयी है। वर्तमान, भूत, भविष्यत् कालों के लक्षण व्याकरणशास्त्र में दिये गये हैं। भाषा में यद्यपि इनका प्रयोग होता है, फिर भी शास्त्रकारों की दृष्टि से इनके लक्षण जानना अत्यावश्यक होता है। लकारों के वास्तविक अर्थ जानने से भाषा में उनका प्रामाणिक प्रयोग हो सकता है। इस दृष्टि से व्याकरणशास्त्र में कालविचार विषय पर इस निबन्ध में प्रकाश डाला गया है।

व्याकरणशास्त्र के अनुसार तीन काल बताये हैं। इनको अद्यतन और अनद्यतन इस भेद से सात लकारों में विभक्त किया है। व्याकरणशास्त्र में कुल दस लकार बताये हैं; पर उनमें से सिर्फ सात लकारों का ही कालों के लिये वास्तविक रूप से प्रयोग किया जाता है।

❖

IL-65

व्याकरणशास्त्र की कुछ संज्ञाओं का तुलनात्मक अध्ययन

प्रो. अनिरुद्ध अशोक मंडलिक, अहमदाबाद

संस्कृतभाषा का व्याकरण कठिन कहा जाता है। उसके प्रत्येक विभाग पर विद्वानों ने अध्ययन कर अपने-अपने विचार स्पष्ट किये हैं। संस्कृत के व्याकरणकार अनेक है, जैसे—आपिशल, काश्यप, गार्ग्य, शाकल्य, शाकटायन, स्फोटायन इत्यादि किन्तु। महर्षि पाणिनि द्वारा जो व्याकरण का अष्टाध्यायी ग्रन्थ रचा गया है, उसे तथा वार्तिककार कात्यायन महाभाष्यकार पतञ्जलि के ग्रन्थ-विचार व्याकरण शास्त्र के लिए प्रामाणिक माने गये हैं।

व्याकरण में आने वाली संज्ञाओं का अध्ययन कर पाणिनि इत्यादि विद्वानों के साथ अन्य कुछ विद्वानों के मतों का विचार करके इस निबन्ध में व्याकरणकर्त्ताओं के मत स्पष्ट करने का तथा कौन से व्याकरणकर्त्ता का मत व्याकरण में योग्य लगता है, उसे स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

❖

IL-66

क्विबन्त शब्दों का भाषा-विवेचन

श्री तुलाकृष्ण झा, भागलपुर

संस्कृत व्याकरण में क्विप् अतिविशिष्ट प्रत्यय है। यह धातु तथा प्रातिपदिकों से विहित होता है। संस्कृत भाषा के आरम्भिक काल में एक ही शब्द प्रायः धातु तथा प्रातिपदिक दोनों का कार्य करता था। उन्हें व्युत्पन्न सिद्ध करने के लिए वैयाकरणों ने अन्य प्रत्ययों से सर्वथा भिन्न, विशिष्ट एवं पूर्णतः सानुबन्ध

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्विप् प्रत्यय एवम् उसके सर्वापहार लोप की कल्पना की। व्याकरण की दृष्टि से समुचित होने पर भी भाषाशास्त्र की दृष्टि से यह क्विप् प्रत्यय निष्प्रयोजन प्रतीत होता है।

प्रस्तुत निबन्ध में धातु तथा प्रातिपदिक से होने वाले क्विप् प्रत्यय के विविध भाषा-वैज्ञानिक वैलक्षण्य का विवेचन किया गया है।

❖

IL-67

सारस्वत व्याकरण में संज्ञा-विधान

डॉ. प्रवीण भारद्वाज

'संज्ञा' शब्द 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'ज्ञा' धातु से अङ् प्रत्यय द्वारा निष्पन्न है। इसका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है—'संज्ञायतेऽनयेति संज्ञा', अर्थात् कोई भी उच्चरित शब्द, जिससे किसी वस्तु या द्रव्य का बोध हो, जब उच्चारणानुकूल अक्षर-विन्यास से युक्त होता है, तो उसे मनीषिगण संज्ञा कहते हैं। जैसे लोक में राम, श्याम इत्यादि व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के प्रयोग से अनुपस्थित होते हुए भी परिचित व्यक्तियों का ज्ञान हमें हो जाता है। अतः स्पष्ट है कि शब्दशक्ति के अनेक अर्थों के अभिधान में समर्थ होते हुए भी किसी विशेष अर्थ में उसकी स्थापना कर देना ही संज्ञा विधान है। कैयट ने महाभाष्य-प्रदीप में इसी की पुष्टि की है।

सारस्वत सूत्रपाठ में अधिकांश पाणिनीय संज्ञाओं को अभिन्न रूप में अपनाया गया है। इसके लिए निम्नलिखित संज्ञाओं को देखा जा सकता है, जैसे—वृद्धि, गुण, संयोग, अनुनासिक, सवर्ण, निष्ठा, लोप, टि, उपधा, लघु, गुरु, पद, उपसर्ग इसका कारण संभवतः इन संज्ञाओं की लोक में अत्यधिक प्रसिद्धि तथा स्पष्ट अन्वर्थकता रही होगी।

सारस्वत सूत्रपाठ में अधिकांश स्थानों पर अन्वर्थक अथवा एकाक्षरी दोनों ही प्रकार की संज्ञाओं के विधान में पाणिनीय संज्ञाओं को ही अपनाया गया है। यहाँ पर यह बात और भी महत्त्वपूर्ण हो जाती है कि जब पाणिनि के परवर्ती वैयाकरण पाणिनीय अन्वर्थक संज्ञाओं के स्थान पर एकाक्षरी संज्ञाओं का विधान करके शब्दकृत लाघव प्राप्त कर रहे थे, ऐसे समय में सारस्वतकार ने जो अपने विषय को अत्यधिक संक्षिप्त रखना चाहते थे, अर्थकृत लाघव को अधिमान देकर पाणिनीय संज्ञाओं को ही अपनाया है। फिर भी कुछ एक स्थलों पर भिन्नता प्रदर्शित करते हुए पाणिनीय महासंज्ञाओं के स्थान में एकाक्षरी अथवा लघु संज्ञाओं का विधान भी किया गया है। इसके लिए विभिन्न-विभिन्न प्रक्रियाएँ अपनाई गई हैं। पाणिनीय परस्मैपद संज्ञा के समकक्ष सारस्वतकार ने इसका आदि वर्ण 'प' ग्रहण करते 'पदम्' संज्ञा का विधान किया है। सारस्वतकार ने आत्मनेपद के दो आदि वर्ण अर्थात् 'अत्' को ग्रहण करके संज्ञा विधान किया है। कुछ संज्ञाओं के विधान में सारस्वतकार ने प्रातिशाख्य ग्रन्थों का अनुसरण किया है जैसे—समान, सन्ध्यक्षर, स्वर, नामित, वर्ग आदि।

प्रस्तुत शोधनिबन्ध में इन्हीं पहलुओं पर विचार किया गया है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IL-68

वाक्य की अव्यय संरचना

सुश्री कविता बिसारिया

वाक्य की 'अव्यय संरचना' ऐसी संरचना है, जो संरचनात्मक रूप से किसी अन्य संरचना पर अपना प्रभाव नहीं डालती, अर्थात् इसकी संरचना वाक्य के अन्य घटक के संरचनात्मक स्वरूप को बदलने के लिए मजबूर नहीं करती और न किसी संरचना के संरचनात्मक स्वरूप के लिए स्वयं को बदलती है, यह वाक्य के आर्थीरूप पर अपना प्रभाव डालती है। यह 'अव्यय-संरचना' ऐसी संरचना है, जो वाक्य के भीतर तो रहती है, लेकिन वाक्य के संरचनात्मक दबावों से मुक्त रहती है। हाँ यह जरूर है कि यह वाक्य को आर्थीरूप से प्रभावित करती है। अव्यय को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—'सिद्ध अव्ययपद' व 'साधित-अव्ययपदबन्ध'। सिद्ध अव्ययपद वे होते हैं, जिन्हें मूल रूप में ही ज्यों का त्यों प्रयोग कर दिया जाता है, जैसे—आज, नहीं, अब आदि। साधित-अव्ययपदबन्ध वे पदबन्ध होते हैं जो वाक्य में अन्य पदों के मेल से बनते हैं। जैसे—के साथ, रहकर, दिन-दिन आदि।

❖

IL-69

व्याकरणदृष्ट्या लक्षणावृत्ति

कु. अन्तरा एलकुंचवार, नागपुर

व्याकरणशास्त्र, न्यायशास्त्र, वेदान्तशास्त्र, अलङ्कारशास्त्र आदि सभी शास्त्रों में 'शब्द' और 'शब्दार्थ' के विषय में चर्चा की गयी है। शब्द जब अपना अर्थ बताता है, उस अर्थ को बताने में उस शब्द में जो व्यापार रहा है, उसे 'शब्दवृत्ति' कहते हैं। आलङ्कारिकों ने अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना ये तीन व्यापार माने है। लक्षणावृत्ति प्रायः सभी शास्त्रों में दिखायी देती है। आलङ्कारिकों ने व्यञ्जना को भी महत्त्व दिया है।

आलङ्कारिकों ने मुख्यार्थबोध, तद्योग, रूढि अथवा प्रयोजन—ये तीन लक्षणावृत्ति के बीज माने है। नागोजी भट्ट ने लक्षणा का 'अन्वयाद्यनुपपत्तिज्ञानपूर्वकं शक्यत्वेन गृहीतार्थं सम्बन्ध-ज्ञानेनोद्बुद्धशक्तिसंस्कारतो बोधे लक्षणा' इस प्रकार लक्षण बताते 'गङ्गायां घोषः' इस उदाहरण द्वारा विस्तृत रूप से स्पष्ट किया है। वैयाकरण लक्षणा के गौणी और शुद्धा ऐसे दो प्रकार मानते हैं और अन्य प्रकार से जहत्स्वार्था और अजहत्स्वार्था लक्षणा है। आलङ्कारिक इसे उपादान और लक्षण-लक्षणा कहते हैं। कुन्ताः प्रविशन्ति, गङ्गाया घोषः में दो उदाहरण ले सकते हैं। न्यायशास्त्र में लक्षणलक्षणा के 'द्विरेफ' आदि उदाहरण दिखायी पड़ते हैं। नागोजी भट्ट ने 'तात्पर्यानुपपत्ति को लक्षणा का बीज माना है। अन्वयानुपपत्ति को लक्षणा का बीज स्वीकारेंगे तो 'काकेभ्यो दधि रक्ष्यताम्' में लक्षणा नहीं हो सकेगी। इसलिए

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तात्पर्यानुपपत्ति को ही लक्षणा का बीज मानना चाहिए, ऐसा नागोजी भट्ट का कथन है। लक्षणा का प्रयोजन विशिष्ट गुण या विलक्षण धर्म बताना है।

व्याकरणशास्त्र में भट्टोजी दीक्षित, कौण्डभट्ट, नागोजी भट्ट आदि सभी वैयाकरणों ने क्रमशः प्रौढमनोरमा, वैयाकरणभूषणसार, लघुमञ्जुषा इत्यादि अपने-अपने ग्रन्थों में इस विषय पर उहापोह किया है। भट्टोजी दीक्षित ने 'प्रौढमनोरमा' में 'इको यणचि' इत्यादि सूत्रों का व्याख्यान करते समय वहाँ लक्षणावृत्ति का प्रयोग किस प्रकार दिखायी पड़ता है, यह बताया है। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने भी इस लक्षणावृत्ति का उल्लेख किया है। इस प्रकार से सभी वैयाकरणों की दृष्टि से और अन्य शास्त्रों की दृष्टि से लक्षणावृत्ति का स्वरूप इस निबन्ध में प्रस्तुत किया गया है।

❖

IL-70

'वाक्यपदीयम्' के आधार पर भर्तृहरि का कालदर्शन

कुमारी आभा द्विवेदी

संस्कृत क्रिया के विभिन्न काल होते हैं, जो विभिन्न कालबिन्दुओं की अभिव्यक्ति करते हैं। इस कारण यह प्रश्न उठता है कि काल क्या है?

काल के सम्बन्ध में दार्शनिक अवधारणा की उत्पत्ति स्पष्ट रूप से अथर्ववेदसंहिता में दर्शनीय है। वैदिकोत्तर काल की दार्शनिक विचारों की उपस्थापना में जहाँ कहीं भी काल का सापेक्ष विश्लेषण द्रष्टव्य है, उन सबकी आधारभित्ति वैदिक दार्शनिक विचारों से पृथक् नहीं है। काल परिधि के अन्तर्गत ही ब्रह्म भी प्रपञ्च का आकुञ्चन एवं प्रसरण करता है।

वैशेषिक दर्शन ने इसे नित्य विभु पदार्थ माना है। शतपथ ब्राह्मण में काल को समय या उचित अवसर माना गया है। बृहदारण्कोपनिषद् में काल आयु सीमा से सम्बद्ध है।

इसी प्रकार आचार्य भर्तृहरि ने भी काल के सम्बन्ध में स्वमत प्रस्तुत किया है। भर्तृहरि का कालविषयक विचार इनकी तत्त्वमीमांसा में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इन्होंने शब्द को ब्रह्म तथा काल को उसकी रचनात्मक (कर्तृशक्ति) एवं स्वातन्त्र्य शक्ति माना है—'कालाख्या हि स्वातन्त्र्यशक्तिर्ब्रह्मण इति तत्रभवद् भर्तृहरेरभिप्रायः'।

काल को काल इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह वस्तुओं को अपने कारणों से उत्पन्न करता है (कालयन्ति)।

निश्चय ही प्रत्येक वस्तु का अपना विशिष्ट कारण उपादान अथवा अन्य होता है पर ये सभी विशिष्ट कारण काल पर निर्भर हैं, अत एव काल प्रत्येक वस्तु का सहयोगी कारण (सहकारिकारण) है—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वेषां हि विकाराणां कारणान्तरेष्वपेक्षताम्।
प्रतिबद्धजन्मनामभ्यनुज्ञां सहकारिकारणं कालः॥

भर्तृहरि कहते हैं कि काल की क्रिया कार्यों की समग्र विभिन्न अवस्थाओं में उद्भव, स्थिति और संहार के लिए उत्तरदायी है। अतः इसे विश्व का सार कहा जा सकता है।

❖

IL-71

पाणिनीय कारकव्यवस्था : अर्थविज्ञानपरक विश्लेषण

डॉ. रमाकान्त त्रिपाठी, बलिया

महर्षि पाणिनि की अष्टाध्यायी में संस्कृत भाषा के पदों की शब्दों की अनुप्रयोगपरक विश्लेषण पद्धति दी गयी है तथा पूर्वसर्ग एवं परसर्ग के प्रयोग के साथ कारक एवं क्रियापदों के पदरूप निर्माण की विस्तृत व्यवस्था भी दी गयी है। इसमें भाषा को वाक् अर्थ में ग्रहण किया गया है। वाक् शब्द में शब्द, अर्थ एवं शब्दार्थव्यापार तीनों को निहित मानकर वाक्केन्द्रित चिन्तन प्रस्तुत किया गया है। महान् वैयाकरण एवं भाषादर्शन के महनीय चिन्तक भगवान् भर्तृहरि ने इसी वागब्रह्म से सारे भौति जगत् की विवर्तित उत्पत्ति दिखायी गयी है।

आत्मगतभाव सम्प्रेषण शब्दों के माध्यम से ही सम्भव होता है। सभी भाषाओं में अभीष्ट भावों के सम्प्रेषण की व्यवस्था कल्पित है। महर्षि पाणिनि ने कारक व्यवस्था मे भी वक्ता-प्रयोक्ता के मनोगत अभिप्रायों को प्रकट करने के लिए विशेष नियमों की योजना की है। सभी प्रातिपादिकार्थों में कर्त्ता, कर्म आदि की शक्ति निहित रहती है। प्रयोक्ता अपनी विवक्षा से उसे प्रकट करता है। विशेषार्थ की व्यञ्जना हेतु स्वभावतः प्राप्त विभक्ति की अविविक्षा भी की जाती है। 'बलिं याचते वसुधाम्', 'गां दोग्धि पयः' आदि वाक्यों में प्रकृतितः अपादानत्व की प्राप्ति है, किन्तु वामन भगवान् के हृदय में बलि के प्रति प्रगाढ़ प्रेम, दयालुता आदि प्रकट करने के लिये ही सूत्रकार ने अपादानत्व की अविवक्षा दिखाकर ईप्सिततम की तरह द्वितीया से चिह्नित किया है। गौ से दूध निकालने में उसमें स्वास्थ्य की हानि न हो, वत्स भी पुष्ट रहे, पुण्यलाभ भी हो, इसी दृष्टि से उसमें पञ्चमी न करके द्वितीया की गयी है। भाषा सर्वदा प्रयोक्ताओं की वश्या रही है। आग से शिशु को बचाने में 'अग्नेः माणवकं वारयति' वाक्य की अनुप्रयोग की दृष्टि से तर्कसंगत है। क्योंकि, शिशु ही सर्वतोभावेन ईप्सितम है'। 'शिशोः अग्निं वारयति' प्रयोग से भी बच्चा आग से बचाया जा सकता है, किन्तु यह वाक्य लोकप्रकृति के विपरीत के विपरीत हो जाता है। अतः शिशु को द्वितीयान्त पद से ही उल्लिखित करते हैं। आजकल 'बहु'शब्द का पूर्वप्रत्यय के रूप में प्रायः प्रयोग होता है, किन्तु सूत्रकार के प्रयोगकाल में यह पूर्वसर्ग उस सम्बद्ध गुण की न्यूनता का ही द्योतक था। परिहास के लिये नगण्य लक्षण को भी व्यक्ति की पहचान बताया गया है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IL-72

वैयाकरणों के अनुसार कर्मकारक का अनुशीलन

डॉ. राधेश्याम शर्मा, करनाल (हरियाणा)

कारकों के अर्थ पर विचार करने के लिए कुछ वैयाकरणों ने 'सुबर्थनिर्णय' के स्थान पर 'कारक' निरूपण नाम दिया है। 'सुप्'प्रत्यय संख्या और कारक का बोध कराते हैं। वैयाकरणों का बहुमत कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण को कारक मानता है। इनके मत में षष्ठी विभक्ति के अर्थसम्बन्ध का क्रिया के साथ योग न होने से वह कारक नहीं माना जाता है। व्याकरणशास्त्र में क्रिया के उत्पादकरूप धर्म से युक्त होना कारकत्व है—'क्रियानिष्पादकत्वं कारकत्वम्' अर्थात् जो भी क्रिया की उत्पत्ति में कारक या सहायक हो, वह कारक कहलाता है।

वास्तव में 'कारक' इस महती संज्ञा को भी पाणिनि ने इसी दृष्टि से स्वीकार किया प्रतीत होता है कि जिससे यह शब्द अन्वर्थक होकर स्वयं अपने अर्थ को प्रकट कर सके 'करोतीति कारकम्'।

'आश्रयोऽवधिरुद्देश्यः सम्बन्धः शक्तिरेव वा।
यथायथं विभक्त्यर्थाः सुपां कर्मेति भाष्यतः॥

इस वचनानुसार 'आश्रय', 'अवधि', 'उद्देश्य' और 'सम्बन्ध' ये कारक विभक्तियों के सामान्य अर्थ होते हैं। तदनुसार प्रथमा, द्वितीया, तृतीया और सप्तमी विभक्ति का अर्थ आश्रय है, पञ्चमी विभक्ति का अर्थ 'अवधि' है, चतुर्थी विभक्ति का अर्थ 'उद्देश्य' है तथा 'सम्बन्ध' अर्थ को शेषषष्ठी कहती है।

प्रस्तुत शोध पत्र में वैयाकरणों द्वारा प्रस्तुत की गई कर्म की अनेक परिभाषाओं पर विचार किया गया है। तदनुसार कर्म की पहली परिभाषा है—'क्रियाजन्यफलाश्रयत्वं कर्मत्वम्' अर्थात् क्रियाजन्यफल का आश्रय बनना ही कर्मत्व है। आचार्य पाणिनि के अनुसार क्रिया के माध्यम से कर्ता का जो ईप्सिततम होता है, उसे कर्म माना जाता है, जैसे—'कर्तुरीप्सिततमं कर्म'। परन्तु ईप्सित के साथ-साथ, उनकी दृष्टि में अनीप्सित भी कर्म होता है, जैसे—'तथायुक्तं चानीप्सितम्'। इसीलिए 'ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति' इत्यादि प्रयोगो में तृण की कर्म संज्ञा सिद्ध होती है।

इस प्रसङ्ग में फलाश्रय को कर्म मानने पर 'चैत्रः ग्रामं गच्छति' तथा 'काशीगच्छन् पथिमृतः' इत्यादि अनेक प्रयोगो में दोष प्राप्त होते हैं जिन सब का नैयायिकमत खण्डनपूर्वक विवेचन नागेशादि वैयाकरण प्रोक्त 'कर्मत्वं च प्रकृतधात्वर्थप्रधानीभूतव्यापारप्रयोज्यप्रकृतधात्वर्थफलाश्रयत्वेन उद्देश्यत्वम् इस कर्म की परिभाषा के आधार पर इस शोध पत्र में किया गया है। इसके साथ ही कर्म के सात भेदों और द्विकर्मक धातुओं के फलाश्रय पर भी यहाँ सोदाहरण विचार किया गया है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IL-73

महाकवियों के दुर्घट प्रयोगों के साधुत्व में 'प्रक्रियासर्वस्व' का योगदान

सुश्री कामिनी ओहरी, दिल्ली

संस्कृत व्याकरण के अग्रगण्य वैयाकरण पाणिनि द्वारा संस्कृत भाषा को नियमों में बाँधने के पश्चात् भी भाषा में कुछ ऐसे प्रयोग सतत विद्यमान रहे, जो पाणिनीय नियमों की कसौटी पर खरे न उतरते थे। लोकव्यवहार के विषय में तो निश्चितरूपेण कुछ नहीं कहा जा सकता, किन्तु कुछ उत्तरवर्ती महाकवियों ने भी इन नियमों का पूर्णरूप से पालन न करते हुए तत्तद् ऐसे प्रयोग किये जो कि पाणिनि सम्मत न थे। इन प्रयोगों का न तो वेदव्यास-वाल्मीकि के प्रयोगों की भाँति 'आर्षत्वात्' कहकर साधुत्व प्रतिपादित किया जा सकता था और न ही महाकवियों के उन समस्त रूपों को महाकवियों की भूल कहकर असाधुत्व की कोटि में परिगणित करने का दुस्साहस किया जा सकता था। अतः व्याकरण की दृष्टि से इन रूपों के साधुत्व को सिद्ध करने के लिए उन महाकवियों के ग्रन्थों के टीकाकारों तथा पाणिनि के परम्परानुयायी विद्वानों तथा पाणिनीयेत्तर वैयाकरणों द्वारा अनेक प्रयास किए गए।

प्रक्रियाग्रन्थों के टीकाकारों एवं लेखकों ने भी पदे-पदे इनकी चर्चा की है। दक्षिण भारत के उद्भट विद्वान् नानाशास्त्रों में पारङ्गत वैयाकरण शिरोमणि नारायणभट्ट प्रणीत 'प्रक्रियासर्वस्व' भी इसका अपवाद नहीं। नारायणभट्ट द्वारा प्रक्रियासर्वस्व में महाकवियों द्वारा प्रयुक्त इन रूपों के साधुत्व के लिए किया गया अध्यवसाय श्लाघनीय है।

महाकवियों द्वारा तथाकथित 'आपीनतुङ्गस्तनोमि में 'आपीनम्' पद, 'पूजितो यः सुरैः' में 'सुरैः' पद, 'गिरिशमुपचचार प्रत्यहं सा सुकेशी' में 'गिरिशः' पद, 'नमस्करोति देवान्' में 'देवान्' तथा 'अश्वघासः' आदि रूपों के साधुत्वज्ञापनार्थ प्रक्रियासर्वस्व में नारायण भट्ट द्वारा सुझाए गए समाधानों की छाया स्पष्ट प्रतिबिम्बित होती है।

वस्तुतः प्रस्तुत शोध लेख में उपर्युक्त दुर्घट रूपों की साधुता सिद्ध करने हेतु 'प्रक्रियासर्वस्व के योगदान' का सूक्ष्मदृष्ट्या विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

❖

IL-74

समास प्रकरण में ज्ञापन कार्य

डॉ. राजेश कुमार मिश्र

ज्ञापन शब्द ज्ञा + णिच् + ल्युट् से व्युत्पन्न है। तदनुसार इसका अर्थ है—सूचना देना या संकेत करना। अष्टाध्यायी में दो प्रकार से सूत्रों का निर्देश किया गया है—वाचनिक एवं ज्ञापक। वाचनिक सूत्रों द्वारा किसी कार्य का साक्षात् विधान होता है। जबकि ज्ञापक सत्र द्वारा या उसके किसी एक अंश द्वारा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी विशिष्ट कार्य का अप्रत्यक्ष संकेत होता है। अष्टाध्यायी के समास प्रकरण में भी इस प्रकार के सूत्रों का निदर्शन किया जा सकता है। जैसे—असामर्थ्य में समास का ज्ञापन, सापेक्ष के समास का ज्ञापन, विभाषा सूत्र के पूर्व नित्य समास का ज्ञापन, उत्सर्ग और अपवाद महाविभाषा के द्वारा विकल्पित होने पर पुनः उत्सर्ग की अप्रवृत्ति का ज्ञापन, तत्पुरूष एवं बहुव्रीहि दोनों के एक ही स्थल पर ज्ञापन, सोपसर्ग मिश्र शब्द के साथ समास का ज्ञापन, तदर्थ शब्द से प्रकृति विकृतिभाव का ज्ञापन, समास में उत्तरपद के लिंग के अनुसार पूर्वपद के लिंग का ज्ञापन, अहन् शब्द के साथ सभी अवयववाचक के समास का ज्ञापन, ज्ञापक की अनित्यता का ज्ञापन, लक्षणप्रतिपदोक्त परिभाषा की अनित्यता का ज्ञापन, सूत्र में लिंग की अविवक्षितता का ज्ञापन, कुगतिप्रादयः एवं उपपदमतिङ् सूत्रों में सुपा की निवृत्ति का ज्ञापन इत्यादि।

ज्ञापक सूत्रों का प्रयोजन लाघव में ही है। व्याकरण का प्रयोजन भी लघु उपाय के द्वारा अधिक से अधिक अर्थों से व्यक्त करना है। ज्ञापन उन्हीं उपायों का एक महत्वपूर्ण अंग है। शाब्दिक लाघव के कारण यद्यपि अर्थबोधन में कठिनाई होती है तथापि ज्ञापन विधि द्वारा अर्थबोधन में सौकर्य होता है। इस प्रकार ज्ञापन अर्थबोधन सौकर्य एवं लघुता सम्पादन में सुतरां सहायक है।

❖

IL-75

ध्वनि-विज्ञान

डॉ. देवीप्रसाद द्विवेदी, वाराणसी

भाषा विज्ञान के अन्तर्गत ध्वनिविज्ञान का विशेष महत्व माना गया है। इसका सम्बन्ध भाषा के भौतिक आधार ध्वनि से हैं। इसमें मानव मुख से निकलने वाली ध्वनियों का अध्ययन किया जाता है। इसके अध्ययन से सम्बन्धित शास्त्र या विज्ञान ध्वनिविज्ञान कहा जाता है। अंग्रेजी में ध्वनिविज्ञान के लिये फोनेटिक्स और फोनेलॉजि शब्द का प्रयोग होता है। इसमें 'Phone' का अर्थ ध्वनि है और टिक्स तथा लॉजि का अर्थ शास्त्र अथवा विज्ञान है। फोनेटिक्स में भाषा, ध्वनि, ध्वनियों को उत्पन्न करने वाले अंग, ध्वनियों का वर्गीकरण तथा इसके स्वरूप का सैद्धान्तिक अध्ययन किया जाता है। अतः फोनेटिक्स ध्वनि के अध्ययन का सामान्य विज्ञान है। यह अपने अध्ययन के लिये संसार की समस्त भाषाओं से सामग्री ग्रहण करता है। फोनोलॉजि का सम्बन्ध भाषाविशेष से होता है इसमें किसी भाषा या बोलीविशेष की ध्वनियों का अध्ययन किया जाता है।

अतः फोनेटिक्स जहाँ सैद्धान्तिक और सार्वभौमिक हैं, वहाँ फोनोलॉजी उसका व्यवहारिक रूप है।

संस्कृत में ध्वनिविज्ञान को पहले ध्वनि शिक्षा कहा जाता था। हिन्दी में फोनेटिक्स के लिये ध्वनि-तत्त्वशिक्षा, ध्वनिविचार, ध्वनिशास्त्र, वर्णविज्ञान आदि नामों से जाना जाता है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IL-76

अक्षरों का सार्थकत्व एवं निरर्थकत्व

श्रीमती विनीता

इस प्रश्न पर साहित्यकारों, कोषकारों, दार्शनिकों, वैयाकरणों सभी के मतों को तीन कोटियों में परिगणित किया जा सकता है—

1. अक्षर निरर्थक हैं।
2. अक्षर कभी सार्थक और कभी निरर्थक होते हैं।
3. अक्षर सार्थक हैं।

एकाक्षर स्वरूप नाम, आख्यात, उपसर्ग, निपात, अव्यय, प्रत्यय एवं विभक्तियों आदि में अक्षरों की सार्थकता बोधित होती हैं।

❖

IL-77

रघुवंश महाकाव्य में ण्यन्त पद (प्रथम दशसर्ग विशेष सन्दर्भ)

श्री अनील कुमार, चण्डीगढ़

महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के अद्वितीय कवि माने जाते हैं। उनकी कविता का माधुर्य अनूठा है। मानव हृदय के सूक्ष्म भावों का निरीक्षण करने में कालिदास अत्यन्त चतुर हैं। कालिदास कला-पक्ष तथा भावपक्ष दोनों पक्षों के चित्रण में समान रूप से प्रभावी हैं। रघुवंश में कालिदासीय काव्यकला पूर्णरूप से मुखरित हो उठी है। यहाँ पर विषयगत विवेचना का विषय रघुवंश का कलापक्ष है। कलापक्ष में भी रघुवंश के प्रथम दशसर्गों में ण्यन्त पदों का अध्ययन करना है।

रघुवंश के प्रथम दश सर्गों में हमें 12 ण्यन्त पद प्राप्त होते हैं। प्राप्त-पदों की किस प्रकार की पद्धति है। उनमें प्रत्यय कौन से जुड़े हैं? किस लकार से सम्बन्धित हैं? क्या उनका अर्थ है? कालिदास द्वारा प्रयुक्त-अर्थ क्या आचार्य पाणिनी से साम्य रखता है अथवा नहीं, इन सबका वर्णन प्रस्तुत निबन्ध में है।

❖

IL-78

प्रोक्ति की संकल्पना और संस्कृत-साहित्य

डॉ. (श्रीमती) उषा सिंहल, कुरुक्षेत्र

भाषाविज्ञान के क्षेत्र में पाँचवें दशक तक वाक्य को ही भाषा ही महत्तम इकाई माना जाता रहा। एच. वैनरिख ने इस तथ्य का स्पष्ट उद्घोष किया कि वाक्य ही भाषाविज्ञान का हरक्यूलस स्तम्भ है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषिक विश्लेषण में वाक्य को सबसे बड़ी इकाई मानने का आग्रह इतना प्रबल रहा कि इस बात पर विचार ही नहीं किया गया कि बिखरे हुए वाक्य भाषा के सम्प्रेषणात्मक कार्यों को सम्पन्न नहीं कर सकते। चाहे सामान्य जीवन हो या फिर साहित्यिक कृति, दोनों ही स्थितियों में वाक्यों के पारस्परिक संयोजन से निर्मित कोई वाक्योपरि इकाई ही सन्देश सम्प्रेषित करती है। इस समस्या पर सर्वप्रथम विचार सन् 1952 में हैरिस ने किया। उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि बिखरे हुए शब्द अथवा वाक्य भाषा की रचना नहीं करते; अपितु तार्किक रूप में एक दूसरे के साथ परस्पर जुड़े हुए वाक्य अर्थात् प्रोक्ति ही भाषा की रचना/भाषा का विधान करते हैं। यही भाषिक विधान सम्प्रेषणात्मक उद्देश्य की पूर्ति में सफल होता है। साहित्यिक कृतियों के सन्दर्भ में यह बात और अधिक लागू होती है। अत एव शैलीविज्ञान साहित्यिक विश्लेषण के निमित्त वाक्य को प्रमुख इकाई मानता है।

प्रोक्ति का शाब्दिक अर्थ है—प्रकृष्ट उक्ति। किसी भी उक्ति की प्रकृष्टता वक्ता के अभिप्रेत अर्थ को पूर्णतः एवं प्रभावी ढंग से कहने में है। रचना में यह वैशिष्ट्य वाक्यों के परस्पर संसक्त होने से आता है। परस्पर संसक्त वाक्य-शृंखला जिस वाक्योपरि इकाई का निर्माण करती है, उसे प्रोक्ति कहते हैं।

भारतीय काव्यशास्त्र के अध्येता के लिए प्रोक्ति की संकल्पना सर्वथा नवीन नहीं है। प्रस्तुत पत्र में भारतीय काव्यशास्त्र के सन्दर्भ में प्रोक्ति पर विचार किया जायेगा।

❖

IL-79

भावप्रत्यय 'त्व' आदि का अर्थ-विवेचन

डॉ. अरविन्द कुमार, कुरुक्षेत्र

संस्कृत-व्याकरणदर्शन के महान् मनीषी भर्तृहरि ने प्रतिपादित किया है कि कृदन्त, तद्धितान्त और समस्तपद से जुड़ने वाले त्व, तल्, ष्यञ्, वुञ् आदि भाववाचक तद्धित प्रत्यय 'सम्बन्ध' अर्थ को कहते हैं। यथा—'पक्तृत्वम्' पद में क्रिया तथा कारक के सम्बन्ध का, 'औपगवत्वम्' पद में अपत्य तथा अपत्यवान् के सम्बन्ध का तथा 'राजपुरुषत्वम्' पद में स्वस्वामिभाव सम्बन्ध का बोध होता है, अतः इन पदों में प्रयुक्त 'त्व'प्रत्यय 'सम्बन्ध' अर्थ का अभिधायक है। 'त्व' आदि भाववाचक प्रत्यय का वाच्यार्थ 'सम्बन्ध' अपनी प्रकृति (कृदन्त/तद्धितान्त/समस्तपद) से होने वाले अर्थ-ज्ञान के प्रति विशेषण (गौण) होता है। परन्तु 'रूढ़ि', 'अभिन्नरूप' तथा 'अव्यभिचरितसम्बन्ध' इन तीन प्रकार के शब्दों से जोड़े गए 'त्व' आदि भाववाचक प्रत्यय 'सम्बन्ध' अर्थ का अभिधान नहीं करते (कृत्तद्धितसमासेभ्यः सम्बन्धाभिधानं भावप्रत्ययेनाऽन्यत्र रूढ्यभिन्नरूपाव्यभिचरितसम्बन्धेभ्यः)।

'त्व' आदि भावप्रत्यय के अर्थ के विषय में मीमांसकों का मत वैयाकरण-मत से भिन्न है। उदाहरणार्थ—मीमांसक-मत में 'दण्डी'पद में तद्धित-प्रत्यय 'इनि' अपनी प्रकृति के वाच्यार्थ 'दण्ड' से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशिष्ट द्रव्यमात्र का वाचक है। 'इनि' प्रत्यय 'संयोग' सम्बन्ध का वाचक न होकर केवल द्रव्य का वाचक है। तात्पर्य यह है कि 'दण्डी'पद में 'संयोग' सम्बन्ध की प्रतीति आकाङ्क्षावश होती है। 'इनि' प्रत्यय में 'संयोग' सम्बन्ध की वाचकता नहीं है। इस प्रकार 'दण्डी' पद के प्रकृतिभूत 'दण्ड' अर्थ की तथा 'इनि' प्रत्यय में आश्रयरूप (दण्ड के आश्रय-रूप) द्रव्य की वाचकता है। इसी प्रकार 'दण्डिन्' शब्द से 'त्व' प्रत्यय के योग से निष्पन्न 'दण्डित्वम्' पद में भी 'त्व' प्रत्यय का अर्थ 'दण्ड' (द्रव्य) ही है, 'सम्बन्ध' नहीं। परन्तु वैयाकरणों ने मीमांसकों के इस मत का खण्डन किया है।

❖

IL-80

महाभाष्योत्तरवर्ती वृत्तिग्रन्थों में वार्त्तिकों की स्थिति एवं स्वरूप

डॉ. महेश दत्त शर्मा, बदायूँ

पाणिनिप्रणीत अष्टाध्यायी के सूत्रों की प्रामाणिकता के लिये प्राचीन व्याकरणपरम्परा में एकमात्र वृत्तिग्रन्थ जयादित्य-वामनप्रणीत कशिकावृत्ति है और नव्य-व्याकरणपरम्परा में भट्टोजिप्रणीत वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी एवं नारायणभट्टप्रणीत प्रक्रियासर्वस्व, केवल दो पूर्ण वृत्तिग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य उपलब्ध जितने भी वृत्तिग्रन्थ हैं, वे सूत्रों की दृष्टि से अपूर्ण एवं प्रायः महत्त्वहीन हैं। परन्तु सूत्रों की स्थिति की तुलना में कात्यायनप्रणीत वार्त्तिकों के स्वरूप और वास्तविक संख्या की स्थिति अत्यधिक चिन्तनीय एवं संशयास्पद है। वार्त्तिकों की प्रामाणिकता के लिये पतंजलिप्रणीत महाभाष्य ही अद्यावधि प्रमाणभूत आकरग्रन्थ है; क्योंकि कात्यायनप्रणीत वार्त्तिक की ग्रन्थ के रूप में कोई स्वतन्त्र उपलब्धि नहीं है और महाभाष्य में भी अनेक ऐसे वार्त्तिक हैं जहाँ पर पतंजलि ने आचार्य कात्यायन से पूर्वभावी अनेक वार्त्तिककारों का नामनिर्देशपुरस्सर स्मरण किया है, जैसे—वाजप्यायन (पा.सू. 1.2.64, वा. 35), व्याडि (पा.सू. 1.2.64, वा. 45) और पौष्करसादि (पा.सू. 8.4.48, वा. 3) आदि का उल्लेख किया है और अनेक स्थलों पर 'एके', 'केचित्', 'अन्ये' आदि पदों द्वारा अन्य वार्त्तिककारों के मतों की ओर संकेत किया है और अपनी वार्तिकरचना के अवसरों पर भारद्वाजीय, सौनाग, कुणरवाडव, सौर्यभगवत्, कुणि आदि वार्त्तिककारों का उल्लेख किया है।

डॉ. महेश दत्त शर्मा का पूर्व प्रकाशित शोधपूर्ण लेख इस दिशा में बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है, जिसमें काशिका के त्रुटिपूर्ण संकेतित सन्दर्भों की विस्तार से प्रमाणपूर्वक सूचियाँ प्रस्तुत की गयी हैं। परन्तु डॉ. रघुवीर वेदालंकार के "काशिका का समालोचनात्मक अध्ययन" की जो स्थिति है वह तुलानात्मक दृष्टि से बड़ी ही दोषपूर्ण है। डॉ. वेदालंकार के प्रदत्त दोषपूर्ण सन्दर्भ संकेतों और निर्णयों से प्रो. जार्ज कार्डोना जैसे शोधकर्ता भी भ्रान्त हुए है। इसीलिए प्रस्तुत शोधपत्र में महाभाष्योत्तरवर्ती वृत्तिग्रन्थों में वार्त्तिकों के विषय में शोधकर्ताओं के अध्ययन को ध्यान में रखते हुए विस्तार से चर्चा की गयी है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IL - 81

'उपरि' उपसर्ग की ऐतिहासिक विकास-मीमांसा

डॉ. हरिश्चन्द्र मणि त्रिपाठी, वाराणसी

वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ।
धातोस्तदर्थातिशयेन योगस्तदुच्यते पञ्चविधं निरुक्तम्॥

अर्थात् निरुक्त में पदों में घटनेवाले पञ्चविधलक्षण कहे गये हैं— वर्णागम, वर्णविपर्यय, वर्णविकार, वर्णनाश, धातु तथा उसका अर्थातिशय के साथ योग।

लोप-आगम-वर्णविकाररूप निरुक्त के पञ्चविधलक्षण संस्कृत-भाषा के अतीव विपुल ऐतिहासिक विस्तार का प्रख्यापन (कथन) करते हैं। अतिशय विपुल पारम्पर्योपदेश के बिना पदों में एवंविध उपचय (वृद्धि), अपचय (ह्रास) रूप कार्य संगठित नहीं होते हैं। इसलिये महाभाष्यकार महामुनि पतञ्जलि ने भी निरुक्त के पञ्चविध लक्षण को स्वीकार किया है—लोप-आगम तथा वर्णविकार को जाननेवाला वेदों का सम्यक् परिपालन करता है। अतः वेदों की रक्षा के लिये व्याकरण का अध्ययन करना चाहिए—**'लोपागम-वर्णविकारज्ञो हि सम्यक् वेदान् परिपालयिष्यतीति। रक्षार्थं वेदानामध्येयं व्याकरणम्'** इति।

इन सन्दर्भों के सूक्ष्म पर्यवेक्षण के आधार पर यह निर्णय किया जा सकता है कि नामों तथा आख्यातों में ही न केवल पञ्चविध निरुक्त के पदधर्मी कार्य घटित होते हैं; अपितु निपातों तथा उपसर्गों में भी घटित होते हैं। वैदिक एवं लौकिक संस्कृत अर्थात् दोनों भाषाओं में उपचय (वृद्धि) तथा अपचय (ह्रास) के कारण निपातों तथा उपसर्गों के अवशिष्ट रूप दृष्टिगत होते हैं। पदविज्ञान के ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से यह कार्य अतीव स्वाभाविक ही है; क्योंकि भाषा में बार-बार अर्थात् अतिशय आवृत्ति के कारण स्वरूपतः अणीयस्त्व (लघुरूपता को प्राप्त होना) के कारण निपातों तथा उपसर्गों के अर्थ धीरे-धीरे अस्पष्टता को प्राप्त करते हैं, अर्थात् सर्वथा संदिग्धार्थक हो जाते हैं। क्रमशः अर्थ के अन्तर्धान होने के कारण कुछ उपसर्ग और निपात अपनी आत्मशक्ति तथा उर्वरता को छोड़ चुके हैं। इस प्रकार जब किसी भी शब्द की जीवनी-शक्ति का ह्रास होता है, तब फिर उसके पुनरुज्जीवन या विकास (उत्तम्भन) के लिये उस शब्दसमूह में ध्वनियों का विपर्यय (व्यत्यय या विपर्यास) घटित होता है। ध्वनि-विनिमय, आसञ्जन अथवा विपर्यय के द्वारा पुनः वह ध्वनिसमूहरूप अपने अर्थरूप उर्वरत्व को प्रख्यापित करता है। ध्वनियों का उपचय तथा अपचयरूप यह विस्फूर्जन (गर्जन) शब्दग्रामधर्मी है। इन शब्दग्रामधर्मी सम्प्लवन (उच्छलन, छलाँग) के कारण भी उपसर्गों तथा निपातों के अर्थ उछलते-कूदते रहते हैं। ग्रीक भाषा के विद्वान् डेनिस्टन महोदय ने भी इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है कि अवरुद्ध तथा नियन्त्रित अर्थ भी ध्वनियों के विपर्यय या दूसरे शब्दों से जुड़ने के कारण सहारा पाकर सँभलते हैं।

संस्कृत-भाषा में 'उपरि' शब्द का प्रयोग **'उपसर्ग'** के रूप में दृष्टिगत होता है। यह उपसर्ग प्रायः '$\sqrt{\text{गम्}}$, $\sqrt{\text{गम्ल्}}$ गतौ, $\sqrt{\text{या}}$ प्रापणे, $\sqrt{\text{ष्ठा}}$, स्था गतिनिवृत्तौ' आदि धातुवों के साथ दृष्टिगत होता है। वैदिक-भाषा से लेकर प्रायः सभी प्राचीन भारोपीय आर्यभाषाओं में उपसर्ग के रूप में इसका व्यवहार दृष्टिपथ में आता है। यथा— उपरि > उपरः, उपरि > परि। वस्तुतः **'परि'** उपसर्ग **'उपरि'** इस वैदिक-उपसर्ग का लुप्तोकाररूप है।

इस वैदिक **'उपरि'** उपसर्ग का संवाद प्राचीन-अर्वाचीन भारोपीय-आर्य-भाषाओं से भी द्रष्टव्य है :— उपरि > अवे. उपैरि > ग्री. उप्इ > लै. सुपर > गाथि. उफ़र > प्रा.ज. अबर > न. जर्मन-उबर > ऐंग्लोसैक्शन-अफर > अंग्रेजी-ओवर = ऊर्ध्वगामी।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IL-82

Origin of Language by Random Association between Sound and Object

PROF. JATIN PANDYA, NAVASRI

How language came into existence is the most puzzling problem of linguistics. In absence of any concrete evidence, speculation is the only choice left for the investigator to find roots of language. Many speculations have been pushed so far to explain the problem, but none does satisfactorily. Finally, thinkers were so tired that they not only retired themselves from discussing the problem of origin of language, but even expelled the topic from the region of linguistics. But investigators cannot afford to submit themselves to such a tendency of defeat and disappointment. So investigators have kept the closed file of the problem open without any hesitation. Some of the theories reach much near to what is going to be said here after. But, like a comet, they take round of the centre of the problem and without hitting the target rush far into the dark imaginations. None has clearly suggested the process of language formation at preliminary stage among primitive human beings. The centre of the problem is how was a particular variety of human sound associated with a particular 'object' so as to express the sense of the same 'object' by it. Man possesses his sound like other animals with a capacity to produce many varieties of sound with different accents, with loud or low voice, at different pitch and tune, in broad and narrow utterance, and for short or long duration. Primitive man might have made sounds at different occasions involving varieties arbitrarily, accidentally and randomly. Such sounds might have been repeated on similar occasions that too accidently, arbitarily and randomly only, at preliminary stage. Thus association between a particular variety of sound, i.e. human voice and particular object might have been established gradually and the various sounds might have become meaningful indicating various 'objects'. Such association might have achieved recognition by repeated use among the members of the tribe, passing it from one to the other generation. And thus language might have come into existance. The whole process might have taken many centuries even for the origin of a primitive and crude form of language at preliminary stage. This may probably be the story of the origin of language.

❖

IL-83

Indo-Iranian and Āvestān : A Comprehensive Study

DR. SHARADA CHATURVEDI, VARANASI

The Iranians, particularly the eastern Iranians, whose ancient culture and language are represented by the Āvestā, were in both these respects a sister tribe of the ancient Indo-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Aryans. In this paper my motive is to describe the principal characteristics of the Iranian group of languages and its principal ancient dialects.

Like every ancient Indo-European tribe the Iranians on their first appearance on the stage of history present a baffling picture of mutually irreconcilable people and cultures ranging from the devastating hordes of Scythian barbarians in the north to the highly civilised Persians in the west and the Zarthustrians in the east. In the case of the Iranians it is of supreme importance to know the fundamental fact of comparative philology, that linguistic unity is per se no proof of racial or cultural homogeneity.

The ancient Iranian languages fall into two groups as they belong to the east and west. The east Iranian dialect known to us is Āvestan, which holds exactly the same position in Iranian as Gothic in Germanic and the Old Persian inscriptions of the Āchaemenian emperors, presents a truthful picture of the west Iranian dialect almost as old as the oldest Āvestān. The Āvestān language can also be distinguished in older and later Āvestān. The Oldest Āvestān is represented by the language of the *Gā-θās*. The main characteristic of it is the protraction of final vowles. In word formation Āvestān phonology is much similar to Sanskrit. In noun-inflexion Āvestān resembles as much to Sanskrit as it may be said that they are dialects of the same language.

❖

IL-84

The Root √ कृ and its Treatment in the Classical Sanskrit

DR. DINĀNĀTH SHARMA, AHMEDABAD

The Root कृ is treated in the तनादिगण (तनादिकृञ्भ्यः उः III.1.79), but it was used in the क्रयादिगण in the Vedic language (कृणोति), which come down in the Prakrit languages (कुणइ) but disappeared from Classical Sanskrit. This is the submission to be made in the article.

❖

IL-85

A Critical Study of the nañ-compounds in the Aṣṭādhyāyī

BHĀGYALATĀ PATASKAR, PUNE

The nañ-negative partical connotes to different meanings.

Sādṛśya—similarity (to certain extent)

Tadabhāva—absence of that particular thing.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Tadanyatva—distinction from something *tadalpatā* less quantity.

Aprāśastyam—not being praise worthy.

Virodha—contradiction.

Panini has used *nañ*-compounds. He has also used *na* seperately, *na*, connotes two different senses, viz. *prasaktapratiṣedha* and *paryudāsa*.

The present study submits detailed account of the cases of *nañ* and *na* used by Pānini.

❖

IL-86

Linguistic Universals

CHAITALI ARUN DANGARIKAR, Mumbai

As traditionally understood, universals of language are cross-linguistic generalizations; concerning synchronic grammars and their explanations usually appeal to functional principles thought of in a synchronic domain. The idea of linguistic universals greatly encouraged inquiry into the relationships between similar linguistic structures, sentences, morphological and phonological structures. And, of course, the organizing force behind these investigations was a search for Universal Grammar.

In the present paper we will discuss these linguistic universals in the modern linguistics and the reader's try to draw attention to the nature of universals and how these cross linguistic universals, which are based on the phonological, morphological, and syntactical similarities, can not be the real or true linguistic universals, and how they fail to establish the universal grammar. We will try to define the concept linguistic universal on the basis of the Jātisamuddeśa of Bhartṛhari's Vākyapadīya.

❖

IL-87

Interpreting Vakyapadiya

MALHAR KULKARNI, MUMBAI

'What is the meaning of a definers in a definition?' is a question that is addressed by Pāṇini in his sutra 'svaṁ rūpaṁ śabdasyāśabdasaṁjñā'.

Bhartṛhari in his legendery work Vākyapadīya, in the first chapter deals with this issue in brief. There two verses seem obscure from the point of view of meaning.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The present paper tries to clarify this obscurity and explain this meaning in detail and also to pose some questions of a general nature.

❖

IL-88

The Evolution of Sanskrit Vocabulary as known to Hemacandra

DR. APURBA CHANDRA BARTHAKURIA

Hemacandra, a great Sanskrit grammarian and linguist has shown through extensive research that the Sanskrit language was never a static one, but there was a regular evolution of the language in different ways.

Pānini has discussed in several sūtras of his grammar that grammarians of different regions of India used words which did not conform to the norms prescribed by him. Hemacandra has clearly displayed that in the post-Pāninian period, many new words and expressions have emerged from the womb of old words and expressions which have contributed to the evolution of the Sanskrit vocabulary.

Hemacandra shows that the words pulusa, sarira, kalīla, and pulodāśa appear in Sanskrit literature for puruṣa, salila, karīra and purodāśa. The grammarian refers to many new feminine words like karātti, pāṇyātti, Prajapatyānī and vaṇijānī not generally found in the Sanskrit literature and not prescribed by other grammarians.

❖

IL-89

An Unforgettable Sanskrit Poem of A Forgotten Poet of Bengal

RITĀ CHATTOPADHYAY, KOLKATA

The primary objective of the present paper is to bring into limelight of modern scholarship a mahākāvya titled as Candravamsam which could earn for its poet, Mm. Candrakānta Tarkalaṁkāra (1836 AD-1910 AD) an imperishable fame but unfortunately, both the poet along with his poem have passed into oblivion.

Perhaps the singular reason that can be attributed is the medium of composition i.e. Sanskrit.

Through this paper the present researcher has tried to trace out the poet's indebtedness to Kālidāsa, his deep insight into the motive and thought of Kālidāsa and has made a humble attempt to bring out the poet's not-so-common poetic talent.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

without which such a successful, outstanding and brilliant assimilation was simply impossible.

❖

IL-90

Peculiarities of Puruṣottamdeva on Kārakacakra

REETA BHATTACHARYA, Kolkata

Puruṣottamadeva, a grammarian of the Pāṇinian school, flourished in the 12th century AD, when the Sena Dynasty reigned in Bengal. To him are credited four remarkable works viz. Bhāṣāvṛtti, the Paribhāsāvṛtti, the Jñāpakasamuccaya and the Kārakacakra. Of these four works we have selected the kārakacakra which shows many novelties of thought. He arranges the topics relating to Kārakas and vibhaktis in the vibhakti order. In this respect he has some affinity with Bhaṭṭojidīkṣita, the author of the Vaiyākaraṇa Siddhānta-kaumudī. But unlike Bhaṭṭoji's work, Kārakacakra is very rich in philosophical import and the author profusely quotes from Bhartṛhari's Vākyapadīya, Maṇḍanamiśra's Brahmasiddhi, not to speak of the Mahābhāṣya of Patañjali. He also shows his acquaintance with some less known authors like Indumiśra or Indumitra whose work yet remains to be traced.

It is not possible to make a complete and sufficient evaluation of all that is stated by Puruṣttama, within the span of a short paper. My purpose is to analyse in brief the concepts of different kārakas as interpreted by Puruṣottama, and to draw thereby the attention of the present scholars to this hitherto ignored work of the Bengal school of the Pāṇinians.

❖

IL-91

Siksha Sastra and Speech Therapy

MRS. S. ANNAPURNA, CHENNAI

Phonology is one of the rarest form of human behaviour. Every one in life is concerned with phonology and uses it frequently without paying any attention to it. The child first of all uses the phonology to convey something to parents. The same is ultimately converted into the language and the child learns to speak and write. One should know the letter *Aksara* which is perpetually engaged in and cannot be destroyed by any worldly means. The term *Aksara* can be applied to any letter be it a vowel/consonant. Traditionally

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

the alphabet enumerates the phonotically independent letters. The purification of the word is attainment of the supreme self. One who knows the essence of its activity attains the immortal Brahman.

❖

IL-92

Etymology of Words in Bālamanoramā : Some Interesting Observations

V. YAMUNA DEVI, CHENNAI

In linguistic studies, words play an important and integral role. To understand the real import of words, the science of etymology is essential. The term 'etymology' in Greek means 'true account'; 'etymos=true', 'logue=account'. Etymological studies have attracted the attention of philosophers and linguists from Vedic times.

In the present paper an attempt is made to give the etymology of some such words dealt in *Karaka Prakaraṇa* of *Bālamanoramā*. The study also shows the development of language to perfection and precision.

❖

IL-93

A Comparative study of Sanskrit : German Sound System

DR. PREM NIWAS SINHA, VARANASI

Historically Sanskrit and German languages belong to the Indo-European language family, yet both the languages belong to different sub-families. Sanskrit belongs to old Indo-Aryan and is written in Devanāgarī script, while German belongs to west-Germanic and is written in two styles. (i) Gothic and (ii) Roman script.

It is believed that this study will be useful in preparing teaching materials for these languages. We aim to present similarities and dissimilarities in segmantal sound system of Sanskrit and German. The main approach of this study is descriptive.

❖

IL-94

On Reconstruction of the Dhātupāṭha of Bhoja's Sarasvatīkaṇṭhābharaṇa

NARAYAN PRASAD, PUNE

The *Sarasvatīkaṇṭhābharaṇa* of Bhojadeva (11th century AD) is the biggest Sanskrit grammar of the *sūtra* style containing 6432 *sūtra* in all. It is the only extant complete

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

revised edition of Pāṇini in which the rules of accent and the Vedic morphology are also taken into account. It embodies all the suggestions and corrections of Vyāḍi, Kātyāyana, Patañjali, Jayāditya, Vāmana and the post-Pāṇinian grammarians Śarvavarman, the author of *Kātantra* grammar, Candragomin and (Jain) Śākaṭāyana. The *vārttikas, iṣṭis, uṇādi-sūtras, gaṇa-pāṭha, gaṇa-sūtras, paribhāṣās* and *phiṭ-sūtras* have been incorporated by Bhoja in the *sūtrapāṭha* itself. Thus, the *Sarasvatīkaṇṭhābharaṇa* can safely be placed next to the *Aṣṭādhyāyī* of Pāṇini. But unfortunately the *dhātupāṭha* of this monumental work has not come down to us. The internal and external evidences indicate that Bhojadeva must have written his *dhātupāṭha* for *Sarasvatīkaṇṭhābharaṇa*.

Comparison of the *sūtrapāṭha* of *Sarasvatīkaṇṭhābharaṇa* with Pāṇini's *Aṣṭādhyāyī* and *Cāndravyākaraṇa* and the study of the Pāṇinian *dhātupāṭha* and Cāndra *dhātupāṭha* indicate that Bhoja appears to have followed the Cāndra *dhātupāṭha*, rather than the Pāṇinian *dhātupāṭha*.

❖

IL-95

A Critical Inquiry of 'howmanieth' in Classical Sanskrit against Paninian Systems & Comparative Linguistic Study of the same

CHINMAY DHARURKAR, PUNE

Being nth in a series is a pretty common human cognition & so we have forms as fourth, fifth, sixth so on, but unfortunately in the flow of English language the interrogative pronoun-howmanieth has been lost. However in some languages we do have words for the same very frequently used.

In Sanskrit we have a word *katama* for the same however that doesn't't mean 'howmanieth' but 'which one of many'. Panini for that describes a word as *katitha* meaning exactly howmanieth.

This paper aims to explain the propriety of the word katitha instead of *katama*. It also has been strived to come up with some explanation that why this word must have been lost in the flow of language.

Efforts have also been made to see that whence forth did the word disappear from Sanskrit as well as in English.

A Comparative Linguistic study of the same also has been done.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IL-96

Vākyārtha : Holistic Approach of Bhartṛhari

DR. GAYATRI RATH, VANI VIHAR

Bhartṛhari emphasises the role of sentence as the primary conveyor of meaning. He offers a detailed account of deciphering the intended meaning by hearer. His theory of *akhaṇḍapakṣa* has no parallel in Indian philosophy of language. He always proposes an active siquentiality and derivative sequentiality to ascertain the points of actual location or the *vākya* in a temporal and timeless universes of the comprehension. *Vakya* is the felt perception of reassessed universality while *artha* is the realised function of the cognized universality. The determination of the position and location of *vakya-artha* in the manner of correlated transformations is the excellence of discourse that Bhartṛhari produces. Bhartṛhari's explication of the communicative process of linguistic expression is radically different from other theories prevalent in Indian philosphical phenomenon, and uttered speech (*vaikhari*) is the final stage of the externalisation of linguistic process.

Vākyārtha is a developed realisation of all the categories of comprehesion i.e. of *pada, śabda & varna*, all the faculties of concentrated transmutation (of mind, vision & soul), all the attributes of trans-personal universalisation and all the grammatical universal-categories which derived from cumulative antithesis of correlated transformation (*samāsa, pratyaya, upasarga, kriyā, kāraka*).

Most of the schools of Indian Philosophy envisage language as a system of communication and most of them put emphasis on hearer's comprehension. Then why does Bhartrhari adopt totally different stand regarding the problem of sentence meaning.

In this paper attempt has been made to discuss the sufficient reasons for Bhartṛhari to go against the current. Bhartṛhari himself offers a series of arguments in support of his unique stand.

❖

IL-97

Solid Sanskrit Sans English Fluidity

NAVEEN KUMAR JHA, DARBHANGA

Language resides in human mind where from it sets out to tongue to transmit ideas from speaker's mind to listener's. It is brought forth and brought up in individual's mind by means of his thought and attitude. The focal point of my resent paper is to deal with

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

attitutional difference of the speaker and its effect on the language being used with special reference to Sankrit and English. Sanskrit being aclaimed 'Devavāni', is as good as deity for Sanskrit speaker who is overconcerned with its spiritual existence. Sanskrit speaker is a deist who believes in the existence of Divine being in the language. Whoever talks about it does not take into account facts and substances gathered after shrewd observation as does discriptive linguisties of English while uttering Sanskrit verses he does not let any error colour assuming error defuses relation between God and man. The language emerged from 'Damaru' of Lord Shiva is too pure, sacred divine too commit any error. It proves its theo–logical origin as if it the ways and means of salvation. In consequence, it remains the temple language focusing on spiritual and supernatural concerns and far away from an access too common popularce.

❖

IL-98

Āyurveda in Pāninian Grammar

DR. ANJALIKA MUKHOPADHYAY, KOLKATA

Āyurveda is the science of life. The wisdom of the ancient exponents is primarily represented by two great works - Carakasaṃhitā and Suśrutasaṁhitā. Both the works are composed in pre Christian era.

Pāṇini, the greatest Sanskrit grammarian, also belonged to that era. Caraka was said to have been attached to the famous Taxilla University. Pāṇini also probably hailed form that area. Whatever might be the case, Pāṇini seems well aware of the tenets of Āyurva. This is amply proved by a large number of references to Ayurvedic materials in his grammatical treatise Aṣṭādhyāyī.

Almost all aspects of Āyurveda have found some place in Pāṇini's grammar. Basic concepts like Pañchabūta, Guṇa, Karma, Rasa-vipāka, Tridoṣa, Mala, Weights and Measures are mentioned. Body, its constituents, development and decay are referred to therein.

All these together prove without doubt that during Pāṇini's time Āyurvedà has progressed a lot and achieved a certain standard. This science of longevity was not isolated but popular enough to be represented through a grammatical work.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IL-99

Bhartṛhari on Import of Word

RAGHAUBIR SINGH, HOSHIARPUR

From the scattered references in the Vedic literature and the statements found in the works of Pāṇini and Patañjali, it is quite evident that indivisible sentence is the smallest unit of expression or communication of thoughts. However, Bhartṛhari, for the first time in the annals of Sanskrit grammar, in his *Vākyapadīya,* systematically, logically and unequivocally establishes that indivisible sentence is the smallest unit of language and, in the same breath he also rebuts the theory that meaningful word connecting with other words is the entity of expression. Nevertheless, for the practical purpose and in order to explain the structure of language to the beginners, the Grammarians and Bhartṛhari as well are not against to recognize the pragmatic value of a word signifying a certain sense. This is the reason why, in grammar, formation of words are explained on the basis of meaning.

In the present paper, it is my humble attempt to identify the propounder of related theories and also to reckon the Bhartṛhari's own view, as he, nowhere, points out expressively that he is in favour of a particular theory. At the same time we also critically evaluate the merits and demerits of each theory referred to by Bhartṛhari.

IL-100

Code-Mixing in Kannada

DR. RAJESHWARI MAHESHWARAIH, DHARWAD

It is noteworthy that the people of the modern world are using the linguistic elements of other languages in their own. With the inventions of the modern technology the terms denoting them are entering into the different languages of the world, from the western languages especially English. Many a time they are translated or they assume different forms without any alternations, known as borrowing. On the contrary, even though the linguistic forms are available in their own languages people now-a-days are mixing the linguistic elements of the other languages with those of their own, a process considered as code-mixing. The present paper seeks to trace the causes of such code-mixing and to analyze them structurally taking the examples from the Kannada language.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IL-101

Ānanda's Theory of Dhvani and Shakespeare's Mecbeth

SANTANU BANERJEE, VARANASI

The hegemony of Western Literary Criticism is now left all over. We are subjected to its overwhelming power. Does it mean that we have to carry on in this servitude forever? No. For the present paper thinks how a literary theory of our own could be used as a successful tool for critical appreciation.

Ananda, by common consent, is the most popular of Sanskrit Literary theorists. His theory of *Dhvani* incorporates almost all other theories that were made available to him. It also opens new pastures for the later thinkers to think on the literariness of language and readers' response to literature. Ānanda is put to Shakespeare, the measure of English Literature, in order to make understand the theory of *Dhvani* to the laypersons who do not have exposure of Sanskrit. It again sets a trend of how Indian theories could be put to the Western texts with fruitful results, which also looks forward for more application as such on both Western and Eastern texts. For paths should always be open for us to apply our critical discourse whenever and wherever we like.

❖

IL-102

Technical Terms and Definitions of Prayoga-Ratnamālā Vyākaraṇa

DR. RANJAN CHAKRAVARTY, ASSAM

Both the *Astādhyāyi* and *Prayoga-ratnamālā* Vyakaranas are scientific treatises on language analysis. So it is natural that both the systems have adopted certain technical terms to meet their technical needs. Among so many technical devices the adoption of technical terms is considered as one of the most important economic device. Brivity is the very essence of this technical device. Mahāmahopadhyāya Purusottama Vidyāvagisa, the author or *Prayoga-ratnamālā Vyakarana* adopted a sufficient number of technical terms in his Vyākarana from the Astādhyāyi or Pānini but gave different definitions in comparision to that of the *Astādhyāyi* in certain cases claiming originality to some extent.

In this present paper effort has been made to critically discuss some technical terms and definitions present in the Prayoga ratmamālā Vyākaraṃa, which is a prominent post-Paṇinian grammar of sixteenth century.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IL-103

The Contribution of Melputtūr Nārāyaṇa Bhaṭṭa to Sanskrit Grammar

DR. GIRIJA, KALADY

Melputtūr Nārāyaṇa Bhaṭṭa, the most distinguished Sanskrit Grammarian poet of Kerala was born in the latter half of the 16th cen. A.D. and passed away in 1621 A.D. At the instance of his patron Devanārāyaṇa, the King of Ambalapuzzha he wrote the Prakriyāsarvasva, an exhaustive treatise on Sanskrit Grammar. Nārāyaṇa Bhaṭṭa was a great scholar of encyclopaedic knowledge and multifarious activities. His works on various subjects are about forty, each bearing his unique stamp of genius.

It is the broadness of vision regarding the development of Sanskrit Language that makes Melputtūr Nārāyaṇa Bhaṭṭas's Prakriysarvasva noteworthy and relevant among the works on Sanskrit Grammar. Hence this work is regarded as the most important contribution of Kerala to Sanskrit Grammar.

❖

IL-104

Sanksrit in Our Times

OM PRAKASH PANDE, PATNA

With the discovery of Sanskrit by William Jones in 1786, a new revolution came in the study of languages leading to the birth of a new branch of study known as comparative philology which later on came to be known as philology or linguistics. However, one very important feature of this language, which is its never changing nature, is not being utilized as a store-house of all modern preservable knowledge for which it is uniquely designed. Under the great gramatical discipline of Bhagavān Pānini this language became immune from any forthcoming corruption or deterioration or so called development. So, any knowledge stored in it will remain accessible for ages to come. This is one great use of this language in modern times.

Sanskrit can be used in teaching English to the students of the eastern world, specially of India, whose mother tongues have some connection with Sanskrit. Sanskrit is an ancient Indo-European language. In Europe Greek and Latin are used for teaching English. In India Sanskrit can be used.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

And finally without the use of Sanskrit to bring the great ancient Indian wisdom to the world today the Renaissance, which began with the spread of the ancient Greek Wisdom, will remain incomplete because along with Greece, India has also been a great centre of indispensable learning.

❖

IL-105

Word and its Meaning in Indian Rhetoric Grammar (A Critical Study Based on the Śabdavyāpāravicāra

JAGANADH.G, THIRUVANANTHAPURAM

Kāvyas are composed with words. So in the enjoyment and composition of Kāvya Sābdabodha occupies an important position. Following the footsteps of Grammarians and Indian Philosophers Rhetoricians built their own theories on meaning. Most of the books in Indian Rhetoric Grammar contain one chapter or a portion which deals with Śabdavyāpāravicāra. Śṛṅgāraprakāsa, Sāhityadarpaṇa, Kāvyaprakāś etc. are some examples. Mammata the author of the Kāvyaprakāsa composed a small book on Sabdavyāpara, namely Sabdavyāpāravicāra. The work mainly focused on Laksanāvyāpāra (secondary meaning).

The work contains six Kārikās and its explanations. It is composed in a beautiful and simple manner. The intention of the author was to give a hand book to the learners of the Sabdavrittivivecana Chapter of Kāvyaprakāsa. It is the first book in Indian Rhetoric Grammar of this nature. The present paper is a critical study on the book Sabdavyāparavicāra.

❖

IL-106

A critical Note on Vayasi Prathame (Pāṇini 4.1.20)

GIRISH K. JHA, PATNA

Pāṇini has formulated a rule i.e. *Vayasi Prathame* (4.1.20) in the context of Feminine formation, which provides that the affix *ṅīp* is used, in the Feminine, after a nominal base ending in *a* and denoting early age. According to this rule it is understood that the feminine words, such as, *Kumārī*, *Kiśorī* etc. are formed by adding the affix *ṅip*. *Kātyāyana* has given a *vārttika* i.e. 'Vayasy *acarama iti Vaktavyaṃ*' on this rule. He holds that the affix *nīp* is used, in the Feminine after a nominal base ending in *a* and denoting not old age.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Patañjali has also upheld the view of *Kātyāyana*, stating that the Feminine words, *Vadhūṭī* 'a young owman' and *ciranṭī* 'a young woman' denote young age. It appears that Patañjali accepts the necessity of this *Vārttika*. In this connection, *Jinedrabuddhi*, the author of the *Nyāsa* commentary, quotes *Yāska's* view and describes only two stages of life i.e. *upacaya* (increase) and *apacaya* (decrease). In his opinion the *vārttika* of *Kātyāyana* is futile. However, he has also mentioned the principles of three and four stages of life.

Pāṇini appears to be supporting the principle of *yāska* by which the entire life is covered by two stages, viz, *upacaya* and *apacaya*. On delving deep into the mater, it seems that scientifically there is no period fixed for young age. It is merely a focussed point; as it may clearly be seen in nature in the contexts ranging from Moonrise to Moonset. It is evident that the word *Prathama Vayas* (early age) includes young age also and so, to me, the *vārttika* appears not necessary on this rule.

❖

IL-107

The Indo-Aryan Maithili Language and Its Dialects

DR. PRAMOD KUMAR PANDEY, BHAGALPUR

Maithili has long remained a living languages of the Indo-Aryan Family, the biggest family of the world by virtue of being spoken by largest number of people over a large area. This is the mother of several other languages whcih have taken their birth in the gradual process. The Indo-Aryan Language from which Maithili has got its origin, can be divided into three groups : Old Prakrit, Middle Prakrit and Modern Prakrit.

Like an independent Language, Maithili has a well defined grammar, vast literature and its own scripts and a vast number of people speaking the language who reside in an extensive area.

❖

IL-108

A Study of the Paribhāṣās Related to the Anubandhas

SUDESHNA BHATTACHARJYA MUKHERJEE

Paribhāsās in Sanskrit are regardas meta-rules, whcih guide the student of Grammar to understand the actual meaning of the prescriptive aphorisims (*vidhisūtras*) of Pāṇini. In the field of Sanskrit Grammar these sūtras are compared to a lamp because as the lamp removes the darkness by its illuminating capacity, the *Paribhāsā sūtras* also dispel the

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

darkness of confusion arising in many places while going through a *vidhisūtra*. There are many *Paribhāsās* prevalent in the field of Sanskrit grammar, which are directly related with the *anubandhas*. The *anubandhas* with their qualities and position hold specific meanings in various directions. Such *anubandha*-related *Paribhāsās* are not only found in the *Paribhāsā-sūtras* of Pāṇini but also a handful of such *paribhāsās* are enlisted in the *Paribhāṣenduśekhara*. In such *Paribhāsās* the *anubandhas* show their supremacy. These *Paribhāsās* show that *anubandhas* are not only the detachable elements in grammatical actions. That they also serve their specific purpose is proved through the study of these *Paribhāsās*.

❖

IL-109

Bhoja's treatment of Saṁpradāna-kāraka

ACHYUTANANDA DASH, M.P.

The *Saṁpradāna-kāraka* is somehow unique amongst *kārakas* as far as its syntactico-semantic role is concerned in Sanskrit. 'Is it *dead* in almost all Indo-Aryan languages?' is the question that should perturb the inquisitive scholars. However that is a different question that I wish to keep aside for present presentation. Concentrating on the syntactico-semantic role of *Saṁpradāna-kāraka* it may just straightforwardly be asked whether it plays the role of a *kāraka* as far as directly bringing about an action is concerned? The answer agreeably to all will be 'No'. Of course, everybody will agree that 'directly bringing about an action' is neither necessary nor sufficient condition for a *kāraka* to be a *kāraka*. An entity on the other hand can be a *kāraka* if and only if it is somehow involved in bringing about an action. In other words an entity is called a *kāraka* even if it is remotely indirectly successively involved in bringing about the action concerned. In that sense only the recipient (*saṁpradāna*) is treated a *kāraka* as par with other *kārakas* like *kartṛ*, *karma*. *karaṇa* etc.

Bhojadeva also follows his predecessors in accepting and interpreting the term as 'etymologically significant' saying *'samyag asmai pradīyate tad gavādinā prāpyam upādhyāyakam saṁpradāna-saṁjñam bhavati'*. The interesting and significant aspect in Bhoja's treatment of *Saṁpradāna-kāraka* is its classification and enumeration that possibly has not been examined till date.

In this paper I wish to examine the validity of Bhoja's treatment of *Saṁpradāna-kāraka*.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IL-110

Quotations of Kāśikā in Siddhānta Kaumudi

MR. HAREKRUSHNA AGASTI, KURUKSHETRA

Astādhyāyi of Pānini has been considered to be the grammar of both Vedic and Classical Sanskrit Languages. Two methods i.e. vritti methods and prakriyā methods have been widely accepted by the scholars to interpret Pāninian grammar. As far as vṛtti and prakriyā methods are concerned Kāśikā vṛtti of Jayāditya and Vāmana and Siddhānta Kaumudi (S.K.) of Bhattoji Dikshit, respectively draw the attention of scholars. As Kāśikā is earlier, Bhattoji Dikshit followed Kāśikā in order to compose S.K. B.D. quotes the name of Kāśikā in S.K. with the words its vṛtti, its Kāśikā its Vṛttikṛt etc. These cases are here considered as Quotations. In this paper an attempt has been made to denote how does Bhattoji Dikshita interpret the Quotations? Whether he accepts or rejects? If he rejects on what basis? Another point is that B.D. repeatedly uses the word Vrtti in the Quotations. The word 'Vrtti' used by Bhattoji Dishit has been discussed here. It is necessarily Kāśikā Vṛtti or another Vṛtti. As per the study of Quotations are concerned this paper will prove that Mahābhāsya is the authority of Bhattoji Diskhita.

❖

IL-111

Psycholinguistics & Semantics

DR. K.C. DUEBY, VARANASI

Language is a system of codes or signals, signifying the specific modes or expression and communication in different contexts. Language is indispensible in the sense that no report or real contact with the outside word is possible without it. Knowledge proceeds from the use of words and language.

It can be said that the concept of word and meaning as presented in the Philosophical literature of India lays stress on the Psycho-linguistic pattern. The interpretation of the theory of language as propounded by Bhartrihari falls in line with the several aspects of Indian philosophy. The philosophy of word and meaning is a great contribution of Bhartrihari to the world. The real Philosophical depth in his concept of word and meaning is noticeable in the Brahmakāndā of his Vākyapadīyam.

❖

IL-112

Hapax Legomenon Andhapuṣpikā

RANJANA DATE

The word *Andhapuṣpikā* is not recorded in any extant dictionary. While the entry of the said word was being prepared for the Encyclopaedic Dictionary of Sanskrit on Historical

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Principles, Deccan College, Pune 6, = PD., the problem of non-availability of the reference was faced. The Dictionary has its own scriptorium alphabetically arranged of the words extracted from nearly 1500 books, from 62 branches of learning. The slips thus prepared are around 90 lakhs. The term 'Hapax legomenon' means a term of which only one instance of use is recorded. In simple words it is the only occurrence. There is an open appeal to scholars for finding out the occurrence of *Andhāka*, which also, is a 'Hapax legomenon'.

❖

IL-113

Sāṅkhya Philosophy as Presented in the Mahābhārata

DR. NIRADBARAN MANDAL, SĀNTINIKETAN

Sāṅkhya is said to have been founded by a semi-mythical holy man, Kapila. His miraculous power is recongised in a celebrated episode of the Mahābhārata (3.107) where it is said that he burnt all the sixty thousand sons of Sagara with a flash of his eye. Judging from his influence in the period of Mahāvira and the Buddha, he must have lived before the sixth century B.C. The name 'Kapilāvāstu'; the birthplace of Lord Buddha also indicates the fact that many followers of Kapila were inhabitants of that place.

The present paper will serve this purpose and will try to throw some new light on this dark area of the History of the developemt of early Sāṅkhya through a reconsideration of the relevant portions of the Mahābhārata. Thus the paper will clarify the contribution of the Mahābhārata to Indian philosophy in general and to Sāṅkhya philosophy in particular.

❖

IL-114

Sekasubhodaya – A Linguistic

DR. SUJATA MITRA, VARANASI

The linguistic features of Sekasubhodaya belong distinctly to early Middle Bengali. The book can be assigned to the second half of 16th Century. Halayudha Misra is mentioned as the author in the colophon of each chapter. This Halayudha cannot be the minister of Laksmanasena. The author or the compiler intented to pass it in the name of that Halayudha, the minister.

This book is the result of popularising the Pir cult through interesting stories. The language of the book is miswritten Sanskrit, i.e. Sanskrit in the Bengali manner. Sometimes the prose portions shows good Sanskrit words, phrases and idioms as well as verses or broken verse-feet. I have tried some linguistic features, e.g. some non-Paninian applications, some foreign words and verses in Bengali language. We must say rather that Sanskrit and Bengali languages are juxtaposed in one book. Moreover, Sanskrit was used as spoken language beside Bengali before the advent of British era in Eastern India.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Section - 11

DRAVIDIC STUDIES

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

DS-1

लक्कम्मा के अनुदित वचनों का मूल्यांकन

डॉ. भारती हिरेमठ, कर्नाटक

अनुवाद का मूल उद्देश एक भाषा में व्यक्त विचार या भाव को दूसरी भाषा में यथा सम्भव प्रकट करना। काव्य में शब्द और भाव तथा विषय महत्त्वपूर्ण होते हैं मगर काव्यानुवाद के समय में समान अर्थवाले शब्द रखकर काम चला नहीं सकते। समान प्रकृति की भाषाओं में अनुवाद कठिन नहीं होता मगर दो भिन्न प्रकृति तथा संस्कृति भाषाओं में अनुवाद मुश्किल है, काव्य में शब्द, अर्थ, ध्वनि, भाव, रस एवं लय होती हैं उन्हें स्थानापन्न नहीं किया जा सकता। अर्थ सम्प्रेणीयता के साथ-साथ शाब्दिक सम्प्रेषण के प्रति भी ध्यान पड़ता है। साहित्यिक संगीतात्मकता को भी नकार नहीं सकते। इन सभी स्थितियों के कारण मूल्यांकन आवश्यक हो जाती है।

कर्नाटक साहित्य अकादमी, बेंगलूर ने वचनों की अनुवाद कार्यशाला का गठन बल्लारी में आयोजित किया था। उन्हीं के द्वारा प्रकाशित लक्कम्मा के तीन वचनों का मूल्यांकन प्रस्तुत लेख का उद्देश्य रहा है।

❖

DS-2

Lixicographical developments in Kannada; A Brief Survey

PROF. H.M. MAHESHWARAIAH, DHARWAD

Kannada Language is one of the four major Dravidian languages spoken in Karnataka state. Kannada language like other Indian languages has a long tradition of Dictionary compilation. Ranna kanda is the oldest available Kannada Nighantu prepared by Kavichakravarti Ranna in 10th century A.D.. Earlier Dictionaries are influenced by Sanskrit tradition and later by German and English tradion. This article gives a brief outline of the developments in Kannada language, and nature of the Dictionaries and trends in Kannada Lexicography.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

DS-3

Karnātaka Haridāsas Ethics for Modern World

DR. K.B. ARCHOK, DHARWAD

The present paper as the title suggests, aims at reviewing the compositions of Haridasas of Karnataka, and show their rich contribution to literature. It is here shown that the songs of Haridasas depict their personal experiences, while trading on the path of Moksa, through the dreary desert of Samsāra. The works of Haridasas may be said to contain a complete code of morality for mankind. They have proved beyond doubt that a life of morality is a *sine qua non* for the attainment of Moksha.

Another important trait of the Haridasa movement is that it is optimistic, from the beginning. The darker and more tragic aspects of the mundane human existence never come in the way of the poet. In fact, he is afraid of none, except Hari. In toto, the Haridāsas of Karnataka like Sripadarāya Vyāsaraya, Purandara, Kanakadāsa and others have developed the Bhakti cult, as well as contributed in a significant manner to the enrichment of Kannada literature, and to the betterment of the society.

While reviewing the main features of the mystic teachings of Haridāsas, we might add that most of the teachings of Haridasas, due to the enorance of people, is hidden in obscurity.

DS-4

Andāl's Krishna Bhakti in Nachchiya Tirumozhi

SMT. S. KUMUDA VARADARAJAN, TIRUPATI

In Sri Vaishnava Sampradāya, Alwars propagated the Vedic truths through their hymns, called Nalayira Divya Prabandham. Among the Alwars, twelve in number, Andāl is a gem and her Prabandham is a Jewel. Her intoxicated love towards Lork Krishna is par excellence. Although Andal narrated her longing towards Krishna extensively in Tiruppavai, she echoed her bhakti on the following events in Krishnāvatara. Her hymns touch the heart, melt the mind and lend special distinction to it. Besides this, her intense bhakti can be traced in the very first decad of Nachchiyar Tirumozhi, wherein she wants to do service at the feet of Lord Krishna. The great Acharya Periyāvachchan Pillai of 13th century wrote a lucid commentary for these Prabandhams by enlightening Andāl's inner thought.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

This paper substantiates the salient features of the above events from the commentary of Periyavachchan Pillai.

❖

DS-5

Fasts, Feasts and Festivals of Hindu women of North Karnātaka

DR. (SMT) SHREE. S. HERLEKAR, DHARWAD

Fasting is more practised by women folk. Weekly once or twice women folk take meals once a day. Besides there are certain days in a Hindu calendar on which women are on fast. In North Karnātaka Vata Purnimā, Haratālikā, Mahāshivarātri, Ekādashi are some of the important observances of fast. There are days for individual observances like Sola Somavār, Vaibhava Laxmi, Sankastha Chaturthi etc.

There is no feast without festival. Feast divergent from routine food. Festivals are union of Bhakti, Gyāna and Karma. At the time of celebration of festivals, there is lot of social interaction among the participants. The festivals also serve as occasions for women to exhibit their art like rangoli, preparing variety of feasts. Making garlands or decorating the house etc. The present paper envisages a chronological enumeration of festivals in a year, observed specially by Hindu women in North Karnataka.

❖

DS-6

Nature of God in Yamunācharya's Stotraratna

DR. M. VARADARĀJAN, TIRUPATI

Yamunācharya was born in the year 916 A.D. at Veeranārāyanapuram in South Arcot District of Tamil Nadu. He was the great grand son of Sriman Nāthamunigal, the first Acharya of Sri Vaishanva Sampradāya. Yamunācharya became a scholar par excellence in Sāstras and Debates. He got revelation on the hymns of Drāvida Veda of Alwars, particularly Nammalvar's Tiruvoyamozhi through his benign Āchārya Rāma Misra. He wrote eight Sanskirt works. Among these, Stotraratna, as its name indicates, is a gem among Stotras.

Based on Periyāvachchan Pillai's commentary, I susbtantiate the paper by enlightening famous twelve qualities of God.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

DS-7

Rāmacaritam : The First Poetic Work in Malayalam

VIDHUNARAYAN, THIRUVANANTAPURAM

The poetic work of Vālmīki is so popular that it flooded each and every corner of our country. It's eternal message penetrates into the heart of poets and a numerous works based on Rāmakatha was written in vernacular Indian languages. Rāmacaritam of Cīrāmakavi is the first work written in Mālāyalam language based on Rāmāyana.

Rāmacaritam is the oldest Mālāyalam poem still in existence. The work tells Rāmāyana story in general and Yuddhakānda in particulars. Some scholars argue that the author gives more importance to Yuddhakānda because the aim of Rāmacaritam is to encourage the soldiers. The author states that the work is intended for common people of the period. This is one of the reasons why the poet chooses a simple language.

The aim of the present paper is to analyse various arguments regarding meter, style of composition etc.

❖

DS-8

Telugu Satakas of The River Basins

DR. NAMUDURI (PRABHALA), JANAKI

Sataka Literature is very popular in Andhra Pradesh. Satakas are the composition of hundred verses, as the very name indicates, having the characteristics of 'Muktakas' so that the poet has much independence in the composition of verses since he need not struggle hard for the story part. In Sanskrit Ādi Sankara's *Sivānandalahari, Soundarya lahari* come under this category, though he did not specificially mentioned that they are Satakas. Bhartṛharis' three Satakas, viz., Niti, Ṣrngāra and Vairāgyai, Amaruka Sataka and Mayura's Suryasataka are very famous in Sanskrit literature. In Telugu although the seeds for Sataka writing were sown by Nannayyabhatta in his Mahābhārata (Eleventh Century A.D). Scholars opine that Sivatattvasāra of Mallikarjuna Panditaradhya (1160 A.D) is the First Sataka. in 1241 AD. Yathavakkula Annamayya composed Sarveswara Sataka. It is interesting to note that this branch in literature began with the 'Virasaiva' tradition, though became cosmopolitan in due course. The number of Satakas in Telugu, both published and unpublished would be six to seven thousand, according to the estimation of scholars. A wide variety in these Satakas is evident viz., didactic, devotional, satirical and so on and so forth.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Section - 12

PHILOSOPHY & RELIGION

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-1

गीतायां मोक्षसन्देशः

डॉ. सुदीपा रायः, भुवनेश्वरम्

लोकेऽस्मिन् सर्वदुःखसाधनं बन्धनमेव। संसार एव दुःखसाधनत्वाद् बन्धः। अतः सर्वेषां प्राणिनां तेन तेन रूपेण दुःखसाधनम् अनुभूयत इति। यद्यपि सुखं सुखसाधनानि च लोके सन्ति, तथापि तान्यपि दुःखसंसृष्टानि दुःखसाधनानि चेति बन्धरूपाणि एव। बन्धहेतुश्च अविद्या कर्म चेति उभयमिति प्रायेण शास्त्राभ्युपगमः। अविद्या च बन्धहेतुर्विद्यया निवर्त्तते। उक्तं च कठोपनिषदि—'अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते'। यद्यपि वेदेषु चतुर्णां पुरुषार्थानां धर्मार्थकाममोक्षाणां वर्णनमुपलभ्यते, तथापि शाश्वतसुखावाप्तिरूपमोक्ष एव परमपुरुषार्थः। अत एवास्यैव प्राप्तये सर्वेषाम् ऋषीणां महान् प्रयासो दृश्यते। तथा हि—'तमेव विदित्वातिमृत्युमेति' इत्यादिषु श्रुतिषु मोक्षप्राप्तेरुपायाः प्रतिपादिताः सन्ति।

श्रीमद्भगवद्गीता संस्कृतसाहित्यस्यैकं भास्वरं रत्नम्। वेदस्य सर्वस्यार्थं विशदं प्रकाशयितुमेव भगवान् गीताम् उद्घोषितवान्। वेदस्य ज्ञानकर्मकाण्डात्मना सर्वस्वम् अर्थम् अत्र सरलस्वच्छन्दसुगमरूपेण च स्थितम्। कथ्यते यथा—'गीता सुगीता कर्त्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः'। स च आत्मनो मोक्षरूपत्वे घटते। मुक्तिरिति तु दुःखध्वंसात्मिका बन्धनिवृत्तिरेव।

गीतायाम् अष्टादशभिरध्यायैः काण्डत्रिकेण मोक्षसाधनत्रिक्रमोऽभिहितः। तत्र प्रथमेनाध्यायषट्केन निष्कामकर्मनिष्ठा, द्वितीयेनाध्यायषट्केन भगवद्भक्तिनिष्ठा उपासनात्मकयोगरूपा तथा तृतीयेनाध्यायषट्केन च ज्ञाननिष्ठा प्रतिपादिता। तदुक्तं भाष्यकारेण श्रीमधुसूदनमुनिना—

'भगवद्भक्तिनिष्ठा तु मध्यमे परिकीर्तिता। उभयानुगता सा हि सर्वविघ्नापनोदिनी।'

तथा हि निष्कामकर्मणां भक्तिर्भक्त्या ज्ञानमिति, भगवद्भावप्राप्तिश्च मोक्षः।

❖

PR-2

अद्वैतसाम्प्रदायिको वेदापौरुषेयत्वसिद्धान्तः

श्रीसन्तोषः सी.आर., केरला

वेदा आस्तिकदर्शनानामाधारशिला। नास्तिकदर्शनानां विप्रतिपत्तिरपि वेदमूलविचारं प्रस्तौति, तदपि वेदमहत्त्वमुद्घोषयति। अथवा वेदाङ्गीकारानङ्गीकाराभ्यामस्ति भारते आस्तिकनास्तिकप्रस्थानभेद इत्येतदेव वेदानां प्रसक्तौ प्रमाणम्। नहि नास्तिका वैदिकं प्रामाण्यमभ्युपगच्छन्ति। आस्तिकास्तु सर्वथा वेदमौलिकतामुरी-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुर्वन्तोऽपि वेदानां पौरुषेयापौरुषेयवादे विप्रतिपन्नाः। यद्यपि अद्वैतिनो वेदानां ज्ञानांशे, मीमांसकाः तत्कर्मांशे च श्रद्धावन्तः, तथापि उभयत्र वेदापौरुषेयत्वं समर्थितम्। नैयायिकमते वेदाः पौरुषेयाः। एवं वेदप्रामाण्यवादिनां मध्येऽपि वेदानां पौरुषेयापौरुषेयत्वविषये मतिभेदः सिद्धान्तभेदेन दृश्यते।

वेदानां नित्यत्वात्, तेषामविच्छेदप्रवाहात्, ईश्वराप्तानाप्तादिप्रणीतत्वासम्भवाच्च वेदापौरुषेयत्वमेवेति मीमांसकमतम्। नहि वेदकर्तृत्वविषयिणी काचन स्मृतिरपि। तन्त्रवार्तिके उक्तम्—

'प्रपाठकचतुष्षष्टिनियतस्वरकैः पदैः।
लोकेष्वप्यश्रुतप्रायैः ऋग्वेदं कः करिष्यति'॥ इति।

नित्यसर्वज्ञेश्वरप्रणीतत्वेन वेदानां पौरुषेयत्वमिति न्यायदर्शनम्। अद्वैतिनां मते वेदा अपौरुषेयाः। किञ्च विषयेऽस्मिन् नैयायिकानां मतमद्वैतमतपोषकं च दृश्यते। अद्वैतिनां वेदापौरुषेयत्ववादो मीमांसातो विभिन्नश्च। सजातीयोच्चारणानपेक्षोच्चारणाविषयत्वमस्ति अद्वैताभ्युपगतं वेदानामपौरुषेयत्वम्।

❖

PR-3

प्राचीनभारतीयशास्त्रे चतुर्वर्गफलप्राप्तिः

डॉ. हेतरामकछवाहः, वाराणसी

प्राचीनभारतीयराजशास्त्रस्याद्वितीयं स्थानं विद्यते भारतीयशास्त्रेषु। शास्त्रस्यास्य मूलतममुद्देश्यं विद्यते चतुर्वर्गफलप्राप्तिः। मानवानां कृते चतुर्वर्गफलप्राप्त्यर्थमान्वीक्षिकीत्रय्यादिचतसृणां विद्यानामुल्लेखो विहितः राजशास्त्राचार्यैः मनीषिभिश्च—

आन्वीक्षिकी— अस्यां विद्यायां सांख्य-योग-मीमांसा-न्याय-वेदान्त-दर्शनादिशास्त्राणि समाहितानि सन्ति। इयमान्वीक्षिकी विद्या, त्रय्यादिविद्यानां प्राधान्यमप्राधान्यञ्च पृथक्-पृथक् उपायैर्निर्धारयति, व्यसनेऽभ्युदये च बुद्धिमवस्थापयति। विद्येयं प्रतिपादयति जीवेश्वरयोरैक्यम्, अर्थादान्वीक्षिकी विद्या मोक्षं प्रापयति। इयं सर्वासां विद्यानां कृते प्रदीपस्वरूपा, सर्वेषां कर्मणा कृते साधनभूता, सर्वेषा धर्माणां कृते आश्रयभूता चास्ति।

त्रयी— ऋग्यजुःसामवेदानां समन्वितं नाम एव त्रयी विद्या। विद्येयं त्रयी जनेषु करुणा-दया-क्षमा-प्रेम-हिंसा-विश्वबन्धुत्वादिमानवीयगुणान् समुद्भावयति। त्रय्यनुनायिनः तदनुकूलाचारवन्तो जनाः धर्मं धारयन्ति। पवित्रार्यमर्यादायामवस्थितो वर्णाश्रमधर्मनिरतो लोकोऽयं निरन्तरमभ्युदयस्य निःश्रेयसस्य मार्गमारूढो दरीदृश्यते।

वार्ता— वार्तायां कृषिसम्बन्धीनि, पशुपालनसम्बद्धानि, तथा अन्यानि जीविकोपायभूतानि वाणिज्यादीनि शास्त्राणि अन्तर्भवन्ति। वार्तया उपार्जितकोशेन सैन्यबलेन च विजिगीषवो राष्ट्राध्यक्षाः स्वपक्षं परपक्षञ्च वशीकर्तुं प्रभवन्ति। अनया विद्यया अर्थः कामश्च प्राप्यते। न्यायपूर्वकं धनस्यार्जनाय, रक्षणाय, वर्धनाय, तत्-सदुपयोगाय च मार्गदर्शनं करोति विद्येयम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दण्डनीतिः—आन्वीक्षिकी-त्रयी-वार्ताविद्यानां संरक्षणं संवर्धनञ्च दण्डनीतौ एवाधारितम्। दण्डनीतिः शासनं सञ्चालयति। इयं विद्या अप्राप्तवस्तूनि प्रापयति, प्राप्तवस्तूनि संरक्षति, रक्षितवतूनि वर्धयति, संवर्धितस्य च वस्तुनः सदुपयोगाय निर्शिति। दण्डनीतावेव सुप्रतिष्ठिता संसारस्य सम्पूर्णलोकयात्रा। राज्ञः सुदण्डनीत्या रक्षिता जनाः स्व-स्वकर्तव्येषु निरता भवन्ति, मर्यादाञ्च धारयन्ति।

आन्वीक्षिक्याः विद्यात्वं विद्-विचारणे, त्रय्याः विद्यात्वं विद्-ज्ञाने वार्तायाः विद्यात्वं विद्लृ-लाभे दण्डनीतेश्च विद्यात्वं विद्-सत्तायाम् धातोः संसिद्धं भवति।

उपर्युक्तविवेचनेनेदं सुस्पष्टं भवति यदान्वीक्षिक्यादिविद्यासु सर्वाणि शास्त्राणि समाहितानि भवन्ति। अतः प्राचीनभारतीयराजशास्त्रस्य मूलोद्देश्यं चतुर्वर्गफलप्राप्तिरिति सदृढ़ं वक्तुं शक्यते।

❖

PR-4

मनुस्मृतौ राजधर्मः

प. हरेकृष्णधूपालः, ओडिशा

अधुना न केवलमस्माकं देशे प्रायेण पृथिव्यां सर्वत्र भिन्न-भिन्नपद्धत्या गणतन्त्रशासनं प्रचलति। इतः प्राक् सर्वत्र राजतन्त्रशासनं प्रचलितमासीत्। यदास्माकं देशे राजानः राज्यशासनमकुर्वन् तदा तेषां राज्ञां धर्मः महान् समाजनियामको महर्षिमनुरन्यतमः। तेन स्वसंहितायाः सप्तमाध्याये भारतवर्षस्य सभ्यतां, संस्कृतिं, परिवेशं, परिस्थितिं चानुध्याय सम्यगूरूपेण राजधर्मः संसूचितः। तद्धर्मशास्त्रमाधारीकृत्य प्रबन्धेऽस्मिन् राजधर्मविषयं किञ्चिदालोचयामि।

सम्प्रति राजधर्ममुल्लङ्घ्य गतिं कुर्वाणा राजनेतारो भोगपरायणाः स्वार्थान्धाः सन्तो यथा समाजकल्याणं विहाय देश-जाति-धर्मद्रोहमाचरन्ति तेनैव भारतीयगुणगौरवं भृशं क्षीयते जनानां दुर्गतिश्च वर्द्धते। तन्निराकरणाय महर्षिमनुप्रणीतराजधर्मेण नितरां प्रयोजनमित्याशा मया प्रबन्धेऽस्मिन् प्रकटिता।

❖

PR-5

ब्रह्मसूत्रेऽन्तराभवः

डॉ. राजवीरः, मेरठ

प्राणिनः मरणानन्तरं पुनर्जन्मः पूर्वं जीवनमन्तराभवः।

ब्रह्मसूत्रेऽप्यन्तराभव इति कुतूहलं हालयितुमिदं शोधपत्रं प्रस्तूयते।

ब्रह्मसूत्रे अन्तराभवतत्त्वं विविधनामभिः रेतो वायुः प्राणो रश्मिरर्चिरुत्क्रान्तिर्गतिरन्तरासृतीयोनिरिन्द्रियाणि शरीरमातिवाहिकं वैश्वानरो लोको मृत्यवादिभिः सन्दर्भे अधिगम्यते।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिष्ठानं, कर्ता, करणंचेष्टा गतिरिति पञ्चहेतुभिः योनिशरीरादिभिश्च राजते अन्तराभवः।

अत्र अधिष्ठानमिति रूपेण रेतः सूक्ष्मशरीरं गर्भः निरूप्यते।

कर्तृत्वेन प्राणदाता वायुः अन्तराभवं पोषयति। अर्चिर्जीवस्य अर्चिरादिमार्गेण ब्रह्मादिलोकगमने करणम्। उत्क्रान्तिदेहान्तरगमनमेवात्र चेष्टारूपेण निर्दिश्यते। देहप्रदेशानां रूपरसस्पर्शे अन्तरालयस्य मरणधर्मजीवस्य गमनागमनमन्तराभवः।

मृज्जीवस्य पुनर्जन्म पूर्वं विज्ञानादियोनिष्वयमन्तराभवः सम्पद्यते। शरीरेण शरणेन अतिवाहेन आतिवाहिकविश्वतो नरेण वैश्वानरेण नयेन अन्तराभवेषु भोगाय पुनर्निर्माणाय च शरीरं भवत्येव।

कथयितुं शक्यते यत् ब्रह्मसूत्रे पञ्चहेतुसंवलितमन्तराभवतत्त्वं पुष्टं दृश्यते।

❖

PR-6

याज्ञवल्क्यदिशा वादविमर्शः

डॉ. ललितकुमारसाहुः, पुरी

'वाद' शब्देनात्र जल्पो वितण्डा वा तर्कशब्दो नैव गृहीतोऽपि तु भाग्यवादः पुरुषार्थवादश्चालोचितः।

दैवस्योद्योगस्य च गुरुलाघवं बलाबलं च निश्चिन्वतां विपश्चितामपि गरीयसी विप्रतिपत्तिर्विषयेऽस्मिन् केचन दैवस्य माहात्म्यमुद्घोषयन्ति। अन्ये पौरुषस्य महत्त्वमाचक्षाणाः पुरुषार्थमेव सिद्धेः सोपानत्वेनाङ्गीकुर्वन्ति। ईदृशे महति विरोधे वर्तमाने केचन मनीषिणो द्वयोरेव समन्वयं श्रेयस्करमाचक्षते। विचारणीयं तावदेतद् यत् कतमा सरणिरिह साधीयसी, यामवलम्ब्य सकललोको भुवनेऽस्मिन् भव्यां भूतिमासाद्य चिरसञ्चितपुण्यपरिपाकसंप्राप्तस्य मानवजीनवस्यास्य चरितार्थतां संपादयन् एहिकामुष्मिकं चोभयं क्षेममधिगच्छति।

स्वरूपविचारः—उभयोः स्वरूपविचारावसरे प्रथमं तावद् दैवस्य बलाबलत्वमालोच्यते। किं नाम दैवम्, कथं च भवतीदं जीवलोकस्योदयास्तमयस्योत्कर्षापकर्षस्य पातोत्पातस्य वा कारणम्? यदि विचार्यते तर्हि न भूयान् भेदोऽनयोः, प्राकृतस्य कर्मण एव नामान्तरं दैवमिति भाग्यमिति वा। अतः साधु उच्यते—'पूर्वजन्मकृतं कर्म तद्दैवमिति कथ्यते'।

उद्यम उद्योगोऽध्यवसायो मानवस्यानुपमो बन्धुः यदभिलशितं तदधिगम्यते। या काऽपि सिद्धिरभीष्टा, साऽविकला शक्यते लब्धुमुद्यमेनेति।

पक्षद्वयस्य बलाबलविवेचनेन एतदेव सुविचारं यत् कृतमवदातं कर्म साधयति कर्म इह जगति। तदेव च संस्काररूपेणावशिष्टं दैवमिति भवति। प्रवर्तयति च भाविकर्मजातम्। अत उभयस्याश्रयणं न्याय्यम्।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-7

प्रणवे कलाविमर्शः

डॉ. वृजेशकुमारशुक्लः, लखनऊ

वैदिकतान्त्रिकयोरुभयोरपि वाङ्मये प्रणवस्य महत्त्वं नितरामुन्मीलितम्। वेदमन्त्राणामादौ प्रणवे ब्रह्मत्वेन शोभतेतराम् ब्रह्मणो वाचकत्वात्तस्य यथोक्तं पतञ्जलिना—'तस्य वाचकः प्रणवः'। प्रणव ओङ्कारो वा तस्य ब्रह्मणो वाचको निगद्यते ब्रह्मविद्भिः। अत एव प्रणवेऽस्मिन् रहस्यात्मिका अनेकाः शक्तयो राराजन्ते। एताः शक्तय एव तन्त्रशास्त्रे कलानाम्नाऽभिधीयन्ते। एतत्प्रमाणं श्रीमताऽभिनवगुप्तेनाऽभ्यधायि तन्त्रालोके—

केचिदाहुः पुनर्यासौ शक्तिरन्तः सुसूक्ष्मिका।
तत्त्वानां सा कलेत्युक्ता धरण्यां धारिका यथा॥

महर्षिभिर्विभिन्नमतानुसारं प्रणवस्याक्षरविभाजनं विधाय तत्र कलानां सङ्केतो व्यधायि। एताः कला वास्तविकरूपोणोङ्कारस्याऽन्तर्निहिताः शक्तय एव भवितुमर्हन्ति। प्रणवस्याऽकारोकारमकारबिन्दुनादरूपत्वेन पञ्चधा विभाजनं कृत्वा तत्राऽकारे दश, उकारे दश, मकारे दश, बिन्दौ चतस्रो नादे च षोडश कला निर्दिष्टाः। एवं प्रणवस्य सर्वाः कला पञ्चाशत्सङ्ख्यकाः समुन्मीलिताः। शक्तिसङ्गमतन्त्रे प्रणवस्य सप्तविधाः कलाः कथिताः। अत्र शम्भुशक्तिकलयोर्मिश्रणं विधाय परा, परात्परा, परातीता, चित्परा, चित्परात्परा, चिदतीता सर्वातीता चेति सप्त कलाः समुद्दिष्टाः। एवमेवाऽन्यत्राऽष्टात्रिंशत्कलाः प्रणवे भवन्तीति निगदितम्। ओङ्कारस्याकृतौ सुन्दरीकलायाः स्थानं शक्तिसङ्गमतन्त्रे लिखितमिदम्—

ब्रह्मादयश्चतुष्पादाः कशिपुस्तु सदाशिवः।
आच्छादनं तु कामेशस्तत्रस्था सुन्दरीकला॥

अत्र तान्त्रिकोङ्कारलिपिस्था सुन्दरीकला प्रदर्शिता।

एवं तान्त्रिकवाङ्मये प्रणवे कामकलासुन्दरीकलाचन्द्रकलादीनां विमर्शो व्यधायि परमाचार्यैरिति सर्वं शोधपत्रेऽस्मिन्नाम्नातं वर्तते।

❖

PR-8

नियोगविधौ धर्मशास्त्रीयदृष्टिः, अधुना तस्य प्रासङ्गिकता

डॉ. भगवत् शरणशुक्लः, इलाहाबाद

पुन्नाम नरकात् त्रायते इति पुत्रः इति व्याख्यानाज्ज्ञायते यद् गृहस्थजीवने पुत्रस्य महती भूमिका भवति। पुत्रेणैव वंशस्य वृद्धिर्भवति। अपुत्रायाः विधवायुवत्याः जीवनं महाकष्टकरं भवति। अतस्तस्याः कृते धर्मशास्त्रकारैः नियोगव्यवस्था व्यवस्थापिता।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एतादृशीमेव व्यवस्थां याज्ञवल्क्यः (1/68,69) गौतमः (अध्याय 18), वशिष्ठः (17/49-53), बौधायनः (2/2/66-70), कौटिल्यः (117) इत्यादय आचार्याः प्रदर्शितवन्तः। किन्तु स्वयं मनुः (9/64-68), नारदः (85-86), आपस्तम्बः (2/10/27/5-7), बौधायनश्च (2/2/38) इमां व्यवस्थां निन्दन्ति। विशेषतः द्विजातिषु न स्वीकुर्वन्ति। ऋग्वेदेऽपि औरसः पुत्रः प्रशंसितः (7/4/7-8)। अतः एषा व्यवस्था त्याज्या व्यभिचारदोषदुष्टा वर्णसङ्करसन्तानयुक्ता। कलियुगे तु न केवलं द्विजातिषु, अपि तु सर्वत्र वर्जितास्ति।

एषा नियोगव्यवस्था कथं वर्जिता इति तावद् विचारणीयम्। नियोगार्थं नियुक्तो देवरप्रभृतयो जनाः घृतलिप्ताङ्गाः अकामाः, शुद्धभावयुक्ताः रतिक्रीडाविषयिचुम्बनादिचेष्टारहिताः भवन्तु। अल्पसत्त्वगुणैः जनैः एषा मानसिकी स्थितिरपालनीयास्ति। ते कामरहिताः रतिचेष्टाविरहिताः न भवितुमर्हन्ति। अतस्तत्र व्यभिचारशङ्का निश्चितैव। किञ्च अमोघवीर्यैः जनैः सकृदेव प्रवृत्त्या गर्भाधानमपि अनिश्चितम्। वारम्वरम् ऋतुस्नानानान्तरं सहवासे प्रवृत्तौ सत्यां व्यभिचारशंका बलवती भविष्यति। अतः एषा व्यवस्था सर्वथा कलियुगे वर्जिता वर्णसङ्करसन्तानोत्पत्तिसम्भावनायाः बलवत्त्वात्।

किन्तु आधुनिकसमये नियोगरूपा एका अन्या व्यवस्था भिन्नरूपेण भवितुमर्हति। येन व्यभिचारशङ्कायाः लेशोऽपि न भविष्यति। परपुरुषसम्पर्कजन्यदोषदुष्टापि सा विधवा युवती न भविष्यति। न च कामभावना दूषिता। तथापि सा पुत्रवती भवितुमर्हति। एषा व्यवस्थास्ति यन्त्रमाध्यमेन कृत्रिमा गर्भाधानव्यवस्था। या काचित् अरुग्णा अबन्ध्या विधवा युवती ऋतुमती सती ऋतुस्नानान्तरं पुत्रं वाञ्छति। सा गुरुजनानुज्ञया स्वकीयदेवरसपिण्डस्वकुलपुरुषवीर्यस्य यन्त्रमाध्यमेन निक्षेपेण महिलाचित्सिकायाः प्रयासेन गर्भवती भवितुमर्हति। नियोगविधौ ये दोषा मनुप्रभृतिधर्मशास्त्रकारैः उत्थापितास्ते अस्मिन् विधौ न भविष्यन्ति। सा तु विधवा युवती पुत्रवती भूत्वा स्ववंशचालने स्वकीयभविष्यरक्षणे च समर्था भविष्यति। अपि च पुत्रप्राप्तये विधवायाः विवाहस्यापि आवश्यकता न भविष्यति। धर्मशास्त्रविद्भिः विद्वद्भिरेषा व्यवस्था स्वीकरणीया समाजे स्थापनीया च। यद्यपि सः नियोगजन्योऽनेन विधिनोत्पन्नः पुत्र औरसो न भविष्यति। अपि तु क्षेत्री भविष्यति। तथापि व्यभिचारशङ्काशून्यत्वाद् एष विधिराधुनिके न गर्हितो भवेदिति मन्तव्यम्।

❖

PR-9

श्रीमद्भगवद्गीतायां मायावादः

डॉ. सर्वानन्दमिश्रः, पुरी

श्रीमद्भगवद्गीता विश्वविख्यातो ग्रन्थः। तत्र सकलवेदान्तसारत्त्वं सुनिहितमस्तीति नास्त्यत्र काचिद्विप्रतिपत्तिः। सर्वेषां शास्त्राणां मूलाधारभूतो वेदः। वेदात्सारसङ्कलनपूर्वकं सरलसुरभारत्या स्मृतिपुराणेतिहासदर्शनादिशास्त्रं जनगणहिताय पूर्वाचार्यैः ऋषिभिः सूरिभिः विद्वद्भिश्च विरचितम्। बहुकालावधि गीताक्षीरसागरमन्थनं समारब्धमधुनापि विद्वद्भिः स्वस्वबुद्ध्यनुसारं स एव गीतामहोदधिः सम्मन्थ्यते। अनेन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीतायाः गभीरता महनीयता चावगम्यते। अद्वैतवेदान्तस्य यः सिद्धान्त स एव मायावादसिद्धान्तः। अत एव वैदान्तिकाः मायावादिनः भवन्ति। प्रागपि मायावादः आसीत्। माण्डूक्योपनिषदः गौडपादकारिकायां यः मायावादः प्रतिष्ठितः, तं शङ्कराचार्य्याः विविधयुक्तिबलेन श्रुतिस्मृतिपुराणादिप्रमाणैश्च सुस्पष्टं कृतवन्तः। तेन माया सदसदभ्यामनिर्वचनीयेति प्रतिपादितं विवेकचूडामणौ—'मट्टाद्भुतानिर्वचनीयरूपा' इति।

निर्विशेषान्निर्लक्षणाच्च स्वयम्प्रकाशाद् ब्रह्मणः सविशेषस्य सलक्षणस्य च जगतः कथमुत्पत्तिः? एकस्माद्द्वैतादब्रह्मणः सकाशाद् विचित्रता कथं जायते? इत्येतेषां समाधानं यथावत् मायास्वरूपवर्णनद्वारा आचार्यैरुपवर्णितम्।

गीतायां भगवान् पुरुषोत्तमो हि नित्यः सनातनः, अन्यद् यत्किञ्चित्सृष्टं तत्सर्वं पुरुषोत्तमस्य मायया विरचितम्। एवम्भूतसदसद्विलक्षणा अनादिभावरूपा सन्ती अघटितघटनापटीयसी माया सर्वाधिष्ठानब्रह्मस्वरूपावबोधेनैव बाध्या भवति। अत एव तामेव मायां लक्ष्यीकृत्य गीतायामुक्तम्—

'मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते'।

मुख्यतः भगवद्गीतावर्णितमायास्वरूपपर्य्यालोचनमेव नातिदीर्घस्य सन्दर्भस्यास्य मुख्यः प्रतिपाद्यविषयः।

❖

PR-10

मनुस्मृतेः वेदानुगामित्वम्

डॉ० महावीरोऽग्रवालः, हरिद्वारम्

कविकुलगुरुणा कालिदासेन 'श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्' इति व्याहरता स्मृतीनां वेदानुगामित्वम् प्रतिपादितम्। वेदानां सर्वविद्यामयत्वं, नित्यत्वम्, अपौरुषेयत्वं, निखिलप्राणिकल्याणकारित्वं सुप्रसिद्धमेव। अनेन प्रकारेण गूढविषया अपि न केवलं विदुषामपितु सामान्यजनानामपि हृदयेषु सुस्थापिता भवन्ति। एतेषु ग्रन्थेषु स्मृतिग्रन्थानां स्थानं श्रेष्ठतमम्। स्मृतिकारैः तदेव गीयते, उपदिश्यते, व्याख्यायते वा यत् परमात्मनः निःश्वासभूतेषु वेदेषु दरीदृश्यते। स्मृतिग्रन्थेषु मानवधर्मप्रतिष्ठापकस्य भगवतः मनोः महत्त्वं गौरवञ्च केन संस्कृतानुरागिणा न ज्ञायते? वन्द्यः खलु सः महर्षिः सर्वेषां संस्कृतानुरागिणाम्। मानवजीवनस्य बाल्यकालादारभ्य आमृत्योः यावन्ति कार्यजातानि, यद् यच्च करणीयम्, अकरणीयम् वा, तत् सर्वं विस्तरेण प्रतिपादितम् मनुना। भगवान् मनुः जगत्कल्याणार्थं तदेव प्राह यन्नित्यसत्येषु चतुर्षु वेदेषु वर्णितं विद्यते।

साम्प्रतिके काले बहवः स्वार्थमलिनबुद्धयः अज्ञानान्धकारमुकुलितहृदयाः वेदं मनुस्मृतिं वा याथातथ्यतोऽजानन्तः मनुं निन्दन्ति, मनुस्मृतौ च अनेकान् दोषान् उद्भावयन्ति।

रामायणमहाभारतादिषु महाकाव्येषु, कालिदासकवितायां, निखिलेऽपि च प्राचीनसंस्कृतसाहित्ये मनुः सादरं सगौरवं च स्मर्यते। वेदभाष्यकारः महर्षिदयानन्दोऽपि सत्यार्थप्रकाशग्वेदादिभाष्यभूमिका-संस्कारविध्यग्रन्थेषु मनुस्मृतिपद्यानि प्रमाणरूपेण सादरं प्रस्तौति। तस्याः मानवजातेः संविधानभूतायाः मानवधर्मप्रतिपादिकायाः मनुस्मृतेः कथं वेदानुगामिता इत्येव शोधपत्रेऽस्मिन् विवेच्यते।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-11

ज्ञानाद्भक्तिर्गरीयसी

डॉ० रामप्रभा ओझाः, बलिया

भक्तिदर्शनस्याचार्याणां मते जीवस्य मुक्तिसम्पादने परा भक्तिरेव साक्षात् साधनमिति भाषमाणेन स्वप्नेश्वराचार्येण— 'तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' इति प्रसिद्धां ज्ञानात्मिकां श्रुतिमाश्रित्योक्तं मतं सप्रमाणं प्रतिष्ठापितम्, 'उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी'ति राद्धान्तात्।

श्रीमद्भगवद्गीतायां यद्यपि—

'भक्त्या मामभिजानाति' इत्यत्र 'भक्त्या' इति तृतीयान्तपदेन भक्तिः ज्ञानास्याङ्गत्वेन प्रतीयते किन्तु तत्र 'अभिजानाति' इति क्रियापदं वर्तते, अतः पूर्वं ज्ञातस्य वस्तुनो वारं वारं स्मरणमेवाभिज्ञानमिति, तच्च ब्रह्मज्ञाने सति पराभक्तावपि भजनीयस्य वारं वारं स्मरणं भवति, तथा चोक्तमाचार्यपादैः—'स्वस्वरूपानुसन्धानं भक्तिरित्यभिधीयते'।

किञ्चात्र 'भक्त्या' इति पदेन गौण्या भक्त्या इत्यपि सामान्योऽर्थः। भक्त्याचार्याणां मते तु श्रवणकीर्तनादिगौणभक्तीनामत्यन्तदाढ्र्येनापि मीमांसाशास्त्रोक्त—'अनवहतकृष्णलेनापि फलसिद्धिरिव ज्ञानं विनैव मुक्तिः सम्भवेति'।

छान्दोग्योपनिषदि 'यो वै भूमा तत्सुखम्' इत्यादिनोपक्रम्य 'आत्मैवेदं सर्वमिति स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्नात्मरतिरात्मक्रीड आत्ममिथुन आत्मानन्दः स स्वराड्भवति' इति यदुक्तं तदात्मरतिरूपायाः पराभक्तेः पश्यन्निति दर्शनमप्रियत्वादिभ्रमनिरासमुखेनापि ज्ञानमङ्गं भवति, यतो हि 'स स्वराड् भवति' इत्यत्र तच्छब्देन सन्निकृष्टात्मरतिमानेवोपस्थाप्यते।

किं वा दृष्टं हि लोके सौन्दर्यादिज्ञानं तरुण्याः तरुणे रतिहेतुत्वम्, रतेर्ज्ञानहेतुत्वमिति न। अतः प्रकृते निष्करुणत्वाल्पमहिमत्वाप्रियत्वादि—मनोमालिन्यकारणम्, तस्माद् भूतेषु करुणाबाहुल्याव्याहतैश्वर्यातिशयित-रूपाश्रय आत्मेति ज्ञानान्मनोमालिन्यनिवृत्तिस्ततः पराभक्तिः, परभक्त्या च मुक्तिरिति। उक्तञ्चाचार्यचरणैः— 'मोक्षकारणसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी'। इति।

❖

PR-12

वैखानसीयं जिज्ञासाधिकरणम्

डॉ० वेदान्तं श्रीविष्णुभट्टाचार्यः

निरुपमगुणसिन्धुः नित्यलक्ष्मीसमेतः निखिलनिगमवेद्यः सर्वजगत्कारणभूतः नित्यः निर्मलः निरवधिकः समस्तकल्याणगुणाकरः परमपुरुषश्च श्रीमन्नारायणः। निखिलजगदेकशरण्यापहतपाप्मत्वानवधिककृपालुत्वादि-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याणगुणाकरस्य तस्याराधनेन मुक्तिः साध्या इति निरूपयितुं प्रवृत्ताः दशमशताब्दीयाः सर्वशास्त्रपारङ्गताः सर्वतन्त्रस्वतन्त्राः तिरुमलक्षेत्रे विराजमानस्य श्रीवेङ्कटेश्वरस्य पादपद्माराधनतत्पराः गोविन्दाचार्यस्य पुत्राश्च श्रीनिवासदीक्षिताः। श्रीवैखानसकुलसम्भूताः एते तावत् परमकारुणिकस्य संसृतिसिन्धुनिमज्जचेतनवर्गोद्धारणाय प्रवृत्तस्य पराशस्य ब्रह्मसूत्राणां भाष्यं शारीरकं चतुरध्यायात्मकं च प्रबन्धम् एकमनुगृहीतवन्तः। प्रबन्धस्याऽस्य श्रीविशिष्टाद्वैतभाष्यं लक्ष्मीविशिष्टाद्वैतभाष्यमिति नामान्तरे वर्तेते। प्रबन्धेऽस्मिन् प्रधानप्रतिपाद्यो अंशः लक्ष्मीविशिष्टः विष्णुः एव आराध्यः प्राप्यः वन्दनीयः पूजनीयश्च इति। विशिष्टं च विशिष्टं च विशिष्टे। तयोः विशिष्टयोः, विशिष्टयोः अद्वैतं विशिष्टाद्वैतम्। स्थूलचिदचिद्विशिष्टब्रह्मणः सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्टब्रह्मणश्च अभेदस्य प्रतिपादितत्वात् विशिष्टाद्वैतं भवतीति नाम्नः निर्वचनं वक्तुं पार्यते।

भाष्यस्याऽस्य स्वरूपनिरूपणे अध्यायः 4, पादास्तु 16, अधिकरणानि 156, सूत्राणि च 565 विद्यन्ते। एकैकस्य अधिकरणस्य एकैकं नाम विषयप्रतिपाद्येन निर्धार्यते। एतेषु जिज्ञासाधिकरणं आद्यम् अधिकरणं भवति। अस्मिन् जिज्ञासाधिकरणे **'अथाऽतो ब्रह्मजिज्ञासा'** इति सूत्रस्य विवरणं पारमात्मिकछान्दोग्योद्युपनिषन्मन्त्रैः श्रीवैखानसकल्पोक्तैः सूत्रैः तदागमोक्तज्ञानयोगविषयैश्च समन्वयः क्रियते।

प्रसङ्गेऽस्मिन् लक्ष्मीविशिष्टाद्वैतभाष्यजिज्ञासाधिकरणे के के विषयाः प्रतिपादिताः? तेषां वैशिष्ट्यं कीदृशम्? इति मया अत्र यथाशक्ति प्रस्तूयते। तत्रापि अथ शब्दार्थः, अतः शब्दार्थः, ब्रह्मपदार्थः, ब्रह्मणः विशेषणानि, ब्रह्मणः निष्कलत्वं, ब्रह्मणः सकलत्वं, उपासनाभेदाः, लक्ष्मीविशिष्टविष्णुः एव आराध्यः, वैखानसानां श्रेष्ठत्वम् इत्येते अंशाः विषयपरिशीलनेन विषयविवेचनसरण्या च समालोच्यन्ते।

❖

PR-13

शङ्करमिश्रकृतस्य शब्दमणिमयूखस्य वैशिष्ट्यम्

डॉ. हरेरामत्रिपाठी, नई दिल्ली

प्राचीननव्यभेदेन न्यायशास्त्रं द्विविधं वर्तते। तत्र प्राचीनन्याये प्रमेयाणां प्राधान्यं विद्यते नव्यन्याये तु प्रमाणानां प्राधान्यमस्ति। नव्यन्यायस्य प्रवर्तकः उदयनाचार्य इति केचन वदन्ति।

वस्तुतः नव्यन्यायस्य प्रवर्तकः गङ्गेशोपाध्याय एवेति शास्त्रज्ञाः वदन्ति। नव्यन्याये प्रमाणानां प्रधानत्वात् प्रमाणान्याधारीकृत्य तत्त्वचिन्तामणिग्रन्थः महामहोपाध्यायेन आचार्यप्रवरेण गङ्गेशोपाध्याये प्रणीतः। न्यायनये प्रमाणं चतुर्विधं भवति। अत एवोक्तम् सूत्रकारेण—'प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः प्रमाणानि' इति।

तेषु चतुर्थं प्रमाणं शब्द एव विद्यत इति। आप्तोपदेशः शब्द इति तर्कभाषाकारेणोच्यते। तत्र आप्तोपदेशत्वं लक्षणं शब्दः लक्ष्यमिति। शब्दस्य निरूपणावसरे चिन्तामणिकारः आह, 'अथ शब्दो निरूप्यते। प्रयोगहेतुभूतार्थतत्त्वज्ञानजन्यः शब्दः प्रमाणम्'।

शब्दतत्त्वचिन्तामणिग्रन्थस्य रघुनाथशिरोमणिना दीधिति व्याख्या कृता। मथुरानाथेन माथुरीरहस्यम्, शङ्करमिश्रेण च मयूखाख्या टीका कृता। सा टीका शब्दमणिमयूखाख्या प्रसिद्धा अद्यावधि न प्रकाशिता।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्प्रति तामधिकृत्य विश्वविद्यालयानुदानायोगेन एका परियोजना मया सम्पाद्यते। अत एव शब्दमणिमयूखस्य किञ्चिद् वैशिष्ट्यं वक्ष्यामि।

❖

PR-14

स्थितप्रज्ञविमर्शः

डॉ० मारकण्डेयनाथतिवारी, नई दिल्ली

वैदिकदर्शनसर्वस्वभूतायाः श्रीमद्भगवद्गीतायाः माहात्म्यं वर्णनातीतमस्ति। सर्ववेदानां सारतत्त्वं श्रीमद्भगवद्गीतायाः सप्तशतश्लोकेषु निबद्धमस्ति। वस्तुतस्तु गीतायां तत्सर्वमपि यद्यद् मानवजीवनोपयोगि वर्तते।

अस्याः गीतायाश्चरमसिद्धान्तरूपेण स्थितप्रज्ञता समुपदिष्टा। अयं स्थितप्रज्ञः मनुष्याणामादर्शरूपेणात्र वर्णितः। स्थितप्रज्ञतायाः अवस्था मानवीयोत्कर्षस्य चरमावस्था वर्तते। एतस्याचरणं सर्वेषां सामाजिकानां कृतेऽनुकरणीयमस्ति। स्थितप्रज्ञशब्दोऽयं गीतामृते नान्यत्र दृष्टिपथमायाति। यस्य बुद्धिः सुस्थिरा जायते स एव स्थितप्रज्ञ उच्यते। समाधिस्थोऽप्यमुच्यते। वस्तुतस्तु स्थितप्रज्ञता व्यवहारहीनसमाधिर्नास्ति। जाग्रदवस्थायाः समाधिरूपेणायं वर्ण्यते गीतायाम्। स्थितप्रज्ञतासम्बन्धेऽर्जुनः पृच्छति—

'भो केशव! समाधिस्थस्य स्थितप्रज्ञस्य कानि लक्षणानि सन्ति? स्थिरपुरुषस्य किं लक्षणमस्ति? स कथं वदति, कथमुपविशति? कथञ्च व्रजतीति?

अर्जुनकृतान्प्रश्नानेतानाश्रित्यैव भगवान् स्थितप्रज्ञोपदेशं करोति—स्थितप्रज्ञतायां समुदितायां कामक्रोधादीनां सर्वाणि बीजानि विनष्टानि भवन्ति। कर्मावस्थायामपि अकर्तृभावो जागर्ति। अतएव अयं जाग्रद्कालीनसमाधिरप्युच्यते। अयं समाधिः ध्यानजन्यसमाधेः पृथग् अस्ति। ध्यानजन्यसमाधौ एकस्मिन् स्थाने उपविश्य नेत्रे निमील्य परमात्मनः ध्यानं विधीयते। अस्यामवस्थायां देहस्य इन्द्रियाणाञ्च बोधो न जायते। अवस्थेयं लयावस्थाऽपि उच्यते। स्थितप्रज्ञसमाधिः एतस्माद् भिन्नोऽस्ति।

स्थितप्रज्ञविषयिणी चर्चा योगस्यानेकेषु ग्रन्थेषु उपलभ्यते। अर्थान्तररूपेणापि अस्य चर्चा अनेकेषु आस्तिकदर्शनेषु उपलभ्यते। समेषां विषयाणां विस्तृतं विवेचनमुक्तशोधपत्रे वक्ष्यामि।

❖

PR-15

आधुनिकयुगे मनुस्मृतेः प्रासङ्गिकता

डॉ० महेश्वरप्रसादसिंहः, मुजफ्फरपुरम्

श्रुतिः भारतस्य सभ्यतासंस्कृतयोः ज्ञान-विज्ञानयोः अक्षयनिधिः विद्यते। श्रूयते इति श्रुतिः। प्राचीनकाले विद्वांसः गुरुमुखात् निःसृतां वाणीं श्रुत्वैव स्मरन्ति स्म। तत्पश्चात् स्मृते कालमागच्छत्। स्मृतिषु मनुस्मृतिः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीनतमा गण्यते। मनुस्मृतौ आचार्यमनुः देशधर्मान्जातिधर्मान्कुलधर्मांश्च पाषण्डगणधर्मांश्च विस्तारपूर्वक-मुक्तवान्।

आधुनिकयुगे भौतिकवादस्य प्राबल्यं प्रतीयते। येन-केन प्रकारेण मनुष्याः सुखोपार्जनार्थं दिवारात्रौ संलग्नाः सन्ति। भौतिकसुखोपार्जनाय मानवाः धर्मशास्त्रविहितं कार्यं न कुर्वन्ति। परिणामतः, सर्वत्र अराजकतावैमनस्यात्महत्यापहरणप्रभृतीनि दुष्कर्माणि दिनानुदिनं वर्धन्ते। यदि मानवाः श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन्ति तर्हि अस्मिन् संसारे सुखं कीर्तिं च प्राप्नुवन्ति।

❖

PR-16

पुरुषपरीक्षायां पुरुषार्थचर्चा

डॉ० जयश्री चट्टोपाध्यायः, कोलकाता

विविधविद्याधुरन्धरस्य विद्यापतेः रसविकालसचतुरा 'पुरुषपरीक्षा' सुचिरमेव सहृदयानां हृदयं रञ्जयति। तत्र पुरुषत्वस्य फलमेवं निरूपितम्—'पुरुषः पुरुषार्तवानि'ति। उक्तमत्र बहुविद्यापारंगतेन विद्यापतिना—

पुरुषस्य लक्षणं प्रोक्तं फलं तस्य निगद्यते।
धर्मार्थकाममोक्षाख्यं पुरुषार्थचतुष्टयम्॥

तत्प्रणीते धर्मे निष्कामता नास्ति, न वा देवेष्वहैतुकी प्रीतिः कापि सन्दर्शिता। अयमेकेश्वरवादी नामतो हरिहरादिदेवानां भेदमनुमन्यते न तु स्वरूपतः। ग्रन्थारम्भे ब्रह्माच्युतशङ्करादिभिः स्तूयमानाद्याशक्तिरेवानेन प्रणम्यते। धार्मिकाणामपि त्रैविध्यमनेन विद्यापतिना कथाभिः सन्दर्शितम्। तन्मते एकनिष्ठमपि प्रेम धर्मो भवितुमर्हति। अर्थकामौ पुरुषार्थौ न भवितुमर्हतः। यतो धनमुद्वेगजनकत्वात् न सुखाय, कामस्य वा कुतस्तृप्तिः? धर्मोऽपि भोगनाश्यफलत्वेन न पुरुषार्थः किन्तु पुरुषार्थावभासः। मोक्षं एव परमः पुरुषार्थः। अविद्यानिवृत्तिरेव मोक्ष इति वेदान्तसिद्धान्ते नास्य स्वरसः, मोक्षमार्गमेवमपि सन्दर्शयति वबुधविद्यापतिः—

काश्यां तनुपरित्यागात् साक्षात्कारेण चात्मनः।
भक्त्या त्रैलोक्यनाथस्य मोक्षः सिध्यति तद्विदाम्॥

एवं 'पुरुषपरीक्षायां सितशर्कराकल्पाभिर्मनोरमाभिः कथाभिः कदुभेषजोपमं नीरसं शास्त्रवाक्यं सुकवेः विद्यापतेः कान्तासम्मितभाषायाः लालित्येन मनो हरति रसिकजनानाम्।

❖

PR-17

धर्मपदार्थविवेकः

डॉ० कालिकादत्तझा, दरभङ्गा

आर्यसंस्कृतेः विविधेषु तत्त्वेषु वर्णाश्रमव्यवस्था पुरुषार्थचतुष्टयं चेति द्वे आधारभूते तत्त्वे स्तः। तत्रापि धर्मः मौलिकरूपेण सर्वत्र अनुस्यूतः वर्त्तते। विविधेषु शास्त्रेषु स्वकीयपरम्परामनुसृत्य एष बहुशः परिभाषितः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचारितश्च। साम्प्रतम् राष्ट्रस्य सामाजिके राजनैतिके च क्षेत्रे धर्मस्य नैकाः कदाचित् परस्परविरोधिन्यश्च व्याख्याः विधीयन्ते। फलतः, यदा कदा साम्प्रदायिक्तसंघर्षरूपेण विविधाः समस्याः उत्पद्यन्ते, राष्ट्रियजीवनं च आन्दोलितं तिष्ठति। शास्त्रेषु धर्मपदार्थस्य यावन्तः पक्षाः विचारिताः, यानि च विविधानि विश्लेषणानि विहितानि तेषां समेषां समन्वयेन धर्मस्य यत्स्वरूपं समुदेति तस्याङ्गीकरणं मानवमात्रस्य अभ्युदयनिः-श्रेयसप्रदायकमिति।

❖

PR-18

सुलोचनामाधवचम्पूकाव्ये बच्चाझामहोदयानां नव्या दार्शनिकदृष्टिः

डॉ० लक्ष्मीनाथझा, दरभङ्गा

यदत्र सुलोचनामाधवचम्पूकाव्ये समेषां न्यायवैशेषिक-सांख्ययोगवेदान्तादिदर्शनानां भारतीयानां बौद्धजैनप्रभृतिदार्शनिकानाञ्च मतानि च परिशीलयता आचार्यप्रवरेण पूज्यपादेन बच्चाझामहोदयेन शिवशक्तिस्वरूपात्मकं निखिलं जगदिति स्वानुभव-स्वाध्यायचिन्तनादिदिशा स्पष्टीकृतं विद्यते। एकस्यैव परमात्मनः शिवस्य विविधानि रूपाणि लोकाराधनदृष्ट्या सुप्रतीतानि भवन्ति। शक्त्यारहितः शिवः शव इति कथ्यते। अतएव हेतोः सांसारिकजनानाम्, अलौकिकानां परमपुरुषार्थसाधकानामपि कृते शिव एव सर्वप्रधानो देवः। काव्येऽस्मिन् यन्नामकरणं कृतम् महर्षिप्रवरेण झा महोदयेन तत्रापि गूढार्थरहस्यं किञ्चिन्निहितमस्ति मया स्वतन्त्रोद्भावनया परिकल्प्यते। सुलोचनेति नामकरणस्यौचित्यं सिद्धान्त-व्यवहारोभयदिशा सङ्गच्छते। सुउपसर्गपूर्वकात् लोचृ दर्शने इति धातोः युच् प्रत्ययान्तः स्त्रीप्रत्ययान्तः सुलोचना इति सङ्गच्छते। अत्र लौकिकदृष्ट्या सम्यग् दृश्यते। अथ च पारलौकिकदृष्ट्या स्वानुभवसंस्काराध्यात्मदृष्ट्या वा यद् दृश्यते सा सुलोचनेति पदम् जगन्मातुः शक्तेः प्रतीकम्। मायाः धवः माधवः इति व्युत्पत्त्या माधवशब्दः निष्पद्यते। तद्दिशापि समग्रैश्वर्यस्य ज्ञानादेश्च पतिः माधवः शिवस्वरूप एवेति। दार्शनिकदृष्ट्या माधवस्य शिवस्वरूपत्वम् सुलोचनायाश्च मातृस्वरूपत्वं प्रतिपाद्यते। उभयोश्च समवायेन तादात्म्यतया वा जीवस्य जगतश्च सर्वविधं समीप्सितं शिवं साधयितुं शक्यते इति।

❖

PR-19

सर्वतन्त्रस्वतन्त्रबच्चाझापरनामधेयधर्मदत्तोपाध्यायानां व्यक्तित्वकृतित्वविवेचनम्

डॉ० बौआनन्दझाः, दरभङ्गा

एकोनविंशतिशताब्द्याःमध्यमे भागे गृहीतजन्मनः श्रीबच्चाझामहोदयस्य वैदुष्यं कृतित्वञ्च नाविदितं सुरभारतीसमुपासकानाम्। मिथिलामहीमण्डलमण्डनायमानन्यायवाणीतिप्रसिद्धनवानीग्रामवास्तव्यो झामहोदयो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाल्यादेवाप्रतिमप्रतिभासम्पन्न आसीत्। नवानीस्थविद्यालये स्वकीयपितृष्वसेय यदुनाथशर्म्मणः गुरोःसका-(शा)सात् प्रारम्भिकीं शिक्षामवाप्य, ठाढीग्रामनिवासिनः पं. विश्वनाथशर्म्मणः व्यधिकरणादिटिप्पणीं तत्कृतामधीत्य, पिलखवाड़ग्रामवास्तव्यात् नव्यनैयायिकशिरोमणेः श्रीजटाधरशर्म्मणः निखिलमेव बाधान्तग्रन्थमध्यैष्ट। ततश्चातिवृद्धात् म.म. वबुजनशर्म्मणः प्राचीनन्यायग्रन्थान् ग्रन्थग्रन्थिविमोक पुरस्सरमध्यगच्छत्। तत्कालीनपरम्परानुसारं काश्यामध्ययनं विना न कस्यापि पाण्डित्यप्रसिद्धिरितिरीत्या सकलशास्त्रार्थविचारदक्षात् बालशास्त्रिणः वेदान्तशास्त्राणि, विशुद्धानन्दसरस्वतीभ्यश्च मीमांसाग्रन्थानधीत्य, नवानीस्थविद्यालये एव तत्तद्देशतः समागतान् शताधिकान् छात्रान् न्यायवेदान्तादिग्रन्थान् अध्यापिपत्। शास्त्रार्थविचारेऽप्यस्य महती प्रसिद्धिरासीत्। शास्त्रचिन्तनशीलस्यास्य पण्डितमण्डलाखण्डलेन दामोदरशास्त्रिणा सह शास्त्रार्थोऽद्यापि विद्वत्समाजे प्रसिद्ध एव। ग्रन्थनिर्माणेऽप्यस्य महत्कौशलमासीत्। नव्यन्याये तावत् व्याप्तिपञ्चकगूढ़ार्थतत्त्वालोकः, सिद्धान्तलक्षणतत्त्वालोकः, साम्यनिरुक्तितत्त्वालोकः, अवच्छेदकत्व-निरुक्तितत्वालोकः व्याधिकरणादिटिप्पण्यश्च प्रसिद्धाः सन्ति। प्राचीनन्याये कुसुमाञ्जलिटिप्पणी न्यायवार्त्तिकतात्पर्यतत्त्वालोको (योऽधुना कामेश्वरसिंहदरभङ्गासंस्कृतविश्वविद्यालयतोऽचिरेणैव प्रकाश्यमानोऽस्ति) विराजेते। वेदान्तग्रन्थेषु गीतामधुसूदनीतत्त्वालोकोऽतीव प्रसिद्धः। सुलोचनामाधवम् नाम चम्पूकाव्यं बृहदाकारमस्य विदुषः सकलशास्त्राधिमन्तृत्वमवबोधयति। अत्र शोधप्रबन्धे म.म.गिरिधरशर्माचतुर्वेदिनः पं.बलदेवोपाध्यायस्येतिहासिकतथ्यापलापश्चर्चितः खण्डितश्चापि वर्त्तते।

❖

PR-20

प्रमुखभारतीयदर्शनेषु मोक्षस्यावधारणा

प्रो॰ हृषीकेशझाः, दरभङ्गा

सुखदुःखात्मकस्य संसारस्य समस्यानां समाधानार्थं प्रवृत्तैः दुःखाभिभूतैः बहुसंख्यकप्राचीनभारतीय-चिन्तकैः आत्यन्तिकदुःखनिवृत्तिलोभात् तात्कालिकसामाजिकशक्तिसौकर्याद्वा कल्पितः मार्गः मोक्षत्वेन अभिधीयते। येन केनापि चार्वाकप्रभृतिभौतिकचिन्तकेन संसारभौतिकदृष्ट्या वर्णितः स तु तथाकथितदार्शनिकैः तर्कातीतवाग्जालेन तिरस्कृतः उपहसितः एव सञ्जातः।

आत्मोच्छेदः मोक्षः, निर्मलज्ञानोत्पत्तिः मोक्षः अनावृतस्य जीवस्य नैरन्तर्यैण ऊर्ध्वगमनं मोक्षः ईश्वराराधनं मोक्षः, ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्यात्मको मोक्षः, तत्त्वज्ञानान्मोक्षः इत्याद्याकारक चिन्तनम् केनचित्प्रकारेणापि समाजस्योपेक्षितानां दासप्रभृतिशोषितानां जनानां हितकृन्न प्रतीयते, प्रत्युत ते सत्तासंघर्षात् विमुखाः सन्तः स्वयं पशुवत् जीवितुम् अभिशप्ताः जाताः, तथाकथितविद्वत्पोषकानां महदातृपदभाजां सामान्यजनश्रमलुण्ठकानां प्रभु-जनानां लुण्ठनं निर्बाधम् निरपेक्षम् च सोढुमवशो भवेच्चेत् तस्मिन् काले सङ्घर्षे तेषाम् अस्तित्वविनाशकः पराजयः। अद्यापि सत्ताधीशस्य प्रभुवर्गस्य सुविधासम्पन्नजीवनस्य निरन्तरतायां शोषितानाम च अभिशप्तजीवनस्य नियतिकृतमूलकमान्यतायां तश्चिन्तनस्यैव प्रभावः दरीदृश्यते। अस्मिन् वैज्ञानिकेपि युगे तादृशधारणाभिभूतास्ते संसारम् असारम् मन्यमानाः श्रमिणः सन्तोपि उत्पादने समुचितं भागं ग्रहीतुं न तथा यतन्ते।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-21

व्याकरणदर्शने बौद्धार्थवाच्यत्वप्रकाशनम्

श्रीभोलानारायण रेग्मी, वाराणसी

जगत्यस्मिन् अनादिकालादेव प्रसिद्धस्य दर्शनस्य धाराद्वयी प्रसिद्धा एका भारतीया, अपरा च पाश्चात्त्या, अनन्तरं भारतीयायां धारायामपि आस्तिकनास्तिकभेदेन धाराद्वयं विभक्तम्। तत्र षण्न्यायवैशेषिकादय आस्तिकाः, जैन, चार्वकादयः षण्नास्तिकाः, एतेषु एव द्वादशसु दर्शनशब्दो विद्यते इति वक्तुं नैव प्रभवामः तथा सति रजनीशदर्शनं, गाँधिदर्शनम् इत्यादिष्वपि दर्शनशब्दानुपपत्तिः परमिदानीं दर्शनशब्दप्रयोगस्तत्र तत्र दृश्यते, अतः दर्शनशब्दो न रूढः, अपि तु योगिक एव।

योगश्च दृश्यते प्रत्यक्षीक्रियते न तु अनुमीयते नापि शब्दजन्यबोधविषयीक्रियते अनेनेति व्युत्पत्त्या दर्शनसाधनमित्यर्थः। अर्थात् यैर्यैरूपायैस्तत्त्वं दृश्यते ते सर्वेऽपि उपाया दर्शनपदव्यपदिष्टा भवितुमर्हन्ति। यथा—कश्चित् धार्मिकः सम्प्रदायः प्रपुष्टं दार्शनिकपक्षमन्तरा चिराय प्रतिष्ठातुं न प्रभवति तथैव दर्शनपक्षविधुराणि व्याकरणादिशास्त्राण्यपि नोपयन्ति चिरप्रतिष्ठां लोकपूज्यताञ्च। अस्मिन् व्याकरणशास्त्रे तु वैदिकादेवकालादारभ्य शब्दतत्त्वस्य दार्शनिको राद्धान्तो विवेच्यमानोऽवाप्यते।

❖

PR-22

अभिलाषोपशमः

डॉ० महेशझाः, मुंगेर

भारतीयदर्शनाशास्त्रप्रवर्त्तकानां शास्त्रकरणे प्रवृत्तेः कारणं भवति जगतः दुःखम्। जगतः दुःखेन भावितास्ते शास्त्रारम्भे प्रयतन्ते। यथोक्तं गङ्गेशेन—'जगदेव दुःखपङ्कनिमग्नमुदिदधीर्षुः परमकारुणिको मुनिः शास्त्रं प्रणिनाय'।

एवं जगतो दुःखविनाशार्थं शास्त्रारम्भ इति विदितं भवति। अथ च प्राणिभिः यत्सुखं लब्धं, तदपेक्षया अधिकं सुखं लब्धुम् इष्यते, प्राणिनां यावती दुःखनिवृत्तिः भवति ततोऽप्यधिका काम्या भवति। अतएव यत्सुखं निरतिशयं भवति तदेव सुखस्य पराकाष्ठा। एवं च तादृशी दुःखनिवृत्तिरपि दुःखनिवृत्तेः पराकाष्ठा। एवमवस्थां गतवतोजनस्य न किमपि अभिलषणीयं तिष्ठति। अत्रावस्थायां पूर्णतया अभिलाषस्य उपशमो जायते। अयमेव मोक्षः।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-23

प्रवेशदर्शनम्

श्रीरामप्रवेशभक्तः, मुजफ्फरपुर

ईश्वरः को भवति? कथं तस्य दर्शनं भविष्यति। साक्षात्कारकस्य कृते कः मार्गः शोभनः वर्तते। कः मानवः अमुं विषयं निर्णेतुं समर्थो भविष्यति। एते मौलिकाः प्रश्नाः सन्ति। अस्मिन् विषये यजुर्वेदे एकः मन्त्रोऽस्ति। यथा—

'वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥'

ईश्वरं ज्ञात्वा मृत्योः ज्ञानं भवति। मृत्युं ज्ञात्वा मानवः लभते मोक्षम्। योगदर्शने अस्ति— 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' यदा चित्तस्य वृत्तीनां निरोधो भवति तदा तस्य दर्शनं भवति।

यथा—'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्' यदा मानसवृत्तिः सात्त्विकीवृत्तिः भवति तदा लभते परमानन्दम्। अत्र प्रश्नो वर्तते। सात्विकी कथं भविष्यति। कः समर्थो वर्तते। केषां मानवानामधिकारो मिलति। अस्मिन् विषये मम चतुश्शतानि सूत्राणि सन्ति।

अत्र आलेखे एषां कतिपयानां प्रस्तुतिः विधीयते।

❖

PR-24

श्रीमदाद्यशङ्कराचार्य्य-भगवत्पादानां 'मठाम्नाय'व्यवस्थापनस्य दार्शनिकं व्यावहारिकञ्च रहस्यम्

डॉ० विन्ध्येश्वरीप्रसादमिश्रो 'विनयः', उज्जयिनी

श्रीमद्धर्मराजस्य पुण्यश्लोकशिखामणेरजातशत्रोर्युधिष्ठिरस्यैकत्रिंशदधिकषट्शतोत्तरद्विसहस्रमिते (2,6,31) वत्सरे वैशाखशुक्लपञ्चम्यां रविवासरे मध्यह्नेऽधिभारतं केरलप्रान्तस्य 'कालटी' नामाभिरामे ग्रामे मातुरार्य्याम्बायाः पितुश्च श्रीशिवगुरोस्तनयत्वमुपेत्य साक्षाल्लोकशङ्कर एव श्रीशङ्कराचार्य्योऽवततारेति समस्तशाङ्करंपीठानां प्रशस्तशोधबोधानुसन्धानपरम्परया सुतरामवगम्यते।

विदितमेवेदं यत् चतुसृष्वपि दिक्षु क्रमश उत्तरे, उत्तराम्नायापरपर्यायं ज्योतिष्पीठं, याम्ये दक्षिणाम्नायाख्यं शृङ्गेरिपीठं, प्राच्यां श्रीजगन्नाथपुर्य्यां पूर्वाम्नायसञ्ज्ञितं गोवर्द्धनपीठं प्रतीच्यां श्रीद्वारकायाञ्च 'पश्चिमाम्नायमिति विश्रुतं शारदापीठमिति पीठचतुष्टयं तत्र भवान् स्थापयञ्चकार।

'आम्नाय' इति समग्रज्ञानराशेर्भगवतो वेदस्यापरपर्यायः। भगवत्पादेन व्यवस्थापितेऽस्मिन्मठाम्नाय-विधानेऽस्ति दार्शनिकं व्यावहारिकञ्च किमपि रहस्यजातं तत्स्वयमाचार्येण मठाम्नायोपनिषन्नामके लघुग्रन्थे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूत्रितम्। अस्मिन्पत्रे एवस्यैव योगशास्त्रीयं वेदान्तशास्त्रीयं निगूढं तत्त्वं श्रुतिस्मृतिवचोभिः सुप्रमाणीकृत्यपृथक्पृथङ्निरूपितं तदनु व्यावहारिकमपि वस्तुजातं सङ्क्षिप्ताक्षरैः व्याकृतमस्माभिरिदम्प्रथमतयेति विदाङ्कुर्वन्तु वेदान्तविद्योतितान्तातःस्वान्ताः महान्तः।

❖

PR-25

चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्

श्रीमती तारापाण्डे, राँची

मनोरथः सिध्यति। शिवार्चनं मृत्युकष्टनिवारकं समस्तसिद्धिप्रदञ्चास्ति। ये शिवभक्तितत्पराः भवन्ति ते दुःखिनो न भवन्ति—

भवभक्तिपरा ये च भवप्रणवचेतसः।
भवसंस्मरणा ये च न ते दुःखस्य भाजनाः॥ (शिवपु.)

शिवकृपातः सर्वाणि कार्याणि स्वयमेव सिध्यन्ति। भगवान् शंकरः प्राणिनां कल्याणार्थं तीर्थेषु लिङ्गरूपेण निवसति। यद्यपि शिवलिङ्गमसंख्यं तथापि एतेषु द्वादशज्योतिर्लिङ्गानि सर्वप्रधानानि सन्ति। सौराष्ट्रे सोमनाथः श्रीशैले श्रीमल्लिकार्जुनः उज्जयिन्यां श्रीमहाकालः मालवाप्रान्ते नर्मदातीरे श्रीओंकारेश्वरः हिमाच्छादितकेदारखण्डे श्रीकेदारनाथः मुम्बईप्रान्ते डाकिनीनाम्नि स्थाने श्रीभीमशंकरः वाराणस्यां श्री विश्वनाथः गौतमीतटे श्री त्र्यम्बकेश्वरःचिताभूमौ श्री वैद्यनाथः दारुकावने श्रीनागेश्वरः सेतुबन्धे श्रीरामेश्वरः निजामराज्ये दौलताबादं निकषा धुष्मेश्वरश्च। एतेषां द्वादषज्योतिर्लिङ्गानां दर्शनेन सर्वे पापविमुक्ताः जायन्ते।

❖

PR-26

श्रीमद्भगवद्गीतायां त्यागरहस्यम्

श्री सुबासचन्द्रत्रिपाठी, उड़ीसा

सर्वोपनिषदत्सारभूतं समस्तवेदार्थसारसंग्रहरूपं भगवन्मुखनिःसृतं व्यासदेवरचितं स्मृतिप्रस्थानाख्यं श्रीमद्भगवद्गीताशास्त्रम्। तस्मिन् शास्त्रे उपनिषद्घोषितं त्यागदर्शनरहस्यं सम्यकतया समुद्घाटितं भवति। 'त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः' इति श्रुतिमनुसृत्य श्रीमद्भगवद्गीतायां त्यागवादः प्रदर्शितः। 'त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्' इति गीतावचनं त्यागस्य शान्तिसाधनत्वं घोषयति कर्मफलत्यागी वस्तुतः वास्तवीं शान्तिं लभते। कर्मत्यागः नैव करणीयः, कर्मफलस्यैव त्यागः अवश्यं करणीयः इति श्रीमद्भगवद्गीतायाः घोषणा। अत एव उपदिश्यते भगवता अर्जुनं प्रति मोक्षसंन्यासयोगे यथा—

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते॥

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-27

श्रीमद्भगवद्गीतानुमोदितयोगरहस्यम्

डा० प्रलयकुमारनन्दः, पुरी

श्रीमद्भगवद्गीता महाभारतस्य भीष्मपर्वण्यन्तर्गता व्यासप्रणीता सर्वोपनिषत्सारभूता श्रीमद्भगवन्मुखनिःसुता अमृततुल्या संसारमलनाशिनी च। अस्यां गीतायां सर्वासां विद्यानां बीजमन्तर्निहितम्। अष्टादशाध्याययुक्तायाः अस्याः गीतायाः प्रत्येकमध्यायानां 'योग'संज्ञा सुप्रसिद्धा। विषादयोगादारभ्य मोक्षसंन्यासयोगपर्यन्तं गीतायाः परिसरः प्रसिद्धः। योगदर्शनसिद्धान्तानुसारेण इयं भगवद्गीता योगसिद्धान्तमपि सम्यक्तया निरूपयति। 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः', 'जीवात्मपरमात्मनोः संयोगः योग उच्यते', 'मनः प्रशमनोपायः योग' इत्यादीनि योगलक्षणानि तत्तच्छास्त्रेषु प्रसिद्धानि। श्रीमद्भगवद्गीतायां तु निष्कामकर्मयोगस्य प्राधान्यं परिलक्ष्यते। अतएव अस्मिन् गीताशास्त्रे योगशब्दार्थविवेचनं परम्परामनुसृत्य विलक्षणपद्धत्या क्रियमाणं दृश्यते। 'योगः कर्मसु कौशलम्', 'समत्वं योग उच्यते', इत्यादीनि योगरहस्यनिरूपकाणि विचित्रलक्षणानि तत्र परिलक्ष्यन्ते। अतः योगदर्शनपरम्परया साकं भगवद्गीतोक्तयोगरहस्यस्य किं साम्यं किं वा वैषम्यं विद्यत इति सम्यक् पर्यालोचितुं प्रबन्धेऽस्मिन् इष्यते।

❖

PR-28

संस्कारः पुंस एव

डा० कमलेशमिश्रः, पुरी

प्रोक्षणादिसंस्कारो मीमांसकैराधेयशक्तिनाम्ना व्यपदिश्यते। अयञ्च संस्कारो व्रीह्यादिनिष्ठोऽन्यथा 'प्रोक्षिता एव व्रीहयोऽवघाताय कल्प्यन्ते' इति शास्त्रविहितवाक्यानुपपत्तिः। व्रीहौ प्रोक्षणजन्यसंस्काररूपफलाश्रयत्वास्वीकारे क्रियाजन्यफलाश्रयत्वाभावात् 'व्रीहीन् प्रोक्षति' इत्यादिस्थलेषु व्रीह्यादिषु कर्मतानुपपत्तिः। अपि च धान्यययवादीनां पृथक्पृथक्परमाणुषु पृथक्पृथक्शक्तेः सत्त्वात् तत्तच्छक्तिविशिष्टपरमाणुभ्यः विशिष्टधान्यययवादीना-मुत्पत्तिः। माघकर्षणादिना भूमिनिष्ठा कृषिजन्या शक्तिर्निर्वाच्या।

परन्तु न्यायकुसुमाञ्जलौ श्रीमता उदयनाचार्येण 'संस्कारः पुंस एवेष्टः' इत्यादिना 'संस्कारः पुरूषनिष्ठो न तु व्रीह्यादिनिष्ठ' इति प्रत्यपादि। तत्र पूर्वपक्षिणां सर्वा युक्तयोऽपि तेन खण्डिताः। तत्र किं तात्पर्यमिति चिकीर्षितेऽस्मिन् प्रबन्धे मया प्रतिपादयिष्यत इति।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-29

धर्मतत्त्वं तत्प्रभेदाश्च

श्रीशशिनाथठाकुरः

धर्मशब्दो बह्वर्थकः। अनेन कर्म, ज्ञानम्,भक्तिरिति समेषां ग्रहणं भवति कर्मणारभ्य आमुक्तिधर्मः साधनम्। तेन ज्ञानपूर्वकं प्रयोगो धर्म इति महाभाष्यकारेण लक्षितमिति। एतेन आत्मोन्नत्यै ज्ञानक्रिययोः सम्यग् मिश्रणम्, अर्थात् ज्ञानपूर्विका क्रिया एव धर्मसंज्ञिता। संक्षेपेण पशोः देवत्वप्राप्त्यर्थं विकासो धर्मः।

श्रुतिस्मृती धर्मनियत्रृ, किन्तु शिष्टाचारपरम्परादयोऽपि धर्मस्रोतः। समेषां स्त्रोतसामनुगमेन मनुना मूलतो धर्मः षड्विधः प्रोक्तः किन्तु उपभेदेन सहितः तेनैव धर्मः नवविधः प्रोक्तः। तत्र अन्येषामपि स्मृतिकाराणां स्वीकृतिः। शोधलेखोऽयं एतान् विषयान् स्मृतीनां सन्दर्भे परिशीलयति।

❖

PR-30

पातञ्जलयोगसांख्यदर्शने कैवल्यस्य स्वरूपनिर्धारणम्

डॉ. विमला देवी, पूना

गुणाधिकारक्रमसमाप्तौ कैवल्यमुक्तयः। तत्वस्वरूपमवधार्यते। पुरुषार्थशून्यानां 'गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यम्, स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति'। पुरुषार्थशून्यानां यः प्रतिप्रसवः कार्यकारणात्मकानां गुणानां तत्कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा पुनर्वुद्धिसत्त्वानभिसम्बन्धात्पुरुषस्य चितिशक्तिरेव केवला, तस्याः सदा तथैवावस्थानं कैवल्यमिति।

❖

PR-31

गौतमधर्मसूत्रे प्रदर्शितानां प्रायश्चित्तानां साम्प्रतिकोपयोगिता

डा० पुरेन्द्रवारिकः, उत्कलः

षडङ्गान्तर्गतस्य कल्पस्यांशविशेषो धर्मशास्त्रम्। तच्च धर्मशास्त्रं श्लोकसूत्रात्मकम् सर्वेषु स्मृतिकारेषु मनोः सर्वासु च स्मृतिषु मनुस्मृतेः प्राथम्यं यथा तथैव सूत्रकारेषु गोतमस्य सूत्रग्रन्थेषु गौतमधर्मसूत्रस्य च प्राथम्यं स्वीक्रियते। प्रश्नत्रयविशिष्टे गौतमधर्मसूत्रे धर्मप्रमाणादारभ्य 'धर्मो धर्म' इत्यन्तं यावत् अनेके विषयाश्चर्चिताः सन्ति। विभिन्नेषु च विषयेषु 'गौतमधर्मसूत्रे प्रदर्शितानां प्रायश्चित्तानां साम्प्रतिकोपयोगिता' इत्यमुं विषयमाधारीकृत्यात्र आलोच्यते।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्रादौ उच्यते प्रायश्चितं कुर्यान्न वा? ननु प्रायश्चित्तकरणे पापमपनुद्यते न वा। सामाधानञ्च गौतमेन अपक्षविपक्षप्रमाणप्रदर्शनपुरःसरमुपस्थापितम्। एके तावद्विपक्षवादिन उपपत्तिबलात् प्रायश्चितं न कुर्यादित्याहुः। यस्मात्पापात्मकं पुण्यात्मकं वा कृतं कर्म न विनश्यति।

अतो मतमेतेषां प्रायश्चित्तं न कुर्यादिति। परन्तु सपक्षवादिनो मतमिदं न सहन्ते। ते तु पापक्षयाय प्रायश्चित्तं कुर्यादिति मतमुपस्थापयन्ति। एतत्सर्वमत्र विचारितम्।

❖

PR-32

दर्शनशास्त्रं प्रति पण्डितदामोदरशास्त्रिणः योगदानम्

श्रीप्रफुल्लकुमारबेहेरा, ओडिशा

विश्ववाङ्मयं प्रति भारतीयदर्शनशास्त्राणां योगदानं महत्त्वपूर्णम्। तदर्थं भारतीयदर्शनशास्त्रकाराः गौतम-कपिल-कणाद-जैमिनिपतञ्जलि-शङ्करप्रभृतयः स्मरणीयाः। प्राचीना एते दार्शनिकाः दर्शनशास्त्रस्य मौलिकं ग्रन्थं व्यरचयन्। गच्छता कालेन नैके दार्शनिकाः भारतभुवं स्वजनुषा समलञ्चक्रुः। तेषु प्रथितयशा ऊनविंशशतके उत्कलभुवि लब्धजन्मा महामहोपाध्याय-विद्यासागर-शास्त्र्युपाधिविमण्डितः श्रीजगन्नाथदेवपुरोहितः पण्डितप्रकाण्डः श्रीदामोदरमहापात्रः। प्राच्यदर्शनशास्त्रं प्रति औत्कलानामवदानं शास्त्रादिविरचनाद्वा शास्त्रव्याख्यानाद्वाऽस्ति। परमसौ दामोदरमहापात्रशास्त्रिमहोदयः एतेषु विलक्षणश्च। दर्शनतत्त्वसंवलितानि बहूनि शस्त्राणि विरचय्य न केवलमसौ दर्शनशास्त्रवाङ्मयम् ऋद्धिमच्चकार अपि तु समग्रे विश्वे प्राच्यदर्शनं प्रति अभिरुचिं वर्धापयामास।

सारस्वतसमाराधनैकव्रतस्यास्य कृतयः अपरिगणनीयाः। तेषु न्यायादर्श-वेदान्तमञ्जूषासर्वदर्शनकौमुदी-योगतत्त्ववारिधि-सांख्यतत्त्वदीपिकाः पञ्च विविधदर्शनतत्त्वाधारिताः प्रकाशिताः ग्रन्था। अन्ये अप्रकाशिताः सन्ति।

सत्सु बहुषु दार्शनिकप्रवरेषु दर्शनतत्त्वेषु च किमस्य वैशिष्ट्यं चेदत्र बिन्दुशः आलोच्यते।

❖

PR-33

गौरक्षायै धर्मशास्त्रविधानम्

डॉ० इन्दुलता दास, नई दिल्ली

भारतीयसंस्कृतौ गौः महनीयं स्थानमधिकरोति। सा सर्वभूतानां मातृरूपेण सर्वदेवानां निवासस्थलीरूपेण च पूज्यते। आयुर्वेदे गव्यानाम् औषधीयगुणाः निरूपिताः। स्मृत्यादिषु शास्त्रेषु पञ्चगव्यं परमपापशोधनरूपेण प्रशस्तम्। शास्त्रेषु गोरक्षार्थं बहवः उपायाः निर्दिष्टाः। गौमांसममेध्यं घोषितम्। गोवधः उपपातकश्रेण्यामन्तर्भावितः। गोः अवमाननं निरयदायकमिति वर्णितम्। गोसेवा भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी इति घोषिता।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोपालनं गोरक्षा च राज्ञः धर्मः। तदर्थं राजा गवाध्यक्षं नियोजयेत्। स च गवाध्यक्षः गोपालक-पिण्डारक-दोहक-मन्थक-लुब्धकैः पशून् पालयेत् गवां हन्ता घातयिता हर्ता हारयिता च वध्यः स्यात्। वेतनोपग्राहिककरप्रतिकर-भग्नोत्सृष्टक-भागानुप्रविष्टक-व्रजपर्यग्र-नष्ट-विनष्ट-क्षीरधृतसञ्ज्ञातनामभिः अष्टभिः उपायैः गवाध्यक्षः गोरक्षां कुर्यादिति अर्थशास्त्रमतम्।

❖

PR-34

विशिष्टाद्वैतदर्शनाभिमता अपर्यवसाना वृत्तिः

प्रो० अशोककुमारकालिया, लखनऊ

शब्देन अर्थप्रतीतिर्भवतीति सर्वजनीनोऽनुभवः। शब्दास्याऽर्थेन सम्बन्धः शब्दस्य अर्थावबोधनात्मको व्यापारो वा वृत्तिशब्देनाऽवगम्यते। शब्दवृत्तिविषये बहव्यो विप्रतिपत्तयो दृष्टिपथमुपयान्ति। अभिधालक्षणाव्यंजनाभेदाद् वृत्तित्रयं स्वीकुर्वन्त्यालङ्कारिकाः। भाट्टास्तु तदतिरिक्तं तात्पर्याख्यामन्यामपि काश्चिद् वृत्तिमभ्युपगच्छन्ति। एवमेव तेषु तेषु सम्प्रदायेषु भिन्न-भिन्नानि मतान्युपलभ्यन्ते। विशिष्टाद्वैतदर्शने तु अभिधोपचारभेदाद् वृत्तिद्वयं स्वीकृतमस्ति 'वृत्तिर्द्विधा-अभिधोपचारभेदात्' (न्यायपरिशुद्धिः, शब्दाध्याये)।

अपर्यवसाना वृत्तिः

अपर्यवसाना वृत्तिर्विशिष्टाद्वैतिनामस्ति मौलिक्यवधारणा। 'मनुष्यो जानाति' इत्यत्र मनुष्यशब्दो मनुष्यशरीरविशिष्टस्यात्मनो बोधकः। जडत्वादेव हेतोः शरीरे ज्ञातृत्वमशक्यम्। एतेन सिध्यति यच्छरीरवाचकाः सर्वे शब्दाः शरीरं बोधयन्तः तदन्तर्वर्तिनमात्मानं बोधयन्ति। अयमस्ति निर्गलितार्थः सर्वस्यापि चेतनाऽचेतनात्मकपदार्थस्य ईश्वरशरीरत्वाच्चेतनाऽचेतनपदार्थवाचकाः सर्वे शब्दाश्चेतनाऽचेतनात्मकपदार्थं बोधयन्तस्तदन्तर्वर्तिनं परमात्मानं बोधयन्ति। इयमेव सर्वशब्दानां परमात्मपर्यन्तार्थबोधिकावृत्तिः अपर्यवसाना वृत्तिरित्युच्यते।

❖

PR-35

वेदान्तमते प्रमाणविचारः

डॉ. गोविन्दपाण्डेयः, पुरी

वेदान्तो नाम जीवब्रह्मणोरभेदबोधकं वाक्यमिति, रहस्यविद्या अथवा उपनिषद् इति। ब्रह्मविद्याप्रतिपादकं शास्त्रम्, अर्थात् मोक्षशास्त्रमिति, प्रस्थानत्रये श्रीशङ्कराचार्यैः वर्णितम्।

अद्वैतिनां मते प्रमाकरणं प्रमाणम्। स्मृतिभिन्नं ज्ञानं प्रमा अर्थात् अनधिगताबाधितविषयज्ञानत्वं प्रमायाः लक्षणम्। तच्च वेदान्तपरिभाषायाम्–तत्र स्मृतिव्यावृत्तं प्रमात्वमनधिगताबाधितार्थविषयज्ञानत्वम्। तथा च

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नास्तिकास्तिकदर्शनेषु च प्रमाणविचारः भिन्नभिन्नरीत्या प्रतिपादितः किन्तु वेदान्तदर्शने यथा अद्वैतवेदान्ते, द्वैतवेदान्ते, विशिष्टाद्वैते, द्वैताद्वैते, शुद्धाद्वैते, शैवविशिष्टाद्वैते तु प्रत्यक्षानुमानोपमानागमर्थापत्तिरनुपलब्धिरिति षट् प्रमाणानि प्रतिपादितानि।

❖

PR-36

उत्तमः नृपः उत्तमा तस्य नीतिः

डॉ. विजयकुमारकर्णः, लखनऊ

महाभारतं भारतीयसंस्कृत्याः अपूर्व-निधिः अस्ति। अस्मिन् सर्वमपि भगवता व्यासेन प्रतिपादितम्। अत्र प्रतिपादिताः विषयाः इदानीमपि प्रासङ्गिकतां प्रकटयन्ति। एकैकः विषयः सर्वविध-अभ्युदयाय मार्गान् उद्घाटयति। महाभारतस्य शान्तिपर्वणि राजधर्मस्य विशदं विवेचनं कृतमस्ति।

महाभारतवर्णितनृपस्य गुणानां विषये सम्यक् परिज्ञाय यदि इदानीन्तनः नृपः शासकः वा आचरेत्, तदनुसारमेव नीतिं रचयेत्, तर्हि निश्चयेन सर्वविधकल्याणं भवेत्। परञ्च दुर्भाग्यमस्माकं, राष्ट्रस्य नृप-चयनसमये अथवा नृपचयनानन्तरं शासकचयनान्तरं वा केऽपि नीतिनिर्धारकाः एतेषु विषयेषु अध्ययनं न कुर्वन्ति न जीवने आचरन्ति न चिन्तयन्ति।

❖

PR-37

कादिकुले काली

सुश्रीशैलकुमारी मिश्र, इलाहाबाद

त्रिक्दर्शनानुसारं शक्तिसम्पन्नः परमशिव एव विश्वस्य परमं तत्त्वम्। परमशिवः प्रकाशस्वरूपः शक्तिश्च विमर्शस्वरूपा, प्रकाशविमर्शात्मकं चेदं भुवनम्। अस्याः शक्तेः अनेकानि नामानि अनेकानि रूपाणि च शास्त्रेषु प्रसिद्धानि सन्ति। अस्मिन् सिद्धान्ते शक्तिशिवयोस्तादात्म्यम्। एतासु शक्तिषु मुख्यतमा एका शक्तिः काली। परमशिवरूपे इयमेव काल उच्यते। यस्य अथर्ववेदे कालसूक्ते वर्णनमस्ति। कालशब्दात् 'काली' शब्दो व्युत्पन्नः। इयमेव काली 'वाक्' उच्यते। यस्याः वाचो विवर्तभूतं विश्वमिति वेदेषु स्मृतिषु व वर्ण्यते। इयं विमर्शस्वरूपा शक्तिरेव अवस्थाभेदेन भुवनेश्वरीत्रिपुरसुन्दरीललिताराजराजेश्वर्यादिपदैः व्यवह्रियते। इयमेव पूर्णिमापदेन अमापदेनापि च व्यवह्रियते। अमायां पूर्णिमाया च तिथौ विशेषोपासनायाः विधानमस्ति।

परमशिवोऽधस्तात् तदुपरि च काली यदा भवति तदा विपरीतचर्या भवति, तदैव च द्वैतकथा प्रवर्तते। अस्या उपासना विशेषतः आबङ्गात् आकश्मीरं हिमालयस्य अधित्यकायामुत्तरभारते च प्रवर्तते। कौलिकाः शक्तेः कुलद्वयं स्वीकुर्वन्ति। ह्रादिकुलं कादिकुलं च। काल्या गणना कादिकुले भवति। विमर्शरूपा प्रधानतामर्हन्ती निर्विभागा निरवयवा अतिसूक्ष्मा या शक्तिः सा काली इत्युच्यते।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-38

वर्तमाने अद्वैतवेदान्तदर्शनस्य प्रसक्तिः

श्रीचन्द्रमाधवसिंहः, मुजफ्फरपुरम्

इदानीन्तनकाले जगदिदं बहुसमस्यापूरितं वर्तते। आर्थिकयुगेऽस्मिन् विभिन्नप्रपञ्चेषु विद्यमानानां समस्यानां परिहारकं शास्त्रमद्वैतदर्शनमेव। दर्शनमिदमाध्यात्मिकदर्शनानां मुकुटमणिर्भवति। परराष्ट्रेषु शाङ्कराद्वैतदर्शनेन भारतं प्रसिद्धं वर्तते।

स्वजीवनं समर्पितवान् विवेकानन्दस्वामिपादः। मानवसेवायै माधवसेवा, दरिद्रनारायणसेवा ईश्वरसेवा इत्यादीनां तत्त्वानामुद्बोधनाय अत्यन्तं समुचितं दर्शनमात्मदर्शनमेवेति ज्ञात्वा स्वामिपादैः विदेशेषु अद्वैतवेदान्तस्य प्रचारः कृतः।

न केवलं संन्यासिनां कृते आत्मज्ञानमावश्यकम्, अपितु साधारणेभ्यः शासकेभ्यश्च अद्वैतात्मज्ञानमपेक्षितम्। बहूनामाधुनिकदार्शनिकसिद्धान्तानां मूलं शाङ्कराद्वैतवेदान्त एव। यतो हि अद्वैतदर्शनं नित्यनूतनं वर्तते। अतः आर्थिकयुगेऽस्मिन् प्रपञ्चे विद्यमानानां समस्यानां परिहाराय एक एव उपायः अद्वैतात्मज्ञानम्।

❖

PR-39

भारतीयदर्शनानां पुरुषार्थप्रयोजनकत्वम्

डॉ. विजयकुमारपाण्डेयः, वाराणसी

प्रयुज्यतेऽनेन तत्प्रयोजनमिति व्युत्पत्या प्रवृत्तिहेतुरेव प्रयोजनं भवति। न्यायदर्शने आचार्यगौतमेन यमर्थमधिकृत्य प्रवर्तते तत्प्रयोजनमिति लक्षणं कृतं तथा यदुद्दिश्य प्रवर्तत, पुरुषस्तत्प्रयोजनमिति वरदराजेनाभिहितम्। प्रवृत्तिहेत्विच्छा विषयत्वं प्रयोजनत्वमिति, तत्त्वचिन्तामणिकारेण लक्षणं लक्षितम् पुरुषप्रयोजनं पुरुषार्थश्च समानपर्यायकौ। पुरुषः किमप्युद्दिश्य एव कस्मिंश्चित् कार्ये प्रवर्तते, तत्प्रयोजनम् सुखस्वरूपमेवान्यथा कार्ये प्रवृत्तिर्न स्यात्। यज्ज्ञातम् सत् स्ववृत्तितयेष्यते इति नैयायिका सुखदुःखाभावश्च द्वौ पुरुषार्थौ मन्यन्ते तत्र फलेच्छां प्रति फलज्ञानं कारणम्, तथा उपायेच्छां प्रति इष्टसाधनताज्ञानम् कारणम् पुरुषस्य अर्थः प्रयोजनमिति व्युत्पत्तिमङ्गीकृत्य धर्मार्थकामोक्षाश्च पुरुषार्थाः उदाहृता इति अग्निपुराणीयं वचनं सङ्गच्छते।

वस्तुतः चत्वार पुरुषार्थाः इति वचनमौपचारिकम्, यतः दार्शनिकैः स्वाभिमतम् प्रयोजनं पुरुषार्थ इति नाम्ना व्यवहृतम्। कौण्डिन्यश्रुतौ अथ पुमर्थसाधनान्यर्थो धर्मो ज्ञानमित्युत्तरोत्तरं तदधिकारिणो मनुष्याः ऋषयो देवाः इत्युत्तरोतरम्'' इति कथयित्वा त्रयः पुरुषार्थाः वर्णिताः। धमार्थकाममोक्षेषु धर्मार्थकामानां गणना त्रिवर्गेषु क्रियते तथा मोक्षं ज्ञानान्तर्गतं मन्यते।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-40

भावातीतं योगरहस्यम्

डॉ. निलिम्पः त्रिपाठी

योगशब्दः कश्चन ब्रह्मसाक्षात्कारस्य सङ्केतकः पृथक् सत्तया स्थितयोरथवा बहूनां पृथक् पृथक् सत्तया स्थितानाम् एकीभावो योगः कथ्यते। अयं योगो वेदेषु ब्रह्मपर्याय इव सङ्केतितः।

महाभारतस्य अनुशासनपर्वणि श्रीविष्णुसहस्रनामसु योगः स्वयं विष्णुरुच्यते, तथा हि–

योगो योगविदां नेता प्रधानपुरुषेश्वरः।
नारसिंहवपुः श्रीमान् केशवः पुरुषोत्तमः॥16॥

तत्रैव भीष्मपर्वणि विविधप्रायोगिकसरणिपल्लवितयोगोन्मेषिणी अष्टादशाध्यायी श्रीमद्भगवद्गीता चिराय लोकप्रियतां कल्पते।

अन्येष्वपि अग्नि-गरुड-लिङ्ग-मार्कण्डेयप्रभृतिषु महनीयपुराणेषु योगस्य तद्द्वारा ध्यानसमाधेश्च विवेचनं प्राप्यते। अथ वर्तमानयुगे योगस्य दुःसाध्यतया कलौ योगसिद्धिर्न भवतीत्यपि काशीखण्डे समुल्लिखितमस्ति।

❖

PR-41

प्रातिपदिकार्थविचारः

डॉ. विमलेशझाः, लखनऊ

प्रातिपादिकशब्दस्तावत्प्रतिपदशब्दात् ठञ् प्रत्ययेन निष्पद्यते। अत्र प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमेति सूत्रं प्रतिपादयन् श्रीमद्भट्टोजिदीक्षितः नियतोपस्थितिकः प्रातिपदिकार्थः इति ब्रूते अस्याशयोऽस्ति नियता उपस्थितिर्यस्य सः नियतोपस्थितिकः, अत्र निपूर्वकयम्धातोर्व्यापकत्वमर्थः क्तप्रत्ययार्थः आश्रयः उपस्थितिर्ज्ञानविशेषः यत्पदोत्तरषष्ठ्या विषयत्वमर्थः, इत्थं यद्विषयिणी उपस्थितिर्व्यापकताऽश्रयीभूता सः प्रातिपदिकार्थः।

अत्र नागेशाः प्रातिपदिकार्थस्य नामार्थरूपेण ग्रहणं कृत्वा जातौ एव नामार्थत्वं स्वीकृतवन्तो न तु व्यक्तौ आनन्त्येन, यद्यत्र व्यक्तौ नामार्थत्वं स्वीक्रियते चेत्तर्हि गौरवमिति। पुनश्चात्र नागृहीतविशेषणबुद्धिर्विशेष्ये उपजायते इति न्यायेन विशेषणे शक्तिर्विशेष्ये लक्षणा इत्यत्रैव तात्पर्याद् गामानयेत्यादौ जातेरन्वयानुपपत्त्या स्वाश्रयसम्बन्धेन लक्षणया निर्वाहः इत्यादिमीमांसकाः यद्वदन्ति तदसद् यतो हि व्यक्तीनामानन्त्येऽपि शक्यतावच्छेदकजातेरैक्यात्तादृशजात्युपलक्षितव्यक्तौशक्तिस्वीकारे आनन्त्यापत्तिविरहात् नागृहीतन्यायस्य उक्ते तात्पर्ये मानाभावाद् व्यवहारेण व्यक्तौ एव शक्तिग्रहणम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषयत्वमनापन्नैः शब्दैनार्थः प्रकाश्यते। अस्याशयोऽस्ति लोके तादृशं किमपि ज्ञानं नास्ति यस्य शब्दं विना अनुगमनं भवति। ये शब्दाः कर्णपर्यन्तं न समागच्छन्ति, तैः अर्थज्ञानं दुर्लभं भवति। इत्थं शब्दस्यापि नामार्थत्वं प्रतिपादितम्। अत्र प्रवृत्तिनिमित्तं व्यक्तिर्लिङ्गसङ्ख्याकारकञ्चेति पञ्चकं प्रातिपदिकार्थ इति वैयाकरणासिद्धान्तः प्रतिपादितः।

❖

PR-42

ब्रह्मजिज्ञासालोचने वाचस्पतेरभिनवत्वम्

श्री सत्यनारायणः

श्रीमद्वाचस्पतिमिश्रोऽद्वैतवेदान्तस्य प्रख्याताचार्यः। तद्विरचितभामतीटीकायां तेन बहवोऽभिनवा विषयाः प्रतिपादिता, ये खलु पूर्वाचार्यैर्मण्डनमिश्रैर्नालोचिता न वा विवरणप्रस्थानाचार्यैरपि समुद्घाप्ताः। तेषां ब्रह्मजिज्ञासालोचने वाचस्पतेरभिनवत्वं निवेद्यते संक्षेपतोऽस्मिन् प्रबन्धे।

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासे'ति ब्रह्मसूत्रस्य प्रथमसूत्रभाष्यलोचनकाले ब्रह्म जिज्ञास्यं न वेति प्रश्नः समुपत्थापितो मिश्रमहोदयेन।

तत्र सिद्धान्तिनामयमाशयः—ब्रह्म सन्दिग्धम्, पूर्वपक्षिप्रतिपादितस्य अहमित्यनुभवजन्यस्यात्मनः श्रुत्यसम्मतत्वात् समस्तोपाध्यनवच्छिन्नानन्तानन्दचैतन्यैकरसमुदासीनम् एकमद्वितीयमात्मतत्त्वं श्रुतिस्मृतीतिहास-पुराणादिषु प्रतिपादितत्वात्। सर्वानर्थहेतुतभूता संसारबीजरूपा अनाद्यविद्या ब्रह्मज्ञानेनैव निवर्तनीयेति ब्रह्मज्ञानं सप्रयोजनमित्युक्तं भाष्यकारैः अस्यानर्थहेतोः प्रहाणायात्मैक्यविद्याप्रतिपत्तये सर्वे वेदान्ता आरभ्यन्त इति। अतः सन्दिग्धत्वात् सप्रयोजनत्वाद् ब्रह्म जिज्ञास्यमिति युक्तियुक्ता हि ब्रह्मजिज्ञासा।

एवमेवाभिनवोपायेन ब्रह्मणो जिज्ञास्यत्वं सूपपादितं वाचस्पतिमिश्रमहोदयैरिति।

❖

PR-43

उपमानलक्षणप्रमाणस्वरूपविमर्शः

प्रो. रामपूजनपाण्डेयः, वाराणसी

उपमितेर्व्यापारवदसाधारणं कारणमुपमानम्। पदपदार्थयोः सम्बन्धज्ञानमुपमितिः। तत् करणं सादृश्यज्ञानमिति। तच्चोपमानं त्रिविधम्। 1. सादृश्यविशिष्टपिण्डदर्शनम्, 2. असाधारणधर्मविशिष्टपिण्ड-दर्शनम्, 3. वैधर्म्यविशिष्टपिण्डदर्शनम्।

उपमानस्य स्वरूपं मीमांसायां किमस्ति? किञ्चास्ति वेदान्ते? न्यायदर्शने च किम्? किं चास्ति सादृश्यम्? सादृश्यस्य स्वरूपं किम्? इदं सर्वं निबन्धे विचारयिष्यत इति।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-44

न्यायवैशेषिकनये संशयपदार्थस्य पर्यालोचना

डॉ. कृष्णानन्दचक्रवर्ती

सम्पूर्वकशीधातोः अच् प्रत्ययेन निष्पन्नः संशयशब्दः। सन्देहः इत्यपर्यायः। दोलायमाना प्रतीतिः संशयः इति हरिभद्रसूरिणा कथितम्। संशरेते मुह्यिन्ति इन्द्रियाणि अस्मिन्निति संशयः। तत्र अनवधारणज्ञानं संशयः भवति। विदितमेव तावत् सर्वैः प्राच्यपाश्चात्यालोचकैः तथा दार्शनिकैः न्यायपूर्वाङ्गतया अनवधारणात्मकत्वेन च संशयपदार्थः स्वीकृतः। प्रबन्धेऽस्मिन् न्यायवैशेषिकोक्तक्रमेण आलोचयिष्यते।

न्यायभाष्य-वार्तिक-तात्पर्य्यकाराणां तथा कणादसूत्र-प्रशस्तपादभाष्य-उपस्कारकाराणां वचनात् ज्ञायते यत् संशयः एकविधः, द्विविधः, त्रिविधः, चतुर्विधः, पञ्चविधः वा भवितुमर्हति। किञ्च नव्यनैयायिकमतानि अस्मिन् प्रबन्धे दर्शयितव्यानि। एतत् सर्वं तु पर्य्यालोचनया मूलप्रबन्धे विशदीक्रियते इत्यलम्।

❖

PR-45

सौन्दर्यलहरी

श्री एस. पार्थसारथी, चेन्नई

इह खलु श्रीमच्छङ्कराचार्येण ग्रथितसौन्दर्यलहरी इति खण्डकाव्यमिदं संस्कृतदुरन्तराणामुपासकतल्लजानां च करतलकमलेषु सम्प्रति निधीयते। अस्मिन् ग्रन्थे शक्त्युपासना द्वारा कथं शाम्भवस्थितिं प्रयामः कथं उन्मनाऽवस्थां स्थास्यामः इत्यादिविषयान् आचार्येण सरलीक्रियते। अस्मिन् ग्रन्थे शतश्लोकाः वर्तन्ते। आचार्येण द्विविधा विभज्य एकतः एकचत्वारिंशत् श्लोकपर्यन्तं (1-14) आनन्दलहरी इति नामङ्कितं कृत्वा द्विचत्वारिंशतः शतश्लोकपर्यन्तं सौन्दर्यलहरीं इत्यपि नाम कृत्वा जगदम्बिकायाः स्वरूपविवरणं वर्तते।

साक्षात् जगतः माता श्रीललितामहात्रिपुरसुन्दरीप्रार्थनारूपेण वा जपरूपेण वा उपासकवर्यैः सदा स्मर्यते समरिष्यते च। स एव त्रिलोकमाता भक्तवात्सला मोक्षप्रदा चेत्यादि आचार्येण वर्णनं क्रियते। सा एव संस्कृतस्य ज्ञानं विज्ञानं च।

मोक्षमपेक्ष्य मुमुक्षोः वैशिष्ट्यं तस्य शास्त्रस्य प्रामुख्यं च शाखानुसाखतया प्रवर्धनं सर्वतोमुखत्वेन तस्य विजृम्भणं च विदुषां विदितमेव।

प्राकृतलौकिकसाहित्यविद्यायां यथा कवयः उत्सुक्ताः भूत्वा तथैव आत्मविद्यायां प्रविष्टां वशीकृतकविता विलासाः उपासकाः केचित् स्वेष्टदेवतामुद्दिश्य भक्तिभावपूरिताः सामायिकरहस्यपुष्टाः मन्त्रात्मिकाः रसवतीः रचयन्तः आराधनं चक्रुः।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-46

कलौ गतिस्तु श्रीहरिनामसंकीर्तनमेव

नी. पञ्चापगेशः, चेन्नई

विशेषतः कलियुगेऽस्मिन् कलुषितविषयनिमग्नानां सर्वेषां सन्तारकम् अतिसुलभं साधनं महात्मभिरनेकैः सन्दर्शितमुत्तमोत्तमं तावत् श्रीभगवन्नामसंकीर्त्तनमेव। श्रीकाञ्चीकामकोटिपीठाधीश्वरेषु अन्यतमाः श्रीबोधेन्द्र-सरस्वतीस्वामिपादाः श्रीरामनामसिद्धान्तं कृतवन्तः श्रीनामसंकीर्त्तनमार्गं सर्वत्र प्रकटितवन्तश्च। एवमेव अनेके महान्तः श्रीपुरन्धरदासादयः, श्रीनारायणतीर्थयतीन्द्राः, श्रीत्यागराजस्वामिनः, श्रीज्ञानेश्वरः, तुकाराम इत्यादयः सन्तजनाः नामसंकीर्त्तनमार्गमेव प्रतिष्ठाप्य लोकोद्धारणं कृतवन्तः। भगवान् श्रीकृष्णोऽपि भक्तिप्रभावं स्वयं ज्ञातुमिच्छाम् आपन्नः श्रीकृष्णचैतन्यप्रभुरूपेण भुवमवतीर्य श्रीहरिनामसंकीर्त्तनभक्तिमार्गं संस्थापितवान्। श्रीमद्भागवतम्, श्रीविष्णुपुराणमित्यादिपुराणेष्वपि नामसंकर्कीनस्य महात्म्यं प्रकटितम्। श्रीकृष्णप्रेमिमहाप्रभुः अपि स्वग्रन्थेषु विशेषतः वैष्णवसंहितायां कलिकालोचितोधर्मः नामसंकीर्त्तनमेवेति सिद्धान्तं कृतवान्।

एभिः ज्ञायते यत् सर्वे वयं कलियुगेऽस्मिन् श्रीभगवन्नामसंकीर्त्तनद्वारा प्राप्तमुशक्यं अमृतत्वमधिगच्छाम इति।

❖

PR-47

भारतीयदर्शनानां पर्यालोचनम्

डॉ. हरिप्रसाद अधिकारी, वाराणसी

अस्मिन् शोधपत्रे भारतीयदर्शनानां समन्वयात्मकदिशा पर्यालोचनं विहितम्, प्रथमं तावदास्तिकनास्तिकपरिभाषां विमृश्य विभिन्नदर्शनसिद्धान्ताः समासेन विवेचिताः। अस्ति परलोके मतिर्यस्य सः आस्तिकः इति पाणिनीय-व्याकरणव्युत्पत्त्या जैन बौद्धयोरप्यास्तिकत्वं साधितम्। सर्वैरपि भारतीयदार्शनिकाः स्वस्वपद्धत्या तत्त्वजिज्ञासायां प्रवृत्ता अभूवन्। स्वस्वदृष्ट्या परिशीलने कृते तानि सर्वाण्यापि चिन्तनानि महत्त्वपूर्णानीति तथ्यमस्मिन् लेखे सप्रमाणं विवेचितम्। अतः प्रत्येकं दर्शनस्य किं हार्दमिति तद्दर्शनदिशैव ज्ञातुं यत्नो विधेयः। यदाद्वैतवेदान्तप्रतिज्ञां विज्ञाय तदनुशीलनं क्रियते तदा न तत्र दोषावकाशो भवति। परं यदि न्यायदृष्ट्या वेदानामनुशीलनं क्रियतेऽथवा विशिष्टाद्वैतवेदान्तदिशाद्वैतदर्शनमवलोक्यते तदा तु सर्वमपि विपरीतमिव लक्ष्यते। एवमेव जैनबौद्धसांख्य-वैशेषिक-मीमांसादर्शनविषयेष्वप्यवगन्तव्यम्।

अतोहेतोरत्रायं सन्देशः निष्कर्षरूपेण प्रदत्तो यद् यद्दर्शनं शास्त्रं वा अधीयते खण्ड्यते मण्ड्यते वा तत्रावश्यमेव तस्य हार्दम् अविकलं विज्ञाय प्रवर्तितव्यम्। विवादपूर्णान् अंशान् उपेक्ष्य समन्वयात्मका अंशा ग्राह्याः। पर्यालोचनस्यायमेवास्ति निष्कर्षः।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-48

श्रीमातुरानन्दमय्याः सुरभारत्यामवदानम्

डॉ. कु. गीताबनर्जी, वाराणसी

आत्मस्वरूपिणी श्रीमत्यानन्दमयी भगवदैश्वर्येण सहैव युगकल्याणाय आविर्भूता चेह धरणीतले। युगप्रयोजनात् निर्गुणनिराकारः सगुणसाकाररूपं धृतवान्। मातृरूपे देहधारणं श्रीभगवतोऽभिनव एको लीलाविलासः मातृरूपे भगवदन्वेषणं सहजतमं प्रतिभाति। मातुः स्नेहनिर्झरधारायामवगाहनेन ग्लानेश्चापसारणं सुनिश्चितम्। अतः साम्प्रतं मातृरूपेण भगवदवतरणम्। श्रीमाता मानवमात्रस्य कृते स्वात्मानं पूर्णरूपेण समर्पयामास। स्नेहसेवासौजन्येषु लीलाविलासवर्षणमभूद् मातुरजस्रधारांभिः मातुर्निखिलभावा आनन्दमयाः। आनन्द एव यस्या उपादानम्, आनन्दे एव याऽवस्थिता। या चेह भुवि आनन्दलीलां विधातुमानन्दधनमूर्तिर्धृता आनन्दविग्रहा।

ईश्वरः सर्वज्ञः सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापकश्च ईश्वरस्य अनन्तैश्वर्याणां प्रकाशः अतिसहजतया श्रीमातुर्मध्ये काशितोऽभूत्। साधानालीलायां श्रीमातुः श्रीशरीरादेरनन्तदेवदेवीनामाविर्भावः प्रकाशश्चाभूत् पुनश्च मातुः श्रीशरीरे विलीना अभवन् देवीदेवताः।

श्रीमातुः श्रीमुखाद्देवभाषा विनिःसृता, श्री श्री मातुः श्रीमुखात् स्वतः विनिःसृता सुरभारतीयं सत्यवाणी अपूर्वरूपेण प्रवाहिता। ततः किञ्चिदुद्धरामि।

एवं बहूनि स्तोत्राणि विनिःसृतानि। पण्डितप्रवरगोपीनाथकविराज महाभागाः द्वित्रशब्दानामर्थबोध-पूर्वकमुक्तवन्तः यदेषा यथार्थदेवभाषा। मर्त्यलोकसंस्कारैः सह एतस्या अर्थबोधो न सम्भवतीति।

❖

PR-49

पाशुपतदर्शने कार्यकारणपदार्थविमर्शः

श्रीमहेशचन्द्रः वशिष्ठः, कुरुक्षेत्रम्

मनुष्यः एकः चिन्तनशीलः प्राणी अस्ति। अतः तस्य मनसि स्वस्य बाह्यजगतश्च विषये ज्ञातुं नैसर्गिकीकी प्रवृत्तिः भवति। कोऽहं कुतः समायातः? सृष्ट्याः किं कारणम्? यतो हि किमपि कार्यं कारणेन विना न दृश्यते, अतः एतेषां प्रश्नानां जिज्ञासाया स्वाभाविकी अस्ति। अस्याः सृष्टिसमस्यायाः सूक्ष्मचिन्तनं रूपान्तरात् कार्यकारणवादरूपेण शास्त्रेषु विहितम्। कार्यकारणयोः सम्बन्धः शाश्वतः अस्ति। कारणेन विना कार्यस्य अस्तित्वम् असम्भवम्। ततोऽपि कार्यकारणसम्बन्धविषये भारतीयदर्शनेषु मतवैभिन्न्यं वर्तते। अस्मिन् क्रमे नकुलीशपाशुपतदर्शनस्य आध्यात्मिकी दृष्टिः प्रस्तुतशोधपत्रे विचारणीया अस्ति।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-50

अद्वैतवेदान्तदृष्ट्या अविद्यायाः स्वरूपम्

श्रीविजयपालकछवाहः, उड़ीसा

अनादिते सति भावरूपत्वे सति ज्ञाननाश्यत्वमज्ञानम्। अनेन अनिर्वचनीयाः अविद्यायाः लक्षणं संघटते। अनिर्वचनीयानां सदसद्विलक्षणत्वम्। ब्रह्म इव अज्ञानं सत्यं नास्ति शशविषाणमिव असदपि नास्ति। अतः सदसद्विलक्षणं शशविषाणमिव असदपि नास्ति। अतः सदसद्विलक्षणम् तदेवानिर्वचनीयम्।

वेदान्तसिद्धान्ते षड् अनादयः सन्ति। जीवः, ईश्वरः, विशुद्धब्रह्म। जीवस्य तथा ईश्वरस्य भेदः, अविद्या, अविद्यायास्तथा चैतन्यस्य सम्बन्ध इति।

❖

PR-51

कालं बोधयामो वयम्

डॉ. गौरीशंकरतिवारी, आरा

वेदश्चोपदिशति यथा तथा वयं कूर्मः। वेद उपदिशति 'धाता यथा पूर्वमकल्पयत्' यः कल्पस्स 'कल्पपूर्वः' इति। परमेश्वरः स्वीयसृष्टि-कर्मणेदं ग्राहयत्यस्मान् यथाऽहं वेदाधीनो जगत्सृजामि तथैव हे मानवाः। भवन्तोऽपि वेदशास्त्रोदिनप्रकारान् सुविमृश्य दिग्देशकालांश्च निश्चित्य स्वस्वकर्माण्याचरत्विति।

दिशः देशश्चावलम्ब्य समाजोन्नत्यौपायिकानि साधनानि अनेकानि वेदेषूपलभ्यन्ते इति कालं बोधयामो वयम्।

कालस्य धर्मस्य च स्वरूपं जानन्तः विवेकिनोऽपि केचन भारतीयाः वेदोपनिषत्सद्ग्रन्थेषु निरूपितस्य वस्तुनः स्वरूपञ्चात्मनो जानन्ति। कलिहतकस्य प्रभावेणाज्ञानान्धकाराच्छन्नाः अमेरिकासदृशकालानां राष्ट्राणामनुकरणे आचारविचारविमुखा अर्थे विचिन्त्यमानाः धर्मं निन्दन्ति। कालवशात् विश्वे वैपरीत्यमाचारमवकल्प्यैव धन्या मन्यन्ते जनाः।

विकरालेऽपि महाकाले महाकालस्य कालोऽयं कलयति बुद्धिम्। सर्वे विकलाः अर्थचिन्तापरायणाः मायावशाद् आत्मरूपमपरिगणयन्तः वासनात्मकतृष्णाप्रदं जगत् सर्वं मत्वा नैराश्यमयं जीवनं यापयन्ति विविधनामरूपात्मिका सृष्टिरियम्।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-52

अर्थशास्त्रकारेषु कौटल्यः

श्रीविक्रमकुमारराउतः, पुरी

शास्त्रनिचयेषु राज्ञः प्रजापरिपालननिमित्तमर्थशास्त्रं भवति प्रमुखमेकं शास्त्रम्। यथावत् शास्त्रं धर्मशास्त्रानुकूल्येन लिखितमस्ति। यदि वा अर्थशास्त्र-धर्मशास्त्रयोर्मध्ये मतपार्थक्यमायाति तदा धर्मशास्त्रस्य मतं स्वीक्रियते। अन्यथा अर्थशास्त्रानुसारं राजा प्रजापरिपालनं कुर्यादिति तस्य शास्त्रस्य गुरुत्वम्। अर्थशास्त्रमिदं सुप्राचीनकालादारभ्य विद्यत इति कौटल्यार्थशास्त्रादेव विज्ञायते। यतो हि स्वग्रन्थस्य निर्विघ्नपरिसमाप्तिकामनया ग्रन्थकर्त्रा कौटल्येन कौटल्यार्थशास्त्रस्य मङ्गलाचरणप्रसङ्गे 'ॐ शुक्रबृहस्पतिभ्यां नमः' इति प्रमुखयोः प्राचार्ययोः देवासुरगुरोः स्मरणं विहितम्। एतेन अनयोः द्वयोः सकाशादर्थशास्त्रस्योत्पत्तिर्जाता इति परिकल्पयितुं शक्यते।

अस्माकं गुरुवरैः भारतराष्ट्रपतिसम्मानेन सम्मानितैः दिवंगतैः नानाशास्त्रविशारदैः पण्डितकुलमणिमिश्र-शर्ममहाभागैः प्रज्ञाख्यटीकासंवलितं कौटल्यार्थशास्त्रस्य प्रथमाधिकरणं श्रीसदाशिवकेन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठोद्यमेन 1985 संवत्सरे प्रकाशितम्। अपि च उत्कलसाहित्य-एकाडेमीद्वारा पण्डितश्रीअनन्तरामकरशर्मणा 1963 संवत्सरे उत्कलानुवादेन सम्पूर्णो ग्रन्थः प्रकाशितः। परन्तु कौटल्यार्थशास्त्रस्योपरि बहुगवेषणाऽपेक्षते बहूनि च तत्त्वानि अद्यापि अनाविष्कृतानि विद्यन्ते। आधुनिकाः विद्वांसः विपश्चित्तः गवेषणां कृत्वा नूतनानि तत्त्वानि तथ्यानि च समुद्घाटयन्तु। विदुषां बौद्धिकविकासाय च एतन्नूनमुपकाराय भविष्यतीति निश्चप्रचं वक्तुं शक्नोमीति विरमामि विस्तरात्।

❖

PR-53

धर्मशास्त्रे स्त्रीधर्मविमर्शः

श्रीजगमोहनमिश्रः, पुरी

धर्मशास्त्रस्य प्रमुखभूतेषु विषयत्रयेषु आचार-व्यवहार-प्रायश्चित्तेषु व्यवहारस्य महत्त्वं गुरुत्वञ्च सुप्राचीनकालादारभ्य अद्यावधि समाजे तथा च न्यायलये विद्यतेतराम्। व्यवहारकथनेन साधारणतः यः अर्थः जनानां समक्षं समायाति धर्मशास्त्रे स एव अर्थो न भवति। सामान्येन व्यवहारपदेन जनस्य स्वभावः इत्यर्थोऽवगम्यते। परन्तु धर्मशास्त्रे यस्य व्यवहारस्य वर्णनं विद्यते तस्य व्यवहारस्य नायमर्थः। व्यवहारशब्दस्तु 'वि'उपसर्ग-'अव्'उपसर्गपूर्वकं 'हृ'धातोः 'घञ्'प्रत्ययेन निष्पन्नो भवति। व्यवह्रियते अनेन इति व्युत्पत्या व्यवहारो जायते। यस्य लक्षणं बहुभिः ऋषिभिः निबन्धकारैश्च प्रतिपादितम्।

नारीणां धर्म इति कथनेन नारीणां कर्त्तव्यं, सदाचारः, पातिव्रत्यं, पारिवारिकसम्बन्धः, विवाहः, सामाजिकजीवनमिति अवगन्तव्यं भवति। प्रथमतया तत्र भगवता मनुना नारीणां विषये अत्युच्चतमं मतं प्रदत्तम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पितृधनविभागप्रसङ्गे पितृधने पुत्रवदेव कन्यायाः अधिकारः प्रदर्शितः प्रचलति च। विवाहानन्तरं पत्युः धने पत्न्याः अधिकारः तथा च षड्विधेषु स्त्रीधनेषु केवलं स्त्रियाः अधिकारो विहितः। स्त्रियाः कर्त्तव्यसम्पादनविषये यद्यपि समयस्य परिवर्त्तनानुसारं कर्त्तव्यस्यापि किञ्चिद् परिवर्त्तनं दृश्यते। परन्तु तथा नैव भवितव्यम्। प्राचीनकाले नारी विवाहं कृत्वा पतिगृहे सन्तानं जनयति पत्युः शुश्रुषां करोति स्म। पाचनक्रियां गृहकर्माणि च कृत्वा निवसति स्म। तदानीन्तकाले नारी पातिव्रत्यं, पत्युः सुखविधानञ्च तस्याः परं कर्त्तव्यमासीत्। परन्तु अधुना इयं नारी किञ्चिन्मात्रेण स्वतन्त्रा धनोपार्जने दक्षा, सुशिक्षिता, पुरुषसमाजेन सह समकक्षा तथा गृहस्य अन्तपुरादागत्य समाजमध्यस्था सञ्जाता।

परन्तु इयं नारी स्वमर्यादां न लङ्घयेत्, स्वधर्मान्न न त्यजेत्। अन्यथा सा निन्दिता भवति। परिवारस्य सुसंवृद्धिनिमित्तं स्त्रीणां त्यागः अपरिहार्य्यः। परिवारस्य सुखं नारीणां त्यागेन सम्भवति, न तु भोगेन। भारतीयसंस्कृतौ नारीधर्मः एतादृशः पथः प्रदर्शको विद्यते येन परिवारस्य समाजस्य देशस्य च सुखं शान्तिः सौभाग्यं मर्यादा च विवर्द्धते। भारतस्य वैवाहिकं जीवनमेतादृशं सुखमयं दृष्ट्वा पाश्चात्यजनाः अनुगच्छन्ति। अतः भारतीया नारी अस्माकं देशस्य संस्कारं संस्कृतिञ्च वर्द्धयतीति न कापि विचिकित्सा।

❖

PR-54

श्रीनारायणागुरुरीत्या अद्वैतदर्शनविमर्शः

श्रीलीला सुभाष, केरला

चिरपुरातनस्य केरलीयसामूहिकेतिहासस्य परिवर्तनं कृतम् इत्येव गुरोः श्रीनारायणस्य महत्त्वम्। साहसाब्धपर्यन्तं स्थितस्य हीनकालस्य अन्त्याय, नवकालकाहलाय च गुरुः शक्तोऽसीत्। अद्वैतसिद्धान्ते प्रसिद्धानां मायावादः विवर्तवादः आत्मनात्माध्यासः इत्यादिप्रक्रियाणां सिद्धान्तानां च सम्यक् समन्वयः गुरुदेवदर्शने द्रष्टुं शक्यते। वर्तमानयुगे भौतिकवृद्धिं विना आध्यात्मिकता न तिष्ठेदिति विज्ञाय गूरुदेवः आध्यात्मिकता, भौतिकता इति भेदचिन्तां त्यक्त्वा समन्वयप्रस्थानमस्वीकरोत्। नलिनीगतं जलमिव भवति लौकिकजीवितं, नच्य त्यक्तव्यमिति वदनां श्रीशङ्करस्य दर्शनाद् भिन्नः ध्वनिरेव गुरुवाक्येषु श्रोतुं शक्यते।

एवं श्रीनारायणगुरुः अद्वैतदर्शनस्य तात्त्विकसिद्धान्तान् स्वांशीकृत्य स्वानुभूत्या संयुज्य कालिकप्रसक्त्या पुनराविष्कृतवान्। गुरुदर्शने सर्वोपरि 'मनुष्यः' इति पदस्य प्राधान्यमदात्। तदा तद्दर्शनं युक्तिवादेः भौतिकवादेः आध्यात्मिकस्य च स्वीकार्यमभवत्। विश्वासादुपरि युक्तेः स्वानुभवस्य च प्राधान्ये सति तन्महनीयं सर्वजनादृतं च भवति। तेन दर्शनानां मातृभूमौ दर्शनानां चूडामणिः अस्ति गुरुदर्शनम्।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-55

संस्काराणां वैज्ञानिकत्वम्

प्रो. वाचस्पतिशर्मा त्रिपाठी

धर्मप्राणेऽस्माकं भारतवर्षे संस्कृत-संस्कृति-संस्काराणां समधिकं महत्त्वं विद्यते। यादृशं महत्त्वपूर्णं विशिष्टञ्च स्थाने भारते संस्कृतस्य संस्कृतेश्च न ततो किञ्चिदपि न्यूनं स्थानं संस्कारस्यास्ति। भारतीयानां सामाजिक-धार्मिक-जीवनस्यापारिहार्याङ्ग-भूतैः गर्भाधानादि-अन्त्येष्टि-पर्यन्तैः विविधसंस्कारैः मानवस्य रजोवीर्य-गर्भगताः समेऽपि दोषाः विनशयन्ति, तस्य मनः आत्मा च विशुद्धिं धारयतः, अधिकारी च भवति संस्कृतः पुरुषः वेदादिशास्त्राध्ययने श्रौत-स्मार्तकर्मानुष्ठाने चेति सुविदितचरमेव सुधियाम्।

संस्काराणां संख्याविषये यद्यपि परस्परं विप्रतिपद्यमानाः अवनोक्यन्ते विविध स्मृतिकाराः किन्तु प्रमुखाः संस्काराः षोडशेति प्रायः समेऽपि धर्मशास्त्रकाराः अङ्गीकुर्वन्ति। मुख्यरूपेण गर्भाधान-पुंसवन-सीमन्तोलयन-जातकर्म-नामकरणकर्णवेध-निष्क्रमण-अन्नप्राशन-चूड़ाकरण-विद्यारम्भ-उपनयन-वेदारम्भ-गोदान-समावर्तन-विवाह-अन्त्येष्टि-प्रभृतिसंस्काराणां विशदं विवेचनं नयनपथमुपयाति धर्मशास्त्रेषु।

तर्कप्रधानेऽस्मिन् वैज्ञानिक युगे इदन्तावदवश्यं विशदं निवेचमीयं विचारणीयञ्चास्माभिर्यत् भारतीयजीवनस्यानिवार्याङ्गभूता इमे संस्काराः किं केवलं धार्मिकानुष्ठानविशेषमात्राः अथवा विद्यते एषां भौतिकं वैज्ञानिकञ्चपि महत्त्वमिति। वस्तुतस्तु कृते गहनविमर्शे सुस्पष्टीभवति यद् गर्भाधानमारभ्यान्त्येष्टि-पर्यन्तानां निखिलानामपि संस्कारणमस्ति कश्चन वैज्ञानिकाधारः।

❖

PR-56

वाराणस्यां तु विश्वेशम्

डॉ. शास्त्री अनिलः, पाटण (उ. गु.)

'वाराणस्यां तु विश्वेशं। इति द्वादशज्योतिर्लिङ्गान्तर्गतमेकं लिङ्गम् अस्ति। विश्वेशस्य वर्णनं शिवमहापुराणे वर्णितम्। भारतदेशे द्वादशज्योतिर्लिङ्गानि सन्ति।

शिवमहापुराणे वाराणस्यां तु विश्वेशम् —कोटिरुद्रसंहितायामध्यायद्वयमस्ति। द्वाविंशतितमेऽध्याये काशीविश्वेश्वरज्योतिर्लिङ्गमाहात्म्यवर्णनकाले चर्चा कृता। अखिला चर्चा नैमिषारण्ये सूतस्य शौनकादि-ऋषीणां च मध्ये संवादरूपेण भवति। अपरः संवादः भगवतः शंकरस्य प्रकृतिरूपायाः पार्वत्याश्च मध्ये या चर्चा भवति, तस्यां चचायामुपर्युक्तस्य विषयस्य चर्चा भवति।

उपसंहारः—स्कन्दपुराणे काशीखण्डे काशीमाहात्म्यं वर्णितम्। मत्स्यपुराणे काशीमाहात्म्यं अविमुक्तमाहात्म्यरूपेण वर्णितम्।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-57

समीक्षाचक्रवर्तिपण्डितमधुसूदनशर्म्ममैथिलप्रतिपादितानां षोडशबलकोशानां विवेचनम्

डॉ. गणेशीलालसुथारः, जोधपुरम्

सर्वेषु भारतीयदार्शनिकेषु वेदरहस्योद्घाटकानां समीक्षाचक्रवर्तिनां पण्डितमधुसूदनशर्म्ममैथिलमहाभागानां जगन्मूलचिन्तनस्येयं प्रातिस्विकता यत्तैर्ब्रह्म रसशब्देन तच्छक्तिश्च बलशब्देन निरूपितम्।

बलोपेतरसवादस्तैर्ब्रह्मसिद्धान्तब्रह्मसमन्वयादिग्रन्थषु विस्तरेण न्यरूपि।

यद्यपि बलानि सन्त्यसंख्यानि तथापि कोशदृष्ट्या तान्यसंख्यानि बलानि श्रुत्यनुसारेण षोडशमहाबलेष्वन्तर्भावितानि। षोडशबलजातयो बलकोशशब्देन व्यवहृताः समीक्षाचक्रवर्तिमधुसूदनमहाभागैः। ब्रह्मसमन्वयसंज्ञकग्रन्थानुसारेण शोधपत्रेऽस्मिन् माया-हृदय-भूति-यज्ञ-सूत्र-जाया-धारा-आपो-यक्ष-अभ्व-मोह-वयो-वयोनाथ-वयुन-विद्यासंज्ञकषोडशबलकोशानां विवेचनं व्यधायि। षोडशकल ईशप्रजापतिरेतैः षोडशबलकोशैरेव बलात्मकं विश्वमेतत् सृजति। षोडशबलकोशानामेषां पञ्चधा स्वतन्त्रविभागा अपि परिकल्पिताः। विद्यां विहाय मायादयः पञ्चदशबलकोशा अविद्यात्मकः। विद्या सत्त्वं, माया तमः, सत्ययक्षाभ्वबलकोशा मोहात्मकाः शेषबलानि चः रजः स्वरूपाः। तदैवं त्रैगुण्यमत्र बलकोशेषु संघटते। विद्याबलस्याविद्याबलैः सह प्रतिबध्यप्रतिबन्धकभावः। विद्याबलेनात्मनः सत्ताज्ञानानन्दैर्व्यक्तिर्मायादि-पञ्चदशबलानि त्वेषामावरकाणीति दिक्। शोधपत्रेऽस्मिन् ब्रह्मसिद्धान्तब्रह्मसन्वयादिवेदविज्ञानग्रन्थान् व्यपाश्रित्य षोडशबलकोशाः कात्स्र्येन विवेचिताः।

❖

PR-58

मनःशरीरतापापघातकः हठयोगः

डॉ. वी. रामकृष्णभट्टः, केरलप्रदेशः

मनः प्राणेन्द्रियाधारं भवति शरीरम्। व्याधिपूरितशरीरं चेत् मनः प्राणप्रभृतयः स्वकर्तव्यं न निर्वहन्ति। अतः प्रथमं स्वस्थशरीरं सर्वत्रापेक्ष्यते। शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनमिति स्मारयति। त्रिधातुवैषम्यजव्याधिस्तु पीडयति शरीरम्। तन्निरोद्धं हठयोगप्रोक्तपथ्यापथ्यविवेकेन सह आहारविहारादीनां यमनियमासनादयः कारकाः सन्तीति किमु वक्तव्यम्। मनः शरीरस्वास्थ्यकरो हठयोगो नितान्तं प्रयोजनकरः।

हिक्काश्वासकासादयोरोगाः पवनकोपहेतुकाः तन्निवारकः सप्तविधप्राणायामः। विशेषतः महामुद्रादिभिः अन्तरङ्गबहिरङ्गशुद्धिर्जायते। हठोक्तयमनियमासनप्राणायामादयः शरीरस्वास्थं मनः प्राणेन्द्रियजयं च सम्पादयन्ति। अतः युवावृद्धोऽतिवृद्धो वा व्याधितो दुर्बलोऽपि वा। अभ्यासात्सिद्धिमाप्नोतीति।। (ह.यो.प्र.)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यमाद्यष्टानां राजयोगाङ्गत्वं ख्यापयति हठयोगः। न्यायकोशकारस्तु—'प्राणायामादिक्रियाभ्यासजन्यः राजयोगं विनैव परमात्मसाक्षात्काररूपश्चित्तवृत्तिनिरोधः इति तदर्थं विवृणोति।

❖

PR-59

पाणिनिव्याकरणे नारी, तत्र धर्मशास्त्रीयसन्तुलनम्

डॉ. गोविन्दचन्द्रकरः, पुरी

पाणिनीयं व्याकरणं न केवलं पदसाधुत्वसम्पादनार्थमुद्दिष्टमुपदिष्टं च, अपि तु सर्वेषां तथ्यानां समुद्धरणं जातं विद्यते। भाष्यकारः निर्मथ्य तथ्यानि प्रतिपादयति सर्ववेदपारिषदं हीदं शास्त्रं, तत्र नैकः पन्थाः शक्य आस्थातुम् इति। सर्वेषां शास्त्राणां सिद्धान्तानां तथ्यानां च सर्वविधः समन्वयः दृष्टो विद्यते। एकस्मिन् पक्षे शब्दशास्त्रस्य मर्य्यादादृष्ट्या शब्दानामनुशासनम्, अपरस्मिन् पदे भाषायाः चरित्रदृष्ट्या संस्कृतेः प्रकाशनम् इति एतद् भवति व्याकरणस्य चारित्रिकमनुसन्धानम्। सूत्रात्मकरीत्या स्वात्मप्रकाशं लभमानं पाणिनीयं व्याकरणं न केवलं शब्दानुशासनस्य स्वरूपसंघटनमादधाति, परन्तु संस्कृतेः आत्मप्रकाशः भारतीयविद्यायाः दृष्टिगोचरीभूतो भवति। तेन क्रमेण नारीमर्य्यादामादाय आधाय च प्रवर्त्तते। शब्दसंघटनस्य धारा एतदेव तथ्यमादाय प्रवर्त्तते—1. दार्शनिकी मनोवृत्तिः, 2. धार्मिकचिन्ता, 3. मनोऽनुकूलस्वाभाविकध्वनिः, 4. व्यक्तिविशेषस्य धर्मोपरि कर्मोपरि च अनेकविधमारोपितं तथ्यम्, 4. पारिपार्श्विकजीवसमाजात् लक्षीकृता कला, तस्या प्रकाशनम्, 6. प्रकृतेः उपादानम्, 7. व्यवहाराय शरीराङ्गस्य उपयोगः, 8. व्यवहारपथे समागतानां शब्दानां सम्मिश्रणम्, 9. अर्थप्रकाशने आलङ्कारिकः शब्दविन्यासः। तेन क्रमेण इदानीन्तनसमासे समागतौ द्वौ शब्दौ व्यवहारबाहुल्यात् अनेकविधं स्वरूपमादाय प्रवर्तितौ वर्त्तेते। पुरुषशब्दस्य तात्पर्य्यमादाय—नरः, जनकः, भर्त्ता, पतिः व्यक्तिः, पुमान्, मनुष्यः, मानवः, नरोत्तमः पुरुषोत्तमः, नरकेशरी, पुरुषपुङ्गवः, प्रभृतयः शब्दाः, श्रेणी-विभाजनदृष्ट्या तथ्यद्वयम्, 1. जातिव्यञ्जकशब्दाः, 2. सामाजिकमूल्य/प्रतिष्ठा बोधकशब्दाश्चेति, 4. गौरित्यत्र कः शब्दः—गौः।

केचन शब्दाः पाणिनि समये नारीजातेः शैक्षिकोन्नतेः सूचकाः प्राप्यन्ते, तद्यथा—आपिशला, काशकृत्स्ना, आचार्या, कुमार श्रवण, कठी, बह्वची इति।

❖

PR-60

प्रायश्चित्तानां साम्प्रतिकी प्रासङ्गिकता

प्रो. डॉ. किशोरचन्द्रमहापात्रः, पुरी

वेदविहिकर्मणामननुष्ठानेन तत्र निषिद्धकर्मणाञ्च सेवनेन जनः प्रायश्चितीयत इति मन्वादिभिः प्रतिपादितम्, पापमाचरतः प्रायश्चित्तमकुर्वतश्च जन्मान्तरे कुत्सितयोनौ दुर्लक्षणयुक्तघृण्यमानवरूपेण च

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्मसम्भवात् प्रायश्चित्तमवश्यं करणीयमिति शास्त्रकाराणां सिद्धान्तः, तदनुसारेण विभिन्नपापानां कृते विभिन्नानि प्रायश्चित्तानि परिकल्पितानि सन्ति। पापतारतम्यात् प्रायश्चित्ततारतम्यमिति ज्ञायते। अत एव गौतमेन गुरुषु गुरूणि लघुषु लघूनीति प्रतिपादितम्, तत् कृते प्रायश्चिते पापस्य क्षयो भवति न वेति विचारो बहुधा कृतः, यदि पापस्य क्षयो न स्यात्तर्हि प्रायश्चिताचरणस्य वैयर्थ्यमेव। फलभोगं विना यदि कर्म न विनश्यति तर्हि पापस्य फलमवश्यं भोक्तव्यम्।

सम्प्रति पापपुण्ययोः विचारः आधुनिकैर्न क्रियते, ते तु राजदण्डमेव दण्डत्वेन स्वीकुर्वन्ति, लब्धराजदण्डः पापमुक्त एवेति न नियतत्वेन वक्तुं शक्यते। पापस्यापूर्वत्वात् प्रायश्चित्तानां तदर्थमनुष्ठेयत्वात् वचनबलादेव प्रायश्चितान्यनुष्ठेयानि इति विश्वासेन शिशुपरम्परया च सम्प्रत्यपि जनैः पापापनोदनार्थं प्रायश्चित्तानि आचर्यन्ते, तत्र कीदृशानां पापानां क्षयो भवति कीदृशानाञ्चासत्यपि क्षये लोकसम्व्यवहारार्थं प्रायश्चित्तमनुष्ठीयते, इतिसर्वमेतस्मिन् प्रबन्धे प्रपञ्चयिष्यते।

❖

PR-61

आनन्दं ब्रह्म

श्रीअरुणकुमारमिश्रः, ओडिशा

किमस्य विश्वस्य कारणम्? का वा गतिः अस्य लोकस्य? कुत्रचित् वा प्रतिष्ठितं जगदिदं? इत्येवं जायमानासु आशङ्कासु वेदान्तविदां तत्र समाधानं खलु 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति यत् प्रयन्ति, अभिसंविशन्ति तद् विजिज्ञासस्व, तद् ब्रह्मेति। उत्तरवाक्यं च तत्र 'आनन्दात् खलु इमानि भूतानि जायन्ते, आनन्देन जातानि जीवन्ति, आनन्दं प्रयन्ति अभिसंविशन्ति। आनन्दं ब्रह्मेति विजिज्ञासस्व। अर्थात् आनन्दं खलु ब्रह्मणो स्वरूपमिति निश्संशयेन वक्तुं शक्यते। तत्रापि—

'आनन्दं ब्रह्मेति विद्वान् न विभेति कुतश्चनः' विज्ञानमानन्दं ब्रह्म' इत्येवं रूपं श्रुति-स्मृति-वाक्यजातं प्रमाणमत्र न केवलमेवम्, अपि तु ब्रह्मणः तद् आनन्दस्वरूपत्वं तस्य स्वरूपलक्षणत्वेन शास्त्रेषु विवेचितमिति कृत्वा न तत् आनन्दाद् भिद्यते इति वेदान्तशास्त्रस्याशयः, 'रसो वै सः इत्युक्तत्वात्। तादृशस्य आनन्दस्य अंशभूतत्वेन जीवस्यापि तथात्वप्रसक्तिरिति चेत् - सत्यम्। यद्यपि जीवस्य ब्रह्मांशत्वं न केनापि वारयितुं शक्यते तथापि तत्र आनन्दांशतिरोहितत्वेन तथाविधस्य चैतन्यस्य जीवत्वापत्तिः। अन्यथा जीवब्रह्मणो अभेदप्रसङ्गात्।

एवं चात्राभिधातुं शक्यते, यत् प्रकरणेऽस्मिन् शास्त्रान्तराणां विभिन्नाः युक्तयः सुष्ठु विवेचिताः विद्यन्ते। तदेव खलु प्रस्तुतेऽत्र प्रबन्धे विवक्षाविषयः।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-62

'शास्त्रयोनित्वात्' इति सूत्रस्य भाष्यान्तरविमर्शः

डॉ. हरप्रियादाशः, ओडिशा

'लक्षणप्रमाणाभ्यां हि वस्तुसिद्धिः' इति तावत् दार्शनिकिसिद्धान्तमुररीकृत्य विना लक्षणेन विना प्रमाणेन वा नैव शक्यतेऽवधारयितुं वस्तुस्वरूपम्। एतत् खलु वक्तुं शक्यते, यत् वेदान्तशास्त्रे परिनिष्ठतं वस्तुतन्त्रं सकलप्रमाणागम्यम्, अवाङ्मनसगोचरं परतत्त्वं परं ब्रह्म प्रतिपादितम्। तल्लक्षणं च 'सत्यं ज्ञानमनन्तं', विज्ञानमानन्दं ब्रह्म', 'जन्माद्यस्य यतः' इत्यादिभिः स्वरूपतटस्थलक्षणैः विवेचितं विद्यते। सत्यज्ञानादिकं स्वरूपमेवात्र स्वरूपलक्षणम्। कार्य्यमुखेन तत्प्रतिपादनं च तटस्थलक्षणम्।

एतल्लक्षणकस्य ब्रह्मणः सुष्ठु प्रतिपादनाय शास्त्रमेवाश्रयन्ति वेदान्तविदः, यस्मिन्नेव प्रकरणे 'शास्त्रयोनित्वात्' इतिसूत्रं व्यवस्थितमाचार्य्यपादैः। परतत्त्वं परं-ब्रह्म यद्यपि वेदान्तशास्त्रस्य मुख्यः प्रतिपादनीयः विषयः, तथापि मतानन्तर-शास्त्रान्तर-प्रमाणान्तरैः तत्प्रतिपादनं विलक्षणतामावहति।

❖

PR-63

धर्मशास्त्रे दायभागः

डॉ. विश्वनाथ स्वाई, ओडिशा

धर्मशास्त्रप्रतिपादितेषु विषयेषु दायभागोऽन्यतमः। स्वामिसम्बन्धादेव निमित्तात् यद्धनम् अन्यस्य स्वं भवति तत् दायः इत्युच्यते। अयं च दायशब्दः दीयते इति व्युत्पत्त्या सिद्ध्यति। अत्र ददातीति प्रयोगः गौणः भवति। दायो द्विविधःअप्रतिबन्धः, सम्प्रतिबन्धश्च। पुत्राणां पौत्राणां च पुत्रत्वेन पौत्रत्वेन च पितृधनं पितामहधनं च स्वं भवति इति सः अप्रतिबन्धो दायः। पितृव्यभ्रात्रादीनां तु पुत्राभावे स्वाम्यभावे च स्वं भवतीति सप्रतिबन्धो दायः। दायभाग इति कथनेन 'द्रव्यसमुदायविषयाणामनेकस्वाम्यानां तदेकदेशेषु व्यवस्थापनम् इति विज्ञानेश्वराचार्य्यः। एकदेशोपात्तस्यैव भूहिरण्यादावुत्पन्नस्य स्वत्वस्य विनिगमनाप्रमाणाभावे वैशेषिक-व्यवहारानर्हतया अव्यवस्थितस्य गुटिकापातादिना भञ्जनं विभागः। विशेषेण भजनं स्वत्वज्ञापनं वा विभागः' इति जीमूतवाहानाचार्य्यः। मित्रशिश्राचार्य्यस्तु 'साधारणस्वत्वाश्रयस्य व्यवस्थाविशेषादिभिः तदपगमे प्रतिनियतस्वत्वाधानं विभागः' इति। अतएव नारदेन उक्तम्—

विभागोऽर्थस्य पित्र्यस्य पुत्रैर्यत्र प्रकल्प्यते।
दायभाग इति प्रोक्तं व्यवहारपदं बुधैः॥ इति।

मनुयाज्ञवल्क्यनारदाकात्यायनप्रभृतीनां स्मृतिकाराणां मतानुसारमुपदिष्टं दायभागव्यवहारपदमधुना कालेऽपि समाजे महत्प्रसिद्धिं प्राप्नोति। प्रबन्धेऽस्मिन् विस्तृतभावेन एतदालोच्यते इत्यलम्।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-64

धर्मशास्त्रे कालसर्वस्वम्

श्रीज्ञानेन्द्रत्रिपाठी, ओडिशा

धर्मशास्त्रनिबन्धेषु 'कालसर्वस्वमि'त्यभिधेयो ग्रन्थः अन्यतमः। अयम् उत्कलीयधर्मशास्त्रकारैः महामहोपाध्यायैः कृष्णमिश्रैः विरचितः। कालविषयमाधारीकृत्य यद्यपि बहवः स्मृतिनिबन्धाः विरचितास्तथापि तेषां सर्वेषां मतानामाकलनपुरःसरं न्यायमीमांसादि-शैल्या स्थलविशेषे आधुनिकमतमपरित्यज्य तथा ज्योतिः शास्त्रस्य सिद्धान्तानुररीकृत्य महामहोपाध्याय-कृष्णमिश्रेण कालसर्वस्वे ग्रन्थेऽस्मिन् नानाविधं नूतनवस्तु सन्निवेशितम्।

ग्रन्थेऽस्मिन् स्मार्त्त-वैष्णवभेदेन प्रकरणद्वयं वर्त्तते। ग्रन्थस्यास्य उपोद्घाते कालसत्तारूपदभेदोपयोगादिविषयाः प्रतिपादिताः। तद्यथा—ननु कालनिर्णयार्थं चेदयं ग्रन्थ आरभ्यते तर्हि वृथा, कालस्य अप्रत्यक्षाद्यगम्यत्वेन अप्रमाणत्वात्। अतएव कपिलमुनिः प्रकृत्यादीनि पञ्चविंशति तत्त्वान्युक्त्वा तमुपेक्षितवान्। अथ यदि प्रसिद्धस्तर्हि ईश्वरात्मक एव सः। शिरोमण्यादिमहातार्किकैस्तथा निर्वचनात्।

यद्यपि एक एवकालः शास्त्रसम्मतः, तथापि औपाधिकभेदादनेकः कल्प्यते उपाधिभेदादेकोऽपि भवेत्कालस्त्वनेकधा।

इति गर्गवचनात्। उपाधिः सूर्यपरिस्पन्दः। तथाहि द्विविधः कालः स्थूलः खण्डश्चेति। अत्र स्थूलकालो महाकालपदवाच्यो विभुः। स चातिरिक्त ईश्वरूपो वेत्यन्यत्। खण्डकालश्च कलामुहूर्त्तदिनमासाद्यात्मकास्तदुपाधयः।

❖

PR-65

पुरुषार्थचतुष्टयस्य धर्मशास्त्रीयसमीक्षणम्

डॉ. व्यासमिश्रः, वाराणसी

भारतीयार्षमनीषाया उद्देश्यमस्ति यन्मानवाः पुरुषार्थिनो भवेयुः। पुरुषार्थविहीना हि संस्कृतिर्नैव श्रेष्ठतममूल्येभ्यः स्थायित्वं प्रदास्यति। नैव च तेनात्महितमेव भविष्यति। अत एव सर्वासु संस्कृतिषु भारतीयसनातनसंस्कृतेरेव महत्त्वं वरीवर्ति। सर्वविधकल्याणकामनापि अस्यामेव संस्कृतौ निहितास्ति।

सर्वविधसुखस्य सर्वविधकल्याणस्य चैषा सत्कामना हस्ते हस्तं स्थापयित्वोपवेशनेव दिवास्वप्नदर्शनेन कल्पनया वा नैव परिपूर्णा भवितुमर्हति। अत एव भारतीयेयं संस्कृतिः कर्मण्येव महत्त्वं सर्वदा सन्दधाति। आर्षसंस्कृतेः मान्यतापि सततोपलब्धावेव वर्तते। परन्तु वयं स्वकीयाज्ञानवशात् तन्नैव प्राप्नुमः, यतोहि प्राक्तनकर्मपरिपाकेनाद्यतनकर्मणा चान्तःकरणं कामक्रोधादिषड्विकारेणाच्छादितमस्ति। इमांस्तावद् विकारान्वयं पुरुषार्थेनैवापकर्तुं प्रभवामः, अत एव पुरुषार्थस्य वारं-वारं स्मरणं कारणीयं भारतीया संस्कृतिः, लक्ष्यमपि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीयसंस्कृतेरिदमेवास्ति। निश्चप्रचम् पुरुषार्थमेव मानवः कश्ननापि समाश्रयति। यदा भारतीयसंस्कृतिः कर्मणः वार्तां विदधातित्विदमपि सा स्पष्टयति यत् कदं बन्धनकारकमप्यस्ति मोक्षप्रदामप्यस्ति तत्र च कानि कर्माणि कर्तव्यानि, कानि च कर्माणि नैवानुष्ठेयानि अत्यत्र शास्त्रमेव प्रमाणम्।

एवं चतुर्ण्णामपि पुरुषार्थानां सिद्धिः सर्वथानिवार्यतां भजते। एतस्मादेवात्र चतुर्णामपि पुरुषार्थानां स्वरूपनिर्धारणं निर्वचनं महत्त्वाख्यानञ्च प्रासङ्गिकतामाटीकते। अतः शोधनिबन्धेऽस्मिन् क्रमशः पुरुषार्थत्वेन परिगणितानां धर्मार्थकाममोक्षाणां यथाशास्त्रं स्वरूपमुपस्थापयामः।

❖

PR-66

तर्कशास्त्रे ज्ञानसिद्धान्तः

थकामुनि पी.के., केरला

भारतीयतत्त्वचिन्ता दर्शनमिति नाम्ना सुविदिता वर्तते। दृश्यते अनेन प्रपञ्चतत्त्वम् इति दर्शनपदस्य विग्रहः। प्रपञ्चतत्त्वविषये बहूनि दर्शनानि सन्ति भारते। तत्र चार्वाक-बौद्ध-जैन-सांख्य-योग-न्याय-वैशेषिक-पूर्वमीमांसोत्तरमीमांसा दर्शनानि प्रमुखानि सन्ति। आस्तिकनास्तिकभेदेन दर्शनानि द्वेधा विभक्तानि। यानि दर्शनानि वेदानां प्रामाण्यमङ्गीकुर्वन्ति तानि आस्तिकानि। यानि वेदप्रमाण्यं नाङ्गीकुर्वन्ति तानि नास्तिकानि।

आस्तिकदर्शनेषु अन्यतमं दर्शनं भवति गौतममुनिप्रणीतं न्यायदर्शनम्। प्रत्यक्षादिभिः प्रमाणैः वस्तुत्त्वस्य परीक्षणं न्यायस्यार्थः। कणादमुनिप्रणीतमास्तिकदर्शनं भवति वैशेषिकदर्शनम्। प्रत्यक्षेण अनुमित्या वा अभ्युदयनिश्रेयससिद्ध्यर्थं पदार्थनिरूपणमेव वैशेषिकदर्शनस्यापि प्रतिपाद्यविषयः। उभयोरपि दर्शनयोः प्रतिपाद्यसादृश्यवशात् तयोः समानतन्त्रत्वमभ्युपगम्यते। एतत् दर्शनद्वयं कालान्तरे तर्कशास्त्रमिति नाम्ना प्रसिद्धमभूत्। अस्मिन्नेव दर्शने ज्ञानसिद्धान्तो विवेचितो विद्यते।

❖

PR-67

स्मृतिशास्त्रे न्यायव्यवस्था दण्डव्यवस्था च

प्रो. वेदप्रकाश शास्त्री, हरिद्वार

सृष्टिकालादेव आरभ्य मानवजगत् नियमयितुं विविधाः व्यवस्थाः प्रदत्ताः। सर्वप्रथमं वेदा एव विविधान् उपायान् मानवजगतः संयमने प्राकटयन्, वेदानेवानुसरद्भिः स्मृतिकारैः सर्वे नियमाः स्थाने स्थाने संयोजिताः। साम्प्रतिकी या व्यवस्था विश्वे प्रचरति, सा क्वचित् स्मृतिशास्त्रेण सम्मता क्वचिच्चासम्मता। अद्यत्वे जगत्यां प्रायशः दण्डव्यवस्था न्यायव्यवस्था च खण्डितेव प्रतिभाति। अत एव निखिलं जगत् दुर्विचार-वृत्ति-दोष-दूषितं जातम्। स्मृतिशास्त्रेषु न्यायव्यवस्थाविषये ये नियमाः संदिष्टास्त एव सम्प्रति सन्त्युपयोगिताभाजः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दण्डव्यवस्था तु सम्प्रति उपहासमयी जाता अपराधवृत्ति-युतानां पुंसां दण्डप्रताडनम् अपेक्षितवृत्त्या नोपलभ्यते। दण्डप्रकार एव सर्वान् नियमयितुं प्रभवति। अस्मिन् लेखे स्मृतिशास्त्रोदिरितां न्यायव्यवस्थां दण्डव्यवस्थां चाभिलक्ष्य समुचितानां विचाराणां संयोजनं करिष्यते।

❖

PR-68

न्यायशास्त्रे केरलीययोगदानम्

डॉ. के.जी. कुमारी

सर्वेषामेव शास्त्राणामुपकारकतया आन्वीक्षिकीत्यपराभिधस्य न्यायशास्त्रस्य प्रसिद्धिः। अस्य दर्शनस्य न्यायविस्तरो न्यायदर्शनं, प्रमाणशास्त्रमित्यादीनि नामान्तराणि च सन्ति।

सुरभारतीयसमुपासकानां समेषां विदुषां सुविदितमेतदस्ति, यत् संस्कृतवाङ्मयस्य कृते केरलकृतयोगदानस्य महत्त्वम्। तत् योगदानं काव्य-शास्त्र-तत्प्रभेदोपभेदविविधविषयव्यापकं तत्तद्विषयगभीरं च। यथा संस्कृतकाव्यसम्पत् केरलीयानां प्रतिभाजुषां कवीनां काव्यमर्मज्ञनां सहृदयानां च विविधा अमूल्यकाव्य-तद्व्याख्यान-शास्त्रग्रन्थरत्नैः अमूल्यं जातं तथा वेदान्तमीमांसागणितादिविविधशास्त्रमण्डलानि तत्तच्छास्त्र-तत्त्वज्ञानं सूक्ष्मेक्षिकापाटवपटूनां पण्डितसार्वभौमानां लक्षण-व्याख्याख्यान-लक्ष्यग्रन्थतल्लजैः महत्त्वं गौरवञ्च संज्जातम्। तथा च तर्कशास्त्रमपि केरलीयतर्कशास्त्रधुरन्धराणां लक्ष्य-लक्षण-व्याख्यानग्रन्थैः जातमनघम्।

श्रीगौतममूलकं न्यायशास्त्रं, कणादमूलकं वैशेषिकशास्त्रम्, गङ्गेशमूलकं तत्त्वशास्त्रं तन्मूलकं नव्यन्यायम्। तादृशनव्यंन्यायप्रतिभाशालिनां लेखिन्या ग्रन्थरत्नान्यनेकानि समुद्गतानि। तत्र केचन प्रकाशिताः, इतरे पाण्डुलिपौ विराजन्ते। इतरे सर्वे गच्छता कालेन प्रायशः नष्टप्रायाः, परन्तु समुपलब्धग्रन्थतल्लजानामध्ययनेन ज्ञातुं शक्यते, यत् केरले न्यायशास्त्रपठनपाठनपरम्परा अद्याप्यजस्रं प्रचलति। तेषां दिङ्मात्रस्वरूपं प्रदर्शयितुमिष्यते।

❖

PR-69

धर्मशास्त्रदृष्ट्या वर्णाश्रमव्यवस्था

सुश्रीमेधा कुमारी, पुरी

पवित्रतमेऽस्मिन् भारतवर्षेऽनादिकालाद् आरभ्य संस्कृतभाषा संस्कृतिश्च सुसमृद्धा। तामेव संस्कृतभाषाम् आधारीकृत्यम् तत्त्वदर्शिभिः महर्षिभिः आचार्यवर्यैश्च बहूनि शास्त्राणि विरचितानि। प्रवर्त्तितेषु नैकेषु शास्त्रेषु धर्मशास्त्रं सकलशास्त्रपुरस्सकृतत्वेन मूर्ध्न्यलेन च सर्वत्र प्रतिष्ठां लभते। तत्र धर्मशब्दःषड्विधस्मार्तधर्मविषयः। तद्यथा वर्णधर्मः आश्रमधर्मः, वर्णाश्रमधर्मः, गुणधर्मः, निमित्तधर्मः सामान्यधर्मश्चेति। तत्र वर्णधर्मः ब्राह्मणो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नित्यं मद्यं वर्जयेदित्यादिः। आश्रमधर्मोऽग्नीन्धनभैक्षचर्यादि। वर्णाश्रमधर्मः पालाशो दण्डो ब्राह्मणस्येत्येवमादिः। गुणधर्मः शास्त्रीयाभिषेकादिगुणयुक्तस्य राज्ञः प्रजापरिपालनादि। निमित्तधर्मो विहिताकरणप्रतिषिद्धसेवननिमित्तं प्रायश्चित्तम्। साधारणधर्मोऽहिंसादिः, 'न हिंस्यात्सर्वा भूतानि' इत्याचाण्डालं साधारणधर्मः। अयमेव विषयोऽत्र पादयिष्यते।

❖

PR-70

आश्रमग्रहणकालविचारः

डॉ. जयकृष्णमिश्रः. पुरी

धर्मशास्त्रविषयपर्यालोचनावसरे स्मृतिकाराः मनुष्यस्य जीवनं चतुर्धा विभजन्ति। मनुष्यो जीवनस्य प्रथमं भागं ब्रह्मचर्यधारणपूर्वकं गुरोः गृहे अतिवाहयेत्। गुरोः गृहात् प्रत्यागमनं कृत्वा गृहस्थाश्रमे प्रवेशं यावत् स्नातकावस्थायां स तिष्ठेत्। विवाहं कृत्वा जीवनस्य द्वितीये भागे मनुष्यः गृहस्थाश्रमेऽवस्थाय तृतीये भागे च वानप्रस्थाश्रमवलम्बेत, चतुर्थे च भागे संन्यासाश्रमं गच्छेत्। आश्रमग्रहणकालविषये धर्मशास्त्रकारेषु किञ्चिद् वैमत्यं दृश्यते। सर्वेषां धर्मशास्त्रकाराणां मनुवचनेन सह एकवाक्यतायां सत्यां प्रामाण्यमिति हेतोरत्र विलसितानां मतान्तराणामेकवाक्यतास्थापनार्थं प्रबन्धेऽस्मिन् विचारः प्रस्तूयते।

❖

PR-71

वर्णाश्रमव्यवस्था एकमध्ययनम्

डॉ. माधवचन्द्रपण्डा

अनादिकालादारभ्य पवित्रतमेऽस्मिन् भारतवर्षे संस्कृतभाषा सुसमृद्धा विद्यते। तामेव भाषामधिकृत्य तत्त्वदर्शिभिः महर्षिभिः बहूनि शास्त्राणि प्रवर्त्तितानि। तेषु धर्मशास्त्रं मूर्धन्यभूतं सत् सर्वत्र प्रतिष्ठां लभते। शास्त्रस्यास्य प्रामाण्यं वेदानुमापकत्वेन परम्परया स्वीक्रियते। वेदानां भाषा संक्षिप्ता, दुर्बोध्या च। अतः तत्रत्यान् विषयान् सम्यक्तया ग्रहीतुं शिष्यान् चोपदेष्टुं, मन्वादिभिः महर्षिभिः धर्मशास्त्राणि प्रणीतानि। अतएव प्रवर्त्तितेषु शास्त्रकदम्बेषु धर्मशास्त्रं निरवच्छिन्नरूपेण मानवसमाजस्य कल्याणं साधयति। शास्त्रेऽस्मिन् प्रतिपादितेषु नैकेषु विषयेषु वर्णाश्रमव्यवस्थायाः महत्त्वं प्राधान्यं च विद्यत एव। अनया मनुष्यः स्वस्य रुच्यनुसारं क्षमतानुसारं च समाजस्य कल्याणासाधनार्थं व्यक्तिगतस्वार्थेभ्यः उपरिगमनार्थं कृतसंकल्पो भवति। अतः अस्याः महत्त्वं प्राचीनकालादारभ्येदानीं यावत् विद्यते इति प्रबन्धेऽस्मिन् सम्यक् प्रतिपादयिष्यते।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-72

सूर्यदेवः चराचरस्य आत्मा : अध्ययनमेकम्

डॉ. खगेन्द्रनाथदेवशर्मा

देवाः अदृश्यरूपेण मर्त्यवासिनां कल्याणं सादयन्तीति लोकविश्वासोऽवगम्यते। देवलोकः ज्ञानमयः आनन्ददायकः शान्तिप्रधानः सुखकरश्चेति जनानां प्रत्ययो दृश्यते।

दीव्यतीति देवः। प्रकाशार्थकस्य 'दिव' धातोः पश्चात् 'अच्' प्रत्ययोगेन देवशब्दः निष्पन्नः। अतः देवः ज्ञानरूपप्रकाशदायकः। यद्यपि देवाः अदृश्यरूपेण तिष्ठन्तः जनानां मङ्गलं कुर्वन्ति, किन्तु सूर्यदेवः प्रत्यक्षरूपेण अस्मान् पालयति कर्मप्रेरणां च प्रयच्छति। सर्वे जनाः सुदुरादेव सूर्यं पश्यन्ति, तस्योत्तायमनुभवत्तिप तथा सर्वे प्राणिनः सूर्यस्य रश्मिभिरुद्भासन्ते। अतः सूर्य एव लोकानां जीवनाधारः।

दिनरात्र्योः मासवत्सरयोः दक्षिणोत्तरायनयोश्च मूलभूतः सूर्य एव। सूर्यमवलम्ब्य प्रत्यूषे विहगाः गायन्ति, पद्मादीनि पुष्पानि विकसन्ति, जन्तवः अन्ये प्राणिनश्च बहिर्गच्छन्ति, सर्वे जनाः स्वकर्मरताः भवन्ति। तमोरूपं त्रासकरमज्ञानं दूरीकृत्य ज्योतीरूपमानन्ददायकं ज्ञानं वितरति सूर्यः।

यथा आत्मविहीनस्य शरीरस्य किमपि मूल्यं नास्ति। तथा सूर्यविहीनस्य विश्वस्यापि स्थायित्वं नोपलभ्यते। अचरात्मके भूतलेऽपि सूर्यातपप्रभावेण वीजाङ्कुरात्मिका शक्तिः समागता। अतः सूर्यदेवः चराचरस्यात्मा। 'सूर्य आत्मा जगतः तस्थुषश्च' इति श्रुतेः।।

❖

PR-73

श्रीजगन्नाथतत्त्वस्य विहङ्गावलोकनम्

श्रीनृसिंहनाथगुरुः

श्रीजगन्नाथतत्त्वं रहस्यमयमस्ति। काले काले भारतवर्षस्य संस्कृतौ यत् साम्यं मैत्री भ्रातृभावश्च परिलक्ष्यते, तत् सर्वं श्रीजगन्नाथदर्शने एव प्रतिफलितमस्ति। श्रीजगन्नाथः जगतः नाथः, सर्वलोकपालकः, पतितोद्धारकः, शिष्टाचाररक्षकः, दम्भविनाशकः, सर्वसम्प्रदायमध्ये समन्वयकारकः, सर्वजननाथश्चेति प्रसिद्धिं गतः। अतः तत्संस्कृतौ पक्षपातरहितं सर्वजनहितं निहितमस्ति। सर्वधर्मसमन्वयवादस्य प्रतिष्ठा चाप्यत्र दृश्यते। पतितपावनपताकव्याजेन समदृष्ट्या स प्रभुः समाजं नियन्त्रयति। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' इति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वभावना श्रीजगन्नाथतत्त्वेषु प्रतिस्तरमवलोक्यते। जातिवादस्य सङ्कीर्णतायाः लेशोऽपि अत्र नानुभूयते। अत्रत्यः राजाऽपि जनताजनार्दनस्य सेवाभावनया आत्मनः दासत्वं प्रख्यापयितुं भृत्यवत् सम्मार्ज्जनीं स्वीकुरुते। तथैव जनसेवकः घृण्योऽपि चण्डालः स्वकर्ममाहात्म्येन राजावत् पूज्यते। न केवलं पुरुषः अत्र समाजे प्रधानीक्रियते, अपितु नारीजातेः स्वाभिमानं संरक्षते। तस्मात् अस्पृश्यानां चण्डालकुलोत्पन्नानां महिलासेविकानां कृते महाराज्ञीति व्यवहारोऽप्यत्र श्रूयते। अहो महनीयता अस्याः पवित्रपरम्परायाः यत् प्रतीकरूपेणात्र सर्वं प्रतीयते। आदर्शपरिवारस्य चित्रं सुस्थसामाजिकपरम्परायाः वातावरणञ्चात्रावलोक्यते। जगतः परिपालनाय सर्वतन्त्रस्वतन्त्रसम्राडिव राजाधिराजः श्रीजगन्नाथः विराजते। अस्य महामहिमभूतस्य रहस्यं देवैरपि न ज्ञायते। तस्मात् साधु कथितमस्ति यत्—'सर्वं रहस्यं पुरुषोत्तमस्य देवाः न जानन्ति कुतो मनुष्याः'। इति।

❖

PR-74

अद्वैतवेदान्तस्य वर्तमानकाले प्रसक्तिः

श्रीचन्द्रमाधवसिंहः, मुजफ्फरपुरम्

युगे अप्रसक्तमिति जनाः चिन्तयन्ति किन्तु पूर्वकाल इव एतेषु दिनेषु अपि प्रसक्तिः तादृशी एव अस्ति यथा पूर्वमासीत्। आणविकायुधानां प्रचुरप्रचारं प्राप्तेऽस्मिन् काले सर्वेऽपि राष्ट्राणि विनाशभीतौ तिष्ठन्ति। एतादृशयुद्धभीत्या विनाशभीत्या च आर्तमानवानां मोचनार्थं अद्वैतदर्शनम् एकमेव पर्याप्तम्। यतोहि अद्वैतवेदान्तः समत्वप्रतिपादकं दर्शनं भवति। न केवलं भौतिकं समत्वमपि तु आत्मीयं समत्वमपि प्रददाति—अद्वैतदर्शनम्। आत्मीयसमत्वमेव शङ्करदर्शनस्य लक्ष्यम्। इदं दर्शनमेव शान्तिसंदेशदायकं भवति। आत्मज्ञानेन रागद्वेषलोभमोहमित्यादिविकारातीताः भवितुं शक्यन्ते अनेन भेदबुद्धि-मूलकाः स्पर्धाः, सुखभोगेषु अत्यासक्तिः, हिंसा, धार्मिकमूल्यानां च्यूतिः इत्यादयः सर्वे दोषाः अपगमिष्यन्ति। यः जानाति यत्—'ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः'। सः कदापि दोषं न करिष्यति। शाङ्करवेदान्ते ब्रह्मएकमात्रमेव। सत्यं नित्यञ्च। अन्यत् सर्वम् अवस्तुभूतं मिथ्या इत्यनेन ज्ञानेन दोषाणां परिहारः भविष्यति एव नात्र कश्चन् सन्देहः।

आत्मज्ञानी स्वार्थपरतयाकर्म न करोति, किन्तु लोककल्याणाय प्रवर्तते। एवं अद्वैतात्मज्ञानमेव युगेऽस्मिन् समुचितं प्रसक्तञ्च दर्शनम्।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-75

भक्तिप्रपत्त्योः स्वरूपविवेचनम्

डॉ. जयप्रकाशनारायणत्रिपाठी, वाराणसी

तत्र सर्वदर्शनानां शेखरायितमुकुटमणाविव देदीप्यमाने चिदचिद्विशिष्टविशिष्टाद्वैतदर्शने भक्तिर्योगीन्द्राणां परमोपास्या, अस्य शास्त्रस्य मन्थनरूपेणोद्भूता नवनीतसमा भक्तिश्च पथि साधकपुङ्गवानां सर्वश्रेष्ठा। सा च भक्तिः तत्र तत्र शास्त्रेषु विविधपक्षरूपेणास्ति किल विवेचिता। भक्तिशब्दस्य व्युत्पत्तौ वैयाकरणाश्च भज् सेवायां क्तिन् प्रत्यये कृते सति भक्तिशब्दः निष्पद्यते इत्याहुः। अपि च अमरकोशे 'श्रद्धारचनयोर्भक्तिर्गौण्यां वृत्तौ च सेवने' इति प्रतिपादितम्

❖

PR-76

षडध्वविमर्शः

डॉ. राजनाथत्रिपाठी, वाराणसी

भारतीयं हि वाङ्मयं जीवनदर्शनञ्च निगमागममूलम्। अद्यतनीयधारणानुसारं निगमो वेदःतदुपजीवि-वाङ्मयञ्च। तच्च वेदोपवेदब्राह्मणारण्यकोपनिषदः। आगमश्च वेदानुबन्धिसमग्रशास्त्ररूपेणोप-बृंहितषडङ्गचतुरुपङ्गानि तन्मूलकानि भारतीयजीवनदर्शनादीनि। तानि च शैव-शाक्य-सौर-गाणपत्य-बौद्धार्हतचार्वाकादीनि।

एतानि च षडध्वानि वर्ण-पद-मन्त्र-कला-तत्त्व-भुवनाख्यानि। वर्णाध्वानवर्ण(अक्षर) समाम्नायः, स्वरवर्णव्यञ्जनवर्णाः, उच्चारः, वर्णलिङ्गम्, वर्णाधिष्ठातृविधादेवता वा, देवताया वर्णाश्रितद्रव्याणि, किंवर्णात्मकनाम्ना साधकेन किंवर्णात्मिका देवता उपासितव्या इत्यादयो विषया अत्र प्रकरणे प्रकर्षेण विवेचनीया ज्ञातव्याश्च। पदाध्वनि पद(शब्द)-पदार्थयोः शब्दार्थयोः विचारः, शब्दार्थरूपेण शिव-शक्त्योः स्वरूपं, वाचां चातुर्विध्यं, चक्रादीनां च योगिगम्या विषया विवरणीया भवन्ति। एवं मन्माध्वनि मननकतक्रत्राणकर्मकमन्त्राणां स्वरूपं मन्त्रार्थः, मन्त्रचैतन्यं मन्त्रशक्तिः, मन्त्रोद्धारः, बीजम्, उपदेष्टा गुरुः, मन्त्र, जपप्रकाशादयो विषयाः सङ्गच्छन्ते।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-77

उपनिषदुक्त आध्यात्मिक नीति-तत्त्व

डॉ. रमा दुबे, वाराणसी

अध्यात्मविद्या अथवा ब्रह्मविद्या को उपनिषद् कहते हैं। इसकी व्युत्पत्ति उप + नि षदल्ल (सद्) धातु से क्विप् प्रत्यय जोड़ने पर होती है। यह चिरप्रदीप्त वह ज्ञानदीप है, जो सृष्टि के आदिकाल से लेकर प्रलयपर्यन्त पूर्ववत् प्रकाशित रहा है और रहेगा। उपनिषद् भारतीय संस्कृति के प्राणस्वरूप हैं। भारत का सम्पूर्ण वातावरण ही उपनिषद् के ज्ञानदर्शन के द्वारा संजीवित है।

णीञ् प्रापणें इस प्राप्त्यर्थक 'णी' नी धातु से करण तथा अधिकरण में क्तिन् प्रत्यय के योग से नीति शब्द निष्पन्न होता है। नीति आचरण है, नीति व्यक्तित्व है। यह उपनिषद् नीति-तत्त्व का आदि-स्रोत है। उदाहरणार्थ—सत्यं वद, मातृदेवो भव.... (तैत्ति. 1/11/1-2) न जायते म्रियते.... (कठ. 1/2/18), 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म....' (छान्दोग्य 3/14/1), 'असतो मा....' (बृहदा. 1/3/28), 'मन एव मनुष्याणां.... (ब्रह्मबिन्दु 2), 'न कर्मणा....' (कैवल्य 1/3), 'मनो व्याधे....' (महो. 4/88), 'आहारशुद्धौ...' (छान्दोग्य 7/26/2)।

अत एव यहाँ इस शोध-पत्र के रूप में इस विषय को ही चयनित करने का उद्देश्य मात्र यह स्मरण दिलाना है कि आज जबकि विज्ञान और प्रौद्योगिकी के द्वारा नित्य नूतन संसाधनों के उपलब्ध कराने के बावजूद भी मानव विविध प्रकार की आधि-व्याधियों से अधिक संत्रस्त है तथा क्षेत्र, जाति, धर्म और राष्ट्र के नाम पर संघर्ष उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है, ऐसी परिस्थितियों से निजात पाने हेतु इन 'उपनिषदुक्त नीति के तत्त्वों' को अपने व्यक्तित्व में संजोकर जीवन में सुख-शान्ति बनायी जा सकती है, जिसका विस्तृत विवेचन उक्त शोध-पत्र में किया जायेगा।

❖

PR-78

मनुस्मृति एवं पाराशरस्मृतीय दण्ड-विधानों की तुलना

डॉ. रामचन्द्र सिंह, बिहार

प्राचीन काल में प्रेतात्माओं के प्रभाव का फल बताया जाता था और दण्ड का मुख्य उद्देश्य देवताओं को सन्तुष्ट करना था। प्राचीन भारतीय समाज में दण्ड के निम्नाङ्कित सिद्धान्त थे—

(क) प्रायश्चित्त का सिद्धान्त, (ख) प्रतिशोधात्मक सिद्धान्त, (ग) प्रतिरोधात्मक सिद्धान्त, (घ) परिष्कारात्मक सिद्धान्त।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-79

श्रीमद्भगवद्गीता में जीवन दर्शन

डॉ. पूजा देवी, दिल्ली

कुरुक्षेत्र समराङ्गण में महाभारत युद्ध के समय श्रीकृष्ण द्वारा किंर्त्तव्यविमूढ़ अर्जुन को दिया गया उपदेश विश्वप्रसिद्ध है। श्रीमद्भगवद्गीता एक ऐसा अंश है, जो हमारे समस्त संस्कृत साहित्य के दार्शनिक पक्ष को साररूप में प्रस्तुत करता है। गीता में संकलित समस्त श्लोक मानवमात्र की निर्द्वन्द्व जीवन यात्रा हेतु पथ प्रदर्शन करते हैं। ये श्लोक अत्यन्त व्यावहारिक यथार्थ का वर्णन करते हैं तथा समस्त द्वन्द्वों से मुक्ति का उपाय भी बतलाते हैं। वैसे तो सम्पूर्ण गीता दिव्यज्ञानमयी है, किन्तु उसके सभी अट्ठारह अध्यायों में द्वितीय अध्याय तो बहुत ही उत्कृष्ट ज्ञानकर्मसमुच्चय का वर्णन करता है।

जैसा कि हम सभी जानते हैं कि आज हम नित-नूतन आविष्कारों के द्वारा अपने आपको सुखी करने के लिए सभी प्रकार की सुख सुविधाएँ (भौतिक) प्राप्त करते जा रहे हैं; क्योंकि हमारे पास अगाध शक्ति है। अतः हमें आगे बढ़ने से भी कोई नहीं रोक सकता, किन्तु जिस ऐश्वर्य की प्राप्ति हेतु हम इतने उत्कंठित हो रहे हैं, उसके फलस्वरूप हमें बहुत बड़ी कीमत भी चुकानी पड़ रही है। हम यह सब जानते हुए भी कि दिन व दिन मनुष्य तनावग्रस्त हो रहा है, जिसकी वजह भी हम सब जानते है, किन्तु उस पर गहन चिन्तन का हमारे पास समय नहीं है। हमारी मानवोचित संवेदनाएँ आत्मिक शान्ति भी समाप्त सी हो होती जा रही है, किन्तु हम उस प्राणघातक मृगमरीचिका के मोह से छूट नहीं पा रहे हैं, जिसका मार्ग हम सबने स्वयं चुना है। अब प्रश्न उठता है कि इस दुर्दान्त से बचा कैसे जाये; क्योंकि मानव ही सभी प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ एवं अमूल्य जीव है, तो सृष्टि के इस सर्वश्रेष्ठ एवं दुर्लभ उपलब्धि को व्यर्थ में ही नष्ट क्यूँ किया जाए। उसके समुचित विकास के विषय में सोचा जाए, ताकि वह दिग्भ्रमित होकर अपना अस्तित्व ही न मिटा डाले। यह सत्य है, कि कोई अच्छी क्रिया व्यवहार में लाने से कठिन मालूम पड़ती है, किन्तु गीता के अनुसार अभ्यास के द्वारा तो मोक्ष भी प्राप्त किया जा सकता है, जिसका कि बड़े ही सुन्दर एवं तर्कपूर्ण शैली में श्रीकृष्ण ने अर्जुन के द्वारा पूछे गए मानव मन के चञ्चलतावश उठने वाले बहानों रूपी प्रश्नों का उत्तर दिया है। अधिकांशतया मानव आलस्यवश प्रत्येक उचित मार्ग जो कि कठिन/दुरूह जान पड़ता है, उस पर चलना नहीं चाहता और यदि वह निष्काम कर्म का आश्रय लेकर उसी दुरूह मार्ग पर चलने का दृढ़ निश्चय कर ले तो वही मार्ग उसे उन्नति के उस शिखर तक ले जायेगा, जो कि उसके जीवन का परम लक्ष्य है। वह अपने साथ दिग्भ्रमित समाज को भी कल्याण मार्ग पर अग्रसर कर प्रगति-पथ पर आरोहण कर सकता है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-80

बुद्धि के सात्त्विक परिणाम 'ज्ञान' से ही मुक्ति : अज्ञातकर्तृक युक्तिदीपिका के आधार पर

डॉ. चन्द्रशेखर

सांख्यकारिका 44 तथा 45 की टीका के प्रसङ्ग में ज्ञान से ही मोक्ष होता है—यह सिद्ध करने के लिए युक्तिदीपिकाकार ने ज्ञान से अतिरिक्त बुद्धि के धर्मादि शेष सात भावों से मोक्ष क्यों नहीं प्राप्त हो सकता, इसका प्रतिपादन विस्तृत तथा सुन्दर युक्तियों से किया है, जो अन्य सभी सांख्यकारिका की टीकाओं से भिन्न है।

सत्त्व तथा तमस् नामक दो गुणों के प्रकर्ष से अध्यवसाय रूप बुद्धि का दो प्रकार का परिणाम प्रकट होता है। निष्क्रिय सत्त्वगुण को तथा निष्क्रिय तमोगुण को क्रियाशील बनाने में रजोगुण संलग्न रहता है। जब रजस् तथा तमस् गुणों को वश में करके सत्त्वगुण बुद्धि में उत्कृष्ट हो जाता है, तब धर्म-ज्ञान-वैराग्य तथा ऐश्वर्य रूप चार सात्त्विक परिणाम प्रकट होता है। जब रजस् तथा सत्त्व इन दो गुणों को वश में करके तमोगुण बुद्धि में उत्कृष्ट हो जाता है, तब अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य तथा अनैश्वर्य रूप चार तामस परिणाम प्रकट होते हैं। बुद्धि के सात्त्विक परिणाम ज्ञान मात्र से ही मोक्ष का सीधा सम्बन्ध है।

यह मोक्ष अनिर्मित है। जैसे अन्धकार के कारण तिरोहित घटादि द्रव्य देखे नहीं जाते, परन्तु अन्धकार के प्रतिद्वन्द्वी प्रदीप प्रकाश से इनकी उपलब्धि होती है। यहाँ पर घट के निर्माण का प्रसङ्ग ही नहीं है। वैसे ही सदा उपलब्ध मोक्ष भी अनिर्मित है। तत्त्वज्ञान से मोक्ष होता है। यह कथन वेद प्रतिपादित भी है।

❖

PR-81

कर्मफल की विश्रान्ति

मारूफउर रहमान, अलीगढ़

ब्रह्म की सत्ता ही सत्य है। ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या, जीवो ब्रह्म वै नापरः, दृष्य जगत् मिथ्या है। इसी से जीव और जगत् अनादिकाल से ही विद्यमान है। वह किसी भी विशेष कारण से बार-बार जड़ संसर्ग में आकर जन्मान्तर ग्रहण कर रहा है; जिससे जीव भिन्न-भिन्न शरीर धारण कर रहा है। वह उसका कर्मानुरूप फल है। कामनापूर्वक कर्म करने पर उसका फल भोगना ही पड़ता है।

'नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि'।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राणी या जीव कर्मानुसार ही उत्पन्न होता है और कर्म से ही उन्नति को प्राप्त होता है। सुख, दुःख, भय, शोक कर्म से ही होता है। कर्म के बल पर प्राणी इन्द्र, ब्रह्मपुत्र, हरिदास बन सकता है, वह स्वकर्म से सालोक्यादि मुक्तिचतुष्टय, सर्वसिद्धत्व तथा अमरत्व को भी प्राप्त कर सकता है।

अमेरिका, लंदन, अरब अन्य देशो में भी कर्म पर विश्वास किया जाता है, लेकिन भारत जैसा नहीं, क्योंकि भारत में कर्म को धार्मिक दृष्टि के अनुसार जन्मान्तर से सम्बन्धित माना गया है। इस्लाम धर्म में भी कर्म के बल पर स्वर्ग और नरक की प्राप्ति माना गया है, लेकिन वह पुनर्जन्म में विश्वास नहीं करता। माया में ब्रह्मसत्ता का विभिन्न विकास ही सत्त्व, रज और तमोगुण कहा जाता है। इस जगत् की परिणति जिस रूप से नियमित हो रही है, उसके युक्ति-युक्त विचार करने पर नाम, चाहे जो भी हो, ईश्वर चेतन के अस्तित्त्व को स्वीकार अवश्य करना पड़ता है। जिस प्रकार वृक्ष के कडुवे या मीठे फल का कारण बीज है, पर जल के बिना बीज अंकुरित होकर वृक्ष और फल रूप में परिणत नहीं हो सकता, इसलिए बीज भी जल की अपेक्षा करता है, वैसे ही कर्म के अनुसार सुख, दुःख स्वरूप फल होते है, पर कर्म की शक्ति ईश्वर सत्ता के प्रभाव के बिना फल देने में समर्थ नहीं होती।

अनादि सृष्टि के सम्बन्ध में शास्त्र का यह सिद्धान्त ही मनुष्य बुद्धि में संगत प्रतीत होता है। 'धाता यथापूर्वमकल्पयत' पूर्व-पूर्व कल्प के अनुरूप ईश्वर पुनः सृष्टि करते हैं। हम जो लोगों को कुकर्म व सत्कर्म प्रवृत्त देखते हैं, वह लोगों का केवल मात्र इस जन्म में की गई इच्छा का उच्छ्वास नहीं है, उनके पूर्व जन्मों के संस्कारों के अनुरूप प्रवृत्ति ही इस जन्म में सत् या असत् कार्यक्षेत्र में प्रेरणा करती है।

❖

PR-82

मण्डन-सुरेश्वर का पार्थक्य

डॉ. उदयनाथ झा अशोक, पुरी

भारतीय परम्परा और कुछ साक्ष्य के आधार पर यह कहा जाता है कि मण्डनमिश्र का शङ्कराचार्य के साथ शास्त्रार्थ हुआ था, जिसमें मण्डनमिश्र पराजित हुए थे। पूर्व शर्त के आधार पर पराजित होने के कारण मण्डन संन्यास ग्रहण कर लिये, शंकराचार्य का शिष्यत्व ग्रहण कर लिये तथा तबसे उनका नाम सुरेश्वर या सुरेश्वराचार्य हो गया। परन्तु क्या यह सही है? इसी विषय को लेकर यह शोध प्रबन्ध प्रस्तुत है।

अद्वैत वेदान्त और शंकरशिष्य-परम्परा में कुछ ही ऐसे ग्रन्थ हैं, जिनमें इन दोनों के शास्त्रार्थ की बात कही गई है। जैसे—माधवाचार्य, चित्सुखाचार्य, जयमङ्गलाचार्य और आनन्दगिरि के क्रमशः शंकर-दिग्विजय, बृहच्छंकरविजय, संक्षिप्तशंकरदिग्विजय और शंकरविजय। इनमें भी बाद के आचार्य मात्र माधावाचार्य की बातों को ही आगे बढाये हैं अथवा उन्हीं के आधार पर ये लोग इस प्रसङ्ग में कुछ लिखे हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि मण्डन और सुरेश्वर दोनों अभिन्न होते, तो नैष्कर्म्यसिद्धि एवं बृहदारण्यकभाष्यवार्तिक में, उस प्रसंख्यान की सुरेश्वर इतनी तीव्र आलोचना न करते, जिस पर मण्डन मिश्र ज्ञान के विना अविद्या के ध्वस्त न होने पर बल दिया है। ज्ञान प्राप्ति के बाद भी पूर्व कर्मसंस्कार के विनाश के लिए जिस उपासना की मण्डन ने आवश्यकता बतायी है, सुरेश्वर के लिए वही आलोचना का विषय रहा है। आलोचना करना और आद्य अपमान्य को गाली देना अथवा पण्डितमान्य कहना दोनों दो विषय हैं। इस ज्ञान-कर्म-समुच्चयवशाश्वत महत्त्व ने आलोचना की है, सुरेश्वर ने कटु आपत्ति उठायी है, उसी को मण्डनमिश्र ने स्वीकार किी क्षमता ही बात संन्यास की, तो जहाँ शंकर ने विना संन्यास ग्रहण किए मुक्ति प्राप्ति को असम्भव कहा है, वहीं मण्डन ने विना संन्यास से मुक्ति मिलने को सिद्ध कर दिखाया है। जहाँ मण्डन जीवनमुक्ति की वास्तविकता को स्वीकार नहीं करते, वहीं शंकर और सुरेश्वर दोनों ने ही जीवनमुक्ति को भी मुक्ति ही माना है। इतना ही नहीं, मण्डन के अनुसार जहाँ महावाक्यों के द्वारा साक्षात् ब्रह्मज्ञान की शंकर ने जमकर आलोचना की है, उसी स्फोटवाद को स्वीकार करते हुए मण्डन ने स्फोटसिद्धि ग्रन्थ की ही रचना कर डाली है।

इन सबसे यही सिद्ध होता है कि मण्डन और सुरेश्वर न तो एक हैं और न ही वे शंकराचार्य के शिष्य हुए।

❖

PR-83

मधुसूदन सरस्वती के दर्शन में 'अविद्या'

सुश्री सरिता शुक्ला, वाराणसी

वेदान्त दर्शन की अद्वैत विचारधारा को एक सुदृढ़ और नवीन गति देने वाले मधुसूदन सरस्वती का नाम अद्वैत-वेदान्त में अत्यधिक विख्यात है। उनके प्रमुख ग्रन्थों में वेदान्तकल्पलतिका, सिद्धान्तबिन्दु अद्वैतसिद्धि, अद्वैतमञ्जरी आदि उल्लेखनीय हैं।

सत्य एक ही है और वह ब्रह्म है इस तथ्य की स्थापना के लिए अद्वैतवादी विचारधारा में ब्रह्मभिन्न सम्पूर्ण प्रपञ्च की सत्ता को प्रातीतिक या भ्रमजन्य सिद्ध किया गया है। इसी कारण जगत् को भ्रमजन्य तथा अज्ञान अथवा अविद्या से उत्पन्न माना गया है।

मधुसूदन सरस्वती ने अविद्या की भावरूपता को सिद्ध करते हुए कहा है कि अभाव से विलक्षण होना ही भावरूप होना है।

अविद्या को भावरूप कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि वह परमार्थ सत् है; क्योंकि यदि अज्ञान को परमार्थ सत् स्वीकार किया जाये, तो अद्वैत के मूल पर प्रहार होगा; जबकि दो परमार्थ सत्ताएँ होगी— अविद्या और ब्रह्म। अतः अज्ञान को भावरूप कहने का तात्पर्य है, उसकी उपस्थिति को स्वीकार करना।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनादि व भावरूप होते हुए भी ज्ञान से निवृत्त होने के योग्य होना ही अविद्या का प्रधान लक्षण है। अविद्या का आश्रय और विषय ब्रह्म है। जिस प्रकार दर्पण का मुख से ही सम्बन्ध होने पर भी दर्पणगत मालिन्य या अन्य कोई दोष उसमें पड़ने वाले प्रतिमुख में ही आता है, उसी प्रकार अविद्या ब्रह्माश्रित है, परन्तु उसका प्रभाव अल्पज्ञत्व, असर्वज्ञत्वादि रूप से प्रतिबिम्बभूत जीव में ही पड़ता है, बिम्बभूत ब्रह्म में नहीं।

❖

PR-84

कठोपनिषद् का श्रीमद्भगवद्गीता पर प्रभाव

शिव कुमार त्रिपाठी, रायपुर

उपनिषद् एवं श्रीमद्भगवद्गीता में ब्रह्म के सम्बन्ध में गूढ़ रहस्यों को सूत्रात्मक रूप में समझाया गया है। फिर भी इनके रहस्यों को समझना बहुत कठिन है। कठोपनिषद् में यमराज द्वारा नचिकेता को ब्रह्मतत्त्व के रहस्य को समझाया गया है और गीता स्वयमेव ब्रह्मविद्या का शास्त्र है। अतः कठोपनिषद् का गीता पर प्रभाव के सम्बन्ध में तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। यद्यपि उपनिषद् वैदिक संस्कृत में और गीता लौकिक संस्कृत में होने के बावजूद भी दोनों की शैली भिन्न होने के बावजूद भी दोनों के भाव एक ही हैं, यह इसकी विशेषता है। विषय की दृष्टि से इनका संक्षिप्त विवरण दिया गया है।

मन्त्रों एवं श्लोको का भाव एक ही है, इस विषय की विवेचना मुख्य आलेख में की गयी है।

❖

PR-85

स्वाध्याय : योगसूत्रों के आलोक में

डॉ. कञ्चन माला पण्डित, बिहार

'स्वाध्याय' शब्द का अर्थ, उसकी साधना एवं प्राप्ति को निम्न पाँच बिन्दुओं के प्रकाश में देखा-समझा जा सकता है—

1. शास्त्रों का अध्ययन, 2. अपने व्यक्तित्व का अध्ययन, 3. किसी पवित्र मंत्र का जप, 4. कोई विशिष्ट ध्यान-विधि, 5. इष्ट देवता की प्राप्ति।

'योगसूत्र' हर दृष्टिकोण से एक पूर्ण शास्त्र है। महर्षि पतञ्जलि ने इस सूत्रों द्वारा मानव को (अमूल्य) सर्वांगीण विकास का सोपान दिखाया है। यम, नियम आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि ये आठ योग के अंग है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान ये क्रियायोग है। अन्तःशुचिता, सन्तोष, तपस्या, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान ये नियम कहलाते है। अतः देखते हैं कि नियम के अन्तर्गत स्वाध्याय आता है।

स्वाध्याय अर्थात् श्रद्धापूर्वक मन्त्र साधन करने से इष्टदेवतासम्प्रयोगः सम्भव होता है। साधक को एक दिव्य मानव, शब्द-स्पन्दन या प्रकाश के रूप में अपने इष्ट देवता का दर्शन होता है।

स्वाध्याय से ही मनुष्य अपने व्यक्तित्व का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन करता है। अपने आप को समझ पाता है। स्वाध्याय का शाश्वत महत्त्व हैं। इनका अनुपालन कर हम सभी दुरूह आध्यात्मिक मार्ग पर दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ने की क्षमता रखते हैं।

❖

PR-86

योगवासिष्ठ में जीवन्मुक्ति

प्रो॰ उमेश चन्द्र दुबे, मनोज कुमार तिवारी, वाराणसी

योगवासिष्ठ के अध्येता एवं मननकर्ताओं से यह बात छिपी नहीं है कि यह ग्रन्थ भारत ही नहीं, विश्वसाहित्य में ज्ञानात्मक, सूक्ष्मविचार-तत्त्वनिरूपक तथा श्रेष्ठ सदुक्तिपूर्ण ग्रन्थों में सर्वश्रेष्ठ है। यह महारामायण, आर्यरामायण, वसिष्ठरामायण, ज्ञानवासिष्ठ और वासिष्ठ आदि अनेक नामों से विख्यात है। स्वयं गुरु वसिष्ठ ने कहा है कि 'संसार-सर्प के विष से विकल तथा विषयविषूचिका से पीड़ित मृतप्राय प्राणियों के लिए योगवासिष्ठ परम पवित्र अमोघ गारूड़-मन्त्र है। इसे सुन लेने पर जीवन्मुक्ति सुख का अनुभव होता है।

दुःसहा रामः संसारविषावेशविषूचिका।
योगारूढ़मन्त्रेण पावनेन प्रशाम्यति॥ (योगवासिष्ठ 2।12।10)

जीवन्मुक्तत्वमस्मिंस्तु श्रुते समनुभूयते।
स्वयमेव यथा पीते नीरोगत्वं वरौषधे॥ (वही 3।8।15)

मुक्ति का अर्थ है—मन से मुक्त होना। अतः जीवन्मुक्ति का अर्थ है—इस जीवन में मन से मुक्त हो जाना। योगवासिष्ठ के अनुसार जीवित पुरुषों के जीवन की वह अवस्था जिसमें वासनाओं का सर्वथा क्षय हो जाता है, जीवन्मुक्ति कहलाती है (3।22।8)। जीवन्मुक्त योगवासिष्ठ का अपना विशिष्ट शब्द हैं। इसके लक्षण इस ग्रन्थ में इतनी स्पष्टता से वर्णित है कि उनको समझने समझाने के लिए किसी भी प्रकार की विशेष व्याख्या की अपेक्षा नहीं है। योगवासिष्ठ के जीवन्मुक्ति के स्वरूप की तुलना श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित स्थितप्रज्ञ से की जा सकती है। प्रत्येक व्यक्ति जीवन्मुक्त हो सकता है। जीवन्मुक्त का जीवन ही दिव्य जीवन है।

प्रस्तुत शोध-पत्र में इन्हीं तथ्यों को स्पष्टतया प्रतिपादित किया गया है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-87

मूल्य (पुरुषार्थ) सिद्धान्त : एक अनुशीलन

डॉ० प्रमोद कुमार सिंह, वाराणसी

कुछ सवाल ऐसे होते हैं कि अनेकों बार उठाये जाने तथा विवेचित होने पर भी अपना महत्त्व नहीं खोते हैं। उदाहरणार्थ मानव जीवन का लक्ष्य क्या है अथवा परम पुरुषार्थ क्या है? यह इसी प्रकार का एक चिरजीवी प्रश्न है। प्रस्तुत निबन्ध का उद्देश्य मूल्य (पुरुषार्थ) सिद्धान्त का विवरण प्रस्तुत करना नहीं है अपितु उसका विश्लेषण एवं विवेचन कर उसकी उपादेयता एवं जीवन के सभी अनुभागों में उसकी प्रासंगिकता को दर्शाना है। अंग्रेजी के 'वैल्यू' (value) शब्द के हिन्दी रूपान्तर के रूप में 'मूल्य' शब्द का प्रचलन हो रहा है; किन्तु संस्कृत भाषा का 'पुरुषार्थ' शब्द जो हिन्दी में भी पहले से ही प्रचलित है, उसी अर्थ का द्योतक है। पुरुष (मनुष्य) का जो 'अर्थ' अर्थात् प्राप्तव्य है—जैसे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि वही पुरुषार्थ कहलाता है। अतः पुरुषार्थ शब्द का प्राथमिक अर्थ मनुष्य का प्राप्तव्य है।

❖

PR-88

नन्दीसूत्र : एक ज्ञानमीमांसीय अध्ययन

श्री राघवेन्द्र पाण्डेय, वाराणसी

अज्ञान का पूर्ण अभाव ही ज्ञान है। प्राचीन भारतीय दार्शनिक परम्पराओं में ज्ञान को मोक्ष का साधन बताया गया है। वेद, उपनिषद, महाभारत, गीता आदि सभी में ज्ञान के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है।

संसार में ज्ञान से बढ़कर कोई दूसरी वस्तु सुखकारक नहीं है। ज्ञान ही सर्वाधिक पवित्र, प्रकाशक एवं मार्गदर्शक है। सामान्य रूप से किसी वस्तु की अभिव्यक्ति को ज्ञान कहते हैं। जिस प्रकार दीपक वस्तुओं को प्रकाशित करता है उसी प्रकार ज्ञान विषयों को प्रकाशित करता है। जैन-मान्यतानुसार ज्ञान जीव या आत्मा का लक्षण है। यह आत्मस्वरूप है जिससे वह 'स्व' और 'पर' दोनों को जानने में समर्थ है। ज्ञान स्वयं को प्रकाशित करते हुए दूसरे पदार्थों को भी प्रकाशित करता है। वह दीपक की भाँति 'स्व'-'पर' प्रकाशक है।

नन्दीसूत्र ज्ञानमीमांसा का अधिकृत सूत्रग्रन्थ है। अन्य आगमों में यत्र-तत्र ज्ञानमीमांसा का प्रकरण उपलब्ध है; किन्तु नन्दीसूत्र में उसका सर्वाङ्गीण विवेचन किया गया है। इसमें पञ्चज्ञान का विस्तार से वर्णन किया गया है। देववाचक विरचित इस सूत्रग्रन्थ में 'नन्दी' शब्द को आचार्यों ने ज्ञान का ही पर्याय माना है। सूत्रकार ने मङ्गलाचरण से ग्रन्थ का आरम्भ किया है। तदनन्तर सूत्र के मूल विषय अभिनिबोधिक आदि पाँच प्रकार के ज्ञान की चर्चा की गई है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस सूत्र ग्रन्थ की रचना गद्य एवं पद्य दोनों में है, कहा गया 'पढमं नाणं तओ दया' अर्थात् दया की अपेक्षा ज्ञान का महत्त्व अधिक है। अतः ज्ञानमीमांसीय विस्तृत चर्चा के कारण नन्दीसूत्र की विशिष्टता सहज ही ज्ञात हो सकती है।

❖

PR-89

गीता में कर्मवाद

सत्येन्द्र कुमार सिंह, छपरा

भारतीय दर्शन जगत् में कर्म को सही अर्थ में नहीं समझा जाता और गलत व्याख्या से उसका मूल रूप ही विद्रूप हो जाता है। भारतीय विचारधारा प्रभाव से ही कर्मवाद की प्रबल समर्थक रही है। सामान्य दृष्टि से कर्म के तीन रूप माने जाते हैं—1. सञ्चित कर्म, 2. प्रारब्ध कर्म एवं 3. क्रियमाण कर्म।

1. अतीत में जो कर्म किये गये हों, वे खत्म नहीं होते, उनका प्रभाव जमा हो जाता है यही जमा हुए कर्म सञ्चित कहलाते हैं एवं उनका फल अभी शेष है; फल मिलना आरम्भ नहीं हुआ है। 2. अतीत के कर्म जिनका फलारम्भ हो चुका है, प्रारब्ध कर्म हैं एवं 3. वर्तमान में किया जाने वाला कर्म क्रियमाण है और ये सञ्चित एवं प्रारब्ध का रूप ग्रहण करेंगे। शङ्कराचार्य का मत है कि पुनर्जन्म का आधार भी कर्म ही है—

'फलस्य वा पूर्वावस्था पूर्वं नामास्तीति तर्क्यते' (शाङ्करभाष्य 3।2।40)

भारतीयों का भाग्यवाद भी अपने मूल रूप में कर्मवाद पर आधारित है। भाग्य व्यक्ति द्वारा पूर्व जन्म में अर्जित कर्मों का ही फल होता है। व्यक्ति अपने पूर्व जन्म के कर्मों का फल ही नहीं भोगता, वह अपने नये कर्मों के द्वारा अपने भविष्य या भाग्य का निर्माण भी करता है। अतः कर्मवाद आधारित भाग्यवाद निठल्लावाद नहीं है।

❖

PR-90

कर्मवाद एवं आत्मतत्त्व

डॉ० सिद्धार्थ शंकर सिंह, छपरा

ईश्वर की व्यापकता एवं निष्काम कर्म का समूल मन्त्र ही ईशोपनिषद् में समाहित कर दिया गया है। गीता के सम्पूर्ण निष्काम योग या ज्ञान-योग एवं भक्ति-योग का निचोड़ ईशोपनिषद् है। जिससे मनुष्य को आत्यन्तिक शान्ति प्राप्त होती है। इस सर्वमान्य सत्य को दुनिया के सभी चिन्तक मानते हैं। शान्ति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए अनन्त की सत्ता में जाना ही होगा। इस सत्य का मार्ग भिन्न-भिन्न होने पर भी ईश्वरार्पण का कोई विकल्प नहीं है। सभी कुछ ईश के हैं और हम भी ईश्वर के हैं। पुनः अतिक्रमण, आक्रमण, आक्रोश इनका अस्तित्व ही शेष नहीं रहता। ईश-प्राप्ति होने मात्र से ही सब कुछ अपना हो जाता है। इसे आज के सांसारिक प्रयोगशाला में बुद्ध, विवेकानन्द, गाँधी, तिलक, विनोवा आदि महर्षियों ने सफलतापूर्वक अपना कर अपना जीवन धन्य बनाया है। आधुनिक सन्दर्भ में कर्म एवं त्याग की इस धारणा पर प्रगतिशील माननीय श्रीमती सोनिया गाँधी का उल्लेख न किया जाना युक्ति संगत नहीं है। भारत-भू के वायुमण्डल में ही कर्म एवं त्याग का दर्शन मिश्रित है, जरुरत है पहल की। प्रस्तुत शोध-निबन्ध में कर्मवाद एवं आत्मतत्त्व पर गहन-विमर्श ईशोपनिषद के आलोक में किया गया है।

❖

PR-91

बाणकालिक भारत में मन्त्रिपरिषद्

डॉ० कादम्बरी शर्मा, रायपुर

महाकवि बाणभट्ट की दोनों कृतियों में से हर्षचरितम् में हमें तात्कालिक भारतवर्ष की राजनैतिक व्यवस्था का चित्रण अधिक मिलता है। शासन संचालन में राजा का मन्त्रिमण्डल उसकी सहायता करता था, जिसका लाक्षणिक नाम अमात्य-परिषद या मन्त्रिपरिषद् था।

मन्त्रिपरिषद् नामक प्रस्तुत विशद आलेख में इसका ही विस्तृत वर्णन है। राजा तथा मन्त्री प्रमुख अर्थात् प्रधान अमात्य के पारस्परिक सम्बन्धों के साथ मन्त्रिपरिषद् की प्रधानता का भी उल्लेख किया गया है। इस मन्त्रिपरिषद् के गठन में मन्त्रियों की नियुक्ति की प्रक्रिया को भी प्रकाशित किया गया है, यद्यपि उस समय वह वंश-परम्परा पर आधारित थी, तथापि योग्यता को भी उतना ही महत्त्व दिया जाता था। तदनन्तर मन्त्रिपरिषद् के कार्य तथा उसके बहुविध कर्त्तव्य तथा दायित्वों को प्रतिपादित किया गया है। यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि यह मन्त्रिमण्डल एक तरह से प्रजातन्त्रीय तत्त्व थे जो राजा के स्वेच्छाचरण पर एक बड़ी रोक प्रमाणित होते थे।

मन्त्रिपरिषद् के सदस्यों के सामूहिक प्रयत्न, सामाजिक कार्य तथा समाज हित में किए गए दायित्वों का उल्लेख किया गया है। मन्त्रिपरिषद् में सर्वप्रथम प्रधानमन्त्री को विशेषाधिकार प्राप्त था, जिसे इस रूप में बताया गया है कि यह अवश्य ही विशेष योग्यता वाले व्यक्ति के रूप में होगा। तत्पश्चात् वैदेशिक मन्त्री का स्थान आता है जिसका स्वरूप आज की राजनीतिक व्यवस्था से मिलता जुलता है। न्याय-मन्त्री का पद भी इतना ही महत्त्वपूर्ण है। यह तथ्य विशेष रूप से ध्यातव्य है कि न्याय के इस विभाग में राजा का लेश-भाग हस्तक्षेप नहीं था, विशेष अवसरों की बात और ही है। राजस्व मन्त्री, शासन संचालन में अर्थ पक्ष को मजबूत करता था। सचिवालय तथा राजकीय विभाग को भी विशेष महत्त्व प्राप्त था। इसके अतिरिक्त भी अन्य अधिकारियों तथा व्यवस्थापकों की नियुक्तियों को दर्शाया गया है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्तुतः राजनीति हर समय एक ऐसा विषय रहा है जिस पर अधिक से अधिक लिखा गया है, इसी राजनीति की रीढ़ है, इसे सञ्चालित करने वाला संगठन अर्थात मन्त्रिपरिषद्। बाण के समय (वर्धन काल) में मन्त्रिमण्डल का जैसा स्वरूप महाकवि ने बताया है, उसे अधिक सरल व सहज रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास इस आलेख में किया गया है।

❖

PR-92

सांख्य का द्वैतवाद

डॉ. सत्येदव मिश्र, वाराणसी

भारतवर्ष में सुसम्बद्ध और व्यवस्थित दर्शन का रूप प्रदान करने का श्रेय प्रथमतः सांख्य को दिया जाता है। सांख्यदर्शन द्वैतमत का प्रतिपादक है, जिसके अनुसार प्रकृति और पुरुष दो ही मूल तत्त्व हैं। इन्हीं के परस्पर सम्बन्ध से जगत् का आविर्भाव होता है। इनमें प्रकृति ही सृष्टि का मूल तत्त्व है, इसे जगत् के आद्य कारण के रूप में स्वीकार किया जाता है। अतीन्द्रिय होने से प्रकृति का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होता, उसके कार्यों से ही उसका कारण रूप में अनुमान किया जाता है। यह जड़ और अचेतन है। प्रकृति विवेकशून्य, स्वतन्त्र, नित्य, एक, व्यापक, सामान्य या अनेक पुरुष भोग्य तथा प्रसवधर्मिणी है। सांख्य द्वारा अभिमत दूसरा स्वतन्त्र तत्त्व पुरुष है। पुरुष कूटस्थ, नित्य, निरवयव, असङ्ग, अपरिणामी और विभु तत्त्व है। वह शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि और अहङ्कार से विलक्षण या भिन्न है। पुरुष चेतन तथा निष्क्रिय है। वह विषयि, ज्ञाता अनुभविता है। पुरुष स्वतः सिद्ध और स्वप्रकाश है। प्रकृति सृष्टि का उपादान कारण है। उत्पत्ति के पूर्व सम्पूर्ण सृष्टि प्रकृति के अन्दर अव्यक्त रूप में विद्यमान रहती है। सृष्टि कोई नवीन उत्पत्ति नहीं है और न ही प्रलय सृष्टि का विनाश। सृष्टि कार्य-समूह का आविर्भाव और प्रलय उसका तिरोभाव मात्र है। सृष्टि प्रकृति का विकार या परिणाम है, यही सिद्धान्त सांख्य का 'प्रकृति-परिणामवाद' कहलाता है। पुरुष, प्रकृति-पुरुष के भेद-रूप ज्ञान के अभाव में अविद्या या अज्ञान के कारण नाना प्रकार की योनियों को धारण करके अनेक प्रकार के लोकों में शुभाशुभ कर्मों को करता एवं तदनुसार फलों का उपभोग करता हुआ संसरण करता रहता है। प्रकृति-पुरुष के भेद अर्थात् सत्त्वपुरुषान्यताख्याति का ग्रहण होने से पुरुष को 'कैवल्य' की प्राप्ति होती है और इस प्रकार सृष्टि का प्रयोजन पूर्ण होता है।

❖

PR-93

कुलार्णवतन्त्र में गुरु एवं शिष्य का स्वरूप लक्षण

डॉ. रवि कुमार मिश्र, वाराणसी

'कुलार्णव' तन्त्र-शास्त्र एवं कौल-सम्प्रदाय का एक प्रमुख तन्त्र ग्रन्थ है। अपनी श्रेणी के ग्रन्थों में इस तन्त्र की बड़ी ख्याति है और इसीलिए इसे सतत प्रमाणरूप से उद्धृत किया जाता रहा है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक समय जब देवों के देव जगद्गुरु परानन्द परमेश्वर भगवान् शङ्कर कैलास-पर्वत के शिखर पर बैठे थे तब श्रीदेवी पार्वती ने उनसे पूछा कि हे प्रभो! जीवों के मोक्ष का क्या उपाय है? इस प्रकार के अनेक प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करते हुए जगज्जननी माँ पार्वती ने जब गुरु एवं शिष्य के स्वरूप तथा उनके लक्षणों को सुनने एवं जानने की इच्छा प्रकट की, तब भगवान शङ्कर ने प्रसन्न होकर गुरु के सन्दर्भ में इस प्रकार कहा—

हे परमेशानि! शुद्धवेशधारी, मनोहर, सर्वलक्षणसम्पन्न, सर्वाङ्गपूर्ण, सभी आगमों के तत्त्वार्थ के ज्ञाता, सभी मन्त्रों के विधानों के ज्ञाता, लोक को सम्मोहित करने वाले, देवस्वरूप, प्रियदर्शन, सुमुख, सुलभ, स्वच्छ, भ्रम-संशयनाशक, ऊहापोह के विशेषज्ञ, अन्तर्मुखी होते हुए भी बहिर्दृष्टि रखने वाले, सर्वज्ञ, देश-काल के ज्ञाता, आज्ञा-सिद्ध, त्रिकालज्ञ, निग्रह-अनुग्रह में समर्थ, वेधड़क, बोधक, शान्त, सभी जीवों पर दया करने वाले, जितेन्द्रिय, षड्वर्गों के जय में समर्थ व्यक्ति को गुरु बनाना चाहिए।

शिष्य स्वरूप के सन्दर्भ में भगवान् शिव कहते हैं—हे कुलेशानि! सच्छिष्य शुभ-लक्षणों से युक्त होता है। समाधि-साधनों से युक्त, गुणशील वाले, शुद्ध शरीर एवं वस्त्र वाले, प्राज्ञ, धार्मिक, शुद्धमन, दृढ़व्रती, सदाचारी, श्रद्धा-भक्ति से युक्त, समर्थ, अल्पभोजी, गूढ़चित्त, निःस्वार्थ सेवा करने वाले, विवेकी, वीर, दरिद्रता से रहित मन वाले, सब कार्यों में कुशल, स्वच्छ, सर्वोपकारी, कृतज्ञ, पाप से डरने वाले, साधु-सज्जन से सम्मत, आस्तिक, दानी, सब प्राणियों की भलाई करने वाले, विश्वास और नम्रता से युक्त, धन एवं देह के अवञ्चक, असाध्य को सिद्ध करने वाले, शूर, उत्साह बल से युक्त, अनुकूल कार्य करने वाले, अप्रमादी, बुद्धिमान, प्रिय-सत्य-अल्प और सहर्ष बोलने वाले, दोषमुक्त, एक बार कहे को समझने वाले, चतुर, अपनी प्रशंसा एवं दूसरे की निन्दा से विमुख, सुमुख, जितेन्द्रिय, सन्तुष्ट, धीमान्, ब्रह्मचारी, आधि-व्याधि-चापल्य-दुःख-भ्रान्ति व सन्देह से रहित लक्षणों वाले शिष्य ग्राह्य हैं।

उपरोक्त गुरु एवं शिष्य के जो स्वरूप-लक्षण दर्शाये गये हैं। इनसे इतर अथवा विपरीत स्वरूप वाले व्यक्ति को गुरु एवं शिष्य नहीं बनाना चाहिए। प्रस्तुत शोध-निबन्ध में इन्हीं तथ्यों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

❖

PR-94

वैदिक व्रत और उनका महत्त्व

डॉ० (श्रीमती) प्रवेश सक्सेना, नई दिल्ली

'व्रत' शब्द आजकल निराहार रहने के अर्थ में प्रयुक्त होता है। परन्तु वेदों में 'व्रत' के भीतर बहुत-सी अर्थ छटाएँ निहित हैं। 'उपवास' के अर्थ में व्रत लगभग सभी धर्मों में विद्यमान है। यास्क व्रत को कर्म व नियम का पर्याय लेते हैं। अन्न भी व्रत कहलाता है; क्योंकि वह शरीर को आवृत्त करता है। सायण ने व्रत को यज्ञ से जोड़ा है, तो उवटमहीधर 'सत्य' भाषण का अर्थ 'व्रत' शब्द से लेते

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। व्रत के मूल में आवरण (वृत) वरण (वृ वरणे) तथा वर्तमान (वृत् वर्तने) के भाव समाये हैं। वेद में सभी देवता व्रत (अर्थात् नियम) के अनुसार चलते हैं। अग्नि का एक नाम 'व्रतपति' है। दैवी नियमों में, दिव्य व्रतों में मनुष्य का हस्तक्षेप नहीं हो सकता। परन्तु देवताओं से प्रेरणा लेकर मनुष्य भी 'व्रत' धारण करता है। वरुण 'धृतव्रत' हैं। 'सोम'देव भी व्रत की रक्षा करते हैं। सोम की पावमानी शक्ति भी उसका व्रत है जो उसको धारण करता है वह पूत हो जाता है, आनन्दरस में डूब जाता है। विश्व में विश्वदेव अपने-अपने व्रतों का पालन करते हुए विश्वसंरक्षण करते हैं, वैसे ही मनुष्य को आत्मकल्याण व विश्वकल्याण के लिए व्रत या नियम या अनुशासन को जीवन का अङ्ग बनाना चाहिए। 'व्रत' के मूल में है 'वरणीयता' का भाव। मनुष्य के पास 'वरण' करने का, चुनने का विकल्प है। नैतिक दृष्टि से 'सत्य' सबसे बड़ा व्रत है। अनृत से सत्य की ओर जाने का संकल्प करता है व्यक्ति। कर्म-स्खलन होते हैं। दण्ड, पुरस्कार की व्यवस्था ईश्वर करता है। पारिवारिक व सामाजिक सौख्य के लिए भी 'व्रत-पालन' आवश्यक है।

❖

PR-95

चन्द्रज्ञानागम के मुख्य वर्ण्य विषय : एक समीक्षात्मक परिशीलन

श्री विनय प्रकाश मिश्र, सुलतानपुर

कामिक से लेकर वातुल पर्यन्त अट्ठाइस आगम सिद्धान्त-शास्त्र के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें दस आगम शिव के द्वारा और अठारह आगम रुद्र के द्वारा उपदिष्ट हैं। इनमें से प्रस्तुत चन्द्रज्ञानागम का रुद्रागमों में नवाँ स्थान है। इसमें क्रिया और चर्या नामक दो पाद हैं। क्रियापाद में बारह तथा चर्यापाद में आठ पटल हैं। यहाँ देवगुरु बृहस्पति प्रश्नकर्ता हैं और भगवान् अनन्तरुद्र उनके प्रश्नों का उत्तर देते हैं। बृहस्पति कहते हैं कि मैंने चन्द्रज्ञानागम के बहुत से भागों को सुना है। अब आप इस आगम के मोक्षधर्म के प्रतिपादक अंशों को मुझे सुनाइये। इस प्रश्न के उत्तर में अनन्तरुद्र इस आगम के पूरे क्रियापाद में बन्ध और मोक्ष के स्वरूप का और इनके परिहार और प्राप्ति के उपायों का वर्णन किया है। इस प्रकार प्रस्तुत आगम के क्रियापाद में वीरशैव दर्शन का प्रतिपादन कर चर्यापाद में वीरशैव धर्म का स्वरूप निरूपित है।

वीरशैव-धर्म-दर्शन का प्रतिपादन करने वाले सभी ग्रन्थों में वीरशैव धर्म के 'अष्टावरण' और 'पञ्चाचार' इन दो तत्त्वों का तन्त्र-तन्त्र सन्दर्भ के अनुसार प्रतिपादन मिलता है। चन्द्रज्ञानागम में बताया गया है कि समस्त देवगण और यह स्थावर-जंगमात्मक समस्त जगत् शिव के शासन के अनुसार ही प्रवृत्त है। बन्ध और मोक्ष भी उसी के अनुग्रह के अधीन हैं। शिव का यह अनुग्रह 'शाम्भवव्रत' का आचरण करने से प्राप्त होता है। इस शाम्भवव्रत की व्याख्या के रूप में चन्द्रज्ञानागम में अष्टावरण और पञ्चाचार का प्रतिपादन किया गया और यही इसका मुख्य प्रतिपाद्य विषय है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-96

भक्ति एवं मोक्ष

कु० रीना वर्मा, अलीगढ़

भक्ति, ज्ञान और कर्म—ये तीन साधना के बड़े मार्ग हैं। ज्ञान, मानव-जीवन को किसी शुद्ध अद्वैत तत्त्व की ओर खींचता है, तो कर्म, व्यवहार की ओर प्रवृत्त करता है; किन्तु भक्ति का मार्ग ऐसा है जिसमें संसार और परमार्थ की एक साथ मधुर-साधना करना आवश्यक है। माधुर्य भक्ति का प्राण है।

भक्ति शब्द भ्वादिगणीय 'भज सेवायाम्' धातु से स्त्रियांक्तिन् सूत्र से क्तिन् प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है जिसका अर्थ सेवा, उपासना, पूजा एवं श्रद्धा आदि है। इसके अतिरिक्त भक्ति शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। मोक्ष प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन भक्ति ही है। मोक्ष शब्द 'असने' धातु से घञ् प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। सभी कर्मों के आत्यन्तिक क्षय को मोक्ष कहते हैं—'कृत्स्नकर्मक्षयो मोक्षः'। कर्म विघर्षण का सर्वोत्तम उपाय भक्ति है। भक्ति द्वारा समस्त कर्ममल छूटकर आत्मा पवित्र हो जाती है, वह शीघ्र ही कर्मकोशों को जलाकर समाप्त कर देती है। अतः भक्ति सिद्धि से भी श्रेष्ठ है।

भक्ति की शक्ति से समर्थ होकर भक्त दिव्य बन जाता है तथा राग-द्वेष से उपरत हो जाता है। इस प्रकार भक्ति तृप्ति का महासागर, आनन्द की अम्बुधि और रस का समुद्र है। इस महासागर में जिस किसी ने भी प्रवेश किया वह धन्य-धन्य अर्थात् कृत्पुण्य हो गया।

❖

PR-97

श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित जीव की गतियों का स्वरूप

श्री ब्रह्मानन्द पाठक, लखनऊ

भगवान् वासुदेव श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में जीव की तीन गतियों का वर्णन किया है, जो कि त्रिविध गुण के आधार पर मनुष्य की गतियों का स्वरूप निर्धारित किया है।

जिस प्रकार सत्त्वगुण की तात्कालिक वृत्ति के बढ़ने पर मरने वाला और सत्त्वगुण में स्थित रहने वाला मनुष्य प्रथमतः उर्ध्वगति को प्राप्त होता है। उसी प्रकार तमोगुण की तात्कालिक वृत्ति के बढ़ने पर मरने वाला और तमोगुण में स्थित रहने वाला मनुष्य अधोगति को प्राप्त करता है। पुनः जीव रजोगुण की तात्कालिक वृत्ति के बढने पर मरने वाला और रजोगुण में स्थित रहने वाला मनुष्य मध्यमगति को प्राप्त होता है।

इस प्रकार गीता में वर्णित मनुष्य (जीव) की उपरोक्त तीन प्रकार की गतियों का प्रस्तुत निबन्ध-पत्र में विवेचन किया गया है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-98

भारतीय दर्शन के क्षेत्र में मध्य भारत की देन

डॉ० लक्ष्मी शुक्ला, ग्वालियर

साहित्य एवं कला के साथ ही दार्शनिक चिन्तन के क्षेत्र में भारत की हृदयस्थली मध्यभारत (ग्वालियर से लेकर उज्जैन, इन्दौर और आस-पास का सम्पूर्ण प्रक्षेत्र) का योगदान सराहनीय रहा है। मूर्धन्य साहित्यकारों के साथ-साथ दार्शनिक चिन्तन के क्षेत्र में मत्स्येन्द्रनाथ, भर्तृप्रपञ्च, भर्तृहरि, मण्डन मिश्र, उम्बेकाचार्य और भोजदेव जैसे मूर्धन्य विद्वानों ने इस क्षेत्र को महिमामण्डित किया है। जैन, बौद्ध जैसे वैदिकेतर दर्शनों से लेकर योग, मीमांसा और अद्वैतवेदान्त जैसे वैदिक दर्शनों का गढ़ यहाँ रहा है। सोनागिरि, द्रोणगिरि और बावनगजा शीर्षस्थ जैन मुनियों की साधना और चिन्तन के पावन क्षेत्र हैं, तो साँची के स्तूप और भवभूति जैसे महाकवियों के ग्रन्थ बौद्धधर्म एवं दर्शन की कभी बजी दुन्दुभि के प्रमाण हैं।

नाथ-सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक मत्स्येन्द्रनाथ, भर्तृहरि और राजा भोज के प्रसिद्ध ग्रन्थों की रचना उज्जयिनी में हुई। ग्वालियर के निकट जैरासी ग्राम चौरासी सिद्धों की तपस्थली है। आचार्य शङ्कर से पूर्व ब्रह्मसूत्रों पर चिन्तन करने वाले भर्तृप्रपञ्च तथा भर्तृहरि के क्रमशः समुच्चयवाद तथा विवर्त्तवाद का पल्लवन इसी भूमि पर हुआ। भट्टभास्कर भी उज्जैन के निवासी थे। माहिष्मती के निवासी मण्डनमिश्र और उनकी विदुषी पत्नी 'उभयभारती' के नाम विद्वद् समाज में सुपरिचित हैं। मण्डनमिश्र ने अद्वैतवेदान्त के 'नैष्कर्मसिद्धि' नामक ग्रन्थ की रचना की और उपनिषदों पर वार्त्तिकों की।

मीमांसा के विद्वान् उम्बेकाचार्य और भवभूति को अनेक विद्वानों ने एक ही व्यक्ति माना है। उन्होंने मण्डनमिश्र के मीमांसा ग्रन्थ 'भावनाविवेक' पर व्याख्या लिखी थी।

आधुनिक दार्शनिक चिन्तकों में प्रमुख हैं—श्री बिट्ठल बुधकर (ग्वालियर)। आपके एकादश ग्रन्थ उल्लिखित तथा प्राप्य हैं। इनके अतिरिक्त श्रीबालकृष्ण, श्रीबैद्यनाथगाडगिल, श्रीबालशास्त्री गर्दे आदि के नाम दार्शनिक टीकाकारों में प्रमुख हैं। योगिराज शैलेन्द्र शर्मा की गीता की यौगिक व्याख्या 'योगेश्वरी' गत दशाब्दी में लिखी योगविषयक अद्भुत ग्रन्थ है। साथ ही अलभ्य तन्त्र-ग्रन्थों का आकर, तान्त्रिक-शक्तिपीठ, दतिया एक सिद्धक्षेत्र है।

❖

PR-99

शैवमत का स्रोत और विकास

प्रो. रमाशंकर मिश्र, लखनऊ

वैदिक वाङ्मय में ऋग्वेद प्राचीनतम है, जिसमें रुद्र के नाम, स्वरूप और प्रभाव आदि का वर्णन है। इसी ऋग्वैदिक देवता रुद्र को पौराणिक शिव का आदि रूप माना जाता है। ऋग्वेद में रुद्र को मध्यम

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रेणी का देवता माना जाता है। रुद्र की स्तुति में ऋग्वेद में केवल तीन पूर्ण सूक्त कहे गये हैं—प्रथम मण्डल का 114वाँ सूक्त, दूसरे मण्डल का 33वाँ सूक्त और सातवें मण्डल का 46वाँ सूक्त। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के 43वें सूक्त में पहले छः मन्त्रों में रुद्र की स्तुति की गयी है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के 64वें सूक्त में रुद्र और सोम का साथ-साथ स्तवन किया गया है।

उक्त सन्दर्भ से पुष्ट होता है कि ऋग्वेद में शिव का पूर्व स्वरूप रुद्र के रूप में प्रतिष्ठित है। इस समय रुद्र के उग्र और सौम्य रूप विवेचित हैं। सौम्य रूप ही कालान्तर में शिवकल्याण अर्थ में प्रचलित हुआ। यजुर्वेद में रुद्र को शतरुद्रिय, गिरीश, गिरिचर, क्षेत्रपति कहा गया है। अथर्ववेद में रुद्र को नीलशिखण्डिन्, आतङ्ककारी नृपति, विध्वंसक, पशुपति, सहस्राक्ष, भव, शर्व, महादेव, ईशान कहा गया है। 'ताण्ड्यब्राह्मण' में रुद्र को पशुहन्ता, 'तैत्तिरीयब्राह्मण' में घोर, 'शतपथब्राह्मण' में वास्तव्य कहा गया है। इसके पश्चात् 'श्वेताश्वतरोपनिषद्' में रुद्र को ईश, महेश्वर, शिव, ईशान आदि नामों से सम्बोधित किया गया है। श्रौतसूत्रों और धर्मसूत्रों में रुद्र की उपासना का समान स्वरूप दिखायी देता है। पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' में रुद्र की दो उपाधियों—भव और शर्व का उल्लेख मिलता है। 'रामायण' के बालकाण्ड में रुद्र को मानव मात्र का कल्याण करने वाला, जगत् का स्रष्टा और संहारक कहा गया है। 'रामायण' के इसी काण्ड में शिव उपासना सर्वाधिक लोक प्रचलित रूप में हमें दिखायी पड़ती है। पुराण साहित्य में तो शिवोपासना का अति विस्तृत रूप मिलता है। यहाँ विभिन्न कथाओं के माध्यम से शिव के माहात्म्य का वर्णन किया गया है। 'महाभारत' में भी बहुशः स्थानों पर शिव का दार्शनिक और लोकप्रचलित रूप दिखायी पड़ता है। दार्शनिक सिद्धान्तों की दृष्टि से बहुत से आगमिक वाङ्मय में शिव को परमतत्त्व के रूप में विवेचित किया गया है।

❖

PR-100

चाणक्य नीति का उर्दू अनुवाद-अनमोल रत्न

डॉ. ज़फर इफितखार, अलीगढ़

संस्कृत साहित्य अपनी रोचकता, प्रासङ्गिकता तथा उपादेयता के कारण अनुवादों के माध्यम से भाषा की परिधि को लाँघकर शताब्दियों से सहृदयों को रसास्वादन कराता आ रहा है।

संस्कृत साहित्य के नीतिकाव्य/सूक्तिपरक काव्य एक विशिष्ट प्रकार की सुबोध शैली में लिखे गए हैं। नीति सूक्तियों से सम्बन्धित एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का सम्बन्ध चन्द्रगुप्त मौर्य के विख्यात अमात्य चाणक्य के साथ जुड़ा है। इस सूक्ति संग्रह को हम चाणक्य-नीति के नाम से जानते हैं। चाणक्य-नीति विश्व-प्रसिद्ध ग्रन्थ है। विश्व की अधिकांश भाषाओं में इस संस्कृत ग्रन्थ के अनुवाद हुए हैं 1824 ई. में गेलेनास नामक यूनानी संस्कृतज्ञ ने इसका अनुवाद यूनानी भाषा में किया था। इस ग्रन्थ के अन्य अनुवाद तिब्बती, मंगोली, मंचूरी, सिंघली भाषा में भी हुए हैं। भारत के पश्चिम में फारस निवासियों ने 'चाणक्य-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीति' का अनुवाद फारसी में किया था। संस्कृत साहित्य के इतिहासकारों के अनुसार स्पेन के एक विद्वान् ने बारहवीं अथवा तेरहवीं शताब्दी में इस ग्रन्थ का अरबी भाषा में अनुवाद किया था। बेवर महोदय ने इस ग्रन्थ का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया है।

उर्दू भाषा में इस ग्रन्थ का अनुवाद कवि मिर्जा दाऊद बेग चरखारवी ने किया है। इस अनुवाद का प्रकाशन निजामी प्रेस, लखनऊ से 1990 में हुआ है। 'अनमोलरत्न' नामक यह अनुवाद करने में कवि को लगभग बारह वर्ष परिश्रम करना पड़ा था। इस अनुदित ग्रन्थ की समीक्षा करते उर्दू भाषा के प्रख्यात कवि बशीर बद्र ने लिखा है—'चाणक्य के राजनीति के यह श्लोक हमारी ओर आपकी जिन्दगी के रहस्य बन गए हैं। यह राजनैतिक वचन कल तक राजाओं और राजकुमारों के लिए थे; लेकिन जब प्रजा राजा बन चुकी है और राजनीति ने हमारे जीवन में प्रवेश कर लिया है तो यह अनुभव आज भी प्रासंगिक है। प्रत्येक वचन जीवन के अनुभूत सत्यों का सार है'। प्रस्तुत शोध-पत्र में चाणक्य-नीति के उर्दू अनुवाद 'अनमोलरत्न' पर विस्तार से चर्चा की जाएगी।

❖

PR-101

'पुरुषार्थचिन्तामणि' ग्रन्थानुसार एकादशीव्रत-निर्णय

डॉ० मनोज कुमार दूबे, आजमगढ़

हमारे सनातन धर्म में मास में दो पक्ष होते हैं—कृष्णपक्ष एवं शुक्लपक्ष। दोनों पक्षों में पन्द्रह तिथियाँ होती हैं, जिसमें सबसे महत्त्वपूर्ण तिथि एकादशी मानी जाती है। दोनों पक्षों की एकादशी ग्राह्य मानी गयी है। एकादशी दो प्रकार की होती है—स्मार्त एकादशी एवं वैष्णव एकादशी। स्मार्त एकादशी का तात्पर्य गृहस्थ से लिया जाता है और वैष्णव एकादशी से तात्पर्य है—विष्णुमन्त्र दीक्षित एवं संन्यासी भक्तगण। पुनः एकादशी व्रत दो प्रकार से ग्राह्य होती है—1. शुद्धा एकादशी, 2. विद्धा एकादशी।

1. शुद्धा एकादशी द्वादशी तिथि युक्त ग्राह्य होने से शुद्धा एकादशी होती है। एवं 2. अरुणोदय वेध दशमीयुक्त एकादशी विद्धा कहलाती है।

एकादशी व्रत का उपवास भी दो प्रकार का होता है—1. भोजन न करना मात्र और 2. उपवास या व्रतस्वरूप। पहले में पुत्रवाले गृहस्थों का कृष्णपक्ष में भी एकादशी का अधिकार है। दूसरा व्रतस्वरूप उपवास तो सन्तान वाले गृहस्थों को कृष्णपक्ष में नहीं करना चाहिए। परन्तु कुछ आचार्यों के मतानुसार गृहस्थों को केवल शुक्ल पक्ष की एकादशी ही करनी चाहिए। जो मनुष्य आयु, पुत्र एवं मोक्ष की कामना से एकादशी करते हैं उन्हें दोनों एकादशी करनी चाहिए। एकादशी व्रत का अधिकार 8 वर्ष से लेकर 80 वर्ष तक आयु वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को है। स्त्री अपने पति के आज्ञा से व्रत कर सकती है। विधवा को एकादशी व्रत अनिवार्य रूप से करनी चाहिए। एकादशी व्रत न करने पर प्रायश्चित्त करना पड़ता है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-102

हिन्दुओं के विवाह में मेलापक योग का विचार

डॉ० तीर्थनाथ झा, मधुबनी

वर एवं कन्या के विवाह में मेलापक योग के आधार पर ही विवाह होना चाहिए। वैसे वेद के आधार पर चार वर्ण व्यवस्था की गई है—1. ब्राह्मण, 2. क्षत्रिय, 3. वैश्य, 4. शूद्र।

इन चारों वर्णों में विवाह के लिए भिन्न-भिन्न कूट की आवश्यकता होती है। इस प्रसंग में गौतम ऋषि का मत है कि—

'विप्राणां दश कूटं स्यात् क्षत्रियाणां तथाष्टकम्।
वैश्यानामथ षड् भेदं शूद्राणां च चतुष्टयम्।।'

अर्थात् विप्रों के लिए 10, क्षत्रियों के लिए 8, वैश्यों के लिए 6 तथा शूद्रों के 4 कूट होते हैं। वैसे व्यवहार में आठ कूटों का ही विचार सभी वर्णों में किया गया है। आठ कूटों में 36 गुणों के आधार पर एवं 10 कूटों में 55 गुणों के आधार पर विवाह उत्तम होता है।

वैसे मेलापक योग के आधार पर विवाह उत्तम माना जाता है। दम्पत्ति के जन्म या नाम नक्षत्र से सुख, सन्तान के लिए विवाह से पूर्व राशि मिलान करना चाहिये। यदि जन्म नक्षत्र नहीं हो, तब नाम नक्षत्र के आधार पर ही विचार करना चाहिए।

इस मेलापक के आधार पर ही विवाह उत्तम होता है। इस क्रम में आठ कूटों का वर्णन आया है जो निम्न प्रकार है—1. वर्ण कूट, 2. वश्य कूट, 3. तारा कूट, 4. योनि कूट, 5. ग्रह-मैत्री कूट, 6. गण कूट, 7. भकूट विचार, 8. नाड़ी कूट विचार।

उपर्युक्त आठ कूटों के आधार पर विचार करने पर कम से कम 18 गुणों एवं अधिक से अधिक से अधिक 36 गुणों के आधार पर विवाह उत्तम होता है।

❖

PR-103

वर्तमान युग में हठयोग और पातञ्जलयोग की उपादेयता

डॉ० मञ्जुला गुप्ता, दिल्ली

योग भारतीय धर्म साधना का मेरुदण्ड है। भगवद्गीता के अनुसार योग की परिभाषा है—'योगः कर्मसु कौशलम्' (भगवद्गीता 2।50)।

पतञ्जलि ने योग को चित्तवृत्तियों का निरोध कहा है—'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'।

हठयोग : हठयोग का लक्षण शास्त्रकारों के द्वारा इस प्रकार दिया गया है—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हकारः कीर्तितः सूर्यष्ठकारश्चन्द्र उच्यते।
सूर्याचन्द्रमसोर्योगाद् हठयोगो निगद्यते॥ (योगतत्त्वोपनिषद् 21.25)

सूर्य (पिङ्गला नाड़ी अथवा प्राणवायु) को हकार और चन्द्र (इड़ानाड़ी अथवा अपान वायु) को ठकार कहते हैं। इन सूर्य और चन्द्र (अर्थात् पिङ्गला और इडा नाड़ियों में बहने वाले प्राण प्रवाहों अथवा प्राण और अपान वायुओं) के मिलने को हठयोग कहते हैं।

पातञ्जलयोग : अष्टाङ्गयोग के प्रवर्त्तक के रूप में महर्षि पतञ्जलि का नाम अग्रगण्य है। आत्मसाक्षात्कार या कैवल्य प्राप्ति के लिए जिज्ञासु साधकों के मार्गदर्शक के रूप में योगसूत्र एक अद्भुत एवं उत्कृष्ट ग्रन्थ है।

वर्तमान युग में उपादेयता : वर्तमान युग में योग का चिकित्सात्मक महत्त्व दिनोंदिन बढ़ रहा है। योग के अनुसार मन या चित्त की चञ्चलता या अस्थिरता ही रोगों का मूल कारण होता है। योग के अभ्यास प्रथमतः मनुष्य के स्वास्थ्य का संरक्षण एवं शरीर तथा मन में एक विशिष्ट प्रकार का अनुशासन स्थापित करते हैं। इसके अभ्यास से विविध शारीरिक व मानसिक व्याधियों का निराकरण किया जाता है। इसके निरन्तर अभ्यास से कायिक-मानसिक चिकित्सा होते-होते अन्ततः सभी प्रकार के दुःखों से निवृत्ति होने की निश्चित सम्भावना रहती है।

❖

PR-104

ख्याति-विमर्श

डॉ० करुणा अग्रवाल, इलाहाबाद

इस सम्पूर्ण सृष्टि में मानव-शरीर अन्य सभी शरीरों की अपेक्षा श्रेष्ठतम स्वीकार किया जाता है; क्योंकि इसी देह के द्वारा व्यक्ति नारायण का स्वरूप अधिगत करता है। परन्तु आत्मा तो स्वतः सिद्ध है; क्योंकि सभी प्राणियों को अहमस्मि (मैं हूँ) यह प्रतीति होती है। मैं नहीं हूँ (नाहमस्मि) ऐसी प्रतीति नहीं होती है।

किन्हीं दर्शनकारों ने शरीर को ही आत्मा मान लिया कि 'अहमस्मि', 'अहं करोमि' आदि व्यवहार सर्वानुभव सिद्ध है। इस शरीर को अन्नमय कोश भी कहा जाता है; क्योंकि यह आत्मा को आवृत करने वाला पहला कोश या आवरण (ढक्कन) है। परन्तु इस अन्नमयकोश अर्थात् शरीर को आत्मा नहीं माना जा सकता; क्योंकि शरीर उत्पत्ति के पहले भी असत् था और मृत्यु के पश्चात् भी। अतः शुभाशुभ कर्मों का फल कौन भोगेगा तथा शरीर धारण करने का हेतु क्या होगा। अत एव शरीर को आत्मा नहीं कहा जा सकता है।

इन्द्रियों या प्राण क्योंकि चैतन्यरहित हैं अतएव वह भी आत्मा नहीं कहे जा सकते। मन विकारी होता है—काम क्रोधादि वृत्तियों के कारण; क्योंकि यह निश्चित स्वभाव नहीं है। अत एव मन को भी आत्मा नहीं कह सकते। बुद्धि यद्यपि चेतन छाया युक्त है, परन्तु सुषुप्ति की अवस्था (अत्यधिक गहरी नींद) में लय हो जाने के कारण बुद्धि भी आत्मपद वाच्य नहीं है। आनन्दमय कोश को भी आत्मा नहीं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कह सकते; क्योंकि वह भी बुद्धिवृत्ति होने से पुण्यों का उदय होने पर ही सुखाभास कराती है। अतः आनन्दमय कोश भी आत्मा नहीं है।

तब यह आत्मा क्या है? इस प्रश्न का उत्तर बृहदारण्यकोपनिषद् इस तरह देता है कि—यह आत्मतत्त्व सर्वान्तर्यामी है, यह स्वयं अदृष्ट होता हुआ भी सबका द्रष्टा है, स्वयं अश्रुत होता हुआ भी सब कुछ सुनता है।

❖

PR-105

चरकोक्तन्यायः

हंसा महेश कथीरिया, सूरत

स्वास्थ्य सम्बन्धी आयुर्वेद का ग्रन्थ होने पर भी चरकमुनि ने दर्शनशास्त्रों के सिद्धान्त लेकर अपने विषय का प्रतिपादन किया है। जिस प्रकार प्रत्येक दर्शन का भी अपना एक स्वतंत्र प्रसिद्ध विषय होता है, उसी प्रकार आयुर्वेद दर्शन का भी अपना एक स्वतंत्र प्रसिद्ध विषय है।

चरकसंहिता में न्यायशास्त्राभिमत वादविधा का उल्लेख और प्रतिपादन बड़े विस्तार से किया है। (चरकविमानस्थान, अ. 8) 'प्रमाणैः अर्थ परीक्षणं न्यायः' के अनुसार न्याय का अपना मुख्य विषय प्रमाणनिरूपण या प्रमाणविधा है। प्रमाणों में भी अनुमान एवं उसके साथ आत्मा, सुख-दुःख, मोक्ष आदि तत्त्वों तथा प्रामाण्यवाद-वादविधा इन विषयों का चरक ने एक अध्याय के रूप में स्वतंत्र रूप से विशद विवेचन किया है। इसके अतिरिक्त क्रियासिद्धि के सिद्धान्त पर एक युक्तिविशेष को भी प्रमाण माना है,जो अनुभव सिद्ध बुद्धि है और त्रिकालिक ज्ञान में एकता उत्पन्न करनी है।

सामान्यतः किसी भी शास्त्र या ग्रन्थ को समझने के लिए या किसी का वक्तव्य समझने के लिए दो शास्त्र की आवश्यकता है—भाषा के नियम का शास्त्र (व्याकरणशास्त्र) और तर्क के नियम का ज्ञान (यानी न्यायशास्त्र, तर्कशास्त्र)। प्रस्तुत लेख में न्यायदर्शनको आधार बनाकर चरकमुनि ने विषय का प्रतिपादन जिस तरह से किया है, यह बताने का मुख्य प्रयोजन है।

❖

PR-106

शिवमाहात्म्यखण्ड के द्वादश अध्याय और मनुस्मृति के दशम अध्याय में निरूपित वर्णशङ्कर जाति की तुलना

प्रा० जी० एस० बोरीचा, गुजरात

प्राचीन भारतीय समाज रचना का मूलाधार वर्णव्यवस्था है। इस वर्णव्यवस्था का ऋग्वेदादि वैदिक-साहित्य ने भी समर्थन किया है। यह वर्णव्यवस्था गुण एवं कर्मानुसार था। गीता में भी इसका समर्थन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों जातियों के परस्पर व्यभिचार से, अनुचित विवाह से और स्वधर्म के त्याग से वर्णशङ्कर उत्पन्न होता है। इस वर्णशङ्कर जातियों का वर्णन मनुस्मृति एवं सूतसंहिता के शिवमाहात्म्यखण्ड में मिलता है। इन दोंनो ग्रन्थों में वर्णशङ्कर जाति का जो निरूपण किया गया है इसमें जातियों की उत्पात्ति समानरूप से दिखाई गयी है।

❖

PR-107

सांख्य-योग दर्शन में पूर्वोत्तर वैदिककालीन नैतिक सिद्धान्तों का विकास

डा० नीलिमा पाठक, राँची

सांख्ययोग दर्शन में पूर्वोत्तर वैदिककालीन नैतिक सिद्धान्तों के विकास के विवेचन का उद्देश्य है इस तथ्य को प्रकट करना कि नीति के कतिपय स्थायी मूल्यों के होते हुए भी समय-समय पर जीवन की बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार मानव के आचार-विचार में परिवर्तन होता आया है।

सिद्धान्त रूप में वेद को सम्पूर्ण धर्म और नीति का मूल कहा गया है। इसमें संदेह नहीं कि धर्म और नीति के आधारभूत मौलिक तत्त्व वेदों में वर्तमान हैं और प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः उनसे नैतिक विकास का क्रम जोड़ा जा सकता है। ऋषियों ने अपनी उग्र तपस्या, सहज बोध और अनुभव के द्वारा नीति के अनेक मौलिक तत्त्वों जैसे—सत्य, ऋत, धर्म, यज्ञ, तप, व्रतादि का साक्षात्कार किया। उत्तर वैदिक काल के ब्राह्मणग्रन्थों में यद्यपि कर्मकाण्ड की प्रधानता थी तथापि कई महत्वपूर्ण नैतिक कल्पनाओं-संस्थाओं का विकास हुआ। यज्ञ का उद्भव और विकास एक विराट् कल्पना थी तो पितृ-ऋण, ऋषि-ऋण तथा देव-ऋण की कल्पना का भी अपना विशेष महत्व है, जिसके अनुसार प्रत्येक मनुष्य विश्व के प्रति एक निश्चित दायित्व को लेकर उत्पन्न होता है और जिनको पूरा करना उसके लिए अनिवार्य है। पंच महायज्ञों की कल्पना सांस्कृतिक, सामाजिक और सार्वभौम कर्तव्यों के दैनिक अभ्यास के लिए की गई थी। उपनिषत्-काल में नैतिक आचार की दार्शनिक व्याख्याएँ अर्थात् ब्रह्म, आत्मा, कर्म-बन्ध, मोक्षादि के संदर्भ में जीवन-पद्धति का अनुसंधान किया गया। उपनिषत्-काल में नीति के आध्यात्मिक आधार को स्पष्ट किया गया।

सांख्यदर्शन में जैनदर्शन की तरह अर्द्ध-आध्यात्मिक आधार को स्वीकार कर सत्त्व, रज और तम—इन त्रिगुणों के उत्कर्ष के ऊपर नैतिक आचार की विवेचना की गई है। इसी तरह योगदर्शन में आत्मा के स्वतन्त्र अस्तित्व को स्वीकार करते हुए भी चित्त के आधार पर मनुष्य के बौद्धिक और सामाजिक जीवन को व्यवस्थित करने की बात स्वीकारता है।

अतः आधुनिक युग में नैतिक असमंजस, अनास्था और अव्यवस्था का वातावरण सर्वत्र व्याप्त है। प्रस्तुत लघु शोध-निबन्ध इसी पृष्ठभूमि में किया गया एक लघु प्रयास है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-108

आचार्य शङ्कराचार्य के अनुसार अध्यास

देवकुमार यादव, भरवारी

अध्यास शब्द का अर्थ है 'अधिकृत्य आस्ते' अर्थात् जिस वस्तु की प्रतीति हो रही है, वह वहाँ पर नहीं है, किन्तु अन्य एक वस्तु का आलम्बन करके प्रतीत हो रही है। आचार्य शङ्कराचार्य ने अध्यास की परिभाषा देते हुए कहा है कि—'स्मृतिरूपः परत्र पूर्वदृष्टावभासः' अर्थात् स्मर्यमाण के सदृश पूर्वानुभूत अध्यस्त की अन्य में (अधिष्ठान में) प्रतीति अध्यास है। परवर्ती आचार्यो ने अध्यास की परिभाषा भिन्न-भिन्न प्रकार से दी है। जैसे भामतीकार 'अवभासः' तथा रत्नप्रभाकर 'परत्र अवभासः' के रूप में अध्यास की परिभाषा दी; किन्तु आचार्य शङ्कराचार्य की परिभाषा सर्वथा निर्दुष्ट तथा अवभास, पूर्वदृष्ट, परत्र व स्मृतिरूप पद सप्रयोजन हैं। अवभास का विग्रह है 'अवसन्नः भासः इति अवभासः' अथवा 'अवमतः भासः इति अवभासः'। अवभास पद अव उपसर्ग पूर्वक भास् धातु के घञ् प्रत्यय करके निष्पन्न हुआ है। भाववाच्य में धञ् प्रत्यय करने पर भास का अर्थ होगा 'ज्ञान' तथा कर्मवाच्य में अर्थ होगा ज्ञेयवस्तु। इसी दृष्टिकोण से अवभास का अर्थ किया गया—अवसाद अर्थात् बाध। 'अवसादः उच्छेदः' अर्थात्—ज्ञान व ज्ञेय दोनों का बाध। जैसे 'शुक्ताविदं रजतम्' में 'नेदं रजतम्' इस यथार्थ ज्ञान से 'रजतज्ञान' तथा रजतवस्तु (ज्ञेय) दोनों का मिथ्यात्व सिद्ध होने से अनुवृत्ति नहीं होती। इसी प्रकार पूर्वदृष्ट का अर्थ होगा—पूर्वदृष्ट ज्ञेयवस्तु तथा पूर्वदृष्टज्ञान।

अध्यास के लिए पूर्वदर्शन या पूर्वदृष्ट सत्य हो इसका आग्रह नहीं हैं, अपितु उसकी प्रतीतिमात्र की आवश्यकता है—'तस्य च दृष्टत्वमात्रमुपयुज्यते न वस्तु सन्तेति' (भामती)। परत्र पद का अर्थ है, अन्य में अर्थात् अधिष्ठान में—'सत्यानृते मिथुनीकृत्य' के आधार पर यह कथन कि अधिष्ठान अध्यस्त की अपेक्षा सत्य है, युक्त नहीं, क्योंकि 'शुक्ताविदं रजतम्' तथा ब्रह्म की जगद्भ्रम की स्थिति में तो यह सिद्धान्त सम्मत है, किन्तु अन्योन्यास भास के प्रसङ्ग में यह तर्क सङ्गत नहीं है।

यह अध्यास स्वरूपाध्यास तथा संसर्गाध्यास के भेद से दो प्रकार का है। ज्ञान द्वारा बाधयोग्य वस्तु स्वरूपतः अधिष्ठान में अध्यस्त होती है। जैसे दृष्टान्त 'शुक्ताविदं रजतम्' में प्रातिभासिक रजतज्ञान बाध्य है, अतः शुक्ति में स्वरूपतः अध्यस्त है, उसी प्रकार द्राष्टान्तिक में ज्ञानबाध्य देहादि अनात्म वस्तुएँ आत्मा में स्वरूपतः अध्यस्त हैं। बाध के अयोग्य वस्तु का स्वरूपतः अध्यास नहीं हो सकता है। उसका अधिष्ठान के साथ संसर्ग हो सकता है। अतः अनात्मा में आत्मा का संसर्गाध्यास है। संसर्गाध्यास कारणाध्यास तथा धर्मी का अध्यास है।

इस प्रकार लौकिक व वैदिक सकल प्रमाता, प्रमेय, प्रमाण व्यवहार का आधार अनादि, अनन्त, नैसर्गिक, मिथ्याज्ञानरूप और आत्मा में कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि का प्रवर्तक अध्यास सर्वजन प्रत्यक्ष है, तथा अनर्थभूत इस अध्यासनिवृत्ति हेतु ब्रह्मैकत्व ज्ञान प्राप्ति सभी वेदों का आरम्भ है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-109

जीवनव्यवहार में भगवद्गीता

डॉ० प्रा० सौ० निरूपमा कुलकर्णी, नाशिक

1. "कर्मण्येव अधिकारस्ते.....।" जिस गीता वचन की अध्यात्मिक उपयुक्तता कुछ भी हो, किन्तु गीतावचन से जीवन की जो व्यथाएँ हैं, वे निश्चितरूप से कम हो जाती हैं। अपेक्षा ज्यादा रही तो दुःख भी बढ़ जाता है। गीता अपेक्षारहित कर्त्तव्य बताती हैं।

2. "वासांसि जीर्णानि.....।" जिस तत्त्ववचन से शोक की तीव्रता कम हो जाती है। अपना कोई प्रिय व्यक्ति चल बसा तो भी वह व्यक्ति दूसरे शरीर में जीवित है यह तसल्ली तो हो जाती है।

3. "चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं.....।" जातिभेदनिर्मूलन के वास्ते यह वचन अनमोल है। समाज पुरुष के अलग-अलग अवयव ही अलग-अलग जाति श्रेष्ठ है। यह सूचित किया गया है।

4. "अयं आत्मा ब्रह्म.....।" आदि वचनों से इन्सानों में मानवता निर्माण हो सकता है। एक ही ब्रह्मतत्त्व से सभी इन्सानों ने जन्म लिया है, यह बात बन्धुभावना का निर्माण कर सकती है। राष्ट्रीय एकात्मता के लिये यह ब्रह्म कल्पना महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

5. अर्जुन की व्यक्तिगत समस्या का सामान्यीकरण हो गया है। आदमी कई बार उलझन में पड़ जाता है। निर्णय लेने में असमर्थ हो जाता है, तब गीता आदमी में निर्णय-क्षमता निर्माण करती है।

6. भगवद्गीता ने आध्यात्मिकता के माध्यम से व्यवहार सिखा दिया है।

❖

PR-110

याज्ञवल्क्यस्मृति में प्रायश्चित्त विधान

सुश्री श्वेता गुप्ता, हरिद्वार

हमारी आध्यात्मिक संस्कृति में आत्मिक शान्ति एवं सन्तुष्टि का विशेष स्थान रहा है। कभी-कभी मनुष्य ऐसा पापकर्म कर बैठता है, जो उसकी आत्मिक धारणा के विरुद्ध होता है। तत्पश्चात् वह आत्मग्लानि अनुभूत करता है। कोई भी राजदण्ड उसको उस आत्मग्लानि से मुक्त करने में सक्षम नहीं हो पाता। ऐसी स्थिति में आत्मिक शान्ति का एकमात्र उपाय प्रायश्चित्त ही है। महर्षि याज्ञवल्क्य ने अपनी स्मृति में सामाजिक व्यवस्था को सुदृढ़ व शान्तिमय बनाने के लिए प्रायश्चित्त विधान का समावेश किया है।

प्रायश्चित्त पापकर्मों के फल से मुक्ति देता है, परन्तु केवल ऐसे पापकर्मों से जो अज्ञानावस्था में किये जाते हैं। यदि पहले ही यह सोचा जाए कि पापकर्म के पश्चात् प्रायश्चित्त द्वारा फल से मुक्त हो जायेंगे तो ऐसी स्थिति में प्रायश्चित्त करने का विधान नहीं है। जिनको अज्ञानावस्था में करने के पश्चात्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनः न करने का संकल्प लिया जाता है, वे ही प्रायश्चित्त द्वारा दूर होने के योग्य होते हैं। ज्ञानवश किये गये पापकर्म प्रायश्चित्त द्वारा दूर तो नहीं होते, लेकिन मनुष्य अपराधी प्रवृत्तियों से मुक्त हो जाता है। याज्ञवल्क्य ने कहा है, जो पापकर्म अज्ञानवश किया गया होता है, वह प्रायश्चित्त से दूर होता है। जानबूझकर पापकर्म करने पर वह समाप्त तो नहीं होता, किन्तु प्रायश्चित्त के द्वारा जगत् में वह व्यक्ति व्यवहार के योग्य हो जाता है।

अपराध प्रथम बार किंया गया है अथवा पुनः पुनः किया गया है, प्रायश्चित्त की अवधि एवं कठोरता निर्धारण में महर्षि याज्ञवल्क्य ने इसका विशेष ध्यान रखा है। ज्ञान में किये गये पाप के लिए अज्ञान में किये गये पाप की अपेक्षा दूना प्रायश्चित्त करना पड़ता है, किन्तु वही पाप पुनः करने पर अज्ञान में किये गये पाप के प्रायश्चित्त का चौगुना प्रायश्चित्त और करना पड़ता है।

महर्षि याज्ञवल्क्य ने विशिष्ट पापों के लिए विशिष्ट प्रायश्चित्तों का निर्देश किया है। यथा— ब्राह्मण की हत्या करने वाला महापातक सिर की खोपड़ी हाथ में लेकर और दूसरी खोपड़ी को डण्डे के ऊपर बाँधकर, अपने किये हुए कर्म को सबसे बताते हुए अल्प भोजन करते हुए बारह वर्ष व्यतीत करने पर शुद्ध होता है।

प्रस्तुत शोध-पत्र में प्रायश्चित्त विधान की युक्तियुक्त विवेचना की गयी है।

❖

PR-111

धर्मशास्त्रानुसार अभिवादन व्यवस्था

डॉ० (श्रीमती) मीना शुक्ला, राँची

वैदिक-वाङ्मय में जिस आर्य जीवन-दर्शन का संकेत हमें प्राप्त होता है, उसी का व्याख्यानात्मक रूप धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में परिलक्षित होता है। इन ग्रन्थों में व्यक्तियों के आचार और व्यवहार का सांगोपांग विवेचन होता है। जो व्यक्ति आचारानुरूप व्यवहार नहीं करते हैं, उनके लिए प्रायश्चित्त अथवा दण्ड का भी विधान है। सभी व्यक्तियों में पारस्परिक सम्बन्ध-स्थापन के लिए उनमें एक दूसरे के प्रति उचित आदर प्रदान करने हेतु अनेक नियमों का उल्लेख हमें धर्मशास्त्रीय-ग्रन्थों में देखने को मिलता है। इस आदर प्रदान में सबसे महत्त्वपूर्ण विषय है, श्रेष्ठता के अनुरूप एक दूसरे का अभिवादन करना। यह अभिवादन नित्य, नैमित्तिक और काम्य तीनों ही प्रकार का माना गया है। शास्त्रकारों ने अभिवादन की ओर आकर्षित करने के लिए अर्थवाद भी जोड़ दिया है। मनु तो स्पष्ट रूप में कहते हैं कि नित्य अभिवादनशील व्यक्ति की आयु, विद्या, यश और बल की वृद्धि होती है, साथ ही उसे स्वर्ग की भी प्राप्ति होती है।

प्रस्तुत शोध-पत्र में धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों के आलोक में अभिवादन व्यवस्था से सम्बन्धित विविध तथ्यों का तुलनात्मक विवेचन किया गया है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-112

दार्शनिकों की दृष्टि में सांख्यकारिकोक्त सृष्टि का स्वरूप

डॉ. शशिकान्त द्विवेदी, वाराणसी

सर्वतः परिदृश्यमान इस जगत् का कारण कौन-सा तत्त्व है, इसका विवेचन प्रायः सभी दार्शनिकों ने किया है। उपनिषदों में भी यह प्रश्न उठाया गया है कि इस विशाल ब्रह्माण्ड का मूल कारण क्या है? इसके अनेक प्रकार से उत्तर भी तत्-तत् स्थानों पर प्राप्त होते हैं। कहीं काल को, कहीं स्वभाव को, कहीं नियति को, कहीं यदृच्छा को तथा कहीं ईश्वर को इस जगत् कारण माना गया है। ये सभी उत्तर निमित कारण को ध्यान में रख कर दिये गये हैं। जगत् का उपादान कारण भी कोई होगा? जिस तत्त्व से यह जगत् बना है, ऐसी जिज्ञासा होने पर सांख्य और वेदान्त दोनों ही में मतभेद स्पष्ट है। वेदान्त चित्तत्त्व आत्मा को ही इसका निमित्त एवं उपादान उभय कारण सिद्ध करते हैं। सांख्यशास्त्रियों का कहना है कि इस जगत् में चेतन और जड़ दोनों की सत्ता है। एक ओर जहाँ नदी, पर्वत आदि ऐसे जड़ पदार्थ हैं तो दूसरी ओर मनुष्य, पशु, पक्षी ऐसे हैं जो चेतन कहे जाते हैं। समस्या यह है कि जड़ चेतन का कारण है या चेतन जड़ का कारण है? आधुनिक वैज्ञानिक चार्वाकों की तरह जड़ से ही चेतन का विकास मानते हैं, जड़ ही चेतन के रूप में परिणत हो जाता है। वेदान्त का दृष्टिकोण इसके सर्वथा विपरीत है कि निखिल प्रपञ्च का मूल परम चेतन तत्त्व है। जड़ वस्तुतः कोई तत्त्व नहीं है। चेतन का ही नामरूपात्मक विवर्त यह निखिल ब्रह्माण्ड है। सांख्यदर्शन इनसे सहमत नहीं है, इसका कहना है कि जड़ एवं चेतन दोनों ही तत्त्व सर्वथा स्वतन्त्र हैं इनमें से कोई भी दूसरे का कारण या कार्य नहीं हो सकता है। यह निखिल जगत् जड़ होते हुए भी स्वतः क्रियाशील है। चेतन तत्त्व सर्वथा निष्क्रिय है। सम्पूर्ण विश्व का मूल त्रिगुणात्मिका प्रकृति है। सत्त्व, रजस् एवं तमस् नामक गुण ही इस जगत् के उपादान कारण है जो चेतन तत्त्व के संयोग से क्षुब्ध होकर अनेक सजातीय एवं विजातीय तत्त्वों में परिणत हो जाते हैं। प्रस्तुत निबन्ध में सांख्योक्त-सृष्टिवाद का विस्तृत स्वरूप प्रतिपादित है।

❖

PR-113

आधुनिक विश्व-समाज में गीतोक्त 'ज्ञानकर्मसमुच्चय' सिद्धान्त की प्रासंगिकता (काश्मीर शैवदर्शन के आलोक में)

डॉ. चन्द्र कुमार झा, अम्बाला

भारतीय दर्शन की दार्शनिक विचारधारा सुदूर वैदिककाल से श्रुतिमूलक तथा आगममूलक इन दो प्रधान स्रोतों में प्राप्त होती है। इन दोनों स्रोतों के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि निगमाश्रित सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्वमीमांसा तथा उत्तर मीमांसा आदि दार्शनिक प्रस्थानों के विभिन्न पहलुओं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर जहाँ विद्वानों ने यथार्थ प्रकाश डाला है, वहीं आगमाश्रित शैव, शाक्त तथा वैष्णव धाराओं का विपुल साहित्य उपलब्ध होने पर भी उस दिशा में विशेष कार्य नहीं हुआ है। प्रस्तुत व्याख्यान प्रत्यभिज्ञा-दर्शन से सम्बद्ध है, जो परमशिव के स्वरूप को प्रकाशित करने वाला गम्भीर एवं सूक्ष्म चिन्तनप्रसूत दर्शन है। राजानक आनन्दकृत 'आनन्दवर्धिनी' टीका कालक्रम की दृष्टि से अन्य काश्मीरी टीकाओं से परवर्ती है। वस्तुतः आनन्द महान् दार्शनिक तथा शैवदर्शन के अतिरिक्त अन्य शास्त्रों एवं दर्शनों के भी ज्ञाता थे।

श्रीमद्भगवद्गीता काश्मीर शैवदर्शन में एक प्रामाणिक ग्रन्थ के रूप में स्वीकार की गई है। गीता के कृष्ण न वेदान्ती है और न तान्त्रिक; अपितु सभी दर्शनों व धर्मों के सार को लोककल्याणार्थ प्रस्तुत किया है। गीता के दर्शन में व्यावहारिकता है और यह अत्यन्त ज्ञानी तथा साधारण किसी भी पुरुष के द्वारा ग्राह्य एवं अनुकरणीय है। काश्मीर शैव-परम्परा में यह ग्रन्थ मात्र ऐतिहासिक और धार्मिक ही नहीं है, वह चाहे रामकण्ठ की 'सर्वतोभद्र' टीका हो या अभिनवगुप्त कृत 'श्रीमद्भगवद्गीतार्थसंग्रह' टीका या फिर राजानक आनन्द प्रणीत 'आनन्दवर्धिनी' टीका—तीनों ने ही कुरुक्षेत्र युद्ध को सतत प्राणीमात्र में होने वाले देवासुर (धर्म-अधर्म) संग्राम के प्रतीक के रूप में माना है। साथ ही तीनों का मुख्य प्रतिपाद्य 'ज्ञानकर्मसमुच्चय' या ज्ञान-कर्म का सहभाव ही है। क्रिया रहित ज्ञान पंगु है और बिना ज्ञान के कर्म अन्धा है। ज्ञान और क्रिया वस्तुतः एक पारमेश्वरी शक्ति का उत्तरोत्तर विकास है।

❖

PR-114

योगः परमौषधम्

प्रो. महेश कुमार जे. कुथारिया, गुजरात

योगशास्त्र भारतीय संस्कृति की अनुपम देन है। हमारे ऋषि-मुनियों के द्वारा मानव समाज के सुख एवं कल्याण के लिए निर्दिष्ट जीवन की कला का विज्ञान ही योग है।

महर्षि पतंजलि ने 'योग-सूत्र' के माध्यम से अष्टांग योग को वैज्ञानिक स्वरूप देकर मानव समाज की श्रेष्ठतम सेवा की है, जिसको क्रमानुसार अभ्यास करते हुए व्यक्ति सुन्दर स्वास्थ्य एवं ज्ञान की परम श्रेष्ठ स्थिति समाधि (कैवल्य) की अवस्था को प्राप्त करके परम शान्ति का अनुभव करता है।

❖

PR-115

क्या सांख्य-दर्शन का ईश्वरनिरपेक्ष-सृष्टिविचार संतोषजनक है?

डॉ. (श्रीमती) बीना श्रीवास्तव, वाराणसी

पारम्परिक 'कापिल-सांख्य' में जिसका प्रतिनिधित्व ईश्वरकृष्ण की 'सांख्यकारिका' में हुआ है, ईश्वर-तत्त्व की कोई आवश्यकता नहीं मानी गयी है। 'सांख्यसूत्र' में ईश्वर की सिद्धि न हो सकने का उल्लेख

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। अत एव ईश्वर का खण्डन भी किया गया है। 'प्रकृति' एवं 'पुरुष' के संयोग से 'सृष्टि' होती है। 'प्रकृति' के अधिष्ठाता के रूप में ईश्वर सांख्य को अभिमत नहीं है।

'सांख्य-दर्शन' में 'प्रकृति' एवं 'पुरुष' दो विरोधी और स्वतन्त्र तत्त्व के रूप में स्वीकृत है। यहाँ यह प्रश्न स्वाभाविक होता है कि दोनों पृथक् तत्त्व 'प्रकृति' और 'पुरुष' में संयोग कैसे होता है? सांख्य में इस संयोग के स्वरूप को उदाहरणों से स्पष्ट किया गया है।

'सांख्य' में यह बतलाया गया है कि परस्पर पृथक् 'प्रकृति' एवं 'पुरुष' में 'अन्धे' और 'पंगु' व्यक्ति के संयोग के समान ही 'संयोग' होता है। परन्तु उक्त दृष्टान्त दोषत्रय से युक्त है।

सांख्य में यह बतलाया गया है कि जैसे—अचेतन जल या अचेतन वर्षा जगत् के उपकारार्थ कार्य करती है, वह ठीक नहीं है; क्योंकि 'ईश्वर' से अधिष्ठित होने के कारण ही अचेतन जल अथवा अचेतन वर्षा प्राणियों के उपकारार्थ कार्य करती है।

सांख्य द्वारा दिया गया यह दृष्टान्त कि 'बछड़े के पोषणार्थ गाय के थन से दूध प्रस्रवित होता है, वैसे ही पुरुष के मोक्षार्थ प्रकृति सर्जना करती है'—ठीक नहीं है; क्योंकि दृष्टान्त में बछड़ा एवं गाय दोनों ही चेतन है। यह कथन कि जैसे घास (तृण) दूध बन जाती है, तथैव प्रकृति भी रचना करती है उचित नहीं है। सांख्य द्वारा दिया गया नर्तकी का दृष्टान्त भी युक्तिसंगत नहीं है क्योंकि 'दृष्टान्त' में नर्तकी चेतन है, जो पुरुष के प्रयोजन को समझ सकती है, लेकिन दार्ष्टान्त में प्रकृति अचेतन है।

इस प्रकार सांख्य के 'सृष्टि सिद्धान्त' में अनेक जटिलताएँ हैं। इन सभी कठिनाईयों (जटिलताओं) का मुख्य कारण 'प्रकृति' तथा 'पुरुष' दोनों को स्वतन्त्र तत्त्व मानकर, 'ईश्वर' के अधिष्ठातृत्व के बिना ही 'प्रकृति' एवं 'पुरुष' में संयोग की कल्पना करना है।

❖

PR-116

उपनिषदों में मोक्ष का स्वरूप

कु. जीना, चण्डीगढ़

उपनिषदों का प्रतिपाद्य विषय ब्रह्म है। यह ब्रह्मविद्या ही 'मोक्ष' चाहने वाले जिज्ञासु मनुष्यों को ब्रह्म की प्राप्ति कराती है। उपनिषदों को अध्यात्मविद्या भी कहा जाता है। उपनिषदों में ऋषि-मुनियों के साधना की उच्चावस्था के अपने अनुभव निहित हैं। उपनिषदों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उपनिषदों के ऋषि-मुनि किसी नित्यवस्तु की प्राप्ति चाहते थे, जिसे पाने के बाद कुछ पाना बाकी न रहे। अर्थ व काम सम्बन्धी पुरुषार्थ इन्हें सन्तुष्ट नहीं कर पाए, जैसा कि मैत्रेयी और नचिकेता के वृत्तान्त से ज्ञात होता है। नित्यवस्तु की प्राप्ति इन्हें आत्मा के वास्तविक स्वरूप के ज्ञान में प्राप्त हुई।

ऐसे साधक जिन्होंने उपनिषदों का अध्ययन कर ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति कर ली, उनका अज्ञान नष्ट हो जाता है, जीवन के समस्त संशय नष्ट हो जाते हैं और वे आवागमन से मुक्त हो जाते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपनिषदों में 'मोक्ष' के इसी जीवन में प्राप्त होने का भी संकेत मिलता है। 'मोक्ष' की प्राप्ति के लिए किसी विशेष स्थान पर जाने की आवश्यकता नहीं, इसे शरीर के रहते, इस जीवन में भी प्राप्त किया जा सकता है। जैसे बहती हुई नदियाँ समुद्र में मिलकर अपना अस्तित्व खो देती है और समुद्र में ऐकमेक हो जाती है। उसकी प्रकार मुक्तात्मा पुरुष द्वैतभाव से ऊपर उठकर ब्रह्म का साक्षात्कार कर लेता है। जैसे तिलों में तेल, दही में घी, ऊपर से सूखी हुई नदियों के भीतरी स्त्रोतों में जल और अरणियों में अग्नि छिपी रहती है, उसी प्रकार परमात्मा हमारे हृदयरूपी गुहा में छिपे हैं। जो साधक संयमपूर्वक साधना करता हुआ निरन्तर उनका ध्यान करता है उसी के द्वारा वे परमपिता प्राप्त किए जा सकते हैं।

❖

PR-117

हिमाचल लोकजीवन में षोडश संस्कार

डॉ. गोकुल चन्द शर्मा, सोलन

हिमाचल प्रदेश भारत के मुकुट हिमालय का मध्य भाग, मस्तक रूप है। इस प्रदेश के अनेकों स्थल अति प्राचीन समय से जुड़े हुए है। जैसे— मनाली, कूल्लू, चम्बा आदि। इन का प्रागैतिहासिक समय से सम्बन्ध है।

मनु के मानव बनने के लिए अपने मनुस्मृति ग्रन्थ में अनेकों नियम सुझाये हैं। क्योंकि "जन्मना जायते शूद्रः, संस्काराद् द्विजरुच्यते"— इस पाराशर मनन के अनुसार जन्म से सभी बराबर हैं। संस्कार ही पाषाण से मूर्ति और देवत्व प्रदान करता है।

संस्कारों से रहित मानव, मानव नहीं दानव है। उनके द्वारा दानवता आती है। वे संस्कार अनेकों हो सकते हैं, उनमें से सोलह संस्कारों को ही महत्ता दी जाती है। क्योंकि आवागमन करने वाला सूक्ष्म शरीर तथा स्थूल शरीर के मर्मस्थल सोलह ही प्रसिद्ध है।

वर्तमान समय को देखते हुए, मानव को दानवता से बचाने के लिए, संस्कारों की परम आवश्यकता है। उनका प्रचलन जैसे सृष्टि के आदि में हिमाचल से हुआ था वैसे ही आधुनिक अशान्त विश्व के लिए भी। हिमाचल प्रदेश इन संस्कारों का पुनः उपदेश देकर मार्गद्रष्टा बन सकता है।

संस्कारों से पशु भी सभ्य बन जाते हैं, मानव की तो बात ही क्या। इनकी जैसी उपयोगिता भारत में है वैसी पृथ्वी के किसी भाग से मानव को हो सकती है। यही कारण है कि प्राचीन ऋषियों ने इनकी अनिवार्यता दर्शायी है। इसका वर्णन प्रस्तुत शोध-पत्र में किया गया है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-118

कर्म सिद्धान्त एवं नैतिकता

डॉ. रेणु द्विवेदी, वाराणसी

कर्म सिद्धान्त भारतीय धर्मदर्शन के आधारभूत सिद्धान्तों में से एक है, जिसकी मूल मान्यता है— "जैसा कर्म होगा वैसा ही उसका फल होगा"। यह शाश्वत नियम समस्त ब्रह्माण्ड में लागू है। स्पष्टतः इस आधार वाक्य से कि "जैसा कर्म होगा वैसा ही फल होगा' यह भी नियमित होता है कि मनुष्य अपना भाग्य निर्माता स्वयं है"; क्योंकि जैसा वह करेगा वैसा ही फल उसे मिलेगा। निश्चित रूप से इस सिद्धान्त में शुभ कर्म करने का विधान भी सन्निहित है। परन्तु व्यावहारिक जीवन में इस नियम का अपलाप देखने को मिलता है। व्यावहारिक जीवन में कर्म एवं कर्मफल के बीच उस प्रकार की अनिवार्य कार्य-कारणता देखने को नहीं मिलती, जैसा कि भौतिक घटनाओं के बीच देखने को मिलती है। फलतः शुभकर्म करने के विधान की अवहेलना भी स्पष्ट दिखती है जो इस सिद्धान्त के प्रति अनास्था को सूचित करता है।

भारतीय परम्परा में बड़े ही वैज्ञानिक तरीके से कर्म एवं कर्मफल की अनिवार्य कार्य-कारणता को संचित, प्रारब्ध एवं क्रियमाण कर्मों की त्रिपुटी पर आधारित माना है तथा इसके लिए आत्मा की अमरता, ईश्वर के अस्तित्व एवं पुनर्जन्म पर विश्वास को अनिवार्य माना है। इसके आधार पर ही जगत में व्याप्त वैषम्य की भी व्याख्या की जाती है। इसके लिए अनेक सिद्धान्तों की भी स्थापना की गयी है। कर्म एवं कर्मफल भी अनिवार्य कार्य-कारणता को स्पष्ट करने हेतु न्याय-वैशेषिक दर्शन जहाँ 'अदृष्ट' की अवधारणा का अवलम्बन लेता है। वहीं मीमांसक 'अपूर्ण' की अवधारणा के आधार पर कर्म एवं कर्मफल की व्यवस्था करते हैं। योग दर्शन में क्लेश, कर्म, आशय एवं विपाक के आधार पर कर्म एवं कर्मफल की व्यवस्था गयी है। बौद्धों ने अनात्मवाद को स्वीकार करते हुए प्रतीत्यसमुत्पाद के आधार पर कर्म-फल की व्यवस्था की है। यद्यपि गीता का निष्काम कर्मयोग निष्काम कर्म की प्रेरणा देता है परन्तु सामान्यतया 'फल' कर्म का प्रेरक होता है। ऐसी स्थिति में अनिश्चित फलहेतु समान्य जन कर्म में प्रवृत्त नहीं हो पाते। अतः आज वर्तमान परिवेश में आवश्यकता है— 'कर्मवाद' में कुछ ऐसे बिन्दुओं को ढूँढने की जो कर्म एवं कर्मफल की अनिवार्यता को दृढ़ता से प्रतिपादित कर सके।

❖

PR-119

श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्णविषयक सम्बोधनों का विवेचनात्मक अध्ययन

प्रो. राजेश लाल मेहरा, इन्दौर

श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय संस्कृति की अक्षुण्ण निधि है। इससे समस्त शास्त्रों का सार निहित है। इसके ज्ञान-भक्ति-कर्म की त्रिवेणी का अमृत प्रभाव आज तक मानव जाति को सद्प्रेरणा और नैतिक उत्थान का मार्गदर्शन प्रदान करता आया है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीता में श्रीकृष्ण को अनेक अलग-अलग नामों से संबोधित किया है। श्रीकृष्ण के विभिन्न नामों से संबोधनों की व्यक्तिवाचक संज्ञा में प्रत्येक नाम की अपनी एक विशिष्टता है। प्रत्येक संबोधन प्रसंगानुकूल समीचीन एवं विलक्षण अर्थ लिए हुए है। कुछ स्थानों पर एक साथ तीन-तीन नामों से संबोधन है। 'महाबाहो' आदि कुछ संबोधन श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनो के लिए प्रयुक्त हैं।

तत्त्वरूप से एक ही परम सत्ता को भिन्न-भिन्न नामों से संबोधित किया गया है। वह अनन्तरूपों में व्याप्त होने के कारण अनन्तरूप है, सर्वव्यापक होने से विष्णु, चित्त को चलायमान कर देने वाली द्वन्द्वात्मक विपरीत परिस्थितियों में जो च्युत न हो वह अच्युत है, पुरुषों में उत्तम पुरुषोत्तम, ब्रह्मा और शिव पर भी नियन्त्रण रखने वाले केशव, माया के पति माधव, मधुसूदन, जनार्दन, योगेश्वर, कमलनेत्र आदि सभी संबोधन अपने आप में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। कुछ संबोधनों में पारस्परिक तादात्म्य भी विलक्षण है।

संबोधनों का विवेचन गीता के अध्ययन में एक नई दृष्टि प्रदान कराता है। गीता के बारे में स्पष्ट मान्यता है कि इसका पठन-चिन्तन जितनी बार होगा उतनी ही बार नवीन भाव-सृष्टि निर्मित होगी। इस दृष्टि से संबोधनों का अध्ययन महत्वपूर्ण है।

❖

PR-120

अद्वैततत्त्वशुद्धि में मिथ्यात्व निरूपण

डॉ. (श्रीमती) दीपक कालिया, दिल्ली

अद्वैततत्त्वशुद्धि का मुख्य प्रतिपाद्य विषय "निर्विशेष निर्गुण ब्रह्म" की सिद्धि करना है। ब्रह्मज्ञान व अन्तिम पुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति से मानव सुख प्राप्त कर सकता है। अद्वैततत्त्वशुद्धि में तत्त्वज्ञान के साधन प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्दादि प्रमाणों के स्वरूप को बताते हुए वेदान्त मत के मुख्य तत्त्वों एवं सिद्धान्तों यथा ख्यातिवाद, कार्यकारणवाद, सत्कार्यवाद, मिथ्यात्व, जीव, जगत्, ब्रह्म व मोक्ष आदि का विशिष्टाद्वैत व अद्वैतमतानुसार पक्ष-विपक्ष द्वारा पर्यालोचन हुआ है तथा अद्वैतमत की स्थापना की है।

द्वैत के मिथ्यात्व को स्पष्ट करके ही अद्वैततत्त्व की सिद्धि संभव है। अतः "मिथ्यात्व" को अद्वैततत्त्वशुद्धि में विशेष रूप से निरूपित किया गया है। मिथ्यात्व की व्याख्या ज्ञानमीमांसा एवं तत्वमीमांसा की दृष्टि से की गई है। ज्ञानमीमांसा की दृष्टि से अध्यास व ख्यातिवाद को स्पष्ट किया गया है। तत्त्वमीमांसा की दृष्टि से मिथ्यात्व को स्पष्ट करते हुए पंचमिथ्यात्व के लक्षण बताए गए है; क्योंकि अद्वैततत्त्वशुद्धि में "द्वितीय मिथ्यात्व" का ही उल्लेख किया गया है।

अद्वैततत्त्वशुद्धि में जगन्मिथ्यात्व विषयक विचार यही स्पष्ट करते हैं कि जगत् ब्रह्म का विवर्त ही है. परन्तु, जब यह अज्ञान के कारण नामरूपादि वाला भिन्न प्रतीत होता है तब वह स्वप्न के समान मिथ्या है। अध्यास के कारण ही अज्ञानी व्यक्ति ब्रह्म में जगत का आरोप कर उसे सत्य समझाने लगता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और जब अध्यास के कारणरूप अज्ञान की निवृत्ति हो जाती है, तभी यथार्थज्ञान होने से "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" यह ज्ञान हो जाता है।

❖

PR-121

श्रीमद्भगवद्गीता में कर्ममीमांसा

डॉ. यमुना प्रसाद मिश्र, बलिया

जगत् की नैतिक व्यवस्था का मूल कारण कर्म सिद्धान्त है, जिसे प्रत्येक भारतीय दर्शन स्वीकार करते हैं। जो शुभाशुभ कर्म हम करते हैं उसका फल हमें अवश्य प्राप्त होता है। मीमांसा के अनुसार कर्मकाण्ड ही सार्थक है, ज्ञानकाण्ड निरर्थक है।

गीता कर्मकाण्ड को अस्वीकार नहीं करती है, अपितु यज्ञ को व्यापक अर्थ में मान्यता प्रदान करती है। गीता के अनुसार निःस्वार्थ बुद्धि से किये गए परमात्मा की ओर ले जाने वाले कर्म यज्ञ हैं। उपनिषद् स्पष्ट शब्दों में कर्म करने में आत्मा की स्वतन्त्रता को स्वीकार करता है। मुक्तिकोपनिषद् (2/5/6) के अनुसार शुभ और अशुभ वासनाओं के अनुसार मनुष्य शुभ या अशुभ कार्य करता है। गीता में कर्म के निष्पादन तथा उससे जीव की मुक्ति का भी वर्णन है। गीता कर्म से पलायन का निषेध करती है। गीता के अनुसार कर्म इस कुशलता से किये जायें जिससे वे बन्धन न उत्पन्न करें। योग है—योगः कर्मसु कौशलम्। गीता (5/2) के अनुसार कर्म-संन्यास से बढ़कर कर्मयोग है।

गीता में कर्मयोग की व्याख्या करते हुए भगवान् कृष्ण कहते हैं कि मनुष्य का अधिकार कर्म करने में है, फल में कभी नहीं है, फल की आकांक्षा से कभी कर्म नहीं करना चाहिए। कर्म न करने अर्थात् अकर्म में भी तुम्हारी इच्छा नहीं होनी चाहिए।

गीता के चतुर्थ अध्याय में भगवान् कृष्ण ने कर्म, अकर्म, विकर्म का विवेचन किया है; क्योंकि बिना इनके ज्ञान के मनुष्य निष्कामभाव से कर्म नहीं कर सकता है। साधारणतया शास्त्रविहित वर्णाश्रमोचित कर्म ही कर्म है तथा मन, वाणी, शरीर द्वारा की जाने वाली क्रियाओं का स्वरूपतः त्याग अकर्म है और झूठ, कपट, चोरी, व्यभिचार, हिंसा आदि पापकर्म विकर्म हैं। आचरण में भी भावभेद से इनके स्वरूप का भेद हो जाता है। अतः तत्कालीन मनीषियों और तत्त्ववेत्ताओं से इनका ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। गीता (4/18) के अनुसार जो कर्म में अकर्म तथा अकर्म में कर्म देखता है, वह मनुष्यों में बुद्धिमान् है और वह कर्मयोगी समस्त कर्मों को करने वाला है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि कामनाओं से रहित कर्म ही साधक को मुक्ति प्रदान करते हैं तथा कामनाओं से युक्त कर्म बन्धन का कारण होते हैं।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-122

यमविद्या के (रथरूपक) द्वारा आत्मबोधन

डॉ. श्वेता शर्मा, हिसार

उपनिषदों में अनेक रूपकों के माध्यम से आत्मबोधन का मार्ग बताया गया है। कठोपनिषद् में यमराज ने नचिकेता के प्रति 'यमविद्या' का उपदेश किया था। यमविद्या ही ब्रह्मविद्या है। इसी यमविद्या को 'रथरूपक' के माध्यम से समझाने का प्रयास किया गया है, जिससे साधकों के आत्मविषयक सभी संशय-सन्देह द्विन्न-भिन्न हो टूट-फूट जाते है और वे आत्मबोध से कृतार्थ महसूस करते हैं। जैसे किसी को स्वयं अपने पास पहुँचने के लिए, न तो कहीं से कोई यात्रा करनी होती है और न ही किसी प्रकार का कोई अन्य साधन अपनाना होता है, कारण कि वह तो सदा से अपने पास ही पहुँचा हुआ होता है।

रथरूपक बोद्धव्य आत्मा का बोध प्राप्त करने में अत्यन्त सहयोगी है, जिसका शब्द-चित्र इस प्रकार है—1. सांसारिक यात्रा के लिए—शरीर, 2. रथ के घोड़े—दस इन्द्रियाँ, 3. रथ का स्वामी—जीवात्मा, अवच्छिन्नात्मा, 4. रथ का सारथि—जीवोपाधि अहंकार (चिदाभास), 5. घोड़ों का प्रग्रह—मन, 6. रथ के घोड़ों का गम्यमार्ग—भौतिक विषय, 7. जीवात्मा का लक्ष्य अथवा गन्तव्य स्थान—ब्रह्मात्मा का अवबोध, आत्मबोध।

इस प्रकार रथी जीवात्मा, अपनी अवच्छिन्नता की भ्रान्ति के मिट जाने पर, सर्वात्मा होकर, अपने लक्ष्यभूत आत्मबोध तक पहुँच जाता है।

❖

PR-123

छान्दोग्य-उपनिषद् में 'ॐ' की विविध रूपों में उपासना

प्रो. द्विवेदी कश्यप एम, भूज

'उपासना' शब्द का अर्थ है— तैलधारावत् अपने उपास्य की उपासना करना। उपासना में छान्दोग्य-उपनिषद् आदि की दृष्टि से शान्तचित्त होना अत्यन्त आवश्यक हैं।

उपासना में सिद्धि प्राप्ति के लिये मन्त्रार्थ को समझना, मन्त्र के देवता आदि का ज्ञान प्राप्त करना एवं गुरु या कल्पसूत्रों में से उनकी विधि को जानकर अनुसन्धान आवश्यक हैं। विशेष में स्थानशुद्धि, आसन-शुद्धि, आहार-विहारशुद्धि आदि की अत्यन्त जरूरत हैं।

छान्दोग्य उपनिषद् में ॐ की उद्गीथ, उद्गीथ के 'उत्', 'गी', 'थ' शब्दों से; प्राणरूप से, सूर्यरूप से, शरीरस्थ वायु ध्यान के रूप में, अधिदैवत और अध्यात्म के रूप में उपासना दी गई है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-124

वीरशैव दर्शन का विकास

सतीश चन्द्र शुक्ल, सुलतानपुर

वेदान्तदर्शन का प्रतिपादन विभिन्न आचार्यों ने वस्तु-प्रतिपादन और सम्प्रदाय की दृष्टि से भिन्न-भिन्न किया है, अतः उसके आठ भेद हैं—1. शाङ्कर, 2. वीरशैवदर्शन, 3. रामानुज, 4. माध्व, 5. वल्लभ, 6. निम्बार्क, 7. गौड़ और 8. रामानन्द। इनमें वीरशैव दर्शन का प्रमुख स्थान है।

तन्त्रशास्त्र अथवा आगमसम्मत छः दर्शनों में वैष्णव, शाक्त, सौर, वैनायक और कापाल दर्शन के साथ ही वीरशैव-दर्शन की भी गणना की गई है। वीरशैव धर्म-दर्शन की स्थापना शिव के पाँच श्रेष्ठ गणों के द्वारा किया गया है। इन्हें पञ्चाचार्य कहा जाता है। शिव के सद्योजात, वामदेव अघोर, तत्पुरुष और ईशानमुख के रूप में विराजमान कुल्यपाक के सोमेश्वरलिङ्ग, वटक्षेत्र के श्री सिद्धेश्वर लिङ्ग, द्राक्षाराम क्षेत्र के श्री रामनाथलिङ्ग, सुधाकुण्डक्षेत्र के श्री मल्लिकार्जुनलिङ्ग और काशीक्षेत्र के श्री विश्वनाथ लिङ्ग इन पाँचों शिवलिङ्गों से क्रमशः श्री मरुलाराध्य, श्री एकोरामाराध्य, श्री पण्डिताराध्य और श्री विश्वाराध्य नामक पाँच आचार्य प्रत्येक युग में विभिन्न नामों से अवतरित होकर वीरशैव धर्म की स्थापना करते आये हैं।

यह प्रवाद सुनने में आता है कि 12वीं शताब्दी में कर्नाटक में अत्यन्त प्रख्यात चालुक्यवंश के बिज्जल नामक महाराजा के प्रधानमन्त्री श्री बसवेश्वर के द्वारा इस धर्म की स्थापना हुई थी। किन्तु यह कदापि सत्य नहीं है। डॉ. एस.सी. नन्दीमठ, श्री के.ए. निलकण्ड शास्त्री, डॉ. जे.एन. फर्क्यूहर, डॉ. यदुवंशी, श्री रामदास गौड़ तथा डॉ. कान्तिचन्द्र पाण्डेय आदि विद्वानों ने श्री बसव को वीरशैव धर्म का पुनरुज्जीवक ही माना है, न कि संस्थापक।

❖

PR-125

पूर्वमीमांसाशास्त्र में शब्द-प्रमाण

प्रो. रज्जना, इलाहाबाद

मीमांसाशास्त्र का प्रतिपाद्य धर्म-विचार है। शब्द-प्रमाण धर्माधर्म एवं अपूर्वादि का बोध कराता है। शब्द से तात्पर्य अपौरुषेय एवं नित्य वेद से है। यह अगोचर का वह ज्ञान है जो इतर साधनों से प्राप्य न हो और जो ध्वनिज्ञान द्वारा आत्मा-मन-सम्पर्क से लभ्य हो। मीमांसाशास्त्र शब्द, शब्द से सूच्य अर्थ तथा इन दोनों के बीच सम्बन्ध नित्य मानता है। शब्द और अर्थ में परस्पर अजात एवं स्वतःपूर्व सम्बन्ध है, जिसे सूचक-सूच्य अथवा नाम-नामित सम्बन्ध कहा गया।

शब्द घटकवर्णों तथा वाक्यघटक शब्दों का संयुक्त रूप है। जैमिनि के अनुसार शब्द द्वारा सामान्य सूचित होता है। शबरस्वामी के अनुसार शब्द सामान्य के भेदक चरित्र से संयुक्त व्यक्ति का बोधक है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'गामानय' कहने पर किसी व्यक्ति के विचार के पूर्व सामान्य ही मन में आता है। इस पर मीमांसाचार्यों में थोड़ा-थोड़ा मत-वैभिन्न है।

वाक्य (वैदिक वाक्य) भी निर्दुष्ट, नित्य एवं स्वतः प्रमाणिक है। शब्द स्वयं नहीं, बल्कि वस्तुतः वाक्य ही अर्थबोध कराता है। वाक्य का इसके अर्थ से सम्बन्ध नित्य और स्वजात होता है। कुमारिलभट्ट प्रभाकर की भाँति शब्द-प्रमाण को वैदिक विधियों तक ही सीमित नहीं रखते। प्रभाकर शब्दप्रमाण पौरुषेय तथा अपौरुषेय भेद से दो प्रकार का मानते हैं। पौरुषेय आप्त महापुरुषों द्वारा उच्चरित हैं। अपौरुषेय शब्द वेदवाक्य हैं।

वैशेषिक एवं बौद्ध शब्द-प्रमाण अनुमान में अन्तर्भूत मानते हैं। कुमारिलभट्ट इसके विरोधी हैं। उन्होंने शब्दज्ञान के स्वतःप्रामाण्य पर लम्बा शास्त्रार्थ किया। मुरारिमिश्र शब्द सूच्य आकृति (जाति) को मानते हैं। अतः शब्द की बोधकताशक्ति आकृति में रहती हैं।

❖

PR-126

अनुबन्धचतुष्टय : विज्ञानभिक्षु की दृष्टि में

डॉ. साधना कंसल, कोटा

महान् दार्शनिक विज्ञानभिक्षु, जिन्होंने सांख्य, योग व वेदान्त दर्शनों के मूलग्रन्थों पर भाष्य व टीकाएं लिखी, साथ ही अनेक मौलिक दार्शनिक रचनाओं का भी प्रणयन किया, संस्कृत दर्शन साहित्य में अनल्प प्रतिष्ठा के अधिकारी हैं। सोलहवीं शताब्दी में विद्यमान विज्ञानभिक्षु ने तत्कालीन समाज की आवश्यकता के अनुरूप तीनों दर्शनों के समन्वित रूप को प्रस्तुत किया व दर्शन की महती सेवा की।

प्रस्तुत लेख में ब्रह्मविद्या के अनुबन्ध चतुष्टय—अधिकारी, विषय, सम्बन्ध व प्रयोजन के विषय में विज्ञानभिक्षु की दृष्टि से विचार किया गया है।

ब्रह्मविद्या व ब्रह्मविद्या-शास्त्र का विषय तो स्पष्टतः ब्रह्म ही है। आधुनिक वेदान्ती जीव-ब्रह्मैक्य को इस शास्त्र का विषय मानते हैं, किन्तु भिक्षु का विचार है कि इस शास्त्र में जीव का वर्णन गौण रूप से ब्रह्मशेषता से हुआ है। मुख्य विषय तो ब्रह्म ही है। ब्रह्मविद्या का अभ्यास अत्यन्त आयाससाध्य है। मूर्ख भी अत्यन्त सरल कार्य में भी प्रयोजन जाने बिना प्रवृत्त नहीं होता। अतः भिक्षु विद्वान् मुमुक्षुओं को स्थान-स्थान पर ब्रह्मविद्या का प्रयोजन बताते हुए चलते हैं। यह प्रयोजन आत्यन्तिक दुःखनिवृत्ति रूपी मोक्ष के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं हो सकता।

विषय व शास्त्र का सम्बन्ध प्रतिपाद्य-प्रतिपादन का ही होता है। शास्त्र अपने विषय का प्रतिपादन ही करता है। विषय-ब्रह्ममीमांसाशास्त्र में यही सम्बन्ध मानना चाहिये।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-127

मनुस्मृति में संस्कार विवेचन

डॉ. अवधेश कुमार पाण्डेय, झारखण्ड

दोषापनयन एवं गुणाधान जिसके द्वारा हो, उसे ही संस्कार कहा जाता है। संस्कार शब्द सम+कृ+घञ् प्रत्यय से सुडागम द्वारा निष्पन्न हुआ है। संस्कार द्वारा किसी वस्तु एवं व्यक्ति को सम्यक् रूप में उपयोगी बनाया जाता है। जिस प्रकार स्थान से निकली हुई मणियाँ आवश्यक संस्कार के बाद ही आभूषण योग्य बनायी जाती है उसी प्रकार गर्भाधानादि संस्कार द्वारा बालक को दोषापनयन एवं गुणाधान कराया जाता है तथा उसे समाज एवं राष्ट्र के योग्य बनाया जाता है।

संस्कारों की संख्या विविध रूपों में प्राप्त होती है। संस्कार की दृष्टि से मनुस्मृति महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। संस्कारों की उपादेयता, वर्तमान समय में संस्कार का स्वरूप, मनुस्मृति में वर्णित संस्कारों के रूप आदि विषयों का विवेचन प्रस्तुत शोध पत्र में किया जायेगा।

❖

PR-128

आचार्य विज्ञानभिक्षु की दृष्टि में सांख्यदर्शन का कैवल्य-स्वरूप

श्री महेश प्रसाद श्रीवास्तव, कैमूर

विश्व के प्रायः सभी दर्शनों में कैवल्य के स्वरूप के सम्बन्ध में विशद विवेचन हुआ है। आचार्य विज्ञानभिक्षु का कैवल्य मोक्ष या अपवर्ग से अभिन्न है। उन्होंने सांख्यशास्त्र को "मोक्षशास्त्र" कहा है। क्योंकि सांख्यशास्त्र का मुख्य प्रयोजन सांसारिक दुःखों से निवृत्ति दिलाना है "तदिदं मोक्षशास्त्रं चिकित्साशास्त्रवच्चतुर्व्यूहम्" विज्ञानभिक्षु के मतानुसार जो स्थूल दुःख वर्तमान अवस्था में विद्यमान है, वे दूसरे क्षण स्वयं नष्ट हो जायेगें। ऐसे दुःखों की निवृत्ति के लिए ज्ञान की कोई अपेक्षा नहीं है। अतीतकालीन दुःख तो पहले ही नष्ट है। परन्तु इन दुःखों के अतिरिक्त अनागत अवस्था में स्थित जो सूक्ष्म दुःख है, उसकी निवृत्ति ही पुरुषार्थ है। विज्ञानभिक्षु की मान्यता है कि जब तक चित्त की स्थिति है, तब तक अनागत दुःख की सत्ता की अविकल सम्भावना बनी हुयी है। अत एव प्रकारान्तर से यह कहना युक्ति संगत है कि चित्त की निवृत्ति ही पुरुषार्थ है। चित्त के साथ ही दुःख का नाश होता है। इसलिए जीवनमुक्ति को कैवल्य का ऐहिक स्वरूप तथा विदेहकैवल्य को शास्वतिक कैवल्य मानना चाहिए।

आचार्य विज्ञानभिक्षु के अनुसार सांख्य दर्शन में कैवल्य को आनन्द स्वरूप नहीं माना जाता, क्योंकि गुणों के युग्मभाव से ही रहने के कारण अगर पुरुष को सुखात्मक माना जाय तो उसे दुःखात्मक भी मानना होगा। इसलिए त्रिगुणशून्य पुरुष आनन्दमय नहीं माना जाता। इस प्रकार कैवल्य में भी सुख या

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आनन्द नहीं होता। कैवल्य का अर्थ दुःख-निवृत्ति मात्र है। सांख्य दर्शन में दो ही नित्य पदार्थ है जिनके सम्यक् ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है। कैवल्य वस्तुतः किसी अप्राप्त अवस्था की प्राप्ति नहीं है, अपितु अन्तराय के नाश होने पर पुरुष की स्वरूपावस्थिति ही है। प्रकृति और पुरुष की पारस्परिक उदासीनता अर्थात् दोनो का एकाकी होना ही कैवल्य है।

❖

PR-129

वैष्णव दर्शन के श्री-सम्प्रदाय में ब्रह्मकारणवाद

डॉ. विनोद कुमार सिंह, कैमूर

श्री-सम्प्रदाय में आचार्यों की एक लम्बी परम्परा है, जिसमें रामानुजाचार्य प्रमुख हैं। इस सम्प्रदाय की परम्परा में भी नाथमुनि 1000 ई. से लेकर श्री निवासाचार्य 1700 ई. तक की कृतियाँ आती हैं जिसमें इस सम्प्रदाय का संवर्धन हुआ है। रामानुज के पूर्व आचार्यों में भास्कर 100 ई. और यादव-प्रकाश 1100 ई. ने 'ब्रह्मकारणवाद' के रूप में 'भेदाभेदवाद' सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। भास्कर का ब्रह्मकारणवाद ही रामानुज के 'ब्रह्मकारणवाद' का आधार है।

रामानुज द्वारा 'श्रीभाष्य' विश्वविख्यात ग्रन्थ बादरायण-ब्रह्मसूत्र पर टीका है, जिसमें उन्होंने 'विशिष्टाद्वैतवाद' मत का प्रतिपादन किया है। रामानुज के अनुसार परमतत्त्व एक, अद्वितीय ब्रह्म है जो सगुण और ईश्वर कहलाता है और वह परमसत्य है। चित् और अचित् ईश्वर के विशेषण हैं। चित् और अचित् से विशिष्ट होकर भी ब्रह्म (ईश्वर) एक ही हैं। अतः रामानुज का मत 'विशिष्टाद्वैतवाद' कहलाता है।

सृष्टि के क्रम में अचित् तत्त्व भिन्न-भिन्न रूपों को प्राप्त करता है और जीव अपने-अपने कर्मों का भोग भोगते हैं। ब्रह्मतत्त्व में कोई परिवर्तन नहीं होता। विशिष्टताद्वैत के तीनों तत्त्वों में ईश्वर प्रधान तत्त्व है। चित् और अचित् गौण तत्त्व है। रामानुज के अनुसार अवस्था-परिवर्तन था अवस्था-परिणाम भी केवल विशेषणों के गौण तत्त्वों में होता है। अतः जैनदर्शन की तरह रामानुज भी सद् सत्कार्यवाद के समर्थक जान पड़ते हैं। जैनदर्शन की तरह रामानुज के ब्रह्म का ईश्वर तत्त्व भी जैनदर्शन के गुण की तरह अपरिणामी एवं ध्रौण्य चक्र है। चित् और अचित् पर्याय की तरह परिणामशील है। इस तरह जैनदर्शन के उत्पाद और व्यय पर्याय की तरह रामानुज के चित् और अचित् विशेषणों में ही परिवर्तन होता है। अतः ईश्वर कारणता सिद्धान्त से परे हैं। केवल चित् और अचित् ही कारणता सिद्धान्त की परिधि में है। सत्कार्यवाद का सिद्धान्त चित् और अचित् पर लागू होता है, ईश्वर पर नहीं।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-130

भारतीय दर्शन का विदेशों पर प्रभाव

डॉ. मोहम्मद शरीफ़, अलीगढ़

वसुधैव कुटुम्बकम् का पावन उदात्त आदर्श विश्व के विभिन्न देशों को भारत के साथ आबद्ध कर रखा है। अत्यन्त प्राचीन काल से ही पाश्चात्य विश्व के साथ भारत का सम्पर्क था जिससे भारत के बाहर भारतीय दर्शन का खूब प्रचार-प्रसार हुआ। बौद्ध धर्म के माध्यम से संस्कृत भाषा तथा लिपि का मध्य एशिया में प्रवेश हुआ। वहाँ से प्राप्त भारतीय ग्रन्थों में धम्मपद, उदानवर्ग, सारिपुत्र आदि उल्लेखनीय है। विश्व की चिकित्सा, दर्शन आदि पर भारतीय दर्शन का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

पातञ्जल के योग का निओप्लेटोनिक विचारधारा पर प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। विदेशों में आज खूब प्रचार-प्रसार हो रहा है। गीता के कर्म सिद्धान्तों को प्लेटो के 'रिपब्लिक' में अपनाया गया। अद्वैत सिद्धान्त को गार्वे के इलीटिक्स दर्शन में अपनाया गया। जल से सृष्टि निर्माण की वैदिक विचारधारा को थेलीज ने अपना लिया। सांख्यदर्शन को हेराक्लिट्स, एम्पिडाक्लीज, एपिक्यूस के सिद्धान्तों में अपनाया गया है।

सारांश के रूप में कहा जा सकता है कि विदेशों में भारतीय दर्शन का बहु आयामी योगदान रहा, जिसके फलस्वरूप आज भारतीय दर्शन विश्व में अपना विशिष्ट स्थान स्थापित किये हुए हैं।

❖

PR-131

आधुनिक युग में विष्णुसहस्त्रनाम की प्रासङ्गिकता

डॉ. दिवांशु कुमार, छपरा

श्री विष्णुसहस्त्रनाम में भगवान् नारायण (विष्णु) की स्तुति में दिव्य एक हजार नामो का कीर्त्तन है। ये नाम उस परमसत्ता के वाचक हैं जिसे दुनिया ईश्वर, गॉड, अल्लाह आदि कहती है। यह दिव्य नाम उस व्यापक सत्ता की अनुभूति कराते हैं, जिसे तर्कशील वैज्ञानिक लोग "शक्ति" कहते हैं। यह सर्वविदित सत्य है कि सभी मनुष्य इस बात को निर्विवाद मानते हैं कि कोई शक्ति अवश्य है जो पूरी दुनिया को नियन्त्रित कर रही है। यहाँ 'विष्णु' का प्रयोग उसी 'शक्ति के लिये हुआ है।

यह तो सभी धर्म मानते हैं कि ईश्वर एक है और वह सर्वव्यापी तथा सर्वशक्तिमान होने के कारण सबकी बोली समझता है। हम उसे चाहे जिस नाम से पुकारें या जिस भाषा में उसकी प्रार्थना करें वह सब सुन, समझ लेता है। ज्ञातव्य है कि विष्णु का अर्थ होता है—सर्वव्यापक। वह जिसकी सत्ता समस्त जगत् में व्याप्त है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज के युवा एवं युवतियों के चारित्रिक पतन, आतङ्कवाद, एक देश का दूसरे देश पर आक्रमण का महत्त्वपूर्ण कारण है—तनाव, मानसिक कुण्ठा एवं मनोविकृति। विभु, व्यापक विष्णु को एक हजार नाम के जप से इन तनावों से सहज ही मुक्ति मिल जाती है। भगवान् अपने नाम से लोगों का कल्याण करते हैं, उनके त्रिविध तापों का शमन करते हैं, उनकी भौतिक पीड़ाओं का उन्मूलन करते हैं। समकालीन चिन्तकों तथा प्रयोगकर्त्ताओं ने इसका स्पष्टतया अनुभव व उल्लेख किया है। सर्वोदय नेता विनोबाभावे ने अपनी उक्ति में कहा है कि गीता से उनके मन का प्रक्षालन होता है, किन्तु विष्णुसहस्रनाम के पाठ से उर्जा की प्राप्ति होती है।

❖

PR-132

न्याय-वैशेषिक में योगज प्रत्यक्ष की अवधारणा

डॉ. अनीता राजपाल, दिल्ली

न्याय-वैशेषिक दर्शन में इन्द्रियार्थ-सन्निकर्ष से उत्पन्न, अव्यभिचारि तथा निश्चयात्मक ज्ञान को प्रत्यक्ष कहा गया है। इस इन्द्रियार्थ-सन्निकर्ष के आधार पर नव्य-नैयायिकों ने प्रत्यक्ष के दो भेद किये हैं—लौकिक और अलौकिक प्रत्यक्ष। इनमें से अलौकिक प्रत्यक्ष तीन प्रकार का है—(1) सामान्यलक्षणाप्रत्यासत्ति (2) ज्ञानलक्षणाप्रत्यासत्ति एवं (3) योगज प्रत्यक्ष। इनमें से योगज प्रत्यक्ष को मीमांसा-दर्शन के अतिरिक्त सभी आस्तिक एवं बौद्ध तथा जैनदर्शन भी स्वीकार करते हैं। परन्तु प्रत्यक्ष की प्रक्रिया में परस्पर भिन्नता दृष्टिगत होती है। अष्टाङ्ग-योग के अनुष्ठान से साधकों की आत्मा में विलक्षण शक्ति उत्पन्न हो जाती है, यही 'योगज सन्निकर्ष' है। इसके माध्यम से योगी समस्त भूत, भविष्य और वर्तमान, स्थूल और सूक्ष्म, समीपस्थ और दूरस्थ पदार्थों का प्रत्यक्ष करता है। यह मन का बोध है, परन्तु यह मानस-प्रत्यक्ष से भिन्न हैं। यौगिक प्रत्यक्ष भी दो प्रकार का होता है—युक्त और युञ्जान। वैशेषिक दर्शन में इस प्रकार के ज्ञान को 'आर्ष' अथवा 'प्रातिभ-ज्ञान' कहा गया है। मीमांसक भूत, भविष्यादि पदार्थों का ज्ञान केवल वेदों के द्वारा ही मानते हैं। योगदर्शन में चित्त को स्थिर करने के उपायों का तथा योग की विभिन्न अवस्थाओं (भूमियों) का विशद् विवेचन किया गया है। वस्तुतः योग-दर्शन योगज-प्रत्यक्ष के प्रयोगात्मक स्वरूप की व्याख्या मनोवैज्ञानिक धरातल पर करता है। वेदान्त-दर्शन 'योग' अर्थात् समाधि के द्विविध रूपों के साथ-साथ 'जीवसाक्षी' तथा 'ईश्वरसाक्षी' का भी विवेचन करता है। इस प्रकार भारतीय दर्शन में स्वीकृत योगज-प्रत्यक्ष की प्रक्रिया, आधुनिक 'परा-मनोविज्ञान' के क्लेयर ऑडियन्स् (अतीन्द्रिय श्रवण), क्लेयर वोयन्स् (अतीन्द्रिय दृष्टि), हाईपरएस्थेसिया (देखने, सुनने, स्पर्शादि करने पर असाधारण अनुभूति), इन्ट्यूशन, टैलीपेथी, ऍक्सटीसी (हर्षातिरेक) आदि विषयों के अनुसन्धान के लिए पर्याप्त सामग्री प्रदान करती है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-133

छान्दोग्योपनिषद् में निरूपित सृष्टि-प्रक्रिया

डॉ. गीता मौर्य, वाराणसी

मनुष्य इस सृष्टि का सर्वाधिक बुद्धिमान् और सतत जिज्ञासु प्राणी है। वर्तमान युग वैज्ञानिक युग है। मानव ने चाँद पर अपने पद-चिह्न छोड़े हैं। अन्यान्य ग्रहों-उपग्रहों पर अपनी विजय पताका फहराने के लिये वह कटिबद्ध है। सभ्यता और विकास के तो वह चरम शिखर पर आरूढ़ है। इसके बाद भी अनेकानेक बिन्दु प्रश्न बन कर आज भी मानव-मन-मस्तिष्क को आन्दोलित किये हुए हैं। कोई भी प्राणी सुख-दुःख का अधिकारी कैसे बनता है? प्राणी के जीवन का अन्त क्यों होता है? वह मर कर कहाँ जाता है? किस प्रकार पुनर्जन्म लेता है? यह सृष्टि क्या अनादि-अनन्त है?—इस प्रकार के अनगिनत प्रश्न आज भी मानव-मन के कौतूहल के केन्द्र हैं। इन सभी प्रश्नों का समुचित समाधान करने में हमारी उपनिषदें पूर्णतया सक्षम हैं।

छान्दोग्योपनिषद् कहता है—'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' (3/14/1) अर्थात् यह सब दृश्यमान् चराचररूप जगत् ब्रह्म का ही प्रसार है, उससे ही जन्म लेता है, उसी में लीन हो जाता है और उसी से अनुप्राणित होकर यह चेष्टा कर रहा है, अतः उसकी 'जलान्' इस रूप में उपासना करनी चाहिए।

'मृत्पिण्ड' दृष्टान्त द्वारा छां. उ. जगत् को ब्रह्म को नाम व रूपमात्र वाला प्रतिपादित करता है तथा विविध तर्कों द्वारा इस सम्बन्ध में उत्पन्न असङ्गति को दूर करता है।

षष्ठ अध्याय में समस्त प्रपञ्च का अन्तर्भाव तीन प्राकृतिक भूतों (अन्न, जल, तेज) में करके पुनः उनका अन्तर्भाव एक सत् अर्थात ब्रह्म में करके जीव-ब्रह्म की अभिन्नता प्रतिपादित की गयी है।

शिलक और प्रवाहण के परस्पर वार्तालाप द्वारा जगत् के सर्जक रूप में ब्रह्म का विवेचन किया गया है। श्वेतकेतु और प्रवाहण की आख्यायिका द्वारा सविस्तार उत्पत्ति के क्रम और परलोक की मीमांसा वर्णित है।

'त्रिवृत्करण' सिद्धान्त छां. उ. की सृष्टि-रचना का प्रमुख सिद्धान्त है। यह 'त्रिवृत्करण' परवर्ती वेदान्त के 'पञ्चीकरण' सिद्धान्त का पूर्वरूप है। वस्तुतः श्रुति को पञ्चीकरण ही अभीष्ट है। प्रयोग-सौकर्य के लिये ही 'त्रिवृत्करण' प्रयोग किया गया है।

विविध सृष्टि-शास्त्रज्ञ ऋषियों के मतों को एक आख्यायिका के रूप में प्रस्तुत कर छां. उ. पञ्चम अध्याय में सृष्टि के चरम तत्त्व को निर्देशित करता है।

राजा जानश्रुति और रैक्व के आख्यान द्वारा वायु को तथा इन्द्रियों के परस्पर संवाद को दर्शाने वाली आख्यायिका द्वारा प्राण को सृष्टि का परम तत्त्व सिद्ध किया गया है। इसी प्रकार के अनेक आख्यानों व तात्त्विक सिद्धान्तों के विवेचन द्वारा छां.उ. सृष्टि-प्रक्रिया को स्पष्ट करता है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-134

तत्-पदार्थ एवं त्वम्-पदार्थ शोधन की विधि

डॉ. (श्रीमती) ममता गुप्ता, वाराणसी

वेदान्त दर्शन जीवन का दर्शन है। मानव मात्र का परम लक्ष्य है—जीवात्मा और परमात्मा के मध्य अभेदत्व का बोध, जैसा कि कहा गया है—

तत्त्वमस्यादिवाक्योत्थं यज्जीवपरमात्मनोः।
तादात्म्यविषयं ज्ञानं तदिदं मुक्तिसाधनम्॥ (वाक्यवृत्ति-6)

अर्थात् तत्त्वमसि आदि वाक्यों से निकलने वाला ज्ञान जो कि जीवात्मा और परमात्मा के मध्य में अभेदत्व का प्रतिपादन करता है, वही इस मुक्ति का साधन है। तत्त्वमसि (छान्दो.उप.) महावाक्य का अखण्डार्थ बोधन हेतु विवेचन किया जा रहा है। 'तत्त्वमसि' महावाक्य से तत्पदार्थ और त्वम्-पदार्थ का ऐक्य बताया गया है। यह ऐक्य उन पदों के वाच्य अर्थों में सम्भव नहीं है। अतः दोनों पदों से लक्षणा के द्वारा एक अभिन्न अर्थ शुद्ध चैतन्य का बोध माना जाता है। इस एकताबोध के लिए तत्-पद और त्वम्-पद के शक्तिलभ्य अर्थ में से विशेषण अंश को त्यागकर विशेष्यभाव का जो ग्रहण होता है, उसे ही उन पदों के अर्थों का शोधन कहा जाता है।

जहल्लक्षणा, अजहल्लक्षणा एवं जहदजहल्लक्षणा, इन तीनों लक्षणाओं के समीक्षात्मक विवेचन के द्वारा यह देखने का प्रयत्न किया जाएगा कि किस लक्षणा के द्वारा तत्वमसि के अखण्डार्थ का बोध सङ्गत हो सकता है—जब पद अपने अर्थ का त्याग करके अन्य अर्थ का बोध कराता है तो वह जहल्लक्षणा कहलाती है। तत्त्वमसि में जहल्लक्षणा नहीं सिद्ध होता, कारण यह है कि तत्त्वमसि के 'तत्' एवं 'त्वम्' पद अपने मुख्यार्थ—चैतन्य का पूर्ण रूप से परित्याग नहीं करते, क्योंकि दोनों के चैतन्यांश में विरोध न होकर तत् के परोक्षत्व एवं त्वम् के अपरोक्षत्व का ही विरोध है। जहाँ पद अपने अर्थ का परित्याग न करके, अपने से सम्बन्धित अन्य आश्रय और अर्थादि का भी बोध कराता है, वहाँ अजहल्लक्षणा होती है। तत्त्वमसि महावाक्य में परोक्षत्वविशिष्ट चैतन्य और अपरोक्षत्व विशिष्ट चैतन्य के ऐक्यरूप मुख्यार्थ के विरुद्ध होने से उसका परित्याग न करके उससे सम्बद्ध यदि किसी अर्थ को लक्षित किया जाय तो विरोध का परिहार सम्भव न होने से अजहल्लक्षणा मान्य नहीं हो सकती। जहदजहल्लक्षणा उस स्थल पर होती है, जहाँ शब्द अपने कुछ अंश का त्याग कर कुछ अंश के अर्थ का बोध कराता है। 'तत्त्वमसि' यह महावाक्य अथवा इसका वाच्यार्थ परोक्षत्वादिविशिष्ट चैतन्य और अपरोक्षत्वादिशिष्ट चैतन्य के एकत्व रूप वाक्यार्थ के परोक्षत्वापरोक्षत्वादि रूप एक अंश में विरोध होने के कारण परोक्षत्वादि वैशिष्ट्य और अपरोक्षत्वादि वैशिष्ट्य रूप विरुद्धांश का परित्याग कर अविरुद्धांश अखण्ड चैतन्य को जहदजहल्लक्षणा द्वारा प्रस्तुत करता है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-135

योग की अवधारणा

सुश्री नेहा शुक्ला, फैजाबाद

अमरकोष में 'योगः सन्नहनोपायध्यानसङ्गतियुक्तिषु' कहा है। पुराणकाल में जब देश की बोली संस्कृत थी। तब युद्ध के लिए योद्धाओं को 'सन्नहन' सन्नद्ध हो जाने, कवच पहनने और हथियार उठाने के लिए 'योगो योगः' ऐसी पुकार होती थी। 'उपाय' को भी 'योग' कहते हैं। वैद्यक के नुस्खे को भी 'योग' कहते हैं। 'इत्येको योगः' 'इति द्वितीययोगः' अर्थात् रोग को दूर करने का उपाय। ध्यान के विशेष प्रकार का नाम 'योग' प्रसिद्ध ही है। 'सङ्गति' सङ्गम दो वस्तुओं का मिलना भी योग है तथा युक्ति भी। युक्ति का अर्थ उपाय भी है और विशेष तर्क भी। जो खण्डन-मण्डन का उपाय भी है। दूसरे कोषकारों ने 'योग' शब्द के पैंतीस-चालीस तक अर्थ गिनाये हैं। इन सब रूढ़ अर्थों का मूल यौगिक अर्थ है, अर्थात् दो पदार्थों का मिलना या संयोग।

शरीर की ओर चिन्ता की वह क्रिया, या वह अभ्यास जिससे कोई सिद्धि मिल जाए 'योग' है।

जिन्होंने शिरोव्रत नामक योग और तपस्या के प्रकार का चरण नहीं किया वे ब्रह्मज्ञान के अधिकारी नहीं हैं। सुप्त 'कुण्डलिनी' शक्ति के जागरण, उत्थापन, सच्चालन, शिरःस्थित, ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त उन्नयन आदि की बात 'शिरोव्रत' के सम्बन्ध में कही हैं।

भगवद्गीता के सात सौ श्लोकों में योगः, योगी, युक्तः, योगारुढ़ः, युज्जन, युञ्जीत, योगयज्ञाः, योगसेवया, सांख्ययोगी इत्यादि 'युज्' धातु से बने शब्द और उनके साथ समस्त पद एक सौ अठारह बार आये हैं।

आत्मा, अहं, बुद्धि, योग—ये ही चार शब्द और इनके प्रकार-विकर सबसे अधिक बार गीता में कहे गये हैं।

स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने 'योग' की परिभाषा दी है—

'समत्वं योग उच्चते'

'योगः कर्मसु कौशलम्' 'निःस्पृहयुक्त उच्यते'

अर्थाद् योगो निस्पृहता स्मृता।

योगसूत्र योगभाष्य के सिद्धान्त सब इस निष्कर्ष के अनुकूल ही जान पड़ते हैं।

❖

GC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-136

अष्टावक्रसंहिता और सदानन्दकृत 'वेदान्तसार' में जीवन्मुक्ति : एक अवलोकन

श्री आर.आर. पटेल, राजकोट

दर्शन जगत् का अन्तिम लक्ष्य है क्लेशों से निवृत्ति। इस निवृत्ति का दार्शनिक सम्बोधन है— "मोक्ष"। मोक्ष एक ऐसी स्थिति है जिसमें केवल सांसारिक दुःखों का ही नहीं; किन्तु जन्म-मृत्यु शृंखला का ही अन्त हो जाता है।

वेदान्त दर्शन में मोक्ष की अवधारणा–

वेदान्त-दर्शन मोक्ष को जीवन का अन्तिम महत्त्वपूर्ण पुरुषार्थ मानता है। आचार्य शङ्कर ने मोक्ष का स्वरूप इस प्रकार निरूपित किया है—

'इदं तु निरवयं स्वयं ज्योतिः स्वभावं यत्र धर्माधर्मः सह कार्येण कालत्रयं मोक्षवर्तते यदेत्तिदयं शरीरत्वं मोक्षाख्याम्।'

मोक्ष की दशा वस्तुतः ब्रह्म का ही वर्णन है। मोक्ष एक प्रकार की अन्तर्दृष्टि है जो जगत् के चित्र को ही बदल देती है। जगत् को देखने की जीवात्मा की दृष्टि बदल जाती है। अविद्या के निवारण से वस्तुओं में या कार्यों में जीवात्मा अनासक्त हो जाता है। सब कुछ होने पर भी उसके लिये कुछ भी नहीं होता है।

वेदान्त में मुक्ति-प्रक्रिया–

वेदान्त के अनुसार मुक्ति व्यक्तिसाध्य प्रक्रिया है। प्रत्येक व्यक्ति मुक्ति का अधिकारी हो सकता है। अधिकारी होने के लिये कुछ विशिष्टताओं से युक्त होना एवं वेदान्त सम्मत साधना-मार्ग का अनुसरण करना जरूरी है। मोक्षोपयोगी तत्त्वज्ञान हेतु वेदान्त में श्रुति गुरु तथा नैतिक मनुष्यों को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इस मार्ग का अनुसरण करके ही मुमुक्षु को 'तत्त्वमसि' महावाक्य के यथार्थ अर्थ की प्रतीति होती है और अन्त में निरन्तर चिन्तन-मनन आदि के द्वारा 'अहमस्मि' की दिव्यानुभूति करता है।

❖

PR-137

शाण्डिल्य-भक्तिसूत्र और नारद-भक्तिसूत्र में भक्तिमीमांसा

डॉ. हेमराज भाई आर. पटेल, बनासकांठा (गुजरात)

प्राचीन काल के महर्षि शाण्डिल्य और महर्षि नारद रचित 'शाण्डिल्यभक्तिसूत्र' और 'नारदभक्तिसूत्र' नामक दो सूत्रात्मक ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। दोनों महर्षियों का समय निश्चित नहीं हो सकता है, किन्तु उनकी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन दोनों कृतियों का प्रभाव 'भगवद्गीता' और 'भागवत' में लक्षित होता है। सूत्रात्मक-ग्रन्थों के सर्जनकाल में इन दोनों कृतियों की रचना हुई है, अतः इन दोनों को भक्तिशास्त्र के प्राचीनतम ग्रन्थ कह सकते हैं, ऐसे ग्रन्थों के आधार पर ही भक्ति की प्रतिष्ठा हुई है। इतना ही नहीं, ऐसे ग्रन्थों में जो प्रेमलक्षणा-रागानुगा भक्ति का निरूपण हुआ है, उसके आधार पर भक्ति को भी 'रस' मानने की वृत्ति का उदय हुआ और इस प्रकार उत्तर काल में 'भक्तिरस' का उदय हुआ और भक्तिरस की मीमांसा होने लगी।

'शाण्डिल्य-भक्तिसूत्र' में कुल 102 सूत्र प्राप्त होते हैं। इन सूत्रों में भक्ति-व्याख्या, भक्ति-स्वरूप, भक्ति का फल, भक्त के लक्षण, ज्ञान से भक्ति की श्रेष्ठता, भक्ति-प्रकार, भक्तिमार्ग की श्रेष्ठता, गौणी और पराभक्ति, भक्ति के साधन इत्यादि विषयों का निरूपण हुआ है। ईश्वर के प्रति जो पराभक्ति या अनुराग-भक्ति का निरूपण हुआ है, वही उत्तरवर्ती मधुसूदन सरस्वती और रूपगोस्वामी जैसे आचार्यों के लिए भक्तिरस के मूल आधारस्वरूप सिद्ध होता है।

महर्षि शाण्डिल्य के भक्तिसूत्र से नारद का भक्तिसूत्र विकासशील और सुव्यवस्थित है। 'नारद-भक्तिसूत्र' में भी 'शांडिल्यभक्तिसूत्र' के समान ही भक्ति-विषयक सभी विषयों का प्रतिपादन हुआ है। भक्तिविषयक विभिन्न अंगों के निरूपण में नारद पर शाण्डिल्य का प्रभाव लक्षित होता है। नारद की प्रमुख विशेषता यह है कि उन्होंने प्रेमाभक्ति की आसक्ति की दृष्टि से ग्यारह आसक्तियों का निरूपण किया है। नारद द्वारा प्रतिपादित ऐसी आसक्तिप्रधान भक्ति उत्तरवर्ती आचार्यों के लिए भक्तिरस की स्थापना में आधाररूप बनती है।

प्रस्तुत शोधपत्र में शाण्डिल्य और नारद के जीवन से सम्बद्ध तथ्यों का आकलन करके दोनों के भक्तिसूत्रों का तुलनात्मक अभ्यास प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

❖

PR-138

मानवीय पृष्ठभूमि में धर्म : जानकीहरण के सन्दर्भ में

डॉ. त्रिलोचन प्रधान, वाराणसी

मानव सृष्टि-प्रक्रिया का उत्कृष्टतम एवं सुन्दरतम स्वरूप रहा है और मनुष्य का सर्वोत्तम गुण मूल्यों के प्रति सत्याग्रह या मानवीयता ही रही है। मानवीयता की रक्षा के लिए ही अनेक महान् पुरुषों ने इस पृथ्वी पर रहते हुए अपार दुःख सहे हैं। वर्तमानकालीन समाज की सबसे बड़ी समस्या मूल्य-सङ्कट की समस्या है। व्यक्तिगत, सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन का प्रत्येक क्षेत्र लगभग प्रत्येक स्तर पर इस समस्या से ग्रसित है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त प्रगति, खुशहाली और मानवकल्याण के जो सपने हमारे पूर्वजों ने देखे थे, वे आज झूठे सिद्ध हो रहे हैं। इसकी पीड़ा नाना प्रकार से साहित्य में, बौद्धिक परिचर्चाओं में तथा आपसी संवादों में अभिव्यक्त भी होती रही है। समाज के दर्पणरूपी साहित्य में इन सामाजिक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विसङ्गतियों का सटीक चित्रण कवियों द्वारा किया गया है। जानकीहरण महाकाव्य के रचयिता महाकवि कुमारदास के कवि हृदय में भी इसका यथार्थ चित्र अङ्कित है। आज जीवन के आधारभूत आध्यात्मिक, सामाजिक, धार्मिक, नैतिक और सांस्कृतिक मूल्य जो जीवन को मूल्यवान् बनाते हैं, जो उसे मर्यादित करते हैं, जो मानव को सुसंस्कृत बनाते हैं, वे सर्वथा उपेक्षित हैं। महाकवि कुमारदास ने इन्हीं मूल्यों का जानकीहरण महाकाव्य में विशेषरूप से स्थान-स्थान पर वर्णन किया है। इस शोध-पत्र में मानव जीवन के आधारभूत एवं अत्यन्त उपादेय धार्मिक मूल्यों पर दृष्टिपात किया गया है। जानकीहरण के रचयिता महाकवि कुमारदास ने धर्मसम्बन्धी सिद्धान्तों को अपनी कृति जानकीहरण में अङ्कित करने का सफल प्रयास करते हुए जिन धार्मिक मूल्यों को प्रस्तुत किया है, उनका त्रिविध वर्गीकरण किया गया है—

1. कर्त्तव्यसम्बन्धी, 2. देवी-देवतासम्बन्धी, 3. यज्ञसम्बन्धी।

इन वर्गीकरणों पर विचार करने के साथ-साथ 'मानवीय पृष्ठभूमि में धर्म के महत्त्व' के विषय में महाकवि कुमारदास के दृष्टिकोण को भी इस शोधपत्र में रेखाङ्कित किया गया है।

❖

PR-139

प्राचीन संस्कृत महाकाव्यों में धर्मशास्त्र-सम्मत पर्यावरण चेतना

डॉ. प्रतिभा त्रिपाठी, इलाहाबाद

प्राचीन धर्मशास्त्रों में पर्यावरण के प्रति पर्याप्त संवेदनशीलता परिलक्षित होती है। आपस्तम्ब-धर्मसूत्र (1/7/4) में सूँघने के लिए भी किसी वनस्पति की फूल-पत्ती को तोड़ने का निषेध है। स्मृतियों में ऐसा करने वालों के लिए दण्ड-विधान किया गया है। (मनुस्मृति 8/285 तथा उस पर कुल्लूक भट्ट द्वारा उद्धृत विष्णुस्मृति)। याज्ञवल्क्यस्मृति (2/226-229) में हरे-भरे वृक्ष तथा पीपल, पलाश आदि पवित्र वृक्षों को काटना दण्डनीय अपराध माना गया है। कात्यायन (उद्धृत धर्मकोश; व्यवहारकाण्ड, पृ. 1834) तथा कौटिल्य अर्थशास्त्र (3/19) ने भी वृक्षों आदि को काटना गम्भीर अपराध माना है। याज्ञवल्क्यस्मृति (1/134) तथा गौतमस्मृति (9/12) में नदी तथा जलाशय में मल-त्याग का निषेध किया गया है।

संस्कृत महाकाव्यों में धर्मशास्त्रानुमोदित पर्यावरण-चेतना प्रकृति-साहचर्य के रूप में परिलक्षित होती है। कुमारसम्भवम् (प्रथम सर्ग) में हिमालय-वर्णन तथा (2/36) में षड्ऋतुओं के द्वारा पुष्पसम्भार से तारकासुर की सेवा करने का उल्लेख है। रघुवंशम् (1/49-53 तथा 2/9-145) में अरण्य-पर्यावरण का काव्यात्मक उल्लेख है। गोसेवा में दत्तचित दिलीप को हिमालय की शोभा सहज आकृष्ट कर लेती है (रघु. 2/27)। रघुवंश के त्रयोदश सर्ग में भारतीय उपमहाद्वीप के पर्यावरण पर विहङ्गम दृष्टि डाली गयी है। भारवि और श्रीहर्ष के प्रकृति-वर्णनों में तथा शिशुपालवध महाकाव्य के प्रभात-वर्णन (11/57-60) में पर्यावरण चेतना का काव्यात्मक निदर्शन हुआ है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-140

शाक्ततन्त्रों को श्रुति का समर्थन

श्री रवीन्द्रकुमार वि. खाण्डवाला, अहमदाबाद

तन्त्रशास्त्र एक प्रशस्त शास्त्र है। कुछ अनजान और अज्ञानी लोग इसकी निन्दा करते हैं। परन्तु तन्त्रशास्त्र श्रुति से प्रतिपादित है। शाक्ततन्त्र का मूल भी श्रुति में ही है। या शायद मैं यह कहने का साहस भी करता हूँ कि तन्त्र की कुछ परम्परायें वेदों से भी प्राचीन हो सकती हैं और स्वयं श्रुति भी इसका समर्थन करती है। तन्त्र के कई सिद्धान्त श्रुति के साथ सम्बद्ध हैं। यहाँ शाक्ततन्त्रों के परिप्रेक्ष्य में यह प्रतिपादन करने का प्रयास है कि शक्ति की पूजा या उसके प्रति जो पूजनीय भाव हैं, वह श्रुति में भी वैदिक ऋषियों ने प्रदर्शित किया है और वेदों के कतिपय मन्त्र और उपनिषदों के वाक्य भी शाक्ततन्त्रों के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने में सहायक हुए हैं।

तन्त्रों के प्रसिद्ध टीकाकारों ने अपना दर्शन ऐसे श्रुतिवाक्यों का उद्धरण देते हुए प्रस्तुत किया है।

प्रस्तुत शोधपत्र में शाक्ततन्त्रों को श्रुति का समर्थन प्राप्त है एवं यह श्रुतिविदित मार्ग है—इस सिद्धान्त को विभिन्न तन्त्रग्रन्थों के उद्धरणों के साथ प्रस्थापित करने का प्रयास किया गया है।

❖

PR-141

युक्तिदीपिका में प्रमाण-विवेचन

श्री परमेश्वर सिंह राजपुरोहित, जोधपुर

युक्तिदीपिकाकार ने प्रमाण शब्द का अर्थ करते हुए कहा है कि 'प्रमाण' शब्द में करण अर्थ का द्योतक 'ल्युट्' प्रत्यय है। अर्थात् 'प्र'उपसर्गपूर्वक 'मा'धातु से करण अर्थ में ल्युट् प्रत्यय करने पर प्रमाण शब्द बनता है, अतः प्रमेय का अवबोध जिससे हो, वह प्रमाण है। युक्तिदीपिकाकार के मत में वह प्रमाण एक ही है; क्योंकि बुद्धि ही प्रमेय का ज्ञान कराती है तथा वह एक मानी गयी है। फिर भी उपाधि के भेद से प्रमाण में भेद स्वीकृत किया गया है—प्रत्यक्ष, अनुमान एवं आगम इत्यादि। युक्तिदीपिकाकार के अनुसार 'प्रमेयसिद्धिः प्रमाणाद्धि' में 'हि' शब्द अवधारण को सूचित करने के लिए है। युक्तिदीपिका में एक ही बुद्धि स्वरूप की विभिन्न व्याख्याओं के रूप में प्रमाणों का विस्तृत विवेचन मिलता है।

युक्तिदीपिकाकार ने कारिकाकार द्वारा प्रस्तुत 'प्रतिविषयाध्यवसायो दृष्टम्' इस प्रत्यक्ष लक्षण की नवीन व्याख्या प्रस्तुत की है, जिसमें सुख-दुःख राग और द्वेषादि भावात्मक अनुभूतियाँ जो श्रोत्रादि इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य नहीं होती, वे भी प्रत्यक्ष में समाहित हो जाती हैं। उन्होंने प्रत्यक्ष-लक्षण में प्रति, विषय और अध्यवसाय पदों को रखने का औचित्य अनेक युक्तियों द्वारा विस्तार से सिद्ध किया है।

CC-0.Panihi Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांख्यदर्शन में प्रत्यक्ष, अनुमान तथा शब्द ये तीन ही प्रमाण स्वीकार किये हैं। ईश्वरकृष्ण ने कहा है कि प्रमाण तीन ही अभीष्ट है, सभी प्रमाणों का अन्तर्भाव इन तीन ही प्रमाणों में हो जाता है। युक्तिदीपिकाकार ने अन्य सम्प्रदायों द्वारा मान्य उपमान, अर्थापत्ति, अभाव, सम्भव, ऐतिह्य, चेष्टा तथा प्रतिभा का अन्तर्भाव इन्हीं तीनों प्रमाणों में किया है।

❖

PR-142

श्रीशङ्कराचार्य के परिप्रेक्ष्य में सत्कार्यवाद

सुश्री जया मिश्रा, वाराणसी

दर्शन जगत् में कार्य की उत्पत्ति के बारे में विविध मतभेद सर्वविदित है। इन भेदों को संक्षेप में चतुर्धा विभक्त कर सकते हैं—1. संघातवाद, 2. आरम्भवाद, 3. सत्कार्यवाद, 4. विवर्तवाद। इसमें प्रथम 'संघातवाद' बौद्धों का है, उनके अनुसार अवयव से अतिरिक्त अवयवी नामक पदार्थ की वास्तविक सत्ता ही नहीं होती, अतः परमाणु संघात अवयवी के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। द्वितीय मत 'आरम्भवाद' नैयायिकों का है, इनके अनुसार अविद्यमान वस्तुओं की सत्कारणों के द्वारा उत्पत्ति मानी जाती है, अर्थात् कार्य पहले कारण में अविद्यमान होने पर भी कारण सामग्री के द्वारा उसका आरम्भ होता है। तृतीयवाद 'सत्कार्यवाद' सांख्यों का है। सांख्याचार्यों के अनुसार जो विद्यमान है वह सर्वदा विद्यमान ही होते हैं और अविद्यमान वस्तुओं की विद्यमानता कदापि, कथमपि सम्भव नहीं है। इसलिये सूक्ष्मरूपेण विद्यमान कारिका ही कारण सामग्री के द्वारा अभिव्यक्त किया जा सकता है। अन्तिम चतुर्थवाद विवर्तवाद शङ्कराचार्य जी का है, इनके मत में एक ही सत् है उसी का अविद्या के कारण विविधरूपेण आभास होता है; इसलिये शङ्कराचार्य जी का अद्वैतवादी दर्शन केवलाद्वैतवाद नाम से दर्शन-जगत में सुप्रसिद्ध है। इन चारों वादों का इस प्रकार संग्रह उपलब्ध होता है—

"संघातवादस्तु भदन्तपक्षः आरम्भवादस्तु कणभक्षपक्षः।
सत्कार्यवादस्तु सांख्यादिपक्षः, विवर्तवादस्तु वेदान्तपक्षः॥

(संक्षेपशारीरक, प्रथमाध्याय)

यद्यपि दर्शन जगत में सुप्रसिद्ध है कि शङ्कराचार्य जी ने विवर्तवाद का ही समाश्रय किया है। इसलिये संघातवाद, आरम्भवाद, सत्कार्यवाद तीनों वादों का खण्डन किया है, फिर भी आचार्य के प्रस्थानत्रयी के भाषावलोकन से विदित होता है कि आचार्य जी ने क्वचित्-कदाचित् सत्यकार्यवाद को भी आरम्भवाद के खण्डन हेतु समाश्रय किया है। इसलिये शङ्कराचार्य जी के परिप्रेक्ष्य में सत्कार्यवाद का स्वरूप क्या है? उसका खण्डन-मण्डन सरणि क्या है? इत्यादि विषयों के निरूपण हेतु यह लेख प्रस्तुत है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-143

आधुनिक न्यायपद्धति

डॉ. मणिभाई ई. प्रजापति, मेहसाना (गुजरात)

आधुनिक न्याय-प्रक्रिया का मूल, प्राचीन भारतीय साहित्य में खास करके मन्वादि ऋषियों के द्वारा प्रणीत स्मृतिग्रन्थों में या धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में प्राप्त होता है। प्राचीन काल में हमारी न्यायपद्धति 'विधिशास्त्र', 'धर्मशास्त्र' या 'व्यवहारशास्त्र' के नाम से प्रसिद्ध थी।

भारतीय संस्कृति में 'ऋत' और 'धर्म' ये दो शब्द महत्त्वपूर्ण हैं। इन दो शब्दों की व्यापक विभावनाओं के आधार पर हमारे यहाँ प्राचीन काल में 'धर्मशास्त्र' या 'व्यवहारशास्त्र' का निर्माण हुआ। 'ऋत' के गोप्ता वरुणदेव में हम न्यायाधीश का आदि रूप देख सकते हैं।

'व्यवहार' और 'विधि' ये दोनों शब्द आंग्ल शब्द 'Law' के समानार्थक हैं। प्राचीन धर्मसूत्रों एवं स्मृतिग्रन्थों में ये शब्द न्यायालय में विवाद-कलह-मुकदमा-न्यायप्रक्रिया के अर्थ में प्रयुक्त हुये हैं। कष्ट-निवारण, सत्य की स्थापना और सदाचार का निर्माण ये विधि-व्यवहारशास्त्र के प्रयोजन माने जाते थे। ये ही प्रयोजन आज के न्यायशास्त्र (न्यायपद्धति) के भी हैं।

मनु, कौटिल्य, याज्ञवल्क्य, नारद, बृहस्पति इत्यादि महर्षियों ने विधिशास्त्र को अठारह विभागों में विभक्त किया है। आधुनिक न्यायतन्त्र में भी ऐसे ही विभाग हैं। स्मृतिकार के मतानुसार व्यवहार (Judicial Procedure) चतुष्पाद है—अभियोग, उत्तर, क्रिया और निर्णय। वर्तमान समय की न्याय-प्रक्रिया भी चतुष्पादा है।

ऐसे तथ्यों के आधार पर, इस लेख में प्रतिपादित किया है कि आधुनिक न्यायपद्धति के प्रमुख स्रोत मनुस्मृति जैसे धर्मशास्त्रीय ग्रन्थ हैं।

❖

PR-144

भारतीय संस्कृति में धर्म और समाज

श्री भारती डी. दानाधार, भूज (कच्छ)

प्राचीन काल से भारतीय संस्कृति भारतवर्ष की भौगोलिक सीमाओं के अन्तर्गत ही नहीं बँधी रही, किन्तु उसका प्रचार एवं विस्तार विदेशों में भी हुआ। विश्व के इतिहास से ज्ञात है कि भारतीय संस्कृति ने अनेक देशों की संस्कृतियों को प्रभावित किया।

भारतीय संस्कृति से परिचित होना प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य ही नहीं, अपितु धर्म है। हम अपने देश, जाति तथा समाज का तभी अधिकाधिक कल्याण कर सकते हैं, जब अपने देश और राष्ट्र की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युग युगों से चली आ रही सभ्यता एवं संस्कृति से पूर्ण परिचित हों। प्राचीन काल में भारतवर्ष जगद्गुरु के महान पद पर आसीन था। संसार के प्रत्येक भाग से मनुष्य हमारे ऋषियों-महर्षियों से शिक्षा प्राप्त करने यहाँ आते थे तथा यहाँ से जाकर अपने समाज, जाति तथा राष्ट्र का कल्याण करते थे। आधुनिक भौतिकवाद से त्रस्त एवं पथभ्रष्ट मानव को आध्यात्मिक एवं धर्मप्रधान भारतीय संस्कृति ही सुख, शान्ति और आश्रय दे सकती है।

प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक शोपेन होपर को भारतीय संस्कृति का अध्ययन कर तथा उपनिषदों का ज्ञान प्राप्त कर ही आत्मिक शान्ति प्राप्त हुई। वे उपनिषदों को ही अपना गुरु मानते थे।

भारतीय संस्कृति में ही, युगों से आया यह भारतीय धर्म, समाज और संस्कृतिरूप के सिक्के के दो भाग ही कहा जाय तो कोई हर्ज नहीं। एक तरफ धर्म और दूसरी तरफ समाज, दोनों की बनी हुई यह संस्कृति, एक सिक्का समान है। धर्म आदमी को, समाज को अनुशासित करने वाला शक्ति रहा है। लेकिन दुर्भाग्यवश बहुत से लोगों के लिये इसने अपना मूल्य और अपनी सार्थकता खो दी है।

आज भारतीय संस्कृति, धर्म और समाज पाश्चात्य संस्कृति से अत्यधिक प्रभावित है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को पाश्चात्य सभ्यता ने प्रभावित किया; किन्तु फिर भी इसका यह अर्थ नहीं कि भारत देश युगों से ही पाश्चात्य सभ्यता के रंग में रंगा गया है। प्राचीन भारतीय परम्परायें आज भी सुरक्षित हैं। अतः पाश्चात्त्य संस्कृति से प्रभावित होते हुए भी भारत आज भी भारत ही है। अतः वर्तमान भारतीय संस्कृति रूप धर्म और समाज आज भी प्रमुख रूप से भारतीय ही है।

❖

PR-145

डॉ. राममनोहर लोहिया की दृष्टि में धर्म और राजनीति

डॉ. उत्तीम लाल राय, समस्तीपुर

डॉ. राममनोहर लोहिया ने आजाद भारत को इसकी जातीय, धार्मिक, भाषायी, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और भौगोलिक विभिन्नताओं के बीच एकता का रास्ता खोजने के लिये एक ऐसा विकल्प देना चाहा है जो एक दृढ़ भारतीय राष्ट्रीयता को जन्म दे सके। इसके लिये न तो उन्होंने गाँधीवाद को पर्याप्त माना है और न ही मार्क्सवाद को। इसके लिये उन्होंने समाजवाद के एक नवीन स्वरूप को जन्म दिया है, जो भारत जैसे विकासशील देशों को आर्थिक विकास के साथ-साथ धर्म, जाति, औरत,भाषा, शिक्षा आदि सामाजिक व्यवस्थाओं में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला सके।

सामाजिक परिवर्तन में धर्म की अहम् भूमिका है। किन्तु लोहिया जी ने महसूस किया कि संस्कृति के नाम पर धर्म भारतीय समाज में अन्धविश्वासों, पुरानी परम्पराओं तथा सामाजिक और धार्मिक कुरीतियों के रूप में स्थान बना चुका है। भारतीय जन अतीत के महान् लक्ष्य भूलकर खोखले और झूठे आदर्शों से चिपके हुये हैं। अतः आज आवश्यक हो गया है कि जीवन की वास्तविकता और अन्तिम सत्य के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीच ईमानदारी से ताल-मेल बैठाया जाये। इसके लिये धर्म एवं राजनीति के सामञ्जस्य की जरूरत है। धर्म दीर्घकालीन राजनीति है और राजनीति अल्पकालीन धर्म।

राम का हमारे धार्मिक जीवन में विशिष्ट प्रभाव है। लोहिया ने राम को भारतीय संस्कृति का आधार माना है जो नीति, धर्म एवं मर्यादा पुरुषोत्तम के प्रतीक हैं। किन्तु उन्होंने गाँधी के 'रामराज्य' के विपरीत 'सीता-राम राज्य' चाहते थे, क्योंकि पुरुषों की तुलना में नारियों की अधिक उपेक्षा हुई है। कृष्ण को लोहिया धर्म की विजय के लिये अधर्म से अधर्म करने को तैयार रहने का प्रतीक मानते हैं। किन्तु इस झूठ और धोखा के पीछे कृष्ण का अपना कोई स्वार्थ नहीं था, न इर्ष्या, न लोभ और न अपना कोई बढ़ावा। कृष्ण का सम्पूर्ण जीवन अन्यायी से संघर्ष करने में लगा रहा। शिव को लोहिया ने गरीबों का आदर्मी कहा है। लोहिया ने गाँधी की ही तरह धर्म, सत्य या ईश्वर को दरिद्रनारायण की रोटी में देखा है। धर्म का यह व्यावहारिक प्रयोग है। इसी तरह डॉ. लोहिया ने राजनीतिक परिवर्तन की अपेक्षा सांस्कृतिक परिवर्तन को अधिक महत्त्व दिया है। वे राजनीति से हटकर सांस्कृतिक चेतना के माध्यम से भारतीय जनता को जोड़ना चाहते थे ताकि भारतजन की लुप्त विवेक दृष्टि पुनः प्राप्त हो सके। रामायण मेला का अन्ताराष्ट्रिय आयोजन ऐसी ही समस्याओं पर विचारने के लिये होना था। उनका मानना था कि धर्म के प्रति एक नवीन दृष्टिकोण अपनाये बिना समाजवाद की बात नहीं समझी जा सकती है। डॉ. लोहिया के विचार में धर्म का व्यावहारिक उपयोग, समाज का सांस्कृतिक विकास, राष्ट्र के प्रतीकों को जोड़ने तथा इसके माध्यम से राष्ट्रीय एकता को सुनिश्चित करने, नदियों को स्वच्छ रखने तथा भारतीय तीर्थ-स्थलों का जीर्णोद्धार तथा उसका उपयोग भारतीय संस्कृति की रक्षा करने में है।

❖

PR-146

चैतन्यमत में प्रमाण-विमर्श

डॉ. श्रीनिवास ओझा, वाराणसी

चैतन्यमत में समस्त लौकिक-अलौकिक ज्ञान का मूलकारण वेद ही प्रमाणरूप में स्वीकृत है। वेद अप्राकृत वचन है। कोई पुरुष सर्वथा निर्दोष नहीं हो सकता, इसलिए पुरुषकृत प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द आदि प्रमाणरूप में ग्राह्य नहीं हो सकते, अत एव पुरुषकर्तृक न होने से पुरुषनिष्ठ दोष से सर्वथा मुक्त वेद को प्रमाण माना गया है। वेदार्थ दुरधिगम है, वेदार्थ निर्णय करने वाले मुनिवचनों में भी परस्पर विरोध दृष्टिगोचर होता है, इसलिए वेदार्थ-निर्णय के लिए वेदरूप इतिहासपुराणात्मक शब्द ही यहाँ विचारणीय है। कहा भी गया है—"इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्"।

यहाँ उपबृंहण का आशय 'स्पष्टीकरण' है। 'पूरणात् पुराणम्' इस व्युत्पत्ति के अनुसार भी वेदपूरक होने से 'पुराण' नाम सार्थक है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवेद द्वारा वेदपूरण सम्भव नहीं है। अपरिपूर्ण कनकवलय को राँगे से नहीं भरा जा सकता। इतिहास और पुराण का वेदत्व उपनिषद् तथा पुराणों में अनेकशः प्रतिपादित है। इस प्रकार वेदशब्द द्वारा पुराण तथा इतिहास दोनों का बोध होता है। ऋग्वेद आदि से इतिहास और पुराण का पार्थक्य इतना ही है कि इतिहासपुराण स्त्री, शूद्र आदि को भी अधिकार प्राप्त है और इसमें स्वर विधान नहीं है। इतिहास और पुराण में भी पुराण की गरिमा अधिक है।

इसी दृष्टि से महर्षि व्यास ने सभी पुराणों तथा ब्रह्मसूत्रों की रचना करके भी अपरितुष्ट होकर ब्रह्मसूत्रों के भाष्यस्वरूप भागवतपुराण को समाधि के द्वारा प्राप्त किया और उसे प्रकट किया। भागवत में सभी शास्त्रों का समन्वय दृष्टिगोचर होता है। यह भागवत समस्त वेदों के सूत्रस्वरूप गायत्री को आधार बनाकर प्रवृत्त हुआ है। अतः भागवत ही परम प्रमाण है। इस शोधपत्र में चैतन्यमत का सार प्रस्तुत किया गया है, जिसमें भागवत को प्रमाण माना गया है।

❖

PR-147

गौतम-धर्मसूत्र में आश्रम-व्यवस्था

श्री वेद प्रकाश, कुरुक्षेत्र

मानव जीवन से सम्बन्धित वेदविहित व्यवस्थाओं में आश्रम-व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण स्थान है। तदनुसार मानव जीवन को सुव्यवस्थित रूप प्रदान करने के लिए मनुष्य की आयु सौ वर्ष मानी गई है। इसी क्रम में गौतम-धर्मसूत्र में वर्णित आश्रम-व्यवस्था प्रस्तुत शोध-पत्र का विषय है।

इसके अन्तर्गत आश्रम-व्यवस्था सम्बन्धी विभिन्न आधारों एवं उसके महत्त्व को प्रतिपादित किया गया है। प्रारम्भ में आश्रम शब्द के व्युत्पत्तिलभ्य एवं कोशगत अर्थ को स्पष्ट करते हुए तुलनात्मक दृष्टि से वेदों, ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों में विहित आश्रम-व्यवस्था का संक्षिप्त उल्लेख किया गया है। तत्पश्चात् इस सन्दर्भ में विभिन्न धर्मशास्त्रकारों के मतों पर प्रकाश डाला गया है। इसके पश्चात् प्रधान विषय गौतम-धर्मसूत्र में विहित ब्रह्मचारी, गृहस्थ, भिक्षु, वैखानस, आश्रम-व्यवस्था एवं उसके आधारों का सैद्धान्तिक प्रतिपादन किया गया है। साथ में ही प्रत्येक आश्रम के अन्तर्गत व्यक्ति द्वारा क्रियमाण कर्त्तव्यों पर प्रकाश डाला गया है।

इस विवेचन से हमारे सामने प्राचीन समय में आश्रम-व्यवस्था का स्वरूप, उसकी उपयोगिता एवं आधुनिक समय में उसकी प्रासङ्गिकता लक्षित होती है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-148

श्रीयन्त्र का शास्त्रीय अध्ययन

डॉ. सतीरमण झा, मधुबनी

वेद, उपनिषद्, पुराण, स्मृति आदि विभिन्न शास्त्रीय ग्रन्थों में एवं तन्त्रशास्त्रों में श्रीयन्त्र का बृहद् वर्णन अनादि काल से अवच्छिन्न गति से अद्यावधि मिलता आ रहा है। भारतीय एवं पाश्चात्त्य विद्वानों ने इसका सूक्ष्म भाव एवं बृहद् अर्थ का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन कर विवेचना की है। किन्तु श्रीयन्त्र के वैज्ञानिक महत्त्व पर विशेष प्रकाश की आवश्यकता है।

नौ चक्रों से निर्मित श्रीयन्त्र का सर्वस्व बिन्दु है। जो 'पूर्णमिदं....' आदि विभिन्न शास्त्रीय अवधारणाओं की सृष्टि कर अहं का द्योतक हैं। भौतिकवादी इस युग में अहंभाव का विशेष ज्ञान आवश्यक हो गया है। विभिन्न दर्शनों ने इसी अहं को विभिन्न शब्दों में अभिव्यक्त किया है।

श्री शङ्कराचार्य ने सौन्दर्यलहरी तथा आनन्दलहरी में श्रीयन्त्र का प्रत्यक्ष निरूपण कर इसके महत्त्व को विद्वानों में विशेष ध्यान देने के लिए प्रवृत्त किया है।

मैंने अपने इस शोध मूलक आलेख में अनादिकालीन वेद, उपनिषद्, स्मृति, पुराण, तन्त्रशास्त्र आदि से लेकर आधुनिक युग के विभिन्न विद्वानों के पक्ष का यथोचित्त रूप से सन्निवेश कर विद्वज्जनों के समक्ष उपस्थापित करने का प्रयास किया है।

❖

PR-149

पं. जटानन्द झा विरचित श्रीयन्त्र

श्रीमती सुनीला झा, दरभङ्गा

'शिवशक्तिरिति ह्येकं तत्त्वमाहुर्मनीषिणः' तन्त्र-शास्त्र का अन्तिम सिद्धान्त है। सृष्टि के आदि काल में, अनादिकाल से जो अव्यक्त, पूर्ण, निराकार और शून्य स्वरूप वस्तु विराजमान है वह तत्त्वातीत, प्रपञ्चातीत तथा व्यवहार पथ के भी अतीत है। वही शास्त्रों की महाशक्ति है, शैवों के परमशिव हैं। वाणी और मन के अगोचर होने के कारण ही इसे अनुत्तर कहा जाता है।

इस तत्त्वातीत अनुत्तर अवस्था के लिए शास्त्रों में वाचक रूप में आदिवर्ण 'अ'कार का प्रयोग होता है। शिव ही 'अ' और शक्ति ही 'ह' है। बिन्दु रूप में यही अहं अथवा पूर्णहन्ता है। इसी साम्य का दूसरा नाम परमात्मा है।

तान्त्रिक सिद्धान्त के अनुसार अहं भाव ही सकल विश्व है। सृष्टि-संहारात्मक सकल विश्व को कुक्षि में लिए हुए इसी अहं भाव का द्योतक बिन्दु है जो श्रीयन्त्र का सर्वस्व है। श्रीयन्त्र में बिन्दु के बाद त्रिकोण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आता है। श्रीयन्त्र नवचक्रों से बनता है। त्रिकोण, अष्टार, अन्तर्दशार, बहिर्दशार और चतुर्दशार ये पाँच अधोमुख तथा बिन्दु, अष्टदल, षोडशदल, भूपुर या चतुरस्र से चार ऊर्ध्वमुख कुल नौ चक्र हैं।

पं. जटानन्द झा जी ने अपनी पुस्तक 'श्रीयन्त्र' में इन नौ चक्रों के साथ ही श्रीयन्त्र के विभिन्न तत्त्वों का विस्तृत विवेचन विभिन्न शास्त्रीय ग्रन्थों के आधार पर उपस्थापित किया है। मैंने उसके सारगर्भित भाव को शोधात्मक रूप में विद्वज्जनों के समक्ष अपने आलेख को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

❖

PR-150

वर्तमान सन्दर्भ में मनु की प्रासङ्गिकता

डॉ. मीरा द्विवेदी, बड़ोदरा

भारतीय संस्कृति एवं धर्म की अद्वितीय विशेषता है–वर्णव्यवस्था; जिसके विषय में आज भी विचारों का मन्थन जारी है और इसकी विशाल विकार रूप आरक्षण-व्यवस्था में परिवर्तन हो गया है। वर्णव्यवस्था के प्रशसंक और विरोधक दोनों हैं; परन्तु मूलतः यह सभी मानते हैं कि यह व्यवस्था गलत नहीं थी, उसके पीछे मनुष्यों के आचार और कर्म का विवेक था और इस प्रकार समाज के विभाजन की व्यवस्था किसी न किसी रूप में सभी संस्कृतियों और देशों में मिलती है, समाज में विभिन्न वर्गों का होना आवश्यक तथा स्वाभाविक है; क्योंकि सभी समान प्रतिभा और समान आदतों तथा समान कार्य शैली के साथ उत्पन्न नहीं हो सकते।

इसीलिए गीता में कहा गया है–"चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः"

परन्तु मनुस्मृति में दी गयी व्यवस्था निश्चित ही असमानता उत्पन्न करती है जहाँ ब्राह्मण जाति में उत्पन्न व्यक्ति क्षत्रिय या वैश्य का कार्य करता है तो भी वह राजा के राज्य में धर्मप्रवक्ता हो सकता है; पर शूद्र ब्राह्मण का कर्म करता हुआ भी धर्मप्रवक्ता नहीं हो सकता। यदि वह राज्य का विचार करे तो राज्य का पतन हो जाता है। साक्षी के रूप में वर्ण-क्रम से भिन्न शब्दों द्वारा शपथ-भेद, भिन्न दण्ड-व्यवस्था, भिन्न आचार-व्यवहार व्यवस्था आदि से सामाजिक व्यवस्था में असन्तुलन असमानता का आना स्वाभाविक है। इस अव्यवस्था के विरोध में लार्ड मैम्युले 1860 में समान दण्ड विधान लाये, जिसे हमारे आई. पी. सी. अर्थात् भारतीय दण्ड विधान में शामिल किया गया। अपराध के अनुसार सभी वर्णों को समान दण्डविधान।

'आरक्षण' जिसका न कोई गुण, न कोई योग्यता, न कोई सीमा, परिवर्तित व्यवस्था में पुनः निषेधों का प्रतिपादन 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः' का विरोधाभास प्रस्तुत कर रहा है। इस विचार में कतिपय सुधार और परिवर्तन वांछनीय है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-151

बीसवीं शताब्दी में अद्वैत वेदान्त

डॉ. कमला देवी, लाहा

बीसवीं शताब्दी में अद्वैत वेदान्त अखिल भारतीय स्तर पर सर्वाधिक व्यापक और लोकप्रिय दर्शन रहा। संस्कृत में इस विषय पर लिखे गये ग्रन्थों की एक सुदीर्घ पंक्ति है। इनमें कई मौलिक ग्रन्थ हैं, कई भाष्य और टीकाएँ हैं। इस युग में अद्वैत, विशिष्टाद्वैत एवं द्वैत-वेदान्त के दिग्गज विद्वानों के बीच लम्बी खण्डन-मण्डन परम्परा भी चली, जिससे तीनों दर्शनों का स्वरूप और भी परिष्कृत और परिवर्धित हुआ।

बीसवीं शताब्दी में चले इस खण्डन-मण्डन का चरमोत्कर्ष अद्वैतवेदान्त की ओर से म.म. अनन्तकृष्ण शास्त्री तथा विशिष्टाद्वैत के प्रसिद्ध विद्वान् उत्तमूर वीर राघवाचार्य के ग्रन्थों में दिखायी देता है। अनन्तकृष्ण शस्त्री ने विशिष्टाद्वैत के मूर्धन्य विद्वान् वेंकटनाथ वेदान्तदेशिक की 'शतदूषणी' के खण्डन में 'शतभूषणी' नामक ग्रन्थ लिखा, जिसका खण्डन उत्तमूर राघवाचार्य की ओर से 'परमार्थभूषण' नामक प्रौढ़ ग्रन्थ लिखकर किया गया। अनन्तकृष्ण शास्त्री की "वेदान्तरक्षामणि' में की गयी श्रीभाष्य की आलोचना का उत्तर वीरराघवाचार्य ने 'सिद्धान्तकौस्तुभ' नामक ग्रन्थ लिखकर दिया। पुनः अनन्तकृष्ण शास्त्री की ओर से "अद्वैततत्त्वशुद्धि" लिखकर इन दोनों खण्डनों का उत्तर दिया गया और अद्वैतमत की स्थापना की गयी।

इस प्रकार इस प्रपत्र में बीसवीं शती में अद्वैत वेदान्त की प्रमुख प्रवृत्तियों, उसके विद्वानों एवं उनकी रचनाओं एवं अद्वैत वेदान्त के कतिपय सिद्धान्तों के परिष्कार-परिवर्द्धन में इस युग की महती देन चर्चा की गयी है।

❖

PR-152

प्रज्ञाचक्षु गुलाबराव महाराज का दार्शनिक चिन्तन

कलापिनी राणे, रामटेक

वैदिक काल से आजतक अनेक विद्वान् महर्षियों ने अपने चरणस्पर्श से इस भारतभूमि को पावन किया है। इन ज्ञानपिपासुओं को जो सत्यज्ञान की अनुभूति हुई वह उन्होंने सामान्यजनों के लिए साहित्यरूप में उपलब्ध करायी। भारतभूमि के नभोमण्डल में प्रकाशमान इन तेजस्वी नक्षत्रों की परम्परा में एक देदीप्यमान नक्षत्र 19वीं शताब्दी में विदर्भ में माधान नामक ग्राम में प्रकाशमान हुआ, जिसने अपने ज्ञानप्रकाश से इस भूमि को आभा दी। उस तेजस्वी नक्षत्र का नाम था—श्री गुलाबराव मोहड।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शके 1803 (6.7.1881) वृषभनाम संवत्सर में आषाढ़ शुद्ध दशमी को गुलाबराव महाराज का जन्म हुआ। आयु के नौवें मास में ही उनकी बाह्य दृष्टि चली गयी किन्तु अपने अलौकिक सामर्थ्य से उन्होंने प्रज्ञाचक्षुत्व प्राप्त किया। शिक्षा के संस्कार से भी वंचित रहे। उन्होंने ज्ञानपिपासुओं की पिपासा पूर्ण करने के हेतु 130 से अधिक ग्रंथसंपदा का निर्माण किया। उनके इस साहित्य संपदा में धर्म, विज्ञान, योग, सांख्य, भक्ति, आयुर्वेद आदि विविध विषय निहित हैं। प्राचीन ऋषियों के विचारों का अपनी अनुभूति द्वारा मंथन करते हुए उन विचारों को सामान्य जनों के लिए महाराज ने सरल भाषा में प्रस्तुत किया। इन ग्रंथों में महाराज ने जो दार्शनिक विचार प्रकट किये हैं उन विचारों का सारांश एकत्रित रूप से देने का प्रयास इस निबंध में किया गया है।

❖

PR-153

विष्णुपुराण में तन्त्र

डॉ. शीतला प्रसाद उपाध्याय, वाराणसी

कृष्णद्वैपायन वेदव्यास प्रणीत विष्णु-पुराण, अष्टादश महापुराणों के क्रम में तृतीय स्थान प्राप्त, एक महापुराण है। परम्परा के अनुसार इसका आविर्भाव, भगवान् कृष्ण के अवतार-काल द्वापर युग में, तेईस हजार श्लोकों में हुआ, बतलाया जाता है। काल-गणना की आधुनिक पद्धतियों के अनुसार, विद्वानों ने इसकी रचना ईस्वी पूर्व द्वितीय शती के काल-खण्डों में निर्धारित की है। इसकी गणना सात्त्विक पुराणों में होती है। इसमें प्रधान देवता विष्णु हैं। यह पुराण मुख्य रूप से वैष्णव-मत और भागवत-सम्प्रदाय का प्रतिपादन करता है। इसके वक्ता पराशर एवं श्रोता मैत्रेय हैं।

यद्यपि इस पुराण में शैव-शाक्त आगमों से सम्बद्ध सामग्री का स्पष्ट उल्लेख नहीं है, फिर भी इस पुराण पर पड़े वैष्णवागमों के प्रभावों को हम नकार नहीं सकते।

प्रस्तुत निबन्ध में इन्हीं तथ्यों पर गम्भीरता से विचार करने का एक लघु प्रयास किया गया है।

❖

PR-154

'सांख्य और वेदान्त-मत में ईश्वर विचार'

डॉ. कु. उषा माथुर, मेरठ

भारतीय दर्शन की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता है–उसकी उदार एवं व्यापक मनोवृत्ति। प्रत्येक दर्शन प्रत्येक विषय पर स्वतन्त्र विचार करता है। यही कारण है कि मूल उद्देश्य एक होते हुए भी दार्शनिक विचारधारायें भिन्न-भिन्न हैं। ईश्वर के विषय में सेश्वरवादी और निरीश्वरवादी दो प्रकार की विचारधारायें तो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलती ही हैं, साथ ही कुछ दर्शन ऐसे भी हैं, जिनमें सेश्वरवादी और निरीश्वरवादी दोनों ही प्रकार के विचार मिलते हैं। उदाहरणार्थ, सांख्य के कुछ आचार्य सेश्वरवादी हैं और कुछ निरीश्वरवादी।

ईश्वर विचार के सम्बन्ध में सांख्य दर्शन को तीन युगों में विभक्त किया जा सकता है। पहला सांख्य ग्रन्थों के निर्माण के पूर्व का युग (गीता-महाभारतादि में प्रतिपादित सांख्य) जिसमें सांख्य का सेश्वरवादी रूप मिलता है। दूसरा ग्रन्थनिर्माण के बाद का वह युग (जिसे भी Classsical Samakhya कहा जाता है) जिसमें सांख्य दर्शन निरीश्वरवाद का रूप धारण कर लेता है और तीसरा अर्वाचीन युग (सूत्रों एवं भाष्य का युग) जिसमें सांख्य फिर अपने उसी प्राचीन रूप में आ जाता है। इससे यह प्रकट होता है कि सांख्य अर्वाचीन काल में वेदान्त के इस सीमा तक समीप आ जाता है कि वह अपने मौनालम्बन को तोड़कर ईश्वर विचार को अपना लेता है। किन्तु वेदान्त में ईश्वर का विवेचन जितना उत्कृष्ट है, उतना सांख्य में नहीं। वेदान्त का ईश्वर जितना महत्त्वपूर्ण और गौरवशाली है, उसकी तुलना में सांख्य का ईश्वर अत्यन्त गौण है। सांख्य का ईश्वर न तो सृष्टिकर्ता है और न कर्मफल का अधिष्ठाता। यही कारण है कि सामान्य धारणा सांख्य के विषय में निरीश्वरवादी है। अर्वाचीन सांख्य ईश्वर की सत्ता को तो स्वीकार कर लेता है, किन्तु उसका कार्य केवल प्रकृति को प्रेरणा देना है। वह सृष्टि रचना में कोई सहयोग नहीं देता।

इस प्रकार यद्यपि दोनों दर्शनों में ईश्वर सर्वशक्तिशाली, सर्वान्तर्यामी और सर्वगुण सम्पन्न है, किन्तु वेदान्त में ईश्वर का जो महनीय रूप मिलता है, वह सांख्य में नहीं दिखाई देता।

❖

PR-155

सञ्चालन की विभावना और श्रीमद्भगवद्गीता

डॉ. पङ्कज जी त्रिवेदी, पालिताणा

"सञ्चालन अर्थात् अन्य से काम लेने की कला।"

जार्ज आर. बेरी का उपर्युक्त वाक्य सूचित करता है कि जहाँ दो से ज्यादा व्यक्ति जुड़े हुए हैं, वहाँ सञ्चालन अपने आप अमल में आता है। इस प्रकार सञ्चालन सार्वत्रिक है। दिन-प्रतिदिन उसमें नया संशोधन और विकास होता रहता है।

इसके बावजूद समग्र विश्व में सञ्चालन के क्षेत्र में कई त्रुटियाँ देखने को मिलती हैं। हमारे देश के पास बहुत ही समृद्ध सांस्कृतिक विरासत है। वेदान्त के सिद्धान्त और श्रीमद्भगवद्गीता के उपदेश वर्तमान समय में उद्योगों के सञ्चालन और प्रशासन की सफलता के लिए उपयोगी बन सकते हैं। आवश्यकता है मात्र, इस प्रकार के मूल्यों के अमल करने की। सञ्चालन के मुख्यकार्य आयोजन, प्रबन्ध, दिशानिर्देश और अङ्कुश में श्रीमद्भगवद्गीता में निर्देशित 'मानवमूल्य' किस तरह उपयोगी होते हैं, यही इस निबन्ध में प्रतिपादित है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-156

धर्म और धर्मसङ्कट

श्री अमित कुमार झा, दरभङ्गा

धर्म का शाब्दिक अर्थ है, "धारण करने योग्य" अर्थात् जब-जब पृथ्वी पर सङ्कट की घड़ी आती है, मानव समाज पर खतरे के बादल मँडराने लगते हैं, तब-तब कोई न कोई धर्मविशेष उस सङ्कट से मुक्ति दिलाने के लिए जन्म लेता है। जैसे– वैदिक युग में हिन्दू धर्म, पाँचवीं तथा छठीं शताब्दी ई. पू. में जैन तथा बौद्ध धर्म, प्रथम शताब्दी में इसाई धर्म और छठीं शताब्दी में इस्लाम धर्म। जहाँ तक इन धर्मों के उदय की बात है, हमारी संस्कृति प्रत्येक धर्म के उदय में उसके संस्थापक को एक अवतार मानती है, जैसा कि गीता में स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है।

पहले के लोग लोकहित में प्राण भी त्याग देते थे। दधीचि मुनि जैसे महर्षि इसके उदाहरण हमारे सामने मौजूद हैं। उन सबों का बस यही मानना था कि–"परहित सरिस धरम नहीं भाई, पर पीड़ा सम नहीं अध माई।" लेकिन आज थोड़े से फायदे के लिए एक देश दूसरे देश पर आक्रमण कर देता है, लाखों धन-जन की क्षति होती है।

❖

PR-157

स्मृतियों में प्रतिपादित मानवीय मूल्यों की आधुनिक सन्दर्भ में उपयोगिता

डॉ. भारतेन्दु द्विवेदी, हमीरपुर

'इण्डिया टूडे' पत्रिका, स्वतन्त्रता दिवस विशेषाङ्क दिनाङ्क 23 अगस्त, 2004 में, 57 उपाय भारत को बेहतर बनाने के सम्बन्ध में, समस्याएँ और समाधान दोनों ही प्रकाशित किए हैं। इन पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाए तो कम से कम 11 बिन्दु ऐसे हैं, जो मानवीय गुणों के विकास और उसकी आवश्यकता पर बल देते हैं। ये 11 बिन्दु हैं—बुढ़ापे के सहारे की समस्या, सबके लिए स्वास्थ्य, अतीत को मिले सम्मान, शान्ति-मार्च, नेक काम में मदद, आस्था के संरक्षक बनें, गोद लें गाँवों को, महिलाओं को सम्मान, दर्द का एहसास करें और समाज सेवा में भाग लें, अच्छा खायें और मिलावटी पदार्थों से दूर रहें, फौरन सेवा की आवश्यकता। इन मानवीय गुणों के ह्रास के कारण आज मनुष्य का पतन होता जा रहा है। वह भी एक भौतिक युग की मशीन बन गया है। मनुष्य समाज एवं परिवार से कटता जा रहा है। मनुष्य के अन्दर मानवीय संवेदना में ह्रास हुआ है। यदि इनके कारणों पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाए तो ज्ञात होता है कि कारणों का मूल है अपनी संस्कृति से विमुख होना। आज हम अपनी इस आधारशिला से अलग हो रहे हैं, जिससे हमारे पूर्वजों ने प्राचीन ऋषियों, महर्षियों से लेकर तैयार किया था और विश्व को ज्ञान का प्रकाश दिया था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय संस्कृति में जिस प्रकार वेद संस्कृति के आधार ग्रन्थ हैं, उसी प्रकार स्मृतियाँ भी संस्कृति के आधार एवं प्रामाणिक ग्रन्थ हैं। मनु के अनुसार श्रुति वेद हैं और स्मृतियाँ धर्मशास्त्र हैं। दोनों से ही धर्म का प्रादुर्भाव हुआ है। स्मृतियाँ भारतीय आचार संहिता हैं। मनुष्य के कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का इनमें विशद निर्देश है। स्मृतियों में आचार-शिक्षा, व्यवहार, नीति, कर्मविज्ञान और सांस्कृतिक जीवन के सभी तत्त्वों का विस्तृत विवेचन हुआ है। स्मृतियाँ आचारसंहिता के रूप में प्रकाश स्तम्भ हैं। ये अन्धकार से प्रकाश की ओर, अवनति से उन्नति की ओर और सङ्कोच से विकास की ओर ले जाती हैं। स्मृतियों का उद्देश्य है—सांस्कृतिक जीवन का विकास करके लोक और परलोक दोनों को सिद्ध करना तथा भौतिक, धार्मिक, व्यावहारिक और सामाजिक जीवन को उन्नत करना।

प्रस्तुत शोधपत्र का यही प्रतिपाद्य है। इस शोधपत्र के माध्यम से स्मृतियों में वर्णित मानवीय मूल्यों को प्रतिस्थापित करने का यह लघु प्रयास है।

❖

PR-158

धर्म एवं दर्शन : एक विवेचन

पं. ध्रुवपति पाण्डेय, बलिया (उ.प्र.)

मनुष्य बौद्धिक रूप से विकसित होता है तो धर्म से आबद्ध होने लगता है। धर्म चेतना की पराकाष्ठा है। भारत में धर्म की परिभाषा है–चिरन्तन सत्य। जहाँ दूसरे धर्मों का मूल केवल शान्ति है वही भारतीय धर्म में सत्, चित् और आनन्द-सच्चिदानन्द की कल्पना है। यहाँ धर्म का मूल है बिना भेदभाव के सबका अभ्युदय और कल्याण की कामना—"यतोऽभ्युदयनिश्श्रेयससिद्धिः"। इसकी आत्मा आचार है—"आचारो धर्मः"। जहाँ दूसरे धर्म सीमित भौतिकता से जुटे हैं वहीं भारतीय धर्म सार्वभौमिकता एवं आध्यात्मिकता से जुड़ा है।

भारतीय दर्शन को 'तत्त्वदर्शन' कहा जाता है। दार्शनिक विद्वान् हिरियन्ना के अनुसार—'भारतीय जीवन की समस्याओं के तात्त्विक साक्षात्कार का उद्देश्य है 'जीवन में दुःखों का अन्त ढूँढना'। यही मोक्ष की स्थिति है। मोक्ष का अर्थ है 'दुःख-निवृत्ति'। यही भारतीय दर्शन का लक्ष्य है। यही कारण है कि भारतीय दर्शन को मोक्ष दर्शन भी कहा जाता है। यहाँ मोक्ष की प्राप्ति आत्मा के द्वारा मानी गयी है। यही कारण है कि भारतीय दर्शन में आत्मा की महत्ता के कारण इसे 'आत्माविद्या' भी कहते हैं।

उपर्युक्त आशय का विशदीकरण प्रस्तुत शोध-पत्र का स्वरूप होगा।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-159

युग प्रवर्तक–आद्य शङ्कराचार्य

डॉ. श्रीमती माया त्रिपाठी, भदोही

दर्शनाकाश के जाज्वल्यमान नक्षत्र के समान भासमान वेदान्तिक परम्परा के आचार्यों में आद्य शङ्कराचार्य का नाम सर्वोपरि है। वे भारतीय एकता और भारतीय संस्कृति के निर्माताओं के निर्माता हैं। वेदान्त के युगान्तकारी क्रान्तिकारी आचार्य शङ्कर ने अपने समय के विभिन्न धार्मिक और राजनैतिक वर्गों को एक बूँद रक्तपात किये बिना ही, एकता के महान् सूत्र में गुम्फित कर दिया। इतिहास में आचार्य शङ्कर एक देवदूत हुए, जिनकी अन्तर्दृष्टि, विद्वता एवं संगठन के कारण भारत विश्व में तेजोदीप्त हुआ। वस्तुतः भारतवर्ष में राष्ट्र की मूलभूत एकता को व्यावहारिक स्वरूप देने वाले आचार्य शङ्कर ही हुए हैं, जिन्होंने एकदेशीयता, सङ्कीर्णता, दुर्बलता, मतमतान्तर, बाह्याडम्बरों में फँसी भारतीय जनता को ज्ञानालोक से प्रकाशित किया।

भगवान् शङ्कराचार्य दर्शन जगत् के सूर्य हैं और उन्होंने अपने आलोक से भारतीय दर्शन के भ्रान्त दार्शनिकों को एक उपयुक्त दिशा दी है। बौद्ध विप्लव के अनन्तर हिन्दू धर्म को सनातन वैदिक आदर्श में पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए दूरदर्शी प्राज्ञ आचार्य ने भारत के चार प्रान्तों में चार धर्मदुर्ग 'मठ' स्थापित किये जो शङ्कराचार्य मठ के नाम से जाने जाते हैं। प्रहरी के समान ये चारों मठ भारत की चारों सीमाओं की रक्षा करते हुए आज तक हिन्दू-धर्म की विजय पताका फहरा रहे हैं।

❖

PR-160

योग-दर्शन में जीवन्मुक्ति

डॉ. सुधा जैन, रोहतक

भारतीय दर्शन का परम लक्ष्य मोक्ष है। प्रत्येक भारतीय दार्शनिक-सम्प्रदाय ने मानव जीवन के परम पुरुषार्थ मोक्ष की कल्पना अपनी-अपनी मान्यताओं के अनुसार की है। योगदर्शन के अनुसार प्रकृति और पुरुष के संयोग का अभाव ही मोक्ष है। मोक्ष को विस्तार से प्रस्तुत करने के लिए योग-दर्शन में चतुर्व्यूह का उल्लेख मिलता है। ये चतुर्व्यूह हैं—हेय, हेय-हेतु, हान और हानोपाय। महर्षि पतञ्जलि के अनुसार अविद्या का नाश होने पर बुद्धि-सत्त्व एवं पुरुष के संयोग का अभाव होना ही हान या पुरुष का कैवल्य है; अर्थात् दुःख के कारण-भूत संयोग के निवृत्त होने पर दुःख का उपरम होना ही हान है। इस समय पुरुष अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाता है। सूत्रकार और भाष्यकार ने मोक्ष के स्वरूप का वर्णन तो किया है, उसके भेदों का नहीं। टीकाकार नारायणतीर्थ ने अपनी चन्द्रिका टीका में इस विषय को उठाते हुए कहा है कि निरोधवान् योगी दो प्रकार का होता है—युक्त और अयुक्त। जब समाहित

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनवाला योगी समाधिनिष्ठ होता हुआ मोक्ष को चाहता है तो वह युक्त है और इसके विपरीत असमाहित मनवाला योगी अयुक्त है। योगयुक्त योगी से तात्पर्य सम्भवतः जीवन्मुक्त से ही है। उनके अनुसार सभी चित्तवृत्तियों के निरोध के समय उनके साक्षी पुरुष का स्वप्रकाशात्मक रूप में अवस्थान हो जाता है। जिस प्रकार कुसुम के हटा लिए जाने पर स्फटिक मणि का पीत-लोहित आदि रूप भी हट जाता है और वह मणिस्वरूप से स्थित हो जाता है, उसी प्रकार क्लेशादि का नाश होने पर पुरुष का चित्तादि से संक्रमण नहीं होता और चित्त की शान्ता-घोरा और मूढ़ा अवस्थाओं की निवृत्ति हो जाती है और इस प्रकार पुरुष में विद्यमान अभिमान की निवृत्ति होने पर, वह अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाता है तथा हर्ष-शोकादि वृत्तियों से रहित वह विद्वान् जीवन्मुक्त कहलाता है।

❖

PR-161

श्रीमद्भगवद्गीता में 'क्षर', 'अक्षर' एवं 'पुरुषोत्तम'

प्रो. गया राम पाण्डेय, वाराणसी

श्रीमद्भगवद्गीता अध्यात्मविद्या का अप्रतिम ग्रन्थ है। इसे 'उपनिषद्', 'ब्रह्मविद्या' और 'योगशास्त्र' कहा गया है। इसमें भारतीय दर्शन की तत्त्वमीमांसा के प्रमुख विषय 'आत्मा' अथवा 'पुरुष' के स्वरूप की सूक्ष्म मीमांसा की गयी है। 'क्षर', 'अक्षर' और 'पुरुषोत्तम' की अवधारणा में गीता के एतद्विषयक सिद्धान्त का सार समाहित है। प्रस्तुत शोधनिबन्ध में प्राचीन एवम् अर्वाचीन प्रमुख व्याख्याकारों के विचारों के आलोक में इसके दार्शनिक निहितार्थों का विमर्श किया गया है।

❖

PR-162

क्रियायोग : एक समीक्षा

श्री शिवकुमार वर्मा, होशियारपुर

पातञ्जलयोगसूत्र, व्यासभाष्य एवं महाभारत के सन्दर्भ में योग-दर्शन मानव का सर्वांगीण विकास करता है। आसन तथा प्राणायाम से शरीर बलवान व नीरोग बनता है। ध्यानसाधना से मानसिक एकाग्रता प्राप्त होती है। जिससे किसी कार्य को उत्कृष्ट रूप से सम्पन्न करने की योग्यता उपलब्ध होती है। प्रस्तुत लेख में पातञ्जलयोगसूत्र में वर्णित क्रियायोग पर व्यासभाष्य और महाभारत में उपलब्ध योगसामग्री का तुलनात्मक विवेचन किया गया है। तप, स्वाध्याय व ईश्वरप्रणिधान क्रियायोग है। इसके द्वारा समाधि को प्राप्त किया जा सकता है। लम्बे व्रत रखना, जङ्गलों में जाना अथवा धार्मिक स्थानों पर जाना तप नहीं है; क्योंकि इनके द्वारा जब मनुष्य गर्व करने लग जाता है तो आत्मा का हनन होता है व अहङ्कार बढ़ता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। जो दूसरे की कमाई खाता है वह पापी है। गीता में भगवान् कृष्ण अर्जुन को उपदेश करते हुए कहते हैं कि देवता, विद्वानों, माता-पिता व आचार्यों की सेवा करना ही तप है।

यम-नियम का पालन करना भी तपस्या है। तपस्या का फल तुरन्त नहीं मिलता; लेकिन मिलता अवश्य है।

स्वाध्याय द्वारा मन एकाग्र होता है व ज्ञान मिलता है। ज्ञान के बिना मोक्ष नहीं मिलता। स्वामी दयानन्द जी ने कहा था कि वेदों का पढ़ना-पढ़ाना सभी आर्यों का धर्म है। हमें रामायण, वेद, गीता, उपनिषद् आदि पढ़ने चाहिए। इससे हमें ज्ञान प्राप्त होगा व बुद्धि स्थिर होगी।

स्वाध्याय द्वारा ईश्वरप्रणिधान स्वतः ही हो जाता है; क्योंकि स्वाध्याय से ईष्ट से हमारा मेल हो जाता है।

ईश्वरप्रणिधान का अर्थ है—अपना शरीर, मन, बुद्धि सभी कुछ ईश्वर को अर्पित करना। व्यासभाष्य में ईश्वरप्रणिधान का अर्थ करते हुए कहा है कि परमगुरु ईश्वर में सभी कर्मों व उनके फलों को अर्पित करना ही ईश्वरप्रणिधान है। इसी प्रकार महाभारत में भी शारीरिक, मानसिक व वाचिक सभी कर्मों को ईश्वरार्पित करने को ही ईश्वरप्रणिधान कहा गया है।

अतः जो मनुष्य तपस्या व तपस्याजन्य फलों को भगवत् अर्पण करता है तो भगवान् उसे दर्शन भी देते हैं व प्रोत्साहित भी करते हैं। इस प्रकार क्रियायोग का फल समाधि-लाभ अर्थात् भगवत्प्राप्ति ही है।

❖

PR-163

पं. हरेकृष्ण मिश्र कृत वैदिक वैष्णव सदाचार : धर्मशस्त्रीय अध्ययन

डॉ. शालिनी सक्सेना, जयपुर

पं. श्री हरेकृष्ण मिश्र का जयपुर आगमन महाराज सवाई जयसिंह (1699-1743) के द्वारा अनुष्ठित अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर हुआ। यज्ञोपरान्त आप महाराज द्वारा न्यायाधीश पद पर विभूषित किये गए। ईश्वरविलास (4/41) में भी आपका उल्लेख किया गया है। आप कर्नाटक निवासी थे। अश्वमेध के समय (सं. 1792) आप जयपुर आये थे। आपकी धर्मशास्त्रीय रचना 'वैदिक वैष्णव सदाचार' प्राप्त होती है।

इस ग्रन्थ में वैष्णवों के कर्तव्यों का दिग्दर्शन है। यह ग्रन्थ वैष्णवों के धर्मशास्त्रीय नियमों का विवेचन करता है। भगवान् विष्णु का पूजन-प्रकार प्रस्तुत करना लेखक का अभीष्ट था। विष्णु-पूजा के तीन प्रकारों में वैदिकी पूजा मुख्य है, उसी का विधान इस कृति में किया गया है। इसमें भी मिश्र मार्ग दो प्रकार का है—तन्त्र-प्रधान व वेद-प्रधान। जो तन्त्र मार्ग के अनुयायी हैं वे तन्त्र का और जो वेद मार्ग के अनुयायी हैं वे इस मार्ग का अनुसरण करें। उन्होंने दीक्षा प्रकार का उल्लेख कर अदीक्षितों के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए पूजन-नियम भी बताये हैं। वैदिक वैष्णवों के लिए पञ्चायतन पूजा को आवश्यक मानते हुए पं. मिश्र ने पञ्चायतन पूजा करने वालों को महावैष्णव कहा है। उन्होंने शिव व विष्णु का अभेदान्वय करते हुए एकेश्वरवाद का समर्थन किया है। तिलक-प्रकार, भगवत्पूजन-प्रकार, एकादशी, हरिवासर आदि विशिष्ट अवसरों की पूजा-पद्धति का उल्लेख भी ग्रन्थ का वैशिष्ट्य है। वैष्णवों के लिए नित्य प्रतिदिन अनुष्ठेय आवश्यक कार्यों का विधान एवं तत्सम्बन्धी संक्षिप्त प्रमाण विवेचन करने से यह महत्त्वपूर्ण है।

❖

PR-164

भारतीय संस्कृति में गुरु-शिष्य-परम्परा

सुश्री मीनाक्षी, राँची

भारतीय परम्परा में गुरु शब्द सर्वत्र विशेष व्याप्त है। गुरु की महिमा का वर्णन करते हुए मुण्डमालातन्त्र में सम्पूर्ण विश्व को गुरुमय कहा गया है—'सर्वं गुरुमयं जगत्'। गुरु का समाज में आदरणीय स्थान रहा है। गुरु शब्द की व्युत्पत्ति अनेक प्रकार से की जा सकती है। 'गु' शब्द का अर्थ है— अन्धकार और 'रु' शब्द का अर्थ है— उसका निरोध। इस प्रकार अन्धकार का निरोधक होने से वह 'गुरु' पद से वाच्य है। जो ज्ञान-वारि से शिष्य के हृदय-क्षेत्र को सींचता है, उसे गुरु कहा जाता है—'गरति सिञ्चति ज्ञानवारिणा शिष्यहृदयक्षेत्रम्'। गुरु शिष्य के अज्ञान को निगल जाता है। भारतीय परम्परा में सच्चा गुरु हमारे मिथ्याबोध को नष्ट कर देता है, हमें शास्त्रों के सच्चे अर्थ का बोध कराता है, सुगति और कुगति के मार्गों तथा पुण्य और पाप का भेद प्रकट कर देता है, कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का भेद समझा देता है। गुरु ही ध्यान, पूजा, मन्त्र और मोक्ष का मूल है। ध्यान का मूल है— गुरु की मूर्ति, पूजा का मूल है— गुरु का चरण, मन्त्र का मूल है— गुरु का वाक्य और मोक्ष का मूल है— गुरु की कृपा। दर्प आदि दोषों से रहित एवं शान्तियुक्त शिष्य शिक्षा का अधिकारी है। वह पूर्ण समर्पण के साथ गुरुवचन का पालन करता है। शिष्य के सन्ताप को हरने वाला गुरु ही है। बिना गुरु की दीक्षा के मोक्ष प्राप्त करना सम्भव नहीं है। रुद्रयामल में गुरु के स्वरूप का बड़ा भव्य वर्णन उपलब्ध होता है। गुरु को इन विशेषताओं से युक्त माना गया है— शान्त, जितेन्द्रिय, कुलीन, शुद्ध वेश धारण करने वाला, पवित्र, आचार-सम्पन्न, सुप्रतिष्ठित, शुद्ध, दक्ष, सुबुद्धि, आश्रमी, गृहस्थ, ध्याननिष्ठ, मन्त्रार्थ का ज्ञान कराने वाला, निग्रह और अनुग्रह करने में समर्थ, मन्त्र-तन्त्र-विशारद, रोगहीन, अहंकाररहित, निर्विकार, महापण्डित, वाक्पति, श्रीसम्पन्न, सदा यज्ञ का विधान करने वाला, पुरश्चरण का सम्पादक, सिद्ध, हित और अहितविवर्जित, सभी सुन्दर लक्षणों से समन्वित, विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा समादृत, प्राणायामादि सिद्ध, ज्ञानी, मौनी, वैराग्यसम्पन्न, तपस्वी, सत्यवादी, सदा ध्यानपरायण, आगम-अर्थों का विशेषज्ञ, अपने धर्म के आचरण में तत्पर, भावुक, कल्याणकर, दानपरायण, लक्ष्मीवान्, धैर्यसम्पन्न एवं प्रभुतासम्पन्न। गुरु इन्हीं विशेषताओं को शिष्य में स्थानान्तरित करने का प्रयास करता है। गुरु और शिष्य की परीक्षा की बात भी भारतीय परम्परा का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंग है। अयोग्य शिष्य को मन्त्र देने पर देवता के अभिशाप की सम्भावना रहती है। वस्तुतः शिष्यों को अभ्युदय-योग और निःश्रेयस्-मोक्ष प्रदान करने वाला गुरु श्रेष्ठ है।

❖

PR-165

उत्तराध्ययन एवं मनुस्मृति का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. मिथिलेश कुमारी मिश्रा, पटना

भारतीय आचारसंहिता में मनुस्मृति तथा जैन सम्प्रदाय की आचारसंहिता में उत्तराध्ययन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जब देश आचरण के संकट से गुजर रहा हो, जनता दिग्भ्रमित हो, तो किं कर्त्तव्यविमूढ़ की स्थिति हो जाती है, ऐसी विषम परिस्थिति में दो प्रभावी सम्प्रदायों में आचार का निर्धारण किस प्रकार हुआ, उनके साम्यवैषम्य क्या है? सम्प्रति हमारे समाज के लिए कौन-कौन से आचार अपेक्षित हैं? इस ओर विद्वानों का ध्यानाकर्षण अनिवार्य है। श्रावक हों या गृहस्थ हों। उत्तराध्ययन का निर्धारण तथा मनुस्मृति द्वारा निर्धारित गृहस्थ और संन्यासियों के आचरण आधार कैसे हैं? सम्प्रति ये विषय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

सभी दृष्टियों से दोनों ग्रन्थों का सम्यक् अध्ययन ही इस निबन्ध का उद्देश्य है। साथ ही ऐसे ग्रन्थों द्वारा विवेचित आचार ही हमारे देश व समाज को उन्नति के मार्ग पर ले जाने में सक्षम हो सकेंगे।

पुरातन समय से चले आ रहे दोनों सम्प्रदायों का अध्ययन सामाजिक, सांस्कृतिक दोनों दृष्टिकोणों से महत्त्वपूर्ण है।

❖

PR-166

मनुस्मृति एवं याज्ञवल्क्यस्मृति और मानवाधिकार

डॉ. सुधा गुप्ता, कानपुर

10 दिसम्बर 1948 को संयुक्त राष्ट्रसंघ के तत्त्वावधान में सार्वलौकिक रूप से घोषित मानवाधिकारों के प्रति विश्व के प्रायः सभी देशों के द्वारा मानवाधिकार-आयोग का गठन किया गया। भारत में भी 1993 में 'राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग' का गठन किया गया, जिसके वर्तमान अध्यक्ष श्री जे.एस. वर्मा जी हैं।

मानवाधिकार मानव मात्र को प्रकृति द्वारा प्रदत्त वे अधिकार हैं, जिनका प्रयोग वह सृष्टि की रचना के साथ ही करने लगा था। प्रारम्भिक चरण में जीवन, स्वतन्त्रता तथा रोटी, कपड़ा और मकान तक सीमित मानवाधिकार आज शिक्षा, सम्मान और जीवनोपयोगी आवश्यक दशाओं के साथ विधि-शासन तक विस्तृत होकर विधिसंहिता का आवश्यक अंग बन चुका है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिन मानवाधिकारों के संरक्षण हेतु आज संविधान बनाये गये हैं, उन्हीं अधिकारों को वैदिक काल से ही और उसके पश्चात् स्मृतियुग तक आते-आते तो स्पष्ट रूप से धर्मपरायण, कर्तव्यनिष्ठा के द्वारा समग्र रूप में प्राप्त करने के मंत्र प्राप्त होते हैं। सर्व प्राचीन एवं प्रामाणिक मनुस्मृति एवं याज्ञवल्क्यस्मृति ने मानव के कल्याणार्थ एवं परम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त प्रत्येक क्षेत्र से सम्बन्धित कर्मों का निर्देश किया गया है। इनकी इस समग्र व्यवस्था का यदि ध्यान से अवलोकन किया जाये, तो स्पष्ट हो जाता है कि दोनों ही स्मृतियाँ लगभग समान रूप से धर्म का विस्तृत अर्थों में मानव को बोध कराती हैं। वर्ण धर्म, आश्रम धर्म, वर्णाश्रम धर्म, गुणधर्म, निमित्त धर्म एवं सामान्य धर्म आदि रूपों में धर्म का ही सांगोपांग निरूपण इनमें किया गया है।

प्राचीन भारतीय समाज रचना का मूलाधार वर्णव्यवस्था है। इस वर्णव्यवस्था का ऋग्वेदादि वैदिक साहित्य ने भी समर्थन किया है। यह वर्णव्यवस्था गुण एवं कर्मानुसार थी। भगवद्गीता में भी इसका निर्देश किया गया है। ब्रह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र इन चारों जातियों के परस्पर व्यभिचार से, अनुचित विवाद से और स्वधर्म के त्याग से वर्णसंकर की उत्पत्ति होती है। वर्णसंकर जातियों का वर्णन मनुस्मृति एवं सूतसंहिता के शिवमाहात्म्य खण्ड में मिलता है। यह दोनों ग्रन्थों में वर्णसंकर जाति का जो निरूपण किया गया है, उसमें कई साम्य और वैषम्य दिखाई देते हैं। वर्णसंकर जाति की उत्पत्ति के विषय में जो भेदाभेद है, उसकी तुलना करने का यहाँ पर प्रयास किया है।

❖

PR-167

तन्त्रागम में दीक्षा तत्त्व-विमर्श

डॉ. प्रेमवती, वाराणसी

भारतीय संस्कृति निगमागममूलक है। निगम और आगम दोनों ही हमारे शास्त्रों में स्वतःप्रामाण्य के रूप में स्वीकृत है। वैदिक अष्टादश विद्याओं में त्रिवर्ग का ही अधिकार है, परन्तु तन्त्रागम में स्त्री और शूद्रों का भी अधिकार है। तन्त्रागम में प्रवेशार्थ सर्वप्रथम दीक्षा की आवश्यकता होती है। दीक्षा उपासना का एक आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण अंग है। किसी भी पूजा, साधना, मन्त्रजप या पंचदेवोपासना का अधिकार दीक्षोपरान्त ही प्राप्त होता है। प्रस्तुत निबन्ध में तन्त्रागम के संक्षिप्त परिचय के उपरान्त दीक्षा क्या है? दीक्षा के स्वरूप, दीक्षा के विविध भेद आदि का प्रतिपादन किया गया है। इसी वर्णन क्रम में गुरु का लक्षण, शिष्य की योग्यता एवं अधिकार का भी विवेचन किया गया है। शाम्भवीदीक्षा, शाक्ती-दीक्षा, मान्त्रीदीक्षा, दृग्दीक्षा, वाग्दीक्षा, स्पर्शदीक्षा, वेधदीक्षा आदि दीक्षा के विविध भेदों में मन्त्रदीक्षा महत्त्वपूर्ण है। अतः प्रसङ्गानुसार मंत्र-स्वरूप एवं मन्त्र के भेद, पिण्ड, कर्त्तरि एवं माला मंत्रों पर भी संक्षिप्त चर्चा प्रस्तुत की गयी है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-168

श्री विद्यारण्यस्वामी विरचित पञ्चदशी अन्तर्गत ब्रह्मानन्द आत्मानन्द : एक समीक्षात्मक परिचय

प्रो. गमीरसिंह बारीआ, गुजरात

मोक्ष या मुक्ति मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य है। भारतीय धर्म एवं संस्कृति के उद्‌गाता स्वरूप वेदों का अन्तिम भाग उपनिषद् है, जो वेदान्त के नाम से प्रचलित है। मोक्ष एवं ब्रह्म साक्षात्कार कराने वाली ब्रह्मविद्या का निरूपण प्रायः उपनिषदों का वर्ण्यविषय है। श्रीमद्‌शंकराचार्य अद्वैत वेदान्त के स्थापक हैं। पंचदशी में श्री विद्यारण्यस्वामी तथा उनके परमगुरु श्री भारतीतीर्थस्वामी दोनों का सह कर्त्तव्य है। पञ्चदशी के ग्याहरवें ब्रह्मानन्द-प्रकरण में ब्रह्मस्वरूप परमानन्द की प्राप्ति श्रुति एवं लोकव्यवहार के दृष्टान्तों से सिद्ध कीं गई है।

पञ्चदशी में ब्रह्मानन्द के योगानन्द-प्रकरण में योग द्वारा ब्रह्म में चित्त की एकाग्रता को ब्रह्मानन्द का अनुभव कहा गया है। मुमुक्षु को शोक की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति ब्रह्मज्ञान द्वारा ही होती है। यह बात उपनिषदों के वचनों से सिद्ध करके ब्रह्मानन्द स्वयंप्रकाश है, ऐसा बताया गया है।

जबकि आत्मानन्द-प्रकरण में मन्दबुद्धि वाले जिज्ञासु मनुष्य को आत्मानन्द द्वारा ब्रह्मानन्द का अनुभव कैसे होता है, यह सोदाहरण दर्शाया गया है।

❖

PR-169

भारतीय संस्कृति में धर्म और समाज

श्री आर.आर. कालन कोलेण, कच्छवा

प्राचीन काल से भारतीय संस्कृति भारतवर्ष की भौगोलिक सीमाओं के अन्तर्गत ही नहीं बंधी रही किन्तु उसका प्रचार एवं विस्तार विदेशों में भी हुआ। विश्व के इतिहास से ज्ञात होता है कि भारतीय संस्कृति ने अनेक देशों की संस्कृतियों को प्रमाणित किया।

भारतीय संस्कृति से परिचित होना प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य ही नहीं अपितु धर्म है। हम अपने देश, जाति तथा समाज तीनों का अधिकाधिक कल्याण कर सकते हैं जब अपने देश और राष्ट्र की युग-युगों से चली आ रही सभ्यता एवं संस्कृति से पूर्ण परिचित हों। प्राचीन काल में भारतवर्ष जगद्‌गुरु के महान् पक्ष पर आसन था। संसार के प्रत्येक भाग से मनुष्य हमारे प्राचीन-ऋषियों-महर्षि से शिक्षा प्राप्त करने यहाँ आते थे तथा यहाँ से जाकर अपने समाज, जाति तथा राष्ट्र का कल्याण करते थे। आधुनिक भौतिक वस्तु से त्रस्त एवं पथभ्रष्ट मानव को आध्यात्मिक एवं धर्मप्रधान भारतीय-संस्कृति ही सुख, शान्ति और आश्रय दे सकती हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक शोयेन होकर को भारतीय संस्कृति का अध्ययन कर तथा उपनिषद् का ज्ञान प्राप्त करके ही आत्मिक शांति प्राप्त हुई। वे उपनिषदों को अपना गुरु मानते थे।

❖

PR-170

वाक्यार्थनिर्णय में मीमांसाशास्त्र की प्रासंगिकता

डॉ. गायत्री शुक्ला

वैदिक व्याख्या-पद्धति के रूप में विख्यात मीमांसाशास्त्र की गणना चतुर्दश विद्याओं के अन्तर्गत की गयी है। काल-क्रम के परिवर्तन के फलस्वरूप वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत में पर्याप्त अन्तर दृष्टिगोचर होने लगा है। संक्षिप्त एवं रहस्यमय वाणी होने से ब्राह्मणग्रन्थों में प्रतिपादित यज्ञीय कर्मकाण्डों को समझना दुरूह होने लगा। ऐसे में इन ब्राह्मणग्रन्थों की व्याख्यापद्धति के रूप में मीमांसा का आविर्भाव हुआ? 'मान् पूजायाम्' धातु से अचिच्छार्थक सन् प्रत्यय संयुक्त करने पर मीमांसा शब्द की निष्पत्ति होती है, जिसका शाब्दिक अर्थ है—श्रेष्ठतम विचार। याज्ञिक पद्धतियों की व्याख्या करने वाले इस मीमांसाशास्त्र में ऐसे न्यायों का जन्म हुआ, जो हमारे समाज के लिये अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुए। बदलते हुए परिवेश में यज्ञों का महत्व भले ही कम हो गया, किन्तु मीमांसा के इन न्यायों की सहायता से अन्याय शास्त्रों के दुरूह स्थलों को समझना अधिक सरल हो गया।

व्याकरण से लेकर दर्शनपर्यन्त शास्त्रों के मर्मस्थलों की इन न्यायों की सहायता से बड़ी ही सरल तरीके से व्याख्या संभव हो जाती है। इन मीमांसा न्यायों का शास्त्रार्थ समझाने के लिये महाभाष्यकार, पंतजलि, ब्रह्मसूत्रकर्ता बादरायण व्यास, भगवान् शंकराचार्य, वाचस्पति मिश्र आदि वेदान्तियों एवं नैयायिकों तथा वैशेषिकों ने यथास्थान प्रयोग किया है। न केवल शास्त्रों के अर्थनिर्णय में अपितु लोक व्यवहार के निर्णय में भी इन मीमांसान्यायों का प्रचुरता से उपयोग किया जाता रहा है। वर्तमान समय में विधि (कानून) की व्याख्या की दृष्टि से इन मीमांसान्यायों की प्रासंगिकता और अधिक बढ़ गयी है। इन न्यायों में दृष्टादृष्टन्याय, गुणप्रधानन्याय, पौर्वापर्यबलीयस्त्वन्याय, खलेकपोतन्याय, स्थूणानिखननन्याय, अतिदेशन्याय, आकृत्यधिकरणन्याय आदि उल्लेखनीय है।

❖

PR-171

गीतगोविन्द में काम-कला

डॉ. आंशा शर्मा, भिण्ड

धर्म-अर्थ और काम को वेदान्त की भाषा में त्रयी कहा जाता है। वात्स्यायन का कहना है कि धर्म, परमार्थ का संपादन करता है। अर्थसिद्धि के लिए अर्थशास्त्र की आवश्यकता पड़ती है और संभोग के पराधीन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने के क़ारण स्त्री-पुरुष को उस पराधीनता से बचने के लिए कामशास्त्र के अध्ययन की आवश्यकता पड़ती है। तीनों पुरुषार्थ में काम एक ऐसा तत्त्व है जो सभी जीवों में समान रूप से प्रवाहित है।

जयदेव ने अपने गीतगोविन्द में कामशास्त्र की कामकला के द्वारा आत्मा और परमात्मा के संयोग-वियोग का अद्भुत चित्रण किया है। भगवान् 'श्रीकृष्ण' पूर्ण पुरुष है और श्रीराधा जी प्रकृति हैं। ब्रह्म और जीव के संयोग, शृंगार को जयदेव ने सांसारिक स्त्री-पुरुष की भाँति प्रस्तुत किया है। गीतगोविन्दं एक मधुर रस से ओत-प्रोत शृङ्गारिक रचना है। यह काव्य 'कृष्ण-राधा' की प्रणय-क्रीड़ाओं के मध्य उसके हाव-भाव, मान-मनुहार, प्रणय-चेष्टाओं, मानसिक भावों-की अभिव्यक्ति है। जयदेव के शृङ्गार-वर्णन में गहन काम-मादकता का भाव प्रवाहित है।

❖

PR-172

चित्तदुत्ति और भक्ति

डॉ. अजय कुमार झा

मानव जीवन दर्शन की चिन्तन-परम्परा में भक्ति की महत्ता सर्वमान्य है। यहीं कारण है कि पौर्वात्य और पाश्चात्य साहित्य में किसी न किसी रूप में भक्ति का पर्यालोचन अवश्य हुआ है। भारतीय मनीषा ने तो भक्ति को परमानन्द सायुज्य का सर्वोत्कृष्ट साधन माना हैं। गीता के अनुसार ज्ञान और कर्म का पर्यवसान भी अन्ततः भक्ति में ही होता है।

शास्त्र तथा लोक में प्रतिपादित कृत्यों के प्रणिधान से चित्त में एक विशेष प्रकार का आवेग उत्पन्न होता है। जो उसे परमेश्वर से सायुक्त होने के लिए विवश करता है। यह आवेग ही चित्तदुत्ति है। चित्तदुत्ति भक्ति के लिए परम आवश्यक है। द्रवित चित्त ही परम सत्ता से धारावाहिक होता है तथा चित्त की परम सत्ता-विषयक धारावाहिकता ही भक्ति है।

अर्थात् जिस प्रकार गंगा का जल धारावाहिक होकर समुद्र जल में मिल जाता है, एकाकार हो जाता है, उसी प्रकार धारावाहिक चित्त भगवदाकार हो जाता है।

चित्तदुत्ति के कारण चित्त जतु (लाक्षा) के समान है। जिस प्रकार जतु तीव्र-तापकों से द्रव में परिणत होता है, उसी प्रकार चित्त भी तीव्र मानसिक तापकों से द्रवीभूत होता है। चित्र के द्रावक-तापक हैं— काम, क्रोध, स्नेह, भय, हर्ष, शोक, दया आदि।

चित्त में जिस वस्तु के प्रति काम-क्रोध आदि का उद्रेक होता है, उस वस्तु के प्रति चित्त द्रवित हो जाता है तथा तद्वस्तु को ग्रहण करके तदाकार हो जाता है। कामक्रोधादि का उद्रेक जब परमात्मा के प्रति होता है तब चित्त द्रवीभूत होकर परमात्माकार हो जाता है। भक्त की यही अवस्था भक्ति है। चित्त-द्रावक तापकों की विविधता के कारण भक्ति भी भिन्न-भिन्न है, यथा गोपिकाओं की भक्ति कामजभक्ति थी, शिशुपाल की भक्ति द्रेवज भक्ति थी तथा कंस की भक्ति भयजन्य थी।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-173

वर्तमान सन्दर्भ में मनुष्य का धर्म

रश्मिबहन पी. मेहता, जूनागढ़

धर्म क्या है, प्राचीन काल से अर्वाचीन काल तक सभी समय में धर्म की व्याख्या अपने-अपने ढंग से हुई है। मुनि, महात्मा या पैगम्बर द्वारा यह मत प्रवर्तित है कि जिसका आचरण करने से परलौकिक सुख प्राप्त हो यही ही सच्चा धर्म है। विवेकानन्द जी ने कहा है कि दूसरे का भला करना यह धर्म है। गाँधी जी की दृष्टि में नीति ही धर्म है। डॉ. राधाकृष्णन् ने धर्म यानि कि सद्वर्तन का नियम— ऐसी व्याख्या दी है।

धर्म की भिन्न भिन्न व्याख्या में से एक ही सुर निकलता है कि मनुष्य के योग्य गुणों से सम्पन्न मनुष्य का व्यक्तित्व बने और मनुष्य को मनुष्यत्व की दिशा की ओर ले जाये, यही सच्चा धर्म है। गुजरात के कवि सुन्दरम् कहते हैं—हुँ मानवी मानव थाउं ता होगें। पाश्चात्य विद्वान डेविड थुम की बात है—Be a Philosopher but amidst all your philososhies be still a man.

जीवन की अर्पूणताओं से बाहर निकलने के लिए परम तत्त्व में श्रद्धा लगाकर कार्य करने से पूर्णता की ओर का मार्ग मिलता है। कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर ने परम तत्त्व पर श्रद्धा रखने की बात की है।

वर्तमान दृष्टि से—'सादा जीवन, उच्च विचार, त्यागमय सरल जीवन, सद्भाव, सहिष्णुता, धैर्य, क्षमा, अहिंसा, संयम, परोपकार, नेकी और चारित्रिक विशुद्धि जैसे धर्म के लक्षण है। मनुष्य में उच्च मनुष्यत्व प्रकट करने का लक्ष्य इस धर्म का है। मानव-मानव के बीच प्रेम-भाव रहे-यही सच्चा धर्म है।

प्रत्येक जीव में शिव का दर्शन करके, सबके साथ अपनापन रखकर प्रेमपूर्ण व्यवहार करके, कर्मकाण्ड पर ध्यान न देकर, अपने कर्तव्य पर ध्यान रखकर, कार्य करने की प्रेरणा जिससे प्राप्त होवे, यही सच्चा धर्म है।

मनुष्य को सच्चे सुख और शान्ति के लिये मानव-धर्म को मानना चाहिये। सभी धर्म का अंगुलि-निर्देश मानवधर्म की ओर ही है। मनुष्य में एकत्व बधुत्व और प्रेम का सद्भाव जगाना–यही सच्चा धर्म है। मानव से मानवता प्रकट कर मानवता की ज्योति से धर्म की ज्योति जगाकर सच्चिदानन्द दिशायें खोलकर दिखाना–यही सच्चा धर्म है।

मगर आज सबकी दशा अर्जुन जैसी बन गयी है। सब जानते हैं मगर आचरण से दूर हैं। ईश्वर पर श्रद्धा रखकर मानव सेवा का कार्य करते रहना यही सच्चा धर्म है। परस्पर 'देवो भव' की भावना बनी रहे, यही धर्म हैं।

अन्त में—मनुष्य पंछी की तरह हवा में उड़ना और मछली की तरह पानी में तैरना सीख गया है। अब उसको मनुष्य की तरह जीने का सीखने की आवश्यकता है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-174

भारतीय आस्तिक दर्शनों में शब्द प्रमाण-तौलनिक अभ्यास

प्रो. बाबुभाई एच. वणकर, मेरसाना

मनुष्य जीवन का परम प्राप्तव्य मोक्षप्राप्ति हैं। जीवन के अन्तिम चरण में मनुष्य ज्ञान प्राप्त करके मोक्ष प्राप्त करना चाहता है। भारतीय दर्शनों में ज्ञान-प्राप्ति के कुछ साधन-प्रमेय बताए गये हैं। इन प्रमेयों की सिद्धि प्रमाण से होती हैं। सभी दर्शन शास्त्रों में भिन्न-भिन्न प्रमाणों की चर्चा है।

इस लेख में 'आस्तिक दर्शनों में शब्द प्रमाण-तौलनिक अभ्यास' विषय की उद्‌भावना की गई हैं। सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्वमीमांसा एवं उत्तरमीमांसा (वेदान्तदर्शन) इन सभी दर्शनों में अन्य प्रमाणों के साथ-साथ शब्द प्रमाण की चर्चा हैं। शब्द प्रमाण अर्थात् आप्त वचन प्रमाण, जो सिद्ध-पुरुष का वचन हैं, इसे कहते हैं। वेद में शब्द को नित्य माना गया है, इसलिये शब्द प्रमाण का प्रामाण्य स्वतः सिद्ध है।

न्यायदर्शन में शब्दप्रमाण ज्ञानप्राप्ति का साधन हैं। अर्थ की दृष्टि से शब्द के दो भेद हैं—1. दृष्टार्थ और 2. अदृष्टार्थ। उत्पत्ति की दृष्टि से शब्द दो प्रकार के हैं—1. अलौकिक शब्द और 2. लौकिक शब्द। न्याय में शब्द का स्थान एक स्वतंत्र प्रमाण जैसा है। वैशेषिक दर्शन के अनुसार शब्द प्रमाण का अनुमान में अन्तर्भाव हो जाता हैं। अतः अनुमान से अर्थ का ज्ञान पाकर उपदेश दिया जाता है, वह शब्द प्रमाण हैं।

सांख्य मत के अनुसार शब्द प्रमाण अर्थात् आगमप्रमाण सबसे प्रमाणभूत माना जाता है। अनुमान और प्रत्यक्ष प्रमाण से जो ज्ञान नहीं होता है वह शब्दप्रमाण से होता है। योगदर्शन में भी शब्दप्रमाण अर्थात् विश्वसनीय पुरुषों के शब्दों को प्रमाण के रूप में स्वीकार किया गया हैं।

पूर्वमीमांसा के अनुसार शब्दप्रमाण अधिक महत्त्वपूर्ण प्रमाण हैं। ज्ञातशब्द के द्वारा पदार्थ का स्मृतिज्ञान होता हैं। इस परिणाम से जो ज्ञान होता है। वह 'शब्दप्रमाणजन्य ज्ञान' है। वह दो प्रकार के हैं—1. पौरुषेय और, 2. अपौरुषेय। उत्तर मीमांसा के अनुसार श्रुतिवाक्य अर्थात् वेदवाक्य ही शब्दप्रमाण हैं। वेदान्त वाक्यों से प्रमाण-ब्रह्मनिरूपण की बात की गई हैं।

❖

PR-175

योगः कर्मसु कौशलम्

डॉ. शरत् प्रभा, पूर्णियाँ

'स्वस्ति पन्थानमनुचरेम'! हे प्रभो! हम कल्याण मार्ग के पथिक बनें। विधाता की सम्पूर्ण सृष्टि कर्ममय है। सफल व्यक्ति अपने आन्तरिक एवं बाह्य कर्म में पर्याप्त समन्वय करने की अपूर्व क्षमता रखता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। कर्मयोग में सब कुछ भगवान् का समझकर सिद्धि-असिद्धि में समत्वभाव रखते हुए आसक्ति और फल की इच्छा का त्याग कर कर्म करना है। कर्ममार्गी के विचार ग्राह्य होते हैं। कहने का अर्थ है कि प्राणिमात्र को प्राप्त सुख-दुःखादि द्वन्द्वात्मक परिस्थितियों में अनुद्वेग एवं दृढ़ स्थैर्यभाव से निर्लिप्त होकर निष्कामपूर्वक अत्यन्त उत्साह से कल्याणकारी सत्कर्मों का सम्पादन करते रहना चाहिए; क्योंकि निष्काम कर्मयोग का आश्रय ग्रहण कर प्राणिमात्र त्रिविध दुखों से मुक्त होकर आत्यन्तिक निवृत्ति को प्राप्त कर लेता है। यदि हम सत्कर्मों के प्रति संकल्पित हो जाएँ और भौतिक सुखों को त्याग कर फलाफल से कर्मयोगी हो जाएँ, तो निश्चय ही एक दिन स्वस्थ मानव समाज का निर्माण होगा और हम सुसंस्कारों से सुशोभित हो सकेंगे।

'तमसो मा ज्योतिर्गमय'
युग-युग तक जग याद करे
तुम ऐसे कर्म करो,
कला और संस्कृति की निधि है,
धर्म-कर्म की यही विधि हैं।
युग-युग से सिखलाते यह ही गीता,
वेद, पुराण, टूटी-फूटी भाषा में भर,
जग के कानों तक पहुचाई।
मैंने ऐसी गीता गाई।

क्रियात्मक कार्य ही संसार का निर्माण करता है। सत्कर्म ही जीवन में सौभाग्य का द्वार खोलता है।

❖

PR-176

अभिनवगुप्त का रस विवेचन (प्रत्यभिज्ञादर्शन के सन्दर्भ में)

डॉ. श्रद्धा सिंह

अभिनवगुप्त भारतीय ज्ञान मनीषा के शिखर पुरुष हैं। साहित्य अथवा दर्शन जहाँ भी उन्होंने ग्रन्थों की रचना की हैं, वहाँ वे सर्वोत्कृष्ट हैं। अभिनवभारती में उन्होंने भरत के रससूत्र की व्याख्या की है। पूर्वपक्ष के रूप में उन्होंने पूर्व के तीनों मतों का विवेचन किया है। फिर उनका खण्डन किया है।

अभिनवगुप्त का मत प्रत्यभिज्ञादर्शन का अनुसरण करने वाला है। अपने ही हृदय में सर्वदा स्थायीरूप में रहने वाले रति-आदिभावों का साधारणीकरण होकर अपनी सहृदयता के आवेश से उनका आनन्दरूपता को प्राप्त कर लेना ही रस है, ठीक वैसे ही जैसे सदाशिवस्वरूप जीव अपने ही स्वरूप की अभिव्यक्ति होने पर परमानन्द शिवस्वरूपता को प्राप्त कर लेता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवसूत्रकार शिव को स्वेच्छा से नृत्य करने वाला कहते हैं, 'नर्तक आत्मा' (3/9) अपने नृत्य की विचित्र भावभङ्गिमाओं के प्रकाशन द्वारा वह आनन्दमग्न होकर विश्व का प्रकाशन करते हैं। शिव का यहीं नर्तकस्वरूप अवश्य ही अभिनवगुप्त के मस्तिष्क में रहा होगा, क्योंकि यही सब कार्य रंगमंच पर नट भी साकार करता है। वह भावभङ्गिमावों, वेशभूषा, को अपने अभिनय की निपुणता से समस्त दर्शकों के उनकी वासना के अनुसार बद्ध कर लेता है। फिर वह दर्शक अपने भावों और अनुभूति के अनुकूल रसानुभूति करने लगता है और स्व को भूलकर आनन्दसागर में निमग्न हो पाता है।

जैसे नट अपने वास्तविक स्वरूप का प्रच्छादन कर राम, सीता आदि विविधरूपों में प्रकट होता है वैसे ही शिव अपने वास्तविक रूप का प्रच्छादन कर ग्राह्य-ग्राहक आदि विविध रूपों में प्रकट होता है।

रति आदि स्थायिभावों को आत्मचैतन्य ही प्रकाशित करता है, यह कहने के पीछे प्रत्यभिज्ञा का प्रकाशसिद्धान्त ही है।

रसानुभूति के समय होने वाला चमत्कार अभिवनगुप्त के अनुसार आनन्दशक्ति का ही चमत्कार है; क्योंकि शैवमत में अहन्ता का सार ही आनन्द है, जिसमें सब कुछ समाविष्ट है। इसी में सहृदय लीन हो जाता है।

अभिनवगुप्त चमत्कारिता का लक्षण ही, चमत्कारिता अनुञ्जानरूपा स्वात्मविश्रान्तिलक्षणा, देते है। स्थायीभावों का भी आभोम जब स्वात्मविश्रान्त होता है, उसी क्षण वे चमत्कारिक बन जाते हैं, जैसे स्पन्द का चमत्कार अलौकिक है, उसी प्रकार आचार्य का रस भी अलौकिक है, जो लौकिक भूमि से उठकर अलौकिकता का आस्वादन कराता है।

इस प्रकार अभिनवगुप्त का सम्पूर्ण रस-विवेचन प्रत्यभिज्ञादर्शन के आधार पर ही खड़ा है, इसीलिये उनकी यह व्याख्या प्रत्यभिज्ञानुसारी कही जाती है।

❖

PR-177

याज्ञवल्क्य स्मृति में दायभाग व उत्तराधिकार

डॉ. अशोक कुमार शुक्ल, सोनभद्र

दायभाग वस्तुतः किसी भी देश अथवा समाज की मौलिक समस्या है। यह जीवन का एक ऐसा पहलू है, जिसके लिए सृष्टि के आरम्भ से ही संघर्ष होता चला आ रहा है। दायभाग सामान्यतः सम्पत्ति के विभाजन से सम्बन्ध रखता है। यद्यपि स्मृतियों की यह कोई नई देन नहीं हैं, फिर भी स्मृतियों में इसकी सविस्तार व्याख्या की गई है।

दायभाग की चर्चा अधिकांश स्मृतियों में की गई है, किन्तु याज्ञवल्क्य स्मृति का दायभाग सर्वाधिक मान्य रहा है। इस पर विज्ञानेश्वर की मिताक्षरा टीका ने तो मानों परम्परा से चली आ रही दायभाग

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में जान डाल दिया हो। आज के परिवेश में यह कानून का विषय बना हुआ है। आधुनिक भारतीय विधि-मान्यताप्राप्त 'इण्डियन पैनल कोर्ट' के हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम में भी मिताक्षरा का उल्लेख किया गया है। अतः कहा जा सकता है कि भारतीय संविधान में वर्णित दायभाग के वास्तविक स्वरूप को बिना याज्ञवल्क्य स्मृति और उसकी मिताक्षरा टीका के नहीं समझा जा सकता।

याज्ञवल्क्य ने पुत्रों (सौरस-अपविद्ध) में दायांश का विभाजन श्रेष्ठता क्रम के आधार पर किया है। इनके अभाव में पत्नी (विधवा), पुत्रियाँ, माता-पिता, भाई, भाईयों के पुत्र, गोत्र में उत्पन्न व्यक्ति, बन्धु, शिष्य और ब्रह्मचारी को क्रम से पहले-पहले के अभाव में सम्पत्ति का उत्तराधिकारी माना है। इसके अतिरिक्त वानप्रस्थ यति और ब्रह्मचारी की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी क्रमशः धर्मभ्राता एकतीर्था तथा सच्छिश्य और आचार्य को माना।

❖

PR-178

तन्त्रशास्त्र में शक्तितत्त्व

डॉ. परमात्मा दुबे, वाराणसी

शिव के सृष्टि विषयिणी इच्छा को ही शक्तितत्त्व कहा गया है। शिव का धर्म ही शक्ति है। यह शक्ति विमर्शशक्ति के नाम से भी अव्यवहित हुई है। श्रुति से भी ज्ञात होता है कि सृष्टि के आरम्भ में परम ब्रह्म के सृष्टि विषयिणी इच्छा का स्फुरण हुआ था। इसी स्फुरण का नाम ही विमर्श है। यहीं शक्ति का प्रथम प्रकाश है। एक मात्र परंशिव वही अनादि सिद्धमाया के योग से धरर्मी तथा धर्म उभयरूप में प्रकाशित हो रहे हैं। आचार्य भास्करराय दुर्गासप्तशती की गुप्तवतीटीका के उपोद्घात में कहते हैं—

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते। स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च। (श्वेताश्वतरोपषिद्)

इस श्रुति से शिव के शक्ति की बात एवं शक्ति तथा शक्तिमान के अभेद की बात ज्ञात होती है।

अथातो धर्मजिज्ञासा (कौलोपनिषद्) इस सूत्र में धर्मशब्द ब्रह्म का धर्म शक्ति का ही द्योतक है। श्रीभास्कराराय जी आगमशास्त्र से और भी अनेक शक्तिवाचक शब्दों का चयन करके गुप्तवती टीका में प्रकाशित किये हैं। यथा—विमर्श, चिति, चैतन्य, आत्मा, स्वरसोदिता, परावाक्, स्वातन्त्र्यऐश्वर्य, सत्ता, स्फुरत्ता, मालिनी, हृदयमूर्ति, संवित् और स्पन्द इत्यादि।

यद्यपि निखिल विश्व ही परशिव की शक्ति है तथापि ज्ञान, इच्छा तथा क्रिया इन तीनों रूपों में ही शक्ति का समधिक प्रकाश होता है। चण्डी का पाठ करने में पाठकगण महासरस्वती के रूप में जिसे स्मरण करते हैं वहीं ज्ञानशक्ति है। महाकाली के रूप में जिसका स्मरण करते हैं वहीं इच्छाशक्ति हैं तथा महालक्ष्मी के रूप में जिसका स्मरण करते हैं वही क्रियाशक्ति है। इन तीनों के मध्य में कोई भेद नहीं है। सम्पूर्ण विश्व ही शक्तिस्वरूप है। अतः शक्ति तथा शक्तिमान का अभेद नहीं है। सम्पूर्ण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्व ही शक्तिस्वरूप है। अतः शक्ति तथा शक्तिमान का अभेद ही तन्त्र सम्मत परमतत्व है—यह भी भास्करराय वरिवस्यारहस्य में प्रकाशित किये हैं।

'ब्रह्मणि जगतो जगती च विद्याऽभेदस्तु सम्प्रदायार्था'। शक्ति सभी वस्तु में अधिष्ठित है। मेरी यह करने की शक्ति है अथवा शक्ति नहीं है, इस प्रकार के उक्ति में जीवनिष्ठ-शक्ति की अनुभूति होती है। आचार्य भास्कंरराय देवीभागवत का एक श्लोक सौभाग्यभास्कर से उद्धृत करके कहते हैं कि नराधम को लोग शक्तिमान नहीं कहते। रुद्धहीन अथवा विष्णुहीन नहीं कहते।

❖

PR-179

तन्त्रागम में स्वप्नविवेचन

डॉ. गोविन्द गन्थे, ग्वालियर

तन्त्र वह शास्त्र है, जिसके द्वारा ज्ञान का विस्तार किया जाता है। तन्त्र शब्द की निरुक्ति तन् विस्तार करना और रक्षा करना इन दोनों अर्थो में दो धातुओं के योग से होती है। इस तन्त्र साहित्य में स्वप्न-सम्बन्धि ज्ञान का विस्तार से विवेचन उपलब्ध होता है, साथ ही स्वप्न के द्वारा 'भविष्य' की रक्षा और दुःस्वप्न के दर्शन से अशुभ से रक्षा का विधान भी उपलब्ध होता है। वस्तुतः तन्त्रागम में उपलब्ध विवेचन 'स्वप्न' को एक व्यापक आयाम देता है। इन ग्रन्थों में स्वप्न के शुभाशुभ विवेचन के पश्चात् अशुभ स्वप्न की शान्ति का भी विस्तार के साथ वर्णन है। शुभाशुभ विवेचन से भी महत्वपूर्ण विवेचन स्वप्नावती विद्या के सम्बन्ध में उपलब्ध होता है। उस वर्णन के अन्तर्गत अनुकूल स्वप्नसिद्धि के उपाय, स्वप्नावती-साधना, मंत्र-तंत्र का उल्लेख है। स्वप्नवाराही यंत्र, तन्त्रागम का विशिष्ट विवेच्य विषय है। तन्त्र-सम्प्रदाय का पारम्परिक दृष्टिकोण यहाँ भी दिखाई देता है। जिस प्रकार अन्य देवी-देवताओं की साधना की परम्परा तन्त्रागम में विद्यामान है उसी परम्परा के आलोक में स्वप्नावती देवी की साधना का विवेचन निश्चित रूप से मौलिक विषयवस्तु को प्रस्तुत करता है। अन्य विवेचन पौराणिक पृष्ठभूमि पर ही वर्णित है।

❖

PR-180

चार्वाक दर्शन में भौतिकवाद एवं मार्क्सवादी चिन्तन

प्रो. हरेश ए. जोशी, भावनगर

षड् आस्तिक एवं तीन नास्तिक दर्शनों में चार्वाकदर्शन नास्तिक दर्शन कहलाता है। सभी दर्शनों में जो भौतिकवादी दर्शन कहलाता है, वह ही एक मात्र चार्वाकदर्शन है। इसे क्युं चापाक दर्शन कहा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया है, इस के बारे में कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है। कुछ लोगों का मन्तव्य है कि इस के प्रवर्तक ने सबसे पहले जिस शिष्य को इसका उपदेश दिया था, उसका नाम चार्वाक था (सर्वदर्शनसंग्रह)। चार्वाक शब्द का प्रयोग मधुरवाणी वाले—चारु+वाक् में अर्थ में अधिक प्रसिद्ध है।

चार्वाकदर्शन केवल उपयोगिता को ही एक मात्र शुभ जानता है। चार पुरुषार्थों में से सिर्फ दो—काम और अर्थ को ही चार्वाक स्वीकारते हैं। 'यावत् जीवेत् सुखं जीवेत्' का उपदेश देने वाला यह दर्शन परम्परागत उपदेश को नहीं मानता है व नैतिक और आध्यात्मिक साधना का परित्याग कर केवल उपयोगितावाद का समर्थन करता है।

चार्वाक की तरह मार्क्स अपने चिन्तन में स्पष्ट कहते हैं कि भौतिकवाद वस्तुनिष्ठ होता है। अतः भौतिकवाद का नीतिशास्त्र समाजनिष्ठ है। मार्क्स ने अपने चिन्तन में स्पष्ट किया है कि इतिहास की सभी घटनाओं के पीछे आर्थिक परिचालक शक्ति ही कारणभूत है। अन्त में भौतिकवाद का पुरस्करण करने के लिए इतना ही पर्याप्त होगा।

न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः।
नैव वर्णाश्रमादीनां क्रियाश्च फलदायिकाः॥

❖

PR-181

वल्लभ-दर्शन में 'ख्याति'

डॉ. गिरिधर गोपाल शर्मा, दिल्ली

वेदान्त-दर्शन ने आचार्यों के जगत् के विवेचन के विषय में विभिन्न ख्यातियों का वर्णन किया है। 'ख्यातिवाद', 'प्रत्यक्षवाद' है। किन्तु यह 'प्रत्यक्षवाद', 'भ्रमवाद' में परिणत हो गया; क्योंकि प्रत्यक्ष के दो रूप हैं—निश्चित और अनिश्चित। उनमें से 'ख्यातिवाद' मात्र भ्रम या भ्रान्ति है, जो कि अनिश्चयात्मक ज्ञान से जुड़ गया। फलतः 'ख्यातिवाद' भ्रमवाद या भ्रान्तिवाद से सुविदित है।

भ्रमस्थल में दार्शनिकों के मध्य मतैक्य नहीं है। परिणामतः भ्रमस्थल में विभिन्न 'ख्यातिवाद' जैसे-असत्यख्याति, आत्मख्याति, अख्याति, अन्यथाख्याति, अनिवर्चनीयख्याति, सत्यख्याति आदि प्रचलित हैं। इसी क्रम में वल्लभ-दर्शन में यह भ्रमवाद 'अन्यख्याति' नाम से विदित है।

इन्द्रिय के द्वारा गृहीत हो रहे शुक्ति आदि रूप विषय से भिन्न रजत आदि रूप अन्य पदार्थ की ख्याति या प्रतीति 'अन्यख्याति' कही जाती है। यह भ्रमात्मक ज्ञान बुद्धिवृत्तिरूप है एवं विपर्यास है। वल्लभाचार्य सुबोधिनी में कहते हैं—विपर्यासो भिन्नार्थप्रतिपादकः' विपर्यास भिन्नार्थ-प्रतिपादक होता है। निरुपाधिक भ्रम के स्थल में इन्द्रियाँ विद्यमान पदार्थ का ही ग्रहण करती हैं न कि अविद्यमान और अवास्तविक या मायिक पदार्थ का।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वल्लभ-दर्शन के प्रतिष्ठापक आचार्य वल्लभाचार्य से लेकर गोस्वामी विट्ठलनाथ, गोस्वामी पुरुषोत्तम, गोस्वामी हरिराय, गोस्वामी गिरिधर, गोस्वामी गोकुल नाथ और बालकृष्ण भट्ट आदि आचार्यों ने अपने-अपने ग्रन्थों में 'ख्याति=अन्यख्याति' का प्रतिपादन किया है। उक्त शोध-पत्र में यही विषय प्रतिपादित है।

❖

PR-182

सूफी विचार और उपनिषद् विचारों का संतुलित चिन्तन

ताम्बोली जैनुद्दीन अ. रसीद, अहमदनगर

आज वर्तमान में धर्म-धर्म में द्वेष का एकमात्र कारण अगर कोई हैं, तो वह है—उस धर्म के मूल तत्त्व एवं विचार और उनके उद्देश्य को नहीं समझना। प्रत्येक धर्म के मूल विचार तत्त्व एक ही है।

जैसा कि ईश्वर प्राप्ति, सुखमय जीवन शान्ति और मरने के बाद सत्योनि की प्राप्ति के तत्त्व एवं विचार कहने की तथा समझाने की रीति, पद्धति हर एक धर्म की अलग-अलग है और यहीं अलग-अलग तरीके से समझायी गयी। विचारधाराओं को सही ढंग से नहीं समझ पाने के कारण धर्म-धर्म में अनबन हो जाता है और समाज में, दो जाति, संप्रदाय में संघर्ष शुरु हो जाता है। दुनिया के इस मज़हबी संघर्ष को अगर दूर करना है तो, हमें हमारे धर्म के साथ-साथ दूसरे धर्मों के तत्त्वों और विचारों को अच्छी तरह से समझ लेना जरूरी है। यहाँ धर्म इस शब्द से 'कर्त्तव्य' या 'कर्म' यह अर्थ अभिप्रेत नहीं है। धर्म का अर्थ यहाँ पर दो भिन्न जाति, मज़हब है यह ज्ञात हो।

अगर सही दृष्टि से देखा जाए तो हमें हिन्दू, मुस्लिम, जैन, बौद्ध, क्रिश्चियन, आदि धर्म एवं संप्रदायों के विचारों, तत्त्वों में कुछ हद तक बहुत सी समानताएँ दिखाई देगी। इस निबन्ध में उपनिषद् विचार और मुस्लिम सूफी संतों के विचारों पर चिन्तन किया गया है। मुस्लिम धर्मग्रंथ कुरान और हदीस में ईश्वरप्राप्ति, आदर्श चरित्र, नीति, गुरुशिष्य परम्परा, ज्ञानप्राप्ति, भक्तों का आचरण, दूसरे धर्म के प्रति आदर, धार्मिक एकता आदि विचार और उपनिषद्, श्रीमद्भागवत, गीता आदि ग्रन्थों में इन्हीं विचार उद्देश्य की कुछ हद तक इनमें समानता दिखाई देती है। जैसे ईश्वर के एकरूप होने की अर्थात् ईश्वर के रंग में रंग जाने को 'ब्रह्मानुभूति' की अवस्था और सूफियों की 'मारेफत' याने खुदा से एक होने की सर्वोच्च अवस्था एक जैसी ही है। उसी तरह सूफियों का 'वहदतल वजूद' और शंकराचार्य जी का 'अद्वैततत्त्वज्ञान'—अखिल मानव जाति के कल्याण की भावना एक दूसरे से मिलती है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-183

तत्त्वज्ञान में जीवात्मा का परमात्मा से सम्बन्ध

कु. ज्योति गजेन्द्र वडगणे, नासिक

भारतीय तत्त्वज्ञान में मोक्ष को अत्युच्च स्थान दिया है। चाहे उसका नाम मुक्ति, निर्वाण इस प्रकार अलग-अलग क्यों न हो? तत्त्वज्ञान जीवात्मा और परमात्मा के सम्बन्ध से प्रस्थापित होता है। उस सम्बन्ध की चर्चा मैंने इस निबन्ध में की हैं।

❖

PR-184

वर्तमान सामाजिक परिप्रेक्ष्य में स्मृतिशास्त्र का प्रभाव एवं उपयोगिता

डॉ. नीरजा दीक्षित, उन्नाव

स्मृतियों का अध्ययन करने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि स्मृतियाँ समाज के लिए विधिपरक ग्रन्थ है। स्मृतियों ने सामाजिक व्यवस्था को सुगठित करने के लिए अल्पमत वैभिन्य के साथ सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। जिनका प्रभाव समाज में पूर्णरूपेण परिलक्षित होता है। स्मृतियों को महत्व की दृष्टि से देखा जाय तो वह वेदपरक ग्रन्थ हैं तथा भारतीय संस्कृति में आचार संहिता के रूप में व्यवहृत होते हैं। भारतीय साहित्य में प्राधान्येन मनुस्मृति तदनुवर्तक याज्ञवल्क्यस्मृति सर्वाधिक चर्चित धर्मशास्त्र है क्योंकि यह दोनों ग्रन्थ रचनाकाल से ही सर्वाधिक प्रामाणिक, मान्य और लोकप्रिय रहे हैं। उनकी यह प्रामाणिकता, महत्ता और प्रभाव आज भी समाज में परिलक्षित होता है।

स्मृतियाँ राष्ट्रीय उन्नयन के लिए आचार संहिता का रूप ले सकती हैं। अनुचित मार्गों से संगृहीत धन दुख और विनाश का कारण है, इसलिए स्मृतिविहित धनोपार्जन के विधिक सिद्धान्त को मान्यता मिलनी चाहिए।

❖

PR-185

शांकर-वेदान्त में कर्म-चेतना

श्री शाम सुन्दर, चण्डीगढ़

शांकर-वेदान्त में नित्य-आत्मा का अनुभव ही मोक्ष है, जो एकमात्र ज्ञान द्वारा ही सम्भव है। इस अवस्था को आचार्य शंकर कर्मों द्वारा अप्राप्य स्वीकार करते हैं। आचार्य शंकर के इस सिद्धान्त के कारण अनेक भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वान् शांकर-वेदान्त पर कर्म और लोक की अवहेलना करने का आक्षेप करते हुए उसे निष्क्रियता का दर्शन कहते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि शांकर-वेदान्त के प्रस्थान-त्रय का समुचित अनुशीलन किया जाए तो यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि आचार्य शंकर जिस दृष्टि से, जिस संजीदगी से, जिस तत्परता के साथ कर्म और लोक का अनुचिन्तन करते हैं, वैसी दृष्टि किसी भी अन्य दर्शन में प्राप्त नहीं होती।

आचार्य शंकर प्रस्थान-त्रय के अन्तर्गत गीता पर भाष्य उसे 'उपनिषद्' रूप में स्वीकार कर नहीं करते, अपितु उसे 'स्मृति-प्रस्थान' का स्थान प्रदान करते हैं। भारतीय ज्ञान-परम्परा में स्मृतियों का उद्देश्य है—मानव के आचरण (कर्म) को व्यवस्थित करना।

❖

PR-186

अद्वैत वेदान्त के परिप्रेक्ष्य में अविद्यानिवृत्ति और मुक्ति

डॉ. शशिकान्त पाण्डेय, बेगूसराय

ब्रह्म की जीवरूपता का मूल कारण अविद्या है। अविद्या के द्वारा ही जीव में कर्तृत्वादि का अभिमान उत्पन्न होता है। विद्या की उत्पत्ति एवं अविद्या की निवृत्ति होने पर जीव अपने स्वरूप का बोध कर लेता है।

शंकराचार्य ने मोक्ष का स्वरूप निश्चित करते हुए लिखा है कि मोक्ष पारमार्थिक, कूटस्थ, नित्य, व्योमवत्, सर्वव्यापी, सर्वविकार रहित, नित्य तृप्त, निरवयव तथा स्वयं प्रकाश है। इस अवस्था में धर्म और अधर्म अपने कार्य सुख-दुख से त्रिकाल में भी सम्बन्ध नहीं रख सकते। यही शरीररहित स्थिति मोक्ष है। जिस प्रकार शुक्ल स्फटिक मणि में रक्तनीलादि उपाधियों के कारण स्फटिक के शुद्ध रूप का ज्ञान नहीं हो पाता और उपाधि के नष्ट हो जाने पर स्फटिक के शुद्ध रूप का ज्ञान हो जाता है। उसी प्रकार जीव को भी देहाद्युपाधि के कारण आत्मस्वरूप का ज्ञान नहीं होता है; परन्तु विवेक के द्वारा आत्मस्वरूप का ज्ञान हो जाता है। यही आत्मस्वरूप की बोधावस्था मुक्तावस्था है। मोक्ष की उपादेयता बन्धन की निवृत्ति मात्र है। इस मुक्तावस्था में ही आत्मानन्द की प्राप्ति होती है।

मुक्तावस्था और बद्धावस्था में यही अन्तर है कि मुक्त पुरुष के लिए अविद्या की निवृत्ति हो जाने पर मिथ्याभिमान भ्रमजन्य दुःखाद्यनुभूति नहीं रहती, क्योंकि दुःखाद्यनुभूति का कारण मिथ्याभिमान ही है।

❖

PR-187

अहिंसा आधुनिक सन्दर्भ में

प्रो. रणजीत कुमार, बोध गया

अहिंसा भारतीय चिन्तन परम्परा में एक प्रमुख सिद्धान्त के रूप में स्वीकृत है। सामान्यतया अहिंसा का अर्थ किसी भी प्राणी के विरुद्ध मन, वचन या कर्म के हिंसा का परित्याग है। कहा जाता है कि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंसा-अहिंसा में से एक को चुनने की बारी हो तो हमेशा अहिंसा का ही चुनाव करना चाहिए। लेकिन क्यां हिंसा और कायरता में एक का चुनाव करना हो, तो क्या हमें कायरता का चुनाव करना चाहिए। क्या अहिंसा का हम वही अर्थ, वही सन्दर्भ दे रहें है या उसकी व्याख्या बदल रहे हैं। कायर व्यक्ति अहिंसा को एक सिद्धान्त के रूप में स्वीकार नहीं कर सकता। कोई कायर बुद्ध किसी अंगुलिमान के सामने जा भी नहीं सकता। अन्य अस्त्र की तरह अहिंसा भी एक अस्त्र है, जिसका प्रयोग कोई कायर नहीं कर सकता। अहिंसा व्रतधारी अतिसाहसी, अतिवीर ही हो सकता है। अहिंसारूपी अस्त्र के आड़ में अपने कर्त्तव्य से वंचित दो तरह के लोग हो सकते हैं। पहला जो अहिंसा का अर्थ नहीं जानते। दूसरा जो अहिंसा अपनी कायरता को छुपाने के लिए अहिंसा का गलत सन्दर्भ देते है।

किसी सेना के अहिंसा का क्या सन्दर्भ होना चाहिए? अपने राज्य, राष्ट्र, नागरिकों को हिंसा से मुक्त कराना यानी उनके बीच अहिंसा की स्थिति को उत्पन्न करना राष्ट्रीय कर्त्तव्य है। भले ही इसके लिए राष्ट्र-विरोधियों, सेनाओं को उन्हीं को भाषा में जवाब देकर अपने राष्ट्र में अहिंसा, शान्ति की स्थितियों को कायम रखना हो।

❖

PR-188

मानवधर्म मीमांसा

डॉ. धर्मवीर, दरभंगा

मानवीय विविध जीवनाभिमत धर्मों अथवा मतों का विकास मानवीय विविध विश्वासों का ही परिणाम है। जलवायु भौगोलिक परिस्थिति तथा स्थानीय सामाजिकता के अनुरूप प्रत्येक धर्म एक विशेष प्रकार की आचारपद्धति पर आधारित होती है। यों तो विश्व के सभी प्रमुख धर्म का इस ईश्वरीय वाणी से संभव हुआ हैं जो तत्तत् धर्मपुस्तक में संकलित हैं वहीं दूसरी ओर सभी धर्म एकमात्र अपने धर्म को सत्य एवं पूर्ण मानते हैं वही इतर सभी धर्मों को असत्य एवं अपूर्ण मानते हैं। जिस कारण ही प्रत्येक युग में धर्मों को लेकर पारस्परिक विद्वेष होता रहा है तथा मानव समाज की विभिन्न धार्मिक जातियाँ धर्म के केन्द्रिय सत्य के स्रोत को भूलकर इसके कार्यकलाप एवं बाह्याडम्बर में उलझ सी गई है। यद्यपि प्रत्येक देश में सत्यान्वेषी तत्त्वज्ञानियों ने इस स्थिति से ऊपर उठने का प्रयत्न अवश्य किया है जिस कार्य में प्रकाश की अनुभूति हुई है। जिसे ब्रह्म, परमात्मा, पुरुष, परमेश्वर, गॉड, अल्लाह इत्यादि विविध नामों से पुकारा गया है जिनमें यह अनुभूति जितनी ही अधिक हुई उनमें संकीर्णता, भेदभाव, पारस्परिक विद्वेष तथा अहंमयता उतनी ही कम होती गई तथा मानवमात्र में एकत्व की भावना बढ़ती गई। वस्तुतः विभिन्न धर्मों में जो पार्थक्य, मतभेद एवं विशिष्टता प्रतीत होती है वे सभी विभिन्न धर्मों के कर्मकाण्डों तथा आचार-पद्धतियों तक मात्र सीमित है। यथा तत्त्वज्ञान के क्षेत्र में जहाँ ऐसा भेद अतिन्यून है वही श्रुति में यह भेद नगण्यमात्र है क्योंकि अधिकांश धर्मों के तत्व ज्ञानमूलक सत्यसिद्धान्तों में समानता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनश्च धर्मशास्त्रगत मनुस्मृति में भी धर्म के दस लक्षणों का स्पष्टीकरण पाया गया है—जो मानव धर्म के लिए अनिवार्य सभी तत्त्वों से परिपूर्ण है, अर्थात् इन धर्मनियमों में मानवधर्म—जीवन के सभी तत्त्व निहित हैं।

❖

PR-189

प्रासङ्गिकता पुराणों के वास्तु निर्देशों की

श्री योगेन्द्र पाण्डेय

वास्तु शास्त्र एवं शिल्पशास्त्र की भारतीय परम्परा बहुत ही प्राचीन है। 'वास्तुविद्या' की प्रतिष्ठा 'अथर्ववेद' के उपवेद के रूप में हैं। यद्यपि वेदों का परम-प्रामाण्य जन-मानस में सुप्रतिष्ठित है तथापि वेदों के दुरूह अंशो की व्याख्या के कारण पुराणों का वैशिष्ट्य भी सर्वथा मान्य है।

वैदिक युग में यज्ञ-वेदी तथा वास्तु-शान्ति आदि के मन्त्रों से प्रारम्भ होकर वास्तुविद्या पर पुराणों में पर्याप्त विमर्श हुआ है। यहाँ देव-प्रतिष्ठा, प्रासाद-निर्माण, भूमि-परीक्षा, दिक्साधन, ग्राह्यकाष्ठ, शुभाशुभ-वृक्ष, शिलान्यास इत्यादि महत्वपूर्ण विवेचन उपलब्ध होता है।

शिव के ललाट-स्वेद से वास्तु की उत्पत्ति की कथा से प्रारम्भ करके वास्तु के 81 पदों का निर्णय, गृहमान, द्वार-निर्णय, भवनपूर्व भाग में वटादि वृक्षों के फलकथन, देवालय प्रकार-वर्णन और वास्तु दोषोपशमन-विधि आदि पर विस्तृत विवरण उपलब्ध होते हैं।

❖

PR-190

श्री पंचाननजी के शक्तिभाष्य में शक्तितत्त्व और अध्यात्म का सिद्धान्त

प्रो. विना वी. थेरकल

1. भारत में शाक्तमत, शक्तिवाद और अन्य सम्बन्धित सिद्धान्त।
2. ब्रह्मसूत्र पर देवी-भाष्य की रचना की और ब्रह्म-शक्ति अद्वैतभाव का खण्डन कर नूतनवाद स्वरूपाद्वैतवाद का प्रतिपादन किया है, उनका संक्षिप्त विवरण।
3. शक्तिभाष्य में वर्णित विषयों की संक्षिप्त व्याख्या का परिहार।
4. शक्तिभाष्य के आध्यात्मिक सिद्धान्त की चर्चा
5. उपसंहार।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-191

धर्म की आवश्यकता

श्री पवन कुमार

'धृ=धारण करना, इस धातु से धर्म शब्द बनता है। जो लोकों को धारण करता है अथवा जो पुण्यात्माओं द्वारा किया जाता है वह 'धर्म' है। तैत्तिरीयोपनिषद् में 'सत्यं वद, धर्मं चर (सत्य बोलो, धर्मानुसार आचरण करो) ऐसा 'धर्म' शब्द का अर्थ है।

वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः। (श्रीमहाभा., 6/1/40)

अर्थात् वेदों में जिन कर्मों का विधान है, वे धर्म हैं और उनके विपरीत कर्म अधर्म है। धर्म का सार यही है कि अपने-आप को जो बुरा लगे, उसे दूसरों के लिए भी न करे। जो अपने को भला लगे, उसे ही करे। भारतवर्ष को धर्म प्रधान देश कहा गया है। यहाँ के बड़े-बड़े लोगों ने, राजाओं एवं सम्राटों ने धर्म की आवश्यकता को समझते हुए भोगों को लात मारकर अरण्य का शरण लिया और विशुद्ध धर्म का आचरण करने की लोगों को शिक्षा दी। भगवान् कृष्ण ने तो यहाँ तक कहा कि 'जब-जब धर्म की हानि और अधर्म का अभ्युत्थान होता है, तब-तब मैं अजन्मा, अविनाशी तथा लोकमहेश्वर रहते हुए साधुओं के परित्राण, दुष्कृतों के विनाश और धर्म की संस्थापना के लिए युग-युग में अपनी लीला से प्रकट होता हूँ। गोस्वामी तुलसीदास जी ने श्री रामचरितमानस में परोपकार को परमधर्म कहकर प्रतिष्ठित किया है।

❖

PR-192

वल्लभ सम्प्रदाय एवं पिछवाई परम्परा

श्रीमती किरन सरना, राजस्थान

चित्र-रचना स्वयं में एक अद्भुत क्रिया है। यह आरम्भ से ही मानव से जुड़ी रही है। मानव के सामाजिक विकास, दार्शनिक विचारधाराओं, धार्मिक आस्थाओं व सौन्दर्यानुभूति को प्रकट करने के साथ-साथ यह मानव सभ्यता का ऐतिहासिक दस्तावेज भी प्रस्तुत करती है। समय के साथ प्रवाहित होती कलाधारा में तत्कालीन लोक जीवन, लोक मान्यताएँ व परम्पराएँ भी अनायास ही समाहित हो जाती है एवं कलाधारा स्वच्छ दर्पण के समान अपने को निरन्तर प्रतिबिम्बित करती है।

चित्र-रचना की ऐसी सशक्त प्रस्तुति राजस्थान के नाथद्वारा क्षेत्र में बनने वाली पिछवाई के रूप में प्राप्त होती है। नाथद्वारा वल्लभ-सम्प्रदाय का प्रमुख पीठ है, जहाँ श्रीनाथ जी की प्रतिमा स्थापित है। श्रीनाथ जी के स्वरूप के पीछे सज्जा के लिए बड़े आकार के कपड़े पर जो चित्रित पर्दे बनाये गये

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे पीछे लगाने के कारण पिछवाई के नाम से जाने जाते हैं। इनमें वल्लभ-सम्प्रदाय का सम्पूर्ण स्वरूप सजीव मानवाकारों में मुखरित होता है।

वल्लभ-सम्प्रदाय के प्रणेता वल्लभाचार्य का जन्म वि.सं. 1535 तदनुसार सन् 1479 में वैशाख कृष्णपक्ष एकादशी के धनिष्ठा नक्षत्र में रायपुर के पास चम्पारण्य में हुआ था। यह बचपन से ही प्रतिभावान बालक थे एवं छोटी आयु में ही शांकरमतानुयायियों से 28 दिन शास्त्रार्थ के पश्चात् उन्होंने ब्रह्मवाद या शुद्ध अद्वैतमत की स्थापना की थी। इनके दर्शन में भक्ति को ही तत्त्वसाक्षात्कार का अन्यतम साधन स्वीकार किया गया। इनके अनुसार भक्ति साधनावस्था में भी अन्य सभी साधनों व लौकिक व अलौकिक भोगों से श्रेष्ठ तथा वरीय है व परिपक्व होने पर भक्ति स्वयं साध्यरूपा हो जाती है।

वल्लभ ने कृष्णभक्ति को धर्म, दर्शन, साहित्य व काल के शिखर पर आसीन कर दिया। इन्होंने कृष्णभक्ति में सभी सम्बन्धों को स्वीकार किया; किन्तु उनके आलम्बन बालस्वरूप श्रीकृष्ण ही हैं। वे स्वतः साक्षात् परब्रह्म हैं, परमात्मा है; किन्तु साथ ही यशोदा के लाडले, ग्वालों के सखा व गोपियों के प्रिय भी हैं। आचार्य वल्लभ के अनुसार भक्तिमार्ग में प्रवेश पाने का एक ही उपाय है—श्रीकृष्ण का अनुग्रहभाजन होना। वल्लभ-सम्प्रदाय में यह अनुग्रह 'पुष्टि' शब्दवाच्य है। श्रीमद्भागवत के छठे स्कन्ध का वाक्य 'पोषणं तदनुग्रहः' तथा तत्त्वदीपनिबन्ध की उक्ति 'कृष्णानुग्रहरूपा हि पुष्टिः कालादिबाधिका' पुष्टिसिद्धान्त का आधार है। वल्लभ-सम्प्रदाय का उपरोक्त दर्शन पिछवाई चित्रों में स्पष्ट होता है जहाँ बालकृष्णरूपी श्रीनाथ में दर्शक परब्रह्म को देख पाता है।

❖

PR-193

श्री पंचाननजी शक्ति भाष्ये में शक्तितत्त्व और आध्यात्म का सिद्धान्त

प्रो. विना वी. थेरकल

1. भारत में शाक्तमत शक्तिवाद और अन्यसम्बन्धित सिद्धान्त।
2. ब्रह्मसूत्र में देवी-भाष्य की रचना की ओर ब्रह्म-शक्ति अद्वैत भाव का खण्डन करके नूतनवाद स्वरूपाद्वैतवाद का प्रतिपादन किया है, उनका संक्षिप्त विवरण।
3. शक्ति भाष्य में वर्णित विषयों की संक्षिप्त व्याख्या का परिहार्य।
4. शक्तिभाष्य के आध्यात्मिक सिद्धान्त की चर्चा
5. उपसंहार।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-194

Traces of Śaivasiddhānta in the Upaniṣads and Purāṇas

DR. R. THIAGARAJAN, CHENNAI

Saivism of the south is called Śaivasiddhānta. It is considered the religion of Tamils and its root can be traced to the Vedas, Āgamas and the most ancient sangam literature and Tholkappiam of Tamil language. According to U.G. Pope, an European scholar this Śaivasiddhānta is most elaborate, influential and undoubtedly the most intrinsically valuable of all the religions of India. Śaivasiddhānta represents the high water mark of Indian thought and Indian life. This philosophy is special in that it is a distinct one of Tamilnadu expounded by the śaiva saint 'Meikaṇḍār' in his 'Śivajñanabodha'. It appears from the Mādhavīya Śaṅkaravijaya that one Nīlakaṇṭhācārya a contemporary of Śarikara was the first exponent of this school. According to Śaivasiddhānta, to the exclusion of every thing else, Śiva [pati] is considered as the supreme reality. Vedas as well as the 28 Śaiva Āgamas are the basic texts unlike prasthāna traya for other schools. This paper aims at tracing the gradual development of this school, with the suitable quotations from the Vedas and especially from the Taittirīya, Kaivalya, Svetāśvatara, Atharvaśikhā, Bṛhajjābāla, Rudra Hṛdaya, Pañcabrahma, Varāha Upaniṣads. The references are from the Mahābhārata, Padmapurāṇa, Śivapurāṇa, Skanda, Brahma Vaivarta, Kalki, Bṛhannāradīya Purāna, Liṅga, Varāha, Kūrma, Skanda and Adhyātma Purāṇa etc.

As there was no study so far in this angle this attempt is most revealing and unique.

❖

PR-195

The Sāṃkhya View of the Siddhis : A Critique

DR. SURENDRAMOHAN MISHRA, KURUKSHETRA

Among the evolutes of the intellect in the Sāṃkhya position of creation, the eight *siddhis* are the last and most important. From the *sādhanā* point of view the sequence of the eight spiritual accomplishments ought to play a vital role. But the commentators on this salient point vary in their opinions. While Vācaspati Miśra presents a twisted order of the *siddhis* and rationalizes some as the logically possible sequence, his predecessor, the anonymous author of the *Yuktidīpikā* maintains the order as obtained in the *kārikās* and offers an explanation of the eight as per his understanding. In this perspective there seems to have arisen a gap between the doctrine and traditional practice of yoga in the Sāṃkhya school.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

An attempt is made in this paper to present the views of the noted scholasties and approach the problem from the esoteric view point as prevalent in the ancient system of thought.

❖

PR-196

Plant-Kingdom as envisaged in Dharmaśāstras

DR. BAIDHAR NAYAK, ORRISSA

The propounders of Dharmaśāstra viewed the plants and trees scientifically as the main source for the survival of mankind. Therefore they have become the lawmakers for human beings and have enunciated certain principles about the punishment to be inflicted upon the persons involbed in cutting fruit bearing trees and stealing plant products etc. The ancient seers felt that the plants are endowed with internal consciousness (*anathsaṁjñā*). They experience pleasure and pain like human beings and take births and re-births as well. Particularly Dharmaśāstra being a social science, deals with various aspects of social factors. The plants uplift the *pitṛvaṁsa* of the plant growers. Therefore one should grow, rear and nourish plants and trees as one's own offspring. The plant growers worship gods by its flowers, *pitṛn* by its leaves and cool shades to the travellers and those plants will be transformed into sons in next birth (*paraloka*). Thus, man being born on the lap of nature utilized its natural resources such as trees and herbs in numbers of ways. Now the development of science and Information Technology has brought a great change to modern society. The technological development has enabled man to solve day-to-day problems of life. But on the other hand, two major problems have not yet been solved-population explosion and environmental deterioration. Population explosion has been forcing urbanization, which causes the destruction of plant-kingdom. And also the rapid development of industries brings a colossal loss to the plant life. Therefore the peaceful existence of human life is not feasible in the world. The Botanists of ancient India had felt the influence of the plant-kingdom on human life. Hence we get a plethora of reference regarding plant science from the Dharmaśāstras such as *Manusmṛti*, *Yājñavalkyasmṛti*, *Gautama Dharmasūtra*, *Baudhāyana Dharmasūtra*, *Vishnu* and *Dharmasūtran* etc.

An attempt has been made in this paper to highlight the views of Dharmaśāstras particularly on the aspect of the protection of plant-kingdom and also the applicability of the ancient practices and their current relevance in the face of the crisis of global pollution.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-197

As Source for Sri Vaishnavism and Srinivāsa Cult

DR. R.N. ĀRLIKATTI, PUNE

Nigamas or Vedas and Āgamas or Tantras form the two primary streams of thought in Indian culture. Āgamas have made a two-fold contribution to our heritage, literary and practical. The literary contribution consists of temple-oriented scriptures of the different cults–the Vaisnava, Saiva, Sākta and other traditions. Āgama-Tantra constitute a parallel to the Vedas and attempt to serve the spiritual elevation of the common man; prescribing a path which is less tedious, simpler and easy to follow than the path prescribed by the Vedas. All the Agamas centre round the worship of their respective deities, such as Visnu, Siva and Sakti, with elaborate liturgical practices. They highlight eternal values which transcend the limits of time and space. The importance and peculiarity of the Āgama literature is that it is encyclopedic in nature, covering almost all subjects, both secular and religious, not only pertaining to the sphere of temple cult but also those that include town planning, marketing, different vocations, trade and business, fine arts like music and dance, and performing arts like drama, temple architecture, iconography, geology, metallurgy, handicrafts, gardening, cooking, flower culture and practical psychology as presented by behavioural psychology, in explaining religious experience of yogis, monks and priests to discipline all the mental faculties within the body. In India, from early times, the temple complex had been the centre around which economic, social and cultural life of all communities vibrated making economic, social and cultural life of all communities making each community in the complex lead a happy and prosperous life. The Āgamic tradition of image worship which developed into enshrined image worship holds an unbroken continuity.

❖

PR-198

Dirtism in Ancient Indian Religious and Ascetic life

GANESH UMĀKĀNT THITE, PUNE

Dirtism is one of the important aspects of ancient Indian Religious and Ascetic life. There is a reference to dirty monks in RV X. 136.2 (*munayo vātaraśanā piśaṅgā vasate mata*). A Vedic student remains without bath throughout his student-life and takes bath only when the studies are completed. Then he is called *snātaka* (one who has taken bath). A sacrificer undergoes *dīkṣā* ceremony. He takes bath only before and after the sacrificial

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

performance. In the ascetic life, some monks apply ashes to their body while Valmīki was practising penance without having a bath for a long period an ant hill had developed around his body. It was believed that the power goes away when one takes bath. On the other hand ascetic power is conserved while one remains without bath. Thus dirtism is an important aspect of ancient Indian religious and ascetic life.

❖

PR-199

The Theory of Karma Stated in the Brahmasūtra of Bādarāyaṇa Vyāsa

DR. UMA DESHPANDE, BARODA

We find unique theory of Karma, stated by the great sage Bādarāyaṇa Vyāsa in his aphorisms. Although the Brahmasūtras mainly deal with the metaphysical concepts, some of them refer to the nature of *kartā* (doer), the specific *karma* (deed) and the resultant reward (*phala*). Tough the embodied self (*śarīra ātmā*) acts under the guidance of the Supreme Reality (1-2-4, 2.3-33, 2-3.42, etc.) all his actions are to be directed towards the attainment of the Supreme Being-Paraonbrahma according to Bādarāyaṇa Vyāsa (3.2.26, 1.1.19, 4.1.7, etc.). The deed of the Supreme Reality is bereft of any purpose like the sports played in the world (2.1.32-36). The reward of the actions or efforts made by the *Jīvātmā*-Individual Self is the final beatitude given by the Paramātmā controlling the whole universe (1.1.2, 3.2.38, 4.4.22, etc.).

Thus, while the *Jīvātmā* strives to attain immortality through his acts of meitation and contemplation, the Supreme Being naturally and playfully restrains his activities, directs them for the final goal of *mokṣa* and controls the empirical activities of the mundane world.

An attempt is made in analyse and specify all the relevant aspects of the theory of Karma stated in the Brahmasūtra.

❖

PR-200

Does Bādarāyaṇa Inernd Ubhayavyapadeśa

SHAILAJA BAPAT, PUNE

Bādarāyaṇa author of the Brahmasūtras discusses the 'Ubhayavyapadeśa' (two fold references in the Upaniṣads regarding Brahman) in sūtra *'ubhayavyapade-*

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

śāttvahikuṇḍalavat' (3.2.27). This sūtra is interpreted in the commentaries in differeent ways. The commentators like Nimbārkācārya interpret it as a siddhāntin's view. However, other commentators like Śaṅkarācārya interpret it as one of the views taken into account by Bādarāyaṇa the Sūtrakāra.

Pesent paper tries to examine the various interpretations in the Brahmasūtra commentatries and explains the meaning of the sūtra in harmony with the meaning of other sūtras.

❖

PR-201

True Import of Vaiśvānara in the Chāndogyopaniṣad

DR. PRANATI GHOSAL, VARANASI

The Chāndogyopaniṣad (V.II-V.18) records the narrative of king Aśvapati and six Brāhmins, which states that once six Brahmins, with a desire to attain knowledge regarding Vaiśvānara Self, went to king Aśvapati. The king adored them accordingly and offered ample wealth. But they refused to accept wealth and sought for instruction concerning Vaiśvānara Self. The king put forth a coutner-question to each of them : What is the object of their meditation (i.e. how far do they know about this Vaiśvānara Self)? One by one, they answered that they meditate on Heaven, Sun, Wind, Sky, Water and the Earth as 'Self'. The king proclaimed that their separate meditation on Heaven, Sun, etc. indicates their partial knowledge. They approached him and he imparted the lesson on All-pervasive Vaiśvānara to them.

Now the question is what this Vaiśvānara is? From the above story it is clear that in this context, the Upaniṣad intends to mean Vaiśvānara as Supreme Self. Under the topic Vaiśvānara, the Brahmasūtra (1.2.24-32) also states that true import of Vaiśvānara is Supreme Self. But the opponents have rejected this view; They have raised objection that Vaiśvānara (is a common term to) mean : (1) elemental fire (*viśvasmā agniṁ bhuvanāya devā vaiśvānaraṁ ketum ahnāmakṛṇvan*—RV X.88.12); (2) digestive fire/heat in the stomach (*ayam agnir..... adyate*—BU V.9.1); (3) presiding deity of Agni, the Fire God (*vaiśvānarasya sumatau syāma raja hi kaṁ bhuvanānām abhiśrīḥ*—RV 1.98.1); (4) embodied self (*śarīra*) (*ko na ātmā kiṁ brahma*—CU V.11.1) but not specifically the Supreme Self.

This paper aims at focussing on true import of Vaiśvānara in the Chāndogyopaniṣad by using the key of Brahmasūtra and commentaries thereon.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-202

Social Values in the Upaniṣads

KALYĀNĪ GOSWAMI, ASSAM

The Upaniṣads, thought composed thousands of years ago, present a philosophy of life that is surprisingly relevant to the present society. They do not teach defeatist escapism or sterile asceticism. The Īśopaniṣad gives voice to it. 'One should desire to live for one hundred years performing one's own duty' (कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः। Īśa 2).

The purpose of social value is to promote social welfare. The social values determine human behaviour and therefore influence the quality of life. The Upaniṣadic philosophy was not antisocial. In Upaniṣadic age the purpose of education was to help the member of society to get rid of self-centredness, cruelty, greed and other vices and thus to create an environment for achieving of the highest goal, which transcends society.

Modern man is more concerned with gaining power and meterial benefit. But the seers urge upon us to discover the ultimate value of life by means of worldly values pursued by man. The Upaniṣads tell us that through spiritual consciousness the nation of liberty, equality and fraternity can be established in a society. Moreover we find the high moral tone of society in the voice of creator and king.

The concept of divinity in human beings has some important implications for society. In the Upaniṣadic society purpose of the caste-system was to push men to bring out their potent powers. The Upaniṣadic social values foster the much needed spirit of love and sacrifice. They kindle the light of love in our heart which strikes at the root of social evil.

Modernity does not emply an awareness of time. It stands for an individua's outlook. If we read the teachings of the Upaniṣads and meditate on them, we will find an answer to our problems which threaten human generation in the modern age.

❖

PR-203

Holidays of the World

PROF. SADĀSHIVA PRAHARĀJA, ORISSA

Venerable seers of ancient India have specified certain days, places and times when and where studying and teaching are to be avoided in the interest of the students as well

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

as the teachers. They specify ten types of prohibitions or suspensions, out of which nine types are observed almost all over the world. Among these ten types, the type of prohibition of days is the most important one as it is according to the views of the Indian seers, very much harmful to the students, teachers and consequently to all the intellectuals. This important type, however, is not at all observed through out the world.

Nine days in a month are strongly prohibited by the ancient seers of India for studing and teaching and consequently for all intellectual activities. These nine days are the first, the eighth, the fourteenth and the fifteenth days of a fortnight. These days add upto eight in a month, which are directly related to the Moon. The ninth day is the first day of a solar month or *Sankranti*, which alone is related to the Sun.

If the above nine days would be declared as holidays it would be in the interest of the students and teachers in the educational institutions of the world. These nine days ought be declared as holidays for the sake of crores of educated employees who perform intellectual exercise in different offices world wide. This humble submision being putforth in this presentation.

❖

PR-204

Totemism in Manipur

PROF. M. KIRTI SINGH, MANIPUR

Totemism is one of the forms of Primitive Religion among the indigenous people. There are differences of opinion among the European/British Ethnologists on the issue of totemistic stage in Manipur belief. T.C. Hodson contends that the so-called totemism of Meteis is a mental attitude arising out of fear or horror. Frazer holds that *nāmuṅbās* (allergic) of the Meiteis is a form to Totemism. The author has noticed the spirit of totemistic stages in the beliefs of different people of Manipur and takes dissent from the opinion of T.C. Hodson in this paper.

The ruling dynasty of the Ningthoujā (Rājkumārs) used to worship Pāphal (Diagramatic representation of snake God Pākhanbā) as their divine ancestor. The members of this family never kill nor eat python and its various manifestations in fish, trees and animals, they worshipped a form of it in flags, clothes and emblems. Some of the clans of Manipur had their totems, emblems and colours for ritualistic purposes before merging into Metei society. They took oath with certain plants, fruits, birds, etc. as customary duty. Some of the ruling deities-Umanglaīs (forest deities) and gods of seven days have the

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

appearance of half man and half animals. The Sangai (a rare species of deer found in Manipur) is considered very sacred and is not killed by the rulers.....Animals, trees with peculiar signs and of many years are honoured and worshipped by the community for their blessing of increase food supply and peace in the society. Totemism has a great significance in the context of modern environmental sciences.

❖

PR-205

Main Doctrine of the Bhagavadgītā

DR. KRISHNA CHAKRABORTY, KOLKATA

Main Doctrine of *Bhagavadgītā* is Liberation. In order to be liberated, man should act for the wefare of the world. He has to save himself by renunciation of selfish aims. '*lokoayaṁ karmabandhanaḥ*' (Chap. III.14.16). This world is bondage of actions. No man can win freedom from bondages of actions. Good actions results in good, bad actions results in bad. In order to enjoy effect of actions man is to born again and again to enjoy pain and pleasure of life. So in order to become free from bondages of actions Lord Krishna advices to perform action without attachment '*mukta-sangaḥ*' (Chap. III.4-9). Actions performed without attachment (*saṅgaḥ*) do not defile. Duty is to be done without attachment and expectation of personal benefit. Duty is to be done without being affected by hope of success and fear of failure. Only by renunciation of selfish aims man can become free from bondages of actions and can become liberated. Great aim of *Bhagavadgītā* is '*mukti*'. Liberation or emancipation is nothing but to become release from the bondage of actions.

Ultimate ideal envisaged for man in the *Bhagavadgītā* is that of the individual who 'rejoices in the welfare of all beings'. Work done without attachment is marked as superior to work done in a spirit of sacrifice which is itself higher than work done with selfish aims.

Actions without attachment helps us to attain purity of mind which leads to salvation. It takes us to perfection indirectly through the attainment of purity of mind. The highest deal is to transcend the ethical level and rise to the spiritual level.

Ultimatum of our Life is to attain Supreme and the best way of attaining Supreme is to do work without attachment.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-206

Human Rights in India : The Vision of our Nation Builders

DR. HARIHAR MISHRA, PURI

Our society exists in a world of confused aims and divided loyalties which might yet grow to a world society, a global community. Today India is a conglomeration of societies having diversity of every kind, be it race, religion, culture, size, climate, political difference or economic inequality. This is a vague dream of unity of aim but of little practical unity. Our constitution promotes a degree of mutual co-peration. We have to look back in the annals of human history to see how was have progressed from the rudest form in which man so as found ancient men who lived in unknown caves, Cannibals on thresh, a connubial, eater of worms and offal, the progress from this extreme condition is called civilization. It is a vague or compelling definition of the them. It denotes the evolution of a highly organized man. He has reached a stage of supreme delicacy of sentiment, religion, liberty, sense of humour and tastes. A nation that has no iron, no alphabet, no marriage, no abstract thought no real regulations and system is called barbarous. During the couse of civilization Arts appear after multitrades of advances evolves in its own way, (evolution history of civilization). To trace the growth of civilized society we should study, man and his compostion.

There has been perceptible change in Indian society in the last few decades after independence. To he question whether the changes have reached the grass root level, the answer is an emphatic no. The Indian society in the past has seen lots of differences in maters of cultural awareness of human rights attitude to work, etc. This paper mainly to explain the vision of our great thinkers like Swami Vivekananda, Sri Aurobinda and Gandhi with special reference to this last thinker and its relevance in modern times.

❖

PR-207

A Glance on Gandhian Ecology

SMITA DASH, BHUBANESWAR

Gandhiji was a great philosopher, educationist and environmentalist. He had vision not for a day or a decade but for centuries. Gandhi had written voluminous reports on environment, equality, equaly distribution, rural industrialisation and many other issues concerning environment.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Industrialisation : The environmental impact of minig would be classified as : (i) Pollution-air, noise and vision, (ii) Despoliation of land, (iii) Deforestation, (iv) and civil environment. Gandhiji felt that industrialisation was going to be a curse for mankind. Gandhi opined that the dead machineries must not be pitched against the millions of living machines.

Agriculture : Gandhiji's concept of Swarājya was to have Ramarājya in India. He sought not only for political freedom but for social and economic freedom. Gandhi favoured promotion of rural industry and improved agriculture for higher harvest but he also believed that the application of modern technology pesticides, insecticides, fertilisers directly or indirectly became the causal factor of air and water pollution.

Sanitation : He also viewed 'Ahmedabad can not evadethe responsibility for sanitation by pleading poverty. Any one, who fouls the air by spiting about carelessly throwing refuse and rubbis or otherwise dirtying the grounds, sins against man and nature.

Population Control : Gandhiji's environmentalism, was based on various ethical principles such as : non-violence, practising and preserving truth, shunning the use of materials obtained by illegitimate means, celibacy as a means of population control, neither coveting or amassing materials and wealth beyond one's need he did not preach anything that he did not practice himself.

Sustaniable Development : Modern planners seem to have forgotten to simple truth that while something ought to be growing others ought to be diminishing. Scheemacher has rightly pointed out : '*Unlimited material conservation in a finite world is an impossibility*'.

❖

PR-208

Devatānāṃ Manuṣyāṇāṃ Sahavāsoabhūttadā (An Unsolved Mystery of the Indian Tradition)

DR. ASHA GOSWAMI, DELHI

During the Gupta age when the Brāhmanical renaissance was taking place, in order to strengthen the position of the Brāhmanical Ideology, the whole literature was being recast. The people of the country hopefully reacted to the Nationalism of their pristine traditions by casting wistful eyes towards their mythical past 'when their ancients lived in association with the Gods : Devatānām manuṣyānām sahavāsoabhūttadā as is recorded in the Harivaṁśapurāṇa, III.32.1; or 'when the gods Viśvevāḥ and the Marutas came in person to attend and participate in the sacrifices performed by the kings Marutta and

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Āvikṣita : Marutaḥ pariveṣṭāro Maruttasya avasan gṛhe/Āvikṣitasyānikṣanta Viśvedevāḥ sabhāsadaḥ' similarly recorded in the Śatapatha Brāhmaṇa XIII.5.4.6.

This paper aims at solving the age-old belief, which keeps on echoing vibrantly in the Indian Tradition right from the days of the Vedic Age and is unhesitatingly adopted by the Paurāṇikas since some of the Purāṇas also repeat it verbatim 'that in the days of Yore, the Devas and the human beings used to occupy the common platform in close vicinity only on the Earth'.

In almost all the religions of mankind, a variety of conviction about the unseen Reality or the God which they all claim to have dealt with is still challenging. Some believe that a God who is by definition invisible and untangible cannot be real and visible to the naked eyes.

To conclude the discussion on solving this riddle of the Indian Tradition regarding 'the common platform of Earth being shared by the devas and the humen', it may be asserted that since the testimony of the scripture like the Vedas and the Purāṇas, which retain their sacred religious authority as important source of Traditional history of ancient India, is to be relied upon, we ought not deny the Indian Tradition recounting that the Vedic seers were privileged enough to enjoy Devas' Company; of fully interacting and maintaining close relationship with them 'by harmonization of themselves with the higher powers, the so-called Devas'.

❖

PR-209

Monistic Epistemology : A Critical Comparative Study

PROF. DIPAK GHOSH, CALCUTTA

The following points are to be developed in the full-fledged paper :-

1. In the contrast with other branches of Indian Philosophy, e.g. Nyāya, Vaiśeṣika, etc. Śaṅkara's Monistic Vedānta is remarkably unique in as much as this branch of Indian Philosophy, Epistemology (study on knowledge) has been merged with—or rather identified with Ontology (study on Being) : Epistemology and Ontology both being two separate branches of Philosophy, according to Western concept.
2. The Upanisadic statement '*yat sākṣāt aparokṣāt brahma*' is the keyword on which stands the whole structure of Śaṅkara's Epistemo-Ontological Monistic Vedānta.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

3. '*Aparokṣa*', thus being the synonym for 'brahma', The Absolute, is absolutely Transcendental and stands alone as the only Truth, but '*pratyakṣa*' falls in line with the multiplicity of other empirical pramāṇas like '*anumāna*' etc.
4. 'Vyavahātre ohāṭṭanayaḥ' : Śaṅkarite Monists follows into the Bhāṭṭa Mimāṁsā School in all empirical matters and therefore admit six ways of knowing (saṭ pramāṇas) : pratyakṣa, anumāna, upamāna, śabda, arthāpatti, anupalabdhi.
5. Of these six *pramāṇas* the position of perceptual knowledge is somewhat different from that of others, it is because pratyakṣa knowledge being Direct, certainly Direct empiricality, is nearer to '*aparokṣa*' knowledge, which is also Direct, although transcendentally (*pāramārthika caitanya*), whereas the empirical pramanas like '*anumāna*' etc. are all Indirect (parokṣa).
6. Perceptual knowledge (*pratyakṣa jñāna*), although within one and the same circle of Empirical realm, possesses a unique characteristic capacity which is different from othe empirical *pramāṇas* in exploring epistemologically the empirical status of the world, which is like this *pratyakṣa*, the direct Empirical Knowledge is to flash directly the empirical objects in the forms of *ghaṭajñāna paṭajñāna*.

PR-210

Bodhapancadasika of Abhinavagupta : A Study

DR. MRS. SUNANDA Y. SHASTRI, AHMEDABAD

The Bodhapancadasika is a text of fifteen verses composed by the famous exponent of Kashmir Śaivism Abhinavagupta. He is the author of famous work Tantrāloka, which is considered as the compendium of Tāntrika knowledge. The present work : 'fifteen verses of Wisdom', is the brief treatise, but contians essence of Kashmir Śaivism. According to Abhinavagupta, it is composed for the benefit of devoted disciples whose intellectual capacity is not enough to understand the difficult treatises of Kashmir Śaivism. It contains the fundamental reality of Non-dual Śaivism and highlights the relationship of Lord Śiva to his creation. First three verses deal with this aspect. Later eight verses deal with the topic of creation according to Kashmir Śaivism.

Abhinavagupta explains nature of the Creation and the knowledge that frees us from our own delusion. The external world is nothing but expansion of His energy and is filled with the glory of Śiva consciousness. This world is not separate from His energy, i.e. Śakti. Both are inseparable and interconnected, just as the fire and its heat. The state of Śiva and the state of this universe both are one and the same.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Lord Śiva creates this whole universe in the mirror of His own nature by His independence (Swatantrya). This paper attempts to bring out the three important points of Kashmir Śaivism, viz., 1. the relation of Supreme Reality Lord Śiva with the universe: 2. the Creation and 3. Liberation on the basis of this text.

❖

PR-211

Evolution of Witness and Evidences

MRS. RAMADEVI SEKHAR, CHENNAI

The Smṛtis hold that for the degenerate man of the later generation it is not possible to either comprehend or to carry in his mind all that Vedas had to tell. Hence prompted by the compassion for weaker bretherer, Smṛtis were written, bringing together in more intelligable language and within a smaller compass all the teachings that lay scattered throughout the vast literature of Vedas. In important section of Dharma Śāstra is Vyavahāra. There has been a steady expansion of the concept of Vyavahāra in Smṛtis with its consumnation in Nārada Smṛti where it is taken to its technical and legal best.

The process of Vyavahāra is divided under four stages (pāda) : भाषापाद—where plaintiff is allowed to register his complaint, उत्तरपाद—where the person charged gives his defence, क्रियापाद—the most imposrtant part, where examination and scruting of evidences and witness is executed and सिद्धिपाद—where the judge or jury pronounce their verdict.

The third stage namely क्रियापाद being most important before arriving at a conclusion the concept of evidences and witness are delt in great detail by the authors of Smṛti. The present paper is an attempt to study their validity and progressive amendnents made to suit the changing circumstances.

❖

PR-212

Principles and Evolution of Punishment in Hindu Civil Law

P. RAMACHANDRASEKHAR, CHENNAI

With the growth of civilization and cultural advancement of the country, our concept is bound to be influenced with the keener sense of the values of life and humanity materially changing. To illustrate, the concept of criminal law, criminal titles and punishments have materially changed from the days of the ancient Dharmaśāstras to modern legal provisions when our outlook of life has basically and materially changed.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The law and criminal law have to fulfil certain individual and social needs, starting from the peculiar sense of the relation between the individual and society and also the concept of a healthy, cultured society prevalent at a certain time.

It is a matter beyond doubt that law, must necessarily, be based on the particular social structure, way of life, psycology, moral and religious sentiments of the mass it promises to govern.

❖

PR-213

Mind is Soul

DR. SUKADEV BHOI, VARANASI

The term '*ātman*' used in the Upanisads bears two menaings : *Jīva* or the Individual Self and Brahman or the Universal Self. These tow selves are, however, not different from each other, since, in the analysis, the Individual Self is said to be identical with the Universal Self. Upanisadic passages like '*tat tvam asi*'—that thou art, again *Ayam ātma brahma*—this Individual Self is Brahma.

All the schools of Indian Philosophy excepting Carvakism and Bhuddism regarded the mind as an internal organ connecting the self with the external sense organ to produce knowledge.

The Nyāya Vaisikas and the Mimansakas hold that the mind is a substance devoid of sentience, as distinct from the self which is sentient. But though insentient, the mind is not constituted of the five material elements. That is why it has been mentioned separately in the list of Substances. 'क्षिति-अप-तोजोमरूत-व्योम कालदिग-देहिनौ मनः द्रव्याणि'।

According to the Naiyayikas and the Prabhākara Mimansakas, the mind is imperceptible; it is known only through inference. Thus, though the senses are stimulated by the objects, and the self, being all pervasive, is always in contact with the objects and the senses, knowledge remains illusive. Again, when more than one sense organs are stimulated by the objects, there is no simultaneous knowledge of them. The notion of simultaneity of knowledge is false, just as the idea of simultaneity in the act of piercing one hundred lotus petals by a needle is false. This indicates the existence of some other entity which is *manas*. If such intermediate principles were not there, and if the contact of the objects, the senses and the self were capable of producing knowledge independently of such a principle, there would have been simultaneous knowledge.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The mind exists in the whole body and is, therefore, intermediary in size. And as it is endowed with the capabilities of contraction and expansion, it takes the form of the body in which it exists.

What is the relation between the mind and the self? To this, my reply is that if, by the term 'self one mean some immutable and eternal reality devoid of all actions and qualities, then, it is not to be found in the mind-body-complex or life process. For such a self is no other than the all pervading Unversal Self lying beyond the mind-body.

The mind is generally called अन्तःकरण or the internal organ of the Self. On this point my view is that, the mind holding an intermediary position between matter and consciousness, possesses the characteristics of both these elements. When we emphasise the element of matter, we call it internal organ, and when we emphasise the element of consciousness, we call it the 'Self' or 'I'.

❖

PR-214

Origin of the Universe and its Implication (From the Advaitic Stand Point)

DR. MRS. BHABANI GANGULI, CALCUTTA

To develop my paper I put much emphasis on the Ādi Śaṅkarācārya's commentary on Brahma Sūtras. The Sūtras like *Adṛsytvādisguṇako dharmokteḥ* (1.2.22) *Viśesaṇa-bhedevyapadeśābhyāñca netarau* (1.2.22) and *rūpopuanyāsāca* (1.2.23) are examined and exaustively analysed in this paper. Here we find that pure consciousness or Brahman is accepted as the source of the universe through some process. Arguments are sometimes justified by the Śruti. It is claimed that the statements which are found in the Upanisads are austensively pointing to Brahman.

In conclusion it can be said that human life will become more peaceful and more practical in social behaviour by positive ascertion of something 'Conscious' behind the Universe (eternal source of human existence).

❖

PR-215

Dream : Appearance and Reality

DR. YOGANAND JHA, DARHANGA

Dreams are visual images seen during sleep. They have fascinated mankind through the ages, and the writer since his very childhood because his family members and he himself have often been dreaming of actual past, present and future events.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Physcologists Freud, Jung, and others explained that dreams express and fulfill the suppressed desire of the subsconcious and gratify the Ego; mystics and Patanjali traced its mechanism through Ida, Pingla and Sushmana to Manas Patal, but dreams compreend much more than the present spatial and temporal order of the universe. In fact some of them transcend the limit of time and space.

During the waking period the doors of perception are the five sense organs and the rute is the nervous system and the field of presentation to the attention is limited.

During sleep, these sensory organs become dormant, the route of perception changes and the stimuli in the form of energy waves course their way through any route to the conceivers cerebral cortex and the field of presentation enlarges to cover a vast area of sapce and time like Television and one can see the remote and distant future.

Seeing the future conceives time, if it is the fourth dimension, whether time is existent or non-existent. So the types of dreams, their mechanism, the real character have being analysed scintifically in this article with the contention that dreams are normal, physical, physiological and gene-coded psychological phenomena.

❖

PR-216

The Power of Remembrance

RAM KUMAR SHARMA, LUCKNOW

If both the sentient and insentient *ābhāsas* are momentary so must be the knowledge, and if so, then even the postulate of the power of knowledge fails, to explain the 'why' of all the worldly transactions. For, our experience tells us that our decision to try to gain or shun an object is reached after a sufficiently elaborate psychological process. What to do at first is to place, the experience of the present object by the side of in similar one the past. Then we compare the two, draw a sort of inference as to the useful or harmful nature of what is present before us and accordingly decide to try to gain or shun it. The knowledge is momentary. It is destroyed the very next moment after its production, but the comparision of experience necessary for motor response, requires its continuous existence in some form, till the comparison is done. The theory of momentary knowledge, therefore, cannot satisfactorily account for the togetherness of experience of different times on which all wordly transactions depend. Therefore, in order to explain the psychological phenomenon of the abvoe description, the *ābhāsavādins* postulate another aspect of the ominscience, 'the power of remembrance'?

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The power of remembrance is the power of universal consciousness by vesture of which it manifests itself in the form of such an individual self as can retain the effects of the external stimulate, received at the time of perception, and is able to revive them at that of a subsequent perception of a similar thing so as to make the unification of the experiences of both the present and the past possible. The fact is that the sentient wave is like a momentary wave of light emanating from a permanent source.

❖

PR-217

Āpaddharma

DR. ARUNIMA MUKHERJEE, KOLKATA

Struggle for existence is inherent in human beings sometimes a situation arises where normal code of conduct or rules of life are not sufficient for survival. Survival demands certain emergent actions. These actions normally do not fall in line with normal code of life. But these actions have got the recognition in Dharmśāstras as dharma (during āpat)—*āpaddharma*.

Āpat (emergency) may be of different categories, viz. political, economic and social, etc. Dharmaśāstras like Manusamhitā, Yājñavalkya Samhitā, etc. have mainly dealt with economic *āpat*. *Āpatas* in the Mahābhārata are mainly political. Incidentally, social, economic, individual, collective and several other types of *āpats* are discussed therein.

Though the Dharmaśāstras have sanctioned some abnormal actions in some abnormal situations, limits of such actions have equally been prescribed. There is also provision for expedition for such temporary *adharmas*.

Considering the means and the goal our actions may be divided into three categories. i.e. *dharma*, *adharma* and *āpaddharma*. When the means and the goal both are noble : it is dharma and when both are unjust it is *adharma*. At the time of distress (*āpat*) actions are justified by the goal and not by the menas.

❖

PR-218

Logical Debates and their Restrictions

DR. S. LAYEK, KOLKATA

From the history of philosophical treatises we know that there had been a constant clash between Brāhmanism and Buddhism. Though it started from the time of Akṣapāda

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Gautama, the writer of the Nyāyasūtras, but became prominent with the appearance of Vātsyāyana, the Bhāṣyakāra. After that many have appeared in both the schools namely, Uddyotakara, Vācaspati and Udayana in the orthodux school and Diṅnāga, Dharmakīrti, Dharmottara, Ratnakīrit, Jñānaśrī, etc. in heterodox school respectively. This contention gives enormous and healthy growth to both the schools in an unbroken line for quite a long time, i.e. till the invasion of foreigners in India. As per the motive of the debator Akṣapāda classified the science of debate into three categories, viz. *Vāda* (a controversial discussion), *Jalpa* (wrangling) and *Vitaṇḍā* (disputation). Our present topic of discussion has been enumerated by the Sūtrakāra as one category (*Padārtha*) out of sixteen. And this has been prescribed by him as a means of attaining true knowledge (*tattvajñāna*). This *tattvajñāna* helps us achieve salvation. But to me it appears that this cannot be treated as pure menas for achieving the purpose. *Nigrahasthānas* (*NSs.*) are often found to use in order to destroy the stand of the opponent or to silence him when the honest menas namely, *Pramāṇa* (proof) and *Tarka* (reasoning) fail to obain the desired objective. But needless to say that this *NSs* are not totally devoid of purpose as conceived by the *sūtrakāra*. It protects the sapling of true knowledge being restricted within the four walls of *Jalpa* and *Vitaṇḍā*. This paper aims at analysing all these points.

❖

PR-219

Proprietary Rights of Wife in Ancient Sanskrit Literature (Evolution from the Vedic era till the Modern Age)

DR. SHALINI, PATNA

Economic independence and property have important bearing on the status that the various sections enjoy in the society. In the long process of its living past, people of India came in contant with varieties of tribes, races and cultures. This has lent a peculiar and fascinating impression upon its customs, usages, thoughts and ideologies. Naturally, the 'Proprietary Rights' of women, along with theological tenets of the ancient Āryāns, also reflected changes accordingly.

The law of Proprietary Rights is related to the laws of inheritance and heir-ship. It comprises rules that govern the devolution of property on the death of a person upon other persons, solely on account of their relationship with the former.

In ancient India, society was patriarchal character. The joint-family was the unit of social life and the patriarch was its head. There was no conception of ownership of property individually. It is of later growth. The society was against the women to invest property

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

right in them. They had been declared 'Adāyādī', i.e. incapable of holding any property. However, it has recognized 'Strīdhana' of women fairly early. Almost all jurists recognized the wife as a limited owner and heir of the property acquired by either by inheritance of partition. Later leaders of society urged for amendments in the then existing law, with a view for the wife to have full powers over her own share of the family property. The property acquired by a woman was called the 'woman's state'. She could enjoy it but could not alienate the corpus. After passing of the 'Hindu Succession Act, 1956', the women's state was abolished. It has brought all heirs on equal fotting. However, for the proper implementation of such legal reforms the attitude of society needs to be conducive.

❖

PR-220

Sapakṣa and Sādharmydṛṣṭānta : Difference Between the Two

NANDITA BANERJEE, KOLKATA

It is known fact that Indian Philsophy of the ancient times paid littel heed to logical validity, independent of truth. Whether a judgement or a statement is true is to be settled empirically with reference to the world of facts. Accordingly every generalisation as the pivot of *anumāna* or inference, is of necessity, to be backed by at least one co-instane where the inferring person has ascertained the invariable relation of the probans with the probandum. A co-intane is called *sādharmyadṛṣṭānta* because of its having similarity with the *pakṣa* or inferential subject due to their having both the properties, i.e., *sādhya* (the probandum) and *sādhana* (the probans) in common. It is needed for showing the invariable relation in a positive way.

There is a tendency to equate the co-instance with the co-subject or *sapakṣa* which means a thing wherein the probandum is ascertained already, and therefore, is never a matter of doubt. It resembles the *pakṣa* because of possessing the same *sādhya* or something similar or homigeneous to it. But actually speaking, whatever is a co-instance is a co-subject, and not *vice-versa*. Usually the probandum as the pervader has a wider scope than the probans whcih is pervaded by it. So existence of the probans in each and every co-subject cannot be demanded. But a thing, in order to be a co-instance, invariably requires the existence of both the *sādhya* and the *sādhana* in it. Any equation between the co-instance and the co-subject is possible only in the case of a equipervasion (*samavyāpti*) between the probans and the probandum.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-221

Ethical and Moral Values of Sanātana Dharma and Darsana

DR. PARAMESH ACHARYA, WEST BENGAL

Hinduism, according to its tradition and belief, is not a religion belonging to a particular race or country; but it is what remains of an ancient system of knowledge, the Sanātana Dharma which in another age was the inheritance of the whole of mankind. The Veda is the foundation on which the Sanātana Dharma is based. It embodies the regulations, the laws of the universe as ''seen'' by the gifted Rishis.

In Hinduism, 'Dharma' refers to the way of life which is conducive to our peace, spiritual development and ultimate realization of the presence of God with us as our inner soul (Atman). The central aim of Hinduism has been to unfold and realize. This 'divinity' within us and achieve ''unity with God'' Through various moral and spiritual disciplines known as the yogas.

To understand this eternal knowledge in the true sense, we must follow the way of truth itself. Let us bring out our minds to rest in the Glory of the Divine Truth. May truth inspire our reflection (Veda).

On the biological level, man is very similar to animals. Thus, without the practice of spirituality, man's nature and actions are not much different than those of animals.

❖

PR-222

Main Doctrine of the Bhagavadgītā

DR. KRISHNA CHAKRABORTY, KOLKATA

Main Doctrine of Bhagavadgītā is Liberation. In order to be liberated Man should act for the welfare of the world. Man has to save himself by renunciation of selfish aims. ''*lokoyaṁ karmabandhanaḥ*'' Chap. II 14, 16. This world is bondage of actions. No man can win freedom from bondages of actions. Good actions result in good, bad actions result in bad. In order to enjoy effect of actions man is to born again and again to enjoy pain and pleasure of life. So in order to become free from bondages of actions Lord Krishna advices to perform action without attachment 'Mukta-Saṅgaḥ' (Chap. III 4-9). Actions performed without attachment (saṅgaḥ) do not defile. Duty is to be done without attachment and expectation of personal benefit. Duty is to be done without being affected by hope of success and fear of failure. Only by renunciation of selfish aims man can become free from

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

bondages of actions and can become liberated. Great aim of *Bhagavadgītā* is *'mukti'* or Liberation. Liberation or emancipation is nothing but to be released from bondages of actions.

❖

PR-223

Remarriage Rights of Women According to Dharmaśāstra

R. SUBASRI, CHENNAI

Marriage is one of the saṁskāras where bride is gifted to the groom to perform the duties together as Gṛhastha. Indian viewpoint about marriage is always thought in connection with society; family that includes elders, youngsters and duties towards all. Our ancient lawgivers right from Manu, Yājñyavalkya, Nārada and others had given legal rules for women and men regarding marriage. The laws pertaining to the mutual relationship between a husband and wife, their rights, the extension of legal applications and its limitations are more clearly stated in the Dharmaśāstras.

This paper attempts to show the legal rights of women pertaining to remarriage which are advocated by our ancient law givers.

❖

PR-224

Implication of Indian Epistemology in Education and Pedagogy with Special Reference to Sankhya

PROF. N. B. BISWAS, SILCHAR

Epistemology is a philosophical discipline, which attempts to supply answers to questions concerning the nature of human knowledge and its validity. 'Epistemology' as a term has its origin in Greek word *epistemo* and *logos* means discussion about knowledge. The decline of Sanskrit as the central language of creative expression in the first quarter of the past millennium has created a gap in Indian thoughts. The decline of Sanskrit was accompanied in India by a cultural balkanization of the subcontinent. The process of increasing heterodoxy and assertive multiculturalism left Indian thinkers of the post-Sanskrit era (if that expression is allowed) little autonomy of language, thought and culture. Thus, the whole of Indian concept of knowledge system is influenced by the western epistemological theories. As a result the education process specially, in the field of pedagogical sciences are managed by the western thought and practice.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The present scenario of Indian education is very gloomy. It is neither in tune with the life or the philosophy or of the value system of India. The education, which is practiced in the educational institute, is devoid of Indian epistemology. Indian Schools of philosophy had its theory of knowledge but now it is not taken into consideration in Curriculum. This persuaded the author to take up the present study.

❖

PR-225

Basics of The Sutras

SHREE SARAT KUMAR KAR, ORISSA

The 'Sutra' Literature is a class by itself. As per the norms set for a sutra, it should be *alpākhyara* (consisting of minimum number of letters), *asandigdha* (without doubt as regards the meaning), *Saaravat* (must contain the essence of the subject) and yet *Visvatomukha* (reflect all aspects of the same). However, in their anxiety to economics the words, the composer of the sutra works seem to have so overdone it that Bhashya or explanatory commentaries by later writers become necessary.

In the 'Sūtra's, the *gruhya* and the *dharmasūtras* form the earliest bunch of sūtra literature. The darsanas or the philosphical systems, which are of a latter period, followed this sūtra model since it served their purpose well.

This paper attempts to analyse the basics of the Sūtras.

❖

PR-226

Equality Before Law-A Changing Scenario

NILADRISANKAR BANERJEE

Equality before law is a concept generally accepted in the civilized countries to formulate their legal code, and endeavor to provide honorable status and opportunity to all the sections of people. This paper entitled ''Equality before law-a changing scenario'' is an attempt to show that the concept of equality is actually aimed to cover up the real state of inequality pervading in nature as well as in society. Bragging clashes were evident in every ancient scripture from the Veda to the Bible, where each of them proclaimed their superiority over other. The ancient seers proclaiming equal origin of everything living and non-living from the lowest creatures to the intelligent mankind, from the omnipotent in

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

social sphere they assigned different status on different people according to their birth etc. In consequence they prescribed different rule and code of conduct for them. Critical comparison between the *Smriti* rule and the present legal code to some extent revels the similarity of hollowness of the concept of equality in practice.

❖

PR-227

Religion, a Path of Discipline to Spirituality as seen in the Daily Life of Indians

DR. MRS. LALITA KUPPUSWAMY

According to ancient wisdom, Religion and Philosophy melt together in a common crucible, the crucible of life itself. Religion is a practical search for the sublime, the Surpeme Principle. In the first stage, the sublime is realized in the cosmic power and later in the social values. Then it is seen identical with spiritual qualities like non-violence, love and goodness.

Modern age is characterized by abnormal stress and srain. This is due to our false values and moral break up with the Divine. Religion imparts the art of living by which man can discover himself in these small chips of life at the equipoise to stand up to life's situations. This tool is with the man only and not outside.

The paper is an attempt to show a path of religion in the modern life of Indians.

❖

PR-228

Sree Nārāyanaguru and his Religious Concept

DR. V. SISUPALA PANICKER, KERALA

Sree Nārāyana Guru, the great prophet of Universal humanism, is an ideal jnanin of action who rightly inherits the true spirit of the cultural heritage of India, by word, mind and action. His selfless and devoted service to the fellow beings eloquently bespeaks his commitment to the uplift of the downtrodden and the poor. He boldly inaugurated a new era in Indian ''ṛshi tradition'' by sacrificing his own life, body and religious attainments for the welfare of others. He had a vision of liberation - liberation of the entire humanity, not that of the individual. Guru prescribed unity and acquiring knowledge as unfailing means to cut off of ignorance and thereby attaining liberation.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Sree Nārāyana Guru's concept of religion has proved to be an effective solution to tackle all problems raised by religious fundamentalism and terrorism. Natarajaguru, a direct disciple of Nārāyana Guru rightly observes : ''In the present day world, torn into fraction and plagued with dispures, Sree Nārāyana Guru is a beacon-light illuminating the keys to the Social justice and the solution to socio-economic, geo-dialectical and meta-semantic riddles.''

❖

PR-229

Vedānta for Human Excellence

DR. SUBASH CHANDRA DASH, BHUBANESWAR

The Vedānta Philosophy is the essence of the Vedic way of life which was accepted universally once upon a time. The reason behind such acceptance was the building of human beings to an excellent personality in the society. The method of the Vedantic teachings was based on Truth, Knowledge, Beauty and Goodness. These became the code of human conduct which was well-accepted, both by the learned and the common man. The Upanisads taught the basic priciples of human existence through the above qualities.

In the modern society, everybody is in need of Peace and Ananda. They have forgotten the above mentioned path shown by the Vedanta Philosophy. The common man is in great danger and insecurity. There is chaos everywhere. The reason is the absence of human qualities. So, the Śāstras have to be looked into in this direction where we have plenty of resources for building the society. The Vedānta has developed certain formula to build the human being in such a way that he can be an excellent example in a society.

In this way, Vedānta can contribute a lot to build human being and society as well can solve many burning problems even today. The present paper will discuss the above from Vedantic view point.

❖

PR-230

Nyāya-Vaisesika Concept of Padartha

MISS KAVERI N. JADHAV, PUNE

The word 'Padartha' (पदार्थ) means something which evolved (refers i.e. referent, in general). As a matter of fact, (पदार्थ) means ultimate reality. In the systems of Philosophy,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

when we begin to analyse the universe, we classify it into several broader groups of classes and treat them as an ultimate reality. In Indian philosophy, these realities are called पदार्थ (न्याय-वैशेषिक etc.) or तत्त्व (सांख्य) or द्रव्य (जैन).

In the present paper, we will discuss the concept of 'Padartha' (पदार्थ) with reference to Nyāya and Vaisheshika system alone. (न्यायसूत्र) of Gautama enumerates sixteen (16) पदार्थ i.e. प्रमाण, प्रमेय, संशय etc. Coming to Vaisheshika (वैशेषिक), they have postulated six (6) or seven (7) पदार्थs i.e. द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, समवाय etc.

Now, the question is whether the padarthas are sixteen or six or seven. Bhāshyakara tries to answer this by stating that the seven padarthas can be included in the sixteen padarthas or vice-versa.

The present paper will explain and reflect on some of the questions raised here :

(a) What is Padarths?

(b) Is Nyaya Padarthas equivalent to Vaisheshika Padarthas?

(c) Does the effort of Bhashyakara to include one in the other has any relevance?

❖

PR-231

Tat-Tu Samanvayāt

DR. P. RANGARAJAN, CHENNAI

Sri Bhāshya is the special name by which the commentary by Acharya Sri Rāmānuja on the *Bramhasūtras* of the sage *Bādarāyana* is known. It contains all the fundamental doctrines of *Vishistādvaita* as propounded by preceptors, beginning with the the ancient sage *Bādarāyana*. The most important of them is *Lord Srinivāsa*, the *Para-Brahman*, the supreme soul who pervades, directs and controls all substances-the sentient beings and the non-sentient objects. Hence the whole *Śastra* is also called *Sareeraka Meemaamsa* the enquiry into the scriptural text, which deals with *paramātma* as the *Sareeri* and all other things as bodies.

It is in 4 main chapters, their main topic being the *Para Brahman* of the *Upanishads*. The first two chapters establish with arguments undisputed that the *Para Brahman* is the supreme cause, Savior and redeemer of the universe. The third chapter deals with the means of attainment of the supreme god namely, himself. The topic of the fourth and the last chatper is *Paramātma* who is bliss and consciousness incarnate. The article in hand is devoted to *Tat Tu Samanvayat*.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

However *Sri Rāmānuja* has not given it as a mere refutation of the *Mimamsaka* view but introduction to the views of the other schools of *Advaita* and also the *Bhedābheda* view. Hence the *Mimamsaka* is the main opponent though the views of others are also discredited.

❖

PR-232

Subsistance to Government Servants According to Kautilya

PROF. RAMNIKA JALALI, JAMMU

The King should fix one fourth of the total revenue, the charges of maintaining his servants, He should look to the bodily comforts of his servants by providing such emoluments as can infuse in them the spirit of enthusiasm to work.

The Chief of military corporations, the chiefs of elephants, horses, of chariots and of infantry and commissioners be paid 8,000 panas per annum.

The Ṛtvig, the teacher, the minister, the priest, the commander of the army shall receive 48,000 panas per annum.

The superintendent of infantry, of cavalry, of chariots and of elephants, the guards, the physician of the army. The trainer of horses, the carpenter and those who rear animals be paid 2,000 panas per annum. There are so many other categories of employees, those are not only maintained by king but also it is the duty of king to increase their subsistence and wages in consideration of their learning and work.

In case of adultery of any type the king should change double of the amount or article from the culprits. Thus when both the receipts and expenditure are properly cared for the king will never find himself in financial difficulties.

❖

PR-233

Ānanda Concept of Upaniṣads

RISHI SAGAR

The Upanisads have always crowned the spiritualistic thought of the world. How to reach the upper levels of consciousness, how to develop a moral society, how can we scientifically blend together the material and spiritual aspects of life, the importance of

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

sacrifice, discrimination between vidyā and avidyā, secret knowledge of meditation and yoga, significance of nāda brahman. responsibilities of a student, house-holder and saint, and above all, how to attain shanti and anandha in one's life - all are explained with a deep insight, of course with the powers of contemplation and tapas in these divine texts.

Time, space and circumstances can't decay truths revealed by Srutis. So, I would like to highlight how we can implement this ānanda philosophy in day-to-day life of 21st century.

Once you are in harmony with eternal bliss you no longer need an external object. an outer reason to have pleasure; it is aimless and being aimless it can be continuous.

To turn towards yourself, merge with yourself, live in yourself for you are ānanda, pure and immutable joy and peace.

There is a vast difference between the vibrations of ānanda and those of materialistic pleasure. I would like to highlight seven levels of consciousness (seven worlds referring in the Beeja Mantra of Gayatri-Bhū, Bhuva, Sūva, Maha, Tapa, Satya and Jana) and how can one attain constancy in ānanda level of consciousness.

❖

PR-234

A Critical Appraisal on the laws on Adoption in Smritis and Hindu Adoptions and Maintenance Act. 1956

BINIMA BUZAR BARUAH, GUWAHATI

According to traditional Hindu principles the adoption takes place to provide a male Hindu with an heir who will perform his shrāddha ceremonies after his death. The necessity of a son is fulfilled by an adopted son since he bears the reflection of an aurasa son.

Smritis contain different laws regarding adoption, In modern times, the laws on adoption are governed by the Hindu Adoption and Maintenance Act, 1956. Certain laws relating to adoption found in smritis have their importance even today. Such laws are kept intact in the modern Act. But in some other cases modifications and changes have been made for the changing needs of the circumstances.

In this paper an attempt has been made to examine critically the laws on adoption in smritis and the Hindu Adoption and maintenance Act, 1956.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-235

Criminal Law in Ancient India and its Relevance in Present Days

BHUPESH MALLA BUZARBARUAH, GUWAHATI

A crime is an act which is committed or omitted in violation of public law forbidding or commanding it. It makes the offender liable to be punished. In case of a crime different factors are taken into consideration to determine the due measure of penalty to be inflicted on the wrongdoer. There was a developed system of criminal law in ancient India. Though some of these provisions seem to be outdated in the changing society, most of the provisions are relevant even today. In this paper, an attempt is made to examine how far the old laws are relevant in present day circumstances and how far the modern criminal law has been infuenced by it.

❖

PR-236

Human Rights in Ancient India

DR. RIPIMA BUZARBARUAH, HAJO

In modern times, the concept human right is considered to be of western origin. However, it may be pointed out that the philosophy of human rights had occupied a place of prime importance in ancient Indian society. The sources of humanitarian views in India may be traced in Shrutis, Smritis, Puranas, Upanishads and Commentaries. The Vedas costituted the primordial source of dharma. Hindu thinkers always held law or dharma superior to state and government. Similarly, the Vedas laid high importance on the right to equality and brotherhood of human beings. Thus, the concept of human rights has evolved as a part of Indian cultural values.

The present paper focuses on the human rights scenario in ancient India and reveals the fact Indian culture recongnised human rights long before it was developed in the western part of the world.

❖

PR-237

Tantra in Kerala

PROF. DR. T. DEVARAJAN

Tantra in Kerala has a great tradition with its origin shrouded in mystery, having a well-marked middle and modern period. Kerala has contributed a good number of books

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

to the field of Tantra both in Sanskrit and Malayalam for the use of priests in temples and domestic ceremonies. These works include original manuals, compilation and extracts of original books for special purpose and elaborate commentaries supplementing the manuals. Some of them have been published and a great number remain to be published. Of the two classes of tantric preceptors, the first has practised rutuals but not written any manuals. The other has contributed manuals or compilations and practised the precepts. The Kerala system of Tantra is *Sattvik* in form and is known as *Dakṣiṇamārga* following Vedic tradition. The ritual in the temples of Kerala is a combination of both Vaidika with Vedic *mantras* and methods; and *Tantrika* with non-Vedic *mantras* and rules, the tantrika elements slightly predominating over *Vaidika*. It is *Tantrika Vaidika* wherein Vedic worship is done in a tantrik form. The *Pañcamakara* or the *Pancatattva*, an important constituent of Śākta Tantra is not considered in the temples (Devi temples) of Kerala. *Mudras*, the hand gestures in rituals are considerably accepted in the Tantrik practices of Kerala.

The detailed paper is proposed to deal with the prominent authors, their works and contributions to the field to Tantra exposing the great tradition which Kerala can claim in that field.

❖

PR-238

Contribution of Sri K. Achyuta Poduval to Sanskrit Literature and Nyāya Philosophy

DR. K. ARYA DEVI, KALADY

Panditarajan K. Achyuta Poduval was one of the famous Nyāya scholars of Kerala. He was a teacher in Nyāya for twenty five years in Sanskrit Pāthasālā at Tripunithura, which is now Govt. Sanskrit College. This institution was established by Rājarsi Ramavarma, Maharāja of Cochin for promoting Sanskrit studies. Though Achyuta Poduval was a teacher in Nyāya, he was well versed not only in Nyāya but in other branches of Sanskrit studies also. The saying 'Kaṇādam Paniniyamca sarvasastropakarakam' is very true as far as Achyuta Poduval in concerned. The thorough knowledge of Nyāya helped him to master over other śāstras also. He has written four short poems in Sanskrit and one book in Mālāyālam about the categories of Nyāya Philosophy. Vilapasaptati, Sree Pareeksiccarita, Bhaktarasayana and Matṛparidevana are the four poems written by him.

In this paper an attempt has been made to assess the contribution of Sri K. Achyuta Poduval.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-239

Concept of Śūdra Based on Manusmṛti, its impact in Indian Society

BERA R. UDAY, KERALA

Manusmṛti is the most authoritative of Sanskrit legal texts. It has played a great role in stepping up the Indian society. The present version of this Smṛti contains 2685 verses divided into twelve chapters. This Smṛti describes about creation, the six dharmas, expiations, and the re-birth based on actions etc. Manu gives a divine origin to the Varṇa system and describes the four Varṇas and their duties, that is to be performed by the people.

The first part of this paper is an attempt to give a brief discussion about the Śudra in *Manusmṛti*, their social, economic and legal status. The second part is the after effects that occurred in Indian society based on the Śūdra concept of *Manusmṛti*. The last part is the conclusion.

❖

PR-240

Philosophical Relation between Agni and Soma

DR. MANIK S. THAKAR, PUNE

In Vedic times Agni and soma were two independent deities. In the later Vedic literature these two formed a group. They were invited in the sacrifices. Upaniṣads being the philosophical texts interpreted these two natural resources in a different manner. The later and miror upaniṣads such as Brhajjābāla looks upon them as basic sources; considering the view that this universe comprises of Agni and Soma.

This paper is an humble attempt to find all the conotations of this assumption. It is also an attempt to find the traces of this assumption, in other related systems.

❖

PR-241

Significance of Charama Śloka in Sri Vaishnavism

DR. C. UMAKANTHAM, TIRUPATI

Charama Śloka is the essence for mankind. Normally every one believes, it means the end of the Sloka. But in Sri Vaishnavism, it is the final words of Lord Krishna in which

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

He advises Arjuna to perform his duties and leave every thing on him. Hence, it is named as Charama Sloka. The great Acharya Sri Rama Mishra who passed on the quintessence to Yamunacharya first identified this. He was an indefatigable leader and having mastered Gītā, wrote an abridged form of Gītā, called Gītārthasamgraha, with a view to elaborating the inner thoughts of Bhagavat Gītā. Sri Ramanuja wrote an extensive commentary for Bhagavat Gītā called Gītā Bhaṣya. It is the nectar, in which he unearthed Lord Krishna's opinion on the necessity of Sanatana Dharma. Narrating every Sloka lucidly, Ramanuja, underlined very aptly the Charama Sloka at the 18th chapter. The eleven worded Sloka runs as follows :

Sarvadharmān Parityajya Mamekam Saranam Vraja I

Aham tva Sarvapapebhyo Mokshayishyami Ma suah II

I will present the paper by substantiating the above sloka word by word in full.

❖

PR-242

Madhva-Vedanta mein Brahma aaur Jiva ke Swarup ki Darshnik Samiksha-Bhagavad-Gītā Bhasya ke Sandarva mein

VIMALESH KUMAR

The mystery of life infers jiva to search for its solution. What is the solution? Is the worldly pleasure its solution or something else (like spiritual pleasure). The mundane existence is limited; so it limits the exploration of the soul. Hence, it can't be the solution.

The soul (jiva) wants to rest in peace. It's the beautific communion of the soul with the Divine Being (Brahma) that gives him pleasure. The Bhagavad-Gītā understands it vividly.

Madhva in his ''Bhagavad-Gītā Bhasya' condemns excessive attachment to power and the pleasures of life, as they destroy the spiritual tendencies in man. Life is to be loved not for the pleasures it gives, but for the opportunities it offers for man's higher evolution and the summit of this evolution is reached when the jiva is freed from his bondage to the senses and the body and finds peace born of union with the supreme Deity (Brahma).

This paper in an attempt to analyze the issue philosophically.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-243

Concept of Karma in Vedanta

DR. R.N. PANDEY, GUJARAT

The present paper will be an exclusive, analytical and detailed discussion of the 'Doctine of *Karma*' - its concept, its significance, its universality, and uses in the context of philosophical and other issues on the basis of *Vedānta* philosophy. Here, *Vedānta* means *Upaniṣad, Gītā* and *Brahmasūtra* i.e. *Prasthānatrayī*.

The concept of *Karma* in the *Vedānta* philosophy specially that which is propounded in the *Bhagvadgītā* shows us a path of how to lead this life happily while lying in the material world. Presently the value of the right understanding of the concept of *Karma* has still increased.

❖

PR-244

Relevance of the Kauṭilya's Arthaśāstra in the Modern Age

DR. P.V. NARAYANAN

Quest for indigenous knowledge tradition is a commendable trend in the present age around the globe. India has a rich heritage of knowledge in the field of numerous disciplines which have potential to be developed and utilised for the welfare of its people.

The *Arthaśāstra* of Kauṭilya is a peerless work in the whole range of Sanskrit literature. If provides abundant information about early Indian political science, practical administration of a state, code of law, administration of justice, financial management, science and technology, resource management and various other disciplines. This paper is intended to make an investigation into the relevant aspects of the *Arthaśāstra* in the modern age. Contemporary validity of some economic aspects, management, science and technology etc., are examined here.

❖

PR-245

Gangeśa Theory of Nyāyāvayava as Interpreted by Kaṇāda Tarkavāgīśa

PROF. S.C. GOSWAMI, KOLKATA

M.M. Kaṇāda Tarkavāgīśa a prominent representative of the Bengal school of Navya-Nyāya was a contemporary of Raghunātha Śiromaṇi (3nd part of 15th century to 1st

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

part of 16th century A.D.). From the abundance of manuscripts it is known that his commentary (known as Ṭippaṇi) on the Avayava section of Tattvacintāmaṇi was very popular in the Bengal region. The full text of the commentary has been restored and edited by the present scholar and the publication of it is in the process.

It is at least from the next of Kaṇāda that we come to know the exact notion of Gaṅgeśa on the points of Nyāyāvayava. Kaṇāda is unbiased and faithful to the original and as such his interpretation has become all the more important for preservation of the tradition set by Gaṅgeśa. The Ṭippaṇi is penetrating and elaborating.

❖

PR-246

The Religion & Philosophy of Sree Chattampi Swamikal

V. RADHAKRISHNAN NAIR, MADURAI

Sree Chattampi Swamikal contributed to mankind the gist of Indian Philosophy, i.e., *Yoga Janana* which reveals the existences of Parambrahma the ultimate in *Jeeva*. In 'Devārchana Paddathi' *Sree Chattampi Swamikal* says that to attain Ārudhapadam—the ultimate position—one should procure and practice the *Yoga Jnana*. The liberation of the soul is the goal of all systems of Yoga. The august contribution of *Sree Chattampi Swamikal* is that he re-establhished Yoga Jnana system in South India through his teachings. *Sree Sankara Bhagavad Pāda* expounded the Vedanta, the essence of Vedas and Darsanas. Similarly, the Yoga-Janana phisophical concept *Siddanta* was revealed through Agasthyar, Kannappar, Appar and Thiru Jnana Sambanda Swamikal. These two philosophical concepts has its own converging points. *Sree Chattampi Swamikal* synchronized Vedanta and Siddantha and he preached the synergetic form of a new system to our philosophy. According to *Sree Chattampi Swamikal* through Charya-Kriya, Yoga and Jnana Guru can elevaste any one to Śiva-Advaita.

Few centuries after *Sankara* the enlightened community misinterpreted Advaita to suit their necessity (in exploiting the ignorance of common people) thus the Hindu faith missed the way very badly. Sree Chattampi Swamikal realized this misconception and tried to bring back the misled community to the right path. We presume that he has succeeded in his efforts to a great extend.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-247

Traits in Advaita Vedānta : A Study Based on The Muṇḍakopaniṣad

N. MOHANA, TAMILNADU

Indian philosophy is the complex heritage of four thousand years of uninterrupted thinking and spiritual endeavour carried on by the sages of India down the centuries. It is as ancient as the Himālayas and as modern as the atomic era.

The *Advaita Vedānta* is a comprehensive school of thought established on the strength of the *prasthānatrayī*. It has been a perpetual source of Indian wisdom.

The Upanisads are the continuations of the *Brāhmaṇa* and *Āraṇyaka* portions of the *Veda*. Among the ten principal Upanisads, the *Muṇḍaka Upaniṣad* occupies a very important place in the realm of world-thought. It belongs to the *Atharva Veda*. The very name *Muṇḍaka* expresses the importance of the *Upaniṣad*. The study of the *upaniṣad* shaves away the ignorance of human brain and impurities of human mind just as a razor, and thus, enables man to attain Brahman or salvation.

This article is an attempt to study the metaphysics in Advaita *Vedānta*, with special reference to the *Muṇḍaka Upaniṣad*.

❖

PR-248

Reminiscences of Tantrism in the temple-rituals of Lord Jagannātha

DR. KAMADEV PATI, ORISSA

Tantrism had a remarkable influence on the religio-cultural structure of Orissa so much so that the temple rituals of Lord Jagannātha, the presiding deity of Orissa could not escape from it. Rather, it has been incorporated and assimilated in the daily mode of worship of the Lords. At the outset we may note that the *'naivedya'* is offered with the sixteen-syllable-mantra, i.e. *'Oṁ kḷiṁ kṛshnāya govindāya gopi janavallabhāya namaḥ'*. Here the syllable *'Oṁ'* is a reminiscent of Vedic strand whereas the syllable *'kḷiṁ'* is tantric. Similarly different types of *'Nyāsas'*, *'Yantras'*, *'Mudrās'*, and the use of *'Vījamantras'*, bear the testimony of the impact of tantrism on the temple rituals.

In the tantric traditions, Lord Jagannātha and goddess Vimalā have been accpeted as *'Bhairava'* and *'Bhairavī'* respectively. It may be interesting to note that a *Śrīyantra* has been drawn on the *ratnavedī* over which the deities have taken their seats. Moreover the offerings are placed in front of the deities on a particular spot which is called *Bhairavī-*

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

cakra and it is important to mention that an image of *Bhairava* has been carved on oneside of the *ratnavedī* to receive the offerings. The offerings are called as *'mahāprasāda'* and it is taken by all the devotees irrespective of caste, creed and faith. It corroborates with the tantric tradition where the sence of untouchability does not find place. It is pertinent to mention that the *pañcamakāra* viz *madya, matsya, mānsa, mudrā* and *maithuna* system of worship gets place in the temple rituals, though in a modified form. Even animal sacrifice is seen prevalent at the time of automnal worship of goddess Vimalā in the temple premises. Hence it can safely be said that tantrism has retained its impact remarkably on the temple rituals of Lord Jagannātha from time immemorial.

❖

PR-249

Illicit Sex : As Dealt in Major Dharmasūtras

DR. HAREKRUSHNA MISHRA, SANTINIKETAN

Traditional thinkers of a harmonious *Sanātana* society considered the illicit sex of any kind as inhuman and declared as offence and cause of grievous sins and prescribed penance as well as punishments. It is also a fact that illegal sex without consent got less importance in the *Dharmasūtras,* illegal sex with consent got more explicit discussion. In the context, protection of subjects of a King *Āpastamba* categorically deals with the sexual misconduct and its punishment as well. If a young man or pimp barges accidentally into the presence of another man's wife or a young lady, he should be verbally reprimanded; but if he does so deliberately and with a malicious intent, he should be punished (*Apa. D-II, 26.18-19*). In the list given by *Gautama* as grievous sins of a man, it is well mentioned that if somebody has sex with the wife of an elder or with a woman who is related through his mother or father or through marriage (*Gaut. D-21.1*). In this case the man has to fall from his caste. Similarlyd a lady loses her caste by carrying out abortion and by having sex with a low caste (*Gaut. D-21.9*). As far as *Bauāyana Dharmaśāstra* concerned, any type of illegal sex, i.e. sexual harasment with a woman with whom sex is forbidden (may be a prostitute/unmarried lady), or with an outcaste women are consisdered as sins of second grade (*Baudh. D-II.2.13*). From the above discussions it is clear that sex with any body other than legal (wife-husband) is cause of sin and one can get rid of it only by non-performance. Either way both the types of sex are treated as the causes of social degradation and causes great loss to a harmonious society. From the study of Dharmasutras it is clear that sex except with own wife was illegal which leads us to serious sin.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-250

Raghudeva and Navya-nyāya : Critical Study

CHANDAN BHATTACHARYYA, KOLKATA

In the Indian tradition of Navya-nyāya Philosophy, Raghudeva Nyāyālankāra was a great logician. After the Gangesh Upādhyāyā he belongs to a very important place as much as Raghunātha Siromoni, Mathurānātha, etc.

From various sources his date was approx. 2nd quarter of 17th Century A.D. and was the pupil of Hariram Tarkavāgiśa. His most valuable commentaries on Navya-nyāya, Vaiśesika Philosophy and other intellectual studies are :

'Raghudeva', his Tattvacintāmaṇi's Com. on Anumāna Khaṇda was very distinguished work. Anumāna, Anumiti and other parts are discussed by him in this commentary which are not so clear in his pre-commentaries such as Dīdhiti, Jāgadishi, etc. I will try to discuss these things. In his com. on Raghudeva (Gudhārthatattvadīpikā) this part of text reads :

'प्रत्यक्षप्रमाणोपजीवकत्वात्.....अनुमानप्रमाणं निरुप्यते....अधिकंतु अनुमानदीधितावनुसन्धेयम्।।

❖

PR-251

Paddhati Lit. of Śaivāgamas with special reference to Devadakṣiṇadigbhāge

S.A.S. SARMA, PONDICHERRY

Among the development of the *Śaiva* literature from the 10th century onwards we see that *Śaiva* authors produced an array of *Āgama* commentaries (*Vṛttis*), ritual manuals (*Padhatis*) and philosophical treatises. The corpus of *Paddhati* texts, both ritually and philosophically followed in the path set forth by the *Śaivāgamas*. The *Paddhati* authors aspired to write simply, concisely and clearly and were inspired to set forth their system to distinguish the *Śaivasiddhānta* route prominently from the many paths prescribed by others. The *Śaiva* literature mentions eighteen *Paddhatikāras*. The *Paddhati's* even though are written as a guide for performing rituals, apart from giving merely the details of the rituals, also often pvovide intellectual discussions on the matters they deal.

While describing the *nityapūjā*, the *śaiva* texts deal with a particular topic, the treatment of the usage *'devadakṣiṇadigbhāge'* has been taken up for a detailed study.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The form of *Sadāśiva* with five faces; the importance of *Aghora* among the five faces; the position of the five faces of the east and west facing *Sadāśiva;* the usage of *'dakṣiṇāṃ mūrtim'* in the early texts such as *Niśvāsa, Svacchandatantra, Mṛgedra, Kiraṇa* and also in literary texts; and the detailed discussion of *'devadakṣiṇadigbhāge'* in three major unpublished works of the twelfth century on *Saiddhāntika* ritual–the *ṭīkā* of Trilocana on *Somaśambhupaddhati,* Jñānaśiva's *Jñānaratnāvalī,* and the *ṭīkā* of Vaktraśambhu on the Aghoraśiva's *Mṛgendrapaddhati* are dealt in the paper.

❖

PR-252

A Study on the nature of Individual Soul

DR. SUMITA CHAUDHURY, KOLKATA

All sections of Advaitavādins subscribe to the doctrine of non-difference between the Supreme self and the Individual self. It is frequently announced that Brahman desires to be manifested and appears in multifarious delusive forms with a view to favouring its devotees. So we observe that Brahman and Jiva are one and identical as the difference is caused by nescience.

Advaitins explain the process of illusive appearance of the universal self with the help of mainly two theories viz, the theory of Replaction and the theory of Limitation. An attempt has been made in this paper to discuss both of the theories in order to determine the true nature of the Individual self.

❖

PR-253

The theory of *Devata* in the vision of Sri Sri Thakur Anukulcandra

DR. NIRANJAN MISHRA, JHARAKHANDA

In Indo-Aryan spiritual tradition 'Devatva' is related with day-to-day life of people. To worship and pray the Deity daily very morning and evening is usual. The aim of everybody is to be promoted into Devatva or the position of Devata and to enjoy the bliss of life living in the heaven permanently.

Sri Sri Thakur Anukulclandra, fulfiller the best and the prophet of present age has defined 'Devata' in a novel way with practical approach. He advocates thus :

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'He whose spelendour is existential to all is Devata. With vibrating pursuance, through the well-inquisitive keen vision of perceptive conscience, who sees anything rightly in the well-guiding significance of upholding delightfulness, and that significance exults the heart of people, he, the glowing one is called Devata'.

According to Sri Sri Thakur's ideology Devata is of two-type as human and figurative deity.

The brief is elaborated in complete article focussing on related subjects like Devadarsan, devopasana, deva-tirtha, etc. and establishing a relation of Devata with Isvara, Purusottama, Avatar, Guru and others. An attempt has been taken to prove the authenticity of the theory of Sri Sri Thakur regarding Devata in comparison with the thories, advocated in Veda, Bhagavad Gita, Puranas and other religious texts, etc. in analytical and synthetical study.

❖

PR-254

Advaita : The Paradigm for a new global order

SWAMI TATTWAMAYANANDA

The Fundamental Principles of Advaita Philosophy

Advaita, in a nutshell, means non-duality or oneness. It teaches that (a) the Ultimate Reality is non-dual (b) All dualities are mere appearances. Advaita philosophy expounded by Adi Shankaracharya not only harmonizes and synthesizes all other theistic schools but also transcends them. It teaches that there is but one Trans-personal Supreme Reality designated as Brahman which is both immanent, transcendent; it is both the material as well instrumental cause of the world and the substratum of all diversities. The following aspects are dealt in this paper.

Advaita Vedanta : The Religion beyond religions.

Advatic Ethics : The basis for a new world moral order.

Dharma : The paradigm of Advaitic humanism for a new world order

Religious Plluralism : The result of a global outlook

The spiritual Unity of Existence : The Basis of a Global Outlook

Advaita : An Effective Tool for Inter-faith encounters

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-255

The Samkhya Concept of Gunas and Their Contradictory Traits

DR. P.K. SASIDHARAN NAIR, MADURAI

The most distinguishing characteristic of the Samkhya Philosophy is its guna theory. It holds that all objects of this phenomenal world are the products of the combinations of the three gunas in different proportions. The term guna is derived from the Indo-European base 'gere' 'twirl wind'. Hence the term is used to mean a single thread or strand of a cord, that is constituent of Prakrti. The three gunas, viz. sattva, rajas and tamas are of the nature of pleasure, pain and dullness and productive of manifestation, activity and restriction and among them they domineer, rely, produce and consort in turn. Everything in the world is due to the interaction of the three gunas which have infinite manifestations and they are the solve productive source of this universe. The gunas are not the adjectival qualities of Prakṛti but are rather the component factors of it which is the first cause of the universe and the said gunas are entirely different from the concept of guna of the Nyāya Vaisesika systems.

The Samkhya Philosophy accepts Purusa and Prakṛti as its eternal principles. Prakṛti is the equilibrium of the three gunas. Though they possess contradictory traits they work together for the good of the Purusa. Behaviour and nature of the gunas form the main theme of this article.

❖

PR-256

The Principles of Yoga System

R. SURENDRANATH THAMBURAJ, MADURAI

The Indian Philosophy is an enquiry to probe into the nature of man and his intention to get the knowledge as a means to attain liberation. Yoga philosophy is the perpetual source of Indian wisdom and keeps alive the Yoga tradition for the benefit of many Yogic preceptors. The Yogasutra of Patanjali has attracted serious attention of ancient scholars, resulting in several types of commentaries, translations and studies to that effect. Yoga constitutes complete life system of integral Education.

The beginning of Yoga tradition is shrouded in the midst of antiquity, however it is universally recognized as important scientific and spiritual legacies of Humanity. The purpose of Yoga system was to attain the path of realization of God and to be free from all Yoga to-day helps to achieve the fitness of physical health and efficiency besides mental balance Samatvam.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-257

Metaphysics in Advaita Vedānta-A Study Based on the Vedānta Sāra

P.P. SUDARSAN, MADURAI

Every being in this world seeks happiness. According to Manu, all external dependence is unhappiness, all dependence on oneself is happiness. Philosophy is the way to attain happiness. Indian philosophy is an inquiry to uanderstand the empirical work as it appears and its relation to the Supreme. It probes into the nature of man and his intention to get true knowledge and thereby attain liberation. Among the philosophical systems of India the Advaita Vedānta of Śankara is unanimously held to be the most important, both as a system of metaphysics and as a doctrine of salvation.

Vedānta Sāra of Sadānanda is a well-known work, which deals with the tenets of the Advaita school. It has influenced the latter writers to a great extent to impart the vision of Śri Śankara. The work has been the source for Advaitic wisdom.

PR-258

The Methods of Knowledge-A Study Based on The Yogavārttika of Vijñānabhikṣu

N. SIVAGAMIKKANI, MADURAI

Indian philosophy is an investigation to understand the pluralistic world as it appears and the relation to the ultimate reality. It also probes into the nature of man in the context of the ultimate reality or 'sat'. The purpose of the Indian philosopbhical enquiry is to get true knowledge tatvajnana and thereby attain liberation. Yoga is a discriminative harmonisation of different perspectives and spiritual experiences. Being the expression of the plenary experience of reality, it occupies a pre-eminent place among the major philosophical systems. It shows the way to an aspirant in the spiritual quest for a state of existence which eradicates all suffering and ensures abiding peace and joy.

Yoga can be of various types-Rāja-Yoga, Jñana-Yoga, Dhyāna-Yoga, and even Hatha-Yoga which deals with physical exercises. The traditional of physical texts of the system deals, however, with Dhyāna-Yoga, or the achievement of Yoga through dhyāna alone.

Vijñānabhikṣu holds a very significant position in the history of Indian philosophy. His name figures prominently in all works dealing with Sāṁkhya-Yoga philosophy. His

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

work Yo. Va., throws light on a number of Yogic points; in the sence that yoga borrows to a large extent its ontology and epistemology from the allied system of Sāṁkhya. Thus knowledge in the system is due to the reflection of Purusa in the *buddhi*, modified by the object of knowledge.

❖

PR-259

Theoretical Aspects of Manusaṃhitā

DR. DIPANWITA CHAKRABORTY, KOLKATA

Manusaṃhitā is the famous and most popular law book of ancient India. The theoretical aspects topic may be divided into three sections : 1. Philosophical, 2. Sociologial, 3. Political. These three types of theory are co-related with each other. Theoretical aspects of this book are explained on the basis of the philosophical, sociological and political thoughts and principles of Manu. He touched all sides of life of men and women of each caste.

❖

PR-260

Some Notes on the Vidyāpīṭhapratiṣṭhā and the Vidyādana in the Śaiva Tradition

CHRISTELLE BAROIS, PONDICHERRY

In the Śaivite tradition, the *vidyāpratiṣṭhā* and the *vidyādāna* have fallen into disuse, they are rarely performed in temples today, or in a very rudimentary manner. In the light of a few chapters derived respectively from the *Uttarakāmikāgama*, the *Uttarakāraṇāgama*, the *Acintyaviśvasādhākhya*, the *Aṃśumadāgama*, the *Ātmārthapūjāvidhiḥ*, the *Jñānaratnavalī*, as also from the *Śivadharmottara* (mostly unpublished texts belonging to the collectin of manuscripts available at the French Institute of Pondicherry), I have attempted to present an overview of the installation of the Throne of Knowledge, a rite which consequently applies the imparting of Knowledge (*vidyādāna*). In this context, *vidyāpiṭha* is physically constituted by one manuscript, *dāna* signifying both transmission and teaching.

The equivalent terms found in the second chapter of *Śivadharmottara* indicate the high status accorded to the manuscripts supporting the Knowledge of Śiva : *yathā śivas tathā yathā vidyā tathā guruḥ/śivavidyāgurūṇāṃ ca pūjāyāṃ sadṛśaṃ phalam*. This triple

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

equivalence finds the lieu par excellence for its implementation on the occasion of the *vidyāpiṭhapratiṣṭhā*. The manuscript is an object of veneration in the same manner as a deity.

Even though many details are not clear due to the corruptions and the fragmentary appearance of the texts, the chapters nonetheless give rise to important queries on the general context of the transmission of the Śaivāgamas in ancient India.

❖

PR-261

Some Considerations on Padārtha : The Puṣkarāgama

DR. T. GANESAN, PONDICHERRY

The *Śaivasiddhānta* system of philosophical doctrine and ritual is based on the *Āgama* : group of scriptures that are said to have been revealed by Śiva. These text discuss about the realities that exist forever which are called padārtha; as the *Āgama* corpus comprises 28 basic or fundamental texts (called *mūlāgama*) as well as auxiliary or derived ones (called *upāgama*) there are apparent inconsistencies and variations in the concepts of these *padārtha*-s. The number of *padārtha*-s that are generally accepted in many of these texts is three : The highest reality which is the source and controller of the world composed of living spirits and matter (*pati*), the living spiritis (*paśu*) and the inert matter that is the material cause of this universe (*pāśa*).

In this paper I propose to the examine how the different conceptions of padārtha put forth by these *Āgamas* are valid and also how they are subsumed under three broad heads (*tripadārtham*) as clearly explained in the *Mṛgendrāgama*, another important text. Incidentally I will also examine on the basis of some of the less known and less studied *Āgama* texts the different views and conceptions of the category, *pati*, namely, Śiva which are variegated and hence not uniform in all these texts.

❖

PR-262

Mokṣa in Prābhākara-Mīmāṁsā

PROF. RAJENDRA NATH SARMA, GAUHATI

Mokṣa (Liberation) which is admitted as the highest goal of human life (parama-puruṣārtha) is taken up by the Mīmāṁsakas also for discussion. However, Jaimini and

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Śabarasvāmin have not said about Mokṣa in detail. But both Kumārila and Prabhākara have discussed Mokṣa in their works.

Regarding the views of Kumārila and Prabhākara on Mokṣa, the modern scholars of Indian philosophy seem to advocate divergent opinions. Some of them want to say that both Kumārila and Prabhākara conceive Mokṣa in a negative manner. Some others, on the other hand, contend that both Kumārila and Prabhākara differs from each other in their concept of Mokṣa.

In the present paper, therefore, an attempt is made to deal with the view of the Prābhākaras on Mokṣa.

❖

PR-263

Arthāpatti, As An Independent Pramāṇa in the Advaita-Vedānta

DHIRENDRA MOHAN KUMAR, GUWAHATI

'Arthāpatti' derivatively means imagination of something in a different way. When something is otherwise unintelligible, the assumption of what will make it intelligible is designed 'Arthāpatti'. As for instance, 'there is rain when there are clouds' is known from the fact that there is no rain when there are no clouds.

According to the Bhāṭṭa Mīmāṁsakas, as a pramāṇa, Arthāpatti consists in the assumption of an unperceived fact in order to explain two apparently inconsistet things.

According to Advaita Vedānta, Arthāpatti which is to be a accosmplished is effected through the knowledge which has already been accomplished. It is the assumption of an explantory fact, i.e., 'upapādaka' from a knowledge of the thing to be explained, i.e., 'upapādya'.

Dharmarājādhvrīndra explains Arthāpatti following the view of the Mīmāṁsakas. Arthāpatti is the presumption of a fact to account for an (otherwise) unitelligible fact. A person is known to be stout, though he fasts during the day. Then the stoutness becomes unintelligible without the assumption of his eating at night. Therefore, eating at night makes the fact 'stoutness' intelligible. It may be observed here that 'upapadyajñāna' should be taken as 'upapādyajñāna' only when we consider this point. Otherwise, there will be overlapping on the aperception, i.e. 'anuvya-vasya' of the 'upapādyajñāna' which is produced from the 'upapādyajñāna' itself. According to the Paribhāṣākāra, Arthāpatti does not overlap on the 'vyatirekyānumāna for the later has been rejected by the Advaitin.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-264

Heaven and Moksha

PROF. T. THOMAS VARGHESE, KERALA

(Moksha is the foremost Puruṣārtha of Āryas. It is described in Vedic lit. vividly. सा विद्या या विमुक्तये) In the Gītā Chapter XIV there is a short description of Heaven and Moksha, in Mahābhārata, Śānti Parva, there is a description of Heaven and Moksha. So we can conclude that present recessions of the Mahābhārata are not of ancient origin.

The idea that the soul is immortal is present in the Rig Veda. The Christian idea of the resurrections of the body is also found there. The salvation of the body co-exists with the imperishable nature of the soul.

This paper deals the concept of Heaven and moksha in details.

❖

PR-265

Lord Śiva in the Meghadūtam

SHRUTIDHARA CHAKRAVARTY, GAUHATI

Kalidasa, the greatest poet of India, was an ardent devotee of Lord Śiva. He started his works the *Raghuvansam* and the *Abhijñanaśākuntalam* with benedictions to Lord Śiva. The *Kumarasambhavam* is the story of the marriage between Śiva and Pārvati. In the *Meghadūtam* also Kalidasa has found occasion to speak about Lord Śiva and his family. It is interesting to note that in this *khandakāvya* the Lord and his wife Pārvati are described like a common couple possessing common human emotions. The present paper tries to bring to light this interesting picture of the Lord and his family as presented in the *Khandakāvya.*

❖

PR-266

The Concept of Samādhi in the Yoga Sūtras of Patañjali

T.S. KUMARAN, MADURAI

Samādhi is the name of the condition to be passed through before reaching deliverance. The atainment of release is insisted through *samādhi* in the *yoga* system.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Samādhi may be defined generally as a proess of diving into the deeper layers of one's consciousness, which functions through the different grades of the mind. *Samdhi* is otherwise called concentration. It is essential technique and has been widely dealt in *Patañjali's yoga sūtras* into different stages. It is aim of *yoga* discipline. The *Yoga Bhāsya* defines that the *yoga* itself is *samādhi.* It elevates the souls from its ever changing and impermanent existence and establishes into a peaceful, eternal and perpetual life. The consciousness opens itself to the possibility of a new mode of experience known as ecstasy or *samādhi. Samādhi* means to bring together : the soul awareness, identified with mental process and thus experiencing a sense of separation from god, is again made conscious of its oneness in god as a result of right spiritual practice and surrendered meditation. It is a course of super-conscious state during which attention is removed from the lower mind involvements. It is not be identified as unconsciousness. The *tāmasic* qualities like darkness and heaviness which are present in deep sleep are Asent in *samādhi.* The *puruṣa* regains through it eternal status.

PR-267

Description of Heart in Upaniṣads

DR. MANMOHAN ACHARYA

The word *hṛt* is found mentioned in so many Upaniṣads. The Upaniṣads like Katha (2.3.9), Svetāsvetara (3.13, 4.17), Chhandogya (8.3.3) and Bṛhadāranyaka (2.5.10, 4.3.7, 4.4.7) plentily mention the term. The word hṛdaya is also inscripted in some important Upaniṣads like Chhandogya (3.12.4, 5.18.2, 8.3.3), Mundaka (2.2.8) and Bṛhadāranyaka (2.4.11, 3.9.11, 4.1.7, 5.3.1). More over, both the concepts are explained in Upaniṣadic texts in two meanings, i.e. heart and mind. In modern context the word heart has two meanings, one is in physical and another is in psychic sense. The physical heart is 'hollow muscullar organ that pumps blood through out the body}. On the other way, the psychic heart is 'the centre of a persons's thoughts and emotions or ability to feel emotion'. We see the word *hṛt* or heart which basically means a physical part of the body. The mind or soul is a developed meaning.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-268

Liberation for Householders
(The Way of Mithlā School of Advaita Vedānta)

PROF. SHANKARJI JHA, CHANDIGARH

In the Advaitic view of Ācārya Śaṅkara, it is held that observing Vedic rituals and injunctions is not the direct cause of attaining supreme-knowledge (*Tattva-jñāna*), or rather, it is somehow obstructive to the same. It means that the householders who are duty-bound to follow Vedic injuncitons or ritualistic norms are not eligible to attain the supreme-knowledge. Taking this view as Pūrva-pakṣa (opponent's view), Ācārya Mandana Mishra (who is undoubtly different from Ācārya Sureśvara), in his master piece : 'Brahma-siddhi', presents one of the Brahma-sūtras : *Sarvāpekṣā ca yajnādiśruteraśvavat* (B.S. 3.4.26), and explain it thus : 'As a traveller riding a horse reaches the destination sooner and more easily than the other who takes journey on foot, so a spiritual practitioner going through performing the Vedic rituals and following Vedic injuncitons, can get the supreme-knowledge sooner and more easily than the other who is solely depending on practising the pondering over the supreme bring'. Here Vedic rituals are made similar to the horse both being instrumental in achieving some goals. Hence, observing the Vedic rituals is also necessary for or the direct cause of attaining the liberation; in other words, even the householders can be liberated. In support of this view, some Śruti and Smṛti are also made available.

On the other hand, Ācārya Śaṅkara explains this very aphorism : *Sarvāpekṣā ca yajñādiśrutersvavat*, in quite a different way. In his explanation he says that the horse is not yoked to plough, but rather to pull a chariot. Thus the Vedic rituals being like the horse are not used to attain liberation. Śaṅkara makes it clear that the Vedic *yajñas* can be cause of the arising of the desire for liberation (*Jijñāsotpattisādhanam*).

The view of Maṇḍana Mishra is made stronger through the supporting statements of Śruti and Smṛti. A critical appraisal of the views of both these authorities on the Advaita Vedānta forms the bulk of this paper.

❖

PR-269

Pāncarātra

DR. BIJOY N. RAMANUJ DAS, PURI

In Sanskrit etymology, certain terms, though have logically serveral countrary meanings, none the less, extend consisten philosophical contentions. In this context, the

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

term 'Rātra' generally means nucturnal darkness, a negative feeling. But from another angle of vision the very term denotes itself as a substitute for knowledge, a positive sense of brightness. Since knowledge is the factor that plays the key role in the formation of Pāncarātra, hence, the subject matter chapterised in the concerned treatises must be viewed from rather philosophical than theocratic or mystic standpoint. The four subject : 1. Jnāna, 2. Yoga, 3. Kriyā and 4. Caryā, discussed here-in ought to be viewed from the epistomological background. This means that the behaviourial, ethical and the super sensitivistic activities are primarily and basically analytic in character. This involves both objective and subjective, psychological and ralistic, the mystic and pragmatic sense of thought-processes bundled in one sequence. That may be quasi-logical in reasoning or para-psychological in character and intuitive in spirit.

❖

PR-270

Śaṅkarācārya's Mohamudgaraḥ : The Concept of Moha

DR. RABIPRASAD MISHRA, PURI

Mohamudgarḥ is one of the best products of Ācārya Śaṅkara. The lucidity of this poem has helped the disciples of the sages to bring up their lives in monism or the theory of Advaita. It is helpful to eradicate *moha* or infatuation in judicious and learned men. This poem is appreciated in the society as the *Bhajagovindam.* As the very purpose of *kāvya,* through its lucidity and excellence, is to make the reader happy, virtuous and to earn *dharma, artha, kāma* and above all, *mokṣa,* so also this *kāvya* helps to attain everything including *mokṣa.*

The secret and deep truth of the *Vedānta* has been expressed through Śaṅkara's writings. He has shown the path to the realisation of the self analysing beautifully the sorrows of man through bondage in the *Mohamudgaraḥ.* This poem is meant for the people struggling every moment to reach their goal, acting as the aids, in the form unconflicted sincere advices of the proceptors to their disciples.

Earthly possessions like wealth and strength donot give us either *mokṣa* or pleasure (*Mohamudgaraḥ* : 13 : *arthamanartharn bhāvaya nityarn nāsti tataḥ sukhalesaḥ satyam,* cf. also 1). *Moha* or infatuation is a kind of impurity, which obsecures the mind , and does not allow the intellect to come to a proper decision, and shuts out the truth from it. Eradication of this impurity through discrimination between the abiding and the fleeting, as well as between that which ought to be done and that which should be avoided, is brought about by *satsaṅga* or the association of saintly souls. Self-control, courage (the soul of self-control), fearlessness (*abhaya*) and self-effort are necessary to overcome passion.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

We can conclude that Śakara's *Mohamudgaraḥ* is a reflection of Advaita Darśana expounded by him. In it, as if in an everflowing poetic language he has tried to educate the ignorant readers to realise the self and thereby, to attain slavation or realisation, after explaining the hollowness of the world and its objects.

❖

PR-271

Non-Vedic School of Indian Thoughts

PANKAJ SARMA, GUWAHATI

There are two broad division in Indian philosophy : 1. Āstik or orthodox, 2. Nāstik or Heterodox. Orthodox groups are those who admit the validity of the Vedas. Heterodox groups are those who do not admit the validity of Vedas. To the orthodox groups there are six main schools known as Saddarsana.

The six main schools are : 1. Sāmkhya, 2. Yoga, 3. Nyāya, 4. Vaisekhik, 5. Mimānsā and 6. Vedanta.

To the Herterodox groups there are three main schools : 1. Charbak, 2. Jain and 3. Bauddha.

(a) Charbak or Lokayata : Those who deny Vedic authority, the existence of god and other hand are designated as nāstik. Once such Nāstik system is called 'Materialism'.

(b) Jain School : The word 'jaina' has been derived from the word 'jina'. A 'Jina' is one who has conquered all passions and has attended liberation. The 'jina' are also called 'Tirthankara'. The word 'Tirtha' means landing place in a river ferry.

(c) Bauddha School : Gautam Buddha is the founder of the Buddha philosophy. Buddha was primarily an ethical teacher and reformer. He look at life and the world around us with the eyes of a realist. And he saw that life was full of sorrows and sufferings.

❖

PR-272

Concept of Pramāṇa : A Comparative Study Between Śrīpati's Philosophy and Śaṅkara's Philosophy

MS. BHARATI GOSWAMI, GUWAHATI

Pramāṇa in sanskrit signifies the means and the movement by which knowledge is acquired. *Pramāṇa* or the theory of valid knowledge goes by the name of Epistemology in

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

philosophy. Every system of Indian philosophy based on Epistemology which means theory or science of knowledge. It is a science which enquires into the nature, origin, range and conditions of knowledge. The special source of *Pramā* (valid knowledge) is called *Pramāṇa*. The word *Pramāṇa* derivatively means the instrument of valid knowledge. (*Pramāyaḥ karaṇam*). It means the *Pramāṇa* is the means or source of right knowledge.

Śrīpati Paṇḍita (14th century A.D.) was *Vīśsaiva* teacher who hailed from Guntru district in the Andhrapradesh. He wrote a commentary on *Brahma-Sūtra*, entitled *Śrīkara-Bhāṣya* from the point of view of *vīraśaivism*. Vīraśaivism defines *Pramāṇa* as a means of valid knowledge. It is generated by the intercourse of sense-organs with their objects which manifest knowledge and by the assistance of virtue, vice, manifestation, place, time a moral imperative and the like. Vīraśaivism admits three means of valid knowlge perception (*Pratyakṣa*), inference (*anumāna*) and scriptural testimony (*śabda*).

The Advaita-vedānta defines *Pramāṇa* as the operative cause of *Pramā*. Valid knowledge in Advaita-vedānta is the knowledge of an object which has not been found contradicted. Śaṁkara recognizes perception, inference, scriptural testimony, comparsion, presumption and non-apprehension as the source of valid knowledge.

In this paper I try to study the concept of *Pramāṇa* in the philosophy of Śrīpati and in the philosophy of Śaṁkara.

❖

PR-273

Non-Difference among the Jīvas : A Study based on the Bheda-Dhikkāra of Nṛsimha Sasrama Muni

DR. KALLIANIKUTTY PONNATH, KERALA

The Advaita Vedānta has been a source of erpotual inspriation to Indian thought and it has been continuously enlighting Indian life in all respects.

In order to keep alive the Advaitic tradition for the benefit of posterity many Advaitic preceptors did write not only treatises on Advaita Vedānta but also books, monographs, etc. following the doctrinal thought of Śankara with or without changes and incorporating their views that were absolutely necessary to understand the doctrine in its true spirit in the context of the prevalence of many denigrating critics belonging to other schools of philosophy. The *Bhedadhikkāra* is one among them.

The author of the *Bhedadhikkāra* Nṛsimhāśrama Muni (16th century) was a pupil of Gīrvāṇendra Sarasvati and Jagannāthārama and the teacher of Nārāyaṇśrama who wrote a

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

commentary on the *Bhadhikkāra*. He is considered not only as a champion of the Advaita thought out also as an interpreter of the Vedāntic concepts, and his skill lies in presenting the case for Advaita Vedānta through a systematic criticism of 'bheda'-'difference'. He was well known among his contemporaries and was the author of many valuable works on Advaita Vedānta.

❖

PR-274

A Defence of Sankhya Theory of Causation

SUKLA MAJUMDAR, KOLKATA

The basic question involved in any Theory of Causation is : Does the effect pre-exist in its material cause? Those who answer this question in the negative are called 'Satkāryavādins'. Here another important question arises : Is the effect a real transformation or an unreal appearance of its cause? Those who believe that the effect is a real transformation of its cause are called 'Parināmavādins', while those who believe that it is annual appearance are called 'Vivartavādins'.

In modern western philosophy rationalist philosophers like Descartes and Spinoza hold that there is a necessary connection between cause and effect. They told that if A is the cause of B then whenever A occurs B occurs. The reason of occurence of B is contained in A, and the relation between cause and effect is the same as that of logical necessary and it may be called the entailment theory causation.

David Hume rejects the necessary connection between cause and effect on the ground that no such connection can be discovered in experience. He is anxious to show that the connection involved is not a logical connection, like that between the premises of a deductive argument and its conclusion.

❖

PR-275

Jaina Dravya Tattva

SHYAMALI BANERJEE, KOLKATA

In the Jaina metaphysic the main Tattava is Dravya. Generally we say Dharma is a quality (guṇa) and Dharmi is possesser (Juner Adhikari). We also see such explanation in other system of Indian Philosophy. Jainas accept two kinds of Dravays. i.e., 'Nitya' and 'Anitya'. Consciousness residing in self is Nitya Dravya, where as Anitya dravya has

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

various changable states, like pleasure and pain desire etc. The Jaina says Nitya Dharma is guna and Anitya Dharma is paryay. Umaswati definess dravya as : 'Guṇa Paryayvat Dravam'

The world is composed two kinds of Dravya. From the point of view of Guna world is eternal (Nitya) and it is changable from the point of paryay. In this sense Acharya Hemchandra defines Dravya as 'Pramāṇsya visye dravya paryayatmākaṁ Vastu'.

The nature of vastu as Nitya and Anitya both are true, so there is no oposition between them. In this respect the opinion of Buddhism is different. For Buddhism the world is not Nitya but changable and momentary. But Jaina says this 'Ekantavada' Dravya is only sat (existent/being).

❖

PR-276

The Scientific Background of Sri Chakra and Mahameru

K.V. RAMAKRISHNA RAO, CHENNAI

Sri Chakra is a two dimensional diagram drawn with all geometrical figure and symbols. Starting with a point/do, line, curve, triangle, quadrilateral, etc., it is constructed. Here, the origin of geometry is implied. The three dimensional elevation of it is Mahameru. The origin of sphere, terahedron, polyhedreons are explained and dervied. Mathematicaly, the Meruprasthana represents, Pingala-Binomial Number Triangle constaining all series. Number formation, series are explained. In fact, such pictorial representaiton, Computer graphics is expounded. The enlarged/expanded point in three dimensions is a sphere, because, the point is the smallest cricle that could be drawn without any radius.

The Vedic, Itihasa and Puranic (including Jaina and Buddha) literature at one side and the astronomical treatises at the other side specifically bring out the scientific background of such pictorial representation. The Meru/Sumeru has been the centre of all astronomical calculations and geographical location of places. It was considered the highest mountain in the Jambu dwip/Navalanthivu around meru, But it is a representation of the Universe revolving around a Firmament/fixed axis. Thus, the revolution of Solar system, planets are implied.

The Meru is compared with the human body and the human body with temple. The Borobudur temple has been built like a Meru. The 51 geometrical figures of Sri Chakra corresponding to 51 psychosomatic functions and 51 Sanskrit letter (including) tally with each other. The six chakras in the body with the respective respirations/vibrations at each chakra is also talied with the human life.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-277

Determinism and Human-Freedom in the Gītā

DR. DAITYARI CHARAN PANDA, ORISSA

The *Mokṣa* (salvation) is the highest *summum-bonum* of an individual's life. It is a magnanimos state where a finite becomes Infinite or the *Ātman* (soul) assimilates with *Paramātman* (Oversoul). As the quintessence of the Indian thought and wisdom, the Gītā exposits the subtly knowlge of the supreme Soul and descibes the ways in form of the *Yoga* to attain the Absolute. The concept of *Yoga* in the *Gītā* consists in 'Skill in action'.

Action is the fundamental concepts to all the *Yogas*. Its divine character saturates in the attainment of the highest freedom. Where a *Jīva* frees from earthly bondage. Requital phenomenon of action proves : 'as you sow so shall you reap'. Action becomes librative or binding in nature depending upon the intention and motive of an agent behind an action. That's why freeness of an agent in action justifies agent's responsibility and ultimately he becomes a subject to avail the consequence be it-good or bad.

Human being has the right only to act but not to its fruits. The Supreme Lord is the giver of the karmic fruits and He determines what individual does and avails in this present life. In this sence of strict determinism, agents free choice or free-will or responsibility does not bear any menaing at all. Human being is only a helpless product of the Lord without any freedom. But in the Gītā the prevalence of determinism in this Universe does not restrict human freedom. He is free to choose and act by the decision of his free-will irrespective of exestial circumstances and antecedent factors. Before performing action he is free to decide a definite way of action out of various ways and means. So he is responsible for consequence. What a individual avails is not the sole impact of the determinism rather it is outcome of his own freedom in action. Exercise of free-will and choice in action makes a human being best friend of his Soul or a best foe of his Soul. So determinism and human freedom are complementary, inter-related and integrated.

❖

PR-278

Bhakti as depicted in Upāsanāśatakam

DR. (MRS.) SAHNTIPRIYA DEVI, BHUBANESWAR

The text *Upāśanāśatakam* composed by the celebrated Oriya writer Ativadi Sri Jagannath Das Goswami in 16th Century. He has authored sixteen works out of which nine are in Sanskrit and seven are in Oriya laguages. Sri Jagannath Das, a staunch devottee of

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Lord Jagannath was Vaisanavite. He composed the famous Oriya Bhāgavata which is widely known to every Oriya.

The text *Upāśanāśatakam* is written in Sanskrit having one hundred and two *slokas* composed in *sikharīṇi* metre. The text is based on the theme of Sri Radhakrishna Premabhakti. The text depicts the mode of tantric worship of Lord Jagannath, Balabhadra and Subhadra as prevalent on the basis of the *Gautamīya-Tantra* pattern. So, the Agamic way of worshipping the Lord in the Jagannath Temple is the main subject-matter of this text.

The present paper will focus on the aspect of *bhakti* as depicted in the text which will throw new light on the tradition of Bhakti in Orissa.

❖

PR-279

The Sankhya Metaphysics

DR. (MRS.) UMA PANT, VARANASI

In Indian philosophy the nature of reality has been understood manualy in five different ways (a) Being, (b) Becoming (choage), (c) Sub-ordination of difference under identity, (d) Sub-ordination of identity and diggerence, (e) Co-ordination of identity and difference.

The advocates of the fifth approach are manualy Sankhya and Visista Advaitavadin (Ramanuja). The main task of this paper, however, is to discuss the metaphysics of Sankhya.

Sankhya is one of the oldest and most profound schools among the classical systems of Indian Philosophy. It is also the only scientific and bold system which has tried to explain the phenomean of creation in a systematic manner. After Sankhya probably Sri Aurobindo is the only other systematic contemporary Indian philosopher who has attempted to propound a gigantic theory of evolutionism, through his doctrine of integralism.

In Sankhya the world is sever broadly from the wordly point of view, it takes one gradually, to matters more and more subtle and ultimately leads him to a stage from which he may easily realize all the fundamentals. In fact, the method of analysis is almost the same as in modern science. In science, gross matter is taken up first for analysis which is carried aultimately to such a subtle stage that one may doubt whether the universe is at all real.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-280

The concept of Religion in the Philosophy of Swami Vivekananda

CHARUBALA MAHANTY

In this proposed article, I have tried to present the Philosophical significance of the term 'religion' in the Philosophy of Vivekananda, who has made an extensive effort to make his Philosphy popular from Humanitarian point of view. He has given much imporefance to human service. As a contemporary Indian thinker, Vivekananda has developed his system and has contributed some philosophical principle of life to Indian philosophy.

Further, I have made an attempt to trace out the philosophical remark of Vivekananda how he understands religion in both the sense the inner aspect and the external aspect. Inner aspect signifies the inhenent character of the man, whereas external aspect indicates the value of a particular way, which helps us towards our self-realisation that transcents all diversities.

Moreover, in this paper an illustration has been made to claritry the idea of universal religion after Vivekananda's philosophy. In course of our discussion, we have observed that, according to Vivekananda, universal religion means the religion of the nation, the religion of the country etc. Further, Vivekananda's humanism signifies God as man and not God in man.

❖

PR-281

Mother Goddess in Ancient India : A Critical Study

MRS. DIPIKA DEVI, ASSAM

Mother is the primary factor in the creation and reproduction of the universe. The concept of motherhood evolved as her identity in the creation of several natural powers and their functions. Mother Goddess is an important member of Hindu pantheon. The Mother Goddess is represented in different phenomena, e.g. Sarasvati representing learning. Lakshmi representing wealth, Durgā, the benign aspect and Kālī the terrible aspect.

The concept of Mother Goddess in the Ṛgveda Saṁhitā and other Vedic litarature is also examined. A number of Goddess and their copacities are mentioned in Vedas. In the Ṛgveda, the three peculiar types of Mother Goddess are found.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

In the Great two epics Rāmāyaṇa and Mahābhārata, mother is depicted in a very high position. She is called Devī and respected by all.

Eight visible forms of Śiva are also described in the first benedictory verse of the Abhijñāna Sakuntalam of Kālidāsa. These eight visible forms of Śiva and eight forms of Caṇḍikā surrounding Goddess Durgā are also worshipped for the fullfillment of *caturvarga* (e.g.) Dharma, Artha, Kāma and Mokṣa.

The Purāṇas and the ancient Indian literature record the cult of Mātṛ Pūjā in India. Mother Goddass was the only deity, whom the people liked very much and worshipped with great devotion.

Thus we can say that in ancient India Mother Goddess became remarkable popular in all ages of our history, epicopuranic period.

❖

PR-282

The Advaita Philosophy of Sree Sankara and Sree Narayana

DR. DHARMARAJ ADAT, KERALA

Both Sree Sankara and Sree Narayana followed the *advaita* philosophy of Indian philosophical tradition. Many scholars established clearly that Sree Sankara lived during the 8th and 9th century. Sree Narayana lived during the 19th and 20th century. As a Vedantic predecessor, Sree Sankara's influence on Sree Narayana cannot naturally, be ruled out. But, that does not mean that Sree Narayana's philosophy is a restatement of Sree Sankara's philosophy.

In final analysis, it is seen that the *advaita* philosophy of Sree Sankaracharya and that of Sree Narayana are vastly different both in content and in application. They assume different dimensions in theory and practice. Both Sree Sankara and Sree Narayana are different interpreters of the same philosophical branch, *advaita* of the Indian theistic tradition. Sree Sankara evolved his philosophy as the ideology of the ruling class of the society he lived in. But Sree Narayana used his philosophy to dismantle the vicious social system he lived in and prepared the people to welcome a new, emerging social system.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-283

Role of Swami Vivekananda in the National re-construction of India

DR. P. SYAMALA DEVI, T.V.M.

The Vedantic movements of Swami Vivekananda bring about a spiritual movement which would recognise Divinity in every creature high or low, which would concentrate all its energy in aiding humanity to realise its true nature.

He considered Vedanta as a factor in civilization. Upanisadic thoughts were translated into practice by him so as to bring about a thorough change in the mental make up of mankind. He accepted the basic structure of the Advaita philosophy.

He made religion an instrument of social good and Advaita Vedanta is the greatest concept of religion. He knew that day to day problems of man had to be tackled on the ideological plane first, Modern problems of India are predominently socio-economic. We have a greater need for Advaita Vedanta expounded by Swami Vivekananda. Swamiji's Vedantic vision, Human service, Universal brotherhood, Social and Religions reconstruction which made him a role model for many great people around the world especially in India are highlighted in this paper. An attempt is made to examine how Swami Vivekananda applied practical Vedanta for the national re-construction.

❖

PR-284

The Buddha as a Vedanta Philosopher

DR. R. KARUNAKARAN, T.V.M.

Swami Vivekānanda, the great *Vedanta* Philosopher in the modern times says that 'Buddha was one of the Sannyasins of the *Vedanta*. He started a new sect. The ideas which now are called Buddhism were not his. They were much more ancient. He was a great man who gave the ideas Power. The unique element in Buddhism was its social element'. Buddha was against the caste system and religious war, based on his Non-dual Philosophy and religion. Sri Sankara, Sri Vivekānanda and all other great teachers in the world got inspiration from Buddha himself. The Buddha and Sri Sankara agree in their ideal of spiritual discipline, and it is knowledge (*Prajñā, Brahmajñāna*) that frees us, other factors are auxiliary to this. The state of *Nirvāṇa* (mukti) is a complete identity with the abosolute,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

i.e. *Paramārthasatyam.* The *samvṭti-satyam,* the practical reality is as the means for the knowledge of *Paramārtha-satyam* in *Mādhyamika* Philosophy and *Advaita Vedanta* of Sri Sankara. The two kinds of realities, truths; *samvṛti* or *vyavakāra,* vyāvahārika and *Paramārtha* are regarded as means (upāya) and the end (upeya) respectively in Buddhism, and Advaita. Sri Sankara also clearly says in his commentary of the *Māṇḍūkyakārikā,* that the imagined *samvṭti,* an empirical truth; outlook is as a means for the attainment of the *Paramārthasatyam,* the highest good of humanity. Thus the imagin, empirical world in is useful for the attainment of the highest goal of humanity in the Buddhism and *Vedanta.* The Buddha clearly says that (*cittamātraṁ vadāmyahaṁ*). I say (all this is) only citta. If the mind is ceased, the duality will not be perceived. So Gauḍapāda declared the Ajātivāda, the doctrine of Non-orgination based on *Vedanta* and reason.

❖

PR-285

Analysis of the definition of Pramāṇa of K. Miśra

SATISH CHANDRA PANDA, ORISSA

Though Pramāṇa or source of knowledge is not the Ultimate target of any Indian Philosophy, nevertheless it has a momentous role in philosophical exercises: because Prameyasiddhiḥ Pramāṇāddhi, i.e. the establishment of Prameya (object of knowledge) depends upon the Pramāṇa.

I am in this article trying to analyse the definition of Pramāṇa in accordance with Kesava Misra, a well known name in the domain of Indian philosophy, specially in the Nyāya school, who has written 'Tarkabhāṣā', an authentic treatise in Nyāya-Vaiśeṣika system.

In *'pramakaraṇaṃ pramāṇaṃ'*, Pramāṇaṃ is *Lakṣa* and *pramākaraṇaṃ* is *lakṣaṇa* (definition). In this *lakṣaṇa* there are a couple of words; one is pramā and the another is *karaṇaṃ.* Here *pramā* means *'Yathārthānubhabaḥ'* or valid experience and *Karaṇaṃ* means *sādhakatamaṃ,* i.e. the most efficient cause. Out of these three causes, which one is most efficient in whatever form in the procreation of the effect is called its *karaṇa.* Hence the instrument of valid experience is established as *pramāṇa* or means of knowledge.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-286

Concept of Jivanmukti in Sāṁkhya and Yoga Philosophy

DR. SANGHAMITRA SENGUPTA, KOLKATA

Ancient Indian thinkers believed that ignorance is the cause of suffering. The destruction of ignorance is known to be liberation. This is possible only by means of knowledge, which is incompatible with ignorance. From the Sāṁkhya-Yoga standpoint, true knowledge is the knowledge of distinction between Prakṛti and Puruṣa. According to Sāṁkhya and Puruṣa is the means to liberation.

Except Cārvāka, the theory of Karma is accepted by all systems of Indian Philosophy. It is argued that since the world abounds in variety, which cannot be explained by any cause available in our experiences, we attribute it to the Karmas of individuals. Through Knowledge, man cannot overcome all Karmas. After the acquisition of Knowledge, the fruits of Karma, that is, the virtues and the vices that have not begun to yield their fruit, and that have accumulated in earlier lives, or in this life before the rise of knowledge, are destroyed. The Karma that is done in a previous life, and which produces present life is known as Prārabdha. The persistence of Prārabdha in the case of the liberated one sustains the existence of the body. The body and the world may exist, but the balanced mind of a liberated man is not affected by it.

Sāṁkhya and Yoga philosophies have admitted this state of liberation, the Jivanmukti, that is, liberation while living. Indian thinkers maintain that Prārabdha is destroyed by experience only.

That the destruction of Prārabdha is possible without experience is maintained in Jaina philosophy, in the devotional schools of Vedānta, and in the Tantraśāstra.

❖

PR-287

Tattvamasi in Chāndogya Upaniṣad : A Study

BAGMITA SANDILYA, GAUHATI

The Advaita Vedāntins regard this statement as well as other such statements of the Upaniṣads as Mahāvākyas because these sentences directly convey the identity between the self and Brahman, which is the main thesis of the Advaita Vedāntins. In the view of Sankara *'tat'* means Brahman and *'tvam'* means the *jiva* or the individual self while *'asi'* denotes their identity.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

But other Vedāntins like Rāmānuja, Madhva, Nimbārka and others explain this sentence in different ways according to their own philosophical views. Rāmānuja opines that this sentence does not refer to the identity between Brahman and the Jiva. In his view both the words *'tat'* and *'tvam'* denote *Saviśeṣabrahman* (qualified Brahman) and the ultimate meaning of this sentence is : 'the Jiva is the body of Brahman.' Madhva, the dualist, on the other hand has changed the whole sentence and says that is it *'Atattvamasi'*.

The present paper aims at discussing all these interpretations of the sentence *Tattvamasi* and thereby bring out its true significance.

❖

PR-288

Hindutva—A way of Life

C.R.L. KALYANI, ANDHRA PRADESH

Salutations to that guru who has shown me that supreme being, who in the form of a sphere of undifferentiated consciousness, pervades this universe of the moving and non-moving beings.

From times immemorial Hinduism dreamed for a society which is free from all ills. Total good of all beings has always been its glorious ideal. We look upon every individual of the society as a part of the Divine self. All of them are secred and worthy of our service. Serving them is worshipping God.

Ekam Sat Vipra Bahudha Vadanti : Truth is one, Sages call it variously. Different person going up the hill in different routes may describe their experiences differently, but they reach the same point ultimately. These sublime features of our culture keep us a top of all others. Hinduism mainly relies on Dharma. Dharma is two fold. It must keep man's mind beyond animal insticts and cultivate good qualities like self restraint. It must create awareness in the individual to realise oneness with others in the society. This two fold dharma unfolds the Ultimate Reality.

According to Hindudharma there are four stages in an individual's life.

(1) Brahmacharya, (2) Garhasthya, (3) Vānaprastha, (4) Sanyasa.

This observation is sanctified by religion. Six different systems of philosophy called Darshanas were developed in this religion. Vast literature came out from ancient Rishis. They helped in regulating the society. For common people purānas were presented in an easily comprehensible manner.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-289

Śivānandalaharī

GEETHA R. BANGALORE

Sri Adi Shankarācharya, as we know is a great philosopher and profounder of Advaita Siddhānta. Eventhough Shankarācharya emphasizes ज्ञानमार्ग and निर्गुणोपासन, he never denies the भक्तिमार्ग andd सगुणोपासन. A huge heap of compositions he has made on Lord Śhiva, Krishna, Lakshmī, Lalitā and other gods, stand to support the statement that he encouraged सगुणोपासन through भक्तिमार्ग।

On the other hand, भगवद्गीता the great ग्रन्थ, plays as a hand book or encyclopedia to the human category, to all kinds of people irrespective of Caste, creed, religion, gender, etc.

Shivānandalaharī as one of the best composition of Shankracharya, consisting of 100 shlokas, which conveys the message to devotee, to surrender to the eternal power and get released from the bondage of birth and death, which is believed to be the ultimate aim of human life.

In this paper an attempt is made to findout the reflection of कर्मसन्यास योग of भगवद्गीता in शिवानन्द लहरी shlokas. This paper has made a Trial to show how Shankarāchārya says about निष्कामकर्म or कर्मसन्यास; the precious words of गीताचार्य through mind control, devotion and complete surrender to the Lord along with निष्काम कर्म or also by कर्मसन्यास.

❖

PR-290

On Nirvikalpaka Pratyakṣa

DR. NILAKANTHA DASH, HYDEABAD

In Nyāya system, perception has been divided into two broad classes, viz. normal (*laukika*) and supernormal (*alaukika*). This division depends on the sense object contact involved in the process of perception. When the sense organ comes into contact with its object, within its range, in a normal way, there arises normal perception.

Normal perception (*laukika pratyakṣa*) is of two types, viz., indeterminate and determinate. These two are generally accepted as two stages of perception. In *nirvikalpaka* stage one apprehends the mere form of an object, which is non-relational and free from verbal images. This stage is abstract and indeterminate.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

This is an attempt to discuss this topic as it is found in *Nyāya* system, starting from *Nyāyasūtra* to *navya-nyāya* texts, comparing the same with the view of Buddhists and western scholars.

❖

PR-291

Hermann Hessecs Siddhartha and the Influence of Vedanta

DR. MAMATA DIXIT, VARANASI

❖

PR-292

Vedic Origin of Śrī Kṛṣṇa's Philosophy of Samatva

DR. KRISHNA MURARI SHARMA, HOSHIARPUR

Philosophy of *Samatva* is the superb contribution of Śrīkṛṣṇa in the Bhagavadgītā. 'Samatvaṁ yoga ucyate' defines the yoga in Śrīkṛṣṇa opinion. The references as samabuddhiḥ, samadarśinaḥ, samo'ham sarvabhūteṣu etc., are ample in number presenting the various aspects of Samatva philosophy. Since the colophons in the end of every chapter of the Bhagavadgita reads as 'इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे....' which shows that the Philosophy professed in the Bhagavadgita is the essence or milk of the upnisads. It is quite pertinent to seek the origin of the concepts of Samatva philosophy of Śrī Kṛṣṇa in Vedas and Upaniṣads. There are good number of references in the Ṛgveda, Yajurveda and Atharvaveda Saṁhitās mainly in Saṁjñāna hymns, samvanava hymns and many other places. Similarly, the upaniṣads are enriched with such ideas related to the state of equilibrium of mind and balance between two opposites. This balance in the form of equality and justice is very much desired in social and economic spheres too. In the present short paper the philosophy of samatva which is the under current of whole Indian philosophical and spiritual thought, has been presented in Vedic and Upaniṣadic contexts.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Section - 13

Technical Science & Fine Arts

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

TS & FA-1

म.म. सामन्तचन्द्रशेखरीये सिद्धान्तदर्पणे ग्रहस्पष्टीकरणवैशिष्ट्यम्

श्री सत्यस्वरूपवाजपेयी, वाराणसी

'ग्रहाधीनं जगत् सर्वम्' अर्थात् ग्रहाणामष्टधा गतयः स्थितयश्च मानवजीवने सर्वत्र सर्वदा च प्रतिफलन्ति। मानवजीवनस्य यानि कानि सुखदुःखानि भवन्ति, तानि सर्वाण्येव ग्रहाधीनानि।

सिद्धान्तज्योतिषे ये केचन श्रमं कृतवन्तस्तेषु उत्कलराज्यनिवासी म.म. सामन्तचन्द्रशेखरः अन्यतम, यः खलु सिद्धान्तदर्पणाख्यं ग्रन्थरत्नं विरचितवान्। स महान् गणितज्ञः ज्योतिर्विज्ञानी चासीत्। तस्य जन्मसमयः 1835 तमे ग्रन्थरचना कालः 1892 तमे भवति। अस्मिन्नेव ग्रन्थे स ग्रहस्पष्टीकरणोपरि नूतनमार्गं दर्शितवान्।

प्राचीनैः आचार्यैः मध्यमरविचन्द्रयोः केवलं मन्दफलस्य संस्कारेणैव स्फुटत्वं स्वीकृतं अर्थाद् रविचन्द्र-मध्यमग्रहयोः स्फुटनिमित्तं रविचन्द्रयोः मध्यममाने देशान्तर-चर-मन्दफलसंस्कारान्तरं भुजान्तरोदयान्तर-संस्कारः अपेक्षते। परन्तु चन्द्रग्रहस्फुटनिमित्तमुपर्युक्तपञ्चसंस्कारानन्तरम् अत्र सामन्तचन्द्रशेखरेण पुनः संस्कारस्य नूतन-मार्गाः प्रदर्श्यन्ते, तद्यथा—तुङ्गान्तरसंस्कारः, पाक्षिकसंस्कारः एवं दिक्संस्कारः, अर्थात् शीघ्रगतिकचन्द्रः भष्टसंस्कारानन्तरं दृक्स्पष्टः भवति, इयमपि एका महती कृतिः सामन्तस्य वर्त्तते।

❖

TS & FA-2

भूमौ ग्रहदृष्टिविचारः

डॉ. हरिप्रसादपाण्डेयः, बड़ौदा

भूमौ शल्याशल्यादिज्ञानाय गृहस्वामी प्रश्नलग्नाक्षरेणैव अथवा शकुनफलाद् ज्ञातुं प्रवर्तते। प्रथमं प्रश्नलग्नद्वारा द्वितीयं प्रश्नद्वारा तृतीयं शकुनद्वारा तथा चतुर्थं सूर्यचन्द्रयोः नक्षत्रात् चतुर्थं भूमिसंशोधनस्य विधानं वर्तते। यथा जातकेषु चतुर्थो भावः नाम गृहभूमिः वाहनादि वर्तते तथैव प्रश्नकालेऽपि चतुर्थस्थानं नाम गृहभूमिवाहनाय कल्पितं वर्तते।

शल्यादिसंशोधनाय यदि प्रश्नकाले चतुर्थस्थाने सूर्यस्य प्रबलदृष्टौ नरशल्यं शोकतापौ च जायेते, तस्मिन् स्थले निवासेन। यदि तस्मिन् स्थले चतुर्थस्थाने चन्द्रस्य प्रबलदृष्टिर्जायते निश्चयेन तत्स्थले भूमौ द्रव्यं जानीयात्। तत्र निवासेन हर्षोल्लासं सुखमपि जानीयात्। चतुर्थे चन्द्रदृष्टौ निवासयोग्या भूमिरिति जानीयात्। जन्मकुण्डलीं वा प्रश्नकुण्डलीं वा चतुर्थभौमदृष्टौ तत्स्थले भस्मशल्यकाष्ठादीनि जानीयात्। एवं भौमदृष्टौ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अशुभा भूमिरिति जानीयादिति वास्तुशास्त्रकाराणां मतम्। बुधदृष्टौ शुभभूमिः वासयोग्येति जानीयात्। अस्यां भूमौ धनं धान्यं धातुतैलस्रोतश्च जानीयात्।

चतुर्थे गुरुणा दृष्टे भूमिः निवासयोग्या रत्नधातुप्रपूरितेति जानीयात्। शुक्रस्य चतुर्थे दृष्टिर्भवति चेद् रम्यधातुसमाकुला भूमिरिति विजानीयात्। शनेर्दृष्टे पशुशल्ययुक्ताभूमिरिति जानीयात्। यदि चतुर्थे राहोर्दृष्टिगते भूतबाधायुक्ताशिशुशल्ययुक्ता भूमिरिति विजानीयात्। केतुदृष्ट्या भूमिः जनसंहारकारिणी भवति। भूमौ भूतबाधा शिशुशल्यश्च जायते। यदि पापग्रहाणां शुभग्रहाणाञ्च चतुर्थे शुभाशुभदृष्टिर्भवति तर्हि मिश्रितं फलं विजानीयात्। शुभाधिक्ये शुभं पापाधिक्ये च पापफलम् ज्ञेयम् एवं विचिन्त्य शुभभूमौ निवासं कुर्यात्।

❖

TS & FA-3

चिकित्साव्यवस्था

डॉ. नित्यानन्दमिश्रः, भद्रक, ओडिशा

प्राक्काले आदिचिकित्सकः धन्वन्तरिरेव श्रीविष्णोः अपरः अवतारः इति अस्मदीयो विश्वासः। यस्य सुकोमलस्पर्शेण अमृतवर्षिण्या वाचा दिव्यौषधेन च प्राणिनः आरोग्यभाजः भवन्ति, एतदर्थं चिकित्साविद्या समग्रेऽस्मिन् विश्वे श्रेष्ठविद्यात्वेन परिगणिता भवति अनादिकालतः। प्राचीनभारते धन्वन्तरिः, अश्विनीकुमारद्वयं, चरकः, सुश्रुतः, पतञ्जलिः, अन्येऽपि चिकित्साविशारदाः विद्यामिमां सफलीकृतवन्तः। विज्ञानस्य अग्रगत्या प्राचीनपद्धतिरपि परिवर्तिता। नवीना पद्धतिः आविर्भूता प्राचीनायाः स्थाने। येन आयुर्वेदेन सह मुख्यतः एलोपाथिक, होमियोपाथिक व्यवस्था स्वजययात्रायामभिवर्द्धते।

परन्तु या काचन पद्धतिः भवतु नाम सा तदानीमेव सफला भवति, यदा तस्याः अधिकारिणः निर्मलहृदयसम्पन्ना निष्ठावन्तश्च भवन्ति।

❖

TS & FA-4

प्राच्यप्रतीच्यदृष्ट्या भूगर्भसमीक्षणम्

डॉ. सदानन्दशुक्लः, वाराणसी

प्रकृतिपुरुषयोरुभयोः संश्लिष्टत्वे सति प्रकृतौ संक्षोभो जातः, तस्मात् महदादीनां समुत्पत्तिः। महत्तत्त्वादहङ्कारः, तस्मात् मनः, एवं पञ्चतन्मात्रापञ्चज्ञानेन्द्रियाणां समुत्पत्तिः। तत्र वेदान्तनयेन सांख्यनयेन च पञ्चीकरणप्रक्रियामादाय पञ्चमहाभूतात्मिकायाः सृष्टेः परिणामे पार्थिवसृष्टौ अर्धांशः पार्थिवस्य अन्येषां चतुर्भूतानां समरूपेण अर्धांशभागस्य समायोजनात् पार्थिवसृष्टिः। एवं क्रमेणैव अन्येषां महाभूतानां कृतेऽपि तत्तन्महाभूतानामर्धांशः अन्येषां चतुर्णां महाभूतानां सम्मिलितार्धांशेन तत्तत् सृष्टेः स्वरूपं बोद्धव्यम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्रास्माकं कृतेऽस्माददीनां भुवि स्थितानां पार्थिवशरीरधारिणामाधाररूपत्वात् प्रथमं पार्थिवविषयः समीक्षणमपेक्ष्यते।

प्रतीच्यविचारकाणां मते तु पञ्चमहाभूतानां जडात्मकत्वात् तत्तदन्नफलादीनां सत्यपि जडरूपे शीर्णे जीर्णे सति तत्र चैतन्यस्य दर्शनात् जडपरिणामैव सृष्टिः। न अन्यत् किञ्चिच्चैतन्यम्। तत्र परमाणुरूपेण समवस्थितस्य महाभूतस्य कालक्रमेण सम्मेलनप्रक्रिया सृष्टेः स्वरूपं स्वीक्रियते। किन्तु उभयात्मके विचारे सृष्टिस्तु प्रकृतेः परिणाम एव। तस्य प्रकृतिपरिणमितस्य महाभूतस्य प्राथम्येन अस्माकं कृते आधाररूपत्वात् पार्थिवसृष्टिविषये परिशीलनमपेक्ष्यते। अतः विभिन्नभागे पृथ्वी पृथिव्याः प्राकृतिकस्वरूपं तत्र प्राप्ताद्रि-नदी-औषधि-तत्रस्थितभिन्नभिन्नप्रकृतिजीवानां समुत्पत्तिनिरूपणपूर्वकं तत्र तत्र भूगर्भे सम्प्राप्त-सम्भावितवस्तूनां निरूपणं समीक्षात्मकस्वरूपमादाय प्रस्तूयते।

❖

TS & FA-5

संस्कृतवाङ्मये गणितविज्ञानम्

डॉ. कलिपदेवपाण्डेयः, वाराणसी

संस्कृतवाङ्मये निहितस्य ज्ञान-विज्ञाननिधेः विषये ये अनभिज्ञाः सन्ति, ये च स्वल्पश्रुताः सन्ति तेषामियं भ्रान्तिभाविता धारणा विद्यते यत् संस्कृतभाषानिबद्धं साहित्यं तत्त्वज्ञानमात्रपरमध्यात्मप्रधानं देवपूजोपासनादिकर्मकाण्डप्रधानञ्चास्ति। तत्र लोकोपयोगिनां भौतिकविज्ञानादीनां नितरामभावोऽस्ति। किन्तु आरोपोऽयमज्ञानविजृम्भितो निर्मूलकश्चास्ति, यतो विज्ञान-शिल्पकलादिविषयेष्वपि संस्कृतभाषा विश्वस्यान्यसमस्तभाषापेक्षया न्यूना पश्चात्पदा वा नास्ति। यदि संस्कृतवाङ्मयस्याशेष इतिहासोऽनाग्रहदृशा निपुणं निरीक्ष्येत परिवीक्ष्येत च, तर्हि स्फुटं ज्ञास्यते यत् प्राक्तनैः भारतीयमनीषिभिः वैज्ञानिकविषयानाधृत्य संस्कृतगिरा बहु व्याहृतं, येन बहूनां विज्ञानसिद्धान्तानां कृते भारतदेशः प्रवर्तकत्वं विभ्राणश्चकास्ति। भौतिक-रसायन-जीव-वनस्पति-चिकित्सा-भूगोल-खगोल-धातुप्रभृतिविज्ञानेषु साहित्यं संस्कृतभाषायां प्राचुर्येण विद्यते। तत्र गणितं मूर्द्धन्यतां भजते, सर्वासु विज्ञानशाखासु तस्योपयोगित्वात्। वेदाङ्गे ज्यौतिषे गणितं मूर्ध्नि स्थितम्। प्रस्तुतेऽस्मिन् निबन्धे गणितविज्ञानस्य ऐतिहासिकं विकासात्मकं च विवेचनं कृतमस्ति।

गणितज्ञशिरोमणिना महावीराचार्येण 'गणितसारसंग्रह' नामके स्वकीये ग्रन्थे प्रथमेऽध्याये एकादशश्लोकैः गणितविज्ञानस्य महती प्रशंसा कृता। तात्पर्यतः सर्वं जगद्व्यापारजातं गणितं व्याप्नोति। गणनाया आधारभूतानां दशाङ्कानां बहूनि उदाहरणानि मैक्डोनल-कीथमहोदयाभ्याम् ऋग्वेदात् संगृह्य प्रदर्शितानि सन्ति। यजुर्वेदस्य वाजसनेयिशाखायां संख्यासंज्ञानां सूची समुपलभ्यते। तैत्तिरीयसंहिता-मैत्रायणी-काठकसंहितास्वपि स्तोकमन्तरेण एषा तालिका लभ्यते। इमाः संख्याः क्रमशो दशगुणिताः सन्ति। ललितविस्तरनामके ग्रन्थे, अनुयोगाद्धारसूत्रनामके जैनागमे संख्या स्थानवत्या संख्यया वर्णितास्ति। भाष्यकृता हेमचन्द्राचार्येण संख्यानां मानं चतुर्णवत्यधिकशतस्थानानि (124) आवृणोति।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिकयज्ञानुष्ठानेषु वेदीनिर्माणप्रक्रियया न केवलं ज्यामितेः बीजगणितस्यापि उत्पत्तिः समभूत्, किन्तु भारतीयं रेखागणितं वैदिककाले जातम्। पुरीस्थगोवर्द्धनमठपीठाधीश्वरैः जगद्गुरुशङ्कराचार्यैः भारतीकृष्णतीर्थमहाराजैः (1884-1960) अथर्ववेदस्योपवेदभूतस्य स्थापत्यस्य परिशिष्टरूपेण षोडशसूत्राणि त्रयोदश उपसूत्राणि चान्विष्य प्रस्तुतानि व्याख्यातानि च, येषां साहाय्येन सर्वेऽपि गणितप्रश्नाः त्वरितं समाहितानि भवन्ति। पूज्यपादैः Vedic Mathematics इति नामके स्वग्रन्थे सम्यग् उपपत्तिपूर्वकं तेषां सूत्राणां विनियोगः प्रदर्शितः।

प्रथमखीस्तीयशताब्दीं यावत् भारते गणितस्य पर्याप्तं विकासो जात आसीत्। संस्कृतगणितज्ञानां तत्कृतीनां च संक्षिप्तः परिचयः तेषां योगदानं च प्रस्तूयते निबन्धे।

आर्यभट-ब्रह्मगुप्त-श्रीधराचार्य-श्रीपति-महावीराचार्य-भास्कराचार्य (द्वितीय)-नारायणमुनीश्वर-बापूदेव-शास्त्रि-म.म.सुधाकरद्विवेदिप्रभृतीनां गणितज्ञानं ज्योतिर्विदां च गणितविज्ञानविषये सुविस्तृतं सविवरणं प्रतिपादनं विहितं विद्यते। अद्यापि संस्कृतभाषानिबद्धगणितज्ञानपरम्परा जीवति जागरूका च वर्तते।

❖

TS & FA-6

संस्कृतवाङ्मये जलविज्ञानम्

डॉ. विवेकपाण्डेयः, वाराणसी

जलविज्ञानसम्बन्धे वराहमिहिरकृतबृहत्संहितायां विशेषत उत्पलभट्टकृतायां तट्टीकायां नारद-कश्यप-गर्ग-वसिष्ठ-पराशर-द्रुहिण-देवल-वज्रप्रभृतीनां स्मृतिकाराणां उल्लेखो वर्तते, यैः जलविज्ञानस्य विषये स्वकृतिषु बहूनि तत्त्वानि यथावसरं निर्दिष्टानि विवेचितानि च सन्ति।

स्मृतिकारात्पूर्वं वैदिककाले ऋग्वेदस्याष्टमे मण्डले ऋतुविज्ञानसन्दर्भे जलविज्ञानस्य वृष्टेश्च सम्यक् प्रतिपादनं समुपलभ्यते। छान्दोग्योपनिषदि जलवृष्टेः तत्कारणभूतानां मेघमारुतादीनां वैज्ञानिकं वर्णनं कृतं विद्यते। परवर्तिनि पुराणसाहित्ये अग्नि-ब्रह्माण्ड-वायु-विष्णु-ब्रह्मवैवर्तादौ वृष्टिविषयकं सविधि पर्यालोचनं परिदृश्यते।

कालिदासप्रभृतयः संस्कृतकाव्यकाराः जलवृष्टिविज्ञानविषये ऋतुविज्ञानविषये चापरिचिता नासन्। महाकविना कालिदासेन पूर्वमेघस्य पञ्चमे श्लोके वृष्टेः कारणभूतस्य मेघस्य समुल्लेखः कृतः—

'धूम-ज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः।' एवमेव मेघानां भेदानां सङ्केतद्वारा संक्षिप्ता चर्चा कृता अस्ति—'जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानाम्।' एवंविधानि विविधानि काव्यग्रन्थेषु समुपलब्धान्युदाहरणानि संस्कृतवाङ्मयस्य जलविज्ञानविषये गम्भीर्यं समाढ्यत्वं च परिचाययन्ति।

यद्यपि जलविज्ञानस्यायामः अतिविशालः सुविस्तृतश्चास्ति तथापि प्राचीनसंस्कृतवाङ्मयस्य निपुणं निरीक्षणेन एवं ज्ञायते यत् ऋषिभिः एतद्विषयकं कृतं चिन्तनं वैज्ञानिकीं परिपुष्टिं भजते। आयामस्यास्य प्रायः सर्वेऽपि पक्षाः सप्रमाणं सोदाहरणं च सम्मेलने प्रस्तुतीक्रियमाणे निबन्धे स्फुटं विवेचयिष्यते।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

TS & FA-7

राजयोगानां समीक्षणम्

श्रीकौशलकिशोरतिवारी, वाराणसी

विज्ञैः ज्योतिषशास्त्रस्य स्कन्धत्रयं निर्धारितं, संहिता होरा सिद्धान्तश्च। एतेषु स्कन्धेषु जातकस्य अर्थात् फलितशास्त्रस्य स्थानमपि अन्यतममस्ति, यतो हि शास्त्रमेतद् मानवानामदृष्टातीतं प्रकाशयितुं विश्वस्य सर्वासु विधासु सर्वातिशयं सशक्तं माध्यममस्ति।

ज्योतिषशास्त्रस्य मूलाधार एव फलितशास्त्र तथा विभिन्नयोगानामध्ययनमेव फलितशास्त्रस्य मेरुदण्डः। अतः यावत् ज्योतिषमान्यानां समेषामपि योगानां साङ्गोपाङ्गमध्ययनं न क्रियते, तावत् फलितशास्त्रस्याध्ययनमपूर्णमेव ज्ञायते।

विभिन्नशास्त्रानुसारेण योगस्य भिन्न-भिन्नव्याख्या क्रियते, किन्तु फलितज्योतिषशास्त्रस्य मूलाधारः— ग्रहाः तेषां गतिः, तेषां पारस्परिकसम्बन्धश्च।

यतो हि केनचिद्वयेन उक्तं द्व्याधिकग्रहसंयोगेन सम्बन्धेन सहयोगेन वा विशिष्टः योगः निर्मीयते येन जीवनं दिव्यमुज्ज्वलं, निम्नस्तरीयं वा भवितुं शक्नोति, निम्नानुसारं योगः निर्मीयते–

1. ग्रहनक्षययोः योगात्।
2. ग्रहभावयोः सम्बन्धत्वात्।
3. ग्रहाणां परस्परदृष्टिसम्बन्धात्।

❖

TS & FA-8

ज्योतिषशास्त्रे सूर्यस्य स्थितिः

श्रीजोखनपाण्डेयः, गोरखपुरम्

निखिलब्रह्माण्डस्यास्य नियामकः स्वीयाखण्डाभामण्डलेन ब्रह्माण्डमवृण्वन्नयं मार्तण्डः कस्य चेतः न प्रसादयति। समस्तप्राणिनां शोकविमोकयिता अयं सविता सततं सरन् स्वीयपरिधौ कान् न उज्जीवयति। वेदः तदर्थमेव निर्दिशति।

'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'

यदि आत्मनः कारणभूतोऽयं सूर्यः, तथा च आत्मा अनादि-अखण्ड-रूपेण विद्यते तर्हि सूर्यस्या-नादित्वं स्वयमेव सिद्ध्यति। परन्तु अनेनैव सह प्रश्नोपनिषदि सृष्टिविषयकोत्तरे महर्षि पिप्पलादः प्रतिपादयति, मिथुनात्मिकां सृष्टिम्।

स प्रजाकामो वै प्रजापतिः मिथुनात्मकसृष्टिमुत्पादयति स्म। तथा च –आदित्यो हवै बाह्यः प्राणः''– इत्यनेन आदित्यस्य बाह्यप्राणरूपेणोल्लेखः विद्यते। अर्थात् जगतः आत्मा इत्यस्याभिप्रायः आत्मनः पोषक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इत्यर्थः। आचार्यसायणः प्रतिपादयति सूर्यः सुवति गच्छति वा सुवति प्रेरयति वा तत्तद् व्यापारेषु कृत्स्नं जगदिति सूर्यः। यद्वा सुष्ठु ईर्यते प्रकाशो वर्णादिव्यापारेषु प्रेर्यते इति सूर्यः।

❖

TS & FA-9

संस्कृते विज्ञानम्

श्रीनारायणः, तृश्शिनपुरम् (केरलप्रान्तः)

संस्कृतस्य व्याप्तिः आधुनिकशास्त्रेषु दृश्यते। वेदे 'सीसं च मे, त्रिपुश्च मे',... इत्यादिषु आधुनिकरसायनशास्त्रस्य विकासः दृश्यते। अमी के सप्त रश्मयः इत्यादिषु आधुनिकप्रकाशविज्ञानस्य चिन्ताधारा दृश्यते। भारतीयवैज्ञानिकानां शमीगणः इत्यादि विभागीकरणं सम्यक् ज्ञातं आसीत्। आधुनिकगणितस्य प्रभावः आर्यभटीयादिषु सम्यक् दृश्यते। आहत्य आधुनिकचिन्ताधारायाः प्रभावः संस्कृते समुल्लसितः दृश्यते।

❖

TS & FA-10

कौटिल्यस्य दुर्गविज्ञानं ज्योतिषीयविश्लेषणञ्च

डॉ. नागेन्द्रपाण्डेयः, वाराणसी

कूटनीतेर्विशेषज्ञतयैव कौटिल्यस्योपाधिना विभूषितोऽयं महापण्डितश्चाणक्यो विष्णुगुप्तो वा। अर्थशास्त्रे स्वकीयं परिचयं प्रस्तौति–

येन शास्त्रं च शस्त्रं च नन्दराजगता च भूः।
अमर्षेणोद्धृतान्याशु तेन शास्त्रमिदं कृतम्॥ (15/1)

खीष्टाब्दपूर्वे एकविंशाधिके त्रिशताब्दे (321 ई.पू.)

अस्य स्थितिरासीदितीतिहासविदां निश्चप्रचम्।

विष्णुपुराणेऽपि कौटिल्यस्याभिकथनं दृश्यते। तद्यथा–

'महापद्मपुत्राश्चैकं वर्षशतमवनीपतयो भविष्यन्ति।

ततश्च नव चैतान्नन्दान् कौटिल्यो ब्राह्मणस्समुद्धरिष्यति। तेषामभावे मौर्याः पृथ्वीं भोक्ष्यन्ति। कौटिल्य एव चन्द्रगुप्तं राज्येऽभिषेक्ष्यति।'' (1-25-28)

एवमस्य गौरवास्पदं वर्णनं भविष्यत्पुराणे कृतमस्ति। कौटिल्यार्थशास्त्रे सन्ति बहुविधा विषयास्तथाप्यत्र शोधपत्रे दुर्गविधानस्य विश्लेषणमभिधास्यते।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

TS & FA-11

ज्योतिषाङ्गं स्वरशास्त्रम्

डॉ. सत्येन्द्रमिश्रः

यत्पिण्डे तद ब्रह्माण्डे इत्यनुसारं ये ब्रह्माण्डे स्थिताः सन्ति त एव पिण्डे स्थिताः मन्यन्ते। ब्रह्माण्डस्थितयोः सूर्यचन्द्रयोराकर्षणविकर्षणजन्यप्रभावाच्चराचरजगत् प्रभावितं भवति। यदा पिण्डस्थितयोः सूर्यचन्द्रयोः अनुकूलता भवेत्तदा मनुष्योऽपि अपरिमितशक्तिमान् भवेत। पिण्डात्मकशरीरे सूर्यचन्द्रात्मिका शक्तिः स्वररूपेण विराजते। स्वरात्मकयोः सूर्यचन्द्रयोरानुकूल्यात् पराशक्तयो लभन्ते यथा पराशक्त्या भविष्यत् कथनमपि संभवेत्। भविष्यत्कथनं जातकस्कन्धस्य विषयोऽस्ति अनेन कारणेन स्वरशास्त्रज्योतिषस्याङ्गं दैवज्ञाः मन्यन्ते।

नाभितः कण्ठपर्यन्तं मानवशरीरे द्विस्पति सहस्रपरिमिता नाडिकास्सन्ति। आसां मध्ये दशनाडिकाः प्रधाना सन्ति। आसां नामानि स्थानानि च–

इडा च पिंगला चैव सुषुम्ना च तृतीयका।
गान्धारी हस्तिजिह्वा च पूषा चैव यशस्विनी।
अलम्बुषा कुहूश्चैव शंखिनी दशमी तथा।

❖

TS & FA-12

'अपि गृहस्थोऽपि मुच्यते' आचार्यमण्डनमिश्रकृत-ब्रह्मसिद्धिमतपर्यालोचनम्

प्रो. शङ्करजी झा, चण्डीगढ़

आचार्यशङ्करपादानां तदनुसारिणामन्येषाञ्च मतेषु वेदान्तशास्त्राधिकारिणो व्यासकृतब्रह्मसूत्राध्ययनाधिकारिणस्तत्त्वज्ञानाधिकारिणो वा न्यस्तश्रुतिकर्मजात-विरक्तसंन्यासिन एव; न खलु श्रुतिविहितकर्मचरा गृहस्था इति। अन्ये तु मनुयाज्ञवल्क्यादिस्मृतिप्रतिपादितप्रकारेण, "तमेतं ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन" इत्यादिश्रुतिस्वारस्येन च गृहस्था अपि जिज्ञासाधिकारिणो मोक्षाधिकारिणश्चेत्यामनन्ति। किञ्च, "पराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोरिति पाणिनिसूत्र-व्याख्याविशेषेऽपि विदुषां वैमत्यम्। तत्र तत्त्वबोधिनीकार-श्रीमज्ज्ञानेन्द्रभिक्षुपादास्संन्यासिपरकमर्थं कुर्वते किन्तु नागेशप्रभृतयो गार्हस्थ्यसमर्थकमर्थं प्रस्तुवन्ति।

अत्र कतरन्मतं युज्यत इत्यत्र निष्पक्षविचारका एव प्रमाणम्। मन्मते तु प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीरित्यादि-श्रुतिस्वारस्येनोपर्युक्तश्रुतिसमर्थितत्वेन चोपर्युक्तमण्डनमिश्रमतमेव युक्ततममित्याद्यन्यत्र विस्तर इति।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

TS & FA-13

प्राच्यप्रतीच्यगणितविमर्शः

श्रीनारायणकिंजवडेकरः

आधुनिक-प्रतीच्यगणितेन काश्चन समस्या न साधिताः तासां समाधानं प्राच्यगणितेनैव सम्पद्यते। लीलावत्यामङ्कपाशेन क्रमविक्रमेण साध्यमानानां संख्यानां योगः अनायासेन सिध्यति, यथा—

1,2,3,4,5,6,7,8,9 इति अंकाः।

तैः साधिताः संख्या (By permutations)

3,62.800 — समूहाः 40320

एकस्य समूहस्य योगः 4.99 99 99 995

संख्यासङ्कलितयोगः — 2.01.599.999.798.400 (A)

सूत्रः — लब्धिः $\frac{\text{संख्याभेदः} \times \text{संख्यायोगः}}{\text{संख्याङ्कः}}$

प्राप्तलब्धिः	18.14.400
लब्धेः योगविशेषत्वेन	1814400
सम्पूर्णनवसंख्यायोगः	1814400

एतद् आधुनिके न विद्यते श्रेणीव्यवहारे।

एतावता प्राचीनगणितपरम्परया तस्य च उपयुक्तता विशेषता च विद्वद्वरेण्येभ्यः अतीव रोचेत इत्यत्र नात्र संशयः।

❖

TS & FA-14

भारतदेशे गणितशास्त्रपरम्परा

डॉ. डी.एस. गायत्री, बेंगलोर

भारतदेशः सभ्यतायाः मूलं, ज्ञानस्य आकरः, शास्त्राणामुद्गमस्थानम् इत्यादिप्रशंसां भजते। वेदवेदान्तानां भूमिरियमिति बहुभिर्बहुधा श्लाघिता। एतैः सहैव नैकानि ऐहिकप्रयोजकानि शास्त्राण्यपि विकसितानि। तेषु प्रमुखानि आयुर्वेदः, ज्यौतिषं, गणितं, लोहशास्त्रमित्यादीनि सन्ति। तत्र गणितं तु सर्वाधारः वर्तते।

गणितशास्त्रस्य मूलं ऋग्वेद एव मेधातिथिः परार्धपर्यन्तं सङ्ख्यागणनां दत्तवानस्ति। तैत्तिरीयसंहितायां अनेकाः गणितश्रेणयः प्रस्तापिताः। जैनाः बौद्धाश्च नैकाः बृहत्सङ्ख्याः प्रयुक्तवन्तः। रेखागणितशाखायां तु भारतीयानां प्रौढिमा वरीवर्ति।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेखागणिते बीजगणितोपयोगः, बैजिकसिद्धान्तानां रेखागणितीयं प्रदर्शनं क्षेत्रेऽस्मिन् तेषां प्रागल्भ्यं संसूचयति।

आर्यभटः, भास्करः (प्रथमः), वराहमिहिरः, ब्रह्मगुप्तः, श्रीधरः, महावीराचार्यः, भास्करः (द्वितीयः), नारायण इत्यादयः शास्त्रस्यास्य प्रवर्तकाः प्रवर्धकाश्च।

एतेषां योगदानं प्रबन्धे विस्तृततया प्रस्तूयते।

❖

TS & FA-15

जातकीयभावविमर्शः

प्रो. दामोदरझाः, होशियारपुरम्

बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे तदुत्तरवर्त्तिग्रन्थेषु ताजिकनीलकण्ठ्यां चाक्षांशवशेन साधितान्युदयमानन्यनुसृत्य लग्नसाधनं विधीयते। ततश्च नतघटी-लङ्कोदयमानान्यनुसृत्य दशमलग्नं प्रसाध्यान्येषां भावानां ज्ञानं विधीयते (बृ.पारा.होरा. अध्या. 4 श्लो. 27-37)।

एवं दशमलग्नवशेन द्वादशानां भावानां क्रान्तिवृत्तीयप्रदेशेषु न्युनाधिकतया महद्वैलक्षण्यं समुत्पद्यते। वस्तुतस्तु क्रान्तिवृत्ते द्वादशानां राशीनां त्रिंशदंशात्मकाः प्रदेशास्तु समा एव सन्ति। तथापि परमक्रान्त्यंशोन-नवतिमिताक्षांशदेशेषु ततोऽधिकाक्षांशदेशेषु चेयं स्थितिर्विलक्षणा भवति। एवं भावानामसाम्यं नितान्तं युक्तिरहितं प्रतीयते।

बृहज्ज्यौतिषसारे (लग्नविवेकः श्लो. 1-20) पाराशरमतेन (नृ.पारा.हो.अध्या. 4 श्लो. 39-40; 45) पञ्चपञ्चघटीमिता राश्युदयकाला भावलग्नसाधनाय समर्थिताः। एतन्मतमपि न युक्तियुक्तं प्रतीयते, यतोऽत्र घटीमानं नाडीवृत्ते भावाश्च क्रान्तिवृत्ते स्थिताः। अतश्च तयोः समकाले समाना गतिर्न सम्भाव्यते।

मुनीश्वरेण तु सिद्धान्तसार्वभौमे (सिद्धान्ततत्त्वविवेकस्य वासनाभाष्ये महाप्रश्नाधिकारे श्लो. 111-12 पादटिप्पण्यामुद्धृते) सममण्डलीया द्वादशभावास्तदनुपातिनः क्रान्तिवृत्तीया भावाश्च साधितास्तेऽपि न युक्तियुक्ताः। वस्तुतस्तु प्रतिनक्षत्रगतकदम्बप्रोतवृत्तक्रान्तिवृत्तसम्पात एव तत्तन्नक्षत्रराशिसम्बन्धीनि सिद्धान्तसम्मतानि स्थानानि भवन्ति।

महामतिमता कमलाकरभट्टेन सिद्धान्ततत्त्वविवेके (महाप्रश्नाधिकारे श्लो. 102-3) भावलग्नसाधनप्रकारस्य युक्तिराहित्यं मत्वा क्रान्तिवृत्तीयलग्ने पञ्चदशांशान् संयोज्य प्रथमभावान्तबिन्दुरुक्तः। तत्र लग्ने पञ्चदशांशान् अपहाय भावादिबिन्दुः साधितः। एवमन्येष्वपि भावेषु भावादि-भावान्तबिन्दून् निश्चित्य भावानां समत्वं नारदादिमतेन साधितम्। एवं सर्वे भावास्त्रिंशदंशात्मका भवेयुः। एभिर्भावैः फलादेशोऽपि पाराशरमतेन भावलग्नसाधनप्रकरणे स्पष्टमुक्तः। अतोऽदृष्टफलार्थं दशमलग्नवशेन भावसाधनप्रकारस्य युक्तिहीनत्वं मत्वा केवलप्रथमलग्नवशेन द्वादशभावाः साधनीया इति सिद्धान्तसंमतः पन्था इति।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

TS & FA-16

विवाहे मेलापकविचारः

डॉ. प्रभातकुमारमहापात्रः, पुरी

विशिष्टवहनम्, वि उपसर्गः वह् धातो घञ् प्रत्ययेन विवाहशब्दस्य निष्पत्तिर्भवति। 'दारपरिग्रहे तज्जनके व्यापारे च' एवं 'भार्यात्व-सम्पादकज्ञानं विवाहः'। विवाहो नाम पाणिग्रहणमित्यर्थः। मेलापकशब्दात् मेलनकर्मणः बोधो जायते। स्त्रीपुरुषयोः दाम्पत्यसम्बन्धस्य स्वरूपं भेदाः शुभाशुभप्रभावाः कथमित्यस्य विचारः ज्यौतिषशास्त्रं साङ्गोपाङ्गं करोति। तस्मात् विवाहात्प्रागेव मेलापकविचारः करणीय इति। वरकन्ययोः शारीरिकं मानसिकञ्च साम्यं यदि न भवेत्तदा विवाहानन्तरं तयोर्मध्ये वैमनस्यं कष्टप्रदं दाम्पत्यं स्यादिति भारतीयानां विश्वासः न निराधारः। अतः विवाहात्प्रागेव वरकन्ययोः पितरौ ज्योतिर्विदः साहाय्येन कुण्डल्योः मेलापकं कारयित्वा विवाहसम्बन्धविषये विचारः क्रियत इति। परन्तु वरस्य वधोश्च कुण्डली शुद्धा तथा सूक्ष्मा भवेत्। सम्प्रति भारतीयानां विशेषतया तत्रापि हिन्दूनामियं समस्या अधिका वर्त्तते। अतः विवाहसम्बद्धसमस्यानां समाधानार्थं विषयेऽस्मिन् शास्त्रीयेण मानवीयदृष्टिकोणेन च तन्मूलभूतसमस्तपक्षानां ज्योतिषशास्त्रदृष्ट्यान्वेषणं कर्त्तव्यं भवति।

❖

TS & FA-17

ग्रहगणिते दृग्गणितैक्यस्य प्रासङ्गिकत्वम्

डॉ. सच्चिदानन्दमिश्रः, पुरी

चलसम्पाताच्चलसम्पातं यावत् सायणरविरवर्षं तथा अश्विन्यादितः स्थिररेवत्यन्तं यावत् स्थिरा कृत्यात्मकनक्षत्रपुञ्जानुरोधेन स्थितयोगतारासापेक्षेण सौरभोगः भगणादितः भगणान्तं यावत् निरयणसौरवर्षं रवेश्चक्रभोगो निरयणनाक्षत्रसौरवर्षमिति। एवं ग्रहविषयेऽपि द्विविधभोगः निरयणः सायणश्च द्विविधत्वेन सम्पद्यते। देवासुराणां द्युरात्रमपि सायणमानेन सम्पद्यते न तु निरयणेन। पक्षयोः द्वययोः नैसर्गिकत्वेन गोलस्तु सायणस्तथा नक्षत्राणि निरयणाख्यानि तत्र चक्रभोगस्यैव पूर्णत्वं सूक्ष्मत्वं च सिध्यति। दृग्गणितैक्यं सूक्ष्ममानप्रमाणेन पक्षद्वयेन भवतीत्यत्र नास्ति सन्देहलेशोऽपि प्राचीनगणितेनापि कालान्तरजन्यान्तरं सकारणमवगम्य यदि बीजरूपेण संस्क्रियते तदा प्रत्येकपद्धतेः सूक्ष्ममेव सिद्ध्यति। विभिन्नकालखण्डे तात्कालिकगतिस्थितिप्रभृतिभिः नव-नव- सिद्धान्तानां प्रणयनेऽयमेव हेतुः। दृग्गणितैक्यसाधने हि सूक्ष्मत्वस्य यथार्थपरीक्षणं दृश्यते। अत एव प्राचीनगणितेऽपि यदा यदा कालान्तरजन्यपरिवर्त्तनस्यावश्यकता जाता तदा पूर्वपठिताङ्कं मूलं मत्वा तत्र कालान्तरबीजं संस्कृत्य स्वस्वसमये विभिन्नैः ज्योतिर्वैज्ञानिकैः शास्त्रं प्रणीतमिति वैदिकवाङ्मयादारभ्य नव्यसिद्धान्तकालं यावत् प्रमाणं प्राप्यते।

पञ्चसिद्धान्तिका तथा प्राचीननवीनोपलब्धसिद्धान्तपञ्चकादारभ्य पौरुषग्रन्थकारेष्वार्यभटवराहब्रह्मगुप्त-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीपतिमुञ्जालभोजबल्लालसेनभास्करकेशवगणेशजयसिंहनीलाम्बरप्रभृतीनां क्रमः प्राचीनपरम्परायाः मध्यकालीन दृष्टान्तस्तथा वैदिकक्रमस्याग्रसारणं प्रत्यक्षमेवास्ति। अस्यानेकानि प्रत्यक्षोदाहरणानि साम्प्रतमपि प्राप्यन्ते।

❖

TS & FA-18

उदयान्तरविमर्शः

प्रो. शिवाकान्तझा, दरभंगा

तत्र किन्नामोदयान्तरमिति जिज्ञासायां नाडीवृत्तीयमध्यमार्कस्य क्रान्तिवृत्तीयमध्यमार्कस्य च यावुदयसमयौ तयोरन्तरमुदयान्तरं भवति, यद्वा विषुवांशभुजांशान्तरतुल्यमुदयान्तरम्, वा कोटिकर्णान्तररूपमुदयान्तरम्, वा वास्तवावास्तवमध्यमार्कयोरुदयोरन्तरमुदयान्तरम् वा वास्तवावास्तवाहर्गणयोरन्तरमुदयान्तरम् अथवा मध्यगति-कलातुल्यासु-मध्यगतिकलोत्पन्नास्वोरतन्तरमुदयान्तरं वा मध्यमसावनस्पष्टसावनयोरन्तरमुदयान्तरं भवतीति।

स्फुटसावनस्य चञ्चलत्वात्तथा मध्यसावनस्य नियतैकगतित्वात् अनुपातार्हत्वाच्चाहर्गणो मध्यमसावनेनैव सर्वैराचार्यैः साधितः। एकस्मिन् वर्षमध्ये यावन्ति स्पष्टसावनदिनानि तावन्त्येव मध्यमसावनदिनानि भवन्त्यतः कल्पादेरारभ्य वा युगादेरारभ्य वर्त्तमानरविवर्षादेः प्राग्यावान् मध्यमसावनस्तावानेन स्फुटसावनः स्यात्। किन्तु रविवर्षादेरूर्ध्वं यावान् मध्यमसावनस्तावान् न स्फुटसावनः। अतो वर्त्तमानसौरवर्षाभ्यन्तरे तयोः मध्यमस्पष्टसावनयोरन्तरतुल्यमेवोदयान्तरं भवति। तत् मध्य-स्फुटसावनान्तरोत्थं (उदयान्तराख्यं) फलं अहर्गणोत्पन्नग्रहेषु संस्क्रियते तदा क्रान्तिवृत्तीयमध्यमार्कोदयकालिका मध्यमग्रहा भवेयुः।

सूर्यसिद्धान्तकार-लल्लार्यभट-ब्रह्मगुप्त-वटेश्वरादय उदयान्तरं न कथितवन्तः, ते तु अहर्गणोत्पन्नग्रहा-लङ्कारसूर्योदयकाले भवन्तीति आमनन्ति। सूर्यसिद्धान्ते तु 'लुङ् कायामार्धरात्रिकः' अहर्गणोत्पन्नग्रहः कथितः। तस्याभिप्रायोऽपि स एव।

परन्तु भास्कराचार्येण उदयान्तरं स्पष्टतया दृष्टम्, तत्साधनं सयुक्तिकं प्रदर्शितम् 'युक्तायनांशस्येति' उक्तोदयान्तरं परममल्पमेवातः 'क्षितिजसन्निधिगे' इति कथितं भास्करेण। ब्रह्मगुप्तादयः 'लङ्कायां भास्करौदंयिकः' इति तदययान्तरं शून्यं मत्वा कथितवन्तः। परन्तु गोलपृष्ठे तदुदयान्तरक्षेत्रस्य प्रत्यक्षदर्शनाद् भास्करोक्तः "क्षितिजसन्निधिगे सति मध्यमः" सर्वथा सूक्ष्मः समीचीनश्चेति।

❖

TS & FA-19

प्राचीनभारते कुल्याप्रकल्पनम्

डॉ. नवलता, कानपुरम्

भारतमेको ग्रामप्रधानो देशोऽस्ति, यत्र प्राचीनकालादेवकृषेः प्रचलनमुपायतया प्रसिद्धमस्ति। कृषकाः सस्यवृद्धये सेचनार्थं वर्षेतरजलमवाप्तुं नदीकूपतडागाद्याश्रिताः भवन्ति। प्राय एतादृशान्यपि क्षेत्राणि बहुशो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवन्ति, यत्र पर्याप्तजलवर्षा न भवति, न च ग्रामपर्यन्तं तन्निकटे वा नद्यः सन्ति। एतादृशेषु स्थलेषु कूपतटाकादिभिः सेचनार्थं भूरि जलं न प्राप्यते। अतः प्राकृतिकजलसंसाधनैः जलमवाप्य कुल्याघटनं विधाय सर्वेषु क्षेत्रेषु सेचनसौविध्यार्थं कृषिशास्त्रविचक्षणैः कृषकाणां मार्ग उद्घाटितः। सन्दर्भेऽस्मिन् वैदिकसाहित्ये कृत्रिमसरिदुल्लेखिता। अन्यत्र तडागादीनां खननप्रसङ्गे परीवाहस्य चर्चा प्राप्यते। कुल्याप्रकल्पनस्यावश्यकतां स्वीकुर्वद्भिः काश्यपादिभिः कृषितन्त्रोपदेशकैः सततोदकपूरिताः महाकुल्याः व्यतिरिच्य नदीमातृमुखा, ह्रदाश्रिता, जलाशयाश्रिता, पर्वतपार्श्ववर्तिनी चेति चतुर्विधाः कुल्याः प्रोक्ताः।

एतासां कुल्यानां निर्माणविधिः दिशा, प्रवाहः विस्तारः, गाम्भीर्यं, जलपरिमाणादिकञ्च कथं प्रकल्पनीयमिति सर्वं विचारं संस्कृतकृषिशास्त्रवेतृणां मतानुसारेणोपस्थाप्य वर्तमानकुल्यानिर्माणप्रविधेः परिप्रेक्ष्ये तन्मूल्याङ्कनमस्य शोधपत्रस्य प्रतिपाद्यं वर्तते।

❖

TS & FA-20

चन्द्रशृङ्गोन्नतिविमर्शः

डॉ. रामजीवनमिश्रः, जम्मू

शृङ्गयोर्दृश्यवृत्तशुक्लवृत्तसम्पातरूपयोरेकतरस्योन्नतिरिति शृङ्गोन्नतिः। तत्र चन्द्रबिम्बं भूबिम्बात् परितो भ्रमद् दृश्यते, चन्द्र बिम्बगतकलङ्कस्य सदैवैकरूपदर्शनात्। तत्र चन्द्रबिम्बे स्वगतमौज्ज्वल्यं न विद्यते अतो यद्भागे रवेः किरणा लगन्ति स चोज्ज्वलस्तदितरोऽनुज्ज्वलो भवति।

तत्र यतो रविबिम्बाच्चन्द्रबिम्बमल्पमस्त्यतो दिनकरकिरणसंयोगाच्चन्द्रविम्बस्यार्धाधिकभाग उज्ज्वलोऽ-र्धाल्पश्चानुज्ज्वलो भवतीत्युक्तं कमलाकरेण।

तत्र रविचन्द्रयोः स्वस्वगोलस्थबिम्बयोः परितः कृताभिः स्पर्शरेखाभिः स्पृष्टचन्द्रबिम्बप्रदेशस्य प्रतिभाबोधकशक्त्या सिद्धवृत्तत्वस्य वास्तवशुक्लवृत्तमिति नाम। रविचन्द्रबिम्बकेन्द्रबद्धसूत्रं तु बिम्बान्तरसूत्र-संज्ञकम्, तच्छिन्नचन्द्रबिम्बपृष्ठप्रदेश एव वास्तवशुक्लवृत्तस्य पृष्ठकेन्द्रं भवति तत्केन्द्रादेव चन्द्रबिम्बचतुर्थांशेन यद्वृत्तं तदवास्तवशुक्लवृत्तम्, तत खण्डितमर्धबिम्बं शुक्लं तथाऽर्धबिम्बमशुक्लं भवति।

स्यान्तुङ्गशृङ्गं वलनांशमत्र'' इति लक्षणेन च सदैव सौम्यशृङ्गोन्नतिरेव। म.म. पण्डितबापूदेवशास्त्रिणा तु वास्तवदृश्यवृत्तभूतले वास्तवं शुक्लवृत्तस्य लाम्बिकपरिणमनेन प्रतिभाया दीर्घवृत्तत्वं प्रतिपादितम्, ततः सिताङ्गुलसाधनं प्राचीनवत् कृतम्, तदपेक्षया म.म. पण्डित श्रीसुधाकरद्विवेदिनामेव मतं चारुतरं सर्वथा दर्शनार्हं च विद्यते। शृङ्गस्योन्नत्यवनतिवशेन पदार्थस्य समर्धमहर्धविचारो लोकस्यापि वृद्धिहानी सूचिते भवतोऽत एतस्य विषयस्य प्रयोजनं संहितायां विशेषतया प्रतिपादितम्।

अर्थात्तत्र सर्वदा स्वस्वस्वस्तिकात् सितवृत्तं दक्षिणदिग्गतमेव भवति, सितवृत्तोपरि चन्द्रकेन्द्राल्लम्बवृत्ते शृङ्गाग्रे च तिष्ठतः तदा—

विधुदृग्वलयाद्यद्दिक् सिताख्यवलयं भवेत्।
ज्ञेया दिग्वलनस्यापि सैव दिग् धीमता सदा॥

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

TS & FA-21

ज्योतिषशास्त्र में वर्णित रोगसम्बन्धी योगों की परिचर्चा

डॉ० नरेश कुमार शर्मा, जानीपुर

मानव जीवन-दर्शन के अध्ययन से सहज ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि विज्ञान एवं कम्प्यूटर के युग में भी ज्योतिषशास्त्र की महत्ता और भी महनीय रूप धारण करती जा रही है। जिसका साक्षात् उदाहरण मानव द्वारा धारण किये गये रत्नों एवं ज्योतिष पण्डितों द्वारा बताई गई पूजा-अर्चना एवं शुभ मुहूर्त में किसी नवीन कार्य की शुरूआत करने को माना जा सकता है। जातक कैसा होगा, उसका स्वास्थ्य कैसा होगा, उसके गुण-दोष क्या होंगे। इन सभी तथ्यों का अंकन जातक की जन्मकुण्डली में अभ्यर्जित विभिन्न योगों की मीमांसा के अनन्तर ही किया जा सकता है। वैसे तो ज्योतिषशास्त्र में विविध योगों एवं राजयोगों की परिचर्चा मिलती है। लेकिन रोग के क्षेत्र को निर्देशित करने वाले जातक की कुण्डली में वर्णित योगों के आधार पर जातक के स्वास्थ्य-सम्बन्धी मार्ग को प्रशस्त किया जा सकता है। प्राचीन भारतीय ज्योतिष नक्षत्र-पद्धति पर ही आधारित था। प्राचीन काल में भारत सभ्यता और संस्कृति के क्षेत्र में अत्यन्त समृद्ध एवं विकसित देश था। प्राचीन ऋषियों ने अपने दिव्यज्ञान और योगजन्य शक्ति से ग्रहों और नक्षत्रों के सम्बन्ध में बहुत कुछ जान लिया था। वे अपने दिव्य चक्षुओं से ग्रह और नक्षत्रों से राशि, नक्षत्र, तारा-समूह, सूर्य, चन्द्र, मंगल आदि ग्रहों की गतिस्थिति और संचार आदि को देखकर योगादि के बल से अपने शरीरगत चेष्टाओं से तुलना कर मनुष्य जीवन के बाह्य क्रिया-कलापों तथा आन्तरिक मनःप्रवृत्तियों, गुणस्वभावों तथा उनके द्वारा होने वाले शुभाशुभ फलों का निरूपण करते रहे। ज्योतिष का अमोघ ज्ञान उन्हें वैदिक काल में ही था; परन्तु उसकी अभिव्यक्ति विभिन्न शाखाओं और साहित्य के रूप में क्रमशः क्षण-क्षण कालान्तर में हुई। सहस्रों वर्ष पूर्व जब सामान्य मनुष्य ने अत्याधुनिक वैज्ञानिक यन्त्रों की कल्पना भी नहीं की थी, तभी दिव्य दृष्टि प्राप्त हमारे ऋषियों ने **'या ब्रह्माण्डे सा पिण्डे'** के सार्वभौतिक सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए ब्रह्माण्ड और पिण्ड में, नर-नारायण में तथा पुरुष और प्रकृति के साथ तादात्म्य होने का महासूत्र संसार को दिया। इन्हीं महासूत्रों के द्वारा हमारे पूर्व ऋषियों ने अपने दिव्यज्ञान-चक्षुओं के द्वारा समस्त ग्रह-नक्षत्रों की रश्मियों का प्रणियों पर पड़ने वाले प्रभावों का सूक्ष्म निरीक्षण किया। ज्योतिषशास्त्र में 27 नक्षत्रों, द्वादश राशियों, नव ग्रहों आदि के द्वारा अनिष्ट रोगों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी प्राप्त की जा रही है। कालपुरुष के विभिन्न अंगों को नियन्त्रित और निर्देशित करने वाली राशियों, नक्षत्रों, ग्रहों आदि की स्थितियों के आधार पर हम किसी निष्कर्ष पर पहुँचते है। किस जातक की जन्मपत्री में स्थित राशि, नक्षत्र, ग्रह आदि उसके किस अंग का प्रतिनिधित्व करते हैं।

जिस ग्रह, नक्षत्र आदि का अशुभ प्रभाव होता है, उससे सम्बन्धित शरीराङ्ग पर रोग का प्रभाव रह सकता है। इस सम्बन्ध में चन्द्रमा के अंशादि एवं जन्म-नक्षत्र के आधार पर निकाली गई विशोंत्तरी, योगिनी आदि दशा-अन्तर्दशा तथा गोचर-ग्रहों की वर्तमानकालिक ग्रहस्थिति का अध्ययन महत्त्वपूर्ण रहता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रह-नक्षत्र मानवीय सुख-दुःख, लाभ-हानि, उन्नति-अवनति, मान-अपमान, रोग-कष्ट, सम्पत्ति-विपत्ति आदि के कारण नहीं होते, बल्कि सूचक होते हैं।

❖

TS & FA-22

विश्ववल्लभ में विज्ञान

डॉ. हेमलता बोलिया, उदयपुर

विश्ववल्लभ एक वैज्ञानिक ग्रन्थ है। इसके प्रणेता पं॰ चक्रपाणि मिश्र हैं, जो महाराणा प्रताप (16वीं शती) के दरबारी पण्डित थे और उनकी प्रेरणा से ही उन्होंने इसका प्रणयन किया था। यह एक श्लोकबद्ध रचना है, जिसमें 9 उल्लास हैं और कुल 334 श्लोक हैं। आकार की दृष्टि से लघु होने पर भी पं॰ चक्रपाणि मिश्र ने इसमें जिस कुशलता से भूगर्भीय जलविज्ञान, वास्तुशास्त्र और वनस्पति विज्ञान का निरूपण किया है, वह उनकी प्रतिभा का चूडान्त-निदर्शन है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि वे न केवल संस्कृत भाषा के ही प्रकाण्ड पण्डित थे, अपितु एक महान् वैज्ञानिक थें, जिन्हें विज्ञान की विविध शाखाओं का अच्छा ज्ञान था। विशेषकर–भूगर्भीय जलज्ञान के लक्षण (चिह्न), कितनी दूरी पर जल प्राप्ति होगी, उसकी मात्रा-वर्ण-स्वाद, जल-शुद्धि के उपाय, जल संरक्षण के निमित्त कूप-द्रोणी-जलाशय-का निर्माण एवं उनकी आकृति-प्रकृति का विधान, शिला-भेदन-विधि, भूमिपरीक्षा-विधि, वृक्षारोपण योग्य क्षेत्र, काल, रोपण योग्य वृक्ष, निषिद्ध वृक्ष, गृह-वाटिका में लगाने योग्य वृक्ष, वृक्ष रोपण-सेंचन-रक्षा-पोषण विधि, तरुरक्षा-मन्त्र, द्रुमचिकित्सा, द्रुमविचित्रीकरण आदि। इनका वैशिष्ट्य यह है कि अन्य शास्त्र में ये पृथक्-पृथक् स्थान पर निरूपित है, वही पं॰ चक्रपाणि मिश्र ने इन्हें एकत्र क्रमबद्ध व्यवस्थित रूप से विश्ववल्लभ में किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने इसका प्रणयन भले ही तात्कालिक जलप्राप्ति, जलसंरक्षण, अधिक उत्पादन कैसे पर्वतीय क्षेत्र में प्राप्त किया जाय? आदि समस्याओं के समाधान के रूप में किया है, परन्तु आज जब वैज्ञानिकों के लिए भी पेयजल संकट की समस्या समाधान एक चुनौती बन गयी है, वहीं इसका स्वतः महत्त्व सिद्ध है।

❖

TS & FA-23

नारायण विलास में मधुमेह

डॉ. शक्तिकुमार शर्मा 'शकुन्त', उदयपुर

नारायण विलास संवत् 1615 में पण्डित केशव जोशी द्वारा रचित तथा अपने आश्रयदाता गङ्गातीर पर स्थित दलमय पुठी (दलमय, जिला-रायबरेली) के शासक नारायण राज के नाम से ख्यापित आयुर्वेद का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ किसी अंगविशेष पर आश्रित न होकर सम्पूर्ण अष्टाङ्ग (General

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Medicine), शल्य (Surgery), शालाक्य (E.N.T. Opthomology and Dentartry), भूतविद्या (Perantology), कौमारभृत्य (Ynocology and pediatrics), वाजीकरण (Yerantology) एवं रसायन का सम्पूर्ण निरूपण किया गया है। इसके अतिरिक्त रोगों की तीन प्रकार से निदान-चिकित्सा का वर्णन है।

ग्रन्थ में चार भाग हैं, जिन्हें विलास कहा गया है। प्रथम भाग में चिकित्सा के सूत्र, द्वितीय विलास में छः अंगों के निदान-चिकित्सा, तृतीय विलास में धातु आदि के शोधन, मरण आदि तथा भाव-भाव विवेचन तथा चतुर्थ विलास में वैद्य के लिए आवश्यक संग्रहबीज पदार्थों की सूची दी गई है।

उक्त ग्रन्थ में आजकल बहुप्रचलित **'मधुमेह'** नामक रोग का वर्णन, द्वितीय विलास के प्रमेहाधिकार में विवेचित है। इस रोग की उत्पत्ति के ज्योतिषिक, कर्मविपाकज एवं नैदानिक-कारणों का विवेचन करते हुए तीन ही दृष्टियों से इसकी चिकित्सा का विधान दिया गया है, जिनमें मन्त्रजप, दान एवं चिकित्सार्थ शोधन, चूर्ण, क्वाथ और रस चिकित्सा का वर्णन किया गया है, जो आज के प्रसङ्ग में प्रतिपादित विज्ञानसमस्त-सिद्धान्तों से न केवल मेल खाती है, अपितु उसके अनुरूप प्रयोगों से उसकी सफलता भी प्रमाणित है।

स्वयं प्रकृत पंक्तियों के लेखक ने इस ग्रन्थ में वर्णित औषधियों से 'मधुमेह' में विद्यमान शर्करा के स्तर को 600 से गिराकर 100 तक लाने में सफल रहा है। इतना ही नहीं, औषधि के प्रयोग को छोड़कर भी एक वर्ष तक उस स्तर को बनाये रखा है।

❖

TS & FA-24

धातुविज्ञान (Metallurgy) में महर्षि भरद्वाज का अवदान

डॉ. (श्रीमती) शैलजा पाण्डेय, इलाहाबाद

वैदिक मन्त्रद्रष्टा ऋषि भरद्वाज मात्र आध्यत्मिक एवं दैवीज्ञान के ज्ञाता नहीं थे, अपितु उन्हें लौकिक पदार्थ विद्या (आधुनिक विज्ञान) का भी तलस्पर्शी ज्ञान था। महर्षि भरद्वाज प्राचीन भारतीय वैज्ञानिकों में अग्रगण्य थे एवं विमान शास्त्र में इनकी अव्याहत गति थी। विमान-निर्माण के प्रसङ्ग में अङ्गभूत शास्त्र धातुविज्ञान (Metallurgy) पर भी भरद्वाज ने अपने ग्रन्थ **'यन्त्रसर्वस्व'** के वैमानिक प्रकरण में प्रकाश डाला है। विमान निर्माण के लिए तीन प्रधान धातुएँ **सौमिक, सौण्डलिक एवं मौर्त्विक** हैं, जिनके आपसी संयोग से 16 मिश्रित धातुएँ निर्मित होती हैं एवं जिनके पृथक्-पृथक् गुण-धर्म वर्णित हैं। ये धातुएँ भूमि के गर्भ में खनिज रेखाओं में बीजरूप में सन्निहित होती हैं। भूमि के आकर्षण शक्ति के कारण इनमें विभिन्न तत्व आकर सम्मिलित होते हैं और ये लौहबीज विकसित होकर लौह का रूप धारण करते हैं। भूमि से निकालने के पश्चात् इन धातुओं का अनेक विधियों द्वारा शोधन किया जाता है। संस्कार करने के पश्चात् इन धातुओं को विमान निर्माण के लिए अनुकूल ऊष्मारोधी बनाया जाता है। इसके लिए उन्हें विशिष्ट कुण्डों में रखकर आग पर गलाया एवं मिलाया जाता है एवं विमान के लिए अपेक्षित गुणों से युक्त धातु तैयार होती है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार महर्षि भरद्वाज ने धातु-विज्ञान के उन्नत स्वरूप को अपने ग्रन्थ में प्रदर्शित किया है।

❖

TS & FA-25

वैष्णवागम में देवालय कल्पन तथा निर्माण

डॉ० शीतला प्रसाद पाण्डेय, वाराणसी

आलयार्चाविषय-प्रतिपादनपरक वैष्णवागम साहित्य में देवालय निर्माण, प्रतिमा-पूजन आदि विषयों को अङ्गभूत प्रतिपाद्य विषय के रूप में प्रायः सर्वत्र वैष्णवागम-ग्रन्थों में स्वीकारा गया है। पाञ्चरात्र तथा वैखानसागम साहित्य के अनेक ग्रन्थों में विस्तृत अथवा संक्षेपरूप में देवालय कल्पन विषय का प्रतिपादन किया गया है। इस सन्दर्भ में वैष्णव देवालय से सम्बद्ध विषय प्रायः उसी प्रकार वर्णित हैं, जिस प्रकार शिल्पशास्त्रीय अथवा वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में उक्त हैं।

इस शोध-पत्र में वास्तु-प्रदेश, उसके विविध प्रकार, भू-परीक्षण, भू-परिशोधन, वास्तुपद तथा वास्तुदेवता, ग्रामादि-निरूपण, तत्तद् देवालय, बालालय-कल्पनादि, प्रथमेष्टकान्यास, गर्भन्यास, आलय के भेद, आलय स्वरूप, शिखाघट, विमानतलकल्पनीय देवतादि, वर्णलेप, विमान देवता, विविधशालादि कल्पन, मण्डपादिकल्पन स्थान, द्वार देवता आदि का प्रतिपादन किया जायेगा। आवश्यकतानुसार विषय की स्पष्टता के लिए तुलनात्मक रूप से अन्य वास्तुशास्त्रीय तथा समान प्राकृतिक कुछ अन्य ग्रन्थों से भी सहायता ली जा सकती है।

यहाँ मुख्य रूप से पाञ्चरात्रागम-ग्रन्थों में वर्णित वास्तुशास्त्रीय विषय-वर्णन के परिप्रेक्ष्य में पाञ्चरात्रिक वैष्णव देवालय कल्पन विषय के विवेचन का एक विनम्र प्रयास होगा।

❖

TS & FA-26

वृत्त की संरचना पर आर्यभट्ट तथा यूक्लिड की तुलनीय संकल्पनाएँ

डॉ० सुद्युम्न आचार्य, बलिया

गणित तथा खगोलविज्ञान के क्षेत्र में आर्यभट्ट ऐसे प्रकाश-स्तम्भ की भाँति रहे हैं, जिनके आलोक में विश्व के विद्वानों ने शोधकार्य किया है। आर्यभट्ट ने वृत्त के सन्दर्भ में वैदिक युग से प्रचलित विष्कम्भ, परिणाह जैसे पारिभाषित शब्दों का प्रयोग किया है। साथ ही तत्कालीन लोकप्रियता के अनुरूप धनुष के विभिन्न अंङ्गों से सम्बंधित किया है। इस प्रकार वृत्त की परिधि-खण्ड को 'धनुष' (asc) तथा वृत्त के किसी बिन्दु से उसके ही किसी अन्य बिन्दु का स्पर्श करने वाली रेखा को धनुष की डोरी के समान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने से 'ज्या या जीवः' (Chord) कहा। साथ ही जीवा के मध्य-बिन्दु को प्रतिच्छेदित करते हुए वृत्त के किसी बिन्दु को स्पर्श करने वाली रेखा के बाण के समान होने से उसे शर, इषु जैसे पर्याय शब्दों से सम्बोधित किया गया।

आर्यभट्ट ने वृत्त की परिधि, उसके क्षेत्रफल आदि के विषय में सर्वप्रथम सूक्ष्म तथा सही नियम सुस्थापित किये हैं। साथ ही विदेश में यूक्लिड द्वारा स्थापित नियम भी पर्याप्त प्रचलित रहे हैं। इन दोनों की अनेक विषयों पर तुलना से अनेक रोचक निष्कर्ष प्राप्त होते हैं। इससे यह परिज्ञात होता है कि भारत में उनके समकक्ष तथा उससे भी अधिक प्रभावी स्थापनाएँ निरन्तर की जाती रही हैं।

इस तरह प्रकट है कि आर्यभट्ट के अनेक नियम यूक्लिड से तुलनीयता रखते हैं, जिसका साङ्गोपाङ्ग विवेचन प्रस्तुत किया जायेगा।

❖

TS & FA-27

भारतीय ज्योतिष और मानव-जीवन

श्री सुरेश कुमार शर्मा, जम्मू

मानव एक स्वाभाविक अन्वेषक प्राणी है। वह सृष्टि की हर एक चीज के प्रति अपने जीवन का तादात्म्य सम्बन्ध मिलाना चाहता है। उसकी इसी प्रवृत्ति ने ज्योतिष के साथ जीवन का सम्बन्ध स्थापित करने के लिए प्रेरित किया है। फलस्वरूप वह अपने जीवन के भीतर ज्योतिष तत्त्वों का प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहता है। इसी कारण वह शास्त्रीय एवं व्यावहारिक ज्ञान द्वारा प्राप्त अनुभव को ज्योतिष की कसौटी पर कसकर देखना चाहता है कि ज्योतिष का जीवन में क्या स्थान है।

भारतीय दर्शन के अनुसार आत्मा अमर है। इसका कभी नाश नहीं होता, केवल यह कर्मों के अनादि प्रवाह के कारण पर्यायों को बदला करता है। अध्यात्मशास्त्र का कथन है कि दृश्य-सृष्टि केवल नामरूप या कर्म ही नहीं है, किन्तु इस नामरूपात्मक आवरण के लिए आधारभूत एक अरूपी, स्वतन्त्र और अविनाशी आत्मतत्त्व है तथा प्राणीमात्र के शरीर में रहने वाला यह तत्त्व नित्य एवं चैतन्य है, केवल कर्मबन्ध के कारण वह परतन्त्र है, विनाशक दिखलाई पड़ता है। वैदिक दर्शनों में कर्म के संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण ये तीन भेद माने गये हैं। किसी के द्वारा वर्तमान क्षण तक किया गया जो कर्म है, चाहे वह इस जन्म में किया गया हो या पूर्व जन्म में, वह सब संचित कहलाता है। अनेक जन्म-जन्मान्तरों के संचित कर्मों को एक साथ भोगना सम्भव नहीं है; क्योंकि इनसे मिलने वाले परिणामस्वरूप फल परस्पर-विरोधी होते हैं, अतः इन्हें एक के बाद एक कर भोगना पड़ता है। संचित में से जितने कर्मों के फल को पहले भोगना शुरु होता है, उतने को ही प्रारब्ध कहते हैं। तात्पर्य यह है कि संचित अर्थात् समस्त जन्म-जन्मान्तर के कर्मों के संग्रह में से एक छोटे भेद को प्रारब्ध कहते हैं, परन्तु समस्त संचित का नाम प्रारब्ध नहीं, बल्कि जितने भाग का भोगना आरम्भ हो गया, प्रारब्ध है। जो कर्म अभी हो रहा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था, जो अभी किया जा रहा है, वह क्रियमाण है। इस प्रकार इन तीन तरह के कर्मों के कारण आत्मा अनेक जन्मों-पर्यायों को धारण कर संस्कार अर्जन करता है।

मानव जीवन के बाह्य व्यक्तित्व के तीन रूप और आन्तरिक व्यक्तित्व के तीन रूप तथा एक अन्तःकरण है, इन सात के प्रतीक सौर जगत् में रहने वाले 7 ग्रह माने गये हैं। यह 7 रूप सब प्राणियों के एक से नहीं होते हैं; क्योंकि जन्मजन्मान्तरों के संचित, प्रारब्ध-कर्म विभिन्न प्रकार के हैं, अतः प्रत्येक रूप ग्रह अपने-अपने प्रति रूप्य के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार की बातें प्रकट करते हैं।

ज्योतिषशास्त्र व्यक्त सौर-जगत् के ग्रहों की गति, स्थिति आदि के अनुसार अव्यक्त शरीर स्थित सौर-जगत् के ग्रहों की गति, स्थिति आदि को प्रकट करता है। इस शास्त्र द्वारा निरूपित फलों का मानव जीवन से सम्बन्ध है।

❖

TS & FA-28

मनुस्मृति एवं पर्यावरण

डॉ. (श्रीमती) वीणा शर्मा, पटना

प्राचीन भारत की पर्यावरण चेतना का एक सुन्दर अभिलेख मनुस्मृति में मिलता है। वहाँ एक ओर वनस्पतियों की रक्षा के प्रबन्ध हैं तो दूसरी ओर जीव-जन्तुओं को व्यापक विनाश से बचाने की व्यवस्था की गयी है। इस प्रसंग में वनस्पतियों तथा प्राणियों को हानि पहुँचाने वाले मानवों के लिए दण्डस्वरूप न केवल प्रायश्चित की अपितु अर्थदण्ड और शरीरदण्ड की भी व्यवस्था है। इस निबन्ध में मनुस्मृति के ऐसे सम्बद्ध स्थलों की पहचान करके आधुनिक पर्यावरण-रक्षण में इसके योगदान का निरूपण है।

❖

TS & FA-29

अथर्ववेद में औषधि-निरूपण एवं रोग-चिकित्सा

श्री मुरारि वि. भट्ट, भावनगर, गुजरात

आयुर्वेदिक चिकित्सा का मूल स्रोत वेद है। धन्वन्तरि ने वेद से इसकी उत्पत्ति बताया है। सुश्रुत ने प्रारम्भ में 'वेद' शब्द का प्रयोग किया है।

'तथा च सुश्रुतारम्भे, अथातो वेदोत्पत्तिमध्यायं व्याख्यास्यामः'-कहकर शिष्य-परम्परा का निर्देश किया है।

ब्रह्मा प्रोवाच, ततः प्रजापति अधिजगे तस्मादश्विनौ अश्विनिभ्यामिन्युः इन्द्रादहम्। मयात्विह प्रददेमर्दिभ्यः प्रजाहितहनो, अनेन ज्ञायते यदध्यायायौ पदेशब्दोऽयमायुर्वदमेवाह।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि चरक आयुर्वेद को शाश्वत मानते हैं—सोऽयमायुर्वेदशाश्वतो विधिश्च तेऽनादित्वात् स्वभावसंसिद्धिलक्षणत्वात् मापस्वभावनित्यत्त्वाच्च (य.सू.अ. 20)।

आयु का ज्ञान जिन शिल्प से प्राप्त किया जाता है, वह आयुर्वेद है—'आयुरस्मिन् विद्यते अनेन वा आयुर्विदन्तीति आयुर्वेदः'।

चारों वेदों के चार उपवेद हैं—'ऋग्वेदस्यायुर्वेद उपवेदः, यजुर्वेदस्य धनुर्वेद उपवेदः, सामवेदस्य गान्धर्ववेदः, अथर्ववेदस्यर्धशास्त्रञ्चेत्याह भगवान व्यासः'। किन्तु चरक आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपवेद मानते हैं। 'ऋक्सामयजुरथर्ववेदानामायुर्वेदस्याथर्ववेदे भवितः'।

इस प्रकार अथर्ववेद में निरूपित औषधियों का विवरण शोधपत्र का प्रतिपाद्य है।

❖

TS & FA-30

कालिदास के काव्यों में चित्रकला की अभिव्यक्ति

डॉ. विनोद कुमार गुप्त, टिहरी

सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् के उपासक महाकवि कालिदास ने ललित कला के माध्यम से अपने काव्य को गति प्रदान की है। वस्तुतः महाकवि ने अपने काव्य में ललित कलाओं के द्वारा सौन्दर्यमयी स्वानुभूति की अभिव्यक्ति में जितनी अधिक स्पष्टता एवं विविधता के साथ चित्रकला का आश्रय लिया है, उतना और किसी का नहीं। प्रकृत शोध-पत्र में महाकवि कालिदास की सर्वप्रथम चित्रकला की भावभूमि के सन्दर्भ में एतत्सम्बन्धी मान्यताओं, आस्थाओं एवं दोषों की चर्चा करते हुए कहा गया है कि कलाकार को पहले आलेख्य के प्रति समाधिस्थ होना चाहिए। जब वह उसमें समाधिस्थ हो जायेगा अर्थात् आलेख का साङ्गोपाङ्ग दर्शन कर लेने पर ही वह उसके अङ्कन में सफल होगा, अन्यथा शिथिलसमाधि हो जायेगा। अत एव उत्कृष्ट कला की अभिव्यक्ति के लिए पूर्णमनोयोग का होना नितान्त आवश्यक है। कालिदास की दृष्टि में कला की सृष्टि सामान्य भावभूमि पर नहीं हो सकती।

महाकवि कालिदास भारतीय संस्कृति के प्रबल समर्थक हैं, यह बात उन्होंने चित्रों के माध्यम से भी बताने का प्रयास किया है। अभिज्ञानशाकुन्तलम्, विक्रमोर्वशीयम्, मालविकाग्निमित्रम्, मेघदूतम्, रघुवंशम् तथा कुमारसम्भवम् से यथासम्भव उदाहरण लेकर कालिदास की चित्रकला की अभिव्यक्ति को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। अन्त में महाकवि की चित्रकला की अभिव्यक्ति में भारतीय कला के आदर्श सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् की भावना का सर्वथा निर्वाह हुआ है एवं वह मानव जीवन के अङ्ग के रूप में दिखायी देती है, यह कहते हुए शोध-पत्र का समापन किया गया है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

TS & FA-31

संस्कृत वाङ्मय में सङ्गीतशास्त्र की परम्परा और विकास

डॉ. राजेन्द्र त्रिपाठी 'रसराज', इलाहाबाद

संस्कृत वाङ्मय में संगीत शास्त्र की परम्परा और विकास वस्तुतः वैदिक काल से ही प्रमाणित होती है। सामवेद संगीतशास्त्र का मूल उत्स माना गया है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद में संगीत के तीनों अंगों गायन, वादन एवं नर्तन का उल्लेख अनेक अवसरों पर उपलब्ध होता है। इसके बाद लौकिक ग्रन्थों में रामायण, महाभारत, पुराण, महाकाव्य, नाटक आदि अन्यान्य ग्रन्थों में संगीत का सुविकसित स्वरूप दृष्टिगत होता है।

भारतीय संगीत का शास्त्रीय स्वरूप सर्वप्रथम आचार्य भरतकृत नाट्यशास्त्र में उपलब्ध होता है। महाभारत में कहा गया है कि महामुनि नारद गन्धर्व-विद्या के प्रथम प्रकाण्ड पण्डित हुए जिन्होंने गन्धर्व-विद्या का ज्ञान स्वयं ब्रह्मा से प्राप्त किया था। नारद के नाम पर संगीत के अनेक ग्रन्थों का परिचय प्राप्त होता है। इनमें नारदीय शिक्षा, चत्वारिंशद् रागनिरूपण और संगीत मकरन्द का विशेष महत्त्व है। ये ग्रन्थ स्वयं महामुनि नारद के द्वारा प्रणीत थे। इस विषय में भी मतभेद है। कुछ विद्वानों का मत है कि ये ग्रन्थ सम्भवतः प्राचीन काल में नारद द्वारा प्रणीत संगीत विषयक ग्रन्थों के संस्करण मात्र हैं।

संस्कृत साहित्य में संगीत विषय को लेकर स्वतन्त्र ग्रन्थों की भी रचनाएँ की गयीं जो संगीतशास्त्र के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान रखती है। संगीत विषयक संस्कृत ग्रन्थों में कुछ प्रमुख ग्रन्थ उल्लेखनीय है—नाट्यशास्त्र, नारदीय शिक्षा, चत्वारिंशद् रागनिरूपण, सङ्गीतमकरन्द, बृहद्देशीय, सङ्गीत समयसार, रागविबोधा सरस्वती हृदयालङ्कार, सङ्गीत रत्नाकर, सङ्गीत समरसार, वीणा प्रपाठक, स्वरकलानिधि, सद्रागचन्द्रोदय, रागमाला, रागमञ्जरी, नर्तननिर्णय, सङ्गीतदर्पण, सङ्गीतपरिजात, हृदयकौतुक, रागतरंगिणी, अनूपविलास, अनूपांकुश अनूप सङ्गीत, सङ्गीत रत्नाकर, चतुर्दण्ड प्रकाशिका, वाद्यरत्नकोश, रसकौमुदी, शब्दकल्पद्रुम, रागसागर, रागकल्पद्रुम, गीतसूत्रसार, अभिनवरागमञ्जरी, लक्ष्यगीत, स्वरमालिका, हिन्दुस्तानी संगीतपद्धति इत्यादि। इन ग्रन्थों में संगीत के महत्त्वपूर्ण तत्त्वों का उल्लेख उपलब्ध होता है।

❖

TS & FA-32

शालभञ्जिका : एक अनुपम कला प्रतीक

डॉ. नीरज कुमार पाण्डेय, वाराणसी

भारतीय कला यहाँ की धार्मिक, दार्शनिक एवं सामाजिक संस्कृति का समाहित रूप है। जीवन के गम्भीर एवं गूढ़ तात्त्विक विवेचनों की प्रतीकात्मक व्याख्या हमें भारतीय कला में सर्वत्र दिखाई देती है। ऐसी ही तात्त्विक विवेचना से परिपूर्ण भारतीय कला का एक अनुपम प्रतीक है—शालभञ्जिका।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रारम्भिक अवस्था में शालभञ्जिका शब्द 'उद्यान क्रीड़ा' के नाम से प्रचलित था, जो पूर्वी भारत में स्त्रियों द्वारा खेला जाता था। जातक ग्रन्थों में उत्तर पूर्वी भारत की स्त्रियों द्वारा उद्यान क्रीड़ा नामक खेल खेलने की प्रथा का उल्लेख है। इससे इस खेल की लोकप्रियता का पता चलता है। कालान्तर में क्रीड़ा या पर्व के स्थान पर शालभञ्जिका शब्द ललित कलामुद्रा का वाचक बन गया जिसमें तरुणी शालवृक्ष के नीचे त्रिभंग मुद्रा में खड़ी उसकी शाखा को नीचे की ओर झुकाती प्रदर्शित की गई है। मौर्य-शुंग काल तक यह कलामुद्रा पूर्ण रूप से विकसित हो चुकी थी। कला के अतिरिक्त शालभञ्जिका प्रतीक का वर्णन साहित्यिक सन्दर्भों से भी प्राप्त होता है।

शालभञ्जिका कलामुद्रा के दो स्पष्ट रूप हमें देखने को मिलते हैं। पहला रूप बुद्ध जन्म से सम्बन्धित है, फलतः इसे मांगलिक प्रतीक के रूप में जाना जाता है। इसका दूसरा स्वरूप लौकिक है जिसका अत्यधिक अंकन हुआ है। लौकिक शालभञ्जिकाओं को नारी सौन्दर्य का प्रतिमान भी माना गया है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारतीय कला की ये शालभञ्जिकाएँ हमारे सुखमय जीवन के विभिन्न पक्षों को उजागर करती हैं।

❖

TS & FA-33

नारदीय शिक्षा में स्वर विवेचन

सुश्री भारती शर्मा, कुरुक्षेत्र

सामवेदीय शिक्षाग्रन्थों में नारदीय शिक्षा का विशिष्ट स्थान है। इस शिक्षाग्रन्थ में संगीत शास्त्रीय सामग्री संकलित की गई है। 'नारदीय शिक्षा' नारदसम्मत सिद्धान्तों को लेकर पद्य शैली में लिखी गई महत्त्वपूर्ण रचना है। शिक्षाकार ने ग्रन्थ का प्रारम्भ स्वर विवेचन से किया है। नारद का मत है कि स्वरशास्त्र के नियमानुसार उसमें स्वर का कभी ऊँचा पाठ किया जाता है, कभी नीचा और कभी विशेष स्वर का प्रयोग किया जाता है। इससे स्पष्ट है कि विभिन्न परिस्थितियों में स्वर में अन्यत्व (भिन्नता अथवा भेद) कहा जाता है। इस स्वरान्यत्व स्वर भेद का परिचय कराना ही नारदीय शिक्षा का परम प्रयोजन है।

नारदीय शिक्षा में स्वर-मण्डल के अन्तर्गत सात स्वरों, तीन ग्रामों, एक्कीस मूर्च्छनाएँ और उनचास तानों का परिगणन किया गया है। उसके अतिरिक्त साम के शुद्ध उच्चारण के बहुत से नियम बतलाए हैं, जिनका सम्बन्ध साम के सस्वर पाठ से है, गान से नहीं। नारदीय शिक्षा में सामगान की प्रक्रिया बताई गई है तथा उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वरों के साथ-साथ साम के क्रुष्टादि वैदिकस्वर व षड्जादि लौकिक-स्वरों के उच्चारण स्थान, अर्थ, रंग, वर्ण और उनके अधिष्ठाता देवों के बारे में बतलाया गया है। प्रस्तुत शोधपत्र में नारदीय शिक्षा में वर्णित स्वरसामग्री का विवेचन करना ही अभीष्ट है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

TS & FA-34

मकरराशि का भौम (मंगल) कुण्डली में कैसे शुभ-फल देता है

भौमग्रह शुभयोग में होता है तो अच्छा फल देता है। स्वतन्त्र, अकेला हो तो भी जातक अपनी महत्त्वाकांक्षा में ऐडमिनिस्ट्रेशन, साहस आदि गुणों की खातिर समाज में आगे आता है। समाजप्रियता उसको रहती है।

कुण्डली (1) में आकाशवाणी पर नौकरी करने वाले सामाजिक संस्था का कार्य करते हैं। कुण्डली (2) भी प्रकाश मिसेस शीला गृहिणी है। फिर भी मकर मंगल के कारण, हमेशा के लिए आस्ट्रेलिया गयी है। कुण्डली (3) महिलाशिक्षण का प्रसार करने वाले के. अण्णासाहेब कर्वे की बहू के. हरावनी कर्वे मकर का मंगल होने के कारण वो समाजशास्त्र, मानववंश शास्त्रज्ञ बनी। उनके युगान्त पुस्तक को साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला।

हमारे आदरणीय प्रधानमन्त्री डॉ. मनमोहन सिंह—उनका भौम कर्क राशि में है। लेकिन मकर राशि पर उसकी होती आने के कारण वो प्रधानमंत्री बने है।

कुण्डली (4) अैकरान हिरो धर्मेन्द्रजी खासदार—उनका मकर राशि में भौम है। शिष्ट, काम के प्रति एकनिष्ठता, मिलनसार स्वभाव के कारण वो सबके चहेते है और अब खासदार भी हुए है। कुण्डली (6) में चियनीन की शोकोतिका है। वो हँसमुख बुद्धिमान युवा था। गरीब विद्यार्थियों को पढ़ाता था। लेकिन अपघात के कारण उम्र 20 में ही मर गया।

❖

TS & FA-35

मानव जीवन में ग्रहकृत बाधाएँ एवं प्रशमनार्थ उपचार

सुश्री प्रिया शर्मा

मनुष्य स्वभाव से ही अन्वेषक प्राणी है। वह सृष्टि की प्रत्येक वस्तु के साथ अपने जीवन का तादात्मय सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है। उसकी इसी प्रवृत्ति ने ग्रहों के साथ मानव जीवन का सम्बन्ध स्थापित करने के लिए बाध्य किया है। फलतः मनुष्य यह जानना चाहता है कि ग्रहों का जीवन में क्या स्थान है? ग्रहों का मानव जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है? और क्या ग्रह मानव जीवन की बाधाओं और उन्नति के लिए उत्तरदायी हैं? ज्योतिषशास्त्रोक्त ग्रंथों बृहत्संहिता, मुहूर्तचिन्तामणि, रत्नविज्ञान आदि के आधार पर "मानव जीवन में ग्रहकृत बाधाएँ एवं प्रशमनार्थ उपचार का विचार प्रस्तुत पत्र में करेंगे।

आचार्य वराहमिहिर के सिद्धान्तों को मनन करने से ज्ञात होगा कि शरीरचक्र ही ग्रह कक्षावृत्त है। इस कक्षावृत्त के द्वादश भाग मस्तक, मुख, वक्षस्थल, हृदय, उदर, कटि, वस्ति, लिंग, जंघा,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घुटना, पिण्डली और पैर क्रमशः मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन संज्ञक है। इन 12 राशियों में भ्रमण करने वाले ग्रहों में आत्मा सूर्य, मन चन्द्रमा, धैर्य मंगल, वाणी बुध, विवेक गुरु, वीर्य शुक्र और संवेदन शनि है। तात्पर्य यह है कि वराहमिहिराचार्य ने 7 ग्रह और 12 राशियों की स्थिति देहधारी प्राणी के भीतर ही बतलायी है। ज्योतिषशास्त्र व्यक्त सौर जगत के ग्रहों की गति, स्थिति आदि के अनुसार अव्यक्त शरीर स्थित सौर जगत के ग्रहों की गति, स्थिति आदि को प्रकट करता है। इसलिए इस शास्त्र द्वारा निरूपित फलों का मानव जीवन से सम्बन्ध है।

मानव जीवन नियमित सरल रेखा की गति से नहीं चलता; बल्कि सुख और दुःख के भाव ही मानव को गतिशील बनाते हैं। इन भावों की उत्पत्ति बाह्य और आन्तरिक जगत की संवेदनाओं से होती है। इसलिए मानव जीवन अनेक समस्याओं एवं रहस्यों का पिटारा है। ज्योतिष शास्त्र इन रहस्यों को व्यक्त करने के साथ-साथ सन्देह के पिटारे का प्रत्यक्षीकरण कर देता है।

❖

TS & FA-36

दिग्काल विमर्श

डॉ. आशुतोष चतुर्वेदी

भारतीय मनीषा में 'काल' समय और मृत्यु दोनों का प्रतीक रूप है। यद्यपि यह अमूर्त है, फिर भी समस्त चराचर जगत् इसकी धुरी पर अवलम्बित है। सभी कुछ कालाश्रित तथा कालाधीन है। अथर्ववेदीय ब्राह्मण भाग के माण्डूक्योपनिषद् में कहा गया है—'कालात्प्रसूतिं भूतानां मन्यते कालचिन्तकाः। महाभारत में 'कालः पचतीति' के द्वारा व्यास ने काल की सटीक व्याख्या की है। श्रीमद्भागवत् में काल को अमूर्त एवं अव्यक्त परम महान् भगवान् ही माना गया है। इस प्रकार प्राच्यशास्त्र-भण्डार काल के निरूपण से भरा पड़ा है, जिसका समीक्षात्मक रूप से इस निबन्ध में विवेचन किया गया है। पुनः काल विषयक पाश्चात्य अवधारणा को आइन्स्टीन के सापेक्षतावाद के प्रकाश में व्याख्यायित किया गया है। अन्त में प्राच्य एवं पाश्चात्य दोनों ही दृष्टियों से दिक् काल की पारदर्शी समीक्षा की गयी है, जिसमें विज्ञान काल को सृष्टि की उत्पत्ति और विनाश के साथ ही निबद्ध करता है; जब कि वैदिक मतानुसार काल स्वयं में स्वतन्त्र, अनादि और अनन्त होते हुए सृष्टि का एक कारणभूत घटक लक्षित किया गया है। विज्ञान मानता है कि सृष्टि के विनाश के साथ ही काल का भी लोप हो जायेगा, जबकि वैदिक विचार से यह अमर, अजीर्ण, अविनाशी और निरन्तर है। शोध-निबन्ध का विस्तार इसी पर आधारित है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

TS & FA-37

आचार्य आपस्तम्ब की ज्यामितीय अवधारणा

डॉ. गीता त्रिपाठी, सुल्तानपुर

वैदिक ज्यामिति विद्या की एक सुदीर्घ आर्ष परम्परा है, जिसके विविध सिद्धान्तों का प्रतिपादन भी ऋषि परम्परा की देन है। मन्त्र संहिताओं एवं ब्राह्मण ग्रन्थों में संकेतित सन्दर्भों एवं विचारों को अग्रेषित करते हुए अनेक चरणों में आचार्यों ने ज्यामिति विज्ञान को विज्ञान, दिशा एवं गति प्रदान किया। आचार्य बौधायन गणित एवं ज्यामिति विद्या के ऐसे आचार्य हैं जिन्होंने प्रथमतः गणित एवं ज्यामिति विद्या सम्बन्धी सिद्धान्तों का उल्लेख किया है। बौधायन के पश्चात् उनके शिष्य आचार्य आपस्तम्ब ने जहाँ एक ओर गुरु परम्परा में प्राप्त ज्यामिति ज्ञान को सप्रयास ग्रहण किया वहीं दूसरी ओर उन्होंने इस ज्ञान को और अधिक विकसित करते हुए ऐसी अनेक मान्यताओं और सिद्धान्तों के साथ इसे समृद्ध भी किया है। प्रस्तुत शोध निबन्ध में आचार्य आपस्तम्ब की ज्यामिति विद्या विषयक अवधारणाओं की एक गवेषणात्मक समीक्षा की गयी है जिसमें बोधायन प्रमेय मान $\sqrt{2}$ मान निर्धारण आदि को अनुप्रयुक्त करते हुए अनेकविध नूतन विचारों का प्रतिपादन किया, जिनमें वेदिका आयाम, विस्तार, मान एवं समकोण त्रिभुज के भुज कोटि तथा कर्ण के परस्पर सम्बन्ध का विनिश्चयन प्रस्तुत किया। समचतुरश्र का सिद्धान्त तथा दो का मूल निश्चयन कर उसे इन्होंने सविशेष की संज्ञा दी। वेदि के अंसो, श्रोणियों और अग्निमानों की स्थापना तथा चतुरश्र को घटाने, सम चतुरश्र में परिवर्तित करने, चतुरश्र को मण्डल और मण्डल को चतुरश्र में परिवर्तित करने की ज्यामितिक संक्रियाओं का विकास आचार्य आपस्तम्ब ने किया जो इनकी अपनी निज ज्यामितिक अवधारणा की विशिष्टता का ख्यापक है। चित्तियों के निर्माण की विधि प्रमाण, आकार एवं प्रकार का निश्चयन, सप्तविध वेदि के निर्माण में प्रयुक्तव्य इष्टिकाओं के आकार, प्रकार और संख्यागत ज्यामितिक प्रक्रिया इनकी देन है। इस प्रकार आचार्य आपस्तम्ब अपने पूर्ववती आचार्यों के ज्यामितिक एवं गणितीय सिद्धान्तों के पोषक एवं अग्रेषक होते हुए परवर्ती आचार्यों के लिए अनुकरणीय ज्यामितिक सिद्धान्तों के प्रतिपादक भी हैं, जो आर्ष परम्परा के ज्यामिति विज्ञान को समृद्ध करने में अद्वितीय रहे हैं। इनकी ज्यामितिक अवधारणाओं का बिना संज्ञान प्राप्त किए वैदिक ज्यामिति का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना सम्भव नहीं है।

❖

TS & FA-38

कालिदास और पर्यावरण

श्री जी. एन. बारीआ, गुजरात

भारतीय परम्परा में भौगोलिक, खगोलीय या प्राकृतिक पर्यावरण की चिंता और चिंतन के साथ-साथ नैतिक तथा आध्यात्मिक पर्यावरण पर भी काफी ध्यान दिया गया है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आध्यात्मवादी वैदिक ऋषि पूर्णतः पर्यावरण मुक्त समाज की कामना करता है। महाकवि कालिदास भारतीय संस्कृति के अमर गायक तथा वैदिक पृष्ठभूमि की उपज हैं, कालिदास बहुत ही संवेदनशील प्रतीत होते हैं।

कालिदास की साहित्य कला का विकास प्रकृति से ही होता है। कालिदास 'कुमारसम्भवम्' तथा 'रघुवंशम्' महाकाव्य में तो स्पष्टतः मानव और प्रकृति के अविचल संबंध को अभिव्यक्त कर देते है।

"रक्षति प्रकृतिः रक्षिता"– ऐसा संकल्प हमें अपने आदर्श तथा आचरण के रूप में स्वीकार करना पड़ेगा; अन्यथा अब प्रदूषणमुक्ति का और कोई मार्ग नहीं है। वस्तुस्थिति तो यह हैं कि भारतीय चिंतन अनादिकाल से ही पृथ्वी, प्रकृति या पर्यावरण के दोहन और संरक्षण की दिशा में अग्रसर रहा है, प्रकृति का शोषण करना हमारा उद्देश्य कभी रहा नहीं। हमारी परम्परा प्रभु से हमेशा यही प्रार्थना करती आयी है कि—

काले वर्षतु पर्जन्यः पृथिवी सस्यशालिनी।
देशोऽयं क्षोभरहितः प्रजाः सन्तु च निर्भयाः॥

❖

TS & FA-39

आयुर्वेद में पंचकर्म का महत्त्व

डॉ. श्रीनिवास उपाध्याय, ग्वालियर

आयुर्वेद चिकित्सा शास्त्र की मुख्य विशेषता यह है कि अनेक कारणों से कुछ अनपेक्षित तत्त्व एकत्र होते रहते हैं और अनपेक्षित तत्त्वों को पाँच विशिष्ट तरीकों से शरीर के बाहर निकाला जाता है। जिन्हें पंचकर्म कहते हैं, अन्यथा ये तत्त्व मृत्युकारक होते हैं।

शरीरजानां दोषाणां क्रमेण परमौषधम्।
बस्तिर्विरेको वमनं तथा तैलं घृतं मधु॥ (अ.ह. सू. 1/25)

पंचकर्म करने के पूर्व स्नेहन-स्वेदन का विधान है इनको पूर्वकर्म कहते हैं।

दोषों को बाहर निकालने के लिये वात के लिए बस्ति, पित्त के लिए विरेचन और कफ के लिये वमन ये सर्वश्रेष्ठ उपाय कहे गये हैं।

निबन्ध में पंचकर्म पर विस्तारपूर्वक विचार प्रस्तुत किया गया है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

TS & FA-40

भक्ति मार्ग का समर्थ साधन : संगीत

डॉ. सुनीता द्विवेदी, कानपुर

आप्तकाम शब्दब्रह्म के परिचय में कहा जाता है। अतः ब्रह्म की भाँति काम भी सृष्टि-मूल बना। पूर्ण से च्युत होकर अंशों में विराजमान इस काम को समस्त भौतिक सुख सन्तुष्ट नहीं कर पाते। जो पूर्णता यह काम चाहता है उसका एक मात्र स्थल सदानन्द ईश्वर है। ईश्वर के साथ रमण करना, उसके नाम, रूप, गुण, लीला, धाम के गान में मगन रहना आनन्द है और यही भक्तिमार्ग है।

पौराणिकों ने आनन्दघन ईश्वर को जनग्राह्य बनाने के लिये सगुण रूप देकर मानसी भावनाओं को साकार रूप प्रदान किया और समाज के हृदयाकर्षण के लिये भगवान के नाम, रूप, गुण लीला आदि का विस्तृत काल्पनिक रूप खड़ा किया। मध्ययुग में हुये सगुणोपासक भक्तों ने ईश्वर के इसी नाम-रूपादि के गान-कीर्तन को अपनी भक्ति के प्रचार का आधार बनाया।

भक्ति का चरम लक्ष्य परम रसास्वादन है और समस्त ललित-कलायें भी रसानुभूति का साधन मानी गयी है। ललित कलाओं से दो गतिशील कलायें है—काव्य और संगीत। ये दोनों कलायें भावाभिव्यक्ति की सक्षम शक्तियाँ हैं। साथ ही ये दोनों कलायें एक-दूसरे के प्रभाव को बढ़ाते हुये बड़ी सरलता से भक्ति-साधना की भी सहगामिनी बनती हैं।

भक्तिमार्ग पर चलते हुये साधक की अपेक्षा होती है कि उसे ऐसा कोई साधन मिले जो एक ओर लौकिक स्तर पर भोग से जुड़ने वाले मन को उधर से हटा ले और भगवान के रूप, गुण में उसे दत्त कर दे, साथ ही वहाँ पहुँच कर लगातार उसके आनन्द को द्विगुणित करता रहे।

कलाओं में संगीत ऐसी कला है जो भक्तिमार्ग के अपेक्षित त्रिकोण को पूरा करती है। यह कला इन्द्रियद्वारों पर अपना पूर्ण आधिपत्य स्थापित कर मन की चंचल वृत्तियों के निग्रह के लिये सर्वाधिक सक्षम है। इसी प्रकार भक्ति पदों को गाने से साधक का चित्त भक्तिकृत्यों में नियोजित रहता है, अन्ततः भजन का भावात्मक रूप स्वयं फलरूप भी है। भक्त भावना के स्तर पर भगवान् के साथ सम्बद्ध होकर अनूठे फल का अनुभव करता है। इस प्रकार संगीत के द्वारा भक्ति के अपेक्षित ये तीनों कार्य (निग्रह, नियोजन, आनन्द लाभ) एक साथ पूरे होते हैं। यही कारण है कि भक्ति के साथ किसी सीमा तक अनायास ही जुड़ जाने वाले संगीत को समय-समय पर भक्त साधकों द्वारा रसवर्धन हेतु सायास भी अपनाना होता है।

❖

. CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

TS & FA-41

रविचन्द्र-ग्रहण-विमर्श

आचार्य नरेन्द्र तिवारी, वाराणसी

1. रवि एवं चन्द्र का ग्रहण खगोल वैज्ञानिकों के लिए महत्त्वपूर्ण आकाशीय गणना का उदाहरण है। जन सामान्य के लिए चमत्कारी घटना तथा भारतीय संस्कृति में शुभाशुभ का निमित्त और दानादि-पुण्यकर्म तथा मंत्रादि-सिद्धि का अनुष्ठान पर्व है।

2. भारतीय ज्योतिष शास्त्र में ग्रहण सम्बन्धी गणितीय सूत्र तथा सारणी अति प्राचीनकाल से प्रचलित है।

3. सर्वप्रथम ऋग्वेद में ग्रहण सम्बन्धी ज्ञान की चर्चा उपलब्ध होती है। वहाँ पर यह भी बतलाया गया है कि अत्रि नामक ऋषि ने सर्व प्रथम ग्रहण गणित का आनयन एवं प्रेच्छण किया—

यत त्वा सूर्य स्वभानुस्तमसाविध्यदासुरा।
अक्षेत्रविद् यथा मुग्धो भुवनान्यदीधयुः॥

स्वर्भानोरध यदिन्द्रमाया, अवो दिवो वर्तमाना अवाहन्।
गूळहं सूर्यं तमसापव्रतेन, तुरीयेण ब्रह्मणाविन्ददत्रिः॥

(ऋ. वे. 5.40.5-6)

4. पूर्णिमा के दिन यदि चन्द्रमा एवं राहु का अन्तर 12 अंश से कम होता है, उस पूर्णिमा को चन्द्र ग्रहण लगता है। चन्द्रमा पृथ्वी का उपग्रह एवं अपारदर्शक है। पदार्थ भाग के कारण जो स्वतः प्रकाश न होने के कारण अप्रकाशित पिण्ड है। चन्द्रमा अपने कक्ष की परिक्रमा 27 दिन 7 घण्टा 43 मिनट 12 सेकेण्ड में करता रहता है। वह कभी पृथ्वी के पास तो कभी दूर रहते हैं। उनका कम से कम अन्तर 1,21,000 मील एवं अधिक से अधिक 2,53000 मील है। अपने भ्रमण पथ पर चलते हुए चन्द्रमा अमावस्या के दिन सूर्य एवं पृथ्वी के बीच आ जाते हैं और कभी-कभी ये तीनों सीध में होते हैं, तब सूर्य के प्रकाश को ढक लेते हैं। हमारे समझ में वह मेघ के समान रोक देते हैं जिससे सूर्य की किरणें हमारे पास नहीं पहुँच पाती है और ग्रहण लगता है, जिसे हम सूर्य ग्रहण कहते हैं। जब वे पृथ्वी के पास हों और राहु और केतु बिन्दु पर हों तो उसकी परछायी पृथ्वी पर पड़ती है। पास होने के कारण उनका बिम्ब बड़ा होता है, जिससे हमारे लिए सूर्य पूर्णतः ढक जाते हैं और तब हम पूर्ण सूर्यग्रहण कहते हैं।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

TS & FA-42

कोपर्निकस एवं विश्व के सापेक्ष पृथ्वी की अवधारणा

श्री कृष्णकान्त पाण्डेय, वाराणसी

निकोलस कोपर्निकस की गणना उन मनीषियों में होती है जिन्होंने विज्ञान को अन्धविश्वासों के मलवे से बाहर निकाला था। कोपर्निकस का जन्म 19.02.1473 ई. को पोलैण्ड नामक देश में हुआ था, इन्होंने गणित में अधिक रुचि होने के कारण अल्बर्ट ब्रुदजेवास्की से गणित की शिक्षा ग्रहण की थी। उच्च शिक्षा ग्रहण करने के लिए इटली चले गये। वहाँ पर कई विषयों का उन्होंने अध्ययन किया। वहाँ पर सर्वप्रथम वोलोनो विश्वविद्यालय में चर्च और प्रशासकीय कार्यों के ज्ञान प्राप्ति के लिए उन्होंने ईसाई धर्म के विधिशास्त्र की शिक्षा ग्रहण की। गणित एवं खगोल शास्त्र में अधिक रुचि होने से प्रसिद्ध खगोलविद् "डेमिनिको बोलोना नोवेरा" से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किया तथा क्रान्तिवृत्त की तिर्यकता के क्षय तथा अक्षांश के परिवर्तन का पता लगाया।

कोपर्निकस ने अपने पूर्ववर्ती ज्योतिषियों और खगोलज्ञों के प्रेक्षणों एवं सिद्धान्तों का गहन अध्ययन किया और स्वयं भी खगोल के ग्रहों तथा तारों का वर्षों तक निरीक्षण किया। उन्हें टेमली, जो पूर्व में महान खगोलविद् थे, का सिद्धान्त तर्कसंगत नहीं लगा तथा उन्होंने स्वयं कहा कि दार्शनिक की धारणा जनसामान्य की धारणाओं का अनुसरण नहीं करती है, वह तो अपने ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा की अंतिम सीमा तक सत्य का अन्वेषण करना अपना परम कर्त्तव्य समझता है। उन्होंने युक्तियुक्त प्रमाणों को एक प्रेक्षण द्वारा सिद्ध किया कि सूर्य इस विशाल एवं स्थिर खगोल के केन्दक्र पर अचल स्थिर रहता है। इस सिद्धान्त के आधार पर लगभग सभी दृश्य खगोलीय घटनाओं की व्याख्या सरलतापूर्वक की जा सकती है।

❖

TS & FA-43

मुहूर्त्त-ज्योतिषम्

डॉ. चन्द्रमौली उपाध्याय, वाराणसी

मुहूर्त्त का तात्पर्य उस क्षणविशेष से है, जिसमें किया गया कार्य पूर्णतः सफलता को प्राप्त होता है। भारतीय ज्योतिष शास्त्र में अयन, ऋतु, मास, तिथि, नक्षत्र, दिन, लग्न, होरा, नवमांश इत्यादि काल के विशिष्ट खण्ड में शुभाशुभत्व का निर्धारण कर विभिन्न कार्यों के लिए विभिन्न प्रकार के मुहूर्त्तों का विचार किया गया है। हजारों वर्षों के प्रायोगिक परीक्षण तथा महर्षियों की दिव्यदृष्टि के आधार पर मुहूर्त्तों का निर्धारण हुआ है।

नभोमण्डल में भ्रमणशील ग्रहों तथा नक्षत्रों की गणना कर उनके उदय, अस्त, युति, वक्रत्व इत्यादि की गणना पञ्चाङ्ग-गणित में स्थापित की जाती है। पञ्चाङ्ग शब्द का अर्थ है–

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिथिवारं च नक्षत्रं योगः करणमेव च।
पञ्चभिः सहितं तत्त्वं पञ्चाङ्गमित्युच्यते॥

अर्थात् प्रतिपदादि 30 तिथियाँ, सूर्यादि सप्तवार, अश्विन्यादि 27 नक्षत्र, विष्कुम्भादि 27 योग, ववादि 7 चर करण तथा शकुन्यादि 4 स्थिर करण—इनका स्पष्टमान गणना के द्वारा पञ्चाङ्गों में प्रदर्शित किया जाता है। सूर्य एवं चन्द्रमा का अंशात्मक द्वादशान्तर एक तिथि होती है। अश्विन्यादि 27 नक्षत्रों में प्रत्येक के 4-4 चरण होते हैं। अश्विनी के 4 चरण, भरणी के 4 चरण और कृत्तिका के 1 चरण मिलकर कुल 9 चरणों से एक राशि मेष होती है। इसके आगे 9-9 चरणों की क्रमशः वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ, मीन ये 12 राशियाँ प्रचलित है। मेषादि द्वादश राशियों के अधिपति ग्रह स्वीकृत किये गये हैं। मेष और वृश्चिक के स्वामी मंगल, वृष और तुला के शुक्र, मिथुन एवं कन्या के बुध, कर्क का चन्द्र, सिंह का सूर्य, मगर और कुम्भ का शनि, तथा धनु और मीन का गुरु होता है। चन्द्र, बुध, गुरु और शुक्र शुभग्रह एवं सूर्य, भौम तथा शनि पापग्रह माने जाते हैं। राहु और केतु की प्रतिष्ठा तमोग्रह के रूप में हुई है। चन्द्रमा पापयुक्त अथवा पापदृष्ट होने पर 4,8,12 भावों में अशुभ हो जाता है। यात्रा, विवाह, वास्तु आदि कर्मों में शुभ ग्रहों का अनुकूल प्रभाव तथा पाप ग्रहों का प्रतिकूल प्रभाव होता है।

योगों का शुभाशुभत्व उनके नामानुसार समझना चाहिए। परिघ, दण्ड, मृत्यु, विष्कुम्भ आदि अशुभ योग सर्वथा निन्दित है। वारों का शुभाशुभत्व ग्रहों के समान ही होता है। रवि, शनि एवं मंगलवार शुभ नहीं माने जाते हैं।

इस प्रकार तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण का सम्यक् विचार कर सर्वथा अनुकूल शुभकाल में सम्पादित कार्य सफल होकर मनोकामनापूर्ण करता है। मुहूर्त्तों का विज्ञान बहुत गम्भीर है और इनके रहस्यों को समझते हुए अपने मनोभिलषित कार्यों का आरम्भ करना चाहिए। यह विषय ज्योतिष तथा जन सामान्य, दोनों के लिए ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

❖

TS & FA-44

चरकसंहिता के नैतिक सूत्रों की समीक्षा

श्री आनन्द कुमार, बाँदा

चरकसंहिता चिकित्साशास्त्र के प्रतिनिधि ग्रन्थ के रूप में विख्यात है किन्तु इसका प्रतिपाद्य चिकित्सा मात्र नहीं है। इसमें दार्शनिक, आध्यात्मिक, सामाजिक तथा शैक्षिक पक्षों पर विस्तृत विचार समाविष्ट हैं। इसी प्रकार संहिता में बड़ी संख्या में नैतिक सूत्र भी प्राप्त होते हैं। कुछ नैतिक सूत्र यत्र-तत्र बिखरे हुये हैं किन्तु अधिकांशतः धारणीय वेग, अधारणीय वेग, सद्वृत्त, प्रज्ञापराध आदि प्रकरणों में सूचीबद्ध हैं। इन नैतिक सूत्रों का विषय व्यापक है। इनका सम्बन्ध व्यक्ति की कुछ सामान्य प्रवृत्तियों मात्र से नहीं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं अपितु ये व्यक्ति के निजी जीवन, परिवार, कार्यक्षेत्र, समाज एवं राष्ट्र सभी के लिए प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उचित दिशा निर्देश देते हैं।

इन नैतिक सूत्रों की दार्शनिक, सामाजिक, पारिवारिक एवं व्यक्तिगत परिप्रेक्ष्य में समीक्षा करने पर ज्ञात होता है कि यद्यपि इनका प्रतिपादन स्वयं में विशिष्ट है तथापि इनमें भारतीय चिन्तन परम्परा के अनेक तथ्य समाहित हैं। संहिता के शोधात्मक अवलोकन से ज्ञात होता है कि इसमें गीता का कर्मदर्शन, योग के सभी बहिरंग साधन– यम, नियम, आसन, प्राणायाम एवं प्रत्याहार, समाज के प्रति उत्तरदायित्व, समाज के विभिन्न वर्गों के प्रति व्यवहार, व्यसन, व्यक्तिगत चिन्तन व व्यवहार आदि विषयों का प्रतिपादन सूक्ष्म ढंग से किया गया है।

इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि हमारे आयुर्वेद-ग्रन्थों और धर्मशास्त्रों व अन्य प्राचीन-ग्रन्थों के चिन्तन में अद्भुत साम्य है। यदि हम इन्हें तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो ज्ञात होता है कि इन नैतिक सूत्रों के मूल में एक ओर जहाँ योगसूत्र, गीता, मनुस्मृति आदि ग्रन्थों की भाँति आध्यात्मिकता, आत्मोन्नति का मार्ग, सामाजिक उत्तरदायित्वों का प्रतिपादन तथा सहायक मार्गदर्शन है, वहीं नीतिशतक, अन्योक्तिविलास, विदुरनीति आदि कृतियों की भाँति व्यावहारिक़ नीतियों का समावेश है। चरक संहिता में इन नैतिक सूत्रों के विस्तार से प्रतिपादन का कारण यह है कि न केवल रोग, अपितु प्रत्येक कष्ट से निपटने का सर्वोत्तम उपाय़ उपचार नहीं अपितु पूर्व सावधानी तथा वर्जनाओं का पालन है। ये सूत्र इस तथ्य की ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं कि आयुर्वेद का उद्देश्य केवल शारीरिक कष्टों से निवृत्ति मात्र ही नहीं अपितु मानव की प्रत्येक कष्ट से निवृत्ति तथा शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक-विकास है।

प्रस्तुत लेख में इन नैतिक सूत्रों की व्यापकता दिखाते हुए न केवल भारतीय चिन्तन धाराओं से साम्य दिखाया गया है अपितु इनके व्यापक सामाजिक संदर्भों की व्याख्या भी की गयी है। व्यक्तिगत परिप्रेक्ष्य में नैतिक सूत्रों की सूक्ष्म दृष्टि का निदर्शन है। साथ ही नैतिक सूत्रों की उपयोगिता व लाभ की भी चर्चा है। लेख में सामान्य नैतिक सूत्रों के विशिष्ट अर्थ भी खोजे गये हैं। यथा चरक प्रत्यक्ष रूप से मांसाहार का निषेध नहीं करते किन्तु वे सामान्य रूप से पाप कार्य का निषेध एवं कारुण्य आदि गुणों की अनुशंसा करते है। इस प्रकार सामान्य निषेध व अनुशंसा में मांसाहार निषेध का विशेष अभिप्राय निहित है।

❖

TS & FA-45

मूल्यों की अवधारणा

श्री बृहस्पति पाण्डेय, इलाहाबाद

मूल्यों की गणना मानव मूल प्रवृत्तियों या भावनाओं के आधार पर की जाती है। मूल्य मनुष्य की आवश्यकताओं को तृप्त करते हैं। मनुष्य की मूल प्रवृत्तियाँ या भावनाएँ उसकी आवश्यकताएँ हैं। अतः इन आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने के कारण मूल्यों का इनसे सम्बन्ध होना सहज स्वाभाविक हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब प्रश्न है कि मनुष्य की मूल प्रवृत्तियाँ कितनी है? इनकी निश्चित संस्था पर मनोवैज्ञानिकों में बहुत विवाद है। किन्तु हम क्षुधा, काम-प्रवृत्ति, खेलना, शरीर-श्रम, सह-प्रवृत्ति, आत्मप्रकाशन, आत्म-जिज्ञासा या कूतूहल, सहानुभूति, गिरोह या समूह में रहने की प्रवृत्ति, युयुत्सा, रचना, अनुकरण तथा श्रद्धा को प्रमुख मूल प्रवृत्तियाँ मान सकते हैं। कुछ मनोवैज्ञानिकों को मूल प्रवृत्ति शब्द पर ही आपत्ति है। किन्तु वे भी इनको मुख्य प्रेरक मानते है। अतः हम शब्दों के विवाद में नहीं पड़ते। हमारा मुख्य अभिप्राय है कि उपर्युक्त प्रवृत्तियाँ मनुष्य की मुख्य आवश्यकताएं हैं और उनको अपनी सन्तुष्टि के लिए प्रेरित करती हैं, उन्हें चाहे मूल प्रवृत्तियाँ कहा जाये या प्रेरणाएं या माँगे।

क्षुधा और काम-प्रवृत्ति की सन्तुष्टि शरीर-रक्षण के लिए अपेक्षित हैं। अतः इसका शारीरिक मूल्य हैं। संग्रह-प्रवृत्ति और शरीर-श्रम का आर्थिक मूल्य हैं।

इन प्रवृत्तियों से संलग्न मूल्य है। खेल का भी मनोविनोद मूल्य हैं। इन सभी मूल्यों का साक्षात् प्रभाव किसी व्यक्ति के शरीर और जीवन पर पड़ता है। अतः इनको जैविक मूल्य कहा जाता हैं।

समूह में रहने की प्रवृत्ति संगठन मूल्य है। फिर सहानुभूति, आत्म-प्रकाशन, आत्म-धिक्कार तथा युयुत्सा से सम्बन्धित चारित्रिक मूल्य हैं। इन्हीं प्रवृत्तियों के समुचित विकास से चरित्र बनता है। संगठन मूल्य तथा चरित्रमूल्य को सामाजिक मूल्य कहा जाता है। सामाजिक मूल्य अतिजैविक है।

अन्त में कुतूहल-प्रवृत्ति, रचना-प्रवृत्ति, अनुकरण-प्रवृत्ति और खेल तथा श्रद्धा है। कुतूहल-प्रवृत्ति का सम्बन्ध बौद्धिक मूल्य से है। रचना-प्रवृत्ति, अनुकरण-प्रवृत्ति और खेल का सम्बन्ध कलात्मक मूल्य से है और श्रद्धा का सम्बन्ध धार्मिक मूल्य से है। ये सब आध्यात्मिक मूल्य हैं या अतिजैविक तथा अतिसामाजिक मूल्य हैं।

❖

TS & FA-46

नगर-विनिवेश में मार्ग-विन्यास

श्री विद्याधर सिंह, जम्मू

एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचने के लिए भू-पृष्ठ पर बनी रचना को पथ, मार्ग, राजमार्ग, रथ्या या सड़क कहा जाता है। मार्गों का निर्माण किसी राष्ट्र अथवा नगर की प्रगति का आवश्यक तत्त्व है। अत्यन्त प्रारम्भिक युग में भारतवासियों ने मार्गों की महत्ता का अनुमान कर लिया था। अत एव प्राचीन काल से ही इस देश में मार्गों का निर्माण होता रहा है।

निःसन्देह भारत-भूमि पर मार्गों की संख्या अनेक थी, जिन पर रथ तथा शकट आदि चलते थे तथा सभी प्रकार के लोगों को इन पर संचरण का अधिकार प्राप्त था। संसार के सबसे प्राचीनतम साहित्य वेदों में अश्व जुते हुए रथों का उल्लेख प्राप्त होता है, जो बनाए गये मार्गों पर तीव्र गति से चलते

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। रामायण तथा महाभारत में भी इस प्रकार के रथों तथा मार्ग-निर्माण की विधियों का वर्णन प्राप्त होता है। पाणिनि ने अष्टाध्यायी में अजपथ, हस्तिपथ तथा रथपथ का उल्लेख किया है। प्रारम्भिक काल में मार्ग-निर्माण करने वाले शिल्पी हुआ करते थे जिन्हें 'वर्त्मकर्मणि कोविदाः' तथा 'मार्गकाराः' आदि कहा जाता था। इनमें भूमि का नाप-जोख करने वाले, खोदने वाले, निर्माण-सम्बन्धी मन्त्रों का प्रयोग करने वाले रथपति, वर्धकि, वृक्षतक्षक आदि हुआ करते थे।

नगर-विन्यास में राजमार्गों तथा अन्य मार्गों की योजना और उनका विन्यास अति महत्त्वपूर्ण होता था। इसे प्राचीन भारतीय स्थापत्य का अपरिहार्य अङ्ग समझा जाता था। राजमार्गों के निर्माण के प्रमुखतः त्रिविध उद्देश्य थे—(1) यातायात अथवा आवागमन के साधन, (2) भूमि-विन्यास में भवन-निवेश का सीमाङ्कन करना एवं अन्य अत्यावश्यक अङ्गों को स्थापित करना तथा (3) नागरिकों की आरोग्यता हेतु निर्बाध रूप से शुद्ध वायु की प्राप्ति। प्रस्तुत शोधपत्र में समराङ्गणसूत्रधार में धाराधिपति भोज द्वारा नगर-विन्यास के सन्दर्भ में जिन विविध प्रकार के मार्गों का विवेचन किया है उसका समीक्षात्मक अध्ययन किया जाएगा।

❖

TS & FA-47

संस्कृतवाङ्मय में कृषिविज्ञान

श्री माता प्रसाद पाठक, लखनऊ

कृषि मानव सभ्यता की प्रगति एवं स्थायित्व का आधार तथा उसका निरन्तर प्रमुख व्यवसाय रहा है। सिन्धु, सरस्वती, गङ्गा एवं कावेरी की द्रोणियों में विश्व की महान् सभ्यताओं की जन्मभूमि, चावल (कोल्डिहवा), गेहूँ (मेहरगढ़), कपास (सिन्ध) एवं गन्ना (गङ्गा घाटी) जैसी आधारभूत फसलों की आद्यस्थली, प्रकृति की अनुपम कृपा से सम्पन्न यह भारतभूमि उर्वर मस्तिष्क एवं कर्मठ हाथों से सदैव सुजला-सुफला तथा सस्य-श्यामला रही है। प्राचीन भारतीय संस्कृत वाङ्मय में कृषि की महत्ता उसके वैज्ञानिक एवं तकनीकी पहलुओं यथा—सिंचाई, उर्वरकों का प्रयोग, बीजसंस्कार, बहुफसली कृषि-सस्यावर्तन (जो 16वीं शदी तक यूरोप में भी अज्ञात थी), उपज के परिरक्षण एवं भण्डारण आदि का गहन एवं सूक्ष्म विवेचन प्राप्त होता है।

कृषि ने वैदिक युग में ही प्रमुख व्यवसाय का स्थान ग्रहण कर लिया था। ऋग्वेद में जुए की बुराई से दूर रहने तथा सम्पन्नता के लिए कृषि कार्य करने का निर्देश प्राप्त होता है—'अक्षैर्मादीव्य कृषिमित्कृषस्व विज्ञे रमस्व बहुमन्यमानः'। वैदिक वाङ्मय से लेकर समस्त परवर्ती संस्कृत वाङ्मय यथा—महाभारत, रामायण, पुराण, अर्थशास्त्र, स्मृतियों, साहित्यिक कृतियों, अमरकोशादि कोशग्रन्थों में कृषि पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र, वराहमिहिर की बृहत्संहिता, चरक एवं सुश्रुतसंहिताओं के साथ ही साथ मानसोल्लास, बल्लालसेनकृत अद्भुतसागर, पराशरकृत 'कृषिपाराशर' एवं काश्यप के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कृषिसूक्त' में कृषि विज्ञान का गम्भीर वैज्ञानिक विवेचन किया गया है। उपर्युक्त शीर्षक के शोधपत्र में उसी का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

❖

TS & FA-48

सामगान में 'विस्वर' की अवधारणा

डॉ. पंकज माला शर्मा

ऋक् के ऊपर ही सामगान किया जाता है। अतः एक ही सामगान का मूल आधार है। जिस ऋक् पर सामगान किया जाता है उन ऋग्गत पदों का स्वरूप ज्यों का त्यों न रहकर काफी परिवर्तित हो जाता है। यह परिवर्तन कभी-कभी तो इतनी अधिक मात्रा में होता है कि मूल ऋग्गत पदों के स्वरूप का भी पता नहीं चलता। यह परिवर्तन गान में सौकर्य के लिए किया जाता है। ऋग्गत पदों में सामगान करते समय यह जो परिवर्तन होता है, इस परिवर्तन को विकार कहा जाता है। जैमिनि ने अपने मीमांसासूत्र में 'अथैकत्वाद् विकल्पः स्यात्' इस सूत्र के द्वारा इन्हीं सामविकारों का उल्लेख किया है। शबरस्वामी ने उक्त सूत्र का भाष्य करते हुए इस बात का उल्लेख किया है कि सामवेद में गान के सहस्रों उपाय हैं। गीति का अभिप्राय साम से हैं। गीति के सम्पादन में स्वर की विशेष भूमिका है। ऋग्गत पदों का उच्चारण किस स्वर में किस प्रकार से किया जाता है, यह सामविकारों या भावों के अन्तर्गत सामलक्षण ग्रन्थों में वर्णित है। 'विस्वर' ऋग्पदों के स्वर की गान प्रक्रिया है। कभी एक पद को एक स्वर में गाया जाता है तो कभी एक पद को अनेक स्वरों में गाया जाता है। कहीं-कही ऐसा भी दिखायी पड़ता है कि एक पद में स्वर का कर्षण कर अन्य स्वरों का गान हो, तो कहीं किसी स्वर का अतिक्रमण कर दूसरे स्वर का गान किया जाता है। अतिक्रम, कर्षण, प्रत्युत्क्रम तथा अतिस्वार इन विकारों में स्वर अन्य स्वर को प्राप्त करता है। इसी की विस्वर संज्ञा है। 'विस्वर' के उच्चारण में तीन मात्रा का काल होता है। अतिक्रम, कर्षण, प्रत्युत्कम तथा अतिस्वार के अवान्तर भेद हैं। 'अतिक्रम' चार प्रकार का होता है। कर्षण पाँच प्रकार का होता है। 'प्रत्युत्क्रम' के आठ भेद हैं। इन सबकी विस्तारपूर्वक क्रियात्मक रूप में चर्चा इस पत्र में की जाएगी।

❖

TS & FAS-49

ज्योतिषशास्त्र के अनुसार विभिन्न भावों में शनि की स्थिति

श्री राम कुमार, पंजाब

ज्योतिष शास्त्र का अस्तित्व हम वेदों और वैदिक साहित्य में सर्वत्र पाते हैं। संस्कृत साहित्य को प्रतिष्ठित करने में ज्योतिष का बहुत बड़ा योगदान है। ज्योतिष में प्रधान रूप से नव ग्रहों का समावेश

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, जो स्वभाव से क्रूर और सौम्य जाने जाते हैं। सूर्य, मंगल, शनि, राहु, केतु—ये ग्रह क्रूर हैं, और बुध, गुरु, शुक्र, चन्द्रमा—ये स्वभाव से सौम्य माने जाते हैं। नव-ग्रहों में शनि ग्रह की अहम भूमिका है। शनि को सूर्य का पुत्र, यम और यमुना का भाई भी कहा गया है। यम के अतिरिक्त शनि के आठ और भी भाई हैं, जिनमें गुरु, मंगल, बुध, शुक्र, पृथ्वी आदि उल्लेखनीय है। शनि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक धारणायें हैं।

ज्योतिष के अनुसार शनि का आकार बड़ा भयंकर है। शनि पश्चिम दिशा का स्वामी और काले रंग का प्रतीक है। मकर और कुम्भ राशियों का स्वामी है। एक राशि पर 30 माह तक विराजमान रहता है और बारह राशियों को पूरा करने में 30 वर्ष का समय लग जाता है। ज्योतिष में इन्हें नपुंसक ग्रह माना है, अंग्रेजी में Saturn और फारसी में जुहल नाम से अभिहित है।

शनि भगवान् शंकर के शिष्य है जिन्हें महाकाल भैरव के नाम से भी जाना जाता है। तीव्र गति से दौड़ने वाले काले भैंसे पर सवार, लोहे से बना हुआ चमत्कारिक अस्त्र धारण किये हुये हैं। शनि को मृत्यु का विजेता और दुष्टों को दण्ड देने वाला भी बताया गया है।

बुध, शुक्र एवं राहु इसके मित्र-ग्रह हैं। सूर्य, चन्द्रमा और मंगल इसके शत्रु-ग्रह हैं। राहु, केतु इसके रक्षक-ग्रह हैं जो शनि की रक्षा के लिए किसी भी ग्रह की बलि ले सकते हैं। शनि का काला रंग ज्योतिष में बेजोड़ भूमिका रखता है।

कहा है—सफेद में रंग सब चढ़े काले पे चढ़े ना कोई। जन्म कुण्डली के प्रत्येक भाव में शनि की स्थिति अलग-अलग भाव में पृथक्-पृथक् फल प्रदान करता है। प्रथम भाव में शनि आलसी, दम्भी बनाता है, श्रेष्ठ स्थिति में उच्च पद आसीन कराता है। द्वितीय भाव में धन के योग, मुख के रोग आदि प्रदान करता है। तृतीय भाव में शनि के होने से कोई भी कार्य बिना रुकावट के पूरा नहीं होता है। चतुर्थ भाव में शनि के होने से जातक वात-विकार आदि से पीड़ित रहता है। पञ्चम भाव में सुख में भी दुख प्रदान करता है। षष्ठेश शनि जातक को निडर और शत्रु विजयी बनाता है। सप्तम भाव में शनि के होने से व्यक्ति अशांतचित्त रहता है। अष्टम शनि जातक को आयु प्रदान करता है। नवम में व्यक्ति मित्र और सम्बन्धियों से धनवान बनता है। दशमस्थ शनि आयु वृद्धि के साथ आर्थिक उन्नति भी करता है। एकादश और द्वादश भाव में शनि जातक को धार्मिक प्रवृत्ति वाला, गर्व और उद्दंडी बनाता है। द्वादश भाव में शनि के होने से स्त्री या पुरुष लज्जा और संकोच को अपने पास भी फटकने नहीं देते।

❖

TS & FA-50

संस्कृतवाङ्मय में कृषि विज्ञान

श्री ब्रह्मदेव राम तिवारी, इलाहाबाद

संस्कृत वाङ्मय में कृषिविज्ञान की सर्वांगीण एवं गम्भीर विवेचना प्राप्त होती है। इसमें भारतीय सन्दर्भो में कृषि के सभी व्यवहारिक तथा तकनीकी पक्ष, यथा—शस्य-विज्ञान, मृदा-विज्ञान, उर्वरक,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कीटनाशक प्रयोग, मौसम-विज्ञान, पशुपालन, फसल संरक्षण आदि का वैज्ञानिक निरूपण किया गया है, जिससे कि पर्यावरण-सुरक्षा एवं संतुलित विकास के साथ अधिकतम उत्पादन एवं उत्पादकता सुनिश्चित की जा सके। अद्यावत् भारतीय कृषि का आधार होने से कृषि सम्बन्धी इस परम्परागत ज्ञानराशि का सामयिक सन्दर्भो में विश्लेषण अत्यधिक प्रासंगिक एवं उपादेय है। सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय में कृषि विषयक अल्पाधिक वर्णन है पर कुछ ग्रन्थ, जैसे—अर्थशास्त्र (कौटिल्य), कृषिपाराशर (पाराशर) एवं कृषिसूक्त (कश्यप) आदि महत्वपूर्ण है।

मृदाविज्ञान के अन्तर्गत भूमि की संरचना, उपजाऊपन, सिंचाई सुविधा एवं प्रयोग आदि व्याववहारिक आधारों पर वर्गीकरण किया गया है। कृषि के लिए सर्वप्रथम मृदा-परिष्कार की प्रविधियों और कर्षणार्थ हल के प्रयोग, हल के विविध भागों के निर्माण, आकार एवं प्रयोग आदि का पराशर ने विस्तृत वर्णन किया है। कृषिकार्य हेतु वैज्ञानिक-पशुपालन का सर्वांगीण विवेचन किया गया है।

❖

TS & FA-51

गीता में काम की अवधारणा

डॉ. श्रीमती लक्ष्मी मिश्रा, गोरखपुर

भारतीय जीवन दर्शन में काम एक पुरुषार्थ के रुप में में प्रतिष्ठित है। काम को पौराणिक साहित्य में प्रेम के देवता के रूप में मान्यता प्राप्त है। वैदिक साहित्य में इसी काम को परमपुरुष के मन का बीज कहा गया है।

कामस्तदग्रे समवर्ततााधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्। (ऋग्वेद 10-129-4)

गीता में वर्णित काम मनुष्य के सब काम का मूल है। मनुष्य की राजसिक प्रवृत्तियाँ इसकी संवाहक हैं। राग एवं द्वेष इसके उद्दीपक हैं। कामना, तृष्णा, वासना एवं आशा इत्यादि सभी काम के ही परिवर्तित रूप हैं। काम ही क्रोध है। काम का शमन होने पर ही क्रोध का शमन होता है।

'काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।' (गीता 2.37)

काम की तृष्णा अग्नि की ज्वाला की भांति है जो घृत डालने पर शान्त होने के स्थान पर और भी उद्दीप्त होती है। उसी प्रकार कामनाओं की निरन्तर पूर्ति से काम और भी उद्दीप्त होता है।

गीता के अनुसार काम मनुष्य के अन्तःकरण में स्थित प्रथम एवं प्रमुख शत्रु है जिसका निराकरण साम, दाम, दण्ड, भेद किसी के द्वारा सम्भव नहीं है।

काम मनुष्य के विवेक को उसी प्रकार आच्छादित कर लेता है जिस प्रकार अग्नि को धूम, दर्पण को धूल तथा गर्भस्थ शिशु को जरायु आच्छादित किये रहता है।

गीता में काम के विनाशकारी स्वरूप का वर्णन करते हुए काम के उदात्तीकरण एवं दिव्यीकरण पर बल दिया गया है। मनुस्मृति में काम को मनुष्य की ऊर्जा माना गया है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अकामतः क्रिया काचित् दृश्यते नेह कस्यचित्।
यद् यद् हि कुरुते जन्तुः तत्तत् कामस्य चेष्टितम्॥' (मनुस्मृति 2.4)

काम के अभाव में धर्म, अर्थ जैसे किसी पुरुषार्थ में प्रवृत्ति सम्भव नहीं है। महाभारत में भी धर्मानुकूल अर्थ एवं काम के संग्रह पर बल दिया गया है—

'धर्मं समाचरेत् पूर्वं ततोऽर्थं धर्मसंयुतम्।
ततः कामं चरेत् पश्चात् सिद्धार्थं स हि तत्परम्।' (शान्तिपर्व 167.27)

काम का उदात्तीकरण ही उसका कल्याणकारी स्वरूप है, जिससे व्यक्ति व लोक दोनों का कल्याण होता है। इसी भावना से प्रेरित वैदिक ऋषि कहते हैं कि काम का कल्याणकारी स्वरूप जिसका वरण करता है, वह सत्य स्वरूप हो जाता है।

'यास्ते शिवास्तन्वः काम भद्रा याभिः सत्यं भवति यद्वृणीषे।' (अथर्ववेद 9.2.25)

❖

TS & FA-52

संस्कृतसाहित्य में संगीत

श्री रवि शंकर मिश्र, मुजफ्फरपुर

विश्व की भाषाओं में सबसे प्राचीन संस्कृत भाषा है। संस्कृत साहित्य में संगीत का महत्त्वपूर्ण स्थान है। संगीत संस्कृति पर आधारित है। संस्कृति का सम्बन्ध लोकाचरणगत परम्परा से है। संगीत और संस्कृति में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। संगीत संस्कृति का अनुसरण एवं अनुगमन करता है। जैसी संस्कृति होती है संगीत भी वैसा ही होता है।

वैदिक युग से संस्कृत साहित्य उपलब्ध है। इन साहित्यों में संगीत का विशद् विवेचन मिलता है। वैदिक साहित्य पर उस समय की संस्कृति का व्यापक प्रभाव है। उत्खनन से प्राप्त वस्तुओं से यह पता चलता है कि प्राग्वैदिक युग में भी संगीत का व्यापक प्रचार-प्रसार था। संगीत लोक जनजीवन का अंग था। इसी का प्रभाव वैदिक संस्कृति पर पड़ा। वैदिक संस्कृति भी संगीतमय थी। वैदिक ग्रन्थों में संगीत का पूर्ण उल्लेख है। वैदिक मन्त्रों को 'ऋचा' कहा जाता है जो छन्दोबद्ध होते थे। 'तेषामृग् यत्रार्थवशेन पदव्यवस्था' इन ऋचाओं पर जो गान है उसे 'साम' कहा गया है—"गीतिषु सामाख्या"।

❖

TS & FA-53

राग विवेचन और मूर्च्छना पद्धति

डॉ. (कुमारी) सरिता निगम, कानपुर

संसार में मानवता एवं संस्कृति के अभिभावों के साथ-साथ ललित कलाओं का भी उद्भव एवं विकास हुआ। जब मानव ने अपनी भावनाओं को भिन्न-भिन्न माध्यमों से अभिव्यक्त करना सीखा, तब

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने अपनी कल्पना एवं रचना शक्ति के द्वारा सौन्दर्य एवं आनन्द की सृष्टि की, तो ललित कलाओं का जन्म एवं विकास हुआ। काव्य कला में सौन्दर्य भाषा के आश्रित रहता है जबकि संगीत कला इन सबसे परे मात्र स्वर व लय के द्वारा ही सौन्दर्य की सृष्टि करती है। स्वर जो संगीत का आधार एवं प्राण है श्रुतियों पर आधारित है अर्थात् श्रुतियों से स्वर, स्वर से सप्तक, सप्तक से ग्राम और ग्राम से मूर्च्छना का निर्धारण किया जाता है।

क्रमयुक्त होने पर सात स्वर मूर्च्छना कहलाते है। मूर्च्छना शब्द 'मूर्च्छ' धातु से बना है, जिसका अर्थ–मोह और समुच्छाय (उभरना, चमकना, व्यक्त होना) है। मूर्च्छना शब्द में मूर्च्छ धातु चमकना या उभरना है। एक स्वर से आंरभ करके क्रमशः सातवें स्वर तक आरोह करने के पश्चात् उसी स्वर से अवरोह करने को मूर्च्छना कहते हैं।

मूर्च्छनायें राग-छाया का आधार है। आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत के रागों का मूर्च्छना-प्रणाली की दृष्टि से विवेचन करने पर हम इन्हें तीन भागों में वर्गीकृत कर सकते है—

1. षड्ज एवं मध्यम ग्राम की शुद्ध मूर्च्छनाओं द्वारा अभिव्यक्त होने वाले राग।

2. षड्ज एवं मध्यम ग्राम की विकृत मृर्च्छनाओं द्वारा अभिव्यक्त होने वाले राग।

3. वे राग जो किसी एक ग्राम की मूर्च्छनाओं के द्वारा अभिव्यक्त नही होते। इसके लिये ग्राम संश्लेषण-पद्धति का आश्रय लेना पड़ता है।

यही मूर्च्छना-पद्धति हमारे प्राचीन शास्त्रीय संगीत की आत्मा थी। आज आवश्यकता है अपने शास्त्रीय संगीत में इसी मूर्च्छना-पद्धति के स्थापना की, जिससे हमारा आज का शास्त्रीय संगीत फिर से रसमय हो सके और सौन्दर्य की उन प्राचीन गौरवमयी ऊँचाइयों को छू सके जो आज मात्र किवदंतियाँ प्रतीत होती है।

❖

TS & FA-54

जीवन और स्वास्थ्य के आयुर्वेदिक उपाय

आयुर्वेदाचार्य वैद्य जगदीश प्रसाद, अम्बेडकरनगर

प्रस्तुत शोध-पत्र में सुखमय दीर्घ जीवन और स्वास्थ्य के बहुमूल्य, अतिसरल, महत्त्वपूर्ण, अमोघ, आयुर्वेदिक योग-उपाय ('नुस्खे') बताये गये हैं, जिन्हें अपनाकर औषधियों के बिना अथवा स्वल्प गृहीत औषधियों अथवा उपायों-द्वारा स्वास्थ्य और जीवन की रक्षा ही नहीं, आनन्दप्राप्ति के साथ जन्म और जीवन के लक्ष्य की सिद्धि भी स्वस्थ शरीर से परिश्रम कर की जा सकती है।

'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' तथा 'स्वास्थ्यमेव निधिः' इत्यादि आप्तवचनों के अनुसार सुचारु कर्मशीलता (तप या किसी भी कार्य सम्पादन)—हेतु शरीर ही परमावश्यक सर्वोत्कृष्ट साधन (उपकरण)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। अतः इसकी सुरक्षा और बलिष्ठता हेतु दिनचर्या में तनिक सुखद परिवर्तन पूर्वक अथवा स्वल्पतम सतर्कता और औषधि रूप गृहीत अन्न या वनस्पतियों का यथाविधि सेवन, निवेद्य और परिपाल्य है, जिससे हम ईश्वर द्वारा प्रदत्त शरीर और जीवन की रक्षा करते हुए इस उपनिषद् वाक्य को चरितार्थ कर सकें— 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः'।

सम्प्रति उदाहरण स्वरूप अधोलिखित एक उपाय 'स्थालीपुलाकन्यायेन' यहाँ पर्याप्त होगा, जो हमें भोजन के समय और दो घण्टे अनन्तर तक जलपान-निषेध पूर्वक तद्विकल्पत्वेन अमृततुल्य तक्र (छाछ/मट्ठा)-पानहेतु प्रेरित कर रहा हूँ, क्योंकि यह उपाय अजीर्ण और तज्जन्य विकारों से सुरक्षा में अनुपम और अमोघ है—

न तक्रसेवी व्यथते कदाचित्, न तक्रदग्धाः प्रभवन्ति रोगाः।
यथा सुराणाममृतं स्वर्गलोके, तथा नराणां भुवि तक्रमाहुः॥

'तक्र' और 'दधि' के सेवन में अन्तर यह है कि 'दधि' निहार-मुख रिक्तोदर वर्जित है, किन्तु तक्र कदापि नहीं। वह सदैव लाभ प्रद है, किसी दशा में इसका सेवन किया जा सकता है; किन्तु पित्त-विकार में खट्टे तक्र का सेवन वर्जित है।

❖

TS & FA-55

श्रीराम के जन्मकाल का वैशिष्ट्य

डॉ. अरुण कुमार पाण्डेय, वाराणसी

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम के जन्मकाल के विषय में महाकवि तुलसीदास ने रामचरितमानस में कहा है। कि—

"मास दिवस कर दिवस भा मरम न जानै कोई। रथ समेत रविथा केउ निशा कवन विधि होय।"

ईश्वर के जन्मकालिक आनन्द का अनुभव समाज के सभी लोग कर रहे थे। अब प्रश्न यह उठता है कि तुलसी ने क्यों लिखा "मास दिवस कर दिवस भा"। परम्परा तथा जनश्रुति एवं शास्त्र यदि तीनों की एक वाक्यता हो जाती है तो वह वस्तु पुष्ट हो जाती है। आचार्य तुलसी की भाषा वर्तमान काल की है। आचार्य ने राम कथा को प्रत्यक्ष देखते हुए लिपिबद्ध किया है। योगी ही "मास दिवस कर दिवस भा" कह सकता है। योगविद्या से सर्वथा अपरिचित ज्योतिषी प्रस्तुत लेख पर विश्वास ही नहीं कर सकता है। भारतीय परम्परा में दर्शन के छः भेद है लेकिन जोड़ा तीन है। जैसे 1. वेदान्त—मीमांसा 2. न्याय—वैशेषिक 3. सांख्य—योग। योगमार्ग प्रत्यक्ष करने का मूलभूत साधन है। तुलसी के द्वारा रचित ग्रन्थों का प्रयोग मन्त्रवत् होता है। जैसे "हनुमान बाहुक" का अनुष्ठान करने से सद्यः कष्ट का नाश होता है। रामचरितमानस की उपलब्धि प्रत्यक्ष है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

TS & FA-56

हिन्दू-धर्म के कतिपय प्रमुख पक्षों का वैज्ञानिक एवं आयुर्वेदिक मूल्यांकन

डॉ. सुभाषचन्द्र सचदेवा, सोनीपत

हिन्दू मनीषियों ने अपनी प्रातिभ अनुभूतियों के सौजन्य से अनेक वैज्ञानिक मान्यताओं को धर्म का कलेवर प्रदान करके एक अद्‌भुत कीर्तिमान स्थापित किया है। इस शोध पत्र में हम हिन्दू-धर्म के कतिपय प्रमुख-अनुष्ठानों, धार्मिक-संस्कारों एवं परम्परागत-मान्यताओं के वैज्ञानिक पक्ष को उजागर कर रहे है—

1. अग्निहोत्र— अग्निहोत्र संज्ञक यज्ञ में जो हवि घृत सामग्री आदि के रूप में डाली जाती है, वह नष्ट नहीं होती, अपितु सूक्ष्म रूप धारण करके वायुमण्डल में चहुँ ओर प्रसारित हो जाती है। यह प्रक्रिया आधुनिक वैज्ञानिकों को भी स्वीकृत है।

2. गायत्री आदि मन्त्रों की साधना— गायत्री मन्त्र में 24 अक्षर हैं, जिनका सम्बन्ध शरीर में स्थित ऐसी 24 ग्रंथियों से है, जो जाग्रत होने पर सद्‌बुद्धि प्रकाशक शक्तियों को सतेज करती है। जर्मन के वैज्ञानिकों ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है!

3. शौचादिकाल में यज्ञोपवीत को दक्षिण कान में धारण करने का कारण— आयुर्वेद के अनुसार लोहितिक नामक विशेष नाड़ी दाहिने कान से होकर मनुष्य के मलद्वार तक पहुँचती है। दक्षिण कान की इस नाड़ी को यज्ञोपवीत से दबाव प्राप्त होने पर मूत्रद्वार खुल जाता है और मलमूत्र विसर्जन आदि में बाधा नहीं आती।

4. शिखा रखने का वैज्ञानिक आधार— शिखा रखना और शिखा में ग्रन्थि लगाना भी पूर्णतः विज्ञान सम्मत है। विद्युत् शास्त्र का अटल सिद्धान्त है कि नुकीले पदार्थ विद्युत् शक्ति का भेदन करते हैं। अतः शिखा में ग्रन्थि लगाना विद्युत् सिद्धान्त पर आधारित प्रक्रिया है।

5. पूजामण्डप में कदली-स्तम्भ की स्थापना के वैज्ञानिक पक्ष— पूजामण्डपादि में कदली-स्तम्भ की स्थापना के मूल में केले का पर्यावरणीय महत्त्व ही प्रमुख आधार है। पूजास्थल पर कदलीस्तम्भ के निर्माण से वातावरण शीतल बना रहता है, जो यज्ञाहुति से उत्पन्न अग्नि के ताप को बढ़ने नहीं देता।

6. सूर्य को अर्घ्य देने (जलदान) का वैज्ञानिक रहस्य— सूर्य को अर्घ्य देने की प्रक्रिया के सौजन्य से टाइफाइड, राजयक्ष्मा एवं निमोनिया आदि रोगों का सूर्य किरणों से विनाश सम्भव है।

7. रुद्राक्ष के अद्‌भुत औषधीय गुण— वैज्ञानिकों के अनुसार रुद्राक्ष में पेलिमिटिक, एसोपेलिमिटिक, लिनोलिक मिरिस्टिक आदि एसिड होते हैं, जिनकी सहायता से रुद्राक्ष मस्तिष्क से सम्बन्धित रोगों, मिर्गी एवं अस्थमा के उपचार में उपयोगी सिद्ध होता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

8. पंचगव्य का आयुर्वेदिक एवं वैज्ञानिक महत्त्व— आयुर्वेद के अनुसार पंचगव्य (गाय का दूध, दधि, घृत, गोमूत्र एवं गोबर) रक्त के समस्त विकारों का नाशक, कफ, वात एवं पित्तजन्य तीनों दोषों, हृदय के रोगों आदि को दूर करने वाला है।

9. तुलसी, नीम एवं पीपलादि वृक्षों की आयुर्वेदिक एवं विज्ञान सम्मत उपयोगिता— तुलसी, नीम एवं पीपलादि पर्यावरण की विशुद्धि के आधायक तो हैं ही, इसके साथ-साथ पित्त, कफ, वात आदि के निवारक, चेचक एवं महामारी आदि रोगों के भी नाशक हैं।

❖

TS & FA-57

चित्रकाव्यों की परम्परा में महाराज दुर्जनशल्य चित्रकाव्य

डॉ. (श्रीमती) सरिता भार्गव, राजस्थान

स्फुट व्यंग्यार्थ का अभाव रहने पर शब्दालंकार अथवा अर्थालंकार आदि से जिसमें वैचित्र्यमूलक या अर्थवैचित्र्यमूलक कोरे चमत्कार की उद्‌भावना की जाती है, उसे चित्रकाव्य कहते है। इसमें शब्दों या अर्थों का खिलवाड़ या व्यायाम ही कवि का अभिप्रेत होता है।

'आश्चर्याभिलेख्ययोः चित्रम्' (अमरकोश) के अनुसार चित्र शब्द का प्रयोग आश्चर्य एवं आलेख्य दो अर्थों में होता है। मम्मट, रूय्यक, जयदेव, विश्वनाथ, अप्पयदीक्षित इत्यादि प्रमुख आचार्यो की दृष्टि में आलेख्यता ही चित्र है। लोकोत्तर वर्णन निपुण कवि-कर्म ही काव्य है।

शब्दचित्र एवं अर्थचित्र चित्रकाव्य के दो भेद है। चित्रबन्धकाव्य भी इसका परवर्ती भेद है, जिसमें खड्ग, पद्म, हार, मूसल, हल इत्यादि को रेखाकृतियों में बद्ध, सप्रयास रचित पद्य प्राप्त होते है।

काव्य के संदर्भ में दो मत परम्परा में प्रचलित है—1. शब्दार्थः काव्यम् 2. शब्दः काव्यम्। भामह, वामन, मम्मट इत्यादि आचार्य प्रथममत के प्रतिपादक है जबकि दण्डी, जगन्नाथ द्वितीय मत के। दण्डी काव्यशरीर को "इष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली" मानते हैं तो जगन्नाथ "रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्" कहकर चमत्कार को रमणीयता का आधार स्वीकारते है।

18 वीं शताब्दी के आचार्य हरिप्रसाद ने तो 'काव्यलोक' नामक अपने ग्रन्थ में 'चमत्कार एव आत्मा काव्यस्य' कहकर चमत्कार को काव्य की आत्मा स्वीकारा है।

चित्रकाव्य आचार्यो द्वारा समादृत नहीं हो पाए हैं। आनन्दवर्धनाचार्य, मम्मट, पं. जगन्नाथ, रूय्यक, अप्पयदीक्षित, विद्याधर, विश्वनाथ, दण्डी, नरेन्द्रसूरि इत्यादि आचार्यो ने चित्रकाव्यों को अधम, अवर, अधमाधम, अकाव्य, नीरस, दुष्कर दुर्बोध, व्युत्पत्तिप्रदर्शनमात्र इत्यादि संज्ञाओ से अभिहित कर इसे रसवीथी से बहिष्कृत किया है। किन्तु फिर भी वैदिककाल से अद्यावधि चित्रकाव्यों का सृजन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरन्तर होता चला आ रहा है। इन चित्रकृतियों के माध्यम से वर्णित महाराज के जीवन चरित्र के एक नए पक्ष को उद्घाटित कर इतिहास के साथ उसकी सम्बद्धता का अन्वेषण के प्रयास प्रस्तुत शोध पत्र में किया गया है।

❖

TS & FA-58

संस्कृत कृषिविज्ञान और प्राचीन उद्यानिकी

डॉ. नीरज शर्मा, अलवर

संस्कृत वाङ्मय मे समाहित भारतीय वैज्ञानिक विरासत का एक समृद्ध अनुशासन कृषि विज्ञान है। विज्ञान की इस अन्यतम धारा का प्रवाह वैदिक साहित्य से प्रारम्भ होकर आर्ष साहित्य, पौराणिक साहित्य और शास्त्रीय साहित्य में प्रशस्त होता हुआ ललित साहित्य तक जाता है। प्राचीन परम्पराओं और मान्यताओं में विज्ञान की यह शाखा खूब फली फूली। संस्कृत कृषि-विज्ञान कृषि, पशुपालन, समाज और प्रकृति के परस्पर सौजन्य को संपोषित करता है। यह भविष्य की चुनौतियों और खाद्य सुरक्षा के लिये दीर्घकालीन या लागत पर उत्पादन और गुणात्मकता का स्तर कायम रखता है।

संस्कृत कृषिविज्ञान में प्रशस्त की गई तकनीकें भूमि की उर्वरता में सुधार, उसकी जैवसम्पदा और जैविक विविधता को बचाती है। यह देशकाल और परिस्थितियों के अनुरूप निसर्गतः उपलब्ध अक्षय संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग और प्रतिदाय पर आधारित कृषि-पद्धति है। पशुपालन और कृषि पूरक हैं और ग्रामीण विकास के मूल आधार हैं। समृद्ध राष्ट्र के लिये समृद्ध कृषि आवश्यक है।

प्राचीन मनीषियों ने अपनी सीमाओं में कृषिकर्म पर व्यापक वैज्ञानिक चिन्तन किया और समय-समय पर साहित्य और शास्त्र में इसे स्थान दिया। इन्होंने कृषि पशुपालन और सामाजिक वानिकी को सुदृढ़, सांस्कृतिक आधार प्रदान किया। बृहत्संहिता, शार्ङ्गधरपद्धति, काश्यपसंहिता, शिवतत्त्वरत्नाकर, अर्थशास्त्र, शुक्रनीति, अग्निपुराण, चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिता, मयमत, मानसार और अन्य पौराणिक साहित्यों में यत्र-तत्र कृषि सम्बन्धी विचार समुपलब्ध होते हैं। उद्यान विज्ञान पर कतिपय विशेष प्रकरण हैं जिनके अन्तर्गत वृक्ष महिमा, मृदाचयन, वर्गीकरण और उपचार, पादप रचना विज्ञान, बीजवपन और उपचार, पौधनिर्माण, सिंचाई व जल-प्रबन्धन, पादपरोग, बचाव और चिकित्सा, पादपपोषण और उर्वरक निर्माण की विधियाँ, वाटिका या उपवन निर्माण तथा नगर नियोजन आदि के विषय में समृद्ध वैज्ञानिक चिन्तन उपलब्ध होता है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

TS & FA-59

संस्कृत साहित्य में पर्यावरण संरक्षण : एक वैज्ञानिक दृष्टि

डॉ. नन्दन भार्गव, कोटा

जल, थल एवं वायु प्रदूषण को नियन्त्रित करने हेतु संस्कृत साहित्य में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अध्ययन किया गया है। वेद, गीता, पुराण एवं महाकवि कालिदास के साहित्य में पर्यावरण के विभिन्न घटकों का अध्ययन कर आधुनिक वैज्ञानिक तकनीकों से तुलना की गई है एवं यह तथ्य स्थापित किया गया है कि वेदों से लेकर कालिदास, दण्डी, बाण आदि ने पर्यावरण संरक्षण को एक अपरिहार्य-कार्य के रूप में वर्णित किया है।

पृथ्वी पर जीव जन्तुओं की कुशलता हेतु वैदिक वाङ्मय में पर्यावरण संरक्षण, जल-प्रदूषण, थल-प्रदूषण, एवं वायु-प्रदूषण तथा शोधन के उपायों का विभिन्न वैदिक ऋचाओं में वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अध्ययन किया गया है।

❖

TS & FA-60

धन्वन्तरि-योग : एक चिन्तन

श्री अनिल देशमुख, दुर्ग

अमृत मंथन के समय चर्तुदश रत्न समुद्र से निकले, जिसमें धन्वन्तरि अमृतकुंभ को लेकर बाहर आए। अमृत कुंभ प्राप्त होते ही मंथन समाप्त हुआ। चिकित्सा विज्ञान में आज इसी धन्वन्तरि को आदि पुरुष माना जाता है। चिकित्सक द्वारा आज समय-समय पर इनका स्मरण कर धन्वन्तरि याग का अनुष्ठान करते हैं। इस याग का उद्देश्य स्वास्थ्य लाभ करना है। यज्ञ से स्वास्थ्य लाभ का सम्बन्ध प्रत्यक्ष और सप्रमाण सिद्ध है। अग्नि देवताओं का मुख कहा जाता है। अग्नि में आहुति डालने से और विवक्षित देवता का आह्वान करने से वह आहुति अभीष्ट देवता को प्राप्त होती है।

अग्नि तो अनल—अर्थात् अलम् न है। जिसका आशय है—अग्नि कभी भी बस या यह पर्याप्त है, ऐसा नहीं कहता। तब आहुति देवता तक कैसे पहुंचती है। इसका समाधान प्रस्तुत लेख में किया गया है।

❖

TS & FA-61

प्राकृतिक-चिकित्सा विज्ञान

श्रीमती अनिता देशमुख, दुर्ग

महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के चतुरस्र कवि हैं। उनके साहित्य में जीवन का कोई भी पक्ष अछूता नहीं है। उनकी शास्त्रीय दृष्टि समस्त शास्त्रों का अवगाहन कर एक प्रशस्त मार्ग की दिशा दिखाती है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान युग में मानव विज्ञान की चकाचौंध में कभी-कभी दिग्भ्रमित हो जाता है। वह शान्त होकर प्रकृति के अत्यधिक सन्निकट रहना चाहता है। चिकित्सा क्षेत्र में भी अब प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान की ओर मनुष्य की रुचि बढ़ रही है। कालिदास की शकुन्तला जब काम ज्वर से अत्यधिक पीड़ित थी, तब कवि उसे शीतल जल की फुआर से युक्त कमल दल के पंखे से हवा करता हैं। यही प्राकृतिक चिकित्सा है। विश्व के समस्त प्राणी जिसके द्वारा प्राणवान है वह प्रकृति ही कालिदास की सर्वस्व है।

प्रस्तुत लेख में महाकवि के प्रकृति प्रेम को आधुनिक प्राकृतिक चिकित्सा के संदर्भ में प्रतिपादित किया है।

❖

TS & FA-62

म.म. श्री चन्द्रशेखर सिंह सामन्त की कृति : सिद्धान्तदर्पण

सुश्री चन्द्रश्री पाण्डेय, लखनऊ

भारत में बहुत से ज्योतिर्विद् हुए किन्तु उनमें सामन्त चन्द्रशेखर सबसे अन्त के ज्योतिर्गणितकार हैं, यह सभी मानते है।

चन्द्रशेखर श्याम बन्धु के पुत्र थे। ये सब भारद्वाज गोत्री थे। बहु अपत्यहानि से मर्माहत श्यामबन्धु और उनकी धर्मपत्नी विष्णुमाला शिव-पार्वती आराधना से पुत्ररत्न लाभ किये थे इसीलिए उस पुत्र का नाम चन्द्रशेखर रखा था। तो भी उनको अपवित्र "पठाणि" के नाम से बुलाते थे। ऐसे नाम रखने का तात्पर्य यही था कि तुच्छ नाम से बुलाने के बाद यम का भय नहीं होता है। ऐसा विश्वास उनके माता-पिता का था, इसीलिए पठाणि सामन्त नाम से सारे उड़ीसा के लोग जानते थे।

वे मधूसूदन महापात्र से दीक्षा लिए थे। उनके विद्या गुरु का नाम आनन्द मिश्र था। कलिगत 4936 अब्द में जन्म हुआ था। मात्र 34 वर्ष की उम्र में ही उन्होंने सिद्धान्त-दर्पण की रचना की थी। मुकुन्द देव के चौदह अंक तथा 1814 शकाब्द में सिद्धान्त दर्पण की रचना समाप्त हुई थी। खिष्टाब्द के हिसाब से देखने से उनका जन्म 1835 सन् में होता है। सिद्धान्त दर्पण का आरम्भ 1869 में और ग्रन्थ की परिसमाप्ति 1892 में हुई थी। मात्र 23 वर्ष की उम्र से ही यह ग्रन्थ की रचना में लगे थे एवं सारा जीवन ग्रहगणित और गृह-पर्यवेक्षण में व्यतीत किया। वह खुद को अधम एवं अज्ञ मानकर अति विनय से लिखे हैं कि मेरी बुद्धि देवाधीन होने से भगवद्-भजन में खुद को नियुक्त करके आगे बढ़ता हूँ। इसीलिए पतितपावन जगन्नाथ जी सिद्धान्त दर्पण में आलोचित है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

TS & FA-63

भगवद्गीता और आयुर्वेद

सौ. उषा श.पाटील, नाशिक

ओंकारोपासना का महत्त्व सभी योगशास्त्र, उपनिषद्, महाभारत, गीता और आयुर्वेद में भी अधिक स्पष्ट किया गया है।

'हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्। मानं तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्चते।'

यही आयुर्वेद की व्याख्या है। उसी तरह भगवद्गीता में भी आयु की तथा शरीर की व्याख्या की गयी है, जिसमें तत्त्व-प्रणाली अलग है, लेकिन हेतु एक ही है। संकल्पना ही वही है।

गीता में लिखा है कि शरीर, आत्मा शुद्ध हो तो जीवन सुखी, मोक्षप्रद होता है। अध्यात्म-मार्ग से अंतःकरण शुद्ध हो जाता है। वैसे ही आयुर्वेद में कहा है मनःशुद्धि बाह्यशुद्धि से अधिक-अधिकतर श्रेष्ठ है। गीता और आयुर्वेद में सुभाषित श्लोकों से यही बताया गया है।

पहिले शरीर और प्राण के बारे में देखो तो गीता ने शरीर को क्षेत्र और प्राण को क्षेत्रज्ञ कहा है।

❖

TS & FA-64

भारतीय-संस्कृति में पशुओं की महत्ता एवं उनका संरक्षण

डॉ. राकेश बाबू, दिल्ली

यद्यपि परमेश्वर द्वारा रचित विविध सृष्टियों में मानव का स्थान सर्वोत्तम है तथापि भारतीय संस्कृति में पशुओं का भी स्थान निःसन्देह महत्त्वपूर्ण है। ईश्वर ने विविध प्रकार के पशु-पक्षियों, कीट-पतंगों तथा वनस्पतियों की रचना इसीलिए की जिससे मनुष्य शारीरिक, मानसिक एवम् आध्यात्मिक उन्नति करता हुआ अपने परम लक्ष्य को प्राप्त कर सके। अतः इन निरीह प्राणियों की रक्षा करना तथा प्राकृतिक सन्तुलन बनाए रखना मानवमात्र का परम कर्तव्य है।

भारतीय संस्कृति में 'गौ' को मातृतुल्य पूज्य एवं पवित्र स्थान प्राप्त है। जहाँ गाय दूध, दही, मक्खन,घी आदि स्वास्थ्य के असंख्य गुणों को समेटे है वहीं पञ्चगव्य (दूध, दही, घी, गोमूत्र एवं गोबर) के साथ विभिन्न प्रकार की जड़ी बूटियों को मिलाकर वैज्ञानिकों ने असाध्य रोगों के उपचार की क्षमता को खोज निकाला है। उसका महत्त्वपूर्ण विशेषण कामधुक् अनेक स्थलों पर दृष्टिपथ को आकृष्ट करता है।

इसी प्रकार घोड़े, हाथी, मृग, कुक्कुर, कुक्कुट, मयूर आदि जीवों का ही नहीं अपितु भयंकर विषैले सर्प जैसे जीवों को भी नमन किया गया है। सर्प जैसे हिंसक जीव देवता की तरह संमान्य कहे गये हैं। नाग देवता को दुग्ध पान करा कर उसकी आराधना का वर्णन अनेक स्थलों पर दृष्टिगोचर होता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। ये जीव हिंसक होते हुए भी विषैली गैस को श्वसित कर उसे प्राणवायु में परिणत कर प्राणिमात्र का उपकार करते है।

इस प्रकार वैदिक उद्धरणों के माध्यम से इन जीवों के महत्त्व को प्रस्तुत करना तथा उनके संरक्षण के उपायों की प्रस्तुति इस पत्र का वर्ण्य-विषय है।

❖

TS & FA-65

शेखावाटी के भित्तिचित्रों में वैष्णव-धर्म का प्रभाव

डॉ. पुष्पा दुल्लर, राजस्थान

मानव की समूची संस्कृति और सभ्यता कृति, निर्मिति, भणिति और अभिव्यक्ति के रूप में देखी जाती है। ये सभी चेतना की प्रकट, प्रत्यक्ष और अनुभूत विभूतियाँ अथवा रूप हैं। रूप सृजन का प्राण तत्त्व है। समग्रता, अखण्डता, लंय, गति-संगति आदि रूप के विधान हैं। क्रम व्यवस्था रूप के फल हैं। अत एव रूप का सम्बन्ध जीवन से है और इसीलिए सृजन की जीवन-प्रवृत्ति मौलिक प्रवृत्ति है। रूप का विकास एवं विस्तार किसी न किसी माध्यम से रसानुभूति कराने में सहायक रहा है। कला एक ओर सन्देशवाहक रूप में रही, वहीं दूसरी ओर उसने आध्यात्मिकता का मार्ग भी प्रशस्त किया। आध्यात्मिकता के मार्ग में धर्म उसका प्राण-तत्त्व रहा।

मध्ययुगीन वैष्णव भक्ति-सम्प्रदायों के भक्तितत्त्व का समावेश जहाँ एक ओर साहित्य एवं संगीत में हुआ, वहीं कला में भी इसका विस्तार बढ़ता गया। परिणामस्वरूप रचना के क्रियात्मक स्वरूपों के सथ वैष्णव प्रभाव संरक्षित होता गया। कला इसका सशक्त माध्यम रही।

राजस्थान के शेखावाटी क्षेत्र में 18वीं, 19वीं शताब्दी की बनी हवेलियों, किलों, महलों, मन्दिरों, बावड़ियों एवं छतरियों में बने भित्तिचित्रों में वैष्णव-धर्म के विविध रूपों को विस्तार दिया गया, जो अपनी आरम्भ से ही स्थूल से सूक्ष्मता की ओर की गई यात्रा का वृत्तान्त कहती हुई प्रतीत होती हैं; जिनमें श्रीराम, श्रीकृष्ण तथा अनेक अवतारिक लीलाओं जैसे विषय को हवेलियों के भित्तिचित्रों के रूप में अभिव्यक्त किया है। शेखावाटी के भित्तिचित्रों में एक विचित्र प्रकार का जैविक सामंजस्य देखने को मिलता है। किन्तु वैष्णव-धर्म का विशेष प्रभाव ही शेखावाटी भित्ति-चित्रकला को विस्तार एवं ऊर्जा रूप में संरक्षित किये हुए हैं।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

TS & FA-66

Technical and Scientific Elements in Sanskrit

PROF. HARI DUTT SHARMA, ALLAHABAD

The section 'Technical Sciences and Fine Arts' in relation with oriental studies attaches more and more importance in the modern perspective. A new trend to investigate science and scientific elements in Sanskrit has emerged in the fields of Sanskrit research. A lot of research papers, research projects and books are being published. Research scholars are working on such subjects in several universities and institutions. A great variety of works display the existence of elements of various sciences like physics, chemistry, astrology, medicine, mathematics, biology, botany, cosmology, agriculture, architecture, etc. in ancient Sanskrit scriptures. 'Āyurveda' and 'Yoga' are terms of global parlance and recognition. National and international seminars have been organized on these themes.

In addition, the use of Computer and Internet has revolutionized the field of Sanskrit studies. Some technical institutions have prepared database of Sanskrit language in scientific manner. Some IITs offer Diploma courses in Vedic Computer Science, Ancient Indian Mathematics, Ancient Indian Science and Technology. Some scientific and technical institutes are working on Sanskrit Internet projects. A good number of systematic researches in Sanskrit are being done on the Fine Arts subjects like music, dance, dramaturgy, prosody, painting, sculputre, etc. and are being interpreted in terms of sciences. Thus Sanskrit is not only a scientific language but also a language enriched with scientific and technical literature.

❖

TS & FA-67

Puruṣottama Kshetra : A Prime Point of Tantrism

DR. BALARAM PANDA, CUTTACK

The name of Uddiyānā has been found in Kulārṇava Tantra which Peeṭha indicates as a Mahālaxmimaya and the word Mahālaxmimaya is connected with Śrīkshetra. A large number of Tantras have declared that Jagannātha Peeṭha is called Uchhiṣṭa Peeṭha, Jihvā Peeṭha and Pādapeeṭha etc. Some scholars say that the another name of this Peeṭha is Saptābaraṇa Peeṭha, because seven (7) Peeṭhas are situated surronding this Jagannātha Peeṭha. These are Śrī Peeṭha, Rāma Peeṭha, Shakti-Peeṭha, Bhairavī Peeṭha, Rudra Peeṭha

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

and Bhairava Peeṭha. Bruhatnīla Tantra also says that the Nīla Parvata (Nīla hillock) is another Peeṭha from amongst fifty two (52) Peeṭhas of which Nīla parvata (Nīla mountain) is used as Śhrekshetra. According to Paraśurāma Kalpasūrtra and Śrīmad Bhāgavata, the worship of Jagannātha should be performed in three different ways namely Vedic, Tantric and Mishra mode. It is mentioned in the Bhāgavata that those who are desirous of attaining *mokṣa* should worship the lord in both ways Vedic and Tantric. Another interesting feature seen in the ritualistic worship in the Jagannātha temple is the Tantric Pañcamakāra, where fish is substituted by green vegetables mixed with Hiṅgu, meat by Adapāchedi (ginger), wine by green Coconut water offered in bell metal posts, grain by kānti a preparation of flour and sugar and maithuna by the dance of Devadāsī and the offering of Aparājitā flower and sugar. In the temple of Lord Jagannātha of Śhreekshetra there are many kinds of Goddess Kutama Chanḍī, Maśāṇī Chaṇḍī, Khambakālī, Beḍhākālī, Mahākalī, Bāṭamaṇgalā, Khamba Maṇgalā, Vimalā, Kamalā, Jhāḍeswarī, Śitalā, Khamba Vimalā and Uttarāyaṇī, etc.

Like the outside of the temple (Beḍha) Rāmachaṇḍī, Harachaṇḍī, Ālamachaṇḍī, Bārāhīchāmuṇḍā, Bānkimuhāṇa Rāmachaṇḍī, Śyāmākālī, Dakshinakali, Batakāli, Gachhakāli, Bātamangalā, Ghātamangalā, Marichai, Nārāyaṇī, etc. have been seen. In the month of Āśvina during the time of solapūjā (Worship of sixteen days) these Goddesses are worshipped following the Tantric method by worshipers. So Tantric scholars have identified the great Jagannātha Peeṭha a Tantric Peetha of Orissa.

❖

TS & FA-68

The Art of Meditation in Thirty Two Lotuses Located in Body as per Lakṣmitantra of Pāñcarātra Āgama

DR. MRS. RAJNI PATKI, PUNE

The art of meditation is taught by Lakṣmi in Lakṣmitantra of Pancarātra Āgama. Lakṣmi is teaching the importance of Hrim : the mystic mantra which is an epithet of Herself as a supreme Power. Hrim is as important as Om which is an epithet of Supreme Brahman or Para Vāsudeva as the text reads. Chapter 43 of the said book is devoted to the art of meditation on Hrim. Hrim denotes the supreme goddes either in the celestial human form or in the form of a dazzling flame, resembling golden solar luster. Lakṣmi is to be meditated in Hrim. The meditation starts from Mulādhara and reaches to Sahasrāra Cakra. Normaly, six cakras are mentioned in the yogic practice, however, Lakṣmi counts a total of thirty-two cakras and speaks about twelve cakras more than once, viz in ch. 43 and ch.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

50. In ch. 50 which is about the glory of Śrīsūkta, Lakṣmi is praised as Padmamālinī, one of Her adjectives from Śrīsūkta. In this chapter the adjectives of Śrī are supposed to be Her names and each name is described there-in along with the mantra formation of it. While describing the name Padmamālinī, Lakṣmi speaks about her Kuṇḍalinī form. Kuṇḍalinī crosses all of the thirty-two cakras while travelling through Suṣumnā chanel. In this form She is supposed to be goddess Herself. So while going through the different cakras : lotuses in looks that She has worn the garland of 32 lotuses. These lotuses are not described in 50th chapter because those are already described in 43rd chapter as the centres of meditation. The seeker has to meditate on these chakras for the darśana of Lakṣmi. In this paper it is proposed to describe the art of meditation, as per 43rd chapter.

❖

TS & FA-69

The Shape of the Earth : The Discovery of Bhāskarācārya

DR. BRAJA SUNDAR MISHRA, ORISSA

It is very well known to the scholarly-world that the shape of the earth is round. The present day science, with its advanced technology and satellite-pictures, has proved so. But the utmost wonder is that this truth was brought to light some nine hundred years ago without the help of any so-called technical advancement of science. Bhāskarācārya, a transcending genius and Indian astronomer had written a time-transcending work called Siddhānta-śiromaṇi in which he stated that the earth is round like a wood-apple and its north-pole and south-pole are equal. So the credit of discovery regarding the shape of the earth should go to none other than him.

❖

TS & FA-70

Sudarśana-Narasiṁha Yantra : Diagrammatic and Iconographic Illustration

DR. P.P. APTE, PUNE

Out of four self emanated (Svayaṁvyakta) sacred seats of Viṣṇu two are located in Tamilnadu, one in Karnataka (Melkote) and one in Andhra (Tirupati). The two Viṣṇu temples in Tamilnadu are respectively Varadarāj Temple in Kanchipuram and Ranganātha Temple in Śrirangam, near Trichi. Both these temple complexes have separate shrines accommodating a typical image which is actually a Yantra made in stone. This is a rare

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

feature of iconography influencing and moulding architectural norms. These small shrines have an altar in the centre over which the Sudarśana-Nṛsimha Yantra has been installed. The mode of having Darśana and Pradakṣiṇā is also a rare phenomenon; because the icon is to be viewed like a coin having obverse and reverse aspects. On the front side Lord Sudarśana with multiple (16) arms is carved in human encircled form and the image of Nṛsimha is carved on the reverse side. Naturally the devotee enters through front door and gets darśana of Lord Sudarśana. Thereafter when he takes on full pradakṣiṇā for Sudarśana he also gets darśana of Nṛsimha but only half pradakṣiṇā completes, when he repeats the pradakṣiṇā exercise and completes full pradakṣiṇā of Nṛsimha, by that time one and half pradakṣiṇā of Sudarśana has been completed. Thus even when one completes one thousand pradakṣiṇā, there is always one integer for one god and one fraction for the other deity. This paper is proposed to describe the details of the two shrines at Kanchi and Śrirangam respectively.

❖

TS & FA-71

Vedic Mathematics : Contribution of the Vedas towards the Development of Mathematics

DR. PARVATI BANERJEE, VARANASI

The main source of our knowledge are the Vedas. Sacrifice was prime vocation of Vedic people, so they showed their special interest towards geometry to construct Vedic altars of specific size and shape. The construction of these altars has been based on Ṛgveda (I.170.4)—'*araṃ kṛṇvanto vediṃ*.....etc.'

The Śulva-Sūtras are the supplementary portions of the Kalpa-Sūtras. The Śulvakāra (geometrician) Baudhāyana had knowledge of square, rectangle, triangle, circle, trapezium and various other diagrams and transformation of one figure into another. A general statement on 'Theorem of Square on the Diagonal' (B.ŚulSū I.48) was enunciated. He suggested triplets expressed in rational as well as irrational numbers.

In the Yajurveda (XVIII.24-25) the concept of odd and even numbers and the arithematical progression is concealed. The Yajurveda (XVII.2) mentions the numbers 10^0-10^{12} (*eka-parārdha*). In the Vedic period the numbers three and its multiples and seven and its multiples got a prominent place among the several numbers which are considered sacred. It is stated in the Atharvaveda (V.15) when zero is put after a digit it increases by ten.

This paper throws light on the Vedas for the development of mathematics.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

TS & FA-72

Population Related Enviromental Thinking in South-East Asia : An Overview

BINAY KUMAR BHATTACHARYA, W. BENGAL

At the current population growth rate of about 2.6%, the growth of population, of unchecked more than half of the developing South Asian countries like Singapore, Korea, India, Nepal, etc. would be unable to feed their population by the end of this decade. Any given environment in a particular space and time provides the sustainable carrying capacity for a certain population, which is steadily decreasing with such an alarming growth. With slowing population growth by way of providing easy access to family planning information and resources to the individuals would reduce the per capita demand for environmental resources, thus enabling to invest more in education, health care and job ceation. Responsible environmental management and appropriate family planning measures are therefore the two major concerns for better socio-economic development in this part of the globe.

❖

TS & FA-73

Nutritional Guidelines : Spotlight on the Caraka-Suśruta Saṁhitās

DR. SUKLA DAS, KOLKATA

Food has been studied from the views of multiple disciplines but one mainstream of scholarly activity is centred round the science of nutrition. In fact in modern medical science diet has come under a sharp focus and this is an era of nutritional research.

The nutritionists, while articulating guidelines, have noted that the early medical observers did recognise relationship of food and disease and use of food and diet in therapy was clearly advocated by the ancients. Significantly nutrition-awareness is not a recent phenomenon but a dimension of human culture throughout history.

In nutrition studies therefore surfaced a trend to look to social sciences for ancient insights. Interest in this has been spurred on by the development of health history and the history professionals too are endeavouring to chronicle attitudes towards this facet in ancient cultures.

In this context it is important to note that the early Indian culture contains the most pertinent nutritional guidelines which are not only exciting but they have stood up to the

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

test of time and this paper intends to underline this in the light of Caraka-Suśruta Saṁhitās, two outstanding medical classics of early India.

❖

TS & FA-74

Vedic Tantrism as Reflacted in the Ṛgvidhāna

DR. (MRS.) BIDYUT LATA RAY, ORISSA

Vedic Tantrism commences from the composition of the Ṛgvidhāna by Śaunaka. This text is the earliest Vedic manual of magic or magicoreligious rites and practices. It anticipated the forth coming growth of Tantric ritualism, while its real significance lies in simplification of 'complicated and burdensome ceremonies treated in Śrauta and Gṛhya Sūtras et seq. in such a way that observances become easier in practice.'

The Vidhāna texts are important in the history of Vedic literature for more than one reasons. They mark a new period of literature and a new outlook in the religious life of India, since they were written with a practical object in view, i.e. The simplification of the complicated and burdensome ceremonies treated in the Śrauta and Gṛhya Sūtras. Śaunaka and Kātyāyana who are mentioned as the authors of the Ṛg and Yajur-Vidhānas respectively have distinguished themselves in branches of the post-Vedic literature, particularly in the Anukramaṇīs and Prātiśākhyas. Śaunaka's Anukramanīs give details about seers, deities, metres, Anuvākas and Sūktas. Two of his other works, viz., Bṛhaddevatā and Ṛgvidhāna give the legends concerning the deities and the magical effects produced by the recitation of Ṛgvedic hymns respectively. All these works are intimately connected with the Vedāṅga literature which had its sources in the Brāhmaṇas.

❖

TS & FA-75

Medical Profession and diseases in the Atharvaveda

PROF. PRADYOT KUMAR DATTA, KOLKATA

Knowledge of Medical profession as evinced from the Vedic texts, is laid down with referance to the corresponding practice of incantation which is supposed to have prevailed during the Vedic period. The profession was held in high esteem through the praise of the twin gods, the Aśvins by their various benevolent deeds as physicians and surgeons. As such medical profession developed in the later India in areas of disease diagnosis, characteristics of ailments, preparation of herbal drugs through mixing various herbs.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The Veda recognizes the ills caused by demons, evildoers, etc. as the causes of diseases, for which the process of incantation is largely used. The influence of the Vedic knowledge of herbal medicine on the Atharvaveda accompanied by an appreciation of the knowledge to the advancement of ancient Āyurvedic system of medical science has been dealt with in this paper.

As for herbal medicine there are some medical properties of plants, trees, use of herbs combined with spells, and of water. The Atharvavedic treatment was the use of herbs for the remedial character. There are some prayers for health and long life designate as āyuṣya hymns that are chanted to achieve longevity. A scientific method to regard the selection of herbal medicine and a good number of spells for restoration of harmony is socially noted in the Atharvavedic text.

❖

TS & FA-76

Simple motions and high theories in physics

RAMASHISH PRASAD SINGH, BEGUSARAI

The subject is very clear that the difficult theories and problems are beside simple events, simple idea, and simple experiment.

We start from the age of Neuton. Neuton saw a falling apple from the tree and this event gave invisible results in the form of law of gravitation. This gives the universal gravitational constant and due to gravity.

Gravitetional form is given by $F = \frac{GMm}{d^2}$

When d is the distance set n two messes M and m. Also we find the concept of e scope velocity as Vescape = $\sqrt{2gR}$ when R - redies of the earth.

The stability of a setelite in the sky is set beside the law of gravitation. Also the Rockets are giving new information about different celestial bodies. Our life on the surface of the earth, is always besids on the functioning of setelite which give the feeling

The first law of motions was given by simple day-to-day feeling and observation. But the idea of imertia comes to us. Further we find the moment of inertia and radius of gyration for different types of bodies and how to use in different type of motions shall oscillations and oscillations of bodies, rotation of bodies.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The laws of simple pendulem comes from simple play 'Jhula' by Lord Krishna. By meesing time period of obcillation are calculate teh light of any montain.

We have heard a choes from a deep well. It is simple play. But this gives the measure of velocity of sound by which we measure the depth of an ocean.

In this way we conclude that simple and general ideas are base of Technical Science as Physics, which gives a new diamention to our knowledge and life.

❖

TS & FA-77

Antiquity of Vedas as revealed from the Śulba-Sūtras

DR. MOHAN GUPTA

Kalpa-sūtras containing the detailed methodology of performing various sacrifices have been counted among the six Vedāṅgas and there are two parts of it the Śrauta-sūtras, which are in a way manuals of sacrificial rituals and Śulba-sūtras, which give detailed geometrical principles for laying out pavilions, vedis, fire-places, fire-altars etc. as also the position of certain stars in the east to ascertain the Prāchī or the east-west line.

According to these sūtras the eastern direction can be found by looking at the Kṛttikās which do not deviate from the east, from the Śroṇā according to some scholars, from star Puṣya or the interval between the Chitrā and Svāti according to others. In fact all these statements are the various stages of time when these stars were our east and our tradition has recorded them as such, the latest being the stage of Kṛttikā where they say 'these Kṛttikās never desert the east' (कृत्तिकाः खल्विमाः : प्राचीं दिशं न परिजहाति) which is a clear reference to the times of the observation.

In this article as attempt has been made to find out the time astronomically when these respective stars were in the east. This provides the astral history of Vedic literature stage by stage for which corroboratory evidences are also available in Saṁhitās and Brāhmaṇas. This also provides a very reliable time frame for Vedic literature and culture to trace out and fix the antiquity of Vedas and Vedic culture and to facilitate research in this direction by other disciplines such as history, archaeology, linguistics, etc.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

TS & FA-78

Medical Science and the Atharva Veda

PRABHAT K. PANDEYA, VARANASI

The general impression about the Atharva Veda is that it is about esoteric formulae, magical incantation and hymns. The youngest of the Vedas, the Atharva Veda has such diversity of subjects that is difficult to find in the three Vedas. Of many subjects dealt with in it, there is a lot of material on health and medical sciences. There is no definite proof of the time when it was written. How can an *apaurusheya* work be dated? But one thing is certain that it precedes western medical science that has its origin in Greece. Hipocrates of Cos (460-370BC) is considered father of medicine who established medical school in Athens. Claudius Gaken (AD 131-201), another important name in western medical science, came much later.

This paper will discuss medical matters in the Atharva Veda. Not all *ricas* dealing with health and medical matters come true on scientific basis, but many do. Some are mere prayers or blessings for a long healthy life. Then human life was considered to be of one hundred. Not just living but living in good health with different sense organs working well.

In Atharva Veda we find matter on such diverse medical subjects as community health, immunology, infections, neurology, obstetrics, sleep, tuberculosis, cardiology, toxicology, physiology, opthalmology, urology, surgery, dermatology etc. What of interesting is that many things mentioned are now accepted by modern medical science.

TS & FA-79

Status of Sciences and Technology in Ancient India

SHANKAR GOPAL NENE

Did the ancient Indians have scientific temperament? *Vedas* came into being at least 5000 years ago, but the interpretation presented by the commentators of 700 AD onwards, including that of Sayana mainly, forms basis of understanding *vedas*, even in the modern era. Why Vedas are treasure of knowledge? What that knowledge really was? and where has that gone? Is it not the right time to reinterpret *Vedas*?

Vedas not only represent philosophical and spiritual achievements but they are also full of scientific knowledge. Evidences do exist not only relating to Indian sources but also Greek indicating advanced knowledge in the various disciplines of science and technology.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Detailed information exists on works in the field of Jyotish and mathematics (shulbashastra), physics, metallurgy, medicine, Heliocentric theory of gravitation, production technology, dyes and pigments, shipbuilding and navigation.

❖

TS & FA-80

Can Technology Really Help in Advancement of Sanskrit Studies

CHIRASHREE MUKHERJEE

'The Sanskrit language, whatever be its antiquity, is of a wonderful structure, more perfect than the Greek, more copious than the Latin and more exquisitely refined than either'. Sir Willam Jones. The near flawless suitability of Sanskrit is scientifically proved to be one needed for computer processing. This paper will focus on the advancement in the field of Sanskrit studies that we visualize through on going research in the field of NLP.

Recent developments in data-technologies like XML and XSLT have breathed new life in this discipline-significant work is in progress on information storage and transmisison. John Robert Gardner's recent work explores potential of electronic text technology, specifically XML and XSLT, in the study of mantra and text resources. The W3C voice browser working group has issued a new working draft specification for Natural Language Semantics Mark Up Langauge (LSML).

Using most of the discussed facilities catered by modern computational technology and its related fields specially NLP/NLU, a model will also be proposed in this paper for a prototype system, which can be successfully built and utiilized for facilitation of the scholars of manuscriptology.

❖

TS & FA-81

Subsistance to Government Servants According to Kautilya

PROF. RAMNIKA JALALI, JAMMU

The king should fix one fourth of the total revenue for the maintainance of his servants, He should look to the bodily comforts of his servants by praviding such emoluments as can infuse in them the spirit of enthusiasm to work.

The Chief of military corporations, the chiefs of elephants, of horses, of chariots and of infantry and commisioners be paid 8,000 panas per annum.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The Rtvig, the teacher, the minister, the priest, the commander of the army shall receive 48,000 panas per annum.

The superintendent of infantry, of cavalary of chariots and of elephants, the guards, the physician of the army, the trainer of horses, the carpenter and those who rear animals be paid 2,000 panas per annum. There are so many other categories of employees, those are not only maintained by king but also it is the duty of king to increase their subsistence and wages in consideration of their learning and work.

In case of pilferae of any type the king should change double of the amount or article from the culprits. Thus when both the receipts and expenditure are properly cared for the king will never find himself in finanacial difficulties.

❖

TS & FA-82

Mathematics in Sanskrit

DR. DAYA SHANKAR TIWARI, NEW DELHI

Ancient Sanskrit Literature has contributed a lot to the world civilization in different sciences. The science of Mathematics with all its branches such as Arithmetics, Algebra, Geometry and Trigonometry etc. was so well developed in ancient India that many modern scholars find to their dismary that some of the European discoveries had already been discovered in India long ago.

❖

TS & FA-83

Sketch of Professional Career

N.G. KINJAVADEKAR, VARANASI

By profession he is a Civil Engineer being a student of college of Engineering Poona. He was confered a degree in the year 1958. Having served in Bombay state transport corporation for a couple of years after which he joined Patel Engineering Company based in Bombay but was working all over India. He worked for 6 years in this company on their construction projects in Bhilai as well as Ranchi. He was entrusted an assignment of quantity survey and costing of the project.

The contructual aspects of Engineering Construction of Industrial nature as well as the economics and the financial aspects of project with the forecast of the projects was the keynote of his activities.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

TS & FA-84

Mathematics and Metrics

MRS. V. UMA MAHESWARI, CHENNAI

Chandas is indispensable for pefect pronunciation and interpretation of the Vedic texts. Versification of words in rhythmical lines and delightful to recite is called metre and the science dealing with that is called prosody or chandassastra, a vital accessory (anga) of the Vedas.

Mathematics forms the basis of most of the Indian Sastras. Even in the early vedic period the construction of sacrificial altars illustrate the principles of geometry. Thus the application of Sanskrit metrics pre-supposes the important of mathematics. Sanskrit metres mainly based on the number of syllables (aksaras) or syllabic instants (matras), the systematic arrangement of short and long syllables and pauses (yati) at regular instants.

The origin of differnt technical methods of metrical modifications goes back to Pingala's Chandas Sastra and he was followed by a host of metricists like Yayadeva, Virahanka, Kedara Bhatta, Hemacandra, Damodara Misra and others.

The procedures of solving the problem of metrical modification are absolutely mathematical. For instance,

(a) The Matra Suci indicating the possibilities of the occurrence of a particular group of matras is infact for instance the Fibonacci Series where nth term is defined as tn = tn-1 + tn-2.

(b) The Varna suci indicating the possibilities of the number of occurrences of a particular gana follows the principle of Geometric progression with initial number (a = 2) and common ratio (r = 2).

This paper attempts to highlight the strong basis of mathematics in metrics.

❖

TS & FA-85

Prasnopanisad and Origin of Life : A comparative review with Biochemical Consideraitons

DR. MRS. VAIDEHI LIMAYE & DR. MRS. KANCHAN CHITNIS, MUMBAI

Everyone is born with an urge to live and grow and research into the fundamental aspects of life always makes a brave enquiry into origin of life. Pure sciences as well as

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

interdisciplinary sciences like Biochemistry have contributed in understanding about our beginning in their own ways directed by their inherent capacities to peep into this field. No wonder then those questions such as when did life arose? (1) who created the world of objects and how? (2) when was our mother earth born? were the fundamental questions asked by students in Vedic period and their intellectual thirst was quentched by the scientists of life-our Rishis.

In this paper, we make a small attempt to review theories about origin of life in the light of Prasnopanisad and Biochemistry. On comparing the theories put forth by scientists on origin of life with the explanation given to the queries in universe and of life from the interplay between matter and energy. Prasnopanisad, however goes a step further to state the creation of matter and energy. Modern scientists can use this dimension as an important too in deciphering the mystery of yet unsolved origin of life.

❖

TS & FA-86

Karmic and Planetary Astrological Action as a Causative Force

VARSHA SHAH, MUMBAI

The two effects Karma and astrological action are not identical but sufficiently similar. Their similar but peculiar characteristic are as follows :

1. Both are superior to spatial limitation.
2. Both have penetrative-quality.
3. Both are capable of differentiation irrespect of their : (i) nature, (ii) power.

From these similarity no valid inference can be followed. Somke and water-vapour are similar to each other, but inference of fire from water-vapour can never be valid.

❖

TS & FA-87

Mensuration in the Śulba : An Unexplored Area

RAMKRISHNA BHATTACHARYA, KOLKATA

The Śulbasūtras have been studied by scholars from Thibaut to Datta, Kulkarni, and Sen and Bag almost exclusively as the first texts of geometry in India. However, the Śulba is also the earlist source of learning how the art and science of mensuration came to be applied in piling the fire altars (*citi* or *vedi*) of different shapes. The *citis* were required to

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

conform to two fixed conditions : (a) the number of bricks should not exceed 1000, with 200 bricks in each of the five layers, and (b) the area must be 100, 800 squire *angulas* or *puruṣa*. The rectilinear *citis* were relatively simple but the curvilinear (*parimaṇḍala*) ones posed a challenge to the *Śulbavids*. They boldly faced the challenge by varying the shapes and sizes of the bricks some of which had one or two curved sides. This paper will provide the details of the areas of the bricks mentioned in the *Budhāyana* and *Āpastamba Śulbasūtras* and the problems the Sulbavids had to tackle.

❖

TS & FA-88

Vision of Well-being and Classical Sanskrit Literature : A Scientific Approach to Poetics

DR. KHAGENDRA PATRA, ORISSA

The term 'Well-being' implies all round development of manking which includes positive health. So considering the vision of well being as an effective means for peace, happiness and health care Indian Sages inspire mankind to enrich that sacred vision through various mantras and auspicious verses. In fact, God has given that vision to every human being. But person having materialistic attitude cannot believe in the role of well-being for health care. On the other hand it will be surprising to know that great scholars of Medical Science can visualize the medical value of this holistic vision and accordingly the present Medical Science defines health as a state of complete physical, mental and social well-being; and not merely an absence of disease or infirmity.

To overcome health problems through any alternative system of health care modern man seeks help from Sanskrit Learning which may also be helpful as a source of spiritual therapy in guiding mankind for reducing mental stress, physical strain and social evils.

In fact, Vedas, Ayurveda and some other branches of Sanskrit Learning help mankind for eradicating sufferings through certain technical principles. Moreover, Classical Sanskrit literature can also guide for happiness and health care through entertainment. So, Bharat Muni opines that the purpose of Literature is to cherish aesthetic pleasure that helps to create a state or relax (Visrāma) from stress and strain disorders. On the basis of his above-said scientific view it is proposed here to analyse the vision of well-being or health care as envisaged in some of the quotations from Poetics and Classical Sanskrit Literature.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

TS & FA-89

Surrealistic Art and the Surrealists

UMESH C. MAHAPATRA, ORISSA

This paper bears :

Introduction, Beginning concept, Surrealist Movement, Painting of Surrealistic Style, Creativity and Surrealism. Surrealist Revolution, Surrealistic painters :

(a) Paranoiac critical method, (b) Hallucination, (c) Precursors of Surrealism and Established philosophy of Surrealism.

❖

TS & FA-90

Dream : Appearance and Reality

DR. YOGANAND JHA, DARBHANGA

Dreams are visual images seen during sleep. They have fascinated mankind through the ages, and the writer since his very childhood, because his family members and he himself have often been dreaming of actual past, present and future events.

Psychologists Freud Jung and others explained that dreams express and fulfill the suppressed desire of the subconscious and gratify the ego, mystics and Patanjali traced its mechanism through Ida, Pingla and Sushumna to Manas Patal, but dreams comprehend much more than the present spatial and temporal order of the universe. In fact some of them transcend the limit of time and space.

Ceasers, death was foreseen by his beloved. Abraham Lincoln fore saw his own assination, the chemist Frederic discovered the benzine ring, the poet Coleridge the theme of his famous poem 'Kubla Khan' and novelist Stevenson his strange tale of Dr. Jekyll and Mr. Hyde in dreams only. So once the mystery is unravelled scientifically, it would change the concept of the whole modern universe.

During the waking period, the doors of perception are the five sense organs, and the route is the nervous system and the field of presentation to the attention is limited.

During the sleep these sensory organs become dormant. The route of perception changes and the stimuli in the form of energy waves course their way through any route to the conceiver cerebral cortex and the field of presentation enlarges to cover a vast area of space and time like Television and one can see the far away events and distant future.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Seeing the future conceives time, if it is the fourth dimension, whether time is existent or non-existent. So the types of dreams, their mechanism the real character have been ananlysed scientifically in this article with the contention that dreams are normal, physical, physiological and genecoded psychological phenomena.

❖

TS & FA-91

Food Technology in Ancient India

VID. H.S. HANUMANTHA RAO, MELKOT

Our ancient have proclaimed the eternal truh 'Jīvo Jīvati Jīvena', 'life gets sustained by life'. It has been the common experience of all of us too. Man is very much interested in hastening the pace of his evolution. So he has been using many a methods to modify the products of nature. Hence he has been devising techniques that enables him not only to enjoy the munificence of nature in the present but also to manipulate the very sources of sustenance, in such a way that faster evolution can become a certainty.

One such means has been food. Food is generally considered either as satiater of hunger or as a source of Gastronomic pleasures. But, our ancients have been of a different opinion. According to them food should not only be enjoyable, but should also help in increasing one's vigor, vitality, along with increasing the Sattva of man.....They have also been using food as a tool, to strengthen the system, so that, it can never fall prey to debilitating tendencies be it physical or Mental.

❖

TS & FA-92

Ayurvedic and Advaitic Texts Referred to by Ananda Raya Makhin in Jivanandana

MRS. JAYALAKSHMI BALASUBRAMANIAN, CHANNAI

Jivanandana, a rare and extra ordinary allegorical Sanskrit play is authored by Anandaraya Makhin of 18th Cent. AD. This play has its aim the everlasting bliss obtained by Jiva, the course of which is expounded by the author through the triple agency of Medical Science. Dramatic literature and concomitant methods of Vedanta expecially those of Advaita Philosophy.

This great poet Anandaraya Makhin, who has also delved deep in Ayurvedic literature, thought fit to bring out the principles of this science in the new form of a drama.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

For this purpose, the author has quoted from very ancient Ayurvedic texts like *Astangahṛdayam, Carakasamhita, Yogaratnakara, Dhanvantari nighantu, Susrutasamhita* and etc.

Like any other allegorical play, this play also deals with Vedantic philosophy especially Advaita Philosophy. Here the Hero Jiva, with the help of his counsel Vijnana and Jnana destroys enemies such as Rajayaksma and other diseases and thus achieves perfect bodily health and finally attains Jivanmukti through Sivabhakti for which the author quotes from many Advaitic texts.

This paper will focus upon various texts, both Advaitic and Ayurvedic quoted in this play.

❖

TS & FA-93

Mathematics in old Sanskrit Literature

SMT. RINA DUTTA & PROF. S.R. BHATTACHARYA, KOLKATA

In old days the knowledge of mathematics in India was not considered to be a matter of hindrance to spiritual knowledge.

Aryabhatta (499 AD) was the first to suggest the method of square root and cube root. He used algebraic method without stating it clearly. Here the authors have extended the method of Aryabhatta for determination of n-th root.

Though not in use due to the spread of education in English, the method is simple and easy to understand and should be taught as secondary level.

❖

TS & FA-94

Ibn al-Haitham and Astronomy

PRADIP KUMAR MAJUMDAR, KOLKATA

Ibn al-Haytham flourished in the period 965 1044 AD. His name was Abu Ali Al-Hasan ibnul Hasan ibn al-Haitham. In west he is known as al-Hazen. Originally he was from Basra of Persia (Iraq) and shifted to Ahwaz, Bagdad and ultimately settled at Cairo by the invitation of Khalifa of Egypt.

He was a versatile genius and studied various subjects e.g. number theory, algebra, geometry, astronomy, hydrodynamics as well as geometrical optics. He discarded the

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

theory of vision and light of Aristotle and Galen and set up the modern concept. He discussed different parts of eye and their functions. Also he solved the problem of optics with the help of rectangular hyperbola and circle.

❖

TS & FA-95

Crime and punishment in ancient India with special reference to Kautilya's Arthāśāstra

DR. TAPATI MUKHERJEE, KOLKATA

It is an accepted fact that since time immemorial, some unwanted and hideous crimes had always been perpetrated in different societies to endanger or interfere with the welfare and preservation of the society or to transgress established customs and individual rights. The state can never remain a mute spectator to such unwanted. incidents and as such, has to adopt the role of saviour of the life and property of the people. In tune with the proclaimed goal of Indian statecraft i.e. the establishment of a social order based on justice, equality and objectivity, our socio-religious preceptors, starting from Dharmasastra like Gautama and Baudhayana had framed elaborate rules to encounter different types of crime however trivial and insignificant they might appear. In a caste ridden society where social justice for all is indeed a difficult challenge to enforce, Kautilya, in his Arthasastra stands as supremo in his treatment of different kinds of crimes and the punishment to be meted out in each case. Despite the onslaught levelled against Kautilya by western political thinkers regarding his lacuna of scruples in recommending rathe. 'immoral' devices to curb crime whatsoever the fact remains that in case of emergencies, such devices, however unscrupulous they might be, appear indeed as desideratum.

The present paper will delve deep into Kautilyas polity, his approach to different kinds of crimes and the way he tried to safeguard the interest of the people against such atrocious activity. There will be a humble attempt also in this paper to assess the relevance of Kautilyas prescriptions regarding crime and punishment in modern perspective.

❖

TS & FA-96

Tridosha Tristmuna Three Pillars of Health

PROF. RUPALI KAPARE, PUNE

Aurveda is the science of life. The importance of Ayurveda is universally accepted. It is able to maintain the health of the body and peace of mind quite nicely. The purpose

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

of Āyurveda is 'स्वस्थ्य स्वास्थ्यरक्षणं आनुरस्य व्याधिपरिमोक्षः' So Ayurveda gives defination of स्वास्थ्य—

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलःक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

Sama (सम) means natural and balanced when Dosha, Agni, Dhatu and Malkriyas are properly harmonised and balanced, and a persons spiritual faculties are in accordance with the physical body then only a person is healthy.

Source of Āyurveda is in Vedas, Brāhmanas, Upanisads and Purāṇas. It can be righty considered as fifth Veda. The science of Āyurveda is developed by charaka, Susrut. Vagbhat Kāsyapa Saṁhitā is also important.

❖

TS & FA-97

Socio-Economic Status of Women in Ancient India

DR. BHARATI DIXIT, SAHARANPUR

Socio-economic status is the position occupied by a person, family or kinship group in social and economic system relative to others.

As far as the socio-economic status of women in the Ancient age is concerned, it was much better then that we ordinarily expect it to have been.

During the Vedic period men and women had equal status in society. In Vedas, we find prayers for the birth of a girl. Girls were educated like boys. They wore the sacred thread and used to pass through a period of Brahmacharya. Women used to recite Vedic Mantras, perform all Vedic rites and rituals, undertook Vedic vows etc. Apart from a literary career, women entered fields of teaching medicine, business, military and administration. The marriage of girls used to take place at an advanced age and that too with their consent.

In later Vedic period, the discontinuance of Upnayana, subsequently the neglect of education and lowering the marriage age lowered the status of women, though women were respected and protected in all circumstances in this age. They performed yajña even in this age. Sati and Pardāh systems were not prevalent in Vedic and later Vedic period.

When we pass from Epic age to the Smriti age, we see that the women were deprived of freedom, education and equality with the result. They were degraded in all spheres of life. The independent and confident woman of Vedic age suddenly found her

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

confined within the four-walls of dark and dreary homes. She came to be called Ablā. The age at marriage was fixed at eight.

Finally, we may say that in Ancient India there were distinct stages of the rise and fall of the status and role of women.

❖

TS & FA-98

Kuchipudi

DR. J. MANUEL, TIRUPATI

Kuchipudi, the indigenous style of dance of Andhra Pradesh took its birth and effloresced in the village of the same name originally called Kuchipuri of Kuchelapuram, a hemlet in Krishnā district form its origin as far back in the dim recesses of time as the 3rd Century B.C. It has remained a continuous and living dance tradition of this region.

The Kuchipudi dance is an outstanding contribution of the Andhra Region to the enrichment of Indian Culture. According to tradition Kuchipudi dance was originally performed only by men of Brahmin Community. There are so many mela's in Andhra and Karnataka. Kuchipudi Bhagavatha mela was one of them. The members of these melas received a broad cultural education in Sanskrit and Telugu literature. This art which flourished benign patronage kings, fell to evil days when the Vijayanagara empire began to decline. Kuchipudi dance reached its peack of development in the 14th Century.

The technique of Kuchipudi seems to be fairly similar to that of the Bharata Nàtyam dance in Tamil Nadu. In fact the Kuchipudi and Bhagavata Meal Nataka both stem from the mother art Bharatha Natya.

The Kuchipudi art started as a dance drama. It still largely remains so. Through the years technique of this art had developed to give scope to independent dance numbers as well.

❖

TS & FA-99

Mānasollāsa and Treatment of Elephant Science There in

DR. D. BUJARBARUA, ASSAM

The pleasing and queer appearance of elephant has been charming the people of all sorts from ancient times. It plays an important role in popular belief, religion art and

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

architecture and in practical use in war, sports, hunting, transportation etc. and thus occupies an considerable place in Sanskrit literature. Mānasollasa of Someśvara, a work dealing with almost all the branches of knowledge desired to be known by the king or persons related to the royal office, contains discussion about elephant in an explicit way. It brings into light the popularity and importance of the elephant in the society and thus let us know the way in which the animal science as a whole was cultured so comprehensively in ancient Indian society.

❖

TS & FA-100

The Ancient Indian Musical Instruments

SMT. S. SARADA, A.P.

Music in India is a science, an art and a religion. One often hears in India, the phrase 'Scientific music' and at first it sounds paradoxical to bracket cold-blooded science with emotional expression. 'It is a varitable instrument of yoga. So music is a good gift of God'.

Without musical Instruments there is no music identified. So the instruments are mainly clubbed with music. The History of man is the history of music. Man is the tone producer. It is said that the first cry of the child is also 'Aum'. This itself is an indication that music is a divine revelation. It is the eternal reality and the breath motion, which reveals the secrets of wisdom.

The musical instruments of India present a wonderful variety. As might be expected they are meant mostly for individual use, and there is very little suggestion of an Orchestra. The Indian Rājās maintained a number of fine musicians, but it is rare to hear Orchestral music in India. It is not however unknown, and one may sometimes hear Orchestral pieces at the concerts of the Gandhava Mahā Vidyālaya in Mumbai and Baroda. In order to see all the different musical instruments of India one has to journey to many different places. Most of the early musical Instruments remain still in use. The people of India have always been conservative in their tastes.

❖

TS & FA-101

Manuscript of Commentary on Carakasaṁhitā

DR. MITALI CHATTERJEE, KOLKATA

Carakanyāsaḥ is a commentary on Carakasaṁhitā. The date of this manuscript is 6th Century A.D. This copy is the earliest copy of manuscript on Carakasaṁhitā, so far our

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

knowledge goes. The author of this work is Bhāṭṭāra Hariścandraḥ. This manuscript bearing no. 5485 is preserved in the Government Orinental Manuscript Library, Channai. This is an incomplete manuscript. Only three chapters of sūtrasthāna of carakasaṁhitā have come down to us. This work deals elaborately with Tantrayukti, i.e. style of writing in ancient India. Forty different ways of expression of śāstra or treatise are described in this text. The present paper highlights all these aspects on Tantrayuktis or methodology of Theoretico-scientific treatises in Sanskrit.

❖

TS & FA-102

Horticulture in Vrikshāyurveda

PROF. M.V. PRAPHULLA

Vrikshāyurveda is one of the ancient Botany texts in Sanskrit language written by Surapāla. The title Vrikshayurveda means 'science of plant life'. It deals with 170 species of plants health and productivity. Surapala has included plants bearing fruits, flowers, and shade giving. His main intention in writting the Vrikshāyurveda is to ensure that conservation of plant diversity of selected species. Here people's beliefs; religious attitudes, superstitions and folk knowledge are well represented. The benefits for people by planting trees associated with religious merits, plant-man-god relationship is emphasized. He has concentrated on soil plant propagation, methods planting, nourishment, diseases, treatment, and horticultural wonders.

A few aspects of these topics as sample are described in brief in this paper.

❖

TS & FA-103

Speech Therapy by Lyrical Recitation of Sanskrit Stotras : A Myth or a Reality

DR. ASHA DESHPANDE, NAGPUR

A very small project is being presented where speech defects were at least partially corrected by lyrical recitation of some Sanskrit Stotras. It was found that there was limited scope for such therapy and the various factor for limitations are also discussed. The other important point taken into consideration is that whatever the cause of speech defect, the benefit from this form treatment is noted.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

This project is based upon the experiences the author had recieved at the time of therapy.

❖

TS & FA-104

Social Stratum and Agriculture in Early Mithila : A Study

DR. ANIL KUMAR CHOUDHARY, DARBHANGA

Mithila like other parts of India is an agricultural region since early period. The cultivable land, which formed the most important factor in production was known as Khetta. The importance of agriculture can be assessed from the fact that one of the eight acts for a king to attend was agriculture. The Samhitās and Brāhmanas speak of different seasons for the cultivation of different grain and also of the two seasons of harvest. The Brhadāranyaka Upanishad mentions ten kinds of grains, viz, *Vrihi* (rice), *Yava* (barley), *Tila* (sesamum), *Māsa* (beam), *Anupriyangavah* (panicummilicum), *Godhuma* (wheat), *Masura* (lentils), *Khalval* (pulses) and Khalakula-Kulatha (vetches or dehichos-uniflorus).

The word Kshetrapati, the lord of field, evidently refers to agriculture and social stratum. A Jatak story refers to the sowing festival as a great annual ceremony, when the king held the plough along with the peasants, conjures up a cheerful associate life and a full realisation of the community of agricultural interest.

❖

TS & FA-105

Techniques of Painting in Kerala with Special Reference to Silparatna

ANITHA K.R., KERALA

The archaeological records prove that since the middle of the 16th Century A.D. Kerala, the southern most province in India, flourished as a prolific centre of traditional painting. 'Citralaksana'.

The 'Citralaksana' section is the 46th chapter of the first part of Silparatna. It contain at the end of a volume that chiefly deals with Vastuvidya. i.e. the science of architecture. It seems that painting has been discussed here as a subject related to architecture.

The Citralaksana section deals with the following aspects of painting—Definition of painting, suitable themes for painting, preparation and application of plaster on the

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

wall, preparation of colour's, preparation and description of brushes, two types of painting etc.

The present paper pursports to analyse the contents and conceptual treatments of these subjects and a brief history of Kerala painting.

❖

TS & FA-106

Therapeutic Ethics in *Suśruta Saṃhitā*

DR. DALIA BANDURY, KOLKATA

Ethics is the basis of all studies. In the field of medicine it acquires greater significance medicine it *Sūśruta Saṃhitā* is the greatest work on ancient surgery. Here, too, the ethics of surgical treatment has been dealt with.

Surgery is the most effective method of curative aspect of *Āyurveda*. It can kill a patient instantly as well as cure him. So the question of ethics is very important here.

It involves the quality of learning and expertise of a physician. He must master several branches of medicinal study to be able to work perfectly. This expertise comes from direct learning from a preseptor and regular practice. It inclued attitude and conduct of the physician. Any one, deviating from such norms is not a real physician but a quack.

In this paper I propose to bring to light the ethics set by *Suśruta Saṃhitā* which will surprise us all by its logic and relevance.

❖

TS & FA-107

Folk Elements in Vedic Music

SM. BISAKHA GOSWAMI

Music of Vedic culture was besically the reflection of rich and well organized human thought. But at the same time is was extremely simple and possessed of so many elements of primitive music of the world. The classical (Sāstriya) music came into being later on.

The present paper is an attempt to trace the presence of primitive elements in Vedic music.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

TS & FA-108

Agronomic Concepts and Practices in the Arthashāstra

DR. (MRS.) NIRMAL TRIKHA, DELHI

The Arthashāstra is a wellknown treatise on statecraft. Kauṭilya is a renouned exponant of the art of agriculture also. One is amazed at the knowledge of the author in the field of agriculture. The work is of exceptional importence for knowing the agronomic concepts and practices of ancient India. The chapter XXIV entitled 'Sitādhyakshādhyāya' (Superintendent of Agriculture) asks the superintendent of Agriculture to be possessed of the knowledge of the science of agriculture dealing with the plantation of bushes and trees.

The chapter includes all the vital aspects of agriculture i.e. types of lands and crops, timely collection of seeds, necessary instruments, division of land according to quantity of rainfall, forecast of rain, sprouting of seeds and good harvest, growing different kinds of crops, selection and treatment of seeds, manuring, irrigation etc.

The study of Agronomic concepts and practices in the A.Ś. reveals that state Economy was mainly dependent on agriculture. Land distribution was observed as a factor of Economic development. The Agricultural Policy was framed to boost state Economy. The land which the Sitādhyakṣa had not managed to get cultivated was to be leased to tenant on crop-share basis. The land development policy was to benefit cultivators and provide relief to the lower socio-economic strata of rural India. Agriculture received policy and administrative support from Govt. Officials. Assistance was provided for supply of good seeds, labour, implements, bullocks etc. So that farmers are not hampered in their agricultural activities. The meteorological aspects of agriculture and measurement of rainfall are mentioned in detail. The astrological and astronomical aspects are also dealt with. The ideas of cultivating alternative crops and sustainable farming, formed part of the agricultural knowledge of that time.

The agronomic concepts and practices in the A.Ś. are worthy to be noted as these are relevant even to modern times. Validity of such concepts and practices should be tested to benefit the farmers of today and to achieve speedy Economic progress of the nation.

❖

TS & FA-109

Musical Aspects (Nāda) in Śivatattva Ratnākarah

E.R. SARASWATHI

Music is a proper form of devotion to God, apart from its entertainment value. Nāda is the basic for such music. The world of music relates to Nāda which is a

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

musical sound. It creates the bondage between the one who renders and the one who listens.

I resort to *Śivatattva Ratnākarah,* a classical work of Keladi Basavappa in Sanskrit language (1709 AD.) for this study. *Śivatattva Ratnākarah* is an encyclopedia, which gives information on all the important topics such as Fine Arts, History, Religion, Philosophy, Science, and Literature. It consists of 35000 slokas. *Nāda* is defined very well in *Śīvatattva Ratnākarah,* in addition to the other aspects of music.

Nāda is classified as *Āhata Nāda* and *Anāhata Nāda.* Anāhata Nāda, heard only by saints with great concentration of mind, is not very pleasing to the human ears because it has no Rakti. Āhata nāda, the one produced by the conscious effort of man, is pleasing to the world, used in the music that enables the mankind to cross the ocean of samsāra (bondage). Nāda plays a salient part in the Science and Art of Music as practised in this world and as cultivated in the heaven relates to Āahata Nāda.

❖

TS & FA-110

Home Remedies for Women Ailments (Ayurveda and Health Care of Women)

M.N. SHYLAJA, BANGALORE

Modern day is turning to new methods of healing other than just Allopathy and Āyurveda is the prominent one developing very fast as the Bio-Technology, such as :

(1) Origin of Ayurveda, (2) Concept of Treatment, (3) Ayurveda and Women, (4) Antenatal Care of Women, (5) Remedies for some common elements.

The need of today is to differentiate between qualified and quack doctors, develop scientific study and preservation of herbs, have a kitchen garden where medicinal plants are grown. Āyurveda is thus becoming the Science of Life.

❖

TS & FA-111

Viṁśottarī Daśā Prediction System

SARVANĀRĀYNA JHĀ, LUCKNOW

Viṁśottarī Daśā prediction system is a scientific theory by which one can predict the benific and the malefic effects of the planets on the basis of one's horoscope. The effects of Daśā are divided into two parts.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1. General effects : Effects caused by natural characteristics of a planet.

2. Distinctive effects : Effects are realized on the basis of the placement, Lordship, Carakārakas etc. But the ratio of the effects of the planets is in accordance with their strength. If the planet is in 1st Dreṣkāṇa, it gives the effects in the middle of Daśā. If the planets be in the 3rd Dreṣkāṇa it gives his effects at the end of the Daśā. The Daśā effects of retrograde planets, Rāhu as well as Ketu will always be realized in the reverse order described above. The effects of Daśās are favourable if the Daśā Lord be in the kendras, koṇas, exaltation, in his own sign etc. And the effects of Antardaśās are also favourable if the Antardaśā Lord be in the kendras or koṇas from the ascendant as well as from the Daśā Lord. Besides, if the Antardaśālord be in the eleventh house from the ascendant, in his own sign as well as in his own varga, in exaltation, in the friend's sign etc. And the lord of koṇas gives befefic effects if it does not become the lord of tṛṣaḍāya and did not place in tṛkabhāva or benefice the lord of tṛṣaḍāya as well as the lord of mārakabhāvas or in debilitation etc. The Antardaśālord also does not give good effects if the lord of Antardaśās are in tṛkabhāva from the ascendant or from the lord of Daśā; The lord of tṛṣaḍāya or tṛkabhāva but not carrying any special kind of Rājayoga etc.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Section - 14

WEST ASIAN STUDIES

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

WAS-1

Ancient India's Foreign Trade with East Asia

DR. RATAN LAL BASU, KOLKATA

The relation between India and East Asia may be traced back to the prehistoric age. During the hostoric period, this trade relation of India with the East Asian countries was maintaned. But till the Christian era, the evidences are based on discovery of Indian articles and use of Indian names in distant lands and mentions of India's trade with *Suvarnabhūmi, Suvarnadvipa, Javadvipa, Tāmradvīpa* in Buddhist *Jātaka, Rāmayana, mahābhārata, Purānas* etc. Ancient Tamil poems mentioned ports like *Barukachchha, Roruvā, Kāviri-Pattinum,* etc.

The spirit of maritime adventure of India found its full scope in the South East. Across the Bay of Bengal lay Indo-China and Malaya Archipelago. The eastern coast of India from the mouth of the Ganges to Cape Comorin was studded with ports, some of which are named in *'Periplus of the Erythrean Sea'*. The author refers to some of the far eastern countries as *Chryse,* i.e., the golden land. Ptolemy, in the second century A.D., knew the names of important trading centers in Malaya Peninsula and in the islands of Java and Sumatra. Buddhist texts, written about the same period, give a long list of the trading centers in the Far East, which agree fairly well with that of Ptolemy. These names were mostly in Sanskrit. Thus by the second century A.D., the Indians had developed important trade relations with the Far East.

During the Gupta Era, There was a regular trade relation between *Tāmralipti* and Ceylon, Indonesia and Indo-China. During the third decade of the sixth century A.D. there developed an inter-coastal trade route linking east coast of India with Ceylon, Indonesia and China.

Since the 8th century A.D. India's trade with East and South East Asia started declining and in course of the next 300 years it became almost insignificant.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Section - 15

MODERN SANSKRIT

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MS-1

आत्मानुसन्धानाख्यकाव्यस्य समीक्षात्मकमध्ययनम्

प्रो. अंबालालः प्रजापतिः, गाँधीनगर

स्वातन्त्र्यप्राप्त्यनन्तरं गुजरातप्रदेशे कविभिः विरचितेषु काव्येषु नानास्वरूपात्मकानि काव्यानि प्राप्यन्ते किन्त्वात्मकथारूपरूपात्मकं नैवोपलभ्यते काव्यमेकमपि। काव्यस्वरूपदृष्ट्या काव्यमिदं प्रथमवारमेव दृष्टिपथमायाति। एवमस्य गम्यते विशेषतानुक्तापि।

अनुष्टुप्वृत्ते चतुर्विंशत्यधिकशतपद्येषु प्रो. डॉ. अम्बालालप्रजापतिविरचितं कविराजाभिराजराजेन्द्रमिश्राय समर्पितञ्च काव्यमिदं न केवलं कवेः जन्मतः निवृत्तिपर्यन्तं जीवनघटनाक्रमं निरूपयति किन्तु यथास्थानं घटनानुरूपेण जीवनचिन्तनेन चिन्तकानां चित्तं चिन्तनाय प्रेरयति, काव्यतत्त्वेनालङ्कृतैः मनोहरैः पद्यैः भावकानां हृदयान्यपि सन्तर्पयति च।

एवं कवेः निवृत्तिपर्यन्तं जीवनकथां निरूपयन्ती काव्यस्यान्तिमे (124) पद्ये सर्वजनसुखाय प्रार्थनां कुर्वती श्लेषरचनया काव्यतत्त्वविद्हृदयमाश्लिश्य विरमति।

अङ्कारशास्त्रकोविदाः काव्यतत्त्वमर्मज्ञाश्च प्रो. डॉ. तपस्वीनामहाभागाः काव्यग्रन्थस्य पुरोवचने लिखति— 'प्रासादिकशैल्यां विरचितमस्य काव्यं नैकाभिः मनोहराभिरुपमाभिः सुशोभितमस्ति सुधास्यन्दिनीसूक्तिभिः जीवनदर्शनबोधकमपि भवति'।

❖

MS-2

चाणक्यविजयनाटकस्य वैशिष्ट्यम्

गिरिजाशङ्करपतिः, उड़ीसा

'पुण्यभूमौ भारतेऽस्मिन् विराजतेतरां संस्कृतभाषा सर्वभाषामुकुटमणिस्वरूपतः शाश्वतम्। प्रातःस्मरणीयैः प्राक्तनैश्चाधुनिकैर्मनीषिभिस्तया भाषया रचितानि काव्यादीन्यसंख्यशास्त्राणि प्रतिपदं मानवसमाजहितकराणि भवन्ति। तेष्वेव भाषाप्रचारार्थं मानवचरित्रसंशोधनार्थं च यथा प्रयोजनीयता दृश्यकाव्यस्य (नाटकस्य) न तथान्येषाम्। सत्सु तादृशेषु बहुषु महार्घरत्नमूल्येषु नाटकेषु साम्प्रतिके युगे संस्कृतभाषामतिदुर्बोधां नीरसां तथा दुरुच्छारणीयां मन्यमानानां साधारणजनानां हृदये संस्कृतप्रमाजननकामनया लिखितं मयाज्ञानेन संस्कृतनाटकमिदं 'चाणक्यविजयम्' नाम इति।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्चाङ्कभूयिष्ठस्यास्य श्रेष्ठनाटकस्य प्रारम्भे नाट्यकाराः श्रीमिश्रचरणाः लिखन्ति, यथा—चाणक्यः—(सोपहासम्) "हेः हेः हेः, कीदृशं.....कीदृशं.....प्रतिफलम्, अरे नीचाः। भेत्स्यथ.....भेत्स्यथ.....पुनर्मम पादम्?" इति।

नाटकस्य अन्ते च यथा—राक्षसः—क्षम्यतां.....क्षम्यतां.....मन्त्रिन्! श्रेष्ठिनं चन्दनदासम्। ददातु यथेच्छं दण्डं स्वीकरोमि अवनतेन शिरसा। विनिमयेन रक्षतु मम बन्धोर्जीवनम्। (सकातर्यं पश्यति चाणक्यमुखम्) (सोल्लासम्)।

हाः.....हाः.....हाः.....आश्चर्यम् अतीव आश्चर्यभिक्षुकः, भिक्षुकोऽद्य भारतसाम्राज्ये नन्दस्य प्रधानमन्त्री राक्षसः, तुच्छैकदरिद्रब्राह्मणसमीपे। ब्राह्मण्यदेव! धन्या तव लीला। शकटार! मोचय सत्वरं श्रेष्ठिनं चन्दनदासम्। (उत्थाप्य राक्षसम्) प्रार्थितो भवता दण्डश्चाणक्यसकाशात्। मन्त्रिन्! गृहाण दण्डं यथोपयुक्तम्। (ददति राक्षसहस्ते स्वकरबालम्) किम् उपयुक्तो न वा? निरीक्षते चाणक्यमुखं साश्चर्य्यः राक्षसः। किं पश्यसि मन्त्रिन्! अवसरः अवसरः अवसरोऽद्य महान् चाणक्यस्य। सानन्दं गच्छामि नेपथ्यम्। (अवलोकयन्ति सर्वे साश्चर्य्यं तद्गमनमार्गम्) यवनिकापातः।

❖

MS-3

संस्कृतसाहित्ये 'बिट्ठो' ग्रामस्यावदानम्

डॉ. रामचन्द्र वी.भ., कर्नाटक

कर्माहाबेहटेवंशे वत्सगोत्रीयस्य जयकृष्णोपाध्यायस्यात्मजः जगन्नाथझाशर्मा पण्डितराजेति विरुदेन विभूषित आसीदिति श्रूयते। एतेषां निवासस्थानं मिथिलायाः मधुबनीति जनपदे 'बिट्ठो' नाम्नि ग्रामे आसीत्। एतेषामेव सन्ततय अस्मिन्ग्रामे निवसन्ति, एतेषामेव पूर्वजाः निवसन्ति स्म चेति।

ग्रामस्यास्य संस्कृतवाङ्मये महती सेवा वर्त्तते। षड्दर्शनाचार्याज्जगन्नाथात्प्रागपि बिट्ठोग्रामस्य यपद्योगदानं वर्तते तदपि अनुकरणीयं श्लाघनीयं च। प्राचीनेषु विभूतिषु अपररसमञ्जरीकारः म.म. वंशीधरः, रसमञ्जर्यादिग्रन्थनिर्माता जयकृष्णः, चतुर्वर्गचिन्तामणिव्याख्याता काव्यप्रकाशबाग्भटालङ्कारयोष्टीकाऽवचूरिकारः राघवः काव्यप्रकाशमणिसारकारः भैरवानन्दादिनाटकानां च रचयिता माणिकोपाध्यायः, भर्तृहरिनिर्वेदप्रभावती-परिणयोर्नाटकयोः सूक्तिमुक्तावल्यादिग्रन्थप्रणेता हरिहरोपाध्यायः, जातकपद्धतिकारः ज्योतिर्विद् नीलकण्ठः, मीमांसारसपल्वलालङ्कारसमुद्गकादिग्रन्थानां रचयिता इन्द्रपत्युपाध्यायः राजाबलीग्रन्थादिकर्त्ता राजा विजयगोविन्दसिंहादयोऽन्यतमा विद्यन्ते।

अर्वाचीनेषु साहित्यालङ्कारग्रन्थकर्त्ता अनेकेषां च ग्रन्थानां व्याख्याता भवानीदत्तः, रसकौस्तुभरस-महार्णवालङ्कारमञ्जर्यादिप्रणेता वेणीदत्तः, कुवलयानन्दप्रभाकारः गोपीनाथोपाध्यायः, रसतरङ्गिणीशिशुपालवध-मेघदूतादिग्रन्थानां व्याख्याकारः दिवाकरः, गीतकारो कविः कृष्णपतिः, सर्वतन्त्रस्वतन्त्रः धर्मानन्दः, अनेकेषु ग्रन्थेषु उद्धृताः कवितार्किककृष्णानन्दकविवर-कमलनयनकविवररमापतिप्रभृतयः, काव्यप्रकाशादिव्याख्याता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगन्नाथः, सिद्धान्तलक्षणसुबोधिनीरसगङ्गाधरतारिणी-अलङ्कारविद्योतनादिग्रन्थकारः कृष्णमाधवोपाध्यायः, परमलघुमञ्जूषादिग्रन्थानां टीकाकारः चन्द्रमाधवोपाध्यायः, नाडीविज्ञानकारः वैद्यप्रवरः सीतारामझाः, नन्दनसंस्कृतमहाविद्यालयस्य पूर्वप्राचार्यः डा. गङ्गानाथझा शब्दविमर्शादिकारः, न्यायव्याकरणसाहित्य-तन्त्रशास्त्रेषु विविधग्रन्थप्रणेता शृङ्गेरीस्थस्य (कर्णाटक) केन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठस्य प्राक्तनप्राचार्यः डा. किशोरनाथझाः ध्वनितत्त्वसमीक्षाशक्तिविचारादिनिर्माता डा. उदयनाथझाः 'अशोकः' प्रमुखाः सन्ति।

एतेषामेव व्यक्तित्वस्य कृतित्वस्य समीक्षणमस्मिन् प्रबन्धे विद्यते।

❖

MS-4

मगधानां तित्रयः संस्कृतविभूतयः

सुश्री अयोनिजाशास्त्री, झारखण्ड

प्रबुद्धबुद्धेषु मगधेषु नैके देवनारायणतिवारिदेवदत्तमिश्र-दामोदरमिश्र-राजकर्णमिश्र-देववल्लभमिश्र-नन्दलालशास्त्रि-रामदीनमिश्र-पुरुषोत्तममिश्रप्रभृतयो व्याकरण-साहित्यादिविविधशास्त्रपारावारपारीणा दिगन्तविश्रुत-कीर्तयः संस्कृतविभूतयोऽभूवन्।

आसु तिसृणां दामोदरमिश्रगृहीतव्याकरणादिशास्त्राणां जानकीवल्लभशास्त्रि-वंशीधरमिश्र-रङ्गेश्वरनाथ-मिश्राभिधानानां सकलशास्त्रप्रवीणानां विभूतीनां संस्कृतस्य क्षेत्रे कियदवदानमिति विचारयितुं लघीयसि शोधपत्रेऽ-स्मिन् लघीयान् मे प्रयासः।

❖

MS-5

पण्डितजगन्नाथश्रीधरपदेशास्त्रिणा विरचितस्य रुक्मिणीस्वयंवरस्य वैशिष्ट्यम्

पण्डितजगन्नाथश्रीधरः

एतेन महोदयेन यजुर्वेदसंहितावेदाङ्गव्याकरणधर्मशास्त्रज्योतिषशास्त्रायुर्वेदसङ्गीतदर्शनसाहित्येषु पर्याप्तं दक्षता सम्पादिता। एतेन न केवलं परम्परागतज्ञानं प्राप्तम्, अपितु आधुनिकशिक्षापद्धतेः अध्ययनम्, अपि कृतम्। एतेन ओरिएण्टलसंस्थायां प्रकाशनसंभागस्य अधिकारिरूपेण कार्यं कृतम्। यद्यपि श्रीधरपदेशास्त्रीमहोदयः पी-एच.डी. उपाधियुक्तः नासीत्, तदापि तेन बहूनां शोधच्छात्राणां शोधाधिकारिणां मार्गदर्शनं कृतम्।

कर्तृत्वक्षेत्रेषु पण्डितजगन्नाथपदेशास्त्रिणा विशेषयोगदानं कृतम्, एष न केवलं काव्यं विरचितवान्, अपितु आयुर्वेदसङ्गीतनाट्यज्योतिषशास्त्राणां सम्पादनमपि कृतवान्। एतेन संस्कृतेतरभाषायामपि अनेकानि शोधपत्राणि लिखितानि। ओरिएण्टलसंस्थायां कार्यकरणसमये एतेन महत्त्वपूर्णकार्यं कृतम्। एतेन ताम्बूलमञ्जरी,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीणालक्षणं, वीणाप्रपाठकं, भरतमुनेः अभिनवगुप्तस्य अभिनवभारतीटीकासमेतं नाट्यशास्त्रं, बादरायणस्य प्रश्नाविद्यादिशास्त्राणि सम्पादितानि। एतेन 'धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितम्' पुस्तकं लिखितम्, यद् 2000 तमें वर्षे देहल्याः प्रकाशितम्। तस्मिन् पुस्तके पूर्वोत्तरमीमासयोः उत्तमव्याख्यानमस्ति।

आधुनिकसंस्कृतकाव्यस्योदाहरणस्वयंरूपं 'रुक्मिणीस्वयंवरम्' पण्डितशास्त्रिणा रचितं, एतत् 66 पद्येषु निबद्धम्। एतेषु पद्येषु भिन्नभिन्नच्छन्दसां प्रयोगः नामोल्लेखसहितं कृतोऽस्ति। एतस्य काव्यस्य रचना कविना स्वकीयविद्यार्थिजीवने कृता छन्द आधारितं एतत्काव्यं शृङ्गाररसोपेतमस्ति। वस्तुतः एतस्य विषस्योपरि बहूनां महाकाव्यानां रचना जाताऽस्ति। तथापि छन्द-आधारितमेतद् 'रुक्मिणीस्वयंवरम्' नूतनं काव्याशास्त्रीयविषयं स्वीकृत्य उल्लसितं भवति। यथा अष्टाध्यायीमधिकृत्य भट्टिना भट्टिकाव्यं रचितम्, तथैव लघुकलेवरे पण्डितश्रीधरशास्त्रिणा छन्दःशास्त्रात् 66 छन्दांसि स्वीकृत्य लघु किन्तु मनोहरहृदयाह्लादकारिकाव्यस्य प्रणयनं कृतमिति।

❖

MS-6

आधुनिकसंस्कृतगीतसाहित्ये राष्ट्रियसमस्यासमाधानान्वेषणम्

डॉ. जनार्दनप्रसादपाण्डेयः 'मणिः', उत्तराञ्चल

साम्प्रतिके युगे नैके संस्कृतकवयः राष्ट्रियसमस्याप्रकाशनसमाधानपुरस्सरं संस्कृतगीतसाहित्यं वर्धयन्तः सहृदयसामाजिकचित्तमावर्जयन्तो लोकेऽस्मिन् विराजन्ते। समस्यासमाधानानि कुत्रचित् प्रश्नमुखेन कुत्रचिद् विधिमुखेन कुत्रचिच्च निषेधमुखेन प्रतीतेपथमायान्ति। संस्कृतगीतकाराः लिखन्ति यत् पाकिस्तानदेशो भारतदेशेन सह यदि नाम वैरभावं विहाय समरसतया व्यवहरू वार्तां करोतु तर्हि सर्वविधसमस्यानिदानं भवितुं शक्नुयात्। राष्टं प्रथमम्, नेतुरधिकारिणश्च पश्चाद्वर्तिनः। कार्येषु गुणवत्ताऽऽधानाय जातिगतरक्तगत-स्वभावगतसम्बन्धानतिरिच्य योग्यताया अग्रीकरणमनिवार्यमस्ति। निम्नवर्गाणां निर्धनानां कृते सर्वविद्याऽऽर्थिकी सहायता तु देया, किन्तु चयनादीनामेक एव योग्यतासापेक्षो मानदण्डः करणीयः। वैषम्यमावहन्ती समता न श्रेयस्करी। अनुदिनं राजनैतिकदलानां वृद्धिश्चरोधनीया। बहुषु दलेषु सत्सु प्रत्येकं सर्वकारशासनं न क्षमते राष्ट्रं सम्पन्नं प्रसन्नञ्च विधातुम्। आरक्षणं केवलं राजनैतिकं निर्वाचनकाले मतहेतवे नेदं सुष्ठु। नेदं श्रेयसे कस्यचन वर्गस्य राष्ट्रस्य वा। अत एतस्य परिष्कारः करणीयः। विधिविरुद्धकार्यकर्तारः उद्दण्डाः धनशक्तिशस्त्रमाध्यमेन कुख्याताः जनाः निर्वाचननामावल्या अपि बहिष्करणीयास्तेषां प्रत्याशिविषयिणी चर्चा तु भवितव्यैव न। इदानीमेतेषां मन्त्रिरूपा स्थितिर्देशं पीडयति। पर्यावरणप्रदूषणं तज्जनितं महनीयं राष्ट्राऽन्ताराष्ट्रियसमस्याचयं वर्तमानसंस्कृतगीतकारः सुष्ठु अनुभवति। अत एव वृक्षेषु पादपेषु, लतासु जलेषु, वायुषु, पशुषु, पक्षेषु सर्वत्रात्मतत्त्वमवलोकयन् आधुनिकसंस्कृतगीतकारस्तात्कालिकस्वार्थाय लाभाय चैतेषां दुरुपयोगमवरोधयति। वृक्षवपनपरिपोषणपरिपालनकृते संस्कृतगीतसाहित्ये बहु विलिख्यते।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MS-7

बलवन्तसिंहपुत्रजन्ममहोत्सवनाटकस्य वस्तुसन्दर्भे समीक्षणम्

श्रीमहेशचन्दः (शोधच्छात्रः), राजस्थान

आधुनिकसंस्कृतनाट्यसाहित्यपरम्परायां बलवन्तसिंहपुत्रजन्ममहोत्सवाख्यस्य नाटकस्य महत्त्वपूर्णं स्थानं वर्तते। अङ्कपञ्चात्मकस्यास्य नाटकस्य प्रणेता श्रीवेङ्कटेश्वरशास्त्री मूलतः रामेश्वरम् (तमिलनाडु) वास्तव्यः। येन राजस्थानप्रान्तस्य भरतपुराभिधं नगरमेत्य राज्याश्रयं प्राप्य नाटकमिदं प्रणीतम्।

प्रस्तुतनाटकस्य एकमात्रपाण्डुलिपी राजकीय-सङ्ग्रहालय-भरतपुरस्थ स्टॉकरजिस्टरस्य-05 ग्रन्थक्रमाङ्के सुरक्षितास्ति। प्रकाशनाभावे नाटकमिदम् अद्यावधि विद्वज्जननेत्रपथे न समागतम्। अस्य नायकः नृपः 'बलवन्तसिंह' बलवन्तसिंहराजस्य पुत्रे जाते सति भव्यमहोत्सवः आयोजितः। तमधिकृत्य विरचितं रसभावपरिपूर्णनाटकमिदं कवेः प्रतिभायाः चूडान्तनिदर्शनम्। अस्य प्रतिलिपिकालः विक्रमसंवत् 1908 तदनुसारं 1851 ई. अंकितः।

अस्य नाटकस्य प्रस्तावनायाः अनुशीलनेन पठनेन वा स्पष्टरूपेण प्रतीयते यत् नाटकमिदं वेंकटेश्वरशास्त्रिनामकविना प्रयोगार्थं सूत्रधाराय प्रदत्तम्। नाटकमिदं वसन्तमहोत्सवे नानादेशतः समागतानां काव्यालङ्कारन्यायव्याकरणादिनिखिलशास्त्राब्धिपारङ्गतानां रसिकचूडामणिसभासऽजनानां प्रीत्यर्थं भरतपुरस्थ-प्रसिद्धैतिहासिकस्थले 'लक्ष्मणमन्दिरस्य' प्रांगणे परिषदादेशेन अभिनीतमासीत्।

अस्य समाप्तिः भरतवाक्येन सह विहिता। नाटकेऽस्मिन् अर्थोपक्षेपक–पंचसन्धि–कार्यावस्थादीनां समुचितं निर्वहणं दरीदृश्यते। अस्मिन् शोधपत्रे नाटकीयकथावस्तुनः नाट्यशास्त्रीयसमीक्षणं विधास्यते।

❖

MS-8

आधुनिकसंस्कृनाटकं कुमारविजयम्

श्री विनोदकुमारपाण्डेयः, राँची

प्रारूपम्

1. आधुनिक-संस्कृतनाटकविवेचनम्,
2. कुमारविजयस्य कविः
3. कुमारविजयस्य विषयः
4. कुमारविजयस्य नाटकत्वम्
5. कुमारविजयस्य वैशिष्ट्यम्
6. उपसंहारः।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MS-9

त्रिवेणीकवि-राजेन्द्रमिश्रस्य 'अरण्यानी' : एकमध्ययनम्

डॉ. हरेकृष्ण-मेहेरः, ओड़िशा

आधुनिक-संस्कृत-वाङ्मये कविरूपेण प्रतिष्ठितेन स्वनामधन्येन प्रो. अभिराज-राजेन्द्र-मिश्रेण प्रणीतम् 'अरण्यानी' इति गीतिकाव्यं विशिष्टं स्थानमर्हति। छन्दोबद्धानां 46-संख्याकानां मौलिक-कवितानां सङ्कलनभूता कृतिरियं सहृदय-पाठकानां नूनमादरणीया। गीतिकाव्येऽस्मिन् पारम्परिक-च्छन्दोराजिभिः स्वकीयनव्य-च्छन्दोविन्यासैश्च सन्ति विरचिताः समस्त-कविताः, यासां शीर्षक-नामानि स्व-स्व-विशेषत्वं परिचाययन्ति। मानव-जीवनस्य विविधा अनुभूतयः काव्येऽस्मिन् सुगर्भिताः।

अरण्यानी यथा नाना-वैशम्याणां निधानभूता, अण्डज-पिण्डज-स्वेदजोद्भिज्जानां प्राणिनां विविध-प्रकृतिसम्पन्नानां निवास-स्थली, बाल्य-कौमार्य-तारुण्य-वार्धक्य-सोपान-क्रमैः प्राणि-जीवन-यात्रायाश्च परिप्रकाशिका भवति, तथैव त्रिवेणी-कवेः प्रो. मिश्रस्य 'अरण्यानी' इत्याख्या सारस्वती कृतिरियं नानाविध-विषयाणां नानारसभावालङ्काराणां प्रद्योतिनी सती काव्य-सौन्दर्यमपूर्वं जनयति।

❖

MS-10

श्रीरामानन्ददिग्विजयमहाकाव्ये वैष्णवसिद्धान्तप्रतिफलनम्

श्री प्रधानधीरेन्द्रायः, पुरी

स्वामिश्रीमद्भगवदाचार्यविरचितं श्रीरामानन्ददिग्विजयमहाकाव्यं भगवतः श्रीरामानन्दस्य सद्गुणकीर्त्तनाय अलं भवति। पवित्ररामनामोच्चारणेन हरिभक्ताः कृतकृत्याः भवन्ति। तस्माद् महाकाव्यमिदं विशिष्य श्रीवैष्णवानां कृते परमानन्दप्रदं प्रतिभाति। अस्मिन् महाकाव्ये विंशतिसर्गाः सन्ति। अस्य ग्रन्थस्य प्रतिपाद्यविषयेषु श्रीवैष्णवधर्मस्य महती पराकाष्ठा परिकल्पिता। यतिराजः श्रीरामानन्दस्वामी यवनयन्त्रपीडितानां शरणागतानां च जनानां कृते वैदिकसंस्कारेण श्रीराममन्त्रमुपदिश्य श्रीवैष्णवधर्मस्य प्रचुरं प्रचारं चकार। तदीयं जीवनचरितं महाकाव्येऽस्मिन् प्रतिफलितमस्ति।

अस्मिन् संसारे वैष्णवजनस्य आचरणविधिः महाकाव्येऽस्मिन् वर्णितः। सम्पूर्णब्रह्माण्डस्य सृष्टिस्थितिसंहारकर्त्ता परमात्मा एव भवति। अतः नवधाभक्तिद्वारा तस्य भगवतः सेवा वैष्णवैः विधेया।

तस्मात् ज्ञायते यत् श्रीभगवदाचार्यः भारतीयधार्मिकविकासाय श्रीरामानन्दमुखेन महाकाव्येऽस्मिन् वैष्णवसिद्धान्तान् उपदेशच्छलेन प्रतिपादयामास। तच्च वैष्णवानां कृते अत्युपादेयं भवति इति।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MS-11

आधुनिकयुगे आदर्शशिक्षकस्य भूमिका का?

श्रीअभिनीतकुमार, मुजफ्फरपुरम्

शिक्षक एव राष्ट्रस्य वास्तविकरूपेण गत्यात्मकशक्तिः विद्यते। शिक्षकः एव समाजस्य भविष्यं निर्माति किन्तु यादृशः चित्रकारः भवति तादृशमेव चित्रं भवति।

शिक्षकः कीदृशः भवेत् एतस्मिन् सन्दर्भे हुमायूँ कबीरस्य कथनमस्ति यत्—'ते शिक्षकाः राष्ट्रनिर्मातारः राष्ट्रभाग्यनिर्णायकाः सन्ति। कथनमिदं प्रत्यक्षरूपेण सत्यं प्रतीयते परन्तु कथनेन सह एकः महत्त्वपूर्णः प्रश्न उद्भवति यत् ये भाग्यनिर्णायकाः सन्ति तेषां योग्यता कीदृशी वर्तते।

सिद्धान्ततः शिक्षकस्य ये गुणाः श्रूयन्ते तद्गुणभूषिताः शिक्षकाः भवेयुः इत्यपेक्षायां सत्याम् एकैकशः प्रयासः कर्त्तव्यः। शिक्षकः आत्मानं निरीक्षते चेत् तस्य दायित्व—बोधः विकसितः भवति। छात्राः बोधपर्यन्तं गच्छेयुः इति विचिन्त्य प्रयासः क्रियते तदा शिक्षकस्य शिक्षकत्वं स्वयमेव आगमिष्यति। विवेकजागरणस्य आवश्यकतास्ति केवलं कर्त्तव्याकर्त्तव्यविषये अनुभूतिः अत्यावश्यकी।

शिक्षकाः योग्यनागरिकाणां निर्माणेन सर्वासां समस्यानां समाधानं स्वयमेव कर्तुं शक्नुवन्ति किन्तु प्रश्नः तु उद्भवति—'ज्ञाने धर्मः उत प्रयोगे।

❖

MS-12

स्वातन्त्र्योत्तरमैथिलविदुषां संस्कृतसेवा

डॉ. इन्द्रनाथझाः, सीतामढ़ी

संस्कृतसाहित्यसमृद्धौ मैथिलविदुषां योगदानं सर्वथा चिन्तनीयं वर्तते। स्वमातृभाषां मैथिलीं सर्वासु विधासु विभिन्न रचनाभिः प्रपूर्य ते देववाणीं संस्कृतमपि स्वप्रखरलेखन्या प्रपूरितवन्तः मिथिलायां संस्कृत लेखनस्य विद्यते विशालपरम्परा। किन्तु समेषां मैथिलरचनाकाराणां संस्कृतभारतीनिबद्धग्रन्थानां विवरणोपस्थापनमत्र सम्भवं न वा ममाभीष्टम्। ये खलु प्रचलितप्राप्तसंस्कृतसाहित्येतिहासग्रन्थेषु विद्यन्तेऽचर्चितास्तेषामेव व्यक्तित्व-कृतित्वोपस्थापनमत्राभीष्टम्। तत्रापि विशेषणे स्वातन्त्र्योत्तरमिथिलायां विद्वद्भिर्याः कृतरचनास्ता एव संक्षिप्य प्रकृतशोधलेखे प्रस्तुयन्ते। अस्मिन् सप्तपञ्चाशस्वतन्त्रताप्राप्ति-वर्षावधौ केचन कालकवलिताः स्मृतिशेषा एव सन्ति, अन्ये च जीवन्तः सुरभारतीसेवननिरतास्तिष्ठन्ति। अतो विस्तरभयात् दिवङ्गताणां स्व.पं. लक्ष्मीनाथ झा, स्व.पं. गुलाब झा., स्व.पं. सीतानाथझा, स्व.पं. गङ्गेशमिश्र, स्व.पं. आद्यानाथझा 'निरङ्कुश' प्रभृतीनामेव विदुषां व्यक्तित्वं कृतित्वञ्चोपस्थाप्यते।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MS-13

'का त्वं शुभे' गीति-काव्यम्

सुश्री शिप्रा राय, त्रिपुरा

साम्प्रतिकें काले आभारतवर्षञ्च विविधेषु प्रान्तेषु प्राकृतभाषायां बहुविधानि काव्यनाटककथालघु कथाप्रभृतीनि परिलक्ष्यन्ते, अर्वाचीनकाले प्राकृतसाहित्यस्वनायां समाजचिन्तायाः, सामाजिकसमस्यानां प्रतिबिम्बनं परिदृश्यते, 'का त्वं शुभे' नामकं प्रेमोपजीव्यं गीतिकाव्यं विरचितं कालिकताविश्वविद्यालयस्य संस्कृतविभागस्य महामहोपाध्यायगोपीनाथकविराजप्राध्यापकेन आधुनिकसंस्कृतकविना गीतानाथ-आचार्यशास्त्रिणा। मदीये प्रबन्धे काव्यस्यास्य समीक्षा विविधेभ्यः दिग्कोणेभ्यः कृता, तथाहि काव्यानाञ्च किमुपजीव्यम्, कियत्सार्थकः अत्र रूपकव्यवहारः कीदृशं सफलं शब्दार्थयोः सम्मेलनम् इत्यादयोः विषयाः विचार्यमाणा भविष्यन्ति।

❖

MS-14

भारतामृतमहाकाव्यप्रणेता कविचन्द्ररायदिवाकरमिश्रः

डॉ. प्रमोदचन्द्रमिश्रः, पुरी

उत्कलराज्यस्य संस्कृतसाहित्यसमीक्षकाणामेका सूक्तिः सम्प्रति सर्वत्र गवेषकाणां विचारपथमधिरोहति—

शिशुपालवधं काव्यं भारविं नैषधं तथा।
सहसा विस्मरन्त्यार्य्याः पठित्वा भारतामृतम्॥

किं तद् भारतामृतमहाकाव्यम्? कस्तस्य कर्त्ता? चत्वारिंशद्सर्गविशिष्टस्य भारतामृतमहाकाव्यप्रणेतुः परिचयस्तद्भाषया भारतामृतमहाकाव्यस्य प्रथमसर्गान्ते वर्णितोऽस्ति।

यं प्रासूति पतिव्रता गुणवती मुक्ता विमुक्तात्मनः इत्यादि। महाकवेः दिवाकरमिश्रस्य महाकाव्यस्य भारतामृतस्य च संक्षिप्तः परिचयः शोधनिबन्धे विस्तरेण प्रदास्यते।

❖

MS-15

विन्ध्यवासिनीविजयं महाकाव्यस्य रसस्वरूपम्

कु. प्रियदर्शिनी वि. बावडेकर, नागपुरम्

भगवत्याः सरस्वत्याः राजसभायामनादिकालात् कविजनाः गौरवास्पदं स्थानं भजन्ते। कवयः क्रान्तदर्शिनः। मनुष्याः स्वकीयान् हृद्गतभावान् येन केनाऽपि प्रकारेण प्रकटयन्ति। किन्तु प्रगल्भाधिषणास्तानेव

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावान् काव्यात्मना परिष्कृत्य प्रकटयन्ति। एतस्याः गौरवपरम्परायाः प्रवर्तकः आदिकविर्वाल्मीकिः वरीवर्ति। तेन निर्मितः काव्यपथः कालिदास-भवभूति-भारवि-माघ-श्रीहर्ष-बिह्लणप्रभृतिभिः महाकविभिः अनुसृतः। अद्यत्वेऽपि तस्याः महनीयाः परम्परायाः पथमनुसन्तः कवयः गौरवमनुभवन्ति। महाराष्ट्रकविजनास्तेषु अग्रगण्याः। तेष्वेकः महाकविः श्रीवसन्तत्र्यम्बक-शेवडेमहोदयः।

विन्ध्यवासिनीविजयमिति शीर्षकं पठित्वा विन्ध्यवासिन्याः देवीजगदाम्बिकायाः विजयः अत्र वर्णितः इति भाति। अतः काव्येऽस्मिन् वीररसो वर्तते इत्येकं मतम्। किन्तु वीररसभेदेष्वपि दयावीरस्वरूपमत्र वर्णितम्। देव्याः युद्धवीरत्वं दानवीरत्वं धर्मवीरत्वं वा तत्र न दृश्यते। निबन्धस्य प्रारम्भे सर्गक्रमः कथावस्तु च समुपवर्णितम्।

रसस्वरूपचर्चायां भरतमुनिद्वारा उक्ताः नवरसा अपि चर्चिताः। तेषां स्थायिभावानामपि नामोल्लेखः कृतः। तदनन्तरं भक्तिरिति वीररसस्य काव्यगतश्लोकान् उदाहृत्य श्रीरूपगोस्वामिनः मतं प्रदर्शितम्। वीररसस्य काव्यगतश्लोकान् उदाहृत्य तत्र दयावीररसः कथं वर्तते इति वर्णितम्।

अन्ततो गत्वा भक्तिः इत्येव काव्यस्यैतस्य रस इति निश्चितं भवति।

रसस्वरूपविषये भरतमुनेः नाट्यशास्त्रं तथा वीररसविषये पण्डितराज-जगन्नाथस्य रसगङ्गाधरः इति पुस्तकद्वयम् आधारीकृतम्। एवं भक्तिरसपूर्णस्य काव्यस्य रसस्वरूपं समुपवर्ण्य निबन्धः समापितः।

❖

MS-16

मोददायकः व्यङ्ग्यकारः प्रमोदनायकः

डॉ. नारायणदासः, ओडिशा

समकालीनसंस्कृतसाहित्ये सकलकथाविधाभिः सह हास्यकथापरम्परा अपि पूर्णविकसिता जाता। डॉ. इच्छारामद्विवेद्विश्रीवागीशशास्त्रिडॉ. प्रशस्यमित्रशास्त्रिडॉ.प्रमोदकुमारनायकप्रभृतीनां व्यङ्ग्यकथासाहित्येन संस्कृत-कथाशिल्पं सुसमृद्धं वर्तते। हास्यकथानिर्माणे तेषामनल्पमवदानमाधुनिकव्यङ्ग्यसाहित्यं रेखाङ्कितु शक्नोति।

डॉ. प्रमोदकुमारनायक इति नित्यनूतनकथानिर्माणे परिचितं नाम। अस्य कथा वा भवतु कविता वा भवतु, सर्वत्र विलसति व्यङ्ग्यस्य सुतीक्ष्णधारा। पदे पदे विराजितः व्यङ्ग्यः, पर्यन्ते सहृदयानां मनस्तोषं विदधाति सरसशैल्या, समृद्धशिल्पेन, भिन्नया भङ्गिभणित्या वा। तस्य रम्यरचनाः पाठं पाठं रसाप्लुतहृदयाः भवन्ति सहृदयाः।

इदानीं यावद् अस्य लेखकस्य 6 ग्रन्थाः प्रकाशिताः सन्ति। यथा—

1. गर्तः (संस्कृतव्यङ्ग्यकाव्यसंग्रहः)
2. शबरी (संस्कृतव्यङ्ग्यकाव्यसंग्रहः)
3. दारिद्र्यशतकम् (संस्कृतव्यङ्ग्यकाव्यसंग्रहः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

4. उवाच कण्डूकल्याणः (संस्कृतव्यङ्ग्यकाव्यसंग्रहः)
5. स्वर्गादपि गरीयसी (संस्कृतव्यङ्ग्यकाव्यसंग्रहः)
6. कथासप्ततिः (संस्कृतव्यङ्ग्यकाव्यसंग्रहः)

सर्वत्र कथाकारः व्यङ्ग्यत्मकोपदेशप्रदाने प्रमोदसम्पादने च सफलः लक्ष्यते। यत्र अस्य लेखे व्यङ्ग्यांशः नास्ति, तदानीं स्खलितपदः दृश्यते लेखकः। अस्मिन् शोधपत्रे तस्य समग्रव्यङ्ग्ययात्रायाः आकलनं कर्तुमत्र समीहा वर्तते।

❖

MS-17

सौन्दर्यसप्तशती-काव्यस्याध्ययनम्

ऋषन् प्रसादभारद्वाजः, सागरम्

पं. श्रीप्रेमनारायणद्विवेदिनः जन्म मध्यप्रदेशस्य मध्यभागे पर्वतश्रेणीषु स्थिते सुन्दरे सागरनगरे 5-6-1922 ख्रीष्टाब्दे जातम्। पूर्वाध्ययनं गृहे, संस्कृतविद्यालये च प्राचीनपद्धत्या सागरे वाराणस्यां च जातम्। वाराणसीतः व्याकरणशास्त्री, कालिकातातश्च काव्यतीर्थपरीक्षा समुत्तीर्णा। सागरविश्वविद्यालयतश्च स्नातक-स्नातकोत्तर विद्यावारिधि (पी.एच.डी.) समुत्तीर्णा।

अध्यापनं विद्यालये, महाविद्यालये, विश्वविद्यालये च सम्पादितम्। अनेन भारतीयदर्शन-बृहत्कोष-योजनायां, शास्त्र-चूड़ामणि-योजनायां च सागर-विश्वविद्यालये सेवा विहिता।

अनेकाः मौलिकरचना—अनेकेषां हिन्दी-कवीनां काव्यानुवादाः च संस्कृतदूर्वापत्रिकायां प्रकाशिताः सन्ति।

सौन्दर्यसप्तशती 1970 ख्रीष्टाब्दे प्रकाशिते सौन्दर्य-सप्तशतीग्रन्थे मूर्धन्यकविना श्रीप्रेमनारायण-द्विवेदिमहाभागेन असाधारणप्रतिभायाः परिचयः दत्तोऽस्ति।

❖

MS-18

आधुनिकसंस्कृतसाहित्येषु भाषाप्रयोगः

डॉ. धर्मेन्द्रकुमारसिंहदेवः, नवदेहली

आधुनिकसंस्कृतसाहित्यमिदन्तया इयत्तया वा वक्तुं न सुशकम्। बहुविधासु प्रथन्ते कवीनां भावविलासाः। परमत्र शोधपत्रे आधुनिककवीनां कथाकाराणां च भाषाप्रयोग एव विषयत्वेन उपस्थापितः। तत्रापि समयानुरोधेन गद्यसाहित्यमेव स्थालीपुलाकन्यायेन चर्चितमस्ति। अद्यत्वे गद्यबन्धेऽपि भृशं वैविध्यं परिलक्ष्यते। गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति इति धिया तत्रैव कवीनां भाषाप्रयोगा यथामति पर्यालोच्यन्ते।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्रेऽस्मिन् इमे विषयाः सन्ति—

1. नाशब्दप्रयोगः
2. नवशैलीविलासः
3. नवप्रवचनप्रकाशः
4. नववाक्यविन्यासः
5. बाह्याभ्यान्तरसंरचनाप्रभावः

❖

MS-19

शशिरेखा : एका समीक्षा

श्रीवैद्यनाथमिश्रः, छपरा

विविधोपाधिपुरस्कारादिभिः विभूषितः पुरीस्थश्रीजगन्नाथसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य न्यायदर्शनविभागाध्यक्षः डॉ. केशवचन्द्रदाशः समाजस्य साम्प्रतिकं वार्तापरिदृश्यं समीक्ष्य अनुभूय च अनेकान् उपन्यासान् शीतलतृष्णादीन् लिखितवान्। तत्रैव विशिष्टा रचना 'शशिरेखा' इति। इयं शशिरेखा समाजे जनेषु विशेषतः आभिजात्यवर्गेषु व्याप्तस्य अहंकारस्य दुष्परिणामं प्रदर्शयति, तथा च इन्दुकेतनस्य शशिरेखया सर्वं मोहान्धकारम् अहंकारलतोद्यानं च समूलं प्रकाशीकृत्य एकां नवां जीवनसृष्टिं विशदयति। चरित्रचित्रणं, संवादं कथानकं परिवेशं भाषादिकञ्च समाश्रित्य एतस्य नवीनोपन्यासस्य समीक्षा विधास्यते।

❖

MS-20

जगद्गुरु-श्रीचन्द्रशेखरेन्द्र-सरस्वती-विजय-काव्ये काव्यसुषमावैभवम्

श्रीगिरिशः बी. जानी, महाराष्ट्रम्

डॉ. एस्. श्रीनिवासशर्मणा विरचितस्य अस्य आधुनिककालीनस्य संस्कृत-चरितकाव्यस्य काव्यत्वस्य कानिचन विलक्षणानि तत्त्वानि समालम्ब्य अत्र निबन्धे एकं लघुसमीक्षणं प्रस्तुतं वर्तते। अस्य काव्यस्य कलेवरं, स्वरूपं, चान्तरिकरूपं, तन्निहितवस्तु, तद्रूपणशैली च इत्येतेषां विषये स्वल्पं विवरणं प्रदत्तं चास्ति। तदनु काव्यस्य पद्यानाम् आधारेणैव कवयितुः काव्यत्व-विषयकाः विचाराः संकलिताः सन्ति। तथैवात्र काव्यगतन्यूनता-महत्तादि-विषयकं तननिरीक्षणं चापि प्रस्तुतम्। अस्मिन् काव्ये प्रकटितानां कासाञ्चन चमत्कृतीनां विषयेऽपि अत्र चर्चा विहिता वर्तते। सारगर्भितेऽस्मिन् काव्ये अङ्गीकृतानां धर्मसंस्कृतिगततत्त्वानामपि किञ्चित् सूचनं चात्र कृतमस्ति। अन्ते चात्र काव्ये आनुषङ्गिरूपेण सम्प्राप्तानां कासाञ्चन सूक्तीनां विषयोल्लेखोऽपि कृतोऽस्ति।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MS-21

प्रणवकवेः काव्यप्रणतयः

डॉ. मनुलता शर्मा, वाराणसी

सामाजिकसंस्कृतसाहित्याकाशे गद्यपद्यगीतिगजलकथास्तुत्यादीनां काव्यरश्मिव्याजेन सुरभारतीकाव्योदधिं समेधमानाः, सुष्ठुतया नैजं शीतरश्मित्वं पूर्णतां प्रददानाः, सततसाहित्यसपर्यापरायणाः, प्रणवोपाह्वा डॉ. इच्छारामद्विवेदिमहोदयाः वर्तमानसंस्कृतकाव्यप्रणेतृषु विद्वत्सु भागवतव्याख्यातृषु संस्कृतहिन्दीउर्दूप्रभृति-भाषाणां कविमञ्चेषु विविधप्रचारकार्येषु च कामाप्यपूर्वां विच्छित्तिं दधाना विलसन्तेतराम्।

रसभावपेशलाभिः स्ववाग्धाराभिः श्रोतृणां मनस्सु रसानुभूतेर्भावधारां समुत्पादितवतां वीणापाणिकृपा-प्रसादमहितानामेतेषां साम्प्रतं यावत् प्रकाशपथमुपागतानामप्रकाशितानाञ्च रचनानां संग्रहः प्रणवरचनावलीति नाम्ना ग्रन्थे खण्डत्रये प्रकाशितो जातः। तत्र प्रथमे काव्यखण्डे एकादशशंख्याकाः काव्यमय्यो रचना उपनिबद्धास्सन्ति।

द्वितीयः खण्डो राष्ट्रभाषायां निबद्धानां रचनानां सकलनमस्ति। सकलनेऽस्मिन् सप्तसंख्याका रचनाकवेः रचनानैपुण्यं व्यञ्जयन्ति। तृतीये खण्डे कवीनां निकषभूतानां गद्यरचनानां संग्रहो वर्तते। कच्छपीध्वनि-भरितमेतेषां स्वनं काव्यगोष्ठीषु सहृदयान् रससिक्तं करोति, पाठकांश्च रसगह्वरे निमज्जयति। एतेषां संकलनमपि कविकर्मणां साक्षीभूतां तत्कथाकाव्यनाट्यगीतगजलादिरचनानां माधुर्यस्य नवनवां विच्छित्तिं दधानां प्रवचनावलीमधिकृत्यैव समीक्षादृशा शोधलेखोऽयं प्रस्तूयते।

❖

MS-22

आचार्यमहाप्रज्ञकृतभिक्षुगाथाया अनुशीलनम्

डॉ. हरिशंकरपाण्डेयः

विविधविद्याविशिष्टो महाप्राणमहाप्रज्ञाचार्यः न केवलं तेरापथधर्मसंघस्य दशमोऽधिशास्ताऽस्ति, अपि तु विश्वप्रसिद्धचिन्तकः दृष्टिसम्पन्नदार्शनिकः सारस्वतप्रतिभाविभूषितमहाकविः ऋतम्भरीयप्रज्ञाविलसितमहायोगी चास्ति। संस्कृत-प्राकृत-हिन्दी-राजस्थानीभाषासु-गद्य-पद्यरूपसाहित्यविवचेन निष्णातोऽयं महामनीषिः। संस्कृतभाषायां निबद्धानैकग्रंथरत्नेषु काव्यकल्पनासम्पन्नोऽस्ति।

'भिक्षुगाथा' इत्याख्याते शतश्लोकेऽस्मिन् ग्रन्थे आचार्याभिक्षोः रहस्यकथा वर्णिताऽस्ति।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MS-23

आधुनिकभाषासु तत्सम-तद्भवादिशब्दानां संज्ञानिरूपणम्

डॉ. निरञ्जनदासः, ओडिशा

प्रचलितानां कतिपयभाषाणामभिधानग्रन्थेषु व्याकरणशास्त्रेषु वा शब्दानां वर्गीकरणप्रसंगे साधारणतया तत्सम-तद्भव-देशज-वैदेशिकशब्दादयोऽनुस्रियन्त इति विदुषां विदितचरम्।

अत्र चिन्त्यम् तत्समः संस्कृतसमः इति व्याख्या कथं करणीया आंग्लीयभाषासमः इति कथं न भवेत्? यत्र इंरानीशब्दा अपरिवर्तनेन भाषान्तरेषु व्यवह्रियन्ते यथा— त्यादयः, तत्र एतो शब्दा ईरानी-तत्समः इत्यनेन अभिहिताः स्युः। तथैव तद्भवः संस्कृतभवः इति कथं व्याख्या करणीया? ईरानी-पार्सी-ऊर्हु-पर्तुगजि्-आदिभाषातः जातः कथं व्याख्या करणीया? ईरानी-पार्सी-ऊर्हु-पर्तुगजि-आदिभाषातः जातः कथं न भवेत्?

वैयाकरणानामत्र वारम्वारं ध्यानाकर्षणं क्रियते। संस्कृतभाषायां भाषान्तराणां शब्दाहरणं नाभूयते, यतो हि नवशब्दनिर्माणे संस्कृतभाषायाः अपरिमिता शक्तिरस्त्येव। सम्प्रति तु पाठकानामवगत्यर्थं कतिपया इरानीशब्दा प्रत्यक्षभावेन व्यवह्रियन्ते। न केवलं संस्कृते, अपि तु कथिताभाषास्वेव महादेशान्तरीयवैदेशिकाः शब्दाः व्यवहारे प्रत्यक्षीभवन्ति।

सुकरगमनागमनद्रुतवार्ताप्रेरण-विश्वायनादिपद्धत्या विश्वस्य प्रतिभाषासु शब्दानामाहरणं वितरणं बोभूयते, अत एव व्याकरणशास्त्रे व्यवह्रतशब्दानां वर्गीकरणं यथारीति भवितव्यम्।

❖

MS-24

नव्यकाव्यतत्त्वविमर्शः

प्रो. रहसविहारीद्विवेदी, जबलपुरम्

लक्ष्यग्रन्थानन्तरमेव लक्षणग्रन्था निर्मीयन्ते। लक्षणकारः प्रायशः स्वसमक्षमुपस्थितं काव्यादर्शं शास्त्रीयया भाषया प्रस्तौति। यानि काव्यानि विलोक्य काव्यशास्त्री लक्षणं निर्धारयति तानि तु मौलिकीभिरुद्भावनाभिः परिपूर्णानि भवन्तिः, किन्तु यदि निर्धारितं काव्यनिकषमनुसृत्य रच्यन्ते तानि प्रायेण रूढ़िग्रस्तानि भवन्ति। अतो यः कवी रहस्यमिदं वेत्ति स लक्षणपरिरवासु नेत्रे निमील्य न व्रजति। परप्रत्ययनेय-बुद्धयः समीक्षकाः पुराणमित्येव साधु मन्वते किन्तु सदसद्व्यक्तिहेतवः सन्तः सहृदया नवं काव्यं सम्यङ्निरीक्ष्य विशुद्धिं श्यामिकां वा समुद्घोषयन्ति। यदाऽकदाऽपूर्वं काव्यं रचयामिति कृत्वा कविमंन्यः कश्चिदुदात्त-कलाविरहितं सर्वात्मना परम्परोन्मूलकमसस्कृतं काव्यं रचयति स समुपहसनीयो भवति। अतः काव्यमूल्याङ्कनाय विशेषतो नूतनकाव्यानां कृते तद्नतनवविधानानां परिचयार्थं लक्षणादिनिर्धारणमुचितं मत्वाऽस्यां दिशि प्रयासो मया विहितः।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MS-25

त्रिपाठिराधावल्लभप्रणीतमभिनवकाव्यालङ्कारसूत्रम्

डॉ. रमाकान्तपाण्डेयः, जयपुरम्

अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्रं नाम त्रिपाठिराधावल्लभप्रणीतो नूत्नः काव्यशास्त्रीयो ग्रन्थः। इह हि लोकानुकीर्त्तनं काव्यमिति सूत्रयता आचार्येण अभिनवं काव्यलक्षणं निरयमायि। लोकशब्देनाऽत्र न केवलं जनोऽपि तु चराचरं जगदपि गृह्यते। तथा तत्रैव—

लोक इति कथनेन न केवलं जन इति अपितु चराचरं जगदपि गृह्यत एव. न केवलं स्थावरजङ्गमात्मकम्, अपितु चेतनया विभाव्यमानं सकलमेव भुवनं लोक इति वक्तव्यम्। लोकोऽयं न स्थाणुः, न वा स्थिरोऽपि तु प्रतिक्षणं परिवर्तमानो विकसंश्च वरीवर्ति। अभि काव्या. सू. 1.19 वृत्तौ।

'स चाऽयं लोक आधिभौतिक आधिदैविक आध्यात्मिकश्चेति त्रिविधः। तस्यैव त्रिविधलोकस्य शब्दैः पुनराविष्करणमनुकीर्त्तनमभिमतयाचार्यस्य। अनुकीर्त्तनं चैतत् काव्यम्।

ग्रन्थेऽस्मिन् काव्यशास्त्रीयपरम्परालोके लोकतत्त्वं प्रसमीक्ष्य स्वीयं सिद्धान्तं स्थापयत्याचार्यः। अत्र न केवलं भारतीयाः काव्यशास्त्रसिद्धान्ता विचारपथमनीता अपितु पाश्चात्या अपीति विशेषः। एवं ग्रन्थोऽयं प्राच्यपाश्चात्यकाव्यशास्त्रीयसिद्धान्तानां सङ्गमभूमिः।

सूत्रवृत्तिप्रणयनेऽपीह श्रीमतस्त्रिपाठिनो वैशिष्ट्यं लक्ष्यत एवेति निबन्धेऽस्मिन् तत्सर्वं तत्त्वजातं पुरस्करिष्यत एवेति दिक्।

❖

MS-26

भावविलसित-शिशुयुवदुर्दैवविलसितयोः एकं समीक्षात्मकमध्ययनम्

डॉ. अमलेन्दु पाड़िया, वर्धमान

साम्प्रतिककाले नवनवोन्मेषशालिन्या प्रतिभया ये तावत् कवयः संस्कृतकाव्यगगनमलंकुर्वन्ति तेषु डॉ. सीतानाथ आचार्यशास्त्री अन्यतमः। तेन विरचितानि बहूनि काव्यानि सन्ति, तत्र भावविलसितं शिशुयुवदुर्दैव-विलसितञ्चेति तदीयं काव्यद्वयं प्रबन्धेऽस्मिन् मया आलोच्यते। भावविलसितमिति काव्ये पञ्चविंशतिसंख्यकाः मौलिककविताः अनुवादरूपे द्वे कविते तथा वङ्गभाषया विरचिताः षट्संख्यकाः कविताः सन्निवेशिताः। संस्कृतभाषया विरचितासु मौलिककवितासु काश्चित् ऋतुवर्णनपराः काश्चित् देशानुरागव्यञ्जिकाः काश्चित् रम्यरचनात्मिकाश्च एतदव्यतिरिक्तमनुवादात्मकं कविताद्वितयमेतादृशं रम्यं अस्ति यत् खलु सहृदयानां हृदयं नियतं समभकर्षत्येव।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिशुयुवदुर्दैवविलसितमिति समानाश्रयम् अपरमेकं गीतिकाव्यं सामाजिकसमस्यामवलम्ब्य विरचितम्, सामाजिकपरिमण्डले वर्धमानां शिशूनां युवजनानाञ्च विविधाः समस्याः कविना अत्र वर्णिताः। विशेषतः शिशुभिक्षुकाणां शिशु-श्रमिकाणाञ्च दुर्दशायाः वर्णनावसरे कविचित्तस्य व्याकुलता स्फुटतां गता। पुनः मध्यवित्तश्रेणीनां नागरिकाणां सन्ततेः कतिचन समस्याः अप्यत्र वर्णनीयतां प्रापिताः, एतासां समस्यानां समाधानं विनैव देशस्य समाजस्य किमपि कल्याणं नास्तीति कविना समभिव्यञ्जितम्।

काव्यद्वये विषयवैचित्र्यं शब्दप्रयोगे नैपुण्यं छन्दोवैचित्र्यमलंकारप्रयोगपाटवञ्च अतीव मनोहरम्! अत्र प्रबन्धे काव्ययोरेतयो समीक्षणं यथानुभवं विधास्यते।

❖

MS-27

संस्कृतशिक्षणे अभिक्रमिताध्ययनम्

वी. सुब्रह्मण्यम्, भोपाल

'संस्कृतं भाषा भारतस्य निधिः। दिव्यपरम्परागता एषा यावत्कालं विराजते अस्मत्प्रजासु तावत्कालं भारतीयमौलिकप्रतिभाऽनुवर्तते एव' इति निगदति जवाहरलाल नेहरूमहोदयः। वैदिककालादारभ्य जनसामान्य-भाषा आसीदिति विदितोऽयं विषयः।

देशे कोट्यधिकाः छात्राः प्रतिवर्षं संस्कृतमधीयते। लक्षशश्च अध्यापकाः संस्कृतमध्यापयन्ति। इत्थं देशे प्रवर्तमानस्य संस्कृतशिक्षणस्य साङ्गणकीयचित्रस्य सन्दर्शनेन इदमवश्यं भूयात् यत् संस्कृतमधीयानानां छात्राणां सङ्ख्या न न्यूनेति। अतः सङ्ख्यावत्तादृष्ट्या क्षेत्रमिदमुज्ज्वलं भासते। परं गुणवत्तादृष्ट्या पश्यामश्चेत् एतच्छिक्षायाः सर्वस्तरोऽपि प्रभावशाली नावलोक्यत एव।

अभिक्रमिताध्ययनम्—शैक्षिकप्राविधिकक्षेत्रे अभिनवा स्वाध्यायपद्धतिः। अत्र स्वीयप्रयत्नैः स्वतः अथवा पाठनेन यन्त्रसाहाय्येन ज्ञानं प्रापयितुं शक्यते, अत्र विषयजातमनुबन्धिविभागेषु विभज्य यथाक्रममायोजितं भवेत्। प्रतिविभागं यथा क्रमं विषयाः परस्परमनुबद्धाः स्युः। एकस्य विषयस्य पाठन-समनन्तरं तस्य बुद्धि-परीक्षणनिमित्तं प्रश्नाः दत्ताः भवेयुः। तदनु विषयस्य पुनःस्मारणं जायते एव। तादृशपद्धत्या पाठानां निर्माणेन छात्रः अध्यापकेन विनैव विषयमवगन्तुं प्रभवति। अयं च पुस्तकाधारेण वा भवितुमर्हति।

अद्यतनव्याख्यानविधेः उपन्यासविधेः वा अर्थात् अध्यापककेन्द्रियशिक्षायाः भिन्ना इयं प्रक्रिया। अत्र च छात्राणां मनोवैज्ञानिकाधारेण, च्छात्राणां मानसिकप्रवृत्तिं, छात्राणामभिरुचिं, ग्रहणशक्तिं, उत्साहं च मनसि निधाय बहुभिः आचार्यैः सम्मिलिताभिप्रायैः छात्राणां संशयराहित्यमिति प्रयोजनमुपलक्ष्य निर्मिता द्वयं स्वाध्यायपद्धतिः।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MS-28

श्रीहरिवनविचरणकाव्यस्य परिशीलनम्

डॉ. प्रेमशंकर गि. शुक्लः, मुम्बई

संस्कृते महाकाव्यस्य परम्परा प्राचीनतमा। आधुनिकयुगे आधुनिकदृष्ट्या महाकविभिः श्रेष्ठानि महाकाव्यानि लिख्यन्ते। स्वामिनारायणसंप्रदाये श्रेष्ठश्रीगोपालचरणदासशास्त्रीस्वामिभिः श्रेष्ठश्रीहरिवन-विचरणमहाकाव्यं लिखितम्। एतैः इदं महाकाव्यं साहित्यशास्त्रीयमहाकाव्यलक्षणसम्मतं लिखितम्।

श्रीहरिवनविचरणकाव्ये महाकाव्यलक्षणं पूर्णरूपेण घटते अत्र 49 सर्गाः सन्ति। अत्र श्रीहरिः सुरः देवता नायकरूपेण वर्तते सः उत्तमकुले जातः तथा च धीरोदात्तगुणयुक्तः अस्ति।

अत्र प्रधान रसः भक्तिरसः अस्ति। भक्तिरसपरिपूर्णमिदं महाकाव्यं जातम्। अन्ये शृंगार-वीर-शान्त-रसाः अपि गौणरूपेण सन्ति। अत्र कविना विविधानि छन्दांसि प्रयुक्तानि। अत्र विविधानामलंकाराणां दर्शनं भवति।

❖

MS-29

अर्वाचीने संस्कृतसाहित्ये समाजचेतना

श्रीसीतानाथ आचार्यशास्त्री, कोलकता

साहित्यं समाजश्च मिथः सम्पर्कितम्। कविस्तावत् संवेदनशीलः सामाजिकः, रसभावसमुच्छला तदीया वाङ्मयी कृतिरेव साहित्यम्। संस्कृतसाहित्यस्य विशालायतने कलेवरे यद्यपि सिद्धान्तोऽयं सामान्येन सङ्गमयितुं शक्यते, तथापि अर्वाचीने संस्कृतसाहित्ये समकालिकी समाजसंवेदनशीलता अधिकां मात्रां लभमाना परिदृश्यते।

विषयोऽयं सर्वभारतीयोऽपि अस्मदीयः प्रबन्धः पश्चिमवङ्गमेव आश्रयिष्यते। तथा हि निरुक्ते प्रदेशे विंशशताब्द्यां जायमानानां हरिदाससिद्धान्तवागीश-कालीपदतर्काचार्य-श्रीजीवन्यायतीर्थ-वीरेन्द्र-कुमार-भट्टाचार्य-सिद्धेश्वरचट्टोपाध्याय-चिन्ताहरणचक्रवर्ति-तारापदभट्टाचार्य-दीपकघोष-सीतानाथआचार्यशास्त्रि-(प्रबन्धकारः) प्रमुखानां साहित्यकृतिषु प्राप्यमाणा समाजचेतना प्रबन्धेऽस्मिन् समुपस्थापयिष्यमाणा भवेत्। प्रासङ्गिकतया अर्वाचीनस्य संस्कृतसाहित्यस्य समारम्भकालस्तथा तस्य कतिचन वैशिष्ट्यान्यपि पर्यालोचितानि भवेयुः।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MS-30

वर्तमानसमये नारीणां संस्कृताध्ययनस्य प्रयोजनीयता समस्या च

डॉ. कु. गुनीता मारबा

यदि वयं राष्ट्रं समुन्नतं कर्तुमिच्छामः तर्हि आर्यनार्यः सुसंस्कृताः कार्याः।

नार्यस्तु समाजस्य पुरोधाः यतः समाजनिर्माणकारकमानवस्य प्रथमशाला मातृक्रोड़ एव भवति। अत एव जननीनां शिक्षणमत्यावश्यकमिति तु पदे-पदे अनुभूतं भवति।

वर्तमानपरिस्थितौ संस्कृत-अध्ययन-अध्यापनस्य सम्यग् सौविध्यं दृष्टिगोचरं न भवति। बालिकानां कृते तु सन्ति असुविधानां संभाराः।

प्रथमा समस्या आधुनिकभौतिकवादयुगेऽपि बालिकानाम् सामान्याध्ययनम् अनेकक्षेत्रेषु अद्यावधि प्रतिबन्धितसंस्कृताध्ययनेन आर्थोपार्जनस्य सौविध्यम् प्रत्यक्षदृष्टिगोचरं न भवति पौरोहित्याद् अतिरिक्तम्। संस्कृतविद्यालयानां संस्थानां सर्वत्र अभावः रुचिकर-अध्यापनविधेरभावः गण्डोपरि विस्फोटकमिव प्रशासकीय-जटिलशृङ्खलानां चापः शासकीयोत्साहस्य-अभावसदृशसमस्याभिः हतोत्साहाः छात्राः। विविधासु प्रतियोगितासु अपि संस्कृतच्छात्राः आत्मानं कुण्ठिताः अनुभवन्ति।

एतासाम् समस्यानाम् निराकरणोपायः करणीय यथा प्रतिजनपदेषु संस्कृतप्रतिष्ठानानां संस्थापनम्। संस्कृत-आख्यानानां नाटकानाम् च सुकरमभिनयः येन जनाः संस्कृतपठने सुमत्सुकाः भवेयुः।

❖

MS-31

का त्वं शुभे : एका समीक्षा

श्रीतन्मयकुमारभट्टाचार्यः

अर्वाचीनसंस्कृतसाहित्यपरिसरे विशिष्टमेकं स्थानमधिकृत्य विराजते कविः सीतानाथ आचार्यशास्त्री, स खलु कलिकाताविश्वविद्यालयस्य संस्कृतविभागे म.म.गोपीनाथकविराज-प्राध्यापकपदमलंकुर्वन् विद्यते तस्य विविधासु वाङ्निर्मितिषु 'का त्वं शुभे' इत्येकं प्रेमोपजीव्यं काव्यम्।

शरत्पूर्णिमायाः समुन्मादके प्राकृतिकपरिमण्डले कविना सह शुभानामिकायाः कस्याश्चिन् नायिकाया स्वल्पस्थायिमेलनं संघटितम्। क्षणात् सा तिरोधानं गता। तस्याः स्मृतिः तस्या अनुभूतिश्च काव्यस्यास्य प्रधानोपजीव्यम्। विरहविधुरः कविस्तां बहुधा कल्पयति अनुभवति च।

समुपस्थापयिष्यमाणेऽस्माकं निबन्धे काव्यस्यास्य सर्वात्मिकैका समीक्षा भवेत्। तथा हि अत्र परिवेशितं प्रेम कीदृशम्? कीदृशी च कवेरस्य रचनारीतिः? काव्येऽस्मिन् कियदस्ति कवेः परम्परावाहिता कियती वा अभिनवशिल्पधर्मिता? एवमादयो बिन्दवो विचार्यमाणा भवेयुः निबन्धेऽस्मिन्।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MS-32

श्रीमद्वेदान्तदेशिकविरचितपादुकासहस्रे चित्रपद्धतिसौन्दर्यम्

डॉ. चक्रवर्तिरङ्गनाथः, तिरुपतिः

चकासति किल साहित्यप्रपञ्चे सद्यः परनिर्वृतिजनकानि बहुभिः कवितल्लजैः प्रणीतानि सुमनोहराणि काव्यरत्नानि। तादृशेषु काव्यरत्नेषु अनर्घमेकं काव्यरत्नम् 'पादुकासहस्राभिधम्' चकास्ति।

पुण्यभारतावन्यामस्यां श्रियः पतिः श्रीवैकुण्ठनिकेतनः श्रीमन्नारायणः अष्टोत्तरशतदिव्यधामसु अर्चामूर्तिरूपेण स्थित्वा निखिलभक्तजनलोकमनुगृह्णन् अस्तीत्यं विषयः सर्वविदित एव। तेषु दिव्यधामसु 'श्रीरङ्गम्' इति क्षेत्रं प्राथम्यं भजते यत्र च भगवान् श्रीरङ्गनाथः श्रीरङ्गनायिक्या सह प्रणवाकारविमानच्छायायां विराजते। सर्वलोकशरण्यस्य श्रीरङ्गनाथस्य दिव्यपादुकां पुण्यपादुकां संस्तुवन्, कीर्तयन् च विरचितः अनुपमस्तोत्रग्रन्थः एव **'पादुकासहस्रमिति'**।

अनवधिगुणालङ्कारसन्दोहसुन्दरं स्तोत्ररत्नमेतदान्तार्थदन्तुरं शास्त्रपरिश्रमालसान् कोमलमतीन् सुखेन भगवद्रामानुणसिद्धान्तसारार्थमखिलमवगमयत् सर्वोपजोव्यं सर्वसेव्यं सर्वरस्यं चेति स्पष्टमेतदखिलानामनुवाचयताम्।

स्तोत्रकाव्येऽस्मिन् सहस्रं श्लोकाः विद्योतन्ते। एतेषां विभागं श्रीवेदान्तदेशिकचरणाः 'पद्धतिः' इति नाम्ना द्वात्रिंशत् अकुर्वन्। तत्र **चित्रपद्धतिः-त्रिंशी** भवति। अस्याञ्च पादुकास्तुतिपरकाः शब्दचित्रप्रधानाः चत्वारिंशत् श्लोकाः अत्यन्तं हृदयङ्गमाः विलसन्ति। अत्र आचार्यैः बहवो बन्धाः प्रदर्शिताः। तत्र—1. शरबन्धः, 2. गरुडगतिचक्रबन्धः, 3. द्विशृङ्गाटकचक्रबन्धः, 4. द्विचतुष्कचक्रबन्धः, 5. अष्टदलपद्मबन्धः, 6. चतुरचक्रबन्धः, 7. षोडशदलपद्मबन्धः, 8. चतुरङ्गतुरङ्गबन्धः, 9. मुरजबन्धः, 10. अर्धभ्रमकबन्धः, 11. षडरचक्रबन्धः, 12. अष्टारचक्रबन्धः, 13. पादुकाबन्धः इत्येवमादयो भ्राजन्ते।

शोधपत्रेऽस्मिन् श्रीवेदान्तदेशिकानां माहात्म्यम्, काव्येषु चित्रपद्धतेः प्राधान्यम्, पादुकासहस्रे तस्याः सौन्दर्यञ्च, एवमेव रस्यान् शब्दचित्रप्रधानान् बन्धान् सर्वेषां प्रमोदाय प्रदर्शयिष्यामि इति दिक्।

❖

MS-33

म.म. बटुकनाथशास्त्रिखिस्तेविरचित-'कल्लोलिनी'ति कृतेः काव्यवैशिष्ट्यम्

डॉ. विनोदरावपाठकः, वाराणसी

परमपूज्यस्वर्गीयपण्डितप्रवर-कविमूर्धन्य-धन्ययशस्तोमसोमप्रकाशमानविग्रहा आचार्यश्रीबटुकनाथशास्त्रिखिस्तेवर्याः सहस्रशः पद्यानि विरचयाञ्चक्रुः। यथा पद्ये तदीयं रचनापाटवं आसीत्तथा गद्येऽपि निर्बाधं कौशलं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदीयमभूत्। यद्यपि निरन्तरघटमानकवित्वपारम्पर्यं पालयन्तस्ते किमपि महाकाव्यं न प्राणैषुस्तथापि 'कल्लोलिनी' नाम तदीयं काव्यसङ्कलनं महाकाव्यप्रतिस्पर्धिवैशिष्ट्यं बिभर्तीति वक्तुं सुतरां युज्यते।

अस्यां कल्लोलिनीत्यभिधायां काव्यसङ्कलनायां पञ्चतरंगा उद्योतन्ते—यथा स्तुतितरंगः, ऋतुतरंगः समस्यातरंगः व्यक्तित्वतरंगः स्फुटतरंगश्च। इत्थं पञ्चभिस्तरङ्गैः समलङ्कृतम् 'कल्लोलिनी' इति नाम सङ्कलनकाव्यं महाकविखिस्तेगुरुचरणानां यशःशरीरसंपोषणाय चिरकालं यावत् स्थास्यतीति निश्चप्रचं ब्रूमः।

म.म. गुरुवर्यखिस्तेमहानुभावानां पद्यरंचनायां पदशय्या-भावशय्या-इत्युभयोः यादृशं सामरस्यं सामञ्जस्यञ्च अनुभूयते तादृशं क्वाप्यन्यत्र दुर्लभमेव।

यास्याः कल्लोलिनीत्यभिधानायाः तेषां विलक्षणकृतेः सारसंक्षेपेण स्वरूपमत्र निर्दिष्टं तिष्ठति। विस्तरेण तदालोचनं 'म.म. बटुकनाथशास्त्रिखिस्तेविरचित-'कल्लोलिनी'ति कृतेः काव्यवैशिष्ट्यम्' इत्यस्मिन् निबन्धे प्रस्तोष्यते।

❖

MS-34

अमरभारतीपत्रिकासु प्रकाशितसमस्यापूर्तीनां समीक्षणम्

श्रीविनोदकुमारखिस्ते, वाराणसी

प्राच्यराजकीयसंस्कृतमहाविद्यालयसमये एका अमरभारतीनाम्नि यशस्विनी पत्रिका प्रकाश्यते स्म। तस्यां पत्रिकायां नानाविधानि समस्यापरकपद्यानि पत्रिकायाः भूषणान्यासन्। तासामेव समस्यापूर्तीनां विवेचनं शीर्षकेऽस्मिन् प्रबन्धे विस्तरेण प्रस्तोष्यते।

❖

MS-35

वक्रोक्तिः काव्यजीवितम्

डॉ. शारदासामन्तरायः, पुरी

काव्यस्य कः आत्मा इति जिज्ञासायां 'वक्रोक्तिः काव्यजीवितम्' इति आचार्यकुन्तकेन प्रत्यपादि 'वक्रोक्तिः' इति किम्? वक्रोक्तिमाध्यमेन किं रसध्वनेः अलंकारध्वनेः अथवा वस्तुध्वनेः बोधः भवति किम्? 'जीवितम्' इति पदेन किम् 'आत्मा' इति बुध्यते?

एतेषु विषयेषु शोधप्रबन्धेऽस्मिन् आलोचनं विधास्यते।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MS-36

आम आदमी की जमीर और उसकी जमीन-आधुनिक संस्कृत लघुकथाएँ

श्री बनमाली बिश्वाल, इलाहाबाद

आधुनिकता ही बीसवीं सदी के संस्कृत साहित्य की पहचान बनी है। इस कालखण्ड के आरम्भ से ही संस्कृत साहित्य में अनेक अभिनव प्रयोग हो रहे हैं, जहाँ साहित्यिक परम्पराओं में परिवर्तन, शास्त्रीय मान्यताओं का संयमित और सोद्देश्य उल्लंघन, पुरातन भाषाशैली में आमूल-चूल नयापन तथा भाव और शिल्प में नवसृजन अनायास देखने को मिल जाता है।

यूँ तो संस्कृत में कथा का इतिहास सहस्रों वर्ष पुराना है, पर इसी शताब्दि में संस्कृत-लघुकथा को एक नई विधा के रूप में स्वीकृति मिली। अपनी लोकप्रियता के कारण संस्कृत लघुकथाएँ पाठकों के मध्य विशेष प्रतिष्ठा और स्नेह अर्जित कर रहीं हैं और लघुकथा-रचना के प्रति साहित्यकारों का अत्यधिक रुझान भी दृष्टिगत हो रहा है। आज की संस्कृत कथाओं में आम जीवन पनप रहा है। जीवन से पलायन इन कथाओं का उद्देश्य नहीं है। आम आदमी की जमीर और उसकी जमीन से जुड़ने के कारण ये कथाएँ हमें पहले से अधिक कर्मण्य बनाती हैं। हमारा देखा-सुना, जाना-माना, सोचा-भोगा संसार ही आज की संस्कृत कथाओं का मूलस्रोत है।

यथार्थता के प्रति आत्म-सजगता इन कथाओं को अलग पहचान देती है। भ्रष्टाचार-मँहगाई, अत्याचार-बलात्कार, छल-कपट, स्वार्थ-आतंकवाद, बिगड़ते सम्बन्धों, बिखरते स्वप्नों, बढ़ते वैदेशिक-प्रभावों और ढहते पारम्परिक/पारिवारिक सामाजिक मूल्यों के मध्य आज की कथाओं का नायक अपने को नितान्त अकेला, अजनबी, असहाय, स्वतन्त्र एवं टूटा हुआ अनुभव कर रहा है। वह नैतिक-मूल्यों की धज्जियाँ उड़ते देख रहा है।

आज का कथा-लेखक जाने अनजाने उसी वर्ग एवं परिवेश का प्रतिनिधित्व कर रहा है जिसमें वह पला है। वह सामाजिक हासिए पर खड़े पात्रों एव चरित्रों कों रेखांकित करने का प्रयास कर रहा है। आम आदमी की अनकही व्यथाओं, अनबुझी समस्याओं एवं अनचाही संवेदनाओं पर आधुनिक संस्कृत कथाकारों की कलम चल पड़ी हैं।

❖

MS-37

अपने समय को पढ़ने का एहसास डॉ. बनमाली बिश्वाल की कथायें

डॉ. अर्चना तिवारी, फतेहपुर

आधुनिक संस्कृत साहित्य जगत में पनपने वाली नवीन विधाओं में लघुकथा बेल समूह का पुष्पवन-पल्लवन सर्वाधिक प्रगतिशील है। प्रायः सभी रचनाकारों में कथा लेखन के प्रति रुझान देखा जा सकता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। निरन्तर प्रकाशित हो रहे कथा संग्रहों से लेखकों व पाठकों में कथाओं की लोकप्रियता का अनुमान सहज सुगम्य है। आधुनिक लघुकथायें भावबोध, भाषा-शैली व शिल्प की दृष्टि से समकालीनता या आधुनिकता से युक्त है। वैयक्तिक और सामाजिक वर्तमान जीवनशैली से उत्पन्न परिस्थितियों से जुड़े सच की जाँच-पड़ताल का साहसिक और सराहनीय रचनाकर्म इन कथाओं के मूल में है। बिना किसी औपचारिकता के जीवन और जगत् के साथ बहा ले जाने वाली ये कथायें पाठकों के अन्तःस्थल में अपना स्थान बनाने में सक्षम हैं।

'नीरवस्वनः', 'बुभुक्षा' और 'जिजीविषा' कथा-संग्रहों के लेखक डॉ. बनमाली विश्वाल प्रवर्तमान कथा साहित्य के रेखांकित हस्ताक्षर हैं। ये कथायें कथाकार की स्वतन्त्र और सर्वगामिनी प्रतिभा का प्रकाशन है। इन कथाओं में कल्पना-चारुता है, भावात्मकता है, आनन्दप्रियता है, मानवीयता है, सामाजिकता है, राष्ट्रीयता है, पीड़ा है, व्यथा है, करुणा है तथा लोकमंगल की भावना है। इनमें व्यक्तिमन की कोमल अनुभूतियों के साक्षात्कार और मूल्यों-मान्यताओं के तले दबी मानवता को खंगालने का प्रयास है। प्रस्तुत लेख में कथा के भाव-पक्ष और कला-पक्ष दोनों पर कुछ विचार किया गया है। कथाओं के संवेदनात्मक क्षितिज में फैली कहानी कला के सौन्दर्यात्मक तथा मार्मिक भावपक्ष का विश्लेषण करने का प्रयास है। यहाँ कथाओं के मूल में लेखक की सृजनात्मक दृष्टि और अनुभव पर भी विचार किया गया है।

❖

MS-38

संस्कृत साहित्य में महाकवि वेणीदत्त का अवदान

डॉ. काशीनाथ मिश्रा, पटना

संस्कृत साहित्य में वेणीदत्त नाम के बहुत सारे आचार्य हुए हैं; उन्हीं में से एक हैं रसकौस्तुभकार आचार्य वेणीदत्त उपाध्याय। आप मिथिला के 'कर्माहा बेहट' वंशीय वत्स गोत्रीय श्रोत्रिय ब्राह्मण थे। आपके पूर्वजों में अवहट्ट के भाषा कवि हरिब्रह्म, महोधूर्तराज गोनू, नव्यन्याय प्रवर्त्तक गंगेश, नाटककार माणिक, रामगीतगोविन्दकार जयदेव आदि बहुत ही प्रसिद्ध हुए हैं। मिथिलेश महाराज माधवसिंह के मातामह षड्दर्शनाचार्य जगन्नाथ आपके पिता और 'साहित्यालङ्कार' भवानीदत्त आपके अग्रज थे। आप वर्तमान मधुबनी जिला के बिठ्ठो नामक गाँव में 18वीं शताब्दी में विद्यमान थे।

रसकौस्तुभ, अलङ्कारमञ्जरी, रसमहार्णव आदि काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों के अतिरिक्त आपने श्रीकृष्ण लीला और भैरवोदय नामक नाट्यकृतियों की भी रचना की थी। जिनमें श्रीकृष्ण लीला अनुपलब्ध है, पर उसके पद्य या गीत आज भी यत्र-तत्र मिल जाया करते हैं। जबकि भैरवोदय नाटक बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् के पुस्तकालय में सुरक्षित है। विरुदावली नामक किसी काव्य की रचना भी आपने की थी, जिसकी चर्चा अलङ्कारमञ्जरी एवं रसमहार्णव में मिलती है, परन्तु दुःख है कि यह ग्रन्थ भी उपलब्ध नहीं है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्याब्धि, अलङ्कारचन्द्रोदय, पञ्चत्वप्रकाशिका, वासुदेव-चरित, पद्यवेणी आदि ग्रन्थों के रचयिता वेणीदत्त(दय) जहाँ आप से भिन्न थे, वहीं गीतगोपीपति एवं रसमञ्जरी के स्थूलतात्पर्यव्याख्याकार वेणीदत्त से आप भिन्न थे अथवा अभिन्न—कहना कठिन है। इसी प्रकार रसतरंगिणी की रसिकरञ्जिनी व्याख्या भी प्राप्त होती है, जिसका कर्त्ता निःसन्देह स्थूलतात्पर्यकार ही हो सकता है।

वेणीदत्त शब्दविन्यास में ही नहीं, वक्रोक्ति में भी अनुपम हैं। इन्होंने अपने रसविषयक ग्रन्थों का मंगल भी वक्रोक्ति के द्वारा ही किया है।

संक्षेप में यदि कहा जाय तो शब्दसौन्दर्य, श्लेष, वक्रोक्ति, भावगाम्भीर्य आदि कवि की खास विशेषता रही है। इन्हीं सब विषयों को इस प्रबन्ध में दर्शाया गया है तथा यह दिखाया गया है कि महाकवि वेणीदत्त अपने समय के एक अद्वितीय आचार्य और कवि थे।

❖

MS-39

लेनिनामृतम् : नई चेतना का प्रतीक

सुश्री अर्चना लालजिंग, अकोला

क्वाहं हीनमतिर्मन्दः क्व च लेनिनदर्शनम्।
मोहात्तरीतुकामोऽस्मि भुजाभ्यां सागरं यथा॥

महाकवि पद्मशास्त्री ने यथा मति यथा सामर्थ्य महर्षि लेनिन का उद्गात्त जीवनदर्शन व चरित इस महाकाव्य में ओजस्वी भाषा में वर्णित किया है। मार्क्सवाद के सिद्धान्तों पर आधारित उत्कृष्ट नेतृत्व करने वाले नेता लेनिन के जीवन-चरित्र और संघर्ष की गाथा का वर्णन इस महाकाव्य में किया है। संक्षेप में कहें तो सर्गों का वर्ण्य विषय कुछ इस प्रकार है—साम्यवाद का व्यापक स्वरूप, रशिया का भौगोलिक वर्णन, रशिया राष्ट्र के नैसर्गिक सौन्दर्य की चर्चा एवं भारत व रशिया के मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों का वर्णन, लेनिन का जन जागृति के लिए किया गया प्रयत्न, लेनिन के परिवार का परिचय, उनकी शिक्षा तथा कौटुम्बिक परिवेश और साथ ही में बलादमीर लेनिन के जीवन के उदात्त प्रसङ्गों का वर्णन महाकवि ने कुल पन्द्रह सर्गों में किया है।

महात्मा लेनिन के पराक्रम की शौर्यगाथा पद्मशास्त्री ने पन्द्रह सर्गों में काव्य के रूप में समाहित की है। यह महाकाव्य शास्त्रीय दृष्टि से निर्दोष है। लेनिन एक धीरोदात्त नायक के रूप में प्रस्तुत हुए है। महाकाव्य का शीर्षक नायक के नाम से दिया गया है, इसका अङ्गीरस वीर है। प्रसंगानुसार नैसर्गिक सौन्दर्य का वर्णन किया गया है। वीर रस को परिपुष्ट करने वाली ओजस्वी भाषा का प्रयोग हुआ है। महाकाव्य में कवि ने अत्यन्त सुप्रसिद्ध छन्दों का प्रयोग किया है यथा—अनुष्टुप, शालिनी, द्रुतविलम्बित। इन रस व छन्दों के विलास के कारण भाषा तथा महाकाव्य को विशेष गौरव प्राप्त हुआ है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MS-40

डॉ. हर्षदेव माधव की उड़ान के नये क्षितिज

डॉ. मञ्जुलता शर्मा, आगरा

अपनी साहित्य साधना से अर्वाचीन संस्कृत जगत को स्तब्ध कर देने वाले इस साधक ने विश्वफलक पर अपनी एक पहचान दी है। उनका इहलौकिक प्रेम सोपान तय करता हुआ कब परमात्म चिन्तन में बदल जाता है, इसका अनुमान पाठक अन्त तक नहीं कर पाता। ऐसे चमत्कारिक चिन्तन के धनी डॉ. हर्षदेव माधव ने अपने काव्य को चित्रात्मकता, इन्द्रियग्राह्यता और साम्य सौन्दर्य से सजाकर अन्य भाषीय कविताओं के मध्य अग्रिम पंक्ति में बैठाने का श्रमसाध्य कार्य किया है।

आज समस्त क्षेत्रों में क्रान्तिकारी परिवर्तन अपेक्षित हैं। ऐसे में संस्कृत साहित्य भी अपने नवीन रचना शिल्प एवं भावबोध से अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहा है। आधुनिक संस्कृत साहित्य के पुरोधा डॉ. हर्षदेव माधव की रचनाधर्मिता का ही यह चमत्कार है जिसमें हाइकू, तान्का जैसे छोटे-छोटे छन्दों की तीक्ष्णता 'गागर में सागर' को परास्त कर प्याले में समुद्र का बड़वानल भर देती है।

'कालोऽस्मि' अपनी चित्रात्मकता एवं व्यंग्य वीथिकाओं से सहृदयी पाठकों का कण्ठहार बन रही है। इसे पढ़ते समय यह निश्चित् करना बड़ा कठिन होता है कि हिन्दी, संस्कृत एवं अंग्रेजी किस भाषा में व्यंग्य की गहराई को अधिक कुशलता से मापा गया है। कहीं-कहीं पर चित्राङ्कन इतना अधिक प्रभावी है कि शब्द बौने हो जाते हैं।

वस्तुतः चाहे वह 'कण्णक्याक्षिप्तं माणिक्यनुपूरम्' की झंकार हो, 'सुधासिन्धोर्मध्ये' की आध्यात्मिक ऊष्मा हो, अथवा 'भावस्थिराणि जनान्तरसौहृदानि' के बिखरे हुए मौक्तिक हों, कवि ने 'निष्क्रान्ता सर्वेः' कहकर स्वयं को भीड़ से अलग सिद्ध किया है। हाँ! यह अवश्य है कि कुछ कविताओं में ज्ञान प्रदर्शन की लिप्सा उन्हें साधारण पाठक से दूर ले गयी है।

वास्तव में यही कहा जा सकता है कि 'सिक्थवर्तिवत् प्रज्ज्वलामि' कहने वाले डॉ. हर्षदेव माधव के जीवन का प्रत्येक पल पिघलकर इस संस्कृत जगत् को प्रकाशित कर रहा है। यही कारण है कि इस मोड़ पर आकर भी किंकर्तव्यविमूढ़ता कवि पर हावी नहीं है; क्योंकि वे जानते हैं कि सम्भावनाओं के द्वार अभी भी खुले हुए हैं।

❖

MS-41

संस्कृतस्तोत्र काव्य परम्परा में 'जनार्दनमणि' विरचित 'नीराजना' का मूल्यांकन

डॉ. (श्रीमती) छाया रानी, उत्तराञ्चल

संस्कृत साहित्य में स्तोत्रों की परम्परा अत्यन्त प्राचीनतम है, चाहे वह वैदिक संस्कृत साहित्य हो या लौकिक संस्कृत साहित्य। सर्वत्र ही ऋषियों एवं भक्तकवियों ने अपने इष्ट के चरणों में बिना कुछ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्दार्थ समर्पण के तोष का अनुभव नहीं किया है। यही कारण है कि संस्कृत साहित्य में स्तोत्र कहीं काव्य ग्रन्थों के अंश के रूप में तथा कहीं स्वतन्त्र काव्य के रूप में उद्भूत हुए हैं।

डॉ. जनार्दनप्रसाद पाण्डेय मणिविरचित 'नीराजना' संस्कृत स्तोत्रों की इसी समृद्ध काव्यपरम्परा की अभिनव शताब्दी की नवीनतम स्वतन्त्र रचना है। स्तोत्र काव्य के रूप में इसका कलेवर एवं फलक दोनों नितान्त विस्तृत हैं। इसीलिए इसके भावात्मक क्रोड में कोई अभिनव प्रस्थान उद्भासित होता है।

नीराजना का 'पूर्वभाग' जहाँ शिवपरक श्लोकों से अभिपूरित है, वहीं 'उत्तर भाग' विष्णुपरक श्लोकों से अभिमन्त्रित है। मणिजी की मनीषा ने दोनों इष्ट देवों में विग्रहमात्र का अन्तर समझा है और इसीलिए अपने इष्ट के समक्ष अपने निश्छल हृदय को निराकृत करके रख दिया है। इष्ट के गुणगान अपरिमित शक्ति विस्तार एवं कृपा प्रसाद को अभिव्यक्त करता हुआ नीराजनाकार कहीं युगीन संवेदनाओं एवं आत्मक्रन्दन से अपने आराध्य को बड़ी सहजता के साथ संयोजित करता है, तो कहीं स्तोत्र यात्रा के साथ समूचे युग की भावयात्रा कराने में भी कोई संकोच नहीं करता। व्यष्टि के साथ समष्टि का समन्वय नीराजना के स्तोत्र काव्यत्व को 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' के सन्तुलन से अभिसिञ्चित करता है। विसंगतयुग एवं परिवेश को सुसंगत एवं सुरभित करने के लिए भगवान् शिव के शिवत्व एवं भगवान् विष्णु के बहुरूपत्व की आज पौनःपुन्येन अपेक्षा है। यह नीराजना का उद्घोष है। यही स्वनिरपेक्ष एवं लोक सापेक्ष जीवन दर्शन 'नीराजना' को उत्कृष्ट स्तोत्र काव्य के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

❖

MS-42

अभिराज राजेन्द्र मिश्र विरचित 'वामनावतरणम्' की समीक्षा

डॉ. किरण टण्डन, उत्तराञ्चल

आधुनिक संस्कृत साहित्य को अपनी वामनावतरणम्, जानकीजीवनम्, इक्षुगन्धा, वाग्वधूटी, नाट्यसप्तपदम्, रूपरुद्रीयम् आदि अनेक प्रशंसनीय कृतियों से समृद्ध करने वाले सम्प्रति सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के कुलपति त्रिवेणीकवि **प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र** के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व से प्रायः सभी सहृदय संस्कृतानुरागी विद्वज्जन सुपरिचित हैं।

उत्तर-प्रदेश संस्कृत अकादमी, दिल्ली संस्कृत अकादमी, साहित्य अकादमी, मध्य-प्रदेश संस्कृत अकादमी, के.के. बिड़ला फाउण्डेशन, भारतीय भाषा परिषद्, कलकत्ता से अनेक राष्ट्रीय ख्याति के पुरस्कार प्राप्त करने वाले डॉ. राजेन्द्र मिश्र का 'वामनावतरणम्' संस्कृतकाव्य शास्त्रीय मानदण्डों के निकष पर खरा उतरने वाला अनुपम महाकाव्य है। राजस्थान संस्कृत अकादमी से सन् 1991 में पुरस्कृत सत्रह सर्गों वाले इस महाकाव्य के कथानक का स्रोत भगवान् विष्णु के वामनावतार का पौराणिक आख्यान है। वामनरूपधारी भगवान् विष्णु, देवराज इन्द्र, दैत्यराज बलि, दैत्यगुरु शुक्राचार्यादि इसके प्रमुख पात्र हैं;

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीर, भक्ति, वत्सल, अद्भुत रसों से पुष्ट शान्त अंगीरस है; उपमा, रूपक, अर्थान्तरन्यास, उत्प्रेक्षादि रसोपकारक अलङ्कार हैं; इसके 848 पद्य मालिनी, वसन्ततिलका, इन्द्रवज्रा, उपजाति, वंशस्थ, शालिनी आदि प्रसिद्ध छन्दों में हैं; काव्य में रसानुरूप ही वैदर्भी शैली प्रयुक्त हुई है; यज्ञ, युद्धयात्रा, अमरावती, नन्दनवन आदि के वर्णनों से कथानक रोचक हो गया है; पूज्य जनों के प्रति आदर, कनिष्ठों के प्रति वत्सलता, ईश्वर के प्रति आस्था, अतिथिसत्कारपरायणता, दानशीलता, प्रजारंजन, सुयोग्यमन्त्रिमण्डल का गठन आदि शिक्षाप्रद बातें प्रस्तुत की गयी हैं तथा धर्म, अर्थ, काम रूप त्रिवर्गसिद्धिपूर्वक मोक्षसिद्धि की दिशा भी मिलती है।

❖

MS-43

जनार्दन मणि विरचित 'रागिणी में जीवन दर्शन'

डॉ. कमलेश वर्मा, आगरा

'रागिणी' राष्ट्रपतिपुरस्कृत युवाकवि डॉ. जनार्दन प्रसाद पाण्डेय 'मणि' की अभिनव काव्यकृति है। कवि की यह रागिणी पंचरागात्मिका है, जिसमें देवनिष्ठराग-लोकराष्ट्रराग, रूप-सौन्दर्यराग, प्रकीर्ण-विषयवस्तुराग, जीवनरहस्यराग समाविष्ट हैं। जीवनरहस्य राग को मैं 'रागिणी' के समस्त रागों से विलक्षणतर मानती हूँ; क्योंकि रस राग में जीवनदर्शन के तत्त्व उभरकर सामने आये हैं। गीतों की सुरम्य वीथी में उभारी गयी जीवनदर्शन की सोंधी गन्ध सहृदय पाठक को अकस्मात् अपनी ओर आकृष्ठ कर लेती है। कवि अतृप्ति को जीवन की संचरणशीलता का हेतु मानता है। उसके स्थायित्व को प्रयत्न पथ का पाथेय मानता है। सुख यदि जीवन में क्षणिक है, तो इससे काम चलने वाला नहीं है। अतः हमें जीवन के अधिकतम भाग दुःख में सुख कणिकाओं का अन्वेषण करना चाहिए। मंच सिद्धान्त प्रिय है, लोक सुविधाप्रिय है। जीवन सिद्धान्त एवं सुविधा का समन्वय है। यह कहीं तो मीठे सपनों का सुन्दर नृत्त है, तो कहीं उन्हीं सपनों के मौन की कसैली कथा है। यह कहीं संघर्ष है, तो कहीं आशा है। कहीं प्रतीक्षाओं के परिमाण का मूल है, तो कहीं मृदु कल्पनाओं का निःश्वास है। किसी के लिए जीवन कीर्तिरूपी नदी के लहरों का संगीत है, तो किसी के लिए यह प्रियतमा के चषकी कृत अधर का पर्याय है। इन सब मान्यताओं को आंशिक स्वीकृति देते हुए 'मणि' जी ने गीता दर्शन के प्रवृत्तिवादी दृष्टिकोण की ओर अपने को अभिमुख किया है तथा उन्होंने सत्कर्म को ही जीवन की संज्ञा से अभिहित किया है। सुख-दुःख की यवनिका जीवन की शोभा है। संकल्प-वीणा, जीवन-रागिणी की जन्मदात्री है। ऐसे ही जीवन दर्शन के अनेक मौलिकतत्त्व 'रागिणी' के गीतों में उपलब्ध होते हैं। इन सबके मूल में कवि की व्यापक अनुभूति-प्रवणता एवं जीवन-रहस्य के प्रति सार्थक सोच सर्वथा श्लाघनीय है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MS-44

जनार्दनमणि के 'गीतसाहित्य' में सौन्दर्यप्रेमविच्छित्ति

डॉ. शेषनारायण त्रिपाठी, उत्तराञ्चल

आधुनिक संस्कृत साहित्य के रससिद्ध गीतकार डॉ. जनार्दन मणि के गीतों से सहृदय जगत् सर्वथा सुपरिचित है। आपके दो गीतिकाव्य 'निस्यन्दिनी' एवं 'रागिनी' अब तक प्रकाश में आये हैं। इन दोनों गीतिकाव्यों में मणि जी ने सौन्दर्य एवं प्रेम को अनुभूति की स्वच्छ देहली पर बड़ी तरलता के साथ रेखांकित किया है। सौन्दर्य जहाँ आँखों के सहारे हृदय में उतरता है, वहीं प्रेम हृदय के सहारे आँखों में छलकता है। जीवन में अपेक्षित सौख्य एवं जिन्दादिली के लिए सौन्दर्य एवं प्रेम की अनिवार्यता मणि जी को अभीष्ट है। सौन्दर्य जब भावज प्रत्ययों की सुरम्य स्थितियों की स्पर्धा से आकर्षण की कमनीयता की सृष्टि करता है तब कवि का बाह्याभ्यन्तर दर्शनपटल सब कुछ को विस्मृत कर देने वाले अनंगमहोत्सव में अँगड़ाइयाँ लेने लगता है। किन्तु यदि प्रेम का पवित्रभाव सौन्दर्य में समाविष्ट नहीं होता तो सौन्दर्य सीमित हो जाता है। वह भोग एवं वासनामात्र का विषय हो जाता है। प्रेम सौन्दर्य को समर्पण देता है, गम्भीरता देता है, अनन्तता देता है तथा कभी भी न समाप्त होने वाली विश्वसनीयता देता है। सौन्दर्य एवं प्रेम की समन्विति ही जीवन में माधुर्यमयी विच्छित्तियों की रागात्मक उपस्थापना कर जीवन को जीवन का रूप देती है। मणि जी के गीतसाहित्य में ये तत्त्व बड़ी सहजता के साथ उभरे हैं। पाश्चात्त्य संस्कृति के प्रभाव से आज के युग में सौन्दर्य को आत्मसात् करती हुई कृत्रिमता एवं प्रेम में तेजी से घुल रहे कैतव को देखकर कवि अपनी गीतयात्रा में दुःखी हुआ है जिसके परिणामस्वरूप सौन्दर्य एवं प्रेम दोनों के प्रति उलाहना के स्वर मुखरित हुए हैं। किसी भी प्रकार की औपचारिकता एवं बनावट प्रेम तथा सौन्दर्य दोनों की विघातिनी है। अतः इसका परिहार होना चाहिए। यह ध्वनि मणि जी के सौन्दर्य प्रेमपरक गीतों से स्पष्टरूप में अभिव्यक्त होती है।

❖

MS-45

दूतकाव्य परम्परा में तैलंग व्रजनाथविरचित 'मनोदूतम्' काव्य

सुश्री पूजा सिंह, फैजाबाद

दूतकाव्यों की परम्परा में 'मेघदूत' सर्वोत्कृष्ट दूतकाव्य हैं। कालिदास की इस रचना से प्रेरणा प्राप्त कर अनेक कवियों ने दूतकाव्यों की रचना की है।

संस्कृत दूतकाव्यों की परम्परा में कवि श्री तैलंग व्रजनाथ विरचित 'मनोदूतम्' काव्य का अन्यतम स्थान है। कवि तैलंग व्रजनाथ 'तैलंग वंश' के श्रीभूधर भट्ट के पौत्र तथा श्री रामकृष्ण के पुत्र थे। ये पञ्चनद के निवासी थे। कवि के अनुसार 'मनोदूतम्' काव्य की रचना वि.सं. 1814 (स. 1758 ई.) में हुई थी। कवि ने इस काव्य पर स्वयं ही टीका लिखी है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्णयसागर प्रेस बम्बई से काव्य-माला के त्रयोदश गुच्छक में यह काव्य प्रकाशित हुआ है। इस काव्य का दूसरा नाम 'सहृदयहृदयाह्लादन' भी है।

'मेघदूत' के अनुकरण पर लिखे गये 'मनोदूत' काव्य में 202 श्लोक शिखरिणी छन्द में हैं। इस काव्य में छन्दों का प्रयोग सर्वथा नवीन है। कवि ने करुण रसपूर्ण, कृष्णभक्तिपरक, सरस सन्देश-काव्य 'मनोदूत' की रचना की है। दूतकाव्यों की परम्परा में तैलंग व्रजनाथ विरचित 'मनोदूत' काव्य अपने ढंग का निराला काव्य है।

❖

MS-46

आचार्य डॉ. राजदेव मिश्र का संस्कृत साहित्य में योगदान

श्री समीर कुमार पाण्डेय, सुलतानपुर

कारयित्री तथा भावयित्री प्रतिभा सुमण्डित, तत्त्व विवेचिनी सारस्वत क्षमता सम्पन्न, सुदीर्घ उत्कृष्ट संस्कृत-लेखन के लिए भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मन्त्रालय द्वारा 'शास्त्र चूड़ामणि विद्वान्' सम्मान से सुभूषित, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ द्वारा विशिष्ट पुरस्कार से पुरस्कृत, अनेक प्रतिष्ठित संस्थाओं द्वारा विपुल परिमाण के कालजयी साहित्य प्रणयन के सन्दर्भ में सम्मानित, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के पूर्व कुलपति तथा संस्कृत साहित्य के आचार्य डॉ. राजदेव मिश्र (सम्प्रति निवास—आलोकपुरी, नियावाँ रोड, फैजाबाद, उत्तर प्रदेश) भारतीय मनीषा के वरद पुत्र हैं। आचार्य मिश्र का संस्कृत के पारङ्गत मनीषियों तथा सिद्ध कवियों में प्रतिष्ठापूर्ण स्थान है। अनेक विश्वविद्यालयों की संस्कृत शोध समितियों के वरिष्ठ सदस्य तथा शोध पर्यवेक्षक डॉ. मिश्र ने संस्कृत गद्य तथा पद्यलेखन क्षेत्र में विशिष्ट कीर्तिमान स्थापित किये हैं। आचार्य मिश्र की विविध विधाओं में प्रणीत छियालिस पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। आपकी यशस्विनी लेखनी से समुद्भूत एक सौ पन्द्रह शोध-निबन्ध प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें संस्कृत-ज्ञान के अनेक विलुप्त अध्यायों का उपस्थापन तथा नवीन क्षितिजों का सुप्रकाशन है। डॉ. मिश्र ने अनेक राष्ट्रिय तथा अन्ताराष्ट्रिय संगोष्ठियों में संस्कृत में धारा प्रवाह सम्भाषण कर, मौलिक तथा तलस्पर्शिनी मीमांसा मण्डित आलेखों को प्रस्तुतकर, संस्कृत जिज्ञासुओं और संस्कृत पण्डितों पर महान् उपकार किया है। क्रान्तद्रष्टा कवि आचार्य मिश्र की अनेक रचनाएँ आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों से प्रकाशित हो चुकी हैं। आपका हिन्दी लेखन भी महत्त्वपूर्ण हैं। आपकी अनेक हिन्दी रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं और हो रही हैं। आचार्य मिश्र का संस्कृत लेखन तथा प्रकाशन गतिमान है।

आचार्य मिश्र की काव्यप्रतिभा का समुचित निदर्शन 'काव्यसौरभम्' तथा 'काव्यकौतुकम्' (प्रकाशित) नामक संस्कृत गीत काव्य संग्रहों में उपलब्ध हैं। इन संस्कृत गीतों में राष्ट्रियता, प्राकृतिक छटा,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोवैज्ञानिकता, आधुनिक सामाजिक विरूपता तथा उसके निवारण की सकारात्मक दिशा मिलती है। कोमलकान्त पदावली व्यंग्य विनोद तथा गेयता इन कृतियों की अतिरिक्त विशेषता है। डॉ. मिश्र के संस्कृत निबन्धों के संग्रह 'विचार-वीथी', 'विवेक-वीची' में गवेषणात्मक साहित्यक अनुशीलन की प्रधानता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि आचार्य डॉ. राजदेव मिश्र का संस्कृत साहित्य को योगदान मौलिक, महत्त्वपूर्ण, ज्ञान के नवीन क्षितिज का प्रकाशक तथा अनेक आयामी है।

❖

MS-47

वसन्त त्र्यम्बक शेवडे का संस्कृत साहित्य में स्थान

डॉ. बीना सिंह, गोण्डा

महाकवि बसंत त्र्यम्बक शेवडे का संस्कृत साहित्य में महत्त्वपूर्ण मौलिक तथा विशिष्ट स्थान है। स्मृति, मति, प्रज्ञा तथा काव्य-प्रतिभा के अद्भुत आगार, जीवन का अधिकांश समय काशी में व्यतीत करने वाले शेवडे की कालजयी लेखनी से विन्ध्यवासिनीविजय, शुम्भवध तथा श्री देवदेवेश्वर नामक तीन महाकाव्य, रघुनाथतार्किकशिरोमणिचरितम्, श्रीकृष्णचरितम् तथा श्री मोतीबाबाजामदारचरितम् नामक तीन खण्डकाव्य, वृत्तमञ्जरी नामक छन्दविषयक लक्षण ग्रन्थ, दुर्गास्तवमञ्जुषा नामक भक्तिपरक मुक्तक काव्य तथा अन्य अनेक विकीर्ण रचनाएँ उद्भूत हुई हैं। अभिनव कालिदास की उपाधि से सम्मानित, उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी, मध्य प्रदेश संस्कृत अकादमी तथा साहित्य अकादमी सहित अनेक उच्चस्तरीय साहित्यिक पुरस्कारों से पुरस्कृत सुकवि शेवडे के रचना-संसार में भारतीय दर्शन की पृष्ठभूमि में उच्चस्तरीय साहित्य का दर्शन होता है। शाक्तदर्शन के विविध मान्यताओं को विन्ध्यवासिनीविजय, शुम्भवध, वृत्तमञ्जरी तथा दुर्गास्तवमञ्जुषा आदि ग्रन्थों को सुगमता से पढ़ा जा सकता है। इनकी कृतियों में साहित्य शास्त्र के विविध मानकों यथा—रीति, गुण, औचित्य, वक्रोक्ति अलंकारादि का समुचित सन्निवेश है। वृत्तमञ्जरी नामक छन्दपरक लक्षण ग्रन्थ में महाकवि ने स्वयं ही लक्षण तथा उदाहरण लिखा है। इन उदाहरणों में दुर्गास्तुति की प्रधानता है। महाकवि की शैली सरल, प्राञ्जल तथा प्रभावी है। उनकी रचनाओं पर वाल्मीकि, व्यास, कालिदास तथा भवभूति का प्रभाव झलकता है। वस्तुतः शेवडे ने उक्त महाकवियों की काव्य-परम्परा को उत्तम रीति से आगे बढ़ाया है। भारतीय तथा पाश्चात्त्य शिक्षाप्रणाली से शिक्षित तथा अनेक शास्त्रों में पारंगत पण्डित शेवडे का चिन्तन प्रौढ़ तथा लेखन परिमार्जित है जिसमें विविध शास्त्रों की मनोहारी पृष्ठभूमि परिलक्षित होती है। कर्तृत्व का समाकलन करने के अनन्तर असंदिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि बसन्त त्र्यम्बक शेवडे का संस्कृत साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MS-48

बीसवीं शताब्दी के दूतकाव्य

श्रीमती कविता गयावाल, भरतपुर

संस्कृत साहित्य में श्रव्यकाव्य के रूप में दूतकाव्य का विशिष्ट स्थान है। दूतकाव्य की स्वतन्त्र विधा का अर्थ कविकुलगुरु महाकवि कालिदास के खण्डकाव्य 'मेघदूतम्' से माना जाता है। कालिदास को भी इसकी प्रेरणा रामायण में हनुमान् को दूत के रूप में प्रेषित करने से मिली। दूतकाव्य एक ऐसी पूर्णगरिमा एवं कल्पनाचातुर्य से युक्त विधा है जिसमें पाठक विलक्षण आनन्द की अनुभूति करता है। यूँ तो कोई भी काव्य किसी सन्देश को सविस्तार प्रदर्शित करने का बहाना मात्र होता है। पुनरपि उसके माध्यम से अनेकानेक स्थितियों का वर्णन प्राप्त होता है जो साहित्यश्री की वृद्धि करता है।

बीसवीं शताब्दी में भी संस्कृत के कवियों ने राष्ट्रीयता और सामाजिक कर्त्तव्य को मानवता और नैतिकशिक्षा को, विश्वकल्याण भावना की युगानुकूल प्रवृत्तियों को अपने काव्यों का सन्देशवाहक बनाया है। विप्रलम्भशृङ्गार के अतिरिक्त अन्य रसों जैसे हास्यादि को भी कवियों ने अपने दूतकाव्य में स्थान दिया है। कुछ काव्य स्वदेश को अतिक्रान्त कर विदेश भूमि का वृत्तान्त भी वर्णन करते दिखाई देते हैं।

बीसवीं शताब्दी में रचित दूतकाव्यों का विषयवस्तु के अनुसार विभाजन, विवेचन एवं संकलनात्मक सर्वेक्षण प्रस्तुत शोधपत्र का प्रतिपाद्य होगा।

❖

MS-49

राजस्थान में संस्कृत-शिक्षा परम्परा

श्री निहाल सिंह, भरतपुर

'वसुधैव कुटुम्बकम्' की शिक्षादात्री, संस्कारित एवं सुपूरित संस्कृत भाषा का वीरता एवं शौर्य से मण्डित वीरभूमि राजस्थान में प्रारम्भ से ही सम्मान होता आया है। संस्कृत-निधि की अक्षुण्णता को बनाये रखने के साथ ही उदयपुर, जोधपुर, बीकानेर, कोटा, अलवर, बूँदी और सीकर राज्यों में संस्कृत-शिक्षण सुदृढ़ करने तथा संस्कृत के अत्यधिक विकास के कारण जयपुर राज्य को 'अपरा काशी' कहा गया।

'महाराजा संस्कृत कॉलेज, जयपुर' (1844) राजस्थान का प्रमुख संस्कृत शिक्षा का केन्द्र था, जहाँ की परीक्षा प्रणाली (1887) देश की गिनी चुनी परीक्षा प्रणालियों में से एक थी। 'महाराणा संस्कृत कालेज, उदयपुर' (1864) की स्थापना के अलावा देशी रियासती शासकों (जयपुर के राजा मानसिंह, जयसिंह, रामसिंह, बीकानेर के अनूपसिंह आदि) का उल्लेखनीय योगदान रहा। उच्च कक्षाओं के पाठ्यक्रम सुधार हेतु स्थापित श्यामसुन्दर शर्मा कमेटी (1947) के बाद 'राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन, जयपुर'

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(1948), 'राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर' (1953) आदि संगठनों तथा 'संस्कृत शिक्षा आयोग' (1956) के गठन के बाद एक स्वतन्त्र 'संस्कृत शिक्षा निदेशालय, जयपुर' (1958) की स्थापना हुई।

'संस्कृत-विद्यापीठ, जयपुर' (1983) संस्कृत-माध्यम से शिक्षा-शास्त्री कराती है तथा वर्षों से चल रहे प्रयास के बाद स्थापित 'राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर' (2001) संस्कृत की विविध विधाओं में स्नातकोत्तर कक्षाओं का अध्ययन कराता है। इसके अलावा राजस्थान की उर्वरा वीरभूमि पर महाकवि माघ, पं. अम्बिका दत्त व्यास, विद्यावाचस्पति मधुसूदन ओझा, म.म. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री, नवलकिशोर कांकर, मोहनलाल सुखाडिया, राधेश्याम कलावटिया, प्रभाकर शास्त्री, पद्म शास्त्री, कलानाथ शास्त्री जैसे उद्भट विद्वानों ने संस्कृत के विकास हेतु उत्तरोत्तर कार्य किये और आज उसी का फल है कि 'वाराणसी वा जयपत्तन वा' की उक्ति को सार्थक करते हुए राजस्थान में संस्कृत की समृद्धता विद्यमान है।

विस्तृत विवेचन शोधपत्र में किया जायेगा तथा राजस्थान के संस्कृत सम्बन्धी विकास के इतिहास का सर्वेक्षण प्रस्तुत शोधपत्र का प्रतिपाद्य होगा।

❖

MS-50

स्वतन्त्रता पूर्व राजस्थानीय संस्कृतकथासाहित्य

कु. अर्चना मंगल, भरतपुर

संस्कृत तथा साहित्य की श्रीवृद्धि में महाकवि माघ की जन्मभूमि और वीरप्रसू राजस्थान का योगदान अभिनन्दनीय रहा है।

राजस्थान में स्वतन्त्रता से पहले अनेक कथाकार हुए। इन स्वतन्त्रता पूर्व के कथाकारों ने म.म.पं. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी की 'पितुरुपदेशः', 'कश्चित्कविः', पं. सूर्यनारायण शास्त्री की 'वीरभूमिः', 'दुर्लभ-दाम्पत्यम्', पं. गिरिजाप्रसाद द्विवेदी की 'कृषकः', लक्ष्मणप्रसाद शास्त्री की 'परमेश्वरः', पं. हरिनारायण शास्त्री की 'महात्मा सत्यव्रतः', मथुरानाथ शास्त्री की 'पुरुष-परीक्षा', 'चपण्डुकः', 'शिष्या', 'करुणा कपोती च युवती च', गिरिधारीलाल व्यास की 'बधिर-शंखः', 'साधु रे समाज', पं. शिवप्रसाद शास्त्री की 'कूटसाक्षित्वफलम्', पं. वृद्धिचन्द्र शास्त्री की 'उमा', आदर्श-दम्पत्ती', पं. गणेशराम शर्मा की 'दाम्भिकः', 'हनुमद्भक्तः', 'हास्य परवशो राजकुमारः', नवलकिशोर कांकर की 'भ्रातृ-स्नेह', 'सुकन्या' तथा दीनानाथ त्रिवेदी की 'प्रामाणिको बालकः' कथाएँ प्रमुख हैं।

स्वतन्त्रता पूर्व की कथाओं में विषय-वैविध्य तथा विचार-वैविध्य के साथ शिल्पगत नवीनता भी पाई जाती है। विषय-वैविध्य की दृष्टि से ऐतिहासिक, सामाजिक, आदर्शात्मक, परिहासात्मक, मनोवैज्ञानिक, प्रणय-विधान इत्यादि विविधात्मक रूपों में कथाओं को विभाजित किया है। शिल्प की दृष्टि से भी कथाओं के रूपकात्मक, प्रयोगात्मक, प्रतीकात्मक, काल्पनिक, यात्रावृत्तात्मक रूप प्राप्त होते हैं। स्वतन्त्रता पूर्व की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये कथायें आधुनिक लघु-कथासाहित्य का सूत्रपात करती है तथा यही से कथा में नवीनता को उपलक्षित किया गया है। वस्तुतः कथासाहित्य की श्रीवृद्धि में इन कथाओं का अमूल्य योगदान है। प्रस्तुत शोधपत्र में इन स्वतन्त्रता पूर्व के कथाकारों तथा इनकी कथाओं की विस्तृत विवेचना की जायेगी, जो कि इस शोधपत्र का प्रतिपाद्य है।

❖

MS-51

ज्ञान-गरिमा के शुभ्र शिखर' डॉ. रामकरण शर्मा

डॉ. पर्णम शर्मा, खबड़ा

विद्या, विनय, ज्ञान की गम्भीरता, चिन्तन की व्यापकता और पात्रता के गुणों से विभूषित तेजस्वी, मनस्वी, यशस्वी के शुभ्रशिखर हैं—'डॉ. रामकरण शर्मा'। संस्कृत भाषा के राष्ट्रगौरव डॉ. शर्मा भारत की उन कतिपय विरल विभूतियों में से हैं जिनके ज्ञान, शील और आचरण से समन्वित सुदिव्य व्यक्तित्व के सामने देश, विदेश के बड़े-बड़े विद्वान् भी नतमस्तक होते हैं। इनका सम्पूर्ण जीवन विविध रूपों में संस्कृत भाषा की सेवा में समर्पित रहा है। इनके व्यक्तित्व में ज्ञान, शील, आचार का अद्भुत संयोग प्रत्यक्ष प्रतिभासित होता है तथा प्रखर, प्रांजल भाषा और गहन ज्ञान हृदय पर अमिट छाप छोड़ती है।

बाल्यकाल से ही इनका व्यक्तित्व सारस्वत साधना में संलग्न तथा संस्कृत के प्रति समर्पित, सदैव छात्रों में लोकप्रिय तथा विद्वानों में श्लाघनीय रहा है। अपने इसी बहुमुखी प्रतिभा व्यक्तित्व के कारण ये सबों में समान रूप से लोकप्रिय रहे। ये संस्कृत उपन्यास, गद्यकाव्य एवं पद्यकाव्य के रचयिता के रूप में अपनी मधुरवाणी को लेखनी के द्वारा संस्कृत के समस्त विधाओं को गौरवान्वित किया है। इन्होंने संस्कृत काव्य सृजन की अविच्छिन्न परम्परा का निर्वहण करते हुए व्याकरण, भाषाविज्ञान, दर्शन, पुराणेतिहास आदि में अविस्मरणीय योगदान दिया, इतना ही नहीं चिकित्सा के क्षेत्र में ये 'चरकसंहिता' का आंग्लभाषा में अनुवाद कर आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति के ज्ञान को समस्त विश्व के लिए सरल बना दिया।

डॉ. शर्मा जितने व्यक्तित्व के धनी हैं उतने ही कृतित्व के। ये एक कुशल अध्यापक ही नहीं प्रत्युत उनकी प्रशासनिक कुशलता की यशोगाथा आज भी कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान आदि संस्थाओं में कुलपति और निदेशक के रूप में सुनी जाती है। इनकी प्रशासनिक कुशलता से प्रभावित होकर ही भारत सरकार ने संयुक्त शिक्षा मन्त्रयिता के रूप में इन्हें पदंस्थापित किया तथा सारस्वत संस्कृत साधना में संलग्न इस महान् सपूत को विविध देशों में अभ्यागताचार्य के रूप में सादर आमन्त्रित कर अपने को धन्य माना।

प्रस्तुत शोध निबन्ध में उपर्युक्त बिन्दुओं पर विस्तृत विचार किया गया है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MS-52

तरङ्गदूतम् की सूक्तियों का समीक्षात्मक परिशीलन

डॉ. सुशील कुमार पाण्डेय, सुलतानपुर

अभिराम डॉ. कृपाराम त्रिपाठी (उपाचार्य-संस्कृत, एम.एल. के महाविद्यालय, बलरामपुर, उत्तर-प्रदेश) आधुनिक संस्कृत तथा हिन्दी के समर्थ कवि हैं। डॉ. त्रिपाठी संस्कृत महाकाव्य 'रघुकुलकथावल्ली (खण्डकाव्य), तरङ्गदूतम् (गीतिकाव्य), कुटज, कुसुमाञ्जलि, मध्यमरामचरितम् सहित चौदह कृतियों के सुधीसर्जक हैं। डॉ. त्रिपाठी का 'तरङ्गदूतम्' नामक संस्कृत खण्डकाव्य उत्तर-प्रदेश संस्कृत अकादमी लखनऊ द्वारा 1990 में पुरस्कृत हो चुका है। संस्कृत दूतकाव्य परम्परा में महत्त्वपूर्ण तथा मौलिक स्थान के सत्पात्र 'तरङ्गदूतम्' में एक सौ ग्यारह मन्दाक्रान्ता छन्द हैं। यह कृति आचार्य वेंकटाचलम्, डॉ. विद्यानिवास मिश्र तथा डॉ. अतुलचन्द्र बनर्जी (सभी पूर्व कुलपति) आदि विद्वानों द्वारा सुप्रशंसित है। 'तरङ्गदूतम्' की कथावस्तु का मूलस्रोत वाल्मीकि रामायण के सुन्दरकाण्ड (सर्ग सैंतीस, श्लोक संख्या 112) है, जहाँ विभीषण की पुत्री कला तथा अविन्ध्य का उल्लेख आया है। कला के साथ अविन्ध्य के कल्पित पुत्र विमन्यु की इस प्रणय-गाथा में दूरस्थ विमन्यु को कला, लहर के माध्यम से प्रणय-सन्देश प्रेषित करती है।

'तरङ्गदूतम्' पर मेघदूत की छाया होते हुए भी इसकी मौलिक कल्पना भूमि, भावगत सूक्ष्म अन्वीक्षण तथा शैलीगत उदात्तता है। 'तरङ्गदूतम्' की सूक्तियाँ अतीव मनोहारिणी तथा प्रेरणास्पद है। ये जीवन के विविध पक्षों से ली गयी हैं जिनमें महाकवि त्रिपाठी की विषय सम्पदा का आधिक्य, अनुभव भण्डार का प्राचुर्य तथा मञ्जुल अभिव्यक्ति का आधिक्य सरलता से उपलब्ध है। यद्यपि 'तरङ्गदूतम्' आकार-प्रकार में अल्पकाय है तथापि मानव जीवन के विभिन्न अनुभूतियों का आकलन तथा व्याख्यान इसकी सूक्तियाँ करती हैं। 'तरङ्गदूतम्' की सूक्तियाँ आनन्दरसवर्षिणी, उचितानुचित की परीक्षिका तथा ज्ञानदायनी है। इन सूक्तियों में राजनीति की झलक तथा मनोविज्ञान की महक हैं जिनमें पण्डित तथा सामान्य व्यक्ति के हृदय में स्थान बना लेने की अद्भुत क्षमता है। इन सूक्तियों में भारतीय चिन्तन के विविध आयाम परिलक्षित होते हैं।

❖

MS-53

जनार्दन मणि विरचित 'नीराजना' में लोक-संवेदना

डॉ. बी.बी. त्रिपाठी, पौढ़ी गढ़वाल

'नीराजना' जनार्दन मणि विरचित स्तुति परक श्लोकों की एक सुगन्धित काव्यमालिका है जिसमें यह अत्यन्त जागरूक संस्कृत कवि समूची लोकसंवेदना को अपने इष्ट के समक्ष अभिव्यक्त कर उसके सर्वविध-कल्याण की आकांक्षा करता है। लोक की वे अनुभूतियाँ जिनमें क्षोभ एवं मर्माभिघात की कशिश है, वे ही यहाँ लोकसंवेदना के रूप में उपस्थापित हैं। पूर्व भाग में कवि का इष्ट शिव है तो उत्तर भाग

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में विष्णु है। मणि जी इन दोनों देवों में स्थूल-विग्रहमात्र अन्तर मानते हैं। सूक्ष्म स्तर पर वे दोनों को एक ही रूप में देखते हैं, अतः इनकी इष्ट मान्यता में किसी भी सैद्धान्तिक व्यतिक्रम का अवकाश नहीं है। लोकसंवेदना के स्वर शिवजी के समक्ष अधिक उभरे हैं। लोकसमष्टि की संचेतना का प्रतिनिधित्व करता हुआ कवि कहता है कि ईर्ष्या-द्वेष के महोदधि में प्रतिपल गिरती हुई सृष्टि का हृदय सचमुच नवनीत-लेपन कुशल स्वार्थान्धों से घिर गया है। न्याय रोने लगा है। दुष्टात्माओं की हुँकार फुफकार रही है। प्रचण्ड कलुष-क्लान्तयुग में श्रद्धा निःश्वास ले रही है, पूजा क्षीण हो रही है। लोक-सम्बन्धों में एवं रक्तों में वैमनस्यरूपी विष भर गया है। आरक्षण की माया से अयोग्यता विजयिनी हो रही है। जाति-वर्ग का गणित ही लोकतन्त्र का आधार हो गया है। राजनीति ने धर्म का परित्याग करते हुए धर्म के व्यापक स्वरूप की संकुचित एवं भड़काऊ व्याख्या आरम्भ कर दी है।

लोक-संवेदना की चीत्कार के ऐसे अनेक पक्ष इस काव्यग्रन्थ में मणि जी द्वारा उभारे गये हैं। आशुतोष भगवान् शिव से अपनी शाब्दी नीराजना को स्वीकार करने की प्रार्थना करता हुआ कवि परब्रह्म के प्रति सर्वथा समर्पित तथा 'भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम' इत्यादि वैदिक ऋषि की उदात्त लोक-भावना से प्रभावित प्रस्तुत पद्य से अपनी रचना को पूर्णता प्रदान करता है।

वस्तुतः यह काव्य आज के युग का जीवन्त प्रतिनिधित्व करता दिखाई पड़ता है।

❖

MS-54

श्रीराधाचरितमहाकाव्यम् में शक्तिस्वरूपा श्रीराधा

कु. आरती सिंह, लखनऊ

श्रीराधाचरितमहाकाव्य भक्ति से ओत-प्रोत भगवान् श्रीकृष्ण की आनन्दमयी शक्ति श्रीराधा के माधुर्योपेत चरित्र पर आवृत है। इस महाकाव्य में प्रेम की प्रधानतत्त्व श्रीराधा तथा सचिदानन्दस्वरूप माधव का अलौकिक प्रेम निष्पादित है।

श्रीराधा शक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण की आह्लादिनी शक्ति है। वह अपनी शक्ति द्वारा भगवान् कृष्ण को आह्लादित कर स्वयं भी रसाप्लावित होती हैं—'तत्सुखे सुखित्वम्' ही स्नेह की उच्चतम पराकाष्ठा है। जिस समय शरीर को सुखेच्छा की अनुभूति हो, वह इच्छा कामयुक्त होती है। ऐसी इच्छा किसी के भी द्वारा, चाहे वह भगवान् ही क्यों न हो, काम का ही स्वरूप है। प्रेम तथा काम में यही एक अन्तर है, कि काम सुखानुभूति की ही इच्छा करता है किन्तु प्रेम प्रेमास्पद मात्र का ही सुख चाहता है। गोपियों का काम प्रेम मात्र का इच्छुक है क्योंकि उनका वह काम शारीरिक सुखानुभूति का काम नहीं है। यद्यपि उसका नाम काम कहकर ही सम्बोधित किया जाता है, तथापि वह दिव्यप्रेम है, वहाँ काम की लेशमात्र गन्ध भी नहीं है। श्रीराधा भगवान् कृष्ण को आह्लादिनी शक्ति के रूप में उनके सौन्दर्य तथा माधुर्य रस के आस्वादन को इस प्रकार अभिव्यक्त करती है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MS-55

श्री चोक्कनाथ : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

डॉ. श्वेता रस्तोगी, लखनऊ

श्री चोक्कनाथ 20वीं शती के उत्तरार्द्ध में तञ्जौर के महाराज शाह जी द्वारा सम्मानित एक प्रतिष्ठित कवि थे। श्री चोक्कनाथ का जन्म प्रख्यात विद्वानों और मनिषियों के वंश में हुआ था। इस वंश में उत्पन्न अनेक राजा स्वयं श्रेष्ठ कवि, लेखक और प्रकाण्ड पण्डित हुये। इनके पिता का नाम तिप्पाध्वरीन्द्र था। श्री तिप्पाध्वरीन्द के छः पुत्र थे। श्री चोक्कनाथ इनमें पाँचवे पुत्र थे। श्री चोक्कनाथ के आश्रयदाता महाराज शाहजी स्वयं सहृदय और साहित्य प्रेमी थे। इन्हीं की प्रेरणा से कवि ने तीन रूपकों की रचना की, यथा—1. रसविलासभाणः, 2. कान्तिमतीपरिणयः, 3. सेवन्तिकापरिणयः।

'सेवन्तिकापरिणय' नाटक केरलीय राजकुमारी सेवन्तिका के बसवभूपाल के विवाह-वृत्तान्त को कथानक बनाकर लिखा गया है। यह नाटक अनेक दृष्टियों से कालिदास विरचित 'मालविकाग्निमित्रम्' तथा भवभूति-विरचित 'मालतीमाधव' के समान होते हुये भी अपनी मौलिकता के कारण उनसे नितान्त भिन्न है। इसी प्रकार कविवर द्वारा विरचित 'कान्तिमतीपरिणय' की कथा भी मौलिकता के कारण अत्यन्त विशिष्ट है, इसमें राजशेखरकृत 'कर्पूरमञ्जरी' की विशेषतायें चमत्कारपूर्ण सीमा तक पायी गयी हैं। चोक्कनाथकृत रूपक 'रसविलासभाण' के अनुपलब्ध होने के कारण इस पर मेरे लिये कुछ लिख पाना सम्भव नही हो पा रहा है।

रामायण, महाभारत तथा पुराणों से प्रख्यात कथानकों को ग्रहण करने की प्रतिष्ठित कवि-परम्परा को त्यागकर कवि ने समसामयिक ऐतिहासिक वृत्तान्त को नाटक की जिस कथावस्तु के रूप में स्वीकारा है, उसी के अनुपलब्ध प्रमाणों का प्रस्तुतीकरण ही हमारा लक्ष्य है।

❖

MS-56

नरनारायणानन्द महाकाव्य की वर्णनशैली

प्रो. एम.आर राठाड़े, गुजरात

श्री वस्तुपाक्त रचित 'नरनारायणानन्द' महाकाव्य की कथा महाभारत के आदिपर्व के सुभद्राहरण एवं हरणहारिद्र उपपर्व में से ली गई है। महाभारत के चार अध्यायों की कथा को वस्तुपाक्त ने इस महाकाव्य को सोलह सर्गों में निरूपित किया है। इस छोटे से कथा को महाकाव्य का स्वरूप देने के लिए कथित

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कई अप्रस्तुत घटनाएं एवं परम्परागत महाकाव्योचित वर्णन का आश्रय लिया है। यह महाकाव्य कवि की अद्भुत वर्णन-शैली, माघ, आदि की याद दिलाती है। इस महाकाव्य में ऊँचे प्रासाद, नगर, नगर के लोडा, रैवतक, कृष्ण, वन, सूर्योदय, सूर्यास्त, मध्याह्न आदि का मनोहर शैली में वर्णन किया गया है। इस वर्णन का किञ्चित् आस्वादन कराने का यहाँ प्रयास किया है।

❖

MS-57

आधुनिक महाकवि डॉ. शिवप्रसाद भारद्वाज : कृतित्व

प्रो. एल.एम. पानशेरिया, गुजरात

असाधारण प्रतिभासम्पन्न, आधुनिक ऐतिहासिक महाकाव्यपरम्परापरिपोषक एवं महामेधावी महाकवि डॉ. शिवप्रसाद भारद्वाज जी संस्कृत वाङ्मय के बहुश्रुत मनीषी कवि है। इनका जन्म 15 अक्टूबर 1924 ई. को गाँव-डांग, जिला-पौडी (गढवाल), उत्तराञ्चल प्रदेश में, पिता स्व. पण्डित हीरामणि तथा माता स्व. श्रीमती फालिन्दी देवी के घर हुआ। इस बात का प्रमाण उनकी अपनी रचना 'भारत सन्देश' में मिलता है।

वैसे डॉ. भारद्वाज जी ने परिष्कृत नैसर्गिक शैली से अलंकृत अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया है परन्तु काव्य, निबन्ध, आलोचनात्मक ग्रन्थ, नाटक तथा एकांकी के क्षेत्र में उन्होंने विशेष ख्याति अर्जित की है। यही नहीं, उन्हें अपने कई ग्रन्थों पर पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है यथा लघुकाव्य 'भारत सन्देश' तथा आलोचनात्मक ग्रन्थ 'कालिदास दर्शन' दोनों उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत है।

इनकी कृत्तियों का विषय-विवेचन के आधार पर निम्नतया वर्गीकरण किया जा सकता है—

1. लघुकाव्य : भारत-संदेश। 2. चरितकाव्य : श्रीगुरुरविदासशतकम्, महापुरुषचरितावली। 3. मुक्तकाव्य : तरंग लेखा। 4. व्यंग्यकाव्य : मत्कुणायनम्। 5. ऐतिहासिक महाकाव्य : लोहपुरुषावदानम्। 6. गीतसंग्रह : अभिनवरागगोविन्दम्। 7. नाटक : त्रिपत्री। 8. एकांकी संग्रह : अभिनवनाट्यपच्चकम्। 9. ध्वनिसुपक : केसरिचक्रम्। 10. निबन्ध : संस्कृत निबन्धरत्नाकर, संस्कृत निबन्धमणिमाला। 11. आलोचनात्मक ग्रन्थ : कालिदासदर्शनम्, कालिदास दर्पण।

इस तरह उन्होंने कतिपय ग्रन्थों का सृजन किया है और संस्कृत वाङ्मय को आधुनिक युग में समृद्ध किया है। उनकी विद्वता एवं अद्भुत प्रतिभा उनके गहन पाण्डित्य की परिचायक है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MS-58

आधुनिक संस्कृत नाट्यकर्त्रियों के उत्पाद्य कथावस्तु पर आधारित नाटकों में वर्तमान सन्दर्भ

प्रो. डॉ. भारतीबेन जे. सोलंकी, जामनगर

प्राचीनकाल से लेकर आजतक संस्कृत साहित्याराधन में महिलाओं का योगदान प्रभूत मात्रा में रहा है। साहित्य की सब विद्याओं में नाटक हर तबके के लोगों का मनोरंजन का माध्यम रहा है। इसमें भी जब अर्वाचीनकाल में जबकि हर पूर्वी-पाश्चात्य साहित्यविधाओं का साहित्य के अन्दर प्रवेश होता जा रहा है, उसमें नाटक और महिला नाटककारों का योगदान विशेष रहा है। नई-नई घटनाएँ घटित होती है। नए-नए आयाम खुलते जा रहे हैं। उनके प्रभाव में मान भी आ ही जाता है। चित्त उस घटनाओं का आकलन अपनी कलम द्वारा जब करने लगता है तो उसमें जरूर ही कोई न कोई पृथक्करण निकलने लगता है।

उपर्युक्त सन्दर्भ में यहाँ यह शोधपत्र और उनका शीर्षक अपनाया गया है। नाटक और उनकी उत्पाद्य कथा, उसमें भी आधुनिक तथा महिला द्वारा रचित कृतियाँ, ये सब की विवेचना इस शोधपत्र में की गई है। निष्कर्षतः शीर्षक के अनुसार यहाँ समग्ररूपेण महिला नाटककाराओं की बात यहाँ नही करनी है। परन्तु बीसवीं शती के नवम दशक तक की नाट्यकृतियों की उत्पाद्य कोटि के कथावस्तु पर आधारित नाटकों में वर्तमान सन्दर्भ पर बात विचाराधीन है। उसमें भी रमा चौधरी से चिन्मयी माहेश्वरी के नाटकों के आलोक में आधुनिक नाट्यकृतियों में रमा चौधरी, लीलाराव दयाल, वनमाला भवालकर, देवकी मेनन, वीणापाणि पाटनी, नलिनी शुक्ला, मिथिलेश कुमारी मिश्रा, ब्रह्मचारिणी वेलादेवी, रत्नमयी दीक्षित, चिन्मयी आशा, सुधा सहाय, निर्मला शुक्ला और विजयलक्ष्मी त्रिवेदी के कतिपय नाटक उत्पाद्यकोटि के हैं। जिनके नाम देशदीपम्, पल्लीकमलम्, मेघमेदूरमेदनीयम् आदि हैं।

इन सब नाट्यकथाओं में युगपरिवर्तनीय लाभालाभ तथा समसामयिक समस्या तथा समाधान दृष्टिगोचर होते हैं। उनमें से कई वर्तमान सन्दर्भ गिनाये जा सकते है। जैसे की नारीवाद, दहेज समस्या, प्रलोभन, वंचना, चारित्रिक दुर्बलता, कामसमस्या, प्रकृत्ति का उच्छेद, जीवन में संसाधनों का प्रबलत्व, देशद्रोह, स्पर्धात्मक वातावरण, अर्थोपार्जन नारी के लिए अनिवार्य, वित्तप्रधानता, भ्रष्टता, दारिद्र्य, प्राकृतिक उपद्रवों से मानव विपदग्रस्त और वर्णव्यवस्था का ह्रास इत्यादि। अनेक विषयों को उजागर करते नाट्यकर्त्रियाँ कभी हास्य, कटाक्ष, व्यंग्य या तत्वज्ञान का सहारा लेकर उद्देश्य को स्पष्ट करती है।

विस्तारभय न हो इसके कारण कहा जायेगा कि प्राचीन नाट्याचार्यो के स्वीकृत नाट्योपदेश को पुष्ट करती हुई ये रचनाएँ अधुनातन सामाजिकादि समस्याओं को प्रस्तुत करके समाधान सूचित कर विकासोन्मुख भी रही है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MS-59

सनातनकविकृत युगीन महाकाव्य कुमारविजयम्

रश्मि कुमारी, वाराणसी

भारतीय कविता वैदिक अध्यात्मवाद और ब्रह्मविद्या की भूमिका के साथ पहले पहले प्रकाश में आई। बाद में पौराणिक युग में वह केवल स्थूलवाद और भौतिक परिवेश तक सीमित मिली। महाकवि कहलाने वाले परवर्ती कवियों की कविता इस परिवेश से ऊपर नहीं उठ सकी, किन्तु रचनासामर्थ्य की अद्‌भुत कला से वह समकालीन सहृदयों का कण्ठहार बनी रही। यह कविता उपनिषदों के मन्त्र तथा विराट् पुरुष के स्तवन की उच्च भूमिका से रहित ही दिखाई दी। उन्नीसवीं शतीं में महर्षि अरविन्द और रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने दार्शनिक भूमिका पर कविता को प्राचीन आयाम दिया और हिन्दी में उसके फलस्वरूप कामायनी जैसा प्रतीक महाकाव्य प्रकाश में आया। किन्तु संकल्प अभी तक पौराणिक काव्य रूढ़ियों में ही पड़ा रहा। इस कमी का अनुभव सनातनकवि रेवाप्रसाद द्विवेदी ने किया और अपने कविकर्म को उसी भूमिका पर कविता का आकार दिया। यह तथ्य उनके तीनों महाकाव्यों 'सीताचरितम्' या 'उत्तरसीताचरितम्', 'स्वातन्त्र्यसंभवम्' और 'कुमारविजयम्' की पीठिका से ही स्पष्ट है। इनमें कवि का मानना है कि—कविता न यश के लिए लिखी गई है, न धन के लिए और न शिवेतर क्षति के लिए। इसका उद्देश्य भारत की इस भूमि माता की सेवा है। इसका एक लक्ष्य संस्कृत की सेवा भी है।

❖

MS-60

संस्कृत और छत्तीसगढ़ी लोकमानस

डॉ. महेशचन्द्र शर्मा, छत्तीसगढ़

संस्कृत के बिना भारत और भारत के बिना संस्कृत की परिकल्पना नहीं की जा सकती। संयुक्त मध्यप्रदेश और उसके पूर्वकाल से ही छत्तीसगढ़ भारत व संस्कृत का हृदय रहा है। प्राचीन इतिहास के इस भू-भाग को दक्षिण कौशल कहा जाता था। नवोदित छत्तीसगढ़ राज्य का अपना एक समृद्ध सांस्कृतिक इतिहास रहा है। पुरातात्त्विक सम्पदा से यह राज्य समृद्ध रहा है। संस्कृत के सम्बन्ध में इस राज्य की श्रीसम्पन्नता के उदाहरण हमारे संस्कृतिक इतिहास में भरे पड़े है। यह सुखद और आश्चर्यजनक संयोग है कि आदि कवि महर्षि वाल्मीकि, आदि नाट्यशास्त्री भरतमुनि, कविकुलगुरु कालिदास, पद-वाक्य-प्रमाणज्ञ महाकवि भवभूति के साथ ही विश्व के श्रेष्ठ गद्यकार महाकवि बाणभट्ट का सम्बन्ध भी इस पावन भूमि से रहा है। संस्कृत साहित्य के सर्वाधिक लोकप्रिय महानायक श्रीराम जी का सम्बन्ध इस पुण्यभूमि से रहा है। रायपुर जिले में स्थित तुरतुरिया को आज भी आदि कवि का स्मारक माना जाता है। वनवास के 14 में से 11-12 वर्ष उन्होंने यहीं व्यतीत किये। पुराविद् और इतिहासकार इस बात को जानते

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा मानते है कि बस्तर ही दण्डकारण्य था। रामकथा की मुख्य घटनाएँ यहीं पर घटित हुई। यही नहीं भगवान् राम की माता कौशल्या भी इसी कौशल प्रदेश की पुत्री थीं। कौशल्या भी वे इसी कारण कहलाई। विवाह के पश्चात् भी कन्या अपने जन्मस्थान अथवा माइके के नाम से जानी जाती है। पूरे राष्ट्र के समान छत्तीसगढ़ में भी यह परम्परा आज भी जारी है। रायपुर की लड़की कहीं भी विवाहित होकर जाएगी तो रयपुरहिन ही कहलायगी। इसका अर्थ होगा रायपुर वाली। आदिकाव्य के इन महापात्रों की तीन पीढ़ियों का इस क्षेत्र से सम्बन्ध रहा है। रामकुमार लव के नाम से लवन और कुश के नाम से कसड़ोल नाम के स्थान छत्तीसगढ़ में हैं। कविकुल गुरु के रघुवंश में कौशल देश की पुत्री कौशल्या का विवाह दशरथ जी के साथ होने का उल्लेख है। महाकवि भवभूति के उत्तररामचरितम् में दण्डकारण्य (बस्तर) की भयंकरता का बड़ा ही जीवन्त वर्णन है। सम्राट् एवं कवि श्रीहर्ष अपनी रत्नावली में तथा ज्योतिर्विद् वराहमिहिर अपनी बृहत्संहिता में छत्तीसगढ़ का सविशेष उल्लेख करते हैं। छत्तीसगढ़ के महान् संस्कृत कवि ईशान के समकालीन बाणभट्ट का तथा आठवीं सदीं के कवि पुष्पदन्त दोनों ही ईशान का उल्लेख करते हैं। प्रसिद्ध बौद्ध प्रचारक तथा संस्कृत महाकाव्य 'सिद्धार्थचरितम्' के प्रणेता बुद्धघोष ने अपने छत्तीसगढ़ प्रवासों का उल्लेख किया है। संस्कृत साहित्य में इस प्रदेश के योगदान की यह लम्बी परम्परा अभी तक जारी है। पण्डवानी गायन जो कि छत्तीसगढ़ की पहचान है, संस्कृत के सबसे महत्त्वपूर्ण महाग्रन्थ महाभारत से सीधे प्रेरणा ग्रहण करता है। पण्डवानी में भी वेदमती शैली अधिक लोकप्रिय है।

❖

MS-61

प्रो. 'अभिराज' राजेन्द्र मिश्र की कृतियों में नूतन शब्द प्रयोग

डॉ. रमेश चन्द्र मुरारी, गुजरात

भाषावैज्ञानिक सिद्धान्तों के अनुसार भावों के अनुकूल भाषा का परिवर्तन स्वाभाविक है। सभ्यता, विज्ञान एवं संस्कृति के विकास के साथ-साथ दैनिक व्यवहार में कालक्रमानुसार असंख्य अर्थो के बोध के लिए विभिन्न कारणों से नये-नये शब्दों के प्रयोग की आवश्यकता होती रहती है, जिसका प्रभाव साहित्य की विधाओं पर भी बहुत गहराई के साथ पड़ता है, संस्कृत एक प्राचीन भाषा है जिसने समय और परिस्थिति के अनुसार अपने विविध ज्ञान शाखाओं में परिवर्तन स्वीकारा है और उसका स्वागत भी किया है, जिसके परिणाम स्वरूप प्रयोग में असंख्य नूतन शब्दों का व्यवहार चिरकाल से देखा जा रहा है। इसी सिद्धान्त को ध्यान में रखकर संस्कृत साहित्य के अर्वाचीन महारथी महाकवि अभिराज राजेन्द्र मिश्र ने भी अपने महाकाव्यों, काव्यों, नाटकों, ललितनिबन्धों, एकांकियों एवं अन्यविध रचनाओं में बहुसंख्यक ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है, जो व्यवहार भाषाशास्त्र एवं व्याकरण के नियमों के सर्वथा अनुरूप है। ऐसे शब्दों को यदि वर्गीकृत किया जाए तो उनके वर्गों की संख्या अनेक हो जायेगी, फिर भी यथा शक्ति मैंने उन शब्दों का विवरण प्रकृतशोध निबन्ध में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। ध्यातव्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि ये शब्द जिस किसी भी प्रसंग में जहाँ भी प्रयुक्त किये गये हैं वे परम स्वाभाविक, अर्थ गाम्भीर्य संवलित, प्रासंगिक, कर्णप्रिय एवं आवश्यकतानुसार कहे जा सकते हैं। इनके प्रयोगों को देखते हुए कवि के प्रयुक्ति-औचित्य में किसी प्रकार का संदेह नहीं किया जा सकता। कहीं कहीं तो रे शब्द प्रयोग लक्ष्यार्थ एवं ध्वन्यार्थ तक को प्रभावित करते हुए नजर आते हैं।

नूतन शब्द यथा—

1. अधिष्ठानाधिकारी, 2. आकाशप्रहारः, 3. आस्थानकक्ष, 4. उपच्छन्दितः, 5. कण्डिनी, 6. चुल्ली, 7. तुषीकरिष्यामि, 8. वक्षोरतम्, 9. अनेहसि, 10. आयकरः, 11. कलायप्रनीरः, 12. कोलपोतक, 13. कालगरला, 14. खलीकरोति, 15. आङ्गलिक, 16. तन्द्रारि, 17. दोःस्थ, 18. पाटच्चर, 19. प्रातराश, 20. मायिक, 21. रूपाश्व, 22. श्वेतचूर्णः, 23. द्राग्यानम्, 24. दीनारसंपुटिका, 25. यौतकम्, 26. गोलादुग्ध, 27. क्षालनद्रोणी, 28. यष्पथी, 29. रण्डा, 30. कुक्की आदि।

❖

MS-62

सुदर्शनोदय महाकाव्य की सूक्तियाँ और उनकी लोकधर्मिता

प्रो. जयप्रकाशनारायण द्विवेदी, द्वारका

'सुदर्शनोदयम्' दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के तत्त्वज्ञानी विद्वान्, कवि, साधक एवं परम सदाचारी महात्मा श्री ज्ञानसागर जी द्वारा प्रणीत नव सर्गो में विभक्त लगभग 555 श्लोकों के कलेवर का एक प्रतिष्ठित महाकाव्य है, जिसके नायक सुदर्शन और नायिका मनोरमा हैं। इस काव्य में नायक की सुन्दरता, आदर्श गुण सम्पन्नता, तपश्चर्या एवं सुसंस्कारशीलता तथा नायिका मनोरमा के साथ उनकी जन्मान्तरीय व स्वाभाविक प्रीति को वर्ण्य-विषय बनाया गया है।

इसे सफल बनाने में काव्यगत सूक्तियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है, क्योंकि यहाँ ये सूक्तियाँ अपनी संक्षिप्तता, लोकप्रियता, सप्राणता, सारगर्भिता, प्रामाणिकता, व्यवहारिकता, अनुभवशीलता, नीतिपरायणता, शिक्षापरकता, लोकसंगति, अन्योक्ति, लोकरीति, लोकपरम्परा, शब्दशक्ति, आलङ्कारिकता, मर्मोक्ति, सम्प्रेषणीयता, लौकिकभावभूमि की यथार्थता, घटनाशीलता, प्राज्ञोक्ति एवं गम्भीरता प्रभृति विशेषताओं के साथ प्रयुक्त हुई हैं, जो मानवीय हृत्तन्त्री को झंकृत कर देती हैं, क्योंकि इनकी अर्थवत्ता व उपमानों के जीवन्त प्रयोग लोकजीवन से सीधे सम्बद्ध हैं। ये कवि द्वारा प्रयुक्त अर्थान्तरन्यास के माध्यम से, विभावना और विशेषोक्ति की मूलभित्ति पर स्थापित, सुदर्शन एवं मनोरमा के आदर्शों को मानवीय लोकजीवन के लिये अनुकरणीय बनाती हैं, संस्कारों, सदाचारों व सद्विचारों को जनमानस का लक्ष्य बनाती हैं तथा मानवीय जीवन मूल्यों से पृथक् हटकर अमृत के लिए विषस्वरूप दोषों से लोगों को दूर करती हैं।

इसी प्रकार कवि समाज को इस ग्रन्थ की अनेकविध सूक्तियों से अपने सूक्त्यात्मक उपदेशों द्वारा मण्डित करते हुये भी देखा जा सकता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृत महाकाव्य की सूक्तियाँ एक ओर जहाँ सरल, स्वाभाविक, लघुकाय, त्रिकालाबाधित, लोक-संवेदना से संवलित व दार्शनिक तथ्यों से परिपूरित है, वहीं ये धर्म, विवेक व आदर्श की स्थापना करने में समर्थ, लोक सापेक्ष एवं स्वामिभक्ति किंवा अपने स्वतंत्र अस्तित्व व महत्त्व का प्राख्यापन करने वाली भी है। इसीलिये इनकी लोकधर्मिता सर्वथा स्वीकार्य एवं ग्राह्य है।

❖

MS-63

आज की वाणी : सनातनकविकृत 'शरशय्या'

श्री राहुल, वाराणसी

सनातनकवि आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी द्वारा विरचित 'शरशय्या' में 'सुगतोब्रवीति', 'वृद्धकुमारि' व 'शरशय्या' नामक तीन खण्डकाव्य सङ्कलित हैं। तीनों ही खण्डकाव्यों में समसामयिक राष्ट्रीय परिवेश प्रतिबिम्बित है, जो प्रमाण हैं—संस्कृतकविता के आज भी सजग और जीवित होने का।

सुगतो ब्रवीति—

इस खण्डकाव्य में 117 पद्य हैं। इसमें कवि ने अफगानिस्तान के तालिवान शासकों द्वारा हजारों वर्ष प्राचीन भगवान् बुद्ध की गगनचुम्बी इमारतों के विध्वंस की घटना को अपनी कविता का आधार बनाया है। मूर्तिध्वंस से बुद्ध के भौतिक अवशेषों को समाप्त किया जा सकता है, न कि जनसामान्य में व्याप्त उनके अहिंसाविषयक सिन्द्धान्तों को।

वृद्धकुमारी—

129 पद्यों में सनातनकवि द्वारा विरचित इस खण्डकाव्य में अनिन्द्य सौन्दर्यसम्पन्न मुगलशाहजादियों के जीवन को आधार बनाया गया, जो अविवाहित ही शवगर्त में गाड़ दी गयीं थीं। विश्व के सातत्य को बनाये रखने में व्यर्थ सिद्ध हुए उनके सौन्दर्य के विषय में अनेक प्रश्न उठते हैं।

शरशय्या—

भीष्मपितामह की परिवेदना को विषय बनाने वाले 103 पद्यों में उपनिबद्ध इस खण्डकाव्य में भी वर्तमान युग का यथार्थ स्वरूप प्रतिबिम्बित होता है। भीष्म असमर्थ रहे सत्ताप्राप्ति के लिए होने वाले रक्तपात को रोकने में।

तीनों ही खण्डकाव्यों से प्रमाणित होता है कि आज का संस्कृत कवि वर्तमान को चित्रित करने से नहीं चूकता। वह प्रस्तुत करता है जीवित इतिहास को, उपनिषद् की भूमिका पर आरूढ़ होकर।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MS-64

जयोदय महाकाव्य रस परिपाक

सुश्री पारूल त्रिपाठी, लखनऊ

काव्यशास्त्र में 'रस' को काव्य का आत्मतत्व कहा गया है। वेद, पुराण तथा उपनिषदों में भी रस शब्द अनेक अर्थों यथा—दूध, जल, पेय पदार्थ तथा परब्रह्म के रूप में प्राप्त होता है।

भरतमुनि का, रस की महत्ता को स्पष्ट करते हुए, कथन है—नहि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते (ना. शा. अ. 7); अर्थात् रस के बिना कोई अर्थ प्रवृत्त नहीं हो सकता है। अलङ्कारवादी गुणवादी तथा रीतिवादी आचार्यों ने भी रस की चर्चा की है, किन्तु इन आचार्यो के अनुसार उसकी सत्ता एक अलङ्कार के रूप में है, जो काव्य में सौन्दर्य की वृद्धि करता है। ध्वनि प्रवर्तक आनन्दवर्धन ने ध्वनि को काव्य की आत्मा कहकर रस को भी अपरोक्ष रूप से आत्मतत्त्व के रूप में स्वीकार किया है तो उनके टीकाकार अभिनवगुप्त ने 'काव्य में रस ही वस्तुतः आत्मा है'—ऐसा स्वीकार किया है—

'तेन रस एव वस्तुत आत्मा वस्त्वलङ्कारध्वनी तु सर्वथा रसं प्रति पर्यवस्येते।' (ध्वन्यालोचन टीका)

इस प्रकार प्रायः सभी आचार्यो ने किसी न किसी रूप में रस की महत्ता को स्वीकार किया है। जयोदय महाकाव्य के रचयिता बीसवीं शताब्दी के जैन महाकवि आचार्य ज्ञानसागर हैं। जयोदय महाकाव्य के 28 सर्गो में भरत चक्रवर्ती के सेनापति, हस्तिनापुर के नरेश जयकुमार तथा काशी नरेश अकम्पन की पुत्री सुलोचना का वर्णन है। इस महाकाव्य में वन-क्रीड़ा, जल-क्रीड़ा, सूर्योदय-प्रभातवर्णन, रात्रिवर्णन, चन्द्रोदय, पानगोष्ठी, वैवाहिक-क्रिया, सम्भोग, पर्वत, नदी आदि प्रसङ्गों में नौ रसों का वर्णन है। इस महाकाव्य का अङ्गीरस 'शान्त' है।

इस महाकाव्य का लक्ष्य अपरिग्रह व्रत की शिक्षा देना है। पाठकों को इसमें रूक्षता का अनुभव न हो इसके लिए महाकवि ने राजा जयकुमार तथा सुलोचना की प्रणय कथा के माध्यम से अपने लक्ष्य की सिद्धि की है। परिणामस्वरूप शान्तरस की पुष्टि के लिए शृङ्गार, वीर, हास्य तथा करुण आदि रसों को अङ्गरस में उद्धृत किया है।

जयोदय महाकाव्य का आद्योपान्त अनुशीलन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस महाकाव्य का अन्तिम भाग तो शान्तरस से परिपूर्ण है ही, किन्तु इस रस की अनुभूति पाठक ग्रन्थ के आरम्भ में भी सूक्ष्म रूप से कर सकता है। महाकवि ने इस काव्य के 25 से 28 सर्ग तक शान्तरस के अतिरिक्त किसी अन्य रस का प्रवेश भी नहीं होने दिया है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MS-65

केशवमिश्रकृत नृसिंहचम्पू का पर्यालोचन

प्रो. राजीव रंजन सिंह, वाराणसी

भक्तिपरक चम्पू काव्यों में नृसिंहचम्पू नाम से चार कवियों ने अपने काव्य प्रस्तुत किये हैं, वे हैं—दैवज्ञ सूर्य, संकर्षण, केशव भट्ट, नारायण। इनमें से दैवज्ञ सूर्य द्वारा रचित नृसिंहचम्पू का प्रकाशन डॉ. सूर्यकान्त ने वर्ष 1959 में किया था। शेष नृसिंह चम्पूओं का उल्लेख तो सूची पत्रों में था किन्तु वे अद्यावधि प्रकाशित नहीं थे। नृसिंह चम्पू का हस्तलेख मथुरा के एक वैष्णव परिवार से प्राप्त हुआ, जिसके लेखक केशव मिश्र मूलतः आन्ध्र या महाराष्ट्र प्रदेश के हैं। अनेक पुराणों को उपजीव्य बनाते हुए इसकी कथावस्तु अपनायी गयी है। भक्ति और कवित्त्व का इसमें विलक्षण संयोग है। इस दृष्टि में भक्तिपरक चम्पू काव्यों में इसका विशेष स्थान है। भावानुरूप भाषाशैली इसकी दूसरी प्रमुख विशिष्टता है। पाँच स्तवकों में रचित इस ग्रन्थ के बारे में विश्लेषणात्मक सूचनाएं इस शोध लेख में प्रस्तुत की गई हैं।

❖

MS-66

प्रोफेसर राजेन्द्र मिश्र की एकाङ्कियों में प्रतिपादित समस्यायें

डॉ. वीरेन्द्र कुमार मिश्र, शिमला

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाज में रहकर वह एक दूसरे पर निर्भर रहता है। मनुष्य समुदाय में संगठित होकर समाज की संरचना करता है। किन्तु यदि समाज में अनैतिक, आवांछनीय अपराधी तत्त्व भरे पड़े हो तो उनकी हरकतें समाज में रहने वाली सामान्य-जनता को भी सुरक्षित नहीं रहने देती हैं। विकृत समाज में असीम विकृतियाँ उत्पन्न होती है। यदि इन विकृतियों या समस्याओं की ओर ध्यान दें तो लगता है कि ये हमें लोहे की गर्म सलाखों से बनी हुई जंजीरों की तरह जकड़े हुए हैं और प्रत्येक क्षण हमारी नस-नस को जलाती रहती है। ऐसी अनेक समस्याओं को प्रो. राजेन्द्र मिश्र ने अपनी एकाङ्कियों के द्वारा उजागर किया है। इनमें प्रमुख है—दहेज की समस्या।

दहेज की समस्या हमारे समाज में इतनी प्रबल हो गई है कि प्रत्येक पिता अपने पुत्र का विवाह सेठ धनकुबेर की पुत्री से करना चाहता है। इसका सुन्दर वर्णन प्रो. मिश्र ने 'रूपरुद्रीयम्' में 'अभीष्टमुपायनम्' नामक एकाङ्की में किया है।

प्रो. राजेन्द्र मिश्र ने अपनी 'कन्यामाणिक्यम्' नामक एकांकी में सामाजिक विसंगतियों, जैसे—अस्पृश्यता एवं दलित समस्या को भी चित्रित किया है। सम्प्रति समाज में इतनी संकीर्णता आ गई है कि एक पिता अपने पुत्र को खटिकों की बस्ती में देखकर आगबबूला हो जाता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा में हो रहे अवमूल्यन की समस्या को भी प्रो. मिश्र ने 'साक्षात्कार' तथा अन्य एकाङ्की के माध्यम से उभारा है। इसी तरह डकैती की समस्या को 'पुनर्मेलनम्' तथा 'नात्मानमवसादयेत्' नामक एकाङ्की में चित्रित किया है।

प्रो. राजेन्द्र मिश्र ने खालिस्तान की समस्या को 'रक्ताभिषेकम्' नामक एकाङ्की में चित्रित किया है। शहरीकरण की समस्या का भी वर्णन 'देहर्लीपरिदेवनम्' नामक एकाङ्की में हुआ है।

प्रो. मिश्र ने अपनी एकाङ्कियों के माध्यम से आज की समस्याओं को उजागर करने का प्रयत्न किया है।

❖

MS-67

डॉ. रामकरण शर्मा के उपन्यासों में आदर्शवाद

सुश्री मन्जुल गुप्ता, रोहतक

डॉ. रामकरण शर्मा आधुनिक संस्कृत साहित्य के सुप्रसिद्ध विद्वान् और साहित्यकार हैं। उन्होंने अनेक कृतियों की रचना से संस्कृत साहित्य को समृद्ध किया है, यथा शिवशुकीयम्, संध्या, वीणा, दीपिका, पाथेयशतकम्, शिवसहस्रनामाष्टकम्, सर्वमङ्गला, मानसी आदि काव्य संग्रह। इनके रचित दो उपान्यास हैं—सीमा और रयीशः। इनके उपन्यास यथार्थोन्मुख होते हुए भी आदर्शवादी हैं। ये अनेक प्रकार के आदर्शों को लेकर चले हैं। इनके उपन्यासों में आदर्श अपने सभी रूपों में, यथा—वैयक्तिक आदर्श, पारिवारिक आदर्श, सामाजिक आदर्श, राजनैतिक आदर्श, आध्यात्मिक आदर्श, व्यावहारिक आदर्श, वैज्ञानिक आदर्श आदि परिलक्षित होता है। सबसे महत्तम आदर्श जो इन उपन्यासों में परिलक्षित होता है, वह है लोककल्याण का आदर्श। व्यक्ति और समाज या राज्य के सभी कार्य इसी ध्येय को सामने रखकर किये जाने चाहिए। द्वितीय आदर्श है—अहिंसा का। अहिंसा का महाव्रत सबसे बड़ा आदर्श है, किन्तु यह अहिंसा दाम्भिकी न हो क्योंकि दाम्भिकी अहिंसा भयानकतम हिंसा-प्रतिहिंसाओं से भी भयानक होती है। वैयक्तिक आदर्श के रूप में ये इस आदर्श को लेकर चले हैं कि व्यक्ति को निस्संग और निस्पृह होना चाहिये और सभी कार्य लोककल्याण की ही दृष्टि में रखकर किये जायें।

प्रजातन्त्र हो किन्तु सही अर्थों में। राष्ट्र के अध्यक्ष के रूप में उस पद को दोबारा एक ही व्यक्ति अलंकृत न करे। ब्रह्मविद्या, क्षत्रविद्या और सौरविद्या का समन्वय हो। एक शक्तिशाली केन्द्र हो। विश्व के आदर्श के रूप में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के आदर्श को लेकर चलें। लोक कल्याण ही परम आदर्श है। सत्यं शिवं सुन्दरं का आदर्श सर्वोपरि है। वैज्ञानिक आदर्श के रूप में यह आदर्श प्रस्तुत किया गया है कि विज्ञान अत्यन्त शक्तिशाली है, उसका दुरुपयोग न हो, वैज्ञानिक आविष्कार ऐसे हों जिनसे प्रदूषण न हों, विज्ञान का उपयोग मानव कल्याण के लिये किया जाये, अन्य किसी प्रकार के लिये नहीं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार डॉ. रामकरण शर्मा ने अपने दोनों उपन्यासों में आदर्श के सभी पक्षों, सभी विविध रूपों को प्रस्तुत किया है।

❖

MS-68

राजस्थान का लहरी साहित्य

डॉ. सुदेश आहूजा, कोटा

संस्कृत साहित्य में सबसे प्राचीन लहरी शङ्कराचार्य द्वारा लिखित 'सौन्दर्यलहरी' प्राप्त होती है। सौन्दर्य-लहरी को प्रथम दृष्ट्या देखे तो यह धारणा बलवती होती है कि लहरी-काव्य संस्कृत की शतक-काव्य परम्परा अथवा स्तोत्र-काव्य परम्परा का ही रूप है। विविध देवताओं को अधिकृत कर शिखरिणी छंदो में निबद्ध श्लोकों का संग्रह ही लहरी काव्य है किन्तु इसी परम्परा को आगे बढ़ाते हुए पण्डित राज जगन्नाथ की गंगालहरी, यमुनालहरी, लक्ष्मीलहरी, अमृतलहरी आदि लहरीग्रन्थ चाहे विविध देवताओं की स्तुति में समर्पित है; परन्तु विविध छंदो में रचित है।

संस्कृति कोषों में 'लहरी' शब्द की व्युत्पत्ति 'लेन इन्द्रेण एव ह्रियते उर्ध्वगमनाय ल+ह्र+इन पक्षे डीप्' इस प्रकार दी है। अतः एक ऐसी काव्य रचना जिसमें किसी एक रस या भाव को लेकर इन भावों व विचारों का छन्दोबद्ध गुम्फन हो, लहरी काव्य है। अंग्रेजी का ode अर्थात् 'सम्बोधन गीति' को इसी श्रेणी में रखा जा सकता है।

राजस्थान का लहरी साहित्य परम्परा व प्राचीनता की दृष्टि से काफी संवृद्ध है। राजस्थान लहरी लीलायितम् में सवाई राजा जयसिंह द्वितीय (1699-1743ई.) में इनके नवरत्नों में से एक श्री कृष्ण भट्ट की सौन्दर्य-लहरी, श्री हरिवल्लभ भट्ट की शृगांर लहरी, पं. सूर्यनारायण की उद्योगलहरी, भट्टमथुरा नाथ शास्त्री कृत मनोलहरी, पं. हरिशास्त्री विरचित वाणीलहरी, श्री व्रजवल्लभ शरण जी द्वारा रचित गोपाललहरी, श्री गोपीचन्द्र द्रविड़ कृत काशीलहरी मेघाव्रतचार्य कृत दयानन्दलहरी तथा दिव्यानन्दलहरी, पं. श्री विद्याधर शास्त्री कृत वैचित्र्यलहरी, मनोलहरी, लीलालहरी तथा नाथूलाल त्रिवेदी मधुकर लिखित मारुतिलहरी तथा श्री मातृलहरी आदि लहरी-ग्रन्थ प्राप्त होते है। इन सभी लहरी-ग्रन्थों में विविध देवताओं तथा विविध भावों तथा विविध छंदों के प्रयोग किये गये है। इस प्रकार संस्कृत लहरी-काव्य को समृद्ध बनाने में राजस्थान की लहरीसाहित्य का अपना अपूर्व योगदान है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MS-69

काँग्रेसाख्यानम् : एक परिचय

श्री सत्येन्द्र नाथ झा, दिल्ली

प्राचीन काल से ही संस्कृत साहित्य के प्रति मिथिला के विद्वानों का प्रभूत योगदान रहा है। गौतम, याज्ञल्क्य, मण्डन मिश्र, कुमारिलभट्ट प्रभृति विद्वानों की रचनाओं से संस्कृत साहित्य चमत्कृत होता रहा है। इसी सुदीर्घ परम्परा में भारतीय स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भी मैथिल विद्वान् अपनी लेखनी से संस्कृत साहित्य-भण्डार को भरने में लगे रहे हैं। इस क्रम में मिथिला प्रान्त के सीतामढ़ी जिले के विश्रुत विद्वान् पण्डित मुसाफिर झा के योगदान को कभी भुलाया नही जा सकता। 'काँग्रेसाख्यानम्' नामक संस्कृत श्लोक निबद्ध अपने ग्रन्थ में काँग्रेस के इतिहास तथा उसके अध्यक्षों के व्यक्तित्व का विवरण प्रस्तुत कर वस्तुतः उन्होंने संस्कृत साहित्य के लिये सर्वथा नव्य प्रयोग किया है। इसके पूर्व आख्यान-परक इस तरह का काव्य-निर्माण नही हुआ था। चार खण्डों एवं परिशिष्ट भाग से युक्त इस 'काँग्रेसाख्यानम्' में 1885 में काँग्रेस की स्थापना के समय से 1948 तक विभिन्न काँग्रेस अधिवेशनों का यहाँ सुन्दर वर्णन किया गया है। परशिष्ट भाग में स्वतन्त्रता के पश्चात् नेहरू, इन्दिरा गान्धी और राजीव गान्धी के स्तवन में भी कवि की लेखनी चमत्कृत हुई है। प्रकृत आलेख में उस 'काँग्रेसाख्यानम्' ग्रन्थ का समीक्षण प्रस्तुत किया गया है।

❖

MS-70

नायिका जुलेखा : चारित्रिक विवेचना

डॉ. अरुण शर्मा

सहोदरा कुङ्कुमकेसराणां भवन्ति नूनं कविताविलासः।
न शारदादेशमपास्य दृष्टस्तेषां यदन्यत्र मया प्ररोहः॥

शारदा भूमि में ही केसर और कविता दोनों एक साथ उपजते हैं। महाकवि विल्हण ने विक्रमाङ्कदेवचरित में लिखा है—कविता-विलास और कुंकुम-केसर निश्चय ही सगे भाई हैं क्योंकि मैंने शारदा देश (कश्मीर) को छोड़कर कहीं और उनकी उत्पत्ति एक साथ होते हुए नहीं देखी है।

इसी भूमि पर पन्द्रहवीं सदी के उत्तरार्ध में महाकवि श्रीवर ने जन्म लिया जिनके दो संस्कृत महाकाव्य उपलब्ध है—एक ऐतिहासिक काव्य 'जैनराजतरङ्गिणी' तथा द्वितीय 'कथाकौतुक'।

कथाकौतुक चमत्कार-प्रधान युग में लिखा गया 'कौतुक' से परिपूर्ण प्रेमकाव्य है। इसकी मूल कथा फारसी के काव्य 'यूसुफ—जुलेखा' पर आधारित है। यह संस्कृत महाकाव्य पन्द्रह कौतुकों में विभक्त है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय से लेकर पन्द्रहवें कौतुक तक की कथा नायिका जुलेखा के इर्द-गिर्द घूमती है। प्रस्तुत नायिका का चरित्र ही काव्य का आधार है। नायिका जुलेखा, साहित्यदर्पण के नायिका भेदों में से 'परकीया' नायिका के अन्तर्गत आती है।

❖

MS-71

इन्द्रयक्षीयम् : एक विश्लेषण

डॉ. देवेन्द्र सिंह सोलंकी, मेरठ

चार सर्गात्मक एवं दो सौ चौवन श्लोकात्मक श्री स्वयं प्रकाशशर्मा प्रणीत 'इन्द्रयक्षीयम्' नामक ग्रन्थ केनोपनिषद् पर आधारित संस्कृत भाषा का एक खण्ड काव्य है। प्रकृत ग्रन्थ के प्रथम सर्ग में देवासुर संग्राम में देवों की पराजयोपरान्त उनका ब्रह्म के पास जाना, ब्रह्म के उपदेश से उनकी असुरों पर विजय, ब्रह्म की अहेतुकी कृपा का देवों द्वारा विस्मरण, ब्रह्म द्वारा उनके अभिमान को चूर्ण करने के प्रयत्न स्वरूप ब्रह्म का यक्ष रूप में प्रगट होना, देवों का पक्ष विषयक भेद लेने के लिए इन्द्र का अग्नि को अपने दूत के रूप में भेजना, पक्ष द्वारा अग्नि की सामर्थ्य को समाप्त करना एवं अग्नि द्वारा अपनी हार मानकर स्वहारविषयक वृतान्त देवों को सुनाना वर्णित है। इसी प्रकार इन्द्र द्वारा दूत के रूप में प्रेषित वायु की भी यक्ष द्वारा समाप्त की गई शक्ति एवं वायु का देवताओं के पास आकर स्वहार विषयक वृतान्त सुनाना वर्णित है। तृतीय सर्ग में देवों द्वारा इन्द्र को यक्ष के पास भेजना, इन्द्रागमन से पूर्व ही यक्ष का लुप्त होना। इन्द्र की आत्मग्लानि अपनी भूल व मिथ्यागर्व पर लज्जित होना। फलतः इन्द्र, इन्द्राणी आदि द्वारा ब्रह्म की तप द्वारा आराधना, तप से प्रसन्न होकर उमा का प्रकट होना व इन्द्र को वरदान देना व एतदर्थ देवों का विस्मित व प्रसन्न होना वर्णित है। चतुर्थ सर्ग में उमा द्वारा इन्द्र को उपदेश स्वरूप 'यक्ष ही ब्रह्म था' बताना व आत्मतत्त्व का सही स्वरूप बताना, अग्निहोमादि कर्म की अनिवार्यता व मन, वचन, कर्मादि द्वारा जीवन में छलरहित आचरण करना, इन्द्र को पुनर्जन्म में भारत में आकर धर्माचरण एवं आत्मसाधना द्वारा अमर होने का उपदेश आदि वर्णित है। उमा द्वारा अन्तर्धान होना एवं इन्द्र द्वारा देवों समेत इन्द्रपुरी में निवास करना अन्त में वर्णित है।

❖

MS-72

मध्यमरामचरितम् की नाट्यशास्त्रीय समीक्षा

डॉ. (श्रीमती) प्रेमलता मिश्रा, सुल्तानपुर

संस्कृत-साहित्य में नाट्य-लेखन की परम्परा अति प्राचीन है। कालिदास, भास, भवभूति आदि महाकवियों ने संस्कृत-वाङ्मय को अपनी नाट्य-कृतियों से सुसमृद्ध बनाया है। इसी परम्परा का अनुसरण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हुए संस्कृत साहित्योद्यान के अभिराम कल्पतरु डॉ. पं. कृपाराम त्रिपाठी 'अभिराम' ने 'मध्यमरामचरितम्' नामक नाटक का प्रणयन कर देववाणी को गौरवान्वित किया है।

नवोदित नाटककार पं. कृपाराम त्रिपाठी द्वारा रचित मध्यमरामचरितम् नाटक की कथा का मूल आधार वाल्मीकीय रामायण के बालकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड को छोड़कर-शेष अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड एवं लंकाकाण्ड है। इसमें राम के राज्याभिषेक, वन-गमन, सीता-हरण, रावण-वध तथा अयोध्या पुनरागमन की घटनाओं का क्रमिक वर्णन है। अभिराम कवि ने अपने नाटकीय कौशल और प्रतिभा का परिचय देते हुए मूल-कथा में अनेक परिवर्तन किये हैं।

सात अङ्कों में विभक्त इस नाटक का शुभारम्भ राजीव-लोचन मर्यादा पुरुषोत्तम राम की वन्दना से होता है। नान्दी पाठ के पश्चात् प्रस्तावना के अन्तर्गत सूत्रधार तथा पारिपार्श्वक के वार्त्तालाप के माध्यम से नाटक प्रणयन के प्रयोजन पर प्रकाश डाला गया है।

लेखक के अनुसार कवि को इसके लेखन की प्रेरणा भवभूति प्रणीत 'उत्तररामचरितम्' से प्राप्त हुई। अभिराम कवि ने राघवेन्द्र राम के जीवन के मध्यकाल की घटनाओं को इस ग्रन्थ का आधार बनाया। इस नाटक में विष्कम्भक तथा चूलिका आदि का अभाव है। केवल प्रवेशक के माध्यम से अङ्कों में ही अर्थोपक्षेपण किया गया है। नाटक की अधिकांश कथावस्तु संभूति तथा विभूति नामक दो देवदूतों के बातचीत के माध्यम से ही कह दी गयी है। प्रत्येक अङ्क के अन्त में देवदूत रङ्गमंच से चले जाते हैं। अग्रिम अङ्क में पुनः ये ही पात्र वार्त्तालाप करते हुये दिखाई पड़ते हैं। नाटक में पाठ्य-प्रवृत्ति (भाषा-विषयक नियम) का निर्वाह भी सम्यक् रूप से नहीं हो सका है। नाटक का अंगीरस वीर है। अन्य रस गौण रूप में प्रयुक्त हुए है। भारत-वाक्य में राम के प्रताप का वर्णन है। इसी के साथ सात अङ्कों का यह नाटक समाप्त हो जाता है।

❖

MS-73

जय भारतदेशः चम्पूकाव्य का अनुशीलन

डॉ. आशा सर्वटे, सागर (म.प्र.)

विद्वत्प्रवर कविवर श्री फाल्गुन गोस्वामी द्वारा रचित जयभारतदेशः नामक चम्पूकाव्य अभिनव संस्कृत साहित्य का ऐतिहासिक चम्पूकाव्य है। स्वदेश एवं मातृभूमि के लिए प्राणोत्सर्ग करने वाले वीरों का प्रशस्तिगान करने की राजस्थान की साहित्यिक परम्परा रही है। तदनुरूप इस 'जयभारतदेशः' चम्पूकाव्य में भारतीय वीरों की देशभक्ति, त्याग और बलिदान की कहानी का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया गया है। कवि ने इस काव्य में भारत पर चीन के विश्वासघातपूर्ण आक्रमण और भारतीय प्रदेशों पर पाकिस्तान की गृध्र-दृष्टि के कारण समुत्पन्न नाना संघर्षों के वर्णन काव्यमय शैली में गुम्फित किये है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'जयभारतदेशः' चम्पूकाव्य का विषय प्रधान रूप से प्रथम भारत-पाक-संघर्ष है। यह रूपकात्मक चम्पूकाव्य है। इसमें तात्कालीन भारतीय नेताओं को महाभारतीय नेताओं पर आरोपित किया है। तदनुसार ही इसके प्रतिकूल पाकिस्तान के नेताओं को दुर्योधनादि नेताओं के रूप में निदर्शित किया है। वीर रस अङ्गी है। अद्भुत रौद्र और करुण रस अङ्ग रूप में है। अलंकारों का प्रयोग स्पृहणीय है। प्रतीक और बिम्ब-विधान सुन्दर है। लोकोक्तियों से और मुहावरों से संस्कृत भाषा में नूतन प्रयोग किये हैं। युद्ध के वर्णन में भारत के विभिन्न प्रदेशों का वर्णन ऐतिहासिक और भौगोलिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। राष्ट्रप्रेम और राष्ट्रीय एकता का प्रेरक सन्देश देना ही इसका परम प्रयोजन है। इस शोधपत्र में उपर्युक्त सभी बिन्दुओं पर विवेचन किया गया है। अन्त में भारतचम्पू से इसकी तुलना की गई है। संस्कृत कवियों की वर्तमान युग में भी युगभावना और युगदर्शन के अवबोध की क्षमता विलक्षण है।

❖

MS-74

श्री चन्दनमुनिकृत 'आर्जुनमालाकारम्' गद्यकाव्य का काव्यशास्त्रीय अनुशीलन

कु. रूबी जैन, पंजाब

जैनाचार्यों ने प्राकृत के अतिरिक्त संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओं में भी विपुल संख्या में साहित्य-रचना करके भारतभारती के भण्डार की श्रीवृद्धि करने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। यही क्रम वर्तमान में भी अक्षुण्ण गति से चल रहा है।

आधुनिक काल में श्रीचन्दनमुनि ने संस्कृत में अनेक ग्रन्थों की रचना की है। उनमें 'आर्जुनमालाकराम्', प्रभवप्रबोध और अभिनिष्क्रमणम् इन तीन गद्यकाव्यों का विशेष महत्त्व है। प्रस्तुत गद्यकाव्य में भावपक्ष और कलापक्ष का सुन्दर समन्वय देखने में आता है।

किसी अर्जुन नामक माली की धर्मपरायणा धर्मपत्नी के साथ राजा द्वारा अभयदान प्राप्त छः उद्दण्ड पुरुष बलात्कार कर बैठते हैं। इस अनहोनि घटना से क्षुब्ध अर्जुन माली हिंसा पर उतर आता है। प्रतिशोध की ज्वाला में जलता हुआ वह अनपी निर्दोष पत्नी-सहित सभी दोषियों को मौत के घाट उतार देता है। इतने पर भी उसका क्रोध शान्त नहीं होता। उस समय उसका आराध्य मुद्गरपाणि यक्ष उसके शरीर में प्रविष्ट हुआ था, जिसके बल पर वह प्रतिदिन एक स्त्री पर छः पुरुषों का गदा-प्रहार से संहार करते हुए 1141 निर्दोष स्त्री-पुरुषों की हत्या से अपना हाथ रक्त-रंजित कर लेता है।

एक सुश्रावक सेठ सुदर्शन के सौजन्य से वह 24वें तीर्थकर महावीर की शरण में जाता है। जहाँ उसका कायापलट हो जाता है। वह जैनधर्म में दीक्षित होकर विधिवत् तपश्चरण द्वारा प्रायश्चित्त करता हुआ अपने अन्तिम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीचन्दन मुनि जी के संस्कृत काव्यों की देश-विदेश के प्राच्यविद्याविदों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है।

❖

MS-75

व्रजरजःप्रीतिः (बरवै सप्तशतकम्)

डॉ. श्रीमती सरिता भार्गव, कोटा, राजस्थान

आधुनिक संस्कृत कवियों ने प्राचीन काव्यधारा को आज के साहित्य की नवीन भाव-चेतना से जोड़कर प्रौढ़ा को नवोढ़ा बनाने का सार्थक प्रयास किया है। विषय, विधा, शैली, भाव की दृष्टि से संस्कृत साहित्य सृजन के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे हैं। अपभ्रंश, ब्रजभाषा, उर्दू, फारसी इत्यादि भाषाओं के गजल रूबाइयां, कव्वालियाँ, दोहा, सोरठा, कवित्त घनाक्षरी, छप्पय इत्यादि छन्दों में काव्य सृजन कर संस्कृत भाषा को एतत्कालिकता से जोड़ा जा रहा है।

कविराज सियारा सक्सेना प्रवर रचित व्रजरजःप्रीतिः नामक मुक्तक काव्य अवधी एवं ब्रजभाषा के लोकप्रिय छन्द बरवै में निबद्ध है। बरवै मुक्तकों की झंकार कामिनी के मणिकपुरों की झंकारवत् बलात् चित्त को आकर्षित कर लेती है। व्रजरजःप्रीतिः नामक काव्य में व्रज शब्द व्रज गतौ अर्थ में चरेवैति चरेवैति मंत्र के समान ही भावनिष्ठ है। रजः पद भी सामान्यरज का बोधक नहीं है, अपितु व्रज की रज का बोध कराता है। जो कि परं चैतन्य की ओर ले जाने वाला है।

बिहारी सतसई की तर्ज पर आधारित बरवै सतसई नामक मुक्तक काव्य सात अध्यायों में विभक्त है एवं प्रत्येक अध्याय में शताधिक श्लोक है। प्रथम शतक स्तुति प्रशस्ति द्वितीय शतक (भक्ति) तृतीय (शृंगार), चतुर्थ (रस) पंचम (चेतो विकास), षष्ठ (शान्तरस, सूक्तियाँ) सप्तम (अध्यात्मक) विषयक श्लोकों की प्रधानता है।

कविप्रवर धर्म, दर्शन, साहित्य, वेद, आयुर्वेद के उद्भट विद्वान् है। इनके इस काव्य में सभी शास्त्रों की धारायें मुक्तकों के रूप में प्रवाहमान है। कृष्णभक्ति की प्रधानता होने पर भी यहाँ सांख्य-योग, कर्म, भक्ति, नीति, सत्संग, परोपकार, राष्ट्रभक्ति, संस्कृत प्रेम, प्रकृत वर्णन, नवरस, हास्य, व्यङ्ग्य, ज्ञान-वैराग्य, स्तुति प्रशस्ति, इत्यादि विषयों पर कवि ने सरस मुक्तक लिखे हैं। लोकछन्द बरवै के माध्यम से रचित कवि सियाराम प्रवर का व्रजरजःप्रीतिः काव्य अत्यन्त विशद सुग्राह्य, सरल संस्कृत भाषा में निबद्ध है, जिसमें द्रक्षापाकवत् सद्य रसानूभूति है।

कविप्रवर ने समसामयिक विषयों पर संस्कृत भाषा में काव्य प्रणयन कर विश्व की प्राचीनतमा भाषा को एतत्कालीन विषयों से सम्बद्ध कर संस्कृत साहित्य को आधुनिकता प्रदान की है। संस्कृत भाषा के माध्यम से आपने समाज में नवचेतना का संदेश प्रसारित किया है, प्रचलित शब्दों, लोकोक्तियों, मुहावरों का संस्कृतीकरण कर संस्कृत शब्दकोश को समसामाजिक नवीन शब्दावली प्रदान की है। संस्कृत साहित्य की इस अनुपम कृति को राजस्थान अकादमी के प्रतिष्ठित माघ पुरस्कार से भी पुरस्कृत किया गया है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MS-76

आचार्य मधुकर शास्त्री विरचित तुलसीदाससौरभम्

सुश्री मधु शर्मा, कोटा, राजस्थान

राजस्थान का गौरव जयपुर नगरी सवाई जयसिंह के काल से लेकर आज तक संस्कृतविद्वत्ता और संस्कृत साहित्य सर्जना की सुदीर्घ परम्परा को जीवन्त रखने वाले संस्कृतविद्वानों की कीर्तिगाथा से गौरवान्वित है। इस नगरी के गौरव को द्विगुणित करने वाले संस्कृत विद्वानों में आचार्य मधुकर शास्त्री अग्रगण्य हैं।

भारतीय सभ्यता, संस्कृत एवं संस्कृति को अपने उत्कृष्ट लेखन द्वारा सुपुष्पित एवं सुफलित करने वाले आचार्य मधुकर शास्त्री का रचना संसार प्रायः पौराणिक धार्मिक एवं ऐतिहासिक महापुरुषों के जीवन से सम्बद्ध युगबोधक कथानक को लेकर लिखी गई रचनाओं से समृद्ध है।

आचार्य मधुकर शास्त्री विरचित रचनाओं में गान्धिगाथा, महावीरसौरभम्, तुलसीदाससौरभम्, संस्कारसौरभम् श्रीमातृलहरी, मारुतिलहरी, राष्ट्रवाणीतरंगिणी वैदिकआह्निकविज्ञानम् आदि प्रमुख है।

एकादश सर्गात्मक तुलसीदाससौरभम् ऐतिहासिक महाकाव्य है। युगानुरूप रचित इस महाकाव्य में तत्कालीन समाज की चिन्तनधारा, सांस्कृतिक पर्यावरण एवं धार्मिक आस्था का सम्यक् चित्रण है। संत शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास के सम्पूर्ण जीवनवृत्त सहित इस महाकाव्य में तत्कालीन समाज में व्याप्त कुरीतियों अंधविश्वास, अनैतिकता एवं धार्मिक विखण्डन का सजीव चित्रण किया गया है। सामाजिक एवं सांस्कृतिक जनचेतना की जागृति तथा नैतिकता, धार्मिकता एवं सच्चरित्रता की पुनःस्थापना में ही तुलसीदाससौरभम् महाकाव्य का परमोत्कृष्ट वैशिष्ट्य निहित है।

आचार्य मधुकर शास्त्री ने कवित्व के साथ गद्यसाहित्य के निर्माण में भी प्रभूत कार्य किया है। आपके द्वारा रचित निशान्ते नवजागरः नामक कथा भारती पत्रिका में तथा सात्वाहमेवाऽऽसम् नामक कथा स्वर मंगला पत्रिका में प्रकाशित है। अन्य भी कथाएँ अप्रकाशित हैं।

❖

MS-77

आधुनिक संस्कृत एकांकी नाटकों में नारी-पात्र

सुश्री आराधना चतुर्वेदी, इलाहाबाद

अर्वाचीन संस्कृत-साहित्य मे एकांकी लेखन की प्रवृत्ति स्वातन्त्र्योत्तर युग की देन है। विगत पाँच-छः दशकों में अपने छोटे कलेवर और उत्तम अभिनेयता के कारण एकांकी नाटकों की लोकप्रियता में तीव्र वृद्धि हुई है।

एकांकीकारों ने वर्तमान सामाजिक समस्याओं एवं दैनिक जीवन की घटनाओं को लेकर सरल-भाषा में एकांकी नाटकों की रचना की है, जिसमें नारी-पात्रों के विभिन्न पक्षों का गहन एवं सूक्ष्म-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रण हुआ है। दहेज जैसी समस्या पर आधारित एकांकियों में डॉ. राजेन्द्र मिश्र का अभीष्टमुपायनम् एवं डॉ. हरिदत्त सर्मा का वधू-दहनम् प्रमुख हैं। अभीष्टमुपायनम् की विमला दहेज लेने की बात पर पति का विरोध करती है, तो वधू-दहनम् की प्रमिला दहेज-उत्पीड़न के पश्चात् जला दी जाती है।

नारी-सशक्तीकरण पर भी एकाङ्काकारों ने महत्त्वपूर्ण एकांकी नाटक लिखे हैं। इन नाटकों की नारी-पात्र सामाजिक समस्याओं का समाधान में नाटक लिखे हैं। इन नाटकों की नारी-पात्र सामाजिक समस्याओं का सामना करते हुए अपने अस्तित्त्व के लिए संघर्षरत दिखायी पड़ती हैं। इनमें डॉ. हरिदत्त शर्मा कृत अबला-बलम् की सोनाली और शकीला तथा डॉ. कृष्णलाल के एकांकी नाटक प्राचीवैक्लव्यम् की प्राची उल्लेखनीय है।

एकांकीकारों ने दैन्दिन जीवन में गृहिणियों के सम्मुख आने वाली अनेक छोटी-छोटी समस्याओं का वर्णन सुन्दरता से किया है। इन समस्याओं से जूझते हुए गृहिणियाँ कुशलता से गृह-संचालन में संलग्न है, फिर चाहे वह डॉ. राजेन्द्र मिश्र के नाटकों निर्गृहघट्टम् की झगड़ालू गृहिणी मंगला हो, वैधेयविक्रमम् की सुघड़ गृहिणी शारदा हो अथवा डॉ. कृष्णलाल के वयं सेवका की कामकाजी गृहिणी दीप्ति।

❖

MS-78

सुदर्शनोदय महाकाव्य की सूक्तियाँ और उनकी लोकधर्मिता

प्रो. जयप्रकाशनारायण द्विवेदी, द्वारका

'सुदर्शनोदयम्' जैन सम्प्रदाय के तत्त्वज्ञानी विद्वान् कवि साधक एवं परम सदाचारी महात्मा श्री ज्ञानसागर जी द्वारा प्रणित नव सर्गों में विभक्त लगभग 555 श्लोकों के कलेवर का एक प्रतिष्ठित महाकाव्य है। जिसके नायक सुदर्शन और नायिका मनोरमा है। इस काव्य में नायक की सुन्दरता आदर्श गुणसम्पन्नता तपश्चर्या एवं सुसंस्कारशीलता तथा नायिका मनोरमा के साथ उनकी जन्मान्तरीय व स्वाभाविक प्रीति को इसका वर्ण्य-विषय बनाया गया है।

प्रायः प्राग्भवभाविन्यौ प्रीत्यप्रीतिं च देहिनाम्।

जिसे सफल बनाने में काव्यगत सूक्तियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है, क्योंकि यहाँ से सूक्तियाँ अपनी संक्षिप्तता, लोकप्रियता, सप्राणता, सारगर्भिता, प्रामाणिकता, व्यवहारिकता, अनुभवशीलता, नीतिपरायणता शिक्षापरकता, लोकसंगति, अन्योक्ति, लोकरीति, लोकपरम्परा, शब्दशक्ति, आलङ्कारिकता, मर्मोक्ति, सम्प्रेषणीयता, लौकिकभावभूमि की यथार्थता, घटनाशीलता, प्राज्ञोक्ति एवं गम्भीरता प्रभृति विशेषताओं के साथ प्रयुक्त हुई हैं, जो मानवीय हृत्तन्त्री को झङ्कृत कर देती हैं; क्योंकि इनकी अर्थवत्ता व उपमानों के जीवन्त प्रयोग लोकजीवन से सीधे सम्बद्ध हैं। ये कवि द्वारा प्रयुक्त अर्थान्तरन्यास के माध्यम से, विभावना और विशेषोक्ति की मूलभित्ति पर स्थापित, सुदर्शन व मनोरमा के आदर्शों को मानवीय लोकजीवन के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए अनुकरणीय बनाती है, संस्कारों, सदाचारों सद्विचारों को जनमानस का लक्ष्य बनाती हैं तथा मानवीय जीवन मूल्यों से पृथक् हटकर अमृत के लिए विषस्वरूप दोषों से लोगों को दूर करती हैं।

इसी प्रकार कवि समाज को इस ग्रन्थ की अनेकविध सूक्तियों से अपने सूक्तयात्मक उपदेशों द्वारा मण्डित करते हुये भी देखा जाता है।

❖

MS-79

आधुनिक संस्कृत नाटकों में वसन्त-ऋतु-वर्णन अट्ठारहवीं शताब्दी के सन्दर्भ में

डॉ. सुषमा देवी गुप्ता, जम्मू

प्रकृति वर्णन यद्यपि प्रधान रूप से काव्य का विषय है, तथापि बहुत प्राचीन काल से ही संस्कृत नाटकों में इसकी परम्परा दिखाई देती है और प्राचीन तथा मध्य कालीन संस्कृत नाटकारों की भाँति आधुनिक कालीन संस्कृत नाटककारों ने भी काल प्रकृति-वर्णन की इस परम्परा का निर्वाह अपने नाटकों में किया है। प्रचीनकाल से लेकर वर्तमान तक अक्षुण्ण बनी हुई इस परम्परा के मुख्य रूप से दो कारण है—एक तो नाटककारों का कवि-स्वभाव और दूसरे प्रकृति-वर्णन का नाट्यधर्मी प्रयोजन। अट्ठारहवीं शताब्दी के शृङ्गार प्रधान नाटकों में प्रकृति का प्रायः आलम्बन एवं उद्दीपन विभावों के रूप में प्रकृति के जड़-चेतना दोनों रूपों का बड़ा ही सजीव वर्णन हुआ है। इन नाटककारों ने एक ही विषय यथा—सूर्योदय, वसन्त, वन, पर्वत, नदी आदि का अपनी-अपनी रुचि और कल्पना शक्ति के द्वारा विभिन्न प्रकार का वर्णन किया है। कही-कहीं तो इन प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन में अलंकार योजना इतनी सटीक बैठ गई है कि उनके सौन्दर्य में द्विगुणित वृद्धि हो गयी है।

❖

MS-80

18वीं शताब्दी के संस्कृत नाटकों में शरद्-ऋतु वर्णन

श्री कमल किशोर, जम्मू

अट्ठारहवीं शताब्दी के नाटककारों ने प्राचीनकाल से चली आ रही प्रकृति-वर्णन की इस परम्परा को अपने नाटकों में पालन किया है। इन्होंने पूर्व नाटककार कालिदास तथा विशाखादत्त आदि का अनुकरण मात्र नहीं किया, बल्कि अपनी नवीन कल्पनाओं द्वारा प्रकृति का एक नवीन रूप प्रस्तुत किया है। विभिन्न नाटककारों ने प्रकृति वर्णन के अन्तर्गत सूर्योदय, वन, पर्वत, नदी, वसन्त तथा शरद् आदि ऋतु अर्थात् प्रकृति के दोनों रूपों (जड़ और चेतन) को अपनी-अपनी रुचि अनुसार कल्पनाशक्ति के द्वारा विभिन्न प्रकार से अलङ्कृत किया है। भारतवर्ष में समय-समय पर छहों ऋतुएँ बारी बारी से आती हैं और अपनी-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी कला का प्रदर्शन करके रङ्गभूमि से चली जाती है, जिन्हें कुशल कवि नाटककार लेखनी के द्वारा अलङ्कृत कर देता है। यहाँ पर केवल शरद् ऋतु का ही अवलोकन किया जा रहा है।

18 वीं शताब्दी के अधिकांश नाटकों में शरद ऋतु का वर्णन दृष्टिगोचर होता है। जैसे—जीवानन्द नाटक, मणिमाला नाटिका, लक्ष्मीकल्याण नाटक, जीवनमुक्तिकल्याण नाटक, राघवानन्द नाटक, गोविन्दवल्लभ नाटक, वीरराघव व्यायोग बालमार्तण्डविजय आदि में शरद् ऋतु का इस प्रकार वर्णन किया है। शरद् ऋतु में कमल विकसित होते हैं। हंस मानसरोवर से दक्षिण की ओर चल देते हैं। नदी तथा जलाशय का जल अधिक स्वच्छ हो जाता है। आकाश में श्वेत मेघ दिखाई देते हैं। सूर्य दिशाओं को निर्मल करने में समर्थ अपनी किरणों को निर्बाध होकर उन्मुक्त करता है।

❖

MS-81

प्राचीन संस्कृत नृत्यनाट्य एवं आधुनिक लोक नृत्यनाट्य का साहित्यिक, सैद्धान्तिक तथा प्रायोगिक तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. सुशील कुमारी वर्मा, कानपुर

संस्कृत नाट्यसाहित्य संसार में समस्त भाषाओं के नाट्यसाहित्य से सर्वश्रेष्ठ है। इसमें प्राचीन अक्षय भण्डार अत्यन्त उत्कृष्ट एवं मूल्यवान् है। प्रारम्भ में तो नृत्य और संगीत नाट्य के मुख्य अंग थे। इसीलिए भरत नाट्यशास्त्र में इन सबका अत्यन्त विस्तृत वर्णन है। मध्य युग में नृत्य, संगीत तत्त्वों का स्थान नगण्य हो गया और मुख्य रूप से नाट्य में पाठ्य तत्त्व ने प्रधान स्थान स्थापित कर लिया। फलस्वरूप लेखन, अध्ययन और अध्यापन में पाठ्यप्रधान नाट्य ग्रन्थों का राज्य स्थापित हो गया और ऐसे ही ग्रन्थों का अध्ययन-अध्यापन निरन्तर हुआ।

मुस्मिल काल में नृत्य और संगीत विरोधी तथा संस्कृत विरोधी वातावरण और भी अधिक रहा। इसके अतिरिक्त इसी मुस्लिम युग के रंगमंच विरोधी वातावरण में अनेक प्रकार की विपत्तियाँ सामने आयी, जिसमें नृत्य, संगीत और अभिनय शून्यता की ओर गतिमान हुए।

वर्तमान काल में नृत्य संगीत और अभिनय के प्रति वातावरण, आकर्षण और जनप्रियता बहुत अधिक है। इस प्रकार के अनुकूल समय में प्राचीन संस्कृत नृत्य-नाट्य एवं आधुनिक लोक नृत्य-नाट्य का साहित्यिक, सैद्धान्तिक तथा प्रायोगिक तुलनात्मक अध्ययन सम्यक् रूप से सम्भव है। प्राचीन नृत्य-नाट्य से सम्बन्धित विषयवस्तु भरत नाट्यशास्त्रादि ग्रन्थों में पर्याप्त मात्रा में है और इतनी शास्त्रीय-साहित्यिक सामग्री विश्व में अन्यत्र अन्य भाषाओं एवं साहित्यों में दुर्लभ है। संगीत के अनेक ग्रन्थों में भी इस सम्बन्ध की सामग्री समुपलब्ध है, वहाँ से निकालकर प्रस्तुत करना एक विशेष कार्य है और फिर उस सामग्री से वर्तमान काल में उपलब्ध सैद्धान्तिक और प्रायोगिक सामग्री का तुलनात्मक अध्ययन एवं प्रस्तुतीकरण संभाव्य है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन काल के भास, भरत, कोहल, कालिदास, आनन्दवर्धन, अभिवनगुप्त, धनञ्जय, धनिक, भोज, शारदातनय, हेमचन्द्र, गुणचन्द्र, सागरनन्दी, सारङ्गदेव, कुम्भ, विप्रदास इत्यादि ने बहुत विस्तार से इस विषय पर प्रकाश डाला है।

❖

MS-82

अभिराज राजेन्द्र प्रणीत वामनावतरणम् : एक साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अनुशीलन

कु. अनीता चौहान, मैनपुरी

संस्कृत वाङ्मय की अक्षुण्ण धरोहर की समृद्धि एवं उसके सतत उन्नयन में समर्पित स्वनामधन्य अनेक कवि-विद्वान् आज भी उसी निष्ठा से संस्कृत समाराधना में स्वान्तः सुख का अनुभव करते हुये विविध साहित्य का सृजन कर रहे हैं।

कन्द कदम्ब का कमनीय रूप किस कायिक को आकर्षित नहीं करता, त्रिशूलपाणि का नीलकण्ठ और विष्णु का शतदल कुवलय किसको जीवन प्रदान नहीं करता? इसी भाँति कविहृदय कपाट खोलकर विचारों का, उद्गारों का, संस्कारों का भण्डार भर देता है अपने काव्य में, तो क्या ऐसा शब्द संसार सृजक वंद्य नहीं। फिर शब्द ब्राह्मणों के अधिपति, काव्यनीलमणि 'अभिराज' राजेन्द्र मिश्र को भला कौन नहीं जानता?

श्रीमद्भागवतमहापुराण के 'बलि-वामन' कथा प्रसंग के आधार पर 'वामनावतरणम्' महाकाव्य के रूप में कवि ने अपनी चिर-अभिलाषा पूर्ण की है और इसके पौराणिक वृत्त के अपने नैसर्गिक कवित्व अनहंकृत वैदुष्यपूर्ण सूक्ष्मदृष्टि से एवं भव्यनव्य कल्पना द्वारा साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं लोकतान्त्रिक परिप्रेक्ष्य में अपूर्व प्रासंगिकता प्रदान की है।

मिश्र जी कृत 'वामनावतरणम्' महाकाव्य की कथावस्तु सत्तरह सर्गों में निबद्ध है। संक्षेप में कथावस्तु इस प्रकार है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में विद्या की अधिष्ठात्री माँ सरस्वती का स्तवन व पूर्व कवियों की वन्दना है। तत्पश्चात् मूलकथा प्रारम्भ होती है। विरोचन पुत्र बलि त्रैलोक्य साम्राज्य एवं ऐश्वर्य का अधिपति है। वह अमरावती को ग्रहण करने के उद्देश्य से उस पर आक्रमण करके इन्द्रादि देवताओं को परास्त कर उस पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लेता है। इन्द्र को ऐश्वर्यच्युत होकर पुत्र दशा से सन्तप्त माँ अदिति पति कश्यप के निर्देश पर पयोव्रत धारण करती है। जिससे प्रसन्न होकर भगवान् त्रिविक्रम स्वयं उनका पुत्र बनकर जन्म लेने का वरदान उन्हें देते हैं। तदुपरान्त षष्ठ सर्ग में वामनावतरण होता है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MS-83

बींसवीं सदी के संस्कृतवाङ्मय में मानव-प्रकृति

प्रो. राजेन्द्र कुमार ए. चोटलिया, गुजरात

अर्वाचीन संस्कृत वाङ्मय को यदि तीन विभाग में विभक्त किया जाय, तो तीसरा विभाग समृद्धिकाल कहलाता है। यह सम्प्रति काल जो स्वतन्त्रता-प्राप्ति से शुरू हुआ, वह बींसवीं सदी के संस्कृत वाङ्मय का सुवर्णयुग बन गया। संस्कृत वाङ्मय के लिए यह घटना अमृतवर्षा के समान है।

विशेषतः नाट्य में मानव प्रकृति के जटिल विपर्यास को समाजशास्त्रीय मनोविज्ञान के परिप्रेक्ष्य में सन्दर्भित करने का है।

मानव प्रकृति का निरूपण इस प्रकार किया गया है।

1. भौतिकता के प्रति गतानुगतिक आकर्षण और प्रतिस्पर्धिता।
2. पाश्चात्य सभ्यता का मोह, भारतीय सभ्यता तिरस्कार।
3. अनैतिक अर्थोपार्जनं रिश्वतखोरी और व्यभिचारिता।
4. धार्मिक कट्टरवाद प्रेरित राजनैतिक भ्रष्टता।
5. धनिकों की कृष्णता और भिक्षुकों की विचारहीनता।
6. सामाजिक कुरीतियाँ और पारिवारिक विसंगतियाँ।
7. व्यवसायी जनों की संवेदनहीनता और शिक्षितों की बेरोजगारी।

❖

MS-84

अर्वाचीन लघु कथाओं का स्वरूप एवं वैशिष्ट्य

श्रीमती माला प्यासी, जबलपुर

प्राचीन लक्षणकारों ने लघुकथा जैसी किसी भी विद्या की चर्चा नहीं की है, केवल अग्निपुराण में ही कथालक्षण के प्रसङ्ग में कथाचित्र नाम के एक ऐसे भेद के लक्षण मिलते हैं, जिसमें अर्वाचीन लघुकथा के स्वरूप के दर्शन होते हैं। आधुनिक आचार्यों ने भी इसके लक्षण बताए हैं।

लघुकथा का कलेवर बृहद् नहीं होता, तब भी अपने रूप और शिल्प से यह सबका मन मोहती है। इसमें व्यक्त और समाज के बहुपक्षीय चित्रण के माध्यम से जीवन की आलोचना ने प्रमुख स्थान पाया है। इसमें नये युगबोध के प्रति गहरी आसक्ति है। जड़ मान्यताओं के प्रति विद्रोह के साथ नयें मूल्यों की स्थापना है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MS-85

वासुदेवानन्द सरस्वती के 'शिक्षात्रयम्' ग्रन्थ की प्रतिपादन शैली की विशेषताएँ

प्रो. वीणा भानु, नागपुर

पूज्यपाद वासुदेवानन्द सरस्वती दत्तसंप्रदाय के एक अग्रगण्य यति थे। उनके द्वारा रचित कृतियों के कतिपय संस्कृत तथा मराठी ग्रन्थ हैं, जिनके आलोक से आधुनिक काल के संस्कृत साहित्य का एक स्वर्णिम अध्याय लोगों के सम्मुख प्रकाशित हो सकता है।

वासुदेवानन्द सरस्वती जी एक ग्रन्थ है 'शिक्षात्रयम्' जिसके तीन विभाग हैं—कुमारशिक्षा, युवशिक्षा, वृद्धशिक्षा। इन तीनों विभागों में वेदान्त का प्रतिपादन अत्यन्त सरल तथा प्रवाही संस्कृत भाषा में किया गया है। इसका अध्ययन करने पर ग्रन्थकाल की प्रतिपादन शैली कतिपय विशेषताएँ मुखरित होती हैं; जिनके कारण प्रतिपादन का प्रभार बढ़ा है। उन्हीं विशेषताओं को विद्वानों के सम्मुख उपस्थापित करने का प्रयास प्रस्तुत शोधनिबन्ध का विषय है।

❖

MS-86

पं. केदारनाथ शास्त्री और उनकी कृति–'तौषीशतकम्'

डॉ. सत्यपाल श्रीवत्स, जम्मू

पं. केदारनाथ शास्त्री जम्मू के गण-मान्य व्यक्तियों में अन्यतम थे। उनका जन्म पं. रघुनाथ शास्त्री के घर सन् 1893 ई. में हुआ था। जम्मू के श्री रघुनाथ संस्कृत महाविद्यालय में अध्ययन करके शास्त्री परीक्षा और प्रिन्स ऑफ वेल्स कॉलेज में अध्ययन करके बी.ए. परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। तदुपरान्त लाहौर में जाकर एम.ए. (संस्कृत) पञ्जाब विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण किये। इसके बाद मास्टर ऑफ ओरियण्टल लिटरेचर की परीक्षा भी पञ्जाब विश्वविद्यालय से ही उत्तीर्ण की।

सन् 1921 ई. में भारत सरकार के पुरातत्त्व विभाग में सहायक अधिकारी नियुक्त हुए। इनके नेतृत्व में हड़प्पा,नालन्दा आदि कई पुरातत्त्व महत्त्व के स्थानों में सफल उत्खनन कार्यक्रम सम्पन्न हुए। पुरातत्त्व विभाग में ही कार्य करते हुए सहायक निदेशक पद तक पहुँचकर सेवामुक्त हुए।

इन्होंने पुरातत्त्व सम्बन्धित अनेक विषयों पर 100 से भी अधिक लेख अंग्रेजी, हिन्दी और डोगरी भाषाओं में लिखे, जो विभिन्न पत्रिकाओं में छपे।

इनकी 10 रचनाओं में (The light of indus civiligation) तथा सिन्धु सभ्यता का आदि केन्द्र हड़प्पा आदि महत्त्वपूर्ण हैं। इनकी दो संस्कृत में काव्य रचनाएँ हैं—(1) तौषीशतकम् (2) भारत-विजयम् (यह भारतविजयम् अप्रकाशित है)। इन्होंने कई संस्कृत-ग्रन्थों के डोगरी भाषा में अनुवाद भी किये हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तोषीशतकम्' जम्मू नगर के समीप बहने वाली तवी नदी, जिसके पुराणों में सूर्यपुत्री, तापसी, तौषी आदि अनेक नाम हैं। कवि ने इस नदी की प्रशंसा में मंगलाचरण को मिलाकर 101 श्लोक रचकर उनके साथ-साथ अंग्रेजी और हिन्दी में अनुवाद करके पाठकों के लिए इन्हें समझना आसान कर दिया है।

नदी की प्रशंसा में कवि अपनी भावना कैसे व्यक्त करता है, यह श्लोक द्रष्टव्य है—

मातस्तौषि नगाधिराजतनये पापौघसन्तारिके!
तारं तारमभिष्टुते बहुविधं देवर्षिविद्याधरैः।
भ्रामं भ्राममसङ्ख्यपर्वततटीं प्राप्तां पुरीं जाम्बवीं,
देवि त्वां तपनात्मजामनुदिनं साष्टाङ्गपातं भजे॥

इस कृति में सभी श्लोक शार्दूलविक्रीडित छन्द में हैं।

❖

MS-87

शतककाव्य-परम्परा में नये दृष्टिकोण से लिखी गई कृति–'मृत्युशतकम्'

प्रो. सी.बी. बालस, गुजरात

आधुनिक संस्कृत साहित्य में डॉ. हर्षदेव माधव एक ऐसे हस्ताक्षर हैं, जिन्हें अब कोई परिचय की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि डॉ. माधव एक 'प्रयोगधर्मी', 'युगद्रष्टा', 'नव्यशैली के प्रवर्तक', 'क्रान्तिकारी', विश्व कविता के प्रवाहों को संस्कृत में प्रवाहित करने वाले सशक्त अङ्गुल्यग्रगण्य एवम् एक 'महिमा-मण्डित' स्थान पाने वाले बीसवीं सदी के प्रतिनिधि 'विलक्षण' कवि हैं।

असंख्य परिवर्तनों के साथ हम एकविंशवीं शताब्दी में आगे बढ़ रहे हैं। अनेक उतार-चढाव के बावजूद भी संस्कृत कविता अपार सम्भावनाओं के साथ आगे की ओर कदम बढ़ा रही है। इन्हीं अपार संभावनाओं को मूर्तरूप प्रदान करने में जी-जान से लगे हुए कवियों में डॉ. हर्षदेव एक प्रयोगशील कवि के रूप में उभर कर सामने आये हैं।

शतक-काव्य संस्कृतसाहित्य का एक विशेष विभाग है। भर्तृहरि, अमरुक, मयूर आदि जैसे श्रेष्ठ प्राचीन कवियों की कीर्ति उनके ख्यात शतक-काव्यों के ऊपर निर्भर है। उसी परम्परा को अनुसरण करते हुए अनेक कवियों ने आज तक कई शतककाव्य लिखे हैं। अर्वाचीन समय में भी अनेक विषय पर शतक-काव्य लिखकर संस्कृत-साहित्य के इस परम्परागत साहित्य प्रकार को आज पर्यन्त जीवन्त रखा गया है।

डॉ. हर्षदेव के 'मृत्युशतकम्' काव्यसंग्रह का शीर्षक भी उसको शतक-काव्य-परम्परा में लिखे हुए ग्रन्थ की कोटि में रख देता है। किन्तु ऐसा नहीं है। साहित्य के समस्त काव्यस्वरूपों में नवीनता के आग्रही कवि हर्षदेव शतककाव्य में भी नवीनता लेकर आये हैं। कवि ने अछान्दस शतककाव्य लिखने की नयी परम्परा संस्कृत में शुरू की है। इस प्रकार 'मृत्युशतकम्' एक विशिष्ट प्रकार का शतककाव्य है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस शोधपत्र में मैंने 'मृत्युशतकम्' काव्यसंग्रह की समीक्षा इसी दृष्टिकोण से की है। हर्षदेव ने इस काव्यसंग्रह से संस्कृत-भाषा की आधुनिक कविता की धड़कन में एक नयी जान डालने की सफल कोशिश की है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने सही कहा है कि लीक को छोड़कर अपने ढंग से अलग ही राह पकड़ने वाले नये कवियों में हर्षदेव माधव सर्वाधिक अपारम्परिक कवि हैं।

❖

MS-88

वनमालिदासकृत श्रीहरिप्रेष्ठ महाकाव्य में प्रकृति-चित्रण

डॉ. अनुराधा शर्मा

प्राचीन काल से ही अनेक कविसूर्य निज सामर्थ्यपूर्ण लेखनी से अपनी अप्रतिम कल्पना को अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए लोकानुरञ्जन एवं सुरभारती की आराधना करते रहे। इस प्रकार वे अपने कृतित्व में ही व्यक्तित्व को आरोपित करके रूपकत्व प्रदान करते हुए प्रायः स्वविषयक जानकारी उपलब्ध कराने के सन्दर्भ में उदासीन ही रहे। परन्तु संस्कृत महाकवियों की इस श्रेणी में महाकवि वनमालीदास ऐसे कवि हुए हैं, जिन्होंने अपनी जीवनविषयक समग्र जानकारी स्वयं वर्णित की है।

महाकवि वनमालीदास का जन्म पूर्व-पंजाब प्रदेश (वर्तमान हरियाणा) में विक्रम संवत् 1975 में जिला हिसार के अन्तर्गत 'वास' नामक ग्राम में गौड़ ब्राह्मण कुल में हुआ।

वनमालीदास असाधारण प्रतिभा के सिद्ध-कवि थे। उन्होंने अनेक महाकाव्यों, शतकों, प्रशस्तिपत्रों आदि की रचना की। उनकी समस्त रचनाओं में काव्यशास्त्रगत लक्षण व कसौटियाँ पूर्णतया खरी उतरती हैं। महाकवि वनमालीदास ने 'श्रीहरिप्रेष्ठ महाकाव्य' लिखा, जिसमें उन्होंने एक भक्तप्रवर कवि के गुरुभाई रामहरिदास का महनीय चरित्र वर्णित किया।

प्रकृति-चित्रण के सिद्धहस्त कवि महाकवि वनमालीदास ने अपने वर्णन-नैपुण्य का अद्भुत परिचय दिया है। उन्होंने ऋतुवर्णन, सूर्योदय-वर्णन, सन्ध्या-वर्णन, रात्रिवर्णन, सूर्यास्त-वर्णन, वर्षा-ऋतु-वर्णन, श्रीयमुना-वर्णन, पर्वत-वर्णन, वृन्दावन-वर्णन, नगरवर्णन, तीर्थ-वर्णन आदि से अपूर्व प्रतिभा को प्रदर्शित किया है। शरद-ऋतु-वर्णन में महाकवि वनमालीदास पर 'भट्टिकाव्य' का स्पष्ट प्रभाव प्रतीत होता है, जबकि सन्ध्या-वर्णन में महाकवि माघ से प्रभावित हुए प्रतीत होते हैं।

प्रस्तुत शोध-निबन्ध में महाकवि के इन्हीं पक्षों पर विशद प्रकाश डाला गया है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MS-89

डॉ. परमानन्द शास्त्री और उनके ललित निबन्ध

कु. अम्बिका शर्मा, आगरा

साहित्य का आधुनिक काल अनेक दृष्टियों से विशेष महत्त्वपूर्ण है। इस काल में पद्य और गद्य दोनों विधाओं की प्रतिष्ठा हुई। विभिन्न गद्य-शैलियों का समुचित विकास हुआ। विधाओं की विविधता और नवीनता आधुनिक साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता कही जा सकती है। आधुनिक युग में साहित्य शब्द काव्य, नाटक, कहानी, उपन्यास और तत्सम्बन्धी आलोचना का द्योतक है। इन सबमें निबन्ध गद्य की चिन्तनप्रधान धारा है, जिसमें ललित निबन्ध आधुनिक साहित्य में अपना एक विशेष महत्त्व बना रहा है।

ललित निबन्धों में कमनीय, सौन्दर्य तथा लालित्य (सौन्दर्यनिष्ठ) तत्त्व की प्रधानता रहती है। इन निबन्धों में जहाँ एक ओर संस्कृत के साहित्य-वैभव का उज्ज्वल आलोक दिखाई देता है, वहाँ दूसरी ओर लोक-जीवन एवं लोक-संस्कृति की चाँदनी भी छिटकती हुई दृष्टिगोचर होती है। ललित निबन्धों में भाषा और शैली का लालित्य भी पद-पद पर झलकता है।

प्रभावोत्पादक विचार-परम्परा, हृदय का माधुर्य, भाषा का लावण्य और शैली की रोचकता ललित निबन्ध के प्रमुख लक्षण हैं।

आज संस्कृत-साहित्य में अनेक ऐसे निबन्धकार हैं, जिन्होंने ललित निबन्धों की रचना की है। डॉ. परमानन्द शास्त्री जी इन्हीं निबन्धकारों में एक हैं, जो आज भी इस विधा को पूर्णता देने में लगे हुए हैं। शास्त्री जी ने अनेकों निबन्धों की रचना की है, जो विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं।

शास्त्री जी अपने निबन्धों में विषय के हल्के संस्पर्श से अवान्तर विषयों, प्रसंगों पर होते हुए, अपने विपुल ज्ञान, अगाध पाण्डित्य एवं व्यापक अनुभव को अत्यन्त सहजता से समाहित करते हुए, पाठक के साथ आत्मीयता स्थापित कर सम्मोहित करते हुए अपने प्रवाह में बहाते हुए ले चलते हैं। शास्त्री जी अपने निबन्धों में किसी भी हल्की-फुल्की बात को लेकर चलते हैं और उसके सहारे अपने अगाध पाण्डित्य का प्रदर्शन करते हुए हास्य के छींटों से गुदगुदाते तथा व्यङ्ग्यों से चुटकियाँ लेते हुए मनोरम वातावरण की सृष्टि करते हैं। बीच-बीच में अपने अनुभवों, लोकथाओं, लोक-संस्कृति, शास्त्रीयता आदि से आत्मीयता, प्रामाणिकता, रोचकता, सरसता और आकर्षण का समावेश करके पाठकों को वशीभूत किए रहते हैं। वह ज्ञान-विज्ञान, जीवन, प्रकृति आदि क्षेत्रों में मुक्त विचरण करते हुए ललित निबन्ध की सृष्टि करते हैं। वस्तुतः निबन्ध, निबन्धकार के रागात्मक व्यक्तित्व की स्वच्छन्द एवं कलानिष्ठ अभिव्यक्ति है, जो परमानन्द शास्त्री जी के ललित निबन्धों में सहज रूप में दृष्टिगोचर होती है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MS-90

संस्कृत का पंजाबी पर प्रभाव : मुहावरे तथा लोकोक्तियाँ

डॉ. राजेन्द्र कुमार शर्मा, होशियारपुर

संस्कृत और पंजाबी का सम्बन्ध बहुत प्राचीन है तथा किसी भाषा में अन्य भाषाओं के थोड़े बहुत शब्द आदि के आने से मूल भाषा का ढाँचा परिवर्तित नहीं होता। वर्तमान पंजाबी भाषा का भी ढाँचा तथा स्वरूप थोड़े परिवर्तन के साथ प्राचीन संस्कृत वाला ही है। यह उसी भू-प्रदेश की भाषा है, जहाँ ऋषियों द्वारा उच्चारण किए गए पवित्र वेद-मंत्र आकाश में गूँजते रहे हैं। जहाँ संस्कृत ने अनेक प्रकार से पंजाबी को माँ की तरह पाला-पोसा है, वहाँ अपने भावों को अभिव्यक्त तथा सशक्त बनाने के लिए वर्तमान पंजाबी का वही तौर-तरीका है, जो संस्कृत का है। इसी तथ्य को पुष्ट करने वाले संस्कृत/पंजाबी के मुहावरे-लोकोक्तियाँ आदि हैं, जिनके परिशीलन तथा सर्वेक्षण से यह सिद्ध हो जाता है कि पंजाब की पुरानी जन-साधारण की भाषा संस्कृत ही थी। प्रस्तुत शोधपत्र में कुछ रोचक पंजाबी के मुहावरों आदि की तुलना सूक्ष्म दृष्टि से संस्कृत के शब्दकोष तथा वाक्यविन्यास से की गई है, जिससे यह पुष्ट होता है कि पंजाबी दूसरी भाषाओं की अपेक्षा संस्कृत के कितनी समीप है।

❖

MS-91

ऐतिहासिक महाकाव्यों की परम्परा में क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य

डॉ. आर.आर. मलिक, हरियाणा

इतिहास लेखन की परम्परा भारतवर्ष में अति प्राचीनकाल से रही है। किन्तु लौकिक साहित्य में ऐतिहासिक महाकाव्यों की परम्परा एकादश शताब्दी से ही प्रारम्भ होती है। ऐतिहासिक महाकाव्यों से तात्पर्य केवल उन महाकाव्यों से है, जिनका इतिवृत्त इतिहास से गृहीत है और जिनमें रसौचित्य की दृष्टि से अलंकृत शैली में विविध वर्णन, काव्य-रूढ़ियों का निर्वाह, पात्रों की मनोदशा आदि का रागात्मक चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

प्रमुख ऐतिहासिक महाकाव्यों की परम्परा में पं. उमाशंकर त्रिपाठी रचित "क्षत्रपतिचरितम् महाकाव्य" एक अतिमहत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक महाकाव्य है। इस परम्परा में नवसाहसांकचरित, विक्रमांकदेवचरित, राजतंरगिणी, सोमपालविलास तथा कुमारपालचरित, पृथ्वीराजविजय, हम्मीर-महाकाव्य, सुर्जनचरित, ईश्वरविलास-महाकाव्य, रघुनाथाभ्युदय-महाकाव्य, साहित्य-रत्नाकर, दिव्यश्रव्या-महाकाव्य, कीर्तिकौमुदी, वसन्तविलास, मथुराविजय-महाकाव्य आदि प्रमुख हैं।

इसके उपरान्त आधुनिककाल में संस्कृत में ऐतिहासिक महाकाव्यों का रचनाक्रम जारी रहा है। दक्षिण-भारत में भी अनेक ऐतिहासिक महाकाव्यों की रचना हुई है। कवि श्यामभट्ट भारद्वाज ने 17 सर्गों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में चालुक्यवंशीय नरेशों का वर्णन करते हुए 'चालुक्यराजवंशचरित' नामक महाकाव्य की रचना की है। इसी परम्परा में 'श्रीरामवर्ममहाराजचरितम्' महाकाव्य, 'अजितोदयकाव्यम्', 'महिपालचरितम्' इत्यादि अनेक महाकाव्यों की रचना हुई, जो ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

इसी क्रम में जैनाचार्य ज्ञानसागर विरचित जयोदय-महाकाव्य इसी शती का उत्कृष्ट संस्कृत महाकाव्य है। दूर के अन्यान्य कवियों द्वारा 19 वीं तथा 20 वीं शताब्दी में भी महाकाव्य लेखन की परम्परा अबाध गति से जारी रही। 'चन्द्रशेखरचरितम्', 'दयानन्ददिग्विजयम्' 'श्रीरामदासचरितम्', 'सुलतानचरित', 'गुरुगोविन्दसिंहचरित', 'श्रीनेहरूचरित', 'तिलकयशोवर्णन', शिवराज्योदय', 'आंग्ल-साम्राज्य' आदि अनेक महाकाव्यों की रचना हुई। इसी आधुनिककाल में पं. उमाशंकर त्रिपाठी द्वारा रचित "क्षत्रपतिचरित' महाकाव्य एक महत्त्वपूर्ण कृति है। शिवाजी के जीवन पर आधारित इस महाकाव्य की ऐतिहासिकता अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं; यद्यपि शिवाजी के जीवन पर आधारित अनेक महाकाव्य उपलब्ध हैं। परन्तु 'क्षत्रपतिचरित' महाकाव्य में रचनाकार ने ऐतिहासिक तथ्यों पर बहुत अधिक ध्यान दिया है।

❖

MS-92

डॉ. रसिकविहारी की कृतियों में राधा

डॉ. मधुबाला, हरियाणा

डॉ. रसिकविहारी जोशी संस्कृत-भारती के मधुर कवि होने के साथ ही साथ भक्त कवि भी हैं। उनकी दो रचनाएँ 'राधापञ्चशती' और 'करुणाक़टाक्षलहरी' राधाविषयक भक्ति-काव्य हैं। दोनों कृतियाँ भगवती राधा के स्वरूप, ध्यानविधि, मधुरा-भक्ति, नवधाभक्ति तथा रसमयी उपासना का अनुपम भंडार हैं।

श्रीराधा हरिप्रिया, हरिसखि, वृन्दावन-अधीश्वरी, रासेश्वरी, कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति और जगज्जननी हैं।

राधातत्त्व प्राचीन है, किन्तु कवि की नूतन कल्पनाओं द्वारा नवीभूत हो गया है। विषय-वर्णन में पूर्ववर्ती आचार्यों के विचारों का प्रभाव पदे पदे लक्षित हुआ है। कवि चैतन्यमत से अधिक प्रभावित प्रतीत होते हैं। चैतन्यमत का अनुसरण करते हुए ही कवि ने कृष्ण की शक्तिरूपा राधा की उपासना-विधि का वर्णन अपने काव्यों में किया है। श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदनरूप नवधाभक्ति भी कवि की कृतियों में परिस्फुट हुई है। निम्बार्की और राधावल्लभी आचार्यों की विचारधारा के अनुरूप विचारों के भी दर्शन होते हैं। कविरचित प्रत्येक 'पद राधाभक्ति से ओत-प्रोत है। वस्तुतः यह स्तोत्रकाव्य है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MS-93

संस्कृत की अनिवार्यता : विश्व मानवता के लिए

श्री सच्चिदानन्द पाठक, बिहार

संस्कृत सिर्फ भाषा नहीं, यह सारस्वत चिन्तन की परिष्कृत पद्धति है। न केवल मानव, अपितु समस्त प्राणियों के बीच सात्त्विक समन्वय का सोपान है। विश्व की 2896 भाषाओं में यह गरीयसी है। इसकी सर्वश्रेष्ठता के मूल में इसका भावपक्ष जितना मजबूत है, उतना ही कलापक्ष भी। साहित्य जितना अर्थवान् संस्कृत में है, शायद अन्य भाषाओं में वह नहीं। विश्वमानवता के लिए संवेदनशीलता, कर्तव्यपरायणता, नैतिकता, परदुःखकातरता इत्यादि मानवीय गुणों के अनुरक्षण, संवर्द्धन एवं क्रियान्वयन की भावना देववाणी में ही है। विभिन्न प्रदूषणों से विद्रूप आज का ब्रह्माण्ड कर्णकटु कोलाहलों से त्रस्त है। मानवता कराह रही है। हत्या, अपहरण, बलात्कार, प्रज्ञापराध के परिणाम हैं। भाषण की भाषा संस्कृत नहीं, कुसंस्कृत हो चली है। चिन्तन हिंसक हो चला है। सम्पत्ति के सामने सम्बन्ध गौण हो चला है। भावना के बदले भवन की ऊँचाई बढ़ती जा रही है। महापुरुषों के पदचिह्नों का अनुसरण न करके अत्याधुनिक वाहनों के चक्रचिह्नों का अनुकरण किया जा रहा है। संक्रमणकाल की इस त्रासदी से कोई त्राण दिला सकती है, तो वह है प्रेम का पयस्विनी संस्कृत-भाषा, जिसके वात्सल्यपूर्ण आँचल में ममत्वं का दूध है। आवश्यकता है, इसे जन-जन तक पहुँचाने की।

❖

MS-94

अर्वाचीन संस्कृतकविता में लोकसंवेदना

डॉ. राजेश कुमारी मिश्र, वाराणसी

प्राचीनकाल से ही संस्कृत वाङ्मय में मानवीय संवेदनाओं के दर्शन होते आये हैं। इन लोक-संवेदनाओं से वेदमन्त्र भी अछूते नहीं हैं। अथर्ववेद का पृथ्वीसूक्त इसका श्रेष्ठतम निंदर्शन है, जिसमें पृथ्वी को जीवन्त ममतामयी माँ के रूप में देखा गया है। "माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः" अर्थात् पृथ्वी मेरी माँ है और मैं उसका बेटा हूँ। यह उद्घोषणा सर्वप्रथम अथर्ववेद में ही देखने को मिलती है। इसी प्रकार की अनेक भावनायें परिपुष्ट होकर रामायण, महाभारत एवं पुराणों में मिलती हैं। रामायण के लंकाकाण्ड में लक्ष्मण के प्रति कही गयी राम की एक उक्ति जन्मभूमि-प्रेम का एक चिरन्तन आदर्श बन गई है—

अपि स्वर्णमयी लङ्का न मे लक्ष्मण रोचते।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोक-संवेदनाओं के इसी परिपाक को अर्वाचीन संस्कृत-कवियों ने अपनी कविताओं में बड़ी उत्कृष्टता एवं गम्भीरता से उभारा है। कवियों की इस शृंखला में आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री, आचार्य बच्चूलाल अवस्थी, प्रो. श्रीनिवास रथ, प्रो. हरिराम आचार्य, प्रो. राजेन्द्र मिश्र, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, डॉ. रमाकान्त शुक्ल, डॉ. इच्छाराम द्विवेदी, डॉ. हरिदत्त शर्मा, डॉ. जनार्दन पाण्डेय (मणि) आदि रचनाकारों ने वैविध्यपूर्ण लोक-संवेदनाओं का वर्णन किया है। ये संवेदनायें जीवन की विसंगतियों, सामाजिक समस्याओं, विश्वमानवता, विश्वकल्याण की कामना, अन्तर्राष्ट्रीय सौहार्द्र, साम्प्रदायिक कलह, जातीय विद्वेष, धर्म के नाम पर रक्तपात, हिंसा का ताण्डव, मर्मान्तक पीड़ा, निर्मम शोषण, अन्तस्तल के द्वन्द्व, परवशता, विरह, रोमाञ्च, मानसिक क्लेश, राष्ट्रप्रेम, मानसिक द्वन्द्वात्मक स्थिति एवं विसंगतियों तथा सामाजिक समस्याओं के रूप में उभर कर सामने आती हैं।

इस प्रकार 21वीं शती के समस्त कविगण राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक पक्ष को लेकर वर्तमान भारतीय समाज का मूल्याङ्कन करने में दत्तचित हैं। इन्हीं संवादी और विसंवादी गतिविधियों के बीच भारत राष्ट्र उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रहा है, जैसा कि प्रो. राजेन्द्र मिश्र ने संकेत किया है—

नित्योत्थापितविश्वशान्तियत्नैर्माङ्गल्यमूलैर्नवै-
र्नित्योद्घोषितराष्ट्ररक्षणपरैर्भव्यैर्विधानोच्चयैः।

चञ्चत्प्राणमयं हृषीकनिचयैर्युक्तं वपुर्धारयद्
मन्ये क्षेमकरे पथि प्रतिदिनं राष्ट्रं पुरो गच्छति॥

❖

MS-95

संस्कृत-साहित्य में मैथिल-कोकिल महाकवि विद्यापति का अवदान

श्री शिशिर कुमार झा, बिहार

मैथिल-कोकिल महाकवि विद्यापति ठाकुर मिथिला क्षेत्र के मधुबनी जिला में "बिसैबार विस्फी" मूल ग्राम के बीजो महापुरुष श्री विष्णुठाकुर के वंश में जन्म लिये। इनका वंश धर्मशास्त्र, राजनीति-शास्त्र, सांख्य-दर्शन आदि संस्कृत वाङ्मय के लिए कार्य करता रहा।

मैथिल-कोकिल संस्कृत के अतिरिक्त मैथिली में भी रचना किये थे। संस्कृत-भाषा में इनकी दस रचनाएँ है, जिनमें "पुरुष-परीक्षा" अत्यन्त सुप्रसिद्ध है।

पुरुष-परीक्षा पुस्तक की प्रस्तावना में नीति की बात का वर्णन करते हुए वे कहते हैं कि विद्वान् व्यक्तियों को भी इच्छित कर्तव्य कर्म के उपस्थित होने पर अकेले निर्णय नहीं लेना चाहिए; क्योंकि दोष, गुण और भ्रम पढ़े-लिखे लोगों में भी हो जाते हैं। अतः श्रेष्ठजनों से अवश्य विचार कर लेना चाहिए।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MS-96

रमाशंकर अवस्थी विरचित "आहुतिः स्वातन्त्र्यज्ञे" महाकाव्य

सुश्री नलिनी, कानपुर

आधुनिक संस्कृत साहित्य में "आहुतिः स्वातन्त्र्यज्ञे" महाकाव्य एक राष्ट्रिय-भावनाप्रधान महाकाव्य है। इस महाकाव्य के लेखक रमाशंकर अवस्थी ने इस महाकाव्य को सर्वथा नवीन शैली में निबद्ध किया है। प्राचीन संस्कृत-साहित्य-शास्त्रीय नियमावली से मुक्त इस काव्य में सर्गों के स्थान पर 8 स्कन्धों में कथानक को विभक्त किया गया है, जिसमें भारतीय स्वातन्त्र्य समर का वर्णन किया गया है। इसके आठों स्कन्धों के शीर्षक क्रमशः ये हैं : (1) धिक् स्वार्थवृत्तिम् (2) जीवनमन्धकारोऽभूत् (3) अग्निरवर्धत (4) कर्णपुर-झाँसी-युद्ध-काण्डम् (5) आहुतिर्नानायुगस्य (6) स्वतन्त्रता बलिदानं याचते (7) ओडायर-वधकाण्डम् तथा (8) सुभाषगाँधी-बलिदान-काण्डम्।

इस महाकाव्य में भाषा एवं भावों का समुचित प्रयोग दर्शनीय है। भाषा सहज बोधगम्य एवं सरस व हृदयावर्जक है। उदाहरणार्थ अतीत-गौरव-वर्णनपरक यह पद्य द्रष्टव्य है—

ददौ प्रकाशं जगते उदीर्णो
मे भारतं नाम मरीचिमाली।
मुक्ता ददौ मानसचेतनाश्रीः
सेवारसा त्यागयशा मराली॥

महाकाव्य पढ़कर कवि की प्रतिभा, ऐतिहासिक ज्ञान एवं शास्त्रीय ज्ञान का मणिकाञ्चन-संयोग भी परिलक्षित होता है।

❖

MS-97

'जानकीजीवनम्' महाकाव्य में वर्णित लोकाचार की प्रासङ्गिकता

डॉ. वाचस्पति शुक्ल, प्रतापगढ़

लोकवार्त्ता के तत्त्व साहित्यकार-रचनाशैली के अविभाज्य अंग होने के कारण उसमें अन्तर्निहित होते हैं। इसीलिए डॉ. राजेन्द्र मिश्र विरचित महाकाव्य 'जानकीजीवनम्' में लोकवार्त्ता के महत्त्वपूर्ण अंग लोकाचार को अनुसंधानित करने का प्रयास किया गया है। जानकीजीवनम् में कवि अयोध्या के संसद को लोकमतैकनिष्ठ, लोकानुग और लोकसमिद्धतन्त्र मानते हुए लोकमत की गवेषणा में राजभीति और दैन्यभाव का अपलाप करता है और यह भी कहता है कि "राज्ञोऽधिकारे प्रकृतिर्न बद्धा प्रजाधिकारे नृप एव बद्धः।"

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानकीजीवनम् महाकाव्य में लोकाचार के अन्तर्गत मान्य संस्कार सम्बन्धी रिवाजों का सीता के विवाह के अवसर पर मनोवैज्ञानिक एवं यथार्थ रूप से चित्रण करने में डॉ. मिश्र सफल रहे हैं। धार्मिक परम्पराएँ जैसे लोकोत्सव, पूजा, व्रत, अनुष्ठान, पर्व इत्यादि का वर्णन महाकाव्य के प्रथम सर्ग में जनक के द्वारा स्वर्णरथ में स्वयं वृषभ के रूप में कार्य करने, सीता द्वारा हरतालिका व्रत आदि का आचरण करके भाई की शिखा में यवसूत्र को बाँधने में स्पष्टतः परिलक्षित होती हैं। सामाजिक प्रथाओं के विना भारतीय संस्कृति निष्प्राण रहती है, इसलिए कविवर मिश्र जी ने राम और दशरथ का अभिनन्दन लाजाक्षतादि से कराया और स्त्रियों के द्वारा परछन करने, दशरथ को मिथिला में गाली आदि पाने, सीतादिक, लक्ष्मणादिक का परस्पर हास-परिहास करने के वर्णन द्वारा लोकापेक्षी भारतीय संस्कृति के महत्त्व का प्रतिपादन किया है। डॉ. मिश्र ने महाकाव्य के नवें सर्ग में लोकाचार के आचार-विचार सम्बन्धी नियमों वन्दनवार-निर्माण, बड़ों के अभिनन्दनादि वर्णनों से लोकतत्त्व के महत्त्व को उजागर किया है। कवि मिश्र जी ने महाकाव्य शिशुकाल में सीता का परछाहीं देखकर थिरकना, जलक्रीड़ा, प्रेम के प्रकटीकरण निमित्त सखी को हिरनी एवं स्वयं हिरन बनना, झूला झूलना, कपोतशावकों को तण्डुलदान, मैना को जीवन-जीवन कहने के लिए कहना; लेकिन उसके द्वारा यौवन-यौवन का उच्चारण और पिता आदि के लिए सौहित्य व्यञ्जन का निर्माण आदि करना—ये अनेकानेक प्रसङ्ग हैं, जिनका भावपूर्ण एवं प्रासंगिक विवेचन कवि ने किया है।

इस प्रकार डॉ. मिश्र ने 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य में लोकाचार के विविध पक्षों पर अपनी कल्पना, वर्णन-शैली, भाषा आदि के द्वारा मनोवैज्ञानिक एवं यथार्थ चित्रण करते हए पर्याप्त प्रकाश डाला है। इसमें लोकाचार-वर्णन-वैचित्र्य एवं भंगिमा ही उसकी विविधस्वरूपसम्पन्नता, प्रासंगिकता का व्याख्यान करती है।

❖

MS-98

'सत्यहरिश्चन्द्रोदयम्' एक अध्ययन

डॉ. ज्ञानेन्द्र कुमार मिश्र, सागर (मध्य-प्रदेश)

भारतीय संस्कृति के उन्नायक एवं गायक कविवर डॉ. रामजी उपाध्याय प्रणीत 'सत्यहरिश्चन्द्रोदयम्' सूर्यकुलभूषण महाराज हरिश्चन्द्र और महारानी शैव्या के चरित्र को आधार बनाकर लिखी गई ऐतिहासिक उपन्यासिका है, जिसका उपजीव्य ऐतरेय ब्राह्मण, महाभारत, मार्कण्डेयपुराण, देवीभागवत, चण्डकौशिक, सत्यहरिश्चन्द्र एवं अन्य हरिश्चन्द्रपरक ग्रन्थ रहे हैं। अपनी रचना के प्रणयन का उद्देश्य बतलाते हुए उन्होंने कहा है कि आदिकाल से ही हरिश्चन्द्र के कथानक में हीन कोटि की प्रवृत्तियों का परिमार्जन करने के लिए मैंने प्रस्तुत उपन्यासिका का प्रणयन किया है। वीररसप्रधान इस आख्यायिका में उपन्यासकार डॉ. उपाध्याय ने मुख्य रूप से धर्मविजय के द्वारा विश्व में सत्त्व और सत्य की प्रतिष्ठा की है, जो इस ग्रन्थ का प्रतिपाद्य हैं। सम्पूर्ण ग्रन्थ दो भागों में विभक्त है—पूर्वभाग और उत्तरभाग।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपन्यासिका के प्रथम चरण में नायक सत्यव्रत कुछ शिथिल-सा है, पर शनैः शनैः कालान्तर में वह मूर्तिमान् सत्य बन जाता है। कवि की दृष्टि में हरिश्चन्द्र प्रजानन्दन, सर्वविद्यावदात, ब्रह्मकोषगोप्ता, उदारधी और यशस्वी राजर्षि हैं। दधीचि की कथा श्रवण करने से उसमें जो संग्रह करने की लालसा उत्पन्न होती है। प्रजापालन की सात्त्विक वृत्ति हरिश्चन्द्र को चन्द्रमा के सदृश सुधावर्षी बना देती है। लोकहित करना उसके जीवन का आदर्श है, वह सोचता है कि यदि मेरी सन्तान हुई, तो कैसे सूर्यवंशी राजाओं की अजस्र प्रजापालन-वृत्ति अक्षुण्ण रहेगी। हरिश्चन्द्र केवल सत्यव्रत से ही नहीं, अपने औदार्य से भी अनन्यतम शोभान्वित प्रतीत होता है। विश्वामित्र तो केवल एक लाख की दक्षिणा चाहते थे, पर राजर्षि ने कहा—मेरा साम्राज्य ही ले लें और उससे अपनी कार्यधुरी को सम्यक् संचालित करें। इस प्रकार आपको अक्षय सिद्धि प्राप्त होगी। हरिश्चन्द्र का कर्मयोग प्रशंसनीय है। वह कहता है—पुरुष गौरव से मेरा भावी उपक्रम सफल होगा और अन्त में दुःख सहते हुए भी अपनी सत्ता को सार्थक करता है।

उपन्यासकार की यह मान्यता है कि संसार में जो दुःख सहता है, वह ही पुण्यशाली और महान् होता है, जैसा कि हरिश्चन्द्र ने अपने चरित्र के माध्यम से सिद्ध कर दिखाया है।

❖

MS-99

On Modernity and Contemporaneity in Sanskrit Writings

ARUN RANJAN MISHRA, ORISSA

During last the fifty years, the literary writings in Sanskrit have ostensibly shown a gradual tilt towards modernity, both in style and content. Translations and transcreations of the vernacular literature have also rippled up very much as a modern literary activity. But a vigilant literature can easily take note of the problem of eagerness among many Sanskrit writers for a brand of modernity only on the ground that they use to write in modern times - although their expertise is wonderfully and laudably classical. No doubt, the writers like Bhatta Mathuranath Shastri, Radha Vallabha Tripathy, Keshab Chandra Dash, Harshadev Madhav, Prafulla Kumar Mishra, Banamali Bishwal, Pramod Kumar Nayak and Keshab Chandra Mohapatra, etc. have munificently shown the nuances of modernity in prose and poetry amidst the promiscuity and decrepitude of lingering ornate tastes. But a trend of rich literary criticism is yet to develop so as to critically appreciate all the literary products and modestly differentiate a modern work from the pool of contemporary works.

The present endeavour is to briefly reflect upon the classical and modern tendencies in the contemporary Sanskrit writings without overlooking the fact that the same author could be classical and modern on different occasions for the simple reason that Sanskrit is experiencing a great transition.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MS-100

Dramatist Manik and His Bhairavananda Drama

SMT. NANDA JHA, PURI

The Sanskrit drama 'Bhairavananda' has been written by 'Manik Upadhyaya', a nature of Mithila who lived in the first half of the 15th century A.D. His nick name was Manu Jha and he was the son of Rajavardhan alias Divakar of Karmaha family. He was the most prominent man of letters and renowned dramatist of Mithila and Nepal during the period of King Jayasthitimalla. Another popular drama written by him is Raghavananda or Abhinava Raghavananda. This drama, as its name suggests consists of six acts. At the end of every act of the drama he addresses himself as 'Maithila Kulabhooshana'.

This paper presents an exhaustive list and endeavours to make a critical assessment of his work.

❖

MS-101

Vedic Influence on the Shishupalavadha

SIPRA ROY, TRIPURA

Magha, the great poet treads incase over different branches of ancient Sankrit knowledge and literature. The diversified knowledge of the poet is revealed in his literary epic named 'Shishupālavadha'. His literature is an inexhaustable source of knowledge in the filed of Veda, Vedanga, Dharma, Darshan, Vyākaran, Music, Yoga etc. This epic is the testimony to the poetic genius of the poet in all directions. In my paper, I have tried to show how Māgha was influenced by Vedic literature.

❖

MS-102

Kali Prādurbhāvam

DR. MRS. CHANDRA RAMANI, VARANASI

-Drāmā is a powerful genre, an effective medium and Kaliprādurbhāvam, a paly in 7 Acts is no exception. Sri Y. Mahāliṅga Sastri, the playwright is a versatale scholar and a poet. He was inspired by a story from Mahābhārata narrated to Sri Sastri in brief by his friend. The Tamil translation of the play was published in the 'Silpa Sri' under the Caption

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Kali in Mudal Tava and Sanskrit in Udayana Patrikā. This play unfolds the spirit of the Kali that heralds down as the playwright envisages moral degradation. The story begins on the last day of Dwāpara Yuga. The change is marked by violent winds, fires and other manifestation. Kali declares that in the years to come money will become the breath of life that people finding their strength in union will start fighting against each other and for their self enrichment, Dharma could no longer be seen owing countless delusion. This drāmā is short but impressive. It brings out how the time Spirit affected the Dhārmic outlook of the brahmins the vaisya and the king made them wealth and power minded. The great mastery of the poet over the language is seen through out the Work. The usage of proverbs and popular aphorims also is notable feature of the writing of the poet. The play is original in its concept and neat in its execution. It is incredible that a playright of the 19th century prophesied truth and unfortunately his vision of a value-eroded society has turned out to be the harsh reality.

❖

MS-103

The Keli-Gopāla of Mahāpuruṣa Śaṅkaradeva of Assam : A study

DR. ANUPAMA MAHANTA, ASSAM

The saint, religious leader, social reformer Śaṅkaradeva introduced the Vaiṣṇava Bhakti movement during the Fifteenth and Sixteenth Centuries. He composed six dramas which are called the 'Ankīyā Nāt'. The play 'Keli-Gopāla' is one of these plays. Śaṅkaradeva composed the play 'Keli-Gopāla' taking theme from the 10th book of the Bhāgavata Purāṇa. In the Bhāgavata Purāṇa, book X, Chapters 29-33, the Rāsalīlā of Kṛṣṇa is described. The main theme of the play is Kṛṣṇa's sportive dance and dalliance with the cowherdesses (Gopis). Śaṅkardeva included the legend of the Yakṣa Śankhacūḍa only to enrich the principal theme. At the full moon night of Autumn, Kṛṣṅa enjoyed sports with the Gopis and the fulfilled their desires. In the Rāsa-dance Kṛṣṇa is equally concerned with all the Gopis. Rāsa Kṛiḍā is explained the relationship of the Jivātmā (individual soul) with the Paramātmā (supreme soul). Through the practice of Bhakti, the Jīva can free itself from the afflictions and attain Eternal Bliss (paramānanda). By means of Ekaśaraṇa, complete surrender to Lord Kṛṣṇa, the Gopis attained perfect bliss.

In this play, though sentiments like sambhoga and Vipralambha sṛngāra are depicted. Yet the Śānta rasa is the principal sentiment of this play.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The play may be called a Gītinātya (opera). The gracious style Kauśikī Vṛtti is applicable here. The four components of this play are dance, Gīta, Sūtra or the words of the Sūtradhāra and Bhatimā.

The play is composed in an artificial literary dialect known as Brajāwalī.

This play is performed on the occasion of the Rāsa festival of Assam. It depicts joy and amusement of the people and creats an interest in Hari-Kathā and Bhakti.

In this paper an attempt has been made to discuss the play Keli-Gopāla.

❖

MS-104

Critical Appriciation of Tattvagunadarsha Champu of Bukkapattana Annyyacharya-IV

DR. LAXMIKANT V. MOHRIR, KARNATAKA

The Champu is a tale narrated in mixed prose and verse. Normally we may expect such a form to have mediated the transition form of the metrical Kavya to the prose Kavya. But as a matter of fact, it arose after the prose Kavya. As the latter approached more & more the ornate Kavya and began to incorporate verses. there came a time when the form gave up all pretence of being a prose work with occasional verses and became one in which prose and verse balanced in their proportion.

❖

MS-105

Sanskrti Lyricists of Modern Orissa

MRS. NAMITA PATTANAIK, ORISSA

The tremendous influence and immense popularity of the *Gitagovindam* served as the fountain head of inspiration to the future poets of Orissa. The poetic style and various Rages of *Sri Jayadeva* also brought a remarkable progress in the rhythmic trends of Sanskrit music. The Abhinava Gitagovindam (1400 A.D.) Sangeeta-kalpalatā (1500 A.D.), Gopa-govindam and Gitaprakash (1600 A.D.) Sangita-nārāyanam (1700 A.D.), Sangeeta-chintamani, Gitamukundam (1800 A.D), Bharata-gitika (1900) and many other lyrical books were composed in Orissan soil.

In addition to above lyrical poets Pdt. Somanatha Dash, Pdt. Divakara Dash and Nārāyana Ratha of Puri, Pdt. Sridhara Dash of Rourkela, Prof. Harekrishna Satapathy of

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Kendrāpara, Lokakavi Kaliprasanna Satapathy of Indupur, Dr. Pramoda Chandra Mishra of Haladia, Khordā, Pdt. Gadadhar Dash and Benudhara Parida of Banki Domparā, Dr. Sulokasundara Mahanty of Jhankad, Dr. Pratibhamanjari Ratha of Cuttack city, Dr. Niranjana Pati of Jayapur and Krushnakeshava Sarangi of Badyeswar, Sushree Yogamaya of Nayāgarh have contributed some sweet poems to the lyrical Sanskrit of Orissa.

❖

MS-106

Contribution of Dr. Rajendra Mishra to Modern Sanskrit Liberature

USHA KATARIA, NEW DELHI

Sanskrit literature has very significant place in world literature on account of its vedic literature, classical literature of many forms and formats. Keeping this tradition alive Sanskrit literature composed in twentieth century is especially remarkable for its variety and richness of forms. The rich and varied growth of Sanskrit literature of this period discloses some new trends, which are mainly responsible for the growth and development of modern Sanskrit literature. Dr. Rajendra Mishra's contribution to this field is outstanding. He is master of all forms and formats of literature. From epic to children poetry, short stories, one-act plays, plays, fiction, literary criticism, not only in Sanskrit but in Hindi and Bhojpuri also are authored by Prof. Rajendra Mishra. Dr. Mishra has more than 50 books to his credit, which covers literally all aspects of human life and society.

This paper is an attempt to study his works and philosophy.

❖

MS-107

Concept of Sakti in Sanskrit Literature in the Works of Mahakavi Bhārati

MRS. SITA SUNDAR RAM, CHENNAI

The concept of Sakti can be traced back to pre-Vedic periods. She was the Mother goddess, the female force who played in important role in those cultures. The Vedic sages later assigned specific roles to female deities like Aditi, the Divine Mother, Ushas goddess of dawn and so on. In the Purāṇas we find Sakti both as the benevolent Jagadambā or Mother and as the terrific Kāli. In the Devi Māhātmya of the Mārkandeya Purana the philosophical basis of the Sakti has been fully enunciated. Here She is the source of all divine and cosmic evolution, the embodiment of all the gunas-sattva, rajas and tamas.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Sakti had a special place in Bhārathi's works. According to him, Mother Goddess is the source of all; she is the Universal creation. To him, every woman is Sakti. He likened even our home land to Bhārata Mātā-Sakti.

In this paper I have tried to analyse the concept of Sakti as found in the works of Sanskrit literature and reflected in the works of Mahākavi Bhārathi.

❖

MS-108

Literary Background of Kṛṣṇānand Kavirāj

DR. NABAKISHORA MISHRA, ORISSA

Mahākavi Kṛṣṇānanda is designated as Sandhivignahika and Mahāpātra in the colophen at the end of every sarga (Canto) in SHD. This paper deals with the various aspect of literary back ground of the poet.

❖

MS-109

Svabhāvokti : A Poetic Concept

DR. AMALKUMAR BHATTACHARYA, W. BENGAL

Svabhāvokti, a figure of speech, in not only a poetic figure but a poetic concept and this view is expressed by Rājānaka Kuntaka, the propounder of Vakrokti theory. Sanskrit Rheteoricians have accepted Svabhāvokti as a Alaṃkāra with some different status. Daṇḍin and Bhoja have divided the world of speech respectively in two and three divisions where Svabhāvokti is one. According to Kuntaka, Svbhāvavarṇanā or Natural Description is not Alaṃkāra but Alaṃkārya. So this particular figure deserves mention while an interpretation of the verse like.

'Calāpāngam dṛstim spṛsasi vahuso vepathumaim' of Abhijñānaśakuntalaṃ leads to delight to the connoisseurs. The natural description of a humming Bee becomes identical with the act of the king Duṣyanta who wishes to do the same act what actually is performed by the Bee. Though the Grammarians have laid stress on verbs like-spṛśasi, svanasi and pivasi against the nominative Bee, but the beauty of the stanza is not concealed not only in any mode of expression, but also in the accuracy in respect of the choice of the words to communicate the proper meaning and poetic to the readers. So a true Svabhāvokti can unfold many subtle and none too familiar features of an object which constitutes a good

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

poem. Kuntaka states that the use of plural 'vayaṃ' (we) instead of 'ahaṃ' (I) has given in amusing touch of indifference to lend additional hilarity and charm to the above stated Śakuntala verse. So the concept of Svabhāvokti reigns radiant in the realm of poetic figures, and Kuntaka's concept of Svabhāvokti is found highly appreciable.

❖

MS-110

Kavirāja Giri and his unpublished works

DR. BIBEKANANDA BANERJEE, KOLKATA

Kavirāja Giri is a famous writer in Sanskrit literature. He is also a philosopher. He is mentioned as Kavirarāja and Kavi Sarojānanda Tirth otherwise called Bhikṣu, pupil of Vaikuṇṭha Giri.

The above mentioned Kavirāja Giri has written many important books i.e. Kavirāja Kautuka, Tattvadīpa, Dharmaśāstra Sāroddhāra, Vidvacittaprasādini on Ṣaṭpadistotra and Sāṃkhyatattvapradīpa etc.

Out of these texts Kavirājakautuka and Sāṃkhyatattvapradīpa are still unpublished.

In this paper an attempt has been made to critically examine and discuss the subject matters of these said unpublished works along with the excellence in his writing.

❖

MS-111

Vaidya Haridāsa and his Work Samudramanthana

SUBHRA BANERJEE, HOOGHLY

Baidya Haridāsa is a little known writer in Bengali literature. Samudramanthana is an unpublished work of this Bengali poet. Samudramanthana is a very famous episode, which has been described, in different Sanskrit Purāṇas including the Rāmāyaṇa and the Mahābhārata.

Vaidya Haridāsa has included some new facts in his work, which are not found in traditional Sanskrit literature.

The aim and objective of this paper is to discuss the comparative point of view along with the symbolical and allegorical implication of the said episode.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MS-112

Sanskrit Language after Independence

DR. AMAR SINGH, KURUKSHETRA

Since time immemorial, India is having a very rich and sound tradition of Sanskrit Education. In ancient times there were famous centers of learning like Takshashilā, Nālandā and Vikramshilā, where thousands of students were studying, including from foreign countries. Under the Muslim rule, the study of Sanskrit Language got a severe jolt. The temples of ancient learning were destroyed. In spite of religious onslaught, the tradition of Sanskrit Learning was continuing in towns and villages throug pāthshālās. During the British Rule, Western Education replaced the indigenous education system. The teaching of Sanskrit in schools and Colleges was ignored. In spite of all odds, the Sanskrit language survived by enjoying the patronage of Princely States. The freedom movement created such an environment for the study of Sanskrit Language that the Govt. of India had to set up Higher Education Commission for University Education and another for Secondary School Education to suggest the ways and means for effective promotion and growth of this Language. On the recommendation of these boards, the Government of India introduced various schemes such as establishing Kendriya Vidyapeethas under autonomous organization called Rashtriya Sanskrit Sansthan. It also took several steps for the propagation of Sanskrit Language by sanctioning Central Grants to State Governments, financial assitance to traditional Sanskrit scholars, scholarships to the students, modernization of Sanskrit Pathashalas and honouring Sanskrit scholars by awarding Pesident's Medal.

To support traditional Vedic institutions and promotion of Vedic Studies and research, Maharishi Sandipani Rashtriya Veda Vidya Pratishthan was set up at Ujjain in 1987.

There is no doubt that till 50 years after independecne, the Sanskrit Language had full blessings of Govt. of India but unfortunately during recent days it has been branded as a language of a particular community and its study has been termed as saffronisation. Though it could survive the onslaught of invaders yet in free India now we find it difficult to protect our National Heritage from our own conspirators.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MS-113

Excellence in Modern Sanskrit Poetry

PROF. ABHIRĀJ RĀJENDRA MISHRA, VARANASI

What are the salient features of Modern Sanskrit Poetry? This significant question aught to be answered in a genuine way, so that the lovers of Sanskrit may believe in the vitality and efficacy of the same.

The Modern Sanskrit poetry reflects the modern Indian social trends, political tendencies, literary movements, flora and fauna, with full devotion and dedication and for the same reason its literature seems somewhat different and distinct from the older one.

The Sanskrit poetry of today has expanded its limits. It is not confined to the Indian territory only. In the Tālstāyacharitam (टॉल्सटायचरितम्) Kainedicharitam (कैनेडीचरितम्) Lenincharitam (लेनिनचरतिम्) and Shakatāraḥ (शकटारः) the Sanskrit poets have selected International features of high ideals and reputed characters. The whole world is fully known to each other and therefore, nothing is left behind unknown, unseen, unexperienced or beyond the poets' approach.

The Modern Sanskrit poets are making their foreign tours an object of their poetry. The धरित्रीदर्शनम् of Prof. R.V. Tripathi, The विमानबाला of Prof. P.N. Kauthekar, The यवद्वीपसाहित्यशतकम्, बालीप्रत्यभिज्ञानशतकम्, बालीविलासम् and विमानयात्राशतकम् of Prof. Abhiraja Rajendra Mishra etc. have opened the door of a new horizon of the Sanskrit poetry. Besides Dr. Harsh Deva Madhava is practising the Hyku and Seizo metres of Japan and North Koria in his Sanskrit poetry. It's also an excellence of the Modern Sanskrit poetry. Sanskrit, like English has attained a global stature and is attracting foreign readers.

But, the most significant point in the modern Sanskrit poetry, which arrests our vision, is the presentation of Modern India. Most of the social, political, religious and socio-cultural developments of Modern India are expressed in the Sanskrit poetry of today. Prof. Radhā Vallabh Tripathi and Dr. Harsh Deva Mādhava desribe the daily-wager's community in their poems like जनतालहरी, रोटिकालहरी and निष्क्रान्ताः सर्वे. One can very easily witness the modern India in the Mahākāvyas of today. The वामनावतरणम् of Abhirāja introduces the high ideals of democracy and so does the गणपतिसम्भवम् of Prabhudatta. The Indirācharitam of Prof. Satyavrata Shastri, Gāndhicharitam of Brahmānand Shastri, Nehruyashassaurabham of Balabhadra Prasād Shastri etc. also, being related with the India of the 20th century, motivate our sensibility. The lyrical poetry of today again, seems to be the essence of the poetic excellences of the Modern Sanskrit literature. In short, Modern Sanskrit Poetry stands for Global peace, Universal harmony, Indigenous depiction, Current national affairs and social values and so on, so forth.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MS-114

Bhima Caritra of Rāma Sarasvati : A Critical Appreciation

DR. KRISHNA KANTA HONDIQUE, ASSAM

The Bhīma *carita,* the stupendious career of *Bhīma's* childhood days, a most popular episode may be called *Khaṇḍa Kāvya* consisting of three chapters composed by *Rāma Sarasvatī,* an Āssamese poet, called Āssamese *Vyāsa* of post *Śaṇkaradeva* period. *Bhīma* is the main hero of the episode. The very name *Bhima* signifies terror Bhi bin mok gigantic. Attempts have been made to do a critical study of this Kāṇḍa-kāvya.

❖

MS-115

The Facet of Sanskrit Poetry

DR. AJAY KUMAR MISHRA

The facet of Sanskrit poetry is as old as new havin with its several streams such as *Mahākāvya, Geetikāvya, Laharikāvya, Khandkāvya* and *Dutakāvya* etc. The *Ghzal* writing is also one of the most remarkable trends as well as some small forms of poem which deal with many national/social/political/economic problems and various contemporary burning issues like natural calamity, terrorism and Kargil war with some diversion of the theme from aristocratic to common subject matters. It is also Sanskrit poetry which represents the composite relation to other Indian languages in terms of its adoption of new words/proverbs/ idioms etc. from other Indian literatures to simplify its orientations in modern times.

We must be careful from post modernist poluted think tanks who have fabricated a myth that Sanskrit is a dead language. To stamp this blue blooded theory out we can quote a plethora of pertinent examples from linguistic and contents point of view against this colonial myth.

❖

MS-116

Gurudev Rabindranāth and the Kumārasambhava of Kālidāsa

PROF. SATYANARAYAN CHAKRABORTY, KOLKATA

As regards the poetic mood both Kālidāsa and Rabindranath possess the same character. It appears that a long gap of over two thousand years has been joined by a bridge which can aptly be called 'The Golden Bridge of Poetic Temperament' over the flowing river of Indian culture of which the two great pillars stand on the banks of ancient and

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

modern poetry respectively. We can appreciate Kālidāsa in a better way if we go through Tagore's literature and in a similar manner proper appreciation of Tagore's literature depends on a through acquaintance with Kālidāsa's works.

In this paper we would like to present a brief analysis of Tagore's appreciation of the Kumārasambhava on the basis of a few works like 'Europe Prabāsīr Patra', 'Rājā-O-Rānī, 'Chitrāṅgadā', 'Chaitālī, 'Kalpanā', 'Prāchīna Sāhitya', 'Jībanasmṛti', 'Utsarga', 'Śāntiniketan', 'Pūrabi', 'Tapatī', 'Chhanda', 'Pather Sañchay', 'Chiṭhipatra', 'Kaḍi-O-Komal', 'Sonār Tarī', 'Śikṣā', 'Sāhityer Pathe', 'Sāhityer Svarup' and others.

❖

MS-117

Yamaka Ṛtusaṁhāra of Puruṣottama Mishra : A Study

PRATAP CHANDRA TRIPATHI, ORISSA

Yamaka-Ṛtusaṁhāra (YR) is one among the fertile productions of the master mind of Kaviratna Purusottama Misra (KPM) (17th C.A.D.) of South Orissa. K.P.M. was the court poet of Narasimha Deva of Khurdha and the royal teacher (guru) of Gajapati Jagannath Narayana Deva of Paralakhemundi kingdom of South Orissa.

The Poem contains the description of six seasons and their relation with lord Kṛṣṇa in 21 different poetic designs (bandhas) and varieties of yamaka-alamkaras. Besides bandhas and yamakas, the verses are also found composed with many other verbal juggleries like, dvyakṣara, caturakṣara, daśārthī etc. Thus, the poem is a marvellous contibution to the field of Citra-Kavya the final verse of the poem is composed in Cakra-bandha where the name of the poet and poem is found mentioned in a technical way.

The poem holds by its own merit, a high place in the history of ornate Sanskrit poetry. But unfortunately such a significant and rare contribution which can enrich Sanskrit literature has not come into light. In this paper an attempt is made to bring out the literary merits of the work for the apprehension and appraisal of the learned scholars.

❖

MS-118

Rearrangement of Master Degree Courses in Traditional Sanskrit Studies

DR. NIRMAL SUNDAR MISHRA, ORISSA

The present paper is divided into three parts. The first one answers less but raises the 'wh' questions more regarding the subject matter, that exposes the pitfalls of the

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

present system which is responsible for the eradication of some branches of Sanskrit Studies like Mīmānsā etc.

The second part deals with some suggestive measures which are more practical and effective as far as the full fledged coverage of the entire literature, is concerned. This system can save the illfated branches of Sanskrit studies.

This part suggests a special type of division like (i) Deptt. of Language and Literature; that covers Philology, Grammar and Literature from epic period up to the modern ones (भाषा-साहित्य-विभागः), (ii) Deptt. of Vedics, that covers Vedas, and vedic literature including smṛtis (श्रुति-स्मृति-विभागः), (iii) Deptt. of Religion and Philosophy that covers even the Tantras and Āgamas (धर्म-दर्शन-विभागः), and (iv) Deptt. of Science and Technology that includes scientific elements like Astrology and Vedic Mathematics etc. (वस्तु-वास्तु-विज्ञान-विभागः).

The paper as a whole aims at some suggestive measures, keeping an eye on the inter-disciplinary studies which is the need of the society at present.

❖

MS-119

Vaiṣṇavite Kāvyas of Assam with special reference to the Vadha-Kāvyas of Rāma-Sarasvati

DR. GOLAKESWAR GOSWAMI, GUWAHATI

Vaiṣṇavite *Kāvyas* of Assam deserve a special place in the history of Neo-Vaiṣṇavism in Assam in the sense that they also became a sort of medium in diffusing the Vaiṣṇavism among the common people. The Neo-Vaiṣṇavite preacher Śaṅkaradeva first composed seven such *kāvyas* and, later different writers also contributed to this type of literary works. It may be stated that Rāma-sarasvatī, a court-poet of the great *Koca* king Naranārāyaṇa of Assam, had an intimate relation with Śaṅkaradeva and being inspired by him he translated in Assamese some *parvas* of the great *Mahābhārata* as the patronage of the king. Besides his translation of the *Mahābhārata*, Rāma-sarasvatī also composed a particular kind of *kāvyas*, know as *Vadha-kāvyas* in Assamese, where the stories of killing of some demons by the *Pāṇḍavas* are depicted to arouse the Vaiṣṇavite sentiment among the people. These *Vadha-kāvyas* are *Baghāsura-vadha*, *Kulācala-vadha*, *Jangghāsura-vadha*, *Jaṭāsura-vadha*, *Ghaṭāsura-vadha* and *Aśvakarṇa-vadha* etc.

This the *Vadha-kāvyas* composed by Rāma-sarasvatī are Vaiṣṇavite-*Kāvyas* and these *Kāvyas* are highly praise-worthy for arousing the sentiment of Vaiṣṇavism among the people of Assam in its medieval period.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MS-120

Some Observations on the Sahapāṭhinī

DR. DIPAK KUMAR SHARMA, GUWAHATI

The *Sahapāṭhinī* is a collection of twelve short stories in Sanskrit. The book, written by Dr. Pramod Bharatiya, was published in the year 1999, and of course, a number of the stories were earlier brought to light in various magazines and periodicals. The stories herein are found to be based on some happenings of the contemporary times, reflecting the free fascination of the writer as well; still they appear to have some factual basis. Though composed in Sanskrit, the stories are difficult to be assessed with the strict norms laid down by the traditional poeticians of Sanskrit. As the genre called the short story was somewhat unknown in classical Sanskrit literature, the stories of the *Sahapāṭhinī* also deserve to be discussed with the modern, or to be precise, the western standard of criticism. Hence it is proposed to present a survey of the said book by Dr. Bharatiya in the modern perspective.

❖

MS-121

Sanskrit Matri Bhashi's in Varanasi Vis-a-Vis other Cities-States of the Country

JITENDRA KUMAR TRIPATHI, LUCKNOW

Traditionally Varanasi has been a centre of Sanskrit learning. Most of the colonial rulers in their own interest did something for Sanskrit learning and other aspects of social, religious, economic and political studies, the by-product of which can be utilized in our interest. In the field of study of Sanskrit as mother-tongue, a field that has not recieved the attention it deserves, the 'durva na mriyate' saying of an employee of East India Company even at that time, pointed towards it. The statistical analysis of Sanskrit Matri Bhasi's in Varanasi vis-a-vis other cities, districts and states in different parts of the country in urban/ rural demarcation, co-relation of Pathashalas and comparing other languages, even languages out side VIII Schedule of the constitution have been presented in the paper, so that it may lead us to further studies in the field.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Section - 16

SOUTH EAST ASIAN STUDIES

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

SEAS-1

आर्यावर्तस्वरूपमीमांसा

डॉ. रामचन्द्रद्विवेदी, वाराणसी

अर्तुं प्रकृतिमाचरितुं योग्यः, अर्य्यते वा ऋ + ण्यत् प्रत्ययान्त आर्यशब्दः, आर्या आवर्तन्तेऽत्रेति विग्रहे आर्योपपदात् आ + वृत् आधारे घञ् प्रत्यये सति आर्यावर्तशब्दो निष्पद्यते। आर्यशब्दस्यानेकेऽर्थाः संस्कृतवाङ्मये काव्यकोशादौ दरीदृश्यन्ते। महाभाष्यकारः पतञ्जलिस्तु 'शूद्राणामनिरवसितानाम्' 'पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्' इत्यनयोः सूत्रयोर्व्याख्यानप्रसङ्गे आर्यावर्तदेशं (क्षेत्रम्) चर्चितवान्, तन्मत आदर्शपर्वतात् (यत्र सरस्वती नदी लीयते) प्राक् कालकवनात् (सन्थालपरगना) प्रत्यक्, दक्षिणेन हिमालयमुत्तरेण पारियात्रं यावद् विस्तृतो भूभाग एवार्यावर्त इत्युपदिष्टवान्। मनुस्मृत्यनुसारं षट्सु ब्रह्मावर्त-ब्रह्मदेश-मध्यदेश-आर्यावर्त-यज्ञीयदेश-म्लेच्छदेशेषु पूर्वसागरादारभ्य पश्चिमसागरमथ च हिमालयादारभ्य विन्ध्यगिरिं यावद् विस्मृतो भूभाग एवार्यावर्त इति।

कालक्रमेण राजनैतिक-प्राकृतिक-भौगोलिकप्रभावेण देशस्य सीमा वर्द्धतेऽपक्षीयते च, कारणविशेषैरार्यावर्तस्यापि सीमा परवर्तिपतञ्जलिकाले भिन्नो जातः, तन्मते मनूक्तो मध्यदेश एवार्यावर्तोऽस्ति। महाभाष्यकारस्मृत आर्यावर्तभूभागो भाषाशास्त्रदृष्ट्या शिष्टसम्मतः धर्मशास्त्रसूत्रानुमोदितश्च, तत्र निवसतां ब्राह्मणानां वैशिष्ट्यमपि सर्वविद्यापारङ्गतताऽऽसीत्, एतदेव बौद्धायनधर्मसूत्रेण वाशिष्ठधर्मशास्त्रेणानुमोदितम्। हेमचन्द्रस्तु जिनचक्रिणो जन्मभूरार्यावर्तः, सा पुण्यभूमिः आचारवेदीति प्रथितवान्। किष्किन्धा, गब्दिका, शौर्य, क्रौञ्चादयो देशा आर्यावर्ताद्बाह्याः, अत्रत्याः जनाश्च चातुर्वर्ण्यस्थिताः शूद्रा इवासन्। बौद्धायनस्तु— आरट्टकारस्करपुण्ड्रसौवीरवङ्गादिदेशस्थान् जनान् पतितान् मत्वा तत्र गमनमपि न्यषेधयत्, गते च प्राचश्चित्तविधानमपि तेन निर्दिष्टम्।

अमरकोशानुसारं पुरा भारतवर्षस्य प्राच्योदीच्ये द्वौ भागावास्ताम्, तदानीं शरावती नद्येव विभाजिका रेखाऽऽसीत्। महाभाष्यानुसारं भारतवर्षस्य चत्वारो भागाः प्राच्योदीच्यदक्षिणापथोत्तरापथरूपेणासन्। दक्षिणापथ आर्यावर्तस्यान्तर्वर्तिभूभाग आसीन्न वेति स्पष्टं नाभिव्यज्यते। विभाषाञ्चेरदिक्स्त्रियाम्, 'उदीच्य ग्रामाच्चवह्वचोऽन्तोदात्तात्' 'अव्ययात्यप्' 'प्राचां ग्रामनगराणाम्' एङ्प्राचां देशे इत्यादिसूत्राणां भाष्याध्ययनेन दिग्देशविभागोऽभिव्यज्यते। 'गहादिभ्यश्च' इति सूत्रस्थमहाभाष्यानुसन्धानेनार्यावर्तस्यापि त्रयो भागाश्चरण-सम्बन्धेन निर्दिष्टाः। पतञ्जलिः महाभाष्ये आर्यावर्तस्थान्, जानानार्यपदेन ततो बाह्यान् काम्बोजान् सौराष्ट्रान् मागधान् तद्देशनाम्नैव व्यवहृतवान्।

इत्थमत्र सन्दर्भसारलेख आर्यावर्तस्य सामान्यपरिचयो दत्तः विशेषस्तु शोधपत्रे प्रकाशयिष्यते।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

SEAS-2

'मृगाङ्कदूतम्' दक्षिणपूर्वैशियाक्षेत्रस्यैकमात्रं संस्कृतदूतकाव्यम्

डॉ. भारतेन्दुपाण्डेयः, मेरठ

प्रायः सार्धैकेवर्षदशककालावधिप्राग् इण्डोनेशियान्तर्गतबालीद्वीपीयोदयनविश्वविद्यालये तात्कालिक-प्राघुणिकाचार्यपदभाग्भिः कविराजाभिराजराजेन्द्रमिश्रैस्तत्रैव विरचितं मृगाङ्कदूतं दूतकाव्यपरम्परायां रत्नमिव पारेसमुद्रमपि स्वपदमाधातुमक्षमत।

पूर्वमृगाङ्कोत्तरमृगाङ्केतिविभागाभ्यां विभक्ता मन्दाक्रान्तामात्रमयी एवं च प्रायोमेघदूतीयमेव कलेवरमनुवर्तमानेयं कृतिः सर्वप्रथमं दिल्लीस्थसाहित्याकादमीतः प्रकाश्यमाना संस्कृतप्रतिभेति पत्रिकया वर्षे 1988 तमे प्रकाशमनायि।

अत्र बालीद्वीपप्रवासे जननीजन्मभूम्यादिविरहविशिखमसहमानो ग्रन्थकृत् पूर्वकवि-प्रयुक्तमेघादिकमभीष्टसम्पादनेऽयुक्तं पश्यन्मृगाङ्क दौत्याय प्रार्थयते।

इतः परम्, दक्षिणपूर्वैशियाक्षेत्रे द्वीपाद्द्वीपं व्याप्नुवन्ती अत्र च भारतभुवि विविधानि स्थानानि लक्ष्यीकुर्वन्ती तत्रत्यान् देवान्, तीर्थानि, स्वजनान्, प्रातःस्मरणीयान् महापुरुषान्, विदुषो विद्यावैभवं च प्रत्यक्षाप्रत्यक्षतया सङ्केतयन्ती संकीर्तयन्ती च यादृशी चान्द्रमसी यात्रा अलौकिक-लोकादिव्युत्पत्तिवर्णनायुतेन कविना कल्प्यते, सा तु वस्तुतो बृहत्तरं-सांस्कृतिकभारतराष्ट्रस्य किमपि शाब्दं मानचित्रमिव, साहित्यसंस्कृत्यादि-सम्पत्सर्वेक्षणस्य कश्चन. जीवन्नेवाभिलेख इवाभाति।

केवलं लोकादिव्युत्पत्तिमत्त्वकारणेनैव न; अपि तु कवेर्मातुभूम्यांदिविषयतो रतिभावत एव स्वप्राणानादाय प्रसूतिम्, प्रसृतिं पूर्तिं चाधिगच्छन्तीयं रचना रसादिदृष्ट्याऽपि किमपि वैभवमेव बिभर्ति।

❖

SEAS-3

भारतीय हिन्दुसंस्कृतीत मंगलाष्टकाचे महत्त्व

पं. मधुकरशास्त्री आर्वीकर, नागपुर

भारतीय हिन्दुसंस्कृतीत गणना केलेल्या प्रमुख संस्कारापैकी मंगलकारक मौज व विवाह या दोघांचे आकर्षण, तसेच महत्त्व जनमानसांत अजूनही कायम आहे। उपनयन (मौंज) हा संस्कार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यांत होतो। विद्याप्राप्ती आणि धार्मिक कार्य प्रारम्भ करण्यास, शरीर शुद्धीचा विधी मौंजेत होतो। विवाहाचा संस्कार याहून वेगळ्या पद्धतीचा आहे। गृहस्थाश्रम स्वीकारण्याच्या निमित्ताने सामाजिक जीवनांत पदार्पणकरणाऱ्या नूतन वरवधूंना त्यांचे भावी आयुष्य सुखसमृद्धीचे, शिवाय निर्विघ्नपणे जाण्यासाठी सर्वांचे, सहकार्य आणि अन्तःकरणापासून आशीर्वादमिळण्यासाठी हा, सर्वांच्या उपस्थितीत विवाहाचा संस्कारविधी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पन्न होत असतो। प्राचीनकालात या दोन्ही संस्काराचे स्वरूप वेगळ्या तऱ्हेचे होते। सध्याच्या वैज्ञानिकयुगात कालानुरूप बदल झाले तरी, या संस्कारान्त जे सुमुहूर्त असते त्यावेळी मंगलमयवातावरणांत, सुस्वरान्त, होणाव्या मंगलाष्टकाचे महत्त्व अजूनहि कमी न होता ते टिकून आहे। मौंजेच्या सुमुहूर्ताच्या समयीं बटू आणि त्याच्या पित्याने सुन्दर वस्त्र परिधान केल्यानन्तर त्यांच्या कपाळास केशरी गन्ध लावतात। गळयान्त सुन्दर सुगन्धित पुष्पमाला घालतात। दोघांच्या हातान्त (ओंजळीत) अक्षता देतात। पूर्वेकडे वडिलांनी पाटावर बसून पश्चिमाभिमुख बटूस उभे करून उभयतांच्यामध्ये अंतःपट धारण करून मंगलाष्टक म्हणण्यास प्रारम्भ होतो। प्राचीन कालांत मंगलाष्टकापूर्वी ब्राह्मण (पुरोहित) वेदातील उपनयनोपयोगी मन्त्रांचे पठन करीत होते। मन्त्रानन्तर मंगलाष्टकास सुरूवात होत असे। काहि भागांत ही पद्धत अजूनही चालू आहे।

मंगलाष्टकाची पद्यरचना शार्दूकविक्रीडित वृत्तात असते। हे वृत्त म्हणण्यास सुन्दर आहे। तालबद्ध, सुस्वरांत म्हटल्या जाणाव्या काव्याने मण्डपातील वातावरण मंगलमय, आनन्दित, उत्साहवर्धक, स्नेहमय, चैतन्यदायक, वधूवरांना स्फूर्ति देणारे असते।

मंगलाष्टकातील माहितीचा आढावा घेतल्यास आपणास प्रामुख्याने असे दिसून येते की, आयोजित मंगलकार्य विघ्न येता सिद्धीस जाण्यासाठी स्वतःच्या कुलदेवतेची व गणेशाची प्रार्थना आणि देवतेने सर्वांना मंगलाशीर्वाद देण्यासाठी निमन्त्रण असते। मंगलकार्यासम्बन्धी महिना, तिथि, वार, नक्षत्र, योग, वेळ याशिवाय आकाशस्थ ग्रहस्थिती, नवग्रहांची मीलनसमयीं अनुकूलता रहावी म्हणून त्यांना शुभफल देण्यास केलेली विनंती, उभयतांचे आणि जीवन समृद्धीचे जाण्यास केलेला हितोपदेश मंगलाष्टकाच्या वेळी मंडपांत सर्व आप्त इष्टमित्र, उपस्थित राहून मंगलपद्य म्हणून सर्वजण आशीर्वाद देतात इत्यादि।

एकंदरीत ह्या सर्वांचे एकत्रीकरण भारतीय संस्कृतीप्रमाणे मंगलाष्टकात समाविष्ट केल्यामुळे त्याचे महत्त्व टिकूने आहे। याची माहिती या शोध निबन्धात वर्णिली आहे।

❖

SEAS-4

श्रीलंका की 'रक्ष संस्कृति' के बदलते आयाम : एक अनुशीलन

श्री धर्मपाल, जम्मूतवी

भारतवर्ष के पड़ोसी देश श्रीलंका की परिस्थितियाँ जनविश्रुत हैं। त्रेतायुग में इस देश का अधिपति रावण था। जिसने दैत्यबल की समृद्धता के कारण से कुबेर से इस नगरी को छीना था और स्वयं को समुद्र का रक्षक घोषित करने साथ राक्षस जाति का संगठन करके स्वयं को रक्ष संस्कृति का अधिष्ठाता बना लिया। रक्ष-संस्कृति के अन्तर्गत आनेवाले तथ्य केवल राक्षस जाति के उन्नायक को अपनाया ही था। निःसन्देह उस समय रावण ने आर्यों के संगठन को जड़ से फेंकने की योजना बनाई, इसलिये उसने सांस्कृतिक विप्लव का सूत्रपात कर जहाँ ऋषि मुनियों को यातनायें दीं, वही देवताओं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को भी पलायन करने पर मजबूर किया। मयदानव की पुत्री मन्दोदरी से विवाह करके उसने एक प्रबल जाति को अपना सम्बन्धी बना लिया। तत्कालीन खरदूषण, अतिकाय अकम्पन आदि महारथी, उसके नाना सुमाली जैसे राजनीति के पण्डित भी उसके राजसभा में विद्यमान थे, लेकिन फिर भी रावण भगवान् शंकर का आराधक था और उसकी आराध्य शक्ति के सामने उस समय कोई नहीं ठहरता था। रावण जैसा ज्योतिषी और ज्ञानी व्यक्ति तत्कालीन परिस्थितियों में मिलना दुष्कर था। तुलसीदास ने भी रामचरितमानस में रावण के सर्वज्ञ होने की मीमांसा सूर्पनखा के द्वारा खरदूषण के मारे जाने के संवाद में की है। जब रावण कहता है—'खरदूषण मोहि सम बलवन्ता, तिनहिं को मारे बिनु भगवन्ता'। लेकिन आज उसी श्रीलंका में बौद्धधर्म का प्रचार एवं प्रसार देखने को मिलता है, साथ ही तमिल और सिंहलियों के द्वारा अपने-अपने मान संरक्षण हेतु जाने वाले उग्रवादी गुटों द्वारा ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हुई दिखाई देती हैं, मानो त्रेता युग में पल्लवित रक्ष संस्कृति पुनः अपने पाँव पसारने को व्याकुल हो रही है। यह विडम्बना ही है कि अहिंसा की शिक्षा देने वाला बौद्धधर्म एवं उनके अनुयायी आज श्रीलंका में घोर हिंसा का सूत्रपात करते दीखते हैं। श्रीलंका की रक्ष संस्कृति के बदलते आयामों की पूर्ण चर्चा शोध पत्र में की गई हैं।

❖

SEAS-5

कम्बुज में भारतीय संस्कृति की अवस्थिति का अध्ययन

श्री राजेश शर्मा, जम्मू

दक्षिण-पूर्वी एशिया के सियाम और चम्पा जैसे भारतीय उपनिवेशों जैसे—कम्बुज देश 7वीं शताब्दी से लेकर 14वीं शताब्दी के बीच एक स्वतन्त्र देश की रूपरेखा में आबद्ध था। प्राचीन कम्बुज की स्थिति वर्तमान कम्बोडिया के उत्तर-पूर्वी प्रदेश में थी तथा वर्तमान लाओस का भी कुछ प्रदेश उसके अन्तर्गत था। कम्बुज देश में भारतीय सभ्यता और संस्कृति के विविध रूपों के दर्शन हमें प्राप्त मिलते हैं, उनकी शासन व्यवस्था कौटिल्य के अर्थशास्त्र के सदृश ही थी। अङ्चुमनिक के अभिलेखों में राजा भववर्मा के दो मन्त्रियों के गुणों का अभिलेख करते हुए ये अभिहित किया गया है कि वे धर्मशास्त्र व अर्थशास्त्र के ज्ञाता थे, जैसाकि—'तस्य तौ मन्त्रिणावास्तां सम्मतौ कृतवेदिनौ। धर्मशास्त्रार्थशास्त्रज्ञौ धर्मार्थाविव रूपिणौ।।' से स्पष्ट है।

धार्मिक मान्यताओं में भी कम्बुज देश में पौराणिक हिन्दू-धर्म का प्राधान्य देखने को मिलता है, जहाँ शिव व विष्णु देवताओं की पूजा उसी रूप में की जाती है, जैसे कि भारतवर्ष में। ईशानवर्मा के एक अभिलेख में यज्ञीय कर्मकाण्ड के साथ ही यह भी वर्णन मिलता है कि भारत के पौराणिक धर्म में जिन-जिन देवी-देवताओं की पूजा का विधान था, प्रायः उन सब की मूर्तियाँ कम्बुज में बनाई गई थी, साथ ही बौद्धधर्म का प्रचलन भी अपनी शैशवावस्था में था।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कम्बुज देश में हिन्दु धर्म के प्रचार-प्रसार के कारण वेद, पुराण, इतिहास, दर्शन आदि प्राचीन भारतीय साहित्य का भी भली-भाँति अध्ययन और अध्यापन होता था। आश्रम व्यवस्था भी उसी रूप में पहिवत दिखती है जैसे कि भारतवर्ष में थी। कम्बुज के प्राचीन अभिलेखों में केवल ब्राह्मण और क्षत्रिय शब्द आये हैं, वैश्य और शूद्र का उल्लेख नहीं मिलता। जहाँ ब्राह्मण और क्षत्रियों में विवाह सम्बन्ध हो सकता था, जैसाकि राजा भववर्मा की बहन का ब्राह्मण सोमशर्मा के साथ विवाह होने से स्पष्ट है। इस देश में एक विशेषता और थी कि सन्तान माता का वर्म प्राप्त करती थी न कि पिता का। रहन-सहन, भोजन आदि व्यवस्था कम्बुज देश में वैसे ही दिखती है, जैसे कि भारतवर्ष में।

पुरुष एवं स्त्री दोनों ही आभूषण-प्रेमी थे। साथ ही भोजन के प्रसङ्ग में वही खाद्य पदार्थ प्रिय थे, जो भारतीयों को थे—जिनमें चावल, मूँग, दूध, दही, तिल, घी आदि प्रमुख थे। वहाँ के निवासियों के जीवन में गान-वादन एवं नृत्य का असीम योगदान था। वसन्तोत्सव मनाए जाने का भी वैसा ही विवरण मिलता है, जैसाकि भारतवर्ष में। जहाँ के मनोरंजन का एक साधन मुष्टियुद्ध भी है, जो वर्तमान समय में (Boxing) के समान था। कम्बुज देश में भारतीय संस्कृति की अवस्थिति का सम्पूर्ण विवरण शोध-पत्र में वर्णित किया गया है।

❖

SEAS-6

हाई लाईड में भारतीय संस्कृति की चमत्कृति : एक पर्यवेक्षण

श्री संजीव कुमार पाठक, जम्मू

दक्षिणी पूर्वी एशिया में स्थित हाई लाईड (थाईलैण्ड) देश में भारतीय संस्कृति के चमत्कृति के दर्शन प्राप्त होते हैं। दक्षिणी पूर्वी एशिया का यह देश सुवर्ण भूमि के अन्तर्गत परिगणित किया जाता है। सियाम (श्याम) नाम से अभिहित किये जाने वाले इस देश की भाषा, कला और संस्कृति आदि पर भारत की छाप स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है। बौद्धधर्म वाले इस देश में अनेक पौराणिक देवी-देवताओं की प्राचीन मूर्त्तियों के प्राप्त होने के साथ-साथ 'मुंकसितेक' नामक स्थान पर अनेक शैव तथा वैष्णव मूर्त्तियों की उपस्थिति एवं संस्कृत के एक शिलालेख मिलने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि यहाँ का जनजीवन भारतीय संस्कृति से ओत-प्रोत है। यूनान तो भारतीय संस्कृति का प्रमुख केन्द्र माना ही जा सकता है। वहीं अयुकिय (अयोध्या) नामक नगर की उपस्थिति से यह अभिहित किया जा सकता है कि वहाँ के नगरों के नाम भारतीय नगरों के आधार पर किये गये हैं। देवी-देवताओं के मन्दिरों की उपस्थिति के साथ-साथ वहाँ ब्राह्मण एवं पुजारियों के रहने की परम्परा के दर्शन भी हमें प्राप्त होते हैं। बैंकाक में स्थित वत् तोत् फ्राम नामक हिन्दू-मन्दिर में ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव की विशाल प्रतिमाओं की उपस्थिति से यह भी संकेत मिलता है कि वहाँ बौद्धधर्म के साथ-साथ हिन्दूधर्म भी भारत की तरह पल्लवित एवं पुष्पित हो रहा है। श्यामी भाषा में संस्कृत, प्राकृत तथा पाली भाषा के शब्दों की प्रचुरता से यह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निदर्शित होता है कि भारतीय भाषाओं ने श्यामी भाषा को भी प्रभावित किया है। 'थाईलैण्ड' में भारतीय संस्कृति के चमत्कृति का विस्तार से विवेचन शोध-पत्र में विवेचित किया गया है।

❖

SEAS-7

भारतीय संस्कृति से ओतप्रोत है सुवर्णभूमि 'बरमा' : एक दृष्टि

श्री जियालाल, जम्मू

प्राचीनकाल में हमारे भारत के व्यापारी जिन दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों में व्यापार करने जाते थे, उन्हें वे सुवर्णभूमि एवं सुवर्णद्वीप अभिहित करते थे; क्योंकि यहाँ की सोने की खानों से वे सोना प्राप्त कर प्रचुर लाभ अर्जित करते थे। लगभग बरमा (बर्मा) से मलावा तक का प्रदेश सुवर्णभूमि के अन्तर्गत था एवं इण्डोचायना के प्रायद्वीप यथा—कम्बोडिया, लाओस तथा वियतनाम और इण्डोनेशिया के विविध द्वीप यथा—सुमात्रा, जावा, बोर्निया आदि सुवर्णभूमि नाम से प्रथित थे। इन देशों में इस्लाम का अत्यधिक प्रचार होने से भारतीय संस्कृति यहाँ लुप्तप्राय है, किन्तु बरमा में आज भी भारतीय संस्कृति की अमिट छाप देखने को मिलती है। बौद्धधर्म की प्रधानता वाले इस देश में आज अनेकों नगर एवं बस्तियाँ भारतीय नामों से विश्रुत हैं। भारतीय उपनिवेशकों ने बरमा के प्रदेशों एवं नगरों के नाम गान्धार, कम्बोज, अवन्ती, अपरान्त, संकाश्य, असिताञ्जन, श्रीक्षेत्र, द्वारावती, हंसावती तथा वैशाली रखा।

महात्मा बुद्ध की पवित्रतम याद में आज यहाँ बौद्धधर्म भारत से भी अधिक उत्तम एवं पवित्रतम रूप ग्रहण कर चुका है। भारत सदृश यहाँ भी स्तूपों-बिहारों एवं मन्दिरों का निर्माण किया गया है। अरिमर्दनपुर नाम से स्वयं स्पष्ट होता है कि यह नाम भारतीय नाम से प्रभावित है एवं यहाँ स्तूपों, बिहारों तथा मन्दिरों की भरमार है। राजा केनजित्था ने जिस आनन्द बिहार का निर्माण कराया, वह पूर्णतया भारत के बिहारों की अनुकृतिमात्र है। बरमा की धार्मिक, राजनीति एवं कानून आदि व्यवस्थाओं पर मनु, नारद, याज्ञवल्क्य आदि हिन्दू-शास्त्रकारों का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। 'धम्मसस्थ' का मनुसार नाम होना यह स्पष्ट करता है कि मनुस्मृति या मानवसंहिता के आधार पर इसकी रचना की गयी होगी। भाषा एवं साहित्य तथा रहन-सहन और वेश-भूषा में भारतीय संस्कृति बरमा के जनजीवन में रची बसी देखी जा सकती है। सुवर्णभूमि बरमा भारतीय संस्कृति से किन-किन क्षेत्रों में ओत-प्रोत है, सर्वांग विवेचन शोध-पत्र में विस्तार से किया गया है।

❖

SEAS-8

चम्पा का सामाजिक जीवन एवं भारतीयता

श्री विजेन्द्र कुमार शास्त्री, जम्मू

दक्षिणपूर्वी एशियाई देशों में चम्पा का नाम अग्रगण्य है। चम्पा का सामाजिक जीवन वैसे ही वर्णव्यवस्था पर आधारित है, जैसा कि भारतवर्ष में। स्मरणीय है कि भारतीय उपनिवेशक जो चम्पादेश

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गये थे, वे अपने साथ भारतीय वर्णाश्रम व्यवस्था एवं भारतीय परम्परा को लेते गये थे। इन उपनिवेशकों में ब्राह्मण एवं क्षत्रिय वर्णों की प्रधानता थी, वैसे तो चम्पा एवं भारत के समाज में पर्याप्त अन्तर देखने को मिलता है, लेकिन फिर भी 'कौटिल्य अर्थशास्त्र' में प्रतिपादित राजव्यवस्था को चम्पा अपना आदर्श मानता है। दक्षिण भारत के कतिपय राजवंशों की तरह चम्पा के राजवंश में भी मात्र सत्तात्मक व्यवस्था थी। भारतीय रहन-सहन एवं वेशभूषा की तरह ही वहाँ के लोग स्वयं की वेशभूषा धारण करते थे। हाँ उच्च वर्गों में परिधान की परम्परा उच्चकोटि की हुआ करती थी। स्त्रियाँ लहगें के सदृश वस्त्र धारण करती थी एवं अनेक प्रकार के आभूषणों से सुसज्जित रहती थीं। भारतीय आमोद-प्रमोद के जैसे प्रमुख साधन संगीत, नृत्य एवं बाँसुरी आदि वाद्य वादन थे, वैसे ही चम्पा का जन-जीवन भी आमोद-प्रमोद से युक्त दिखता है। जैसे भारत का मुख्य आधार कृषि है, उसी प्रकार चम्पा का आर्थिक आधार भी कृषि है। भारतीय परम्परा को प्रभावित करने वाले धर्म, कला, राजनीति, भाषा साहित्य के अतिरिक्त मन्दिरों एवं राजप्रसादों की उपस्थिति चम्पा में भारतीयता एवं विस्तार करती दिखती हैं। चम्पा के सामाजिक जन-जीवन में भारतीयता कितनी प्रसारित हो सकी है, इसका बहुविध विवेचन शोध-पत्र में किया गया है।

❖

SEAS-9

अवेस्ता-गत राम और ऋति यश्त का आलोचनात्मक अध्ययन

डॉ. (श्रीमती) अर्चना सिंह, इलाहाबाद

वेद ऋषियों से प्राप्त ऋक्थ स्वरूप है। विद्वानों ने इसे परम्परागत निधि के रूप में प्राप्त किया है। ऋक्थ को सदैव सुरक्षा की आवश्यकता होती है; क्योंकि वह निजी सम्पत्ति नहीं है, किसी माध्यम से अथवा स्रोत द्वारा प्राप्त की गई है। अतः इसकी सुरक्षा करना धर्म है। वेद हमारी प्राचीनतम निधि है। हमारी संस्कृति का स्रोत एवं आगार वेद ही है। सम्पूर्ण ज्ञान वेद द्वारा ही सम्भव है। 'वेदार्थोपबृंहण' अवेस्ता के अध्ययन से भी सम्भव है। अत एव अवेस्तीय अध्ययन भी श्रेय है। अवेस्ता पारसीक भाषा में रचित ईरानी आर्यजन का धर्म ग्रन्थ है। फारसी भाषा में उपलब्ध प्राचीन आलेख ही उसकी प्रसिद्धि के उद्घोषक है। इसका परवर्ती विकास पह्लवी साहित्य में उपलब्ध है। प्राच्य पुरातत्त्व सम्बन्धी अध्ययन हेतु फारसी भाषा का ज्ञान, विकास का स्रोत है। अतः संस्कृति की सुरक्षा भी अवेस्तीय अध्ययन के द्वारा सम्भव है।

किसी भी साहित्य के प्रचार-प्रसार के अभाव में उसकी महत्ता का प्रतिपादन भी सम्भव नहीं है। अवेस्ता साहित्य क्या है? इसका मूल क्या है, यह किसकी निधि है? इत्यादि सूचनाएँ इसके प्रचार-प्रसार के अभाव में अपूर्ण रह जाती है। अतः अवेस्तीय साहित्य का अध्ययन किया जाना आवश्यक है। इससे हिन्दी भाषा समृद्ध हो सकेगी। भाषा से सम्बन्धित अनेक भ्रान्तियों का निराकरण हो सकेगा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक धर्म, दर्शन-देवशास्त्र एवं कर्मकाण्डीय विभिन्न ग्रन्थियाँ सुलझ सकेंगी। अवेस्तीय अध्ययन की इसी महत्ता को दृष्टि में रखते हुए मैंने भी इसी दिशा में अल्प प्रयास किया है। अवेस्तीय साहित्य का प्रचार-प्रसार हो, राष्ट्रभाषा की उन्नति हो, भारतीय संस्कृति की महत्ता का प्रतिपादन हो, यही मेरे शोध कार्य का भी उद्देश्य है।

जेन्द अवेस्ता ईरानी आर्यजन का पवित्र धर्म ग्रन्थ है। वर्तमान समय में उपलब्ध अवेस्ता यस्न, विस्परद, यश्त, लघु पाठ्य वेन्दिदाद इत्यादि भागों में विभक्त है। 'यश्त' यजतो (देवताओं) की स्तुतियों का संग्रह है। अवेस्तागत धर्म का प्रवर्तक जरथुश्त्र है।

राष्ट्रभाषा के शब्दकोश को समृद्ध करने में एवं भारतीय संस्कृति के प्रति आस्था रखने वाले, जिज्ञासु जनों की ज्ञान-पिपासा को शान्त करने में भी मेरा प्रयत्न आंशिक रूप से ही सहायक सिद्ध हो, ऐसी मेरी अभिलाषा है।

❖

SEAS-10

प्राकृत और आर्य-द्रविड़ भाषाओं का मूर्द्धन्य-पक्ष

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह, सासाराम

आर्य-द्रविड़ भाषाओं की एकता, सम्बन्ध और प्रभाव को लेकर कई बातें सामने आयी हैं। इनमें सर्वाधिक गुत्थम-गुत्था मूर्द्धन्य ध्वनियों को लेकर है। प्राकृतों में मूर्द्धन्य ध्वनियों का व्यवहार संस्कृत की तुलना में अधिक है। मूर्द्धन्य ध्वनियों का आधार यदि स्वीकार हो, तो प्राकृत भाषाएँ तमिल एवं द्रविड़कुल की अन्य भाषाओं के निकट हैं। इन मूर्द्धन्य ध्वनियों का जो अध्ययन भाषावैज्ञानिकों ने प्रस्तुत किया है, उसमें प्राकृत भाषाएँ हाशिये पर हैं। यदि प्राकृत भाषाओं को भी जरूरी एवं महत्त्वपूर्ण समझकर इन ध्वनियों पर पुनर्विचार किया जाये, तो आधुनिक भाषाओं को समझने में सुविधा होगी।

हिन्दी भाषा का इतिहास जैसे प्राकृत भाषाओं से जोड़कर प्रस्तुत किया जाता है, वैसे क्या तमिल का भी प्रस्तुत किया जा सकता है? क्या दक्षिण भारत की भाषाओं को भी प्राकृत भाषाओं की परम्परा प्राप्त है? यदि प्राकृत भाषा लौकिक रूप में व्यवहृत उस समय की संस्कृतेतर सभी जनपदीय बोलियों का नाम है, तब यह ठीक है कि हिन्दी भाषा ही नहीं, अपितु भारतवर्ष की सभी आधुनिक भाषाएँ- तेलुगु, तमिल, कन्नड़ तथा मलयालम भी प्राकृतों की परम्परा से विकसित हुई हैं। आगे यह भी कि यदि दक्षिण भारतीय भाषाओं का आधार विभिन्न प्राकृत हैं, तो ट-वर्गीय ध्वनियों का उद्गम-स्रोत द्रविड़कुल की भाषाओं की जननी-प्राकृत रही होगी।

माना यह जाता है कि वैदिक संस्कृत में मूर्द्धन्य पार्श्विक 'ळ्' ध्वनि थी, लौकिक संस्कृत में लुप्त हो गयी है। तब यह विचारणीय है, कि पालि-प्राकृत में इनका प्रवेश कैसे हुआ? मूल भारोपीय भाषा की ध्वनि-व्यवस्था में 'ळ्' शामिल नहीं है तब क्या मैकडनल द्वारा की गयी वेदभाषा में 'ळ्' की अस्वीकृति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्य है? यदि सत्य है, तब यह माना जाना चाहिए कि 'ळ्' वाली मूर्द्धन्य ध्वनि प्राकृतों की है। माना यह भी जाता है कि मूर्द्धन्य ध्वनियों का विकास आर्यों के भारत में प्रवेश करने के बाद हुआ है। फिर मूर्द्धन्य 'ऋ' को आदि इण्डोयूरोपियन भाषा की मूल ध्वनि में शामिल कैसे किया जाता है, जबकि भारत का कोई भी आर्येतर भाषा-परिवार इस ध्वनि का व्यवहार नहीं करता है। क्या इस अन्तर्विरोध का समाधान पश्चिमोत्तर की प्राकृतों में खोजा जा सकता है?

❖

SEAS-11

निरुक्त के कुछ अप्रयुक्त पाण्डुलिपि-ग्रन्थ

श्री शीतांशु रथ, उज्जैन

निघण्टु तथा निरुक्त की गणना विश्व के प्राचीनतम भाषा शास्त्रीय ग्रन्थों में की जाती है। वैदिक साहित्य में निर्वचन का कोई पूर्ववर्ती प्रमाण ग्रन्थ हमें उपलब्ध नहीं है। विश्वभर के भाषा-वैज्ञानिक निरुक्त के अध्ययन से लाभान्वित हुए हैं। वैदिक साहित्य के विद्यार्थी वेदार्थ के निरूपण में आज भी निरुक्त की प्रामाणिकता यथावत् स्वीकार करते हैं। अत एव स्वतन्त्र रूप से भी निरुक्त महत्त्वपूर्ण वेदाङ्ग है।

निरुक्त का प्रथम भारतीय संस्करण श्री वैजनाथ काशीनाथ राजवाड़े तथा विनायक गणेश आप्टे द्वारा श्री आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली के अन्तर्गत ईसवी सन् 1921 में प्रकाशित हुआ था। इस संस्करण के लिए बंगाल, गुजरात एवं महाराष्ट्र में उपलब्ध दस पाण्डुलिपियों का उपयोग किया गया था। इस संस्करण में दुर्गाचार्य कृत वृत्ति का भी समावेश है।

डॉ. लक्ष्मणस्वरूप ने पाँच वर्ष बाद सन् 1926 में पुनः 'निघण्टु तथा निरुक्त' के नाम से एक नया सम्पादन प्रस्तुत किया। अपने इस संस्करण के लिए डॉ. लक्ष्मणस्वरूप ने 13 पाण्डुग्रन्थों का विस्तृत विवरण सहित उल्लेख किया है। सिन्धिया प्राच्यविद्या शोध संस्थान, उज्जैन में कुछ ऐसी दुर्लभ पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हैं, जिनका उपर्युक्त दोनों संस्करणों में निश्चित ही उपयोग नहीं हुआ है। इन पाण्डुलिपियों का स्रोत यथासम्भव भारत का मध्यदेश अथवा प्राचीन अवन्ती प्रदेश का परिसर है, जहाँ वेदाध्ययन की परम्परा कई रूपों में आज भी अविच्छिन्न और जीवित है।

अवन्ती क्षेत्र में बिखरी पाण्डुलिपि का संग्रह पूर्व ग्वालियर राज्य की रीजेन्सी कौंसिल द्वारा सन् 1931 में शुरू किया गया था। सिन्धिया प्राच्यविद्या शोध संस्थान 1931 से ही उज्जैन में कार्यरत है। पूर्व ग्वालियर राज्य, मध्यभारत शासन तथा मध्यप्रदेश शासन के अन्तर्गत पल्लवित और विकसित यह संस्थान आज विक्रम विश्वविद्यालय के अन्तर्गत संचालित है। इस संस्थान में वेद और वेदांग से सम्बद्ध अनेक दुर्लभ पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हैं। इन पाण्डुलिपियों में निरुक्त विषयक पाण्डुलिपियों की संख्या सोलह हैं। निरुक्त के किसी भी सम्भावित आलोचनात्मक संस्करण के लिए इन पाण्डुलिपियों का महत्त्व स्वयं सिद्ध है। ये पाण्डुलिपियाँ प्रायः पूर्ण हैं तथा कागज पर काली और लाल स्याही से लिखी गई हैं। अक्षरों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए काली स्याही तथा स्वराङ्कन के लिए लाल स्याही का प्रयोग किया गया है। इन पाण्डुलिपियों का विवरण प्रस्तुत निबन्ध में प्रमाणसहित प्रस्तुत किया गया है।

❖

SEAS-12

हस्तलेखों की सुरक्षा के विविध आयाम

डॉ. (श्रीमती) बीना मिश्र, इलाहाबाद

हस्तलेख हमारी विरासत हैं। इस विरासत को संरक्षित करने का महत्त्वपूर्ण दायित्व हमारा है। उचित देखभाल की कमी एवं थोड़ी सी लापरवाही के कारण ये हस्तलेख नष्ट हो रहे हैं। हमारे पूर्वजों ने जिस तरह सहेज कर इन्हें रखा, उसी प्रणाली को अपनाकर तथा आधुनिक वैज्ञानिक पद्धतियों के द्वारा हमें इस नष्ट हो रहे धरोहर को बचाना होगा। संरक्षा के सम्बन्ध में कतिपय उद्धरण जो हस्तलेखों से प्राप्त होते हैं, इस प्रकार हैं—

जलाद् रक्षेत् स्थलात् रक्षेद् रक्षेत् शिथिलबन्धनात् ।
मूर्खहस्ते न दातव्यं एवं वदति पुस्तकम् ।।
उदकान्तचौरेभ्यो मूषकेभ्यस्तथैव च ।
रक्षणीयं प्रयत्नेन यत्नेन परिपालयेत् ।।.....आदि

उपर्युक्त सूत्र ऐसे है, जिनके पालन से ग्रन्थ निश्चित रूप से नष्ट नहीं होंगे। यदि हस्तलेख नष्ट हो गये हैं, तो उनका उपचार आधुनिक वैज्ञानिक तरीकों से कुशल हाथों द्वारा किया जाना चाहिए। प्राचीन व नवीन दोनों पद्धतियों से हस्तलेखों के संरक्षण के उपाय करने चाहिए।

❖

SEAS-13

सिंघलीय आचार्यों का काव्यशास्त्रीय योगदान

डॉ. सोम प्रकाश पाण्डेय, प्रतापगढ़

भारतीय काव्यशास्त्रियों की भाँति सिंघलीय आचार्यों ने भी काव्यशास्त्र के विषय में अपना बहुमूल्य योगदान प्रदान किया है।

सिंघलीय आचार्य शिलामेघसेन 'सियवसलकरु' नामक ग्रन्थ में काव्यशास्त्र के जिन विषयों का प्रतिपादन किया है, वे सभी विषय आचार्य दण्डीकृत काव्यादर्श से अनुकृत है। यह ग्रन्थ तीन परिच्छेदों में विभक्त है। प्रथम में काव्य-प्रयोजन, कारण-स्वरूप तथा काव्यगुणों का उदाहरण सहित विवेचन है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय में 35 अर्थालङ्कारों का विशद विवेचन है। तृतीय परिच्छेद में शब्दालंकार एवं यमक के भेदों का विस्तार से निरूपण है।

आचार्य रत्नश्री ज्ञान बौद्धाचार्यों में सुविख्यात हैं। काव्यादर्श की टीका (जो मिथिला संस्कृत शोध संस्थान से प्रकाशित है) की पुष्पिका प्रमाण से विदित होता है कि इनका जन्म सिंघल देश में हुआ था। पाल शासकों के समय में सिंघलवासी सैन्धव क्षेत्र में विक्रमशिला आदि महाविहारों में निवास करते थे। आचार्य रत्नश्री बौद्धेतर साहित्य में भी विशेष अभिरुचि रखते थे, जिसका ज्ञान काव्यादर्श की रत्नश्री टीका के अनुशीलन से हो जाता है।

आचार्य संघरक्षित पालि परम्परा के महान् भिक्षु थे, जिसका ज्ञान सोसायटी इन मेडिकल सीलोन से प्राप्त होता है। उदुम्बगिरि वासियों के भिक्षु परम्परा में यह महान् विभूति उत्पन्न हुई। इनका दूसरा नाम मेघङ्कर भी था। इसका परिज्ञान जनरल ऑफ एशियाटिक सोसायटी बाम्बे 1875 से होता है। इन्होंने सुबोधालङ्कार, वृत्तोदय, सम्बन्ध, चिन्ता, निकाय आदि ग्रन्थों का उल्लेख किया है। उनमें से सुबोधालंकार ही वस्तुतः काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ है। इसमें काव्यशास्त्र के विविध विषयों का प्रतिपादन किया गया है।

❖

SEAS-14

कम्बोडिया पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव

डॉ. दुर्गाप्रसाद मिश्र, मेरठ

जहाँ तक भाषा, धर्म और संस्कृति का सम्बन्ध है, अब से कुछ सदी पहले तक दक्षिण पूर्वी एवं दक्षिणी एशिया के प्रायः सभी देश भारत के उसी प्रकार अंग थे, जिस प्रकार सौराष्ट्र, वङ्ग, कलिङ्ग आदि। इण्डोनेशिया, भलायीसिया, कम्बोडिया, वियतनाम और सियाम आदि में भारतीयों ने अपने अनेक उपनिवेश स्थापित किए थे। वहाँ के निवासियों को अपने धर्म में दीक्षित कर भारतीय संस्कृति के रंग में रंग लिया था। इस देश के राजाओं के नाम भारतीय थे, उनकी शासन व्यवस्था में राजा को देवांश माना गया। राजा जयवर्मा प्रथम को 'यस्य लिङ्गसहस्राणां तदंशेनावतीर्णेन जितं श्रीजयवर्मणा'। मंत्रियों की नियुक्ति भारतीय नीति के अनुसार थी— 'तस्य तौ मन्त्रिणावास्तां सम्मतौ कृतवेदिनौ। धर्मशास्त्रार्थशास्त्रज्ञौ धर्मार्थाविनरूपिणौ' राजा जितेन्द्र, अनुशासित तथा धर्मनिष्ठ थे। ताम्रपुर, श्रेष्ठपुर, ध्रुवपुर, धन्विपुर, धर्मपुर, ईशानपुर आदि प्रान्त थे।

समाज का मूलाधार चातुर्वर्ण्य था, जिसमें ब्राह्मण वर्ण का वर्चस्व था। ब्राह्मणों ने कम्बोडिया की स्त्रियों से विवाह-सम्बन्ध करके, उत्पन्न सन्तान को ब्राह्मण कहा। क्षत्रियों का भी उच्च स्थान था। राजकुल क्षत्रियों के थे। वर्ण का आधार जन्म था कर्म नहीं। समाज में वैश्यों का स्थान तथा दासों का स्थान भी था। ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों में परस्पर विवाह-सम्बन्ध भी था। लोगों का रहन-सहन, खान-पान, संस्कार सब भारतीय थे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ पौराणिक हिन्दूधर्म का प्रचार था। इसका मुख्य प्रचारक कौण्डिन्य था। कम्बुज में शिव तथा विष्णु-पूजा प्रचलित थी। शिव का लिंगपूजन का विधान था। शिव के लिए त्र्यम्बक, शम्भु, रुद्र, शंकर, महेश्वर, ईशान, गिरीश आदि नामों का प्रयोग किया गया है। व्यक्ति और स्थान के नाम भी इनसे जोड़े गए; यथा— गम्भीरेश्वर, पिंगलेश्वर, सिद्धेश्वर, भद्रेश्वर आदि। शिव के साथ ही विष्णु की भी पूजा प्रचलित थी उनके अच्युत, माधव, कृष्ण, नारायण, पद्मनाभ आदि नामों का उल्लेख है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य, गणेश, दुर्गा, गंगा, वागीश्वरी, गौरी, सरस्वती आदि पौराणिक देवी-देवताओं का प्रचलन था।

कम्बोडिया का आर्थिक जीवन उन्नत था। कृषि पशुपालन प्रधान साधन थे। तुवाग, सुनार, गान्धिक, शिल्पी आदि के व्यवसाय उन्नत दशा में थे। मूर्तिकला, नौकानिर्माण, पालकीनिर्माण आदि कार्य उन्नतकोटि के थे।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि कम्बोडिया की संस्कृति का प्राणतत्त्व भारतीय संस्कृति ही है।

❖

SEAS-15

दक्षिण-पूर्व एशिया में बौद्ध-धर्म का प्रचार-प्रसार

डॉ. सन्तकुमार मिश्र, मेरठ

प्राचीनकाल में भारतीयों ने अपनी संस्कृति का प्रचार-प्रसार अपनी सीमा के बाहर किया। संयुक्त रूप में इन्हें बृहत्तर भारत कहा जाता है, जिसमें साइबेरिया से सिंहल तथा ईरान से बाली टापू तक का विशाल भूखण्ड आता है। भारतीयों ने विदेशी व्यापार के अतिरिक्त धर्म प्रचार की प्रवृत्ति से प्रेरित होकर इन देशों में एक नवीन संस्कृति की स्थापना की। इस प्रसार को बढ़ावा दिया मौर्य नरेश अशोक की विजय यात्रा के स्थान पर धम्म-यात्रा की नीति ने। अशोक के पुत्र महेन्द्र व पुत्री संघमित्रा द्वारा सिंहल द्वीप में शुरू किये गये बौद्धधर्म के प्रचार अभियान को सर्वाधिक प्रोत्साहन विश्व में स्वर्णभूमि के नाम से प्रसिद्ध दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों में मिला। भारत की पूर्वी सीमा से लगे बर्मा में बौद्धधर्म का प्रचार 450 ई. में यहाँ की यात्रा करने वाले सिंहली आचार्य बुद्धघोष ने किया था। बौद्धमत के महागान और थेरवाद दोनों ही पन्थ बरमा में पर्याप्त प्रसारित हुए किन्तु अन्ततः थेरवाद को राज्यधर्म घोषित किया गया। 'शिव अर्हन्' नामक स्थविर से प्रभावित राजा अनिरुद्ध ने हीनयान को प्रोत्साहित किया अपितु बुद्ध के दन्तधातु पर स्वेजिगोन महास्तूप बनवाया। उसके पुत्र केनजित्या ने भी प्रसिद्ध आनन्द विहार निर्मित करवाया था। कम्बु नामक ऋषि द्वारा स्थापित कम्बुज देश में पौराणिक धर्म का प्राधान्य था; किन्तु राजा जयवर्मा व यशोवर्मा के प्रयास से यहाँ बौद्धधर्म को प्रश्रय मिला। शिव, विष्णु, ब्रह्मा के साथ बुद्ध को भी देवता मानकर इनकी चतुर्मूर्ति स्थापित करवायी गयी। कम्बुज के पड़ोसी चम्पा देश में बौद्धधर्म का प्राबल्य था— ऐसा इत्सिंग भी लिखते हैं; किन्तु चीनी सेनापति लिऊ फंग के आक्रमण के कारण बौद्धधर्म को क्षति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहुँची। स्थविर नागपुष्प के प्रयास से बाद में बौद्धधर्म पुनः प्रतिष्ठित हुआ। अवलोकितेश्वर, बोधिसत्त्व एवं प्रज्ञापारमिता के अतिरिक्त बुद्ध की धर्मचक्रप्रवर्तन तथा अभयमुद्रा वाली मूर्तियाँ, दोंग दुओंग से अन्य बौद्ध भग्नावशेष मिले हैं।

13,700 द्वीप समूह वाले इण्डोनेशिया— जिसे स्वर्णद्वीप या मलाया द्वीप भी कहा जाता है, के अन्तर्गत आने वाले प्रमुख वंशों— जावा, सुमात्रा, बोर्नियो, बाली द्वीप, तथा सेलिबस द्वीप में बौद्धधर्म के अनेक साक्ष्य प्राप्त होते हैं। जावा के शैलेन्द्र शासकों द्वारा निर्मित बोरोबुदूर का महाचैत्य विश्व के आश्चर्यों में से एक माना जाता है। सुमात्रा के राजा बालुपुत्रदेव ने जावा-सुमात्रा से भारत अध्ययन के लिये आने वाले छात्रों के लिये नालन्दा में विहार बनवाया था।

इस्लाम धर्म के कारण यद्यपि दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों में बौद्धधर्म प्रभावित हुआ है, किन्तु अद्यतन वहाँ भारतीय संस्कृति के साथ इसके सिद्धान्तों की स्पष्ट झलक प्राप्त होती है, जबकि यह अपने उत्पत्तिस्थल भारत में लुप्तप्राय है। अस्तु, बौद्धधर्म के सिद्धान्तों को जीवन्त बनाये रखने के लिये भारत को इन देशों का आभारी होना चाहिए।

❖

SEAS-16

जावा के संस्कृत-अभिलेखों में प्रतिबिम्बित भारतीय-संस्कृति

डॉ. विजेन्द्र कुमार तोमर, मेरठ

दक्षिण-पूर्व एशिया पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव व्यापक रूप से पड़ा है। 'मलाया', 'सुमात्रा', 'जावा', बोर्नियो', 'बाली', 'सेलेक्स', 'फिलिप्पीन', 'कम्बोडिया', 'विएतनाम', 'स्याम' (थाईलैण्ड), 'मयन्मार' (ब्रह्मा, बरमा) और 'श्रीलंका' (सिंहल, सिलोन) आदि देशों अथवा राज्यों में भारतीय संस्कृति के तत्त्वों की पहचान आज भी की जा सकती है। उक्त देशों से भारत के न केवल व्यापारिक सम्बन्ध रहे हैं, अपितु इनमें कई भारतीय राजाओं ने अपने राज्य भी स्थापित किये हैं। ईसा की प्रथम शताब्दी से लेकर चौदहवीं शताब्दी के मध्य उक्त देशों से उपलब्ध संस्कृत अभिलेखों से इस बात की पुष्टि होती है। श्रीमार (तीसरी सदी), शैलेन्द्र राजवंश (सातवीं सदी), 'गंगाराज' (सातवीं सदी, चम्पा), 'पाण्डुरंग' (आठवीं, नवीं चम्पा), 'भृगुवंश' (नवीं, चम्पा) और 'यशोवर्मा' (नवीं, दसवीं, कम्बोडिया, अंकोरवाट) आदि ऐसे ही साम्राज्य थे। उक्त देशों से व्यापार तो किया ही जाता था, उन पर धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव भी पड़ा था। इनमें हिन्दू पौराणिक धर्म का व्यापक प्रचार था। चौदहवीं शताब्दी और उसके पश्चात् बौद्धों, मंगोलों, मुसलिमों और अंग्रेजों के प्रभाव में उक्त देश आ गये। औपनिवेशिक स्वतन्त्रता के पश्चात् इन्होंने अपनी मौलिक अथवा मिली-जुली संस्कृति विकसित कर ली है।

उपलब्ध संस्कृत शिलालेखों के अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि जावा में पौराणिक हिन्दू-धर्म का पूर्ण रूप से प्रभाव था। वहाँ के निवासियों की भाषा संस्कृत थी। जतावा के प्राचीन अभिलेख

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशुद्ध संस्कृत भाषा में लिखे गये हैं। 'जावा' पर अविकल रूप से भारतीय धर्म, भाषा और संस्कृति का प्रभाव विद्यमान है।

❖

SEAS-17

चम्पा की संस्कृति का प्रतिष्ठापक है भारत

सुजाता मंगोत्रा, जम्मू

दक्षिण पूर्वी एशिया के भारतीय उपनिवेशों में चम्पा का नाम अनजाना नहीं है। दक्षिणी चीन सागर से लगे हुए चम्पा नामक उपनिवेश में पाँच प्रमुख स्थल हैं जहाँ की संस्कृति भारतीय संस्कृति से प्रभावित दिखती है। वे हैं— पाण्डुरंग, कौठार, विजय, अमरावती और तोनकीन। वैसे शासन के प्रयोजन से तो चम्पा का राज्य तीन प्रान्तों में विभक्त था– अमरावती, विजय और पाण्डुरंग।

भारतवर्ष की तरह चम्पा में भी वेदों, पुराणों इत्यादि का अध्ययन होता है। यहाँ का सामाजिक जीवन वर्णाश्रम व्यवस्था पर आधारित है। स्पष्ट है कि भारत से जो लोग वहाँ रहने के लिए गए वे अपने साथ वर्णों और आश्रमों की परम्पराएँ भी अपने साथ लेते गए।

चम्पा में शैव-सम्प्रदाय का आधिक्य होने के साथ-साथ वैष्णव-धर्म एवं बौद्धधर्म के उपस्थिति की संसूचना वहाँ के जनजीवन के सांस्कृतिक अध्ययन से प्रकट होती है। जिस प्रकार भारतवर्ष में यौगिक आसन में बैठकर लोग उपासना करते हैं, उसी प्रकार चम्पा के लोग भी अपनी पूजा-अर्चना सम्पन्न करते हैं। चम्पा के अनेक मन्दिरों में विविध मंजिलों की उपस्थिति के दर्शन में हम यह मान सकते हैं कि चम्पा के लोगों ने भारत की द्रविड़ शैली में बनाये जाने वाले मन्दिरों का अनुकरण करके उसे अपनाया होगा, जैसे कि भारत में मामल्लपुरम् के रथ मन्दिर, कांजीवरम् तथा बादामी के मन्दिर भी इसी द्रविड़ शैली में निर्मित हुए हैं। इस प्रकार सच्चे अर्थों में हम भारतवर्ष को चम्पा की संस्कृति का प्रतिष्ठापक देश मान सकते हैं। सम्पूर्ण तथ्यों का निदर्शन शोधपत्र में सन्निहित किया गया है।

❖

SEAS-18

एशिया में पल्लवित भारतीय सभ्यता और संस्कृति का परिशीलन

श्री अमन कुमार शर्मा, जम्मू

भारतीय सभ्यता और संस्कृति की महनीयता का बोध इसी से होता है कि इसने अपने पड़ोसी देशों के साथ विश्व के अनेक देशों में अपनी अमिट छाप छोड़ी है। दक्षिण पूर्वीएशिया के ऐसे ही देश इण्डोनेशिया में आज भी भारतीय सभ्यता और संस्कृति का अनुकरण वहाँ के लोगों की जीवनशैली में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टिगत होता है, इसके अनेक प्रमाण ऐतिहासिक ग्रन्थों में विद्यमान हैं। भारत के समान ही जावा में भी अधोवस्त्र एवं उत्तरीयवस्त्र प्रधान परिधान के रूप में प्रयुक्त होते हैं। साथ ही जिस प्रकार भारतवर्ष में स्त्री-पुरुष विविध अलंकरणों एवं आभूषणों से अपने शरीर को सुसज्जित करते हैं उसी प्रकार इण्डोनेशिया के लोग भी विभिन्न प्रकार के आभूषणों का प्रयोग करते हैं। भारतीय महिलाओं के समान ही इण्डोनेशियाई महिलाओं में भी वीणा, मृदङ्ग, बांसुरी एवं सितार आदि वाद्य यन्त्रों को बजाने की परम्परा विद्यमान है। अन्त्येष्टि क्रिया में शव को जलाने एवं विशिष्ट परिस्थितियों में शव के जल प्रवाह करने की प्रथा इण्डोनेशिया में भी भारत के समान ही विद्यमान है। भोजन में इण्डोनेशियाई लोग चावल को प्रधान स्थान देते हैं, जो कि वहाँ की भौगोलिक परिस्थिति का परिणाम है। ब्राह्मणों द्वारा यज्ञ सम्पादन के अनन्तर यजमान द्वारा ब्राह्मणों को दक्षिणा देने का विधान भारत और इण्डोनेशिया में समान रूप से विद्यमान है। जिस प्रकार भारतीय मन्दिरों में जाकर अपनी पूजा-अर्चना सम्पन्न करते हैं, उसी प्रकार इण्डोनेशिया के लोग भी अपनी पूजा-अर्चना का सम्पादन करते हैं। वहाँ के प्रसिद्ध मन्दिरों दिएङ्ग चण्डी कालसन, चण्डीसरी, चण्डी सेवू, चण्डी मेदुन्त और चण्डी पवान तथा बरोबदूर आदि के साथ-साथ विविध चैत्यों की उपस्थिति से यह निदर्शित होता है कि वहाँ हिन्दूधर्म के साथ-साथ बौद्धधर्म को मानने वाले लोग भी निवास करते थे। बाली में संस्कृत भाषा में उपनिबद्ध वेद, पुराण, उपनिषद्, रामायण, महाभारतादि भारतीय ग्रन्थों का पठन-पाठन आज भी वहाँ के जीवन का प्रमुख अंग है। भारत में पौराणिक साहित्य जैसे भारतीय जन-मानस को उपदेशित एवं निर्देशित करते हैं, उसी प्रकार इण्डोनेशिया में भी वे वहाँ के जन-जीवन को प्रभावित करते हैं। जावी भाषा के ग्रन्थों में ब्रह्माण्ड पुराण प्रधान पुराण के रूप में परिगणित किया जाता है। पञ्चतन्त्र, चाणक्य शतक, जावी भाषा के नीतिशास्त्रीय ग्रन्थ, इन्द्रलोक एवं अगस्त्यपर्व जैसे ग्रन्थ इण्डोनेशिया की सभ्यता एवं जनमानस पर अपना पूर्ण प्रभाव बनाए हुए हैं।

इण्डोनेशिया पर भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के प्रभाव की विशद चर्चा शोधपत्र में सविस्तार की गई है।

❖

SEAS-19

Hindi Spoken in Oriya Tongue : A Study

DEVARAJ PANDA

Hindi is the national language of India. It is the mother-tongue of the people of Bihar, U.P., M.P., Hariyana and some other northern states. It is used as a second language in Assam, Bengal, Orissa and other states of India. However, Hindi undergoes modifications depending on the mother tongue of the speaker. This paper explores the difference between the Hindi spoken by Oriyas and native speaker of Hindi.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

SEAS-20

Ancient India's Foreign Trade with East Asia

DR. RATAN LAL BASU, KOLKATA

The trade and commercial dealings between India and East Asia may be traced back to the pre-historic age. During the historic period, this trade relation of India with the East Asian countries was maintained. But till the Christian era, the evidences are based on discovery of Indian articles and use of Indian names in distant lands and mentions of India's trade with *Suvarṇabhūmi, Suvarṇadvīpa, Jāvāḍvīpa, Tāmradvīpa* in Buddhist *Jātaka, Rāmāyaṇa, Mahābhārata, Purāṇas,* etc. Ancient Tamil poems mentioned ports like *Barukachchha, Roruvā, Kāviri-Pattinum,* etc.

The author refers to some of the far eastern countries as *Chryse,* i.e., the golden land. Ptolemy, in the second century A.D., knew the names of important trading centres in Malaya Peninsula and in the islands of Java and Sumatra. Buddhsit texts, written about the same period, give a long list of the trading centers in the Far East, which agree fairly well with that of Ptolemy. These names were mostly in Sanskrit. Thus by the second centruy A.D., the Indians had developed important trade relations with the Far East.

During the Gupta Era, there was a regular trade relation between *Tāmralipti* and Ceylon, Indonesia and Indo-China. During the third decade of the sixth century A.D. there developed an inter-coastal trade route linking east coast of India with Ceylon, Indonesia and China.

Since the 8th century A.D. India's trade with East and South East Asia started declining and in coruse of the next 300 years it became almost insignificant.

❖

SEAS-21

The Development of 'ə' in Indo-European Dialects

DR. SHARDA CHATURVEDI, VARANASI

A second schwa or schwa secundum is often reconstructed as a reduced (weak) grade vowel. This represented in Sanskrit, as well as in Iranian as *i* and in Greek, Hittite and other Indo-European languages, as *a*. Indo-European *ə* was a weak grade vowel corresponding to. Indo-European *ā,ē,ō* in strong grade. As for example :

Indo-European sthā > *shtə, dhē* > *dhə,* dō > *də.* Assumption of schwa secundum in some Latin forms show *a* where strong grade vowel shows Indo-European *e*. As for example :

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Indo-European q-^{w}etwōres > Skt. catvāraḥ, Greek téttores, Gothic fidwōr, etc.; but Latin quattuor shows *a* instead of *ə*. As for example :

Indo-European sthtos > Sanskrit *sthitas*, Greek *statos* (σ tātóS), Latn *status*.

Indo-European dhətos > Skt. *hitas*, Greek thetós (θETóS).

Indo-European *dtəos* > Skt. *aditi* (< IE ṇdəti), Greek dotós (δ oTós).

This *a* (of Latin) is derived by some scholars from schwa secundum. Similarly in several other cases such *a* of Latin *a* will need no schwa secundum. Such cases in Latin are few and they may be analogical formations. Indo-European *e* is retained even in reduced grade; e.g. *etti* (< ed-ti) had plural *edonti* (Sanskrit *adanti*).

❖

SEAS-22

Influence of Upanishads in Arabic Poetry : A Study Based on the Works of Khalil Gibran

DR. L. SULOCHANA DEVI, KERALA

Khalil Gibran (1983-1931) from Lebanon is known all over the world as the author of a long mystical poem called 'The Prophet'. Khalil Gibran's poems uphold the sense of the basic oneness of all humanity, the human solidarity in spite of all differences. Gibran's early works were written in Arabic and are considered central to the development of modern Arabic literature. His first Book the Madman (1918), a slim volume of aphorisms and parables is written in biblical cadence somewhere between poetry and prose. Usually Gibran used prophetic tone to condemn the evils that threaten the humankind. His style, a combination of beauty and spirituality, became known as 'Gibranism.'

Scholars have traced in Gibran's writings influence of the German philosopher Nietzsche, and also Islamic and Christian mystics. But the influence of Indian philosophy especially the Upanishads and Bhagavat Gītā are not that much seriously researched into. Gibran's belief in the healing power of Universal Love and the Unity of Being; is evident in most of his poetical works especially The prophet, Earth Gods. Wanderer, and Jesus the Son of Man. This is the same as enunciated in Iśāvasyopaniṣad, (6) which says he who sees everything in relation to the Supreme Lord, who sees all entitiies as his parts and parcels and who sees the Supreme Lord within everything, never hates anything or being. It is the same in Bhagavadgītā (6.9) also. The paper will discuss in detail the Upanisadic thoughts embedded in Gibram's poetry with special reference to The Prophet.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

SEAS-23

The Text of Vasundharavratotpattyavadasna : A Sanskrit Buddhist Narrative

PROF. DR. RATNA BASU, KOLKATA

The hitherto unpublished text of Vasundharavratotpattyavadāsna (VVA) is available in the holding of the Asiatic Society of Bengal, Kolkata; manuscript no. B 44 in the B.H. Hodgson collection of Sanskrit Buddhist Texts brought from Nepalese sources. This ms. has documented in details by R.L. Mitra in the well-known work 'The Sanskrit Buddhist Literature of Nepal', pp 266-270 (Calcutta 1882, rpt. 1971). The present author is involved in preparing a text-critical edition of the text a available in the aforementioned collection in Newari script.

The text of VVA, a Buddhist avadāna of later period deserves our attention for its style of narration in verses which are suited to musical tune, for the language which is rich in diction and often takes freedom of deviating from the Paninian grammatical forms to suit the metrical measure and tune so far it does not stand in way of understanding of the listener, a member of the common laity. The socio-cultural tradition of worshipping the mother earth as goddess for peace, prosperity and social amity is to be associated with current social and ritualistic practice of almost all India traditions. The goddess earth is worshipped here along with her associates MahāLaksmi, Sridevi and Kumari who are by no means unknown in Indian cultural concept. The message of cultural integration in its historicity and current relevance adds to the importance of the text even today, and not only for textual criticism but also for cultural and environmental aspects as well.

❖

SEAS-24

Digital Archiving of Manuscripts and other Heritage Items for Conservation and Information Retrieval

SRI R. RAMAN NAIR, TRIVANDRUM

Expression of cultural heritage looking from the informatics angle naturally falls into Texts, Images, Video and Sound categories. I.T. can be used to conserve all these items. The text information may be palm leaf manuscripts, texts inscribed in carved, stone tablets, handwritten paper manuscripts, old printed records, books, microfilms, file etc. There are many national and international ventures for archiving of monuments, text, and multimedia. This paper will discuss in detail NITYA Archives developed by the Center for Informatics Research and Development (CIRD) to achieve Selective Access to Information from

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitally Organized Records. NITYA using CDS/ISIS developed by UNESCO at friend end, combines high-level text compaction technique and highly sophisticated free text search and retrieval procedure. In NITYA any piece of information can be searched out from huge archival collections within seconds. Most of the systems for digital storage of information lack efficient search mechanism and in this aspect NITYA is unique. In NITYA palm leaf manuscripts, handwritten records, old books etc. are scanned and converted to required format. Images of the leaves or pages are converted to text (Captured) and book marked/annotated. The documents are indexed using a powerful DBMS. The efficiency of the search depends on Indexing Techniques applied to build up Inverted file. Nitya provides facilities for searching archives in it using Inverted File and the search results are displayed in full bibliographic details. Keywords for query building can be selected from the Inverted file under different categories.

The proposed paper will present details of the Kerala Studies, a proto type of digital archives developed by Centre for South Indian Studies; consisting of selected ancient books, manuscripts, paintings and other records; details of research on extending NITYA application to other Indian languages, and the techniques perfected to search in Malayalam the regional language of Kerala. A live demonstration of the Kerala Studies Digital Archives will be given.

❖

SEAS-25

Indian Indentured Female Migration-1834-1916

SRI SATYA SRIVASTAVA, LUCKNOW

Incessant demands for labour to revitalize the sagging economies of various colonies (Mauritius, British Guiana, Trinidad and Jamaaica), as a result of the abolition of slavery in 1834 led to the establishment of the indenture system. The Indenture system was scarcely an improvement on the system of slavery; but over the decades a relatively milder system was established in 1879. women formed an integral part of the Indian indentured migrants who were carted across the seas to various British colonies. The British Government insisted that a ratio 100.40 of men and women had to be maintained on every ship carrying the indentured labourers to lay down the lines of family life in the colonies. The indenture system started in 1834 and after a great public outcry against it in India was brought to an end in 1916. This paper examines the forces behind Indian female migration at a time when women largely lived secluded lives in purdah in a male dominated society and when, even stepping out of home unattended was considered an ignominy for a woman, let alone migrating to distant shores of Mauritius, Surinam, Natal, Fiji and so on.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Section - 17

MANUSCRIPTOLOGY

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MSS-1

शाब्दिकाभरणम् एकस्य हस्तलेखस्य परिचयः

श्रीदेवानन्दशुक्लः, नयी दिल्ली

पाणिनीयं धातुपाठमाश्रिय नैकाः वृत्तयः विरचिताः। तास्वनेकाः वृत्तयः लुप्ताः नैकाः प्रकाशिताश्च। काश्चन अप्रकाशिताश्चापि सन्ति। लुप्तानां नाममात्रेणैवोल्लेखः समुपलभ्यते। यथा—सुनाग-भीमसेन-प्रभृतीनामाचार्याणां वृत्तयः काशिका-माधवीयाधातुवृत्ति-क्षीरतरङ्गिणि-क्रियारत्नसमुच्चय-अमरटीकासर्वस्वप्रभृतिषु ग्रन्थेषूल्लिखिताः, परञ्च अद्यत्वे नैवोपलभ्यन्ते।

सम्प्रति प्रकाशितासु धातुवृत्तिषु क्षीरतरङ्गिणि-धातुप्रदीप-दैवपुरुषकार-माधवीयाधातुवृत्तिप्रभृतयः मुख्याः। एताः वृत्तीः अतिरिच्य पाणिनीयधातुपाठोपरि अतीव महत्त्वपूर्णा चैका वृत्तिः शाब्दिकाभरणम्। एषा धातुवृत्तिः प्रकाशितेभ्यः दैव-पुरुषकार-माधवीयाधातुवृत्ति-प्रभृतिग्रन्थेभ्यः प्राचीना। अस्या वृत्तेरुल्लेखः पुरुषकार-माधवीयाधातुवृत्तिग्रन्थेषु बहुत्र वर्तते।

वृत्तिकारहरियोगिनः कालोऽप्यनिर्णीत एव, तथापि लीलांशुकमुनिरचितदैवव्याख्याने पुरुषकारेऽस्य नामोल्लेखः समुपलभ्यते। अत एव हरियोगी पुरुषकार-लीलाशुकमुनेः प्राग्वर्ती विक्रमस्य 12 शतके आसीदिति प्रतीयते।

श्रीहरियोगिनो वंशादिवृत्तं न ज्ञायते। मद्रासराजकीयपुस्तकालयस्य हस्तलेखस्यान्ते—

'इति हरियोगिनः प्रोलनाचार्यस्य कृतौ शाब्दिकाभरणे शब्विकरणभूवादवो धातवः समाप्ताः।

परन्तु तत्रैव सूचीपत्रेऽपरो हस्तलेखो निर्दिष्टः तस्यान्ते—इति हरियोगिनः शैलवाचार्यस्य कृतौ शाब्दिकाभरणे धातुप्रत्ययपञ्जिकायां सौत्रधातवः समाप्ताः।

इति पाठ उपलभ्यन्ते। तत्रास्य पितुर्नाम शैलवाचार्य इति लिखितम्।

मद्रासहस्तलेखे शाब्दिकाभरणस्य नाम्ना सह धातुप्रत्ययपञ्जिका शाब्दिकाभरणस्यैवान्तर्गता इति यस्यां केवलं धातुप्रकरणस्यैव व्याख्या विहिता।

❖

MSS-2

मातृकापरिचयनिर्णये ग्रन्थनामनिरूपणे च विशेषविचारः

श्रावणी चक्रवर्ती, कोलकाता

प्रदत्ते सुनिर्दिष्टे मातृकापञ्जिपत्रे तथ्यसन्निवेशस्य प्रकारपद्धतिः कथं प्रकृष्टा भवेदिति चिन्ता गरियसी भवति। तत्र प्रागलब्धशास्त्रज्ञानेन सुतरां प्रयोजनं संस्कृतवाङ्मयविषये सामूहिकं दिग्दर्शनञ्चापरिहार्यं वर्तते, इति स्वानुभवः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलिकाताविश्वविद्यालयपाण्डुलिपिसम्पतुत्सकेन्द्रस्यैकस्मिन् ग्रन्थे प्रारम्भे पुष्पिकांशे च मातृकानामोल्लेखो न दृष्टः, केवलं मातृकायाः 10 इति संख्यकात्मकपृष्ठे विद्यासुन्दर इति चौरपञ्चाशत्काव्यमिति च नामद्वयं दृष्टम्। अथ पुस्तिकापञ्जिपत्रनिर्माणावसरे मातृकापञ्जिपत्रे ग्रन्थनामांशे कथं तथ्यसन्निवेशः निर्दोषो भवेदिति चिन्ता स्वाभाविकी। एतदवस्थायां विषयज्ञानं यदि न स्यात्, तर्हि तु संशयस्य निराकरणकार्यं दुरुहं भवेत्। यतः संस्कृतभाषायां विल्हणेन रचितं चौरपञ्चाशिका इति काव्यमस्ति यथा तथा 'विद्यासुन्दर' इति खण्डकाव्यमपि अस्ति। तर्हि मातृकायाः प्रकृष्टं नाम किं भवति, एतद्विषये अवधानं दीयते प्रस्तुते शोधलेखे।

❖

MSS-3

प्राचीन दुर्लभ पाण्डुलिपि– एक अध्ययन 'वास्तुनिर्दोषप्रकारः'

पुरोहित प्रफुल्ल एम., बड़ोदरा

प्राचीन भारत का ज्ञान-भण्डार आज भी अनेक पाण्डुलिपियों में सुरक्षित है। विश्व में यत्र-तत्र-सर्वत्र असंख्य पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हैं। यद्यपि वास्तुशास्त्र का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है और भारतीय शिल्प स्थापत्य का एक अंग है। वास्तुनिर्दोष प्रकार नाम्नी हस्तलिखित प्राचीन पाण्डुलिपि प्राच्यविद्यामंदिर, एम. एस. यूनिवर्सिटी बरोडा (गुजरात) ग्रंथालय में देखने को मिली है। इसी के अन्तर्गत राजगृह निर्माण प्रकार नाम्नी हस्तलिखित पाण्डुलिपि संलग्न है। हस्तलिखित पाण्डुलिपि का क्रमांक 11075 है सुवाच्य अक्षरों में कागज पर देवनागरि लिपि में हस्तग्रन्थ का प्रारंभ श्री गजानन। श्री करंजेश्वर्यै श्री दिवाकरौ, जयतितरां 'अथ निर्दोषवास्तुः'।

वास्तुशास्त्र वेद काल से प्रचलित है। वास्तु का उल्लेख वेद में पाया जाता है। पुराणों में मत्स्य पुराण, भविष्य पुराण इत्यादि में वास्तुशास्त्र का वर्णन मिलता है। समराङ्गण सूत्रधार, विश्वकर्मप्रकाश, मानसार, बृहत्संहिता, वास्तुराजवल्लभ इत्यादि वास्तु के ग्रन्थ प्राप्य है।

❖

MSS-4

अप्रकाशित पाण्डुलिपि 'सुसढकहाः' एक परिचय

देश के विभिन्न जैन केन्द्रों एवं प्राच्यविद्या से सम्बद्ध संस्थानों एवं संग्रहालयों में प्राकृत एवं जैन विद्या की सहस्त्रों पाण्डुलिपियाँ सम्पादन की प्रतीक्षा में सुरक्षित हैं। उन्हीं में से एक प्राकृत की हस्तलिखित पाण्डुलिपि 'सुसढकहा' अप्रकाशित एवं असम्पादित की लगभग आठ प्रतियाँ प्राप्त होती हैं।

जैनविश्वभारती संस्थान, लाडनूं में एक प्रति एल.डी. इंस्टीट्यूड आफ इण्डॉलाजी, अहमदाबाद में दो प्रतियाँ, प्राच्यविद्या शोध संस्थान, जोधपुर में एक प्रति तथा उज्जैन के संग्रहालय में एक प्रति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुरक्षित है। ये पाँचों प्रतियाँ लगभग 16 से 18 वीं शताब्दी के बीच अलग-अलग लिपिकारों द्वारा लिखी गई हैं। इनमें से जैनविश्वभारती संस्थान, मान्य विश्वविद्यालय लाडनूं से प्राप्त प्रति में ही इसके रचनाकार देवेन्द्रसूरि का उल्लेख प्राप्त होता है। शेष चार प्रतियों में रचनाकार का उल्लेख नहीं है। प्रतिलिपि में देवेन्द्रसूरि का रचनाकाल संवत् 1668 अंकित है। यह कृति महानिशीथ नामक आगम ग्रन्थ की टीका-व्याख्या के रूप यत्ना विषय को व्याख्यायित करने के लिए रचनाकार द्वारा लिखी गई है। फलरूप से आचारविषयक विषयों की विवेचना इस कृति में की गई है। इस कृति में कुल 519 गाथाएँ प्राकृत भाषा में निबद्ध हैं। प्राकृत कथासाहित्य की परम्परा में यह कृति विशेष स्थान रखती है।

प्राप्त पाण्डुलिपियों की स्थिति स्पष्ट एवं अच्छी है। इसमें लाडनूं से प्राप्त कृति को छोड़कर सभी में पुरानी गुजराती भाषा में टीकाएँ भी दी हैं। जबकि लाडनूं की एक प्रति में केवल देवेन्द्रसूरिकृत 'सुसढकहा' का विवेचन ही किया गया है।

❖

MSS-5

प्राचीन अभिलेखों में इतिहास-बोध

श्री सत्यप्रकाश श्रीवास्तव, इलाहाबाद

प्राचीन भारत में शासकों द्वारा लिखवाये गये अभिलेखों में इतिहास-बोध दो रूपों में परिलक्षित होता है। प्रथमतः राजाओं की वंशावली प्राप्त होती है, जिसमें पूर्वोत्तर क्रम का यथावत् विवरण रहता है। द्वितीयतः परवर्त्ती अभिलेख-लेखकों ने पूर्ववर्त्ती अभिलेखों से अपने अभिलेखों में लगभग शब्दशः अनुकरण करते हुए अनेक सन्दर्भ प्रस्तुत किये हैं, जिससे उनके इतिहास ज्ञान कां परिचय प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ—एरच से प्राप्त इष्टिकाभिलेख में सेनापति और दशार्णेश्वर आषाढ़मित्र ने पुष्करिणी के उत्खनन के सन्दर्भ में अपने तीन पूर्वजों का उल्लेख किया है—

सिद्धं सेनापतेः शतानीकस्य प्रपौत्रेण सेनापतेः अदितमित्रस्य पौत्रेण सेनापतेः दशार्णाधिपतेः मूलमित्रस्य पुत्रेण सेनापतिना दशार्णेश्वरेण वासिष्ठीपुत्रेण अषाढमित्रेण पुष्करिणी खानिता।

शकक्षत्रप रुद्रदामन ने जूनागढ़ अभिलेख में अपने से लगभग 400 वर्षों से भी अधिक पूर्व के मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त तथा अशोक के साथ उनके अधिकारियों—पुष्यगुप्त एवं तुषाष्फ के कार्यों का उल्लेख किया है—

मौर्यस्य राज्ञः चन्द्रगुप्तस्य राष्ट्रियेण वैश्येन पुष्यगुप्तेन कारितमशोकस्य मौर्यस्य कृते यवनराजेन तुषाष्फेनाधिष्ठाय प्रणालीभिरलं कृतम्।

इससे पता चलता है कि प्राचीन काल में लोगों में न केवल अपनी वंश परम्परा के प्रति जिज्ञासा एवं अभिरुचि थी, बल्कि अन्य राजवंशों के सन्दर्भ में उनके पूर्ववर्ती काल में जो ऐतिहासिक उल्लेख विद्यमान थे, उसकी भी समुचित जानकारी रखते थे।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MSS-6

The Problems of Editing 'Codex Unicus'

DR. P. VISALAKSHY, KERALA

It is highly essential that all important manuscripts should be published as early as possible, if not, many of them may be lost for ever in the near future itself. For publishing manuscripts, it goes without saying that they are to be edited. The most suitable method for editing manuscripts is by applying the principles of Textual Criticism. To make a proper Critical Edition more number of manuscripts of a work is required. The most desirable number is to have at least five manuscripts even though it can be done with three or four. Critical Edition is not possible when the number of manuscripts is less than three. There are works for which only one or two manuscripts may be available. In such cases a reconstruction of the archetype based on the genealogy of the manuscripts is not possible. In this article the problems of an editor has to face when editing Codex Unicus, i.e., the problems in editing when there is only one manuscript are discussed. In the the absence of any other manuscript the editor is unable to compare the manuscripts for getting his doubts cleared and he has to do the editing work under several constraints. Identification of scribal errors and interpolations are more difficult if there is only one manuscript. Some scuh problems are discussed and solutions to them are suggested.

Sanskrit manuscripts are found in different scripts. While editing Sanskrit manuscripts written in other scripts an editor has to face some additional problems. The solutions to such problems are more complex in the case of Codex Unicus and hence attempto have been made to discuss serch problems arilk scitable examples.

❖

MSS-7

Mālāyalam Manuscripts of North India

DR. T.N. SATHEESAN, ALIGARH

Sanskrit Manuscripts constitute the repository of our cultural and scientific knowledge. The treasure of knowledge created by Indian wisdom is largely indebted to the original Sanskrit works written in Devanagari and other Indian scripts. Commentaries of prominent literary texts by the scholars are also worth mentioning.

Kerala has made valuable contributions to different branches of learning in Sanskrit. It covers a vast field of literature, Grammar, Jyotisha, Tantra, Ayurveda and Philosophy. The traditional way of writing these works were either in Malayalam parts of India and

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

abroad and kept in manuscript libraries. Some libraries have a list of these mss. But it is neither complete nor comprehensive. In some places they are kept untouched by the staff members due to the relatively unknown script.

The present paper deals with the problems of handling Sanskrit mss. written in seripts other than devanāgari with a special focus on the Malayalam script mss. available in North India.

MSS-8

Role of the Asiatic Society in the Revival of Indian Spirit with Special Reference to Manuscriptology

DR. JAGATPATI SARKAR, KOLKATA

The Asiatic Society, Kolkata, the oldest learned institution in modern India, has a very rich collection of varied and rare manuscripts. The 200-year old institution took a leading role in collecting and deciphering the manuscripts in the past. These are priceless treasures for any nation as they embody its heritage.

A major part of the contributions of Indian culture and civilization to the world, lay buried in the manuscripts since time immemorial until it was undertaken by the Asiatic Society through study of some of these documents. This is an acknowledged fact that the revival of Indian spirit took place one to the efforts of the Asiatic Society and the fruits of knowledge about one of the most ancient civilizations were disseminated throughout the world after the publication of some of these manuscripts by the Society.

The collection of oriental manuscripts by the Society started way back in 1807 and the process in right earnest started from 1822 onwards. This is found from the records that a valuable collection of manuscripts and books were received in 1822 from Lt. Col. Colin Mackenzie. In 1838, a Sucipustaka i.e. a list of manuscripts of Fort William was published. Since then the Asiatic Society has been collecting, cataloguing and editing manuscripts by renowned scholars in different fields.

The Asiatic Society's collection of manuscripts is unique of its kinds. It has about 45,000 manuscripts in forty one languages and dialects, covering a vast range of subjects.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MSS-9

"A Note on the Manuscripts on Vedānta Texts in South Bengal

GARGI BHTTACHARYA, WEST BENGAL

The aim of my paper is to attract the attention of the scholars to the treasure of Vedānta texts in the form of manuscript, available in South Bengal, Specially in the district of Nadia.

Being the birthplacde of Śrī Chaitanyadeva, the founder of Gauḍīya school and many other scholar-teachers of Vedānta, the district of Nadia has its own history in the study of Vedānta philosophy, Vaiṣṇavism and Bhaktivāda. As a result, many valuable manuscripts on several kinds of texts are available there and a big fond of it has been dedicated to Vaiṣṇavism. The Theory of Gauḍya Vaiṣṇavism has been revealed in these texts in the form of stotra, kāvya, nātya, caritakāvya and padāvalī. Many of them are not yet published and some of them are not well-known even to the scholars. For example, Kṛṣṇārcanacandrikā by Radhāmohanśarman, Bhaktitaraṅgiṇī by Vaidyanātha Bhaṭṭa, Premāmṛtastotra by Kṛṣṇacaitanya, Kṛṣṇabhakticandrika by Anantadeve, Rasagītikāstotra etc.

❖

MSS-10

The Need of Using Standard Accent-Marks in Editions of Vedic Texts

PROF. B.B. CHAUBEY

Accent is one of the main distinctive features of the Vedic language. Among the Vedic texts, printed with accent-marks, mention may be made of the following texts : (1) Ṛgveda Saṁhitā (Śakala) (2) Śukla Yajurveda (in both Mādhyandina and Kāṇva traditions), (3)Taittirīya. Saṁhitā (along with its Brāhmaṇa, Āraṇyaka and Upaniṣad), (4) Maitrāyāṇī Saṁhitā (with it's Āraṇyaka), (5) Kāthaka-Saṁhitā (partly, (6) Kauthuma Samhitā, (7) Atharvaveda (Śaunaka), (8) Śatapatha Brāhmaṇa (in both Mādhyandina and Kāṇva traditions). Many more Vedic Texts such as Kapiṣṭhala-Kaṭha Saṁhitā of the Kṛṣṇa, Paippalāda Saṁhitā of the AV, Brāhmaṇas (other than ŚB), Āraṇyakas (other than Tait Ār. and Maitrā. Ār.) and the Upaniṣads (other than Taiṭ Up) have been published, but without accent marks. The question is can these texts be published in accented form? In this regard my submission is in affirmative. This is a difficult but not impossible task. These texts can be published with proper accent marks on the basis of rules laid down in the Prātiśākhyas, Śikṣās and other texts dealing with accentology. The rules of accents given in grammatical texts like Aṣṭādhyāyī, Kāśikā etc. can also help to this end. For this purpose the following devices may be followed :

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

If any Saṁhitā belonging to a particular Śākhā has been published with proper accent marks, the Saṁhitā of the other recensions of the same Veda can be published with proper accent-marks following the same rules of accentuation, followed in the published text. For example, the Athrvaveda of the Śaunaka Śākhā has been published with proper accent-marks. But, the AV of Paippalād Śākhā has been published by Dr. Dīpaka Bhattacharya without accent-marks. It would have been in the fitness of things that the Paippalāda Saṁhitā would have been published with proper accent-marks, which have been followed in Śaunaka Saṁhitā.

❖

MSS-11

Problems of Surveying Catalogued and Uncatalogued Manuscripts

DR. RATNA BASU

There are different problems arising in the way of surveying catalogued and uncatalogued manuscripts of different repositaries. Surveyors can not complete the survey on the basis of the handlist. Printed and plublished descriptive catalogue only, e.g. 1) Descriptive Catalogue of Bengali Manuscripts and Printed Catalogue of Sanskrit Manuscripts of Bangiya Sahitya Parisad (2) Printed Catalogue of Sanskrit Manuscripts of Sanskrit Sahitya Parisad, (3) Handlists of Sanskrit Manuscripts of Indian Museum Collection of the Asiatic Society etc. In the Descriptive Catalogue of Bengali Manuscripts of Bangia Sahitya Parisad there are all details of manuscripts which must be recorded in the surveysheet, yet there is no classification. A surveyor must consult with the manuscripts for subject classification. In the Printed Catalogue of Sanskrit Manuscripts of Bangiya Sahitya Parisad also there are all details of the manuscripts, but there is no mention of size and condition of manuscripts or even the subject head.

❖

MSS-12

A Survey of the Manuscripts in Newāri script, preserved in the Asiatic Society, Kolkata

SUMITA CHATTERJEE, KOLKATA

The Newārs were the ruling race of Nepal and Newāri was the state language of Nepal before 1769. Buddhism was introduced in Nepal at a very early date. The sacred books of the Nepalese Buddhists were written in Sanskrit. and that language became the

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

principal vehicle of Nepalese literature. Newāri means 'the language of Nepal'. Numerous Buddhist works composed in Sanskrit existed in Nepal.

The characters used in writing Newāri are Indian and were developed from the oldest, eastern Brāhmī Alphabet. The 'hooked-top' charaters used in 12th to 16th centuries and the later with the straight topped writing.

Asiatic Society of Calcutta is enriched with B.H. Hodgson's valuable collections of Newāri manuscripts. Hodgson's discovery of the Sanskrit-Buddhist works in Nepal entirely revolutionized the history of Buddhism. He distributed these manuscripts among the renowned Oriental Societies of the World, for the use of scholars. Some of the reputed libraries and museums being the British Museum, the Royal Asiatic Society of London, Asiatic Society of Paris etc.

❖

MSS-13

Ayurvedic Manuscripts in Orissa State Museum

DR. G.C. NANDA, PATNA, BIHAR

Ayurveda and its concepts/theories are available through writings of the sages who had framed them in the form of formulae and presented in the form of plamleaf manuscripts for future generations. There are a number of libraries, repositories, individuals; region and states who have innumerable manuscripts in the from of palm leaf or otherwise which are yet to be explored and brought to the acceptance and recognition in the Ayurvedic fraternity. The state of Orissa is one such region where one can-find hordes of palm leaf manuscripts in different libraries, districts and even villages. In recent times, some of these manuscripts and rare books have been highlighted through scientific/literary symposia and publications still there are more waiting to be re-searched. This ancient Ayurvedic heritage must be explored, researched & presented for future workers in the field of literary Ayurvedic research. Further efforts are on to explore the manuscripts in different repositories. Till date 728 numbers of manuscripts of Orissa State Museum, Parija Library Utkal University have been documented.

This paper is a document compilation of these two renowned repositories of Orissa where vast-nos of Ayurveda manuscripts are preserved. The elaborative study (descriptive catalogue) of the work in process is coming shortly and can be more helpful for exploration of the hidden treasure.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MSS-14

Śucīndrasthalamāhātmya A Text : Critical Study

DR. ANAND DILIP RAJ., KERALA

Śucīndrasthalamāhātmaya (SSM) is an unpublished Sanskrit work of anonymous authorship of 17th Century A.D. A Māhātmya is a work which generally gives an account of either a particular virtue or the merits of a particular divinity or a sacred shrine. It embodies rich tradition unique to Indian mythology and folk lore. SSM provides a full fledged legendary account of the origin and development of Trimurty Temple situated at Śucīndram in Tamil Nādu. The author of this Māhātmya modified many Purānic accounts and used them to glorify the Śucīndram Temple and some of the other important Temples of South India. Indra's purification from the sin of seducing Ahalya, the Trimurtis progeny as the children of Atri and Anasūya, the story of begetting the face of a monkey to Nārada, the purification of Paraśurāma from the sin of killing Ksatriyas and Gajendramokṣa are the important Purānic stories described beautifully in SSM. The work points out rare Temple customs of South India like Śucīndram Pratyayam and Ardhayamapuja of Indra. The work also narrates the glory of many important Tirthas of South India and highlights the importance of Asvatta worship, SSM gives some of the Vedic mantras and signifies the importance of performing ārdra vṛata.

❖

MSS-15

Modern Trends of Preserving Manuscripts

DR. HIRAK KANTI CHAKRABORTY, VARANASI

Manuscripts are of valuable part of our rich literally and cultural heritage. This heritage encompasses almost entire spectum of human enquiry, exploration and existence covering philosophy, religions, language, literature, metaphysics and so on.

Indeed preservation and maintenance of manuscripts is a challengeable job but the offerings of information technology having solution not only to a greater extent but also have enhancement of its wide scale access. The transfer of seminal contents of the manuscripts to a digital form is the appropriate modern technology used at present. Digitization retains to the conversion of an item of printed text, manuscripts, image or sound, film and video recording from one format (usually print or analogue) into digital. Digitization requires a basic process, which involves different sets of hardware and

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

software technologies at each step. Determining the appropriate technology is directly linued to the anticipated use and purpose of the material being digitized.

❖

MSS-16

Development of Manuscripts in West Bengal

DR. BALARAM MONDAL, KOLKATA

Our ancient culture and literary heritage is preserved in MSS. MSS are valuable for research scholars who work hard to shed light on ancient Indian culture. The mss belong to different periods of time. They are written on different kinds of materials. Mainly palm-leaf, talu paper and mill made paper were commonly used in Bengal. Many illustrated MSS are of different ages in various institutions and libraries.

At present we find two types of manuscripts. The first one are those which have been published and the second one are unpublished works. In modern age there are many scientific methods for preservation of manuscripts which we find in the Manuscripts Museum of the Asiatic Society of Calcutta.

In the present paper I like to focus on the methods adopted by the Asiatic Society to preserve unpublished manuscripts.

❖

MSS-17

Surveying Bengali Manuscripts

ANUP KUMAR SANTRA, KOLKATA

The ancient and medieval literatures have come down to us mainly in the form of manuscripts. Though with the advent of press, however, wrongly so, the importance of manuscripts was undermind, it should be kept in mind that then also those manuscripts were of historical value. Ancient Bengali manuscripts remain highly significant. Though the complete history of the Bengali race has not yet been unfolded, the history of the beginning of the Bengali language can be traced in the manuscripts. The value of manuscript is immense in the spheres of knowledge, religious thought and cultural preoccupation. It is from the manuscripts that we come to know many facts about the ancient society of Bengal. Manuscripts are the main supporting base for understanding. One can attain considerable knowledge by reading the account as laid down in manuscripts.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The value of a manuscript is in rediscovering the history of a nation and in acquiring knowledge about the ancient cultural heritage. All people should understand how necessary it is to recover the still existing manuscripts and keep them properly in the Manuscript Library.

❖

MSS-18

Handling and Tackling the Manuscripts of Nyāya Texts

JYOTEE MITRA, KOLKATA

I have dealt with manuscripts of Nyāya texts. These Nyāya manuscripts are the most well written manuscripts so far as calligraphy and writing style are concerned. The problems as we experience may be summed up in brief as follows : (1) These Nyāya manuscripts are incomplete, (2) We are unable to find folio numbers and as a result of those cases we often have to note the number of folios by counting. Since, the manuscripts are incomplete, there are no colophon. Due to these only the marginal indications or abbreviations given, are the main help for us in the matter of identifying the title and author.

NMM is showing the great scholarly path of learning. I think surveying of manuscripts is yet a privilege of only very few scholars.

❖

MSS-19

Technicalities of Assisting the Management of Manuscripts of Different Holdings

NILADRI MITRA, KOLKATA

Under NMM Govt. of India, CUMRC. I am assisting for technicalities in the management of manuscripts in different holdings. I help the surveyors and cataloguers to clean the manuscripts and count the folios. Mainly I arrange the bundles of manuscripts. Some manuscripts make a single bundle, it depends on their size and numbers of folios. But palm-leaf manuscripts shlould be kept separately as they have different size most of the time they are too frafile and brittle, so they should be kept carefully in a different shelf of almirah. After arranging and keeping the manuscripts in the cupboards we should give some space for air circulation. After keeping the manuscripts properly we give tobacco leaves, vacha, napthalin bricks in order to keep the air dry and repel the harmful insects.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

There must be certain distance between the manuscripts and pesticide. We make the location registers of manuscrpits, by which one can handle the manuscripts easily.

Above all we need awareness of local people. Most of the times the indifference or ignorance is the main problem. Manuscripts are our national treasure of heritage value which carry the culture of our country. Manuscripts show a new path of learning. So, I would request all to take care of our national heritage which contain the valuable history of our country.

❖

MSS-20

Adhyātmavidyopadeśa An Unpublished Vedānta Text

ATREYEE BAGCHI BASU, KOLKATA

The Adhyātmavidyopadeśa (AVU) is an unpublished advaita Vedānta text which is available in the Indian Museum Collection of the Asiatic Society at Kolkata bearing the accession number IM 4355. The whole manuscript consists of 46 folios and is written in Sanskrit with Devanāgari script on handmade paper. The size of the manuscript is 20.5x12 cm. The AVU is a complete manuscript and there is no missing folio in it and the condition is fair. Usually each folio of AVU contains six lines but in some folios exceptions are noted in respect of lines. In those folios (7a, 27a, 27b,.....) there are eight lines found instead of six lines. The last folio (46a) contains only three lines and that is the end of the text and the manuscripts of AVU.

The AVU is in the form of a dialogue between a preceptor and a disciple. This dialogue, is a collection of some spiritual answers of the preceptor to his disciple.

The AVU is to be compared with a work of Śaṃkarācārya entiled Ajñabodhinī (AB). The collective and comparative material for the critical edition of AVU is certainly AB, since both are regarded as works of Śaṃkarācārya. However, the collected works of Śaṃkarācārya does not contain any text entitled AVU, even though AB is very much there. It is to be investigated whether these are totally different text, or these are similar text authored by the same Śaṃkarācārya, and further which of the titles is valid, if these are evidences of the same text with collective variations.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Section - 18

EPICS & PURANAS

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

EP-1

आदिपुराणस्य समीक्षणम्

डॉ० रुरुकुमारमहापात्रः, रामनगरम्, वाराणसी

महापुराणानां परिपूरकेषूपपुराणेषु प्रस्तुतादिपुराणस्य गणनं केवलेन बृहद्धर्मपुराणेन कृतमस्ति। अन्यासु कासुचिदपि सूचीषूपपुराणत्वेनाऽऽदिपुराणस्योल्लेखो न कृतोऽस्ति। परन्तु प्रायः बह्वीषु सूचीषु सनत्कुमारोक्तस्य 'आद्यम्' इति पुराणस्योल्लेखो दृश्यते। इदमेवाद्यपुराणं प्रस्तुताद् आदिपुराणाद् भिन्नमिति विचार्यते। यतो हि प्रस्तुतमादिपुराणं सनत्कुमारोक्तं नैव भवति। पुराणमिदमात्मानं सकलपुराणसारभूतमिति कथयित्वा यद्यपि आत्मनः महापुराणत्वमुपपुराणत्वं वा नैव ख्यापयति, तथापि पुराणेषु आत्मनः सर्वश्रेष्ठत्वं प्रतिपादयति। इदमेवास्माभिरनुभूयते यद् वास्तवतो आदिपुराणाऽऽख्यं पुराणमिदं स्ववर्ण्यविषयाणां गाम्भीर्यात्, नूतनतथ्यानां समुपस्थापनात् सरलभाषाशैलीभ्यां विषयप्रतिपादनाच्च हेतोरुपपुराणेषु किमपि वैशिष्ट्यमधिकरोति। अधुनाऽस्य पुराणस्य यथावत् स्वरूपं प्रस्तूयते।

आदिपुराणस्य यत्पुस्तकं स्वीकृत्य मया समीक्षितं तत् वेंकटेश्वरस्टीम् प्रेस मुम्बई इत्याख्यानेन मुद्रणालयेन प्रकाशितमस्ति। इतोऽपि भिन्नं नवीनकृष्णलाहाद्वारा कलिकतायां वङ्गीयानुवादेन सह प्रकाशितं किमपि पुस्तकं वर्तते। अस्योल्लेखः राजेन्द्रचन्द्रहाजारामहोदयेन स्वकीये (Studies in the Upapuranas) नामके पुस्तके कृतोऽस्ति। परन्तु पुस्तकमिदं मया नैव प्राप्तम्। अतो मया प्राप्तस्य 'श्रीवेंकटेश्वर'मुद्रणालये मुद्रितस्य प्रकाशितपुस्तकस्याऽऽधारेण पुराणस्यास्य स्वरूपं महत्त्वञ्च निबन्धेऽस्मिन् प्रस्तोष्य।

❖

EP-2

अध्यात्मरामायणे नवधा भक्तिः

पं० सीतारामदासशास्त्री, उडीसा

वैदिकसाहित्ये देवानां भक्तिसाहचर्यं दृश्यते। ऋत्विक्समर्पितस्य हविर्भागस्य सेवार्थं ते देवाः संहतिं सम्मतिं च दर्शयन्ति। 'भज्' सेवायामिति धात्वर्थबलेन देवादिनिष्ठप्रीत्यनुकूलव्यापारो भजेरर्थः। सेव्य-सेवक-सम्बन्ध-मूलतया सेव्य इष्टदेवः सेवकश्च जीवो भवति। भक्तेः क्रमविकासे साध्यरूपायाः साधनरूपायाश्च प्रायेण वर्णनं दृश्यते। तत्र साधनभक्तौ नवधा भक्तिः प्रसिद्धिं गता। श्रीमद्भागवते अस्याः नवधा भक्तेः पुङ्खानुपङ्खविवरणमुदाहरणञ्च दृश्यते। अध्यात्मरामायणे श्रीरामचरितमानसे च तस्या भूरि वर्णनमुपलभ्यते।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्यात्मरामायणमपूर्वं भक्तिसाहित्यमस्ति तत्राऽपि तस्याः प्रसिद्धायाः नवधाभक्तेः स्वरूपं द्रष्टुं शक्यते, परन्तु तत्र नवधाभक्तेः रूपान्तरं दृश्यते सा एव भक्तिः सामाजिकदृष्ट्या अत्यन्तव्यापिकाऽस्ति। तत्र अरण्यकाण्डे नवधाभक्तिः पृथक् वर्णिताऽस्ति।

प्रसिद्धासु नवधाभक्तिसु कासाञ्चिद् ग्रहणं भवति, अन्यासां च मोक्षपरकत्वमित्ययं विशेषः। अस्मिन् प्रबन्धे तासां नवधाभक्तीनां तुलनात्मकमध्ययनं प्रदर्शयिष्यते।

❖

EP-3

गारुडपुनर्जन्मसिद्धान्तः

डॉ० सुधाकराचार्यः, मेरठनगरम्

गरुडपुराणजं शकलितं न पुनर्जननं
हितमिह भाति तन्नरकभूतपिशाचयुतम्।
सरति सभुवैरः स्वचितकर्मभिराप्रलयं
परिणतिसंहतैरनुगतैरुचितैः सततम्॥1॥

विबधगणानुगां सुकृतसञ्चयजां नु सृतिं
पितृजनवल्लभां सुकृतदुष्कृतसङ्करजाम्।
अथ च पिशाचिनीं सततदुष्कृतकर्मफलां
तिसृभिरिहासकृद्गतिभिरातनुते सकलाम्॥2॥

समिह हि केतनो हुतवहः खलु पञ्चविधः
क्वचिदपि नेङ्गते न च विभाति नु नाकगतिः।
उपदिशतेतरामवशतामिव दायभुजां
सुकृतभुजां मुदा सकलदुष्कृतसन्तरणे॥3॥

धर सुकृतं मुदा सकलभोगनिधिं प्रणतो
विवशतयाऽथवा स्वपितृभावतयाऽपकृतम्।
पितर इहासते सुवधिया हृदि नित्यचरा
विधिरयमत्र ते नवपदो नवलः सुकरः॥4॥

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

EP-4

गरुडपुराणे पुनर्जन्मनः पञ्चहेतवः

सुश्री अंजूरानी, मेरठनगरम्

सभापतीन् प्रथमं नु नमामः। सभाजनान् हृदयेन भजामः।
गरुडपुराणाद्गीत्ता सहिता। प्रस्तौत्यञ्जूः पत्रं महिता।
गरुडपुराणं प्रेतविशालम्। लघ्वी गीता तूच्चं भालम्।
गीताया निकषेण सुघटितम्। पुनर्जन्म राजते सुजटितम्।
कृष्णभाषिताः पञ्चहेतवः। सप्रपञ्चमिह तर्ककेतवः।
अधिष्ठानमर्थं कर्त्ता दैवम्। करणं विविधाश्चेष्टाश्चैतम्।

पुनर्जन्म गीता तथा गरुडपुराणं चात्र।
एधन्ते क्रमशः कथाहेतुतन्तका अत्र॥

प्रथममधिष्ठानं विचरामः। पुर्जन्मनः किं कथयामः।
कर्तृणां करणानां स्थानम्। श्रुतं क्रियाया नाधिष्ठानम्।
सतता गतिः संज्ञया सिद्धा। एवमेव संसृतिः समिद्धा।
कर्त्ता करणं चेष्टा दैवम्। क्रियाकृतेऽधिष्ठानं नैतम्।
प्रश्नो मनसि भ्रमति सन्ततः। कर्त्ता कोऽस्ति भवति यो नियतः।
गरुडपुराणे कर्त्ता जन्तुः। पुनर्जन्मनो निहितरतन्तुः।

कर्तुः कर्म पृथग्विधं नानायोनिषु भाति।
कर्तारं ह्यनुसरति तज्जन्तुरयं प्रतिभाति॥

जन्तुः पञ्चेन्द्रियसमायुतम्। धरति शरीरं रूपसंयुतम्।
गतिः कर्मणा मिलति विभिन्ना। विविधाकृतिभिश्छन्ना भिन्ना।
सरति कैर्नु करणैश्चराचरम्। लभते येन पुनः संसारम्।
गर्भ एव तत्करणं सरलम्। गरुडपुराणे विलसति विमलम्।
कथमपि न हि सुविधानम्। गरुडपुराणे भाति विधानम्।
चेष्टायास्तु कथापि न कथिता। सुधियां व्ययेयमतिसङ्कलिता।

दैवं मेन्द्रियगोत्तरं चेष्टा मत्या भाति।
गरुडो विष्णुसंरान्नो व्यर्थमति न हि पाति॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्रष्टुं यं कोऽपि न च समर्थः। न प्रकटः समतोऽतिव्यर्थः।
प्रयोजनं प्राप्तुं यदि हि मनः। प्राप्तुह्यत हि पुनर्जन्मनः।
देहक्षयस्य पौनःपुन्यम्। पुनर्जन्म कर्मणां न जन्यम्।

यद्यपि कथासु नादितं बहुशो बहुषु विभाति।
किन्तु गारुडे हेतुभिः पुनर्जन्म खलु भाति॥

❖

EP-5

शान्तो भक्तिश्च : विवेचनम्

प्रो. गोपालकृष्णदासः, भुवनेश्वरम्

परम्परामनुसृत्य प्रायशः आलङ्कारिकाः काव्याच्चतुर्वर्गफलप्राप्तिरिति प्राचीनं मतं प्रत्योङ्कारं दर्शयन्ति। त्रिवर्गसाधनं नाट्यमिति मतमपि प्राचीनतरम्। काव्यसम्प्रदायस्य विस्तारेण नाट्यस्यापि काव्येऽन्तर्भावात् तस्यापि मोक्षोपादायकत्वं समर्थितम्। नागानन्दादिरूपकेषु सौन्दरनन्दादिकाव्येषु चैतन्मतस्य सम्भावना पुरस्कृता। काव्यजगति स्तोत्रकाव्यस्य सम्प्रदायविशेषेण बाहुल्येन दर्शनात् शान्तरसस्य ग्रहणमनिवार्यमासीत्। साधारणतया 'ब्रह्मास्वादसहोदरः रसः' इति ग्रहणम्; परन्तु निवृत्तिपरके शान्ते साक्षाद् ब्रह्मसाक्षात्कार इति मतमपि सलिलतुषारवृत्त्या मान्यमताधारोपरि विलोक्यते।

चित्तवृत्तिः द्विधा। प्रवृत्तिर्निवृत्तिश्चेति। निवृत्तौ यथा शान्तरसः तथा प्रवृत्तौ मायारसः प्रतिभाति। एकत्र रसोत्पत्तिरपरत्र नेति वक्तुमशक्यमिति रसमञ्जरीकारस्य मतम्। रूपगोस्वाम्यादयो वैष्णवाचार्याः साध्यरूपाया भक्तेः प्रबलतया समर्थकाः प्रतिपादकाश्च। भक्तिं विहाय किमपि तत्त्वमङ्गीकर्तुं ते न उत्सहन्ते न सहन्ते च।

उत्कलप्रान्तस्य देवः जगन्नाथः भुक्ति-भक्ति-मुक्तिदातेति मतं मान्यम्। तदर्थमुत्कलेषु वैष्णवधारायां ज्ञानमिश्राया भक्तेः बाहुल्येन प्रचारो दृश्यते। एतन्मते साधनरूपाया भक्तेर्ग्रहणं दृश्यते। तत्र मोक्षः साध्यः। एतादृश्या साधनरूपाया भक्तेः भक्तिरसस्य द्वैविध्ये (साध्यसाधनरूपे) अन्तर्भावं केचित् कुर्वन्ति। शान्तोऽपि नवमो रस इति मतस्य ये पोषकाः, ते शान्तातिरिक्तस्य कस्यचिद् दशमरसस्य ग्रहणे तथा आग्रहं न दर्शयन्ति। तेषु खीष्टीयाष्टादशशताब्द्याः आलङ्कारिकः जगन्नाथमिश्रः स्वकीये रसकल्पद्रुमाख्ये विशालग्रन्थे भक्तेः लोकमान्यतां विलोक्य शास्त्रमान्यतामापादयितुं तस्याश्च नवसु रसेषु ग्रहणार्थं सर्वथा प्रयतते। तद्ग्रन्थस्य दशमंपल्लवे पञ्चमे दले 'नन्वयं (शान्तो रसः) विष्णुभक्तिं विना न सम्भवतीति सकलपुरुषार्थमूर्धाभिषिक्तमुक्त्येकसाधनत्वेन भक्तिरभिधीयते' इति मतस्य समीक्षणार्थं प्रबन्धोऽयं प्रस्तूयते।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

EP-6

श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्रे प्रभुः काशीविश्वनाथः

डॉ. श्रीनिवास आचार्यः, पुरी

श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्रे विराजित-श्रीमन्दिरे प्रभोः काशीविश्वनाथस्यावस्थितिविषयः नितरां रहस्यमयः प्रतीयते। लघुनिबन्धेऽस्मिन् किंवदन्तीं तथोपलब्धं तथ्यं चाधारीकृत्य प्रायशः चतुश्शतवर्षेभ्यः प्राक् प्रतिष्ठितस्य काशीविश्वनाथमन्दिरस्यावस्थितिः, विश्वनाथस्योपस्थितिः, मन्दिरस्य देवस्य च प्रसिद्धिरिति एतेषु विषयेष्वालोचना कृता लेखकेन।

❖

EP-7

पुराणोक्तदीर्घायुष्कतायां वेदसाक्ष्यम्

डॉ. आशुतोषमिश्रः, वाराणसी

पुराणेषु देव-मुनिमनुष्यादीनां दीर्घायुष्कतां वर्णितां दृष्ट्वा तत्र संशयानास्सन्तस्तदवैदिकतां पुष्णन्ति। वयमद्य अमरभारतीभक्तानां पाठकानां समक्षमस्याः समस्यापूर्त्यर्थं सहृदयहृदयङ्गमानि वैदिकप्रमाणानि समुस्थापयामः। अत्र तेषामवधानमपेक्ष्यते।

तत्र वादिनां विप्रतिपत्तिकारणमेतद् यत्—'शतायुर्वै पुरुषः' (ए.ब्रा. 2।2।7) इति शतवर्षपरिमित-पुरुषायुषश्रवणम्, परं पुराणेषु क्वचित् सहस्रवर्षायुषोऽपि दर्शनम्, अत एव तदवैदिकमिति। अत्र विचारयामः—उक्तप्रमाणे शतायुरिति समस्तशब्दः, तेन शतानामप्यायुर्भवितुमर्हति, एकवचनेनैव षष्ठीसमासो भवेद्, बहुवचनेन च षष्ठीसमासो न भवेत्, एष न्यायो नाम? किं वागनुशासनम्? एवं सति सहस्रवर्षाणामायुरपि दशशतीत्वात् 'शतायुर्वै पुरुषः' इत्येतत्प्रमाणान्तर्गतमेव सिद्धम्। यद्यत्रैकवचन-समास एवाग्रहः, तर्हि वयमभिधास्यामः, यदत्र शतशब्दो नहि 100 सङ्ख्यावाचकः प्रत्युत बहुत्वपरः, निघण्टौ (311) शतमिति बहुनामसु पठितम्, बहुत्वन्तु सहस्रवर्षाणामप्यव्याहतम्। यद्ययमर्थोऽश्रद्धेयो मन्येत, तर्हि शतवर्षेभ्योऽधिकमायुः स्यादेव न वर्तमानाशक्तिमये समये। परन्नैवमस्ति, गतवर्षेष्वेव 150 वर्षीय एको वृद्धः मृतः। लवपुरीय 'मिलाप', 'प्रताप' नामकार्य्यसामाजिकपत्राभ्यामपि सप्तशत-700 वर्षीयस्यैकस्य साधोश्चित्रं तत्सङ्केतश्चापि प्रकाश्यत (1933 ईशवीयेऽगतस्तमासे)। स्वामिदयानन्देनाऽपि 'सत्यार्थप्रकाशे' 3 समुल्लासे, 40 पृष्ठे 17 पंङ्क्तौ पुराणां ब्रह्मचारिणः 400 चतुश्शतवर्षाऽऽयुर्मतम्: यदि तद् वेदानुकूलम्, तर्हि दशशतवर्षपरिमितमायुरेव कथमवैदिकं स्यात्? तेन वेदमते एकशतवर्षायुर्न; किन्तु तदधिकमपि सिद्धम्।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

EP-8

वैद्यनाथज्योतिर्लिङ्गस्य प्रामाणिकता

प्रो. राधारमणठाकुरः, देवघर.

झारखण्डवनान्तरालवर्तिनी वैद्यनाथनगरीति व्यपदिश्यमाना देवगृहनगरी प्राचीनकालादेव साधकोपासकानां च चर्चायाः केन्द्रीभूता राजते इत्यतिरोहितं सर्वविदुषाम्। गुप्तोत्तरभारतेषु आदित्यसेन-गुप्तोस्मिन् तीर्थे-आगतवान्।

मन्दिरस्थिताभिलेखेनास्य सम्पुष्टिर्भवति। पालयुगे वैद्यनाथक्षेत्रस्य शासनं लक्ष्मणसूरस्याधीनोसीत्। बटेश्वरशिलालेखे तीर्थस्य वार्ता मिलति। अकबरकालीनाभिलेखेनाप्यत्रस्थज्योतिर्लिङ्गस्य महत्त्वं वर्धते। विद्यापतिकृतपद्येष्वस्य चर्चा चर्चिताऽस्ति। सनातनधर्मस्य केन्द्ररूपे वैद्यनाथज्योतिर्लिङ्गस्य तीर्थक्षेत्रस्य महती ख्यातिर्प्रसिद्धाऽस्ति। वैद्यनाथज्योतिर्लिङ्गमद्यापि जगत्प्रसिद्धं तथा भारतवर्षस्य प्रमुखतीर्थस्थलरूपेण प्रसिद्धमिति विद्वांसो वदन्ति। अस्य प्रामाणिकता 'लोकाः प्रमाणम्' इति।

❖

EP-9

पुराणेषु देवीतत्त्वम्

डॉ. काह्नुचरणपण्डा, ओडिशा

वेदादारभ्य पुराणं यावच्छक्तितत्त्वस्य प्रभावः वरिवर्त्तते। वेदस्य शक्तितत्त्वं पुराणेषु देवीतत्त्वरूपेण रूपान्तरितम्। ततः सचराचरनिखिलजगदुत्पत्तिः जायते एषा ब्रह्मणः शक्तित्वेन प्रतिपाद्यते। शक्तिः सूक्ष्मातिसूक्ष्माव्यक्तत्वेन स्थीयते।

भारतीयदर्शनशास्त्रे आद्या शक्तिः तु प्रकृतिरूपा। ब्रह्माण्डस्य सृष्टेः कारणत्वेन शक्तिः प्रमुखत्वेन स्थानमलङ्करोति। जनाः शक्तिं पूजयन्ति। शक्तिः एव मातृदेवीत्वेन पूज्यते। शक्तेः पुरुषः प्रकृतिश्चैव जातः। परतत्त्वात् मात्रुपासनापद्धतिरेव वैदिककालादेव प्रचलति। ऋग्वेदे माता अदितिरूपेण ख्याता, या सर्वलोकजननी विश्वधात्री, मुक्तिप्रदायिनी, आत्मस्वरूपिणी आद्यशक्तिः जगज्जननी भगवतीत्वेन प्रसिद्धा। ऋग्वेदे स्वतन्त्रतया देवीसूक्ते अथवा वाक्सूक्ते तस्याः महिमा वर्णितः, सा तु जगदीश्वरी 'अहं राष्ट्री.' भक्तानां मोक्षप्रदानकारी, जीवानामाभ्युदयः निश्रेयसः कारणः सर्वमेव तदाश्रित्य वर्त्तते।

वेदोपनिषद् विहिताद्यशक्तितत्त्वमाधारीकृत्य पुराणेषु देवीतत्त्वस्य स्वरूपं तथा उपासनाविधानं विस्तृततया वर्णितं दृश्यते। कालक्रमेण शक्तितत्त्वस्य प्रसारप्रचारेण देवी गृहे गृहे उपासिता जाता।

पुराणमाध्यमेन वेदार्थतत्त्वस्योपबृंहणं कृतं विद्यते। जगन्माता जगदम्बाजगत्कल्याणीरूपेण ख्याता जाता। तदुक्तं—'इतिहासपुराणाभ्यां वेदं संमुपबृंहयेत्।'

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

EP-10

वाल्मीकीयरामायणे नास्तिकदर्शनानां सन्दर्भाः

डॉ. रामपालशुक्लः, बड़ोदरा

संस्कृतसाहित्ये कवीनां प्रथमः कविः वाल्मीकिरेव। स एव च रामायणं नाम विश्वविख्यातं महाकाव्यं सर्वकाव्यानामादिभूतं प्रणिनाय।

अस्य काव्यस्य प्रमुखं प्रयोजनं वेदविहितानां तत्त्वानां जनसाधारणेषु प्रचारो विद्यते। ग्रन्थेऽस्मिन विश्वस्य सर्वासां समस्यानां समाधानं सरलतया भवति। तापत्रयतप्तानां प्राणिनां प्रबोधम्, पथिभ्रष्टानां कर्तव्यज्ञानं, भक्तानां भक्तिभावं, ज्ञानिनामलौकिकज्ञानस्य प्रकाशञ्च सम्पादयति। तात्पर्यमिदमस्ति यद् ये जिज्ञासवः येनोद्देशेन रामायणस्य पठन्ति ते समुद्रादमूल्यं रत्नभिवाभेय लोककल्याणकारिणं बहुमूल्यं सदुपदेशं प्राप्य स्वजीवनं सफलयितुं समर्थाः भवन्ति।

काव्यमिदं भारतीयसंस्कृतेः समस्तविधानामाकरः। तत्र स्थाने स्थाने प्रसङ्गवशद् दार्शनिकतत्त्वानां विवेचनं सरलतया प्रस्तुतमस्ति। प्रकृतग्रन्थे सूक्ष्मतया सर्वेषां दर्शनानां सिद्धान्तस्य विवेचनं कृतमस्ति। परमास्तिकदर्शानानां विशेषतो विवेचनं समुपलभ्यते। तथापि ग्रन्थेऽस्मिन् नास्तिकदर्शनानामपि सन्दर्भाः नाति-न्यूनाः।

❖

EP-11

महाभारतकथाविस्तारे देवव्रताय शान्तनोः वरदानावश्यकता

श्रीमती प्रणतिमिश्रा, शान्तिनिकेतनम्

धर्म-ज्ञान-वैराग्य-भक्ति-नीति-सदाचारादिसकलशास्त्रविभवैः मण्डिते कृष्णद्वैपायनव्यासविरचिते महाभारताख्ये काव्ये अन्य-भारतीयपुराणादिवत् बहु-संख्याकानां वराणां सुविन्यासः समुपलभ्यते वरदानेन भगवता व्यासेन भारतकाव्यस्य कायिकवृद्धिसाधनत्त्वं महता श्रमेणापि चानायासेन क्रियते इति विदुषामनुभवः।

समग्रेऽस्मिन् भारते काव्ये प्रामुख्येन ऊनचत्वारिंशत् (39) संख्याकानां वराणां समावेशः क्रियते। पर्वानुक्रमेण वराः निम्न-संख्यात्मकाः भवन्ति। यथा—आदिपर्वणि त्रयोदशवराणां, वनपर्वणि दशसंख्याकानां वराणां, उद्योगपर्वणि वरद्वयस्य, भीष्मपर्वणि एकस्य, द्रोणपर्वणि एकस्य, कर्णपर्वणि पञ्चवराणां च सन्निवेशः परिलक्षते।

तेषु वरदानेषु देवव्रताय शान्तनुकर्तृकवरदानं वस्तुतः महाभारत-कथा-विस्तारे प्राणवायु-स्वरूपं भवति। प्रबन्धेऽस्मिन् देवव्रतं प्रति शान्तनोः वरवर्णनं, कथावर्धने तस्य सहयोगः पुनरपि तस्य युक्तिः आलोचिता भविष्यति।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

EP-12

तीर्थाटनमस्य धार्मिकं नैतिकं च मूल्यम्

श्रीव्रजकिशोर स्वाईं, पुरी

पुराणवाङ्मयस्य उपजीवनेनं तीर्थाटनस्य स्मार्तधर्मपर्याये प्रवेशो जातः। जलस्य क्षेत्रस्य च वैशिष्ट्यं पुरस्कृतस्य तीर्थाटनस्य सर्वस्मिन् समये धार्मिकं नैतिकं च मूल्यं निर्णीयते, कदाचिच्च उभयोः मूल्यमभिलष्यते। तीर्थाटनस्य धार्मिकमूल्योपजीवनेन व्यक्तेः तीर्थसम्बन्ध उपकल्पितः; किञ्च नैतिकमूल्याधारेण समाजस्य तीर्थसम्बन्धः परिनिष्ठितः। अस्यां स्थितौ उभयोराभारस्य उपजीवनेन यत्र मूल निर्दिष्टा जीवनधारा स्थिरीक्रियते तत्र तीर्थमिदं धामपर्यायमवनरति। पूज्यभूखण्डस्य उपास्यदेव विग्रहस्य असामान्यप्रतिपत्त्या तीर्थमिदं क्षेत्रसंज्ञां धत्ते। यद् वा भवतु तीर्थाटनमत्र धार्मिकं नैतिकं च मूल्यं भृशं विधत्ते।

अस्मिन् विषये विमर्शं कृत्वा इदमेव तात्पर्यं निश्चीयते यत्—(क) तीर्थाटनमेकां लोकप्रियधार्मिकप्रवृत्तिं विधत्ते (ख) तीर्थाटने परमसत्ताया अवरोहणं मन्यते। (ग) तीर्थाटनेन पथातिक्रमण-तीर्थश्रम-तीर्थस्नानादिभिः कर्मभिः नैतिकताया उद्रेको भवति। (घ) देश-काल-पात्रभेदेन अस्य धार्मिकं मूल्यं, सामान्येन नैतिकं मूल्यं च निश्चीयेते।

❖

EP-13

श्रीमद्भगवद्गीताया योगचिन्तनम्

डॉ. धनञ्जयवासुदेवद्विवेदी, राँची (झारखण्ड)

गीतायां योगसम्बन्धे ये विचाराः प्राप्यन्ते तेषामपूर्वं वैशिष्ट्यं वरीवर्ति। अस्याम् अष्टादश अध्याया वर्तन्ते। प्रत्येकस्याध्यायस्य नाम पृथक-पृथग्-योगस्योपरि विद्यते तथापि अस्यां सांख्य(ज्ञान)-योगस्य कर्मयोगस्य भक्तियोगस्य च निरूपणं प्रामुख्यं भजते। एतेष्वेव योगेषु अन्ये सर्वे योगाः समाविष्टाः सन्ति। तत्रापि सांख्ययोगः कर्मयोगश्च यथार्थतः एक एव। सांख्ययोगौ पृथग् बालाः प्रवदन्ति, न तु पण्डिताः यतो हि उभयोः फलम् एकमेव गन्तव्यस्थानमेकमेव। तदस्ति परात्परस्य परब्रह्मणः प्राप्तिः। भगवान् वासुदेवः सच्चिदानन्दस्वरूपः। तमवाप्य तापत्रयस्य आत्यन्तिकी निवृत्तिः ऐकान्तिकस्य आत्यन्तिकस्य च सुखस्याधिगतिः—'यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः। एतौ द्वावपि योगौ भक्तियोगसूत्रेणाबद्धौ। एते 'सर्वे योगाः इदमेव घोषयन्ति यत् अस्माभिः शास्त्रविहितान्येव कर्माणि सम्पादनीयानि। यानि कानि च कर्माणि क्रियन्ते तानि सर्वाणि भगवते अनिवार्यरूपेण सर्वतोभावेन समर्पितव्यानि स्युः। पुनश्चेदमपि ज्ञेयं यत् सर्वाण्येव कर्मजातानि प्रकृत्यैव क्रियन्ते न तु मनुष्यैः। अज्ञानवशादेव मनुष्यः कथयति यदहम् अमुककर्मणः कर्ता। किञ्च प्रकृत्याः कार्यकलापेषु भगवान् कृष्णः अध्यक्षतां करोति—'मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्'। तस्मादेव जगच्चक्रमः अनवरतं प्रचलति। योगः सर्वार्थसाधकः। स हि कर्मसु कौशलम्।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

EP-14

श्रीजगन्नाथस्य यात्रातत्त्वानां धर्मशास्त्ररीत्या समीक्षा

डॉ. खगेश्वरमिश्रः, पुरी

वेदानुमापकशास्त्रत्वेन धर्मशास्त्रस्य महत्त्वं सर्वविदितम्। धर्मशास्त्रे च सांवत्सरिकव्रतोत्सवानां कर्माङ्गकालविचारः प्रमुखविचारविषयः। उत्कलीयपरम्परायां श्रीजगन्नाथमन्दिरे प्रचलितानां व्रतोत्सवानां योगदानमतीव महत्त्वपूर्णम्। एते च श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्रे द्वादशयात्रानाम्ना प्रसिद्धाः सन्ति। एकाम्रक्षेत्रे-(भुवनेश्वरे)ऽपि चतुर्दशयात्राणां प्रसिद्धिः सर्वसम्मता। उत्कलीयपुराणेषु शास्त्रेषु चैतासामुपरि बहुचर्च्चाः दृश्यन्ते। धर्मशास्त्रमपि एतस्मिन् विषये बहुमतवादं प्रस्तूय सारासारविवेचनञ्च विधाय स्वशास्त्रमर्यादामुपस्थापयति। श्रीजगन्नाथदेवस्य द्वादशयात्राः, यथा—

मज्जस्नानं रथवरगतिः शायनं चायने द्वे।
पार्श्ववृत्ति; शयपरिहृतिः प्रावृत्तिः पुष्यपूजा॥
दोलाकेलिर्दमनकमहोऽक्षयपुण्यतृतीया।
यात्राः स्कान्दे हरिप्रतिमयोर्द्वादशेति प्रणीताः॥

(सङ्ग्रहकारिका, कालसारः, पृ-202)

इति सङ्ग्रहकारिकोक्तवचनाधारेण धर्मशास्त्रदृष्ट्या एतेषां प्रसिद्धयात्रातत्त्वानां समीक्षणमेव प्रबन्धस्यास्य प्रमुखमुद्देश्यमिति दिक्।

❖

EP-15

श्रीमद्भागवते गोपीगीतस्य काव्यसौष्ठवम्

डॉ. अक्षयकुमारमिश्रः, जगाधरी, हरियाणा

यदा गोप्यः कृष्णम् अन्विष्य श्रान्ता भवन्ति, परन्तु माधवः कुत्रापि दृष्टिपथारूढो न भवति तदा ता गोप्यो निराशा भूत्वा पुनः यमुनायाः पुलिनमागत्य कृष्णमेव अनुगायन्ति प्रार्थयन्ति च। श्रीकृष्णेन सह ता गोप्यः क्रीडन्ति स्म, अतः अत्र कृष्णस्य अनुपस्थितिः गोपीनां हृदये वियोगभावं जनयति। अत्र तु वियोगशृङ्गारस्य वर्णननैपुण्यं दृग्गोचरीभवति। अत्र तु शास्त्रीयदृष्ट्या मधुरभक्तिरसस्य प्राधान्यमस्ति। मधुरभक्तिरसे तु वियोगशृङ्गारस्यापि वर्णनमुपलभ्यते भक्तिरसामृतसिन्धौ। अतः अत्र तु एतत् साक्षात् प्रतीयते यत् वियोग-मधुर-भक्तिरसः। तत्र कृष्णस्तु आलम्बनः यमालम्ब्य गोपीनां मनसि विरहवेदना उत्पद्यते। यमुनायाः पुलिनं, चन्द्रदर्शनं, श्रीकृष्णस्य पदचिह्नानि सर्वाणि अनुभावाः। गोपीनां मनसि विषादादयः तथा तेषां व्यङ्ग्योत्कण्ठाः व्यभिचारिभावाः, रतिः स्थायिभावश्च। सर्वे अष्टादशश्लोकाः उपजातिछन्दसा लिखिताः केवलं अन्तिमश्लोकस्तत्र वसन्ततिलकाछन्दसा रचितोऽस्ति। अलङ्काराणां संयोजनाऽपि सृष्ठुरूपेण कृताऽस्ति। गोपीनां

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यङ्ग्योक्तयः वक्रोक्ति-अलङ्कारस्य सूचका भवन्ति। अलङ्कारप्रसङ्गे विशेषता अस्ति यदत्र चित्रालंकाराणामपि प्रयोगः दृष्टिपथारूढः भवति। पण्डितराजजगन्नाथस्यानुसारेण यत्र चित्रालङ्काराणामाधिक्यं दृश्यते तत्तु अधमकाव्यकोट्यामागच्छति इति। परन्तु अत्र गोपीनां व्यङ्ग्योक्तयः ततोऽपि अधिकम् अलङ्कारान् सूचयन्ति। पुनः इतोऽपि अधिकं तत्र गोपीनां वियोगशृङ्गारभावं मधुरभक्तिरसं स्पष्टरूपेण बोधयति। अत्र उत्तमकाव्यत्वप्राप्तिः साक्षात् प्रतीयते। गुणवर्णनविषयेऽपि अस्मिन् पत्रे चर्चा क्रियते। अस्मिन् अध्याये तु माधुर्यगुणस्याधिपत्यमस्ति, यतः अत्र रसः वियोगशृङ्गारः तदनुगुणेन रीतिरपि वैदर्भी अस्ति।

❖

EP-16

पुराणसाहित्ये विष्णुमाहात्म्यम्

डॉ. रवीन्द्रनाथदेवशर्मा, गोलाघाटः, असमः

आपाततः पुराणशब्देन पुरातनमाख्यानमिति धारणा अस्माकं मनसि समुपजायते। वस्तुतः पुराणं न हि पुरातनमाख्यानम्। अस्मिन् पुराणसाहित्ये अतीतकालस्य भविष्यतश्च कालस्य वर्णना समुपलभ्यते। इतिहासग्रन्थे केवलमतीतकालस्य वर्णनं प्राप्यते। अयमेव इतिहासपुराणयोः प्रभेदः। पुराणलक्षणमपि उक्तं भवति—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

अस्मिन् निबन्धे पुराणसाहित्ये विष्णुमाहात्म्यं कीदृशमस्तीति समालोच्यते।

❖

EP-17

निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन

डॉ. रामाधारद्विवेदी, रीवाँ, मध्यप्रदेशः

महाभारतयुद्धे किंकर्त्तव्यविमूढं, युद्धविरतं स्वसखायमर्जुनं भक्तिज्ञाननिष्कामकर्मादियोगानामुपदेशैः युद्धरूपस्वकर्त्तव्यपालनायोपदिशन् भगवान् श्रीकृष्णः श्रीमद्भगवद्गीतायां त्रिगुणात्मकसृष्टिविषये विविधसन्दर्भेषु सत्त्व-रज-तम इत्यादिगुणानां बहुषु स्थलेषु अनेकेषु रूपेषु बहूत्तमं वर्णनं कृतवानस्ति। भगवान् श्रीकृष्णः कथयति संसारेऽस्मिन् सदसद्वस्तूनां सम्यग् 'विचार्य एव कर्मणि प्रवर्तितव्यम्'। सद्वस्तुनः महिमानम्प्रतिपादयितुमसद्वस्तूनां दूरत एव परिहारः करणीय इत्यस्मिन् विषये द्वितीयाध्यायस्य एकादशश्लोकतः आरभ्य त्रिंशत्श्लोकपर्यन्तम् उत्तमरूपेण विषयप्रतिपादनं कृतमस्ति। निष्कामभावस्य महिम्नि स्वीकृत्याचरणं करणीयम्; किन्तु सकामभावतः पृथक् एव स्थातव्यमित्यप्युपदिष्टम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एतदुपदेशं प्रतिपादयितुमग्रे गीतायां भावः, गुणवृत्तयः, श्रद्धा, पूजनं, भोजनं, यज्ञः, तपः, दानं, त्यागः, ज्ञानं, कर्म, कर्त्ता, बुद्धिः, धृतिः, एवं सुखादिपञ्चदशरूपेषु गुणानां बहुषु स्थलेषु वर्णनं कृतमस्ति। एतत् सर्वं विवर्णयितुमत्रालेखस्योद्देश्यमस्ति।

❖

EP-18

योगेश्वरश्रीकृष्णस्य तिथिक्रमः

(3226-3102ई. पू.)

डॉ. उमापाण्डेयः, लखनऊ

जन्मतिथिः : भाद्रपदकृष्णा 8, द्वापरसं. 863874

आयुर्वर्षम्	*समयः*	*घटनाविरणम्*
1	3226 ई. पू.	गोकुले बाललीला
4	3223 ई.पू.	वृन्दावनगमनम्
9	3218 ई.पू.	गोवर्धनलीला
15	3212 ई.पू.	मथुराक्रान्तिः
25	3202 ई.पू.	रुक्मिणीस्वयंवरम्
27	3200 ई.पू.	इन्द्रप्रस्थस्थापना
35	3192 ई.पू.	प्राग्ज्योतिषपुरे 16000 कन्यकानामुद्धार, (कार्तिककृष्णा चतुदशी)
72	3155 ई.पू.	अर्जुन-सुभद्रा-विवाहः
75	3152 ई.पू.	इन्द्रप्रस्थे राजसूययज्ञायोजनम्
86	3138 ई.पू.	महाभारतयुद्धम्, मार्गशीर्षशुक्लैकादशी
93	3134 ई.पू.	नैमिषारण्ये बलरामद्वारा यज्ञायोजनम्
100	3127 ई.पू.	श्रीकृष्णस्य कैलासमानसरोवरयात्रा
124	3103 ई.पू.	उद्धव-कृष्ण-सम्वादः
125	3102 ई.पू.	17 फरवरी, श्रीकृष्णस्य गोलोकधामगमनम्

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

EP-19

कलौ गतिस्तु श्रीहरिनामसङ्कीर्तनमेव

श्री नी. पञ्चापगेशभागवतः, चेन्नई

हरिनाम परान् मर्त्यान् न कलिर्बाधते क्वचित्।
अल्पेन हि प्रयत्नेन धर्मः सिद्ध्यति वै कलौ॥

इति श्रीबोधेन्द्रयतीन्द्रविरचितश्रीभगवन्नामामृतरसोदये प्रतिपादितमस्ति।

विशेषतः कलियुगेऽस्मिन् कलुषितविषयनिमग्नानां सर्वेषां सन्तारकमतिसुलभं साधनं महात्मभिः अनेकैः सन्दर्शितम् उत्तमोत्तमं तावत् श्रीभगवन्नामसंकीर्त्तनमेव। श्रीकाञ्चीकामकोटिपीठाधीश्वरेषु अन्यतमाः श्रीबोधेन्द्रसरस्वतीस्वामिपादाः श्रीरामनामसिद्धान्तं कृतवन्तः श्रीनामसंकीर्त्तनमार्गं सर्वत्र प्रकटितवन्तश्च। एवमेव अनेके महान्तः श्रीपुरन्धरदासादयः, श्रीनारायणतीर्थयतीन्द्राः, श्रीत्यागराजस्वामिनः, श्रीज्ञानेश्व-तुकाराम इत्यादयः सन्तजनाः नामसंकीर्त्तनमार्गमेव प्रतिष्ठाप्य लोकोद्धरणं कृतवन्तः। भगवान् श्रीकृष्णोऽपि भक्तिप्रभावं स्वयं ज्ञातुम् इच्छाम् आपन्नः श्रीकृष्णचैतन्यप्रभुरूपेण भुवमवतीर्य श्रीहरिनामसंकीर्त्तनभक्तिमार्गं संस्थापितवान्। श्रीमद्भागवतम्, श्रीविष्णुपुराणम् इत्यादिपुराणेष्वापि नामसंकीर्तनस्य माहात्म्यं प्रकटितम्। श्रीकृष्णप्रेमि महाप्रभुः अपि स्वग्रन्थेषु विशेषतः वैष्णवसंहितायां कलिकालोचितं धर्म नामसंकीर्त्तनमेवेति सिद्धान्तं कृतवान्।

एभिः ज्ञायते यत् सर्वे वयं कलियुगेऽस्मिन् श्रीभगवन्नामसंकीर्त्तनद्वारा प्राप्तुमशक्यममृतवमधिगच्छाम इति। अस्माकं वाचि मनसि च प्रभुः सदा रमतु इति प्रार्थना क्रियते।

अतः नामसंकीर्त्तनादन्यो मार्गः मुक्तिप्राप्तये नास्तीति निर्धारणं क्रियते।

❖

EP-20

श्रीमद्भागवते दूतकर्मविमर्शः

श्रीश्यामवापटः, वाराणसी

अर्थशास्त्रे दूतकार्यस्य कीदृशं महत्त्वमिति दर्शयितुमेव अमात्यसदृशो दूत इत्युक्तम्। अमात्ये प्रागल्भ्योत्साहादि ये पञ्चविंशतिगुणाः, ते चापेक्षिताः दूतेष्वपि। कौटिलीयार्थशास्त्रे दूतस्य त्रैविध्यं प्रतिपादितम्। 1. निसृष्टार्थः, 2. परिमितार्थः, 3. शासनहारकः। कामन्दकीये दूतस्य प्रकाशचरत्वमपि स्वीकृतम्।

श्रीमद्भागवते तृतीयस्कन्धे (3/1/9) श्रीकृष्णस्य दौत्यस्य संकेत उपलभ्यते। भागवतीयं श्रीकृष्णचरितं महाभारते तस्य विस्तारं च विलोक्य तस्य गणना प्रथमकोटौ कृता। ततः परं षष्ठस्कन्धे यमविष्णुदूतयोः चर्चा विद्यते। यद्यपि अत्र प्रत्यक्षसन्देशदानाभावे सामान्याः किङ्कराः प्रतीयन्त एते तथापि अत्र भगवन्नामपूताः पापिनोऽपि न यमदण्डार्हा इति परोक्षसन्देशदानं प्रतिभाति।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमद्भागवते दशमे स्कन्धे प्राचुर्येण दौत्यस्य चर्चा प्राप्यते। अत्र 36-41 अध्यायेषु तथा पुनः 48-49 अध्यायेषु अक्रूरस्य दौत्यं वर्णितम्। अत्र आदौ भगवन्तं श्रीकृष्णमानेतुं कंसस्य दूतो भूत्वा पश्चाद् श्रीकृष्णाज्ञया पाण्डवानां वृत्तं ज्ञातुं हस्तिनापुरं प्रति गमनं भवति। उभयत्र तस्य कृते कार्यनिर्देशकारणात् तस्य परिमितार्थकोटौ गणना कर्तुं शक्यते। एवं हि रुक्मिण्याः प्रणयनसन्देशेन सह कृष्णं प्रति प्रेषितः ब्राह्मणदूतः राज्ञा पौण्ड्रकेन कृष्णं प्रति प्रेषितः दूतः, तथा च जरासन्धेन बन्दीगृहे निक्षिप्तानां नृपतीनां संदेशहरः, एते सर्वे तृतीयकोटौ समाविष्टाः। सर्वे लेखनहारका एव। एवं हि श्रीमद्भागवतस्य दशमे स्कन्धे 77 अध्याये मायामयदूतस्यापि चर्चा वर्तते।

एवंविधानि बहूनि दौत्यकर्मस्वरूपाणि तत्र वर्णितानि, यान्याश्रित्य दूतस्य कर्तव्याकर्तव्यानि, योजना, परीक्षणम्, सत्सम्बन्धिता अन्ये विषयाश्चात्र समासेन विमृष्टाः।

❖

EP-21

पराशरगीतायां वर्णाश्रमधर्मस्य महत्त्वम्

डॉ. कन्हैयालालः पाराशरः, होशियारपुरम्

वर्णाश्रमव्यवस्था हि हिन्दुसमाजस्यैतादृशी व्यवस्थाऽस्ति यस्या उदाहरणमन्येषु देशेषु नोपलभ्यते। यद्यपि विदेशेष्वपि सन्ति विभाजनानि समाजे परञ्च तेषां धार्मिकं सांस्कृतिकं च महत्त्वं नैतादृशं वर्तते यादृशं हिन्दुसमाजेऽस्ति। भारतीयसंस्कृतेः सभ्यतायाश्च मूलं विश्वस्य प्राचीनतमे ग्रन्थे ऋग्वेदे सुनिहितमस्ति। वर्णाश्रमव्यवस्था च भारतीयसंस्कृतेरभिन्नमेवाङ्गमस्ति। धर्मशास्त्रेषु वर्णाश्रमव्यवस्थायाः स्वरूपं वर्णितमस्ति। पराशरगीतायामस्या वर्णनमन्यशास्त्रापेक्षया किञ्चिद्वैशिष्ट्येनोमलभ्यते।

श्रीमहाभारते शान्तिपर्वान्तर्गते मोक्षधर्मपर्वणि नवत्यधिकद्विशततमाध्यायतोऽष्टनिवत्यधिकद्विशततमाध्याय-पर्यन्तम् (290-298) पराशरगीताविषयोऽस्ति।

पराशरगीतायां नानाविधानां धर्माणामुपदेशोऽस्ति। यथा—वर्णविशषोत्पत्ते रहस्यम्, तपोबलेन श्रेष्ठवर्णस्य प्राप्तिः, भिन्नभिन्नवर्णानां सामान्यविशेषधर्माः विप्राणां शूद्राणां च जीवनवृत्तिः, मनुष्येष्वसुरभावोत्पत्तिर्भगवता शिवेन च तन्निवारणम्, चातुर्वण्यविहितधर्मपालनस्य महत्त्वमित्येते विषयाः सविशेषमुपवर्णिताः।

❖

EP-22

श्रीमद्भागवतमहापुराणे पर्यावरणम्

डॉ. मखलेशकुमारः, सीतापुरम्

संस्कृतिः वेदमूलाऽस्ति। वेदविज्ञानोपरि आधारितया इयं सर्वाङ्गपूर्णा विद्यते। अस्माकं प्रमादेन अद्य याः अनेकाः विकरालाः समस्याः विद्यन्ते, तासां समाधानं वयं तयैव वेदसंस्कृत्या कर्तुं शक्नुमः। वेदानां

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा निगूढा दुरूहा च वर्तते। सर्वसाधारणजना तादृशदुरूहभावानवगन्तुं न शक्नुवन्ति। अत एव पुराणे तद्-गूढज्ञानस्योपबृंहणं क्रियते। अनया दृष्ट्या पुराणानि न केवलं भारतीयसंस्कृतेः संवाहकानि, अपि तु विभिन्नानां जागतिकसमस्यानां समाधानस्य साधकानि अपि सन्ति।

सम्प्रति विश्वस्तरे मानवानां समक्षं याः समस्याः विद्यमानाः सन्ति तासु पर्यावरणसंरक्षणसमस्या एकान्यतमा अस्ति। अस्याः समस्यायाः समाधानं पुराणानां माध्यमेन कर्तुं शक्यते न वा? अस्माकं पूर्वपुरुषैः अस्मिन् विषये चिन्तितं न वा? प्राक्कालिकपर्यावरणविनाशोदाहरणानि सन्ति न वा? उदाहरणानि उपलभ्यन्ते चेत् तस्य कृते कानि संरक्षणोपायानि निर्दिष्टानि? एतत् सर्वमस्मिन् शोधपत्रे विचारितम्।

पुराणवाङ्मयस्य शिरोरत्नभूतं श्रीमद्भागवतमाधारीकृत्य पर्यावरणस्य चित्रणमस्मिन् शोधपत्रे मया कृतम्। यतो हि अस्मिन् महापुराणे श्रीकृष्णस्तु 'स्थिरचरवृजिनघ्नः' इति संज्ञया निरूपितोऽस्ति। तात्पर्यमिदं यत् स्थावर-जङ्गमानां यद् वृजिनं पापं 'दूषणं' च तद् श्रीकृष्णः अपसारयति। एवं प्रकारेण श्रीकृष्ण-चरितमाध्यमेन पर्यावरणविषयकश्रीमद्भागवतस्य मतं शोधपत्रे विविच्य विपश्चिदपश्चिमानां समक्षं प्रस्तौमि।

❖

EP-23

पद्मपुराणान्तर्गतपातालखण्डे शैवतत्त्वम्

श्रीरामगुलाममिश्रः, पटना

पुराणेषु शैवतत्त्वानामपि वर्णनं प्राप्यते। अत्र पद्मपुराणान्तर्गतपातालखण्डे प्रतिपादितस्य शैवतत्त्वस्य विवेचनं प्रस्तूयते। पातालखण्डस्य पूर्वार्द्धे रामचरित्रस्य उत्तरार्धे च शैवतत्त्वस्य विशेषतः शिवलिङ्गस्य वर्णनं विद्यते। अस्मिन् निबन्धे स्थापितं यद् रामचरित्रवर्णानात्मकः पूर्वार्द्ध एव प्राचीनो मूलभागो विद्यते। शिवतत्त्ववर्णनात्मक उत्तरभागस्तु परवर्तिनि काले शैवमतानुयायिभिः संयोजित इति। उत्तरभागे शिवपूज-लिङ्गासनादिवर्णनं च विद्यते। अत्र शैवैः सप्रयासमिदं स्थापयितुं चेष्टितं यत् शिव एव प्रधानो देवः। विष्णोरवतारभूतेन रामेण स्वयं विष्णुना च कृता शिवपूजाऽत्र वर्णिता वर्तते येन शैवैः विष्णोरप्रधानत्वं द्योतयितुं चेष्टितम्।

प्रस्तुतं पद्मपुराणं पञ्चखण्डात्मकं सृष्टि-भूमि-स्वर्ग-पातालोत्तराख्यात्मकं विद्यते। तत्र पातालखण्डे भगवतो रामस्य चरित्रं विशदात्मकेन वर्णितमस्ति।

❖

EP-24

तीर्थाटनेन पापक्षयत्व

डॉ. अतुलकुमारनन्दः, पुरी

धर्मार्थकाममोक्षेषु चतुर्षु पुरुषार्थेषु धर्मस्य प्राधान्यं प्राथम्यञ्च नितरां सुतरामतितरां प्रतरांश्च वरीवर्त्तते। धर्मस्यास्य महत्त्वं गाम्भीर्यं गुरुत्वञ्च एतादृशं विद्यते येन मनुष्यः तस्य धर्मस्यार्जनेन आचरणेन पालनेन च

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्गादिरूपं सुखं प्राप्नोति। अयं च धर्मः धृञ् धारणपोषणयोरित्यस्माद्धातोः उणादिके मन्प्रत्यये कृते निष्पन्नो भवति। धरति धारयति वा प्रजामिति धर्मः ध्रियते अनेन इति वा धर्म इत्यादिना धर्मस्य व्युत्पत्तिः लभ्यते। धर्मस्यास्य लक्षणमपि बहुभिः ऋषिभिः सुगुम्फितम्, तद्यथा—'चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः' इति पूर्वमीमांसायां प्रथमसूत्रे भगवता जैमिनिना धर्मलक्षणं व्याकृतम्। तथैव भगवता मनुनापि विभिन्नेषु स्थलेषु धर्मस्य बहुनि लक्षणानि प्रतिपादितानि।

तथैव भगवता गौतमेनापि धर्मस्य लक्षणं 'वेदो धर्ममूलमिति' निगदितम्। एवमेव सर्वेऽपि ऋषयः धर्मस्य तत्त्वं लक्षणञ्च प्रतिपादितवन्तः। तस्मादियं भारतभूमिः धर्मप्रधाना सञ्जाता। एतस्य धर्मस्य सुरक्षानिमित्तं स्वयं भगवान् अस्मिन् धरातले अवतरति।

पितृपुरुषाणां तृप्त्यर्थं स्वकीयपुण्यार्जनार्थञ्च जनः तीर्थाटनं कुर्यादिति शास्त्राणां निर्देशः। अतः प्राचीन-कालादेवारभ्याद्य कलिकलङ्किते चोग्रे आधुनिकवादे जगति तीर्थाटनस्य महत्त्वं विवर्द्धितम्, न तु सङ्कोचितं विद्यते।

❖

EP-25

वाल्मीकिरामायणे वैदिकप्रभावः

डॉ. मिथिलाप्रसादत्रिपाठी, इन्दौर

'स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां मा प्रमदितव्यम्', 'स्वाध्यायान्मा प्रमदः' इत्यादिभिर्वचनैः प्रभावितो मुनिरारभत स्वकीयां नवीनां वृत्तेन शैल्या चापूर्वां रचनां या रम्या रामायणी कथेति प्रथिता पश्चात् 'काण्ड'पदस्य प्रयोगपाटवीमनुचिन्त्यैव काण्डात्मकान् भागान् रामायणस्य व्यधान्मुनिः। वैदिकयुगस्य सन्धिस्थले रिरचयिषया यद् व्याजहार छन्दोमयीं वाणीमकस्मान्मुनिस्तां प्रति किमिदं व्याहृतं मयैवोक्तम्। न पूर्वं कदाप्येतादृशं छान्दोबन्धं श्रुतं दृष्टं वा। यथैव वैदिको महर्षिर्मन्त्रविग्रहं शब्दब्रह्मतया शिष्याय श्रुतिपरम्परया समादिशत्तथैव भरद्वाजाय तमसातटस्थाय सर्वं यथावद् ग्रहणाय वाल्मीकिरपि व्यादिदेश।

रामायणे वैदिकः प्रभावः यज्ञाचरणेन सत्यसंरक्षणेन धर्म चरणेन, अधर्मिणां विनाशेनापि भृशं प्राप्नोति। प्रतीयते यद् रामायणकथा वेदप्रतिपादितानाचारानेव स्वीकृत्य विरचिता वर्तते।

❖

EP-26

महाभारते अङ्गी रसः ध्वन्यालोकदिशा

डॉ. पि. इन्दिरा

काव्यशास्त्रपराभिधानं सर्वलोकोपकारकं साहित्यशास्त्रं चतुर्विधपुमर्थसमर्जनस्य सुलभं उपायश्चेति गीर्वाणवाणीपरायणानां सुज्ञातमेव।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आनन्दवर्धनाचार्यः ध्वन्यालोके महाकवीनां वाणीषु वाच्यव्यतिरिक्तं तथा पूर्वप्रसिद्धेभ्यः अलङ्काररीतिवृत्तिगुणरूपाङ्गेभ्यो भिन्नं सर्वाङ्गव्यापि ध्वनितत्त्वमन्यदेव वस्त्वस्तीति प्रतिपाद्य लक्ष्यग्रन्थत्वेन रामायणमहाभारतादिग्रन्थानां निर्देशं कृतवान्।

शास्त्रकाव्यरूपमहाभारते वृष्णिपाण्डवविरसावज्ञानवैमनस्यदायिनीं समाप्तिमुपनिबध्नता महामुनिना स्वप्रबन्धस्य वैराग्यजननतात्पर्यप्राधान्येन मोक्षलक्षणपुरुषार्थः शान्तो रसश्च मुख्यतया विवक्षाविषयत्वेन स्वीकृतः। वृष्णीनां परस्परक्षयः, पाण्डवानामपि महापथक्लेशेनानुचिता विपत्तिः, कृष्णस्यापि व्याधाद्विध्वंस इति सर्वस्यापि विरसमेवावसानम्। यद्यपि धर्मे च अर्थे च मोक्षे च इत्युक्तं तथापि चतुःप्रकारेण मोक्षप्रतिपादनमेवास्य वैशिष्ट्यमिति द्योतयति।

भगवान् वासुदेवश्च कीर्त्यतेऽत्र सनातन इत्यादिना निगूढरमणीयोऽयमर्थः व्यङ्ग्यत्वेनैव प्रकाशितः।

एवं स्थितेऽपि शान्तरसस्य अङ्गित्वेन व्युत्पत्तिविरुद्धं, उपपत्त्यनन्वितं, प्रसिद्धिप्रतिहतञ्चेति केचिद्वदन्ति। तेषां मते महाभारते वीरसस्यैवाङ्गित्वम्। तथापि ध्वन्यालोके लोचने च अतिसरलया विषयोपपादनसरण्या विषयाः प्रपादिताः, खण्डितानि च वादिदन्तिनां विविधानि मतानि, स्थिरीकृतः च महाभारते अङ्गिरसत्वेन शान्तो रसः।

❖

EP-27

महाभारत में सृष्टि-प्रक्रिया

डॉ० धर्मेन्द्र शर्मा 'पुन्छी'

मानव अनादिकाल से इस जगत् को देखकर चिन्तनशील रहा है कि यह सृष्टि-क्रम किस प्रकार से चल रहा है। इसका नियन्ता अर्थात् स्रष्टा, पोषक एवं संहारक कौन है? यह सृष्टि प्रक्रिया किस प्रकार से होती है।

इन सबका उत्तर वह अपने विवेक अर्थात् बुद्धितत्त्व द्वारा देने का प्रयास करता रहा है, जिसे 'दर्शन' कहा जाता है; क्योंकि दर्शन की परिभाषा ही यही है 'दृश्यते अनेन'—जिसके देखने से तत्त्व-ज्ञान का सम्यक् रूप से बोध हो तथा चिन्तारूपी बन्धनों से मुक्ति हो।

सृष्टि प्रक्रिया विषय से सम्बन्धित विभिन्न दार्शनिकों का विभिन्न मत है। भारतीय दार्शनिक 'दर्शन' की जिस सीमा तक पहुँचे हैं, उसकी अभिव्यक्ति शब्दों में नहीं की जा सकती। मेरे शोध-पत्र का विषय 'दर्शन' से सम्बन्धित होने के साथ-साथ भारत के साहित्य, सभ्यता तथा संस्कृति के इतिहास को अपने में संजोये हैं। 'महाभारत' जिसका एक अंश विश्व का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ 'श्रीमद्भगवद्गीता' है। उसमेव सृष्टि-प्रक्रिया से सम्बन्धित विचारों अर्थात् वर्णित तत्त्वविषयक दर्शन को मैंने अपने इस लघु-शोध-पत्र में उल्लिखित किया है। इस महाकाव्य में एक लाख श्लोक मिलते हैं, इसीलिए गुप्तकालीन शिलालेख में भी इसे 'शतसाहस्री' संहिता नाम से उद्धृत किया गया है। इसके विकास के तीन क्रम माने जाते हैं— 1.जय, 2. भारत, 3. महाभारत। महाभारत के खण्डों को 'पर्व' कहते हैं, जो संख्या में 18 हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाकाव्य महाभारत में सृष्टि-प्रक्रिया अर्थात् जगत्-सृष्टि का वर्णन 'शान्तिपर्व' के अन्तर्गत 'मोक्षधर्म पर्व' में है।

महाभारत के अनुसार भगवान् 'नारायण' जो सम्पूर्ण जगत् स्वरूप हैं, उनके हृदय में जब सृष्टि-विषयक सङ्कल्प का उदय हुआ, तो उन्होंने अपने हजारवें अंश से एक 'पुरुष' को उत्पन्न किंया। वही पुरुष 'अव्यक्त' नाम से प्रसिद्ध है। वह शाश्वत, अक्षय और अविनाशी है। उससे उत्पन्न सब प्राणी जन्म लेते और मरते हैं।

उस 'अव्यक्त' ने पहले 'महत्' तत्त्व (समष्टि बुद्धि) की सृष्टि की, फिर उस महत्तत्त्व स्वरूप भगवान् ने अहङ्कार (समष्टि-अहं) की रचना की। सम्पूर्ण भूतों को धारण करने वाले अहङ्कारस्वरूप भगवान् ने शब्द-तन्मात्रारूप 'आकाश' को उत्पन्न किया। आकाश से 'जल' और 'जल' से 'अग्नि' एवं 'वायु' की उत्पत्ति हुई। 'अग्नि' और 'वायु' के संयोग से इस पृथिवी का प्रादुर्भाव हुआ। यहाँ पर सृष्टि का क्रम श्रुतियों से भिन्न है; क्योंकि श्रुतियों में आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथिवी की उत्पत्ति का क्रम बतलाया गया है।

जगत् की 'उत्पत्ति' एवं 'लय' का वर्णन इस प्रकार है कि ब्रह्मा दिन के आरम्भ में जगत् की सृष्टि करते हैं और रात में जब प्रलय का समय होता है, तब सबको लीन करके अन्त में योगनिद्रा का अवलम्बन करके सो जाते है, फिर प्रलय का अन्त होने पर जागृत हुआ करते हैं।

❖

EP-28

मत्स्यपुराण में राजधर्म

डॉ० श्रद्धा शुक्ला, दिल्ली

मत्स्यपुराण चार प्राचीनतम महापुराणों में से एक है। यह 15000 श्लोकों की संख्या वाला एक विस्तृत पुराण है, जो कि 291 अध्यायों में विभक्त है। यह पुराण विशेष रूप से मत्स्यावतार के वर्णन के लिए लिखा गया है, परन्तु साथ ही इसमें अन्य अनेक प्रकार के विषयों का समावेश किया गया है, जिनके कारण प्रस्तुत पुराण का माहात्म्य अधिक हो गया है। उन्हीं महत्त्वपूर्ण विषयों में से एक है—इसमें वर्णित राजधर्म।

मत्स्यपुराण में तेरह अध्यायों में विस्तारपूर्वक राजधर्म पर चर्चा की गई है। सबसे पहले राजा द्वारा राज्य का कार्य सम्यक् रूप से चलाने के लिए योग्यतानुसार अधिकारियों की नियुक्ति का विस्तार से वर्णन हुआ है। प्रशासन में लगे अधिकारियों द्वारा निषिद्ध कार्यों का वर्णन भी प्राप्त होता है। तत्पश्चात् राजा द्वारा निवास योग्य स्थान, दुर्गों के प्रकार, नगर की रूपरेखा, नगर अथवा दुर्ग के लिए आवश्यक संसाधनों का भी विशद विवेचन प्राप्त होता है। इन सभी विषयों के साथ यह भी उल्लेख हुआ है कि राजा को अपने पुत्र की रक्षा किस प्रकार करनी चाहिए। राजा द्वारा अपनाये जाने वाले साम-दान-दण्ड-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भेद उपायों का विशद वर्णन हुआ है तथा भाग्य एवं पुरुषार्थ पर भी अलग से विवेचन हुआ है, जिनमें पुरुषार्थ को ही श्रेष्ठ बतलाया गया है।

इस प्रकार मत्स्यपुराण में वर्णित राजधर्म का वर्णन अत्यन्त सूक्ष्मता से किया गया है। राजा के कर्त्तव्य, उसके द्वारा विभिन्न पदाधिकारियों की नियुक्तियाँ, नगर संरचना, सैन्य बल, अस्त्र-शस्त्र, खाद्य-सामग्री संग्रह, औषधि संग्रह, विष विकार से रक्षा, प्रजा-पालन का ढंग, साम-दान-दण्ड-भेद उपायों को अपनाते हुए विभिन्न राजाओं तथा व्यक्तियों में उनका अवसरानुसार प्रयोग, राजा के लिए पुरुषार्थ का महत्त्व इत्यादि प्रत्येक विषय पर सूक्ष्म दृष्टिपात इस वर्णन को एक नवीनता प्रदान करता है।

❖

EP-29

योगवासिष्ठ महारामायण : एक दृष्टि

डॉ० मञ्जुला सहदेव, पटियाला

योगवासिष्ठ महारामायण अनेक संज्ञाओं यथा—आर्षरामायण, उत्तर-रामायण, वसिष्ठ-रामायण, महारामायण, मोक्षोपाय से अभिहित है। यह बृहत् और लघु दो रूपों में उपलब्ध है। परमहंस श्रीमदानन्दबोधेन्द्र सरस्वती द्वारा कृत तात्पर्य-प्रकाशाख्य व्याख्या सहित इसका बृहत् रूप और श्री आत्मसुख रचित वासिष्ठ चन्द्रिका व्याख्या सहित इसका लघु संस्करण। इन दोनों ग्रन्थों में क्रमशः 672 सर्ग तथा 28213 श्लोक एवं 46 सर्ग और 5011 श्लोक हैं। लघु संस्करण के श्लोकों की बृहत् संस्करण के श्लोकों में पूर्ण साम्यता एवं कथानक क्रम एक जैसा है, परन्तु कहीं-कहीं पाठ-भेद अवश्य दृष्टिगोचर होता है। इन दोनों संस्करणों का अध्ययन करने पर प्रतीत होता है कि आध्यात्मिक विषय की गरिमा को प्रमुख रखते हुए बृहत् संस्करण के अनावश्यक विस्तार का परित्याग करते हुए लघु संस्करण का निर्माण किया गया। विशेष उल्लेखनीय है कि लघु संस्करण में बृहत् संस्करण के पूर्वार्ध (निर्वाण प्रकरण) पर्यन्त ही विषय है। दोनों संस्करणों में पूर्वार्ध निर्वाण प्रकरण तक ही फलश्रुति है। लघु संस्करण का निर्माण नवीं शती के कश्मीरी पण्डित अभिनन्द ने किया था। इन दोनों संस्करणों का पर्याप्त प्रचलन रहा, फलतः इनका विविध भाषाओं यथा—हिन्दी, पंजाबी, उर्दू तथा फारसी में अनुवाद हुआ। मोक्ष का उपाय होने के कारण इन दोनों संस्करणों के सर्गान्त 'मोक्षोपाय' नाम उपलब्ध है। इस ग्रन्थ की रचना का श्रेय महर्षि वाल्मीकि को जाता है। उन्होंने यह सूक्ष्म विषय अपने शिष्य भरद्वाज को बताया था। ब्रह्मा जी के आग्रह पर ऋषि वाल्मीकि इस ग्रन्थ का निर्माण करते हैं। महर्षि वाल्मीकि स्वतः इसमें पात्र है। आत्मज्ञान के लिए आये नृप अरिष्टनेमि को 'वसिष्ठ-राम-संवाद' रूपी कथा सुनने के लिए कहते हैं।

दोनों संस्करणों में विषय विवेचन की विविध पद्धतियों में कथा, प्रश्नोत्तर एवं संवाद-पद्धति, जिन्हें विषय विश्लेषण का अत्यधिक महत्त्वपूर्ण साधन माना जाता है, का आश्रय लिया है। महाभारत और पुराण-पद्धति के अनुसार इसमें भी 'उवाच' यथा 'रामोवाच', 'वसिष्ठ उवाच' शब्दों का प्रयोग है। अपाणिनीय प्रयोग यथा 'वच्मि' इत्यादि भी उपलब्ध होते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वसिष्ठ ऋषि 18 दिन के अन्तर्गत अध्यात्म पथ पर आने वाली समस्त शंकाओं, बाधाओं एवं उपलब्धियों का स्थूल, सूक्ष्म तथा अतिसूक्ष्म वर्णन करते हुए श्रीराम को उनके वास्तविक स्वरूप से अवगत करा देते हैं। द्वैत (जीव-आत्मा) अद्वैत में परिणत हो जाता है। यह ही योग का वास्तविक अर्थ एवं भूमिका है। योग (अद्वैत) के लक्ष्य तक पहुँचाने वाले ऋषि वसिष्ठ हैं, अतः इस ग्रन्थ का नाम 'योगवासिष्ठ' है। भवबन्धन से मुक्ति दिलाने का साधन होने के कारण इस ग्रन्थ का 'मोक्षोपाय' नाम भी सार्थक है। रामायण में त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) के विवेचन के उपरान्त-जीवन के अन्तिम लक्ष्य 'मोक्ष' का मार्ग प्रशस्त करने के कारण इसका नाम 'महारामायण' भी उपयुक्त है।

योगवासिष्ठ अद्वैत दर्शन का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। एक सिद्ध योगी के अध्यात्म पथ पर हुए अनुभवों का ग्रन्थ है। इस मार्ग पर आने वाली समस्त बाधायें एवं समाधान का इसमें निरूपण है। इस ग्रन्थ के अध्ययन के उपरान्त साधक के समस्त प्रश्न शान्त हो जाते हैं। आश्चर्य है कि दर्शन परम्परा के ग्रन्थों में इस ग्रन्थ का उल्लेख नहीं है, मान्यता नहीं है। यदि इसे दर्शन परम्परा में संग्रहीत कर लिया जाए, इस दिशा में इसके महत्त्व एवं योगदान को नकारा नहीं जा सकेगा।

❖

EP-30

श्रीहरिप्रेष्ठ महाकाव्य एवं श्रीमद्भागवत पुराण

ताबिन्दा ज़ैदी, अलीगढ़

वनमालिदास शास्त्री आधुनिक कालीन प्रमुख कवि हैं। उनका जन्म संवत् 1975 में हरियाणा प्रदेश के हिसार जिले में हुआ था। उनके पिता का नाम तुलाराम तथा माता का नाम जंजीरा देवी था।

वनमालिदास की कृतियों में हरिप्रेष्ठ महाकाव्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह महाकाव्य उनके गुरुभाई रामहरिदास के चरित्र को आधार बनाकर लिखा गया है। करुण रस प्रधान इस महाकाव्य की रीति वैदर्भी है, जिसमें कवि ने उत्प्रेक्षा, रूपक, समासोक्ति, स्वाभावोक्ति, उपमा आदि अलङ्कारों का यथोचित निबन्धन किया है। हरिप्रेष्ठ महाकाव्य के अतिरिक्त श्रीकृष्णानन्द-महाकाव्य, सख्यसुधाकर, राधारमणशतकम्, वनमालिप्रार्थनाशतकम्, भक्तनाममालिका, मध्वसिद्धान्तकणिका आदि उल्लेखनीय हैं।

हरिप्रेष्ठ महाकाव्य पर श्रीमद्भागवत पुराण का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। कवि ने स्थल-स्थल पर श्रीमद्भागवत पुराण में उपलब्ध विचारों, भावों का उल्लेख किया है, यथा कवि के उत्तम पुरुष के सम्बन्ध में विचार, चंचल मन सम्बन्धी विचार, जगत् की क्षणभंगुरता सम्बन्धी विचार, भक्त एवं भगवान् सम्बन्धी विचार, श्रीमद्भागवत पुराण में उपलब्ध भावों से ओत-प्रोत हैं। इसका मुख्य कारण सम्भवतः कवि की श्रीकृष्ण के प्रति सखा भाव की भक्ति है, जिसके कारण श्रीमद्भागवत पुराण तथा हरिप्रेष्ठ महाकाव्य में पर्याप्त साम्य दिखाई पड़ता है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

EP-31

भीष्म एक तटस्थ व्यक्ति के रूप में

डॉ. गीताञ्जलि गुप्ता, अलीगढ़

महाभारत में भीष्म की भूमिका की मीमांसा करने पर सरलता से इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सक़ता है कि भीष्म नैतिक आदर्शों के भण्डार, दृढ़-प्रतिज्ञ, कौरवों-पाण्डवों के प्रति स्नेहमय पितामह, आत्मसंयमी, त्याग तथा शौर्य के मूर्तिमान् स्वरूप हैं। सम्पूर्ण महाभारत में भीष्म का तटस्थ रूप दृष्टिगोचर होता है। अपनी उदासीनता के कारण ही उन्होंने द्रौपदी चीरहरण और द्यूतक्रीडा के अवसर पर मूकदर्शक बनकर अधर्मी कौरवों का साथ दिया, ऐसे ही वारणावन की घटना के अवसर पर उन्होंने पाण्डवों को लाक्षागृह में जाने की आज्ञा देकर कुरुकुल की रीति को तोड़ा, अर्थात् कौरवों को लाक्षागृह जाना चाहिए था और ज्येष्ठ युधिष्ठिर का युवराज के पद पर अभिषेक करना चाहिए था; लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। इन्होंने सदैव अधर्मी कौरवों का ही साथ दिया, जबकि यह जानते थे कि जीत पाण्डवों की ही होगी; क्योंकि धर्म उनके पक्ष में है। ऐसे ही भीष्म ने जीवन में दूसरों के लिए सिर्फ बलिदान ही किया, जैसे उन्होंने अपने पिता के लिए आजीवन ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा की। यही प्रतिज्ञा उनके पतन का कारण भी बनी।

उनके जीवन में कई ऐसे चरण आये, जहाँ उन्हें अपना जीवन निराशाजनक और लक्ष्यहीन प्रतीत होता था। जब-जब उनके पौत्र-प्रपौत्र उनकी आज्ञा की अवहेलना करते थे, तब वे दुःखी होकर गंगा के किनारे रोया करते थे। वहाँ अपनी अश्रुधारा प्रवाहित करके वे कुछ समय के लिए शान्त हो जाते थे। लेकिन उनकी वेदना कोई नहीं जानता था; क्योंकि वह अपने विचारों को किसी से बाँट नहीं सकते थे। वैसे सोचा जाये, तो भीष्म का जीवन एकाकी ही था, जिसमें न कोई रस था और न रंग था। भीष्म के जीवन में क्षात्र-धर्म का निर्वाह केवल एक कर्त्तव्य मात्र था, अर्थात् कौरवों का साथ देना उनकी विवशता थी इच्छा नहीं; क्योंकि उन्होंने कौरवों का नमक खाया था। कभी-कभी प्रतीत होता है कि भीष्म का जीवन पीड़ा भोगने के लिए ही हुआ था। उनके जीवन में मनोरंजन के नाम पर कुछ भी नहीं था। सिर्फ वे अपने आराध्य भगवान् श्रीकृष्ण के समक्ष अपने मनोभावों को प्रगट कर देते थे। तब भगवान् श्रीकृष्ण ही अपने भक्त की पीड़ा जानकर उसे दूर करने का प्रयास करते थे। लेकिन वास्तव में कोई भी भीष्म के एकाकीपन के दुःख को दूर नहीं कर सकता था। इस प्रकार भक्ति, ज्ञान, सदाचार जिस ओर से भीष्म के चरित्र को देखते हैं, उसी ओर से हम उन्हें आदर्श पाते हैं। भीष्म को श्रीकृष्ण के माहात्म्य और प्रभाव का जैसा ज्ञान था, वैसा बहुत कम लोगों को होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि भीष्म का जीवन सिर्फ आदर्शों पर ही टिका था। उनके जीवन में मानवीय मूल्यों की कोई महत्ता नहीं थी। इस प्रकार प्रत्येक दृष्टि से महाभारत में महान्, तेजस्वी और तपस्वी भीष्म का अभूतपूर्व स्थान है। 'न भूतो न भविष्यति' को उन्होंने चरितार्थ किया है। वे आदर्श पितृभक्त, अजेय योद्धा, भगवद्भक्त, महान् सन्त, अपरिमित ज्ञाननिधि, अप्रतिम शौर्य के धनी और अति मानव व्यक्तित्व की प्रतिमूर्ति हैं। इनका चरित्र सृष्टि-सरिता को पवित्र करने वाला तथा समस्त सन्तप्त-भूलोक का उद्धारक है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

EP-32

कृष्णावतार एवं प्रयोजन

नीतू शर्मा, अलीगढ़

अवतारवाद की भारतीय संस्कृति में अत्यन्त ही रोचक रूप में कल्पना की गई है। ऐसा विश्वास किया जाता रहा है कि जब-जब पृथ्वी पर धर्म की हानि हुई तथा अधर्म की वृद्धि हुई, तब-तब भगवान् ने अधर्म के विनाश हेतु अवतार ग्रहण किया। सामान्यतः अवतार शब्द का अर्थ किसी ऊँचे स्थान से नीचे उतरने की क्रिया से है। यद्यपि सर्वव्यापक सत्ता का कहीं से भी अवतरण सम्भव नहीं हो सकता है, तथापि जनकल्याणार्थ परात्पर परमेश्वर पृथ्वी पर सामान्य जनों की भाँति अवतरित होते हैं। यद्यपि वह परमात्मा अप्राकृत है, तथापि प्राकृत की तरह प्रतीत होने में नटवत् प्रवृत्ति को अपनाता है।

भगवान् द्वारा ग्रहण किये अवतारों में श्रीकृष्णावतार का विशिष्ट महत्त्व है। इसका कारण यह है कि अन्य सब अवतार भगवान् के अंशावतार अथवा कलावतार हैं; परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण में षोडश निधित्व का श्रेय प्राप्त है, जैसा कि श्रीमद्भागवत में कहा गया है—

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।

अवतार संख्या की भाँति अवतार प्रयोजन के सन्दर्भ में विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने विचार व्यक्त किये हैं। भगवान् ने स्वयं अवतार लेने का उद्देश्य श्रीमद्भगवद्गीता में निर्दिष्ट किया है, जिससे अवतार के प्रयोजन को सुगमता से जाना जा सकता है। कृष्णावतार को सामान्य प्रयोजन के साथ-साथ कतिपय विशिष्ट प्रयोजनों का भी साधक माना गया है—जो 'जगद्धिताय गोब्राह्मणहिताय च' के रूप में अभिमत है। कुन्ती के मतानुसार स्त्री जाति को धन्य करने के लिए श्रीकृष्णावतार का प्रयोजन निर्णीत है।

इस विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि अवतार प्रयोजन के सन्दर्भ में किसी नवीनोद्भावना की कल्पना किसी भी शोधार्थी के लिए असम्भव तो नहीं; परन्तु दुष्कर अवश्य है।

❖

EP-33

महाभारत में भीष्म द्वारा प्रतिपादित राजधर्म का स्वरूप : वर्तमान परिप्रेक्ष्य में

डॉ. पूर्णिमा आचार्या, वाराणसी

शासन तन्त्रों में एक प्रमुख तन्त्र है—राजतन्त्र। राजतन्त्र में राजा ही प्रधान होता है, यह सर्वविदित है। लेकिन राजा का भी शासन-धर्म होता है, जिसे राजधर्म कहते हैं। इसे ही नीति शब्द से भी यत्र तत्र प्रकाशित किया गया हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान भारतीय राजनीतिक व्यवस्था अनेक विचारधाराओं की संलिप्तता, प्रस्तुतिकरणकलुषिता, सत्तामान्य विचारधाराओं, नियमों एवं धर्मों का, परिवर्तित सत्ता द्वारा अग्राह्यता, विपरीत प्रतिक्रियाशीलता एवं नवनियमारोपिता की प्रक्रियारूपी मतभिन्नतारूपी समस्या से सम्पृक्त है।

ऐसे में महाभारत में प्रतिपादित भीष्म के राजधर्म विषयक विचार जिनमें राजा, प्रजा, गुरु, शिष्य सबों का परस्पर सौहार्द, कर्त्तव्य एवं उत्तरदायित्व की भावना का उपदेश है, प्रासङ्गिक हो जाता है।

राजधर्म क्या है, उसकी वर्तमान भारत में क्या प्रासङ्गिकता है एवं केन्द्रीय व प्रान्तीय शासक उसका आदर व प्रतिकार कैसे कर रहे हैं? गुजरात, बंगाल, बिहार, असम में व्याप्त अराजकता के परिप्रेक्ष्य में भीष्म द्वारा प्रतिपादित राजधर्म के स्वरूप की वर्तमान में महत्ता स्थापित करना ही इस शोध-प्रपत्र का उद्देश्य है।

❖

EP-34

वाल्मीकि रामायण में त्रिवर्ग का स्वरूप

डॉ. उपेन्द्र देव पाण्डेय, मीरजापुर

निरन्तर मननशीलता के कारण मनुष्य की विकास प्रक्रिया गतिशील बनी हुई है। मननशील मानव के लिए चार पुरुषार्थों—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में 'धर्म' की प्रथम गणना की जाती है। यही धर्म, काम और अर्थ की विपरीतगामिनी प्रवृत्ति को सन्तुलित करता है; किन्तु मनुष्य अपनी वासनाओं की क्रीतदास है। शिशु की प्रथम आवश्कता 'अर्थ' अर्थात् क्षुधा है। 'काम' उसका दूसरा प्रबल पुरुषार्थ है। काम के अभाव में जीवन कुछ दिनों तक चल सकता है; किन्तु अर्थ, अर्थात् क्षुधापूर्ति के अभाव में जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती है। इन धर्म, अर्थ एवं काम रूप त्रिवर्ग से तुष्ट मानव ही परम पुरुषार्थ मोक्ष की ओर प्रवृत्त होता है। इस प्रकार जीवन में धर्म, अर्थ एवं काम—इस त्रिवर्ग का महत्त्वपूर्ण स्थान हैं। रामायण में महर्षि वाल्मीकि ने सूक्तियों के माध्यम से इस त्रिवर्ग पर पर्याप्त प्रकाश डाला है।

महर्षि वाल्मीकि ने धर्म को इस लोक में सबसे श्रेष्ठ बताया है। धर्म से ही अर्थ एवं सुख की प्राप्ति होती है। रामायण में सत्य, दान, दया, क्षमा, अतिथि सेवा, माता-पिता, गुरु के प्रति श्रद्धा एवं उनकी सेवा को धर्म बताया गया हैं। रामायण में वैदिक कर्मकाण्ड भी धर्म के रूप में वर्णित है; किन्तु महर्षि वाल्मीकि ने धर्म को एक निश्चित परिधि में बाँधा नहीं है। धर्म का प्रभाव रामायणकालीन जीवन के प्रत्येक पहलू पर था।

महर्षि वाल्मीकि के अनुसार सत्य, दान, तप, त्याग आदि सभी सद्गुण श्रीराम में स्थिर रूप से रहते हैं और श्रीराम धर्म का मूर्तिमान् स्वरूप हैं—रामो विग्रहवान् धर्मः। इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि ने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कान्तासम्मित शैली में श्रीराम को सभी सद्गुणों से युक्त कहा तथा मूर्तिमान् धर्म कहा, इसलिए धर्म चरित्र की सर्वविध सम्पूर्णता है।

रामायणकार के अनुसार जीवन का अत्यन्त आवश्यक प्रयोजन ही 'अर्थ' है, जिसके अभाव में सम्पूर्ण क्रियायें उसी प्रकार छिन्न-भिन्न हो जाती हैं, जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतु में छोटी-छोटी नदियाँ सूख जाती है। वस्तुतः अर्थ के बल पर ही मानव लोक जीवन में सम्मान का पात्र बनता है। इस अर्थ से ही धर्म एवं काम रूप प्रयोजन सिद्ध होते हैं।

अयोध्याकाण्ड के प्रारम्भ में ही काम-लीला प्रारम्भ हो जाती है। अरण्यकाण्ड में शूर्पणखा के कामभाव ने ही अनर्थ का बीज बोया है।

रामायण के अनुसार सुख के साधन भूत त्रिवर्ग का एकमात्र प्रयोजक कर्म है, जिसके बिना ये फलीभूत नहीं हो सकते। नीतिज्ञ पुरुष धर्म, अर्थ या काम का अथवा सबका अपने समय पर सेवन कर परमपद मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

❖

EP-35

'शाण्डिल्य-भक्तिसूत्र' और 'नारदभक्तिसूत्र' में भक्तिमीमांसा

डॉ. क्षेमराज भाई आर. पटेल, गुजरात

प्राचीन-काल में महर्षि शाण्डिल्य और महर्षि नारदरचित 'शाण्डिल्यभक्तिसूत्रम्' और 'नारदभक्तिसूत्रम्' नामक दो सूत्रात्मक ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। दोनों महर्षियों का समय निश्चित नहीं हो सकता है; किन्तु उनकी इन दोनों कृतियों का प्रमाण 'भगवद्गीता' और 'भागवत' में लक्षित होता है। सूत्रात्मक ग्रन्थों के सर्जनकाल में इन दोनों कृतियों की रचना हुई है। अतः इन दोनों को भक्तिशास्त्र के प्राचीनतम ग्रन्थ कह सकते हैं। ऐसे ग्रन्थों के आधार पर ही भक्ति की प्रतिष्ठा हुई है। इतना ही नहीं ऐसे ग्रन्थों में जो प्रेमलक्षणा-रागानुगा भक्ति का निरूपण हुआ है, उसके आधार पर भक्ति को भी 'रस' मानने की वृत्ति का उदय हुआ और इस प्रकार उत्तरकाल में 'भक्तिरस' का उदय हुआ और भक्तिरस की मीमांसा होने लगी।

'शाण्डिल्य-भक्तिसूत्र' में कुल 202 सूत्र प्राप्त होते हैं। इन सूत्रों में भक्ति-व्याख्या, भक्ति-स्वरूप, भक्ति का फल, भक्त के लक्षण, ज्ञान से भक्ति की श्रेष्ठता, भक्ति-प्रकार, भक्तिमार्ग की श्रेष्ठता, गौणी और पराभक्ति, भक्ति के साधन इत्यादि विषयों का निरूपण हुआ है।

'शाण्डिल्यभक्तिसूत्र' में ईश्वर के प्रति जो पराभक्ति या अनुरागभक्ति का निरूपण हुआ है, वहीं उत्तरवर्ती मधुसूदन सरस्वती और रूपगोस्वामी जैसे आचार्यों के लिए भक्तिरस के मूल आधार स्वरूप सिद्ध होता है।

महर्षि शाण्डिल्य के भक्तिसूत्र से नारद का भक्तिसूत्र विकासशील और सुव्यवस्थित है। 'नारद-भक्तिसूत्र' में भी 'शाण्डिल्य-भक्तिसूत्र' के समान ही भक्तिविषयक सभी विषयों का प्रतिपादन हुआ है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्तिविषयक विभिन्न अंगों के निरूपण में नारद पर शाण्डिल्य का प्रभाव लक्षित होता है। नारद की प्रमुख विशेषता यह है कि उन्होंने प्रेमाभक्ति को आसक्ति की दृष्टि से ग्यारह आसक्तियों का निरूपण किया है। नारद द्वारा प्रतिपादित ऐसी आसक्ति प्रधान भक्ति उत्तरवर्ती आचार्यों के लिए भक्तिरस की स्थापना में आधाररूप बनती है।

प्रस्तुत शोधपत्र में शाण्डिल्य और नारद के जीवन से सम्बद्ध तथ्यों का आकलन करके दोनों के भक्तिसूत्रों का तुलनात्मक अभ्यास प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

❖

EP-36

पुराणों में आगत विचित्र विद्याओं का समीक्षण

डॉ. मोहन मिश्र, भागलपुर

पुराणों में विज्ञान, वास्तुविद्या की अवस्थिति तो है ही, विचित्र विद्याओं का भी समावेश है। ऐसी विद्याएँ आख्यानकों के सन्दर्भ में वर्णित हैं, जिन पर आधुनिक कलियुगी मानव प्रायः विश्वास करना उचित नहीं समझता, किन्तु उस युग में वे विद्याएँ सच्ची थीं तथा उनका व्यवहार जनसाधारण के मध्य किया जाता था। संस्कृत में मन्त्र शास्त्र, माया और विज्ञान तथा पालि में मन्त्र और विज्जा विद्या के ही पर्याय हैं। इन विचित्र विद्याओं में से कतिपय का संकेत यहाँ संक्षेप में उपस्थापित किया जा रहा है—(1) अनुलेपन विद्या, (2) स्वेच्छारूपधारिणी विद्या, (3) अस्त्रग्रामहृदय विद्या, (4) सर्वभूतरूत विद्या, (5) पद्मिनी विद्या, (6) रक्षोघ्न विद्या, (7) जालन्धरी विद्या, (8) विद्यागोपाल मन्त्र, (9) पराबाला विद्या, (10) पुरुषप्रमोहिनी विद्या, (11) उल्लापनविधान विद्या, (12) देवहूति विद्या, (13) युवकरण विद्या, (14) वज्रवाहनिका विद्या।

प्रस्तुत शोध निबन्ध में विचित्र विद्याओं का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है तथा आधुनिक संस्कृत विद्वानों से इस वैज्ञानिक युग में नवीन चमत्कार दिखलाने का आह्वान किया गया है।

❖

EP-37

वैदिक और वैदिकोत्तर पौराणिक वाङ्मय में नहुष-कथा

डॉ. वत्सला

पुरातनकालीन राजाओं में स्वर्ग और मर्त्यलोक को एक सूत्र में ग्रथित करने वाले चन्द्रवंशीय भारतीय नरपतियों में नहुष का अन्यतम स्थान है। नहुष कथा के मूल स्रोत के अन्वेषणार्थ हमारे पास साधन है—वैदिक साहित्य। वैदिक कालीन कथाओं का ही अन्य परवर्ती ग्रन्थों में विभिन्न रूपों में विवेचन हुआ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। ऋग्वेद जो कि ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं है, इसमें नहुष के उल्लेख से कहा जा सकता है कि उसे उस समय में काफी प्रसिद्धि प्राप्त हो चुकी थी।

भारतवर्ष के प्राचीनतम राजवंशो में वैवस्वत मनु के सन्तति इक्ष्वाकु से सूर्यवंश और इला से चन्द्रवंश की परम्परा का सूत्रपात हुआ। रामायण और महाभारत यथाक्रम इन दो राजवंशों की वीरगाथा का ही संकीर्तन करते हैं। चन्द्रवंश के प्रमुख राजाओं में पुरूरवा, नहुष, ययाति और आगे चलकर कुरु और पाण्डव राजगण उत्पन्न हुए। देव, असुर और मानव इन तीनों संस्कृतियों को एक सूत्र में गुम्फित करने के कारण एक ही वंश के तीनों नरपति नहुष, ययाति और पुरु अद्यावधि भी साहित्येतिहास में अपने-अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व के कारण उदाहरण के रूप में स्मरण किए जाते हैं। नहुष का सम्बन्ध देव संस्कृति था और देवताओं द्वारा अनुगृहीत थे। नहुष के समग्र जीवन की जानकारी हेतु हमारे पास सर्वोत्तम साधन है महाभारत—निःसन्देह इस कथा को महाभारत ने वैदिक स्रोत से ही प्राप्त किया है, पर पौराणिक स्रोत से जोड़कर उस कथा को पूर्ण रूप देने का श्रेय महाभारत को है।

महाभारत की कथा को ही पूर्णाङ्ग मानकर प्राचीनतर साहित्य में उसका मूलानुसन्धान तथा सादृश्य-वैसादृश्य का विवेचन सम्भव हो सका है। लगभग सभी पुराणों में यह कथा महाभारत के ही तुल्य है। केवल पद्मपुराण में संगृहीत कथा महाभारत से एकदम भिन्न है। आदिकाव्य वाल्मीकि रामायण में केवल उल्लेख मात्र उपलब्ध होता है। लौकिक साहित्य में नहुष-कथा पर आधृत कोई नाटक या महाकाव्य नहीं लिखा गया है। 'मेनका-नहुष' नाटक का उल्लेख कृष्णमाचारी ने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर' में किया है।

अब समय आ गया है, जबकि तिमिराछन्न इन वैदिक व पौराणिक आख्यानों का केवल मिथक के रूप में उल्लेख न कर उनका ऐतिहासिक व मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया जाये।

❖

EP-38

ब्रह्मवैवर्तपुराण में व्यक्त न्याय, दण्ड एवं शासन व्यवस्था की वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता

डॉ. जे. के. गोदियाल, श्रीनगर

संस्कृत वाङ्मय जितना प्राचीन, महत्त्वपूर्ण तथा प्रसिद्ध है, उतनी ही प्रख्यात है—उसकी विविधता। विविधता की इस परिकल्पना में पुराण-साहित्य का विशेष महत्त्व है। वस्तुतः 'पुराण' वेद का पूरक माना जाता है।

विषयप्रतिपादन की दृष्टि से भी पौराणिक साहित्य का व्यापक महत्त्व है। वेदों में जो विषय सूत्रात्मक शैली में उपस्थापित हैं, उन्हीं की विस्तृत मीमांसा पुराणों का प्रतिपाद्य विषय है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षरूप चतुर्वर्ग के विस्तृत विश्लेषण के साथ-साथ आदिकालीन समाज की संरचना का, पौराणिक साहित्य में सुविस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है। इस दृष्टिकोण से "ब्रह्मवैवर्तपुराण" भी अछूता नहीं है। इसमें 'ब्रह्म' का तथा उसके विवर्त रूप में स्थित जगत् का निरूपण है। इसी सन्दर्भ में पुराण-कालीन समाज, उसकी न्यायिक विधि, दण्डविधान एवं शासन व्यवस्था का भी पर्याप्त विवेचन 'ब्रह्मवैवर्तपुराण में दृष्टिगोचर होता है।

ब्रह्मवैवर्तपुराण में जिस शासन-व्यवस्था का उल्लेख मिलता है, वह शास्त्रसम्मत होने के साथ ही नितान्त व्यावहारिक और कल्याणकारिणी रही है। इसमें राज्य के गठन को विकास की धुरी बताया गया है।

इसी प्रकार न्याय व दण्डविधान का भी पर्याप्त विवेचन करते हुए कहा गया है कि जो ब्राह्मण भृत्य द्वारा या स्वयं वृषवाहक का कार्य करता है, वह कृतघ्न के रूप में प्रख्यात माना जायेगा। आज की लम्बी विधिक-प्रक्रिया के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत दण्डविधान निःसन्देह व्यावहारिक व सहज साध्य है।

प्राचीन काल में समाज की जो परिकल्पना की गई थी, उसी के अनुरूप सम्पूर्ण व्यवस्था भी विद्यमान थी। आज समाज का एक सुनिश्चित शास्त्रीय स्वरूप न होने के कारण, तथाकथित विकास होने के बावजूद, उसमें अनेक विषमताएँ विद्यमान हैं। इसी कारण पौराणिक व्यवस्थाओं की प्रासंगिकता स्पष्ट है, जिनको रेखांकित करना इस शोध-पत्र का लक्ष्य है

❖

EP-39

भागवतपुराण में 'धर्म' का प्रत्यय

श्री आर. के. श्रीवास्तव, रायपुर

'धर्म' के प्रत्यय का विकास तीन चरणों में माना जा सकता है, यथा—वैदिक आदेश अर्थात् विधि-निषेध के पालन हेतु सम्पादित कर्तव्यरूप में 'धर्म', अहिंसा-सत्य-आत्मसंयम आदि नैतिक सद्गुणों के रूप में 'धर्म' तथा योग के द्वारा आत्मज्ञान के रूप में 'धर्म'।

भागवतपुराण में 'धर्म' का प्रत्यय एक नवीन आयाम में उपलब्ध होना प्रतीत होता है। इस सम्बन्ध में उक्त पुराण के प्रथम स्कन्धान्तर्गत प्रथम अध्याय का द्वितीय श्लोक तथा द्वितीय अध्याय का 6वाँ से 9वाँ श्लोक विशेष रूप से दृष्टव्य हैं। इनका सार यह है कि ईश्वर की अहैतुकी (निष्प्रयोजन या निःस्वार्थ) एवं अप्रतिहत (निर्बाध) भक्ति को ही 'धर्म' माना जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में यदि कहें तो ईश्वर की ऐसी उपासना या भक्ति जो सभी के प्रति दयालु एवं निर्मत्सर (ईर्ष्यारहित) व्यक्तियों द्वारा सद्भावनापूर्ण हृदय के साथ की जाय। उपर्युक्त प्रकार से 'धर्म' (आध्यात्मिक स्वरूप का होने के कारण) वैदिक विधि-निषेध के पालन में 'धर्म' के निःश्रेयस रूप से कहीं अधिक श्रेष्ठ है।

इसकी विस्तृत चर्चा हम अपने निबन्ध में करेंगे।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

EP-40

ब्रह्मपुराण मे चन्द्रवंश वर्णन के पाठ की समीक्षा

डॉ. मनसुख के. मोलिया, गुजरात

'पुराणं पञ्चलक्षणम्' के अनुसार वंशवर्णन पुराण का महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। वैवस्वत मन्वन्तर में सूर्यवंश और चन्द्रवंश प्रधान वंश है। सूर्यवंश की अपेक्षा चन्द्रवंश का विस्तार और उसकी शाखा-प्रशाखाएँ अधिक हैं। ब्रह्मपुराण में चन्द्रवंश वर्णन का पाठ अत्यन्त क्षतिग्रस्त है। उसमें पाठ्यांश के स्थानविपर्यय के कई उदहारण मिलते हैं, जिससे एक वंश के साथ दूसरा वंश गलत रीति से मिल गया है। एक ही पाठ्यांश की दो भिन्न स्थानों पर पुनरुक्ति के प्रसङ्ग भी देखे जाते हैं, तो कहीं कुछ अंश लुप्त भी हुए हैं। एक नाम के स्थान पर दूसरे नाम के प्रयोग के उदहारण भी प्राप्त हैं।

इस तरह ब्रह्मपुराण के पाठ में विविध रूप से क्षतियाँ उद्भूत हुई हैं। इनका परिमार्जन करने के लिए अन्य पुराणों में उपलब्ध इस वंश के पाठ का तुलनात्मक समीक्षण आवश्यक बन जाता है। प्रस्तुत आलेख में मैंने वायुपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, विष्णुपुराण, मत्स्यपुराण और भागवतपुराण में प्राप्त चन्द्रवंश वर्णन के पाठ्यांश की दृष्टि को रखकर ब्रह्मपुराण के चन्द्रवंश वर्णन के पाठ की समीक्षा करने का प्रयास किया है और आलेख के अन्त में कुछ निष्कर्ष प्रस्तुत किये हैं।

❖

EP-41

पुराणों में अवतारवाद

डॉ. शशि मिश्रा, वाराणसी

प्रायः सभी पुराणों में अवतारों का वर्णन किसी न किसी रूप में हुआ है। अवतारतत्त्व भगवान् के धर्म-नियामकत्व रूप पर प्रतिष्ठित है। सम्पूर्ण संसार को एक सूत्र में पिरोकर रखने वाला तत्त्व यह धर्म ही है। जैसे ही विश्व में धर्मक्षय की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है तथा अधर्म का बाहुल्य हो जाता है तब भगवान् को इसे व्यवस्थित करने के लिये अवतार लेना पड़ता है। अवतार लेने के प्रयोजन भिन्न-भिन्न हो सकते हैं—कभी अधर्म के नाश के लिये, कभी ज्ञानतत्त्व से परिचित कराने के लिये कपिल के रूप में, कभी पृथ्वी (त्रिलोकी) के उद्धार के लिये मत्स्य के रूप में, तो कभी विशाल मन्दराचल पर्वत को धारण के निमित्त कच्छप के रूप में, कभी मोहिनी रूप धारण कर दैत्यों को मोहित कर दैवों को अमृत पिलाने के प्रयोजन से, कभी अधर्मरूपी रावण का संहार करने के निमित्त राम रूप में, तो कभी धर्म की स्थापना के लिये कृष्ण के रूप में भगवान् अवतार लेते रहते हैं। इस प्रकार पुराणों एवं हमारी धर्म-संहिताओं में अवतारों के चौबीस रूप तो कहीं बाइस रूपों का वर्णन है।

अवतारों की संख्या कितनी ही क्यों न हो, भगवान् का अवतार कहीं भी निष्प्रयोजन नहीं है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्पष्ट है कि भगवान् का अवतार भगवान की ही लीला है। अवतार क्या है, इसकी क्या आवश्यकता है, इसका क्या प्रयोजन है इसकीं संख्या क्या है? आदि सभी बातों का उल्लेख पुराणों में अवतारवाद नामक शीर्षक में निहित है।

❖

EP-42

थाई रामकथा में हनुमत्प्रेयसी बेञ्जकयी

डॉ. पूनम भारद्वाज, हरियाणा

आदिकाव्य रामायण अपने रचना-काल से अद्यावधि सभी के हृदय में नवीन चेतना एवं नवस्फूर्ति का संचार करती चली आ रही है। रामकथा केवल भारतीय जनमानस की आत्मा ही नहीं, वरन् भारतीय सीमाओं को पार कर थाईलैण्ड, इण्डोनेशिया आदि देशों के जीवन से भी जुड़ी हुई है। प्रो. सत्यव्रत शास्त्री ने थाइलैण्ड में प्रचलित रामकथा का 'रामकीर्तिमहाकाव्य' में निबन्धन किया है।

इस महाकाव्य के द्वारा थाईलैण्ड में प्रचलित रामकथा की अनेक विभिन्नतायें और विशेषतायें सामने आती हैं। यहाँ भारतीय रामायण में, जो हनुमान् ब्रह्मचारी हैं, वे वहाँ प्रणय प्रसंग में वर्णित हैं। बेञ्जकयी विभीषण की पुत्री है। वह मायावी कार्यों में कुशल है। राक्षसराज रावण राम को युद्ध से हटाने के लिए छल का आश्रय लेता है, तब वह बेञ्जकयी को इस कार्य के लिए नियुक्त करता है। रावण द्वारा नियुक्त की गई वह राम के सामने मृत-मायावी सीता के रूप में नदी में प्रवाहित हो जाती है, जहाँ राम स्नान के लिए आते हैं। सच्चाई ज्ञात होने पर राम हनुमान् को उसे लंका में छोड़ने के लिए भेजते हैं। मार्ग में बेञ्जकयी हनुमान् के प्रेम-पाश में आबद्ध हो जाती है। बलशाली हनुमान् को अपने साथ देख काम-भाव के वशीभूत वह अपने मन को काबू में नहीं रख पाती और उनके साथ रमण करने लग जाती है। प्रस्तुत शोधपत्र में हनुमान् की प्रेयसी बेञ्जकयी का चित्रण करना अभीष्ट है।

❖

EP-43

महाभारत में अपरिग्रह संस्तुति

डॉ. (श्रीमती) इन्दु शर्मा, कुरुक्षेत्र

अपरिग्रह परिग्रह का विपरीतार्थक है। धन-सम्पत्ति, भोग-सामग्री अथवा अन्य वस्तुओं को अपनी आवश्यकता से अधिक केवल अपने ही भोग के लिए स्वार्थदृष्टि से संचय करना ही परिग्रह है। इससे निवृत्ति ही अपरिग्रह है। प्राणियों में इसके निर्वाह के संस्कार सर्वप्रथम वैदिक संहिताओं में जगाए गए। यजुर्वेद में उपलब्ध 'त्यक्तेन भुञ्जीथाः' का अमर उपदेश भारतीय संस्कृति में इस यम के निर्वाह के आग्रह का श्रीगणेश सिद्ध होता है। इस व्रत के यथार्थ रूप से पालन के अभाव में ही धन-सम्पत्ति का ठीक-ठीक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभाग नहीं होता। किसी के पास सैंकड़ों मकान खाली पड़े हैं और किसी के पास सोने के लिए छोटी सी झोंपड़ी भी नहीं है। किसी के पास अनाज का अतुल भण्डार है, तो कोई भूखा मर रहा है। दूसरे शब्दों में कंजूसीपूर्वक संग्रह ही परिग्रह है। यही द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की समस्या का मूल है। तदनुसार ही हमारी संस्कृति में आरम्भ से ही इस दुर्वृत्ति के निषेध की चर्चा होती रही है। इसका निर्वाह समाज से समस्त विसंगतिविषयक, विषमताविषयक, अभावविषयक, असमानताविषयक समस्याओं का समाधान करने में सर्वथा समर्थ है। तदनुसार ही महाभारत में इसके समर्थन का तथा परिग्रह के निषेध का उल्लेख उपलब्ध होता है।

❖

EP-44

हिमाचल प्रदेश का लोकजीवन और श्रीमद्भागवत

श्री बलवन्त कुमार शर्मा, शिमला

श्रीमद्भागवत पुराण धर्म, भक्ति, ज्ञान का अथाह भण्डार है। यह सार्वभौमिक मानव के चरित्रों का वर्णन करता है, जिसमें कृष्ण की महिमा का मुख्यतः निरूपण किया गया है। इसलिए हिमाचल के अन्दर रहने वाले मनुष्यों के ऊपर भी भागवत में प्रदर्शित मानवचरित्र का तथा विशेषतः श्रीकृष्ण के चरित्र का प्रभाव पड़ना अनिवार्य है।

हिमाचल प्रदेश देश-विदेश में 'ऋषि-मुनियों की तपःस्थली व देवभूमि' नाम से विख्यात है। हिमाचली क्षेत्रों में मनु, वसिष्ठ, जमदग्नि, भृगु, परशुराम, सहस्त्रबाहु, पाराशर, मार्कण्डेय आदि ऋषियों ने तपस्याएँ की थीं। देवपरम्परा में ऋषि के रूप में सर्वप्रथम प्रातःस्मरणीय पुराणों के रचयिता महर्षि वेदव्यास का स्मरण हो आता है। महर्षि वेदव्यास के तीर्थ-स्थानों के रूप में विलासपुर के निकट 'व्यासगुफा' जिसका एक सिरा पुराने विलासपुर, जिसका पुराना नाम व्यासपुर था, उसके सांडू मैदान में तथा दूसरा सिरा जुखाला के पास माकड़ी गाँव में है, जहाँ पर मार्कण्डेय का प्रसिद्ध तीर्थस्थल, जो मार्कण्ड के नाम से प्रदेश में विख्यात है। लोगों का मानना है कि महर्षि व्यास और महर्षि मार्कण्डेय धार्मिक विचार चर्चा के लिए इस गुफा के माध्यम से एक-दूसरे के पास आया-जाया करते थे।

हिमाचल प्रदेश के अनेकों स्थलों पर छोटी-छोटी सरिताओं तथा सरोवरों को व्यास-गंगा अथवा व्यास-कुण्ड कहने की परम्परा है। अमरनाथ पर्वत, बद्रीनाथ, केदारनाथ तथा किन्नर कैलास शृँखलाओं पर महर्षि के पवित्र कुण्ड, महर्षि व्यास के स्मृति चिह्न हैं। बादरायण व्यास ने इन्हीं उपत्यकाओं में वेदों, सूक्तों का संकलन किया था।

प्रस्तुत शोधपत्र में श्रीमद्भागवतपुराण में वर्णित अनेक कथास्थलों की खोज का प्रयास किया गया है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

EP-45

स्वामी दयानन्द की दृष्टि में पुराण-साहित्य

डॉ. विजयलक्ष्मी, मुजफ्फरपुर

ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के एकादश समुल्लास में 'ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथानाराशंसीरिति' सूत्र की व्याख्या करते हुए पुराण शब्द का अर्थ 'जगदुत्पत्ति आदि का वर्णन' किया है। पुराणों के सम्बन्ध में एक प्रश्न के उत्तर में उन्होंने लिखा है कि पुराणों की बातें 'घुणाक्षरन्याय' से सच्ची हैं, तत्पश्चात् अनेकों उदाहरण द्वारा स्वमत को पुष्ट किया है। उनका कथन है कि पुराणों में परस्पर विरुद्ध बातें बहुत अधिक हैं, अतः वहाँ से सार को ग्रहण करना जनसामान्य के लिए दुष्कर कार्य है। आज का प्रबुद्ध विद्वान् इस मत से असहमत नहीं होगा कि पुराणों का इतिहास, सृष्टि-उत्पत्ति विषय, भौगोलिक आदि प्रकरण अत्यन्त सूक्ष्मानुशीलन के बिना स्पष्ट नहीं हो सकते। आचार्य बलदेव उपाध्याय अपने ग्रन्थ 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' में लिखते हैं—पुराण विशालकाय प्रासादों तथा महलों का निर्माण करने वाले पातालवासी मय नामक असुर के संकेतों से भरा हुआ है। फलतः यह मय कोई काल्पनिक व्यक्ति न होकर जीते जागते प्राणी थे, जो शिल्पकला के महनीय प्रतिष्ठापक माने जाते हैं, पुराणों के भौगोलिक वर्णन की विशेष छानबीन आवश्यक है। तभी इसकी यथार्थता सिद्ध हो सकेगी'। पुराणों के इतिहास के सम्बन्ध में दयानन्द लिखते हैं कि हम सत्य को इतिहास मानते हैं, असत्य को नहीं, परन्तु सत्य थोड़ा है, इसके साथ बहुत सा असत्य भी है। इसलिए 'असत्यमिश्रं सत्यं दूरतस्त्याज्यमिति' असत्य से युक्त ग्रन्थस्थ सत्य को भी छोड़ देना चाहिए।

पुराणों के साहित्य में किञ्चित्सत्य को मानते हुए भी उन्होंने इन्हें त्याज्य क्यों कहा, यही प्रस्तुत लेख का विवेच्य विषय होगा।

❖

EP-46

'मानस' के 'सुन्दर-काण्ड' नामकरण की सङ्गति

आचार्या श्रीमती दुर्गादेवी पाण्डेय, टाँडा

'सुन्द' पर सुन्द (उपसुन्द-भ्राता) नामक राक्षस अथवा राक्षसी-शक्ति (प्रवृत्ति) का पर्याय है, इस प्रकार 'सुन्दर' शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है, स्वयं राक्षस (राक्षसी शक्ति) दलनकर्त्ता या अपने स्वामी प्रभु राम, प्रियजन वानर और वानरराज सुग्रीवादि या भक्तजन को राक्षसों पर विजय-दाता या उनके रक्षक हनुमान्। इस प्रकार यतः सुन्दरकाण्ड में वर्णित पूर्वोक्त घटना-क्रम हनुमान् द्वारा सम्पादित या सम्बद्ध है, अतः 'सुन्दरकाण्ड' का अर्थ हुआ, 'रामायण और रामचरितमानस' में हनुमत्कृत उक्त घटनाओं का अध्याय (पाठ) या समुच्चय। अब इस अर्थ से घटना का नामकरण नायक अथवा कर्त्ता-पात्र के नाम पर होने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के सिद्धान्त का भी परिपालन हो जाता है और नामकरण (अर्थात् सुन्दरकाण्ड-नामकरण) पर सम्भावित आशङ्काएँ एवं विप्रतिपत्तियाँ इस अर्थ से स्वतः अपास्त हो जाती हैं।

'सुन्दर' शब्द 'प्रि, सहायक, विपत्ति-निवारक, लोकप्रिय, दुःख-हरण, उद्धारक, सज्जन, भक्त, भक्त-वत्सल, सङ्कटमोचन आदि का भी पर्याय है, जो गुण और कर्म के आधार पर हनुमान् का भी पर्याय सिद्ध होता है।

इस प्रकार इस लघु शोध-पत्र में 'सुन्दर-काण्ड' की अन्विति या सङ्गति की विविध दृष्टि ऊह और गवेषणात्मक विनम्र चेष्टा की गयी है। विश्वास है, कि सुधी पाठक एवं आचार्यगण इस चिन्तन में सहभागिता कर हमारा मार्ग-दर्शन करेंगे।

❖

EP-47

भागवतपुराणान्तर्गत 'ऐलगीत' : एक अध्ययन

प्रो. जगदीश शा. पुरोहित, जामनगर

वेदरूप कल्पवृक्ष का परिपक्व फल श्रीमद्भागवत पुराण है। यह पुराण वेद-वेदान्त का साररूप है, जिसमें भगवान् श्रीकृष्णचरित्र सम्बन्धी वेणुगीतम् (10-21), गोपीगीतम् (1031), युग्मगीतम् (10-34), और भ्रमरगीतम् (10-49) है। किन्तु विशिष्ट प्रयोजन से एकादश स्कन्ध में भिनुगीतम् (11-23) और ऐलगीतम् (11-26) का भी निरूपण किया गया है। ये सभी गान साहित्यिक दृष्टि से अतिमनोहर और काव्यत्वपूर्ण है।

ईलायाः अपत्यं पुमान् इति ऐलः। ईला का पुत्र होने से उसका नाम ऐल प्रसिद्ध हुआ। उसके पिता बुध थे। ऐल का अन्य नाम पुरूरवा भी प्रसिद्ध नाम था। उर्वशी नामक अप्सरा से मोह उत्पन्न होने के कारण वह राजा उन्मत्त सा हो गया। उस मोह से निवृत्त होने के लिये भागवतपुराण में ऐलगान का निरूपण किया गया है। एकादश स्कन्ध में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं, हे उद्धव! इस मानुषहेतु प्राप्त करके जिस मनुष्य का मन भागवतधर्म में निश्चल हो जाय, वह मुझे प्राप्त कर सकता है, किन्तु जिसका मन रत्न-धन-समृद्धि इत्यादि में फँसता है, वह मोह वश होकर संसार से मुक्त नहीं हो सकता। इस विषय में आपको ऐलगाथा (पुरूरवा की गाथा) सुनाता हूँ।

इस ऐलगीत में पुरूरवा की मोहावस्था का वर्णन किया गया है। इस गीत में 18 (अट्ठारह) श्लोकों में स्त्री का मोह विस्तार, स्त्रीशरीर निरूपण, स्त्री का पुरुष पर प्रमाद, स्त्री-पुरुष सम्बन्ध, ऐल की प्रकृति, स्त्री के प्रति पुरुष का कामभाव, स्त्री संगरूप आसक्ति का विस्तृत निरूपण है। इस आसक्ति से जब मन छूट जाता है, तब अज्ञान का नाश होने से मनुष्य निरपेक्ष, निर्मम, निर्द्वन्द्व, निष्परिग्रह, निरहङ्कार हो जाता है और भगवन्सम्मुख होता है, जिससे अज्ञान ध्वंस हो जाने के कारण संसार-सागर पार करके जन्म-पुनर्जन्म चक्र से बाहर होकर स्वयं मोक्ष प्राप्ति का अधिकारी बन सकता है। यह रहस्य 'ऐलगीत' के माध्यम से शुकदेव परीक्षित को बता रहे हैं,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिससे परीक्षित के हृदय में किसी भी आसक्ति का प्रादुर्भाव न हो सके और मृत्यु पर विजय पा सके। यह केन्द्रियभाव प्रस्तुत शोध-पत्र में प्रकट करने का प्रयत्न किया गया है।

❖

EP-48

गरुड-पुराण में चित्रित समाज

डॉ. जगदीश प्रसाद शुक्ल, सीतापुर

भारतीय संस्कृति अनादि काल से विश्व पटल के लिए प्रेरणा स्रोत रही है। वैदिक काल से आज तक का साहित्य हमारी संस्कृति तथा समाज को दिशा-निर्देश करता रहा है। संस्कृति का उपकारक संस्कृत साहित्य हैं; क्योंकि हमारी संस्कृति के मूल-भूत तत्त्व संस्कृत के आर्ष-ग्रन्थों में निहित हैं। इस सम्बन्ध में कहा गया है—भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतं संस्कृतिस्तथा।।

इस प्रकार संस्कृत तथा संस्कृति इन दोनों के कारण ही भारत की प्रतिष्ठा आज भी विश्व में व्याप्त है। वैदिक साहित्य की भाषा दुरूह होने के कारण ही सामान्य जनों के कल्याण के लिए इनका पुराणों के द्वारा उपबृंहण किया गया है। इस से यह सिद्ध है कि पुराणों का वर्ण्य-विषय वैदिक है। पुराणसाहित्य भी वेदवत् अनादि हैं, जैसे—

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।। (मत्स्यपुराण)

परन्तु पश्चात्त्य तथा कुछ आधुनिक विद्वान् भी पुराणों का रचना काल दशवीं शताब्दी ई. तक ही स्वीकार करते है, जो भी हो, पुराणों में परम्परागत ज्ञानराशि का समावेश है जो हमारे लिए गवेषणीय हैं।

गरुडपुराण वैष्णव पुराण के रूप में जाना जाता है। विषय विवेचन की अधिकता के कारण यह पुराण 'पौराणिक कोश' कहा जा सकता है। प्रस्तुत शोधपत्र में इसे ही आधार मानकर समाज को उपस्थापित किया गया है। प्राचीन भारतीय समाज वर्णव्यवस्था पर आधारित था। मानव जीवन का लक्ष्य पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति बताया गया है, जो एक अच्छे समाज द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

❖

EP-49

शिवपुराण में प्रणवतत्त्व

डॉ. ददन उपाध्याय, वाराणसी

'मन्त्राणां प्रणवः सेतुः' प्रणव मन्त्रों का सेतु है। सभी वैदिक मन्त्र प्रणव से ही प्रारम्भ होते हैं। प्रणव सभी वेदों का सार है एवं सृष्टि के विकास का सूत्र है। सभी विरोध इससे समाहार होते हैं। जैसा कि ऋषियों का कथन है—तत् प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽपि अन्तरायोऽभावश्च। 'ओम्' से सभी अन्तराय टूटते हैं। अन्तराय—अर्थात् चित्त का विक्षेप। ओम् उसे दूर करता है। भोजवृत्ति में कहा है—'प्रकर्षेण नूयते स्तूयतेऽनेनेति नौति स्तौतीति वा प्रणव ओङ्कारः'।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तुत शोध-निबन्ध में प्रणव का माहात्म्य, उसके सूक्ष्म रूप और स्थूल रूप का विवेचन, उसके जप की विधि एवं महिमा आदि विषयों को शिवपुराण का आधार बनाकर प्रस्फुटित करने का प्रयास किया गया है।

❖

EP-50

भागवतपुराण में वत्सल रस

डॉ. गिरीशचन्द्र पन्त, दिल्ली

अपत्यस्नेह आनन्दसागर के समान है। प्राणिमात्र में अपत्यस्नेह की पराकाष्ठा तथा उस असीम आनन्द को सहज ही समेट लेने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। पुत्रविषयक रति को वत्सल नाम देकर संस्कृत साहित्यशास्त्र के आचार्यों ने दशम रस की स्थापना की।

वत्सल रस की उद्भावना व स्थापना में साहित्यशास्त्र के अनेक आचार्यों ने योगदान किया है। शनैः शनैः संस्कृत काव्य-रचनाओं में वत्सल ने प्रधान रस के रूप में स्थान प्राप्त किया। बीसवीं शताब्दी के संस्कृत के कुछ कवियों ने अपत्यस्नेह को आधार बनाकर वात्सल्यमय काव्यरचनाएँ कीं। भागवतपुराण लौकिक संस्कृत-साहित्य की उन प्रारम्भिक रचनाओं में एक है, जिनमें भक्तिरस प्रधान होने के साथ-साथ वीर, रौद्र व वत्सल रस अङ्गरस के रूप में आस्वादित होते हैं। भागवतपुराण का प्रारम्भ ही अपत्यस्नेह को प्रवाहित करता प्रतीत होता है—

यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव।
पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदुस्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि॥ (भा.पु. 1।1।2)

यहाँ पर वात्सल्य का आधार निश्चितरूप से वेदव्यास का अन्तःकरण है, कृष्ण की बाललीलाओं में वात्सल्य सहज रूप में समाया हुआ है, विशेष रूप से भागवतपुराण का दशम स्कन्ध कृष्णविषयक भक्ति के साथ-साथ वात्सल्य का निदर्शन भी कराता है। शकटभञ्जन, तृणावर्त उद्धार आदि प्रसंगों में यशोदा का कृष्ण के प्रति वात्सल्य सहज रूप में प्रकट हुआ है। प्रस्तुत शोधपत्र में इन्हीं प्रसंगों के आधार पर वात्सल्य रस पर प्रकाश डाला गया है।

❖

EP-51

महाभारत में जलतत्त्व

सुश्री सीमा सिंह

इस शोध-निबन्ध में आर्ष विपुल काव्य 'महाभारत' के 'वनपर्व' एवं हरिवंशपुराण में आगत जल सम्बन्धी तत्त्वों का दिग्दर्शन करने का प्रयत्न किया गया है। यद्यपि उक्त महाभारतीय अंश में भी जल

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बन्धी तत्त्व का उल्लेख अतिविस्तृत है। उसमें से समय-सीमा को दृष्टि में रखकर मैं इसे संक्षेप में प्रस्तुत करना चाहती हूँ।

श्रीहरिवंशपुराण के प्रथम अध्याय में स्वयम्भू भगवान् नारायण ने नाना प्रकार की प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा से सबसे पहले जल की ही सृष्टि की, फिर उस जल में अपनी शक्ति का आधान किया—

ततः स्वयम्भूर्भगवान् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमवासृजत्।। (श्रीहरिवंशपुराण, खिलभाग-1.35)

महाभारत के ही वनपर्व के अध्याय 'अरण्यवर्ग' के द्वितीय अध्याय में जल को इतना पवित्र एवं महत्त्वपूर्ण माना गया है कि सत्पुरुषों के पास जल के अभाव को असंभव बताया गया है—

तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता। (आदिपर्व, अरण्यपर्व-2.54)

धौम्य मुनि और वैशम्पायन के वार्तालाप में सृष्टि के मूल में जलतत्त्व का विवेचन अत्यधिक तर्कपूर्ण एवं वैज्ञानिक ढंग से मिलता है। सृष्टि के प्रारम्भ काल में जब सभी प्राणी भूख से अत्यन्त व्याकुल हो रहे थे, तब भगवान् सूर्य ने पिता की भाँति उन पर दया करने से उत्तरायण में जाकर अपनी किरणों से पृथ्वी का जल खींचा और दक्षिणायन में लौटकर पृथ्वी को उस रस से आविष्ट किया। सूर्य ग्रीष्मकाल में अपनी किरणों से समस्त देहधारियों के तेज और सम्पूर्ण औषधियों के रस का सार खींचकर पुनः वर्षाकाल में उसे बरसा देते हैं।

महाभारतकालीन युग में सरोवर के जल को स्वच्छ और स्वादु होने के कारण शीतल पेय के रूप में प्रयोग करके थकान मिटाने का प्रयत्न करने वाले लोगों का वर्णन है। इसी प्रकार सम्पूर्ण महाभारत के सभी पर्वों में जलविषयक वैज्ञानिक तथ्यों का उल्लेख है, जिस पर गम्भीरता से व्यापक चिन्तन एवं शोध की आवश्यकता है।

❖

EP-52

श्रीमद्भागवत में बाल-वर्णन

डॉ. आशारानी पाण्डेय, उन्नाव

. संस्कृत-साहित्य विश्व का सर्वश्रेष्ठ मौलिक एवं सर्वाङ्गपूर्ण विशिष्ट साहित्य है। संस्कृत वाङ्मय की कीर्ति-कौमुदी के संवर्द्धन में उसके काव्यात्मक अंग ने विशेष योगदान किया है। संस्कृत काव्यों में मानव के सम्पूर्ण जीवन एवं उसमें घटित होने वाली घटनाओं का विशद विवेचन हुआ है। संस्कृत काव्य प्रायः शैशव की स्पृहणीयता, वत्सलता तथा भावमयता के चित्ताकर्षक चित्रों से अभिमण्डित है। परमपिता की सृष्टि का सर्वोच्च सौन्दर्य 'बालक' है। महाप्रलय के पश्चात् एकमात्र अवशिष्ट ब्रह्मरूप 'अँगूठा चूसते हुए', 'वटपत्र' पर विराजमान बालक अपने महत्त्व को स्वयमेव प्रतिष्ठापित कर देता है—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करारविन्देन पदारविन्दं मुखारविन्दे विनिवेशयन्तम्।
वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं बालं मुकुन्दं शिरसा नमामि॥

श्रीकृष्ण की लीलाएँ अपार हैं, अद्भुत हैं तथा विविध है। उन लीलाओं का सम्बन्ध मानव जगत् से ही नहीं है, अपितु सम्पूर्ण चराचर से है। गोपियाँ उनकी लीलाओं के क्रीतिदास हैं, माता-पिता उनके अतिशय प्रेमी हैं, पशु-पक्षी आदि अनुरागी हैं, गायों का तो पूछना ही नहीं है क्योंकि उन्हें कृष्ण से पृथक् कर देने पर एक ऐसी रिक्ति हो जाती है, जिसकी पूर्ति अत्यन्त कठिन है। गोचारण उनके बाल्यजीवन का एक मुख्य अंग है।

श्रीमद्भागवत का शैशव चित्रण निस्सन्देह अनुपम, मौलिक, भव्य, मनोहर तथा दिव्य है। उनमें भारतीयता का प्रकाशन तथा सामान्य सार्वभौम बालक-जगत् का प्रतिबिम्बन सहज रूप में सँजोया गया है। भागवत के इस वात्सल्य-वर्णन में तन्मयता है, स्वाभाविकता है, मनोवैज्ञानिकता है, सरलता है, सहजता है, हृदय को आकृष्ट करने की पूर्ण क्षमता है। यही कारण है कि श्यामसुन्दर की बालकेलि आदि अन्य आजन्म ललित लीलाओं का भव्य चित्रण करने वाले हरिविलासम्, गीतगोविन्दम्, यादवाभ्युदयम् आदि अनेक ग्रन्थों का श्रीमद्भागवत ही आधार है। वात्सल्यरससम्राट् सूरदास के वात्सल्य-वर्णन का आधार भी यही भागवतपुराण है।

❖

EP-53

श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्णविषयक सम्बोधनों का विवेचनात्मक अध्ययन

प्रो. राजेशलाल मेहरा, इन्दौर

श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय संस्कृति की अक्षुण्ण निधि है। इसमें समस्त शास्त्रों का सार निहित है। इसके ज्ञान-भक्ति-कर्म की त्रिवेणी का अमृत-प्रवाह आज तक मानव जाति को सत्प्रेरणा और नैतिक उत्थान का मार्गदर्शन प्रदान करता आया है।

गीता में श्रीकृष्ण को अनेक अलग-अलग नामों से संबोधित किया गया है। श्रीकृष्ण के विभिन्न नामों से संबोधनों की व्यक्तिवाचक संज्ञा में प्रत्येक नाम की अपनी एक विशिष्टता है। प्रत्येक संबोधन प्रसंगानुकूल समीचीन एवं विलक्षण अर्थ लिए हुए हैं। कुछ स्थानों पर एक साथ तीन-तीन नामों से सम्बोधन है। महाबाहो आदि कुछ संबोधन श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों के लिए प्रयुक्त हैं।

तत्त्वरूप से एक ही परमसत्ता को भिन्न-भिन्न नामों से संबोधित किया गया है। वह अनन्तरूपों में व्याप्त होने के कारण अनन्तरूप है, सर्वव्यापक होने से विष्णु, चित्त को चलायमान कर देने वाली द्वन्द्वात्मकविपरीत परिस्थिति में जो च्युत न हो वह अच्युत है, पुरुषों में उत्तम पुरुषोत्तम, ब्रह्मा और शिव पर भी नियंत्रण रखने वाले केशव, माया के पति माधव, मधुसूदन, जनार्दन, योगेश्वर, कमलनेत्र आदि सभी सम्बोधन में पारस्परिक तादात्म्य भी विलक्षण है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बोधनों का विवेचन गीता के अध्ययन को एक नई दृष्टि प्रदान कराता है। गीता के बारे में स्पष्ट मान्यता है कि इसका पठन-चिन्तन जितनी बार होगा, उतनी ही बार नवीन भाव-सृष्टि निर्मित होगी। इस दृष्टि से संबोधनों का अध्ययन महत्त्वपूर्ण है।

❖

EP-54

पुत्रेषणा : ब्रह्मपुराणीय विवेचना

डॉ. शशिभूषण प्रसाद, दरभंगा

पुत्रेषणा हमारे सहस्राब्दियों के संस्कार, सनातनी मानसिकता और पौराणिक मान्यताओं का संदर्शन कराता है। वस्तुतः धर्मशास्त्रकारों ने सामाजिक विकास को दृष्टि में रखकर पुत्रोत्पत्ति पर विचार व्यक्त किया है तथा सन्तान की अनिवार्यता पर बल दिया है। इसीलिए उन्होंने पुत्रोत्पत्ति को धार्मिक क्रिया के अन्तर्गत रखा तथा इसकी गुणात्मकता और महानता को सामाजिक आधार पर स्वीकार किया। परिवार की निरन्तरता, समाज का विस्तार, क्रमशः नयी पीढ़ियों का आगमन तथा धार्मिक कृत्यों-कर्मकाण्ड का प्रचलन मूलतः सन्तानोत्पत्ति पर आधारित रहा है। लोक और परलोक की कल्पना के माध्यम से सन्तान की अपेक्षा धर्मशास्त्रों में की गयी है तथा उसकी अपरिहार्यता पर बल दिया गया है। इस सन्दर्भ में ब्रह्मपुराणीय विवेचना और पुत्रेषणा का आप्त संदर्भ एक रोचक विषय-वस्तु प्रस्तुत करता है। आज के बदलते परिवेश में पुत्राकांक्षा की पौराणिक सार्थकता पूर्णरूपेण औचित्यपूर्ण है अथवा इसका विरेचन हुआ है—यह तथ्य नितान्त ही विचारणीय है। क्या जनाधिक्य की समस्या पौराणिक प्रतिपादन से किञ्चित् प्रभावित है। पुत्र-पुत्री में भेद-दृष्टि रखना मूढ़ता का परिचायक है या प्रबुद्धता का? ब्रह्मपुराण का यह उद्‌बोधन—'तस्मात्पुत्रसमं किञ्चित्काम्यं नास्ति जगत्त्रये' निश्चय ही एक सम्यक् विश्लेषण की विषयवस्तु प्रतीत होता है।

❖

EP-55

महाभारत में दुर्योधन

प्रियंका सिंह, उदयपुर

मैं इसमें यही कहना चाहूँगी कि बुराई जब इंसान पर हावी हो जाती है, तो उसकी अच्छाई भी नजर नहीं आती। इसी प्रकार 'दुर्योधन' भी कलह का पर्याय बना। उसे हम आज भी बुराई के रूप में याद करते हैं।

'दुर्योधन' महाभारत का एक ऐसा पात्र है, जिसके इर्द-गिर्द सारे पात्र घूमते हैं। इस एक पात्र ने ही कुरुक्षेत्र के युद्ध का सृजन किया, ऐसा नहीं है। आज के समालोचक इस मूल तथ्य को भूल

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाते हैं कि एक ही मापदण्ड से सबको नापने का प्रयत्न नहीं किया जा सकता। इस युद्ध में अनेक लोग तटस्थ रहे पर दुर्योधन तो उस राज्य का राजा था, न चाहते हुए भी उसे इस युद्ध का नायक तो बनना ही था। समस्या तो एक ही थी पाण्डवों से वैर, पर उसके हल अनेक निकल गए। न राज्य रहा न राजा।

'महाभारत' तो एक प्राचीन कथा है, पर हम उसे वर्तमान समाज के कितना करीब पाते हैं, मानव-स्वभाव का कितना साम्य है, दोनों युगों में। इस युग की ही बात करें, तो अपने खड़े होने भर स्थान के लिए भी संघर्ष है। कुंती के पुत्र वर्षों बाद लौटकर अपने हक की माँग करने लगे, तो इस माँग को सहज रूप में मान लेना पराक्रमी 'दुर्योधन' को कैसे मान्य होता। 'धर्म' की ही बात करें, तो धर्म क्या है, अपने वसूलों की इस लड़ाई में धर्म का क्या स्थान है? जिसे कुरुवंशी अपनी सुविधानुसार माँग और लोच के नियम के अनुसार परिवर्तित करते रहते थे। पर आज तो घर-घर में दुर्योधन हैं जो समाज को लज्जित करते हैं पर उनके इस कलंकित रूप को कोई भी इंगित नहीं करता। कलह का पर्याय बना दुर्योधन, उसके गुण-अवगुण, उसकी कार्य-पद्धति, उसके चरित्र से मिलने वाली शिक्षा, क्या आज घर-घर में दुर्योधन बनने से रोक सकती है या कि महाभारत का दुर्योधन भी वर्तमान को देखकर लज्जित हो रहा है।

❖

EP-56

मत्स्यपुराण में राजनीति

कु. राजकुमारी, कानपुर

पुराणों को भारतीय संस्कृति का अक्षयकोश कहा जाता है। इनकी संख्या अष्टादश है और इन्हीं अष्टादश पुराणों में मत्स्यपुराण भी सम्मिलित है।

दुर्ग वर्णन के लिए भी मत्स्यपुराण में स्थान सुरक्षित है। जिसमें छः प्रकार के दुर्गों का नामोल्लेख है—धनुदुर्ग, महीदुर्ग, नरदुर्ग, वार्क्षदुर्ग, अम्बुदुर्ग और गिरिदुर्ग। साम, भेद, दान, दण्ड के प्रयोग का वर्णन उपलब्ध है। राजा के राजधर्म को व्यक्त करता यह श्लोक देखें—

कृपणानाथवृद्धानां विधवानां च योषिताम्।
योगक्षेमं च वृत्तिं च तथैव परिकल्पयेत्।। (मत्स्य. 215/64)

यह राष्ट्र के विकसित रूप का प्रतीक माना जाना चाहिए। राजधर्म के अन्तर्गत अद्भुत शान्ति का खण्ड भी महत्त्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त राजाओं के यात्राकाल के विधान को भी प्रस्तुत किया गया है। अतिसंक्षिप्त रूप में ताम्बूलधारी, धनुषधारी सारथि, सूपाध्यक्ष, लेखक, दानदाता वैद्य, कोषाध्यक्ष आदि का भी उल्लेख है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan and eGangotri

EP-57

वाल्मीकीय रामायण में भावपरक बिम्ब

डॉ. गीता अग्रवाल, पूर्णियॉ

काव्य के मूलाधार तत्त्व भाव की एक अखण्ड सत्ता है। सहृदय के चित्त में अनुभासित होने वाला कोई मनोविकार ही भाव की सीमा में अन्तर्निहित है। शोक, क्रोध, उत्साह, रति, भय आदि सभी जैविक वृत्तियाँ भाव ही हैं। भावों की अभिव्यक्ति बिम्बों के माध्यम से ही संभव है। वाल्मीकिय रामायण में भावपरक बिम्बों की बहुलता है परन्तु शोक के बिम्ब अधिकांशतः प्रस्फुटित हुए हैं। महाराज दशरथ, मर्यादा पुरुषोत्तम राम, जगज्जननी सीता, कौशल्या, भरत आदि सभी के शोकग्रसित चित्र प्रस्तुत किए गए हैं। वाल्मीकि की दिव्य दृष्टि ने पशु-पक्षी को ही केवल नहीं, अपितु प्रकृति के भी शोकाकुल बिम्ब प्रस्तुत किए हैं। शोक बिम्बों के अतिरिक्त उत्साह, क्रोध आदि भावपरक बिम्ब भी सहृदय सम्प्रेष्य हैं।

❖

EP-58

नरसिंहपुराण में नारीस्वरूप : एक समीक्षा

सुश्री सरस्वती कुमारी, दरभंगा, बिहार

नरसिंहपुराण के एक श्लोक या आधे श्लोक का श्रवण अथवा पाठ करने मात्र से ही सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं। ऐसी विशेषताओं से युक्त पुराण में अनेक नारी के चरित्रों का वर्णन-प्रसङ्ग आया है। यम, कश्यप ब्राह्मण-पत्नी सावित्री की कथा, प्रजापति दक्ष कन्या अदिति, सीता, शूर्पणखा, कुबेर की पत्नी चित्रसेना, शची, अत्रि, अनसूया, रोहिणी, उर्वशी, रूपवती, पितृमती, शर्मिष्ठा, कलिंगा, शकुन्तला, आनन्दा, सुदेवी, लक्ष्मी, अम्बालिका, कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा, मातृवती, पुष्पवती, वासवत्ता, सुरुचि, सुनीति आदि नारियों के चरित्रों का वर्णन है।

यमी अपने ही भाई से प्रणय विवाह कर हमारी भारतीय संस्कृति की नारियों के पवित्र चरित्र को कलंकृत करना चाह रही थी। परन्तु वह इस कलंकित कार्य को करने में सफल नहीं हो सकी। इससे परवर्ती काल में आने वाली पीढ़ियों में ऐसी दुर्भावनायें उत्पन्न हो सकेंगी, ऐसी शिक्षा प्राप्त होती है।

कुबेर की पत्नी चित्रसेना को चुराकर रखने के कारण देवराज इन्द्र भी महात्मा बिन्दु से शापित होकर स्त्रीभाव को प्राप्त हुए। चित्रसेना भी देवराज इन्द्र की पत्नी शची के प्रयास से देवराज को माफ कर अपने उदात्त चरित्र का परिचय देती है। अतः इस पुराण में वर्णित नारियों का चरित्र अनुकरणीय है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

EP-59

मत्स्यपुराण के अनुसार प्रजापति दक्ष का वंशवृक्ष

श्री शिशुपाल, चण्डीगढ़

भारतीय संस्कृत परम्परा में पुराणों का विशिष्ट स्थान है। पुराणों में 'मत्स्यपुराण का प्रजापति दक्ष' मेरा विषय है। दक्ष की उत्पत्ति तीन प्रकार से दिखाई गई है। प्रथम ब्रह्मा जी के दाहिने अँगूठे से, द्वितीय ब्रह्मा जी ने अपनी पत्नी अनन्ता से सन्तानोत्पत्ति की जिनके लम्बे वंशवृक्ष में आगे चलकर प्रजापति दक्ष हुए। तृतीय प्रकार में प्रजापति दक्ष ब्रह्मा जी के मानस पुत्रों के बाद स्त्रीजन्य द्वितीय पुत्र थे।

प्रजापति दक्ष के बाद के वंशवृक्ष का वर्णन पाँच अध्यायों में अलग-अलग प्राप्त होता है। प्रथम—अध्याय तीन में इनके भ्राताओं का वर्णन है। द्वितीय—अध्याय पाँच में पुत्रों तथा कन्याओं का वर्णन तथा उनके आगे का वंशक्रम वर्णित किया गया है। तृतीय—अध्याय तेरह के अनुसार पुत्री सती तथा जामाता शिव बताए गए हैं। चतुर्थ—अध्याय तेइस के अनुसार 27 कन्याओं का वर्णन है तथा पञ्चम—अध्याय 171 के अनुसार इनके अग्रज, अनुज तथा तेरह कन्याओं को वर्णन मिलता है।

❖

EP-60

विष्णुपुराण तथा विष्णुधर्मोत्तरपुराण में काव्यदर्शन

डॉ. बालकृष्ण शर्मा, उज्जैन

विष्णुपुराण में काव्यदर्शन—अथर्ववेद में परमात्मा को कवि मानते हुए जगत् को उसका अजर-अमर काव्य कहा गया है—देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति।

यह तथ्य विष्णुपुराण में अधिक स्पष्ट होकर आया है।

विष्णुधर्मोत्तरपुराण में काव्यदर्शन—विष्णुधर्मोत्तरपुराण के तृतीय खण्ड में अन्य कलाओं के साथ काव्य सम्बन्धी तत्त्वों पर भी विचार किया गया है। गीत की चर्चा करते हुए कहा गया है—

संस्कृतं प्राकृतं चैव गीतं द्विविधमुच्यते।
अपभ्रष्टं तृतीयं तु तदनन्तं नराधिप।।

यहाँ छन्द का उल्लेख किया गया है, जिसका पद्यकाव्य में उपयोग होता है। छन्द के लिए 20 श्लोकों का तृतीय अध्याय दिया गया है। यही व्यवस्था नाट्यशास्त्र में भी दी गयी है। विष्णुधर्मोत्तरपुराण की यह विशेषता है कि यहाँ लघु-गुरु के चिह्न लिखने को भी स्पष्ट किया गया है।

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि पुराणों में काव्यदर्शन के विविध पक्षों पर पर्याप्त विचार हुआ है। पुराण-वाङ्मय अन्य शास्त्रों के साथ ही काव्यशास्त्र का भी सुहृत्सम्मित उपदेश प्रदान करता है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

EP-61

महाभारतकालीन अनुशासन

डॉ. सूर्यमणि त्रिपाठी, रीवाँ

भारत, जयभारत एवं महाभारत भारतीय वाङ्मय में इतिहास एवं अनुपम साहित्य की एक अमूल्य निधि है। महाभारत में जो नहीं है, वह कहीं नहीं है। महाभारत ऐसा है, जिसमें सब कुछ है। महाभारत 60 लाख श्लोकों का संग्रह माना गया है। 30 लाख देवलोक में प्रचलित है। नारद ने देवताओं को, असित देवल ने पितरों को, शुकदेव ने यक्ष-राक्षसों को एवं वैशम्पायन ने मनुष्यों को इस ग्रन्थ की जानकारी उपलब्ध कराई। मनुष्यलोक में उपलब्ध महाभारत आदिपर्व, सभापर्व, वनपर्व, विराटपर्व, उद्योगपर्व, भीष्मपर्व, द्रोणपर्व, कर्णपर्व, शल्यपर्व, सौप्तिकपर्व, स्वर्गारोहणपर्वादि—इस प्रकार 18 पर्वों में विभक्त है। त्रयोदश क्रम में स्थित अनुशासनपर्व, शान्तिपर्व एवं अश्वमेधपर्वों के मध्य स्थित होने के कारण वैचारिक एवं आचरणीय दृष्टि से विशेष महत्त्व रखता है।

अनुशासनपर्व में 80 अध्यायों में महर्षि वेदव्यास जी ने विभिन्न आख्यानों से युधिष्ठिर की चित्तवृत्ति को शान्त करने में सफलता अर्जित की है। अनुशासनपर्व में प्राप्त किए गए वैचारिक तृप्ति-वृत्तान्त से अश्वमेधयज्ञ के लिए पूर्ण रूप से युधिष्ठिर तैयार हो गये। इससे यह स्पष्ट होता है कि उनकी सारी भ्रान्तियों को निर्मूल करने में भीष्म के अनुशासन-सूत्र कामयाब रहे।

❖

EP-62

अध्यात्मरामायण के राम

म.म. डॉ. विद्याशङ्कर त्रिपाठी, महोबा

विश्ववाङ्मय की सुदीर्घ राम-काव्य-परम्परा में दाशरथि राम के उदात्त एवं पावन चरित्र का अवलम्बन कर अनेक ग्रन्थ लिखे गए हैं, जिसमें भाषासम्पदा, भावमाहात्म्य तथा प्रामाण्य की दृष्टि से महर्षि वाल्मीकि-कृत रामायण को ही प्रमुख स्थान प्राप्त है। रामायण में आदिकवि वाल्मीकि ने राम का चरित्र एक आदर्श राजा के रूप में चित्रित किया है। यहाँ पर राजा राम को एक आदर्श पुत्र तथा मर्यादापुरुषोत्तम के रूप में निरूपित किया है।

अध्यात्मरामायण के राम औपनिषदिक ब्रह्म के अवतार हैं। वे अनादि, अनन्त, निष्काम, निरीह, मायातीत, मुनियों के वन्दनीय, लोकानुरञ्जन करने वाले तथा रमणीय हैं। वस्तुतः अध्यात्मरामायण में रामकथा का वर्णन अपूर्व रीति से किया गया है, जिसमें कृतिकार ने वेदान्तदर्शन की पृष्ठभूमि में भक्तिरस से पगी रामकथा को अत्यन्त स्वादिष्ट बना दिया है। परिणामतः भक्त भगवान् राम को ब्रह्म के अवतार के रूप में समझकर अनेक प्रकार से उनकी स्तुति करता है तथा उनके नानाविध कर्मों को उनकी लीला

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानता है। न केवल मनुष्यों ने अपितु तिर्यक् योनि में उत्पन्न होने वाले जीवों, राक्षसों, मुनियों तथा देवों के द्वारा भी भगवान् राम की स्तुति की गयी है। अध्यात्मरामायण के 'राम-गीत' तथा 'रामहृदय' में उनकी ब्रह्मरूपात्मक स्तुति द्रष्टव्य है। अनेकतः 'मायामनुष्योहरिः' अभिधान द्वारा राम के ब्रह्मत्व का प्रतिपादन करते हुए नवधा भक्ति द्वारा उनको प्राप्त करने का उपदेश दिया गया है। उनको प्राप्त करने के तीन साधनों—ज्ञानमार्ग, कर्ममार्ग तथा भक्तिमार्ग में से भक्तिमार्ग की श्रेष्ठता का प्रतिपादन भी किया गया है।

❖

EP-63

रामायण में पर्यावरण

डॉ. कनक लता दुबे, इलाहाबाद

महर्षि वाल्मीकि की रचना 'रामायण' भारतीय संस्कृति का लोकप्रिय ग्रन्थ है। ऐतिहासिक, भौगोलिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक एवं दार्शनिक समग्र दृष्टियों से पुष्ट यह कृति पर्यावरणीय पृष्ठभूमि में भी अप्रतिम स्थान रखता है। सम्पूर्ण ग्रन्थ पर्यावरण की क्रोड में अंकुरित, पल्लवित एवं पुष्पित हुआ है।

पर्यावरण का शाब्दिक अर्थ है—परितः आवृणोतीति पर्यावरणम्—अर्थात् जो चारों ओर से आवृत करता है। हमारे चारों ओर का वातावरण पर्यावरण से ओत-प्रोत है। किसी भी प्राणी के चारों ओर विद्यमान वस्तुएँ, स्थितियाँ एवं दशायें उसका पर्यावरण है।

सृष्टि के आरम्भ में विराट् पुरुष द्वारा जब सृष्टि की रचना हुई, तो मानव के साथ ही पर्यावरण की भी सृष्टि हुई। सूर्य, चन्द्रमा, ऋतुएँ, नदियाँ, वृक्षादि का निर्माण हुआ।

पर्यावरण के अन्तर्गत वायुमण्डल, स्थलमण्डल एवं जलमण्डल आदि समाहित है। प्रायः सभी प्राणी वायुमण्डल से प्राणवायु, स्थलमण्डल से भोजन एवं जलमण्डल से जल प्राप्त करते हैं। वायुमण्डल में प्रमुख गैस, स्थलमण्डल में चट्टानें, मिट्टी, रेत और धात्वीय परत; जलमण्डल में नदियाँ, तालाब, समुद्र, झरने आदि आते है। इन समग्र प्राकृतिक या पर्यावरणीय तत्त्वों को मूलतः दो भागों में बाँटा जा सकता है—भौतिक एवं जैविक।

भौतिक पर्यावरण के अन्तर्गत आकाश, वायु, प्रकाश, ताप, पृथ्वी, मिट्टी, सागर, नदियाँ, वन आदि आते हैं। जैविक पर्यावरण के अन्तर्गत समग्र जीव और वृक्षादि आते हैं।

पर्याबरण एवं प्राणी एक दूसरे के पर्याय हैं। पर्यावरण नहीं तो प्राणी का जीवन सम्भव नहीं है। हमारे आस-पास का परिवेश पर्यावरण की दृष्टि से जितना शुद्ध होता है, उतना ही हमारी जीवन सुखद एवं स्वस्थ होता है।

रामायण की प्रकृति यथार्थ के परिवेश में उपस्थित हुई है। इसका आरम्भ तमसा के तट पर प्रकृति के सुरम्य वातावरण में क्रौञ्च पक्षी के अकस्मात् मृत्यु से हुआ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विविध पर्यावरणीय साक्ष्य आज भी हमारे जीवन को दिशा देने के लिये उतने ही प्रासंगिक हैं, जितने रामायण के काल में थे। उस काल की भूमि, नगर, पर्वत, वृक्ष, जल, यज्ञों की भाँति आज भी यदि हम इन समस्त पर्यावरणीय तत्त्वों को किञ्चित् मात्रा में सुरक्षित रख सकें, तो हमारा पर्यावरण अत्यन्त सुखद होगा।

❖

EP-64

नारदभक्तिसूत्र और उसकी प्रासङ्गिकता

डॉ. नन्द किशोर ठाकुर, दरभंगा

चराचर जगत् का प्राकट्य परमात्मा की कृपा एवं लीला का परिणाम मात्र है। त्रिगुणात्मक प्रकृति के सञ्चालन में ज्ञान, क्रिया एवं इच्छा की कारयित्री एवं भावयित्री शक्ति भक्ति के द्वारा ही प्रस्फुटित होती रही है। देवर्षि नारद ने अपने भक्तिसूत्र में जिस परमप्रेम का प्रतिपादन किया है, आज उसके गहन समीक्षा से यह स्पष्ट हो जाता है कि शाण्डिल्यादि पूर्वाचार्यों द्वारा प्रतिष्ठित भक्तिपरम्परा का ही परिपुष्ट परिपाक है—नारदभक्तिसूत्र। वैदिक परम्परा में चतुर्विध पुरुषार्थ की परिकल्पना की गयी है। उन पुरुषार्थों में यद्यपि भक्ति का नाम नहीं आता; किन्तु भक्ति परम्परा में परमप्रेम को ही परम पुरुषार्थ के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है।

नारदभक्तिसूत्र देवर्षि नारद का उत्तम अवदान है। बिन्दु में सिन्धु के दर्शन कराने वाले इसमें निबद्ध चौरासी सूत्रों को सन्तों ने शास्त्र की संज्ञा दी है, जो सहज ही चौरासी लाख योनियों के फंदे को काटकर सभी प्रकार के जीवों को सालोक्य-सायुज्य-सारूप्यादि मुक्ति से भी श्रेष्ठतर सौभाग्य प्रदान करता है। 'प्रत्यक्षरं क्षरन्ति सुधाबिन्दवः' अर्थात् इसके एक-एक अक्षर से अमृत की बूंदें टपकती है। भक्ति ही मनुष्य के आनन्द प्राप्ति का साधन है। इसी के माध्यम से भक्त को अखण्ड तृप्ति के साथ-साथ अमरत्व की प्राप्ति होती है, जैसा कि नारदभक्तिसूत्र में कहा गया है—'यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धौ भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति' (नारदभक्तिसूत्र-4)। पराभक्ति की परम्परा में उत्तम भक्त भगवान के अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते हैं। वे शारदा इष्ट को हृदय में धारण किये रहते हैं।

आज इस भौतिकवादी युग में सम्पूर्ण संसार समस्याओं के दावानल में झुलस रहा है। उपभोक्तावादी संस्कृति से पोषित भौतिकवादी आज उफान पर है। हर क्षेत्र, हर जाति, हर राष्ट्र एक दूसरे के आँखों की किरकिरी बने हुए हैं। प्रेम, करुणादि, दैवी गुणों के ऊपर क्रोध, अहंकार आदि आसुरी सम्पत्ति का वर्चस्व बढ़ता जा रहा है। आज प्रश्न राजनीति का हो या समाज का, अर्थ का हो या धर्म का, नीति के ऊपर अनीति हावी होती जा रही है। फलतः समस्याओं की विकराल काया मानवता को लीलने के लिए उद्यत हो रही है। ऐसी विकट तथा विषम परिस्थिति में नारदभक्तिसूत्र द्वारा संकेतित भक्ति की पीयूष धारा से ही सद्भावना का नन्दनकानन फिर से सज सकता है। परमप्रेमात्मिका स्वरूपा भक्ति के हृदय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में प्रवेश करते ही दुर्जन भी सज्जन बन जाते हैं तथा सज्जन शान्ति के अवदान से भर जाते हैं। नारदभक्तिसूत्र की कसौटी पर खड़ा उतरने वाला भक्त स्वयं तो निश्चय तरता है, दूसरों को भी उच्चतर जीवनयात्रा हेतु प्रेरित कर सकता है। नारदभक्तिसूत्र के प्रमाणानुसार—'स तरति, स लोकांस्तारयति, (नारदभक्तिसूत्र-50)।

❖

EP-65

महाभारत के वनपर्व में वर्णित आख्यानों में व्यञ्जित शिक्षायें एवं उद्देश्य

डॉ. कु. मञ्जुल माथुर

महाभारत के वनपर्व में वर्णित आख्यानों का एक समग्र उद्देश्य है—विषमताओं से दुःखी पाण्डवों को समय समय पर सान्त्वना प्रदान करता और भविष्य के लिये आश्वस्त करना। ऐसा प्रतीत होता है, मानो वनवासकाल की कठिन और जटिल अवधि में ये आख्यान मनोरंजन और विश्राम के स्थल है। इन आख्यानों में भारतीय संस्कृति में प्रतिपादित नैतिकता के तत्त्व मुखरित होते हैं। ये आख्यान सोद्देश्य एवं सारगर्भित है। इनका उल्लेख किसी न किसी उद्देश्य के कारण हुआ है। यदि कोई विशिष्ट पात्र किसी विषण्णमना व्यक्ति को कुछ सान्त्वना देना चाहता है या पथभ्रष्ट व्यक्ति को उपदेश देना चाहता है, तो वह कोई सम्बद्ध आख्यान सुनाकर अपना उद्देश्य पूर्ण करता है। ये आख्यान अत्यन्त शिक्षाप्रद भी हैं। विभिन्न स्थलों पर इनका समावेश केवल मनोरंजन करने के लिये ही नहीं, अपितु पात्रों को नीति-धर्म की शिक्षा देने के लिये भी हुआ है। इसका यही प्रतिपाद्य है कि धर्म या कर्त्तव्य से पराङ्मुख होने पर मानव अपने मानवसुलभ गुणों से वंचित हो जाता है और इसी उद्देश्य की सिद्धि के लिये महर्षि वेदव्यास ने शुष्क उपदेश अथवा तत्त्वज्ञान को कथा के माध्यम से व्यक्त करके उसमें सरलता का समावेश किया है। इन आख्यानों से जिन मानवीय गुणों और विभिन्न शिक्षाओं की व्यंजना होती है, उनका अपना विशिष्ट महत्त्व है। इन आख्यानों में कुछ का उद्देश्य जिज्ञासा निवृत्ति है, कुछ का उद्देश्य ज्ञानवर्धन है और कुछ का उद्देश्य युधिष्ठिर को आश्वासन देना है।

ये आख्यान नीति, धर्म एवं आपद्धर्म की शिक्षा देने के लिये दृष्टान्त रूप से प्रस्तुत किये गये हैं। इन आख्यानों से भारतीय संस्कृति और सभ्यता के सम्मिलित स्वर मुखरित होते हैं। इसमें पारमार्थिक कल्याण एवं आदर्शवाद पर बल दिया गया है। किन्तु ऐहिक जीवन में उपादेय चातुर्य, निपुणता एवं सफलता के मूल-मन्त्र भी सन्निहित हैं, जो इन आख्यानों से पद-पद पर ध्वनित होते हैं। जीवन को व्यवस्था, सौन्दर्य, सुख एवं उत्कृष्टता प्रदान करने वाली इन आख्यानों का प्रभाव सार्वजनिक, सार्वकालिक और सार्वदेशिक है। इनमें कथित अनेक मार्मिक वचन शाश्वत सत्य को व्यक्त करते हुए दैनिक जीवन में हमारे लिए मार्गदर्शक बनते हैं। पारमार्थिक ज्ञान के साथ-साथ भौतिक जीवन के लिए उपादेय लोक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीति की शिक्षा भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि परलोक में कल्याण कामना के साथ-साथ इस लोक में सफलता एवं सुख की प्राप्ति भी प्रत्येक व्यक्ति का अभीष्ट है।

EP-66

भारतीय भक्ति-आन्दोलन और श्रीजगन्नाथ

डॉ. रवीन्द्रनाथ, ओडिशा

भारतीय भक्ति आन्दोलन का इतिहास बहुत पुराना है। भक्ति तत्त्व दर्शन और साहित्य की रचना पीठिका का संक्षिप्त इतिहास है। भारतीय संस्कृति के चिन्तन और साहित्य का व्यापक और सार्वकालिक स्वरूप भक्ति में ही सुनियोजित है। भक्ति भारतीय संस्कृति की आधार-शिला है। भारतीय मनीषा ने इसी भक्तितत्त्व से जनमानस को प्राचीनकाल से आप्लावित और आप्यायित किया है। मध्ययुगीन विचारधारा पर इसका अक्षुण्ण प्रभाव पड़ा।

भारत में भक्ति का सर्वोत्तम रूप हमें मध्ययुग की वैष्णव-संस्कृति में मिलता है, कुछ विद्वानों की धारणा है कि इसका विकास बौद्धधर्म के ह्रास के साथ हुआ, बौद्धधर्म के खण्डहरों पर ही हिन्दू नवोत्थान का जन्म हुआ।

भक्ति ने दक्षिण से उत्तर भारत तक भारतीय मनीषा को एकात्म से युक्त किया। इसके सूत्रधार रामानन्द थे। निम्बार्क, माध्व और उनके शिष्यों द्वारा वृन्दावन को केन्द्र करके भक्ति का जो आधार स्तम्भ 15वीं 16 वीं शताब्दी में खड़ा हुआ, वह महाराष्ट्र और उत्कल देश के रास्ते से होकर बंगाल तक भी फैला था। शंकराचार्य ने पुरी में बहुत पहले अपने धाम की स्थापना की थी।

रामानन्द, माधव आदि आचार्यों ने पुरी के जगन्नाथ मन्दिर की सेवा-पूजा का पुनः संगठन किया था। भारत का ऐसा कोई संगठन बाकी नहीं, जिसका कोई आस्था पुरी में न हो। इस प्रकार देखा गया है कि भारतीय भक्ति आन्दोलन में पुरी श्री जगन्नाथ जी की और उत्कलीय वैष्णव संप्रदाय की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रही है; परन्तु हिन्दी संत साहित्य के मर्मज्ञ विद्वानों ने इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है। भारतीय भक्ति आन्दोलन में पुरी श्री जगन्नाथ धाम की भूमिका को सर्वभारतीय स्तर पर समीक्षित करना ही इस शोध आलेख का ध्येय है और इस ओर अध्येता का प्रथम विनम्र प्रयास है।

❖

EP-67

अप्सरा

डॉ. रेखा चतुर्वेदी, गोरखपुर

'अप्स इति रूप नाम तद्रा भवति रूपवती' शब्द-व्युत्पत्ति शास्त्र के अनुसार 'अप्स' शब्द रूप का वाचक है और अप्सरा का अर्थ होता है रूपवती। रूप रुच् धातु से बना है। जो सुन्दर लगे, उसे रूप कहते हैं। अप्सरायें रूप के माध्यम से संचरण करती हैं। रूप सत्सु तायेत, रूप सज्जनों में विस्तीर्ण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है। सज्जनों से ही उसकी उत्पत्ति है। अतः रूप सत्यप्रभव, प्रशस्यवाचक और सत्यार्थक है। अप्सरा अपः अर्थात् जलतत्त्व से सम्बन्ध रखती है। जल में सरण करने वाली हँसती हुई वह परम व्योम में अपने प्रिय के पास जाती है। वह जल और विद्युत् के समान चारों और व्यापक है। वह विद्युत् भी है और स्त्री भी।

अप्सरा को लेकर तीन धारणायें हमारे समक्ष आती है—

वह रूपवती मानवी थी, जो समुद्र मार्ग से दूर देशों से आयात की जाती थी। यह अत्यन्त आकर्षक युवतियाँ थीं, जो मनुष्यों के साथ समय व्यतीत करने के लिए विभिन्न अनुबन्ध करती थी तथा समयावधि पूर्ण होने पर लौट जाती थी। अथवा वचनभंग होने पर समयावधि पूर्ण रहने पर भी लौट जाती थी।

इस प्रकार अप्सरा एक ऐसी मिथकीय प्रहेलिका है, जिसकी व्याख्या इतिहास के परिप्रेक्ष्य में करना एक रोचक विषय है।

❖

EP-68

बृहद्धर्मपुराण के पूर्वखण्ड में वर्णित कालतीर्थ

डॉ. श्रीमती शोभा मिश्रा, कानपुर,

बृहद्धर्मपुराण की गणना उपपुराणों में की जाती है। यह पूर्व, मध्य एवं उत्तर नामक तीन खण्डों में विभक्त है। पूर्वखण्ड में तीस अध्याय है, जिनमें बीस अध्यायों (5 से 24 तक) में तीर्थों का विशद निरूपण है। इनमें से दस अध्यायों (15 से 24 तक) में काल-तीर्थों का वर्णन है।

प्रस्तुत शोधपत्र में शोधकर्त्री ने चैत्र से आरम्भ करके फाल्गुन मास तक वर्णित समस्त कालतीर्थों को संकलित करके उनका मानानुरूप विवेचन किया है। इसमें चैत्र-मास की श्रीपञ्चमी, अशोकाष्टमी, श्रीरामनवमी, कामदेव त्रयोदशी, दमन चतुर्दशी, गणगौरी तृतीया, वारुणी त्रयोदशी; वैशाख-मास की अक्षय तृतीया, जह्नुसप्तमी, मोहिनी एकादशी, पिपीतकी द्वादशी, वैशाख पूर्णिमा; ज्येष्ठ-मास की उमा चतुर्थी, गङ्गादशहरा, महाज्येष्ठी; अषाढ़ मास की मनोरथ द्वितीया, विश्वस्वान् सप्तमी, प्रीतिदा दशमी, हरिशयनी एकादशी, आषाढ़ी, आषाढ़ मास में कृष्ण पक्ष की श्रवण नक्षत्र से युक्त पञ्चमी, श्रावण मास की नागपञ्चमी; भाद्रपद मास की हरितालिका (तीज), ऋषिपञ्चमी, सूर्यषष्ठी, श्रीकृष्णजन्माष्टमी, गोगा नवमी, श्रवण द्वादशी; आश्विन मास के पितृपक्ष, शारदीय नवरात्र, विजया दशमी, शरद्पूर्णिमा; कार्तिक मास की दीपावली, द्यूतप्रतिपदा, भ्रातृद्वितीया, गोपाष्टमी, आमलकी नवमी, देवोत्थानी द्वादशी (एकादशी), पूर्णिमा (रासोत्सव); आग्रहायण-मास के वराहद्वादशी, आग्रहायणी पूर्णिमा; पौष-मास के युगान्तनवमी, श्रवण नक्षत्र में व्यतीपात योग से युक्त अमावस्या; माघ-मास के श्रवणनक्षत्र में व्यतीपात योग से युक्त अमावस्या, वरदा विनायकी चतुर्थी, वसन्तपञ्चमी, अचला सप्तमी, भीष्माष्टमी, महानन्दा नवमी, माघपूर्णिमा; फाल्गुन-मास के श्रीकृष्णाष्टमी, महाशिवरात्रि, मन्वन्तरा अमावस्या, गोविन्द द्वादशी, मन्वन्तरा पूर्णिमा कालतीर्थ हैं।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

EP-69

रामायणकालीन राजतन्त्र

डॉ. विभा जौहरी, उन्नाव

संस्कृत साहित्य के श्रेष्ठ ग्रन्थों में आदि कवि महर्षि वाल्मीकि द्वारा विरचित रामायण का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वाल्मीकि ने रामायण में रामकथा के माध्यम से तत्कालीन भारतीय संस्कृति, सभ्यता एवं राजनीतिक विषयक विशद वर्णन किया है। धार्मिक एवं नैतिक आदर्शों का भण्डार होते हुए भी रामायण एक महत्त्वपूर्ण मानवीय राजनीतिशास्त्र है, जो प्राचीन भारतीय राष्ट्रीयता का सजीव वर्णन उपस्थित करता है। रामायण में जिस राजतन्त्रीय-शासन प्रणाली का वर्णन है, वह वस्तुतः जनतन्त्रीय शासन-व्यवस्था का ही पूर्व प्रचलित रूप है।

वर्तमान लोकतन्त्रीय व्यवस्था में सत्ता परिवर्तन में अपनाये गये संवैधानिक स्वरूप के कारण समय-समय पर विभिन्न सरकारों का गठन होता रहा है। राजनीतिक दलों में नीतिगत मतान्तर के परिणामस्वरूप बहुदलीय सरकारें अस्थिर और अल्पकालिक होती जा रही है। जिससे नेतृत्ववर्ग का सम्पूर्ण ध्यान सरकार बचाने में लगा रहता है तथा देश का अपेक्षित विकास अवरुद्ध हो जाता है। आजादी के तुरन्त बाद निर्मित संविधान बहुराष्ट्रिय संविधानों के अंशों पर आधारित था, जो भारतीय संस्कृति, धार्मिकता एवं भौगोलिक वातावरण से नितान्त भिन्न है, अस्तु संविधान में निरन्तर आवश्यकतानुसार संशोधन किये जा रहे हैं। उक्त समस्याओं के निदान हेतु आवश्यकता है कि रामायण में निहित बहूद्देशीय राजतन्त्रीय व्यवस्था के आधार रूप से भारत में रामराज्य की स्थापना संभव हो सकती है एवं वर्तमान परिस्थितियों का तत्कालीन वैभव के साथ सुखद सामञ्जस्य किया जा सकता है।

रामायणकालीन राजतन्त्र नैतिक गुणों एवं धार्मिक सिद्धान्तों पर आधारित था, जिसमें जनतन्त्रीय भावना को समुचित महत्त्व दिया जाता था। तत्कालीन राजतन्त्र का उद्देश्य अनीति का नाश, नैतिकता का विकास, नीतिगत मूल्यों का उन्नयन, हिंसा का विरोध एवं अहिंसा का समर्थन था। राजा का शासन 'बहुजनहिताय' था, न कि 'स्वान्तःसुखाय'। वास्तव में नैतिकताविहीन राजनीति, न केवल जीवनहीन होती है, बल्कि समाज के लिए घातक भी हो सकती है। ऐसी स्थिति में, वर्तमान काल में देश में शान्ति एवं सुव्यवस्था बनाये रखने के लिए तथा आर्थिक प्रगति एवं नैतिक उत्थान के लिए रामायणकालीन राजनीति के उज्ज्वल पक्षों का अनुकरण करना नितान्त आवश्यक है। तभी देश की प्रजातन्त्रात्मक प्रणाली को एक नया आयाम प्राप्त हो सकेगा और न केवल देश का, अपितु जनसाधारण का भी सर्वाङ्गीण विकास हो सकेगा।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

EP-70

महाभारत में पर्यावरण संरक्षक भौतिक तत्त्व

डॉ. देवेन्द्र पटेल, गोरखपुर

सम्पूर्ण बाह्माण्ड के संरक्षक एवं संशोधक तत्त्वों का उल्लेख महाभारत में वेदव्यास ने किया है। प्रकृति-विकृति के मध्य शाश्वत भौतिक तत्त्व संस्कृति का कार्य करते हैं। संस्कृति का अर्थ ही होता है संस्कार, शोधन और शुद्धिकरण। नर को नारायण रूप में प्रस्तुत करने का कार्य भी पर्यावरणीय तत्त्वों के द्वारा किया जाता है। विवेच्य शोध-पत्र की संक्षिप्तिका में उन प्रमुख तत्त्वों का संक्षिप्त उल्लेख किया जा रहा है, जो जगत् और जीव के पर्यावरण शोधन के संरक्षक तत्त्व हैं—

आपः (जल)—महाभारत में पर्यावरण संरक्षक भौतिक तत्त्वों में आपः (जल) एक मुख्य तत्त्व है। विश्व के सम्पूर्ण प्राणियों के जन्म एवं जीवन्तता का कारण जल है। जल ही जीवन है। व्यास ने अध्यात्म, अधिभूत एवं अधिदैवत-तत्त्वों के वर्णन क्रम में जल के महत्त्व का वर्णन किया है (महाभारत-12।113।8)। जल में विद्यमान नारायणीय तत्त्व (जलीयतत्त्व) को शुचिता प्रदान करने की दृष्टि से दैवीय विधान करते हुए लिखा है (महाभारत-3।189।3)। इस लिए पर्यावरणीय जल तत्त्व को बनाये रखने के लिये मानव को प्रयास करना चाहिए (महाभारत-3।272।34-36)।

वायुः—जगत् के सभी प्राणियों का जीवन प्राणवायु (वायुतत्त्व) पर आधारित है। प्राण वायु के अभाव में जड़-चेतन का जीवन क्षणैक में समाप्त हो जायेगा। वायु निरन्तर बहती रहती है और सबको धारण करती रहती है। वायु ही शरीर को चेष्टाशील बनाती है। (म.भा. -12। 328।54, 12।186।1)

अग्निः—द्युलोक में विद्यमान सूर्य का प्रतिनिधिभूत लोक में अग्नि पर्यावरण संरक्षक भौतिक तत्त्व है। अग्नि एक ऐसा भौतिक तत्त्व है जो सभी प्रकार के प्रदूषणों को अपने दाहकता गुण से निरन्तर भस्मीभूत करता रहता है। (म.भा. 1।5।21,22,23,26,27,29,30)

इसके अतिरिक्त आकाश, पृथिवी, सोम, पर्वतों, वृक्षों, नदियों आदि का पर्यावरणीय संरक्षक के रूप में वर्णन किया गया है।

❖

EP-71

हरिवंश पुराण में वसुदेव-सम्बन्धी कथायें

सुश्री प्रीति शर्मा, अलीगढ़

जैन साहित्य के अन्तर्गत हरिवंश पुराण एक अतिविशिष्ट पुराण है। इस पुराण को अरिष्टनेमि पुराण भी कहते हैं। इस पुराण की रचना पुन्नाट संघीय आचार्य जिनसेन ने शक संवत् 705 में की थी, जो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि विक्रम संवत् 840 होता है। यह पुराण दिगम्बर सम्प्रदाय के कथा साहित्य में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। हरिवंश पुराण में वसुदेव से सम्बन्धित अनेक रोचक कथायें प्राप्त होती है। इस पुराण में वसुदेव की कथाओं के साथ जैन तीर्थकारों का विवेचन, विद्याधर राजाओं की कथायें एवं श्री कृष्ण के जीवन चरित वसुदेव के विषय में भी विस्तार से वर्णन किया गया है। वसुदेव के विषय में वर्णन मिलता है कि यह देखने में आकर्षक थे एवं चातुर्य में भी निपुण थे। जब वसुदेव महल से बाहर घूमने के लिये निकलते थे, तो समस्त नगरवासी इनके सौन्दर्य को देखकर आकृष्ट हो जाते थे एवं अपने आवश्यक कार्यों को भी करना भूल जाते थे। तब नगर वृद्धजनों ने इनके भाई राजा समुद्रविजय से इनका बाहर निकलने पर प्रतिबन्ध लगवा दिया। जब वसुदेव को भाई की इस नीति का पता चला, तो वह घरवालों से रुष्ट होकर घर से निकल गये तथा सभी ने यह समझा कि वसुदेव मृत्यु को प्राप्त हो गये हैं। तब वसुदेव घर से भागने के उपरान्त अनेक नगरों में गये एवं भ्रमणोपरान्त अनेक विद्याधर राजाओं से मिलकर एवं इन विद्याधर राजाओं से अनेक प्रकार की विद्यायें सीखीं। इन विद्याओं में गन्धर्वविद्या, संगीतशास्त्र, वेदशास्त्र, वाद्ययन्त्रों को कुशलता से बजाना, मल्ल युद्ध आदि प्रमुख विद्यायें थी। इन्हीं विद्याओं में निपुण होने के पश्चात् वसुदेव ने बहुत ख्याति प्राप्त की जिससे इनकी योग्यता से प्रसन्न होकर विद्याधर राजाओं एवं अन्य प्रसिद्ध व्यक्तियों ने अपनी श्रेष्ठ कन्याओं का विवाह इनके साथ कराया। इन विवाहों में सोमा और विजयसेना, मदनवेगा, बन्धुमती, प्रियङ्गु-सुन्दरी, प्रभावती, जरा, रोहिणी, बाचन्द्रा, देवकी आदि अनेक कन्याओं से इनका विवाह विभिन्न नगरों में भ्रमण के उपरान्त हुआ, इन कन्याओं में से कुछ विद्याधर राजाओं की पुत्रियाँ थीं और कुछ श्रेष्ठजनों की कन्यायें थी।

❖

EP-72

पुराणों में वर्णव्यवस्था का स्वरूप

डॉ. कु. अञ्जना सिन्हा, लखनऊ

पुराणों की संख्या के विषय में अतिरंजनापूर्ण उक्तियाँ प्राप्त होती हैं। द्वापर में पुराणों की संख्या चार लाख, भू-लोक में अट्ठारह, देवलोक में करोड़ों बतायी गयी है। अट्ठारह मुख्य पुराण इस प्रकार हैं—1. ब्रह्मपुराण, 2. पद्मपुराण, 3. वाराहपुराण, 4. वायुपुराण, 5. भागवतपुराण, 6. नारद पुराण, 7. मारकण्डेय पुराण, 8. अग्निपुराण, 9. भविष्यपुराण, 10. ब्रह्मवैवर्तपुराण, 11. लिङ्गपुराण, 12. स्कन्दपुराण, 13. वामनपुराण, 14. कूर्मपुराण, 15. मत्स्यपुराण, 16. गरुडपुराण, 17. ब्रह्माण्ड पुराण, 18. कल्किपुराण।

भारतीय वर्णव्यवस्था के विषय में वैदिक काल से ही सूचना प्राप्त होती है। ब्राह्मण काल तक वर्णव्यवस्था काफी सुदृढ़ हो गयी थी। देवताओं का विभाजन वर्ण के आधार पर किया गया था। अग्नि तथा बृहस्पति देवताओं को ब्राह्मण, इन्द्र, वरुण, यम को क्षत्रिय, वसु, रुद्र, विश्वेदेवा वैश्य और पूषन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को शूद्र माना गया है। पुराणों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के धर्मों का उल्लेख मिलता है। मार्कण्डेय पुराण में दान स्वीकार करना, अध्ययन-अध्यापन, यज्ञानुष्ठान करना-कराना, यजन-याजन, प्रतिग्रह ब्राह्मणों के धर्म बताये गये हैं।

❖

EP-73

प्रासङ्गिकता पुराणों के वास्तु-निर्देशों की

श्री योगेन्द्र पाण्डेय

'पुरातपश्चचारोग्रममराणां पितामहः।
आविर्भूतास्ततो वेदाः षडङ्गपदक्रमाः।।

ततः पुराणमखिलं सर्वशास्त्रमयं ध्रुवम्।
नित्यं शब्दमयं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम्।।

पुराण न केवल भारतीय संस्कृति, अपितु धर्म, ज्ञान, विज्ञान एवं विविध कलाओं के भी कोष हैं। पुराणों में वास्तु प्रकरण को लेकर भी महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रतिपादित की गयी है। धार्मिक आस्था एवं वैज्ञानिक आधार से युक्त वास्तुशास्त्र वस्तुतः पञ्चमहाभूतों के समुचित संतुलन पर आधारित है। वैदिक युग में यज्ञ वेदी तथा वास्तुशान्ति आदि के मन्त्रों से प्रारम्भ होकर इस वास्तुविद्या पर पुराणों में पर्याप्त विमर्श हुआ। यहाँ देव-प्रतिष्ठा; प्रासाद-निर्माण, भूमिपरीक्षा, ग्राह्यकाष्ठ, शुभाशुभ वृक्ष, शिलान्यास इत्यादि महत्त्वपूर्ण विवेचन उपलब्ध होते है।

इन विवेचनों की दृष्टि से मत्स्यपुराण का नाम सर्वप्रथम लिया जाना चाहिए; क्योंकि यहाँ शिव के ललाट-स्वेद से वास्तु-उत्पत्ति की कथा से प्रारम्भ करके वास्तु के 81 पदों का निर्णय गृहमान, द्वार-निर्णय, भवन के पूर्वभाग में वटादि वृक्षों के फलकथन देवालय प्रकार वर्णन और वास्तुदोषोपशमन विधि आदि पर विस्तृत विवरण उपलब्ध होते है।

इसी तरह अग्नि-पुराण में भी वास्तु सम्बन्धी विविध विषयों पर यथेष्ट प्रकाश डाला गया है यथा शिला-विन्यास, वास्तुमण्डल, देवता-स्थापन, लक्ष्मी, विष्णु आदि देवताओं की प्रतिष्ठा, कूपादि की प्रतिष्ठा, वास्तुपूजा, शिलाविन्यासादि की विधि, गृहादि का वास्तु-शोधन, नगर आदि का वास्तु कथन, वास्तु-लक्षण आदि प्रकरण विवेचित है। इसके अतिरिक्त विष्णुधर्मोत्तर पुराण, गरुडपुराण आदि पुराणों में भी वास्तु-विद्या पर संक्षिप्त विवेचना प्राप्त होती हैं।

इसके अतिरिक्त स्कन्दपुराण, वायुपुराण, भविष्यपुराण, नारदपुराण, लिङ्गपुराण आदि ने भी अपने कलेवर में वास्तु-विमर्श को स्थान दिया है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

EP-74

पुराण साहित्य में अदिति आख्यान

डॉ. ज्ञान प्रकाश शास्त्री, हरिद्वार

आख्यान परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। विश्वसाहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में भी आख्यान पाये जाते हैं। सामान्यतया ऋग्वेद की ऋचायें स्तुतिपरक हैं, परन्तु कथानकविहीन नीरस स्तुति हृदय पर गहरा प्रभाव नहीं छोड़ पाती, इसलिये सम्भवतः सरसता के अभाव का अनुभव करते हुए उन साक्षात्कृतधर्मा ऋषियों ने वेद और इतर वैदिक साहित्य में आख्यान-कल्पना की है। ये आख्यान वेदों की अपेक्षा ब्राह्मण साहित्य में अधिक स्पष्टता से चित्रित हुए हैं, लेकिन यह परम्परा पुराण-साहित्य में एकदम सजीव हो उठी है।

पुराण शब्द की व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है— 'पुरा भवम्=पुराणम् अथवा यत्पुरा नीयते तत्पुराणम्। ऋग्वेद में वामदेव ऋषि पुराण शब्द का अर्थ प्रतिपादित करते हुए कहते हैं कि जिससे सम्पूर्ण देव उत्पन्न हुए हैं, ऐसा मार्ग पुराण नाम से जाना गया है, इस प्रकार संस्कृत साहित्य की वह विद्या पुराण है, जिसमें प्राचीन रहस्य निहित है।

आज हमारे पास साहित्य के रूप में वेद से अधिक प्राचीन कुछ भी नहीं है और प्राचीन भारतीय साहित्य की विकास परम्परा का अवलोकन करते हुए हम कह सकते हैं कि जिस प्रकार ब्राह्मण-ग्रन्थ, वेदाङ्ग, उपनिषद् आदि वाङ्मय वेद का व्याख्यान हैं अथवा वेदार्थ को हृदयङ्गम करने की प्रक्रिया में सहज उद्भूत हें, उसी प्रकार पुराण-साहित्य भी वेदार्थ को समझने की परम्परा का विकसित अथवा परवर्ती रूप है। पुराण-साहित्य के अनेक कथानक, जिनकी युक्तिसङ्गतता के आगे प्रश्नचिह्न लगा हुआ है, को वैदिकसाहित्य के सन्दर्भ में रखकर परीक्षण करने पर वे तर्कसङ्गत सिद्ध होते हैं।

प्रस्तुत आलेख के माध्यम से यह परीक्षण करने का प्रयास किया जा रहा है कि पुराण साहित्य में प्रतिपादित अदिति आख्यान वैदिक साहित्य में वर्णित आख्यान का विकसित रूप है और उसमें दिखायी देने वाला इतिहास वस्तुतः कल्पित है।

❖

EP-75

वैष्णव-पुराणों के स्तोत्र और उत्तरकालीन प्रसिद्ध स्तोत्रों का तुलनात्मक अध्ययन

श्री रवीन्द्रकुमार पी.पटेल, रतनपुर, गुजरात

वैष्णव पुराणों के स्तोत्रों का आदि स्रोत वैदिक सूक्त हैं। वेद में भक्ति का आरम्भिक रूप दिखाई पड़ता है। उपनिषदों के दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति पौराणिक स्तोत्रों में सरल भाषा-शैली में हुई है। उपनिषदों का सगुण ब्रह्म पौराणिक स्तोत्रों में पंचायतन देवता या अनेक देव-देवी-स्वरूपों में विकसित-विस्तीर्ण होता है। सगुण ब्रह्म के स्वरूप-विकास में पौराणिक स्तोत्रों का मूल्यवान् स्थान है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पौराणिक स्तोत्र-साहित्य उत्तरकालीन स्तोत्र-साहित्य की भूमिकास्वरूप हैं। खास करके वैष्णवी पौराणिक स्तोत्रों से प्रेरित होकर उत्तरकालीन स्तोत्र काव्यसंपत्ति से सम्पन्न एवं विकसित होता है।

प्रखर अद्वैत वेदान्ती होने पर भी शंकराचार्य को भक्तिमार्ग का सहारा लेना पड़ा, भक्तिप्रधान स्तुति-स्तोत्रों की रचना करनी पड़ी। इसमें अधिकांश पौराणिक स्तोत्र इनके लिए प्रेरणास्वरूप रहे हैं। शंकराचार्य जी स्तोत्रों की रचना में वैष्णव पुराणों के स्तोत्रों से प्रभावित हैं।

उत्तरवर्ती विशिष्टाद्वैती, पुष्टिमार्गीय, गौडीय इत्यादि अनेक साम्प्रदायिक कवियों के लिए भी वैष्णव पुराणों के स्तोत्र प्रेरणास्वरूप हैं। उत्तरवर्ती वैष्णवी स्तोत्र-साहित्य पौराणिक वैष्णवी स्तोत्रों से प्रभावित हैं।

प्रस्तुत स्वाधीत लेख में वैष्णव पौराणिक स्तोत्रों और उत्तरकालीन प्रमुख वैष्णवीं स्तोत्रों का सविस्तार सदृष्टान्त तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। इस से स्पष्ट होता है कि पौराणिक स्तोत्र उत्तरवर्ती कवियों द्वारा विकसित होता है, साहित्य समृद्धि से सम्पन्न बनता है।

❖

EP-76

गीता में काम की अवधारणा

डॉ. श्रीमती लक्ष्मी मिश्रा, गोरखपुर

भारतीय जीवन दर्शन में काम एक पुरुषार्थ के रूप में प्रतिष्ठित है। काम को पौराणिक, साहित्य में प्रेम के देवता के रूप में मान्यता प्राप्त है। वैदिक साहित्य में इसी काम को परमपुरुष के मन का बीज कहा गया है।

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्। (ऋग्वेद-10.129.4)

गीता में वर्णित काम मनुष्य की समस्त कामनाओं का मूल है। मनुष्य की राजसिक प्रवृत्तियाँ इसकी संवाहक हैं। राग एवं द्वेष इसके उद्दीपक हैं। कामना, तृष्णा, वासना एवं आशा इत्यादि सभी काम के ही परिवर्तित रूप हैं। काम ही क्रोध है। काम का शमन होने पर ही क्रोध का शमन होता है।

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः। (गीता-3,37)

काम की तृष्णा अग्नि की ज्वाला की भाँति है, जो घृत डालने पर शान्त होने के स्थान पर और भी उद्दीप्त होती है, उसी प्रकार कामनाओं की निरन्तर पूर्ति से काम और भी उद्दीप्त होता है।

गीता के अनुसार काम मनुष्य के अन्तःकरण में स्थित प्रथम एवं प्रमुख शत्रु है, जिसका निराकरण साम, दाम, दण्ड, भेद किसी द्वारा सम्भव नहीं है।

काम मनुष्य के विवेक को उसी प्रकार आच्छादित कर लेता है जिस प्रकार अग्नि को धूम, दर्पण को धूल तथा गर्भस्थ शिशु को जरायु आच्छादित किये रहता है।

गीता में काम के विनाशकारी स्वरूप का वर्णन करते हुए काम के उदात्तीकरण एवं दिव्यीकरण पर बल दिया गया है। मनुस्मृति में काम को मनुष्य की ऊर्जा माना गया है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

EP-77

Puruṣottama : As a Tīrtha

JAGABANDHU PADHI, ORISSA

Puruṣottama, presently known as Jagannāthapurī, or simply Purī has been regarded as a tīrtha or a sacred place since the days of Mahābhārata and the Purāṇas, even before deities called Puruṣottama were installed in it. The Mahābhārata speaks of a sacred vedi which the eldest Pāṇḍava prince had to climb on in order to offer prayers to his forefathers. The spot had not witnessed human habitation by the period. Development of the landscape, migration of the local tribal communities of the place, visit of the Vaiṣṇavas thereto, instalation of the deity Mādhava by them and the association of the tribals in the worship, journey of Indradyumna, the king of Mālava to the shrine carving of the images out of a divine log and their installation in the newly built temple in this city and the growth of its prosperity etc. are later events, in the abvove chronology. There are some Purāṇic references and inscriptional evidences of show that this place has always been eulogised as a tīrtha, sanctified for offering food and prayers to the forefathers at different stages of its development. The paper intends to bring out the above references and analyse them in a historical prospective to establish the above fact.

❖

EP-78

Concept of God in Bhāgavata Purāṇa

PROF. PUSHPENDRA KUMAR, DELHI

History of Indian religion and spirituality has an inner continuity, even though forms and atmosphere have changed from time to time in the course of millennia. The Vedic beginning was so vast, so lofty and so comprehensive in the seed form that the later developments gave emphases on intellectuality and emotionality to bring larger and larger sections of people into the experience of divinity.

In the Vedas we find one universal Deva of whom Viṣṇu, Rudra, Indra, etc. are all alike forms and cosmic aspects. Similarly in the Bhāgavata Purāṇa. The same universal god is called Kṛṣṇa. Here in this paper I have shown that besides this cosmic deity—the Pusanakar has emphasized on the love and affection to mankind-which is the basis of Bhakti. It is this mental state of devotee that changes the suffering world to the blissful world. Very synthetically Bhāgavata has propounded that love to mankind is the god in Reality.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

EP-79

Sita The Top Epical Tragic Flower

DR. HEMLATA BITTHARIA, GWALIOR

In the Ramayaṇa, the story of Sītā is unparalleled. It is an extremely moving tragedy 'मामकेयं तनुर्नूनं सृष्टा दुःखाय लक्ष्मण' unknown to the methological world, to say the least about the history. It is not like Shakespeare's Romeo & Juliet or Othello or Homer's Iliad which are products of human imagination, but it is the story of a living entity of Sita, depicted by Valmiki, contemporary of Shri Rama. In his immortal authentic epic Ramayana, full of Aryan culture and its gems screne and correct mirror to peep into the soul of Sita. Chequered history of India is replete with a large number of tragedies, e.g. Damayanti, Draupadi and Padmini, etc. However, they pale in comparision with Sita.

The Paper intends to assess the tragic life of Sita.

❖

EP-80

Ecology in Ancient Hindu Scripture

DR. SANKARSAN DASH, ORISSA

Description of the origin of earth and the civilization in Hindu Scripture is different from that of other sources. Most of the believes and practices are scientific but some of the superstitions may not be scientific. However they did help directly or indirectly in the sustenance of human civilization. The mountains and the forest were the abodes of monks, seers and saints for centuries together. The Ashramites learnt nature education, natural laws, and law for nature.

The present education is alienated from culture, dharma, tradition and practices, moral and ethics. Therefore it has become difficult to save the forest, land, animal from denudation. Urgent and immediate attempts should be taken for the revival of ethical, moral and human values embodied in the religious tradition and proper interpretation of the ancient tradition to prevent further destruction to this creation.

❖

EP-81

Environmental Awarness as Evinced in the Rāmāyaṇa

DR. SARAT CHANDRA PARIDA, ORISSA

Ecology is the study of relationships among plants and animals and their environments. It includes the study of the needs of plants and animals, as well as the effects

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

that plants, animals and environment have on each other. From this ecological point of view analysis of the great epic, the Ramayana, occupies a conspicuous place. The ornate poet, Valmiki, has not only incorporated aesthetic values in the text but also himself lives in a natural community. As a naturalist he observes the plants, animals, birds and human beings as a whole and notes their biodiversified reactions meticulously.

Innumerable examples are presented by Valmiki to justify that the cyclic change of the seasons determine the course of action to be followed by the living beings. The birds have taken shelter in the trees, kings have refrained from military expeditions and people living in the foreign land are returning home in the rains.

Eco-logical analysis of the text Ramayana thus makes the reader aware of the multitudinous manifestations of nature and he is found inspired to preserve it with all its purity and sanctity.

❖

EP-82

The Karma-Siddhānta of the Mokṣhadharmaparvan of the Mahābhārata

SATAGOBIND MISHRA, ORISSA

The law of Karma is related to the principle of balance and equilibrium in nature. In its essence it is neither moral nor personal, it is just natural law of the universe, which includes man. In the realm of physics, the fact that actions and reactions are equal in magnitude and opposite in direction has long been known. When this law is extended to apply to human behaviour, it may be known as the 'Law of Karman'.

Therefore, The Present Study 'The Karma Siddhānta of the Mokṣhadarmaparvan Mahābhārata' is undertaken since the law of Karman rules the destiny of a man throughout successive lives according to the the merit or demerit of his past lives and its effect extends across the whole cycle of earthly existence. It is law of equity which holds the view that man works in earlier life which is reaped by him in the successive life.

❖

EP-83

The Relevancy of Rāmāvatāra in the Context of the Twentyfour Avatāras of Lord Viṣṇu as Depicted in the Śrīmadbhāgavatapurāṇa

PROF. L. GOGOI-CHUTIA, GAUHATI

The third chapter of Skandha-I of the *Śrimadbhāgavatapurāṇa* describes the twentyfour incarnations of Lord Viṣṇu, manifestation of the Supreme Spirit, Brahman.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Brahman is *nirguṇa*, having no physical form, yet Brahman manifests in different forms for the well-being of the creatures both of Heaven and Earth. The author of the *Bhāgavatapurāṇa* describes the various incarnaions of the Lord in different forms.

The aim of this paper is to examine the *īśvaratva* of Rāmacandra as delineated in the *Rāmāyaṇa* and its references in the purāṇas and other relevant works.

❖

EP-84

Personality of Sītā : A Comparision of Vālmīkī Rāmāyaṇa and Folk Songs

DR. AMBIKA. K.G., KERALA

Rāmāyaṇa of Vālmīki, one of the two great epics of India, has moulded the national character of India right from the time of its creation of the present day. It is a mirror of the highest ideals of Indian culture and civilization. During centuries Vālmīki Rāmāyaṇa has been changing in form, content and spirit from language to language and country to country, because it has a fascinating evolution changing from time to time and people to people. So there are number of versions of Rāmāyaṇa in India and abroad. Different poets of different places used their own imaginations and produced a number of works. Parallel to these there arose a number of folksongs also.

Here, in this paper, an attempt is made to compare the personality of Vālmīki Sītā with that Sītā in different folksongs.

❖

EP-85

Mother Goddess in Ancient India : A Critical Study

MRS. DIPIKA DEVI, ASSAM

The concept of Mother Goddess in the Ṛgveda Saṁhitā and other Vedic literature is also examined. A number of Goddess and their capacities are mentioned in the vedas. In the Ṛgveda, the three peculiar types of Mother Goddess are found.

In the Great two epics Rāmāyaṇa and Mahābhārata Mother is depicted in a very high position. She is called Devī and respected by all.

At the time of the development of purāṇas Śiva and Śakti were adorned together for the welfare of the world. The great poet Kālidāsa addressed Pārvatī and Paramesvara together as the parent of the world.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The Purāṇas and the ancient Indian literature record the spread of Mātṛ-Pūjā in India. Mother Goddess was the only deity, whom the people liked very much and worshipped with great devotion.

Thus we can say that in ancient India Mother Goddess became remarkably popular in all ages of our history.

❖

EP-86

A Comparative Study of Pracheena Geetā and Prachalita Geeta

PROF. SHRIKANT G. JOSHI, KARNATAK

There are many works having titles of the Gītā such as Shiva Gitā-Devigītā-Ganesh-gītā etc. The word Gītā popularly known is Bhagavad-Gītā. The Bhagavad-Gītā of Mahabharatha is described in Bhishma Parva. There are many readings of the Gitā, Kashmir published Gitā-Bhajapatri Gitā, Pracheena Gitā and Gitā of Persian translated edition etc. This Paper is an attempt to discuss on how the Commentaries of Gitā lead to various system of Philosophy.

❖

EP-87

Andal's Krishna Bhakti in Nachchiyar Tirumozhi

SMT. S. KUMUDA VARADARAJAN, VARANASI

In Sri Vaishnava Sampradāya, Alwars propagated the Vedic truths through their hymns, called Nalayira Divya Prabandham. Among the Alwars, twelve in number, Andal is a gem and her Prabandham is a jewel. Her intoxicated love towards Lord Krishan is par excellence. Andal narrated her longing for Krishna extensively in Tiruppavai. Her hymns touch the heart, melt the mind. Besides this, her intense bhakti can be traced in the very first decade of Nachchiyar Tirumozhi, wherein she wants to do service at the feet of Lord Krishna. The great Acharya Periyavachchan Pillai of 13th century wrote a lucid commentary for these Prabandhams by enlightening Andal's inner thought.

This paper substantiates the salient features of the above events from the commentary of Periyavachchan Pillai.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

EP-88

The Utathya-Gītā of the Mahābhārata : An Analysis

S. JENA, BHUBANESWAR

Besides the most popular *Bhagavad-Gītā*, the *Mahābhārata* contains a number of Gītās like the *Uthathya-Gītā*, *Vāmadeva-Gīta*, *Śamyāk-Gītā*, *Manki-Gītā*, *Vicakhnu-Gītā*, *Hārīta-Gītā*, *Vṛtra-Gītā*, *Parāśara-Gītā* and the *Anu-Gītā*.

The *Utathya-Gītā* appears in the Rājadharma-parvan Chs. 91-92 of the great epic. In this Gitā advises Yudhiṣṭhira on the basis of what the sage Utathya had formerly discoursed to king Māndhātā regarding duties of a king. As this Gītā contains the instructions of Utathya about the conduct of a king and the regulation of State affairs, it is rightly known as the *Utathya-Gītā*.

In this paper an attempt has been made to show how this Gītā has been influenced by the *Manu-smṛti*, particularly by its Chapters 7 and 8.

❖

EP-89

Altruism in Valmīki's Concept of Dharma

DR. N.K. SUNDARESWARAN, KERALA

The concept of *Dharma* occupies a unique position in Indian tradition. It is considered as the most vital element in all facets of traditional fabric. *Veda-s* are proclaimed as the primary sources of *Dharma (Vedokhiladharmamūlam)*. *Dharma* is reckoned as one of the fourteen *vidyāsthanas*. Purvamimāmsā, one of the major schools of Indian Philosophy, has *Dharma* as its main subject of discussion (*athato dharmajijnāsā*). Further, it is considered as the first and foremost of the four purusartha-s (aims and goals of life).

But it is a striking fact that this all important concept has complexity as its second nature. *Mahābhārata* exclaims : (*dharmasya tattvam nihitaṁ guhāyam mahajano yena gataḥ sa panthāḥ*).

This paper deals with the altrnism in Valmīki's concept of Dharma.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

EP-90

Evolution and Composition of Earth's Surface : A Case Study in Viṣṇu Purāṇa

MRS. MANJUSHREE TRIPATHY, CUTTACK

The only species of Indian literature that can be claimed next to the *Vedas* is the *Purāṇas,* whcih are considered to be the store-houe of all branches of knowledge. But, it is unfortunate that the *Purāṇas* have not yet been explored properly for the common uses. Therefore, in the present context, an attempt has been made to bring out a systematic and scientific geographical interpretation of the evolution and composition of the earth's surface as per the text of *Viṣṇu* in order to know the *Purāṇic* notions of our ancients vis-a-vis present scientific observations and opinions.

As regards to the approach and methodology, both the authors have made a vivid literature survey both from primary and secondary sources relating to the surface of the earth in terms of its evolution and composition and discussed the same with various experts both from the fields of Sanskrit as well as Geography that enabled them to present this paper.

❖

EP-91

Ecology in Ancient Hindu Scriputre

DR. SANKARSAN DASH, ORISSA

Description of the origin of earth and the civilization in Hindu Scripture is different from others. Most of the believes and practices are scientific yet some of the superstitions may not be scientific, but they were helping directly or indirectly in the sustenance of human civilization. The mountains and the forests were the abodes of monks, natural laws, and law for nature.

The Hindus not only worship the plants but they also worship other species of the animals. The Hindu mythology did not allow the extinction of rare species from the earth. Hindus worship cows, bullocks etc. and domesticate them. One can enjoy bounties of nature by giving up ghee.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

EP-92

Yaksha-Yudhisthira Samvāda

S.V.R. MURTHY, ORISSA

Duryodhana with the help of the wily Shakuni defeated the Pāndavas in a dice game sent them to thirteen year's exile, of which the last year was to be spent untraced.

In that period, the Pandavas were tested by the death-god in the form of Yaksha. There fell all the four mighty brothers of Yudhisthira. However, Yudhisthira ignoring his thirst, hunger, sorrow and attachment answered Yaskha's question, showing great wisdom and having conquered greed, pride and anger etc. The Death-god, impressed by his son, gave the Pandavas many boons, which include remaining untraced in their thirteen year's exile.

❖

EP-93

Jagannātha in Purāṇas

PROF. GANGADHAR PANDA, VARANASI

Jagannātha known as Puruṣottama in Śrīmadbhagavadgītā is widely described in major Purāṇas. Prior to Purāṇic literature, the references are found in Ṛgveda (x.155,3) and other literatures.

This paper mainly deals with the development of Jagannātha cult in the Brahma, Skanda, Padma, Nārada, Matsya Purāṇas and Kapila Samhitā. The topic is so vast that the whole concept could not be covered in this small paper. Thus, the scope is limited as under :

1. Influence of Vedic literature on Purāṇas about the concept of Jagannātha.
2. Mythology and Purāṇic evidence.
3. Construction of Jagannātha Temple.
4. Historical Evidence.
5. Major festivals.
6. Philosophical view-points.
7. Development of Jagannātha cult in later literature after Purāṇas.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

EP-94

Environmental Consciousness in the Adi Parvan of the Mahabharata

AMARENDRA BISWAL, KURUKSHETRA

The etymology of the word पर्यावरणम् is परि + आ + वृ + ल्युट् means that which surrounds us from every side. The other word 'consciousness' is replaced by 'चेतना' means 'awareness'. The combination of these words earn awareness of all human-beings towards a purified, clean and hygenic atmosphere (physically and mentally) all around us.

Veda Vyasa, the great sage, calls upon men to keep the environment pure and clean. He asks us to learn many valuable lessons from the nature. All care was taken to keep the environment pollution free during the time of construction of palaces. According to Mahabharata, plants and trees have feeling. Modern Botanists have now proved that the plants are very sensitive to music. The people were very much conscious about their environment at the time of Adi parvan of the Mahabharata.

❖

EP-95

Transformation Technolgoy as Seen from the Kiskindā Kānda of Rāmāyana

PROF. CHANDRA, CHENNAI

Transformation technology means chance in character done through scientific methods. The first work which teaches this technology is the *Rāmāyana* of *Vālmiki*. He is the first guru for this technology. He is also the first person to get transformed from a hunter to poet. He has composed the work after hearing the story of Rāma from another transformed person namely *Narada*. At the beginning *Rama* is said to posses all the qualities of a mahātmā but they are not exhibited fully before *Kiskinda Kanda*.

'कालः पचति भूतानि सर्वाण्येव महात्मनि' मैत्री.उपनिषद

Time makes everyone into mahātmā.

In the *Kiskindā kānda* of Rāmāyaṇa *Rāma's* mahātma like qualities are brought to the forefront first by *Lakshmana*, when he consoles *Rāma*. A stranger with friendly emotions namely *Hanumān* pushes further. Then *Sugrīva*, the real friend shows *Rāma* how to be calm even during crisis such as seperation from wife, kingdom, etc. The last but not

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

the least motivation to Rāma is from *Vāli* and his wife *Tārā*, who belong to the opposite side. Though insulted by *Vāli, Rāma* keeps cool and calm and answers all the questions. He also consoles *Tārā* who wants to die along with her husband. Finally Rama is established as a mahātma by Tārā who says.

Kiskindā Kānda Ch. 24-31

A sincere attempt has been made to show the truth about a new technology which will enable us to understand life and utilize the situation to become perfect human being if not a mahātma.

❖

EP-96

Mass Communication in Epics and Puranas

ABHIJIT SUKUL

In spite of inclusion of Mass Communication in curriculum as a recent phenomenon; the subject has its own long history. The importance of Mass communication for the survival and prosperity of a civilized society is evident from the epics and purāṇas. Kings courts, hermitage, roaming sages did their best to educate the people and had a cohesive system of Mass Communicaiton. Multifarious schools of thoughts holding opposite views coexisted and developed side by side. This paper is written on this perspective.

❖

EP-97

Vibhudavarya's Subhadrāharana Mahākāvya

PROF. D. AKAMANCHI, BIJAPUR

In a broader sense the literary meaning of the term 'Kāvya' is the work of a poet सकलप्रयोजनमौलिभूतं समनन्तरमेव रसास्वादसमुद्भूतं (काव्यप्रकाश-1.2) which as the direct bearing on classical Sanskrit literature.

The Subhadrāharana is the Mahākāvya authored by Vibhudavarya. The work Subhadrāharana Mahākāvya deals with philosophical thoughts. It presents the concepts on how to lead a peaceful life mentioned in the Mahābhārata. Many of these concepts are valid even today. Every person desries to achieve knowledge, brilliance of mind, wealth, strength and sound health. For this purpose the performance of proper duty धर्म is suggested by Vibhudavarya. He was follower of Mādhwāchārya. Vibhudavarya was a sage of Vadirajamath, one of the Asthamath of Udupi.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The Mahākāvya Subhadrāharan consists of thirteen parts and six hundred twenty nine stanzas. The main characters are Arjuna, Subhadrā. Srikrishna. Balarāma and othe Pāndavas and Kauravas. The story Subhadraharan deals with mainly the mariage of Arujuna and Subhadra. This Mahakavya deals with the kings's obligations as well as his sacrifice for the happiness of his subjects. A picture of the ideal state of the ancient Hindus is to be found in it. Also find treaties on the origin of the state, early history of Dandaniti and its scope, organization of the government, king's service to his subjects as well as other topics of Dandaniti. It also contains discussion on Dharma, social code and philsophy of life. It deals very well about Bhakit.

The nāndisloka is written as follows :

श्रीवेदप्रमितं विदोषसुगुण नद्याभिदानं परं
श्रीब्रह्मेषु विशेषदेवप्रतिभिः राडां धियां दोषया
श्रीमत्पूर्णेमतिपतिद्वितं महास्मवतिं खेनन्दं
श्रीकृष्णं प्रणमामि शाश्वत महास्वानन्द सन्दोहदम्

❖

EP-98

Goddess as Prakriti, Māyā and Sakti : The 'Feminine Theology' of Devi Māhātmya

SUSHMETA CHATTERJEE

The objective of this paper is to explore the vision of the Goddess in Devi Māhātmya through the looking glass of Prakriti, Māyā and Sakti. We shall try to examine whether deification of philosophical notions in the person of the Goddess brings about a paradigmatic shift in the philosophical worldview and whether it helps in the conceptualization of the Goddess as a seamless totality.

Prakriti, Māyā and Sakti does not refer to any particular aspects of the Goddess but, are regarded as supremely divine as Devi herself. In Devi Māhātmya, there is no mention of purusa or Brahman even once. We also do not find that Siva Sakti dualism in Devi Māhātmya theology. The Goddess is the embodiment of all dualities and at the same time she transcends all dualities. Like Samkhya Prakriti, she is the prima matter from which creation proceeds and she is herself identified with the whole of creation. Unlike Samkhya Prakriti, however, the Goddess is also the self-quiescent ground of the Absolute. The notion of Purusartha of classical Samkhya does not find place in Devi Māhātmya theology. The Goddess is the autonomous creator, sustainer and destroyer of the universe. As Māhāmāya,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

the Goddess exerts her conscious and willful agency in causing delusion. Devi Māhātmya does not suggest that the Goddess binds because it is her nature or svabhāva to do so or because of her embodiment as Māyā, binding becomes obligatory on her part. She is not only the material matrix of universe but also the omniscient Sakti that pervades it. As Sakti personified, she is not consort of a make god. Sakti exists within herself as her innate prowess. The fabric of the 'feminine theology' of Devi Māhātmya, largely woven by the warp and woof of philosophical notions thus. provides an alternative to mainstream philosophical thoughts.

❖

EP-99

Vāmana-Trivikrama Sculptures of Kerala

DR. PREETA NAYAR, KERALA

Vāmana-Trivikrama constituted by the dwarf Vāmana and the colossus Trivikrama is the fifth incarnation of Viṣṇu. It developed into a story where Viṣṇu took the form of Vāmana to subdue Bali, the Asura king. For this purpose Vāmana transformed himself into a colossus Trivikrama (*Virāta*) and covered the whole of the Universe with his two steps. Left with no space, as per the agreement, he palced the third step on the head of Bali and pushed him down to the neither world.

Iconographical description of Vāmana-Trivikrama are observed in Viṣṇudharmottara purāṇa (3.85.54), Agni purāṇa (49.5), Skanda purāṇa (2.9.27), Bhāgavata purāṇa (18.23, 24), Vaikhānasāgama (58.199), Silparatna (2.55, 121) Rupamaṇḍana (3.15), Aparachitapṛccha (5.71) and so on. In sculptural art Vāmana-Trivikrama images are generally depicted together and in India such sculputres have been noticed since Gutpa period.

❖

EP-100

Nature of Conflict in Human Life : A Comparative Study of Indian Epics and English Classics

DR. SHAHEWAR SYED & DR. APARA TIWARI

'Manopubhangma dhamma manosettha manomaya.

Manasa che padutthen bhasati va karoti va'.

(Dhammapada verse 1)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The verse, as it appears in *Dhammapada* avows; all actions start from the mind. Mind is supreme. The scripture also declares; all that we are is the result of what we have thought. Recent psychologists shape their research on a similar premise, believing that our minds construct small scale models (imaginary) of reality. These models could be distorted due to adverse circumstances at an early age. The root cause of all conflicts are the outcome of inadequate efforts to establish a communion between the real and the imaginary. In our voyage through life we unremittingly come across internal conflicts, conflicts between two or more individuals and between individual/s and society.

This paper ties an earnest knot bringing together the great literary works of two entirely different cultures and times in this perspective. Beneath the endeavour of universal understanding of life lies the cult of sympathy, transcending and cutting across all kinds of barriers. humanity faithfully looks up to the great Indian epics; Maharshi Ved Vyās's *Mahābhārata* and Maharshi Valmīki's *Rāmāyaṇa* as they offer to unravel enigmas and quandaries of their life. Kunti's parting exhortation to her sons.

'Dharme te dhiyatan budhirmanastru mahadastu ch'. (Āshramvāsa parv. C.V.Vaidya, verse 21)

EP-101

Mis-Interpretation of Mahābhārata in Modern Malayalam Literature

DR. K.K. VIJAYAN, KERALA

The Mahābhārata is a voluminous work containing religion, scriptures, philosophy, poetry, history, stories and essence of all sastras.

In old Mālāyalam literature translation of Mahābhārata is in the form of poetry known as pattu and Bhāṣa.

In Modern Mālāyalam literature, there are some works related to Mahābhārata. In this context the critical work of 'Bhārata Paryatanam' by Mālāyalam critic Kuttikrishna Mārar is an important work. In this work Marar criticized Pāṇḍavās and always justified Karṇa. This is quite unnatural and never justified from the point of veiw of original Mahābhārata. In fact 'Bhārata Paryatanam' is misleading. Mahābhārata is also misinterpretation of great epic. Like this work there are number of novels in Mālāyalam literature by certain writers. Among this writer M.T. Vasudevan Nair contributed a novel known as 'Randamuzham'. In this novel he glorified Bhima and this presentation of the novel is a misinterpretation of the original work Mahābhārata. Some modern novels like

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'Amme Gāndhāri', 'Injinanurangatte', 'Kunti'. the authors interpretations become misinterpretations of original work.

In this paper an attempt is made to analye the Mahābhārata works in Modern Malayalam literature and also the interpretation of great epic and the study or misinterpretation also taken for study.

❖

EP-102

Different Aspect of Social Life Reflected in Mādhav-Kandali's Rāmāyaṇa

DR. PRANATI SHARMA GOSWAMI

The Rāmāyaṇa is an encyclopaedia of the ancient Indian life and wisdom. It gives us a multi-dimensional view of Indian life and culture. The Rāmāyaṇa tree spreads all over the world. In the 14th Century A.D. Mādhav-Kandlai of Assam contributed an excellent translated literary wealth to the Assamese Literature and society. His Assamese Ramayana is considered to be the oldest among all the Rāmāyaṇa tree translated in Northern Indian Regional Languages. Poet Mādhav-Kandali says in his Assamese versions of Rāmāyaṇa that he has not taken the idea of spirituality of the original Rāmāyaṇa but considers his composition as an exponent of folk-poetry. The society which is depicted in his Rāmāyaṇa is a real one. Different aspects of social life of that period is focussed in his Rāmāyaṇa. Mādhav Kandali changed the original Rāmāyaṇa to a great extent, but he added local colours wherever he wished. He added some new creations and imaginations mainly to entertain the readers of the Assamese society. But while adding the local colour he has not deviated from the literary or the aesthetic point of view of the Rāmāyaṇa, The Rāmāyaṇa plays a very vital role in keeping the unity through the ages. It constitutes a mighty pillar of Indian particularly Assamese society.

❖

EP-103

Rukmini Harana : A Unique Episode of Bhāgavata-Purāṇa

DR. MANJU GOSWAMI, ASSAM

Mahāpurush Sankaradeva's play Rukminī-Harana is an outstanding art form based on Bhāgavat Purāṇa. The dramatic plot develops through the divine powers, love, respect and devotion of Lord Krishna and Rukminī. The dramatis has gathered the subject-matter

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

of his play in a unique way from the 10th, 52nd and 54th chapter of the Bhāgavata-Purāṇa.

❖

EP-104

Prose Rendering of Rāmāyaṇa in Assamese Literature

DR. (MS.) RUPASREE GOSWAMI, ASSAM

In ancient Assam there were many institutions (tols) where learned teachers (Sanskrit Pandits) taught lessons from Sanskrit Veda, Smṛti, Rāmāyaṇa, Mahābhārata, Purāṇa etc. The early Assamese poets were well conversant with the Sanskrit language and literature. So, all the Assamese literatures of early period were translated works from sanskrit and they were written in the Kāvya form only.

The real Asamese literature started in the 14th Century when Mādhava Kandali translated Vālmīki's Rāmāyaṇa in verse form. No other regional language of East India can boast of translating Rāmāyaṇa till then.

After Mādhava Kandali, many other poets wrote many kāvyas with the story of Rāmāyaṇa. Śaṅkaradeva, the great literatures and social reformer of the 15th century translated Uttarākāṇḍa and his principal disciple Mādhavadeva translated Adi Kāṇḍa of Rāmāyaṇa and added these two kāṇḍa with their predecessor Mādhava Kāndali's Rāmāyaṇa which comprised only five kāṇḍas (although Mādhava Kāndali mentioned that he wrote 'Sapta Kāṇḍa Rāmāyaṇa', only five kāṇḍas were available).

Ananta Kāndali, another disciple of Śaṅkaradeva, wrote Pada Rāmāyaṇa, a precise translation of Valmīki's Rāmāyaṇa. Drugābar Kāyastha, a contemporary poet of Śaṅkaradeva wrote Geeti Rāmāyaṇa, a lyrical form of Rāmāyaṇa story.

❖

EP-105

The Spiritual and Philosophical Treatment of the Parable of Sudama in the Bhāgavata Purāṇa

DR. J.K. MAHANTA

The canonical part of the great tradition of sanskrit literature is generally found to be instructive in nature and character. All the works of this literary tradition have been found to announce unanimously the grandure of truth and duty (dhama). On the contrary

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

the vice and ignorance is censured vehemently and these sastras categorically point out that all kinds of misfortune, torment and affliction befall upon a human being because of ignorance. The chief goal of an individual soul is to apprehend the magnanimity of the world soul through which it can qualify itself to merge into the infinite. This has been announced unequivocally in all the vedas, upanisadas and purāṇas with a view to dissuading people from evil. The attachement to the sensual gratification re-inforces the boundages of karma and a man is infatuated highly in the clasp of Māyā. These evil forces of external world are incredibly strong to lead any human soul astray. Therefore the instructive part of Sanskrit literature always preaches man to earn true knowledge so that he may be able to ferry across safely this hazardous journey through the ocean of world, where are countless impediments in the form of unrestrained sense organs.

❖

EP-106

Manusmruti, is More Scientific than an Ethical Compendium

S.K. DASH, BRAHMPUR

S.N. PADHY, ORISSA

Manusmruti, has been regarded as the first ethical compendium on human jurisprudence, construed to be the ghihest doctrine for the formulation of human ethics. It deals with topics from birth to transimgration of human beings.

Attempts being made to analyze *Manusmruti* from Ethno-biological point of view, has explored many ancient scientific facts of the eastern world like : 1. Creation and dissolution of the universe, 2. Geological time scale, 3. Ecological factors, 4. Origin of life and expansion of Bio-diversity, 5. Concept of ecological indicators, 6. Food chain of the nature and flow of energy, 7. Aspects of Pollution, contamination and their prevention and maintenance of salubrity, 8. Ethics for conservation of Bio-diversity, 9. Genetic relevance of *Varna* Division and conservation of genetic traits, 10. Proposing the basic principle of Binomial Nomenclature, 11. Ascertaining internal consciousness in plants and a scientific basis of Clasification of Plant Kingdom and Animal world including man.

All the above facts are ats par with modern scientific values and the authors proposes Manu as the father of Biological classificaiton, and an Apostal of ecological knowledge.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

EP-107

Human Values in Vālmīki Rāmāyaṇa

PROF. D. NARASIMHA REDDY, TIRUPATI

In a classical sanskrit literature Rāmāyaṇa is recokned as Ādi-Kāvya and the author of this magnum opus Vālmiki is regarded as Ādi-Kavi. Rāmāyaṇa which has become as living legend of human society, exemplifies the ethical values concerning the customs as well as social and political situation of the contemporary period.

In a broader view, any thing good or bad is value. Values may be defined as the criteria and moral judgement. They are norms of society which shape the behavioural pattern are to a great extent, acquired by individuals from the society to which they belong. Members of society, through the process of socialization, internalize the values, are being discusssed in this study under twọ broad categories-family values and social values tend to change over a period of time.

❖

EP-108

Rāmāyāṇa Episode as Reflected in an Unpublished Purāṇa

DR. ANASUYA BHOWMIK

Angeya or *Vahnipuraa* though unpublished yet is well known to schoalrs, References of it are found in *Dānasāgara, Savadakalpadruma*, and Encyclopaedic Dictionary of *Purāṇas* . Dr. R.C. Hazra has written few articles on the genuineness of this *Purāṇa.*

Half of this *Purāṇas* deasl with *Rāmāyaṇa* episode. The questions therefore arise :

(a) Whetehr this poriton is a later addition the the *Purāṇa* or it was there form the very beginning.

(b) Whether this *Rāmāyaṇa* is identical to *Valmiki Rāmāyana* or differes widely from that.

Ādikāṇḍa and *Uttarakāṇḍa* are missing in this *Rāmāyaṇa* episode and the episode starts with the chapter *'Sitasāpakathananāma'*.

Araṇyakāṇḍa, Kiskindhākāṇḍa and *Sundarakāṇḍa* are described elaborately where the stories follow *Vālmiki Rāmāyaṇa* to some extent.

The *Rāmāyaṇa* episode is divided in chapters, not in *Kāṇḍas* and is written in Anustup chhanda.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

EP-109

Brahmā in the Purāṇas

FARAH AFROZ, GHAZIABAD

Brahmā is a neglected god and not many works and researchs are found on him. He forms a area of gods with Viṣṇu and Śiva. The *Purāṇas* alluded so him are called the *Rajasa Purāṇas*. Many nations regarding Brahmā have developed in them. The present paper takes into account the following nothings of the god in detail : 1. Brahmā in the Purāṇas, 2. Birth of Brahmā, 3. Offsprings of Brahmā, 4. The Purāṇic episode, colour and vehicle of Brahmā, 5. Images of Brahmā and his spouse, 6. some other illusions, 7. Conclusion.

❖

EP-110

Polyandry in the Epic Society

RATNA DUTTA, WEST BENGAL

Polyandry is a form of union in which a woman has more than one husband at a time. This form of union was once practised by the people of the Himālayan tract in norther India and was also prevalent among some tribes of Draviḍian groups in South India. Moreover, polyandry was not totallly unknown to the ancient Hindu Society. Though by the Hindu marriage act, 1955, of modern India it is laid down as one of the conditions of sacramental marriage that neither party has a spouse living at the time of the marriage. Any marriage than contravences this condition shall be void. Still polyandry is supposed to have ônce been a trait of the Brāḥmanic culture. In the Ṛg Vedic marriage hymn, Sūryā is married to Aśvins. The marriage of lady Rodasī with Maruts is mentioned. In the later Vedic literature and the Smṛtis nowhere contemplate the possibility of polyandry are noted. Kunālaka Jātaka referes to a polyandrous marriage of a princess named Kānhā. In the Rāmāyaṇa it is found that after the death of Vāli, Sugrīva, who was already married, married his wife Tārā. In the Mahābhārata, the classic instance of Polyandry is that of Draupadī who was married to all the five Pāṇḍavas. Draupadī's marriage raised a strom of protests from her relative. The epic-writer tacted the issue by an explanation given by Yudhiṣṭhira and then by the intervention of the great sage Vyāsa.

This paper attempts to examine and analyse the propriety of Yudhiṣṭhira's justification of Draupadī's polyandry in the context of many examples strewn in the ancient literature. The study thus aims at throwing light on the acceptance of polyandry in the ancient Hindu society.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

EP-111

ON the Austerities of An Individual Śambūka of the Rāmāyaṇa

PROF. JYOTISH NATH, TIRUPATI

It is wellknown that king Rāma slew Śambūka, a śūdra tapasvin, whose observance of austerities was alleged to have hurled untimely death at a certain bramhim boy. This anecdote of the Uttarakāṇḍa of Vālmīki's Rāmāyaṇa has variously been interpreted by a number of scholars in India and abroad. Notwithstanding the validity of a widespread explanation that the Śambūka-episode was a later interpolation, which espoused the cause of an upwardly rising brahmin class in the hierarchy of the contemporary society, it still casts doubt on one's mind whether the redactors of the *Rāmāyaṇa* were so insensible about the people's emotion that they grafted the role of the kiṭer of Śambūka on Rāma to push the hero of the epic to a perpetual disrepute. Mainly from this point of view the present paper attempts to shed some new light on the problem of the Śambūka-sotry of the *Rāmāyaṇa*.

❖

EP-112

Concept of Creation in Dharmaśāstra and Purāṇa

BANI MUKHERJEE, JADAVPUR

Creation is the start of the Worldly process, maintenance is connsdidered to be its steadiness while dissolution is crushing it (to dust). All these accoutss entrust the work of creation and destruction with the Supreme God who is sometimes Viṣṇu, sometimes Śiva, sometimes Brahman, sometimes Śakti. According to the view of Śivapurāṇa (V. 30.49-50) the first creation was the result of a mere thought, perception of meditation whereas the later ceation was the result of the union of male and female.

❖

EP-113

Comparative Study of Vālmikiya Rāmāyana and Rāmacharitmānasa

RASIKLAL A. PARIKH, HARIPURA, SURAT

In both Vālmikiya Rāmāyana and Rāmacharitmānas we find high order of civilisation existing side by side with some strange practices and customs, some of which are quite Vedic while the rest is of doubtful origin. The ancient Hindus know full well in

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

elevating the inflence of a great man. They therefore, not only honoured their national heroes but extolled them into divinity. There is something really noble in this excess of moral zeal.

When went to Janakpuri Rama and Lakshmana went to see the city with the permission of the sage. The ladies in the balconies of the city gave their reflections about the charmingness of Shree Rāma and Lakshmana. Some were doubting about the valour of Rama for breaking the bow of Shiva while others were not doubting about their valour because they killed many demons and also killed Tātakā demoness for the preservation of the sacrifice of the sage. The Prince Rāma and Jānki saw each other in Pushpavatica and Jānaki got the boon from the goddess Pārvati to get her coveted Prince Rāma as her husband. In Vālmiki Rāmāyana there was no self-elected marriage ceremony but Kings and Princes were coming to see the bow one by one and went away their homes desperately. While in Rāmacharitmānasa there was a lot of charming description about the self-elected ceremony of Sitā. At last Rāma broke the Shiva's bow and strung up to the said bow and won Sitā in the said ceremony. At last Parshurāma came to Janakpuri hearing the breaking of the Shiva's bow and he was conquered by Rāma by his valour and lustre. In this way Rāmacharitmānasa is somewhat modern and most charming rather than Vālmikiya Rāmāyana.

❖

EP-114

The Concept of Property Rights to Woman According to Agni Purāṇa

SMT. DR. K.S. RAMAN, BANGALORE

Purānas are a class of literature next in importance to Vedas. They are considered as of inestimable value for providing a picture of the social, political, ethical, cultural, religious, economical, philosophical and spiritual aspects of the life of a devoted Hindu. Extending over a period of ten centuries during which they assumed this present form of almost encyclopaedias, purānas have gained importance as sources of authority. The period of extant purāṇa texts extend over a thousand years probably from 200 A.D. to 1200 A.D.

Agni purāna, because of its encylopedic character has earned an important palce in the realms of purānic literature. This purāna in its extant form is ascribed to 9th C. A.D. present paper tries to explain the following points :

1. The economic aspect of Hindu marriage, kanyā sulka and stridhana.
2. Woman's share in dāyavibhāga on the inheritance of property.
3. The social implications of the above points on the present social system.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Section - 19

SANSKRIT & COMPUTERS

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

SC-1

कम्प्यूटर और संस्कृत कार्यक्रम

डॉ. सुधा वाजपेयी

कम्प्यूटर आज मनुष्य के मस्तिष्क का स्थान ले रहा है। भारत के प्रधानमन्त्री ने इसे अपने एक आलेख में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' और 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की उदात्त अवधारणाओं से जोड़ा है। इसका इतना ही निहितार्थ है कि अब कम्प्यूटर जीवन के प्रायः सभी क्षेत्रों में प्रवेश कर रहा है।

जहाँ तक 'कम्प्यूटर और संस्कृत कार्यक्रमों' की बात है, यह अत्यन्त गम्भीर प्रसङ्ग है। वस्तुतः संस्कृत एक विषय न होकर जीवन के प्रायः सभी क्षेत्रों से जुड़े हुए विषयों का आकार है। अभी ज्योतिष, वास्तु और आयुर्वेद से सम्बन्धित कार्यक्रमों की भरमार भले ही न कही जा सके, बहुत प्रकार से उपयोगिता सिद्ध हो रही है। कालान्तर में इन क्षेत्रों से आगे बढ़कर वैदिक विषयों, दर्शन, धर्मशास्त्र, काव्य, काव्यशास्त्र, नाट्यशास्त्र एवं रंगविधि आदि क्षेत्रों पर विशद कार्यक्रम देखने को मिले हैं। व्याकरण और भाषाविज्ञान के क्षेत्र में कम्प्यूटर का अभूतपूर्व उपयोग हो सकता है।

संस्कृत के कार्यक्रमों की कम्प्यूटर-सापेक्ष प्रवृत्ति के साथ ही कम्प्यूटर के हार्डवेयर और साफ्टवेयर के निर्माण में संस्कृत व्यवस्था एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है जिस पर पर्याप्त विचार करने की आवश्यकता है। अभी संस्कृत-भाषासापेक्ष की-बोर्ड बनाना शेष है। अब तक जो की-बोर्ड व्यवहृत हो रहा है, उसकी अपनी (मुख्यतः) अंग्रेजी-प्रभावित भाषा-व्यवस्था है। संस्कृत के कार्यक्रमों के लिए कम्प्यूटर को अपनी स्वाभाविक भाषा से उत्थान करके देने में बौद्धिक श्रम करना होता है। कदाचित् सीधे संस्कृत में कार्यक्रम बनाने की पद्धति विकसित करने के लिए कम्प्यूटर वैज्ञानिकों को थोड़ा और श्रम करना पड़ेगा।

❖

SC-2

Information Technology in Sanskrit

DR. SANKARSAN DASH,

'India is the second largest country in Population in the world with a population of more than one billion. Yet there is unity amidst diversity multi-religious, multi-cultural and multi-linguistic groups. It is rightly known as a sub-continent.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Information Technology has entered in each and every field. Sanskrit is most systematic, structured and an excellent language in the world. For use in Computers Sanskrit is easy and a rich language.

❖

SC-3

How I use computers for teaching Sanskrit

DR. SARASVATI MOHAN

This assumes two basic questions : How did I learn Sanskrit? How did I learn to use computers?

It raises many more questions like these :

How do I represent the script? What kind of text or lessons I follow?

How do I make my students do the exercises for practice?

If the student has a question or doubt, how do I solve it?

How do I test the student on the level of success in learning?

How do I achieve the correct pronunciation through the computer?

How do I communicate with a student especially when he/she is far away?

What features of the computer do I use for teaching Sanskrit?

I will answer all these questions.

❖

SC-4

Integration of Sanskrit and Computer

MISS. PRAMILA BAHADUR, LUCKNOW

This article looks into the use of computers in Sanskrit and tries to address questions like how we can utilize Sanskrit as a language for better Natural Language Processing, which will enable computer to be more user friendly and communicative.

As we know Sanskrit is a well-written language with perfect grammar. It is seen as a prospective answer to most of the problems faced by Artificial Intelligence researchers who are trying to build a system that can perform Natural Language Processing.

Sanskrit is an age-old language, and present regional languages borrow 80% words from it. It is being looked as a possible common language source since its syntex is perfect and leaves no room for error.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Sanskrit is so widely accepted that today we even have special software like OCR etc. to recognize Devnagari script in which Sanskrit is being written. This helps us to preserve the manuscripts written hundred and thousands of years ago by our hermits and saints.

Sanskrit is also being recognized as a language which has perfect semantics and is compatible to today's modern approach of the computer's programming language technology called OOPS technology which calls for predefined rules for developing a system which Sanskrit has in its roots to define things on the basis of predefined rules.

This article also looks into the future scope of Sanskrit not as an ancient but as a modern language.

❖

SC-5

Computer and Ancient Scriptures

NAROTTAM MISHRA, BIHAR

There are two different aspect of subject (a) Reference to computers in our ancient scriptures and (b) the use of the computers in Sanskrit Language.

Our ancient texts including the Mahābhārata speak of formidable weapons which were often intercepted by other equally or even more formidable weapons. Were these weapons the equivalent of modern day ballistic missiles and was their interception based on some short of antimissile technology? Karna forgot his *Mantra* at the crucial moment and could not use his Divyāstra दिव्यास्त्र. Was this mantra some sort of a password?

Sanskrit can be shown to be a computer friendly language and it is relatively easy to computerize to get on with our calculations. It is interesting that the computer uses binary equations using only 0 and 1 and with these two numbers makes the difficult calculations in a fraction of a second. Vedic Mathematics too is fact and accurate if only we know the *Sūtras*. It based on some sort of formula on which the computer too works? I do not know.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Section - 20

Indian Aesthetics & Poetics

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IA & P-1

काव्यलक्षणविमर्शः

श्रीमणिदीपदासः

काव्यलक्षणनिरूपणे बहवः आलङ्कारिकाः विविधरूपेण वर्णितवन्तः। अनेके आलङ्कारिका एव अलङ्कारशास्त्रं समृद्धं कृतवन्तः। संस्कृतैतिहासिकाः भरतस्य नाट्यशास्त्रम् अलंकारशास्त्रस्य सर्वप्राचीनग्रन्थं मन्यन्ते। भरतमुनिः तस्य ग्रन्थे नाटकस्य विविधविषयमालोचितवान्। पुनः केचन पण्डिताः अग्निपुराणग्रन्थमलङ्कारशास्त्राणां मध्ये सर्वप्राचीनग्रन्थरूपेण स्वीकृतवन्तः, भामहादिभ्यः आलङ्कारिकेभ्यः विश्वनाथजगन्नाथादयः आलङ्कारिकाः अलङ्कारशास्त्रं परिपुष्टं कृतवन्तः। तेभ्यः परं केचन आलङ्कारिकाः कतिपयान् अलङ्कारग्रन्थान् निर्मितवन्तः परन्तु ते न उल्लेखार्हाः।

भारतीये अलङ्कारशास्त्रे कानिचित् प्रस्थानानि सन्ति, यथा रसप्रस्थानं रीतिप्रस्थानम् अलङ्कारप्रस्थानं, गुणप्रस्थानं ध्वनिप्रस्थानं, वक्रोक्तिप्रस्थानञ्चेति प्रसिद्धम्। प्रसङ्गेऽस्मिन् रुय्यकप्रणीतस्य अलङ्कारसर्वस्वग्रन्थस्य टीकाकारस्य समुद्रवन्धस्य उक्तिः उल्लेखार्हा—'इह विशिष्टौ शब्दार्थौ काव्यम्, तयोश्च वैशिष्ट्यं धर्ममुखेन व्यापारमुखेन, व्यङ्ग्यमुखेन वेति त्रयः पक्षाः। आद्येप्यलंकारतो गुणतो वेति द्वैविध्यम्। द्वितीयेऽपि भणितिवैचित्र्येण भोगकृत्त्वेन वेति द्वैविध्यमिति पञ्चसु पक्ष एवाद्य उद्भटादिभिरङ्गीकृतः, द्वितीयो वामनेन, तृतीयो वक्रोक्तिजीवितकारेण, चतुर्थो भट्टनायकेन, पञ्चम आनन्दवर्धनेन। तत्र कैश्चन शब्दार्थयोः साहित्यं स्वीकृत्य काव्यस्वरूपं निर्णीतम्, कैश्चन पुनः कैवलार्थस्य प्राधान्यं स्वीकृत्य काव्यस्वरूपं विघटितम्, कैश्चन केवलं शब्दस्य प्राधान्यं स्वीकृत्य काव्यस्वरूपं निरूपितम्।

❖

IA & P-2

साम्प्रतिकसमाजं प्रति गीतिकाव्यस्य उपादेयता

श्रीशरच्चन्द्रमिश्रः, उड़िसा

गीतिकाव्यं संस्कृतवाङ्मयस्य रमणीयांशविशेषः। गीतस्य गतेर्वा साधारणतः 'गानम्' इत्यर्थो बुध्यते। यत्र कवित्वेन सह सङ्गीतात्मकता अपि रमणीयता अनुभूयते, परन्तु महाकाव्यस्य सम्पूर्णलक्षणं न प्राप्यते तदेव गीतिकाव्यम्। साहित्यदर्पणे विश्वनाथेन 'खण्डकाव्यं भवेत् काव्यस्यैकदेशानुसारि च' इति परिभाषानुसारं गीतिकाव्यस्य नामान्तरमेव खण्डकाव्यम्। यद्यपि गीतिकाव्यमिदं लघुकायविशिष्टं, परन्तु सुस्थसमाजनिर्माणाय दर्पणस्वरूपं समाजदर्शस्य परिचायकं च। महाकाव्ये मानवजीवनस्य सकलपक्षवर्णनस्थले गीतिकाव्ये मानवजीवनस्य कमपि प्रमुखविषयमुररीकृत्य चित्रणं दृश्यते। अत एव काव्यमिदं हृदयस्पर्शित्वं रमणीयत्वं च

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनयति। वैदिककालादेव गीतिकाव्यस्य समुद्भवो जातः। रामायणमहाभारतपुराणेषु विविधस्थलेषु गीतितत्त्वं प्राप्यते। एतेषां माध्यमेन गीतितत्त्वस्यादर्शवादः समुपस्थापितः।

❖

IA & P-3

पण्डितराजस्य वक्ष्यमाणत्वम्

गोपराजु रामा, इलाहाबाद

पण्डितराजः जगन्नाथः स्वीये रसगङ्गाधरे वच् धातोः लृट् लकारमाध्यमेन तत्र तत्र बहुप्रतिज्ञातवान्। वक्ष्यते विवेचयिष्यते, वक्ष्यमाणेत्यादि। परन्तु यथा—प्रतिज्ञातं तथा न निर्वोढमिति प्रतिभाति। यथा—

1. यच्च विद्वन्मानसहंस इत्यत्र दूषणमभिहितं तद्रूपकप्रकरणे परिहरिष्यते। (पृ. 202) रूपकप्रकरणे विद्वन्मानसहंस इत्यादिश्लोकस्य प्रसङ्ग एव नास्ति।

2. तच्च यत्र विषयविषयिणोरेकविभक्त्यन्तत्वेन निर्देशस्तत्र संसर्गः। अन्यत्र तु क्वचित् विशेषणं चेति विवेचयिष्यते। एतत्तु न विवेचितम्।

3. न च वैयाकरणमतविरोधो दूषणमिति वाच्यम्, स्वतन्त्रत्वेन आलङ्कारिकतन्त्रस्य तद्विरोधस्या-दूषणत्वात्। प्रपञ्चयिष्यते चैतदधिकमुपरिष्टादिति प्रकृतमनुसरामः। उपरिष्टात् किमपि न प्रपञ्चितम्।

4. 'तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्' इति निदर्शनातो वैलक्षण्याय अस्मदुक्तवैधर्म्यस्यैव आस्थेयत्वाच्च। शिष्टमनुपदमेव वक्ष्यामः। शिष्टमनुपदं किमपि नोक्तम्।

एवमेवप्रकारेण प्रतिज्ञातानां विषयाणां विवेचनं क्रियते अस्मिन् लेखे।

❖

IA & P-4

शान्तो भक्तिश्च : एकं विवेचनम्

प्रो. गोपालकृष्णदासः, भुवनेश्वरः

परम्परामनुसत्य प्रायः आलङ्कारिकाः काव्याच्चतुर्वर्गफलप्राप्तिः इति प्राचीनं मतं प्रति ओकारं दर्शयन्ति। त्रिवर्गसाधनं नाट्यमिति मतमपि प्राचीनतरम्। काव्यसम्प्रदायस्य विस्तारेण नाट्यस्यापि काव्येऽन्तर्भावात् तस्यापि मोक्षोपादायकत्वं समर्थितम्। नागानन्दादिरूपकेषु सौन्दरनन्दादिकाव्येषु च एतन्मतस्य सम्भावना पुरस्कृता। काव्यजगति स्तोत्रकाव्यस्य सम्प्रदायविशेषेण बाहुल्येन दर्शनात् शान्तरसस्य ग्रहणमनिवार्यमासीत्। साधारणतया 'ब्रह्मास्वादसहोदरः रसः' इति ग्रहणम्। परन्तु निवृत्तिपरके शान्ते साक्षाद् ब्रह्मसाक्षात्कार इति मतमपि सलिलतुषारवृत्त्या मान्यमताधारोपरि विलोक्यते।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्तवृत्तिः द्विधा। प्रवृत्तिर्निवृत्तिश्चेति। निवृत्तौ यथा शान्तरसः तथा प्रवृत्तौ मायारसः प्रतिभाति। एकत्र रसोत्पत्तिरपरत्र नेति वक्तुमशक्यमिति रसमञ्जरीकारस्य मतम्। रूपगोस्वाम्यादयो वैष्णवाचार्याः साध्यरूपाया भक्ते प्रबलतया समर्थकाः प्रतिपादकाश्च। भक्तिं विहाय किमपि तत्त्वमङ्गीकर्तुं तेन उत्सहन्ते न सहन्ते च। एतन्मतस्य विलक्षणं कुत्रचिदपि स्यात्।

उत्कलप्रान्तस्य देवः जगन्नाथः भुक्ति-भक्ति-मुक्तिदाता इति मतं मान्यम्। तदर्थमुत्कलेषु वैष्णवधारायां ज्ञानमिश्राया भक्तेः बाहुल्येन प्रचारो दृश्यते। एतन्मतें साधनरूपाया भक्तेर्ग्रहणं दृश्यते। तत्र मोक्षः साध्यः। एतादृश्या साधनरूपाया भक्तेः भक्तिरसस्य द्वैविध्ये (साध्य-साधनरूपे) अन्तर्भावः केचित् कुर्वन्ति। शान्तोऽपि नवमो रसः इति मतस्य ये पोषकाः ते शान्तातिरिक्तस्य कस्यचिद् दशमरसस्य ग्रहणे तथा आग्रहं न दर्शयन्ति। तेषु ख्रीष्टीयाष्टादशशताब्द्याः आलङ्कारिकः जगन्नाथमिश्रः स्वकीये रसकल्पद्रुमाख्ये विशालग्रन्थे भक्तेः लोकमान्यतां विलोक्य शास्त्रमान्यतामापादयितुं तस्याश्च नवसु रसेषु ग्रहणार्थं सर्वथा प्रयतते। तद्ग्रन्थस्य दशमपल्लवे पञ्चमे दले 'नन्वयं (शान्तो रसः) विष्णुभक्तिं विना न सम्भवतीति सकलपुरुषार्थ-मूर्धाभिषिक्तमुक्त्येकसाधनत्वेन भक्तिरभिधीयते' इति मतस्य समीक्षणार्थं प्रबन्धोऽयं प्रस्तूयते।

❖

IA & P-5

कवेः सृष्टौ कवेर्दृष्टिः

डॉ. कृपारामत्रिपाठी 'अभिराम'

कवेरभिमतं स्वारस्यं तस्य रचनायां पुष्पेषु गन्धवत् सूपहितं भवति। अत्र कालिदासो निदर्शनमस्ति। स एतादृशः कविरस्ति येन मानवजीवनस्य प्रायः सर्वेऽपि तन्तवः सम्यक् सूत्रिताः सूपनिबद्धाश्चेति सुविदितमस्ति। कन्याजन्मादि संलक्ष्य नाना विचारा भाषाश्च मनीषिभिर्बहुधा उपस्थापिताः सन्तीति सुधियो विजानन्ति। तत्र काले काले नानाभ्रान्तयो विमतयश्च प्रादुष्कृताः प्रचारिताश्च मानवसमाजेषु। तेषां विचारविकाराणां विशोधनाय कविकृतीनां सम्यगनुशीलनेनैव सम्यग्दृष्टिर्लब्धुं शक्यते।

अस्मिन् शोधपत्रे कविदृष्टिप्रत्यभिज्ञानविषये नवनवा उन्मेषाः समुन्मीलिताः तेषां पद्धतिश्च पुरस्कृता। ततः सुधियः समीक्षन्तामिति पुरस्क्रियते।

❖

IA & P-6

काव्यरसविशेषयोजनादर्शनम्

डॉ. बटोही झाः, लखनऊ

लोकोत्तरवर्णनानिपुणकविकर्मणो नानाप्रयोजनकस्य काव्यस्य रसास्वादनं मुख्यं प्रयोजनम्। तत्काव्यस्य कारणं कविगता केवला प्रतिभेति पण्डितराजः। एवं काव्यं कवित्वप्रतिभाविलसितम्। तच्च द्विविधम्—भावात्मकं रसात्मकञ्चेति। रसात्मकमपि पुनर्द्विविधम्—स्वादात्मकम्, आनन्दमात्रपर्यवसितञ्चैति।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथाविधस्य काव्यस्य नानाविधत्वेऽपि स्थूलतया दृश्यश्रव्यात्मना द्वैविध्यम्। तत्र दृश्यभेदे दशविधरूपकेषु शृङ्गाररसप्रधानं प्रकरणं, वीररसप्रधानः समवकारः, रौद्ररसप्रधानो डिमः, करुणरसप्रधानोऽङ्कः, हास्यरसप्रधानं प्रहसनमिति। तेषु रूपकभेदेष्वेव प्रधानस्य नाटकस्य लक्षणे—'एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वे'ति शृङ्गारवीरयोर्द्वयोरेकस्य रसस्य प्राधान्यकरणे कथमालङ्कारिकनिर्देशः?

एवमेव श्रव्यकाव्यनानाभेदेषु मुख्यतमस्य विशालाकारस्य महाकाव्यस्य लक्षणे चोक्तम्—'शृङ्गारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते'। अत्रापि नवरसरुचिरायां कविभाख्यां सत्यां कथं शृङ्गारादीनां त्रयाणामेव रसानां मध्ये कस्यचिदेकस्य रसस्य प्राधान्यकरणव्यवस्था कवीनां कृते? रसैरन्यैः किमपराद्धमिति विशेषतो चिन्तनीयम्।

महाकाव्यलक्षणे करुणस्य प्राधान्यं नहि निर्धारितमालङ्कारिकैः, किन्तु वाल्मीकिरामायणमादिमहाकाव्यम्, तच्च करुणरसप्रधानमेव स्वीक्रियते। एवमेव नाटकलक्षणे करुणरसस्य प्राधान्यं नाङ्कितं, परं करुणरसप्रधानमेवोत्तररामचरितनाटकं भवभूतेर्मन्यते। एवमादिसमाधानं यथामति काव्यरसविशेषयोजनादर्शनात्मना निबन्धेन प्रस्तोतव्यमस्तीति।

❖

IA & P-7

रसे सारश्चमत्कारः

डॉ. प्रभुनाथद्विवेदी, वाराणसी

रसे सारश्चमत्कारः काव्ये तत्त्वं तदीहितम्।
सुधीभिस्सततं स्विष्टं नानारूपं प्रपञ्चितम्॥1॥

काव्यस्यात्मा रसो ज्ञेयः स वै ह्यानन्दरूपकः।
आनन्दस्तु चमत्काराच्चमत्कारोऽनुभूयते॥2॥

चमत्करोति चेतांसि सहसैव विपश्चिताम्।
काव्यतत्त्वोद्भवस्तत्र चमत्कारः प्रकीर्तितः॥3॥

प्रमाणं रसिका नूनं काव्यास्वादरसप्लुताः।
रसास्वादेऽत्र को हेतुश्चमत्कारो वितन्यते॥4॥

छन्दोविचितिविच्छित्तिं ततश्च गुणगौरवम्।
काव्यालङ्कृतिवैशद्यं रम्यरीतिप्रकल्पनम्॥5॥

मञ्जुवागर्थसाहित्यं पदशय्यासमाश्रितम्।
सर्वप्रकारमौचित्यं व्यञ्जनं ध्वनिनूतनम्॥6॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुधियामत्र वक्रोक्तिमनुसन्धाय समन्ततः।
समीक्ष्य विशदां चात्र काव्यशास्त्रपरम्पराम्॥7॥

विद्वन्मनोलग्नेऽस्मिन् शास्त्राम्भोधौ सुदुस्तरे।
बालोऽयं कुरुते नूनं जिह्वाप्लवनचापलम्॥8॥

निबन्धे ग्रथितं वस्तु संक्षिप्यात्र प्रकाशितम्।
विदुषां प्रीतये भूयान्मनस्तोषाय तत्कृतः॥9॥

❖

IA & P-8

भ्रमरगीतस्यालङ्कारिकमध्ययनम्

डॉ. निरञ्जनमिश्रः, हरिद्वारम्

सकलज्ञानविज्ञानानामाकरस्वरूपमिदं 'श्रीमद्भागवतं महापुराणम्' विद्वत्तल्लजानां पुरतो वर्तते। पुराणस्यास्य न केवलं धार्मिकवैशिष्ट्यमपि तु विविधशास्त्रीयतत्त्वान्वेषणायापि वैशिष्ट्यं वर्तते।

यद्यपि सरसपद्यानां प्राचुर्यमत्र भवत्यक्षिगोचरम्, तथापि कतिपयगीतानां वैशिष्ट्यं नितरां विकासयति सहृदयचित्तकमलानि। अतः शास्त्रतत्त्वमधुलुब्धमधुपेभ्यः शास्त्रीयाध्ययनमावश्यकं भवति। विशेषतस्तु रसास्वादायालङ्कारिकशास्त्राध्ययनमावश्यकम्। शास्त्रीयतत्त्वज्ञानाभावे श्रीमद्भागवतीयगीतानां तथाविधरसास्वादो न भवितुमर्हति यथा भाव्यम्।

निबन्धेऽस्मिन् भ्रमरगीतस्याध्ययनं करोमि स्वधिया। दशमस्कन्धस्य सप्तचत्वारिंशत्तमेऽध्याये गीतमिदं वर्तते। भ्रमरमभिलक्ष्य श्रीकृष्णस्य भर्त्सनमत्र प्रस्तुतमृषिवरेण। काऽपि नायिका नायकस्य भर्त्सनं कथं कदा करोतीत्यस्य ज्ञानं यावन्नास्ति तावदस्य गीतस्य रसास्वादस्य सम्भावना कथम्? कस्यां परिष्ठितौ सा नायिका, कीदृशोऽयं दूतः नायिकायाः कथनस्य मूलाभिप्रायः कः, नायकम्प्रति तस्याः कीदृशी भावना? इत्यादिविषयाणां ज्ञानस्यापेक्षा वर्तते गीतस्यास्य रसास्वादाय।

❖

IA & P-9

मल्लारिमाहात्म्ये काव्यसौन्दर्यम्

श्रीचन्द्रशेखरजोशी, कर्नाटक

भारतीयपुराणसाहित्यस्य कृते रामायणमहाभारतादिग्रन्थानां स्फूर्तिरेव कारणम्। पुराणशब्दस्य अर्थ एव पुरातनमिति। पुरा, इदानीन्तने, तथा अग्रेऽपि यन्नवनवीनमस्ति तदेव पुराणम्, मल्लारिमाहात्म्यनामकोपपुराणे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अष्टादशसर्गाः सन्ति। विलक्षणरूपेण काव्यसौन्दर्यं वर्णितमस्ति मुनिना। कलियुगे तत्त्वज्ञानहीनजनान् भक्त्या उद्धर्तुकामः भगवान् सर्वमङ्गलाजानिः परमेश्वरः मार्तण्डभैरवरूपेणावतारं कृत्वा जगतः पीडयतः मल्लासुरमणिकासुरनामकदैत्यान् नाशयति। निबन्धेऽस्मिन् अस्योपपुराणस्य वैशिष्ट्यं विवेचयिष्यते।

❖

IA & P-10

रूपकषट्के कौशिकी

डॉ. रामजियावनपाण्डेयः, अम्बेडकरनगरम्

प्रस्तुतशोधपत्रे मया बड़ोदा-गायकवाड-प्राच्य-संस्थानेन प्रकाशिते द्वादशत्रयोदशशतके स्वीयकालञ्जरनरेश-परमर्द्दिदेवत्रैलोक्यवर्मदेवामात्यकविवत्सराजकृत-'किरातार्जुनीय'-व्यायोग-'कर्पूरचरित'भाण-'हास्यचूडामणिं'-प्रहसन-'त्रिपुरदाह'-डिम-'समुद्रमथन'-समवकार-'रुक्मिणी-हरणे'हामृग-रूप-रूपक-षट्के शृङ्गारानुप्राणित-'नर्भ-नर्म-स्फिञ्ज-नर्म-स्फोट-नर्म-गर्भं-भेदोपशोभितं 'कौशिकी'-विधानं विधिवत्परिशीलितं, दृष्टञ्च यन्नाट्योत्कर्षधायिनी नायक-फल-प्राप्तौ सहायिका रूपक-कथा-विकास-साधिनी तद्व्यापारात्मिका वृत्तिः भरतादिनाट्याचार्यैः भास-कालिदास-वत्सराजादिनाट्यकारैर्बहुमानिता अनायासेन आयासेन वा स्वस्वरचनासु रूपक-षट्कादिष्वनिवार्यतयोपनिबद्धा वर्तते।

कथानक-पात्र-रसादिवदाकृतिन्वेषभूषाणां सौन्दर्ये विराजमानाः 'नाट्य-मातरः' कथा-फल-साधिकाः भारतीसात्त्वत्यारभटी-कैशिकी-रूपाः वृत्तयो रूपकेभ्यो हृद्यचारुत्वमाकर्षणं स्पृहणीयत्वमुत्कर्षञ्च प्रयच्छन्ति।

इत्थं विविधदृशा नाट्यशास्त्रीयाध्ययनाय रीतिवृत्तिलास्याङ्गादीनां विशेषतया कैशिकी-निदर्शनाय वत्सराजकृतं 'रूपक-षट्कं' विशेषेण परिशीलनीयमिति मदीयो दृढानुरोधः।

❖

IA & P-11

मालविकाग्निमित्रनाटके रङ्गशिल्पः

डॉ. सुधा वाजपेयी

कविकुलगुरोः कालिदासस्य मालिविकाग्निमित्रं रङ्गशिल्पदृष्ट्या समधिकं महत्त्वं भजते। नाटकेऽस्मिन् पञ्चाङ्कात्मके महाराजस्याग्निमित्रस्य प्रणयकथात्मकमुख्यविषयस्य संघटना शृङ्गारनाट्यरूपेण सुर्निव्यूढा वर्तते। ततोऽप्यधिकमत्र महाकविना रङ्गपाटवस्य तादृशी क्षमता दर्शिता येन कविकुलगुरुरसौ नाट्यगुरुरपि प्रतिभाति। अमुना स्वकीये नाट्यप्रस्तावे अन्तर्भूतरङ्गप्रयोगविधीनां कुशलतापि परिचयमायाति। शास्त्राचरेण गणदासेन प्रगुणीकृता मालविका स्वकीयप्रयोगे राजसभां चमत्करोति तदा प्राशनिकपदमलंकुर्वती परिव्राजिका कौशिकी तस्याः प्रयोगमभिलक्ष्य स्वकीयामाख्यां अधोऽङ्कितश्लोकेन प्रकटयति—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अङ्गैरन्तर्निहितवचनैः सूचितः सम्यगर्थः
पादन्यासो लयमनुगतस्तन्मयत्वं रसेषु।
शाखायोनिर्मृदुरभिनयस्तद्विकल्पानुवृत्तौ
भावो भावं नुदति विषयाद्रागबन्धः स एव॥

श्लोकोऽयं रङ्गशिल्पस्य निगूढतमं रहस्यं विशदयति, यस्य सम्यक् परिचयाय मालविकाग्निमित्रस्य शिल्पविचारार्थं सानुबन्धं विवरणं करणीयं वर्तते।

❖

IA & P-12

शिशुयुवदुर्दैवविलसितस्यारम्भिककलापकस्य ध्वन्यलङ्कारविमर्शः

डॉ. अरुणकुमारमण्डलः, शान्तिनिकेतनम्

शिशुयुवदुर्दैवविलसितं नाम श्रीसीतानाथाचार्यशास्त्रिणा विरचितमधुनातनसमाजसङ्कटाश्रितं गीतिकाव्यमेकमिति। पश्चिमबङ्गभूमौ नदीयाजिलान्तःपातिनि देवग्रामस्वास्थ्यकेन्द्रे पञ्चनवत्युत्तरैकोनविंशतिशतमिते खिष्टसंवत्सरे एप्रिलमासस्य चतुर्थे दिनाङ्के 'पोलियो'-प्रतिषेधकौषधप्रयोगसमयादारभ्य चतुर्विंशतिघटिकाभ्यन्तरे बहूनां शिशूनां मृत्युकथा-मवलम्ब्य निहतशिशुनालम्बनविभावेन जनन्यादेराक्रन्दनेनानुभावेन च कवेः कारुण्यस्य हेतुभूतो जनन्यादेशोकः श्रीसीतानाथस्य लेखन्याः निर्गत्य द्वात्रिंशोत्तरशतश्लोकात्मकेन काव्यव्यापारेण परिणतिं प्राप्तः। अस्मिन्नेव काव्ये आलिखितेषु विचित्रचित्रेषु केवलं श्लोकचतुष्टयात्मकस्य प्रथमकलापकस्य ध्वन्यलङ्कारविमर्शोऽस्माकं विचार्यविषयः।

❖

IA & P-13

बुद्धचरिते उपमालङ्कारविमर्शः

सुश्री मृदुलाराय, शान्तिनिकेतनम्

सर्वैरालङ्कारिकैरुपमाया गुरुत्वमङ्गीकृतम्। सर्वासां काव्यसम्पदामुपमा शिरोरत्नसदृशीति राजशेखरेणोक्तम्। भरताचार्याणां नाट्यशास्त्रे उल्लिखितानां चतुर्णामलङ्काराणां मध्ये एका तावदुपमा। भरतादारभ्य सर्वे आलङ्कारिका उपमालङ्कारस्य बहुधा समीक्षणं कृतवन्तः। सुदीर्घेऽस्मिन् काले उपमाया वैचित्र्यमपि बहुविस्तीर्णम्। उपमैवानेकप्रकारेण वैचित्र्येणानेकालङ्कारबीजभूतेति आलङ्कारिकैः निर्दिष्टा। मूलतया मम्मटविश्वनाथयोरुपमासिद्धान्तमवलम्ब्य बुद्धचरितस्थितानामुपमालङ्काराणां विमर्शनमस्य निबन्धस्य विषयः।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IA & P-14

'कुपितो मकरध्वजः' एकं विवेचनम्

डॉ. मीरा द्विवेदी

अस्मिन् शोधपत्रे काव्यप्रकाशटीकाकारानुसारं लिङ्गपदं तस्य मम्मटोदाहृतं 'कुपितो मकरध्वज' इत्युदाहरणञ्च विवेचितम्। टीकाकारैर्लिङ्गपदमर्थत्रये गृहीतम्। सरस्वतीतीर्थसोमेश्वरविद्याचक्रवर्तिमहेश्वरादयो लिङ्गपदस्यार्थश्चिह्नमिति कुर्वन्ति। परमानन्दचक्रवर्ती श्रीवत्सलाञ्छनभट्टाचार्यश्चासाधारणधर्मत्वेन लिङ्गशब्दस्यार्थं कुरुतः। गोविन्दठक्करभीमसेनचण्डीदासविश्वनाथप्रभृतिटीकाकारा विपक्षव्यावृत्तधर्म इति लिङ्गस्यार्थं प्रतिपादयन्ति। अतः टीकाकारेषु लिङ्गपदस्यार्थे मतैक्यं न दृश्यते। ये लिङ्गपदस्यार्थं चिह्नं मन्यन्ते तेषां मते कोपः कामस्य चिह्नं भवितुं शक्नोति न तु समुद्रस्य, यतो हि कोपरूपं चिह्नं समुद्रस्याचेतनत्वात् तत्र नैव शक्यते। केचित् मकराकारो ध्वजो मकरेण चिह्नितो वा ध्वज इति चिह्नेन मकरध्वजपदस्यार्थः कामदेवोऽभिधया इति गृह्णन्ति। केचिदनेन चिह्नेन एव कुपितशब्दस्यार्थः कामदेवं मन्यन्ते। एतेषां मतानि नोचितानि प्रतीयन्ते यतोह्यचेतनत्वात् कोपात्मकं चिह्नं यथा समुद्रे नैव शक्नो तथैवामूर्तकामेऽपि कथं शक्नो? मकराकारचिह्नेनापि कामदेववार्थो न नियम्यते; अन्यथा 'सशंखचक्रो हरिः' इति संयोगोदाहरणेनास्य को विशेषो स्यात्। न च कुपितशब्देन कामदेवेऽभिधाया नियमनम्; नास्ति कुपितशब्दो नानार्थक इति। एवमेव लिङ्गपदस्यासाधरणधर्मात्मकविचारोऽपि न युक्ति सम्मतः। कोपोऽसाधारणधर्मो भवितुं नैव समर्थः। यतो हि सर्वप्राणिषु साधारणतयाऽस्य स्थितिः। अपि चासाधारणधर्मस्य मकराकारोध्वज इति चिह्नात् सशंखचक्र इत्यादावतिव्याप्तिः प्रसङ्गः स्यात्। विपक्षव्यावृत्तधर्मो लिङ्गमिति वक्तव्यमपि कुपितो मकरध्वजप्रसङ्गे साधु न प्रतीयते, यतोहि कोपरूपलिङ्गं चिह्नं वा विपक्षव्यावृत्तधर्मत्वेन न स्थितम्। तस्य कामदेवेन सह नास्ति समवायसम्बन्धः। अतः टीकाकारैः प्रतिपादितलिङ्गशब्दस्यार्थैः कामदेवार्थेऽभिधाया नियमनं नैव शक्यते।

तर्हि प्रश्नः समुदेति यत् कुपितो मकरध्वज इत्युदाहरणे मन्मथार्थस्य प्रतीतिः कथं भवति? अस्य समाधानमस्ति यत् प्रसिद्ध्या मकरध्वजशब्देन मन्मथार्थस्य बोधो जायते। मकरध्वजशब्दो मन्मथार्थे प्रसिद्धो वर्तते। अस्याप्रसिद्धप्रयोगे समुद्ररूपार्थे मम्मटः सप्तमोल्लासे निहतार्थदोषं मनुते। अत एकार्थकशब्दवदत्रापि प्रसिद्ध्यैवार्थावगतिरवगन्तव्या।

वाक्यपदीयस्य टीकाकारौ हेलाराजरघुनाथौ मन्वाते यद् वाक्यान्तरे दृष्टाल्लिङ्गाल्लोके प्रसिद्धोऽर्थविशेषो वाक्यान्तरे प्रतीयते। परमन्ये प्रकाशटीकाकाराः येन केन प्रकारेण समीक्ष्योदाहरणस्य सङ्गत्यर्थं पक्षे मतानि प्रस्तुवन्ति। अतश्चिन्तनीयमुदाहरणमिदम् 'कुपितो मकरध्वजः' इति।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IA & P-15

शब्दश्लेषविमर्शः

डॉ. वसन्तकुमारमिश्रः, ओडिशा

अलङ्काराः काव्यशोभाकराः धर्माः। एतान्विना कवेर्वाणी (काव्यम्) विधवेव भवतीति भरत-भामह-दण्डि-उद्भट-रुद्रटादयः 'गुणालङ्काररहिता विधवेव सरस्वती' इत्यनेन भावेन प्रकाशयन्ति। भामहोऽपि काव्यालङ्कारे (1/13) 'न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनिताननम्' इत्युक्त्वा अलङ्कारेण काव्यसौन्दर्यं वर्धत एव इति प्रतिपादयति। मम्मटविश्वनाथजगन्नाथादयस्तु अलङ्काराणां रसस्योपकारकत्वं स्वीकृत्यैषां स्थितिः काव्येऽत्यावश्यिका इति प्रमाणयन्ति।

स चालङ्कारः शब्दालङ्कारार्थालङ्कारोभयालङ्काररूपेण त्रिविधः। तस्य संख्याविषये आलङ्कारिकाणां मतभेदेऽपि सर्वेऽलङ्काराः प्रोक्तभेदत्रयान्तर्गता इत्यस्मिन् विषये मतैक्यं दृश्यते। तत्र शब्दपरिवृत्तिसहत्वासहत्वाभ्यां (तच्छब्दमनुपादाय तच्छब्दसमानार्थकशब्दोपादानेऽपि संभवासंभवाभ्यां) शब्दार्थगतत्वव्यवस्थितिः। परमार्थतः शब्दपरिवर्तमनुप्रासादयो न सहन्ते। अतः त एव शब्दालङ्काराः। यत्र पुनः शब्दपरिवर्तनं कृत्वा तत्समानार्थकशब्दसंस्थापनेन अर्थे न हानिः, तर्हि ते अर्थालङ्काराः, यथा उपमादयः। एवं च यत्र शब्दपरिवृत्तिसहत्वासहत्वयोः नालङ्कारत्वहानिः, तत्र शब्दार्थालङ्काराः, यथा पुनरुक्तवदाभासादयः।

इत्थमवसितेऽलङ्कारभेदनिर्णये सम्प्रति श्लेषालङ्कारः विविच्यते। श्लिष्-धातोः घञ्प्रत्यये, श्लिष्यन्ते अर्थाः यस्मिन् स इति विग्रहे च श्लेषशब्दः निरुच्यते। शब्दश्लेषोऽर्थश्लेषश्चेति द्विविधोऽयमलङ्कारः। तत्र शब्दश्लेषः शब्दालङ्कारविषयः शब्दपरिवृत्त्यसहत्वात्, अर्थश्लेषस्तु अर्थालङ्कारविषयः शब्दपरिवृत्तिसहत्वाच्चेति तल्लक्षणं ज्ञेयम्। शोधपत्रेऽत्र शब्दश्लेषविषयः शब्दालङ्कारान्तर्गतश्लेषविषयो वाऽऽलोच्यते।

❖

IA & P-16

ध्वनिरसयोः काव्यात्मत्वविमर्शः

डॉ. सुरेन्द्रनाथसारंगी, ओडिसा

अलङ्कारशास्त्रपरम्पराया प्रथमशतकादारभ्य इदानीं यावद् विविधैराचार्यैराविष्कृतानि सन्ति विविधानि काव्यतत्त्वानि तत्र काव्यात्मतत्त्वविचारधाराधायकत्वेन प्रादुर्भूतेषु रसालङ्कारादिषु षट्सम्प्रदायेषु आचार्यानन्दवर्धनस्याविष्कृतस्यापूर्वमौलिकसम्प्रदायस्य ध्वनेः प्रधानता सहृदयहृदयसंवेदनदृष्ट्या मनोवैज्ञानिकदृष्ट्या चाङ्गीक्रियते, काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति आनन्दवर्धनाचार्यस्य सिद्धान्तिमतमेव तन्मतं परवर्तिभिः व्यञ्जनावादिभिरालङ्कारिकैः सप्रमाणमङ्गीकृतम्, रसात्मवादिनोऽपि काव्यमीमांसाकारस्य राजशेखरस्य मतानुसारं ध्वनिरयमतीव गम्भीरतत्त्वत्वान् आनन्दवर्धनः सर्वेषामानन्दवर्धकः आसीदिति, न केवलं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्वनिसमर्थकालङ्कारिकाः तस्य महत्त्वमङ्गीकृतवन्तः ध्वनिविरोधिनोऽपि तस्य वैशिष्ट्यं कण्ठतः स्वीकृतवन्तः नैयायिको महिमभट्टः स्वीयव्यक्तिविवेके ग्रन्थे ध्वनितत्त्वात्मकमार्गमतीव गहनमार्गत्वेनोपस्थापयामास।

इदानीं काव्यात्मनः रस्य चर्चा, संस्कृतसाहित्ये ये सन्ति सम्प्रदायाः तेषु प्रायशः काव्यस्यात्मभूतस्य रसस्य स्थितिरनुभूयत इति।

❖

IA & P-17

शब्दालङ्काराणां पौर्वापर्यविमर्शः

डॉ. कामेश्वरशुक्लः, गुवाहाटी

अलङ्कारस्तावत् काव्यशास्त्राणां प्रमुखमङ्गम्। शब्दालङ्काराः अर्थालङ्काराः उभयालङ्काराश्चेति अलङ्काराणां भेदत्रयं सर्वथा प्रसिद्धम्। अलङ्काराणामेतस्मिन् वर्गीकरणे आलङ्कारिकाणां कीदृशी प्रवृत्तिः को वा हेतुरिति जिज्ञासायां वक्तुं युज्यते यत् सन्ति केचन चिन्तनमननशीलाः लोकाः, ये हि वैज्ञानिकदृष्ट्या कस्यचिद् वस्तुनः सूक्ष्मतरं ज्ञानमधिगन्तुं किं वा तस्य वास्तविकं रूपं विज्ञातुं यतमानाः तिष्ठन्ति। आलङ्कारिकाणामपि तदेषा अलङ्कारविषयिणी विचारविवेचनात्मिका वैज्ञानिकी प्रवृत्तिरेवाऽस्मिन् वर्गीकरणे हेतुरिति अस्मन्मतम्। अस्मिन् वर्गीकरणे प्राथम्येन निर्दिष्टाः शब्दालङ्कारा अपि अनेकेषु भेदोपभेदेषु विभक्ताः सन्ति। तेष्वपि यमकानुप्रासपुनरुक्तवदाभासवक्रोक्तिश्लेषचित्राख्याः षड् भेदाः बहुधा चर्चिताः वर्तन्ते। आचार्याः भरत-भामहोद्भट-भामह-रुद्रटाः क्रमशः पूर्वोक्तानां शब्दालङ्काराणामुद्भावकाः विद्यन्ते। किन्तु भरतमतिरिच्य न केनाप्याचार्येण शब्दालङ्काराय यमकाय प्रथमं स्थानं प्रदीयते। काव्यशास्त्राणामनुशीलनेनैतद् स्पष्टं भवति यद् भामहदण्डिभ्यामनुप्रासाय, भरतवामनाभ्यां यमकाय, उद्भटरुय्यकाभ्यां पुनरुक्तवदाभासाय, रुद्रटमम्मटाभ्यां वक्रोक्तेः, वाग्भटकेशवमिश्राभ्याञ्च चित्रालङ्काराय प्रथमं स्थानं प्रदत्तमस्ति। नहि कोऽपि श्लेषाय प्रथमं स्थानं ददाति। केचन तु शब्दालङ्काराणां चर्चयाऽपि विरताः दृश्यन्ते। अपरे च केचन प्रथमतयाऽर्थालंकारान् विविच्यान्ते शब्दालंकारान् विवेचयन्ति। आचार्याणां साम्प्रदायिकी धारणैवात्र कारणमिति मन्यामहे। शब्दालङ्काराणां भेदोपभेदानां संख्याविषयेऽपि नैकरूपता परिलक्ष्यते। भरतमुनिः एकस्य, भामहोद्भटवामनाः द्वयोः, राजशेखरदण्डिनौ चतुर्णां, रुद्रटः पञ्चानां, मम्मटः सप्तानां रुय्यकः दशानां केचन षण्णामपरे च केचन सप्तानां भेदानामुल्लेखं कुर्वन्ति। भोजराजस्तु स्वकीये सरस्वतीकण्ठाभरणे चतुर्विंशतिं शब्दालङ्कारान् निर्दिशति। एतेषां भेदानामेकत्र क्रमिको विस्तारः संदृश्यते, अपरत्रैकस्य भेदस्यान्यत्र समावेशोऽपि संलक्ष्यते। आचार्यभरतप्रभृति परवर्तिकाले शब्दलङ्काराणामुद्भवस्य, तदुद्भावकानां प्रवृत्तेः, तत्तच्छास्त्रेष्वलङ्काराणां तेषां क्रमव्यवस्थायाः संख्यानाञ्च तेषां भेदोपभेदानां समीक्षात्मकं विवेचनमेवाऽस्मिन् प्रबन्धे विहितमस्ति।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IA & P-18

पारम्परिकसाहित्यशास्त्रानुसारं श्रीमन्तशङ्करदेवस्य काव्येषु रसविचारः

डॉ. अशोककुमारगोस्वामी, गुवाहाटी

खीष्टीयपञ्चदशशतिकायां भारतस्य उत्तरपूर्वप्रान्ते विशेषतस्तत्कालीने असमप्रदेशे नव्यवैष्णवधर्ममतस्य प्रचारको महापुरुषश्रीमन्तशङ्करदेवः महानेव कविरासीदिति स्वीकार्यमस्ति। प्राचीनासमीयाभाषायां विरचितेष्वपि स्वकीयकाव्येषु श्रव्येषु दृश्येषु च महापुरुषेण तेन केवलं पारम्परिकसाहित्यशास्त्रानुसारम् अनुप्रासोपमादयोऽलङ्काराः प्रयुक्ता; अपितु शृङ्गारादयो रसा यथायथमुपस्थापिता इति किमु वक्तव्यम्। निबन्धेऽस्मिन् श्रीमन्तशङ्करदेवस्यं साहित्ये यथासम्भवं सोदाहरणं पारम्परिकरसा विचार्यन्ते। भारतीयनन्दनतात्त्विकविचारे रसस्य सर्वजनस्वीकृततयैव प्राधान्यमिति मनसि निधाय श्रीमन्तशङ्करदेवस्य साहित्यिककर्मसु रसानुसन्धानेऽस्माकं प्रवृत्तिरिति ज्ञेयम्।

❖

IA & P-19

व्यभिचारिभावानां रसत्वम्

डॉ. सत्यनारायण-आचार्यः, पुरी

काव्यरसानुभूतिरेव काव्यशास्त्रस्य प्रमुखप्रयोजनमस्ति। तदुक्तं मम्मटेन—'सद्यः परिनिर्वृत्तये' इति। तत्र काव्यरसानुभूतिप्रक्रियायां विभावादीनां भूमिका गुरुत्वपूर्णा विचार्यते। 'विभावानुभावव्यभिचारिसयोगाद्रसनिष्पत्ति'-रिति भरतमुनिप्रणीतरससूत्राधारेण सहृदयहृदये स्थितः रत्यादिस्थायिभावः शृङ्गारादिसरूपतां प्राप्नोतीति ज्ञायते।

यथा स्थायिभाव रसरूपतां प्राप्नुवन्ति, तथैव व्यभिचारिभावा अपि रसत्वं प्रतिपद्यन्त इति लघुशोधप्रबन्धस्याभिप्रायः।

एवं रसव्यञ्जनायां यद्यपि व्यभिचारिभावानां सहकारिकारणत्वं विद्यते, तथापि तेषां रसव्यञ्जकत्वं न हीयते। एतच्च शोधप्रबन्धेऽस्मिन् विशदीक्रियते।

❖

IA & P-20

साहित्यशास्त्रे रसविमर्शः

श्री गिरजानन्दचौबे, वाराणसी

ध्वनिसिद्धान्तप्रवर्तकाचार्येण काव्यस्यात्मा ध्वनिरित्यङ्गीकृतं तथा च तस्य प्रतिष्ठापनं स्वयुक्तिमूलकतर्कैः विहितम्। निगदितञ्च तेन ध्वनिप्रभेदगणनाप्रसङ्गे, स चासावविवक्षितवाच्यो विवक्षितान्या परवाच्यश्चेति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्विविधः सामान्येन, तत्र विवक्षितान्यपरवाच्यध्वनेः द्वौ भेदौ, असंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यः संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यश्चेति। स असंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यः अष्टविधः रसभाव-रसाभाव.... इत्यादि तत्र प्रथमः रसः।

रससिद्धान्तप्रतिपादकसूत्रे प्रयुक्तशब्दानां विवेचनमिदानीं क्रियते। विभावाः द्विविधाः आलम्बनविभावः उद्दीपनविभावश्च, यान्यालम्ब्य रत्यादिराविर्भवति तानि ललनादिरूपाणि आलम्बनपदाभिधेयानि जनककारणानि, प्रादुर्भूते च तस्मिन् रत्यादौ यानि तस्य पुष्टिरूपोद्दीपनकारणानि चन्द्रोदयादीनि उद्दीपनपदव्यपदेश्यानि परिपोषककारणानि।

वासनारूपतायातिसूक्ष्मरूपेणावस्थितान् रत्यादीन् स्थायिनः विभावयन्ति आस्वादयोग्यतां नयन्तीति विभावाः। रत्यादीन् स्थायिनः अनुभावयन्ति अनुभवविषयीकुर्वन्तीति अनुभावाः ते च कायिकवाचिक-मानसिकभेदेनानेकविधाः कटाक्षभुजाक्षेपप्रभृतयः।

❖

IA & P-21

शान्तरसस्यावस्थितिः

श्रीसन्तोषकुमारपाण्डेयः, राँची

शान्तरसस्यावस्थितिविषये न केवलं प्राचीनविद्वत्सु, अपि तु अर्वाचीनविद्वत्स्वपि मतवैभिन्यं दृश्यते। अस्य मतवैभिन्यस्य मूलकरणं भरतमुनेः 'अष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः' इति कथनमस्ति। भरतमुनेः सरणिमनुसरन्तः केचन विद्वांसः नाट्यग्रन्थेषु शान्तरसस्याभावं स्वीकुर्वन्ति, किन्तु अपरतः केचन स्पष्टरूपेण नाट्येष्वपि शान्तरसं प्रतिपादयन्ति।

स्पष्टतया विवेचनं कुर्मश्चेत् अभाववादिनां विप्रतिपत्तित्रयं प्राप्यते। आद्या तथा नास्त्येव शान्तो रसः यतो हि नाट्याचार्येण भरतेन न तु रसगणनाप्रसङ्गे अस्य उल्लेखः कृतः नापि रसस्यास्य विभावानुभावव्यभिचारिभावानां चर्चा कृता। शान्तरससमर्थकाः आचार्याः विषयेऽस्मिन् तर्कयन्ति यद् यदि नाट्याचार्यः शान्तरसविषये मौनः अस्ति चेद् अस्य रसस्याभावः कथयितुं न शक्यते। यदि शान्तरसे रसनीयतास्ति यद्यस्मिन् आनन्ददायिनी शक्तिरस्ति चेत् रसरूपेणायं नूनं स्वीकर्तव्यः। पुनः भरतमुनिरपि स्वनाट्यशास्त्रे क्वचिच्छमः इत्येवं उल्लेखं कुर्वन् शान्तरसस्य स्थायिभावरूपेण शमस्य निर्देशं करोत्येव। अभाववादिनां द्वितीयः तर्कः अस्ति—अनादिकालप्रवाहजातरागद्वेषयोरुच्छेत्तुमशक्यत्वात् शान्तरसस्य परिपोषमेव भवितुं नार्हति। अतः यदा रागद्वेषयोः पूर्णतया नाशः एव असम्भवः तदा शान्तरसस्य उत्पत्तिरेव कथं स्यात्। मतमिदं विखण्डयन् शान्तरससमर्थकाः आचार्याः तर्कयन्ति—अभाववादिनां तावद्दत्तविकल्पद्वयं भवेत्—(क) सांसारिकमनुष्याणां मनोभ्यः रागद्वेषाणामात्यन्तिकनिवृत्तेः असम्भवः।

(ख) दर्शकेष्वपि रागद्वेषयोः निवृत्तेः असम्भवः।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IA & P-22

भारतीय काव्यों में बौद्धिक रस : एक नयी आवश्यकता

श्री श्यामा सिंह

कविता पद्यात्मक और छन्दोबद्ध रचना है, जिसमें भावनाओं की प्रधानता होती है। कविता का उद्देश्य पाठकों को आनन्द की अनुभूति कराना है। काव्य की विषय-वस्तु प्रमुख रूप से भाव, विचार एवं कल्पना पर आधारित होती है। साहित्यिक दृष्टि से रचनाओं को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है। 1. विचारप्रधान, 2. भावप्रधान, 3. कल्पनाप्रधान।

भारतीय रस सम्बन्धि सिद्धान्तों में भावप्रधान कविताओं को महत्त्व दिया गया है। आचार्य भरतमुनि के सूत्र के अनुसार 'विभावानुभावसञ्चारीभावसंयोगाद्रसनिष्पतिः' अर्थात् उनका यह सिद्धान्त भी भाव की प्रमुखता पर आधारित है और विचारप्रधान कविताओं के लिये कोई सिद्धान्त आचार्यों ने नहीं दिया है। लेकिन आज के आधुनिक युग में ऐसे सिद्धान्त की आवश्यकता महसूस की जा रही है, जो विचार-प्रधान रचनाओं के विवेचन, विश्लेषण एवं मूल्याङ्कन में सहायक सिद्ध हो।

रस सिद्धान्त का विकास तीन चरणों में हुआ है। आचार्य भरतमुनि के द्वारा दिये गये प्रारम्भिक रूप से शुरु हुआ। आचार्य अभिनवगुप्त ने परिवर्तित करते हुये इसे और अधिक विकसित किया। 3. मध्यकालीन भक्ति काल में इसका और अधिक नया स्वरूप विकसित हुआ। प्रारम्भ में समय के प्रचलित काव्यों के आधार पर भरतमुनि ने आठ रस सिद्धान्त की स्थापना की। आचार्य अभिनवगुप्त ने 10वीं 11वीं शताब्दी में 'शान्त रस' नामक एक नये रस की स्थापना की। इस सिद्धान्त के द्वारा उन्होंने दर्शन और काव्य में सामञ्जस्य की स्थापना की। शान्त रस के द्वारा सभी प्रकार के विचारों की अभिव्यञ्जना की जा सकती है। इसमें धार्मिक, दार्शनिक, नैतिक आदि सभी प्रकार के विचारों की अभिव्यञ्जना की जा सकती है। इसलिये इसे और अधिक विकसित रूप में 'बौद्धिक रस' भी कहा जा सकता है।

आचार्य अभिनवगुप्त ने 'शान्त रस' के स्थायी भाव के रूप में 'तत्त्वज्ञान' की प्रतिष्ठा की और रस की परम्परागत परिभाषा के समान एक नयी परिभाषा दी 'भावयन्ति इति रसः' अर्थात् काव्य का भावन ही रस है।

इस समय आधुनिक काल में कवियों ने अपने काव्य की विषय-वस्तु स्वदेश-प्रेम, समाज-सुधार, करुणा, नैराश्य की भावना, दुःख, वेदना इत्यादि चुना है, जिसमें स्थूल जगत् की कठोर वास्तविकता प्रकट होती है। सीधी, सादी और अनलंकृत भाषा में अपनी बात कह देना इन कविताओं की विशेषता है। ये कवितायें क्रमशः विकसित होती रही हैं और इनमें समय के अनुसार परिवर्तन भी दिखाई पड़ता है। चाहे वे भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावादी युग या प्रगतिवादी युग की कवितायें हों। अधिकांश कविताओं में प्राचीन रुढ़ियों और मान्यताओं का विरोध किया गया है और मानवतावादी प्रवृत्ति को प्रोत्साहन दिया गया है। शोषक वर्ग के प्रति घृणा का भाव, शोषितों के प्रति सहानुभूति विद्रोह एवं क्रान्ति की भावना है, समाज का यथार्थवादी चित्रण है। वे किसी विशेषवाद से न बँधकर स्वतन्त्र रूप से लिखी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गई कवितायें हैं। इन कविताओं के सैद्धान्तिक विवेचन हैं। इन कविताओं के सैद्धान्तिक विवेचन में पहले के जितने भी रस सिद्धान्त हैं, वे असफल हैं। ऐसी स्थिति में ऐसे काव्यों की वैचारिकता का सैद्धान्तिक विवेचन करने के लिये एक नये रस-सिद्धान्त की आवश्यकता है, जिसमें इन तथ्यों का बोध होता है। अतः ऐसी परिस्थिति में मेरे विचार में बौद्धिक रस की स्थापना की आवश्यकता है। इसके द्वारा इन आधुनिक काव्यों की सैद्धान्तिक विवेचना की जा सकती है।

❖

IA & P-23

रस-भाव का समीक्षात्मक अध्ययन

श्री वसन्त नाथ झा, बिहार

'काव्यस्यात्मा रसः' संस्कृत साहित्य जगत् में रस श्रेय माना गया है। शब्दार्थ रूप काव्य शरीर रस को मानते हैं, विद्वान् लोग रस से ब्रह्म पद का बोध करते हैं। रस का बोध अनेक प्रकार से होता है, यथा— रसास्वादस्यापि मात्रा निर्वचनेन समर्थाः सामाजिकाः।

रस का ज्ञान रसास्वादन से तथा तर्क ज्ञान से भी होता है। सर्वप्रथम भरत नाट्यशास्त्र में रस के विषय में लिखा है—'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पतिः'।

'विभावानुभावव्यभिचारिभावानां परिभाषा' आचार्य मम्मट ने अपने काव्यप्रकाश ग्रन्थ में वर्णन किया है।

आचार्य विश्वनाथ पण्डितराज जगन्नाथ आदि अपने-अपने काव्य ग्रन्थ में रस की व्याख्या अपने ढंग से किये हैं। रसों का विभाजन अनेक प्रकार से किया गया है, यथा—शृङ्गार रस, वीर रस, रौद्र रस, करुण रस इत्यादि रसों का वर्णन किया गया है।

आयुर्वेद शास्त्र में भी षड् रसों का वर्णन किया गया है यथा—मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त और कषाय। संसार के सभी वस्तुओं का इसी षंड् रसों में समावेश किया गया है। आयुर्वेदिक चिकित्सा इसी षड् रस के आधार पर किया जाता है। इसलिए साहित्य में रस को ही ब्रह्म मानते हैं।

❖

IA & P-24

काव्यशास्त्रीय आचार्यों के सन्दर्भ में 'भक्ति' विषयक अवधारणा

प्रो. गिरा.टी. अरालीवाला, अहमदाबाद

मानव हृदय भावों का कुञ्ज है, जिसमें अनेक भाव लता-वितानों के रूप में विद्यमान रहते हैं। मानव प्रेम जो प्रेमिका से अलग अन्यत्र समवयस्कों, बड़ों, छोटों, पूज्यों, गुरुजनों तथा ब्रह्मादि में दिखाई पड़ता है। विद्वज्जन उसे अलग-अलग संज्ञा से विभूषित करते हैं, जैसे—वात्सल्य, सख्य, स्नेह, मैत्री,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रद्धा और भक्ति। श्रद्धालु अपने श्रद्धेय पर किसी प्रकार का अधिकार नहीं चाहता। श्रद्धा एवं प्रेम के योग का नाम ही भक्ति है। श्रद्धा की अपेक्षा, भक्ति रसदशा के अधिक समीप पहुँचती है। श्रद्धा भाव है, भक्ति रस।

संस्कृत काव्यशास्त्रीय आचार्य भक्ति, जो कि मन की भगवद् विषयक एक सहज वृत्ति है, उसके रसत्व को स्वीकार नहीं करते। कुछ पूर्व के आचार्य या तो उसे भाव मात्र की संज्ञा देते हैं अथवा उसे रसवद् अलंकार या मात्र अलंकार के रूप में चित्रित करते हैं, कोई उसे भरत द्वारा वर्णित आठ रसों के अन्तर्गत ही परम्परानुमोदन करते हुए अन्तर्भूत करना चाहते हैं। आचार्य भरत ने न तो भक्ति के स्वतन्त्र रसत्व को स्वीकार किया, न उसके भावरूप को और न ही उसका सञ्चारीभाव में या अन्य समकक्ष भाव में परिगणना किया। आचार्य दण्डी भक्ति रस मानते हुए भी स्पष्ट शब्दों में उसे रस न कह सके। आचार्य भामह प्रेयस् अलंकार के लक्षण एवं उदाहरण आध्यात्मिकता से संवलित शब्दों द्वारा ही देते हैं। उद्भट 'प्रेयस्' को रसवद् अलंकार के रूप में व्याख्यायित करते हैं, शान्तरस का सर्वप्रथम समर्थन ध्वन्यालोक में आनन्दवर्द्धन ने किया है। इन्होंने मोक्ष को शान्ति का अन्तिम लक्ष्य मानकर उसे भक्ति के प्रयोजन के समीप स्थित किया है। पं. जगन्नाथ, अभिनवगुप्त, भोज, प्रेमचन्द्राचार्य सभी ने भक्ति को शान्तरस का अङ्ग माना है। धनञ्जय सीधे काव्यात्मक भावों में ही उसे परिगणित करते हैं।

इस प्रकार भक्ति, साहित्य में मुख्य रूप से आती है और इसके समर्थक इसकी रसात्मिकी अनुभूति को अवश्य स्वीकार करते हैं। भक्ति रस की मान्यता के सन्दर्भ में हुई सभी आपत्तियाँ भी तर्कहीन एवं हास्यास्पद प्रतीत होती हैं। भक्तिरस की व्यापकता का यही प्रमाण है कि इसमें सभी रस अन्तर्भूत हो जाते हैं। भक्ति रस में अनेकानेक भावनाओं का मिश्रण उसकी अलौकिकता एवं भूषण ही हैं। निःसन्देह भक्तिरस अपना पृथक् अस्तित्व रखता है। दार्शनिक एवं साहित्यिक मनीषि भी ब्रह्मानन्द की आनन्दानुभूति भक्तिपरक साहित्य से ही करते हैं। आचार्य रूपगोस्वामी एवं अन्य आचार्यों ने तो इसे रसराज शृङ्गार से भी कोटिगुना कहा है।

❖

IA & P-25

ध्वन्यालोक में धार्मिक और दार्शनिक चिन्तन

श्री राघव कुमार झा, वाराणसी

साहित्यशास्त्र के आचार्यों में आनन्दवर्धन का नाम अग्रगण्य है। उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ ध्वन्यालोक के गवेषणात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि वे भारतीय धर्म एवं दर्शन से पूर्णरूपेण प्रभावित थे। आनन्दवर्धन से पूर्व बौद्ध, वैष्णव, शैव, शाक्त आदि धर्मों के साथ-साथ बौद्ध, जैन, न्याय, मीमांसा एवं वेदान्तादि दर्शनों का भी प्रभाव था, जैसा कि उनके ध्वन्यालोक में परिलक्षित होता है।

वे ध्वन्यालोक के प्रारम्भ में विष्णु के नृसिंह 'स्वेच्छाकेसरिणः स्वच्छ...' रूप का स्मरण करते हैं। यद्यपि वे शिव, सूर्य, रुक्मिणी, राधा आदि देवी देवताओं की ध्वन्यालोक में विशद चर्चा करते हैं,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु इन सबों की अपेक्षा उनमें विष्णु की भक्ति अत्यधिक है। वे समस्त देवताओं में भगवान् विष्णु को सर्वश्रेष्ठ देवता के रूप में स्वीकार करते हैं। इसके लिए 'समुद्रमन्थन के समय समुद्र के द्वारा लक्ष्मी का विष्णु को समर्पण' का उद्धरण देते हैं। उन्होंने विष्णु के मधुरिपु, नृसिंह, जनार्दन, कृष्ण, श्रीराम, वासुदेव आदि अनेक रूपों की प्रमुख रूप से चर्चा की है। आनन्दवर्धन विष्णु और शिव में 'येन ध्वस्तमनोभवेन बलिजित्काय..... त्वां सर्वदोमाधवः' इस श्लोक के द्वारा समन्वय की भावना को भी स्वीकार करते हैं। फिर भी धर्मपक्ष की दृष्टि से ध्वन्यालोक के अनेकों उद्धरणों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि ध्वन्यालोककार वैष्णवधर्म के अनुयायी थे।

आनन्दवर्धन ध्वन्यालोक में बौद्धदर्शन के अनेकानेक पक्षों को प्रस्तुत कर दार्शनिकों का खण्डन करते हैं एवं स्वपक्ष का निर्धारण करते हैं। उनके अनुसार बौद्धदर्शन क्षणभंगुरवाद को मानकर किसी भी वस्तु को अलक्षणीय अस्वीकार करता है। ध्वनिकार आस्तिक दर्शनों में अद्वैतवाद की अपेक्षा द्वैतवाद का अधिक उल्लेख करते हैं, वे मूर्तिपूजा को प्रधानता देते हैं एवं ईश्वर और जीव की पृथकता स्वीकार करते हैं।

न्यायदर्शन के विविध पारिभाषिक शब्दों से वे प्रत्यक्ष एवं अनुमान प्रमाण को रसध्वनि के स्पष्टीकरण हेतु पूर्वपक्ष के रूप में प्रस्तुत करते हैं। शब्दशक्तियों में अभिधा एवं लक्षणा को नैयायिक व मीमांसक, दोनों ही मानते हैं। वे वेदों की अपौरुषेय के आधार पर वाक्य के पौरुषेय को सिद्ध करते हैं। ध्वन्यालोक में सांख्य-वैशेषिक दर्शनों के पारिभाषिक शब्द दृष्टिगोचर होते हैं। आनन्दवर्धन महर्षि जैमिनि के अनुसार शब्दार्थ के नित्यत्व को स्वीकार करते हैं।

निष्कर्षतः ध्वन्यालोक के गवेषणात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि आनन्दवर्धन वैष्णव धर्मावलम्बी दार्शनिक आचार्य थे। प्रस्तुत शोधलेख में उपर्युक्त इन्हीं तथ्यों का प्रामाणिक गवेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

❖

IA & P-26

क्षेमेन्द्र के काव्यों में प्रतिपादित सामाजिक व्यङ्ग्य

डॉ. तरुण कुमार शर्मा, इलाहाबाद

संस्कृत साहित्य के जाज्वल्यमान नक्षत्र, लोककल्याणार्थ, बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय तथा परार्थसमर्पणाय की संस्कृति के प्रबल प्रतिष्ठापक तथा अपनी उपदेशप्रधान एवं व्यङ्ग्यपरक शैली से जन-जन को प्रभावित करने वाले, ग्यारहवीं शताब्दीं में काश्मीर में जन्मे कविवर क्षेमेन्द्र एक ऐसे बहु आयामी कर्तृत्व के कवि हैं, जिन्होंने अपनी विविध विधामयी शैली के द्वारा संस्कृत-साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों को आलोकित किया है। उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से तात्कालिक समाज के दूषित पक्षों एवं समाज का शोषण करने वाले विभिन्न वर्गों पर तीखा व्यङ्ग्यमय प्रहार किया है, जो आधुनिक समाज को भी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभावित करता है। व्यङ्ग्य की दृष्टि से यदि हम क्षेमेन्द्र का मूल्याङ्कन करें, तो उनके काव्य में अन्तर्निहित व्यङ्ग्याकार सबसे पहले और अधिक तीव्रता के साथ उभर कर सामने आता है। क्षेमेन्द्र के काव्यों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वह एक ऐसे चौराहे पर खड़े हैं, जहाँ विभिन्न वर्गों की राहें आकर मिलती हैं। वे एक युग-द्रष्टा के रूप में सबको देखते हैं और उन पर अपनी प्रतिक्रिया देते हैं तथा समाज के दूषित पक्षों पर अपनी व्यङ्ग्यमयी शैली के द्वारा तीखा प्रहार करते हैं। वह अपने साहित्य को समाज के शस्त्र के रूप में प्रयुक्त करते हैं। उनका व्यङ्ग्य रूपी बाण जिधर भी घूम जाता है, उधर अति कठिन लक्ष्यों का भेदन करता हुआ सा प्रतीत होता है। उनके व्यङ्ग्य प्रहारात्मक होते हुये भी समाज सुधार की भावना से परिपूर्ण हैं। वे अपने युग के भ्रष्ट समाज से उतने असन्तुष्ट दिखलाई पड़ते हैं कि उन्होंने समाज को सुधारने के लिए दुष्टता के स्थान पर शिष्टता की तथा कुविचारों के स्थान पर सद्विचारों की स्थापना के निमित्त लोगों पर प्रहार हेतु व्यङ्ग्यप्रधान शैली का प्रयोग किया है।

यद्यपि क्षेमेन्द्र ने कायस्थ वर्ग को ही विशेषतया अपने व्यङ्ग्य का लक्ष्य बनाया है, तथापि उन्होंने दुर्जन, वेश्या, वैद्य, छात्र, कदर्य, ज्योतिषी, कुट्टनी तथा संन्यासी इत्यादि पर तीखे व्यङ्ग्य किये हैं। क्षेमेन्द्र द्वारा किये गये व्यङ्ग्यों से ऐसा प्रतीत होता है कि तात्कालिक समाज में दूषित पक्ष दबने की अपेक्षा उग्र रूप धारण किया हुआ था। वे अपने काव्यों में अपने युग के भ्रष्ट समाज पर गृध्र-दृष्टि से अवलोकन करते हुए दिखलाई पड़ते हैं। व्यङ्ग्य के माध्यम से उन्होंने दूषित पक्षों का पर्दाफाश करते हुए उनके नग्न चित्र सबके सामने उपस्थित किये हैं, जो उनका तात्कालिक समाज को सुधारने का सफल प्रयास ही है। उनके सामाजिक व्यङ्ग्यों में यर्थाथता, स्पष्टता एवं मौलिकता पूर्णतः विद्यमान है। परिणामतः व्यङ्ग्य की दृष्टि से इनके काव्य सहृदय पाठक को बरवस आकृष्ट करते हैं। बहुमुखी कर्तृत्वशक्ति से सम्पन्न क्षेमेन्द्र के सामाजिक व्यङ्ग्य संस्कृत-साहित्य में सदा स्मरणीय, प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय रहेंगे।

❖

IA & P-27

करुण रस एक शास्त्रीय विवेचन

श्रीमती उषा टोप्पो, राँची

संस्कृत-काव्यों में विविध रसों के अन्तर्गत करुण रस को विशेष मान्यता दी गई है; क्योंकि आदि कवि वाल्मीकि ने ही अपने उपजीव्य-काव्य को करुण रस प्रधान बनाया था। करुण रस का प्रभाव अन्य रसों की अपेक्षा अधिक होता है; क्योंकि इसमें सहृदय को द्रवित करने की अधिक क्षमता है। वाल्मीकि से आरम्भ होकर जो करुण रस की धारा प्रवाहित हुई है, वह सीताराम विषयक साहित्यों में भी नहीं, अपितु सामान्य पात्रों से सम्बद्ध कालों में भी विकसित हुई है।

आदिकवि वाल्मीकि के बाद भवभूति ही हैं, जिन्होंने संस्कृत साहित्य में करुण रस की महत्ता प्रतिपादित की है। इसके पूर्व भी भास ने करुण रस का वर्णन अपने नाटकों में किया है; परन्तु भवभूति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने ही सर्वप्रथम करुण रस को अंगी रस के रूप में स्वीकार किया है, इन्होंने रसों के मूल में मुख्य भाव करुण मानकर करुण को ही आदि और मूल रस कहा है।

करुण रस में शोक स्थायी भाव रहता है। अतः किसी प्रियजन की मृत्यु से जो शोक उत्पन्न होता है, वही इस रस में स्थायी भाव माना जाता है। फलतः मृत्यु से आनन्द की उत्पत्ति व्यावहारिक दृष्टि से अनुचित तथा विरुद्ध है; इसलिए इसकी मीमांसा हमारे आचार्यों ने बड़ी छान-बीन के साथ की है। उनका कथन है कि शोक में दुःखाभिव्यञ्जना की शक्ति तभी तक है, जब तक वह लौकिक विषयों के साथ सम्बद्ध रहता है। काल तथा नाटक में प्रदर्शित होते ही शोक अलौकिक वस्तु की विभावना करने लगता है और तब उससे आनन्द की प्राप्ति होती है, दुःख का उदय नहीं होता।

❖

IA & P-28

जैनाचार्य विजयवर्णी कृत शृङ्गारार्णवचन्द्रिका

डॉ. फराह जफर, महोबा

शृङ्गारार्णवचन्द्रिका काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ है। इसके रचयिता मुनीन्द्र विजयकीर्ति के शिष्य विजयवर्णी हैं, इस ग्रन्थ की रचना इन्होंने कर्नाटक प्रदेश के बंगवादि के कामिराज/कामिराय नामक नरेश की प्रार्थना पर की थी। विजयवर्णी ने प्रशस्ति में कामिराज का वंशानुक्रम भी दिया है। पण्डित भुजबल शास्त्री तथा नेमिचन्द्र शास्त्री के अनुसार विजयवर्णी द्वारा दिया गया कामिराज का वंशानुक्रम ऐतिहासिक साक्ष्यों से मेल खाता है।

शृङ्गारार्णवचन्द्रिका ग्रन्थ में दस परिच्छेद हैं। इस ग्रन्थ की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें दिए गए समस्त उदाहरण स्वयं विजयवर्णी द्वारा रचित हैं। रचना शैली के आधार पर यह ग्रन्थ विद्याधर की एकावली, विद्यानाथ के प्रतापरुद्रयशोभूषण इत्यादि ग्रन्थों से साम्य रखता है। यह ग्रन्थ मुख्यतः काव्यप्रकाश, काव्यमीमांसा, अभिनवभारती, अलङ्कारसंग्रह काव्यादर्श, चन्द्रालोक, सरस्वतीकण्ठाभरण इत्यादि ग्रन्थों से प्रभावित है। ग्रन्थ का आरम्भ भगवान् जिन तथा सरस्वती की वन्दना से हुआ है। यह ग्रन्थ उत्तम कोटि का काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ होने के साथ-साथ अपना ऐतिहासिक महत्त्व भी रखता है। जिसमें पूर्ण शास्त्रीय परम्पराओं के साथ मौलिकता का भी संगम है। इस ग्रन्थ में शोध के विभिन्न आयाम दृष्टिगोचर होते हैं।

❖

IA & P-29

संस्कृत साहित्य में काव्यशास्त्रीय सन्दर्भ

डॉ. (श्रीमती) प्रीति सिन्हा, लखनऊ

काव्य लोकोत्तरवर्णना निपुण कवि का सहज उद्‌गार है। इसमें उल्लिखित प्रत्येक विषय कवि की प्रतिभा, निपुणता तथा अभ्यास का परिचायक ही नहीं, अपितु उसकी मौलिकता का परिलक्षक भी होता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, जहाँ वह अपने अनेक विचारों को कभी उपमान के माध्यम से, कभी पात्रों के कथोपकथन के माध्यम से, तो कभी प्ररोचना आदि के माध्यम से प्रकाशित करता है। इन्हीं माध्यमों के द्वारा कभी वह सामाजिक क्रान्ति का सन्देश दे डालता है, कभी सांस्कृतिक परिवर्तन को उजागर करता है, तो कभी अनेक शास्त्रीय विषयों पर मौलिक विचारों की ओर सङ्केत करता है।

काव्य के सैद्धान्तिक पक्ष का निरूपण काव्यशास्त्रीय लक्षणग्रन्थों में तो विस्तार से 2300 वर्षों की लम्बी परम्परा में हुआ ही है, इसके अतिरिक्त संस्कृत कवियों के लक्ष्यग्रन्थों में भी प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से यत्र-तत्र, काव्य-लक्षण, रस, अलङ्कार, छन्द, गुण, रीति आदि काव्यशास्त्रीय विषय प्राप्त होते हैं, जिनमें कवियों के मौलिक विचार तथा उनके सम्प्रदाय का स्पष्ट सङ्केत मिलता है।

प्रस्तुत शोधपत्र में संस्कृत महाकवियों की विभिन्न रचनाओं में उपलब्ध उन काव्यशास्त्रीय अंशों को चुना तथा समेटा गया है, जो काव्य-लक्षण, रस, अलङ्कार, छन्द, गुण, रीति, आदि तत्त्वों से सम्बद्ध उनकी विचारधारा को प्रतिबिम्बित करते हैं। काव्य-विधा की दृष्टि से इन कवियों के काव्यशास्त्रीय योगदान को तीन भागों में विभाजित किया गया है। प्रथम है—पद्यकाव्यों में उपलब्ध काव्यशास्त्रीय तत्त्व। इसके अन्तर्गत कालिदासविरचित रघुवंश तथा कुमारसम्भव, माघविरचित शिशुपालवध, भट्टलक्ष्मीधरविरचित चक्रपाणिविचय, बिल्हणविरचित विक्रमाङ्कदेवचरितम्, श्रीहर्षविरचित नैषध, जैनाचार्य ज्ञानसागरविरचित वीरोदय नामक महाकाव्यों में उपलब्ध काव्य-लक्षण, काव्य हेतु आदि विषयों से सम्बद्ध उद्धरणों को प्रस्तुत किया जायेगा।

शोधपत्र का दूसरा भाग गद्यकाव्य से सम्बद्ध है। इसमें सुबन्धु-विरचित वासवदत्ता, बाणविरचित हर्षचरित नामक आख्यायिका तथा कादम्बरी नामक कथा से उन अंशों को प्रस्तुत किया जायेगा, जहाँ उनकी रचनाओं में काव्यशास्त्र सम्बन्धी विषयों का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रतिपादन हुआ है।

शोधपत्र के मिश्रकाव्य नामक तृतीय भाग में विशाखदत्तविरचित मुद्राराक्षस, भवभूतिविरचित उत्तररामचरित तथा जयदेवविरचित प्रसन्नराघव नामक नाटकों में उल्लिखित काव्यशास्त्रीय तत्त्वों को प्रस्तुत किया गया है, जो इन महान् नाटककारों के तत्तद् काव्यशास्त्रीय विषयों से सम्बद्ध विचारधारा को उद्घाटित करते हैं। इतना ही नहीं, उपरूपकों में भी ऐसे प्रयोग दृष्टिगत होते हैं। इसके अन्तर्गत माधवभट्टविरचित सुभद्राहरण नामक श्रीगदित से भी विवेच्य विषय को प्रस्तुत किया जायेगा।

प्रस्तुत शोधपत्र के अन्तिम चरण में उपसंहारात्मक रूप से संस्कृतसाहित्यपरम्परा में महाकवि कालिदास के काव्यों से लेकर आधुनिक काव्यों तक उल्लिखित तथा प्रतिबिम्बित रस, ध्वनि, अलङ्कार, गुण आदि काव्यशास्त्रीय तत्त्वों का उद्धरण देते हुए उनका तुलनात्मक और समीक्षात्मक मूल्याङ्कन किया जायेगा। इसी शृङ्खला में तत्तद् कविगतसम्प्रदाय तथा उनकी मौलिकताओं पर भी विचार किया जायेगा।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IA & P-30

राजानक रुय्यककृत सहृदयलीला : एक समीक्षण

डॉ. ताराकान्त शुक्ल, हजारीबाग

संस्कृत काव्यशास्त्र की उत्कृष्ट एवं बृहत् परम्परा में ऐसे अनेक काव्यशास्त्री हुए हैं, जिन्होंने स्थापित लीक से हटकर कुछ नूतन एवं विचारणीय सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। ऐसे शास्त्रकारों में राजशेखर सम्भवतः अग्रगण्य हैं; किन्तु राजानक रुय्यक भी एक उल्लेख्य काव्यशास्त्री प्रतीत होते हैं। रुय्यक ने यद्यपि अपने 'अलङ्कारसर्वस्व' में भी वैज्ञानिक ढंग से कुछ भिन्न रीति अलङ्कारों का विवेचन किया है; किन्तु उनकी कृति 'सहृदयलीला' स्थापित मानदण्डों में स्पष्टतया भिन्न रीति से कुछ अलग ही प्रकार से अपने अभिमत का प्रतिस्थापन करती है। इस लघुकाय ग्रन्थ में केवल एक ही विषय का विवरण प्राप्त होता है, वह है—युवतियों की देह में उत्पन्न होने वाली उत्कर्षता का। राजानक रुय्यक ने गुण, अलङ्कार, जीवित और परिकर नामक चार विषयों के माध्यम से युवतियों के शरीरस्थ उत्कर्ष का उल्लेख किया है। इनके उक्त चारों विषय स्थापित मानदण्ड से भिन्न प्रकार के हैं। उदाहरणार्थ इनके 'गुण' काव्यगुण से पूर्णतः भिन्न प्रकार के हैं और 'अलङ्कार' भी काव्यालङ्कारों अथवा नायिकागत अलङ्कारों से भिन्न कोटि के हैं। 'जीवित' और 'परिकर' नामक विषय में रुय्यक की अपनी कल्पनाएँ हैं।

प्रस्तुत शोधपत्र में सहृदयलीला में प्रतिपादित विषयों का समीक्षात्मक एवं यथासम्भव तुलनात्मक विवेचन किया गया है।

❖

IA & P-31

भरत तथा स्तानिस्लाव्स्की का अभिनय सिद्धान्त : एक तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. हर्ष कुमार महता, पंजाब

नाटक पश्चिम के रङ्गमञ्च पर खेला जाए अथवा एशिया के बृहद् देश भारत के रङ्गमञ्च पर खेला जाए, प्रत्येक नाट्य सशक्त नाट्य-प्रस्तुति लिए सिद्धान्त परिपुष्ट अभिनय व्यापार दर्शकों के लिए आनन्द का माध्यम होता है। इस आनन्द को कला का रस कहा जाये अथवा 'कैथारसिस' विरेचन जैसे शब्दों से अभिहित किया जाए, अभिनय के व्यवस्थित सिद्धान्तों की अपेक्षा रखता है।

वैज्ञानिक साधनों ने भौगोलिक सीमाओं को संकुचित कर नाट्य प्रस्तुतियों में भी हर स्तर पर साझेदारी बना ली है। ऐसी स्थिति में नाट्यकला जैसे सशक्त, कलात्मक दृष्टियों से प्रतिपादित शास्त्रों में तुलनात्मक अध्ययन विशेष महत्त्व का विषय बन जाता है। विशेष कर उस स्थिति में जबकि भारतीय नाट्य प्रस्तुतियाँ पाश्चात्य आधारों को लेकर अभिनीत हो रही हों और भारतीय आधारों का मिश्रण करने के लिए विभिन्न प्रदेशों से विद्वान् और प्रयोक्ता आवाज उठा रहे हों।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस शोध-पत्र में भारतीय नाट्याचार्य भरत तथा प्रमुख पाश्चात्त्य शास्त्रकार स्तानिस्लाव्स्की के अभिनय सिद्धान्तों में मूलभूत मान्यताओं का सर्वाङ्गीण अध्ययन द्रष्टव्य होगा कि स्थानीय परम्पराओं के होते हुए इन दोनों का सामञ्जस्य किस प्रकार ग्राह्य एवम् अपेक्षित है।

❖

IA & P-32

सौन्दर्य चेतना कवि अज्ञेय के सन्दर्भ में

डॉ. कौशल किशोर, बलिया

अज्ञेय जी के कथन के अनुसार सुन्दर क्या है? यह बता सकने का अर्थ यह है कि हम कुछ ऐसे गुणों को पृथक् करते हैं जिनके कारण सुन्दर होता है। अतः इसमें विशेषतः यह विशेषता तो अनुभव की है और बुद्धि अपने स्वरूप में निश्चयात्मिका रहने से उसकी पहचान कराती है, तो अनुभव द्वारा ही कला मूल्य प्राप्त होता हुआ भी, उसके प्रतिमान की भागी है बुद्धि। अतः सौन्दर्य का आस्वाद बुद्धि का व्यापार है।

अनुभव कोई स्थिर जड़ पिण्ड नहीं है, वह निरन्तर विकासशील है। अज्ञेय का मन्तव्य है कि काव्य में सौन्दर्य मूल्य के साथ-साथ शिवत्व या नैतिकता के मूल्यों की चर्चा होती है।

अज्ञेय ने सौन्दर्य के बारे में विस्तृत रूप से विचार किया है। वे विवेक सम्मत सौन्दर्य की चर्चा करते हैं। वे कहते हैं कि सौन्दर्य वह है, जो सुन्दर में रहता है, सुन्दर वह है, जिसके प्रतिमान अनुभव के सागर को विवेक की मथानी से मथ कर प्राप्त किए जाते हैं, जिसके प्रतिमान होते हैं लयात्मकता, वांकपन, स्थिरता, सन्तुलन, परिचित, नव्यता आदि। अतः सौन्दर्य वह है, जो इन्द्रियगोचर अनुभव से मिलने वाले सुख से अधिक गौरव प्रदान करता है।

अज्ञेय ने सौन्दर्य और उसकी प्राप्ति-प्रक्रिया प्रगति पर ही विचार नहीं व्यक्त किया, अपितु आलोचना के पथ से भी अपने मन्तव्य व्यक्त किए हैं। उनका कहना है कि आलोचना काव्य में जिन मूल्यों की खोज करती है, वे मूल्य दो प्रकार के होते हैं—एक काव्य मूल्य, दूसरा सामाजिक मूल्य। काव्य मूल्य सौन्दर्य है और सामाजिक मूल्य शिवत्व। वास्तविकता यह है कि अधकचरी काव्य प्रक्रिया में सौन्दर्यबोध और शिवत्व बोध साथ-साथ नहीं चलते; परन्तु वास्तव में उच्चकोटि के काव्य में नैतिक-बोध और सौन्दर्यबोध कम से कम साथ-साथ चलते हैं।

निष्कर्ष यह है कि बुद्धि एवं काव्य मूल्य, जीवन मूल्य किंवा सौन्दर्य मूल्य तो मानवीय मूल्य है, जो विकसनशील हैं।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IA & P-33

'कालिदास के काव्य का शृङ्गार : चौसठ कला परिपूर्ण मेघदूत'

डॉ. (श्रीमती) वीना विश्नोई शर्मा, हरिद्वार

महाकवि कालिदास की कविता देववाणी का शृङ्गार है। माधुर्य का निवेश, प्रसाद की स्निग्धता, पदों की सरस शय्या, अर्थ का सौष्ठव, अलङ्कारों का मञ्जुल प्रयोग, कमनीय काव्य के समस्त लक्षण कालिदास की कविता में अपना अस्तित्व धारण किये हुए हैं।

कालिदास के काव्य में हृदय पक्ष का प्राधान्य है। आनन्दवर्धन तथा जर्मन कवि गेटे ने एक स्वर से कालिदास के भावों की उदात्तता तथा महनीयता की प्रशंसा की है। रसमयी पद्धति तथा सुकुमार मार्ग के कवि ने जहाँ मानवीय भावों की उदात्त अभिव्यक्ति की है, वहीं शृङ्गार के वियोग व संयोग पक्ष का भी सुन्दर सामञ्जस्य प्रस्तुत किया है।

वात्स्यायन द्वारा वर्णित कामशास्त्र की अंगभूत चौंसठ कलाओं का सुन्दर प्रदर्शन कालिदास के ग्रन्थों में पर्याप्त मिलता है। इनके सारे ग्रन्थ क्या महाकाव्य, क्या गीतिकाव्य, क्या नाटक सभी कला की आलोचनात्मक किसी भी कसौटी पर कसे जाने पर खरे उतरते हैं। कालिदास का मेघदूत नामक दूतकाव्य वियोग शृङ्गार व कलाओं की अद्भुत काव्यमाला है। इसमें विरही यक्ष आषाढ मास में पहाड़ की चोटी पर उमड़े हुए मेघ को देखकर व्याकुल हो उठता है तथा विरही कामाभिभूत यक्ष सजीव व निर्जीव का भी भेद न करते हुए मेघ को दूत बनाकर अलकापुरी में स्थित अपनी पत्नी को सन्देश भेजता है।

मेघदूत में कामशास्त्र की अंगभूत चौंसठ कलाओं में से गन्धयुक्ति, दशवसनाङ्गराग, तण्डुलकुसुमबलिविकार, वाद्य, गीत, नृत्य, भूषण, योजन, वीणाडमरूकवाद्य, चित्रकारी, वृक्षायुर्वेद, शुक सारिकाप्रलाप, चारणमातृका, मानसी काव्य क्रिया आदि अन्य प्रमुख कलाओं का सुन्दर प्रदर्शन मिलता है। कालिदास का सन्देशकाव्य मेघदूत कामशास्त्र की अंगभूत कलाओं का सम्पूर्ण दिग्दर्शन है, उन्होंने कात्यायन के कामसूत्र की कलाओं का समावेश कर अपने शृङ्गार प्रधान काव्य का शृङ्गार किया है, जो काव्यजगत् में कलापरिपूर्ण कवि हृदय का ही शृङ्गार है।

❖

IA & P-34

देहवादी आचार्यों की दृष्टि में सौन्दर्य-तत्त्व एवं कविकर्म

श्री राजबली

काव्य के आरम्भिक आलोचकों ने सौन्दर्ययुक्त शब्दार्थों के योग को ही काव्य माना है। सौन्दर्यहीन शब्दार्थ भाषा के घटक हो सकते हैं, पर काव्य के नहीं। भामह से वामन तक के आचार्यों ने अलङ्कृत शब्दार्थ को ही काव्य का घटक स्वीकार किया है, उससे भिन्न किसी तत्त्व को नहीं। इसलिये वे देहवादी आचार्य कहे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाते हैं। शब्दार्थ में यह सौन्दर्य अलङ्कारों के प्रयोग से उत्पन्न होता है। किन्तु यहाँ प्रयुक्त विशेषण अलङ्कार का अर्थ क्या है—इस सम्बन्ध में इनमें परस्पर मान्यता है। आरम्भ में स्थूल रूप से गृहीत अलङ्कार शब्द का अर्थ क्रमशः सूक्ष्म और विस्तृत होता गया, जिसने परवर्ती चिन्तन की पीठिका तैय्यार की।

इसी प्रकार कविकर्म भी इन आचार्यों की दृष्टि में क्रमशः विस्तृत अर्थ वाला बनता गया है। प्रस्तुत लेख इन दोनों तत्त्वों का पर्यालोचन प्रस्तुत करता है।

❖

IA & P-35

'मुख्यार्थहतिर्दोषः' पर काव्यप्रदीपकार की दृष्टि

डॉ. शालिनी मिश्रा, लखनऊ

मम्मट के टीकाकारों में प्रदीपकार ने ही मम्मटकृत दोषलक्षण की स्पष्ट तथा वैज्ञानिक व्याख्या की है। आचार्य मम्मट ने अपने दोष लक्षण में 'मुख्यार्थहति' अर्थात् मुख्यार्थ का अपकर्ष जिससे होता है, उनको दोष कहा है। श्री गोविन्द ठक्कुर ने मम्मट की इस कारिका की विस्तृत व्याख्या की है।

मुख्यार्थ को स्पष्ट करते हुए प्रदीपकार बताते हैं कि मुख्यार्थ से तात्पर्य केवल रस से न होकर वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ तथा व्यंग्यार्थ से भी लेना चाहिये; क्योंकि ऐसा न मानने पर नीरस काव्यों में उचित है। इसके पश्चात् प्रदीपकार मम्मट के हति शब्द के अर्थ विनाश तथा अपकर्ष को अस्वीकार करते हैं। उनके अनुसार हति शब्द का तात्पर्य है—अपकर्ष, जिसका लक्षण है—'उद्देश्यप्रतीतिविघात'।

इस प्रकार 'उद्देश्यप्रतीतिविघात' सभी में अविशिष्ट तत्त्व हैं। प्रदीपकार ने इसी को स्पष्ट किया है कि कहीं तो रस की अप्रतीति, कहीं रस के प्रतीयमान होने पर भी उसका अपकर्ष होता है, कहीं विलम्ब से रस की प्रतीति होती है।

इस प्रकार प्रदीपकार ने मम्मट के हति शब्द के अभिप्राय को स्पष्ट करते हुए जो दोष लक्षण दिया—'उद्देश्यप्रतीतिविघात' वह मम्मट से अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

❖

IA & P-36

पूर्वराग शृङ्गार औचित्य एवं उपादेयता

डॉ. ए.के. दीक्षित, उन्नाव

काव्य मानवजीवन का विशेष अङ्ग है। काव्य में जीवन की सर्वाङ्गीण घटनाओं का निरूपण होता है। एतदर्थ काव्य अध्ययन, श्रवण और दर्शन से अलौकिक आनन्द की प्राप्ति होती है। जिसे काव्य की भाषा में रस कहते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याकरणशास्त्रीय पद्धति से रस धातु के कर्मवाच्य प्रत्यय करने पर रस्यते आस्वाद्यते इति रसः, अर्थात् जिसका किसी के द्वारा आस्वादन किया जाय। कर्तृवाच्य प्रक्रिया के अनुसार रस्यते इति रसः, अर्थात् जो प्रवहशील हो। इसके अतिरिक्त रस धातु में भावार्थक ल्यूट् प्रत्यय करने पर रसनमिति रसः स्वरूप भी निष्पन्न होता है। रससिद्धान्त के आदि प्रणेता आचार्य भरतमुनि ने रस के स्वरूप का निर्धारण किया है—

'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः'।

अर्थात् विभाव, अनुभाव और सञ्चारीभाव के संयोग से रस निष्पत्ति होती है। लोकव्यवहार में रति आदि स्थायीभाव के साथ कारण, कार्य और सहकारी कहलाते हैं। नाटक काव्यादि में प्रयुक्त होने पर क्रमशः विभाव, अनुभाव और व्यभिचारीभाव कहलाते हैं। रसनिष्पत्ति में आलम्बन और उद्दीपन बाह्य कारण होते हैं। इनसे निष्पन्न रति, हास आदि स्थायीभाव रस के मूल रूप होते हैं। स्थायीभाव मन के अन्दर स्थिर रूप से रहने वाला एक प्रसुप्त संस्कारविशेष है, जो अनुकूल आलम्बनोद्दीपन रूप उद्बोधक सामग्री की प्राप्ति से अभिव्यक्त होकर सहृदय के हृदय में एक विलक्षण आह्लाद का सञ्चार कर देता है। इस स्थायिभाव की अभिव्यक्ति ही रसास्वाद या रस्यमानता को प्राप्त होने से रस शब्द से व्यपदिष्ट होती है।

भारतीय साहित्यशास्त्र में यद्यपि रस अनेकशः विभक्त है, तथापि उसकी मौलिकता अनन्तरूपा होती हुई एकरूपा है। रसवादी आचार्यों ने रस को अष्टधा विभाजित किया है।

❖

IA & P-37

'वामनचरितम्' में अलङ्कार-योजना

डॉ. सुश्री नीरज शर्मा, जालन्धर

भारतीय काव्यशास्त्र में अलङ्कारों का अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। अलङ्कार काव्य को विभूषित ही नहीं करते, वरन् काव्य को अलम् अर्थात् पर्याप्त अथवा पूर्ण भी करते हैं। यह काव्य का बाह्य धर्म नहीं, अपितु आन्तरिक धर्म है, जो रचना का अभिन्न अङ्ग है। जब भावावेग धर्म है, जो रचना का अभिन्न अङ्ग है। जब भावावेग होता है, तो अलङ्कार स्वयमेव 'अहम्पूर्विकया' आ जाते हैं। इस प्रकार भाषा को अलङ्कृत करने तथा भाव के बिम्ब को उतारने के लिए अलङ्कारों का महत्त्व है।

वामनचरित का अलङ्कारविधान इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कहा जा सकता है कि यहाँ अलङ्कारों का प्रयोग अनायास नहीं हुआ है। विशेषरूप से शब्दालङ्कार इस दृष्टि से प्रशस्त कहे जा सकते हैं कि कवि कभी भी उनके मोह में नहीं पड़ा है। निदर्शन के रूप में प्रयुक्त कुछ प्रमुख अलङ्कारों का दिग्दर्शन भर किया जा सकता है—पुनरुक्तवदाभास, अनुप्रास, यमक, उपमा, लुप्तोपमा, स्मरण, रूपक, सन्देह, उल्लेख, अपह्नुति, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, दीपक, प्रतिवस्तूपमा, निदर्शना, व्यतिरेक, विनोक्ति, अर्थान्तरन्यास,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काव्यलिङ्ग, आक्षेप, विभावना, विशेषोक्ति, विरोध, विषम, परिवृत्ति, अर्थापत्ति, तद्गुण, उदात्त, अन्योक्ति, प्रेयः, उर्जस्वि।

इसप्रकार प्रस्तुत शोधपत्र में शब्द एवम् अर्थ से सम्बन्धित जिन कतिपय अलङ्कारों का सोदाहरण विवेचन किया गया है, वे कवि की परम्परागत अलङ्कार प्रयोग-दृष्टि का दर्शन करते हैं।

❖

IA & P-38

भामह का काव्यलक्षण

डॉ. माधव राज द्विवेदी, बलरामपुर

भामह संस्कृत काव्यशास्त्र के आद्याचार्यों में अन्यतम हैं। इनके काव्यालङ्कार से उद्भूत होकर काव्यशास्त्र की अनेक धाराएँ प्रवाहित हुई। संस्कृत काव्यशास्त्र की औदीच्य परम्परा तो भामह से ही प्रारम्भ होती है। भामह के पूर्व भी काव्यशास्त्र की एक परम्परा विद्यमान थी, जिसका उल्लेख भामह ने काव्यालङ्कार में अनेक स्थलों पर किया है। भामह के पूर्व के आचार्यों में एक वर्ग शब्द सौन्दर्य को काव्यपदाभिधेय मानता था, तो दूसरा अर्थचमत्कार को काव्यत्व का प्रयोजक स्वीकार करता था। भामह ने इन दोनों को इष्ट मानकर शब्द और अर्थ के सहभाव में काव्यत्व स्वीकार किया। उन्होंने 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्' के रूप में काव्य की जो परिभाषा दी, उसे उद्भट, वामन, रुद्रट, आनन्दवर्धन, कुन्तक, अभिनवगुप्त, मम्मट आदि परिवर्तित आचार्यों ने उसी रूप में अथवा कुछ परिष्कार के साथ स्वीकार किया।

भाषा के समस्त प्रयोगों में शब्द और अर्थ का सहभाव होने से वे सभी काव्य की परिधि में आ जायेंगे, ऐसी आशंका करके कुछ विद्वानों ने 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्' को भामह कृत काव्यलक्षण न मानकर उस वैशिष्ट्य को खोजने का प्रयास किया, जिससे समन्वित होने पर शब्दार्थ साहित्य को काव्य कहा जाता है। डॉ. देवेन्द्रनाथ शर्मा इस श्रेणी के प्रमुख विद्वान् हैं, जिन्होंने 'वक्राभिधेय शब्दोक्तिरिष्टा वाचमलङ्कृतिः' को भामहकृत काव्यलक्षण स्वीकारा है। भामह निश्चित रूप से काव्य में वक्रोक्ति के महत्त्व का ख्यापन करने वाले प्रथम आचार्य हैं, किन्तु 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्' काव्यस्वरूप प्रतिपादक वाक्य नहीं है, अपितु डॉ. शर्मा द्वारा स्वीकृत उक्त वाक्य भामहप्रोक्त काव्यलक्षण है, ऐसा मानने का कोई औचित्य नहीं प्रतीत होता है।

वस्तुतः 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्' में आया हुआ सहितौ पद उन समस्त विशेषताओं को समेटे हुए है, जिनके कारण काव्य शब्दार्थयुगल रूप शास्त्रादि से पृथक् ठहरता है। यहाँ सहभाव से तात्पर्य शब्द और अर्थ के समानकोटि महत्त्व से है, जहाँ शब्द और अर्थ अन्यूनातिरिक्त भाव से रहते हुए मानों परस्पर स्पर्धा करते हुए एक-दूसरे के चारुत्व का उत्कर्ष करते हैं।

कुन्तक के वक्रोक्तिजीवितम् में शब्द और अर्थ के उस सहभाव की विशद व्याख्या की गई हैं, जो काव्यत्व के लिए अपरिहार्य होता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्तु भामहकृत काव्यलक्षण 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्' ही है। यही इस शोध निबन्ध का प्रतिपाद्य है।

❖

IA & P-39

क्षेमेन्द्रपूर्ववर्ती आचार्यों की औचित्यसिद्धान्तविषयक अवधारणाएँ

श्री वेद प्रकाश डिंडोरिया

जो जिसके अनुरूप हो, आचार्यों ने उसे उसके लिए उचित कहा है तथा यह उचित का भाव ही औचित्य कहलाता है। आचार्य क्षेमेन्द्र का यह कथन 'उचितं प्राहुराचार्याः' यह इङ्गित करता है कि आचार्य क्षेमेन्द्र प्रवर्तित औचित्यसिद्धान्त की मूल अवधारणा प्राचीन काव्यशास्त्रियों के काव्य सिद्धान्तों में भी प्रादुर्भूत थी।

सर्वप्रथम भरतमुनि ने औचित्य के पर्याय के रूप में अनुरूप अनुगत आदि शब्दों का प्रयोग किया है तथा इसका प्रमाण लोक को माना है।

तदनन्तर अग्निपुराण में उभयालङ्कारों के सन्दर्भ में साक्षात् औचित्य शब्द का प्रयोग मिलता है तथा जिसमें औचित्य सिद्धान्त की मूल भावना का भी समावेश है। आचार्य भामह, दण्डी प्रभृति आचार्यों ने भी भावरूप में औचित्य को देखा तथा गुण, अलङ्कार, दोष आदि प्रसङ्गों में इस भाव की चर्चा की हैं।

आचार्य रुद्रट औचित्य के प्रथम प्रत्यक्षदर्शी आचार्य हैं। ग्राम्यत्व दोष के प्रसङ्ग में इन्होंने औचित्य-अनौचित्य का साक्षात् अभिधान किया है—

'ग्राम्यत्वमनौचित्यं व्यवहाराकारवेषवचनानाम्। देशकुलजातिविद्यावित्तवयोऽवस्थापात्रेषु'।।

इनके पश्चात् आचार्य आनन्दवर्धन ने काव्य के समस्त महत्त्वपूर्ण तत्त्वों को औचित्य की कसौटी पर कसा। जिससे कश्मीर की साहित्यिक गोष्ठियों में तो औचित्य की चर्चा रस से भी अधिक होने लगी।

❖

IA & P-40

साहित्य में कला का बोध

श्री शङ्कर सिद्धार्थ, मुजफ्फरपुर

समग्र बोध की साक्षी कला अर्थात् 'कल्यते या सा कला' सूक्ष्म-स्निग्ध तत्त्वज्ञान की मृदुल ऋतम्भरा है, कला पर्याय है—आन्तरिक चेतना की अस्मिता का, धर्म, अर्थ, काम और मोक्षदायिनी अमृता परमात्मा में विलीन हो जाती है, वह कल्याणी मृदुला भी कला ही है, तभी तो किसी भी वस्तु के समग्र बोध के निमित्त कलात्मक दृष्टि की अत्यन्त अनिवार्यता का सम्यक् आभास कला-बोध का अक्षरारम्भ माना जाता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृति के कण-कण में विद्यमान कला की चैतन्य अस्मिता के दर्शन वही कर सकता है, जिसकी अन्तःचेतना समस्त विकृतियों से पृथक् मनुष्यत्व के शाश्वत सृजन में जुटी हो। इस धरती पर कला किसी घृणित विध्वंस की कथा नहीं, बल्कि हृदय के निरन्तर निर्माण की एक अनवरत कोशिश है, जिसकी संसृति हम सबों के लिए नचिकेत-अग्नि के रहस्य को ज्ञात करने की तरह स्वर्ग की ओर जाने वाले मार्ग की सहज प्राप्ति के वास्तविक आनन्द की एकात्मीयता से कम नहीं है।

अचेतन को चेतना प्रदान करने की आत्मशक्ति का एक विशिष्ट उपक्रम है—'कला' जिसकी निश्छल साधना में ही शाश्वत युग-निर्माण की तमाम सम्भावनाएँ निहित होती हैं, कला सत्य, शिव और सुन्दर की अन्तहीन परिणति पर आधृत सूक्ष्म भाव-बोध की अन्विति भर ही नहीं; बल्कि इससे परे कुछ और भी है, जहाँ अभिव्यक्ति को न आकाश मिलता है और नहीं धरती। बस वह केवल शून्य में विचरण करती हुई किसी गुम कल्पना की तरह अत्यक्त रह जाती है और मनुष्य के मस्तिष्क की बौद्धिक क्षमता जिस सतह पर उतरने में अक्षम दीख पड़ती है, उसी धरातल पर उसकी आत्मसंवेदना अपनी सम्पूर्ण गहनता लिये, पूरे सामर्थ्य के साथ कला-भी के अनुपम स्वरूप का सृजन करती है।

वस्तुतः आत्मचैतन्य से निःसृत निसर्ग सिद्ध कला ही हमारे चित्त को उदात्त बनाती है और निरन्तर हमें समुज्ज्वल उल्लसित सम्पूर्णता की ओर ले जाती है—'ऐसा हमारे भारतीय शास्त्रकारों का मानना है। लेकिन पाश्चात्त्य सौन्दर्यशास्त्री फ्राडप का यह चिन्तन भी उपेक्षणीय नहीं माना जा सकता, जिनके अनुसार कला वह उदात्त भाव है, जिसमें सन्निहित यथार्थ जगत् की अतृप्त वासनायें उठकर उदात्तीकरण के द्वारा अवरोपित चेतना के प्रसार का मार्ग ढूढ़ लेती हैं।

इसलिए वही है जिसका स्वरूप क्षण-क्षण नवीनता को प्राप्त होता है और आध्यात्मिक आनन्द की प्राप्ति का कारण बनता है।

❖

IA & P-41

साधारणीकरण का असाधारणत्व

प्रो. नयना कलपेश नायक, दक्षिण गुजरात

नाट्याचार्य भरत के रसनिष्पत्ति सूत्र तथा रसास्वादन प्रक्रिया को समझाते हुए भट्ट लोल्लट, शङ्कुक, भट्टनायक तथा अभिनवगुप्तादि विद्वान् आलङ्कारिकों ने अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। भट्टनायक रसास्वादन प्रक्रिया साधारणीकरण को आवश्यक मानते हैं। तत्पश्चात् सभी आलङ्कारिकों ने साधारणीकरण को रसानुभूति के लिए आवश्यक माना है। देश- से परे होना, अपनी अनुभूति, अवधारणाएँ तथा परिस्थिति से विगलित होना, साधारणीकरण के लिए यह अतीव महत्त्वपूर्ण एवं प्राथमिक शर्त है। किन्तु वास्तव में सामाजिक चाहकर भी अपने स्वभाव से, अस्तित्व से परे नहीं हो सकता। सहृदयी सामाजिकों वैयक्तिक भिन्नता सदैव दिखाई देने से प्रेक्षागार के हर भाव का साधारणीकरण विभिन्न स्तर पर रहेगा। प्रस्तुत

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शोधपत्र में मनुष्य स्वभाव की मर्यादा से निष्पन्न साधारणीकरण की मर्यादा बताते हुए साधारणीकरण में जो असाधारणत्व है, इसकी चर्चा की गई है।

❖

IA & P-42

साहित्यशास्त्रीय सम्प्रदायों के मूलभूत तत्त्व

डॉ. प्रेम कुमारी सिंह, इलाहाबाद

संस्कृत साहित्य के आचार्यों ने काव्य की विवेचना में छः प्रसिद्ध सम्प्रदायों को जन्म दिया है—रस, अलङ्कार, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति और औचित्य। साहित्य़ के सन्दर्भ में सम्प्रदाय का अर्थ है—काव्य के किसी तत्त्व को मूलाधार मानने वाला 'साहित्यविदों का वर्ग'। ये षट् सम्प्रदाय षट् सिद्धान्त के नाम से भी विख्यात हैं, इन सिद्धान्तों पर विचार करने से ज्ञात होता है कि आचार्यों ने रुचि-भेद से किसी सम्प्रदाय को भले ही प्रधान माना हो, किन्तु—काव्य-कला के तत्त्वों के रूप में उनकी समीक्षा करते अन्य तत्त्वों की महत्ता को भी प्रत्येक सम्प्रदाय में किसी न किसी रूप में अवश्य स्वीकार किया था। अतः साहित्यशास्त्रीय सम्प्रदाय के नामकरण तो सम्प्रदायविशेष के प्रचलित एवं प्रतिष्ठित उस सारभूत तत्त्व के आधार पर किया, जिसे उन्होंने काव्य की आत्मा माना, परन्तु विवेचन के समय उस आत्मभूत तत्त्व के उपकारक अन्य तत्त्वों का भी पर्याप्त उल्लेख किया। उदाहरण के लिये रसवादी आचार्य केवल रस को काव्य की आत्मा मानकर कृतकार्य नहीं हो जाते, अपितु रस के मूलभूत मनोविकार या भाव तथा प्रसङ्ग या कथानक आदि तत्त्वों को भी व्याख्या करते हैं।

इस प्रकार साहित्य की दृष्टि से मूलभूत तत्त्व का अर्थ है—वे सभी तत्त्व जो समग्र काव्य की दृष्टि से उपयोगी हैं और सम्प्रदायविशेष की दृष्टि से उनका अर्थ है किसी सारभूत तत्त्व के प्रसाधक तत्त्व। प्रस्तुत शोध-पत्र में इन दोनों ही अर्थों को ध्यान में रखते हुये साहित्यशास्त्रीय सम्प्रदायों के मूलभूत तत्त्वों की विवेचना का प्रयास किया गया है।

❖

IA & P-43

आचार्य कुन्तक का रसविषयक चिन्तन

डॉ. नीना भावनगरी, सूरत

वक्रोक्ति-जीवित के कर्ता आचार्य कुन्तक वक्रोक्ति-सिद्धान्त के पुरस्कर्ता थे। उनका काव्यविषयक चिन्तन कवि (कर्म) परक दृष्टिकोण से प्रभावित है। उनके विचार में कवि के वक्रोक्तिव्यापार से अलङ्कृत बन्ध में सुग्रथित, सहितभाव से युक्त शब्दार्थ जो कि पद्धतियों को अह्लाद का अनुभव कराने में समर्थ हैं—उसे काव्य कहा जाता है। इस प्रकार की वक्रोक्ति ही काव्य का प्राणभूत-सार-तत्त्व है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्न यह उठता है कि कुन्तक रस के विषय में किसी खास प्रकार के चिन्तनविशेष के पक्ष में हैं या नहीं? काव्य में सौन्दर्यधायक तत्त्व के रूप में उन्होंने कविकर्म कौशल को सविशेष महत्त्व दिया है। उसी को ध्यान में रखते हुए रसस्वरूप के विषय में भी वे प्रसङ्गोपात्त कविपरक दृष्टिकोण से विवरण करते हैं। उनके पुरोगामी देहवादी आचार्य भट्ट लोल्लट, दण्डी आदि ने काव्यनायक के स्थायीभाव की पूर्ण परिपुष्टि-उपचिति को रस का नाम दिया है। इसी परम्परा का पुरस्करण कुन्तक भी करते हैं। डॉ. राजेन्द्र नागावटी ने अपने वक्रोक्तिविषयक ग्रन्थ में इस सिद्धान्त की विशेष परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है और कुन्तक के रसविषयक चिन्तन के बारे में विस्तार से, विवरण किया है। उसी के अनुसन्धान में वक्रोक्तिजीवित में जो समर्थक दृष्टान्त और निर्देश प्राप्त होते हैं, उनका विशेष विस्तार प्रस्तुत अभ्यास-आलेख में किया जाता है। काव्यसौन्दर्य की देहवादी विचारणा में काव्यगत नायक के स्थायीभाव के परिपोष के रूप में परिपुष्टिवाद या उपचितिवाद ही प्रस्तुत और अनुरूप है। कुन्तक के मतानुसार कवि अपनी प्रतिभा और अनुरूप है। कुन्तक के मतानुसार कवि अपनी प्रतिभा के परिस्पन्द से —कर्मकौशल से वैदग्ध्य से काव्य में निरूपित प्रधानपात्र नायक के स्थायीभाव का परिपोष होता है। वही रस है। वहीं वाक्यवक्रता है। उसमें कविप्रतिभा का आविष्कार है। जब कि कुन्तक को भावक का दृष्टिकोण विवक्षित हो नहीं है, उसी कारण से उन्होंने काव्यगत होता है, वही स्पष्ट करने का उपक्रम किया है। यही तथ्य उन्होंने रस विषयक जो दृष्टान्त प्रस्तुत किये हैं, उनसे प्रकट हुआ है। प्रस्तुत आलेख कुन्तक के दिये गये उदाहरणों के प्रकाश में उनके रसविषय को समझने का प्रयास है।

❖

IA & P-44

जावा के पारम्परिक नृत्यों में भारतीय तत्त्वों की उपस्थिति

डॉ. अर्चना अग्रवाल, वाराणसी

प्राचीन भारत का सुदूरपूर्व के द्वीपों से घनिष्ठ सम्बन्ध था, इसका प्रमाण वैदिक साहित्य से बाद के साहित्य से ही मिलना आरम्भ हो जाता है। सुवर्णभूमि, सुवर्णद्वीप और यवद्वीप का उल्लेख रामायण, मिलिन्दपञ्हों, अर्थशास्त्र आदि ग्रन्थों में मिलता है। 'कथासरित्सागर' आदि कथाग्रन्थों में सुवर्णद्वीप सम्बन्धी बहुत सी कथाएँ मिलती हैं। ये सभी सन्दर्भ इस निष्कर्ष पर पहुँचाते हैं कि भारत का यवद्वीप तथा सुवर्णद्वीप के साथ सम्बन्ध प्राचीन काल से ही था, जिन्हें हम आज जावा और सुमात्रा के नाम से एक राष्ट्र इण्डोनेशिया के द्वीपों के रूप में पहचानते हैं। इसी सम्बन्ध के माध्यम से भारतीय संस्कृति और सभ्यता इन द्वीपों में पहुँची और लम्बे समय तक पल्लवित-पुष्पित भी हुई, जिसकी सुगन्ध वहाँ की पारम्परिक कलाओं में आज भी बसी हुई है और निश्चित रूप से नाट्य-नृत्य भी इसी वर्ग के अभिन्न अङ्ग हैं। आज भी वहाँ के पारम्परिक नाट्य (काव्याङ्ग) के प्रिय विषय रामायण और महाभारत की कथाएँ हैं और उनके प्रस्तुतिकरण के सौन्दर्यशास्त्र में अनेक स्थलों पर भरत-परम्परा की छाप स्पष्ट पता चलती है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आठवीं शती में मध्य जावा में बने बोरोबुदुर के बौद्ध स्तूप तथा उसके कुछ ही बाद बने प्राम्बानान के हिन्दू मन्दिरों में उकेरी गईं मूर्तियाँ भारतीय नृत्य परम्पराओं का अनुसरण करती दिखाई पड़ती है। जावा में जिस शास्त्रीय नृत्य की परम्परा आज भी अक्षुण्ण है, उसके सौन्दर्यशास्त्र का मानक बिल्कुल वही है, जो भारतीय शास्त्रीय नृत्यों का हुआ करता है। दोनों ही परम्पराओं लोकधर्मी तत्त्वों को अपने में स्थान देते हुए भी नाट्यधर्मिता के प्रति अधिक आग्रह रखती हैं और सहृदय प्रेक्षकों को लोकोत्तर आनन्द का आस्वाद कराने के प्रति समर्पित है।

भारत और जावा की नृत्यकलाएँ ऊपरी तौर पर भिन्न यहाँ तक कि विपरीत छोरों पर अवस्थित लग सकती हैं; क्योंकि एक जहाँ ऊर्जापूर्ण गतियों से भरी हुई हैं, तो दूसरी में विलम्बित, एक दूसरे में लय हो जाने वाली गतियों की ही प्रधानता है।

❖

IA & P-45

काव्यसौन्दर्याधायक परिसंख्या-अलङ्कार

(संस्कृत गद्यकाव्यों के परिप्रेक्ष्य में)

डॉ. (श्रीमती) नीलम श्रीवास्तव, कानपुर

काव्य-शरीर की श्रीवृद्धि के साधन होने के कारण काव्य में अंलकारों का विशेष महत्त्व है। इन्हीं के माध्यम से कवि गूढ़ातिगूढ़ तत्त्वों, रहस्यमयी भावनाओं तथा दुरूह अस्पष्ट कल्पनाओं की अभिव्यक्ति में समर्थ होता है। काव्यशास्त्रियों द्वारा उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि विभिन्न अंलकारों में परिसंख्या अलंकार का भी प्रतिपादन किया गया है। मीमांसाशास्त्र की परिसंख्या विधि से प्रभावित परिसंख्या अलंकार को विभिन्न काव्यशास्त्रियों ने परिभाषित किया है, जिनके आधार पर कहा जा सकता है कि किसी विशेष वस्तु की विलक्षणता को सूचित करने के लिए दो वस्तुओं में समान रूप से प्राप्त जाति, गुण या क्रिया का एक वस्तु में नियमन तथा दूसरी में उसका निषेध परिसंख्या अलंकार कहलाता है। एतादृशी परिसंख्या का मनोहारी प्रयोग गद्य-काव्यों में विशेष रूप से प्राप्त होता है। यद्यपि अन्य अंलंकारों की अपेक्षा परिसंख्या का प्रयोग अति-अल्प है, तथापि ये इतने प्रभावशाली, मनोहारी, स्वाभाविक और सटीक हैं कि कोई भी उससे चमत्कृत हुए बिना नहीं रह सकता।

परिसंख्या अलंकार का सर्वाधिक प्रयोग बाणभट्ट की कादम्बरी में प्राप्त होता है। कादम्बरी में मुख्यतः वस्तु-चित्रण या चरित्र-चित्रण में प्रयुक्त परिसंख्या की विशेषता है—श्लेष या उत्प्रेक्षा गर्भित होना। परिसंख्या-प्रिय गद्यकवियों में सुबन्धु का ग्रहण किया जाता है, किन्तु इनके परिसंख्या प्रयोगों में बाण के सदृश प्रभावोत्पादकता नहीं है। परिसंख्या का बहुतायत से प्रयोग करने वाले त्रिविक्रमभट्ट पर बाण का प्रभाव देखा जा सकता है। इनके अतिरिक्त अन्य गद्यकवियों में भी परिसंख्या अलंकार प्राप्त होता है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IA & P-46

कृष्णावधूत पण्डित-विरचित 'अलङ्कारसूत्राणि' समीक्षा

डॉ. हंसा हिण्डोचा, राजकोट

कर्नाटक के कृष्णावधूत (ई. 1835-1909) ने कुल चार काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ लिखे हैं। उनके 'अलङ्कारसूत्राणि' ग्रन्थ में सम्पूर्ण काव्यशास्त्र, नाट्यशास्त्र, छन्द एवं कविशिक्षा सूत्रशैली में समाविष्ट हैं। पुरोगामी मतों का संकलन-विश्लेषण भी किया गया है।

'अलङ्कारसूत्राणि' ग्रन्थ की प्रमुख विशेषताएँ हैं —

1. न्यायवैशेषिक-पद्धति से पदार्थों का सविस्तर वर्गीकरण-निरूपण, 2. ग्रन्थ-कर्ता कृष्णावधूत ने कविसमय के विश्लेषण में राजशेखर का अनुसरण किया है, किन्तु वैशिष्ट्य यह है कि कृष्णावधूत ने व्याकरणिक गणपाठ के अनुसार कविसमय की व्यवस्था की है और दृष्टान्तस्वरूप असंख्य नये आश्चर्यकारी पदार्थों का समावेश किया है। उन्होंने काव्यपुरुष की जाति कविसमय बताई है, यह भी एक विशेषता है। 3. साध्यवसाना गौणी लक्षणा एवं अभिधालक्षणा-व्यंजना के निरूपण में पूर्ववर्ती आचार्यों से कुछ भिन्नता का दर्शन होता है। 4. कृष्णावधूत ने रस के प्रमुख दो भेद किये हैं—लौकिक और अलौकिक। उनका नया मत यह है कि वे अलौकिक रस का कोई आश्रय नहीं मानते। वे रसों को सुखात्मक एवं दुःखात्मक मानते हैं। 6. युक्तिनिरूपण ग्रन्थ का विशिष्ट अंश है। कृष्णावधूत ने विभिन्न अंशों से सम्बद्ध चर्चा के विषय में अन्य या विरोधी मतों का संकलन-संग्रह एक स्थान पर किया है।

इस परिशीलन से स्पष्ट होता है कि 'अलङ्कारसूत्राणि' ग्रन्थ में पुरोगामी मतों के संकलन-विश्लेषण के साथ सभी प्रकार के काव्यशास्त्रीय अंगों की सरल शैली में चर्चा-विचारणा हुई है।

❖

IA & P-47

प्रेम-सौन्दर्य

श्री डी.एच.विभाजन, कच्छ, गुजरात

सौन्दर्य सुन्दरता से युक्त है और प्रेम हृदय का भाव तत्त्व, अतः जो सरल हृदय हों, उन्हें तमाम वस्तुस्थिति, व्यत्यय एवं वातावरण में आनन्द की अनुभूति होती है। अतः जो सत्य है वह सुन्दर है और जो सुन्दर है, वही शिव है। मनुष्य जीवन की सार्थकता इसी को खोजने में है, अतः इसीलिए हमारी भारतभूमि भी कवि-भूमि के रूप से पहचानी जाती है। आचार्य भरतमुनि के लिखा है कि—

'विभावानुभावसञ्चारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः'।

अनुभूति साधारणीकरण से होती है। मानव एक प्रियतम को प्रेम करता है, जो लौकिक एवं अलौकिक दोनों स्वरूप में तथा सगुण एवं निर्गुण दोनों आकार में प्रकट है। इस प्रकार प्रेम, सौन्दर्य का सम्बन्ध अभिन्न है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IA & P-48

बीभत्सप्रभृति रसों का औचित्य

डॉ. रामनाथ सिंह, समस्तीपुर, बिहार

भारतीय काव्यशास्त्र में रस-विवेचन की विशद मीमांसा की गई है। भरत से लेकर अर्वाचीन आचार्यों ने रसस्वरूप, उसके भेद, काव्य में उसकी उपादेयता, रसों की सुख-दुःखपरकता आदि विषयों पर गहन एवं सूक्ष्म विवेचन किया है। किन्तु ग्यारह रस-भेदों में करुण, रौद्र, बीभत्स और भयानक रसों को दुःखपरक तथा शेष को सुखद कहा गया है। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि इन दुःखद रसों की अभिव्यक्ति काव्यकार अपनी रचनाओं में क्यों कराता है और प्रेषक इन रसों का चर्वण क्यों करता है? इस शोध-पत्र में उपर्युक्त प्रश्नों का समाधान निकालने का प्रयत्न किया गया है। इतना ही नहीं, यह प्रमाणित किया गया है कि शृङ्गार, वीर, हास्य आदि रसों की अपेक्षा करुणं, बीभत्स प्रभृति रसों से अधिक आनन्द की प्राप्ति है। यही कारण है कि प्रेक्षक ऐसे दृश्यों को अनेकशः देखना पसन्द करता है और काव्यक्रार की प्रतिभा तथा काव्यकुशलता भी ऐसे दृश्यों की नियोजना के आधार पर परखी जाती है।

❖

IA & P-49

विक्रमाङ्कदेवचरितम्

कुमारी ज्योति

अलोकसामान्य प्रतिभासम्पन्न कवि के द्वारा लौकिक अनुभूति जब कल्पनासंवलित होकर, शब्दात्मक बाना धारण करती है, तो वही कविकर्म काव्य कहा जाता है। काव्य श्रव्य तथा दृश्य भेद से विभक्त है। काव्य के त्रिविध रूप हैं—महाकाव्य, खण्डकाव्य तथा मुक्तककाव्य। महाकाव्यों में बिल्हण-विरचित महाकाव्य ऐतिहासिक श्रव्य काव्यपरम्परा का अद्वितीय निदर्शन है।

'पाश्चात्त्य विद्वानों की इतिहास बुद्धि से हीन है भारतीय' इस आक्षेपरूपी मिथक को तोड़ते हुए महाकवि बिल्हण अपने काव्य में पूर्ण ऐतिहासिकता का परिचय देते हैं। विक्रमाङ्कदेवचरितम् महाकाव्य का अनुशीलन तत्कालीन भारत के मानचित्र का पूर्ण परिचय प्रदान करता है। इसमें वर्णित विक्रमाङ्कदेव की विजय-यात्रा हमें उन स्थलों के वैशिष्ट्य का परिचय देती है।

विक्रमाङ्कदेवचरितम् वीररस-प्रधान महाकाव्य है तथा 18 सर्ग में निबद्ध है। इसके नायक विक्रमाङ्कदेव धीरोदात्त चरित से युक्त हैं। वाणी के वक्रत्व को स्थापित करते हुए कवि ने इनके वंश की उत्पत्ति ब्रह्मा के चुल्लू से कराई है, जो संसार के रचयिता हैं, वे ही धर्म की स्थापना के लिए एक सर्वगुणसम्पन्न मानव की रचना के लिए प्रेरित हो रहे हैं। दसवीं शताब्दी के आचार्य कुन्तक की वक्रता 'वैदिग्ध्यभङ्गीभणिति' बिल्हण के महाकाव्य में प्रतिश्लोक में अनुस्यूत दिखाई पड़ती है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काव्य की ..... राजाओं की विलासी प्रवृत्ति तथा अलङ्कृत काव्यरचना के प्रति आश्रयदाता एवं सहृदयों के आकर्षण का प्रभाव बिल्हण पर भी पड़ा और इसी कारण बिल्हण की रचना ऐतिहासिक सन्दर्भों का कोष होने के साथ-साथ कवित्व तथा चमत्कार के क्षेत्र में भी अपना स्थान बना सकी। आचार्य कुन्तक ने काव्य के जीवितभूत वक्रोक्ति के षट् प्रकारों का वर्णन करते हुए वक्रोक्ति को ही समस्त सौन्दर्य, रसानुभूति का कारण माना है।

इस शोधपत्र में षड्विधा वक्रोक्ति के प्रयोगिक स्वरूप का अध्ययन एवं प्रयोग इस 'विक्रमाङ्कादेव' महाकाव्य में किया गया है।

❖

IA & P-50

भारतीय सौन्दर्यशास्त्र एवं कवित्व

डॉ. प्रीति चतुर्वेदी, हरियाणा

सौंदर्य एवं कवित्व वस्तुतः एक-दूसरे के पूरक ही हैं। जहाँ सौदर्य होगा, वहाँ कवित्व होगा, जहाँ कवित्व है, वहाँ सौंदर्य है ही। उस परब्रह्म की सृष्टि में सौदर्य सर्वत्र बिखरा है। पारखी दृष्टि उस पर पड़ती है और काव्य फूट पड़ता है।

यों तो सौदर्यशास्त्र नाम से कोई शास्त्र नहीं है, हाँ शास्त्रों में वर्णित 64 कलाओं की चर्चा को यदि सौन्दर्यशास्त्र कहें, तो कोई अत्युक्ति न होगी। कला का अर्थ ही है सौंदर्य का डेरा। प्रस्तुत विषय काव्य से जुड़ा होने के कारण काव्यगत सौंदर्य की चर्चा की ओर संकेत करता है। काव्यशास्त्र तो सौंदर्य-युक्त विचार-विनिमय से ही आद्योपान्त भरा है। कविहृदय जैसा अनुभव करता है, वैसी अभिव्यक्ति हो जाती है। वही काव्य कहलाता है। इस प्रकार अग्निपुराण में कवि प्रजापति कहलाया—

अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः।
यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते॥

आगे चलकर आचार्य मम्मट ने तो कवि की सृष्टि को ब्रह्म की सृष्टि से उत्कृष्ट बताया—

नियतिकृतनियमरहितां ह्लादैकमयीमन्यपरतन्त्राम्।
नवरसरुचिरां निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति॥

जैसा कि मान्यता है कि वेदों से काव्य चर्चा आरम्भ होते हुए पाँच कालों— 1. प्रारम्भिक निर्माण युग (प्रारम्भ से भरत तक), 2. अन्वेषण एवं रचना युग (भरत से आनन्द तक), 3. काव्य तत्त्व चिन्तन युग (आनन्द से मम्मट तक), 4. समन्वय युग या व्याख्याकाल (मम्मट से जगन्नाथ तक), 5. आधुनिक युग (जगन्नाथ के पश्चात्) में विभक्त होती, परिवर्धित व परिपुष्ट होती हुई काव्य के सौन्दर्यभूत आत्मतत्त्व

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या चैतन्यस्वरूप रस, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति या ध्वनि के मत-मतान्तरों के कारण 5 प्रमुख सम्प्रदायों में उभरी—

1. रससम्प्रदाय—प्रवर्तक भरत, 2. अलंकारसम्प्रदाय—प्रवर्तक भामह, 3. रीतिसम्प्रदाय—प्रवर्तक वामन, 4. वक्रोक्तिसम्प्रदाय—प्रवर्तक कुन्तक, 5. ध्वनिसम्प्रदाय—प्रवर्तक आनन्दवर्धन।

इतने वैज्ञानिक अध्ययनों में आचार्य विद्वानों ने काव्य के शब्दार्थरूप शरीर के साथ ही काव्य के आत्मतत्त्वरूप ध्वनि, रस, अलंकार, वक्रोक्ति, रीति आदि के सम्बन्ध में मत प्रस्तुत किए व काव्य सम्बन्धी गुण-दोषों का विस्तृत विवेचन किया, जिससे गुणों का समावेश व दोषों का निराकरण होते हुए निर्दुष्ट काव्य-रचना हो सके।

❖

IA & P-51

व्याकरणविषयक कविसमय-सिद्धान्त

डॉ. जनार्दन प्रसाद पाण्डेय, प्रतापगढ़

1. लौकिक शब्द 'स्वस्ति'। 2. वृद्धिजनित पद 'मार्जन्ति'। 3. वार्तिक एवं भाष्यसिद्ध पद। 4. एकशेष पद 'वरुणौ', 'इन्द्रौ', 'भवौ' आदि तथा प्रातिपदिक से विहित 'पटयति' आदि तृच्-प्रत्ययान्त शब्द तथा अक्प्रत्ययान्त शब्द समासरहित होने पर ग्राह्य है। जैसे—वृत्रस्य हन्ता, तस्य गमकः। 5. द्विगु समास का स्त्रीलिङ्ग में प्रयोग जैसे—'पञ्चराजी' त्रिलोकी आदि। 6. अभूततद्भावविषयक भृशादिगणीय हल् का लोप अभीष्ट है। जैसे—सुमनस् उन्मनस् विमनस् आदि से क्यङ् प्रत्यय करने पर सुमनायते उन्मनायते, विमनायते। 7. क्विप् प्रत्ययान्त शब्दों का तृतीया एकवचन एवं षष्ठी बहुवचन अभीष्ट है। जैसे—बलभिदा, सुरुचा, विद्युता आदि। तथा बलभिदां, सुरुचां, विद्युतां। इसी प्रकार से असन्त शब्द। जैसे—अम्भसा, भासा, यशसा, षष्ठी में अम्भसां यशसां, भासां। क्वसु प्रत्ययान्त शब्दों का पुलिङ्ग एवं स्त्रीलिङ्ग में प्रयोग इष्ट है। जैसे—पुंलिङ्ग उपेयुषां, स्त्रीलिङ्ग में 'दधुषी' आदि। 8. शबलादि से विहित णिच् प्रत्यय से निष्पन्न शब्द, जैसे—शबलयति, वीजयति। 9. ताच्छील्यविषयक णिनि का प्रयोग तीनों लिङ्गों में ग्राह्य है। जैसे—हारी, हारि, हारिणी, ताच्छील्यादि में तृनादि सभी प्रत्यय प्रायः ग्राह्य हैं, जिसमें युच्, कुरच्, वरच्, इष्णुच् विशेष रूप से इष्ट हैं। जैसे—युच्-चलन् कम्पन् आदि। कुरच्-विदुर, भिदुर, स्थावर, ईश्वर, इष्णुच्, अलंकरिष्णु, नराकरिष्णु आदि। 10. आस् धातु से नित्य युच् जैसे—'उपासना' कर्तरि ल्युट् का भी जैसे—देवन् रमन् आदि। अणन्त से ङीप् जैसे—पुरन्दर से पौरन्दरी, लाक्षा और रोचन से ठक् लाक्षिक, रौचनिक। कुमद् नड् वेतस से ड्मतुप्। जैसे—कुमुद्वत्, नड्वत्, वेतस्वत्। हित प्रकरण में सर्व शब्द से अण् प्रत्यय होने पर 'सार्वः' और वार्तिक द्वारा छ प्रत्यय करने पर 'सर्वीय' भी इष्ट है। प्रमाण बोधक द्वयसच् तथा दघ्नच् प्रत्यय भी इष्ट हैं। जैसे—नारी नितम्ब द्वयसच् सरः। जानुदघ्नी सरित् इनि प्रत्ययान्त शब्द फलिनः वर्हिणः आदि।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काव्य में अप्रयोज्य शब्द

1. वैदिक शब्द स्वस्तिभिः आदि नहीं। 2. वृद्धि से रहित मृजन्ति नहीं। 3. योगविभागजन्य पद नहीं। तृच् प्रत्यय एवं अक् प्रत्यय से निष्पन्न सामासिक पद, वृत्रहन्ता, तद्गमकः ग्राह्य नहीं है। 5. तवर्ग का शकार के साथ सन्धि अभीष्ट नही है। आचार्य वामन के अनुसार एक पद का प्रयोग दो बार इष्ट नहीं है। दो चरणों के पश्चात् सन्धि आने पर भी सन्धि नहीं करनी चाहिए। सर्वत्र पादान्त में लघुवर्ण की गुरुता इष्ट नहीं है, पदादि में 'खलु', 'किल्', 'चेत्' आदि शब्दों का प्रयोग वर्जित है। बहुव्रीहि की प्रतीति कराने वाले कर्मधारय का प्रयोग वर्ज्य है। उक्त सभी नियमों के होने पर भी महर्षि पाणिनि का मत परम श्रद्धेय है।

❖

IA & P-52

भारतीय काव्यशास्त्र में दर्शनशास्त्र की भूमिका एक अध्ययन

कुमारी अमृता अस्थाना

काव्यशास्त्र या साहित्यशास्त्र के प्रथम आचार्य भरतमुनि हैं। साहित्य शब्द की व्युत्पत्ति 'सहितस्य भावः साहित्यम्' है। काव्यात्मा रस है।

'दृष्टिर्दर्शनम्' भावव्युत्पत्ति का सहारा लिया जाय, तो 'दृष्टि' दर्शनात्मक क्रिया' का ही दूसरा नाम है, इस अर्थ में दर्शन शब्द 'दर्श+ल्युट् प्रत्यय से बना है।

दर्शन जीवन के माध्यम से साहित्य के लिए अनिवार्य है। 'साहित्य' जीवन का कलात्मक उद्रेखण है और जीवन वही जीवन है, जो दृष्टिपूर्वक जिया जाय। मानवेतर चेतना की अपेक्षा मानव चेतना में सम्भावित लोकमाङ्गलिक विशेषताओं की उपलब्धि ही जीवन की चरितार्थ है, अन्यथा वह निरर्थक है। 'भट्टतौत' ने संकेत किया है कि ऋषि और कवि ये दो सर्जक कलाकार की दो विभिन्न विशेषताओं और पक्षों की ओर इंगित करते हैं। ऋषि शब्द उसकी दृष्टि (दर्शनशक्ति) पर तथा कवि शब्द उसकी वर्णना पर बल देता है।

दर्शनाद्वर्णनाच्चातः रूढा लोके कविश्रुतिः।
तथा हि दर्शने स्वच्छे नित्येऽप्यादिकवेर्मुनिः।
नोदिता कविता लोके यावज्जाता न वर्णना॥

काव्य का अन्तस्तत्त्व 'रस' और रस को 'परमतत्त्व' से एकाकार करने वालों की दृष्टि से रसविषयक चिन्तन या विचार दर्शन के भीतर भी आ सकता है। अतः साहित्य दर्शन शब्द का उपलब्ध प्रयोग सार्थक और संगत माना जाता है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IA & P-53

आहार्य अभिनय कल और आज

डॉ. नन्दा पुरी, रामटेक

नाट्यशास्त्र अभि उपसर्गपूर्वक की धातु से यह शब्द व्युत्पन्न हुआ है। प्रेक्षकों को नाट्य के वास्तवस्वरूप की ओर ले जाने वाला अभिनय है। इसीलिए जिसके सङ्गोपाङ्ग प्रयोग से श्रोता का हृदय नाट्य के अनेक अर्थो का रसास्वाद लेता है। उसे अभिनय कहते है। यह अभिनय पुनः चार प्रकारों से युक्त बताया है। आंगिक, वाचिक, सात्त्विक तथा आहार्य।

इन चारों अभिनयप्रकारों में प्रथमदर्शन से ही प्रेक्षकों को अपनी ओर आकर्षित करने वाला आहार्य अभिनवलहरी होता है। अतः भरतमुनि ने इस आहार्य अभिनय का सुदीर्घ विवरण नाट्यशास्त्र में दिया है।

❖

IA & P-54

अभिनवगुप्त का रस विवेचन : प्रत्यभिज्ञादर्शन के सन्दर्भ में

डॉ. श्रद्धा सिंह, भुसावर

अभिनवगुप्त भारतीय ज्ञानमनीषा के शिखर पुरुष है, साहित्य अथवा दर्शन जहाँ भी उन्होंने ग्रन्थों की रचना की है, वहाँ वे सर्वोत्कृष्ट हैं। अभिनवभारती में उन्होंने भरत के रससूत्र की व्याख्या प्रस्तुत की है। पूर्व के तीनों मतों का परिचय हमें अनेक ग्रन्थ से ही मिलता है, इन्हें वे पूर्व-पक्ष के रूप में रख कर पहले उनका खण्डन करते हैं। फिर अपने अभिव्यक्तिवाद को प्रस्तुत करता है।

अभिनवगुप्त का मत प्रत्यभिज्ञादर्शन का अनुसरण करने वाला है, अपने ही हृदय में सर्वदा स्थायीरूप में रहने वाले रति आदि भावों का साधारणीकरण होकर अपनी सहृदयता के आवेश से उनका आनन्दरूपता को प्राप्त कर लेना ही रस है, ठीक वैसे ही जैसे सदाशिवस्वरूप जीव अपने ही स्वरूप की अभिव्यक्ति होने पर परमानन्दघन शिवस्वरूपता को प्राप्त कर लेता है।

शिवसूत्रकार तो शिव को स्वेच्छा से नृत्य करने वाला कहते हैं, नर्तक आत्मा शिव सूत्र 3/9 अपने नृत्य की विचित्र भावभङ्गिमाओं के प्रकाशन द्वारा वह आनन्दमय होकर विश्व का प्रकाशन करते हैं। शिव का यही नर्तकस्वरूप अवश्य ही अभिनवगुप्त के मस्तिष्क में रहा होगा, क्योंकि यही कार्य रंगमंच पर नट भी साकार करता है। वह भाव-भङ्गिमाओं, वेशभूषा अपने अभिनय की निपुणता से समस्त दर्शकों को उनकी वासना के अनुसार बद्ध कर लेता है, फिर वह दर्शक अपने भावों और अनुभूति के अनुकूल रसानुभूति करने लगता है और स्व को भूलकर आनन्दसागर में निमग्न हो जाता है। जैसे तट अपने वास्तविक स्वरूप का प्रच्छादन कर राम-सीता आदि विविध रूप का प्रच्छादन कर ग्राह्य-ग्राहक आदि विविध

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूपों में प्रकट होता है। रति आदि स्थायिभावों को आत्मचैतन्य से प्रकाशित करता है, यह कहने के पीछे प्रत्यभिज्ञा का प्रकाश सिद्धान्त ही है।

रसानुभूति के समय होने वाला आनन्दमय अभिनवगुप्त के अनुसार आनन्द शक्ति का ही चमत्कार है; क्योकि शैवमत में अहन्ता का सार ही चमत्कार है। जिसमें सब कुछ लीन हो जाता है।

अभिनवगुप्त चमत्कारिता का लक्षण ही 'चमत्कारिता मुज्जानरूपा स्वात्मविश्रान्तिः' देते हैं। अतः स्थायिभावों का आभोग जब स्वात्मविश्रान्त होता है, उसी क्षण वे चमत्कारिक बन जाते हैं। जैसे स्पन्द का चमत्कार अलौकिक है, उसी प्रकार अभिनवगुप्त का रस भी अलौकिक है, जो लौकिक भूमि से उठकर अलौकिकता का आस्वादन कराता है।

❖

IA & P-55

सौन्दर्यशास्त्र सन्दर्भ में स्पन्द की धारणा

डॉ. मीरा रस्तोगी, लखनऊ

स्पन्द काश्मीर शिवाद्वयवाद में प्राप्त एक पारिभाषिक शब्द है, जिसका सम्बन्ध एक विशेष प्रकार की गतिशीलता से जोड़ा जाता है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें किसी वास्तविक परिवर्तन के गति घटित होती है—अचलं चलमिव भासते। यह स्वात्मछन्दन है, आत्मस्फुरण है, एक ही तत्व का संकोच व विकास है। काश्मीर शैव परम्परा में यह प्रत्यय इतना महत्त्वपूर्ण है कि इसी के नाम से यहाँ एक पूरा सम्प्रदाय विकसित हुआ है। यहाँ तक कि शिवाद्वयवाद के मूल ग्रन्थ शिवसूत्रों की व्याख्या रूप से ही जिस ग्रन्थ की रचना हुई वह है, स्पन्दकारिका जिसमें प्रथम बार यह सिद्धान्त प्रतिपादित हुआ। इस ग्रन्थ में अद्वयत्त्व के नानात्व को स्थापित करने के लिये स्पन्द की धारणा की सहायता ली गयी है। स्पन्द है एक ही तत्त्व का उन्मेष व निमेष या प्रसार व संकोच। जब पूर्ण परत्व आत्मप्रसार करना चाहता है, तब स्वेच्छा से परिग्रहीत आवरणों से अपनी पूर्णता को आवरित कर इस जगत् के रूपों में अभिव्यक्ति होता है, यही उसका निमेष है। जब वह पुनः स्वरूपलाभ करना चाहता है, तो वह स्वच्छाग्रहीत आवरणों से अपने को मुक्त कर लेता है, यही उसका उन्मेष है। इस प्रकार स्पन्द पारतात्त्विक गति की व्याख्या है।

❖

IA & P-56

आचार्य कुन्तक की काव्यमार्ग योजना

डॉ.जय सिंह, आजमगढ़

आचार्य कुन्तक ने काव्यमार्ग को कवि प्रस्थान का हेतुभूत अर्थात् काव्य रचना का कारणभूत स्वीकार किया है। पूर्वाचार्यों द्वारा देश विदेश के आधार पर प्रस्तुत वैदर्भी आदि रीतियों का खण्डन करके उन्होंने कवि स्वभाव को काव्य मार्ग का आधार स्वीकार किया है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य कुन्तक के अनुसार वे ही रचनाएँ काव्य कहलाने की अधिकारिणी होती हैं, जो काव्य की समस्त साधनसामग्री के चरम प्रकर्ष से निष्पन्न होकर रमणीयता को प्रस्तुत करती है। इस प्रकार के काव्य तीन प्रकार के होते हैं—सुकुमार काव्य, विचित्र काव्य और मध्यम काव्य। कवियों की प्रवृत्ति के निमित्त होने के कारण ये ही तीन सुकुमार, विचित्र और मध्यम मार्ग कहे जाते हैं। इनमें से कोई भी काव्य एक दूसरे से न्यून नहीं हैं।

सुकुमार मार्ग में कवि की सहजशक्ति का अद्भुत विद्यमान रहता है तथा इसमें निहित वैचित्र्य कवि प्रतिभाजन्य होता है, आहार्य नहीं होता। सहृदय-हृदय को लुभा देने वाले अलङ्कार यत्न साधन न होकर सहज प्रतिभाजन्य होते हैं। महाकवि कालिदास एवं सर्वसेन की रचनाएँ इस कोटि में आती हैं।

विचित्र-मार्ग में वैचित्र्य की पराकाष्ठा, अलंकारों का एकाधिपत्य तथा कविकौशल की पराकाष्ठा होती है। विचित्रमार्ग का प्राण वक्रोक्ति का वैचित्र्य है। विचित्र मार्ग तलवार की धार के समान होता है। महाकवि बाणभट्ट, भवभूति तथा राजेशखर की रचनाएँ इस कोटि में आती हैं।

मध्यम-मार्ग में सुकुमार एवं विचित्र मार्गों की सम्पदाएँ समान रूप से प्रतिस्पर्धा के साथ विद्यमान रहती है। किसी का न्यूनाधिक्य नहीं रहता। इसमें सहज एवं आहार्य दोनों प्रकार के कवि कौशल से सुशोभित वैचित्र्य एवं सौकुमार्य की संकीर्णता शोभा पाती है। मातृगुप्त, मायुराज तथा मञ्जीर की रचनाएँ इस कोटि में आती हैं।

आचार्य कुन्तक के मार्गत्रय को कुछ आचार्यों ने क्रमशः वामन द्वारा स्वीकृत वैदर्भी, गौडीया और पाञ्चाली के साथ एकरूप स्थापित किया है। पं. बलदेव उपाध्याय का कहना है कि कुन्तक ने वैदर्भी रीति के सुकुमार गौणी को विचित्र और पाञ्चाली को मध्यम मार्ग कहा है। डॉ. लाहिरी ने भी वैदर्भी रीति और सुकुमार को तथा गौड़ीया और विचित्रमार्ग को एकरूप कहा है। नरेन्द्रप्रभसूरि ने तो माधुर्यादि को ही सुकुमारादि मार्ग निरूपित किया है, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यह सूरि जी का दुराग्रह मात्र है, जो तथ्यसङ्गत नहीं।

❖

IA & P-57

कला-काव्य एवं निराला

डॉ. अन्नपूर्णा शुक्ला, वनस्थली

साहित्य का कलात्मक पक्ष अधिकाशतः काव्य में ही व्यक्त होता है। आधुनिक युग के प्रारम्भ के साथ ही काव्य अधिक व्यापक होता गया और कविता में मानवजीवन के कलात्मक पक्ष के अतिरिक्त अनेक पक्ष अभिव्यक्त होने लगे, जब कि चित्रकला में अधिकांशतः कलात्मक पक्ष ही व्यक्त होता रहा, यद्यपि आधुनिक चितेरों ने कला को विस्तृत आयाम देने के अथक प्रयास किये हैं और वे उससे कुछ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीमा तक सफल भी हुए हैं, फिर भी वैचारिक विस्तार कैनवास की सीमाओं में ही रहता है और क्या चित्रों के माध्यम से ही स्पष्ट होता है। निराला जी के सम्पूर्ण रचना संसार की व्यापकता को देखते हुए विशेष रूप से उनकी चित्रण कला की शक्ति के सन्दर्भ में ही उनके काव्य को देखना प्रासंगिक होगा। निराला काव्य के चित्रण पक्ष का यदि मूल्याङ्कन किया जाय, तो पता चलता है कि निराला अपनी अनेक काव्यशक्तियों के साथ-साथ एक उत्कृष्ट कोटि के चितेरे भी थे।

निराला जी प्रारम्भ से ही परिवर्तन की एक दृष्टि से लेकर काव्यक्षेत्र में आयें, उन्होंने यदि कविता को छन्द मुक्त किया है, तो उसे कुछ अनूँठे टेकनीक भी दिये है, जिनमें बिम्बों को चित्रों की भाँति स्पष्ट करने की शब्दयोजना प्रमुख है। साथ ही साथ काव्य में संगीत और चित्रण के अद्‌भुत प्रयोग भी किये है। 'निराला जी काव्यकला के 'टेक्नीशियन' कवि हैं। उन्होंने छन्दों में गीतों में प्रबन्ध काव्य में नवीन कलात्मक प्रयोग किये हैं। संगीत प्रयोग तो उनकी कविता का प्राण ही है। लघु दृश्य-चित्रण की तटस्थ कला भी उन्हीं की देन है।

छायावादी कवियों में निराला ऐसे विलक्षण कवि थे, जिन्होंने कविता को विद्रोही स्वर तो दिया ही साथ ही साथ उसे अपनी अनूँठी शैली से सम्पन्न भी किया, इनकी चित्रणविधा इतनी सशक्त है, कभी-कभी इन की सम्पूर्ण कविता एक चित्रित कैनवास की तरह दिखायी पड़ती है। निराला काव्य के माध्यम से एक ऐसा दृश्य उपस्थित करते हैं, जिसमें चित्रों के साथ-साथ संगीत भी है, कथा भी है और जीवन के कोमल स्पन्दन भी है। निराला रचनावली के प्रथम खण्ड की भूमिका में नन्दकिशोर नवल जी ने लिखा है कि निराला मूलतः स्वच्छन्दतावादी कवि थे। इसलिए स्वभावतः उनकी कविता में हमें आत्म स्वीकृति और आत्माभिव्यक्ति मिलती है।

❖

IA&P-58

चित्तद्रुति और भक्ति

डॉ. अजय कुमार झा, दिल्ली

मानव जीवनदर्शन की चिन्ता-परम्परा में भक्ति की महत्ता सर्वमान्य है। यही कारण है कि पौर्वात्य और पश्चात्य साहित्य में किसी न किसी रूप में भक्ति का पर्यालोचन अवश्य हुआ है। भारतीय मनीषा ने तो भक्ति को परमानन्द सायुज्य का सर्वोत्कृष्ट साधन माना है। गीता के अनुसार ज्ञान और कर्म का पर्यावसान भी अन्ततः भक्ति में ही होता है।

शास्त्र तथा लोक में प्रतिपादित कृत्यों के प्रणिधान से चित्त में एक विशेष प्रकार का आवेग उत्पन्न होता है, जो उसे परमेश्वर से सायुज्य होने के लिए विवश करता है, यह आवेग ही चित्तद्रुति है। चित्तद्रुति भक्ति के लिए परम आवश्यक है। द्रवित चित्त ही परम सत्ता से धारावाहिक होता है तथा चित्त की परम सत्ता विषयक धारावाहिकता ही भक्ति है—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् जिस प्रकार गंगा का जल धारावाहिक होकर समुद्र जल में मिल जाता है, एकाकार हो जाता है, उसी प्रकार चित्त भी तीव्र मानसिक तापकों से द्रवीभूत होता है तथा परमेश्वर की ओर धारावाहिक होकर, परमेश्वर से मिलकर परमेश्वराकार हो जाता है। चित्त का परमेश्वराकार होना ही भक्ति है।

❖

IA&P-59

काव्यपाक एवं प्रयोग

श्री शुकदेव शर्मा, अमृतसर

यद्यपि भारतीय संस्कृत काव्यशास्त्र की परम्परा "कविर्मनीषि परिभूः स्वयम्भूः" "पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति" (अथर्व. 17.8.32) "उपमा यदेतत् तत्सदृशं" (निरुक्त.3.13) वैदिकसंहिता युग से ही किसी न किसी रूप में निर्बाधतया प्रवाहित होती आ रही है; तदपि सर्वप्रथम संस्कृत काव्यशास्त्र का नितान्त सुव्यवस्थित, सटीक, प्रमाणिक तथा वैज्ञानिक स्वरूप हमें आचार्य भरत (प्रथम शताब्दी) के 'नाट्यशास्त्र' से ही उपलब्ध होता है। चाहे, 'अग्निपुराण' (समय अनिश्चत) में विभिन्न काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों का यत-तत्र विवेचन सम्प्राप्त है; तो भी उसको 'नाट्यशास्त्र' से प्राचीन स्वीकार करना सन्देहास्पद-सा प्रतीत होता है। जहाँ एक ओर, संस्कृत काव्यशास्त्र में काव्यसम्बद्ध अनेकानेक सिद्धान्तों, तत्त्वों तथा असंख्य पक्षों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषण हुआ है, तो वहाँ दूसरी ओर, संस्कृत काव्यशास्त्र की अभिन्नाङ्गभूता 'कविशिक्षा' का भी विशद विवेचन उपलब्ध है, जो संस्कृत के परम्परागत काव्यशास्त्र को अभिनव दिशा प्रदान करने में सशक्त प्रतीत होती है। कवियों को काव्यसंसृष्टि से अभिन्नतया सम्बद्ध-कतिपय व्यावहारिक निर्देश देने के कारण ही 'कविशिक्षा' को संस्कृत काव्यशास्त्र में एक अपरिहार्य विधा के रूप में मान्यता प्राप्त हुई है।

निष्कर्षतः काव्य की परिपक्वावस्था सिद्धावस्था का नाम 'काव्यपाक' है, जिसे कवि निरन्तर अभ्यास द्वारा भाषा पर अभूतपूर्व अधिकार प्राप्त कर लेता है और इस तरह उसके वाक्य सहजतया 'परिपक्व' हो जाते हैं। वस्तुतः 'सुकवि' बनाने वाले इस काव्यशास्त्रीय तत्त्व का उन्मीलन कर काव्य अथवा कवि से सम्बद्ध असामान्य इस तत्त्व का विवेचन हुआ है। यद्यपि संस्कृत काव्यशास्त्र के आचार्य 'काव्यपाक' के विषय में मतैक्य नहीं, तदपि इसकी उपादेयता, अनिवार्यता एवं महत्ता को प्रायः सभी ने स्वीकार किया है। कुछेक आचार्यों ने 'काव्यपाक' के भेदोपभेदों की परिकल्पना के साथ इसकी नितान्त ग्राह्यता की ओर संकेत किया है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IA & P-60

काव्यसूत्रसंहिता समन्वयमहर्षी श्री गुलाबराव महाराज की काव्यशास्त्र को एक अनूठी देन

सुश्री कविता होले, रामटेक

संतपरम्परा भारतदेश की अनूठी विशेषता है। तीर्थाटन के लिए संतों ने देशभर में भ्रमण किया। अतः भारत में संस्कृति की एकता दिखाई पड़ती है। महाराष्ट्र की संतपरम्परा में ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम जैसे महान् संत हुए हैं। संतपरम्परा को आधुनिक काल में भी अक्षुण्ण रखनेवाले विदर्भ के संत गुलाबराव महाराष्ट्र का एक लोकविलक्षण व्यक्तित्त्व है। बीसवीं सदी की अलौकिक विभूति श्री. गुलाबराव का जन्म 6 जुलाई 1881 में विदर्भ अमरावती के पास लोणी-टाकली गाँव में एक सामान्य परिवार में हुआ। जन्म के बाद नौंवे मास में ही आपको अन्धत्व आया। इसके बाद लौकिक चक्षुहीन महाराज प्रज्ञाचक्षू प्राप्त होने की अनुभूति आयी। और इसी से आपका जीवन सम्पूर्णतः बदल गया। अपने धर्म की सर्व ग्रन्थ संपदा का ज्ञान पाने की लालसा से ही आपने धर्म के मूलभूत ग्रन्थ, वेद, उपनिषद् इतिहास साहित्य गाँव के लोगों से पढ़वा लिए जन्मान्ध और प्रारंभिक शिक्षण से वंचित रहकर भी इस महान् संत ने प्रगल्भ ग्रन्थसंपदा का निर्माण किया। सूत्रग्रन्थ, आकरग्रन्थ, भाष्यग्रन्थ, शास्त्रग्रन्थ, भक्तिग्रन्थ, योग, सांख्य, संगीत, आयुर्वेद, प्रकरणग्रन्थ, गाथा, निबन्ध, संवाद,117-पत्र, लोकगीत, स्तोत्रसाहित्य, चरित्र-आख्यान, विविंधरचना आदि सभी प्रकारों में ग्रन्थरचना महाराज ने की। महाराजनिर्मित प्रत्येक खंड को 'सूक्तिरत्नावली' ऐसा नामाभिधान है। उन्होंने संस्कृत, हिन्दी, मराठी, वन्हाडी और ब्रजभाषा में 133 ग्रन्थों की रचना की।

"काव्यसूत्रसंहिता" यह एक 89 सूत्रों का शास्त्रीय ग्रन्थ है। इसमें उन्होंने काव्यशास्त्र और भक्तिशास्त्र दोनों का अनुबन्ध स्पष्ट किया है। विषयानन्द से ब्रह्मानन्द तक, सामान्य कवि से साक्षात्कारी कवि तक और जड स्वभावदर्शन से भक्तिज्ञान तक सब सीढ़ियाँ इन्होंने क्रमशः रची हैं और अन्त में भक्तिरूप महारस की सिद्धि की है। महाराज संतकवि होने के साथ काव्यशास्त्रज्ञ भी थे। संतभूमिका का अनोखा संगम इन्होंने किया है। प्रस्तुत शोधनिबन्ध में ग्रन्थार्गत विशिष्ट शब्दप्रयोग, दलनिष्ठ विभाजन सूत्रशैली, गुणविचार, रसविचार, रससूत्र और काव्यचित्रैक्य इन विषयों के आधार पर सामाजिक के सामने महाराज के विचार प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

❖

IA&P-61

रूपक में भारती वृत्ति के अङ्ग आमुख की योजना

डॉ. योगिनी के. पंण्या, पञ्चमहल

इस संशोधन लेख में भारती वृत्ति का स्वरूप वर्णित करने के पश्चात् भारती वृत्ति का चतुर्थ अङ्ग "आमुख" अर्थात् "प्रस्तावना" का स्वरूप निर्देश किया है। "प्रस्तावना" के पाँच भेद नाट्याचार्य भरतमुनि,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिनवभारती, दशरूपक नाट्यदर्पण, विश्वनाथकृत साहित्यदर्पण इत्यादि काव्यग्रन्थों के सन्दर्भ के साथ विशद विवेचन किया है। आमुख का एक और भी प्रकार है, जिसे "नखकुट्ट" ने कहा है, इसका भी निर्देश किया गया है। रूपक-प्रबन्ध में प्रस्तावना के इन पाँचों में से किसी एक की ही योजना अपेक्षित है।

❖

IA&P-62

रसाद्यौचित्य का चमत्कार के साथ सम्बन्ध

प्रो. रामप्रताप, जम्मू-तवी

संस्कृतसाहित्यसम्बन्धी काव्य, नाटक, नाट्यशास्त्र एवं काव्यशास्त्र के अध्ययन और अध्यापन को करते समय रसादिकाव्यतत्त्वों तथा रसादिकाव्यसम्प्रदायों के सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक बताया जाता है। परन्तु इस चर्चा में औचित्य, चमत्कार तथा चमत्कारसम्प्रदाय की ओर बहुत कम ध्यान दिया जाता है। परिणामतः इनको यथोचित स्थान एवं महत्त्व नहीं मिल पाया है।

समीक्षा के लिए उपयोगी रसौचित्यजन्यचमत्कारादि भेदों में पहले रसादितत्त्वों का औचित्य तत्त्व के साथ जब समन्वय किया जाता है—तभी चमत्कार अथवा काव्यसौन्दर्य की सृष्टि होती है। इस प्रकार औचित्यतत्त्व रसादितत्त्वों का पूरक तत्त्व है। रसादिकों को यदि आत्मस्थानीय तत्त्व माना जाये, तो औचित्य को प्राणतत्त्व मानना चाहिए। जैसे आत्मा और प्राण के सम्मिलित होने पर ही देहयात्रा चलनी सम्भव होती है, वैसे ही काव्यगत रसादि में औचित्य के द्वारा प्राणप्रतिष्ठा हो जाती है और फिर काव्य में चमत्कार उत्पन्न हो जाता है। चमत्कारसम्पन्न यह काव्य ही काव्य कहा जा सकता है। इस प्रकार काव्य में रसादि के साथ औचित्य का समन्वय होना आवश्यक है।

आचार्य मम्मट के पूर्ववर्ती भरत, भामह, वामन, आनन्दवर्धन, कुन्तक और क्षेमेन्द्र द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदायों में रस, अलङ्कार, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति, औचित्य एवं चमत्कार तत्त्वों को काव्य की आत्मा अर्थात् काव्य के प्रधानतत्त्व के रूप में प्रतिस्थापित किया गया था। इस युग के सभी आचार्यों ने प्रत्यक्षतया अथवा अप्रत्यक्षतया रसादितत्त्वों के साथ औचित्यतत्त्व का सम्बन्ध भी जोड़ा है।

❖

IA&P-63

आचार्य गोविन्दचन्द्र पाण्डेय का सौन्दर्यदर्शन

डॉ. शिवानी तामकार, सागर

शास्त्रीय चिन्तन परम्परा में प्रो. गोविन्दचन्द्र पाण्डेय द्वारा संस्कृत भाषा में रचित 'सौन्दर्यदर्शन-विमर्शः' एक नवीन शास्त्र में परिणित होता है। ये नवीन शास्त्र को सौन्दर्यशास्त्र के रूप में प्रदर्शित

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हैं। यह कला या सौन्दर्य के स्वतन्त्र शास्त्र के रूप में एक परम्परा की आवश्यकताओं का प्रतिपादन तथा उसकी विधि की विवेचना है। यह कृति पश्चिम की सौन्दर्यशास्त्रीय परम्परा से पृथक होकर भारतीय दृष्टियों से समन्वित होकर अपना वैशिष्ट्य प्रस्तुत करती है।

प्रो. पाण्डेय से पूर्व भी अनेक दार्शनिक एवं विचारकों ने अपनी कृतियों में इस विषय पर अपना मन्तव्य प्रस्तुत किया; परन्तु शास्त्र को जिस कसौटी पर कसा जाता है, उस पर वे खरे नहीं उतरते हैं। प्रो. पाण्डेय अपने सौन्दर्यदर्शनविमर्शः ग्रन्थ को सौन्दर्यशास्त्र स्वरूपालोचनम् रूप तत्त्व विमर्शः एवं रस-तत्त्व विमर्शः इन तीन विभागों में विभाजित करके आवश्यक तर्कों का इनमें समावेश करते हुये इस सौन्दर्यशास्त्र को नवीन शास्त्र के रूप में उपस्थित करने का प्रयास करते हैं।

भारतीय वाङ्मय में सौन्दर्यशास्त्र नामक कोई नया ही शब्द है। वर्तमान युग से प्राचीन भारतीय वाङ्मय में इस शब्द का प्रयोग एवं इस नाम से सम्बन्धित किसी भी शास्त्र का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। हिन्दी भाषा में या अन्य भारतीय भाषाओं में इसका निर्देश "ऐन्द्रिय संवेदना का शास्त्र" के रूप में किया गया है। यवनानी भाषा का 'ऐस्थेसिस' शब्द जो ऐन्द्रिय संवेदना के अर्थ को प्रकट करता है। इससे उत्पन्न हुआ 'इस्थैटिक' शब्द ही ऐन्द्रिय संवेदना का शास्त्र कहलाने लगा। हमारे पाश्चात्त्य विद्वानों एवं परिशीलित पाश्चात्त्य शास्त्रों में बाउमगार्टनादि शर्मण्य देशीय आचार्यों के द्वारा 1800ई. में इस शब्द का ऐन्द्रिय संवेदन के अर्थ में ही प्रथमतः प्रयोग किया गया। वहीं सौन्दर्यशास्त्र कहलाने लगा। इसी बात को स्वीकार करते हुये आचार्य गोविन्दचन्द्र पाण्डेय ने अपनीं कृति सौन्दर्यदर्शनविमर्शः में कहा है।

सङ्गीते काव्यचित्रादौ रविचन्द्रोदयादिषु।
लोकस्य रमते चित्रमालोच्यार्थं विलक्षणम्॥

तद्धेतुर्दृश्यसौन्दर्यमक्षगोचरतां गतम्।
अन्वीक्षमाणास्तच्छास्त्रमीत्यस्य टिकेति संज्ञितम्॥

अर्थात् कला एवं प्रकृति दोनों ही के रमणीयतत्त्व के समीक्षण के लिए इस विलक्षणशास्त्र की आवश्यकता है। प्रो. पाण्डेय ने सौन्दर्यशास्त्र को एक नवीनशास्त्र के रूप में परिगणित करने का सफल प्रयास किया है। सौन्दर्यदर्शन को ध्यान में रखते हुये प्रो. गोविन्दचन्द्र पाण्डेय के अवदान को प्रकाशित करना ही इस शोधपत्र का प्रतिपाद्य है।

❖

IA&P-64

शान्तरस का स्थायिभाव

श्री श्यामानन्द मिश्र, अलीगढ़

शान्त को एक स्वतन्त्र रस मानने में आयार्यों में प्राचीन काल से रहे वैमत्य के दो प्रमुख कारण दृष्टिगत होते हैं। एक तो यह कि इसका स्थायिभाव क्या हो? और दूसरा यह कि जो भी स्थायिभाव मान्य है, वह अभिनेय हो सकता है अथवा नहीं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिनवभारती में निर्दिष्ट अनेक मतों में से एक मत तो यह है कि यतः शम अथवा निर्वेद को शान्त का स्थायिभाव मानने से भरतमुनिप्रोक्त स्थायिभावों की अष्टत्व संख्या विघटित होती है, अतः रत्यादि आठ में से प्रत्येक शान्तरस का स्थायिभाव हो सकता है। दूसरा मत यह है कि रत्यादि आठ समुदित रूप में शान्त का स्थायिभाव है, विशकलित रूप में नहीं।

परन्तु अभिनव ने इन सबका सयुक्तिक निराकरण करते हुए तत्त्वज्ञान को शान्त का स्थायिभाव माना है। यह तत्त्वज्ञान शम का ही अपरपर्याय है—

"यदि तु स (आत्मस्वभावः) एव शम शब्देन व्यपदिश्यते निर्वेद शब्देन वा तन्न कश्चित् बाधः..... तदिदमात्मस्वरूपमेव तत्त्वज्ञानं शमता च।" (अभिनवभारती, पृ. 626-27)

अन्य काव्यशास्त्रियों में धनञ्जय, रामचन्द्र— गुणचन्द्र विद्यानाथ, विश्वनाथप्रभृति आचार्यों ने शम को तथा रुद्रट, मम्मट, पण्डितराज जगन्नाथप्रभृति आचार्यों ने निर्वेद को शान्त का स्थायिभाव घोषित किया है। एतदतिरिक्त आनन्दवर्धन एवं काव्यानुशासनकार हेमचन्द्र ने तृष्णाक्षय को शान्त का स्थायिभाव माना है। अभिनवगुप्त तृष्णाक्षयसुख में 'तृष्णाक्षय-एव सुखम्' यह कर्मधारय समास मानते हुए इस तृष्णाक्षय को शम अथवा निर्वेद का ही पर्याय सिद्ध किया है।

काव्यप्रदीपकार गोविन्द ठक्कुर एवं साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ के विवेचन से तो यही प्रतीत होता है कि शम तथा निर्वेद परस्पर भिन्न हैं; परन्तु अभिनवगुप्त, सङ्गीतरत्नाकरकार एवं रसगङ्गाधरकार के विवेचन से यह स्पष्ट है कि शम तथा निर्वेद अथवा तत्त्वज्ञान पर्याय हैं।

इस प्रकार शम तथा निर्वेद शब्दों के अनेकार्थक होने पर भी अर्थविशेष के अनुसार ये दोनों शब्द शान्त के स्थायिभाव के वाचक हैं, यही तथ्य उक्त विवेचन से प्रमाणित होता है।

❖

IA & P-65

भारतीय साहित्यशास्त्र के लक्षणाविचार का रीतिवैज्ञानिक महत्त्व

आचार्य रामानन्द दुबे, वाराणसी

इस निबन्ध में स्थान-स्थान पर रीतिविज्ञान के लिए भारतीय लक्षणाविचार की देन की ओर सङ्केत किया गया है।

सहस्राधिकवर्ष पूर्व वाङ्मय में लक्षणाशक्ति के विनियोग के रूप में अनेकधा अर्थ की परिपूर्णता एवं विध्यात्मक सोद्देश्य मुख्यार्थ-बाध किया, सभी प्रायः विचलन की स्पष्ट घोषणा और उपयोजन द्वारा भारतीय मनीषियों ने रीति-विज्ञान के लिए महान् देन उपलब्ध करायी है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँ तक भाषा एक सिद्ध वस्तु के बदले एक सर्जनात्मक मानवीय प्रक्रिया के रूप में ग्रहण की जायेगी वहाँ तक लक्षणाशक्ति के विचार का महत्त्व अत्यधिक रहेगा। सच तो यह है कि भाषा निश्चित संकेतों का सहारा लेती हुई भी अनवरत रूप से विवर्तनशील है। सामान्य सन्देश को समेटते हुए वाच्येतर नवसर्जित सन्दर्भ उद्घाटित होते चलते हैं और भाषा का एक अतिरिक्त प्रयोजन मिलता जाता है। यह भाषिक रचना के साभिप्राय विचलन (वस्तुतः विध्यात्मक साभिप्राय विधान) द्वारा सुलभ होता है। सर्जनात्मक साभिप्राय विचलन के गुणों और सन्दर्भों का अध्ययन रीतिविज्ञान का क्षेत्र है। भारतीय लक्षणाविचार में इसकी समान्तर गवेषणाओं के जो परिणाम उपलब्ध हुए हैं, वे रीतिविज्ञान के लिए देन हैं।

साहित्य-स्रष्टा अर्थ को अधिक पूर्णता की प्राप्ति के लिए प्रेरणा का अनुभव करता है। वह जीवन और भाषा के विविध प्रकार के परिचित सम्बन्धों के भीतर से गुजरते हुए अतिरिक्त सम्बन्धों के लिए तादृश समीकरणों का अनवरत अन्वेषण करता चलता है। प्रचलित अर्थ के बाध द्वारा लक्षणा से प्राप्त अर्थ को अधिक व्यापक आयाम देता हुआ वह उक्त समीकरणों की खोज करता है। लक्षणा-विचार भाषा की यान्त्रिकता को तोड़कर नया सर्जन सामने लाता है। भारतीय लक्षणा-विचार का यह प्रयास इस प्रकार भी रीतिविज्ञान के लिए महत्त्वपूर्ण है।

साहित्य की अभिव्यञ्जना प्रणाली से सम्बन्धित सूक्ष्म विशेषताओं—रीति, ध्वनि, प्रतीक, अलङ्कार—के अधिकांश रूप लक्षणामूलक ही हैं। इससे लक्षणा की व्यापकता स्पष्ट है।

भारतीय लक्षणा-विचार में इस ओर ध्यान दिलाया गया है कि इसमें मुख्यार्थ-बाध वाक्य में अन्वय अथवा तात्पर्य की अनुपपत्ति को दूर करता है। मुख्यार्थ-बाध अथवा अर्थ-विचलन का एक प्रयोजन होता है, वह प्रयोजन हमें कृति के इष्टार्थ की ओर अभिमुख करता है। इस प्रकार यह तथाकथित विचलन भाषा के उपेक्षित अन्वय की पूर्ति ही करता है। भारतीय लक्षणा-विचार की यह उपलब्धि रीतिविज्ञान के लिए एक उपयोगी तथ्य प्राप्त करने में महत्त्वपूर्ण मार्ग-प्रदर्शन करती है।

❖

IA&P-66

नायक-नायिका भेद एवं रसाभास

डॉ. केदारनाथ शर्मा, जम्मू

नायक और नायिका शृङ्गार रस के आलम्बन विभाव हैं। स्त्री-पुरुष के रूप, गुण, कर्म, प्रकृति आदि के आधार पर नायक-नायिका के अनेक भेद, उपभेद किये गये हैं। नायक-नायिका भेदों के उपनिबन्धन का मुख्य प्रयोजन स्त्री-पुरुष के पारस्परिक सम्बन्धों को प्रदर्शित करना है, भले ही उनके ये सम्बन्ध सामाजिक धार्मिक, मर्यादा के अनुकूल हों अथवा प्रतिकूल। नायक-नायिका के जो भेदोपभेद सामाजिक नियमों अथवा धार्मिक मर्यादाओं के अनुकूल हैं, वे ही रस के विषय होंगे। इसके विपरीत

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नायक-नायिकाओं के जो भेदोपभेद सामाजिक नियमों अथवा धार्मिक नियमों के विरुद्ध होने से पाठक की रुचि के प्रतिकूल होंगे, उनके निबन्ध से रसाभास की ही अनुभूति होगी।

सामाजिक नियमों अथवा शास्त्रीय मर्यादाओं की कसौटी पर परखने से नायक-भेदों में केवल अनुकूल नायक ही रस की कोटि में आता है; क्योंकि इस नायक का चरित्र सर्वथा निर्मल रहता है, उसमें किसी प्रकार के अनौचित्य का संस्पर्श नहीं होता। इसके विपरीत दक्षिण, शठ और धृष्ठ नायक अपने कपट, धूर्तता एवं छिछोलेपन के कारण पाठकों की घृणा के पात्र बनते हैं, अतः नायक के ये भेद रसाभास के अन्तर्गत आयेंगे। नायिका भेदों में एक स्वकीया ही रस की कोटि में आती है। स्वकीया, मध्या एवं स्वकीया प्रगल्भा के धीरा, अधीरा, धीराधीरा के वर्णन से अप्रत्यक्ष रूप में नायक के व्यभिचार का प्रकाश पड़ता है, अतः नायिका के ये भेद रसाभास के विषय माने गये हैं। परकीया का वर्णन पाठकों की आनन्दानुभूति में सहायक होने पर भी नीति-विरुद्ध होने के कारण रसाभास की ही परिधि में आयेगा।

❖

IA & P-67

Aucitya in Uttararāmacharita

GREEJITH Y. UNNITHAN, KERALA

Sanskrit literature is vast and comprehensive. Its period of literary activity is longer than that of any other literature in the world. In intrinsic merit it is second to none. The importance of Sanskrit literature cannot be over exaggerated. The high age, the wide geographical distribution, the extent and the wealth, the aesthetic value and still more the value from the point of view of the history of culture, would fully suffice to justify our interest in this great, original and ancient literatrue.

Aucitya, the eternal principle keeps its presence in entire zones of our life. *Aucitya* the essence of poem, provides an extraordinary outlook and life to poems. *Aucitya* has great significance on the Sanskrit language. Though it is a most modern concept, it is as old as Sanskrit literature.

It is from the very earliest period that we can understood the principle of *Aucitya* in Sanskrit poetry. *Aucitya* is harmony and in one aspect it is proportion between the whole and the parts, between chief and the subsidiary, between the *Aṅgin* and the *Aṅgas.*

This presentation deals with the extent of *Aucitya* in *Uttararmacarita* written by Bhavabhūti.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IA & P-68

A thing of beauty is joy for ever, And its loveliness increases, That is all ye know And all ye need to know

DR. VIDYA KUMAR, VARANASI

These beautiful lines are written by John Keats in 'Ode To The Grecian Urn'. Beauty has always played a major role in the writing of literary works, whether they are the sonnets of William Shakespeär, written as a tribute to the dark lady of the sonnets, or the lyrics of the great Indian poet Kalidas, appreciating the beauty of Shakuntala.

The concept of literature and literary theory in India differs slightly from the western thought. In Indian literary theory poetry or 'Kāvya' is considered to be the fifth Veda. This knowledge of 'Kāvya' makes the reader understand a work of art where 'Anand' becomes the center of literary experience. Literary Aesthetics tries to identify the effect of art. In Indian theories the states of mind constitute the core aesthetic experience. Art creates these emotional states of mind and the reader tries to experience them. If a lterary work succeeds in giving enjoyment by evoking a particular state of mind then the work is considered aesthetcally satisfactory.

❖

IA & P-69

Utkalikā— A Lyrical Poetry in Simple Metres

DR. PRAMOD BHARATIYA

Sanskrit scholars have been famous for their scholarship even in the creative writings. Even today we find the poets in abundance who prefer to write poems on difficult metres. Though the poetry of blank verse has become a known Phenomenon in Sanskrit world. The Similarly the music composes are not comfortable with the long and difficult metres.

Dr. Haradatta Sharma a poet from Allahabad, has tried his best to compose his poems on very simple metres and those poems, i.e. the lyrical poems can eaily be composed by a music composer in a long. In this way, it can be said that Dr. Sharma is one of the heavy-weights in modern Sanskrit poetry. His collection of the poem 'Utkalikā' is no doubt a treatise which deals with various topics, i.e. the nature's beauty, land's beauty and the beauty of human beings. This small collection inspires the readers to go through the same in one sitting due to its lyrical compact.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IA & P-70

New Theories in the Field of Sanskrit Poetics and Dramaturgy

DR. SADASHIV KUMAR DWIVEDI, VARANASI

The entire tradition of Sanskrit poetics has been classified into six schools, which deal with the nature of ultimate poetic delight on different grounds. There have been scholars in modern time propounding original researches and theories in the field of both Sanskrit poetics and dramaturgy, apart from those established by the ancient scholars. In the period of post independence Sanskrit literary criticism, Prof. Rewa Prasad Dwivedi 'Sanātana' has acclaimed supreme position in enriching the above branches of study with his original theories, established in his books during past three decades. Rewa Prasad Dwivedi has to his credit five separate works on Sanskrit Poetics and Dramaturgy. He has written Kāvyālaṁkārakārikā on Sanskrit poetics and Nāṭyānuśāśanam in five volumes on Dramaturgy. In addition to the above he has written Sāhityaśārīrakam, Saundaryapañcāśikā and Kramapañcāśikā (both unpublished).

❖

IA & P-71

Upamā Doṣas According to Vāmana

DR. M.N. JOSHI, DHARWAD

Vāmana writes in the sutra style and also borrows the terminology of sutra writers in dividing his work into five Adhikaraṇas.

Vāmana (c. 750-850) defines poetry as consisting of word and meaning embellished by गुणाः and अलङ्काराः. These serve to contribute to the beauty and excellence of poetry. This can be affected by the avoidance of blemishes and appropriation of excellent forms of expression and figures of speech. What constitutes गुण and अलङ्कार can be understood by a study of the science of Poetics. Ultimately Vāmana finds in style (*riti*) the very soul and essence of Poetry–रीतिरात्मा काव्यस्य. Riti consists of the composition and juxtaposition of distinctive expressions. The distinctiveness in formed by the गुण which he defines later.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IA & P-72

Vāmana's Concept of Vakrokti Alaṅkāra

DR. DEB KUMAR DAS, KOLKATA

In Sanskrit literature the word 'Vakrokti' is used in the serse of irony, ridicule, etc. The earlier rhetoricians like Bhāmaha, Daṇḍin and others did not make any attempt to stablish it as a true figure of speech.

Vāmana was the first rhetorician to give a peculiar definition to the figure *vakrokti* as a mode of metaphorical expression. According to him, *vokrokti* occurs when the indicated sense is based on the idea of similarity. He has cited seven examples to illustrate *vakrokti* denoting similarity.

But close analysis will reveal that in the fifth and the seventh illustrations the presence of simile is only felt whereas in other cases there is no alaṃkāra because of the essence of beauty. In our opinion the area of *vakrokti alaṃkāra* is far more wide than Vāmana has conceived it to be. Yet it is true that the seed that Vāmana sowed and helped to germinate has now grown into a nature figure of speech. Hence, it can be said without hesitation that Vāmana's attempts in establishing Vakrokti as a seperate figure of speech are no mean achivement.

❖

IA & P-73

Ancillaries of Prahasana by Siṃhabhūpāla : A Study

DR. SUBHENDU KUMAR SIDDHANTA, WEST BENGAL

Siṃhabhūpāla (14th Century A.D.), one of the authorities on Sanskrit dramaturgy, has given a special emplasis on discussion in *prahasana*, a genre of *daśarūpaka*, in his *Nāṭakparibhāṣā* (NP) and *Rasārṇavasudhākara* (RAS.) 3rd Chapter. Sanskrit play is called *rūpaka*, i.e. having a form on account of its visibility. Among its ten varieties *prahasana* is a farce or a ridicule in the form of mimicry and mockery of the hypocracies of the society. This type of play contributes to the general mood of hilarity and evokes *hāsyarasa* (laughter) among the spectators.

It's quite obvious that the śāstric rules come up from the uses available to the authors of the śāstras. Our author must have consulted the use of different forms and we think as society changes in course of time such changes are inevitable and it appears, that Siṃhabhūpāla had no hesitation in accepting the practice of his time. A modest effort, in this paper, is made to present a study in brief of his view.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IA & P-74

Contribution of Rājacudāmani Diksita to Poetics

DR. ANAND KUMAR SRIVASTAVA, KENYA

Diksita was born in he family of a South Indian Sanskrit Scholar. The name of his father was Satyamangal Ratnakhet Srinivasadhvari and his mother was Kāmāksi. He belonged to the later half of the 16th century and the first half of the 17th century. Out of his 22 works, two books are on poetics Alankāracudāmani and Kāvyadarpana.

Alankāracudāmani deals with the figures of speech. The second book is published under the editorship of Pt. S. Subrahmanya Sastri in two volumes. The first volume comprises the matter of the first canto to the sixth canto.

Diksita is very much influenced by Mammata. He wrote the verses and vtṛttis on the plan of Kāvyaprakāsa. The vrittis of Kāvyaprākasa and Kāvyadarpana are often similar. At times the terminology of Mammata has been bodily lifted and the very examples given by Mammata are taken for analysis. But there are ample illustrations which are self invented. Like Candraolka and Kuvalayānanda, the first half of the Kārika is confined to the definitions and the later half to the examples. The criteria lad down in the first half and at places the premise almost literally conform to Mandaramaranda Campu. Most probably Krishnasarman being later, is indebted to Rājacudāmani.

Though it is a fact that there is almost no novelty or originality in the book yet its treatment of the subejct, new illustraitons and Kārikās dealing with definitions and examples have made the difficult subject of poetics easily understandable.

❖

IA & P-75

Aesthetic Elements in Sankaradeva's Poetry

SRI CHANDICHARAN GOSWAMI, ASSAM

Sri Sankaradeva (1449-1569 A.D.) was a great religeous preacher and towering literary figure of Assam. He propagated the Neo-vaishnavite ideology amidist the people of North-East India in the 15th century. To attain this objective, he translated nearly the whole of the '*Sri Bhāgavata Purāna*' and various Vaisnavite treatises. *The Kirtana* which is an anthology of several devotional Kāvyas, was one of his masterpieces. Besides, he

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

composed *Bhakti Ratnākar, Anādi Patan, Gunamālā* and some other books. These books impart to the reader the essence of Bhakti or spiritual truth and his philosophical views on life and the world, He composed some devotional songs called 'Borgeet' and created a kind of stage-performance, popularly known as 'Ankiya Bhaona'.

Sankaradeva was basically a religious preacher and to preach his religious idiology he composed a great number of religio-pieces and masterpieces. Though Sankaradava was a spiritual leader and his writing were based on spiritual doctrines, yet, they are not devoid of aesthetic values. Sankaradeva was a great litterature as well as an ingeneous artist. He is perhaps the only artist in the world who used the fine-art in an extensive manner to propagate religious doctrines.

❖

IA & P-76

The Sources of Dhvani

DR. C.UPENDRA RAO, PURI, ORISSA

All students and scholars of Sanskrit poetics know that Ānandavardhana has propounded the theory of *Dhvani* in his reputed text *Dhvanyāloka* and his theory was accepted by many who were convinced by his excellent style of writing.

But the theory of *Dhvani* was very old. Ānandavardhana himself says that this theory of *Dhvani* was well explained by the scholars who were senior to him. In fact the origin of idea of *Dhvani* can be found in the Alankaras explained by Bhāmaha and other early writers of poetics. In his work Bhāmaha defines *Samāsokti* as suggesting an idea by describing a similar one. Similarly we find an implied essence imbedded in *Paryāyokti* too. In Dandin's *Guna* called *Udāra* in its first variety is the suggestion of a quality by a suggestive description. The idea of *Dhvani* also be found in *Udāttālankara.* It is seen in the varieties of *Upamā, Pratiyamana Sadrishya* in *Vyatireka.*

Ānandavardhana himself clearly says that Udbhata has presented the cases of *Alankara-dhvani.* One *Alankara* suggesting the another but he did not describe them as *Dhvani* of *Alankāra-dhvani.*

He said certain scholars denied it altogether, certain other considered it as *Bhakti (Lakhsanas),* the secondary significance and the third group are of opinion that it is indescribable one.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IA & P-77

Poetics as Depicted in Sri Aurobindo's Poetry

DR. AMALENDU CHAKRABARTY, ASSAM

Poetry is an expression of creative mind. The creation of poetry is invariably followed by inquisitiveness, occurring in the minds of both the poet and the connoisseur, that wonders as to why be it pleasant and what is its real nature? Poetics, the philoshophy of poetry is the resultant of these queries. It is logical to surmise that poetics i.e. the critical analysis of poetry has emerged only after its creation. Among the world poets some are bestowed with the quality of creating both poetry and poetics; but in case of some others they are either poets or rhetoricians. Sri Aurobindo, among modern Indian poets belongs to the former category. In all his poetic creations with the exception of *The Future Poetry* the poetic details like its nature, its mystical character and also the poet's depth of realization and perception are seen in abundance. In this paper an attempt will be made to highlight the above facets seen in Sri Aurobindo's poetry. Emphasis will also be made to evaluate his seminal viewpoint about poetry and its creation.

❖

IA & P-78

The Aesthetic Appeal of Advaita Vedanta

DR. RAMAVARAPU SARATBABU, HYDERABAD

Indian aesthetics have a close relationship with the Vedanta school of thought from the times of yore. Even the ascetics like *Bhartrhari* took up the form of Poetry to spread their message as it impresses the reader with a heavy impact. As the technique of poetry is to educate the subject like a beloved who enmeshes her belove, it is appealing that of the *Śṛti* and the *Purāna* modes which are like the commandments and the advice of a friend in ensnaring the listener.

Realising this aspect, Ādi Sankaracārya composed many of his eclectic works in the poetic form of which *Sivanadalahari* and *Saundaryalahari* occupy the top rank in arousing the feeling of devotion in the reader. Sankara is not only the most outstanding Saint-Philosophers that the world has ever knew, but occupies the highest place, in the galaxy of poets. It is to be noted that he throws much light on the canons of Advaita Philosophy while expressing his full fledged devotion in his mellifluous verses. Perhaps he is the only writer in the world of Philosophy who harmoniously blends the dry philosophic ideas with the tender poetic imagination, thus fulfilling one of the benefits of poetry i.e. *Sivetarakasati*

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

or destruction of what is inauspicious, besides giving the instantaneous ecstasy i.e., *Sadyapharaṅirvṛti*. It is no exaggeration to say that no other writer chose this method of including philosophic ideas through the medium of poetry.

This paper is a humble effort to show how Ādisankara has attracted and motivated the people towards the advaitic school of thought.

❖

IA & P-79

Concept of Dhvani in Indian Poetics

SANDHYA B. NAIR, KERALA

The Alaṅkāraśāstra or Kāvyaśāstra occupies a lofty position in Sanskrit literature. The contribution of Sanskrit to Indian poetics is very rich. Therefore the study of kāvyaśāstra deserves careful attention.

The history of Sanskrit poetic that passed through several revolutionary period, culminated in many concept mainly Rasa, Alankāra, Gunas, Riti, Dhvani, Vakrokti, Anumiti and Auchitya. So the history of Sanskrit poetic begins with Bharata's Natyśāstra.

The concept of Dhvani theory is a pecious possession in Indian poetics. The Dhvani theory sprouted in Ānandavardhana and developed through Abhinavagupta and others will serve as a source of inspiration to the poets and critics alike in days to come.

❖

IA & P-80

Stylistic Method of Mentioning the Alankaras in the commentary of Mallinātha of Meghadūta

DIPANKAR MUKHOPADHYAY, KOLKATA

In mentioning the Alankaras of the Meghadūta, Mallinātha has some stylistic methods. In one place, he has mentioned the name of the alankaras such as *upamā, utpreksā, arthāntaranyāsa* and so on, by mentioning the definition of those particular alankaras from some rhetorical works. In the 2nd place, he has mentioned the names of the alamkāras without mentioning the difinition of the same from any authoritative texts. Finally, in some cases, he has not mentioned the name of the alamkāra, nor even quoted the definition of any alamkara, but he has suggested the alamkāras by mentioning the words like *utpreksate, upamiyate, dhvanyate* and so on.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

In simple words it can be said that, whether by mentioning the words like *dhvanyate, utpreksyate* etc. Mallinātha means or refers to the alankāras or is it a rhetorical device without mentioning the name of the alankāra. In this short paper, I shall discuss all these points thoroughly to show that Mallinātha did not refer to the alankāras when he uses these words.

❖

IA & P-81

Pratibhāsa : The Poetic Perception

SMT. SIPRA MALLICK, ORISSA

India is a great repository of cultural and literary heritage. The sheer enormity and diversity of its cultural expression in music, dance drama poetry etc. are cause of envy of many nations. The main theme of Indian art and culture is Satyam Shivam Sundaram. This it not a mere slogan but a beautiful truth, that makes Indian art everlasting and un conquerable by time. We have inherited a rich tradition of poetics commencing from Bharata to Panditaraja Jagannatha; where we have explored the sources of poetic creation. According to Bhāmaha and Dandin naisargiki pratibhā is the most important element in poetic creation. Vāmana treats pratibhā as the seed of poetry kāvyam tu jayate jatu kasyacit pratibhāvatah. Dandi also regards innate power as the cause of poetry. Mammata treats poetic genius as the germ of poetry. Ānandavardhana says that pratibhā is the root cause of poetic creation. Abhinavagupta in his Locana commentary defines pratibha or śakti as the intelligence capable of fresh inventions apurva vastunirmānaksama prajnā. He designates it as nirvikalpaka jnāna or non-discursive knowledge. Mahima Bhatta regards it as the third eye of Siva. Thus almost all Indian aestheticians have analysised the cause of creation of poetry. The vital question that arises s poetry a creation or recreation? What is this pratibha or genius? How this is expressed?

❖

IA & P-82

Jagannāth in Skanda Purāna

DR. LAXMIDHAR MALIK, DELHI

The greatness of Lord Jagannāth and the devotion to Him have trascended the frontiers of Orissa. Devout Hindus from different corners of India pour into Puri in large numbers. Some consider a pilgrimage to Puri is the ultimate desire of their life and they

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

believe that a glimpse of the Lord would enable them to attain salvation and avoid rebirth. There are numerous popular legends. Some of which are based on historical evidence and some are usually propagated by the staunch devotees.

The Purusottama Mahatmya of the Skanda Purāna tells that it was the Savara Viswavasu, who worshipped the god. It substitutes the term 'Mahāvedi Antarvedi' for vedi. It also introduces the concept of the Caturdhā Murti by detailing the manner in which the four idols were installed in the temple at Mahāvedi. Again, Skanda Purana is the first to bring out the idea of three-deity worship and also to suggest how each deity was invoked by a separate mantra or hymn. It thus lays *Purusa Sukta* for Jagannātha. *Dvādasākṣara Mantra* the Balabhadra and *Devi Sukta* for Subhadrā. The specification of the colour and dress of the three deities is also another novel feature of this purāna. Thus Skanda purana presents a vivid picture of the Jaganath cult.

❖

IA & P-83

Sahṛdaya

DEBABRATA PANDA, PONDICHERRY

A Poet is composing a poetry, but a question is coming in our mind as who is the reader of this poetry. Of course answer is very simple, but the matter is not ending here and again a doubt is creating such as who is the proper reader [or aspirant] of that poetry. Even if everybody reading the Vedanta but Sadānanda mentioned the specific qualities should be necessary for studying the Vedanta. Like that in Sanskrit poeticians, Kavi and the Saḥrdaya are really Adhikarin, Bhāmaha. This technical term Sahṛdaya is the origin of Veda. But the poeticians are using in a different name and the word Sahṛdaya has been developed by Ānandavardhana.

My paper will focus on the definations and characteristics of Sahṛdaya and the relation of Sahṛdaya with Kavi in detail.

❖

IA & P-84

The Poet, Critic Sahṛdaya Their Identity : An Indian Approach

SUDAKSHINA BANDYOPADDYAY, WEST BENGAL

The renowned scholar and literary critic, the late Subodh Chandra Sengupta, in a monograph on his illustrious student, also a great scholar and critic, the late Sadānanda

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Chakrabarti, has an occasion to say that Sanskrit poetics, otherwise so subtly analytical, confuses the issue of creation and criticism by placing the poet and the critic in the same category, they are *sahṛdayas* or like-minded people. He refers to Chakrabarty who clinces the difference between creation and criticism in a Bengali essay. Sengupta is right. The general confusion in Sanskrit poetics over the issue is unfortunate. But some literary critics were perhaps cautious in this respect and used the term *bhāvaka* for the critic. Whereas the creative faculty was called *kārayitrī pratibhā* the critical one was called *bhāvayitrī pratibhā*. The *sahṛdaya* lies in the receiving end of the aesthetic creation. He is so called because he has a heart (*hṛdaya*) equal (*samāna*) to that of the creator and of the characters created by the former. Thus in the arena of literature and, for the matter of that, art in general, there is a trio and not duo. The paper is deliberation on this issue.

❖

IA & P-85

Dimensions of Abhinavagupta's Aesthetic Perception

DR. (MRS.) A.R. TRIPATHI, SHILLONG

The aesthetic premises of Abhinavagupta partakes both the revealed and unrevealed aspects of the poetry. He has given importance to Sphota and Vyanjanā for stressing the necessity of linguistic obstruction for moving towards the deeper realm of the poetry. Indirectness of the meanings helps a reader for the transcendental perception of the aesthetic delight. The indirectness of poetic expression sharpens the aesthetic sensibility of the reader and enables him to enter in the complete solitude of his consciousness. It is the state of Parāvāc. A sensitive reader receives linguistic sign as a means to reach the state of an awareness of a higher reality. The awareness in spite of being abstract is concrete and intuitive as it can be experienced directly. A reader who owes the aesthetic experience is a pivotal part of the whole process. That is why Abhinavagupta has introduced the words like Sahṛdaya and Sumanas, for one who is having the sensible susceptibility towards poetry and is able to understand the indirectness prompted by the poet.

Abhinava did not reject the traditional aesthetics. He accepted Rasa as soul of poetry, Dhvani as vital breath, Guna the intrinsic personality, Alankāra as external feature and Auchitya (property) the right commentry of balance. Abhnava's notion of aesthetics provides the nexus through which both metaphysics and aesthetics may walk side by side. He owed much to Kasmiri Saivism at metaphysical level and Sanskrit grammar at formal level and brushed it with his own poetic compatibility.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

SUPPLEMENTARY LIST OF SUMMARIES

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-1

महाकविकालिदासस्य कृतिषु राष्ट्रचिन्तनम्

कविकुलकलाधरः, राष्ट्रकविः वर्तते। तस्य कृतिषु राष्ट्रभावना सर्वोपरि विराजते। कविवरकालिदासः राष्ट्रमङ्गलमिच्छति, अयञ्च विश्वस्य मङ्गलकामना करोति। मानवकल्यणाय कविवरकालिदासस्य कृतिषु मधुराणां शब्दानां विभिन्नस्थलेषु उपदेशो भवति। अद्य मानवसमाजः परस्परं कलहे तंथा वैमनस्ये वर्त्तते। प्रबलसमरानलः प्रज्वलति दिक्दिगन्तेषु।

कालिदासस्य दृष्ट्या नैराश्यवादस्य स्थानं नास्ति। मानवजीवने अर्थो धर्मः काम इति त्रिवर्गः। येषु त्रिषु सामञ्जस्यस्थापना अनिवार्यमस्ति। येषु त्रिषु धर्मः श्रेष्ठः।

किन्तु अर्थः कामश्च स्वसत्तार्थं धर्मस्य विरोधं कुरुतः, अद्य विश्वे धर्मविरोधी अर्थस्य तथा कामस्य प्रभावो दृश्यते। कविवरकालिदासः स्वकाव्येषु धर्माविरुद्धः कामोऽस्मि लोकेषु भरतर्षभेति मतं समर्थयति।

❖

IL-2

कारकदर्शनम्, क्रियानिर्वर्तकम्

करोति क्रियां निर्वर्तयतीति भाष्ये व्युत्पत्तिदर्शनात् क्रियानिष्पादकत्वं जनकत्वेन क्रियाऽन्वयित्वं वा कारकत्वमिति लभ्यते। कारकाणां क्रियाजनकत्वादेव तेषां क्रियायामेवान्वयः। क्रियाजनकमिति ज्ञाते सा क्रियेत्याकाङ्क्षोदयेन क्रियाया जनकाकाङ्क्षया च कारकाणां क्रियायामन्वयस्यैवोचित्यम्। क्रियान्वयित्वं कारकत्वमिति नाभ्युपगन्तव्यं 'कृषकस्य पुत्रं पन्थानं पृच्छती'त्यादौ पुत्रद्वारा कृषकस्य क्रियाऽन्वयित्वेन कारकत्वापत्तेः। तस्य चान्यथासिद्धत्वेन क्रियाजनकत्वाभावात्। अत एव षष्ठ्यर्थस्योपपदविभक्त्यर्थस्य च न कारकत्वम्।

तथा च क्रिया व्यापारापरपर्याया। भूवादयो धातव इति पाणिनिसूत्रात् क्रियावाचिनां भ्वादीनां धातुसंज्ञाविधानात्, सकलधातूनां फलानुकूलो व्यापारोऽर्थः। भाषाशास्त्रदृष्ट्यापि वाक्ये क्रिया केन्द्रबिन्दुः वाक्ये प्रयुक्तानि कारकपदानि तस्या आबद्धरूपाण्येव, तेन हि तेषां केस-CASE इति नाम सार्थकं भवति। एवञ्च संस्कृतभाषायां कारकाणि षट्।

स्पष्टतो वाक्यस्य केन्द्रस्थाने प्राथम्येन क्रियापदं तिष्ठति। द्वितीये स्तरे क्रियात्मके वाक्यसंयोजने कारकचक्रं निवर्तकरूपेण विराजते। वाक्ये क्रियापदमुत्पाद्यं कारकपदान्युत्पादकानीति। तत्र कर्तृकर्मत्वं प्रधानम्। कारकान्तराणि गौणानि।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा-प्रयोजनं भाषासम्प्रेषणम्। वाक्य एव चिन्तनं भवति, तस्याभिव्यक्तिः विभिन्नशब्दमाध्यमेन जायते। वाक्यं क्रियात्मकं भवति। तेनैव महाभाष्ये पतञ्जलिमहर्षिणा एकतिङ् वाक्यमिति लक्षणं कृतम्। अतः कारकसंयोजने क्रियादर्शनमेव व्याकरणतत्त्वजिज्ञासूनां प्रमाणम्।

❖

IL-3

वाक्यसंघटनक्रमे कारकाणां महत्त्वं वैशिष्ट्यं तत्स्वरूपानुशीलनञ्च

इह जगति सुस्पष्टतया सकललोकव्यवहारनिर्वाहार्थं भाषैव जुषते प्रधानभावम्। भाषामन्तरेण जना न प्रभवन्ति सुस्पष्टरूपेण नैजमाशयं प्रकाशयितुम्। आशयमप्रकाशयन्तश्च किञ्चिदप्यनुष्ठातुं न पारयेषुः। अतो भाषाया महत्त्वं सर्वतोभावेन वरीवर्ति। भाषयापि तया सुसंस्कृतया भवितव्यम्। सुसंस्कृता च वाक् शब्दसाधूत्वमपेक्षते। शब्दसाधुत्वावबोधस्तु सम्यग्रूपेण प्रकृति-प्रत्ययतत्तदर्थविभागान्वाख्यानादिना व्याकरणशास्त्राधीनो विद्यते। अतो व्याकरणशास्त्रस्य महत्त्वम्।

तत्र शब्दसाधुत्वावबोधे शब्दपदेन 'वचोऽशब्दसंज्ञायाम्' पा.सू. 6।3।67, इति सूत्रानुरोधेन वाक्यमेव गृह्यते। वाक्यञ्च सर्वमपि कारकानुवेधपुस्सरमेव सङ्घटत इति वाक्यसङ्घटनक्रमे कारकाणां महत्त्वमुपयोगित्वं वैशिष्ट्यञ्च सर्वोपरि पर्यालोच्य कारकस्वरूपानुशीलनं विचारपथमायाति।

तत्राधोनिर्दिष्टविषयक्रमानुरोधेन प्रस्तुतः शोधनिबन्धः समीक्षणीयो वर्तते।

1. वाक्यलक्षणम्।
2. वाक्यलक्षणावधारणे नैयायिक-मीमांसक-वैयाकरणादिमतसमीक्षणपूर्वकं वस्तुतत्त्वप्रकाशनम्।
3. वाक्यसङ्घटनक्रमे कारकाणामुपयोगित्वं महत्त्वं वैशिष्ट्यञ्च।
4. कारकस्वरूपपर्यालोचनम्।
5. क्रियान्वयित्वं कारकत्वं क्रियाजनकत्वं वेति लक्षणद्वयस्य औचित्यानौचित्यविवेचनद्वारा सिद्धान्तपक्षप्रकाशनम्।
6. वाक्यस्य सखण्डत्वाखण्डत्वमीमांसा।
7. वाक्यार्थबोधे (शाब्दबोधे) मुख्यविशेष्यविशेषणभावस्य मीमांसक-नैयायिक-वैयाकरणमतालोचनपुरस्सरं राद्धान्तोपस्थापनमिति सप्तविषयाः प्रस्तुता भविष्यन्ति।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-4

विशिष्टद्वयाछत्तित्वविचारः

न्यायशास्त्रे प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः प्रमाणानि इति प्रसिद्धिः वर्तते। तत्र अनुमानखण्डे बहवः ग्रन्थाः रचिताः। विशिष्य गदाधरभट्टाचार्यकृतहेत्वाभाससामान्यनिरुक्तेः तैर्विरचितानि ज्ञातापिकानि क्रोडपत्राणि सन्ति। तेषु द्वित्राण्येव कालीशाङ्करीयादिपत्राणि मुद्रितानि। सामान्यनिरुक्तिवाक्यार्थेनैव विद्वांसः ख्यातिं प्राप्नुवन्ति इत्यत्र नास्ति संशयलेशोऽपि। क्वचित् प्रदेशेषु सामान्यनिरुक्तिविवेचनाभिधानं क्रोडपत्रमधीयते।

इह भूतले सर्वेषां मानवानां श्रेयस्साधनं बोधयितुमवतीर्णेषु चतुर्दशविद्यास्थानेषु न्यायविस्ताराख्यस्य शास्त्रस्य अस्त्यनितरसाधारणं महत्त्वम्। महर्षिगौतमप्रणीतन्यायदर्शनमारभ्य न्यायाचार्यश्रीमदुदयनप्रणीत-कुसुमाञ्जल्यादिपर्यन्तानां ग्रन्थानां प्राचीनन्यायपदेन श्रीमद्-गङ्गेशोपाध्यायप्रणीततत्त्वचिन्तामणिमारभ्य गदाधरभट्टाचार्यादिप्रणीतग्रन्थपर्यन्तानां प्रबन्धानां नव्यन्यायपदेन य व्यपदेशः शास्त्रज्ञेषु सुप्रसिद्धो वरीवर्तते। नव्यन्यायग्रन्थाः सूक्ष्मार्थग्रहणसमर्थकुशाग्रधिषणावद्भिः प्रौढपण्डितैरेव सम्यगवगन्तुं शक्याः न सर्वैः। तत्रापि क्रोडपत्रनामानः ये नव्यन्यायग्रन्थास्सन्ति ते वादाहवकुशलानां पण्डितानां मुखान्निर्गताः।

अस्मिन् सन्दर्भे गदाधरभट्टाचार्यकृतहेत्वाभाससामान्यनिरुक्तौ द्रितीयलक्षणे विशिष्टद्वयाघटितत्वविचारः प्रस्तूयते।

यादृशविशिष्टविषयकनिश्चयविशिष्टयादृशविशिष्टविषयकनिश्चयत्वमनुमितिप्रतिबन्धकतानतिरिक्तवृत्ति तादृश-विशिष्टद्वयाघटितत्वे सतीतिगदाधरीपङ्क्तिः।

अत्र तादृशविशिष्टद्वायधटित्वं नाम तादृशविशिष्टद्वयाविषयिताशून्यज्ञानविषयत्वमित्यर्थः।

तच्च यदि तादृशविशिष्टविषयिताशून्यत्वे सति तादृशविशिष्टविषयिताशून्यज्ञानघटितं तदा ब्रह्मभाववद् ह्रदादिरूपदोषः नास्ति दावा ह्रदो वह्निमान्—वहिन्नव्याप्यधूपवान् चेत्याकारकानुपपतिं प्रति बह्नयभाववान् धूपाभावना वह्नयभाववाश्च ह्रद इत्याकारनिश्चयस्य प्रतिबन्धकतया तादृशप्रतिबन्धकतानतिरिक्तवृत्युक्तनिश्चय-विशिष्टवह्नयभाववद्ह्रदविषयकनिश्चयत्वमपीति वह्नयभाववद्ह्रदविषयिवाशून्यत्वस्य ह्रदो बह्यभाववानिति ज्ञानेऽसत्त्वात्।

विशिष्टद्वयाघटितत्वनिवेशापेक्षयोक्तनिवेशस्यातिगुरुत्वात्। एवं निखच्छिन्नसाहदाभाववत्पक्षस्य बाधतामते उक्तबाधसङ्ग्रहाय तादृशप्रतिबन्धकतावैशिष्ट्यघटकप्रतिबध्यतानवच्छेदकविषयतायां निखच्छिन्नत्वघटक-विषयताभेदस्य निवेशनीयता तत्र घटत्वनिर्वचनस्य च गुरुत्वादिति ध्येयम्।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PR-5

भावातीतं योगरहस्यम्

युजिर् समाधौ विहितोऽस्ति धातुः। तस्माद् धञि निष्पद्यते योगशब्दः कश्चन ब्रह्मसाक्षात्कारस्य सङ्केतकः। पृथक् पृथक् सत्तया स्थितयोरथवा बहूनां पृथक् पृथक् सत्तया स्थितानाम् एकीभावो योगः कथ्यते।

तत्र भावातीतध्यानमेकः अनुभवः अस्ति। यथा प्रेमा, आनन्दः सुखञ्च मानसो विविधानुभवाः तथैवेदं ध्यानमपि मनसः एका अनुभूतिरस्ति। विशेषतो ध्याननामतः सेयं मनः शरीरयोः सहसम्बन्धस्थापयित्री एका प्रक्रिया भवति, याऽस्मान् विचारस्रोतः सम्पर्कं प्रापयति—

विचाराणां स्रोतो भवति विषयः प्राञ्जलमते-
रियं भावातीता दिशि दिशि तुरीया च कथिता
चतुर्थी चिद्रूपा नवनवसमुन्मेषजननी
परं धन्या लोकान् प्रगतिसहजन्यान् वितनुते।

अत्र वै विचारमयीं मनश्चञ्चलतां लघूकृत्य स्नायुसंस्थानं शान्तिं नीयते। तदाऽनुभूयते विश्रामशीला जागर्तिः। इयमेव जागर्ति-स्वप्न-सुषुप्तीरतिक्रम्य तुरीयावस्था कथ्यते भावातीतचेतना। अस्यां स्थितौ महर्षिप्रामाण्येन दिव्यः सर्वव्यापकश्च परमानन्दः अनुभूयते समं सफलतया क्रियाशीलतया।

❖

MS-6

श्रीमातुरानन्दमय्याः सुरभारत्यामवदानम्

आत्मस्वरूपिणी श्रीमताऽऽनन्दमयी भगवदैश्वर्येण सहैव युगकल्याणाय आविर्भूता चेह धरणीतले। युगप्रयोजनात् निर्गुणनिराकारः सगुणसाकाररूपं धृतवान्। मातृरूपे देहधारणं श्रीभगवतोऽभिनव एको लीलाविलासः मातृरूपे भगवदन्वेषणं सहजतमं प्रतिभाति। मातुः स्नेहनिर्झरधारायामवगाहनेन सम्पूर्णकालिम्नः ग्लानेश्चापसारणं सुनिश्चितम्। अतः साम्प्रतं मातृरूपेण भगवदवतरणम्। श्रीमाता मानवमातृरूपेण सर्वेषां कृते स्वात्मानं पूर्णरूपेण समर्पयामास। स्नेहसेवासौजन्येषु लीलाविलासवर्षणमभूद् मातुरजस्रधाराभिः मातुर्निखिलभावा आनन्दमयाः। आनन्द एव यस्या उपादानम्, आनन्दे एव याऽवस्थिता। या चेह भुवि आनन्दलीलां विधातुम् आनन्दघनमूर्तिं धृता आनन्दविग्रहा।

ईश्वरः सर्वज्ञः सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापकश्च ईश्वरस्य अनन्तैश्वर्याणां प्रकाश अति सहजतया श्रीमातुर्मध्ये प्रकाशितोऽभूत्। साधनालीलायां श्रीमातुः श्रीशरीरादेव अनन्तदेवदेवीनामाविर्भावः प्रकाशश्चाभूत् पुनश्च मातुः श्री-शरीरे विलीना अभवन् देवीदेवताः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री श्री मातुः श्रीमुखात् स्वतः विनिःसृता सुरभारतीयं सत्यवाणी अपूर्वरूपेण प्रवाहिता। ततः किञ्चिदुद्धरामि—"भावमयं भवभयहरणं हे"।

बहूनि स्तोत्राणि विनिःसृतानि। पण्डितप्रवरगोपीनाथकविराजमहाभागाः द्वित्रशब्दानामर्थबोधपूर्वकमुक्त वन्तः यदेषा यथार्थवेदभाषा। मर्त्यलोकसंस्कारैः सह एतस्या अर्थबोधो न सम्भवतीति।

❖

IA & P-7

काव्यात्मतत्त्वम्

काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति श्रीमदानन्दवर्धनाचार्यः प्रतिपादयन् काव्ये ध्वनिमेवात्मतत्त्वरूपेण प्रतिपादितवान् परन्त्वत्र विचारणीयं यत् किमिदमात्मतत्त्वं काव्येषु सहृदयहृदयग्राह्यमिति।

केचन आचार्याः काव्येषु प्रमुखं तत्त्वं रसं स्वीकृतवन्तः, अन्ये मुख्यतमं सहृदयहृदयाकर्षकपरमाह्लादजननं तत्त्वमलङ्कारमाचचक्षिरे। अपरे मनीषिणः प्राहुः पदसङ्घटना नाम रीतिरेव काव्यस्यात्मा, केचन वक्रोक्तिम्, अपरे औचित्यमिति काव्यात्मत्वेन प्रतिपादितवन्तः, अपरेषामुक्तिरियं वर्तते यत् काव्येषु सौन्दर्यं व्यङ्ग्यार्थेनैव सम्भवति, व्याङ्ग्यार्थप्रधानं काव्यं ध्वनिरिति अभिधीयते, स ध्वनिरेव काव्यस्यात्मा एवं प्रकारेण काव्यशास्त्रेतिहासे अनेकेषां सम्प्रदायानां प्रादुर्भावो बभूव। यथा—1. रससम्प्रदायः, 2. अलङ्कारसम्प्रदायः, 3. रीतिसम्प्रदायः, 4. वक्रोक्तिसम्प्रदायः, 5. औचित्यसम्प्रदायः, 6. ध्वनिसम्प्रदायः।

काव्यशास्त्रसम्बन्धिनां विभिन्नां सम्प्रदायानामुत्पत्तिं स्थितिञ्च विश्लेष्य काव्यात्मतत्त्वं निरूयत्यत्रनिबन्धे।

❖

IA & P-8

अलङ्कारकौस्तुभोक्तोपमालक्षणविमर्शः

श्रीविश्वेश्वरपण्डितप्रणीतोऽलङ्कारकौस्तुभो रसगङ्गाधरशैल्या समुल्लसन्नलङ्कारशास्त्रस्यान्तिमः प्रौढो ग्रन्थः। इह 'तत्रैकवाक्यवाच्यं सादृश्यं भिन्नयोरुपमा' इत्युपमायाः सरलं लक्षणमभिहितं पश्चाच्च तस्याः परिष्कारः 'यत्सादृश्यप्रतियोगितायामुपमेयतावच्छेदकावच्छिन्नत्वस्वाश्रयमात्रवृत्तिस्वानवच्छेदकधर्मसामानाधिकरण्योभयाभावः सोपमा' इति कृतः। अत्रत्यं पदकृत्यं ग्रन्थकृता स्वयमेव मूले स्वीयव्याख्यायां च प्रदर्शितम्। इह तेन 'केषाञ्चिन्मते सादृश्यमेवोपमा, अन्येषां मत उपमानवृत्तिसादृश्यप्रतियोगित्वमेवोपमा, चन्द्र इव चन्द्रो मुखं च रमणीयमित्यत्रोपमानन्वयसमूहालम्बनविषये चन्द्रनिष्ठा चन्द्रनिष्ठया मुखनिष्ठया चोपमेयतया निरूपिता सादृश्यप्रतियोगिता भिन्नैव, चन्द्रे सादृश्यप्रतियोगिताद्वयम्, स्वमुखनिष्ठोपमेयताद्वयनिरूपितत्वात्, प्रतियोगिता पदार्थान्तरम्' इत्यादयोऽलङ्कारशास्त्रिणां कृते नूतना अर्था निगदिताः। अतः स्वबुद्धिवैशद्याय जिज्ञासूनां कृते चोक्तसंज्ञके प्रस्तोष्यमाणे शोधपत्रेऽस्मिन् मदीयो लघीयान् प्रयासः।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

V-9

श्रौतयागों में निहित वैज्ञानिक रहस्य

डॉ. प्रयागनारायण मिश्र, लखनऊ

'अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः' इत्यादि रूप में प्रोक्त विश्व-नाभि यज्ञ को 'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म' इत्यादि वचनों द्वारा भारतीय धर्म और संस्कृति का आत्म तत्त्व स्वीकार किया गया है। पर्यावरणीय समस्त पदार्थों में अनुस्यूत अग्नि यज्ञों का मूल है। अग्नि के विविध रूपों में वैतानिकाग्नि के नाम से अभिहित पञ्चविध श्रौताग्नियों का विशिष्ट महत्त्व उसके बहुविध वैज्ञानिक रहस्यों के कारण ही लोक-विश्रुत है।

प्रकृति तथा पर्यावरणीय-तत्त्वों के गर्भ में निहित अग्नि की सहायता से यज्ञ-सम्पादन करके प्राकृतिक-सन्तुलन स्थापित करने के साथ-साथ कार्बनडाई आक्साइड के चक्र को स्थिर करके पर्यावरण-परिशोधन की मौलिक परिकल्पना को साकार किया जा सकता है। यज्ञों में बहुशः प्रयुक्त 'आलम्भन' आदि पद 'यज्ञीय पशु का शास्त्रोक्त विधि से स्पर्श करके किये जाने वाले पशूत्सर्जन' अर्थ के द्योतक होकर प्राकृतिक सन्तुलन की ओर ही सङ्केत करते हैं।

अखिल सृष्टि-विज्ञान का मौलिक रहस्य श्रौतयागों के मूल में निहित है। पृथिवी की उत्पत्ति अर्थात सृष्ट्युत्पत्ति के अप्रतिम रहस्यों के साथ-साथ जगत्-रचना के अनेक वैज्ञानिक रहस्य वैदिक श्रौतयागों के वैशिष्ट्य हैं। अश्वमेधादि यज्ञों के विविध प्रतीकात्मक प्रयोग आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक अर्थों के साथ-साथ विविध वैज्ञानिक रहस्यों के प्रकाशक हैं। अतः निष्कर्षत्वेन कहा जा सकता है कि श्रौतयागों के विविध प्रयोग सोपानों में सृष्टिविज्ञान, पर्यावरण-विज्ञान, आयुर्विज्ञान, ज्यामिति, खगोल-विज्ञान, परमाणु-विज्ञान, धातुविज्ञान, जीवविज्ञान तथा रसायन विज्ञान आदि बहुविध वैज्ञानिक रहस्यों के तात्त्विक एवं सारगर्भित विवेचन अत्यधिक रोचक ढङ्ग से किये गये हैं, जिनका प्रामाणिक अध्ययन अनुसन्धान का विषय है। वैदिक यागों में गर्भित इन्ही वैज्ञानिक रहस्यों को अध्ययन का विषय बनाकर प्रस्तुत शोध-पत्र को अपनी शोध-दृष्टि से अभिमण्डत करने का स्वल्प प्रयास किया गया है।

❖

CS-10

भारतीय दाम्पत्य जीवन पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव

भारतीय साहित्य में जिन परम्परागत संस्कारों का निर्धारण हुआ, उसका मुख्य उद्देश्य था—व्यक्तित्व का विकास एवं चरित्र का निर्माण। संस्कारों का सम्पादन एक रूढ़ि या अन्ध-परम्परा का निर्वाहमात्र नहीं है, बल्कि वह एक विशिष्ट उद्देश्य को दृष्टि में रखकर प्रवर्तित किया गया प्रतीत होता है। इस तथ्य की पुष्टि आचार्य शङ्कर द्वारा 'ब्रह्मसूत्र' पर किया गया शाङ्करभाष्य से हो जाती है। संस्कारों के सम्बन्ध

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में अपना मन्तव्य प्रकट करते हुए उन्होंने स्पष्ट कहा है कि संस्कार दोषापनयन तथा गुणाधान करने वाले होते हैं। इन संस्कारों को स्वीकार करते हुए इसे महत्त्वपूर्ण माना गया।

इन संस्कारों की झलक कालिदास द्वारा किए गये दाम्पत्य चित्रणों में भी द्रष्टव्य होता है। उनकी रचनाओं में दाम्पत्य के विभिन्न चित्र दृष्टिगत होते है। उन्होंने भी संस्कार को गुण या योग्यता के वर्धक माने हैं।

❖

CS-11

'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में चौंसठ कलाएँ

'काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला' संस्कृत काव्यजगत् के सर्वश्रेष्ठ महाकवि कालिदास के सर्वश्रेष्ठ नाटक 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के विषय में कही गई यह उक्ति शतशः सत्य है। इसमें जितना भी अवगाहन किया जाये, उतने ही विविधवर्णक मौक्तिक प्राप्त होते है।

'अभिज्ञानशाकुन्तल' पर प्रायः सभी दृष्टियों से विश्लेषणात्मक और गवेषणात्मक शोधकार्य किए जा चुके हैं, परन्तु 'अभिज्ञानशाकुन्तलम् में चौसठ कलाएँ' इस विषय पर सम्भवतः अभी तक कोई कार्य नहीं किया गया है।

वस्तुतः कला के कई अर्थ किए गए हैं, परन्तु उनमें से प्रमुख दो हैं—

1. कं सुखं लाति इति कला—जो सुख और आनन्द प्रदान करने वाली है।

2. किसी भी कार्य को करने में यदि किसी निपुणता अथवा कुशलता की आवश्यकता पड़े, तो वह उस कार्य को करने की कला मानी जायेगी।

इन दो मुख्य अर्थों के अनुरूप ही अभिज्ञानशाकुन्तल में चौंसठ कलाओं का विवेचन करने का यथाशक्ति प्रयास प्रस्तुत लेख में किया गया है। चौंसठ कलाओं में से 48 कलाओं का उल्लेख इस नाटक में प्राप्त होता है। इन 48 कलाओं का क्रमानुसार विवेचन यहाँ किया गया है। कुछ कलाएँ इतनी अधिक परस्पराश्रित और अन्योन्याश्रित हैं कि उन्हें पृथक् कर पाना असम्भव है, अतः इनका निर्देश एक साथ ही किया गया है।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् में प्राप्त होने वाली कलाएँ हैं—गीत, वाद्य, नृत्य, चित्रकारी, तण्डुलकुसुमबलिविकार, पुष्पास्तरण, दशनवसनाङ्गराग, मणिभूमिकाकर्म, शयनरचना, उदकघात, चित्रयोग, माल्यग्रथनविकल्प, शेखरकापीडनयोजन, नेपथ्यप्रयोग, गन्धयुक्ति, भूषणयोजन, कौचुमारप्रयोग, विचित्रशाकयूपभक्ष्यविकारक्रिया, पानकरसरागासवयोजन, सूचीवानकर्म, प्रहेलिका, पुस्तकवाचन, नाटकाख्यायिकादर्शन, पट्टिकावेत्रवानविकल्प, तक्षकर्म, रूप्यरत्नपरीक्षा, धातुवाद, मणिरागाकरज्ञान, तक्षण, वास्तुविद्या, वृक्षायुर्वेद, शरीर और सिर की मालिश करना, अक्षरमुष्टिकाकथन, म्लेच्छित-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकल्प, देशभाषाविज्ञान, निमित्तज्ञान, यन्त्रमातृका, सम्पाठ्य, मानसीकाव्यक्रिया, क्रियाकल्प, अभिधान-कोश, छन्दोविज्ञान, छलितयोग अथवा बहुरूपियान, आचारशास्त्र, विजय दिलाने वाली विद्याएँ तथा व्यायाम।

इस प्रकार अभिज्ञानशाकुन्तल में 64 में से 48 कलाओं का सुन्दर सन्निवेशन कलाकोविद दीपशिखा कालिदास की अप्रतिम प्रतिभा का परिचायक है।

❖

IS-12

मुकुन्द शब्दकोष एक समीक्षा

भारतीय कोष परम्परा का प्रारम्भ निघण्टु से माना जाता है, जिसमें वैदिक शब्दों का संग्रह और विश्लेषण है। प्रायः सभी कोषाकारों ने अपने कोषों में संग्रहीत शब्दों का व्याकरणात्मक एवं व्युत्पत्तिपरक विवेचन की है। कोषग्रन्थों के इतिहास में सर्वाधिक महत्ता अमरकोष को प्राप्त है। इसके अतिरिक्त शब्दकल्पद्रुम व वाचस्पत्यम् आदि कोष भी अपने विस्तृत कलेवर के कारण स्मरणीय हैं। प्राचीन कोषों में कोषरचना के किसी एक पथ का अनुकरण करके शब्दों को संकलित किया गया है। कोषग्रन्थों की इस परम्परा में श्रीमुकुन्द पर्वतीय द्वारा रचित मुकुन्दशब्दकोष अपने कलेवर व वैशिष्ट्य के कारण अपना अलग स्थान रखता है।

यह कोष जहाँ अपने विस्तृत शब्दसमूह के कारण उपयोगी है, वहीं विविध प्रकार के कोष निर्माण की शैली के समन्वय की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। वर्ग विभागजन की दृष्टि से यह एक ओर अमरकोष से साम्य रखता है, वहीं शब्द की व्युपत्ति व प्रयोग स्थलों के निदर्शन से यह शब्दकल्पद्रुम व वाचस्पत्यम् का अनुकरण करता है। यह बृहद् कोष 105 वर्गों में विभक्त है। इस कोष के प्रत्येक वर्ग में शब्दों को सङ्गतिक्रम में उपन्यस्त किया गया है। यहाँ उपन्यस्त शब्द इस प्रकार निरूपित हैं कि उनके भेदोपभेद भी उसी स्थल पर स्पष्ट हो जाते हैं। एक शब्द के जितने भी पर्याय हो सकते हैं, उन सभी प्रसिद्ध अप्रसिद्ध पर्यायों का संकलन भी कर दिया गया है, कुछ नये शब्द व पर्याय भी ग्रन्थकार ने प्रस्तुत किये हैं, जो अन्य कोषों में प्राप्त नहीं होते। अप्रसिद्ध शब्दों को टिप्पणी में प्रकृति-प्रत्यय सहित प्रस्तुत किया गया है। अपने कथन व विवेचन की पुष्टि में ग्रन्थकार ने शास्त्रीय प्रमाणों को प्रस्तुत कर अपनी प्रामाणिकता सिद्ध की है। शब्दों के अर्थावधारण में अर्थों की वाचकता और शब्दावधारण प्रक्रिया में ग्रन्थकर्त्ता की सूक्ष्म दृष्टि के दर्शन होते हैं। नवीन कोषपरम्परा में यह कोष अपनी अलग अलग छाप छोड़ता है, इस दृष्टि से इसकी समीक्षा की जानी अपेक्षित है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

PB-13

जातकमालाकार आर्यशूर का काल-निर्धारण

अश्वघोष, मातृचेट और आर्यशूर के विषय में पर्याप्त ज्ञान के अभाव में तीनों को अभिन्न मानने का भ्रम विद्वानों को होता रहा है। अश्वघोष के मातृचेट, आर्यशूर आदि नामों का चीनी तथा तिब्बती इतिहासकारों ने उल्लेख किया है। तारानाथ के विवरणानुसार प्रो. मैक्समूलर ने आर्यशूर, अश्वघोष, पिट्रिकेट, माटिकिट्र आदि को एक ही व्यक्ति बताया है।

डॉ. पी.एल. वैद्य, डॉ. विण्टरनिट्ज, जी.के. नारीमन, डॉ. आर.सी. द्विवेदी एवं प्रो. भट्ट जैसे अनेक विद्वानों ने आर्यशूर को कुमारलात की 'कल्पनामण्डतिका' (सूत्रालङ्कार) का अनुसर्त्ता कहा है। बहुत सम्भव है कि शैलीगत साम्य तथा आर्यशूर के जीवन विषयक अज्ञान के कारण अश्वघोष व आर्यशूर में अभिन्नता मानी जाने लगी हो; क्योंकि अभी तक सूत्रालङ्कार या कल्पनामण्डतिका अश्वघोष की ही रचना मानी जाती थी। 405 श.ई. में इसका चीनी अनुवाद करने वाले कुमारजीव अश्वघोष को इसका लेखक बताते हैं, जबकि मध्य एशिया से प्राप्त इसके मूल संस्कृत के कतिपय अंशों से यह कुमारलात की कृति सिद्ध होती है। एवमेव मातृचेट तथा आर्यशूर एक नहीं हो सकते; क्योंकि मातृचेट निर्विवादरूपेण कनिष्क के समकालिक हैं, जबकि आर्यशूर का काल तृतीय श.ई. से पूर्व कथमपि सिद्ध नहीं किया जा सकता है।

यह तो सर्वविदित है कि जातकमाला का चीनी अनुवाद 960 ई. से 1127 श.ई. के मध्य हुआ। ईत्सिंग के अनुसार सातवीं शती के अन्त में भारत में जातकमाला का व्यापक प्रचार था। एवमेव अजन्ता की दीवारों पर जातकमाला के क्षान्तिवादी, मैत्रीबल, रूरू, शिबि, महाकपि, महिष आदि जातकों के दृश्य और उनके श्लोक उद्धृत हैं। श्लोकों की लिपि छठी शती की है। अतः अनुमानतः जातकमाला की ख्याति 5वीं श.ई. तक हो चुकी थी। चूँकि आर्यशूर के द्वारा कर्मफल के ऊपर लिखित एक सूत्रग्रन्थ का चीनी अनुवाद 434 ई. में हुआ। अतः कवि चतुर्थ श.ई. से बहुत बाद का नहीं है।

❖

H-14

कौटलीय अर्थशास्त्र : साम्प्रतिक परिप्रेक्ष्य में समता एवं विषमता

भारत इतिहास की दृष्टि से आशाजनक भूमि रहा है। पुरातन काल से वर्तमान तक विश्व के जिज्ञासा-नेत्र इस भूमि का निर्निमेष अवलोकन करने को बाध्य रहे हैं। मनीषियों, विचारकों ने विकास के समग्र आयाम भारतवर्ष में स्थापित किये हैं, इस शृङ्खला में 'कौटिल्य' विश्वविख्यात संज्ञा है। विश्व को चमत्कृत तथा पाश्चात्य विचारकों की कुण्ठित मानसिकता को निराधार सिद्ध कर देने वाला ग्रन्थ 'अर्थशास्त्र' उनका मौलिक सृजन है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्व साम्राज्य का एकाधिपति होना, सम्प्रभुतासम्पन्न राष्ट्र होना प्रत्येक राज्य का राजनीतिक उद्देश्य है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु सम्बन्धों, अनुबन्धों, सम्पर्कों और संघर्षों का चक्र निरन्तर चलायमान रहता है। राष्ट्र के आन्तरिक एवं बाह्य संघटकों के संयोजन, संचयन, प्रबन्धन द्वारा राज्य सतत उपरोक्त उद्देश्य की पूर्ति में लगा रहता है। विदेशनीति इस उद्देश्य की पूर्ति का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। यह एक गतिशील प्रक्रिया है। पद्धतियों, सिद्धान्तों, युक्तियों एवं नीतियों का समुच्चय कौटिल्य ने राष्ट्र की विदेश-नीति में राज्य के उद्देश्यपूरणार्थ स्थापित किया है। प्रभुसत्ता समग्रता हेतु उन्होंने पुरुषार्थवादी, उपयोगिकतावादी, यथार्थवादी, शक्ति एवं विस्तारवादी, सार्वभौमिक, सार्वदैशिक सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं।

विदेशनीति में जनप्रबन्धन, विदेशनीति में जनपद-प्रबन्धन, आर्थिक प्रबन्धन, सैन्य-प्रबन्धन आदि प्रबन्धन कौटिल्य ने विदेशनीति के आन्तरिक एवं बाह्य उभयपक्षों को समवायरूप मानकर प्रस्तुत किये हैं। प्रस्तुत शोधपत्र में वर्तमान से समता एवं विषमता का संक्षिप्त रूप भी प्रस्तुत किया गया है। शोधपत्र विस्तार में उपर्युक्त विषयों पर मौलिक व्याख्यान प्रस्तुत है।

❖

H-15

बाणकालिक भारत में मन्त्रिपरिषद्

महाकवि बाणभट्ट की दोनों कृतियों में से हर्षचरितम् में हमें तात्कालिक भारतवर्ष की राजनैतिक व्यवस्था का चित्रण अधिक मिलता है। शासन संचालन में राजा का मन्त्रिमण्डल उसकी सहायता करता था, जिसका लाक्षणिक नाम अमात्य-परिषद् या मन्त्रिपरिषद् था।

मन्त्रिपरिषद् नामक प्रस्तुत विशद आलेख में इसका ही विस्तृत वर्णन है। राजा तथा मन्त्री प्रमुख अर्थात् प्रधान अमात्य के पारस्परिक सम्बन्धों के साथ मन्त्रिपरिषद् की प्रधानता का भी उल्लेख किया गया है। इस मन्त्रिपरिषद् के गठन में मन्त्रियों की नियुक्ति की प्रक्रिया को भी प्रकाशित किया गया है। यद्यपि उस समय वह वंशपरम्परा पर आधारित थी, तथापि योग्यता को भी उतना ही महत्त्व दिया जाता था। तदन्तर मन्त्रिपरिषद् के कार्य तथा उसके बहुविध कर्त्तव्य तथा दायित्वों को प्रतिपादित किया गया है। यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि यह मन्त्रिमण्डल एक तरह से प्रजातन्त्रीय तत्त्व थे, जो राजा के स्वेच्छाचरण पर एक बड़ी रोक प्रमाणित होते थे।

मन्त्रिपरिषद् के सदस्यों के सामूहिक प्रयत्न, सामाजिक कार्य तथा समाजहित में किए गए दायित्वों का उल्लेख किया गया है।

मन्त्रिपरिषद् में सर्वप्रथम प्रधानमन्त्री को विशेषाधिकार प्राप्त था, जिसे इस रूप में बताया गया है कि यह अवश्य ही विशेष योग्यता वाले व्यक्ति के रूप में होगा। तत्पश्चात् वैदेशिक मन्त्री का स्थान आता है, जिसका स्वरूप आज की राजनीतिक व्यवस्था से मिलता-जुलता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यायमन्त्री का पद भी इतना ही महत्त्वपूर्ण है। यह तथ्य विशेष रूप से ध्यातव्य है कि न्याय के इस विभाग में राजा का लेश-भाग भी हस्तक्षेप नहीं था, विशेष अवसरों की बात और ही है।

राजस्व मन्त्री, शासन संचालन में अर्थ पक्ष को मजबूत करता था। सचिवालय तथा राजकीय विभाग को भी विशेष महत्त्व प्राप्त था। इसके अतिरिक्त भी अन्य अधिकारियों तथा व्यवस्थापकों की नियुक्तियों को दर्शाया गया है।

वस्तुतः राजनीति हर समय एक ऐसा विषय रहा है, जिस पर अधिक से अधिक लिखा गया है, इसी राजनीति की रीढ़ है, इसे संचालित करने वाला संगठन अर्थात् मन्त्रिपरिषद्। बाण के समय (वर्धन काल) में मन्त्रिमण्डल का जैसा स्वरूप महाकवि ने बताया है, उसे अधिक सरल व सहज रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास इस आलेख में किया गया है।

❖

H-16

बाण के समय का मन्त्रिपरिषद् : एक अनुशीलन

संस्कृत के साहित्याकाश में महाकवि बाणभट्ट एक विशिष्ट स्थान रखते हैं, यह तो सर्वविदित ही है। उपर्युक्त विषय की विवेचना से पूर्व इन महाकवि के देशकाल की चर्चा अत्यन्त प्रासंगिक है। जहाँ तक बाण के स्थिति-काल का प्रश्न है, वह ऐतिहासिक दृष्टि से सर्वथा निश्चित ही है। बाण ने अपने आश्रयदाता सम्राट् हर्षवर्धन का जीवन-वृत्तान्त अपने हर्षचरितम् में दे रखा है। हर्षवर्धन एक ऐतिहासिक व्यक्ति है, जो गुप्त राजवंश के बाद शासन-क्षेत्र में आए।

महाकवि बाण के ग्रन्थों में वर्णित तत्कालीन भारत की राजनीतिक स्थिति की समीक्षा शोधपत्र का प्रतिपाद्य विषय है।

❖

H-17

आधुनिक न्याय-व्यवस्था में अर्थशास्त्र की प्रासङ्गिकता

कौटिल्यकालीन राजनैतिक क्षेत्र में न्याय व्यवस्था का अपना विशेष महत्त्व है। उस समय अनेक सन्देहों को दूर करने वाला व्यवहार कहलाता था या किसी विषय के तय करने का साधन भी व्यवहार कहलाता था। लौकिक एवं पारलौकिक कष्टों को दूर करना प्रजारक्षण है, जब मनुष्य में धर्म का ह्रास होने लगा, तब धर्म एवं न्याय का परिवर्तन हुआ और राजा झगड़ों को दूर करने वाला एवं दण्डधर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घोषित हुआ। जो व्यक्ति प्रतिषद् व्यवहार सम्बन्धी मामले की सुनवाई करता तो उसे दण्ड दिया जाता था। हर क्षेत्र में कौटिल्य ने दण्डनीति का उल्लेख किया है, जो न्याय व्यवस्था के अन्तर्गत आता है, जिसका महत्त्व आधुनिक काल में अधिक नहीं है; क्योंकि आज न्याय किसी को मिलता ही नहीं है। जहाँ भी जाओ, वहाँ भ्रष्टाचार अपना घर किये हुये है, यहाँ हर विभाग चाहे पुलिस हो, या कोई भी विभाग हो आफिसर लोग रूपयों में बिक जाते हैं, जिस कारण प्रत्येक व्यक्ति को न्याय मिल पाना असंभव है, परन्तु उस समय में ऐसा नहीं था।

❖

IL-18

रभसनन्दी के कारकों का विवेचन

कातन्त्र व्याकरण के प्रकाण्ड विद्वान् रभसनन्दी ने कारकसम्बन्धोद्योत नामक प्रकरण ग्रन्थ में संस्कृत व्याकरण के कारकों को अत्यन्त संक्षेप में प्रस्तुत किया है।

ग्रन्थ शीर्षक कारकों एवं सम्बन्ध को प्रस्तुत करने की दृष्टि से सर्वथा उपयुक्त है। रभसनन्दी ने अपने प्रकरण गन्थ में कारक को परिभाषित करते हुए 'क्रियानिमित्तं कारकं लोकतः सिद्धम्' कहा है। यह परिभाषा महाभाष्य से पूर्णतया प्रभावित है।

रभसनन्दी ने मंगलाचरण के बाद षट् कारकों एवं सम्बन्ध को उक्त-अनुक्त के भेद से चौदह प्रकार का बताया है—

षट् कारकाणि सम्बन्ध उक्तानुक्ततया द्विधा।

संस्कृत के षट् कारकों एवं सम्बन्ध में लगने वाली विभक्तियों का निर्देश रभसनन्दी ने कारिकाओं (कातन्त्र-सूत्रों से युक्त) द्वारा किया है। कारिकाओं में केवल कातन्त्रसूत्रों का उल्लेख न करके ये सूत्र जिन-जिन धातुओं के योग में घटित होते हैं, उन-उन धातुओं का भी उल्लेख किया है। जैसे—'दुहादेगौणकं कर्म्म'।

पाणिनि सूत्रों, वार्तिकों, अपवादों एवं प्रत्ययवादों वाली कारक व्यवस्था के विपरीत सुकुमार मति वाले बालकों को कारकों का शीघ्र ज्ञान कराया जा सके, इसके लिये कातन्त्र परम्परानुयायी रभसनन्दी ने कारकसम्बन्धोद्योत नामक प्रकरण ग्रन्थ में सरल एवं सहज शैली में कारक व्यवस्था को प्रस्तुत किया है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IL-19

लौकिक संस्कृत साहित्य में संहार पद : अर्थ-विमर्श

हलायुध कोश में संहार पद की व्युत्पत्ति करते हुए कहा गया है–संह्रियतेऽनेनेति। इसकी निष्पत्ति सूत्र उपसर्गपूर्वक हृ धातु से घञ् प्रत्यय के योग से मानी गई है। इसका अर्थ संवर्थ, परिवर्त, क्षय, युगान्त, कल्पान्त, जगद्विनाश, समसुप्ति, महाप्रलय, प्रलय और संक्षेप प्रभृति बताया गया है।

वामन शिवराम आप्टे कोश के अनुसार संहार पद का अर्थ है—1. मिलाकर खींचना या साथ-साथ लाना, संचय करना। 2. संकोचना, भींचना, संक्षेपण। 3. रोक देना, पीछे खींच लेना, वापिस लेना। 4. प्रतिबन्ध लगाना, रोक लेना। 5. विनाश, विशेषकर सृष्टि का प्रलय। 6. समाप्ति, अन्त, उपसंहार। 7. संघात, समूह। 8. उच्चारण दोष। 9. जादू के शस्त्रास्त्रों को वापिस हटाने के लिए मन्त्र या जादू। 10. व्यवस्था कुशलता। 11. नरक का एक प्रभाग।

माधवीया धातुवृत्ति में हृञ् हरणे धातु (भ्वादिगण) का पाँच अर्थ किया गया है। वे अर्थ हैं— हरण, प्रापण, स्वीकार, स्तेय और नाश। इसी ग्रन्थ में अन्यत्र बताया गया है कि हृ धातु (जुहोत्यादिगण) 'हृ प्रसह्य करणे' में वि,आ,प्र,सम् आदि उपसर्ग से युक्त क्रमशः विहार, आहार, प्रहार और संहार आदि पदों में अर्थान्तर उपसर्ग के कारण आया है।

आचार्य विश्वनाथ ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'साहित्यदर्पण' के 'षष्ठ परिच्छेद' में काव्यसंहार और 'वर्णसंहार' को पारिभाषिक पद के रूप में प्रयोग किया है। इन पदों में प्रयुक्त संहार पद का अर्थ क्रमशः 'प्राप्ति' और 'मेल' है।

आदि महाकाव्य प्रणेता आर्ष कवि बाल्मीकि प्रणीत 'रामायण' महाकाव्य के अनुशीलनोपरान्त इसमें भी संहारपद विनाश और सृष्टिप्रलय तथा इनसे भिन्न अर्थों में भी प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार कालिदास एवं भवभूति आदि कवियों की कृतियों में भी संहारपद अर्थ-विमर्श प्रस्तुत निबन्ध में किया गया है।

❖

MS-20

वीरभा का सामाजिक परिवेश

पण्डित क्षमाराव की सुपुत्री श्रीमती लीलाराव आधुनिक काल की प्रसिद्ध संस्कृत नाट्य लेखिका है। इनकी निम्नलिखित सोलह रचनाएँ हैं। जिनमें वीरभा एक सामाजिक नाटक है। इसमें मुख्य पात्र नायिका वीरभा है, जो गरीब किसानों का नेतृत्व करती है। प्रस्तुत लघु शोध प्रबन्ध में विरभा के सामाजिक परिवेश का विश्लेषण यथासम्भव किया जा रहा है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीरभा नाटक में ऐसी सामाजिक परिवेश की झलक मिलती है। जहाँ नारी को वास्तव में अर्द्धांगिनी का महत्त्व दिया गया है, जीवन के हर क्षेत्र में उसे पुरुषों के समाज गतिशील दिखाया गया है।

इस नाटक में नारी मात्र भोग्या नहीं वरन् एक वीराङ्गना के रूप में चित्रित की गयी है। वह अन्याय के विरूद्ध लड़ने के लिए जनसमूह को उद्‌बुद्ध करती है। उसके जीवन का एकमात्र लक्ष्य है— स्वराज्य की प्राप्ति।

आधुनिक समाज का चित्रण इस नाटक में सर्वत्र दिखाई पड़ता है। इसका सामाजिक परिवेश पूर्णतः विकसित उदार एवं गतिशील है। जहाँ अशुभिनी में सामाजिक संकीर्णता के दर्शन होते हैं, वहीं वीरभा में सामाजिक उदारवादी दृष्टिकोण की झाँकी मिलती है।

नाटक में गाँधी जी के सत्य एवं अंहिसा का प्रभाव जनमानस में सर्वत्र व्याप्त है। वीरभा की निम्न उक्ति — हिंसा न कथमपि शान्ति साधनम् भी इसी विचारधारा का परिचायक है। वह अपने लक्ष्य की प्राप्ति हेतु सत्य एवं अहिंसा का मार्ग ही अपनाती है।

❖

MS-21

मञ्जुनाथीयं महाकाव्यम् काव्यगत वैशिष्ट्य

शेखावटी प्रदेशान्तर्गत पपूरणा ग्राम निवासी श्री बदरी प्रसाद शास्त्री द्वारा रचित मञ्जुनाथीयम् महाकाव्य अपने वैशिष्ट्य के कारण राजस्थान संस्कृत एकादमी द्वारा माघ पुरस्कार से पुरस्कृत हुआ है। नवसर्गात्मक इस महाकाव्य में कविशिरोमणि भट्ट मथुरानाथ शास्त्री का स्वतन्त्रता आन्दोलन में स्वतन्त्रता सेनानीत्व सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। कवि का मानना है कि स्वतन्त्रता संस्कृतसंस्कृतिप्रधान होनी चाहिए। राजनैतिक स्वतन्त्रता के साथ ही सांस्कृतिक स्वतन्त्रता प्राप्त होने पर ही वास्तविक स्वतन्त्रता मिल पाती है। भट्ट श्री मथुरानाथ शास्त्री को इस सांस्कृतिक स्वतन्त्रता आन्दोलन के नायक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इन संस्कृत कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन को प्रेरित किया और अपने क्रान्तिकारी विचारों के काव्योचित वर्णन द्वारा स्वतन्त्रता-प्राप्ति में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। अपने वर्ण्य-विषय की दृष्टि से यह एक विलक्षण महाकाव्य है। राजनैतिक रूप से अखण्ड भारत का काव्योचित वर्णन किया गया है। विद्यावीर और युद्धवीर का मुख्यरस के रूप में प्रयोग किया गया है। इस आधुनिक काल के महाकाव्य की रचना वैशिष्ट्य व काव्यसौन्दर्य की दृष्टि से समीक्षा व मूल्याङ्कन इस शोधपत्र का वर्ण्य-विषय है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

EP-22

वायुपुराण में निर्वचन

भारतीय शिक्षा प्रणाली में षडङ्गों सहित वेदों के अध्ययन का आदेश है। 'ब्राह्मणेन निष्कारणो षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च'। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष-वेदों के छः अङ्ग माने गये हैं।

निरुक्त और व्याकरण को परस्पर का पूरक कहा गया है। वेदमन्त्रों के अर्थज्ञान के लिए दोनों का अभ्यास आवश्यक है।

महर्षि व्यास ने वायुपुराण के पूर्वार्ध में विविध पदों का निर्वचन प्रस्तुत किया है। जिसमें व्याकरण मान्य धातुवाले और प्रचलित अर्थ के अनुसार परिकल्पित निर्वचन समाविष्ट है।

1. प्रथम प्रकार में—मनः, मतिः, ब्रह्मा, पूः, बुद्धिः, ख्यातिः, चितिः, स्मृतिः, संविद्, ज्ञानम्, भव, पुरुषः, स्वयंभूः इत्यादि 'महत्' पद के पर्यायवाची निर्वचन; आत्मा, ऋषिः, विष्णुः, सर्वज्ञः. अजः, प्रजापतिः, ईश्वरः, भूतः, क्षेत्रज्ञः, विभुः, यज्ञः, क्रमणः, आपः, अम्भस्, तनवः इत्यादि परमात्मा के समानार्थी पदों का निर्वचन; अचला, पर्वताः, गिरिः, शिलोच्चयाः, प्रासादः, शूद्राः और रुद्रः इत्यादि अन्य पदों के निर्वचन बताया गया है।

2. परिकल्पना के आधार पर लोमहर्षणः, पुराणम्, व्यासः, नैमिषः, महान्, विपुर्, कः, गन्धः, तन्मात्रा, भगवान्, रागः, ॐ, सर्वः, नारायणः, आदिदेवः, महादेवः, कविः, वर्णकः, हिरण्यगर्भः, वैश्याः, तिर्यक्स्रोतस्, ऊर्ध्वस्रोतस्, अर्वाक्स्रोतस्, मार्जालीयः, निषादः, पञ्चमः, मेघवाहनः, चिन्तकः, दर्शः, पौर्णमासी, बृहतः, वाजिनः, चरकाः, राजर्षिः, देवर्षिः इत्यादि पदों का निर्वचन प्रस्तुत किया गया है।

भारतीय साहित्य में पौराणिक युग का आविर्भाव एक नई दिशा का उद्घाटक रहा है। वेद विज्ञान का मनोरञ्जक आख्यान में रूपान्तर करना पुराणों का अभूतपूर्व कौशल बताता है।

❖

EP-23

रामायण में मन्थरा का योगदान

'मन्थरा' वाल्मीकि रामायण की उपेक्षित स्त्रीपात्र है। कैकेयी के हित में सोचने वाली मन्थरा राम के राज्याभिषेक की पूर्व संध्या में राज्याभिषेक के समाचार को सुनने के बाद किस मनोदशा को प्राप्त हुई, जिसने उसे तमाम कलंकों, अपवादों की परवाह न करते हुए भी राजकीय कार्यों में हस्तक्षेप करने के लिए विवश किया, यह विचारणीय तथ्य है।

कैकेयी की दासी 'मन्थरा' कैकेयी से राजा दशरथ द्वारा पूर्वकाल में दिये दो वरदान को माँगने के लिए प्रेरित करती है और पहले वरदान में 'भरत के लिए अयोध्या का राज' तथा दूसरे वरदान में 'श्रीराम के लिए चौदह वर्ष का वनवास' राजा से माँगने को कहती है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्थरा के इस कृत्य से—श्रवणकुमार के माँ-बाप के द्वारा राजा दशरथ को दिया गया 'शाप' फलीभूत होता है तथा राक्षसों तथा रावण के संहार के लिए भगवान् विष्णु का श्रीराम रूप में पृथ्वी पर अवतार लेना सिद्ध होता है।

इन दोनों मुख्य कार्यों के पीछे मन्थरा ही प्रमुख है। इस प्रकार रामकथा के विकास में मन्थरा का महत्त्वपूर्ण योगदान स्वतःसिद्ध है।

❖

EP-24

प्रासङ्गिकता पुराणों के वास्तु-निर्देशों की

वास्तुशास्त्र एवं शिल्पशास्त्र की भारतीय परम्परा बहुत ही प्राचीन है। विद्वानों ने इस शास्त्र का उद्गम वैदिक शास्त्रों से माना है। त्रिस्कन्धात्मक ज्योतिषशास्त्र के 'संहिता' स्कन्ध के अन्तर्गत गणित, स्थापत्य या वास्तुविद्या की प्रतिष्ठा अथर्ववेद के 'उपवेद' के रूप में है।

यह प्रसन्नता का विषय है कि यह तथ्य जन-मानस में अपनी जगह बना चुका है कि वास्तु के नियमों का पालन सुखी जीवन का आधार है और आज वास्तु विषय एक आन्दोलन और जागृति का रूप ले चुका है। कहना गलत न होगा की आज वास्तुविद्या प्राचीन ज्ञान एवं नवीन अनुभवों के समन्वयात्मक निर्वाहपूर्वक 'पुरा नवं भवति' के रूप में पुराणों की सार्थकता सिद्ध कर रही है।

❖

IA & P-25

कवि अलङ्कार प्रणीत 'देवप्रशस्तिकाव्यम्' का कला पक्ष

संस्कृत साहित्य में शतकपरम्परा अति प्राचीन है जैसे—शतकत्रय, सूर्यशतक, चण्डीशतक, अमरुशतक, शृङ्गारशतक, शतश्लोकी, मल्लटशतक इत्यादि। वर्तमान सन्दर्भ में कवि अलङ्कार ने "देवप्रशस्तिकाव्यम्" शतक की रचना कर शतकपरम्परा में एक नवीन अध्याय का प्रणयन किया है। संस्कृतसाहित्य में "देवप्रशस्तिकाव्यम्" विशिष्ट स्थान रखती है। काव्य में स्वामी देवानन्दसरस्वती के जन्म से प्रयाण तक की कथा का वर्णन काव्यकार की विलक्षण प्रतिभा और गुरु के प्रति अगाध श्रद्धा को प्रदर्शित करता है—

"नेदं प्रणीतं यशसे हि लोके नार्थाय वैदुष्यनिदर्शनाय।
भक्त्योपवीतं विधिनोपदिष्टं सुश्राद्धरूपं गुरवे हि काव्यम्"।।

प्रत्येक श्लोक स्वयमेव उनकी विद्वता व कवित्व शक्ति का वर्णन करता है—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"प्रभो विधेयामपि तेऽनुकम्पा पादाम्बुजानां तव चञ्चरीके।
वृष्टिर्विधेया मयि चातक ते याचे भवन्तं जलमाकुलोऽहम्।।"

काव्य का हर पक्ष प्रशंसनीय है। मुख्य विवेच्य विषय कलापक्ष होने के कारण कलापक्ष ही वर्णनीय है, सम्पूर्ण काव्य की भाँति कलापक्ष भी उत्कृष्टता में अग्रणय है। गुण निरूपण व भाषा-शैली की दृष्टि से यह काव्य भक्तिरस से परिपूर्ण है। सरल शब्दों व मुक्तक शैली का प्रयोग किया गया है। काव्य में श्री अलङ्कार ने मुख्यतः अनुप्रास और अर्थान्तरन्यास अलङ्कारों का प्रयोग किया है।

प्रत्येक पद्य में भिन्न-भिन्न छन्दों का प्रयोग कर कवि ने पाठकों को रसास्वादन कराया है। काव्य की भाषा सरस, सरलतम तथा आडम्बरों से रहित है। भक्तिरस होने से प्रसाद गुण व मुक्तक शैली दृष्टिगोचर होती है। कवि ने अर्थावबोध सुगमता के लिए कतिपय अपाणिनीय प्रयोग भी किए हैं। यह नायक प्रधानीय काव्योपरान्त कवि की कला ने गौण पात्रों का भी सजीव व मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत कर इसे सर्वथा नवीन तथा प्रभावोत्पादक बना दिया है।

अन्ततः हम कह सकते हैं कि श्री अलङ्कार के इस शतक ने संस्कृत साहित्य के शतकों में एक नयें अध्याय का श्रीगणेश किया है।

❖

IA & P-26

अभिनवगुप्तकृत लोचन-टीका की समीक्षा

काव्यशास्त्र का संस्कृत साहित्य में विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान है। काव्यशास्त्र का ज्ञान काव्यों में गुणदोष की विवेचना करने में सहायक होता है।

काव्य-रचना में निपुणता प्राप्त करना भी काव्य के ज्ञान पर ही निर्भर है। इसीलिये आचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वनि-काव्य को साहित्य का अंग मानकर ध्वन्यालोक नामक ग्रन्थ की रचना की है।

ध्वन्यालोक पर ही आचार्य अभिनवगुप्त ने लोचन-टीका को प्रस्तुत किया है।

लोचन-टीका का ही दूसरा नाम सहृदयालोक-लोचन भी है। इसको भी काव्यशास्त्र की श्रेणी में रखा गया है।

काव्यशास्त्र के अन्तर्गत काव्य का महत्त्व काव्य-प्रयोजन, काव्य-हेतु, काव्य-स्वरूप, काव्य-भेद, अलंकार, गुण, दोष, रीति, ध्वनि, वृत्ति आदि पर चर्चा की गयी है।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IA&P-27

'शृङ्गाररसमण्डनम्' और पुष्टि-भक्ति

वैष्णव सम्प्रदाय चतुष्टयी के अन्तर्गत 'रुद्र सम्प्रदाय' के प्रवर्तक विष्णु स्वामी की परम्परा में वल्लभाचार्य ने वल्लभ मत की स्थापना की, जिसको सिद्धान्त पक्ष में शुद्धाद्वैतवाद तथा क्रियात्मक पक्ष में पुष्टि-मार्ग कहा जाता है। इसको क्रियात्मक रूप में प्रस्तुत करने में वल्लभ के द्वितीय पुत्र विट्ठल का अपूर्व योगदान रहा। विट्ठल ने सातवीं शती में रचित अपने ग्रन्थ 'शृङ्गाररसमण्डनम्' के 'रस-सर्वस्व' में कृष्ण को अपना सर्वस्व मानने वाली कुमारिकाओं की पुष्टि-भक्ति का वर्णन किया है, जो कृष्ण को पति-रूप में प्राप्त करने के लिए नियमानुसार कात्यायनी देवी का व्रत रखती हैं तथा व्रत के फल रूप में कृष्ण द्वारा रस से परिपूर्ण शरद-रास का वचन प्राप्त कर अनुगृहीत होती हैं।

सांसारिक जीवों का श्रीकृष्ण के साथ सहज रूप में तादात्म्य स्थापित कराने के लिए जो आराधना है, वही पुष्टि-मार्ग या पुष्टि-भक्ति है—ऐसा वल्लभ का मत है। वल्लभाचार्य द्वारा जीव के कल्याण के निमित्त बताए गए तीन मार्गों में से यह विलक्षण तथा श्रेष्ठतम है। यह भक्ति मार्ग है। पुष्टि मार्ग के आधार पर ही वल्लभ ने साधन निरपेक्ष पुष्टि-भक्ति को माना, जो मात्र भगवदनुग्रह से साध्य है। इसमें साधना का मुख्य आधार प्रेम है। पुष्टिमार्गीय भक्त आत्मसमर्पण तथा प्रेमलक्षणा-भक्ति एवं रसात्मिका प्रीति के आश्रय से कृष्ण के अधरामृत-पान को ही अपनी भक्ति का सर्वश्रेष्ठ फल मानते हैं। ऐसी भक्ति करने वाले भक्त परब्रह्म की नित्य-लीला में भाग लेने के अधिकारी होते हैं। प्रस्तुत शोधपत्र में साहित्यिक रचना के माध्यम से दर्शनशास्त्र के गूढतम विषय भक्ति=पुष्टि-भक्ति पर प्रकाश डाला गया है।

❖

CS-28

The concept of विषाद as treated in the Uttararāmācaritam : A Psychological study

Tragic sentiment depicted in the Uttararāmācaritam has been criticized much. Severe pangs of separation experienced by Rama and Sita not only reflect विषाद but distress suffered by जनक, कौशल्या also become noteworthy.

In this paper, I have tried to present a psychological dimension of विषाद as presented in the Uttararāmācaritam. It is my humble attempt to combine psychological aspect of विषाद with literary study; as विषाद is a universal feeling experienced by human beings. As poets dealing with human nature, have always presented a unique synthesis of psychology and literature.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CS-29

The Purpose of Applying Varied Metre at the end of the Sarga of Sanskrit Mahakavyas

Many sanskrit Alankariks defined qualifications (symptoms) of the Epics. In doing so, now we shall go through what the Alankariks have to say. Biswanāth in 'Sahitya Darpana' has clasified the true image of the epics by saying.....

नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते.....

It means that the chapters (the sargas) should be written in the same metre, yet the 'slokas' at the end of the chapters may be written in other metres. Similarly to diversify them by rythmes, more than one metre could be used in the same chapter. It is understood from Dandi's Kāvyādarsha that the metre must be charming and each canto, which should not be too long, should end with a change of metre.

This paper is aimed at the discussion on changing the metre at the end of Sanga.

❖

H-30

Science and Political Institutions in Ancient India

People say that the ideas regarding science and political institution came from the west. But that is not correct. Actually scientific ideas and political ideas flowed from our past. They are all our heritage. First of all let us take up the scientific facts. So far as astronomical facts are concerned only those findings to be accepted which suited the Hindu norms. Medicine was practised by Hindu priests. Diseases were considered as a punishment inflicted by gods, i.e. Varuna inflicted dropsy. Astronomy was the first science that came into existence as a field of study. It grew out of the worship of heavenly bodies and the observation of their movement aimed to fix the calendar of festival and sacrificial days.

The ancient India excelled in the field of mathematics. Hindu numerals are miscalled as Arabians. These numerals are the contributions of our ancestors. They are to be found in the Rockedicts of Ashok (250 B.C.) which is at least one thousand years before their appearance in Arabic literature. So the great French mathematicians Laplace has supported the claim of Indians during Gupta period. Similarly 120 surgical instruments were used at

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

the time of Lord Buddha as is described by Pt. Shiva Sharma. As they excelled in science so their genius unfolded itself in the evolution of state and political institutions. Even in Rigvedic society we get the description of the battle of ten kings. Besides we find also the clash between Brahmins and Kshatriyas. Ancient Indian state was not so theocratic as the old western states. People believed in divine right of kings as well as democracy at the time of Load Buddha.

❖

H-31

The Development of Sanskrit Literature in Medieval India

It has long been universally accepted that Sanskrit is a remote cousin of all the languages of Europe with the exception of Finnish, Estonian, Hungarian, Turkish and Basqe. It was spoken by the tribesmen in the Steppelands of South Russia around the 2000 B.C. When a part of these tribesmen pushed into South Asia and reached India, Sanskrit found a fertile land for growth. The whole of ancient India witnessed a spectacular progress in the language and this glorious period continued till the Gupta age. The decline of an organized, central authority in India was however, not accompanied by the similar decline in Sanskrit literature.

This research paper is broadly divided into two periods of Medieval India : (a) The age of Delhi Sultanat (b) The Mughal age. It then proceeds to highlight the different works produced in Sanskrit literature during these periods in various branches : kāvya, nātakas, commentaries, music etc. A part of Sanskrit literature written under the Marathās has also been covered. It finally dicusses the influence of the changing socio-political conditions of India on the literature of the age old proud language of our country.

❖

IL-32

Samāsānta as an atyantasvārthika pratyaya Interesting relations of phonology and morphology

The *samāsānta* is the compositional suffix of Indo-European antiquity in the morphology of *samāsa.* Traditionally, it has been treated as an *atyantasvārthika pratyaya* (the *pratyaya* types being *svārthika, asvārthika* and *atyantasvārthika*) meaning that it is not semantically conditioned in grammatical operations. However, the *udātta* of *samāsa*-s

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

referred to as the *samāsāntodātta* is carried on the *samāsānt.* This *udātta* is seen to be semantically conditioned when the *samāsa* is accented during word formation. Therefore does the *samāsānta* too have a semantic basis because of the *udātta* it carries on the *anubandha?* This paper explores the ramifications and complexities of phonology, morphology and semantics in the background of *samāsānta* suffixation.

❖

PR-33

Cultural ethos as in Puruṣa Parīkṣā

The work puruṣa parīkṣā brings to light the life, different personal views, beliefs, ideals and aspirations of the people of the times of the author (16th-17th century A.D.) which are valuable facts of his days. It is surely a fruitful source for knowing the history and culture of not only Mithilā but also places such as Bengal, Ujjayinī, Kusumapura (Patna), Dhārā, Yoginī pura (Delhi), Gorakhpur, Dvārakā, Vārāṇasī, Mathurā, Ayodhyā, Kāñcī, Kauśāmbī and Avantī.

Moreover, it instructs moral values to the reader by means of stories of great people and at the same time it gives stories that are counter examples of these to make us learn what is good, what is bad and the results of following both. After Pañcatantra and other such old texts narrating stories, Puruṣa-parīkṣā can be called the only work to keep alive the story telling tradition of the sub-continent. The paper is an attempt to bring forth the cultural ethos as depicted in the work.

❖

PR-34

The Importance of Vyomavyāpimantra

In the Saiva philosophy mantra plays a significant role. It is said that mantras are not mere collection of letters with meaning rather these are regarded as the embodiment of souls and as such endowed with omnipotence and omniscience. There are two kinds of mantras such as the form of seed letters, which are variously known as Bijāksaras, Bijas, Kutāksaras etc. and the other one is the form of long strings of words that is called Mūlamantra. The Vyomavyāpimantra is such a mūlamantra, which expresses the Śiva-tattva through various words. It appears to have been one of the main formulas and has been transmitted in more than one-way. Therefore there is lot of discrepancies between the versions in several Āgamas. The earliest tradition of the āgamas such as Raurava-sūtra-samgraha, Nisvasa Guhya-sūtra-samgraha, Mātangaparamesvara etc. transmit an 81-pada version.

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

A stotra colled "Vyomavyāpistotra" of the 10th century has been written about this and has been composed as a hymn to Śiva in Arya metre. Each word of the mantra is explained in a verse and the position of each on a mandala of lotuses (the navanabhamandala) is explained. The author of this stotra is the celebrated 10th century Kashm irian saiddhantika theologian Bhatta Ramākantha.

❖

PR-35

Raghudeva in Nyāya: Few words.

In the philosophical tradition of Navya-nyāya, Raghudeva Nyāyālankara is a great new logician after Gangesh Upādhyāya. He deserves a very important place as much as Raghunatha Siromoni Mathurānātha etc.

From materials colleted from various sources, it is known that he flourished sometimes in the 2nd quarter of 17th Century A.D. He was the pupil of Harirāma Tarkavagisa. His most valuable commentaries on navya-nyāya, Vaisesikā philosophy and other intellectual studies are not yet published.

"Raghudevi", his commentary on Anumāna Khanda of Tattvacintamani is a very distinguished work in the literature of new logical school. Anumiti and other allied subjects are discussed by him in this commentary, which eventually remain unclear still in the previous works like Didhiti, Jagadishi etc. A humble attempt is made in this paper to discuss some of those points. The text of Raghudeva (Gudharthatattvadipika) is under construction. The little part of this text is following:

"pratyaksapramānopajibakatvat ---------- Anu,anapramanamnirupyate ---------- Adhikantu anu, anadidhi tavanusandheyam".

❖

PR-36

The Philosophy of Visistādvaita

Study of Indian philosophy is incomplete without a knowledge of Vedanta in its triple divisions-Advaita, Dvaita and Visistādvaita.

The doctrine of Visistādvaita is propounded by Sri Rāmānuja. The system of Visistādvaita has both as philosophical as theological aspect. The Visistādvaita of Rāmānuja was not only a reaction against the dry ritualism of the Mimāmsakas and the mentalism of atheistic thought which followed the intellectual revolution caused by the

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Budhas, but also a revival of the theistic Mimāmsa as advocated by the Vṛttikāra Bodhāyana known also as Upavarsha.

The philosophy of Vedanta first represents the progressive thought of man beginning with Dualism and ending with Non-dualism. The systems of thought characterising the Upanisada. The basic texts of Vedānta are the Brahmasutra, Upanisads and the Bhagavadgitā. The system of Vedānta popularized by Sankara is called Advaita by prasthānatrayī.

The great contribution of Sri Rāmānuja is that he has given us for the conception of Bhakti.The system of Advaita, Dvaita and Visistādvaita are the most popular forms of Vedanta at present. the Visistādvaita is of absorbing interest to thinkers not only on account of its intrinsic value but also on account of its synthetic insight as a philosophy of religion.

Visistādvaitins accept three pramānas-Pratyaksa, Anumāna and Subda. Rāmānuja considers the purvamimāmsa philosophy of karma or duty as a necessary step to the Uttaramimāmsa philosophy of Brahman The eternal and impersonal nature of sastra is accepted by all schools of Vedanta. Like Sankara, Rāmānuja also agree that the supreme end and aim of the Vedantinas as Munuksu. God, who is pleased with Bhakti and Prapatti gives the Moksā, Real Emancipation-"bhaktiprapattibhyām prasannah isvarah moksam dadāti"

Rāmānuja accepts the authority of the ancient and weighly traditions of the sūtras established by Vedantic teachers like Tanka, Guhadeva, Dramida, Kapardin and Bharuci.

❖

IA & P-37

'Alamkāratilaka' of Bhanudatta : A Study

Bhanudatta is well-known for his two works on Rasa, i.e. Rasataraṅginī and Rasamañjarī, but some other works in Sansktit Poetics are ascribed to him. Alamkāratilaka is one of them. It is published by Prof. G.V. Devasthali in the Journal of R.A.S. (New series), Vol. 23.

This work of Bhanudatta is divided in five chapters, which contain various topics of Sanskrit Poetics.

In this article a close-study of this treatise is made. We have tried to attempt a critical and comparative study of the same.

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IA & P-38

Aesthetic Reflection of Bāṇa's Harṣacaritam

It is beyond doubt that Bāṇa is a poet par excellence and his prose is the finest in the entire Sanskrit literature despite the fact that he has adversely been criticized by the modern, particularly some western scholars for his style etc.

This research paper is the continuation of study undertaken by me under the topic 'Aesthetic Reflection of Bāṇa's Kādambarī presented at the 41st Session of the AIOC held at Puri. And it is hereby established beyond dispute that Bāṇa has achieved an enviable degree of aesthetic sense i.e. Rasadhvani in his works in its full cry and as well has exposed efficiently and sufficiently the Alaṅkāradhvani and the Vastudhvani making the beauty of Rasadhvani more attractive. So, Bāṇa's excellence in use of Dhavni makes him a prose writer whose parallel is not found anywhere in the whole history of Sanskrit Prose.

❖

MS-39

आधुनिक संस्कृतसाहित्य में वर्तमान राजनैतिक सन्दर्भ

डॉ. किरण सिंह सेंगर, मैनपुरी

भारत में लोकतन्त्रात्मक पद्धति है। यद्यपि यह परम्परा जनता-जनार्दन के सुख-दुःख में कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने वाले सत्पात्र को चयन करने अथवा उपयुक्त राष्ट्रनायक (नेता) बनाने की उत्तमोत्तम व्यवस्था है; किन्तु आज यह दोषमुक्त नहीं रह गई है—

दरिद्रतादुःखदशाविशेषान् निःषेशयामः शुभशासनेन।
लब्धे पदे वः कृपयेति लोकान्, दुःशासना सम्प्रति वञ्चयन्ति॥

संस्कृत साहित्य-मनीषी इस वर्तमान व्यवस्था से क्षुब्ध हो जन-जन में जागृति का अमर सन्देश फूँकता हुआ कह उठता है। आज सत्यं शिवं सुन्दरम् का वह शोभन समायोजन शनैः शनैः विलुप्तप्राय है। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि संस्कृतसाहित्य आज भी वर्तमान सन्दर्भों से जुड़ा हुआ है। हमारी संस्कृति ही संस्कृत में सुरक्षित है। आज संस्कृत का अध्ययन वैकल्पिक विषय के रूप में न होकर अनिवार्य रूप से कराया जाये। इससे विषय व भाषा का ज्ञान होने के साथ ही हमारी संस्कृति की पूर्ण सुरक्षा हो सकेगी। इस सन्दर्भ में डॉ. अभिराज जी की यह सुन्दर उक्ति सर्वथा धारणीय है—

संस्कृतेनैव संस्काराः संस्कारैरेव संस्कृतिः।
संस्कृत्यैव भुवि ख्यातं राष्ट्रं सदा हि भारतम्॥

अन्ततोगत्वा संस्कृत के साहित्यकार विचक्षण, विलक्षण, कल्पनाशील और प्रतिभाशाली मनीषी हैं। वे अपनी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के द्वारा अपने समृद्ध अतीत से पाथेय ग्रहण कर वर्तमान समस्याओं से जूझते हुये भविष्य की सुखद परिकल्पना में तल्लीन हैं।

❖

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८. **कुमारसम्भवमहाकाव्यम्**

महाकवि कालिदास द्वारा प्रणीत इस महाकाव्य का प्रकाशन श्री अरुणगिरिनाथ कृत *'प्रकाशिका'* एवं पण्डित श्रीनारायण कृत *'विवरण'* संस्कृत-व्याख्या के साथ किया गया है। इसके सम्पादक प्रो. रेवा प्रसाद द्विवेदी हैं– ६००.००

९. **सारस्वती-सुषमा-वैभवोन्मीलनम्**

विश्वप्रसिद्ध अनुसन्धान पत्रिका सारस्वती सुषमा के प्रथम अङ्क से लेकर छप्पनवें अङ्क तक प्रकाशित निबन्धों एवं लघु-ग्रन्थों का अकारादि क्रम से विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसके प्रधान सम्पादक डॉ. हरिश्चन्द्र मणि त्रिपाठी हैं– ५०.००

१०. **परशुरामकल्पसूत्रम्**

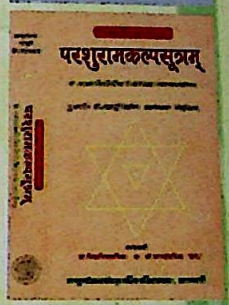

नीर-क्षीर-विवेक हिन्दी-भाष्य से संवलित तन्त्रशास्त्र के इस महनीय ग्रन्थ का प्रकाशन श्री रामेश्वर वृत्ति के मुख्यांश के साथ किया गया है। इसका सम्पादन प्रो.विद्यानिवास मिश्र तथा डॉ. परमहंस मिश्र 'हंस' ने किया है– २८०.००

११. **काव्यप्रकाशः**

साहित्यशास्त्र के प्राणभूत इस ग्रन्थ का प्रकाशन संस्कृत भाषा में प्रणीत *'प्रदीप'* एवं *'उद्योत'* व्याख्या के साथ किया गया है। इसका सम्पादन आचार्य श्रीशिवजी उपाध्याय ने किया है– ५८०.००

१२. **चित्रचम्पूकाव्यस्य ससमीक्षं सम्पादनम्**

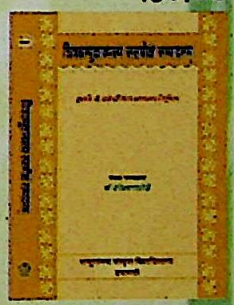

आचार्य श्रीबाणेश्वर भट्टाचार्य द्वारा प्रणीत चित्रचम्पू काव्य का समीक्षात्मक सम्पादन डॉ. देवी प्रसाद द्विवेदी ने किया है– २४०.००

१३. **पुनश्चर्या-संवाद**

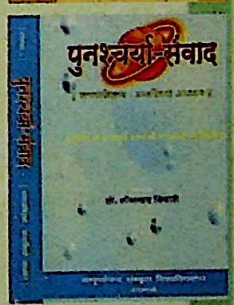

सामाजिक विज्ञान विभाग द्वारा आयोजित पुनश्चर्या-संवाद पाठ्यक्रम में विषयविशेषज्ञ विद्वानों द्वारा पढ़े गये निबन्धों का सङ्ग्रह कर यह ग्रन्थ प्रकाशित किया गया है। इसके सम्पादक डॉ. सोमनाथ त्रिपाठी हैं– २३०.००

१४. **अमरज्योतिः**

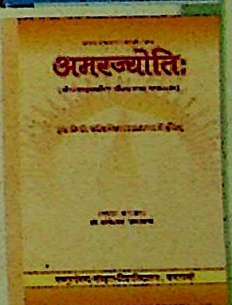

कविवर महादेव उपाध्याय विरचित इस खण्डकाव्य में पूर्व प्रधानमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री का जीवन-चरित्र अङ्कित है। इसके सम्पादक प्रो. राजेश्वर उपाध्याय जी हैं– १००.००

(क्रमशः कवर पृष्ठ-४ पर)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१५. **शिवलीलार्णवः**

महाकवि श्रीनीलकण्ठ दीक्षित द्वारा प्रणीत इस महाकाव्य में भगवान् शिव की चतुष्षष्टि लीलाओं का लालित्यपूर्ण वर्णन किया गया है। इसका सम्पादन डॉ. ददन उपाध्याय ने किया है– २००.००

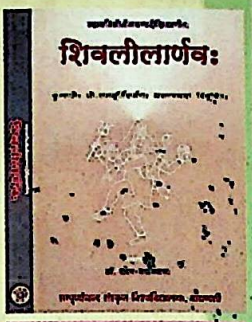

१६. **वैदिकशिक्षास्वरूपविमर्शः**

डॉ. राममूर्ति चतुर्वेदी द्वारा प्रणीत इस महनीय ग्रन्थ में वैदिक शिक्षा के स्वरूप का अनुसन्धानात्मक विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है– ३६०.००

१७. **कुण्डरत्नावली**

श्री रामचन्द्र दीक्षित द्वारा प्रणीत 'मञ्जूषा' नामक स्वोपज्ञ टीका के साथ इस ग्रन्थ का प्रकाशन किया गया है। इसकी सम्पादिका डॉ. मिताली देव हैं– २२०.००

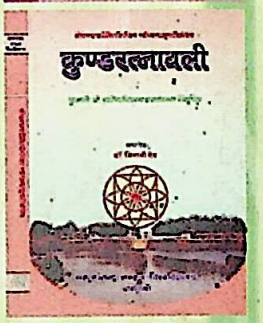

१८. **अश्वमेध महायज्ञ : एक सांस्कृतिक विश्लेषण**

डॉ. मिताली देव द्वारा प्रणीत इस ग्रन्थ में अश्वमेध यज्ञ की वैदिक विधि, अन्य यज्ञों की अपेक्षा अश्वमेध यज्ञ का वैशिष्ट्य प्रभृति विविध शास्त्रीय पक्षों के निरूपण के साथ वर्तमान युग में अश्वमेधयज्ञ की उपयोगिता का विशद विवेचन प्रस्तुत है– ५५०.००

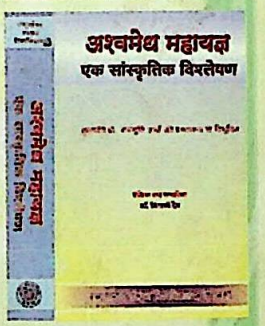

१९. **स्वच्छन्दतन्त्रम्**

इस ग्रन्थ का प्रकाशन महामाहेश्वर आचार्य श्रीक्षेमराज कृत *'उद्द्योत'* एवं डॉ. परमहंस मिश्र 'हंस' के *'नीरक्षीरविवेक'* नामक हिन्दी भाष्य के साथ किया गया है–

भाग-१ : ४००.०० भाग-२ : ४००.००

भाग-३ : ४५०.०० भाग-२ (शीघ्र प्रकाश्य)

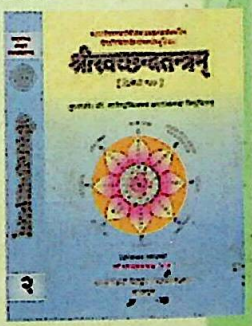

२०. **अभिनवशुकसारिका**

प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी द्वारा प्रणीत इस अर्वाचीन कथा-साहित्य का प्रकाशन प्रो. त्रिपाठी जी के ही *हिन्दी-भाषानुवाद* के साथ किया गया है– १५०.००

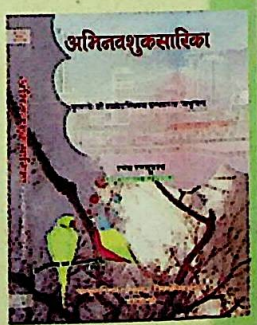

पत्र-व्यवहार सङ्केत : *डॉ. हरिश्चन्द्र मणि त्रिपाठी*, निदेशक, प्रकाशन-संस्थान, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी-२२१००२

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.